हिंदी गद्य साहित्य

एम.ए. (हिंदी)

(उत्तरार्द्ध)

MAHIND 502

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA - 791 112

BOARD OF STUDIES

Dr. Okem Lego, Head (i/c) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Devraj Dean, School of Translation and Interpretation Mahatma Gandhi Antarashtriya Hindi Vishwavidhyalaya Vardha Maharastra - 442 005	**External Member**
Dr. Harish Kr. Sharma Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. A. Tripathi Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Ashan Riddi Director, I.D.E Rajiv Gandhi University	**Member Secretary**

Authors

Dr. Mohammad Erfan, Assistant Professor, Department of Hindi, Moradabad Muslim Degree College Moradabad (UP)
(Unit 1) © Reserved, 2014

Dr. Laxmi Panday, D.Lit., Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar, Madhya Pradesh
(Unit s 2, 4, 6.7-6.12) © Reserved, 2014

Dr Suresh Acharya, D.Lit. Professor, Department of Hindi, Dr. Hari Singh Gour University, Sagar, M.P
(Unit 3) © Reserved, 2014

Yatindra Nath Gaur, Ex. Library Incharge, National Bal Bhawan, Kotla Road, New Delhi
(Unit 5) © Reserved, 2014

Dr Abha Gupta Thakur, Assistant Professor, Department of Hindi Arts Faculty, Kashi Hindi Vishwa Vidyalaya,
(Units 6.0-6.6) © Reserved, 2014

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE—Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi 110 014
Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गांधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने, जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, 4 फरवरी, 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी। यहीं विश्वविद्यालय का वर्तमान कैंपस विद्यमान है।

आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित हैं। 28 मार्च, 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12-V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल, 2007 से, विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि. मी. और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए हैं कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर, एम. फिल व पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड. का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध हैं। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फंडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही, विभिन्न फंडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है। देश–विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं।

2000–2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढ़ीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामतः छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया। बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है। परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती हैं और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए हैं बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं, उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं।

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

आईडीई : एक परिचय

हमारे देश में उच्च शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों, सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विभिन्न विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते हैं कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण सीखना और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने का वैकल्पिक माध्यम है। यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है, जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार व कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नहीं निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर–पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में। सन् 2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर 'दूरस्थ शिक्षा संस्थान' (आईडीई) रखा गया।

दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013–14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों (शिक्षा, अंग्रेजी, हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान) को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन (पहली मंजिल) का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती हैं।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

1. **नियमित माध्यम के समकक्ष**–पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।
2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री (एसआईएसएस)**– छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी), नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रवेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।
3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)**– शैक्षिक कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7–15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी.ए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।
4. **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट**– व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।
5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम**–परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।
6. **विषय परामर्श संयोजक**– पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं। ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिंदी गद्य साहित्य

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 गोदान–व्याख्या खंड; गोदान एवं भारतीय किसान; गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न; महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गोदान; गोदान में आदर्श और यथार्थ; गोदान का भाषा शिल्प	**इकाई 1** : गोदान (मुंशी प्रेमचंद) **(पृष्ठ : 3–88)**
इकाई 2 अंधेर नगरी : मूल नाटक; अंधेर नगरी का नाट्य शिल्प; 'अंधेर नगरी' में यथार्थ बोध; 'अंधेर नगरी' की भाषा एवं लोक तत्व; 'अंधेर नगरी'–प्रासंगिकता	**इकाई 2** : अंधेर नगरी (भारतेंदु हरिश्चंद्र) **(पृष्ठ : 89–122)**
इकाई 3 पात्र परिचय एवं व्याख्याएं; आधे–अधूरे में आधुनिकता बोध; आधे–अधूरे की प्रयोगधर्मिता; नाट्य समीक्षा की कसौटी पर 'आधे–अधूरे'– कथानक, पात्र एवं चरित्र चित्रण, युग–बोध, अभिनेयता; आधे–अधूरे की नाट्यभाषा– रंगमंच के अनुकूल शब्दों का चयन, भाषा शैली	**इकाई 3** : आधे–अधूरे (मोहन राकेश) **(पृष्ठ : 123–172)**
इकाई 4 हृदय – बालकृष्ण भट्ट; काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था – रामचंद्र शुक्ल; साहित्यकारों का दायित्व – हजारी प्रसाद द्विवेदी; जीवन अपनी देहरी पर – विद्यानिवास मिश्र	**इकाई 4** : निबंध **(पृष्ठ : 173–248)**
इकाई 5 उसने कहा था – चंद्रधर शर्मा गुलेरी; ठाकुर का कुआं – मुंशी प्रेमचंद; मलबे का मालिक – मोहन राकेश; यही सच है – मन्नू भंडारी; सलाम – ओम प्रकाश वाल्मीकि	**इकाई 5** : कहानी **(पृष्ठ : 249–342)**
इकाई 5 यात्रावृत्त : परशुराम से तुरख तक : अज्ञेय; रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल – फणीश्वरनाथ रेणु; रेखाचित्र : भाभी – महादेवी वर्मा; संस्मरण : विष्णु प्रभाकर : यादों की तीर्थयात्रा : जैनेन्द्र कुमार; आत्मकथा : गुड़िया भीतर गुड़िया – मैत्रेयी पुष्पा; जीवनी : महापंडित राहुल – गुणाकर मुले	**इकाई 6** : यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी **(पृष्ठ : 343–406)**

विषय–सूची

परिचय 1

इकाई 1 गोदान (मुंशी प्रेमचंद) 3–88

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 गोदान–व्याख्या खंड
1.3 गोदान एवं भारतीय किसान
1.4 गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न
1.4.1 दलित चेतना
1.4.2 स्त्री चेतना
1.5 महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गोदान
1.6 गोदान में आदर्श और यथार्थ
1.6.1 गोदान में चित्रित यथार्थ
1.6.2 गोदान में चित्रित आदर्श
1.7 गोदान का भाषा शिल्प
1.8 सारांश
1.9 मुख्य शब्दावली
1.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 अंधेर नगरी (भारतेंदु हरिश्चंद्र) 89–122

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 अंधेर नगरी : मूल नाटक
2.3 अंधेर नगरी का नाट्य शिल्प
2.4 'अंधेर नगरी' में यथार्थ बोध
2.5 'अंधेर नगरी' की भाषा एवं लोक तत्व
2.6 'अंधेर नगरी'–प्रासंगिकता
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 आधे–अधूरे (मोहन राकेश) 123–172

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 पात्र परिचय एवं व्याख्याएं
3.2.1 पात्र–परिचय
3.2.2 व्याख्या

3.3 आधे–अधूरे में आधुनिकता बोध
3.4 आधे–अधूरे की प्रयोगधर्मिता
3.5 नाट्य समीक्षा की कसौटी पर 'आधे–अधूरे'
3.5.1 कथानक
3.5.2 पात्र एवं चरित्र चित्रण
3.5.3 युग–बोध
3.5.4 अभिनेयता
3.6 आधे–अधूरे की नाट्यभाषा
3.6.1 रंगमंच के अनुकूल शब्दों का चयन
3.6.2 भाषा शैली
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 निबंध 173–248

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 हृदय – बालकृष्ण भट्ट
4.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4.2.2 हृदय–मूल पाठ
4.2.3 बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली
4.2.4 हृदय : प्रतिपाद्य
4.2.5 हृदय : समीक्षात्मक अध्ययन
4.3 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था – रामचंद्र शुक्ल
4.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4.3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था–मूल पाठ
4.3.3 निबंध शैली
4.3.4 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : प्रतिपाद्य
4.3.5 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : समीक्षात्मक अध्ययन
4.4 साहित्यकारों का दायित्व – हजारी प्रसाद द्विवेदी
4.4.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4.4.2 साहित्यकारों का दायित्व–मूल पाठ
4.4.3 निबंध शैली
4.4.4 साहित्यकारों का दायित्व–प्रतिपाद्य
4.4.5 साहित्यकारों का दायित्व–समीक्षात्मक अध्ययन
4.5 जीवन अपनी देहरी पर – विद्यानिवास मिश्र
4.5.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4.5.2 जीवन अपनी देहरी पर–मूल पाठ
4.5.3 निबंध शैली
4.5.4 जीवन अपनी देहरी पर–प्रतिपाद्य
4.5.5 जीवन अपनी देहरी पर–समीक्षात्मक अध्ययन
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 कहानी 249–342

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 उसने कहा था – चंद्रधर शर्मा गुलेरी
5.2.1 लेखक परिचय
5.2.2 उसने कहा था : मूल पाठ
5.2.3 चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं
5.2.4 कहानी का सार
5.2.5 कहानी की समीक्षा
5.2.6 कहानी कला के तत्व और 'उसने कहा था'
5.2.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं
5.3 ठाकुर का कुआं – मुंशी प्रेमचंद
5.3.1 लेखक परिचय
5.3.2 ठाकुर का कुआं : मूल पाठ
5.3.3 प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएं
5.3.4 कहानी का सार
5.3.5 कहानी की समीक्षा
5.3.6 कहानी कला के तत्व और 'ठाकुर का कुआं'
5.3.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं
5.4 मलबे का मालिक – मोहन राकेश
5.4.1 लेखक परिचय
5.4.2 मलबे का मालिक : मूल पाठ
5.4.3 मोहन राकेश की कहानी कला की विशेषताएं
5.4.4 कहानी का सार
5.4.5 कहानी की समीक्षा
5.4.6 कहानी कला के तत्व और 'मलबे का मालिक'
5.4.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं
5.5 यही सच है – मन्नू भंडारी
5.5.1 लेखिका परिचय
5.5.2 यही सच है : मूल पाठ
5.5.3 मन्नू भंडारी की कहानी कला की विशेषताएं
5.5.4 कहानी का सार
5.5.5 कहानी की समीक्षा
5.5.6 कहानी कला के तत्व और 'यही सच है'
5.5.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं
5.6 सलाम – ओम प्रकाश वाल्मीकि
5.6.1 लेखक परिचय
5.6.2 सलाम : मूल पाठ
5.6.3 ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी कला की विशेषताएं
5.6.4 कहानी का सार
5.6.5 कहानी की समीक्षा
5.6.6 कहानी कला के तत्व और 'सलाम'
5.6.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 6 यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी 343–406

6.0 परिचय
6.1 इकाई के उद्देश्य
6.2 यात्रावृत्त : परशुराम से तुरख तक : अज्ञेय
6.2.1 परशुराम से तूरखम– (एक टायर की रामकहानी)
6.2.2 लेखन–शैली
6.3 रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल – फणीश्वरनाथ रेणु
6.3.1 ऋणजल–धनजल
6.3.2 लेखन शैली
6.3.3 साहित्यिक अवदान
6.4 रेखाचित्र : भाभी – महादेवी वर्मा
6.4.1 भाभी
6.4.2 भाषा शैली
6.5 संस्मरण.: विष्णु प्रभाकर : यादों की तीर्थयात्रा : जैनेन्द्र कुमार
6.6 आत्मकथा : गुड़िया भीतर गुड़िया – मैत्रेयी पुष्पा
6.6.1 गुड़िया भीतर गुड़िया
6.6.2 भाषा और शिल्प
6.7 जीवनी : महापंडित राहुल – गुणाकर मुले
6.8 सारांश
6.9 मुख्य शब्दावली
6.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
6.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
6.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी गद्य साहित्य' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (उत्तरार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। गद्य एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने भावों को प्रस्तुत करने के लिए सहज रूप से, बातचीत की शैली अथवा अलंकृत शैली में अपनी बात कहता चला जाता है। कविता के नियम गद्य में अवरोध पैदा नहीं करते। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य लिखा गया। आधुनिक युग में गद्य लेखन की कई पद्धतियां विकसित हुईं। उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वृत्तांत, रिपोतार्ज आदि अनेकानेक विधाओं के माध्यम से साहित्य लिखा गया।

हिंदी गद्य साहित्य में अनेक लेखक–लेखिकाओं का उदय एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में हुआ। अनेक नयी गद्य विधाओं का उदय और विकास हुआ तथा कई कालजयी रचनाओं का प्रणयन हुआ। यहां विभिन्न गद्य विधाओं में रचित चुनिंदा रचनाओं को प्रस्तुत्र किया जा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी गद्य साहित्य के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। 'गतिविधि' एवं 'क्या आप जानते हैं' के माध्यम से हिंदी गद्य साहित्य में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को छह इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास गोदान की विस्तृत समीक्षा की गई है।

दूसरी इकाई में हिंदी साहित्य के हस्ताक्षर भारतेंदु हरिश्चंद्र के चर्चित एवं लोकप्रिय नाटक अंधेर नगरी का विवेचन किया गया है।

तीसरी इकाई में जाने माने लेखक मोहन राकेश के प्रसिद्ध एवं जनप्रिय नाटक आधे–अधूरे की नाट्य संरचना का विस्तृत परिचय दिया गया है।

चौथी इकाई विभिन्न निबंधकारों द्वारा रचित निबंधों से हमारा परिचय कराती है, इसमें बालकृष्ण भट्ट, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विद्यानिवास मिश्र के प्रसिद्ध निबंधों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पांचवीं इकाई विभिन्न कहानीकारों द्वारा रचित प्रसिद्ध कहानियों से हमारा परिचय कराती है, इसमें प्रेमचंद, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, ओमप्रकाश वाल्मीकि की चर्चित कहानियों की विस्तृत समीक्षा की गई है।

छठी इकाई विभिन्न रचनाकारों द्वारा रचित यात्रावृत्त, संस्मरण, रिपोर्ताज, आत्मकथा, रेखाचित्र, जीवनी आदि विभिन्न विधाओं से हमारा परिचय कराती है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी गद्य साहित्य के वैभव को विविध विधाओं की रचनाओं को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर, हिंदी गद्य साहित्य की प्रकृति को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

टिप्पणी

इकाई 1 गोदान (मुंशी प्रेमचंद)

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 गोदान–व्याख्या खंड
1.3 गोदान एवं भारतीय किसान
1.4 गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न
  1.4.1 दलित चेतना
  1.4.2 स्त्री चेतना
1.5 महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गोदान
1.6 गोदान में आदर्श और यथार्थ
  1.6.1 गोदान में चित्रित यथार्थ
  1.6.2 गोदान में चित्रित आदर्श
1.7 गोदान का भाषा शिल्प
1.8 सारांश
1.9 मुख्य शब्दावली
1.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

गोदान उपन्यास के लेखक प्रेमचंद ने भारतीय समाज के विविध रूपों का सजीव एवं विश्लेषणात्मक चित्रण किया है। जिसमें सोहाग का मजबूत आधार, कृषक जीवन, जमींदारों का वास्तविक स्वरूप, सामाजिक व्यवस्था, आत्म चिंतन, दाम्पत्य जीवन, पुरुष की स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण, नारी चेतना, धार्मिक विकृतियों को दर्शन, भविष्य की आशंका, कर्तव्यों का निर्वाहन, वर्गीय भेदभाव का दुष्प्रभाव, बौद्धिकता की प्रधानता, विवाह संस्कार, लोकतंत्र का विकृत स्वरूप, आर्थिक अभाव, नारी के आदर्श गुणों का बखान, पाश्चात्य संस्कृति का दुष्प्रभाव, वंशानुगत गुणों का प्रभाव, आधुनिक युगबोध का दिग्दर्शन, संयुक्त परिवार का लाभ, सेवा भाव जैसे ज्वलंत मुद्दों का बहुत सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

गोदान उपन्यास में जीवन के आदर्श और यथार्थ दोनों स्थितियों का चित्रण किया गया है। मानव जीवन आदर्श और यथार्थ के प्रांगण में फलीभूत होता है। आदर्शवाद समाज के भयावह विकराल यथार्थ को मनोरम स्वरूप प्रदान कर सर्वग्राह्य बनाता है और यथार्थ धरातल मनुष्य की चिंतन शैली को विकसित करता है। गोदान को महाकाव्य माना जाए या न माना जाए इस विषय पर एक मत होने से पहले महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओं का गोदान के साथ तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है और यहां इस आधार पर गोदान उपन्यास को महाकाव्य की कसौटी पर परखने का प्रयास किया गया है।

प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव जीवन चरित्र का चित्र कह कर पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण को प्रमुखता दी है। गोदान उपन्यास में चरित्र चित्रण द्वारा प्रेमचंद के वैयक्तिक

टिप्पणी

दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया गया है। आधुनिकता के संदर्भ में हम अगर बात करें तो गोदान केवल सामाजिक जीवन का ही प्रतिबिंब नहीं अपितु युगीन संदर्भों, ज्वलंत मुद्दों, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचना जैसे पक्षों को प्रस्तुत करने में भी सक्षम हैं। गोदान आधुनिक संदर्भों में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय था। इस इकाई में इस उपन्यास के विभिन्न पक्षों का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रेमचंद रचित गोदान के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर पाएंगे;
- गोदान में चित्रित भारतीय किसान की दशा की पहचान कर पाएंगे;
- गोदान में उठाई गई दलित एवं स्त्री समस्याओं का आकलन कर पाएंगे;
- गोदान की महाकाव्यात्मक विशेषताओं का उदाहरण सहित वर्णन कर पाएंगे।
- गोदान में चित्रित आदर्श एवं यथार्थ स्थितियों का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 गोदान–व्याख्या खंड

- विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदनाशक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आंखों वाले आदमी को हो सकता है?

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

आर्थिक विपन्नता के फलस्वरूप होरी और धनिया के जीवन में समय–समय पर कलह प्रारंभ हो गया था। जिस अवस्था में व्यक्ति प्रौढ़ता को प्राप्त करता है, होरी उस स्थिति में पहुंचकर निराशा के गर्त में गिरता जा रहा था। होरी ने असहाय स्थिति में दुर्गति होने से पूर्व परमात्मा के पास जाने की इच्छा व्यक्त की। होरी के इस वचनों को सुनकर धनिया के पैरों की जमीन खिसकने लगी। धनिया का आंतरिक हृदय पति (होरी) के प्रति समर्पण भाव से ओतप्रोत था। धनिया के हृदय में होने वाली अमंगल की आशंका का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा–

व्याख्या

धनिया के वैवाहिक जीवन का प्रारंभ आर्थिक विपन्नता से हुआ। (पति) को प्राप्त कर धनिया इस निर्धनता में भी प्रसन्न थी, क्योंकि उसका जीवन साथी उसकी आंखों के सामने था।

टिप्पणी

किंतु आज पति की भविष्यवाणी को सुनकर धनिया आंतरिक रूप से टूट चुकी थी। भविष्य की अनहोनी से चिंतित होकर धनिया (पति) होरी को खोना नहीं चाहती थी, क्योंकि उसका पति ही इस विषम स्थिति में उसके जीवन का सहारा था। सोहाग को लेकर जो धनिया आश्वस्त थी, वही आज भविष्य को लेकर चिंतित है। होरी के इन असंगत शब्दों ने उसके भविष्य का सहारा भी छीन लेना चाहा है। धनिया व्यवहार कुशल थी, यथार्थ को अवश्यंभावी मानकर वेदना के आवरण में भी प्रसन्न थी। धनिया ने अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस प्रकार काने व्यक्ति को काना कहने से पीड़ा होती है वही पीड़ा आज धनिया को हो रही थी, वह यथार्थ से परिचित थी, लेकिन भयभीत न थी। दो आंखों वाला व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता। यही उक्ति धनिया के जीवन पर भी लागू हो रही थी।

विशेष

- कृषक जीवन की त्रासदी एवं वास्तविकता का वर्णन है।
- धनिया का अंर्तद्वंद्व एवं भविष्य की आशंका से त्रस्त मनःस्थिति का वर्णन है।
- यह यथार्थ है कि आर्थिक विपन्नता के प्रभाव स्वरूप व्यक्ति असमय बूढ़ा हो जाता है।
- पति परमेश्वर होता है जिसके बिना पत्नी का जीवन सारहीन हो जाता है।
- सोहाग विवाहित जीवन की प्रसन्नता, खुशहाली का प्रतीक है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- सोहाग ही वह तृण था, उत्प्रेक्षा अलंकार तथा विपन्नता के अथाह सागर में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- यह अवतरण होरी की आर्थिक विपन्नता का बोध कराता है।

- किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति के स्थायी सहयोग से है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के धन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है, ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

भोला की असहाय स्थिति का लाभ उठाना होरी ने नहीं सीखा था। भूसे के लिए गाय को बेचने की दुविधा से दुःखी होकर होरी भोला को साहस दिलाता है। कृषक जीवन की सादगी व संवेदना का वर्णन करते हुए प्रेमचंद ने कहा–

टिप्पणी

व्याख्या

प्रेमचंद का मानना है कि किसान भोला, मूर्ख सरल एवं सीधा नहीं होता, उसमें भी परिस्थितिवश निर्णय लेने की क्षमता होती है। भोला अहीर की असमर्थता को देखकर होरी अपनी सांत्वना व्यक्त करता है। स्वार्थहित वह व्यवहार में परिवर्तन करना भी जानता है। वह कष्ट सहकर भी रिश्वत का एक पैसा देने को उत्सुक नहीं होता। अपनी वस्तु को बेचते समय कई बार मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी करता है। आश्वस्त होकर निर्णय करता है। कोई उसको अपने जाल में नहीं फंसा सकता। किसान का जीवन प्रकृति की खुली किताब होता है। प्राकृतिक आपदा को भाग्य मानकर सहन भी कर लेता है। किसान की प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए प्रेमचंद कहते हैं कि किसान परमार्थ के लिए अपने जीवन का होम करता है जिस प्रकार वृक्ष अपने फल स्वयं न खाकर दूसरों को प्रदान करते हैं उसी प्रकार किसान के खेत में उत्पन्न अनाज भी औरों के काम आता है। गाय अपना मधुर दूध अपने बच्चे के साथ दूसरों को प्रदान करती है। बादलों से होने वाली वर्षा से समस्त वसुंधरा हरी–भरी होकर तृप्त होती है। जब प्रकृति में कोई स्वार्थ नहीं है, फिर किसान के जीवन में होना संभव नहीं। क्योंकि होरी भी किसान था उसका जीवन भी परोपकार को समर्पित था इसीलिए स्वार्थवश भोला अहीर की असमर्थता का लाभ उठाना उसे शोभा नहीं देता।

विशेष

- कृषक जीवन की सादगी, सहजता, निस्वार्थ भावना का वर्णन किया गया है।
- होरी की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- होरी के माध्यम से किसानों की विशेषताओं को चित्रित किया गया है।
- मानव और प्रकृति का संबंध अटूट होता है यही प्रकृति मानव को निस्वार्थ भावना की शिक्षा देती है।
- परोपकार की भावना का चित्रण वृक्ष, गाय, खेत एवं बादलों द्वारा किया गया है।
- प्रकृति की कोख से अनेक साहित्यकारों ने अपनी साहित्य साधना की प्रेरक पृष्ठभूमि प्राप्त की। छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत का जीवन इसका प्रमाण है।
- प्रवाहपूर्ण भाषा का चित्रण है।
- विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

• संपत्ति और सहृदयता का बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हम में से किसी पर डिग्री हो जाए, कुर्की आ जाए, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए, किसी का जवान बेटा मर जाए, किसी की विधवा बहू निकल जाए, किसी के घर में आग लग जाए, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाए, या अपने आसामियों के हाथों पिट जाए, तो उसके और सगे भाई उस पर हंसेंगे, बगलें बजाएंगे, मानो सारे संसार की संपदा मिल गई है और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

जेठ के दशहरे पर धनुष यज्ञ की तैयारी चल रही थी होरी को राजा जनक की भूमिका निभाने का आदेश मिला। ठाकुर राय साहब अमरपाल सिंह के घनिष्ठतम व्यक्तियों में होरी का नाम भी आता था। अपने मन का बोझ हल्का करने के लिए होरी से एकांत में वार्तालाप करता है। बड़े व्यक्तियों के व्यवहार का वर्णन करते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं–

व्याख्या

रायसाहब होरी से अपने मन की व्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि धनवान व्यक्ति में संवेदना का लेशमात्र भी अंश नहीं होता, उनकी संवेदना में कुत्सित प्रवृत्ति का बोध होता है। धनाढ्य व्यक्ति का दान दिखाने के लिए होता है। धार्मिक कार्यों से सभी का शुभचिंतक एवं उदार बनना चाहता है। जिसके पास धन होगा उसमें दया, ममता का नामोनिशान नहीं होता। यह यथार्थ है कि संपत्ति व सहृदयता एक दूसरे की प्रतिरोधी हैं। अपने को बराबर वालों में श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए ही हम व्यर्थ का ढोंग करते हैं। हमारे कार्यों में भी अहंकार की भावना प्रदर्शित होती है। अगर हमारे साथी की कुर्की हो जाए, या डिग्री हो जाए तो हमें आनंद का अनुभव होता है। कोई अगर हवालात में बंद हो जाए तो हमारे हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। दुर्भाग्यवश किसी का बेटा मर जाए, तो हम मुदित होते हैं कि उसका सहारा छिन गया। आपसी विवाद से किसी की बहु घर से निकले तो हम उस पर कीचड़ उछालकर खुश होते हैं। कोई किसी वेश्या द्वारा मूर्ख बना दिया जाए तो उसकी हंसी उड़ाते हैं। दुर्व्यवहार के फलस्वरूप अगर कोई आसामियों द्वारा पीटा जाता है तो उसकी दुर्गति होने पर हमें अच्छा लगता है। भाई–भाई का नहीं होता है। हमारे सभी संबंध स्वार्थ के होते हैं। हमारी कथनी और करनी में अंतर पाया जाता है। हम जो करते हैं उसे अमल से दूर रखते हैं। हमारी मित्रता भी स्वार्थ से खाली नहीं होती। हम जब मिलते हैं तो दिल खोलकर रख देते हैं जब बिछड़ते हैं तो खाल खींचकर ही शांत होते हैं। हमारी मित्रता में कृत्रिमता झलकती है।

विशेष

- राय साहब द्वारा बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
- राय साहब द्वारा जमींदारों की कथनी और करनी में अंतर दिखाया गया है।
- उपन्यास में वर्गीय पात्रों का वर्णन है। रायसाहब जमींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- रायसाहब की अभिव्यक्ति में शोषक की गंध आती है।
- यह अवतरण परतंत्र भारत में किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन करने में सक्षम है।
- होरी रायसाहब का विश्वसनीय पात्र है।

टिप्पणी

- मुहावरे प्रधान भाषा–उल्लू बनाना, बगलें झांकना आदि का सुंदर प्रयोग है।
- भाषा में लाक्षणिकता के दर्शन होते हैं।
- संपत्ति और सहृदयता में बैर है– सूक्ति का प्रयोग किया गया है।
- मानो सारे संसार की संपत्ति मिल गई हो– उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

- गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और बैर को मैं क्षम्य समझता हूं। हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले तो उसके गले में उंगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या या बैर केवल आनंद के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में भी निःस्वार्थ और परम आनंद मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुंच गए हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हंसी आती है, उसे तुम छोटी साधना मत समझो।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

दशहरे के अवसर पर होरी ने सेमरी गांव पहुंचकर रायसाहब अमरपाल सिंह के यहां हाजिरी दी। सभी अपने–अपने उत्तरदायित्त्व का पालन करने में व्यस्त हैं। होरी को गांव वालों द्वारा सगुन भेजने की जिम्मेदारी मिली। होरी ने ठाकुर अमरपाल सिंह से कहा हम तो आपको बड़ा आदमी समझते थे पर आज पता चला कि बड़े आदमियों में भी ईर्ष्या, द्वेष की भावना पाई जाती है। स्वयं की प्रशंसा सुनकर ठाकुर अमर पाल ने कहा–

व्याख्या

अमर पाल ने होरी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा कि हम बड़े व्यक्ति केवल नाम के होते हैं हमारे नामानुसार कार्य नहीं होते। हमारे लिए ईर्ष्या द्वेष केवल आनंद के लिए होते हैं जबकि गरीबों में ईर्ष्या का होना स्वाभाविक है। उनके पेट की भूख उन्हें ऐसा करने को बाध्य करती है। पेट के लिए किया गया व्यवहार क्षमा के योग्य है। शत्रुता को सही ठहराता हूं। अगर कोई हमारा नुकसान पहुंचाना चाहे तो उससे बदला लिए बिना हमारी आत्मा शांत नहीं होती उसको त्रस्त करना हमारा मौलिक कर्तव्य हो जाता है। यही हमारा धर्म है। अगर हम अपने धर्म का पालन न करें तो बराबर वाले हमें असमर्थ व असहाय समझते हैं। अगर हम ऐसा न करें तो हमें देवता मान लिया जाता है। बड़े व्यक्तियों में ईर्ष्या एवं बैर आनंद का बोध कराता है। हमें नीचता एवं कुत्सित कार्यों में बड़प्पन का आभास होता है। परम आनंद की प्राप्ति होती है। हमें दूसरों के रोने में आनंद मिलता है। हमारा यह व्यवहार किसी देवता से कम नहीं है। हमारी आत्मा मर चुकी है। हम सहृदयता से कोसों दूर हैं। दुःखी व्यक्ति का उपहास उड़ाना हम नैतिक उत्तरदायित्त्व समझते हैं।

टिप्पणी

विशेष

- मुंशी प्रेमचंद ने रायसाहब अमरपाल सिंह द्वारा जमींदार वर्ग की विशेषताओं का उल्लेख करवाया है।
- बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलता का वर्णन किया गया है।
- यह अवतरण प्रेमचंद के अनुभवी जीवन का बोध कराता है।
- मुहावरे प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है, जैसे– नाम बड़े दर्शन छोटे।
- लाक्षणिकता की झांकी–देवतापन, विपरीत विशेषताओं, तुच्छता, नीचता में मिलती है।
- रायसाहब की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट दिखाई देता है।

- दुनिया समझती है हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल, सवारियां, नौकर–चाकर, कर्ज, वेश्याएं क्या नहीं है। लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुःख पर सब हंसे और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों तले दबी हो, जो भोग विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

अपने दुर्गुणों पर प्रकाश डालते हुए ठाकुर अमरपाल सिंह अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम बड़े लोगों में चारित्रिक पतन का होना स्वाभाविक है। हमारी अंतरात्मा अंदर से दुःखी है, हमारी कृत्रिम हंसी में हमारी कथनी और करनी का प्रतिबिंब झलकता है। हमें शोषण करने में आत्मसंतुष्टि होती है। बड़े व्यक्तियों पर प्रकाश डालते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं–

व्याख्या

ठाकुर अमरपाल सिंह अपने दुर्गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि दुनिया की दृष्टि में हमें बड़ा माना जाता है, हमारी सुख–सुविधाओं से हमारी प्रसन्नता का अनुमान लगाया जाता है। हमारे पास बड़े–बड़े इलाके हैं, विशाल महल हैं, आने जाने को निजी सवारियां हैं हमारे आगे पीछे नौकर घूमते हैं। इतना होने के बावजूद हम दुःखी हैं। हमारा यह सब वैभव दिखावा मात्र है। जिस व्यक्ति में आत्मबल नहीं है। स्वाभिमान की भावना नहीं है वह व्यक्ति मनुष्यता का अधिकारी नहीं है। हम शोषण के दल–दल में डूबे हुए हैं जिससे, मानवता कोसों दूर हो गई है। अपनी तथा जमींदारों की वैयक्तिक जीवन शैली का वर्णन करते हुए अमरपाल सिंह ने कहा कि, वह व्यक्ति किसी भी रूप में सुखी नहीं है जो निश्चिंत

टिप्पणी

होकर सो नहीं सकता। जिसके हृदय में संवेदना का जन्म न हो, जो असहाय स्थिति का फायदा उठाने के लिए तत्पर न होता हो उससे बड़प्पन की गंध नहीं आती। किसी का खून–चूसना महानता नहीं कहलाती। जिसे भोग–विलास में जीवन का चरमोत्कर्ष दिखाई देता हो वह किसी भी रूप में बड़ा नहीं हो सकता।

विशेष

- जमीदारों के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला गया है।
- अमरपाल सिंह के उद्‌गारों में हृदय की निश्छलता झलकती है।
- सुखी जीवन के अनुभव का अनुमान आत्मिक सुख से लगाया जा सकता है।
- शोषण की प्रवृत्ति का वर्णन है।
- बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलताओं का उल्लेख है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग– तलवे चाटना, खून चूसना द्वारा हुआ है।
- अरबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे–हुक्काम।
- आत्मकथात्मक शैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

- लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूं। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है, और जब तक संपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, तब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुंचना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब भविष्य में होने वाले परिवर्तनों से अवगत हैं कि जमींदारी प्रथा का खात्मा होने वाला है तथा जमींदारों की आलसी प्रवृत्ति तभी दूर होगी। सरकार भी भविष्य में होने वाले बदलाव का संकेत दे रही है।

व्याख्या

रायसाहब अमरपाल सिंह स्वयं जमींदार हैं इलाके में उनका आतंक है। वे बदलती परिस्थितियों से भली–भांति अवगत हैं। इसीलिए होरी से अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अब समय बदल रहा है। समयानुकूल मनोवृत्ति को भी बदलना पड़ेगा। जमींदारी प्रथा समाप्त होने वाली है। मेरी भी इच्छा यही है कि यह प्रथा जितनी जल्दी समाप्त हो जाए उतना ही श्रेयस्कर है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने को उत्सुक हूं। ईश्वर भी यही चाह रहा है। वह दिन हमारे पुनरुद्धार का होगा। हम परिस्थितियों के आगे विवश थे जिसके कारण हम अकर्मण्य हो गए हैं। हमारी संपत्ति ही हमारी सबसे बड़ी शत्रु है क्योंकि अपने धन के कारण ही हम स्वेच्छाचारी हो गए हैं हमारा मानवता से कोई संबंध नहीं रहा जिस मानवता के लिए मनुष्य व्यथित होता है वह प्राप्त नहीं कर सकता। उसके बिना जीवन को सार्थकता व्यर्थ है हमने मानव विरुद्ध कार्य करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

टिप्पणी

विशेष

- जमींदारी प्रथा की समाप्ति का संकेत मिलता है।
- प्रेमचंद का मानना है कि जमींदारी प्रथा से समाज का विकास संभव नहीं है।
- जमींदारों से त्रस्त कृषक जीवन की त्रासदी का अनुमान लगाया जा सकता है।
- रायसाहब के दोहरे व्यक्तित्व का दिग्दर्शन है एक ओर वह शोषण के प्रतीक हैं, दूसरी ओर होरी से संवेदना व्यक्त करके सहानुभूति दिखाना चाहते हैं।
- प्रेमचंद के विचारानुसार प्रगतिवादी चेतना का समर्थन करना ही तत्कालीन युग की मांग थी।
- प्रवाहमयी सहज भाषा का प्रयोग हुआ है।
- प्रेमचंद की भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि का चित्रण देखने को मिलता है।
- यह यथार्थ है कि धूर्त, मक्कार व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी मानवनता के दर्शन होते हैं।
- रायसाहब अमरपाल सिंह द्वारा प्रेमचंद ने मानवतावादी भावना को प्रमुखता प्रदान की है।
- यह यथार्थ है कि धन के आवरण में लिप्त व्यक्ति में स्वच्छंदता, कुप्रवृत्तियां स्वतः आ जाती हैं।

- यह सब कहने की बात है। हम लोग दाने–दाने को मोहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं है, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी–मसनद लगाए बैठे हैं, सैकड़ों नौकर–चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह से मिलने के पश्चात होरी अपने घर वापस आया। धनिया उत्सुकतावश पूछती है कि ठाकुर साहब से क्या बातें हुई तो होरी बड़े आदमियों के विवशता पर प्रकाश डालता है कि बड़े व्यक्ति भी पीड़ित और व्यथित हैं। उन्हें भी हजारों चिंताएं घेरे रहती हैं। गोबर होरी की इन बातों का खंडन करता है।

व्याख्या

होरी द्वारा जमींदारों के दुःखी होने की बात सुनकर प्रतिकार स्वरूप कहता है यह सब दिखावा है केवल कहने भर को है। इसमें लेशमात्र भी सच्चाई नहीं है। दुःख तो गरीबों को

टिप्पणी

होता है, उन्हें एक वक्त की रोटी के लिए बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। एक–एक दाने को मोहताज रहते हैं। तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता। अथक परिश्रम करने पर भी गुजर नहीं हो पाती। जमींदार तो मजे से रहते हैं। मोटे–मोटे गद्दों पर निश्चिंत होकर सोते हैं। सैकड़ों नौकर देखभाल में लगे रहते हैं। हजारों आदमियों पर अपना एक छत्र शासन करते हैं। उनकी धनलिप्सा कभी पूर्ण नहीं होगी। धन के द्वारा सभी सुख–सुविधाओं को प्राप्त किया जा सकता है। धन के बिना जीवन की सार्थकता व्यर्थ ही रहती है।

विशेष

- गोबर आधुनिक युवा वर्ग का प्रतीक है।
- गोबर द्वारा प्रेमचंद ने भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख किया है।
- गोबर द्वारा युवा वर्ग का आक्रोश मुखरित हुआ है।
- होरी की भाग्यवादिता का वर्णन किया गया है।
- यह यथार्थ है कि जमींदारों की कथनी करनी में अंतर होता है।
- यह अवतरण जमींदारों की दोहरी मानसिकता को दर्शाता है।
- गरीब किसान की दृष्टि में धन सभी सुखों का मूल होता है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग गया किया है।
- उर्दू शब्दों का प्रयोग– मुहताज, साबित, गुजर हुकूमत आदि के रूप में हुआ है।
- गोबर के प्रतिकार में होरी की पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया गया है।

- मैं तो कभी–कभी सोचता हूं कि अगर सरकार हमारे इलाके छीनकर हमें अपनी रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान उपकार करे, और यह तो तय है कि सरकार भी अब हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह जमींदार वर्ग की अकर्मण्यता को उजागर करते हुए कहते हैं कि जमींदारी प्रथा समाप्त होने वाली है। भविष्य में बदलाव को अवश्यंभावी मानकर होरी से अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं–

व्याख्या

रायसाहब अमरपाल सिंह कह रहे हैं कि परिश्रम करने से ही आत्मसंतुष्टि मिलती है। परिश्रम का फल मीठा होता है। हमारा यह जमींदार वर्ग मेहनत करने का आदी हो जाएगा। सरकार जितनी जल्दी हो सके हमारे इलाकों को छीन ले तो सरकार का बड़ा उपकार होगा। शोषण की कड़ी समाप्त होगी और स्वार्थी प्रवृत्ति का अंत होगा। सरकार भी समय

टिप्पणी

के साथ फैसला करेगी, क्योंकि जमींदारों से उसका भला नहीं होने वाला। अगर इन अमीरों, जमींदारों का अस्तित्व समाप्त हो जाए तो श्रेयस्कर होगा।

विशेष

- प्रेमचंद की भविष्योन्मुखी यथार्थ दृष्टिकोण का वर्णन है।
- ज्ञात होता है कि जमींदारीं प्रथा की समाप्ति के लक्षण प्रारंभ हो चुके थे।
- संपत्ति पर सभी का अधिकार हो, प्रेमचंद का ऐसा मानना दृष्टिगोचर होता है।
- सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
- रायसाहब अमरपाल सिंह की प्रत्युत्पन्नमति का चित्रण किया गया है।

- कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। इसमें आदमियत कहां? आदमी वह है जिसके पास धन है, इख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी भोला अहीर से मिलकर उसकी सदाशयता की प्रशंसा करता है। भूसा देकर अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय देता है। रास्ते में होरी और भोला युग के परिप्रेक्ष्य पर विहंगम दृष्टि से चिंतन करते हैं। होरी का मानना है कि गरीबों का जन्म दूसरों की सेवा करने के लिए हुआ है। बड़े आदमियों पर कोई अंकुश नहीं है छोटे आदमियों पर तरह–तरह के प्रतिबंध है। भोला का मानना है कि हम छोटे आदमी कभी भी बड़े आदमियों की बराबरी नहीं कर सकते क्योंकि हमें आदमी नहीं माना जाता।

व्याख्या

भोला कहता है कि कौन कहता है कि हम भी आदमी हैं– आज आदमी की परिभाषा बदल गई है। आदमी की पहचान का पैमाना संपत्ति माना जाता है। जिसके पास जितनी अधिक संपत्ति होगी वह उतना ही बड़ा आदमी माना जाता है। जिसके पास अधिकार जमाने की शक्ति है, जिसके पास उचित–अनुचित का निर्णय करने की क्षमता है। जिसमें मनुष्यों को सोचने पर विवश करने की बहस का माद्दा है वही बड़ा आदमी माना जाता है। छोटे व्यक्तियों को आदमी न मानकर बैल माना जाने लगा है। लगता है ईश्वर ने हमारा जन्म इनकी सेवा करने के लिए किया है। दिन रात बैल की तरह परिश्रम करते रहें। हमारी इस स्थिति के लिए हमारी आपसी फूट और विद्वेष की भावना उत्तरदायी है। हम आपस में लड़ते झगड़ते हैं। एक होकर रहना नहीं सीखा। हमारी आपसी वैमनस्य की प्रवृत्ति के कारण ही

टिप्पणी

जमींदार अत्याचार करता जाता है और हम मूक होकर सहन करते रहते हैं। एक किसान का खेत दूसरा किसान सहर्ष अपना लेता है। प्रेम का भाव समाप्त हो गया है। जब तक किसान संगठित होकर अपने लिए संघर्ष नहीं करेंगे तब तक उनकी शोषण से मुक्ति संभव नहीं।

विशेष

- भोला का अनुभवी जीवनोद्‌गार व्यक्त हुआ है।
- आर्थिक विपन्नता का प्रभाव मनुष्य की जीवन शैली को बदल देता है।
- मनुष्यता की पहचान इनसानियत से न होकर धन दौलत, शक्ति ज्ञान एवं अंहकार से की जाने लगी है।
- संगठन में शक्ति होती है। भोला के अनुसार आपसी वैमनस्य ही किसानों की दुर्दशा का मूल कारण है।
- पारस्परिक मतभेद के बीच प्रेम का परिपक्व होना असंभव है।
- बैल होने से तात्पर्य मंदबुद्धि से है।
- विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है, जैसे– आदमी, इख्तियार, इलम, आदमियत आदि।

- वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है, और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण क्षण पर बगुले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है शीतल और शांत, जब हम थके हुए पथिक की भांति दिनभर की यात्रा का वृतांत कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं जहां नीचे का जानवर हम तक नहीं पहुंचता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

दमड़ी बसोर को सस्ते दाम में बांस बेच देने के कारण फन्नी हीरा से झगड़ती है परिणाम स्वरूप पिटती है लेकिन तत्क्षण पति के साथ खेतपर भी चली जाती है। होरी फन्नी की प्रशंसा करता है तो धनिया हीरा की। उसे (पति) होरी की सज्जनता पर क्रोध आता है। होरी और धनिया के वैवाहिक जीवन का वर्णन दिन से तुलना करते हुए लेखक कहता है।

व्याख्या

लेखक के अनुसार वैवाहिक जीवन का प्रारंभ उषाकाल के समान अनेक प्रकार की सुख शांति लेकर आता है। जिस प्रकार प्रातः काल की बेला मनुष्यों में नवीन स्फूर्ति का संचार करती है, समस्त अंधकारमय वातावरण को तिरोहित कर देती है, चारों ओर सूर्य के प्रकाश

टिप्पणी

से दिशाएं जगमगा जाती हैं, उसी प्रकार वैवाहिक जीवन का आरंभ भी एक प्रकार से मस्ती भरा और आनंदमय होता है। जीवन में हर्ष, उल्लास का वातावरण देखने को मिलता है। वर–वधू का हृदय रूपी आकाश गुलाबी मादकता से भरा होता है। नाना इच्छाओं का जन्म नवीन कल्पनाओं की सृष्टि करता है। युगल को यह विश्वास रहता है कि हमारे जीवन में सदैव ऐसी ही आनंदमय छटा छाई रहेगी। प्रेमयुक्त हृदय जब मिलते हैं तो समस्त चिंताएं भोग आनंद के सामने तुच्छ सी लगती हैं। जिस प्रकार प्रातः काल का सूर्य दोपहर के समय अपने चरमोत्कर्ष पर आग उगलता है, तो वातावरण तापमय हो जाता है। प्रातः काल की रंगीन किरणें अग्निवाणों की वर्षा करती हैं। लू चलने लगती है। चारों ओर धूल भरी तेज हवाएं भी चलने लगती हैं। प्रातः काल की लालिमा छंट जाती है। गृहस्थ जीवन में पड़कर उत्तरदायित्व का बोध बढ़ने लगता है। मानव आनंदमयी बेला को त्यागकर जीवन के संघर्ष युक्त वातावरण में कूद पड़ता है। तब उसका सामना संघर्षों की बेला से होता है। अथक परिश्रम ही उसकी प्रगति का मूलाधार होता है। जीवन की वास्तविकता सामने आकर खड़ी हो जाती है। कभी–कभी तेज गर्मी के समान नव दंपत्ति का जीवन भी डगमगाने लगता है। वैवाहिक जीवन का तीसरा चरण विश्राममय संध्या से शुरु होता है। ऐसे समय में क्लांत पथिक की भांति विश्राम करने को उत्सुक होता है। उसके जीवन का तीसरा चरण विश्राममयी संध्या के रूप में सामने आता है। संघर्ष का चरण समाप्त हो जाता है। अपने विगत जीवन की गतिविधियों पर परिचर्चा करने में व्यस्त हो जाता है। किस प्रकार उसने बाधाओं पर विजय प्राप्त की। पुरानी बातें उसमें आनंद का संचार करती है। वह उस व्यक्ति के समान होता है जों पर्वत के ऊंचे शिखर पर बैठकर नीचे घटित होने वाली घटनाओं को देख रहा हो।

विशेष

- दाम्पत्य जीवन का चित्रण दिन के सांगरूपक द्वारा चित्रित किया गया है।
- वैवाहिक जीवन के मधुर एवं कटु दोनों अनुभवों का संयोग दर्शाया गया है।
- अप्रत्यक्ष रूप से होरी के जीवन का तीसरा चरण व्यक्त हुआ है।
- व्याख्यात्मक एवं तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है।
- सांगरूपक अलंकार एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।
- भावात्मक शैली एवं अलंकारिक शैली प्रयुक्त हुई है।
- छायावादी शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।
- सूर्य को जीवन के संघर्ष का प्रतीक माना गया है।

- द्वेष का मायाजाल बड़ी–बड़ी मछलियों को ही फंसाता है। छोटी मछलियां या तो उसमें फंसती ही नहीं या तुरंत निकल जाती हैं। उनके लिए यह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोलचाल बंद थी, पर रूपा दोनों घरों में आती–जाती थी। बच्चों से क्या बैर।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

टिप्पणी

प्रसंग

होरी के घर गाय आई तो सारा गांव गाय देखने आया। होरी के भाई हीरा और शोभा नहीं आए। धनिया कहने लगी कि तुम्हारे भाई बैर रखते हैं। धनिया के हटने पर होरी ने छोटी बेटी रूपा को भाइयों के घर भेजा कि शोभा और हीरा को उंगली पकड़कर ले आए। रूपा उछलती कूदती चली गई। उसके हृदय में कोई द्वेष की भावना न थी। बच्चें का हृदय निर्मल होता है।

व्याख्या

प्रेमचंद ने बड़े मनुष्यों और बच्चों के स्वभाव चरित्र का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि बड़े मनुंष्यों में द्वेष, प्रतिकार की भावना अधिक पाई जाती है। छोटे बच्चे इन दुर्गुणों से मुक्त रहते हैं। जिस प्रकार जाल से बड़ी मछलियां ही फंसती हैं छोटी नहीं फंसती, ठीक उसी प्रकार बड़े मनुष्यों में ईर्ष्या होती है। छोटे बच्चे निर्मल आत्मा के होते हैं। उन पर इसका क्षणिक प्रभाव पड़ता है। उनके लिए यह व्यवहार खेल की वस्तु है। होरी के भाईयों में पारस्परिक मनमुटाव था। धनिया भी झगड़ती थी। किंतु रूपा तो छोटी बच्ची थी वह अपने परिवार में आती जाती थी। हीरा और शोभा से कोई द्वेष न था। रास्ते में धनिया के मिलने पर रूपा को वापस आना पड़ा।

विशेष

- ईर्ष्या, द्वेष का प्रभाव बड़ों पर होता है छोटे बच्चों पर नहीं।
- यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह दूसरे के सुख से दुःखी होता है। शोभा और हीरा भी इसी प्रवृत्ति के शिकार थे।
- यहां पर धनिया की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है, जो प्रतिकार एवं स्वाभिमान स्वरूप रूपा को रास्ते से वापस ले आती है।
- इस अवतरण से होरी के पारिवारिक विघटन का पता चलता है।
- ईर्ष्या द्वेष विकार हैं इसीलिए प्रेमचंद ने इन्हें मायाजाल कहा है।
- बच्चे मन के सच्चे होते हैं। रूपा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।
- शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- अलंकारिक शैली एवं प्रतीकात्मक शैली प्रयुक्त की गई है।
- रूपक अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत हुआ है।

- उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जबतक फल न लग जाएं, उन पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन पाकर उसका कौमार्य उसके गले में चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन, जिसे भावियों के व्यंग्य और हास–विलास ने और भी लोलुप बना दिया था उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी की तरह यौवन जाग उठा।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर सोलह–सत्रह वर्ष का युवक था। गांव की प्रथानुसार वह लड़कियों को बहन मानता था, कोई उससे छेड़–छाड़ भी नहीं कर पाता था। भावियों की दृष्टि में वह अभी छोटा ही था। जब से भोला अहीर के यहां गाय के संदर्भ में गोबर को जाने का अवसर मिला तो झुनिया से हृदय की बातें हुईं, फलस्वरूप गोबर के हृदय में सहज अनुराग का जन्म होने लगा।

व्याख्या

मुंशी प्रेमचंद इसी विषय का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि बागवान तब तक प्रतीक्षा करता हैं जब तक कि फूल झड़कर फल न बन जाएं। उसी प्रकार गांव की भाभियां भी गोबर को नासमझ समझती थीं क्योंकि गोबर में परिपक्वता के लक्षण नहीं थे। नारी वर्ग से मिलने वाली उपेक्षा से गोबर का मन भी अनासक्त भाव रखता था। इसीलिए वह कुंवारा ही था जबकि दूसरी और झुनिया इस आनंद सागर में डुबकी लगा चुकी थी। समय–समय पर भाभियों द्वारा छेड़खानी करने पर आनंद का अनुभव करती थी। उसने गोबर के कौमार्य से आकृष्ट होकर उसे अपने जाल में फंसाना चाहा, वह सफल भी रही। गोबर के सूने हृदय में भी प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। जिस प्रकार शिकारी जानवर पत्ता खड़कते ही जाग जाता है उसी प्रकार गोबर ने भी शिकारी जानवर की भांति झुनिया के आमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

विशेष

- गोबर झुनिया के पारस्परिक आकर्षण का चित्रण है।
- स्वस्थ शरीर प्रथम सुख होता है। झुनिया भी गोबर के कौमार्य पर रीझकर अपने जाल में फंसा लेती है।
- प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- मुहावरेदार सरल हिंदी का प्रयोग है।
- यौवन के दिन सुंदर होते हैं उसमें अनेक कल्पनाओं एवं उद्भावनाओं का जन्म लेना स्वाभाविक है।

- सबके सब भौंरे इसे लेकर उड़ जाने वाले। मैं भी उन्हें ललचाती हूं तिरछी नजरों से देखती हूं, मुस्कराती हूं। वह मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लू बनाती हूं। मैं मर जाऊं तो उनकी आंखों में आंसू न आएगा। वह मर जाए तो मैं भी कहूंगी, अच्छा हुआ निगोड़ा मर गया, मैं तो जिसकी हो जाऊंगी, उसकी जन्मभर के लिए हो जाऊंगी सुख में, दुःख में, संपत में, विपत्त में, उसके साथ रहूंगी। हरजाई नहीं हूं कि सबसे हंसती बोलती फिरूं।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर को होरी के साथ झुनिया के घर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। एकांत पाकर झुनिया का हाथ पकड़कर वह अपनी समर्पण भावना व्यक्त करता है। झुनिया को वैधव्य के दुर्दिनों में लकड़ी का सहारा मिला तो वह शीघ्रताशीघ्र अपनी सहमति प्रदान कर परखने का प्रयत्न करती है कि यह हाथ पकड़ा है तो जन्म भर निभाना पड़ेगा। गोबर सहमति प्रदान करता है। झुनिया अपनी समर्पण प्रवृति पर प्रकाश डालती हुई कहती है–

व्याख्या

झुनिया का मानना है कि मर्द पहले तरह–तरह की कसमें खाते हैं। समर्पण, त्याग जताते हैं, लेकिन काम निकल जाने पर बेरुखे हो जाते हैं। परिस्थितिवश झुनिया ने दूध बेचने का काम करते समय व्यवहारिक अनुभव प्राप्त किया था कि सभी उसके आगे–पीछे हाथ जोड़ा करते। झुनिया का मानना है कि मर्द का स्वभाव चंचल स्वार्थी भौंरे के समान है जो प्रतिदिन नयें पुष्प का मधुर पान करने के लिए भ्रमण करता है। मैंने भी स्वार्थी मनुष्यों को उल्लू बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया है। मेरा मुस्कराना उन्हें पलभर के सुख सागर में डुबकी लगाने को बाध्य करता है। वह मुझे मूर्ख बनाना चाहते हैं, तो मैं भी उन्हें उल्लू बनाकर अपना काम निकालती हूं। पर वास्तविकता यह है कि कोई मेरा जीवन भर साथ देने को तैयार नहीं है मेरे मरने पर उन्हें लेशमात्र भी दुःख नहीं होगा। मैं जिसे एक बार अपना लूंगी उसका जीवन भर साथ न छोडूंगी। उसके सुख–दुःख में, संपत्ति और विपत्ति में उसका साथ नहीं छोडूंगी। हरजाई बनकर हंसी–ठिठोली करना मुझे स्वीकार्य नहीं।

विशेष

- झुनिया की परिपक्वता की झलक दिखाई देती है।
- झुनिया व्यवहारिक एवं युगीन परिस्थितियों से भली–भांति अवगत है।
- पपुरुषों की लोलुप प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है।
- झुनिया का मानना है कि विवाह संस्कार की सार्थकता समर्पण त्याग के बिना सारहीन है।
- यह अवतरण झुनिया की अनुभवशीलता का वर्णन करता है।
- तद्भव शब्दों का सुंदर प्रयोग–संपत और विपत के रूप में हुआ है।
- सरल प्रवाहमयी भाषा प्रयुक्त हुई है।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

• मैं अहीर की लड़की हूं। मूंछ का एक–एक बाल नुचवा लूंगी। यही लिखा है तुम्हारे पोथी–पत्रे में कि दूसरों की बहू–बेटियों को अपने घर में बंद करके बेइज्जत करो। इसीलिए तिलक–मुद्रा का जाल बिछाए बैठे हो? लगा हाथ जोड़ने, पैर पकड़ने एक प्रेमी का मान रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा, झूना रानी! कभी–कभी गरीबों पर दया किया करो, नहीं भगवान पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूपधन दिया था तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जवाब दोगी? बोले, मैं विप्र हूं, रुपये पैसे का दान तो रोज ही पाता हूं, आज रूप का दान दे दो।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

झुनिया ने वैधव्य जीवन में भी पराश्रित होकर जीना नहीं सीखा, अकर्मन्य रहकर बाप के यहां बोझ बनना स्वीकार नहीं था इसीलिए दूध बेचने का कार्य करती थी। एक ब्राह्मण, झुनिया को अकेला पाकर अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। झुनिया अकेली होने पर भयभीत नहीं होती उल्टे विप्र को फटकारती है। अपनी इस असमंजस की स्थिति में साहस व धैर्य का परिचय देकर अपने अस्तित्व की रक्षा करती है।

व्याख्या

विप्र की कुत्सित प्रकृति को देखकर झुनिया ने उसे सबक सिखाना उचित समझा। अपना हवाला देती है कि मैं अहीर की लड़की हूं। कोई मुझे तंग करेगा तो उसकी मूंछ का एक–एक बाल उखाड़ने की सामर्थ्य भी रखती हूं। विप्र को अपने धर्म और कर्म का बोध कराती है कि ब्राह्मण का धर्म शिक्षा देना है, विलासिता के भंवर में डूबना नहीं। क्या तुम्हारा धर्म बहू–बेटियों की इज्जत करना नहीं जानता, तुम्हारी कथनी और करनी में यह दोगलापन क्यों? झुनिया की प्रत्युत्पन्न से परास्त होकर विप्र विनती करने पर विवश होता है। धर्म की आड़ लेकर झुनिया के चंगुल से निकलना चाहता है। कहता है एक ब्राह्मण का मान रखने में तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा? स्वयं को असहाय बताकर लाभ उठाना चाहता है। कहता है कि ब्राह्मण की इच्छा को पूर्ण करो अन्यथा भगवान रुष्ट हो जाएंगे। दान का भूखा नहीं हूं, रूप का भूखा हूं।

विशेष

- ब्राह्मण वर्ग की विकृतियों का वर्णन किया गया है।
- झुनिया के साहसी स्वभाव का चित्रण हुआ है।
- झुनिया के द्वारा प्रेमचंद ने नारी जाग्रति एवं स्वाभिमान का वर्णन किया गया है।
- पुरुषों की कामुकता एवं लोलुपता का वर्णन हुआ है।
- झुनिया के कर्कश व्यवहार के फलस्वरूप ही उसे कोई अपनी हवस का शिकार नहीं बना पाया।
- पंडित मातादीन की असहाय स्थिति का वर्णन किया गया है।
- मुहावरेदार प्रवाहमयी भाषा प्रयुक्त हुई है।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

टिप्पणी

- मैं तो केवल इतना जानता हूं। हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूं। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है। लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता समझता हूं और धूर्तता भी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह, मि. तन्खा, और पं. ओंकार नाथ में पारस्परिक वार्तालाप चल रहा है। अमरपाल सिंह की कथनी और करनी में अंतर है। बाहरी रूप से किसानों के साथ व्यवहारिकता का परिचय देकर प्रशंसा बटोरना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर किसानों का शोषण करने में जरा भी हिचक का अनुभव नहीं होता। प्रो. मेहता रायसाहब अमरपाल सिंह के इस दोगले व्यवहार से खिन्न हैं, अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं।

व्याख्या

मि. तन्खा रायसाहब अमरपाल सिंह की प्रशंसा करते हैं उन्हें साम्यवादी बताकर कहते हैं जबकि प्रो. मेहता की दृष्टि में यह उचित नहीं है। प्रो. मेहता रायसाहब की दिखावे की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहते हैं कि किसानों का शोषण करना और पीठ पीछे उनसे सहानुभूति प्रदर्शित करना मनुष्य के दोगले व्यक्तित्व का द्योतक है। उनका मानना है कि साम्यवाद और रईसी एक दूसरे के विपरीत हैं। दोनों का एक साथ पालन करना संभव नहीं हैं। हमें अपने आचरण को सिद्धांतानुसार ढालना चाहिए। बाहरी दिखावा ढोंग मात्र है। उदाहरण देकर समझाते हैं कि मांस भक्षण बुरा नहीं हैं हां खाकर उसे बुरा कहना उससे अधिक घातक है। जीवन में पारदर्शिता अपनानी चाहिए। अच्छा समझकर छिपकर खाना श्रेयस्कर नहीं। ऐसा करना कायरता का सूचक है, साथ ही मक्कारी एवं धूर्तता का सूचक भी है।

विशेष

- प्रेमचंद का जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है।
- तथाकथित साम्यवादियों के दोगलेपन पर व्यंग्य किया गया है।
- प्रो. मेहता की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण गया किया है।
- रायसाहब अमरपाल सिंह के दोहरे व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है।
- साम्यवाद के लिए विचारों एवं करनी में एकरूपता का होना आवश्यक है।

टिप्पणी

- मैं स्वीकार करता हूं कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती। पूंजी और शिक्षा जिसे मैं पूंजी का ही एक रूप समझता हूं। इनका किला जितनी जल्दी टूट जाए, उतना ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफसर और नियोजक दस–दस पांच–पांच हजार फटकारें। यह हास्यास्पद और लज्जास्पद भी है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह अपने व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में अपने पारिवारिक प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। अपने पिता के व्यवहार का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि मेरे पिता किसानों के देवता कहलाते थे। प्रजा का पालन करना सर्वोपरि समझते थे इसके साथ ही अधिकार के नाम पर एक कौड़ी भी किसानों पर छोड़ना पाप समझते थे। इसका प्रभाव मेरे जीवन पर भी पड़ा है। लेकिन किसानों की खुशहाली के लिए उन्हें अधिकार प्रदान करने पड़ेंगे। सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधरने वाली नहीं। कानून के द्वारा ही हम मानवीय आचरण करने को बाध्य होंगे।

व्याख्या

अमरपाल सिंह अपनी मनोदशा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्म करना आवश्यक है। दूसरे के श्रम पर जीवन जीना सार्थक नहीं है। उपजीवी जीवन जीना शर्म एवं संकोच का प्रतीक है। यह धरती कर्मप्रधान है कर्मानुसार फल का मिलना स्वाभाविक है। परिश्रम द्वारा अर्जित संपत्ति में आनंद का अनुभव होता है। आत्मिक शांति मिलती है। समाज में स्थापित व्यवस्था में परिवर्तन अपेक्षित है तभी प्रत्येक व्यक्ति आत्मबंधन के लिए विवश होगा। मुठ्ठी भर लोग परिश्रम करें और बड़ा वर्ग उन पर आश्रित होकर अपनी मौज मस्ती में व्यस्त रहे, यह श्रेयस्कर नहीं है। इस व्यवस्था को पल्लवित करने में पूंजी और शिक्षा की अल्प भूमिका रही है। पूंजी ने वर्गीय भावना को पैदा किया है, शिक्षा बौद्धिक स्तर पर भेद को पैदा करने में सक्रिय रही है। इनका किला जितनी जल्दी समाप्त/टूट जाए तो उतना ही श्रेयस्कर है। एक ओर परिश्रम करने वाला वर्ग दो–दो दानों की मोहताज रहे और दूसरा उसी वर्ग के सहारे दस–दस/पांच–पांच हजार रुपयों को डकार जाए। यह स्थिति जितनी हास्यास्पद है उतनी ही लज्जायुक्त भी है।

विशेष

- अमरपालसिंह की भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि का वर्णन किया गया है।
- दर्शाया गया है कि परिश्रम करना प्राणीमात्र का धर्म है।
- समाज में पल्लवित पूंजी व्यवस्था एवं शिक्षात्मक व्यवस्था का चित्रण किया गया है।

टिप्पणी

- पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के लक्षणों का वर्णन है।
- वर्गीय भावना के दुष्प्रभावों का वर्णन किया गया है।
- रायसाहब की वैचारिकता, व्यवहारिकता का सजीव वर्णन है।
- प्रेमचंद के माउथपीस के रूप में अमरपाल सिंह को चित्रित किया गया है।
- आत्मनिर्भरता सम्मानित जीवन जीने के लिए आवश्यक है।
- गीता में भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- रामचरितमानस में कर्म की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है–

  कर्म प्रधान विश्व रचि राखा
  जो जस करत सो तस फल चाखा।

- सामान्य व्यवहार में भी कर्म की उपयोगिता प्रतिपादित की गई है–

  कर्मों की खेती है जगती, जैसी जिसने बोई
  देवों का भी कर्म नियन्ता एक और गत होई

- परिनिष्ठित हिंदी प्रयोग की गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

• धन को आप बराबर फैला सकते हैं लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर हैं। छोटे–बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने बड़े–बड़े धन कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े–बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं हैं? आप रूस की मिसाल देंगे। वहां इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज कर्मचारियों का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी अब भी करती है और हमेशा करेगी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता और संपादक ओंकारनाथ में युगीन व्यवस्था पर विचार–विमर्श चल रहा है। प्रो. मेहता का मानना है कि छोटे–बड़े हमेशा रहेंगे, जबकि ओंकार नाथ इस व्यवस्था के विराधी हैं, उनका मानना है कि बीसवीं सदी में ऊंच नींच की भावना का समर्थन करना युगानुरूप नहीं हैं।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि समाज में एकरूपता का होना संभव नहीं हैं। ऊंच नींच की भावना हमेशा से रही है और रहेगी। प्रयत्न करने पर भी इस व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं

टिप्पणी

हैं। संपत्ति का विभाजन तो संभव है, लेकिन विचारों का समान होना संभव नहीं। बुद्धि का समान वितरण संभव नहीं है। चरित्र को समानता प्रदान करना दुष्कर है। रूप, प्रतिभा और शक्ति की समानता का होना असंभव है। केवल धन के आधार पर एकरूपता नहीं की जा सकती। बड़े–बड़े धन कुबेर भिक्षुओं के सामने असहाय नजर आते हैं, रूप का आकर्षण किसे विचलित नहीं करता। बड़े महात्मा, योगी का सत् भी रूप के सामने डगमगा जाता है। सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए विषमता अपेक्षित है। रूप का उदाहरण व्यर्थ है। वहां भी बौद्धिक चेतना की प्रधानता पाई जाती है। बुद्धि की समानता मनुष्य की सामर्थ्य से परे है।

विशेष

- प्रेमचंद ने यहां पर साम्यवादी व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।
- सभी वर्गों की समानता करना संभव नहीं है।
- मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- प्रो. मेहता की दृष्टि में बौद्धिक चेतना सर्वोपरि है।
- सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली प्रयोग में लाई गई है।

• बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु–महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं, कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी लेकिन संपत्ति किसी तरह की नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है। लेकिन उसकी संपत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बिना किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह प्रो. मेहता के आदर्शों से प्रसन्न नहीं हैं, अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं–

व्याख्या

प्रो. मेहता के विचारानुसार सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है, क्योंकि बुद्धि का विभाजन नहीं किया जा सकता। अमरपाल सिंह का मानना है कि बुद्धि अगर स्वार्थ से युक्त होती है तो विवेक का क्षय निश्चय है। समाजवाद भी बुद्धि का लोहा मानता है, तभी उसका यथोचित लाभ संभव है अन्यथा नहीं। शोषण, बेइमानी, अत्याचार और भ्रष्टाचार में बुद्धि का प्रयोग होने लगता है तो बुद्धि स्वीकार्य नहीं है। साधु संतों का सम्मान उनकी

टिप्पणी

त्याग भावना, एवं सदाशयता के कारण होता है। मानवता तभी जीवित रहती है जब तक कि उसमें त्याग प्रवृत्ति का अंश हो। मानव के दुर्गुणों का जन्म संपत्ति की कोख से होता है। उसका पतन भी इन्हीं कारणों से अवश्यंभावी है। बुद्धि संपन्न मानव का सम्मान होना स्वाभाविक है। उसका यह सम्मान उसके जीवन तक संभव है। जबकि धनवान व्यक्ति अपने साथ यश तो ले जाता है, लेकिन अपने पीछे विवाद को छोड़ जाता है। पारस्परिक झगड़ों का जन्म स्वतः होने लगता है। इसीलिए संपत्ति रूपी बिच्छू का डंक तोड़ना आवश्यक है। बुद्धि से ही समाज का संचालन संभव है।

विशेष

- रायसाहब का बुद्धिचातुर्य दर्शाया गया है।
- ज्ञात होता है कि विपत्तियों का जन्म संपत्ति के नीड़ से होता है।
- संपत्ति का वर्चस्व समाप्त करने के पीछे लेखक की समाजवादी भावना की अभिव्यक्ति की गई है।
- व्यक्ति के लिए यश की प्राप्ति बुद्धि से अधिक प्रभावशाली होती है।
- व्यक्ति की मृत्यु के साथ उसका प्रभुत्त्व भी स्वतः समाप्त हो जाता है।
- मानवता का जन्म ईमानदारी, त्याग, सहानुभूति से होता है।
- पूंजीवाद की समाप्ति की भविष्यवाणी व्यक्त की गई है।
- रूपक अलंकार का धनरूपी बिच्छू के रूप में प्रयोग हुआ है।
- मुहावरेदार भाषा (सरल हिंदी) प्रयोग में लाई गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- गांधीवादी दर्शन की अभिव्यक्ति है।
- प्रेमचंद की प्रगतिशील विचारधारा का वर्णन किया गया है।
- कबीरदास ने माया को महाठगिनी कहकर संबोधित किया है।

- विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूं, और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुषों को है न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मनुष्य की पूर्णता नारी के संसर्ग से ही संभव है, यह संसर्ग विवाह संस्कार द्वारा ही प्राप्त होता है। प्रो. मेहता विवाह को बंधन मानते हैं। मि. खन्ना के विचार भी इसका समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि बंधन और निग्रह पुराने विषय हैं, नये विषय उन्मुक्त विचरण का बोध कराते हैं। मालती प्रो. मेहता से विवाह के विषय पर विचार जानना चाहती है।

व्याख्या

टिप्पणी

प्रो. मेहता का मानना है कि विवाह समझौते का विकसित स्वरूप है। बिना सोचे समझे विवाह की परिणति अलगाव के रूप में देखने को मिलती है। पारस्परिक सहमति से किया गया विवाह सफल होता है। दोनों के लिए इस संस्कार का जीवनपर्यंत निर्वाह भी करना आवश्यक है। इसको तोड़ने (विच्छेद) का अधिकार किसी को नहीं हैं। स्वतंत्रता केवल समझौते से पूर्व ही होती है तत्पश्चात उसका पालन करना आवश्यक है।

विशेष

- प्रो. मेहता संस्कारी जीवन में विश्वास करते हैं इसीलिए विवाह संस्कार का पालन करना अपेक्षित समझते हैं।
- समझौते से मुस्लिम विवाह का समर्थन करते हैं।
- विवाह 8 प्रकार के माने गए हैं।
- विवाह के लिए पूर्व सहमति का होना समाज की आधारशिला का सूचक है।
- लेखक के अनुसार–विवाह विच्छेद करना सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से त्याज्य है।

- इस स्वच्छंद जीवन से उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। सामने की पर्वतमाला दर्शन तत्व की भांति अगम्य और अत्यंत फैली हुई, मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट रूप में देख रही हो। दूर के एक बहुत ऊंचे शिखर पर एक छोटा सा मंदिर था जो उस अगम्यता में बुद्धि की भांति ऊंचा, पर खोया हुआ सा खड़ा था। मानो वहां तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

शिकार खेलते समय प्रो. मेहता का परिचय एक ग्रामीण युवती से हुआ, जिसकी स्वच्छंदता, भोला स्वभाव उसे प्रभावित कर गया। उस ग्रामीण युवती की निर्भीकता एवं निश्छलता मन को भा गई। अपनी उन्मुक्त प्रवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो. मेहता कहते हैं–

व्याख्या

प्रो. मेहता पीपल वृक्ष के नीचे निश्चिंत होकर अपने आंतरिक पक्ष पर दृष्टिपात करने लगे। उनके खाली जीवन में अनुराग का उदय होने लगा। उसके सम्मुख विशाल पर्वतों की चोटियां किसी दार्शनिक की भांति गंभीरता का बोध करा रहीं थीं, ऐसा लगता था मानो वह ज्ञान का विस्तार कर रही हों। उसकी अंतरात्मा उस ज्ञान को आत्मसात करने को उत्सुक थी। उस अलौकिक प्रकाश का आनंद ले रही थी। गंभीरता अपने प्रत्यक्ष रूप में सामने व्यक्त हो रही थी। दूरी पर स्थित ऊंचे शिखर पर बना मंदिर आकर्षण का केंद्र था, जिससे

बुद्धि का प्रकाश चहुं ओर फैला हुआ था। प्रो. मेहता की स्थिति उस थके पक्षी के समान थी जो विश्राम के लिए व्यग्र था क्योंकि उसको अन्यत्र जाना दुष्कर था।

टिप्पणी

विशेष

- प्रो. मेहता का दर्शनिक व्यक्तित्व मुखरित हुआ है।
- कथात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है।
- उपमा, रूपक अंलकारों का प्रयोग हुआ है।
- दर्शन का क्षेत्र व्यापकता की अपेक्षा रखता है।
- प्रो. मेहता ने अपनी तुलना पक्षी से की है।
- अंलकारिक शैली की प्रधानता है।

- मुझे अब डेमोक्रेसी में भक्ति नहीं रही। जरा सा काम और महीनों की बहस। हां जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग है। इससे तो कहीं अच्छा है कि एक गर्वनर रहे, चाहे वह हिंदुस्तानी हो या अंग्रेज, इसमें बहस नहीं। एक इंजन जिस गाड़ी को बड़े मजे से हजारों मील खींच ले जा सकता है उसे दस हजार आदमी मिलकर भी उतनी तेजी से नहीं खींच सकते। मैं तो यह सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेजार हो गया हूं। मेरा बस चले तो कौंसिल में आग लगा दूं। जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं वह व्यवहार में बड़े–बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। रुपये के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएं तैयार हो जाती हैं। बड़े–बड़े पंडित, बड़े–बड़े मौलवी, बड़े–बड़े लिखने और बोलने वाले जो अपनी जबान और कलम से पब्लिक को जिस तरह चाहें फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलैक्शन के पास न जाऊंगा। मेरा प्रोपेगंडा अब डेमोक्रेसी के खिलाफ होगा।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मि. तन्खा दांवपेंच के आदमी थे। वह स्वार्थहित असंभव को संभव बना सकते थे। चुनाव के समय उनकी पौ बारह हो जाती थी, किसी का समर्थन कर दस–बीस हजार ऐंठ लेना उनके बाएं हाथ का खेल था। उन्होंने कहा कि इस बार चुनाव में काफी उथल–पुथल होगी। बड़े–बड़े किले धराशायी होंगे। क्या इस बार मिर्जा जी का चुनाव लड़ने का इरादा है या नहीं। मिर्जा ने अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा–

व्याख्या

मि. तन्खा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए मिर्जा जी कहते हैं कि चुनाव में अब निष्पक्षता नहीं रही। लोकतंत्र केवल नाम मात्र को है। जो इसका समर्थन करते हैं, वही उसकी सबसे

अधिक अवहेलना करते हैं। बहुत झूठे वायदे करने पड़ते हैं। महीनों पूर्व शरीरिक मानसिक कसरत करनी पड़ती है। जनता भी बहुत चालाक हो गई है। किसी प्रत्याशी को निराश कर सिर दर्द मोल लेना नहीं चाहती। सभी से धन ऐंठना चाहती है। अब लोकतंत्र केवल जनता को धोखा देने के लिए सबसे अच्छा साधन है। खूब झूठ बोलो, जीतने पर कभी उनकी ओर फिर न देखो। जब मिलने आएं तो पहचानने से इंकार कर दो। इससे तो कहीं बेहतर है हर प्रांत का गवर्नर बना दिया जाए, भले ही वह हिंदुस्तानी रियासत का हो या फिर ब्रिटिश साम्राज्य का। जिस प्रकार एक इंजन अनेक डिब्बों को खींचकर ले जा सकता है, ठीक उसी प्रकार एक गवर्नर पूरे राज्य को सुगमता से चला सकता है।

टिप्पणी

इन सभी प्रयासों से अब मुझे विरक्ति होने लगी है। मैं कौंसिल से अलग हो गया हूं। जिसे डेमोक्रेसी कहते हैं उसमें अब बड़े व्यापारियों एवं जमींदारों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। अब उसकी विजय होती है जिसके पास धन दौलत है। धन के बल पर सभी सुविधाएं प्राप्त की जा सकतीं हैं। बड़े–बड़े पंडित, मौलवी, लेखक सभी धनवानों के सामने नाक रगड़ते नजर आते हैं। इसीलिए मैंने अब भविष्य में चुनाव न लड़ने का मन बना लिया है। अब मेरा उद्देश्य लोकतंत्र के विरुद्ध आवाज बुलंद करना है।

विशेष

- लोकतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया गया है।
- जिस लोकतंत्र की स्थापना स्वच्छ प्रशासन के लिए की गई थी, उसकी पृष्ठभूमि में व्याप्त मनुष्यों की स्वार्थी भावना का वर्णन किया गया है।
- लोकतंत्र में बेईमानी तथा धन के हस्तक्षेप के फलस्वरूप ही पूंजीपतियों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।
- मि. मिर्जा की बदलती मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।
- मुहावरेदार भाषा का उत्तम प्रयोग हुआ है, जैसे नाक रगड़ना, धूल झोंकना, माथा रगड़ना।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- स्वांग–तद्भव शब्द प्रयुक्त हुआ है।
- अंग्रेजी शब्दों– गवर्नर, प्रोपेगंडा कौंसिल, डेमोक्रेसी आदि का प्रयोग किया गया है।
- जोर, बाजी, इरादा, मजे, बेजार, इलेक्शन, खिलाफ–अरबी/फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

- ये रुपये कहां लिए जा रहा है, बता? भला चाहता है तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूं। घर के परानी रात–दिन मरें, और दाने–दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुलि भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत! जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज्जत वाला है! दारोगा तलासी ही तो लेगा। ले ले जहां चाहे तलासी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन! वाह री तेरी इज्जत।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी की इच्छा थी गाय पालने की। गाय घर आई, विपत्तियों का पहाड़ लेकर आई। भाई हीरा द्वारा जहर देने पर गाय मार दी जाती है, तत्पश्चात शुरू होता है शोषण का खेल, जिसमें झिंगुरी सिंह, पटेश्वरी, और दरोगा अपने–अपने तरीके से होरी को लूटना चाहते हैं। होरी घर की इज्जत बचाने के लिए दरोगा को ब्याज पर रुपये लेकर देने को तैयार है। धनिया (पति) होरी की मनःस्थिति को व्यक्त करती कहती है–

व्याख्या

होरी घर की लाचारी के आगे विवश है, जबकि धनिया होरी की मूर्खता पर व्यंग्य कसती है। अंगोछे में बंधे रुपयों की पोटली छीनकर फटकारती है। इन रुपयों को लेकर घर की इज्जत बचाने की कोशिश करता है। जबकि घर के प्राणी दाने–दाने को परेशान हैं। जिस्म ढकने को कपड़ा मिलना दुष्कर है, ऐसी स्थिति में कर्ज लेकर रिश्वत देकर घर की आबरू बचाने का ढोंग व्यर्थ ही है। जिसके घर में चूहों को भी एक दाना न मिले वह व्यक्ति कैसे सम्मान पा सकता है। घर की तलाशी से कोई हानि नहीं है। गाय की हानि के साथ रुपयों को देकर और मुसीबत खड़ी करना मूर्खता का प्रतीक है।

विशेष

- धनिया का ओजस्वी व्यक्तित्व व्यक्त हुआ है।
- धनिया के द्वारा नारी चेतना का वर्णन किया गया है।
- होरी के निर्मल स्वभाव का वर्णन है।
- परिवार के प्रति धनिया की सजगता एवं उत्तरदायित्व का वर्णन हुआ है।
- यह अवतरण शोषण की झांकी प्रस्तुत करता है।
- होरी की परिवारिक स्थिति (दयनीय दशा) का चित्रण है।
- मुहावरेदार सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।
- उर्दू/अरबी/फारसी/शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है, जैसे जमीन, मयस्सर, दारोगा, इज्जत, तलाशी, तरसें।
- नागिन की तरह– उपमा अलंकार का उदाहरण है।
- देशज शब्द– लत्ता, पलेथन प्रयुक्त हुए हैं।
- शब्दों की पुनरावृत्ति– दाने–दाने, ले–ले के रूप में हुई है।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

- धनिया का यह मातृ–स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक समान उसकी चिंता–जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस बीत–योवना में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आई, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था जो सारे कलंक सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परंपराओं को अपने अंदर समेट लेता है।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर भोला अहीर की पुत्री झुनिया को गर्भवती बनाकर घर से निकल जाता है। होरी और धनिया पुत्र गोबर की हरकतों से दुःखी हैं। उनकी सामाजिक मर्यादा भंग हो गई। अवशेष इज्जत भी समाप्त हो चली थी। धनिया होरी (पति) को झुनिया के प्रति विनम्र व्यवहार करने की सलाह देती है कि तुम झुनिया पर कभी हाथ न उठाना। उसका भाग्य ही खोटा है।

व्याख्या

धनिया की स्नेहमयी वाणी को सुनकर होरी का हृदय बदल गया। उफनता क्रोध विलुप्त होने लगा था। धनिया की मृदुल मुस्कान ने होरी को पच्चीस वर्ष पूर्व के वैवाहिक क्षणों की स्मृतियों में पहुंचा दिया। स्वयं होरी भी उस अतीत की कल्पना में डूब गया। धनिया के स्नेह ने होरी के अंधेरे जीवन में आशा का संचार कर दिया। उसकी मृदुमयी सलाह ने दीपक के समान होरी को न्याय का रास्ता दिखाया। दोंनो अपने अतीत की यादों में खो गए। होरी को धनिया आज वही पच्चीस वर्ष पूर्व की बालिका नज़र आ रही थी, जिसने उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस पूर्व आलिंगन में अथाह वात्सल्य का सागर उमड़ रहा था, जिसके सामने समाज के सभी कलंक, सारी बाधाएं तिरोहित होती नज़र आ रही थीं।

विशेष

- धनिया की नारी सुलभ जिज्ञासाओं का वर्णन है।
- धनिया की प्रेरणा ने होरी की मनःस्थिति को बदल दिया।
- धनिया का झुनिया की दशा को देखकर द्रवित होना स्वाभाविक है।
- वैवाहिक जीवन के क्षण मनुष्य को कभी न विस्मृत होने वाले क्षण होते हैं।
- यह यथार्थ है कि मनुष्य अतीत की मधुर स्मृतियों के सहारे वर्तमान को सुखद बनाता है।
- गोबर की उत्तरदायित्त्वहीनता का वर्णन है।
- दीपक के समान– उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

टिप्पणी

- पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जाएंगे, कौन जाने इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा श्राप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीबाना इसलिए किया जा रहा है, कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है– ऐं?

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

धनिया द्वारा झुनिया को घर में आश्रय देने पर सारे गांव में तरह–तरह की चर्चा होने लगी। शोषकों को अपनी मनमानी करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया। दातादीन ने धनिया से बदला लेना चाहा। पटेश्वरी होरी के व्यवहार से नाखुश थे। स्वयं दो पत्नी रंखने वाले झिंगुरी सिंह भी धनिया की सदाशयता से दुःखी थे। पंचायत में होरी पर दो सौ रुपये का जुर्माना तीस मन अनाज दंड लगाना तय हुआ। धनिया पंचायत के फैसले से सहमत नहीं थी। वह अपनी असहमति व्यक्त करती है।

व्याख्या

पंचायत का दंड सुनकर धनिया अपना प्रतिकार करती हुई कहती है, कि पंच को परमेश्वर माना जाता है। उसका फैसला सर्वोपरि एवं सर्वमान्य होता है। लेकिन इन पंचों का रवैया शोषण से युक्त है। अपनी व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती है कि गरीब को सताकर कोई सुखी नहीं रह सकता। गरीब की हाय इन पंचों पर अवश्य पड़ेगी। हमारे मिटने पर भी हमारी हाय इनको भस्म कर देगी, क्योंकि गरीब का दिल दुखाना अच्छा नहीं होता। अपनी बहू को घर में रख लेना पाप नहीं है, समाज विरुद्ध भी नहीं है। उसे अपनाकर मैंने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है। न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए धनिया कहती है कि न्याय करना विवेक का परिचायक है। किसी को दाने–दाने के लिए मोहताज करना न्याय का कार्य नहीं है।

विशेष

- ❑ धनिया का आक्रोश व्यक्त हुआ है।
- ❑ यह अवतरण शोषण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है।
- ❑ धनिया का युगीन न्याय व्यवस्था के प्रति क्षोभ व्यक्त हुआ है।
- ❑ मेहरिया रख लेना पाप नहीं, रखकर छोड़ देना पाप है।
- ❑ धनिया की नारी सुलभ जिज्ञासाओं का वर्णन है।
- ❑ श्राप–तद्भव शब्द, जरीबाना का प्रयोग हुआ है।

- धनिया दांत कटकटाकर बोली–मैं एक दाना न अनाज दूंगी न कौड़ी दूंगी जिसमें बूता हो चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है, सोचा होगा दंड के बहाने उसकी

टिप्पणी

सब जैजात ले लो, और नजराना देकर दूसरों को दे दो। बाग–बगीचा बेचकर मजे से तरमाल उड़ाओ। धनिया के जीते ही यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकतन हो जाएगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खाएंगे।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

धनिया को झुनिया को घर में आश्रय देने के दंड स्वरूप पंचायत का कोप सहना पड़ा। जातिगत विषमता के कारण होरी पर जुर्माना लगाया गया। गांव के दातादीन, नोखेराम, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह को यह सब असहनीय लगा। होरी पर झुनिया को घर से निकालने का दबाव बनाया गया। होरी ने इंसानियत के नाते इंकार कर दिया। रात्रि को गोबर को पुत्ररत्न की प्राप्ति होने पर दो रुपये और तीस मन अनाज देने को कहा, धनिया पंचों का प्रतिकार हुई करती यह कहती है।

व्याख्या

धनिया पंचों पर अपना क्रोध व्यक्त करती है कि पंचों का कार्य न्याय करना है। न्याय की आड़ में शोषण करना नहीं। मैं देखती हूं, कौन है जो अनाज और रकम वसूल करेगा? जिसमें शक्ति हो मुझसे आकर ले–ले। दंड की आड़ में जमीन हड़पने की चाल मैं पूरी नहीं होने दूंगी। मेरा बाग बगीचा बेचकर मौजमस्ती करना चाहते हो। धनिया के होते यह संभव नहीं हैं। पंचों, तुम्हारा इरादा कभी पूर्ण नहीं होगा, यह अभिलाषा तुम्हारे दिल में ही रह जाएगी। जाति–बिरादरी की धमकी देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो। इस जाति से हमारा उद्धार होना संभव नहीं है। हमें कर्म पर विश्वास है। कर्म करते हैं तो खाते हैं। परिश्रम के द्वारा कहीं भी जीवित रह सकते हैं। बिरादरी हमारी पेट की भूख नहीं मिटा सकती।

विशेष

- ❑ धनिया का ओजस्वी स्वरूप व्यक्त है।
- ❑ अन्याय को सहन कर लेना शोषण की सहमति को व्यक्त करता है।
- ❑ जाति–बिरादी से धनिया का मोह भंग दिखाया है।
- ❑ कृषकों का शोषण अनेक रूपों में होता है। पंचायत का दंड सर्वोपरि माना जाता है।
- ❑ होरी अनुभवी है। पंचायत की नीयत से परिचित होने पर भी बिरादरी के सामने प्रतिकार न करना असमर्थता को दर्शाता है।
- ❑ भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण हिंदी।
- ❑ आत्माभिव्यक्ति शैली।

टिप्पणी

- पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जाएंगे, कौन जाने इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा श्राप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीबाना इसलिए किया जा रहा है, कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है– ऐं?

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

धनिया द्वारा झुनिया को घर में आश्रय देने पर सारे गांव में तरह–तरह की चर्चा होने लगी। शोषकों को अपनी मनमानी करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया। दातादीन ने धनिया से बदला लेना चाहा। पटेश्वरी होरी के व्यवहार से नाखुश थे। स्वयं दो पत्नी रखने वाले झिंगुरी सिंह भी धनिया की सदाशयता से दुःखी थे। पंचायत में होरी पर दो सौ रुपये का जुर्माना तीस मन अनाज दंड लगाना तय हुआ। धनिया पंचायत के फैसले से सहमत नहीं थी। वह अपनी असहमति व्यक्त करती है।

व्याख्या

पंचायत का दंड सुनकर धनिया अपना प्रतिकार करती हुई कहती है, कि पंच को परमेश्वर माना जाता है। उसका फैसला सर्वोपरि एवं सर्वमान्य होता है। लेकिन इन पंचों का रवैया शोषण से युक्त है। अपनी व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती है कि गरीब को सताकर कोई सुखी नहीं रह सकता। गरीब की हाय इन पंचों पर अवश्य पड़ेगी। हमारे मिटने पर भी हमारी हाय इनको भस्म कर देगी, क्योंकि गरीब का दिल दुखाना अच्छा नहीं होता। अपनी बहू को घर में रख लेना पाप नहीं है, समाज विरुद्ध भी नहीं है। उसे अपनाकर मैंने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है। न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए धनिया कहती है कि न्याय करना विवेक का परिचायक है। किसी को दाने–दाने के लिए मोहताज करना न्याय का कार्य नहीं है।

विशेष

- धनिया का आक्रोश व्यक्त हुआ है।
- यह अवतरण शोषण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है।
- धनिया का युगीन न्याय व्यवस्था के प्रति क्षोभ व्यक्त हुआ है।
- मेहरिया रख लेना पाप नहीं, रखकर छोड़ देना पाप है।
- धनिया की नारी सुलभ जिज्ञासाओं का वर्णन है।
- श्राप–तद्भव शब्द, जरीबाना का प्रयोग हुआ है।

- धनिया दांत कटकटाकर बोली–मैं एक दाना न अनाज दूंगी न कौड़ी दूंगी जिसमें बूता हो चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है, सोचा होगा दंड के बहाने उसकी

टिप्पणी

सब जैजात ले लो, और नजराना देकर दूसरों को दे दो। बाग–बगीचा बेचकर मजे से तरमाल उड़ाओ। धनिया के जीते ही यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकतन हो जाएगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खाएंगे।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

धनिया को झुनिया को घर में आश्रय देने के दंड स्वरूप पंचायत का कोप सहना पड़ा। जातिगत विषमता के कारण होरी पर जुर्माना लगाया गया। गांव के दातादीन, नोखेराम, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह को यह सब असहनीय लगा। होरी पर झुनिया को घर से निकालने का दबाव बनाया गया। होरी ने इंसानियत के नाते इंकार कर दिया। रात्रि को गोबर को पुत्ररत्न की प्राप्ति होने पर दो रुपये और तीस मन अनाज देने को कहा, धनिया पंचों का प्रतिकार हुई करती यह कहती है।

व्याख्या

धनिया पंचों पर अपना क्रोध व्यक्त करती है कि पंचों का कार्य न्याय करना है। न्याय की आड़ में शोषण करना नहीं। मैं देखती हूं, कौन है जो अनाज और रकम वसूल करेगा? जिसमें शक्ति हो मुझसे आकर ले–ले। दंड की आड़ में जमीन हड़पने की चाल मैं पूरी नहीं होने दूंगी। मेरा बाग बगीचा बेचकर मौजमस्ती करना चाहते हो। धनिया के होते यह संभव नहीं हैं। पंचों, तुम्हारा इरादा कभी पूर्ण नहीं होगा, यह अभिलाषा तुम्हारे दिल में ही रह जाएगी। जाति–बिरादरी की धमकी देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो। इस जाति से हमारा उद्धार होना संभव नहीं है। हमें कर्म पर विश्वास है। कर्म करते हैं तो खाते हैं। परिश्रम के द्वारा कहीं भी जीवित रह सकते हैं। बिरादरी हमारी पेट की भूख नहीं मिटा सकती।

विशेष

- धनिया का ओजस्वी स्वरूप व्यक्त है।
- अन्याय को सहन कर लेना शोषण की सहमति को व्यक्त करता है।
- जाति–बिरादी से धनिया का मोह भंग दिखाया है।
- कृषकों का शोषण अनेक रूपों में होता है। पंचायत का दंड सर्वोपरि माना जाता है।
- होरी अनुभवी है। पंचायत की नीयत से परिचित होने पर भी बिरादरी के सामने प्रतिकार न करना असमर्थता को दर्शाता है।
- भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण हिंदी।
- आत्माभिव्यक्ति शैली।

टिप्पणी

- मुहावरों का प्रयोग।
- परिश्रम करना प्राणिमात्र का धर्म है।
- कर्म प्रधान सर्वोपरि है।
- नारी चेतना का दिग्दर्शन किया गया है।

• मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हां रख के छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुंह चाटने लगते हैं। आज उधर तुम्हारी वाह–वाह हो रही होगी, कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। मेरे भाग्य फूट गए थे कि तुम जैसे मर्द से पाला पड़ा था। कभी सुख की रोटी न मिली।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी को घर आने में देर हो गई तो धनिया देरी का कारण पूछती है। होरी इस विपत्ति का उत्तरदायी गोबर को मानता है। पंचायत ने दंड देकर मेरा हुक्का पानी बंद कर दिया है तो धनिया कहती है कि हुक्कापानी न पीते तो क्या दुबले हो जाते? होरी धनिया को बिरादरी के दुष्परिणामों से अवगत कराता है कि बिरादरी के आगे किसी की नहीं चलती।

व्याख्या

धनिया (पति) होरी की सदाशयता एवं भोलेपन से दुःखी है। उसका मानना है कि जब कोई चोरी नहीं की तो कैसा डरना? किसी का माल नहीं उड़ाया। मेहरिया को रख लेना पुण्य का कार्य है। उसे छोड़कर मैं पाप की भागीदार नहीं बनना चाहती। लेकिन यह पंचों की नीचता है कि मेहरिया को घर में रखने पर दंड लगाने पर अमादा हैं। तुम सीधे हो, आदमी का सीधापन उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है इसीलिए हमें भी तुम्हारे सीधेपन का दुष्परिणाम झेलना पड़ रहा है। अधिक सीधा होने पर कुत्ता भी मुंह चाटता है। तुम्हें कर्ज़ में डुबोकर प्रशंसा कर रहे हैं, कि होरी ईमानदार है वफादार है, मेरे भाग्य में ही ऐसा लिखा था कि मेरा तुम्हारे साथ विवाह लिखा था, आज तक कभी सुख की एक रोटी भी न मिली।

विशेष

- धनिया के उद्गार होरी की आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हैं।
- धनिया का स्वाभिमान अभिव्यक्त किया गया है।
- होरी की निर्मल आत्मा एवं स्वभाव का वर्णन है।
- मेहरिया से आशय (पत्नी) से है।
- यह अवतरण शोषण को सचित्र उपस्थित करता है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है, जैसे– मुंह चाटना, भाग फूटना आदि।

टिप्पणी

- मर्द, मरजाद, आदमी आदि उर्दू शब्द प्रयुक्त हुए हैं।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

• झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घोंसले में एकांत जीवन काट रही थी। वहां नर का मस्त आग्रह न था, न उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाज़ें मगर बेहलिया का जाल और छल भी तो वहां न था। गोबर ने उसके एकांत घोंसले में जाकर उसे कुछ आनंद पहुंचाया या नहीं कौन जाने; पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर झुनिया के गर्भवती होने पर उसे अपने घर ले जाकर छोड़ दिया। मां–बाप के डर से छिपकर देखा कि झुनिया को घर प्रवेश मिल गया है तो स्वयं शहर भाग गया। झुनिया के साथ बिताया समय उसकी आंखों के सामने आने लगा। उपन्यासकार ने गोबर की इसी मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहा।

व्याख्या

गोबर को झुनिया के साथ बिताए क्षण रह–रहकर आंखों के सामने आने लगे। उसने झुनिया से प्रेम और विवाह की जो कसमें खाईं थीं, सब याद आने लगीं। वह उस मिलन की घड़ी में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार रहता था अर्थात पूर्ण समर्पण व्यक्त करता था। इधर झुनिया ने वैधव्य जीवन में बिताए पल वियोगी पक्षी की भांति व्यतीत किये थे। उसके जीवन में मनुष्य का आग्रहपूर्ण व्यवहार न था। चारों ओर वीरानी दिखाई देती थी। प्रसन्नता के नाम पर पक्षियों का चहचहाहट भी न थी, न कोई उल्लास व उमंग थी। यहां तक बहेलिया का वह कपटपूर्ण व्यवहार भी न था। ऐसे वियोगी जीवन में कुछ समय के लिए आनंदमय वातावरण की सृष्टि की, वह भी क्षणिक थी पर उस क्षणिक आनंद ने विपत्ति के अथाह सागर में अवश्य गिरा दिया था जहां से निकलना दुष्कर था। गोबर को अपने किये पर पश्चाताप था वह उसे विपत्ति की घड़ी से निकालने को उत्सुक था। वह उसे भोला के भाइयों के दुर्व्यवहार से बचाकर ले आया था। वह सिपाही की भांति वापस आकर छिपकर झुनिया की स्थिति को देखना चाहता था। पूर्ण आश्वस्त होने पर ही वह शहर गया था।

विशेष

- गोबर के अंर्तद्वंद्व का चित्रण है।
- गोबर का पश्चाताप दृष्टव्य है।
- गोबर आधुनिक वर्ग का प्रतीक है इसीलिए उसने विधवा झुनिया को आश्रय प्रदान कर परोपकार के साथ सुधारवादी दृष्टिकोण भी व्यक्त किया है।

टिप्पणी

- श्रृंगार रस का सफल चित्रण किया गया है।
- वियोगी पक्षी की भांति– उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- भागता हुआ सिपाही मानो– उत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

• मेरे जहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपने बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जाएगा। वह किसी खो में जा बैठेगा, और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है और अहंकार में यह समझकर कि ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति संपन्न है, सहिष्णु है, पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाएं तो वह कुलटा हो जाती है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मिर्जा खुर्शीद द्वारा आयोजित कबड्डी आयोजन में प्रो. मेहता और मिस मालती भी आते हैं। दोनों की निकटता को देखकर मिर्जा खुर्शीद बोले कि मेहता जी मालती से विवाह कब करने वाले हैं। प्रो. मेहता ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा कि मैंने नारी के लिए जिन गुणों की कल्पना की है उनमें से मालती में एक भी गुण नहीं है। मुझे मेरी कल्पनानुसार स्त्री मिलेगी तभी विवाह करूंगा। अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो. मेहता ने कहा।

व्याख्या

प्रो. मेहता अपने मनोनुकूल नारी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि औरत के व्यक्तित्व में वफादारी, त्याग का होना आवश्यक है। वही उसका सौंदर्य है। उसके जीवन की सार्थकता त्याग, सेवा द्वारा ही सिद्ध होती है। स्वयं को मिटाकर पुरुष को पूर्ण बनाना ही उसके जीवन का उद्देश्य है। पति पत्नी का संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक के बिना दूसरे का जीवन निरर्थक ही रहता है। शरीर भले ही पुरुष का है लेकिन आत्मा स्त्री की होती है, अर्थात पत्नी त्याग सेवाभाव से ही पति पर पूर्ण अधिकार पाने में सफल होती है। पुरुष से इन विशेषताओं की अकांक्षा करना व्यर्थ ही है क्योंकि पुरुष अगर ऐसा करता है तो वह शून्यता का वरण करता है। अर्थात पुरुष [illegible] करना ही

टिप्पणी

अनुचित है। उसमें तेज का गुण विद्यमान होता है जो उसे क्रियाशीलता प्रदान करता है। ज्ञान के आधार पर किसी खोह में तप कर ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, अर्थात अपनी आत्मा का परमात्मा में विलय कर देता है। स्त्री पुरुष के विपरीत स्वभाव वाली होती है उसमें तेज की अपेक्षा धैर्य का गुण पाया जाता है। शांतिप्रियता भी स्त्री की विशेषता होती है। पुरुष इन गुणों को धारण करने पर महात्मा बन जाता है जबकि स्त्री पुरुष के गुणों से सुसज्जित होने पर कुलटा कहलाने लगती है। पुरुष स्त्रीत्व गुणों से प्रभावित होकर ही आकृष्ट होता है।

विशेष

- प्रो. मेहता का मालती के प्रति अनाकर्षण का कारण उसका पुरुष स्वभाव है।
- स्त्री के गुणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।
- स्त्री जीवन की सार्थकता स्वयं को मिटाकर पति (पुरुष) को पूर्ण बनाने में निहित है।
- वैवाहिक जीवन के लिए स्त्री पुरुष का पारस्परिक आकर्षण अपेक्षित है।
- प्रो. मेहता के द्वारा प्रेमचंद के विचार व्यक्त हुए हैं।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
- संन्यासी जीवन पर प्रकाश डाला गया है।
- तत्सम शब्द युक्त साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- नारी गुणों से युक्त मनुष्य को स्त्रैण भी कहा जाता है।

• स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए छाया और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्च आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म, आध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका है। मैं कहता हूं, उसका सारा आध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

वीमेंस लीग में भाषण देते हुए प्रो. मेहता ने कहा कि स्त्री और पुरुष को समान नहीं माना जा सकता। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें त्याग, सेवा, क्षमा अहिंसा आदि गुणों का समावेश है, जबकि पुरुष इन गुणों को सदियों से प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है लेकिन सफल नहीं हुआ है।

टिप्पणी

- श्रृंगार रस का सफल चित्रण किया गया है।
- वियोगी पक्षी की भांति– उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- भागता हुआ सिपाही मानो– उत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- मेरे जहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपने बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जाएगा। वह किसी खो में जा बैठेगा, और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है और अहंकार में यह समझकर कि ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति संपन्न है, सहिष्णु है, पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाएं तो वह कुलटा हो जाती है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मिर्जा खुर्शीद द्वारा आयोजित कबड्डी आयोजन में प्रो. मेहता और मिस मालती भी आते हैं। दोनों की निकटता को देखकर मिर्जा खुर्शीद बोले कि मेहता जी मालती से विवाह कब करने वाले हैं। प्रो. मेहता ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा कि मैंने नारी के लिए जिन गुणों की कल्पना की है उनमें से मालती में एक भी गुण नहीं है। मुझे मेरी कल्पनानुसार स्त्री मिलेगी तभी विवाह करूंगा। अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो. मेहता ने कहा।

व्याख्या

प्रो. मेहता अपने मनोनुकूल नारी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि औरत के व्यक्तित्व में वफादारी, त्याग का होना आवश्यक है। वही उसका सौंदर्य है। उसके जीवन की सार्थकता त्याग, सेवा द्वारा ही सिद्ध होती है। स्वयं को मिटाकर पुरुष को पूर्ण बनाना ही उसके जीवन का उद्देश्य है। पति पत्नी का संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक के बिना दूसरे का जीवन निरर्थक ही रहता है। शरीर भले ही पुरुष का है लेकिन आत्मा स्त्री की होती है, अर्थात पत्नी त्याग सेवाभाव से ही पति पर पूर्ण अधिकार पाने में सफल होती है। पुरुष से इन विशेषताओं की अकांक्षा करना व्यर्थ ही है क्योंकि पुरुष अगर ऐसा करता है तो वह शून्यता का वरण करता है। अर्थात पुरुष से त्याग, सेवा की उम्मीद करना ही

टिप्पणी

अनुचित है। उसमें तेज का गुण विद्यमान होता है जो उसे क्रियाशीलता प्रदान करता है। ज्ञान के आधार पर किसी खोह में तप कर ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, अर्थात अपनी आत्मा का परमात्मा में विलय कर देता है। स्त्री पुरुष के विपरीत स्वभाव वाली होती है उसमें तेज की अपेक्षा धैर्य का गुण पाया जाता है। शांतिप्रियता भी स्त्री की विशेषता होती है। पुरुष इन गुणों को धारण करने पर महात्मा बन जाता है जबकि स्त्री पुरुष के गुणों से सुसज्जित होने पर कुलटा कहलाने लगती है। पुरुष स्त्रीत्व गुणों से प्रभावित होकर ही आकृष्ट होता है।

विशेष

- प्रो. मेहता का मालती के प्रति अनाकर्षण का कारण उसका पुरुष स्वभाव है।
- स्त्री के गुणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।
- स्त्री जीवन की सार्थकता स्वयं को मिटाकर पति (पुरुष) को पूर्ण बनाने में निहित है।
- वैवाहिक जीवन के लिए स्त्री पुरुष का पारस्परिक आकर्षण अपेक्षित है।
- प्रो.-मेहता के द्वारा प्रेमचंद के विचार व्यक्त हुए हैं।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
- संन्यासी जीवन पर प्रकाश डाला गया है।
- तत्सम शब्द युक्त साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- नारी गुणों से युक्त मनुष्य को स्त्रैण भी कहा जाता है।

- स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए छाया और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्च आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म, आध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका है। मैं कहता हूं, उसका सारा आध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

वीमेंस लीग में भाषण देते हुए प्रो. मेहता ने कहा कि स्त्री और पुरुष को समान नहीं माना जा सकता। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें त्याग, सेवा, क्षमा अहिंसा आदि गुणों का समावेश है, जबकि पुरुष इन गुणों को सदियों से प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है लेकिन सफल नहीं हुआ है।

टिप्पणी

व्याख्या

प्रो. मेहता के विचार उन लोगों से नहीं मिलते जो स्त्री और पुरुष की समानता के पक्षपाती हैं। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना कि प्रकाश अंधेरे से। स्त्री प्रकाश है तो पुरुष अंधकार। प्रत्येक मानव का मानवीय गुणों से युक्त होना आवश्यक है। मानव इसी प्रयास में लिप्त है लेकिन सफलता अभी कोसों दूर है। क्षमा, त्याग अहिंसा आदि गुणों से ही मनुष्य मानव कहलाने का अधिकारी है जबकि स्त्री को यह गुण उसे मां की छत्रछाया से प्राप्त होते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है ये जन्मजात गुण हैं जो नारी में स्वतः पल्लवित होते हैं। पुरुष स्त्री की अपेक्षा क्रोधी अंहकारी, स्वार्थी और अहिंसक है। वह कभी धर्म के सान्निध्य में तो कभी आध्यात्म की आड़ में इन तत्वों को खोजने का प्रयत्न करता है। उसकी वर्षों की तपस्या भी इसमें कारगर सिद्ध न हुई। प्रो. मेहता का मानना है कि नारी का त्याग ही उसकी महानता का सूचक है। पुरुषों का धर्म एवं आध्यात्म इसके सामने तुच्छ ही रहते हैं। इन्हीं गुणों के कारण नारी पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। मैं दोनों को समान मानने का विरोध करता हूं।

विशेष

- प्रेमचंद ने प्रो. मेहता के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है।
- त्याग, क्षमा एवं अहिंसा नारियों के स्त्रियोचित गुण हैं।
- प्रेमचंद का आदर्शवादी पक्ष व्यक्त हुआ है।
- मानवतावादी भावना का दिग्दर्शन किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली की छटा दृष्टव्य है।
- सहज एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है।
- उपमा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- आदर्शवाद को धर्म एवं आध्यात्म के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।
- प्रेमचंद ने नारी को पुरुषों से श्रेष्ठ बताकर नारी के प्रति सम्मान व्यक्त किया है।
- प्रो. मेहता की बहुज्ञता एवं स्पष्टता का वर्णन है।

- मैं आपसे पूछता हूं, क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देगा, कि वह मानसरोवर की आनंदमयी शांति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और अगर वह शिकार करने लगे, तो क्या आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतनी तेज आंखें नहीं हैं, उतने तेज पंख नहीं हैं, उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियां लग जाएंगी, फिर भी वह बाज बन सकेगा या नहीं इसमें संदेह है, मगर बाज बने या न बने, वह हंस न रहेगा वह हंस जो मोती चुगता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

टिप्पणी

वीमेंस लीग में प्रो. मेहता का भाषण चल रहा है। उन्होंने नारी को पुरुषों से उतना ही श्रेष्ठ माना, जितना कि प्रकाश अंधेरे से। उनकी दृष्टि में स्त्री पुरुष से हमेशा श्रेष्ठ है क्योंकि वह गुण उसे स्वतः प्राप्त होते हैं जबकि पुरुष को धर्म एवं आध्यात्म का भी सहारा लेना पड़ता है। रायसाहब, संपादक जी और मिस्टर खन्ना को प्रो. मेहता का भाषण कोरा सिद्धांतहीन लगता है।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि वर्तमान संस्कृति में पुरुष प्रधानता का वर्चस्व है। वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, प्रर्वतकों एवं महात्माओं ने ध्वंसात्मक मूल्यों को जन्म दिया है। उन्होंने नारी को हंस और पुरुष को बाज माना। हंस नारी के समान सात्विक प्रवृत्ति का है, जबकि बाज हिंसक प्रवृत्ति का। हंस कभी भी चिड़ियों का शिकार करने की इच्छा प्रकट नहीं करता क्योंकि वह मानसरोवर की शांतिप्रिय आनंददायिनी जीवन शैली को छोड़कर जाना पसंद नहीं करता। अगर वह ऐसा करता है, तो उसे बाज के समान गुणों से युक्त होना पड़ेगा। तेज पंजे, नुकीली चोंच, बंकिम दृष्टि एवं हिंसक प्रवृत्ति को धारण करना आवश्यक है। जबकि उसके अंग प्रत्यंग निस्तेज हैं। इन का संचय करने में उसे लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, साथ ही न तो वह हंस रहेगा, और न बाज।

ईश्वर ने स्त्री को पुरुष से गुणों के आधार पर अलग बनाया है। यदि वह पुरुष का अनुसरण करेगी तो उसे अपनी शांति को खोना पड़ेगा। उसे समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होगी। पुरुष की तामसिक वृत्ति स्त्री में नहीं समा सकती, इसीलिए स्त्रियों को पुरुषों की नकल न करके अपने मार्ग का अनुसरण करना ही श्रेयस्कर होगा।

विशेष

- प्रेमचंद के नारी विषयक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की गई है।
- भारतीय नारी का आदर्श उसके स्त्रियोचित गुण ही हैं।
- प्रो. मेहता की नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है।
- पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभावों की ओर संकेत किया है।
- लोकोक्ति– कौवा चले हंस की चाल, भूल गया अपनी भी चाल का सुंदर प्रयोग हुआ है।
- प्रतीकात्मक शैली अपनाई गई है।
- प्रसादगुण युक्त सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- वोट नये युग का माया जाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है; उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होंगी न उधर की। कौन कहता है आपका क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति अवकाश नहीं मिलता। हम सभी पहले मनुष्य हैं पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है, तो अपरिमित कौन–सा क्षेत्र

टिप्पणी

है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं, जहां मनुष्य पीसा जाता है, जहां उसका रक्त निकाला जाता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता वीमेंस लीग में भाषण दे रहे हैं, वहीं मालती की बहन सरोज तथा अन्य युवतियां अपने अधिकारों की वकालत करती है, वोट देने का अधिकार प्राप्त करना चाहती हैं। मालती उनको शांत करती हैं, तो मेहता साहब वोट की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि वोट नये युग का प्रतीक है। यह ऐसा माया जाल है, जिसमें फंसकर निकलना दुष्कर है। वोट का अधिकार प्राप्त होने से समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। समस्याओं का जाल और अधिक सुदृढ़ होता जा रहा है। वोट को नये युग का कलंक कहा जाए तो तर्क संगत होगा, वह लालायित मरीचिका है जिसके होते समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। अधिकार को प्राप्त करने के सभी रास्ते बंद होते जा रहे हैं। अगर नारियां भी इस दल–दल में फंस गईं तो वह कही की नहीं रहेंगी। वह घर और बाहर की दुनिया से वंचित हो जाएंगी। मताधिकार को प्राप्त करके गृहिणी का पद भी खतरे में पड़ जाएगा। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। हमारे सभी संस्कार क्रियाकलाप, घर की चहारदीवारी में ही संपन्न होते हैं। घर को सीमित मानना संकुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। अर्थात परिवार का दायरा विस्तृत है। संघर्षरत जीवन की झलक, संगठन शक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण परिवार ही है। जिस परिवार में व्यक्ति अपनी रोजी–रोटी कमाता है अपने भाग्य को सुनिश्चित सा कर लेता है, उसको त्याग कर अन्यत्र जाना खतरे से खाली नहीं हैं क्योंकि लोकतंत्र में सीधे, ईमानदार व्यक्तियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तिल–तिलकर जीने को बाध्य होना पड़ता है।

विशेष

- प्रो. मेहता की भविष्योन्मुखी विचारधारा की अभिव्यक्ति है।
- अप्रत्यक्ष रूप से इस अवतरण में लोकतंत्र का उपहास किया गया है।
- यह उपहास ही नहीं यथार्थ स्थिति का आकलन भी है।
- नारी की अधिकारों के प्रति जागरूकता का वर्णन है।
- प्रेमचंद के अनुसार नारी के लिए उपयुक्त स्थान घर ही है। वही परिवार की संचालिका है।
- राजनीतिक बिडंबनाओं का सजीव चित्रण किया गया है।
- मानवतावादी भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।
- वर्तमान व्यवस्था का दुष्परिणाम पुरुष को अपना रक्त बहाने पर, तिल–तिलकर जीने को बाध्य होने के रूप में देखने को मिलता है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाहित हिंदी का प्रयोग हुआ है।

टिप्पणी

- संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं, और वह आपको मिले हुए हैं। उन अधिकारों के सामने वोट कोई चीज नहीं। मुझे खेद है कि हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से बढ़कर विलास की वस्तु बन गई हैं। पश्चिम की स्त्री स्वतंत्र होना चाहती है, इसीलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है। पश्चिम में जो चीजें हैं वह उनसे लीजिए। संस्कृति में सदैव आदान–प्रदान होता आया है– लेकिन अंधी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह–स्वामिनी रहना नहीं चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद–प्रमोद पर होम कर रही है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती स्त्रियों को अधिकार दिलाने के लिए प्रयत्नशील है। क्योंकि पुरुषों के शोषण से नारी को तभी मुक्त किया जा सकता है, जबकि उसे अधिकार प्राप्त हों। इसके लिए वह 'वोट' का अधिकार सर्वोपरि मानती है, क्योंकि अपनी सहमति वह संघर्ष, प्रतिकार से नहीं दे सकती इसीलिए 'वोट' उसकी मनःस्थिति के अनुकूल ही है। प्रो. मेहता वोट के अधिकार को स्वच्छंदता का प्रतीक मानते हैं क्योंकि नारी का स्थान घर है, त्याग, सेवा के भाव ही उसको सुशोभित कर सकते हैं। पश्चिम का अंधानुकरण उसे अपने रास्ते से विचलित कर देगा।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं, जो नारी को परिवार की शिक्षा से प्राप्त हैं। त्याग और सेवा के सामने संसार की सभी चेष्टाएं व्यर्थ ही हैं। यही नारी के आभूषण तो हैं ही, चारित्रिक विशेषताएं भी यही हैं। वोट का अधिकार उसके सामने छोटा अधिकार है। फिर क्यों बहुमूल्य को त्यागकर व्यर्थ की माथा–पच्ची कर रही हैं। हमारी बहनें पश्चिमीकरण के प्रभाव से ग्रसित हैं जिन्हें वह आदर्श मानकर ग्रहण करना चाहती हैं, वह केवल स्वच्छंद होने का माध्यम मात्र ही है। पश्चिम में नारियों ने अपने आदर्श को खो दिया है। उनका स्थान

टिप्पणी

गृहिणी से गिरकर प्रेमिका तक सीमित हो गया है, इसीलिए मां की उपयोगिता समाप्त होती जा रही है जबकि हमारे यहा मां का स्थान सर्वोपरि है। स्त्रियों की प्रसन्नता से देवता भी गद्‌गद् रहते हैं। बिना गृहिणी के घर, घर न होकर भूतों का डेरा होता है। पश्चिम की नारी भोग विलास का प्रतीक बन गई हैं, उसके जीवन का चरम लक्ष्य विलासमय जीवन जीना ही है। हमारी माताओं का आदर्श विलास की अपेक्षा सेवा और त्याग ही रहा है। उन्होंने परिवार की कल्पना को साकार किया है। संयुक्त परिवार का वर्चस्व स्थापित किया है।

प्रो. मेहता संस्कृति की विशेषता का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि संस्कृति हस्तांतरित होती है। एक देश की संस्कृति का दूसरे देश की संस्कृति से आदान–प्रदान अवश्य हो, लेकिन अपने आदर्शों को खोकर नहीं। जो समाज और पारिवारिक दृष्टि से उपयुक्त हो वही ग्रहण किया जाए। अनर्गल तथ्यों का ग्रहण हमारे मार्ग में अवरोध उत्पन्न करेगा। मां की गरिमा का वर्णन पश्चिम संस्कृति में विलुप्त हो गया है। वह इतनी स्वतंत्र हो गई है कि उसे लज्जा और गरिमा का पालन करना व्यर्थ प्रतीत होता है। चंचलता और आमोद–प्रमोद से ग्रसित नारी को लज्जा का भय नहीं लगता। उसके जीवन का लक्ष्य मौज–मस्ती करना ही है।

विशेष

- प्रेमचंद ने प्रो. मेहता द्वारा पाश्चात्य संस्कृति के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला है।
- स्माज की क्रमबद्धता सुनिश्चित करने के लिए संस्कृति का आदान–प्रदान आवश्यक है।
- प्रेमचंद ने भारतीयों में पनप रही कुप्रवृतियों का पर्दाफाश किया है।
- नारियोचित गुणों को महत्ता प्रतिपादित की गई हैं।
- प्रो. मेहता अप्रत्यक्ष रूप से नारियों की बढ़ती शक्ति से भयभीत हैं।
- प्रेमचंद ने वोट के प्रति नारियों की जागरूकता को आधुनिकता का परिचायक माना है।
- मालती द्वारा वोट के अधिकार के प्रति सचेत करना नारी जागृति का मार्ग प्रशस्त करता है।
- पाश्चात्य समाज में परिवार की संरचना कल्पना मात्र ही है।
- नारी को परिवार की संचालिका मानकर नारी की महिमा का गुणगान किया है।
- संस्कृति से ही संस्कारों का सफल निर्वाह संभव होता है जिससे जीवन में क्रमबद्धता आती है।
- नारी को भोग की वस्तु समझना पुरुष की संकीर्ण मानसिकता का सूचक है।
- प्रेमचंद भारतीय नारियों की बदलती मनःस्थिति से व्यथित दिखाई दे रहे हैं।
- तत्सम शब्दावली युक्त सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

टिप्पणी

- जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह जैसे संन्यासी केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में, कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल नहीं है। सच्चा आनंद सच्ची शांति केवल सेवाव्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है। शक्ति का उद्‌गम है। सेवा ही वह सीमेंट है जो दंपत्ति को जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े–बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है, और आपके ऊपर पुरुष जीवन की नौका का कर्णधार होने के कारण जिम्मेदारी ज्यादा हैं। आप चाहें तो नौका को आंधी और तूफानों में पार लगा सकती हैं और आपने असावधानी की तो नौका डूब जाएगी, और उसके साथ आप भी डूब जाएंगी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता का मानना है कि पश्चिम में नारी को बराबरी का अधिकार प्रदान कर अप्रत्यक्ष रूप से नारी–शोषण का मार्ग प्रशस्त किया है। तितलियां बनकर वे पुरुषों को आकर्षित करें। सरोज का मानना है कि हम विवाह में बंधना नहीं चाहतीं। हम अगर विवाह करेंगी तो उसका आधार प्रेम ही होगा क्योंकि जब पुरुष स्वतंत्र है तो नारी भी स्वतंत्र है।

व्याख्या

उपस्थित जन समूह जब सरोज के विचारों का स्वागत करता है तो प्रो. मेहता अपना विरोध प्रकट करना नहीं चूकते। मेहता के अनुसार जिसे तुम प्रेम कहती हो, स्वप्निल धोखा है, अतृप्त अकांक्षा का प्रतीक है। विकृत मानसिकता का सूचक है। उसी तरह जिस प्रकार संन्यासी भीख मांगने का संस्कृत रूप है। नारी को आत्मिक शांति तभी मिलेगी जब वह वैवाहिक बंधन में बंधेगी अन्यथा अतृप्ति की शिकार ही रहेगी। उसे वैवाहिक बेला में ही सच्चा प्रेम प्राप्त हो सकेगा। अगर तुम्हे सच्चा आनंद प्राप्त करना है, सच्ची शांति की इच्छुक हैं, तो सेवा का क्षेत्र ही चुनना पड़ेगा, क्योंकि हमारी संस्कृति सेवाभाव को प्रमुखता प्रदान करती है। सेवा द्वारा ही नारी सभी अधिकारों को प्राप्त कर सकती है। इसी के द्वारा सामर्थ्य युक्त हो सकती है।

प्रो. मेहता सेवा की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि सेवा सीमेंट के समान अटूट होती है जिसके आधार पर दंपत्ति रूपी महल का निर्माण होता है। जीवन पर्यन्त तक स्नेह और साहचर्य की रक्षा सेवा द्वारा ही फलीभूत होती है। जीवन की अन्य आपदाएं इस का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। वैवाहिक जीवन की सफलता का आधार सेवा भाव ही है। वैवाहिक विघटन की नीड़ में सेवाभाव की रिक्तता ही देखी जाती है। नारी जीवन पर पुरुष जीवन की नौका का दायित्व टिका है। वह चाहे तो उसका सफल निर्वाह भी कर सकती है और उसको बीच मझधार में डूबो भी सकती है।

टिप्पणी

विशेष

- लेखकीय वक्तव्य से नारियों की प्रेम के नाम पर वासना में डूबने की इच्छा प्रतिबिंबित होती है।
- सुखद परिवार की नींव सेवाभाव पर टिकी होती है।
- यह यथार्थ है कि प्रेम के बिना वैवाहिक जीवन का पालन करना दुष्कर ही है।
- विवाह विच्छेद के मूल में सेवा की भावना का अभाव रेखांकित किया है।
- प्रो. मेहता द्वारा नारी महिमा का गुणगान किया गया है।
- सेवा का प्रतिफल सदैव सुखद ही होता है।
- प्रो. मेहता का मानना है कि पारिवारिक जीवन में अगर सेवाभाव है, तो युगीन संघात, विवाह–विच्छेद, अविश्वास जैसे भावों का जन्म नहीं होता।
- प्रेम का क्षेत्र विस्तृत है, जिसकी सीमा में परिवार समाज, तथा राष्ट्र का स्वरूप समाहित हो जाता है।
- सेवाभाव की तुलना सीमेंट से की गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल साहित्यिक हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

• सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूं, उससे अब निकल नहीं सकता। घास छीलना मेरे लिए असंभव है। आपके पास जमीन नहीं जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं; लेकिन आप भी दुम दबाए बैठे रहते हैं। आपको कुछ खबर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितने गरीबों का खून हो रहा है, कितनी देवियां भ्रष्ट हो रही हैं। है बूता लिखने का? सामग्री मैं देता हूं प्रमाण सहित।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

संपादक ओंकारनाथ की दृष्टि में न्याय का पालन, सत्य की रक्षा एवं रिश्वतखोरी का विरोध करना मानव का कर्तव्य है। रायसाहब स्वयं पर किये कटाक्ष का प्रतिकार करते हुए कहते हैं–

व्याख्या

रायसाहब ओंकारनाथ के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मैंने विपत्ति की घड़ी में तुम्हारी सहायता की है। प्रत्येक पर्व, उत्सव के अवसर पर उपहार भेजता हूं, वर्ष में अनेक बार दावत करता हूं रिश्वत और कर्तव्य का पालन करना एक साथ संभव नहीं हो सकता। जब तुम्हें स्वदेशी आंदोलन की स्थिति में विदेशी दवाओं व वस्तुओं का विज्ञापन

टिप्पणी

करने में कर्तव्य का बोध नहीं होता। अपनी व्यस्त दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– मनुष्य के व्यक्तित्व में युगीन परिस्थितियों की महती भूमिका होती है। वंशानुगत लक्षणों का होना स्वाभाविक ही है। मेरी कथनी और करनी पर वंश का प्रभाव है उसको त्यागना असंभव है। मनुष्य एक बार जिस दल–दल में फंस जाए तो उसका निकलना कठिन होता है। हाथ पर हाथ रखकर बैठना मेरा स्वभाव नहीं है, मैं समाज का तुच्छ कार्य भी नहीं कर सकता। मेरे पास जमीन है, संपत्ति है। इसकी रक्षा स्वतः नहीं होती; हाथ पैर चलाने पड़ते हैं। मर्यादा का भय हमें भयभीत करता है इसीलिए युगानुरूप कार्य करना हमारी विवशता है।

रायसाहब उत्तरदायित्त्व का बोध कराते हुए ओंकारनाथ से कहते हैं कि तुमने भी अपने कर्तव्य का सफल निर्वाह नहीं किया। प्रत्येक दफ्तर, विभाग में रिश्वत का बोलबाला है। जो गरीब हैं उनका कोई हितैषी नहीं है उनका शोषण किया जा रहा है। समाज में आए दिन देवियों (कन्याओं) का अपमान किया जा रहा है, उनकी अस्मिता से खेला जा रहा है। इनका प्रतिकार करने की शक्ति आप में नहीं है। आपकी दृष्टि से यह सब कैसे ओझल हो रहे हैं। अपने कर्तव्य का निर्वाह करने का साहस पैदा कीजिए। प्रमाण सहित तथ्यों की उपलब्धि मेरी जिम्मेदारी है।

विशेष

- रायसाहब अमरपाल सिंह का आक्रोश व्यक्त हुआ है।
- रायसाहब युगीन वातावरण एवं परिस्थितियों से भलीभांति परिचित हैं।
- रायसाहब के उद्‌गारों में वंशानुगत शोषण की झलक दिखाई देती है।
- व्यक्तित्व निर्माण में वंश परंपरा का प्रभाव देखने को मिलता है।
- यह अवतरण समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है।
- रायसाहब अमरपाल सिंह की मनःस्थिति का चित्रण है।
- घास छीलना– मुहावरा प्रयुक्त हुआ है।
- अरबी/फारसी शब्दों का प्रयोग– पुश्तों, जमीन, जायदाद, गरीबों, खबर आदि द्वारा हुआ है।
- बूता से आशय सामर्थ्य से है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

• तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गई। भगवान मौत भी नहीं देते कि जंजाल से जान छूटे। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिए। अब और कौन आमदनी है, जिससे गोई आयेगी? हल में क्या मुझको जोतोगे? मैं कहती हूं तुम बूढ़े हुए, तुम्हे इतनी अक्ल भी नहीं आई कि गोई भर के लिए रुपये तो निकाल लेते। कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े लेता। पूस की यह ठण्ड, और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सब को नदी में डुबो दो। सिसक–सिसक कर मरने से तो एक दिन मर

टिप्पणी

जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेगे, और पुआल में घुस भी लें, तो पुआल खाकर रहा तो नहीं जाएगा। तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खायी जाएगी–

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

लाला पटेश्वरी अपना पैसा बसूल करने के लिए शोषण करना भी उचित समझते थे। पटेश्वरी बाल बच्चों के लिए जमा की गई राशि को देने को कहता है। झिंगुरी सिंह होरी से पैसे हड़पकर उसे विवशता की कगार पर पहुंचा देता है। हताश होरी जब घर आया तो उसका मन चाहता था कि ऐसे लज्जित जीवन से आत्म हत्या करना बेहतर है। होरी को उदास देखकर धनिया पूछती है। होरी की खामोशी किसी विपत्ति से कम न थी।

व्यारव्या

होरी द्वारा दिए गए उत्तर को सुनकर धनिया के बदन में आग लग गई। एक बार उसे विचार आया कि अपना मुंह नोच ले। अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हुई कहती है कि उस विधाता ने तुम जैसे किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति को क्यों पैदा किया। यही प्रश्न मुझे बार–बार व्यथित कर रहा है। जब से मेरा तुम्हारे साथ संबंध जुड़ा है आज तक कभी सुख चैन नहीं मिला। सारी जिंदगी समाप्त होने को है। जी चाहता है कि जीवन से छुटकारा मिले लेकिन भगवान की मर्जी नहीं है। जो पैसे कमाये उन्हें अपने बहनोइयों को दे दिए। आगे आमदनी का कोई सहारा भी नहीं है। गाय की उम्मीद भी धूमिल हो गई हैं। खेत जुतने को पड़े हैं। बैलों का प्रबंध कहां से करोगे। अगर बैल न मिले तो मुझे ही जोत लेना। सामान्यतया उम्र के साथ बुद्धि भी बढ़ती जाती है लेकिन तुम्हारी उम्र के साथ बुद्धि घट रही हैं। किसी तरह गाय के लिए रुपये बचा लेते तो वह तुमसे छीन नहीं लेता। पूस माह में भी किसी के तन पर कपड़ा नहीं है, अगर प्रबंध नहीं कर सकते तो हमें लेकर जाकर किसी नदी में डुबो दो। तिल–तिल कर मरने से एकदम मरना अधिक श्रेयस्कर है। अब तक तो पुआल से ठण्ड काट ली लेकिन पूस की ठण्डी रातें नहीं कटेंगी। पेट को भरने के लिए पुआल की बजाय भोजन की आवश्यकता है। घास से पेट की भूख शांत नहीं होगी। तुम्हें खानी है तो खाओ।

विशेष

- धनिया का ओजस्वी स्वरूप मुखरित हुआ है।
- यह अवतरण कृषक जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करता है।
- नारी चेतना का वर्णन है।
- होरी की असहाय स्थिति का चित्रण हैं।
- अकिंचन स्थिति में मनुष्य की बुद्धि का क्षय होने लगता हैं।
- पूस माह की शीतल रातें ठण्ड की पराकाष्ठा की सूचक हैं।

टिप्पणी

- यह अवतरण होरी की दयनीय स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है।
- मुहावरेदार सरल भाषा प्रयुक्त हुई है, जैसे– जिंदगी तल्ख होना, घास खाना।
- घामड़ शब्द से आशय बुद्धि हीनता से है।
- असहाय स्थिति ही मनुष्य को आत्महत्या के लिए प्रेरित करती हैं।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- उम्र बढ़ने के साथ बुद्धि भी बढ़ने लगती है, जिससे विचारों में प्रौढ़ता आने लगती है।

- जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल विद्या और बुद्धि, ये विभूतियां संसार को मोहित कर लें, कवि के लिए यहां जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोह और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएं और मिटी हुई स्मृतियां और टूटे हुए हृदय के आंसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन–जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

खन्ना और गोविंदी में नहीं पटती। खन्ना मालती की ओर आकर्षित है जबकि मालती मेहता की ओर। मेहता मालती को नारियोचित गुणों से रिक्त मानते हैं। उनका झुकाव गोविंदी की ओर है। उनकी दृष्टि में गोविंदी एक आदर्श गृहिणी के गुणों से युक्त हैं। गोविंदी अपनी प्रशंसा सुनकर गद्‌गद हो जाती है। उसे महेता में रवि की झलक दिखाई पड़ती है। साथ ही रवि के वैयक्तिक जीवन के दुखों को सोचकर विचलित होने लगती है। मेहता समझाते हैं कि कवि का दृष्टिकोण संसार से भिन्न होता है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को कवि की दुनिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्यों के विपरीत कवि का हृदय विलक्षणता से युक्त होता है। सामान्यता मनुष्य धन दौलत, रूप, विद्या ऐश्वर्य वृद्धि तथा बल के पीछे दौड़ता है, किंतु कवि का मन इनसे आसक्त नहीं होता। वह द्रवित हृदय की आह सुनता है, निराश मनुष्य की व्यथा सुनता है। अविस्मृत यादें उसे प्रिय लगती है। आंखों से गिरने वाले आंसुओं में उसे तृप्ति मिलती है। उसका जीवन करुणा एवं संवेदना से युक्त होता हैं इसलिए उसका झुकाव, पीड़ित, उपेक्षित, निराश, दुःखी लोगों के हृदय में निवास करता है। इन्हीं को अपनी कविता मैं अभिव्यक्त भी करता है। अगर उसका यह आकर्षण समाप्त हो जाएगा तो वह कवित्व बोध से रिक्त हो जाएगा। एक दार्शनिक के लिए सुख, दुख, राग–विराग बहस बातें हो सकती है, लेकिन कवि का जीवन इन्हीं के इर्द–गिर्द घूमता रहता है।

टिप्पणी

विशेष

- कवि का संसार सामान्य जनों से प्रथृक होता है।
- दार्शनिक वैचारिक दृष्टिकोण तथा कवि भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।
- साहित्य–सृजन के मूल में वेदना महती भूमिका निभाती है। पंत जी के विचार भी वियोग को प्रमुखता प्रदान करते हैं–

  "वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
  निकलकर नयनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।"

- कवि में दार्शनिक प्रवृत्ति का होना भी आवश्यक है।
- इलियट के अनुसार बिना गंभीर दर्शन के बड़ा कवि नहीं बन सकता है।
- लाक्षणिकता से युक्त भाषा प्रयोग में लाई गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- मैं प्रकृति का पुजारी हूं और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं। जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है, और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं जो रोने की कमजोरी और हंसने को हलकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छंद, जहां ईर्ष्या, कुत्सा और जलन के लिए कोई स्थान नहीं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता और गोविंदी में वार्तालाप चल रहा है। गोविंदी मेहता के द्वारा मालती से मुक्ति की कामना करती है। मेहता आश्वासन देकर शांत करते हैं। गोविंदी को लगता है कि खन्ना मालती की ओर आकृष्ट हो रहे हैं, इसलिए गोविंदी की उपेक्षा हो रही है। प्रो. मेहता अपना वक्तव्य देते हुए कहते हैं, कि मैं किसी के बीच में हस्तक्षेप नहीं करता, कृत्रिमता से दूर स्वाभाविकता में मेरा विश्वास है। अपने विचारों से तुमने अपने हृदय का बोझ हल्का किया है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को सांत्वना प्रदान करते हुए कहते हैं कि मेरा व्यक्तित्व यथार्थ से निर्मित है। मै प्रकृति का पुजारी हूं जिस प्रकार प्रकृति अपने आगोश में स्वाभाविकता समेटे होती है ठीक उसी प्रकार मेरा भी यही मानना है। कृत्रिमता में मेरा विश्वास नहीं है। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने स्वाभाविक रूप में सामने आए, अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न न करे। इसी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य सुख में सुखी होता है और दुःख में दुखी। क्रोध आने पर प्रहार भी कर सकता है। यही जीवन की वास्तविकता है। इन्हीं में जीवन की झलक

टिप्पणी

देखने को मिलती है। इसके विपरीत अगर मनुष्य कृत्रिमता युक्त जीवन जीता है तो उसमें वास्तविकता विलुप्त हो जाती है।

मिस गोविंदी तुमने मेरे समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करके कोई गलती नहीं की है। यथार्थ स्थिति को सामने रखा है। जीवन एक खेल है जिसमें व्यक्ति आनंद को ढूंढता है, उसे परिणाम की चिंता नहीं रहती। सुखी जीवन के लिए स्वच्छदंता, सरलता, शुचिता आवश्यक मानी जाती है। ईर्ष्या, जलन, कुत्सा युक्त व्यक्ति दूसरों के साथ अपनी भी हानि करता है। मेरा वर्तमान ही सबकुछ है। भूत हमें आलसी बनाता है तो भविष्य की चिंता हमारी खुशहाल जिंदगी में बेचैनी घोल देती है।

विशेष

- प्रेमचंद ने गोविंदी को आदर्श स्त्री के रूप में स्थान दिया है।
- प्रो. मेहता गोविंदी के स्वाभाविक व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।
- प्रो. मेहता द्वारा प्रेमचंद की वाणी व्यक्त हुई है।
- वर्तमान की उपयोगिता सिद्ध की गई है।
- गोविंदी का भविष्य के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक है।
- गोविंदी खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण जानकर अपने वैवाहिक जीवन को बचाना चाहती है।
- प्रकृति और मानव का अटूट संबंध रहा है। वह प्राकृतिक योगदान की अवहेलना नहीं कर सकता।
- छायावादी कवि सुमित्रा नंदन पंत के लिए प्रकृति साहित्य सृजन का प्रेरक रही है।
- मनुष्य संकुचित मनोवृत्ति के फलस्वरूप ही दुःख प्राप्त करता है।
- सरल प्रवाह पूर्ण हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है। भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है, कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रुढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलवे के नीचे दबे हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव धर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी। सहयोग में, भाई चारे में वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप–दादा का कर्ज चुकाने में भेंट चढ़ जाती है। और ये जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हंसी आती है। वह मोक्ष एवं उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

टिप्पणी

विशेष

- कवि का संसार सामान्य जनों से प्रथृक होता है।
- दार्शनिक वैचारिक दृष्टिकोण तथा कवि भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।
- साहित्य–सृजन के मूल में वेदना महती भूमिका निभाती है। पंत जी के विचार भी वियोग को प्रमुखता प्रदान करते हैं–

  "वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
  निकलकर नयनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।"

- कवि में दार्शनिक प्रवृत्ति का होना भी आवश्यक है।
- इलियट के अनुसार बिना गंभीर दर्शन के बड़ा कवि नहीं बन सकता है।
- लाक्षणिकता से युक्त भाषा प्रयोग में लाई गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- मैं प्रकृति का पुजारी हूं और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं। जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है, और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं जो रोने की कमजोरी और हंसने को हलकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छंद, जहां ईर्ष्या, कुत्सा और जलन के लिए कोई स्थान नहीं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता और गोविंदी में वार्तालाप चल रहा है। गोविंदी मेहता के द्वारा मालती से मुक्ति की कामना करती है। मेहता आश्वासन देकर शांत करते हैं। गोविंदी को लगता है कि खन्ना मालती की ओर आकृष्ट हो रहे हैं, इसलिए गोविंदी की उपेक्षा हो रही है। प्रो. मेहता अपना वक्तव्य देते हुए कहते हैं, कि मैं किसी के बीच में हस्तक्षेप नहीं करता, कृत्रिमता से दूर स्वाभाविकता में मेरा विश्वास है। अपने विचारों से तुमने अपने हृदय का बोझ हल्का किया है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को सांत्वना प्रदान करते हुए कहते हैं कि मेरा व्यक्तित्व यथार्थ से निर्मित है। मै प्रकृति का पुजारी हूं जिस प्रकार प्रकृति अपने आगोश में स्वाभाविकता समेटे होती है ठीक उसी प्रकार मेरा भी यही मानना है। कृत्रिमता में मेरा विश्वास नहीं है। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने स्वाभाविक रूप में सामने आए, अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न न करे। इसी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य सुख में सुखी होता है और दुःख में दुखी। क्रोध आने पर प्रहार भी कर सकता है। यही जीवन की वास्तविकता है। इन्हीं में जीवन की झलक

टिप्पणी

देखने को मिलती है। इसके विपरीत अगर मनुष्य कृत्रिमता युक्त जीवन जीता है तो उसमें वास्तविकता विलुप्त हो जाती है।

मिस गोविंदी तुमने मेरे समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करके कोई गलती नहीं की है। यथार्थ स्थिति को सामने रखा है। जीवन एक खेल है जिसमें व्यक्ति आनंद को ढूंढ़ता है, उसे परिणाम की चिंता नहीं रहती। सुखी जीवन के लिए स्वच्छदंता, सरलता, शुचिता आवश्यक मानी जाती है। ईर्ष्या, जलन, कुत्सा युक्त व्यक्ति दूसरों के साथ अपनी भी हानि करता है। मेरा वर्तमान ही सबकुछ है। भूत हमें आलसी बनाता है तो भविष्य की चिंता हमारी खुशहाल जिंदगी में बेचैनी घोल देती है।

विशेष

- प्रेमचंद ने गोविंदी को आदर्श स्त्री के रूप में स्थान दिया है।
- प्रो. मेहता गोविंदी के स्वाभाविक व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।
- प्रो. मेहता द्वारा प्रेमचंद की वाणी व्यक्त हुई है।
- वर्तमान की उपयोगिता सिद्ध की गई है।
- गोविंदी का भविष्य के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक है।
- गोविंदी खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण जानकर अपने वैवाहिक जीवन को बचाना चाहती है।
- प्रकृति और मानव का अटूट संबंध रहा है। वह प्राकृतिक योगदान की अवहेलना नहीं कर सकता।
- छायावादी कवि सुमित्रा नंदन पंत के लिए प्रकृति साहित्य सृजन का प्रेरक रही है।
- मनुष्य संकुचित मनोवृत्ति के फलस्वरूप ही दुःख प्राप्त करता है।
- सरल प्रवाह पूर्ण हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है। भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है, कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रुढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलवे के नीचे दबे हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव धर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी। सहयोग में, भाई चारे में वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप–दादा का कर्ज चुकाने में भेंट चढ़ जाती है। और ये जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हंसी आती है। वह मोक्ष एवं उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

टिप्पणी

प्रसंग

गोविंदी अपने वैवाहिक बंधन को बचाने के लिए प्रो. मेहता से पति खन्ना का मालती से संबंध समाप्त करने का निवेदन करती है। मेहता ने सहमति प्रदान कर गोविंदी के पतिव्रत धर्म को सुदृढ़ करने की सांत्वना प्रदान की। गोविंदी स्वयं के प्रयत्न को हेय मानती है तो मेहता ने उसे वर्तमान पर दृष्टिपात करने का सुझाव देता है।

व्याख्या

प्रो. मेहता कहते हैं कि गोविंदी, भविष्य की चिंता करना व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य अनेक योजनाओं की काल्पनिक व्यूह रचना में ही अपना वर्तमान नष्ट कर देता है इससे उसको दोनों रूपों में चिंता युक्त जीवन जीने को बाध्य होना पड़ता है। जब हम अतीत की चिंता करते हैं तो निष्क्रिय होने लगते हैं। हमारी जीवन शैली में शिथिलता आने लगती है। हम अतीत का रोना रोकर कुछ समय के लिए भले ही संतुष्टि प्राप्त कर लें लेकिन वर्तमान की हानि से मुंह नहीं मोड़ सकते। हम वर्तमान में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों से दबे हुए है उनसे निकल पाना दूभर हो रहा है।

प्रो. मेहता मनुष्य की निष्क्रियता से व्यथित होकर कहते हैं कि हमने अपनी शक्ति को पारस्परिक कटुता और विद्वेष की भावना को पल्लवित करने में क्षीण कर दिया है, जबकि इसको प्रयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए था। देश प्रेम, विश्व बंधुत्व की भावना में लगाना चाहिए था। लेकिन हमारा दुर्भाग्य ही है कि हमने बहुमूल्य समय और शक्ति को पैतृक ऋण से मुक्ति पाने में लगा दिया। हमने अतीत के सामने वर्तमान में मानवता की उपेक्षा की है। ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष की अवधरणा में मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं है। इससे वर्तमान उपेक्षित हो जाता है और भविष्य की वेदना हमारी हरी–भरी दुनिया को उजाड़ने लगती है। भविष्य की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक महत्व देना चाहिए, क्योंकि हम वर्तमान में जीते हैं।

विशेष

- प्रो. मेहता के द्वारा प्रेमचंद ने अपने विचारों को अभिवयक्ति प्रदान की है।
- वर्तमान, भूत और अतीत की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।
- प्रो. मेहता में मार्क्सवादी भावना को देखा जा सकता है।
- महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भी चंद्रगुप्त नाटक में वर्तमान को महत्व प्रदान किया है।
- संसार के सभी धर्म मानवतावादी भावना को पल्लवित करते हैं।
- प्रो. मेहता की बौद्धिक क्षमता का दिग्दर्शन है।
- लाक्षणिकता की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।
- मुहावरेदार भाषा, जैसे– कमर तोड़ देना आदि का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

टिप्पणी

- जहां जीवन है, क्रीडा है, चहक है, प्रेम है वहीं ईश्वर है। और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है होठों पर मुस्कराहट न आये, आंखों में आसूं न आयें। मै कहता हूं कि अगर तुम हंस नहीं सकते और रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं, कोल्हू है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

पति खन्ना के व्यवहार से दुःखी गोविंदी अपने बच्चे के साथ प्रो. मेहता से मिलती है। मालती के कारण उसके वैवाहिक जीवन में कटुता आ जाती है जिसे दूर करने के लिए वह मेहता से कहती है। मेहता आश्वासन देकर साहस बढ़ाते हैं। गोविंदी को लगता है कि उसने अपने पति (खन्ना) की शिकायत कर ठीक नहीं किया। इस पर मेहता कहते हैं कि मैं मनुष्य के आचरण से प्रभावित होता हूं। कृत्रिमता से मुझे क्रोध आता है। क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविकता सबसे उपयोगी है। विशुद्ध आचरण की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

व्याख्या

प्रो. मेहता कहते हैं कि मनुष्य मानवीय गुणों के कारण ही श्रेष्ठता का द्योतक है। स्वाभाविक जीवन में सहानुभूति, त्याग, सेवा जैसे गुणों का विकास होता है। वास्तविक जीवन से पलायन करके मोक्ष, उपासना को प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि गतिविधियों से युक्त जीवन ही स्वाभाविक होता है। प्रेम तभी पल्लवित होता है जब वास्तविकता हो। प्रसन्नता, और क्रीड़ा को विकसित करने का अवसर जहां मिले वही श्रेष्ठ जीवन है। ईश्वर भी वास्तविकता के प्रांगण में प्रकट होकर अपनी लीला को दिखाता है। मानव अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए जो प्रयास करता है, वही सबसे बड़ी उपासना है और मुक्ति का माध्यम भी वही है। ज्ञानी, मनुष्य को समभाव रखने का उपदेश देता है जो व्यर्थ ही है क्योंकि पीड़ित व्यक्ति को देखकर जो द्रवित नहीं होगा वह पात्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। प्रसन्नता को व्यक्त न करना मानवता के विपरीत है। मानव चेतनाशील प्राणी है उसकी उपेक्षा करना मानवता को कलंकित करना हैं। हां पत्थरों से यह आशा नहीं की जा सकती। हम ज्ञानी का उपदेश भले ही शिरोधार्य करें लेकिन अपने मनोनुकूल व्यवहार करें। ज्ञानी की बातों में आकर स्वयं को कोल्हू के बैल स्वरूप न बनाएं।

विशेष

- संवेदनाहीन मनुष्य जड़वत शून्यता का प्रतीक है।
- प्रेमचंद का अनुभवी जीवन मेहता द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।
- ज्ञान का अर्थ विवेक को प्राप्त करना है, जिससे परिस्थिति अनुकूल व्यवहार किया जा सके।

टिप्पणी

- मानवता की भावना का चित्रण किया गया है।
- मुहावरा कोल्हू का बैल प्रयुक्त किया गया है
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- मैं समझता हूं कि नारी केवल माता है और उसके उपरांत कुछ भी नहीं, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूंगा – जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

पति खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण को जानकर गोविंदी व्यथित रहने लगती है। प्रो. मेहता से मालती को समझाने का आग्रह करती है। मेहता आग्रह स्वीकार कर प्रयत्न भी करते हैं। गोविंदी को समझाते हुए कहते हैं कि मनुष्य को वर्तमान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। कृत्रिमता से दूर स्वाभाविक जीवन जीना चाहिए, क्योंकि सच्ची मानवता, ईश्वरीय दर्शन, प्रेम को भी प्राप्त किया जा सकता है। गोविंदी को अधिकार के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं, वह घर तुम्हारा है तुम्हीं ने उसे पल्लवित किया है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को समझाते हुए कहते हैं कि घर की कल्पना माता के बिना संभव नहीं है। मां ही वह शक्ति है जो समस्त सदस्यों को एकता के सूत्र में पिरोकर रख सकती है। अपनी मातृत्व भावना से सिंचित करती है। उसको अपमानित करने का अधिकार किसी को नहीं है। नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व के बिना पूर्ण नहीं होती। मातृत्व सुख से वंचित नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता है। पत्नी, बहन, बेटी, बहू के विभिन्न रूप मिलकर भी मां की गरिमा की बराबरी नहीं कर सकते। प्रो. मेहता कहते हैं कि संसार में अगर सबसे बड़ी तपस्या है तो वह मातृत्व भावना ही है। गौरव और गर्व के गुण इसी मातृत्व को रुपांतरित करते हैं। नारी अगर मां बनती है, तो उसके जीवन की सार्थकता पूर्ण हो जाती है। मातृत्व को संसार का सबसे बड़ा त्याग माना गया है। विजय का गौरव भी कहा जाता है। इसी पद को प्राप्त करने के लिए वह वैवाहिक बंधन में बंधती है, तत्पश्चात ही पत्नी, भावी बहू का सम्मान प्राप्त करती है। इसके लिए वह जीवन, व्यक्तित्व और नारीत्व को भी अर्पित कर देती है। आपने सुंदर पुत्र को जन्म दिया है, उसकी सुरक्षा करना व पल्लवित करना आपका दायित्व है। आपको खन्ना द्वारा तिरस्कार तथा उपेक्षा को अनदेखा करके अपने घर को ही टूटने से बचाना है। गृह त्याग का विचार इस बच्चे के भविष्य को भी दांव पर लगा सकता है।

विशेष

- नारी जीवन की पूर्णता मातृत्व के बिना संभव नहीं।

टिप्पणी

- गोविंदी की दुःखी मनःस्थिति का वर्णन किया गया है।
- प्रो. मेहता ने गोविंदी के घर को टूटने से बचाकर मानवतावादी भावना को व्यक्त किया है।
- राष्ट्र कवि दिनकर ने मातृत्व की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा – 'मां बनते ही त्रिया कहां से कहां पहुंच जाती है।'
- गोविंदी के माध्यम से भारतीय नारी के आदर्श को चित्रित किया गया है।
- मातृत्व के सामने त्याग, तपस्या और विजय का आनंद भी श्रीहीन लगता है।
- भाषा में लाक्षणिकता की प्रधानता है।
- सहजता, सरलता और प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।
- विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- यह अवतरण अप्रत्यक्ष रूप से गोविंदी के साथ खन्ना की स्वार्थलिप्सा, भोगवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

- उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही सीमेंट, जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाए तो मिट्टी हो जाएगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को भेद डाला जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

शहर से वापस आकर गोबर को जब मां–बाप के शोषित होने का पता चला तो वह प्रतिकार करने लगा। होरी चाहता था कि गोबर किसी से कुछ न कहे क्योंकि समाज और बिरादरी के आगे किसी की नहीं चलती। गोबर (पिता) होरी की इच्छा के विरुद्ध था। वह जाति–पाति को दिखावा मात्र समझता है। शोषण करने का नया तरीका मानता है। नोखेराम की धूर्तता का पर्दाफाश करता है। शिक्षित गोबर से भयभीत होकर वह बातचीत करना मना कर देता है। गोबर नोखेराम को अदालत में घसीटने की धमकी देता है, साथ ही राय साहब अमरपाल सिंह से भयभीत भी नहीं होता। प्रेमचंद ने गोबर के इसी तेजस्वी स्वाभिमान का वर्णन करते हुए कहा–

व्याख्या

नोखेराम की मक्कारी और चालाकी को देखकर गोबर अदालत जाने की धमकी देता है। गंगा की सौगंध खिलाकर भयभीत भी करता है। लेखक कहता है कि आज उसकी वाणी में सत्य के दर्शन हो रहे थे। यथार्थ सामने उपस्थित था। सत्य भी साहसी व्यक्ति का साथ देता है। डरपोक और कायर के साथ सत्य भी गूंगा हो जाता है। जिस प्रकार सीमेंट ईंट

टिप्पणी

के साथ प्रयुक्त होनें पर पत्थर का रूप धारण करता है, ठीक उसी प्रकार सत्य भी शक्ति व धैर्य के साथ मुखरित होने को उत्सुक रहता है। मिट्टी का सान्निध्य पाकर सीमेंट भी मिट्टी बन जाता है। गोबर की निर्भीकता में सत्यता, स्पष्टता के दर्शन हैं। उसने अपने सत्य से नोखेराम की उस अभेद शोषण की दीवार को भेद डाला जिसके आधार पर नोखेराम स्वयं को सर्वोपरि मान रहा था उसकी दुर्बल आत्मा शोषण का आधार पाकर बलवती हो रही थी आज गोबर के सत्य के सामने नग्न रूप में सामने आ गई।

विशेष

- प्रेमचंद ने गोबर के द्वारा युवा पीढ़ी के आक्रोश को व्यक्त किया है।
- नोखेराम जो शोषण करता था गोबर के सामने यथार्थ से भागने का प्रत्यन करने पर विवश हुआ।
- सत्य में अटूट शक्ति होती है जिसके सामने असत्य नहीं टिक पाता।
- सत्य की तुलना सीमेंट से की गई है।
- शोषकों का प्रतिकार करने से गोबर में आधुनिकता के दर्शन होते हैं।
- प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया है कि जमींदारी प्रथा का खात्मा होने वाला है।
- गोबर के साहसी एवं निर्भीक व्यक्तित्व का चित्रण है।
- जमींदारों के वर्चस्व की दीवार इतनी सुदृढ़ थी जिसको तोड़ना स्वयं को विपत्ति में डालना था।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- मां–बाप का धर्म है, लड़के को पाल पोस कर बड़ा कर देना। वह हम कर चुके। उनके हाथ–पांव हो गए। अब तू क्या चाहती है, वे दाना–चारा लाकर खिलायें। मां–बाप का धर्म सोलहों आना लड़कों के साथ है। लड़कों का मां–बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है उसे असीस देकर विदा कर दे। हमारा भगवान मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है, भोगेंगे। चालीस सात सैंतालीस साल इसी तरह रोते–धोते कट गए। दस–पांच साल हैं, वह भी यों ही कट जाएंगे।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर जब शहर से वापस घर आया तो घर में उत्सव का माहौल था। होरी के साथ नोखेराम से कर्जा चुकाने गोबर भी जाता है। नोखेराम की धूर्तता, मक्कारी का विरोध करता है। होरी गोबर के व्यवहार से दुःखी है। वह पंचायत का दंड सह सकता है। समाज की मर्यादा का पालन करना कर्तव्य समझता है। नोखेराम द्वारा उपेक्षा सहकर उसका मन उचटने लगता

टिप्पणी

है। वह अपने साथ झुनिया को भी ले जाने का इरादा व्यक्त करता है। धनिया गोबर को इस बदलती मनःस्थिति के लिए झुनिया को दोषी ठहराती है। सास–बहू में पारस्परिक प्रतिकार भी होता है। होरी घर के वातावरण को देखकर दुःखी होता है, झुनिया को शांत रहने को कहता है। गोबर की इच्छा को देखकर होरी दुःखी मन से जाने की अनुमति प्रदान करने की सलाह धनिया को देता है।

व्याख्या

आज होरी घर की फजीहत को देखकर दुःखी था। वह धनिया को समझाता हुआ कहता है कि जो व्यक्ति स्वेच्छा से रुकना नहीं चाहता, उसे बंधन में बांधकर रखना संभव नहीं है। मां–बाप का नैतिक दायित्व है कि वह संतान को पाल–पोस कर बड़ा करे। यह हमने कर दिया, अब हमारा उसपर कोई अधिकार नहीं है। जब संतान आत्मनिर्भर हो जाए तो उसे इच्छानुसार चलाना आसान नहीं होता। जो संतान मां–बाप के लिए कमाकर लाए उनका सम्मान करें, दुःख दर्द का ध्यान रखे वह उस मां का सौभाग्य है। तू भी यही इच्छा रखती है, जो संभव नहीं है। मां–बाप का धर्म का पालन करना अनिवार्यता है, संतान इससे मुक्त है। अगर गोबर नहीं रुकना चाहता तो उसे प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर विदा कर दे। कलह ठीक नहीं है। हमारा भी भगवान मालिक है। भाग्य में जो लिखा है उसे कौन टाल सकता है? उसे भोगने को तैयार रह। उम्र के 47 साल तो कट गए हैं, शेष भी इसी तरह कट जाएंगे। संतान के लिए चिंतित होना व्यर्थ ही है।

विशेष

- होरी की व्यथा का चित्रण है।
- मां–बाप का दायित्व है संतान को पालना।
- होरी की असहाय स्थिति का चित्रण है।
- होरी की भाग्यवादिता का दिग्दर्शन है।
- शुभ कार्य को प्रसन्न मन से करना चाहिए अन्यथा दुःखद परिणाम होते हैं।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- तद्भव शब्दों का प्रयोग – धरम, असीस आदि के रूप में हुआ है।
- शब्द युग्म की छटा– मां–बाप, पाल–पोसकर, दाना–चारा, रोते–धोते, दस–पांच का सुंदर प्रयोग हुआ है।

- उसे तो अपनी काजल मिस्सी, मांग चोटी से ही छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे की देखभाल क्या करेगी? बेचारा जमीन पर पड़ा सोता होगा। बिचारा एक दिन भी सुख से नहीं रहने पाता। कभी खांसी, कभी दस्त, कभी कुछ कभी कुछ। यह सोच–सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता। गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला–पिलाकर अपने वश में कर लिया। ऐसी मायाविनी न होती तो यह टोना ही क्यों करती। कोई बात न पूछता था। भौजाइयों की लातें खाती थी। यह झुग्गता मिल गया तो आज रानी हो गई।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

लखनऊ शहर से घर वापस आया गोबर पिता होरी की जड़ता और मूर्खता को देखकर दुःखी होता है। मातादीन का विरोध करने पर डांट पड़ती है इसलिए वह पुनः लखनऊ जाने की सोचता है लेकिन पत्नी झुनिया को साथ लेकर। धनिया नहीं चाहती थी कि उसकी आंख का तारा पोता उसके सामने से ओझल हो जाए। पारस्परिक वैचारिक मतभेद स्वरूप गोबर झुनिया को भी साथ ले गया। अपने घर की खुशहाली को सूना होता देख धनिया टूट जाती है और अपनी व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है–

व्याख्या

जब से गोबर झुनिया को लेकर शहर गया, धनिया को पोते का सूना खटोला देखकर बेचैनी होती। वह कवच, जो उसका एकमात्र सहारा था, वह भी दूर चला गया। उसे पुत्र गोबर से कोई शिकायत नहीं है। वह झुनिया को इस प्रसंग की जड़ मानती है जो शहर जाकर अब स्वतंत्र हो गई। शहरों की औरतों की तरह वह भी मिस्सी–काजल लगाती होगी अपने साज शृंगार में बच्चे की अनदेखी करती होगी। बेचारा पृथ्वी पर पड़ा रहता होगा। एक दिन भी सुख से न रहने पाया। आये दिन बीमार रहता कभी खांसी, तो कभी दस्त होते होगें। झुनिया पर बार बार क्रोध आ रहा था। गोबर के लिए अब भी वही ममता थी। धनिया को लगता था कि उसने उसके पुत्र को कुछ खिला पिलाकर अपने वश में कर लिया होगा। झुनिया मायाविनी है उसने अपनी माया में बांध लिया होगा।

एक समय था कि झुनिया को घर में भी कोई नहीं पूछता था। भाइयों तथा भाभियों की तिरस्कृत दृष्टि का शिकार थी। मैनें उसे अपने घर में सहारा देकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। मेरा भोला–भाला बेटा मिल गया, इसीलिए आज खुद को रानी से कम नहीं समझती।

विशेष

- धनिया का अंर्तद्वंद्व व्यक्त है।
- धनिया का मातृ–स्नेह एवं झुनिया से प्रतिकार की भावना व्यक्त है।
- धनिया के अनुभवी जीवन की अभिव्यक्ति है।
- जादू–टोने का प्रसंग अंधविश्वास को रेखांकित करता है।
- विधवा जीवन की विवशता, लाचारी एवं यथार्थ का चित्रण है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- व्यवहार में भी देखा गया है कि मूल से सूद अधिक प्रिय होता है।
- झुग्गा, लात, भौजाइयों आदि स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है।

टिप्पणी

- सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से बचाता रहता था। सिलिया ने आंख उठाकर देखा तो मातादीन वहां न था। बोली चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो, दों की जगह चार पैसे का अनाज। अब क्या जान लेगी? मै मरी थोड़े ही जाती थी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मातादीन सिलिया को आश्रय प्रदान कर उसके अस्तित्व से खिलवाड़ करता रहा लेकिन कभी पत्नीत्व की गरिमा प्रदान नहीं की। इसीलिए सिलिया भी दुखी रहती थी। वह सामाजिकता की परवाह न करता। उसका मानना था कि सिलिया जितना परिश्रम करती है उससे अधिक ही पाती है। दुलारी सहुआइन अपना पैसा वसूलने के लिए सिलिया के पास आती है। मातादीन अलग हट जाता है। दुलारी सहुआइन को अनाज देने पर क्रोधित होकर डांटता है। मातादीन की मनःस्थिति एवं मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए कहा है–

व्याख्या

मातादीन स्वार्थी मनोवृत्ति से युक्त था इसीलिए वह उसका शारीरिक शोषण करने से पीछे नहीं रहता। मातादीन के घर में सिलिया की स्थिति जड़वत मशीन की तरह थी जिससे केवल काम लिया जा सकता है, उस पर व्यय करने की आवश्यकता नहीं। उसकी ममता को मनमाने ढंग से नचाता था। दुलारी सहुआइन को आता देख सामने से हट जाना उसकी स्वार्थी प्रवृत्ति को उजागर करता है। सिलिया को स्वयं पर विश्वास था इसीलिए अनाज देकर वह सहुआइन का मुंह बंद कर देती है।

विशेष

- मातादीन की स्वार्थी भावना का चित्रण है।
- सिलिया को मशीन मानने में मातादीन की यंत्रीकरण की भावना को रेखांकित करता है।
- आंख उठाकर देखना – मुहावरे का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- अनाज, सरक, मरी आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।

- उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भांति उसका मन फड़फड़ा रहा था जो ऊंची डाल पर उन्मुक्त वायुमण्डल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजड़े में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजड़े की तीलियों से सिर टकराकर मरना ही क्यों न पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्हायता थी और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं हैं, दूसरा अवलंब नहीं है।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

दुलारी सहुआइन को अनाज देकर मातादीन से क्रोध मोल ले लिया। सिलिया अपने अधिकार की बात करती है तो मातादीन उग्र हो जाता है और कहता है कि तुम काम करती हो तो खाती भी हो, पहनती भी हो। उसके अलावा तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। लेखक सिलिया की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं–

व्याख्या

मातादीन से उपेक्षा पाकर सिलिया हृदय से टूट चुकी थी। उसकी स्थिति उस पक्षी की भांति थी जो चाहकर भी दूर उन्मुक्त गगन में नहीं उड़ सकती थी। आज मातादीन की निगाह में परिवर्तन देखा तो उसकी निगाह में वेदना की अधिकता थी। वह पिंजड़े में बंद पक्षी की भांति फड़फड़ा तो सकती थी लेकिन उससे बाहर निकलना संभव नहीं था। वह जानती थी कि मातादीन के अलावा कोई सहारा भी नहीं है। वह बिना दाना पानी के उस घर की चारदीवारी से सिर मारकर मर जाना श्रेष्ठ समझती थी। भले ही विधिवत विवाह नहीं हुआ था लेकिन संस्कार, व्यवहार एवं मनोवृत्ति के अनुसार वह मातादीन की पत्नी ही थी। मातादीन चाहे तो उसे घर से निकाल दे, या मारकर जीवन नष्ट कर दे, उसे कोई प्रतिकार नहीं था, लेकिन समाज के सामने उपेक्षा करना असहनीय था।

विशेष

- सिलिया की दुःखी मनः स्थिति का वर्णन है।
- मातादीन की बदलती मनोवृत्ति का चित्रण है।
- सिलिया की तुलना पिंजड़े में बंद पक्षी से की गई है।
- भारतीय नारी का आदर्श व्यक्त है।
- हिंदू धर्मानुसार पति ही परमेश्वर होता है। इसीलिए वह मातादीन का गृह छोड़ने को तैयार न थी।
- वैध वैवाहिक संबंध ही समाज द्वारा स्वीकार्य है।
- भारतीय नारी की इच्छा होती है कि पति के सान्निध्य में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो।
- संस्कार 16 होते हैं, उनमें विवाह संस्कार ही जीवन पूर्णता को सिद्ध करता है।
- आत्म कथात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- मार डालो दादा, सब जनें मिलकर मार डालो। हाय अम्मां, तुम इतनी निर्दयी हो, इसीलिए दूध पिलाकर पाला था? सौर में ही क्यों न गला घोंट दिया? हाय, मेरे पीछे पंडित को भी तुमने भ्रष्ट कर दिया। उसका धर्म लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा। लेकिन पूछे न पूछे रहूंगी उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोडूंगी। उसकी सांसत कराके छोड़ दूं? मर जाऊंगी, पर हरजाई न बनूंगी। एक बार जिसने बांह पकड़ ली उसकी रहूंगी।

गोदान (मुंशी प्रेमचंद)

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

सिलिया की दुर्दशा देखकर और मातादीन की उदासीनता से ग्रसित होकर उसके मां–बाप घर चलने का आग्रह करते हैं लेकिन सिलिया मना कर देती है। भाइयों द्वारा मार खाकर भी मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती। सिलिया ने दीन होकर विनती की, लेकिन मां–बाप के हृदय में दया नहीं आयी। सिलिया के दृढ़ स्वभाव का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा–

व्याख्या

अपने परिवार में अपनी दुर्गति देखकर सिलिया अपनी व्यथा व्यक्त करती हुई कहती है कि सब मेरे खिलाफ हो गए हो। सब मिलकर मुझे मार डालो। हे मां तुमने तो मुझे दूध पिलाकर बड़ा किया, तुम्हारे हृदय में भी दया नहीं आयी। मुझे पैदा होते ही क्यों न मार दिया। मेरे पीछे मेरे पंडित (पति) की दुर्दशा करने में जरा भी शर्म नहीं आयी। उसके धर्म के साथ विद्रोह करके तुम्हें क्या मिला? तुम्हारे दुर्व्यवहार के कारण ही अब मेरा भी वहां रहना दूभर लग रहा है। अपनी दृढ़ता व्यक्त करती हुई कहती है कि वह चाहे मुझे मारे या पीटे, मेरा वहीं रहना सार्थक है। मेरे जीवन की सार्थकता भी उन्हीं के घर सिद्ध होगी। उनके साथ रहकर मुझे अपने धर्म का निर्वाह करने में आसानी होगी। उनकी अंतिम क्रिया कर्म के बाद ही उस घर को त्याग सकती हूं। उनके घर पर मरना मुझे अधिक श्रेष्ठ है। पति के जीते जी दूसरे का हाथ थामना मुझे अच्छा नहीं लगता। जिसने एक बार मेरे साथ रहने की निश्चय किया है, उसका साथ छोड़ना दूभर ही है। जब तक जीवित हूं उन्हीं के साथ रहने में मेरी भलाई है।

विशेष

- परिवार की उपेक्षा से दुःखी सिलिया की मनःस्थिति का वर्णन है।
- अविभावकों के लिए सामाजिक मर्यादा का पालन करना अनिवार्य होता है, इसीलिए सिलिया से घर चलने का आग्रह किया जाता है।
- पति के प्रति समर्पण की भावना का वर्णन है।
- सिलिया द्वारा भारतीय नारी की महिमा का वर्णन किया गया है।
- हिंदू धर्मानुसार पति ही परमेश्वर होता है।
- आदर्श पत्नी का धर्म है कि वह पति के साथ रहे। उसमें ही उसकी सार्थकता है।
- मुहावरों का प्रयोग – बांह पकड़ना, भ्रष्ट करना के रूप में हुआ है।

टिप्पणी

- तद्भव शब्द– भ्रष्ट, धरम, सांसत आदि प्रयुक्त हुए हैं।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाहित हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। अपनी इच्छा नहीं, या सामर्थ्य नहीं है। इसके लिए कोई हमें बुरा नहीं कह सकता। मगर जब हम नेकी करके अहसान जताने लगते हैं, तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी हमारा शत्रु हो जाता है। और हमारे अहसान को मिटा देना चाहता है। वही नेकी अगर करने वालों के दिल में रहे, तो नेकी है, बाहर निकल जाए तो बदी है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

भोला की दूसरी पत्नी नोहरी के संबंध नोखेराम से हैं। होरी और धनिया को अपना समधी समधिन मानती है। सोना के विवाह पर रुपये देने को तैयार हो जाती है। उसकी इच्छा है कि सभी उसका अहसान मानें, उसकी चर्चा करें। तो पूर्ण बदनामी से बचा जा सकता है सोना के विवाह पश्चात नोहरी अपने व्यवहार की प्रशंसा करती है। होरी तो परिस्थितिवश सुन लेता है, लेकिन धनिया को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या

धनिया नोहरी की आत्म प्रशंसा को सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है कि नेकी करके उसका बखान करना उचित नहीं है। नोहरी ने होरी पर जो उपकार किया था उसका बखान करके स्वयं की उपयोगिता सिद्ध करना सार्थक नहीं है। नोहरी का ऐसा करना उनकी बदनामी का कारण बना। नेकी करके उसका बखान न करना ही महानता का लक्षण है। अगर नेकी न होगी तो बदी का अंत कैसे होगा? नेकी ही प्रतिकार को जन्म देती है। स्वाभिमान पर किया गया आघात ही बदले की भावना को जन्म देता है। नेकी करके उसको अपने तक सीमित रखने का विचार मित्रता का सूचक है। तभी नेकी यथावत रहेगी अन्यथा अपयश का कारण बनेगी।

विशेष

- नोहरी की महत्वाकांक्षा का वर्णन है।
- उपकार का अर्थ बखान करना नहीं होता अपितु अपने तक सीमित रखना होता है।
- धनिया की कुशाग्र बुद्धि का चित्रण है।
- परोपकार का भावार्थ भी यही है कि उसका वर्णन न किया जाए।
- उर्दू शब्दों की प्रधनता है, जैसे– बदनामी, अहसान, नेकी, मगर आदि।
- धनिया की व्यवहारकुशला का वर्णन है।

टिप्पणी

- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया है।

- सेवा और त्याग की देवी, जबान की तेज, पर मोम हृदय, पैसे–पैसे के लिए प्राण देने वाली पर मर्यादा रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। जवानी में वह कम रूपवती नहीं थी। नोहरी उसके लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार था। नोहरी उसके सामने क्या है? चलती थी तो रानी लगती थी। जो देखता था देखता ही रह जाता था।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी हल लेकर खेत पर जाता है। उसे भोला की दयनीय स्थिति को देखकर तरस आ रहा है। नोहरी ने भोला को सभी के सामने पीटा लेकिन लाचार भोला शांत रहा। उसकी आंखों के सामने नोहरी और सिलिया का चरित्र घूमने लगता है। सिलिया के पतिव्रत धर्म पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि वह मातादीन के यहां ही रहेगी चाहे वह उसे मारे या काटे। होरी धनिया की विशेषताओं से प्रभावित होकर कहता है।

व्याख्या

नोहरी और सिलिया के वृत्तांत के बीच धनिया की उपस्थिति ने होरी का ध्यान आकृष्ट कर लिया। होरी धनिया के गुणों से प्रभावित था। उसने सेवा द्वारा सभी को आकृष्ट कर लिया था। परिवार के लिए धनिया का त्याग बहुमूल्य था जिसके फलस्वरूप परिवार सुचारू रूप से संचालित था। वह ज़बान की तो तेज थी, साथ ही मोम के समान कोमल हृदय भी रखती थी। एक–एक पैसा बचाने के लिए अपनी जान तक छिड़कती थी किंतु मर्यादा का पालन करने से पीछे न थी। स्वयं को स्वाह करके भी मर्यादा पर आंच नहीं आने देती थी।

धनिया के सौंदर्य की प्रशंसा करता हुआ होरी कहता है कि वह जवानी में अधिक रूपवती थी। नोहरी उसके सामने उन्नीस लगती थी। जब वह चलती थी, तो रानियों की पीछे छोड़ देती थी। जो एकबार धनिया को देख लेता, कभी नहीं भुला पाता था।

विशेष

- होरी का तुलनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त है।
- धनिया के गुणों की विवेचना की गई।
- होरी की निगाह में धनिया नोहरी व सिलिया से अधिक गुण सम्पन्न थी।
- धनिया के द्वारा प्रेमचंद ने आदर्श गृहिणी का स्वरूप स्पष्ट किया है।
- यह मनुष्य का स्वभाव है कि अतीत को स्मरण कर वर्तमान को सुखद बनाने की चेष्टा करता है।

- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग किया गया है।

टिप्पणी

- प्रवृत्ति और निवृति के बीच जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्म योग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है। वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को अपने लिए असंभव समझते थे; इसीलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असंभव समझते थे; पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी प्राणियों के जन्म–मरण, सुख–दुख पाप–पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता को अपने ज्ञान पर घमंड था। उनकी दृष्टि में नारी केवल परिवार तक़ सीमित थी। मालती के सेवा भाव के सामने मेहता का घमंड काफूर हो गया। काफी विचार विमर्श के पश्चात इस निष्क़र्ष पर पहुंचे कि आध्यात्म और अनात्मवाद से भी श्रेष्ठ सेवा का मार्ग है। इसी मनोवृत्ति की विवेचना है।

व्याख्या

प्रो मेहता यह सोचने पर विवश हुए कि संसार में सभी बातों से बढ़कर सेवा का भाव है, जो मनुष्य में मानवता को पल्लवित करता है। सेवा की प्रवृत्ति के मूल में चाहे कर्मप्रधानता की भावना ही क्यों न हो? सेवा द्वारा ही जीवन में विनम्रता का संचार होता हैं। मनुष्य का अहं समाप्त हो जाता है। जीवन की सार्थकता सेवा द्वारा ही पूर्ण मानी जाती हैं। सेवा द्वारा ही जीवन में ऊंचे आदर्शों का पालन करना संभव होता है। जीवन में पवित्रता की गंध आती है। मेहता का मानना था कि संसार में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। अपनी इस विचारधारा को दूसरों तक हस्तांतरित नहीं करते थे क्योंकि यह उनकी मौलिकता की उपज थी। उनका कहना था कि संसार में प्राणियों के पैदा होने और नष्ट होने में कार्य कारण का संबंध ही है। सुख–दुःख, पाप–पुण्य मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के अंग है।

विशेष

- प्रो. मेहता द्वारा मार्क्सवादी भावना को व्यक्त किया गया है।
- मालती की सेवा भावना के प्रभाव स्वरूप मेहता का बौद्धिक चिंतन परास्त होता है।
- सामान्य जीवन में भी सेवा का भाव देखा जाता है जिससे जीवन में क्रमबद्धता बनी रहती है।
- कर्मप्रधान संसार में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए जागरूक होना आवश्यक है।
- कर्म करना प्राणिमात्र का धर्म है।

- प्रो. मेहता की बदलती मनःस्थिति का चित्रण है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- साहित्यिक सरल हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

टिप्पणी

- अज्ञान की भांति ज्ञान भी निष्कपट और सुनहरे स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह उसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजों और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता की प्रेरणा से मालती की जीवन शैली में परिर्वतन आ गया। वह गांव–गांव जाकर स्त्रियों को, बच्चों के स्वास्थ्य की बातें बताया करती। एकबार मेहता के साथ गांव में जाकर बच्चों के स्वास्थ्य का परीक्षण करने लगी। मेहता जी गांव में कुश्ती को देखने लगे और सोचने लगे कि लोग भोले निरीह मनुष्यों के साथ निर्दयता का व्यवहार क्यों करते हैं?

व्याख्या

मेहता गांव में कुश्ती का आयोजन देख रहे थे, उनकी दृष्टि गांव के भोले–भाले, सीधे और सच्चे मनुष्यों पर पड़ी। उनका मन व्यथित होकर कहने लगा कि मनुष्य के व्यवहार में परिर्वतन क्यों होता है? दूसरे को त्रस्त करने में क्या मिलता है? एक विवेचक तथा दार्शनिक की भांति सोचते हुए कहते हैं कि ज्ञानी और अज्ञानी व्यक्तियों की प्रकृतियों में अंतर क्यों होता है? दोनों के दृष्टिकोण में अंतर क्यों पाया जाता है? अज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि यथार्थ पर टिकी होती है जबकि ज्ञानी आदर्शवाद की आड़ में अपने कुत्सित विचारों से त्रस्त रहता है। आदर्श की रोशनी में यथार्थ धरातल भी उसके सामने ओझल हो जाता है। अपनी मनोवांछित प्रकृतियों के विपरीत आचरण करने वाले से रुष्ट हो जाता है। मानवता के शुभ पक्ष को देख पाता है तथा वह प्रकृति के यथार्थ स्वरूप की अवहेलना करने लगता है। वह अपनी शक्ति सामर्थ्य के सामने किसी को महत्व प्रदान नहीं करता।

ज्ञानी और अज्ञानी के अंतर को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि ज्ञानी मनुष्य भेड़िये के समान होता है और अज्ञानी भेड़। भेड़ का स्वभाव किसी के प्रति दुर्भावना युक्त नहीं होता फिर भी भेड़िया उसको अवसर आने पर अपने भोजन का शिकार बनाता है। उसके तेज पंजे और नुकीले दांत बेचारी भेड़ की जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। ज्ञानी का जीवन यथार्थ से दूर कल्पना लोक में होता है जबकि अज्ञानी यथार्थ धरातल पर सरलता युक्त जीवन जीता है।

टिप्पणी

विशेष

- जीवन की कठोर वास्तविकता कल्पनालोक को खंडित कर यथार्थ धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है।
- प्रो. मेहता की विद्वता का वर्णन है।
- ज्ञान का मानवीकरण किया गया है।
- भेड़िया शोषक और भेड़ शोषित वर्ग का प्रतीक है।
- आदर्श और यथार्थ की विवेचना की गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- प्रो. मेहता का चिंतनशील पक्ष व्यक्त हुआ है।

- नारी परीक्षा नहीं चाहती प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुंदर को असुंदर बनाने वाली चीज है। प्रेम अवगुण को गुण बनाता है, असुंदर को सुंदर। मैंने तुमसे प्रेम किया है, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती, कि तुम में कोई बुराई भी है। मगर तुमने मेरी परीक्षा की, और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या–क्या समझकर मुझसे दूर भागते रहे। मैं जो कुछ कहना चाहती हूं, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूं, इसीलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता मालती के गुणों से प्रभावित होकर विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। मालती मेहता की परीक्षणात्मक विचारधारा से व्यथित है। उसका मानना है कि तुमने सदैव परीक्षा की दृष्टि से उसे परखना चाहा। नारी प्रेम की भूखी है। प्रेम और परीक्षा में अंतर होता है।

व्याख्या

मालती मेहता के व्यवहार से तंग आकर कहती है कि तुमने मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखा है। कोई स्त्री परीक्षा को पसंद नहीं करती क्योंकि परीक्षा में अवगुणों का समावेश हो जाता है। नारी प्रेम की भूखी होती है उसको पल्लवित करने के लिए वह ललायित रहती है। प्रेमी की दृष्टि परीक्षक की दृष्टि से व्यापक होती है। उसकी सीमा में परिवार, समाज और राष्ट्र समाहित हो जाता है। प्रेमी का विचार असुंदर को सुंदर बना देता हैं उसे अपनी प्रेमिका में अवगुण भी गुणों के रूप में नजर आते हैं। मैंने आपसे प्रेम किया है, आपके अवगुण भी गुणों के रूप में नजर आते हैं। जबकि आपने मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखकर गुणों को अनदेखा कर दिया है। इसीलिए मुझे अस्थिर, चंचल मानकर मुझसे दूर भागने का प्रयत्न कर रहे हैं। जबकि मैं अस्थिर हूं, चंचल हूं, इसलिए कि मुझे प्रेम नहीं मिला जो मेरे अवगुणों को गुणों में परिवर्तित कर देता।

टिप्पणी

विशेष

- प्रेमी एवं परीक्षक के दृष्टिकोण का अंतर बताया गया है।
- प्रेम शब्द व्यापकता की ओर संकेत करता है।
- प्रेमी को अवगुण भी गुणों के रूप में दिखाई देते हैं।
- मालती की बुद्धि कुशलता का चित्रण है।
- मालती की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाह युक्त हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो। यद्यपि इस हित को हम इतना अपना लेते हैं, कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता हैं। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, वह शासन भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

राय साहब अमरपाल सिंह का पुत्र रुद्रपाल, मालती की बहन सरोज से विवाह करने को इच्छुक है। बेटे की जिद के सामने अमरपाल सिंह व्यथित हैं। उन्हें अपना विधुर जीवन व्यथित करने लगता है कि इन बच्चों की परवरिश के लिए दूसरा विवाह नहीं किया, लेकिन बच्चे उनकी भावनाओं को अनदेखा कर देते हैं। राय साहब का बेटे के लिए दुःखी होना स्वाभाविक है।

व्याख्या

बेटे की जिद के सामने लाचार अमरपाल अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हम जिनके लिए त्याग करते हैं, वह भले ही उसका अहसान न माने, किंतु हम अप्रत्यक्ष रूप से उस पर शासन करने के आकांक्षी होते हैं। वह विचार भले ही उसे व्यथित करता हो, उनके हित को ध्यान में रखकर ही हम ऐसी प्रवृति का समर्थन करते हैं, ऐसी स्थिति में हमारा अपना प्रिय भी शत्रु हो जाता है।

रायसाहब की भी यही स्थिति है। परिवार का पालन करने व परवरिश करने के लिए निजी सुखों की तिलांजलि दे दी। विधुर जीवन जीना श्रेष्ठ समझा। वह चाहते तो विवाह करके अपने विधुर जीवन को भोग विलास में डुबो सकते थे। लेकिन बच्चे उनके त्याग की कोई परवाह नहीं करते। रुद्रपाल ने अपने विवाह को लेकर उनका जो अपमान किया वह

टिप्पणी

असहनीय ही था। रुद्रपाल का कहना है कि मेरा विवाह तो सरोज से ही होगा, भले ही आपके बाद हो। यह वास्तव में राय साहब का अपमान ही था।

प्रेमचंद का मानना है कि जो व्यक्ति अपने बच्चों से जितना प्यार करता है उसकी आड़ में शासन करने की मनोवृत्ति भी स्वतः झलकने लगती है। बच्चे इसे प्रतिकार करके अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही है। प्रतिहिंसा के मूल में भी यही मनोवृत्ति उत्तरदायी होती है।

विशेष

- रुद्रपाल में आधुनिक पीढ़ी के युवकों की झलक दिखाई देती है।
- राय साहब की दुःखी मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।
- राय साहब द्वारा युगीन समाज की यथार्थता को रेखांकित किया गया है।
- प्रेमचंद ने राय साहब के मनोविज्ञान का वर्णन किया है।
- उपकार के बदले प्रत्युपकार की भावना विलुप्त होती जा रही है।
- रायसाहब के त्याग का वर्णन है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

- प्रेम का कुछ मान भी होता है कुछ महत्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनंद अपना समर्पण है, जिसमें अहंकार का ध्वंस हो जाता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती की सेवा भावना से आकृष्ट होकर प्रो. मेहता अनायास आकर्षण में बंध जाते हैं। राय साहब की लड़की की बीमारी का समाचार सुनकर वह शीघ्र इलाज करने पहुंच जाती हैं। मेहता सोचने लगते हैं कि मालती ने सिद्धि प्राप्त कर ली है। यह उसकी तपस्या एवं मानवता का वरदान ही है वह आकाश में चमकने वाले नक्षत्र के समान है।

व्याख्या

प्रो. मेहता मालती की सेवा भावना की प्रशंसा करने पर विवश हैं। उन्हें परोक्ष रूप में निराशा ही मिली। प्रेमी के रूप में नारी के उच्च आदर्श को देखा। वह प्रेम के लिए निर्मित है। उसके प्रति आदरभाव रखना स्वाभाविक ही है। मालती की स्नेहमयी दृष्टि का दायरा सिकुड़ गया है। वह दुर्लभ प्रतीत होने लगी है। जिस मानयुक्त प्रेम की आकांक्षी थी वह उसे सेवाभाव में प्राप्त हो गया। उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना उसके अस्तित्व को दुर्लभ बनाना है। उसने

स्वयं को मिटाकर सेवाभाव द्वारा मानवता के दर्शन किये हैं। प्रेम में बदले की भावना भी पायी जाती है। इसमें आदान–प्रदान का होना स्वाभाविक ही है। श्रद्धा द्वारा समर्पण को प्राप्त किया जा सकता है जिससे व्यक्ति का अहंकार स्वतः ही तिरोहित हो जाता है।

टिप्पणी

विशेष

- मालती की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- अप्रत्यक्ष रूप में प्रो. मेहता ने मालती से हार मानी है।
- प्रेम आदान–प्रदान द्वारा ही पल्लवित होता है।
- प्रेम और श्रद्धा एक दूसरे के विरोधी हैं।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

- तुम मेरे पथप्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो। तुम्हें मुझसे कुछ याचना करने की जरूरत नहीं, मुझे केवल संकेत कर देने की जरूरत है। जब मुझे तुम्हारे दर्शन न हुए थे, और मैंने तुम्हें पहचाना न था योग और आत्म सेवा ही मेरे जीवन का इष्ट था। तुमने आकर उसे प्रेरणा दी, स्थिरता दी। मैं तुम्हारे अहसान कभी नहीं भूल सकती।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती के सेवाभाव से प्रभावित होकर प्रो. मेहता के जीवन की दिशा बदल गई। मेहता के प्रति समर्पण की भावना को व्यक्त करती हुई मालती कहती है।

व्याख्या

प्रो. मेहता के प्रति अपनी आत्मीयता व्यक्त करती हुई कहती है कि मैंने आपसे प्रेरणा ग्रहण की है, मेरे जीवन के प्ररेणास्पद स्तंभ आप ही हैं। मैंने स्वयं को आपके लिए समर्पित कर दिया है। मेरे जीवन में आपका देवता के समान स्थान है। मुझे सही रास्ता बतलाने वाले गुरु हो। मैं आपसे हमेशा ग्रहण करना चाहती हूं। मैं आपके संकेत मात्र से अपना जीवन समर्पित कर सकती हूं। जब मैं आपको नहीं देख पाती तो मेरा अधीर हृदय व्यथित होने लगता है। मैंने आपको न पहचान कर बड़ी भूल की है। योग और आत्म–सेवा ही मेरे जीवन का उत्स है। मेरे जीवन को आपने ही गतिशीलता प्रदान की है। जीवन में स्थिरता का समावेश किया है। आपके मेरे ऊपर जो उपकार हैं, उनको भूलना मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी।

विशेष

- मालती की मेहता के प्रति समर्पण की भावना का वर्णन है।
- मालती की सेवा भावना और समर्पण के मूल में मेहता की महती भूमिका रही है।

टिप्पणी

- मेहता की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- मालती द्वारा प्रेमचंद ने नारी जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है।
- आत्म कथात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाहित हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

- संसार में तुम जैसे साधकों की ज़रूरत है जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अंधविश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त पुकार सुनी है? तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहां से आएंगे? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बंद कर सकते। तुम्हें वह भोजन भार हो जाएगा। अपनी विद्या और बुद्धि को अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती की सेवा भावना एवं समर्पण के फलस्वरूप मेहता का हृदय परिवर्तन होने लगा। उनके हृदय में मालती के प्रति जो विचार थे अब निराधर प्रतीत होने लगे हैं। उन्हें अपना निजी व्यक्तित्व समाप्त होता प्रतीत होने लगा है। मालती मेहता को समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का बोध कराती हुई कहती है।

व्याख्या

मालती मेहता से कहती है कि तुम्हारा स्वभाव सुधारक का है, उसी का पालन करना आवश्यक है। समाज से कुरीतियों का निवारण होना आवश्यक है। संसार में चारों ओर अन्याय की मारा–मारी लगी है, अत्याचार का बोल–बाला है। छलकपट अंधविश्वास का बोल–बाला हैं। स्वार्थ ने अपने पंजें में जकड़ लिए हैं। जनता में त्राही–त्राही मची हुई है, उनकी पुकार को सुनने वाला कोई नहीं है। अगर तुम वह आर्त पुकार नहीं सुनोगे तो कौन सुनेगा? अगर मैं तुम्हें विवाह के बंधन में बांध लूं, तो समाज के प्रति अन्याय ही होगा। हमारे निजी स्वार्थ के सामने समाज गौण हो जाएगा जो उचित नहीं है। मुझे यह स्वीकार्य नहीं है। तुम इसको अनदेखा कर दोगे तो कौन अपने कर्तव्य का पालन कर पाएगा? तुम्हें अपना जीवन भी भार स्वरूप लगेगा और पश्चाताप के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा। अपनी विद्या, बुद्धि और उत्साह को पहले से भी अधिक प्रबलता से लोकसेवा में लगा दो।

विशेष

- मालती की समाज सेवा का भाव दृष्टव्य है।
- मालती की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन है।
- मालती के रूप में गांधीवादी प्रभाव की व्यंजना हुई है।

टिप्पणी

- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- मानवतावादी भावना को पुष्ट करने के लिए बौद्धिक चिंतन आवश्यक है।
- विवाह एक बंधन है जो पति–पत्नी के पारस्परिक समर्पण पर टिका होता है।
- लोकसेवा सर्वोपरि है।
- धाराप्रवाह सरल हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

- अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुणशक्ति, उसकी मदद करने न आयेगी। और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी। अब उसमें पहले जैसी उद्दण्डता और गुरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में पड़े हो उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

शहर से वापस आने पर गोबर ने जब गांव की स्थिति देखी तो उसका हृदय दुःखी होने लगा। उसके स्वभाव में परिर्वतन आ गया था। पूर्व की स्थिति और वर्तमान की स्थिति में अंतर नज़र आने लगा था एवं राजनैतिक जीवन में अस्थिरता नज़र आने लगी थी।

व्याख्या

गोबर युगीन परिदृश्य पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि भाग्य के सहारे रहना अकर्मण्यता का सूचक है। हमें क्रियाशील होकर अपना भाग्य स्वयं बनाना है। हमें शक्ति सम्पन्न होकर अत्याचारों का विरोध करना है। बुद्धि के आधार पर प्रत्येक समस्या का समाधान करना है। हमें आत्मनिर्भर होकर जीवन जीने की आदत डालनी हैं, न तो देवता साथ दे सकता है और न कोई अदृश्य शक्ति। गोबर के व्यक्तित्व में परिर्वतन आ गया है। पहले जैसी उद्दण्डता और आक्रोश तिरोहित हो गए हैं। उसके जीवन में विनम्रता एवं संवेदना का समावेश हो गया है। अपनी इस दयनीय स्थिति को दूर करने के लिए हमें निष्क्रिय होकर अपना भविष्य अंधकारमय नहीं बनाना है।

विशेष

- शोषकों से प्रतिकार करने के लिए एकता का होना आवश्यक है।
- गोबर का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है।
- कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- गोबर की चारित्रक विशेषताओं का वर्णन है।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- वातावरण की व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है यह दिखाया गया है।
- सरल प्रवाहयुक्त साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है।

टिप्पणी

- जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जा रहा है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है। और जो आता है, उसके मुख पर थूक देता है वह चिल्ला–चिल्लकार कह रहा है भाइयों, मैं दया का पात्र हूं। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है? और माघ की वर्षा कैसे होती है? उस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है– कितना जख्मों से चूर–कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कि तूने कभी विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छांह में बैठा? उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था, मानों टूट–टूटकर उड़ गया है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

सोना के विवाह के लिए जब होरी दातादीन के यहां उधार मांगने आया, तो उसका मन आत्मग्लानि से भर गया। रुपये लेते समय उसका हाथ कांप रहा था, मुंह से एक शब्द न निकला। प्रेमचंद ने होरी की इस लाचारी का वर्णन करते हुए कहा–

व्याख्या

होरी के व्यक्तित्व में स्वाभिमान कूट–कूटकर भरा हुआ था। उसने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाये। स्वयं यातना सही, लेकिन आत्म सम्मान पर आंच नहीं आने दी। दातादीन से रुपये लेते समय होरी को अपमान लग रहा था। ऐसा लगता था मानों अपमान के गड्ढे में गिर गया हो। तीस वर्ष तक उसने जीवन में संघर्ष किया, लेकिन कभी हार स्वीकार नहीं की। आज मातादीन के सामने द्वार पर खड़े होकर आत्मग्लानि का अनुभव हो रहा था। वह बार–बार कह रहा था कि मैं दया का पात्र हूं मुझे उपेक्षा से मत देखो। मैनें कभी गर्मी और बरसात की परवाह नहीं की। शारीरिक एवं मानसिक आघात भी सहे लेकिन कभी शांति से नहीं बैठा। क्रियाशील होने पर भी उसे अपमान का सामना करना पड़ा। वह स्वयं को कायर लोभी और अधम तक कहकर मन की वेदना शांत करना चाहता है। आज जीवनभर संचय किया गया विश्वास व्यर्थ हो गया है। खंड–खंड होकर आज समाप्त हो रहा है।

विशेष

- होरी के स्वाभिमान का चित्रण है।
- होरी की कर्मठता का वर्णन है।
- होरी की निष्पक्षता व ईमानदारी का चित्रण है।
- मनोविश्लेषक शैली का प्रयोग किया गया है।
- मुहावरा मुंह पर थूकना।
- आत्मकथात्मक शैली।

टिप्पणी

- होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानों उसके चरणों पर लोट रही थी कौन कहता है जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह फलक क्या हार के लक्षण है? उन्हीं हारों में उसकी विजय हैं उसके टूटे–फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं है। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मृत्यु शय्या पर लेटा होरी प्रसन्न था तभी शहर से गोबर आ जाता है और उसके पैरों पर लोट जाता है। घर से भागा हुआ हीरा भी आ जाता है। होरी को यह मिलन देखकर खुशी हो रही है।

व्याख्या

जीवन संघर्ष में कभी न परास्त होने वाला होरी मृत्यु शय्या पर लेटा हुआ भी आनंद का अनुभव कर रहा है। उसके अतीत की सारी घटनाएं, संकट समाप्त हो गए हैं। ऐसा होरी आज स्वाभिमान को कैसे भूल सकता है? जीवन संग्राम में वह टूट भले ही गया हो लेकिन हारा कभी नहीं। उसके पास सब कुछ है। घर त्याग कर गया हुआ हीरा आकर होरी से गले मिलता है। आज उसके पास सब कुछ है। बरसों के बिछड़े पुनः मिल गए हैं आज सारे संकट उसके चरणों में परास्त हो गए हैं। उसके चेहरे को देखकर गर्व का अनुभव हो रहा है। उल्लास का वातावरण है। इसी हार में उसकी विजय की पताकाएं फहरा रही हैं उसके फटेहाल वस्त्र उसकी विजय गाथा की पताकाएं हैं। उसका सीना चौड़ा हो गया है। मुखपर गर्व का भाव झलक रहा है।

विशेष

- सामान्यतया मनुष्य मृत्यु के सन्निकट पहुंचकर भयभीत हो जाता है किंतु होरी प्रसन्न है।
- मृत्यु के निकट संयुक्त परिवार का ढांचा व्यवस्थित होता दिखाया है जो प्रेमचंद के आदर्शवादी विचारों को व्यंजित करता है।
- होरी द्वारा प्रेमचंद ने मानवीय यातना को व्यक्त किया है।
- भावात्मक शैली का प्रयोग है।

- उसकी आंखों में बहते हुए आंसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाए हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है जिनके साथ हम कर्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके।

टिप्पणी

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मृत्यु शय्या पर होरी लेटा है। धनिया समझ गई कि अब तक जिसके आधार पर टिका था वह अब खिसक रहा है। फिर भी धैर्य रखे हुए है। होरी कार्य करते–करते बेहोश होकर गिरा, जिसे सारा गांव देखने आया। होरी की जबान बंद है, आंखों से आंसू टपक रहे हैं। प्रेमचंद ने इसी क्षण का वर्णन किया है।

व्याख्या

अचेतावस्था में होरी का बोलना बंद हो गया। लेकिन आंखों से आंसू गिर रहे हैं, जिनको देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सांसारिक मोह कितना प्रबल होता है, उसे तोड़ना अच्छा नहीं लगता। अपने प्रियजनों से बिछुड़ने का दुःख अवश्य होता है। जिस स्वार्थ का पालन कर चुके उनसे मोह नहीं होता। मोह वहां होता है जहां हम अपने कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ होते हैं। हमारे जाने से जो बेसहारा हो जाते हैं उनका मोह अधिक प्रबल होता है। उसको त्यागना दुष्कर होता है। होरी का इच्छा थी गाय पालने की। वह मेहनत–मजदूरी करके गाय का जुगाड़ करना चाहता था। धनिया के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न करने का मलाल उसे व्यथित कर रहा है। इसीलिए आंसू आना स्वाभाविक है।

विशेष

- मनुष्य भावी योजनाओं में जीता है उनको पूर्ण करने का प्रयत्न भी करता है किंतु कुछ योजनाओं को पूरा न कर पाने के कारण दुखी होता है।
- धनिया की कुशाग्र बुद्धि का दिग्दर्शन है।
- होरी द्वारा कृषक जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।
- करुण रस का निष्पादन किया गया है।
- भावात्मक शैली अपनाई गई है।
- भावानुकूल भाषा प्रयोग में लाई गई है।

- धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ पर रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली–महाराज, घर में गाय है न बछिया, न पैसा, यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

टिप्पणी

प्रसंग

होरी सड़क मजदूर बनकर खुदाई करके आठ आने रोज पर खुदाई करने लगा। तीव्र गर्मी के कारण होरी अचेत होकर गिर पड़ा। धनिया होरी को घर ले गयी। मृत्यु शय्या पर पड़ा होरी धनिया को बीच मझधार में छोड़कर जाने को तैयार है। गोबर आकर क्षमा मांगता है। हीरा भी होरी से गले मिलकर माफी मांगता है। हीरा धनिया से गोदान कराने को कहता है तथा उपस्थित जनसमूह की भी यही इच्छा थी।

व्याख्या

मृत्यु शय्या पर होरी लेटा है। परलोक को सुधारने के लिए तथा वैतरणी पार करने के लिए 'गोदान' की परंपरा है। इसी परंपरा का निर्वाह करने के लिए मरते हुए व्यक्ति को गाय या बछिया की पूंछ पकड़वाकर ब्राह्मण को दी जाती है। होरी की अधूरी आस को पूर्ण करने के लिए गोदान कराने की मांग पूर्ण की जा रही है। धनिया एक यंत्र की भांति उठी और आज बेची गई सुतली के पैसे लेकर पंडित दातादीन से कहने लगी कि महाराज घर में गाय तो है नहीं, बछिया भी नहीं है जिससे गोदान करा सकूं। हां यह बीस आने हैं, इन्हें लेकर ही गौ का दान समझ लें। तत्पश्चात धनिया भी अचेत होकर गिर पड़ी।

विशेष

- गोदान कराने की परंपरा के प्रति क्षोभ व्यक्त किया गया है।
- होरी और धनिया के प्रति संवेदना का भाव पैदा हो जाता है।
- धर्मिक विकृत्तियों की ओर संकेत किया गया है।
- दान प्राप्त वस्तु का दिया जाता है अप्राप्त का नहीं।
- गोदान शीर्षक की सार्थकता व्यंजित है।
- भावात्मक शैली अपनाई गई है।
- धनिया की लाचारी का वर्णन है।

1.3 गोदान एवं भारतीय किसान

गोदान उपन्यास की रचना के मूल में मानवतावादी भावना देखने को मिलती है। कृषक जीवन के प्रति संवेदना ही गोदान उपन्यास के अस्तित्व का मूल कारण है। संपूर्ण उपन्यास में 80 प्रतिशत ग्रामीण किसान का परिवेश ही चित्रित है। अनुभूति, संवेदना एवं शोषण के पक्ष मानवतावादी भावना को स्पष्ट करते हैं। होरी का झुनिया को घर में पनाह देना, नोहरी, दुलारी सहुआइन की सहृदयशीलता, मानवतावाद का पक्ष प्रस्तुत करती हैं। गोबर का पिता की दीनता को देखकर द्रवित होना मानवतावादी भावना का उदाहरण है।

विभिन्न स्थितियों और पात्रों के द्वारा गोदान में चित्रित भारतीय किसान की स्थिति को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है–

1. **अनुभूति एवं संवेदनात्मक पक्ष की प्रस्तुति**–'गोदान' में हृदय के आंतरिक पक्ष की प्रस्तुति भी यत्र–तत्र देखने को मिलती है। गोबर द्वारा झुनिया को गर्भवती

टिप्पणी

बनाकर शहर भाग जाने पर संवेदना का स्रोत फूटने लगता है। जो पूर्व में पुत्र के कुकृत्यों से नाखुश था वही पत्नी धनिया की सलाह पर झुनिया को घर में पनाह देने पर सहमत हो जाता है। होरी के विचारों में संवेदना के तत्व देखे जा सकते हैं– "डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसे तू भोला की बेटी है वैसे ही मेरी बेटी है।" भोला को संकट में देखकर धर्मभीरू होरी कहता है–"भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूंगा। मेरे हाथ न कट जाएंगे।" इसे होरी की व्यवहारिता के साथ संवेदनात्मक पक्ष कह सकते हैं। गोबर पिता की दयनीय स्थिति एवं युगीन परिस्थितियों से द्रवित होकर स्वयं को धिक्कारता है। गोबर की पश्चाताप की भावना संवेदना एवं अनुभूति का द्वार खोलती है।

2. **अवसरवादिता**–रायसाहब अमरपाल सिंह के व्यक्तित्व में अवसरवादिता को देखा जा सकता है। एक ओर वे जमींदारी प्रथा के प्रति चिंतित दिखाई देते हैं। वहीं दूसरी ओर वे शोषण की कड़ी के रूप में भी जाने जाते हैं। इन सभी समस्याओं से भारतीय किसान आज भी जूझ रहा है।

3. **होरी : ठेठ भारतीय किसान के रूप में चित्रित**– गोदान में होरी के माध्यम से भारतीय किसान जीवन की जीवंत झांकी प्रस्तुत की गई है। होरी गोदान उपन्यास का मुख्य पात्र ही नहीं, नायक भी है, जो मूलतः किसान है। उपन्यास का प्रारंभ और अंत होरी के इर्द–गिर्द घूमता है। उपन्यास में प्रयुक्त अन्य पात्रों का चारित्रिक विकास भी होरी के बिना अपूर्ण ही माना जाएगा। पात्र चयन में प्रेमचंद ने जन–जीवन की वास्तविकता, निकटता तथा सूक्ष्मता को प्रमुखता-प्रदान की। होरी की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है–

(क) **कृषक जीवन का प्रतिनिधि पात्र**– होरी पहले किसान है, बाद में कुछ और। किसान की सभी विशेषताएं होरी के चरित्र में देखने को मिलती है। ऋण ग्रस्त, परिश्रमी, सहृदयशील, शोषित, संघर्षरत, निर्मल, मर्यादा प्रिय, धर्मशील भाग्यवादी आदि विशेषताएं कृषक जीवन का प्रतिबिंब प्रस्तुत कर देती हैं। पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करते हुए होरी अपने प्राण त्यागता है लेकिन कर्तव्य से विमुख नहीं होता।

(ख) **परिश्रमी**– होरी के जीवन का लक्ष्य परिश्रम करना है। स्वयं निर्धन होकर भी वह परिवार का कुशल संचालन करता है। आर्थिक विषमता के सागर में धनियां के साथ गृहस्थी की नैया पार लगाता है। किसी के आगे निष्कर्म रहकर हाथ फैलाना अच्छा नहीं समझता। खेती करता है, गाय पालता है और परिश्रम करके पेट पालना चाहता है।

(ग) **व्यावहारिक**– होरी ने व्यवहारपूर्वक जीवन जीना सीखा है। वह मानता है कि जमींदारों से मिल कर रहने का ही फल है कि बड़े–बड़े महतों उसकी इज्जत करते हैं। अपनी मृदुल वाणी एवं व्यवहारशीलता से वह भोला अहीर को सोचने पर विवश कर देता है। रुपये तो मेरे पास है नहीं। हां भूसा है। भूसे के लिए गाय बेचोगे। होरी भोला अहीर की कमजोरी भांपकर गाय का प्रबंध कर लेता है।

(घ) **भाग्यवादी**–निरंतर मिलती असफलता एवं लाचारी भाग्यवादिता को दर्शाती है। किसान भाग्यवादी होता है। होरी भी किसान है, उसमें भी भाग्यवादिता

टिप्पणी

के दर्शन स्वाभाविक हैं। उसकी निराशा, छोटे–बड़े भगवान के यहां से आते हैं, उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे उसका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संजोया तो भोगे क्या– जैसे वाक्यों से प्रकट होती है।

(ङ) **मर्यादाशील**–होरी मर्यादाप्रिय है। परिवार की मर्यादा को बचाए रखने के लिए पंचायत का दंड सहता है, दरोगा की फटकार सहता है। पंचों के आगे विवश होता है। वह नहीं चाहता कि कोई उसके परिवार पर उंगली उठाए, उस पर कीचड़ उछाले। दमड़ी बसोर द्वारा दुर्व्यवहार किये जाने पर कहता है–"तुम्हारी इतनी मजाल कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ...। अलग है तो क्या, है तो एक ही खून।"

(च) **संवेदनशील**–होरी किसान है। किसान का दिल संवेदनशील होता है। पारस्परिक आदान–प्रदान कर अपना काम निकालने में चौकस रहता है। भाई हीरा और शोभा द्वारा उपेक्षित किये जाने पर भी प्रतिकार नहीं करता अपितु मर्यादा का पालन करने के लिए उनके प्रति सहृदयशील रहता है। गोबर द्वारा झुनिया को घर लाने पर समाज के विरोध का सामना भी करता है। साहस का परिचय देकर झुनिया को अपने घर में शरण प्रदान करता है। झुनिया को समझाता हुआ कहता है–"डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है तेरा द्वार है, तेरे हम हैं आराम से रह। जैसे तू भोला की बेटी है वैसे ही मेरी बेटी है।"

4. **जागरूक होता किसान एवं समाज**–गोदान में रायसाहब अमरपाल सिंह का चिंतित होना सजग मनुष्य का बोध कराता है। वे भविष्य में होने वाले परिवर्तनों में स्वयं को ढालने के लिए प्रतिबद्ध हो जाते हैं। सामाजिक जन जागृति से प्रभावित होकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति की भविष्यवाणी करते हैं–"बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है।"

(क) **स्वस्थ समाज की कल्पना**–प्रेमचंद ने गोदान में स्वस्थ समाज की संरचना का स्वप्न देखा, उसे पूर्ण करने का प्रयत्न भी किया। उन्होंने संगठन की शक्ति पर बल दिया क्योंकि एकता द्वारा ही व्यक्ति एवं समाज की सोच बदल सकती है। भोला अहीर होरी से इसी संगठन की बात कहता है–"हमारा शोषण इसलिए होता है, क्योंकि हममें एका नहीं है, हम एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। प्रेम और भाई चारे की भावना समाप्त हो गई है।"

(ख) **आक्रोश की अभिव्यक्ति**–प्रेमचंद ने गोबर एवं झुनिया के माध्यम से शोषित वर्ग के आक्रोश को मुखरित किया है। इसी आक्रोश में आधुनिकता के चिह्न समाहित हैं क्योंकि पहले वैचारिक मतभेद ही भविष्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। झुनिया अपने परिवार के प्रति लगाए गए आरोपों को निराधार बताती है। पंचायत, दरोगा के सामने भी स्वाभिमान के साथ अपना विरोध दर्शाती है। गोबर गांव के सूदखोरों, महाजनों की सार्वजनिक तौर पर भर्त्सना करता है।

(ग) **पलायन की प्रवृत्ति**–गोदान उपन्यास कृषकों की दीनता का वर्णन तो करता ही है साथ ही गांवों का शहरों की ओर पलायन करना इस बात का प्रमाण है कि सुख सुविधाओं का अभाव इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। गोबर

टिप्पणी

पिता होरी की जी हुजूरी से तंग आकर और महाजनों की निर्मम जीवनशैली से त्रस्त होकर ही लखनऊ भागना चाहता है।

(घ) **लोकतंत्र के प्रति अनास्था**–प्रेमचंद युग दृष्टा थे। युगीन परिस्थितियों से भलीभांति परिचित थे। उनका मानना था कि लोकतंत्र की स्थापना का उद्देश्य जनता एवं किसानों की सेवा करना था लेकिन स्वार्थी मनुष्यों ने लोकतंत्र को भी कलंकित कर दिया। इनके कारण जमींदारों, पूंजीपतियों, व्यापारियों का वर्चस्व रहता है जनता का पक्ष उपेक्षित रहता है। इसीलिए उन्होंने लोकतंत्र को जनता की आंखों में धूल झोंकने का माध्यम स्वीकार किया।

कुल मिलाकर गोदान का यथार्थ उसका किसान जीवन ही है, जिसकी विस्तृत चर्चा हम इस इकाई के 'गोदान में आदर्श और यथार्थ' शीर्षक के अंतर्गत भी करेंगे।

1.4 गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न

गोदान में नारी के विविध दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया गया है। एक ओर नारी के परंपरागत रूप का चित्रण है तो दूसरी ओर आधुनिक स्वाभिमानी नारी का सजीव चित्रण है। प्रेमचंद की दूरदृष्टि से जीवन का कोई पक्ष अछूता न रहा। परतंत्र भारत में नारी द्वारा पुरुषों के समान अधिकार की वकालत करना उनके आधुनिक चिंतन को दर्शाता है। उनके नारी पात्रों में जहां एक ओर त्याग, सेवा, सहानुभूति, कर्तव्य परायणता जैसे गुण विद्यमान थे वहीं दूसरी ओर वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कृत संकल्प भी रहती हैं। मानसिक यंत्रणा सहकर भी अपने अधिकार की वकालत करती हैं। धनिया इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। होरी का भाई हीरा की पत्नी की प्रशंसा करता है तो धनिया का प्रतिकार करना नारी जागृति का द्वार खोलता है। दरोगा को अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराती है। पंचों की धूर्तता को उजागर करती है। सिलिया का मातादीन के प्रति समर्पण की भावना में पत्नीत्व का भाव तो है ही साथ ही नारी अस्मिता के लक्षण भी दिखाई देते हैं। गोदान में चित्रित दलित एवं स्त्री समस्याओं को इस प्रकार से देखा जा सकता है–

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. किसके जीवन के प्रति संवेदना गोदान उपन्यास के अस्तित्व का मूल कारण है?
2. 'डर मत बेटी, डर मत' किसने किससे कहा?
3. 'गोदान' उपन्यास का प्रमुख पात्र कौन है?
4. प्रेमचंद ने गोदान में प्रमुखतः किन पात्रों के माध्यम से आक्रोश को मुखरित किया है?

1.4.1 दलित चेतना

'गोदान' की धनिया एक विद्रोही नारी के रूप में उभरती है जिसका विद्रोह रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति है। गर्भवती झुनिया को आश्रय देने के कारण गांव में हुक्का–पानी बंद होने की स्थिति आ जाती है किंतु वह विचलित नहीं होती। होरी के दंड भरकर समाज में वापस आने की बात का वह पुरजोर विरोध करती है। वह कहती है, "हमको कुल प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज! कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालो। ब्याहता न सही, पर उसकी बांह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुंह से निकाल देती।" इसी तरह 'गोदान' का ब्राह्मण पुत्र मातादीन और हरिजन की बेटी सिलिया एक दूसरे को प्रेम करने लगते हैं और अंत में मातादीन सिलिया को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। तत्कालीन समाज में दलित चेतना का इससे अधिक जीवंत उदाहरण और क्या हो सकता है। दलित चेतना में प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों का उल्लेख करना बहुत जरूरी है। उन्होंने जो मुद्दे

टिप्पणी

उठाये वे आज भी प्रासंगिक हैं। प्रेमचंद के समय भारतीय समाज में अंग्रेजी सत्ता की गुलामी और पूंजीवादी शोषण दोनों का बाहुल्य था। अपने साहित्य में उन्होंने इन दोनों को वाणी दी। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या को तो उठाया ही, साथ ही दलितों के संगठित होकर संघर्ष करने का व्यापक चित्रण किया है। 'रंगभूमि' की सोफिया धर्मग्रंथों के आधार पर किसी सिद्धांत को मानने के पक्ष में नहीं है। उसे बाह्याडंबर से घृणा है। वह अपने मत को स्थापित करने के लिए घर से बाहर निकल जाती है। 'प्रेमाश्रम' में अछूतों से बेगार लिए जाने व किसानों द्वारा भी उनसे बुरा व्यवहार किये जाने का चित्रण किया गया है। 'गबन' के दलित पात्र स्वयं को निम्न जाति का न समझ कर जाति गौरव का परिचय देते हैं।

1.4.2 स्त्री चेतना

नारी के सामाजिक जीवन और स्त्री पात्रों के करुण चित्रण ने समाज के बुद्धिजीवियों को इस विषय में पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया है।

1. **पारंपरिक नारी**– समाज का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण वही है जो पुरुष–प्रधान समाज का रहा है। वे नारी को अपना जरखरीद गुलाम समझते हैं, उसे उस गाय की तरह मानते हैं जिसे किसी भी खूंटे से उसकी इच्छा के विरुद्ध बांधा जा सकता है। होरी, धनिया जैसी उग्र स्वभाव तथा निर्भय स्त्री को भी दबाकर रखना चाहता है। भोला अधेड़ होकर भी दूसरा विवाह कर नवयुवती को दासी की तरह रखना चाहता है। बड़ी जाति का मातादीन चमार जाति की स्त्री सिलिया से यौन–संबंध तो स्थापित कर सकता है पर उसे पत्नी नहीं बनाना चाहता, केवल रखैल के रूप में रखना चाहता है। सोना का पति मथुरा विवाहित और घर में सुंदर पत्नी होते हुए भी सिलिया पर डोरे डालता है। उधर, नगर में खन्ना, पत्नी होते हुए भी मालती से प्रेम करता है और गोविंदी के साथ उसका व्यवहार उपेक्षा, उदासीनता तथा क्रूरता का है। मीनाक्षी का पति शराबी, वेश्यागामी तथा विलासी है। अतः वह भी मीनाक्षी के साथ पति का धर्म नहीं निभाता।

   इस प्रकार प्रेमचंद ने नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण कर नारी–जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि उन्होंने धनिया, मीनाक्षी जैसी उग्र स्वभाव वाली स्त्रियों का चित्रण कर तथा 'वीमेन्स लीग' जैसी संस्था की स्थापना और वहां होने वाले कार्यक्रमों का परिचय देकर स्पष्ट संकेत दिया है कि महिलाओं में भी अधिकारों के प्रति बोध जाग्रत हो रहा था, वे पुरुष के अत्याचारों को मौन रहकर चुपचाप सहने की बजाये विद्रोह करने लगी थीं।

2. **आधुनिक नारी**– गोदान में आधुनिक विचारों से संपन्न नारी का रूप भी देखा गया है। आज भी अधिकांश विवाह माता–पिता के द्वारा तय किये जाते हैं और स्वच्छंद प्रेम को अच्छा नहीं समझा जाता। गोदान में स्वच्छंद प्रेम की परिणति दो प्रकार से दिखाई गई है–स्वच्छंद प्रेम की परिणति विवाह में। झुनिया विधवा है, दूसरी जाति की है पर गोबर प्रथम दृष्टि में ही उसे प्रेम करने लगता है। दोनों के बीच यौन–संबंध भी हो जाता है। गोबर गांव वालों, गांव की पंचायत और

टिप्पणी

माता–पिता सबसे डरता है। उसे आशंका है कि उनके विवाह को कोई स्वीकार न करेगा, फिर भी वह साहसपूर्वक झुनिया को घर ले आता है। धनिया की उदारता के कारण दोनों का विवाह हो जाता है, परंतु गांव वाले, गांव की पंचायत उसे स्वीकार नहीं करते और होरी को दंड स्वरूप सारा अनाज तथा नकद तीस रुपए देने पड़ते हैं; उन रुपयों के लिए घर गिरवी रखना पड़ता है।

गांव में स्वच्छंद प्रेम का दूसरा उदाहरण मातादीन–सिलिया प्रसंग है। मातादीन ब्राह्मण है, सिलिया चमारिन। दोनों के बीच आकर्षण के बाद यौन–संबंध स्थापित हो जाता है। यहां भी जाति का भय है। मातादीन उतना साहसी नहीं है जितना गोबेर। अतः वह सिलिया से विवाह करने को तैयार नहीं होता। गांव के नवयुवकों द्वारा विवश किये जाने पर, उसके मुंह में हड्डी डालकर चमार बनाने के दुस्साहस के बाद ही वह सिलिया को पत्नी रूप में अपनाता है।

नगर में स्वच्छंद प्रेम के उदाहरण हैं–सरोज तथा रायसाहब के बेटे रुद्रपाल का प्रणय–संबंध, मालती–मेहता का परस्पर प्रेम। रुद्रपाल पिता के तर्क–वितर्क, लाभ–हानि की बातों पर ध्यान न देकर सरोज से विवाह करने के दृढ़ संकल्प पर डटा रहता है। मालती–मेहता के मार्ग में कोई बाधा नहीं है, फिर भी प्रेमचंद की आदर्शवादिता उन्हें विवाह–बंधन में नहीं बंधने देती। मेहता के आलिंगन–पाश का सुख भोग कर, उनकी गृहस्थी का सारा बोझ संभालने के बाद भी मालती उनसे विवाह नहीं करती।

3. **विभिन्न पात्रों के माध्यम से नारी समस्याओं का चित्रण**– धनिया गोदान उपन्यास की मुख्य नायिका है। नायक के साथ नायिका के रूप में धनिया ही उपर्युक्त ठहरती है। उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक धनिया अपनी चारित्रिक विशेषताओं से आकर्षित करती है। धनिया होरी की पत्नी के साथ भारतीय कृषक की स्त्री भी है। भारतीय नारी का आदर्श रूप हमें धनिया के रूप में देखने को मिलता है। तिल–तिलकर जीवन जीने को मजबूर है लेकिन पति (होरी) को बीच मझदार में छोड़कर चले जाना उसके जीवन का स्वभाव नहीं है। धनिया की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् हैं–

(क) **मुख्य पात्र**–गोदान उपन्यास में मालती, गोविंदी, धनिया, झुनिया आदि स्त्री पात्रों में सर्वाधिक प्रभावित करने वाला स्त्री पात्र धनिया ही है। अन्य नारी पात्र धनिया के चरित्र को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। वह अंदर से त्रस्त और विवश होने पर भी बाह्य रूप में तेजस्वी, अधिकारों के प्रति सजग नारी के रूप में सामने आती है।

(ख) **आदर्श पत्नी**–धनिया होरी की आदर्श पत्नी है। पतिव्रत धर्म का सफल निर्वाह करती है। सुखद स्थिति के साथ विषम परिस्थिति में भी साथ नहीं छोड़ती। अवसरानुकूल प्रतिकार को व्यक्त कर अपने दायित्व का परिचय देती है। पंचायत का दंड सहती है। परिवार से उपेक्षा सहती है। लेकिन कर्तव्य से विमुख नहीं होती। होरी की मृत्यु उपरांत धनिया का अचेत होकर गिरना आदर्श पत्नी के रूप को प्रतिबिंबित करता है।

(ग) **संवेदनायुक्त**–धनिया ने नारी सुलभ हृदय भी पाया। किसी की कातर पुकार को सुनकर उसके हृदय में संवेदना झलकने लगती है। झुनिया को असहाय स्थिति में देखकर पति (होरी) से विनम्र रहने को कहती है, साथ ही घर में आश्रय प्रदान कर सहृदयशीलता का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

(घ) **ममतामयी**–धनिया ममतामयी भावना से ओत–प्रोत है। अपने परिवार के प्रति ममता से पूर्ण व्यवहार का परिचय देती है। उसे गोबर के किये पर पछतावा है, लेकिन (पोते) को पाकर गद्‌गद हो जाती है। उसकी मधुर स्मृतियां उसे रह–रहकर सताती हैं। उसका सूना खटोला देखकर व्यथित होती है।

(ङ) **ओजस्वी व्यक्तित्व**–धनिया के चरित्र में जहां एक ओर संवेदना एवं सहृदयशीलता का सागर उमड़ता है, वहीं समय–समय पर अपने ओजस्वी विचारों से प्रतिकार करती है। होरी की सदाशयता को देखकर कभी–कभी विरोध व्यक्त करती है। झुनिया को घर में पनाह देने के प्रसंग पर उसके ओजस्वी विचार देखने योग्य है–पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे।" दातादीन को फटकारती हुई कहती है–"बिगड़ेंगे तो एक सेटी–बेसी खा लेंगे और क्या करेंगे। कोई उनकी दबैल हूं।" दातादीन द्वारा भिखारी कहे जाने पर अपना आक्रोश व्यक्त करती है–"भीख मांगो तुम, जो भिखमंगो की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे। वही काम करेंगे, चार पैसे पाएंगे।"

1.5 महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गोदान

गोदान उपन्यास को महाकाव्य के लक्षणों पर परखने से पूर्व महाकाव्य की विशेषताओं को जानना आवश्यक है। सामान्यतया महाकाव्य के लिए महान कथानक, श्रेष्ठ पात्रों का चयन, शृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की समग्रता तथा विशिष्ट उद्देश्य का होना आवश्यक है। उपन्यास कला के तत्वों में कथानक, पात्र एवं चरित्रचित्रण, संवाद, कथोपकथन, देशकाल, वातावरण, उद्देश्य को गिना जाता है। उपन्यास कला एवं महाकाव्य की विशेषताओं में वर्ग भेद की अपेक्षा साम्य अधिक दिखाई देता है। इन्हीं तत्वों के आधार पर गोदान को परखना आवश्यक है।

(क) **व्यापक कथानक**–गोदान उपन्यास का कथानक विस्तार की गरिमा से पूर्ण है। गोदान की कथा में लगभग 80 प्रतिशत अंश ग्रामीण परिवेश से संबंधित हैं। होरी, धनिया, भोला अहीर, हीरा, दुलारी सहुआइन, मीता दीन, दातादीन, झुनिया, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह, नोहरी, नोखेराम आदि के कथानक का सीग ग्रामीण परिवेश से संबंधित है। मालती, मेहता, खन्ना, तंखा, खुर्शीद से संबंधित कथा नारी जीवन को चरितार्थ करती है। इनके द्वारा प्रेम के स्वरूप का विवेचन, चुनाव तथा पड़ताल आदि नारी जीवन से संबंधित हैं। रायसाहब अमरपाल सिंह ग्रामीण व शहरी जीवन की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। गोदान उपन्यास का कथानक व्यापक परिवेश को अपने कलेवर में समेटे है। होरी समस्त कृषकों का प्रतिनिधि पात्र है। उसकी समस्याएं केवल उसी की नहीं अपितु समस्त किसानों की समस्याएं हैं।

(ख) **पात्र और चरित्र चित्रण**–पात्रों की अधिकता को देखकर गोदान उपन्यास की तुलना लियो टॉल्सटॉय के 'वार एंड पीस' से की जाती है। जिस प्रकार पांच सौ

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. गोदान में नारी के कौन–से रूपों का चित्रण हुआ है?
6. गांव में हुक्का–पानी बंद हो जाने पर भी गोदान की कौन–सी स्त्री विचलित नहीं होती?
7. प्रेमचंद ने गोदान में महिलाओं के लिए किस संस्था के आयोजन की चर्चा की?
8. गांव की पंचायत में होरी को दंड स्वरूप क्या जमा कराना पड़ता है?

टिप्पणी

पात्रों की संरचना के लिए 'वार एंड पीस' महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है ठीक उसी प्रकार लगभग सौ पात्रों के विमोचन के फलस्वरूप गोदान को भी महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है। गोदान में प्रयुक्त पात्र ग्रामीण, शहरी, शोषक–शोषित जमींदार, किसान, साहूकार, कारकुन, दारोगा, पटवारी, मिल मालिक, संपादक आधुनिक शिक्षित, लड़कियां, प्रोफेसर, आदि वर्ग अपनी–अपनी विशिष्टताओं के लिए विख्यात हैं। पात्रों में गतिशील व स्थिर दोनों वर्गों का प्रतिनिधित्व किया गया है। मुख्य पात्र और गौण पात्रों द्वारा कथानक को क्रमबद्धता प्रदान की गई है। होरी उपन्यास का मुख्य नायक और धनिया मुख्य नायिका के रूप में चित्रित हैं। होरी कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। धनिया भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है। मालती आधुनिक नारी का प्रतीक है जो अविवाहित रहकर सेवाभाव द्वारा जीवनयापन करती है। दुलारी सहुआइन, नोहरी, रायसाहब अमरपाल सिंह, दरोगा, पटवारी आदि सभी शोषक के रूप में सामने आते हैं। प्रेमचंद ने अमरपाल सिंह द्वारा मनुष्य की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट किया है। गोदान में केवल किसान ही नहीं हैं। गांधीवादी दर्शन भी यत्र–तत्र दिखाई देता है। गोदान में प्रयुक्त पात्र जीवंतता के प्रतीक हैं। वर्ग पात्रों की बहुलता दिखाई देती है।

प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र कहकर पात्र योजना एवं चरित्र–चित्रण की भावना को प्रमुखता प्रदान की है। उनके पात्र अपनी वैयक्तिक विशेषताओं से ओत–प्रोत हैं। गोदान उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों पर दृष्टिपात करें तो उनमें वर्गीय, गतिशील पात्रों का स्वरूप सामने आता है। प्रेमचंद की अवधारणा चरित्र–चित्रण की भावना को स्पष्ट कर देती है। श्रेष्ठ चरित्र के लिए वे पात्र का निर्दोष होना आवश्यक मानते हैं, साथ ही चारित्रिक त्रुटियों की उपेक्षा करना बड़ी भूल मानते हैं। प्रेमचंद का मानना है कि मनुष्य परिस्थितिवश त्रुटियां करता है लेकिन उसका पश्चाताप करना उससे भी अधिक श्रेष्ठता का परिचायक होता है। गोदान उपन्यास में स्वाभाविक व सजीव स्थिति उत्पन्न करने के लिए पात्र योजना को विशिष्टता से युक्त रखा गया है। उपन्यास में प्रयुक्त पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर युगीन परिस्थिति से अवगत कराता है। उन्होंने युगीन व्यवस्था, परंपरा, रूढ़ि को खलनायक के रूप में चित्रित कर चरित्र–चित्रण को उपेक्षा का शिकार नहीं होने दिया। गोदान उपन्यास में शहरी, ग्रामीण, स्थिर, गतिशील पात्रों का प्रयोग कर चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है।

गोदान उपन्यास में चरित्र–चित्रण द्वारा प्रेमचंद ने वैयक्तिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है। चरित्र–चित्रण ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, युगीन परिस्थितियों, चारित्रिक विशेषताओं, आदर्श की प्रतिष्ठा, यथार्थ की व्यंजना, सहानुभूति, संवेदना की व्यंजना, वर्गीय विशेषताओं, ग्रामीण परिवेश की प्रस्तुति, मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रस्तुति, स्वस्थ समाज की संरचना द्वारा पात्र–योजना को महत्त्व प्रदान किया गया है।

गोदान उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों में होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, नोहरी–नोखेराम, मातादीन, सिलिया, मेहता, मालती, खन्ना, गोविंदी, ओंकारनाथ, आदि पात्र अपनी विलक्षण प्रतिभाओं के कारण पाठक के मनमस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। इससे नगरी तथा ग्रामीण परिवेश मुखरित हो उठा है।

टिप्पणी

होरी, धनिया के अतिरिक्त रायसाहब अमरपाल सिंह, मालती, प्रो. मेहता तथा गोबर गोदान उपन्यास में सहायक तथा गौण पात्रों की भूमिका निभाते हैं। रायसाहब अमरपाल सिंह शहरी व ग्रामीण परिवेश को मुखरित करते हैं। उनके चरित्र में अवसरवादिता, चाटुकारिता, शोषण का समर्थन, भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि, संतान के प्रति चिंता, सामंती व्यवस्था के पोषक आदि विशेषताएं देखने को मिलती हैं। गोबर युवा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। उसका आक्रोश युगीन परिवेश एवं वातावरण को चरितार्थ करता है। उस का स्पष्ट कथन पंचों की झूठी कलई खोलकर रख देता है। उसके द्वारा गांव छोड़कर शहर भाग जाने में शोषण की झलक मिलती हैं। उसमें आत्मनिर्भर प्रवृत्ति के गुण विद्यमान है। वह अधिकारों के प्रति जागरूक, संवेदनशील है। पिता को मरणासन्न अवस्था में पाकर पश्चाताप की भावना व्यक्त करता है। अपनी गलती को स्वीकार करना गोबर के व्यक्तित्व की महानता का सूचक है। मालती का चरित्र आधुनिक नारी का प्रतीक है। वह विवाह को बंधन मानकर स्वच्छंद रहना श्रेष्ठ समझती है उसका ऐसा करना नारी स्वतंत्रता का परिचायक है। वह शिक्षित वर्ग का प्रतीक है। अपनी बौद्धिक क्षमता से युगीन परिप्रेक्ष्य में अपने विचारों को अवगत कराती है। संपादक ओंकारनाथ को उनकी कथनी और करनी में अंतर का आभास कराकर चिंतन के लिए विवश करती है। अपनी सेवा भाव द्वारा पाठक के गले का हार बनती है। अपने परिवार का पालन–पोषण कर उत्तरदायित्व का बोध कराती है। वह पाश्चात्य गुणों से युक्त होने पर तितली नजर आती है। शराब पीना, रसिक पुरुषों के साथ रहना इसका प्रमाण है। मेहता का संपर्क उसके तितली स्वरूप को दर्शाता है।

(ग) **रस की व्यंजना**–रचना की प्रसिद्धि का मूल कारण प्रयुक्त रसों की व्यंजना है। गोदान में सभी रसों का चित्रण देखने को मिलता है। महाकाव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए शृंगार, वीर और शांत में से किसी एक रस की व्यंजना आवश्यक है। गोदान में भी होरी–धनिया, गोबर–झुनिया, मातादीन–सिलिया, मालती–मेहता, नोहरी–नोखराम के संबंधों में शृंगार रस का चित्रण देखने को मिलता है धनिया, गोबर द्वारा रौद्र रस का प्रतिपाद किया गया है। होरी की मृत्यु करुण रस का वातावरण प्रस्तुत कर देती है। विभिन्न रसों द्वारा लेखक ने कथानक को क्रमबद्धता तथा घटना–विस्तार को जीवंतता प्रदान की है। धनिया द्वारा झुनिया के पुत्र के प्रति लगाव में वात्सल्य रस देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए हास्य रस का चित्रण देखा जा सकता है।

'तुम्हारे बाप का क्या नाम है?'

'मातादीन'

'और तुम्हारी मां का?'

'छिलिया'

'और दातादीन कौन है?'

'वह अमाला छाला है।'

टिप्पणी

(घ) **युगबोध की अभिव्यक्ति**–रचना की जीवंतता युगबोध पर आश्रित होती है। गोदान उपन्यास का रचना काल 1936 का है। यह समय परतंत्र भारत का था। राजनैतिक क्षितिज पर अस्थिरता का वातावरण था। स्वदेश प्रेम की भावना का दौर था। जनसामान्य में शोषकों के प्रति आक्रोश का वातावरण था। युवा वर्ग युगीन परिप्रेक्ष्य में विश्व घटनाक्रम से लाभान्वित हो रहा था। गोदान उपन्यास में वन, नगर और ग्राम की झांकी के दर्शन होते हैं। वन कन्या द्वारा आदिवासियों की सादगी का वर्णन किया गया है। समेरी और बेलारी गांव से ग्रामीण परिवेश की दरिद्रता, सादगी, शोषण व दयनीयता दृष्टव्य है। मालती, मेहता, खन्ना, मिर्जा, तन्खा आदि पात्रों द्वारा शहरी जीवन अभिव्यक्त हुआ है। उपन्यास में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक जीवन प्रतिबिंबित हुआ है। गोबर द्वारा युवा वर्ग के आक्रोश को व्यक्त कर आधुनिकता का बोध कराया गया है।

(ङ) **महान उद्देश्य**–गोदान उद्देश्य परक रचना है। प्रेमचंद ने गोदान द्वारा कृषक जीवन का बिंब प्रस्तुत किया है। गोबर द्वारा संयुक्त परिवार के विघटन एवं एकाकी परिवार को महत्व प्रदानकर भविष्य बोध से युक्त किया है। गांधीवाद की अपेक्षा समाजवाद को महत्व प्रदान किया गया है। रूढ़ियों, अंधविश्वासों का चित्रण कर भोली जनता की निस्वार्थ भावना को दिखाया गया है। नारी जीवन की दयनीय स्थिति के साथ विद्रोह एवं क्रांति को प्रस्तुत किया गया है। वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए प्रेम की अनिवार्यता पर बल प्रदान किया गया है। हिंसा का विरोध कर अहिंसा का पालन करके मानवतावादी भावना को प्रोत्साहित किया गया है। साहित्यकार की दायित्व भावना का वर्णन किया गया है। गोदान में प्रेमचंद की व्यवहारिक भावना का चित्रण मिलता है। प्रेम, सेवा, परोपकार, त्याग, स्नेह, एवं सहानुभूति के साथ मंगल कामना का प्रतिपादन करना ही गोदान उपन्यास का मूल उद्देश्य है। गोदान का उद्देश्य भारत के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिस पर भारत की 80 प्रतिशत जनता निर्भर करती है।

1.6 गोदान में आदर्श और यथार्थ

गोदान उपन्यास को पढ़कर प्रेमचंद की आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को जाना जा सकता है। इस संबंध में तीन दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं– प्रथम, प्रेमचंद आदर्शवादी थे दूसरा, प्रेमचंद यथार्थवादी थे और तीसरा, प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी थे। सत्य कहा जाए तो प्रेमचंद ने तीनों विचारधाराओं का सफल निर्वाह किया है। स्वयं प्रेमचंद का इस संबंध में विचार था कि– वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं जहां यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। आप उसे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। 'सेवासदन' भी उनकी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को व्यंजित करता है। 'रंगभूमि' उपन्यास में राष्ट्रीय जागरण एवं राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया गया है। 'गोदान' प्रेमचंद का वह महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसमें तीनों दृष्टिकोणों का यथासंभव निर्वाह किया गया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. गोदान का कथानक कैसा है?
10. प्रेमचंद ने उपन्यास को क्या माना है?
11. चरित्र–चित्रण के द्वारा प्रेमचंद ने किस दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है?
12. गोदान का मुख्य उद्देश्य क्या है?

टिप्पणी

1.6.1 गोदान में चित्रित यथार्थ

'गोदान' उपन्यास में यथार्थ का मणिकचन प्रयोग पात्रों की रंगशाला द्वारा चित्रित किया गया है। उनके पात्र आदर्श और यथार्थ का समन्वय बनाकर जीवन जीते हैं। उनकी यथार्थ योजना की पुष्टि के लिए होरी, धनिया, सिलिया तथा शोषक के रूप में दरोगा, अमरपाल सिंह, दातादीन, रामसेवक, गोबर, भोला आदि पात्र यथार्थ को मुखरित करते हैं।

(अ) **कृषक जीवन का यथार्थ**–गोदान में होरी भारतीय कृषक का प्रतिनिधि पात्र है। वह किसानों की विशेषताओं से युक्त है। वह जहां एक ओर महाजन से ब्याज की एक कौड़ी छुटाने के लिए घंटों चिरौरी कर सकता है वहीं व्यवहार कुशल भी है। उसकी इच्छा है कि कभी उसके द्वारा किसी का अहित न हो, इसीलिए वह अंततः मजदूर बनकर भी संतुष्ट है क्योंकि उसने किसी का गला नहीं काटा, किसी को धोखा नहीं दिया फिर भी उसकी खून पसीने की कमाई को शोषक लूट–खसोट कर छीन लेना चाहते हैं। पुलिस के शोषण का चित्र देखकर शोषण की भयानकता का अनुमान लगाया जा सकता है– "मैं पंद्रह मिनट का समय देता हूं अगर इतनी देर में पूरे पचास रुपये न आए तो तुम चारों के घर तलाशी होगी और गंडा सिंह को जानते हो। उसका मारा पानी भी नहीं मांगता।" किसान का जीवन किन–किन झमेलों से जूझता है उसका आभास हम होरी के द्वारा भलीभांति जान सकते हैं। होरी की भाग्यवादिता में लाचारी है, युगीन व्यवस्था एवं शोषण से त्रस्त दिल की पुकार सुनाई पड़ती है– "छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है, उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये हैं उनका आनंद भोग रहे हैं हमने कुछ नहीं सोचा तो भोगें क्या।" किसानों के शोषण का कारण उसकी रूढ़िवादी भावना, संस्कार एवं संगठन का अभाव है। पारस्परिक वैमनस्य है इसीलिए बैल बनकर जमींदारों के हल में जुतते हैं। भोला कहता है– "कौन कहता है हम तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहां। आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकते। एका का नाम नहीं।" गोदान में शोषण का स्वरूप हमें स्थान–स्थान पर देखने को मिलता है। होरी का जीवन पर्यन्त संघर्ष, पारिवारिक विघटन व द्वेष, गाय की लालसा, जमींदारों, साहूकारों, महाजनों की शोषक प्रवृत्ति, मारपीट, दरोगा की धमकियां, रिश्वत, पंचायत, बिरादरी का आतंक हुक्का पानी बंद होना, गोबर झुनिया की प्रेम योजना, शहर पलायन, गांव के प्रपंच, अंध–विश्वास, बेटियों के विवाह की चिंता, दाने–दाने का अभाव, कर्ज लेने की विवशता आदि स्वरूप कृषक जीवन की दास्तां का बखान करते हैं। बेचारा अभागा किसान भाग्य की विवशता मानकर सब सह लेता है, मुंह से उफ तक नहीं करता। महाजन द्वारा रुपये उधार दिए जाने पर पहले ही पेशगी स्वरूप ब्याज में काट लिया जाता है। नजराना, तहसीर, कागज, दस्तूरी आदि माध्यमों से शोषक को जिंदा रखा जाता है। जला भुना किसान शेष रुपये भी वापस कर देता है कि एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया करम के लिए। होली के अवसर पर किया गया स्वांग शोषण का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत कर देता है।

टिप्पणी

(ब) **नारी जीवन का यथार्थ–** वैवाहिक जीवन की सफलता की सूत्रधार स्त्री है। इसीलिए नारी को पूजायोग्य मानकर गुणगान किया गया है। गोदान उपन्यास में स्त्री के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। वह पुत्री, प्रेमिका, पत्नी, सेविका व रखैल आदि रूपों में पाठक के सामने आती है। होरी के रूपा और सोना दो पुत्रियां हैं। परिस्थितिवश रूपा का विवाह अधेड़ रामसेवक से करा दिया जाता है। जो निर्धनता का दुष्परिणाम है। गोबर भोला अहीर की विधवा पुत्री झुनिया को अपनाता है जिसका परिणाम घर छोड़ने के रूप में सामने आता है। धनिया भी पुत्र को क्षमा कर देती है लेकिन झुनिया के प्रति ईर्ष्या रखकर नारी के प्रति विरोध को दर्शाती है जिससे वैधव्य जीवन के यथार्थ का बोध होता है। मालती सेवा भाव द्वारा समाज में सभी के आर्कषण का केंद्रबिंदु बनती है। उसका मानना है कि वैवाहिक बंधन सेवाभाव को अवरूद्ध कर देता है। प्रेमचंद ने सिलिया द्वारा नारी की स्थिति का आकलन किया है। मातादीन सिलिया को पत्नी का सम्मान न देकर मशीन समझता है। नोहरी द्वारा अनाज दिए जाने पर मातादीन का क्रोध सिलिया की स्थिति का बोध करा देता है। प्रेमचंद ने इसी यथार्थ को इन शब्दों में व्यक्त किया है–"सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था।" ब्राह्मण वर्ग की स्वार्थ भावना का चित्रण झुनिया और मातादीन के प्रसंग में देखने को मिलता है। झुनिया को अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए मातादीन धर्म का सहारा लेता है। भगवान पूछेंगे, "मैंने तुम्हें इतना रूपधन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया।" प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है कि नारी को केवल वासना का शिकार बनाना ब्राह्मण वर्ग की विकृति को दर्शाता है।

(स) **नगर जीवन का यथार्थ–** प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में ग्रामीण एवं नगर संस्कृति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में समेरी और बेलारी गांव से समस्त ग्रामीण परिवेश साकार हो उठा है। गांव में जिस प्रकार पारस्परिक झगड़े हैं, उससे अधिक नगरों में स्वार्थपरता और संकीर्णता के दर्शन होते हैं। नगरों में प्रत्येक तथ्य को पैसे से तोला जाता है। संबंधों का आधार भी पैसों की वास्तविकता पर टिका होता है। मित्रता का आधार भी पैसों पर टिका होता है। जब रायसाहब अमरपाल सिंह चुनाव के लिए मि. खन्ना से बैंक से पैसे निकालने को कहते हैं तो खन्ना अपने कमीशन का पहले वर्णन कर देता है– पहले आप कमीशन बतला दें क्योंकि बिजनेस इज बिजनेस। रायसाहब का मानना है कि असली राजा तो हमारे बैंकर हैं। आज संसार का शासन सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार भी इनके हाथ का खिलौना है।

(द) **दान धर्म का यथार्थ–** नगरों में दान धर्म का कार्य भी स्वार्थवश किया जाता है। भिखारी भीख मांगते थक जाता है लेकिन फूटी कौड़ी नहीं पाता जबकि लोग धर्मशालाओं, पाठशालाओं व व्यायामशालाओं में दान देकर अपना नाम व स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। प्रेमचंद व्यायामशालाओं को उचित नहीं मानते क्योंकि इनके माध्यम से अनाचार व व्यभिचार की प्रवृत्ति पनपती है। इनके द्वारा लड़के व लड़कियों में दुराचारी भावना बढ़ने की संभावना रहती है। प्रेमचंद के शब्दों में– "यह व्यभिचारशाला है जो विश्वविद्यालय की लड़कियों को जमा करके विहार करने के लिए होगी।"

टिप्पणी

1.6.2 गोदान में चित्रित आदर्श

प्रेमचंद ने 'सेवासदन' द्वारा जिस आदर्शवाद को पल्लवित किया वह आगे परिस्थितिवश भले ही क्षीण हो गया हो लेकिन समाप्त नहीं हुआ था। 'गोदान' में प्रेमचंद का आदर्शवादी स्वरूप मुखरित हुआ है। उनका मानना है कि ज्ञान का उपयोग रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों को समाप्त करने में प्रयुक्त हो न कि कूपमंडूक बनकर ज्ञान को सीमित करने में। बाह्य आवरण आज भले ही पात्र को अपने परिवेश में विलय कर लें, लेकिन वे सत्य के आलोक से ओझल नहीं हो सकते। उन्होंने अपने आदर्शवाद को पल्लवित करने के लिए, मातृत्व, संवेदना, वैवाहिक जीवन, सेवाभाव तथा मृत्यु के क्षण को भी आदर्श के रंग में रंग डाला।

(अ) **नारी का आदर्श–** प्रेमचंद की दृष्टि में नारी का आदर्श त्याग, बलिदान सेवाभाव में समाहित है। नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व के बिना पूर्ण नहीं होती। उसकी सूनी कोख समाज में अपशकुन का प्रतीक मानी जाती है। धनिया में मातृत्व की गरिमा का भंडार समाहित है। गोबर की त्रुटि को स्वीकार कर और झुनिया को घर में आश्रय प्रदान कर धनिया आदर्श मां के स्वरूप का बखान करती है। गर्भवती झुनिया को देखकर धनिया केवल अपना क्रोध ही नहीं त्यागती अपितु होरी से भी विनम्र रहने को कहती है। उसी झुनिया के लिए समाज का तिरस्कार सहती है। पंचायत का दंड भी भरने को तैयार हो जाती है। दरोगा जब घर की तलाशी लेना चाहता है तो दरोगा को दो टूक शब्दों में कह देती है–"महरिया रख लेना पाप नहीं, रखकर छोड़ देना पाप है।" स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में– "मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और महान विजय है।"

(ब) **वैवाहिक जीवन का आदर्श–**वैवाहिक जीवन भी आदर्शवाद का सान्निध्य पाकर फलीभूत होता है। मातादीन स्वयं विवाहित होकर भी सिलिया को रखैल बनाकर रखता है। लेकिन पत्नी के दायित्व का निर्वाह करने की अनुमति नहीं देता, सिलिया शारीरिक यातना सहती है, पति की उपेक्षा सहती है लेकिन मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती, क्योंकि उसने मातादीन का हाथ पकड़ा है तो जीवनभर निभाने की प्रण भी किया है। सिलिया के इन वचनों में वैवाहिक जीवन का आदर्श छिपा है– "वह चाहे मुझे भूखों रखे चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोड़ूंगी। उसकी सांसत कराके छोड़ दूं? मर जाऊं पर हरजाई न बनूंगी। एक बार जिसने बांह पकड़ ली, उसी की रहूंगी।" प्रेमचंद सिलिया द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि नारी का समर्पण किसी एक के लिए होता है, चाहे उसे सुख मिले या दुःख। इसमें वैवाहिक जीवन की पवित्रता एवं सुदृढ़ता का बोध होता है। साथ ही महिलाओं की स्वच्छंद प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। सिलिया अपनी इसी प्रतिज्ञा को परिपक्व करने के लिए मां की निर्दयता सहती हैं, भाइयों द्वारा प्रताड़ित होती है। प्रेमचंद सिलिया के रूप में समस्त नारियों के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं कि वैवाहिक जीवन का सफल निर्वाह करना ही नारी जीवन का मूल उत्स है।

टिप्पणी

दुलारी सहुआइन, जो शोषक की प्रतीक है, प्रेमचंद ने उसे भी सहृदयता, संवेदना जैसे गुणों से पूर्ण कर आदर्शवाद को सुदृढ़ किया है। होरी की विवशता को देखकर वह द्रवित हो जाती है और सोना के विवाह के लिए रुपया देने को तैयार हो जाती है।

भोला अहीर की पत्नी नोहरी स्वयं नोखेराम की रखैल होकर भी संवेदनाहीन नहीं है। जो कभी होरी को अपना शत्रु समझती थी उसके साथ समधी–समधन के रिश्तों को सफलतापूर्वक निभाती है। रूपा के विवाह के लिए सहायता करने को तैयार हो जाती है। मालती द्वारा अविवाहित रहकर सेवाभाव की भावना का पालन करना आदर्शवाद का प्रतीक है। उसका मानना है कि विवाह का बंधन सेवाभाव की भावना को अवरुद्ध कर देता है।

प्रेमचंद ने होरी की मृत्यु को आदर्शवाद के रूप में प्रस्तुत कर दिखाया है कि पश्चाताप की भावना से मन का मैल समाप्त हो जाता है। मृत्यु के समय होरी को जो आत्मिक शांति प्राप्त हुई वह किंचित मनुष्यों को प्राप्त होती है। गोबर वापस आ जाता है, हीरा भाई के पैरों में पड़कर माफी मांग लेता है। होरी को मौत भी भयभीत नहीं कर पाती। उसके चेहरे की खुशी झलकती है। उसे जीते जी भले ही शांति न मिली लेकिन मृत्यु के समय उसे संतोष व शांति प्राप्त हो गई। संघर्षों से भले ही वह टूट गया हो, लेकिन मृत्यु पर उसने विजय प्राप्त कर ली। उसकी आंखों के सामने ही परिवार की अस्मिता बच गई। जीवन की अधूरी साध पूर्ण हो गई। प्रो. मेहता द्वारा आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई है। वे नारी को परंपरागत रूप में देखने के समर्थक हैं। गोविंदी उनकी आदर्शवादी भावना को पुष्ट करती है। प्रो. मेहता के कहने पर पुनः अपने घर वापस आ जाती है। अपने उजड़ते घर को देखकर पति को सही रास्ते पर लाकर न केवल अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है अपितु भारतीय नारियों के लिए आदर्श का स्वरूप प्रस्तुत करती है।

(स) **लोक कल्याण का आदर्श**–'गोदान' उपन्यास में लोक कल्याण की भावना देखने को मिलती है। मनुष्य की पहचान उसके चारित्रिक गुणों से की जाती है। सिलिया भले ही मातादीन की निगाह में मशीन हो लेकिन सिलिया की दृढ़प्रतिज्ञा के सामने मातादीन भी पश्चाताप करने पर बाध्य होता है। मालती का अविवाहित रहकर सेवा के दायित्व को सफलतापूर्वक निर्वाह करना लोक कल्याण का श्रेष्ठ उदाहरण है। स्वयं प्रेमचंद का मानना था कि सच्चा आनंद और सच्ची शांति केवल सेवा व्रत में है। सम्पन्न जीवन की सफलता का स्रोत सेवाभाव ही होता है। सेवाभाव ही समाज में व्याप्त अन्याय, आतंक और भय को समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान कर बुद्धिजीवी वर्ग को उत्तरदायित्व के प्रति प्रेरित करता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. 'हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए ही पैदा हुए हैं।' यहां उपन्यास का पात्र भोला किसको बैल बता रहा है?
14. प्रेमचंद ने व्यायामशालाओं को किसकी संज्ञा दी है?
15. प्रेमचंद की दृष्टि में संसार में मातृत्व का क्या स्थान है?
16. प्रेमचंद जीवन का सच्चा आनंद और सच्ची शांति किसमें मानते हैं?

1.7 गोदान का भाषा शिल्प

प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा यथार्थपरक, पात्रों के अनुकूल तथा देशकाल की स्थिति के अनुरूप है। उनकी भाषा कथा के प्रवाह, पात्रों की योजना तथा वातावरण की सृष्टि–सभी में पूरा योग देती है। संवादों की भाषा में तो देशकाल का रंग है, और पात्रों की रूपरेखा प्रस्तुत करने में भी लेखक की भाषा देशकाल से प्रभावित और परिवेश के वर्णन के सर्वथा अनुरूप है।

प्रेमचंद की भाषा में सजीवता और रोचकता तो है ही, कहीं व्यंग्य तथा तीखी चोट भी भाषा की विशेषता है। इनकी शैली विविधता लिए हुए है। कहीं तो विवरणात्मक है और कहीं विश्लेषणात्मक। जहां पर गहन चिंतन है, वहां पर तो भाषा गंभीर और तत्सम शब्द–प्रधान है, लेकिन अन्यत्र स्वाभाविक सरल और हिंदी–उर्दू मिश्रित है। 'गोदान' में भी प्रेमचंद जी की भाषागत विविधता दृष्टिगोचर होती है। इसमें गंभीर चिंतन को समझाने की भाषा स्पष्टतः विचार प्रधान है, फिर भी वहां सरलता का गुण सहज ही विद्यमान है, यथा–

"उनका मानव–प्रेम इस आधार पर अवलंबित न था कि प्राणी–मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत का व्यापारिक महत्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे और यह व्यापारिक महत्व उनके लिए मानव–जाति को एक–दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद भाव को मिटाना और मातृ–भाव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी। यश, लोभ या कर्तव्य पालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इसकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफी थी।

उनके ग्रामीण पात्रों की भाषा में आंचलिकता का प्रभाव है तो मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू की रवानगी है। पढ़े–लिखे पंडित की भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता है। वहीं अंग्रेजी शब्दों की बहुलता प्रो. मेहता की भाषा में देखने को मिलती है। "मेहता– देवियों! मैं उन लोगों में नहीं हूं जो कहते हैं स्त्री व पुरुष में समान शक्तियां हैं, समान प्रवृत्तियां हैं और उनमें कोई विषमता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यह वह असत्य है जो युग–युगांतर से संचित अनुभव को उसी तरह ढक लेना चाहता है जैसे बादल का टुकड़ा सूर्य को ढक लेता है।"

धनिया की भाषा का उदाहरण देखिए– "पंचो, गरीब को सताकर सुखी न पाओगे, इतना समझ लेना कौन जाने इस गांव में रहें या न रहें लेकिन मेरा ससुर तुमको जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा।"

'गोदान' की शैली में विविधता है। प्रेमचंद की शैली की प्रमुख विशेषता मुहावरों का प्रयोग है। इससे भाषा में प्रवाह आ गया है। शैली को सशक्त और रोचक बनाने के लिए प्रेमचंद ने लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। गोदान में होरी विधुर भोला से कहता है– "पुरानी मिसाल झूठी थोड़े है– 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' सूक्तियों का प्रयोग भाषा शैली को और अधिक सुबोध एवं सशक्त बना देता है। जैसे– 'संपत्ति और सहृदयता में बैर है।'

अलंकारों का प्रयोग भाषा के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा देता है। गोदान में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अनेक अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद साधारणतः छोटे–छोटे वाक्य पसंद करते थे। गोदान की भाषा में ग्रामीण कृषकों का जीवन साकार हो उठा है। कई स्थलों पर तो वह इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि आंखें भर आती हैं। प्रेमचंद की भाषा की विशेषताओं के कारण उनके उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. प्रेमचंद की भाषा के दो गुण बताइए।
18. गोदान के ग्रामीण पात्रों की भाषा में किसका प्रभाव देखने को मिलता है?
19. गोदान के प्रो. मेहता अधिकतर किस भाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं?
20. प्रेमचंद की भाषा शैली की प्रमुख विशेषता क्या है?

टिप्पणी

गतिविधि

अपने आस–पास के ग्रामीण क्षेत्र में जाकर किसानों की समस्याओं की जानकारी लेकर स्थानीय समाचार पत्रों के लिए लेख लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

प्रेमचंद प्रारंभ में 'धनपत राय' के नाम से लिखते थे। उनके अभिन्न मित्र मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी थी, तब से वे इसी नाम से लिखने लगे।

1.8 सारांश

गोदान उपन्यास की प्रस्तुत व्याख्याएं कथानक का सार तत्व प्रस्तुत करती हैं जिसमें युग बोध की झांकी के साथ ग्रामीण परिवेश में कृषक जीवन, उनकी गरीबी, जमींदारों की कथनी और करनी का अंतर, आपसी वैमनस्य, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, दाम्पत्य जीवन के विविध रूपों, पुरुषों और स्त्रियों के अलग–अलग रूपो का चित्रण, वर्ग वैमनस्य, आर्थिक संघर्ष, पाश्चात्य संस्कृति, संयुक्त परिवार आदि कई ज्वलंतशील मुद्दों पर लेखक ने बहुत सदहृदयता से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जो इस काल के सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक वातावरण से बहुत समानता रखते हैं। गोदान को पढ़ने के पश्चात ही यह समझ में आता है कि प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को मानने वाले हैं। जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत कर प्रेमचंद में बुद्धिजीवियों को चिंतन के लिए विवश किया है और आदर्शवाद के आवरण के साथ कटु सत्य को सर्वग्राह्य बनाया। गोदान यथार्थ की पृष्ठभूमि पर लिखा गया कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है जिसमें सिसकते किसानों की आह सुनाई देती है और जिसमें शोषकों का क्रूर स्वरूप मुखरित होता है। गोदान महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त है। मरीत बेलारी की कथा समस्त भारतीय किसानों की व्यथा का चित्रण है। विभिन्न वर्गों में विभक्त कथानक व्यापकता का सूचक है। सामाजिक विसंगतियों का वर्णन है। रसों के सफल निष्पादन की झांकी है। विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम 'गोदान' आधुनिक युग बोध को दर्शाता है। गोदान चरित्र चित्रण की दृष्टि से लिओ टॉलस्टॉय के "वार एंड पीस" के समान महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति माना जाता है। उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों में वर्गीय भावना, युगीन परिदृश्य, घटना चक्र, मनोवृत्तियों का सफल चित्रण देखने को मिलता है। होरी कृषक वर्ग का, धनिया भारतीय नारी के आदर्श का, गोबर युवा वर्ग के आक्रोश का तो मेहता आदर्श के साथ यथार्थ का और मालती संवेदना का मार्ग प्रशस्त करती है। पात्रों के माध्यम से समाज की झांकी देखने को मिलती है।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि गोदान अपने सीमित कलेवर में संपूर्ण भारतीय कृषकों का बिंब तथा राजनैतिक घटनाक्रमों की झांकी प्रस्तुत करता है। शहरी और ग्रामीण संस्कृति का दिग्दर्शन कराता है और लोक कल्याण की भावना प्रस्तुत करता है। पश्चाताप की भावना के द्वारा मनुष्य के निर्मल व्यक्तित्व का वर्णन करता है। कर्म की प्रधानता एवं प्रेमभाव का समर्थन करने के कारण ही गोदान आधुनिकता की विशेषताओं को चरितार्थ करने में सक्षम है। नारी, समाज का वह बिंदु है जिस पर परिवार के साथ समाज और राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर करता है।

टिप्पणी

1.9 मुख्य शब्दावली

- **लत्ता** : कपड़ा।
- **जैजात** : संपत्ति।
- **वख्तर** : आवरण, कवच।
- **अधम** : नीच।
- **साध** : इच्छा।
- **इल्म** : ज्ञान।
- **प्रबुद्ध** : शिक्षित।
- **संचा** : एकत्र किया।
- **दबैल** : दबा हुआ।

1.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. कृषक
2. होरी ने झुनिया को
3. होरी
4. गोबर एवं धनिया
5. परंपरागत एवं आधुनिक
6. धनिया
7. वीमेन्स लीग
8. सारा अनाज और नकद तीस रुपये
9. व्यापक एवं विस्तृत
10. मानव–चरित्र का चित्र
11. वैयक्तिक
12. भारतीय कृषक जीवन का बिंब प्रस्तुत करना
13. जमींदारों के
14. व्यभिचारशाला
15. सबसे बड़ी साधना, तपस्या और त्याग
16. सेवा व्रत में

टिप्पणी

17. सजीवता एवं रोचकता
18. आंचलिकता
19. अंग्रेजी भाषा
20. मुहावरेदार होना

1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'गोदान' उपन्यास के आधार पर होरी का चरित्र–चित्रण कीजिए।
2. 'गोदान' उपन्यास में किसान जागरूकता के उदाहरणों का विश्लेषण कीजिए।
3. 'गोदान' में उठाए गए दलित प्रश्नों की समीक्षा कीजिए।
4. 'गोदान' के आधार पर होरी का चरित्र–चित्रण कीजिए।
5. मालती की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
6. 'गोदान' में आधुनिकता के कौन–कौन से लक्षण हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'भारतीय किसान जीवन के प्रति संवेदना गोदान उपन्यास के अस्तित्व का मूल कारण है।' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में गोदान में प्रस्तुत ग्रामीण परिवेश का चित्रण कीजिए।
2. गोदान में प्रस्तुत स्त्री चेतना का विस्तार से विवेचन कीजिए।
3. गोदान उपन्यास की महाकाव्य के गुणों की कसौटी पर समीक्षा कीजिए।
4. गोदान में पात्र योजना की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. गोदान उपन्यास में यथार्थ की वास्तविक झांकी प्रस्तुत की गई है, सिद्ध कीजिए।
6. 'गोदान का आदर्श आंतरिक वेदना के दमन का आदर्श है।' इस मत के पक्ष प्रतिपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. रामविलास शर्मा, *प्रेमचंद और उनका युग,* राजकमल प्रकाशन।
- ए. अरविंदाक्षन, *प्रेमचंद के आयाम,* राधकृष्ण प्रकाशन।
- परमानंद श्रीवास्तव, *उपन्यास का पुनर्जन्म,* वीणा प्रकाशन।
- मधुरेश, *हिंदी उपन्यास का विकास,* लोकभारती प्रकाशन।
- राजेश्वर गुरु, *गोदान,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- प्रेमचंद्र, *गोदानः एक परिचय,* रस्तोगी बुक्स, खुरजा।
- इंद्रनाथ मदान, *प्रेमचंद एक विवेचन,* आत्माराम एंड संस प्रकाशन, दिल्ली।
- विनोद शंकर व्यास, *प्रेमचंद की उपन्यास कला,* शिक्षा सदन, बनारस।

टिप्पणी

इकाई 2 अंधेर नगरी (भारतेंदु हरिश्चंद्र)

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 अंधेर नगरी : मूल नाटक
2.3 अंधेर नगरी का नाट्य शिल्प
2.4 'अंधेर नगरी' में यथार्थ बोध
2.5 'अंधेर नगरी' की भाषा एवं लोक तत्व
2.6 'अंधेर नगरी'–प्रासंगिकता
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 ई. को हुआ और 34 वर्ष 4 माह की आयु का अल्प जीवन सार्थकता पूर्ण जीकर वे 6 जनवरी, 1885 ई. को परलोक सिधार गए। इस अल्पायु में ही भारतेंदु जी ने हिंदी साहित्य के भंडार को प्रचुर मात्रा में श्रेष्ठ साहित्य लिखकर समृद्ध किया। उन्होंने काव्य रचना की, निबंध, नाटक तथा कथा साहित्य का लेखन किया। 18 वर्ष की आयु में उन्होंने 'प्रवास' नाटक की रचना आरंभ की जो अपूर्ण ही रहा और अब उपलब्ध नहीं है। उनके मौलिक, अनुवादित और रूपांतरित नाटकों की संख्या 17 है।

भारतेंदु जी के मौलिक नाटकों की संख्या 9 हैं। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873 ई.) 'प्रेमयोगिनी', (1875 ई.) 'भारत दुर्दशा' (1876 ई.) 'भारत–जननी' (1877 ई.), 'नीलदेवी' (1880 ई.), 'अंधेर नगरी' (1881 ई.) तथा 'सती प्रताप' (1884 ई.)। भारतेंदु जी ने संस्कृत, प्राकृत तथा अंग्रेजी भाषा के छह नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया जो अनुवादित नाट्य साहित्य की समृद्धि एवं अनुपम उपलब्धि हैं। संस्कृत में 'रत्नावली नाटिका' (1868 ई.), 'पाखंड विबंडन' (1872 ई.), 'धनंजय–विजय व्यायोग' (1873 ई.) तथा 'मुद्रा राक्षस' (1875 ई.) नाटकों का अनुवाद किया। प्राकृत से 'कर्पूरमंजरी' सदृक (1876 ई.) तथा अंग्रेजी से शेक्सपीयर के नाटक 'Merchant of Venice' का अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' (1880 ई.) में प्रस्तुत किया। 'विद्यासुंदर' (1868 ई.) तथा 'सत्य हरिश्चंद्र' (1875 ई.) भारतेंदु के रूपांतरित नाटक हैं।

भारतेंदु अपने सहयोगियों के साथ हिंदी नाटकों, निबंधों आदि के माध्यम से हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा को परिष्कृत, विकसित, जन–जन के मध्य लोकप्रिय बनांने का आंदोलन चला रहे थे। जनता की भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त एवं पूर्णतः अभिव्यंजित करने का साधन उन्होंने हिंदी साहित्य को बनाने का प्रयास किया।

टिप्पणी

'अंधेर नगरी' भारतेंदु हरिश्चंद्र रचित नाटक है। यह पुस्तक मूलतः 'अधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' की लोककथा पर आधारित है। भारतेंदु का यह नाटक एक कालजयी कृति के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। भले ही समय बदल गया है मगर यह नाटक आज भी नये अर्थों के साथ सामयिक बना हुआ है। भारतेंदु ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली से तत्कालीन समाज की मूल्यहीनता, चरित्रहीनता एवं खोखलेपन को रोचकता से प्रस्तुत किया है। हंसते–हंसते गंभीर बातें कहने में भारतेंदु का कोई सानी नहीं। इस इकाई में उनके द्वारा प्रणीत इस नाटक के विभिन्न पक्षों का विवेचन किया जा रहा है।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिंदी नाटकों की विकास यात्रा से परिचित हो पाएंगे;
- भारतेंदु द्वारा लिखित 'अंधेर नगरी' नाटक की मूल संवेदना की व्याख्या कर पाएंगे;
- 'अंधेर नगरी' के नाट्य शिल्प की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- 'अंधेर नगरी' में प्रस्तुत यथार्थ बोध का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- 'अंधेर नगरी' में प्रयुक्त भाषा एवं लोक तत्वों की पहचान कर पाएंगे;
- 'अंधेर नगरी' की प्रासंगिकता सिद्ध कर पाएंगे।

2.2 अंधेर नगरी : मूल नाटक

प्रथम दृश्य

स्थान–बाह्य प्रांत

(महंतजी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

सब– *राम भजो राम भजो राम भजो भाई।*
राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब,
राम के भजन बिनु सबहि नसाई।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु,
सूरदास भए कबिकुल–राई।।
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसीदास भए भजि रघुराई।।

महंत– बच्चा नारायणदास, यह नगर तो दूर से बड़ा सुंदर दिखलाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा–उच्छा मिलै तो ठाकुरजी को भोग लगै। और क्या।

टिप्पणी

नारायण– गुरुजी महाराज, नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुंदर है जो सो, पर भिच्छा सुंदर मिलै तो बड़ा आनंद होय।

महंत– बच्चा गोबरधनदास, तू पच्छिम की ओर से जा और नारायणदास पूरब की ओर जाएगा। देख, जो कुछ सीधा–सामग्री मिले तो श्रीशालग्रामजी का बालभोग सिद्ध हो।

गोबरधन– गुरुजी, मैं बहुत सी भिच्छा लाता हूं। यहां के लोग तो बड़े मालवार दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिंता मत कीजिए।

महंत– बच्चा बहुत लोभ मत करना। देखना, हां–
लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहिं कीजिए, यामैं नरक निदान।।

(गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान–बाजार

कबाबवाला– कबाब गरमागरम मसालेदार–चौरासी मसाला बहत्तर आंच का–कबाब गरमागरम मसालेदार–खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै। कबाब लो, कबाब का ढेर–बेचा टके सेर।

घासीराम– *चने जोर गरम–*
चने बनावै घासीराम। जिनकी झोली में दूकान।।
चना चुरमूर चुरमूर बोलै। बाबू खाने को मुंह खोलै।।
चना खावै तोकी मैना। बोलै अच्छा बना चबैना।।
चना खायं गफूरन, मुन्ना। बोलैं और नहीं कुछ सुन्ना।।
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली–ढाली।।
चना खाते मियां जुलाहे। डाढ़ी हिलती गाइ बगाहे।।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।
चने जोर गरम–टके सेर।

नरंगीवाली– नरंगी ले नरंगी–सिलहट की नरंगी, बुटवल की नरंगी। रामबाग की नरंगी, आनंदबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी। मैं तो पिय के रंग न रंगी। मैं तो भूली लेकर संगी। नरंगी ले नरंगी–कंवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा, संगतरा। दोनों हाथों लो–नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी।

हलवाई– जलेबियां गरमागरम। ले सेब इमरती लड्डू, गुलाबजामुन, खुरमा बुंदिया बरफी समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोट पकौड़ी घेवर गुपचुप। हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। मोयनदार कचौड़ी कचाका हलुआ नरम चभाका। घी में गरक चीनी में तरातर चासनी में चभाचभ। ले भूर का लड्डू। जो खाय सो भी

टिप्पणी

पछताय, जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ पड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके डत्तिस कौम हैं भाई। जैसे कलकत्ते के विलसन मंदिर के भितरिए, वैसे अंधेर नगरी के हम। सब समान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुंजड़िन– ले धनिया मेथी सोआ–पालक चौराई बथुवा करेमू नोनियां कुलफा, कसारी चना, सरसों का साग। मरसा ले मरसा। ले बैंगन लौआ कोंहड़ा आलू अरुई बंडा नेनुआं सूरन रामतरोई तरोई मुरई। ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूत निबुआ मटर हो रहा। जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिंदुस्तान का मेवा फूट और बैर।

पाचकवाला– *चूरन अमलबेद का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी।।*
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोइ खाय। मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय।।
हिंदू चूरन इसका नाम। बिलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिंद में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।
चूरन ऐसा हट्टा–कट्टा। कीना दांत सभी का खट्टा।।
चूरन चला डाल की मंडी। इसको खाएंगी सब रंडी।।
चूरन अमले सब जो खावै। दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।।
चूरन नाटकवाले खाते। इसकी नकल पचाकर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खावैं एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।।
चूरन पुलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।
ले रन का ढेर, बेचा टके सेर।

मछलीवाली– *मछली ले मछली।*
मछरिया एक टके कै बिकाय।
लाख टका कै बाला जोबन, गांइक सब ललचाय।।
नैन–मछरिया रूप जाल में, देखत ही फंसि जाय।
बिनु पानी मछरी को बिरहिया, मिले बिना अकुलाय।।

जातवाला (ब्राह्मण)– जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाएं और धोबी को ब्राह्मण से धोबी हो जाएं और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से कितान। टके के वास्ते धम्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें। वेद धम्म कुल–मरजादा सचाई–बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल। ले टके सेर।

बनियां– आटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेर (बाबाजी का चेला गोबरधनदास आता है सब बेचनेवालों की आवाज सुन–सुनकर खाने के आनंद में बड़ा प्रसन्न होता है।)

गोबरधन– क्यों भाई बनिये, आंटा कितने सेर?

बनियां– टके सेर।

गोबरधन– औ चावल?

बनियां– टके सेर।

गोबरधन– औ चीनी

बनियां– टके सेर।

गोबरधन– औ घी?

बनियां– टके सेर।

गोबरधन– सब टके सेर! सचमुच

बनियां– हां महाराज, क्या झूठ बोलूंगा?

गोबरधन– (कुंजड़िन के पास जाकर) क्यों माई, भाजी क्या भाव?

कुंजड़िन– बाबाजी, टके सेर। निनुआ मुरई धनियां मिरचा साग सब टके सेर।

गोबरधन– सब भाजी टके सेर! वाह–वाह! बड़ा आनंद है। यहां सभी चीज टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई! मिठाई कितने सेर?

हलवाई– बाबाजी! लड्डुआ हलुआ जलेबी गुलाबजामुन खाजा सब टके सेर।

गोबरधन– वाह! वाह!! बड़ा आनंद है। क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई– हां बाबाजी, यहां सब चीज टके सेर बिकती है।

गोबरधन– और राजा का क्या नाम है?

हलवाई– चौपट राजा।

गोबरधन– वाह! वाह! अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा। (यही गाता है और आनंद से बगल जाता है)

हलवाई– तो बाबाजी, कुछ लेना–देना हो तो लो–दो।

गोबरधन– बच्चा, भिक्षा मांगकर सात पैसे लाया हूं, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु–चेले सब आनंदपूर्वक इतने में छक जाएंगे।

(हलवाई मिठाई तौलता है–बाबाजी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेरनगरी गाते हुए जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

टिप्पणी

तीसरा दृश्य

स्थान–जंगल

(महंतजी और नारायणदास एक ओर से "राम भजो" इत्यादि गाते हुए आते हैं और दूसरी ओर से गोबरदास 'अधेरनगरी' गाते हुए आते हैं।)

महंत– बच्चा गोबरधनदास! कह, क्या भिक्षा लाया? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है।

गोबरधनदास– बाबाजी महाराज! बड़े माल लाया हूं, साढ़े तीन सेर मिठाई है।

महंत– देखूं बच्चा! (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोल कर देखता है) वाह! वाह! बच्चा इतनी मिठाई कहां से लाया? किस धर्म्मात्मा से भेंट हुई?

गोबरधन– गुरुजी महाराज! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है।

महंत– बच्चा! नारायणदास ने मुझसे कहा था कि यहां सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा, यह कौन–सी नगरी है और इसका कौन–सा राजा है, जहां टके सेर भाजी और टके सेर खाजा है?

गोरबधनदास– अंधेरनगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

महंत– तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं, जहां टके सेर भाजी और टके सेर खाजा हों।

दोहा

खेत खेत सब एक से, जहां कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजै बास।।
कोकिल बायस एक सम, पंडित मूरख एक।
इंद्रायन दाड़िम विषय जहां न नेकु बिबेक।।
बसिए ऐसे देश नहिं, कनक–वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।

सो बच्चा चलो यहां से। ऐसी अंधेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिले तो किस काम की? यहां एक छन नहीं रहना।

गोबरधनदास– गुरुजी; ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊंगा। और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरंच बाजे–बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूंगा।

महंत– देख बच्चा, पीछे पछतायेगा।

गोबरधनदास– आपकी कृपा से कोई दुख न होगा; मैं तो यही कहता हूं कि आप भी यहीं रहिए।

महंत– मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भर नहीं रहूंगा। देख, मेरी बात मान, नहीं पीछे पछताएगा। मैं तो जाता हूं, पर इतना कहे जाता हूं कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

टिप्पणी

गोबरधनदास– प्रणाम गुरुजी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूंगा। मैं तो फिर भी कहता हूं कि आप भी यहीं रहिए।

(महंत जी नारायणदास के साथ जाते हैं, गोबरधनदास बैठकर मिठाई खाता है।)

(अवनिका गिरती है)

चौथा दृश्य

स्थान–राजसभा

(राजा, मंत्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

एक सेवक– (चिल्लाकर) पान खाइए, महाराज।

राजा– (पीनक से चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा? सुपनखा आई ऐ महाराज। (भागता है)

मंत्री– (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा– दुष्ट लुच्चा पाजी। नाहक हमको डरा दिया। मंत्री इसको सौ कोड़े लगें।

मंत्री– महाराज! इसका क्या दोष है? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा– अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगें।

मंत्री– पर महाराज, आप पान खाइए सुनकर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा– (घबड़ाकर) फिर वही नाम? मंत्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मंत्री बेर–बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर!

खराब–

दूसरा नौकर– (एक सुराही में से एक गिलास में शराब उडेलकर देता है) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा– (मुंह बना–बनाकर पीता है) और दे।

(नेपथ्य में–'दुहाई है दुहाई' का शब्द होता है)

कौन चिल्लाता है–पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फरियादी को पकड़ लाते हैं)

फरियादी– दोहाई है महाराज दोहाई है। हमारा न्याय होय।

राजा– चुप रहो। तुम्हारा न्याय यहां होगा कि जैसा जम के यहां भी न होगा–बोलो क्या हुआ?

फ. महाराज! कल्लू बनियां की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज, न्याय दो।

राजा– (नौकर से) कल्लू बनिये की दीवार को पकड़ लाओ।

मंत्री– महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा– अच्छा, उसका भाई, लड़का दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मंत्री– महाराज! दीवार ईंट–चूने की होती है, उसको भाई बेटा नहीं होता।

टिप्पणी

राजा– अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ। (नौकर लोग दौड़ कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिये! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई?

मंत्री– बरकी नहीं महाराज, बकरी।

राजा– हां हां, बकरी क्यों मर गई–बोल, नहीं अभी फांसी देता हूं।

कल्लू– महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी।

राजा– अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़कर लाते हैं) क्यों बे कारीगर! इसकी बकरी किस तरह मर गई?

कारीगर– महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा चूना बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा– अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ। (कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर–सुपाड़ी–चूनेवाले! इसकी कुबरी कैसे मर गई?

चूनेवाला– महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं; भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा– अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती! गंगा–जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई?

भिश्ती– महाराज! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कसाई ने मसक इतनी बड़ी बना दी कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा– अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकाले। (लोग भिश्ती को निकालते हैं कस्साई को लाते हैं) क्यों बे कस्साई मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई?

कस्साई– महाराज! गंड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा– अच्छा, कस्साई को निकालो, गंड़ेरिए को लाओ। (कसाई निकाला जाता है, गंड़ेरिया आता है) क्यों बे ऊख पौंड़े के गंड़ेरिए, ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई?

गंड़ेरिया– महाराज! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उसके देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा– अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।) गंड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा आता है) क्यों बे कोतवाल! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गंड़ेरिए ने घबराकर बड़ी भेड़ बेची, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनियां दब गया?

कोतवाल– महाराज महाराज! मैं तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इंतजाम के वास्ते जाता था।

टिप्पणी

मंत्री– (आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूंक दे या फांसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाला?

राजा– हां हां, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाला कि उसकी बकरी दबी?

कोतवाल– महाराज महाराज–

राजा– कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फांसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़कर राजा जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

पांचवां दृश्य

स्थान–अरण्य

(गोबरधनदास गाते हुए आते हैं।)

(राग काफी)

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।
नीच उंच सब एकहि ऐसे। जैसे भंडुए पंडित तैसे।।
कुल–मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग–लुगाई।।
जात–पांत पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।
वेश्या जोरु एक समाना। बकरी गउ एक करि जाना।।
सांचे मारे मारे डोलै। छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं।
प्रगट सभ्य अंतर छलधारी। सोई राजसभा बल भारी।।
सांच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहु विधि पदवी पावैं।
छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहिं लागे।।
भीतर होइ मलिन की कारो। चहिए बाहर रंग चटकारो।।
धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करे सो न्याव सदाई।।
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले औरु प्यादे।।
अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुं राजा रहत विदेसा।।
गो द्विजश्रुति आदर नहिं होई। मानहुं नृपति बिधर्मी कोई।।
उंच नीच सब एकहिं सारा। मानहुं ब्रह्म–ज्ञान बिस्तारा।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।

(बैठकर मिठाई खाता है)

गुरुजी ने हमको नाहक यहां रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है, पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, मिठाई चाभना, मजे में आनंद से रामभजन करना।

टिप्पणी

(मिठाई खाता है चार प्यादे चार ओर से आकर उसको पकड़ लेते हैं)

प. प्या.– चल बे चल, बहुत मिठाई खाकर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

दू. प्या.– बाबाजी चलिए, नमोनारायन कीजिए।

गोबरधन.– (घबड़ाकर) हैं! यह आफत कहां से आई! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हो?

प. प्या.– आपने बिगाड़ा है या बनाया है इससे क्या मतलब, अब चलिए। फांसी चढ़िए।

गोबरधन.– फांसी! अरे बाप रे बाप फांसी! मैंने किसकी जमा लूटी है कि मुझको फांसी! मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फांसी!

दू. प्या.– आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फांसी होती है।

गोबरधन.– मोटे होने से फांसी? यह कहां का न्याय है! अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती।

प. प्या.– जब सूली चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि सच। सीधी राह से चलते हौ कि घसीटकर ले चलें?

गोबरधन.– अरे बाबा, क्यों बेकसूर का प्राण मारते हो? भगवान के यहां क्या जवाब दोगे?

प. प्या.– भगवान को जवाब राजा देगा। हमको क्या मतलब। हम तो हुक्मी बंदे हैं।

गोबरधन.– तुम भी बाबा बात क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फांसी देते हो?

प. प्या.– बात यह है कि कोतवाल को फांसी का हुकुम हुआ था। जब फांसी देने को उसको ले गए, तो फांसी का फंदा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फांसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याव न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फांसी दें।

गोबरधन.– तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फांसी देते हैं?

प. प्या.– इसमें दो बात है–एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ें तो वह न–जाने क्या बात बनावे कि हमीं लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससे तुम्हीं को फांसी देंगे।

गोबरधन.– दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूं! अरे यहां बड़ा ही अंधेर है, अरे गुरुजी महाराज का कहा मैंने न माना उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरुजी कहां हो! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूं। गुरुजी गुरुजी–

(गोबरधनदास चिल्लाता है, प्यादे उसको पकड़कर ले जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

टिप्पणी

छठा दृश्य

स्थान–श्मशान

(गोबरधनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

गोबरधन.– हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फांसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धरम बिचारो। अरे मुझ गरीब को फांसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा? अरे मुझे छोड़ दो। हाय! हाय! (रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है)

प. सिपाही– अबे, चुप रह–राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है? यह तेरा आखरी दम है, राम का नाम ले–बेफाइदा क्यों शोर करता है? चुप रह–

गोबरधन.– हाय! मैंने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरुजी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अंधेरनगरी और राजा का नाम चौपट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगरी में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावे। गुरुजी कहां हो? बचाओ–बचाओ–गुरुजी–गुरुजी–

(रोता है, सिपाही) लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं।

(गुरुजी और नारायणदास आते हैं)

गुरु– अरे बच्चा गोबरधनदास! तेरी यह क्या दशा है?

गोबरधन.– (गुरु को हाथ जोड़कर) गुरुजी! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इसके लिए मुझे फांसी देते हैं, गुरुजी बचाओ।

गुरु– अरे बच्चा! मैंने तो पहले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं; तैने मेरा कहना नहीं सुना।

गोबरधन.– मैंने आपका कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला। आपके सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे। मैं आप ही का हूँ, आपके सिवा और कोई नहीं। (पैर पकड़कर रोता है)

गुरु– कोई चिंता नहीं, नारायण सब समर्थ है। (भौं चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अंतिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारी हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।

सिपाही– नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिए।

(सिपाही हट जाते हैं। गुरुजी चेले के कान में कुछ समझाते हैं)

गोबरधन– (प्रगट) तब तो गुरुजी हम अभी फाँसी चढ़ेंगे।

गुरु– नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे।

गोबरधन– स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या? आप तो सिद्ध हो, आपको गति–अगति से क्या? मैं फाँसी चढ़ूँगा।

(इसी प्रकार दोनों हज्जत करते हैं – सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

प. सिपाही– भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

टिप्पणी

दू. सिपाही– हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गबड़ा है।

(राजा, मंत्री, कोतवाल आते हैं)

राजा– यह क्या गोलमाल है?

प. सिपाही– महाराज! चेला कहता है मैं फांसी पड़ूंगा, गुरु कहता है मैं पड़ूंगा; कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है।

राजा– (गुरु से) बाबाजी! बोलो। काहे को आप फांसी चढ़ते हैं?

गुरु– राजा! इस समय ऐसी साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा।

मंत्री– तब तो हमीं फांसी चढ़ेंगे।

गोबरधन.– हम हम। हमको तो हुकुम है।

कोतवाल– हम लटकेंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा– चुप रहो, सब लोग। राजा के आछत और कौन बैकुंठ जा सकता है! हमको फांसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी।

गुरु– जहां न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजान–समाज।
ते ऐसहि आपुहि नसैं, जैसे चौपटराज।।

(राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं)

नोट– (यह नाटक छोटा है इसलिए पूर्ण रूप से यहां दिया जा रहा है। नाटक की भाषा बहुत सहज एवं सरल बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले हैं। विद्यार्थियों को स्वतः समझ में आने वाली है, इसलिए इसके व्याख्यांश देने की जरूरत महसूस नहीं की गई। अंधेर नगरी के यथार्थ बोध में इसकी व्याख्या समाहित हो गई है।)

2.3 अंधेर नगरी का नाट्य शिल्प

शिल्प की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' नाटक को उत्कृष्ट कोटि का नहीं कहा जा सकता किंतु तत्कालीन समय, समाज और साहित्यिक परिस्थितियों पर दृष्टि डालें तो उत्कृष्ट नाट्य शिल्प की अपेक्षा करना अनुचित ही होगा। पराधीन भारत के संवेदनशील और उत्तरदायित्वपूर्ण रचनाकार भारतेंदु जी ने कथ्य को प्रमुखता दी जो तत्कालीन समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक था। भारतेंदु जी एवं उनके सहयोगियों द्वारा हिंदी साहित्य में गद्य का आरंभ होने जा रहा था, इसलिए परिष्कृत भाषा एवं शैली की अपेक्षा भी बेमानी है लेकिन ऐसा नहीं कि 'अंधेर नगरी' भाषा, शैली, शिल्प किसी भी कसौटी पर हीन ठहरता हो। यह इस दृष्टि से उत्तम एवं सफल है, सार्थक है कि इसकी भाषा शैली ने तत्कालीन भारतीय समाज को मनोरंजन प्रदान कर उनमें जीवंतता एवं उत्साह जाग्रत किया साथ ही उनके विवेक को झकझोर कर रख दिया। सामाजिक व्यवस्था, राजा एवं प्रजा के कर्तव्य तथा अधिकारों के प्रति सोचने के लिए उन्हें नई चिंतन–दृष्टि प्रदान की। जब रचना के शिल्प की बात आती है तो हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा 'नीड़ का निर्माण फिर' से दो टिप्पणियां उद्धृत करना आवश्यक लगता है ताकि 'अंधेर नगरी' के माध्यम से इसके रचनाकार के शिल्प कौशल पर न्यायपूर्वक टिप्पणी की जा सके। बच्चन जी लिखते हैं– "जीवन उतना ही नहीं

टिप्पणी

जितना वह शिल्प से सध सके या शिल्प के सांचे में ढल सके। शिल्प से सधा जीवन प्रायः निर्जीव नहीं तो पालतू जैसा लगता है। जब कोई कलाकार जीवन को उसकी उद्दामता में देखता और उसे पकड़ने का प्रयत्न करता है– 'जैसे कोई मयगल हाथी को' – तो शिल्प की जंजीरें टूटने लगती हैं। भनिति भदेस हो जाती है। कलाकार जब जीवन के किसी बड़े सत्य का साक्षात्कार करता है तभी वह भनिति के भदेस होने के खतरे की परवाह नहीं करता। मीरा, कबीर तो खतरे ही खतरे चलते हैं।" बच्चन जी की दूसरी टिप्पणी भी 'अंधेर नगरी' के शिल्प की स्थिति पर सार्थकतापूर्ण प्रकाश डालने में समर्थ सिद्ध होती है। वे लिखते हैं– "शिल्प के प्रति सचेत होना तो ठीक है, पर शिल्प पर अधिकार होना कलाकार के लिए बहुत बड़ा खतरा है। इसकी परिणति होती है कलाकार के ऊपर शिल्प के अधिकार में। जीवन की पकड़ जैसे–जैसे छूटती जाती है, शिल्प की जकड़ मजबूत और मजबूत होती जाती है।"

यहां दृष्टव्य है कि जीवन की पकड़ भारतेंदु जी पर मजबूत थी। समाज उनके भीतर था, अपने समस्त दुखों, अभावों, अविवेक और अयोग्यता के साथ वे समाज के भीतर थे, उसे इन नकारात्मक प्रभावों, गुणों से छुटकारा दिलाने के लिए। इसलिए 'अंधेर नगरी' का व्यंग्य प्रभावी बन पड़ा है। इस काव्यात्मक व्यंग्य प्रधान प्रहसन में कथ्य प्रखर व्यंग्य वाक्यों के माध्यम से लक्ष्य बेध करता है। इसकी कथावस्तु लोक रुचि के अनुकूल है इसलिए इसकी लोकप्रियता बढ़ी साथ ही साथ रंगमंच के अनुकूल होने के कारण यह बार–बार मंचित किया गया। कलात्मक रूप से प्रौढ़ न होने पर भी इसमें साहित्यिक गरिमा है इस दृष्टि से यह भारतेंदु जी का मौलिक एवं सफल नाटक माना जाता है।

कलात्मक विकास की दृष्टि से भारतेंदु जी के नाटकों को कई कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। 'विषस्य विषमौषधम्' तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' प्रथम चरण के नाटक हैं जिनमें कला का विकास अल्प है। विषय चयन तथा वस्तु–व्यापार की दृष्टि से भी ये नाटक सामान्य तथा अपरिपक्व माने जा सकते हैं। कलात्मक विकास की एकांगिता 'चंद्रावली नाटिका' में दृष्टिगोचर होती है। इनमें प्रेमातिरेक से वातावरण भावपूर्ण बन पड़ा है। कथा–प्रसंग के विकास में नाटकीय गति अवरुद्ध सी प्रतीत होती है। कथोपकथन तथा कथा–वस्तु के विन्यास में सहजता तथा नाट्यानुकूलता का अभाव प्रतीत होता है।

'प्रेमयोगिनी' में सामाजिक यथार्थ को प्रश्रय मिला होने पर भी वस्तु–व्यापार का अभाव खटकता नहीं तो कमी अवश्य अनुभव होती है। राजनैतिक धरातल पर रचे हुए 'भारत–जननी' तथा 'भारत दुर्दशा' नाटकों में महत्वपूर्ण उद्देश्य होने के साथ ही प्रचारात्मकता झलकती है अतः कलात्मक विकास होने के साथ ही इन नाटकों में अपेक्षित प्रौढ़ता के दर्शन नहीं होते। कलात्मक विकास की संपूर्णता की दृष्टि से 'नील देवी' महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ मौलिक नाटक हैं। इसमें सुव्यवस्थित कथावस्तु तथा चरित्रों का क्रमिक व्यक्तिगत विकास पाया जाता है। इसमें रस–नियोजन उत्तम कोटि का है।

भारतेंदु जी ने जब नाट्य रचना प्रारंभ की तब हिंदी साहित्य में कोई निजी या व्यक्तिगत नाट्य परंपरा नहीं थी। अतः नाट्य परंपरा के निर्माण एवं विकास का कार्य उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर किया। नाट्य रचना का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए उन्होंनें 'नाटक' नामक निबंध की रचना की। देश, काल तथा तत्कालीन परिस्थितियों

टिप्पणी

के अनुकूल परिवर्तनों के साथ उन्होंने स्वतंत्र नाट्य–विधान की स्थापना की जिसका अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसमें संस्कृत के प्राचीन सिद्धांत एवं पश्चिम के आधुनिक नाट्य सिद्धांतों का समन्वित रूप है तथा लोक–नाटकों का प्रभाव भी इसमें दृष्टिगोचर होता है अतः 'अंधेर नगरी' को किसी एक नाट्य–सिद्धांत के निकष पर नहीं कसा जा सकता। यह सभी नाट्य–कलाओं का अपूर्व समन्वय है। भारतेंदु जी बहुपठ थे। उन्होंने भारत के 'नाट्यशास्त्र', 'दशकरूपक', 'साहित्य दर्पण', 'काव्य प्रकाश' के साथ गुजराती, मराठी, बंगाली नाट्य साहित्य का पर्याप्त अध्ययन किया था। यूनान, फ्रांस, इटली, जर्मनी, ब्रिटेन और अमेरिका के तत्कालीन नाट्य आंदोलनों पर गहराई से चिंतन किया था। 'विल्सन हिंदू थियेटर', 'लाइफ ऑफ दि इमिनेंट परसंस', 'ड्रामेटिस्ट एंड नॉवेलिस्ट', 'हिस्ट्री ऑफ द इटालिक थिएटर्स' जैसी नाट्य रचनाओं का गहन अध्ययन किया था।

भारतेंदु की नाट्य रचनाओं पर अंग्रेजी और बांग्ला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। परंतु सभी प्रभावों और अनुभवों को उन्होंने हिंदी भाषा की मूल संवेदना से जोड़कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया। 'अंधेर नगरी' में भारतेंदु ने विषय और शैली को जिस रूप में प्रस्तुत किया है उससे नाट्य कला की पूर्णता का अनुभव होता है। विषय के रूप में सामाजिक संस्कार, देश–प्रेम, इतिहास, धर्म, भक्ति, आर्थिक चेतना को विशेष महत्व दिया तथा भारतीय जनता आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ आत्मसम्मान से पूर्ण जीवन जी सके। भारतीय जन शिक्षित और संस्कारित हों। भारतेंदु का ऐतिहासिक चिंतन भारत की आम जनता के ही परिप्रेक्ष्य में था। नाट्य शैली में भी परिवर्तन करते हुए उन्होंने गद्य–विधान, प्रतीक धर्मी लघु संवाद, छोटे–छोटे दृश्यों के भीतर दृश्य को प्रस्तुत करने की नई विधि, साज–सज्जा, रंग–निर्देश, लोक नाट्यों का महत्व, अवसर के अनुकूल गीत–संयोजना, संप्रेषित होने योग्य सहज भाषा, हास्य वृत्ति का विकास, दुखांत नाटकों की रचना, परिवेश के एवं परिस्थितियों के अनुकूल रचना, भारतीय एवं यूरोपीय नाट्य तत्वों का समन्वय आदि को महत्व दिया।

भारतेंदु जी ने नाटकों के पांच उद्देश्य निर्धारित किये थे– शृंगार, हास्य, कौतुक, समाज–संस्कार और देश वत्सलता। प्रथम तीन उद्देश्य 'रस' सिद्धांत के अनुकूल और अंतिम दो उद्देश्य प्रभावान्विति के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं एवं इन्हीं दो उद्देश्यों को नाटक के प्राण बनाकर (रस संहित) वे भारतीय समाज को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जागरूक बना रहे थे तथा समाज को शिक्षा की ओर प्रेरित कर अंध–विश्वास एवं कुरीतियों से दूर ले जा रहे थे। 'अंधेर नगरी' नाटक में ये पांचों उद्देश्य यथावसर प्रयोग किये गए हैं। भारतेंदु जी की यह मौलिक अवधारणा नाटक के क्षेत्र में एक अद्भुत नाट्य शिल्प के दर्शन कराती हैं। इस नव–प्रवर्तन में भारतेंदु की नाट्य कला अंग्रेजी एवं बांग्ला के प्रभाव को भी दर्शाती है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र समन्वयवादी नाटककार थे। उन्होंने प्राचीन सिद्धांतों को ही लीक के रूप में नहीं अपनाया। 'अलौकिक विषय का आश्रय' लेकर संधि, संध्यग, वीथ्यंग और लास्यांगों जैसे दुरुह प्राचीन नियमों का पालन कर नाट्य रचना करना आवश्यक नहीं समझा। वे मानते थे कि नाट्य रचना करते हुए यदि सायास उपरोक्त प्राचीन नियमों को

टिप्पणी

नियोजित किया जाए तो रचना में असहजता एवं अस्वाभाविकता उत्पन्न होती है। वे सहज, सरलता एवं स्वाभाविकता को ही नाट्य रचना का धर्म मानते थे। उनकी यह मान्यता 'अंधेर नगरी' में देखी जा सकती है। नाटक का दर्शकों पर ऐसा प्रभाव हो कि वे मंच से, नाट्य के कथ्य से बंधकर रह जाएं। उनके हृदय आंदोलित हो उठें, यही उनका सर्वोपरि उद्देश्य था। परंपरा और आधुनिकता दोनों में सामंजस्य स्थापित कर उसे समाजोपयोगी बनाना ही उनका नाट्य धर्म था। उनका मानना था कि "प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि को शोभा संपादन करने में उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है"– 'नाटक' (निबंध) इस कथन से नाट्य कला के संबंध में उनकी दो प्रवृत्तियां सामने आती हैं– एक तो नवीनता के प्रति आग्रह और दूसरी आधुनिकता के प्रति नया दृष्टिकोण। युगीन आवश्यकताओं एवं अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में नाट्य रचना कर समाज को लाभान्वित करना एक लोकधर्मी, सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य था जिसे 'अंधेर नगरी' नाटक में देखा जा सकता है।

नाट्य शास्त्र के अनुसार 'प्रहसन' में केवल एक अंक होता है। 'अंधेर नगरी' भी एक अंक वाला प्रहसन है। लेकिन इसकी सहजता बनाए रखने के लिए इसमें 'संध्यग' जैसी दुरुह नाट्य प्रक्रिया को स्थान नहीं दिया गया है। बल्कि 'संध्यग' की कुछ प्रक्रियाओं को सहज, आधुनिक रूप प्रदान कर 'मुख संधि' में 'उपक्षेप', 'परिकर', 'परिन्यास', 'प्राप्ति', और 'उद्‌भेद' की रचना की गई है। निर्वहण संधि में भी 'संधि', 'विवोध', 'ग्रथन', 'निर्णय', 'परिभाषा' और 'पूर्वाभाव', संधियों में ऐसी ही सरल साधु संयोजना की गई है।

पात्रों एवं दृश्यों की कोई निश्चित सीमा न होते हुए भी प्रहसन में अंक एक ही होता है। भारतेंदु जी ने शास्त्रीय नियमों के अनुरूप ही 'अंधेर नगरी' में अंक, दृश्य और पात्र–विधान किया है। इस प्रहसन में लिखे छः अंक वास्तव में छः दृश्य हैं। भारतेंदु जी ने 'दृश्य' के स्थान पर 'अंक' शब्द का प्रयोग किया है। हर अंक में दृश्यांतर एवं विषयांतर होता है। लेकिन अंधेर नगरी के सभी छः अंकों में दृश्य परिवर्तन न करना ही यह सिद्ध करता है कि ये अंक नहीं दृश्य है।

नाट्य शास्त्रों में लास्यांगों को प्रहसन के लिए आवश्यक माना गया है। नाटक को मनोरंजक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए काव्यशास्त्रियों ने लास्य की कल्पना की। भरत मुनि लास्यांग को स्त्री–पुरुषों के परस्पर भाव पर आधारित मानते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने सोद्देश्य प्रहसन में (अंधेर नगरी) लास्य को स्थान नहीं किया अगर वे लास्यांग के प्रति आग्रही हो गए होते तो 'अंधेर नगरी' में व्यंग्य की धारदार मार कुंठित हो गई होती। इस नाटक में युगीन यथार्थ को व्यंग्य के जिस तेवर के साथ व्यक्त किया गया है और यह जितना प्रभावशाली बन पड़ा है वह प्रभाव नष्ट नहीं तो कम अवश्य हो जाता। आधुनिक नाटकों में मनुष्य के जीवन और समाज को जिस सूक्ष्म बोध के साथ स्वाभाविक रूप से उभारा जाता है वह लास्य के साथ समर्थ नहीं हो सकता। लास्यांग नृत्य और गीतों में नियोजित रहता है। 'अंधेर नगरी' के प्रथम दृश्य में घासीराम, पाचकवाला और मछलीवाली के द्वारा गाए गए लोकगीत हैं। पांचवे दृश्य में गोबरधनदास काफी राग गाते हैं। इसमें कहीं किसी नृत्य को स्थान नहीं मिला है। इसमें कथा को प्रभावित करने वाली कोई स्त्री पात्र नहीं हैं केवल कथावस्तु का अंग बनकर बाजार में बैठी मछलीवाली, कुंजड़ित और नारंगीवाली जैसी स्त्री पात्र हैं जो उल्लेखनीय भूमिका नहीं निभाते।

टिप्पणी

प्रहसन का नायक गोबरधनदास का इन स्त्रियों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है जो लास्य को जन्म दे। इन स्त्रियों के रूप–रंग या भावाभिव्यक्ति को नाटक में महत्व नहीं दिया गया है केवल एक ही संवेदना– 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टेक सेर खाजा' को विस्तार देने में इन्हें सहयोगी बनाया गया है। अभिनव गुप्त ने गेय पद लास्यांग के पांच भेद बताए हैं– प्रावेशिकी, नैष्क्रामिकी, अपेक्षिकी, प्रासादिकी तथा अंतरा। प्रावेशिकी गेय पद–लास्यांग वह होता है जो 'गान' पात्र के रंगभूमि–प्रवेश के समय गाया जाता है। इस दृष्टि से 'अंधेर नगरी' प्रथम एवं पंचम दृश्य के गीत गेय पद लास्यांग की कोटि में आ जाते हैं।

रस के संदर्भ में विचार करने पर प्रहसन का प्रधान रस 'हास्य' माना गया है। 'अंधेर नगरी' प्रहसन का अंगी रस हास्य प्रधान है। परंपरागत एक कथा को कवि की कल्पना के साथ जोड़कर रचा गया। यह हास्य रस प्रधान नाटक है। साधु गोबरधनदास की भ्रष्ट प्रवृति, उसका धर्माडंबर, लोभ–लालच और भोगी आचरण उसे हंसी का पात्र बनाते हैं। भारतेंदु जी ने भाषा, भाव और अभिनय को अत्यंत सूक्ष्मता से समन्वित किया है जिससे हास्य की सृष्टि हुई है। इसमें राजा, मंत्री, कोतवाल, प्यादे, सामान्य जन की भाव मुद्राएं तथा संवाद भी हास्य रस से ओत प्रोत हैं।

'अंधेर नगरी' में प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तावना एवं भरत वाक्य का विन्यास नहीं किया गया है किंतु 'समर्पण' में प्रस्तावना के अप्रत्यक्ष दर्शन होते हैं वहीं प्रथम अंक के 'सामूहिक गान' में नांदीपाठ और प्रहसन के अंत में महंत द्वारा पठित दोहा– "जहां न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज, ते ऐसहिं आपुहिं नर्स जैसे चौपट राज" में भरत वाक्य की अनुभूति होती है। प्रहसन में 'भारती वृत्ति' के समायोजन को अनिवार्य माना जाता है। नाट्यशास्त्र के कठोर बंधन को 'अंधेर नगरी' में शिथिल कर दिया गया है क्योंकि 'भारती वृत्ति' में साधु भाषा के प्रयोग पर बल दिया जाता है जब कि इस नाटक में असाधु लोगों को मूर्खता और कुटिलता को दर्शाया जाना था। 'अंधेर नगरी' नाटक के प्रथम दृश्य में 'राम भजा...' गान के साथ ही कथा का बीजारोपण होता है जो तीन दृश्यों में परिपक्व कथा के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

महंत के शिष्य गोबरधनदास बाजार में हर वस्तु के टका सेर मिलने से प्रसन्न हो जाता है। तीसरे दृश्य में महंत द्वारा ऐसे देश में रहने से मना करना जहां हर वस्तु का एक ही दाम है और गोबरधनदास ऐसे ही देश में रहना चाहता है– प्रसंग का चित्रण है। यहां लेखक की व्यंजनापूर्ण शैली कथा को अप्रत्यक्ष गांभीर्य प्रदान करती है। महंत का गोबरधनदास को छोड़कर चले जाने से कौतूहल जागता है कि आगे क्या होगा? अगले तीन अंकों में कार्य की पूर्णता दर्शाई जाती है जब अविवेकी राजा के अन्यायपूर्ण निर्णय के कारण अनेक हास्यास्पद स्थितियां उपस्थित होती हैं और गोबरधनदास फांसी पर चढ़ाने जाने के लिए पकड़ा जाता है। उसे महंत की गूढोक्ति का स्मरण हो आता है कि जहां 'टके सेर भाजी और टके सेर खाजा' हो ऐसे देश में नहीं रहना चाहिए। अंततः महंत यानी गुरुजी आकर कहते हैं कि 'यह ऐसी साइत है कि इसमें फांसी चढ़ने के लिए तैयार हो जाना है।

'अंधेर नगरी' की रस–योजना सफल एवं कृत–कार्य होती है। प्रेक्षकों को बांधे रखने में इसकी भाषा, शैली और कथ्य भरपूर सफलता प्राप्त करते हैं। भरपूर हास्य के साथ एक गंभीर उपदेश देता हुआ यह नाटक सर्वकालिक प्रासंगिक बना हुआ है। इसकी नाटकीयता

टिप्पणी

के उत्कर्ष में गीतों की भूमिका भी महत्वपूर्ण हैं। कथा की गति को तीव्र करने में तथा मूल संवेदना को समझने में ये गीत सहयोगी बने हैं। सौत बुलाना, टके सेर मिलना, चाभना आदि जैसी लोक भाषा की विशेष अभिव्यक्तियों के कारण इसमें लोक जीवन के दर्शन होते हैं। पराधीन भारत की पीड़ा को व्यंग्य–विनोद के माध्यम से अभिव्यंजित कर जागरण का, सुधार का, स्वतंत्रता के लिए उठ खड़े होने का संकेत देते हुए रची गई नाट्य रचनाओं में 'अंधेर नगरी' एक ऐसा नाटक है जो इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में भी पूरी रोचकता के साथ मंचित किया, देखा और पढ़ा जा रहा है। हर आयु, हर जाति के स्त्री–पुरुषों के बीच लोक प्रिय यह नाटक अपने नाट्य शिल्प में बेजोड़ है।

2.4 'अंधेर नगरी' में यथार्थ बोध

व्यंग्यात्मक यथार्थवादी नाटकों में भारतेंदु जी के कथ्य का मूल उद्देश्य सामाजिक तथा धार्मिक विचारों एवं दृष्टिकोण को परिष्कृत करना तथा इनके माध्यम से राष्ट्र की उन्नति में सहभागिता करना है। प्रायः कुछ नाटकों में गंभीरता का अभाव होने से वे कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं बन सके है। लेकिन इनकी प्रभावोत्पादकता एवं सोद्देश्यता में कमी नहीं दिखाई देती। युग की आवश्यकता को भारतेंदु जी खूब समझते थे एवं यह उनकी यथार्थवादी रचना दृष्टि एवं धर्म था कि वे युग और लेखक का एक दूसरे में परकाया प्रवेश हो जाने दें, अंतर्विलय हो जाने दें। जितना अधिक लेखक एवं युग एक दूसरे से समन्वित होंगे नाटक उतना ही अधिक उपयोगी, प्रभावशाली एवं आकर्षक होगा। 'अंधेर नगरी' नाटक भारतेंदु हरिश्चंद्र की एक ऐसी ही कृति है जो तत्कालीन यथार्थ की सशक्त एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। पराधीन भारत की अशिक्षित, विवेकहीन, शोषित जनता को झकझोर कर जगाने वाला यह एक अद्भुत ऐतिहासिक नाटक है। इसकी रचना 1881 में हुई। यह एक अद्भुत विशुद्ध प्रहसन है जिसमें राजा, मंत्री और गोबरधनदास की भूमिकाएं, उनका चरित्र और कृत्य हास्य की सृष्टि करते हैं। यह एक अंक वाला छह दृश्यों का प्रहसन है। यह शास्त्रीयता की दृष्टि से शिथिल है तथा अभिनय कला में भारतेंदु की नव प्रयोगवादी दृष्टि दिखाई देती है। इस नाटक में नाट्यधर्मी परंपरा में प्राचीन एवं नवीन का मिश्रण है।

'अंधेर नगरी' एक यथार्थवादी नाटक है। भारतेंदु युग में भारतीय जनता दोहरी शासन व्यवस्था के बीच घुन की तरह पिस रही थी। एक ओर भारतीय राजाओं की स्वार्थवश अंग्रेजों की चापलूसी करने की नीति और जनता का शोषण तथा दूसरी ओर अंग्रेजी शासकों की प्रताड़ना, अत्याचार, शोषण और दमन। प्राचीन भारतीय मूल्य खंडित हो रहे थे। अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी संस्कृति के प्रचार–प्रसार के कारण उपभोक्ता संस्कृति, स्वार्थ, कुटिलता और दोगलापन तीव्र गति से विकसित हो रहे थे। देशी राजा अंग्रेजों को प्रसन्न करने के लिए चाटुकारिता कर रहे थे और उनके कर्मचारी उन्हें प्रसन्न करने के लिए उनके हर मूर्खतापूर्ण और अमानवीय कृत्य में उनका साथ दे रहे थे, उनकी हां में हां मिला रहे थे। साहित्यकार इन परिस्थितियों में जनता को सीधे–सीधे कोई सीख या उपदेश नहीं दे सकते थे अतः भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे महान रचनाकार ने व्यंग्य नाटकों को शस्त्र की तरह प्रयोग करना उचित समझा। वे जानते थे कि व्यंग्य की मार गहरी होती है तथा इसका उत्तर देना कठिन होता है अतः इसकी शक्ति अत्यंत प्रबल होती है। कुशल व्यंग्यकार की व्यंग्य विरोधी

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. अंधेर नगरी में नाट्य शिल्प की अपेक्षा कौन–सा तत्व प्रमुखता से उभर कर आया है?
2. नाट्य रचना का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए भारतेंदु ने कौन–सा निबंध लिखा ?
3. भारतेंदु की नाट्य रचनाओं पर किसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है?
4. भारतेंदु ने नाटक के कितने उद्देश्य निर्धारित किये थे?
5. अंधेर नगरी में कौन–सा रस प्रधान रूप में विद्यमान है?

को परास्त करने का प्रबल अस्त्र होता है। भारतेंदु जी ने इसकी शक्ति को समझा एवं रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से ग्रस्त अशिक्षित, शोषित, पीड़ित, हतोत्साहित जनता को नव जागरण का प्रकाश देने हेतु इसका उपयोग किया। रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से उन्होंने टक्कर ली उन्हें मखौल बनाकर हास्यास्पद स्वरूप प्रदान किया। विरोधियों पर व्यंग्यबाणों की वर्षा की। उन्होंने तत्कालीन यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया। नाटक इस उद्देश्यपूर्ति के लिए एक सशक्त विधा बना।

तत्कालीन भारत में जब महारानी विक्टोरिया इंग्लैंड में रहती थीं और उनके प्रतिनिधि अंग्रेज अधिकारी भारतीयों पर शासन करने के लिए मनमाने कानून लागू करते थे, भारत की जनता त्राहि–त्राहि कर उठी थी। अंग्रेज़ अधिकारी भले राजाओं को गद्दी से हटा कर किसी मूर्ख और चापलूस व्यक्ति को उत्तराधिकारी के रूप में बिठाते थे, ताकि वह राज्य के संसाधनों का उपयोग जनता के लिए न करें बल्कि अंग्रेजों के हित में करें। सामान्य जनता भय और आतंक के साए में जीती थी जबकि धूर्तों और चालाकों को सुख ही सुख था। 1857 की असफल क्रांति ने जनता के आत्मविश्वास को तोड़ दिया था। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने युग के इस कटु यथार्थ को दर्शाते हुए जनता को इस यथार्थ को बदलने के लिए, संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना चाहते थे उनमें आशा का संचार करना चाहते थे ताकि जनता पुनः अपने आत्मबल को पहचाने, अपने आत्मविश्वास को जाग्रत करें और अपने अधिकारों के लिए लड़े। 'अंधेर नगरी' की रचना के पीछे यही मुख्य प्रेरणा थी, उद्देश्य था।

हिंदी प्रहसन पर किये गए शोध कार्यों, समीक्षा ग्रंथों में से अधिकांश ग्रंथों में 'हरबोंग राजा', 'अनबूझ राजा' और 'धमधूसर राजा' से संबंधित लोकोक्ति का चित्रण किया गया है। पूर्वी उत्तर और बिहार में 'अनबूझ राजा' तथा 'धमधूसर राजा' दोनों का प्रयोग किया जाता है। 'हरबोंग' को 'हरभूम' का राजा बताते हुए कहते हैं कि वह अविवेकी था और चाटुकारों से घिरा रहता था। इसलिए उसके राज्य में अव्यवस्था और अन्याय का साम्राज्य था। किसी मामले में हरबोंग ने गोरखनाथ को फांसी की सजा सुना दी तब उसके गुरु मच्छंदर नाथ ने निर्दोष गोरखनाथ को बचाने के लिए स्वर्ग का प्रलोभन देकर हरबोंग को ही फांसी पर चढ़वा दिया। इसी लोक कथा के मूल भाव को तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक यथार्थ के संबंध में आधार बनाकर भारतेंदु जी ने 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना की। उन्होंने 'चौपट' पद का प्रयोग कर नष्ट हो रही सामाजिक व्यवस्था के यथार्थ का परिचय दिया है। 'राज्य' और 'राजा' दोनों ही विनाश को प्राप्त हो रहे थे। राजा का विवेक नष्ट हो चुका था अतः उसका प्रभाव राजकीय न्याय, अनुशासन और आर्थिक व्यवस्था पर पड़ रहा था। अतः 'अंधेर नगरी चौपट राजा' लोकोक्ति अत्यंत सार्थक और सफल है।

भारतेंदु जी ने लोकोक्ति को आधार अवश्य बनाया किंतु स्वयुगीन यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए इसे बिल्कुल नया स्वरूप प्रदान किया ताकि भारतीय जनता इस नाटक के व्यंग्यार्थ को और गूढ़ार्थ को बेहतर ढंग से समझकर अंग्रेजी राज्य के प्रति असंतोष से भर जाए और स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता के पथ पर चल पड़े। युग सापेक्षता की चुनौती को स्वीकार करते हुए जनता को यथार्थ से परिचित कराने के लिए उन्होंने नाटक के दृश्य, पात्र, संवाद और भाषा का प्रयोग अत्यंत मौलिक रूप से किया। जो आसानी से समझ में आ जाए। उन्होंने कहीं भी क्रोध, उग्रता, क्रांति, कठोरता से प्रतिशोध लेने जैसे भाव या दृश्यों

को नहीं अपनाया। कटु यथार्थ को हास्य और गूढ़ व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यंजित किया जिसे जनता से अत्यंत शांत भाव से हंसते और लोट–पोट होते हुए समझा और सीखा। कहीं कोई उत्तेजना को स्थान नहीं दिया जिससे अंग्रेजी सरकार के साथ रिश्तों में कड़वाहट दिखाई देने लगे और वे इस नाटक के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दे। इस युक्ति ने सफलतापूर्वक अपना काम किया। जनसाधारण को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत बनाना उनका रचना धर्म था। 'अंधेर नगरी' में इस धर्म का उन्होंने सशक्त रूप से निर्वाह किया।

नाटक का आरंभ महंत और उनके दो चेलों के साथ होता है। (महंत) गुरु, शिष्य (चेले) एवं राजा को तत्कालीन समाज की प्रवृत्ति जानने के लिए चयनित करना अत्यंत उत्तम पात्र चयन हैं क्योंकि राजा के व्यक्तित्व और कृतित्व, कर्तव्य के आधार पर उस राज्य की व्यवस्था और अनुशासन को जाना जा सकता है। महंत और चेले चूंकि घुमंतू प्राणी होते हैं अतः समाज के प्रत्येक रंग–रूप से परिचित होते हैं तथा गुरु की भूमिका के आधार पर तत्कालीन नैतिकता, धार्मिकता, भ्रष्टाचार आदि पर प्रकाश डाला जा सकता है। 'अंधेर नगरी' नाटक के प्रथम दृश्य में जब गुरु भिक्षा मांगकर लाने के लिए कहते हैं तब गोबरधनदास का यह कहना कि– "यहां के लोग तो बड़े मालवर दिखाई पड़ते हैं।" से पता चलता है कि बाजार में बैठा हुआ तथा शासन व्यवस्था से जुड़ा हुआ वर्ग समृद्ध था जबकि एक बड़ा वर्ग जो आम जनता के रूप में है अंग्रेजों और मूर्ख, अविवेकी राजा के कारण त्रस्त, शोषित और पीड़ित था। दुखी और पीड़ित समाज में भी नैतिकता और धार्मिकता पल्लवित थी। इस तथ्य को हम महंत के इस वाक्य और दोहे से जान सकते हैं कि– "बच्चा बहुत लोभ मत करना।" महंत के द्वारा कहे गए इस दोहे से समाज को भी शिक्षा प्राप्त होती है–

'लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामै नरक निदान।।

यहां महंत जी गोबरधनदास के साथ–साथ नाटक देखने, पढ़ने वाले सहृदयों के लिए भी मार्ग निर्देशक का कार्य करते हैं। भारतेंदु जी ने अंतिम दृश्य में महंत जी को संकटमोचक के रूप में प्रस्तुत किया है। इन दोनों रूपों– मार्ग निर्देशक एवं संकट मोचक से गुरु की महिमा को प्रतिष्ठित कर भारतेंदु जी ने भारतीय धर्म और दर्शन से प्राप्त ज्ञान और परंपरा का भली भांति निर्वाह किया है। महंत जी एक आदर्शवादी गुरु के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। गुरु की महिमा का चित्रण भारतीय हिंदी साहित्य की रचनात्मकता का महत्वपूर्ण बिंदु है, लक्ष्य है। भारतीय जीवन मूल्यों की उदात्तता एवं गौरव के प्रतीक के रूप में वे (महंत जी) भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रतीक हैं। महंत के दो शिष्यों का नाम गोबरधनदास एवं नारायणदास भी सुचिंतित विचारधारा के अंतर्गत रखा गया है। 'नारायणदास' अपने नाम के अनुरूप साधु पुरुष है एवं गुरु की प्राचीन परंपरा एवं संस्कृति का ही अनुसरण करता है। वह भोगी एवं कामी नहीं है। इसलिए महंत जी उसके नाम को सार्थकता प्रदान करते हुए उसे भिक्षा मांगने के लिए 'पूर्व' की ओर भेजते हैं। 'पूर्व' भारत और उसकी संस्कृति को इंगित करता है। भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति आस्था प्रदर्शित करने के लिए वे भिक्षा की याचना करने नारायणदास को पूर्व में भेजते हैं। 'नारायणदास' इस नाटक में केवल महंत के ऐसे अनुयायी के रूप में दर्शाया गया है जो पश्चिमी भोगवादी संस्कृति के प्रति आकृष्ट

टिप्पणी

नहीं होता, जिसका चिंतन सुदृढ़ है। इस पात्र को संवाद का अवसर नहीं मिला। इसके एवं गोबरधनदास के बीच संवाद होने से नाटक की सार्थकता द्विगुणित हो सकती थी।

गोबरधनदास अपने नाम के अनुरूप विवेकांध एवं खंडित होती भारतीय मानसिकता का प्रतीक है। वह पश्चिम की ओर भिक्षा मांगने जा रहा है जहां मालदार लोग रहते हैं। जहां नारायणदास 'सुंदर भिक्षा' की बात करता है वहीं गोबरधनदास 'बहुत भिक्षा' की बात करता है। नारायण दास 'सुंदर' से 'आनंद' की बात करता है। जबकि गोबरधनदास 'बहुत' पाकर चिंता से मुक्ति का विचार कर उल्लसित होता है यह पूर्व एवं पश्चिम की मानसिकता का अंतर है। भारतेंदु युग में उपभोक्तावादी संस्कृति तीव्रता से बढ़ रही थी जो रोजी–रोटी की समस्याओं को मुख्य मान कर केवल बाजारवाद पर केंद्रित होती है। इस संस्कृति के पोषक वर्तमान पर विश्वास करते हैं। गोबरधनदास अभिजात्य वर्ग का न होने पर भी पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकृष्ट होता है। भारतीय समाज की आवश्यकताएं एवं समस्याएं अलग हैं जिनका समाधान पाश्चात्य संस्कृति नहीं कर सकती। अतः भारतेंदु जी ने इस खतरे को भांप कर ही गोबरधनदास जैसे चरित्र की सृष्टि की जो सामान्य व्यक्ति होकर रहने की बजाय पश्चिमी चकाचौंध की ओर आकर्षित होता है और अंततः मुसीबत में पड़कर जान गंवाने की कगार पर पहुंच जाता है। हास्य और व्यंग्य के गूढ़ गहन संकेतों एवं प्रतीकों के माध्यम से भारतेंदु जी यही शिक्षा देना चाहते थे कि पाश्चात्य सभ्यता एवं उपभोगवादी संस्कृति का बढ़ता प्रभाव भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के लिए घातक है। यह भारतीयों की जातिगत अस्मिता एवं परंपरागत पहचान को खंडित कर देगा। पश्चिमी संस्कृति इंद्रियों के पोषण पर ही केंद्रित रहती है। इसी प्रवृत्ति का भारतीय प्रतिनिधि गोबरधनदास है जो अपनी इंद्रियों के संतुष्टिकरण (वर्धन) के लिए उनका 'दास' बना हुआ है। दोनों चेलों के द्वारा लोभ और त्याग की पश्चिमी एवं पूर्वी संस्कृति के द्वंद्व को भारतेंदु जी ने सफलतापूर्वक स्पष्ट किया है।

भारतेंदु युगीन भारतीय समाज का यथार्थ बाजार में बैठे मुगल, पाचकवाला, जातवाला, कुंजड़िन जैसे लोगों के वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है। लोग थोड़े से रुपयों में अपनी जाति बेच देते थे अर्थात धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन जाते थे। मुसलमान बन जाते थे। पाप को पुण्य मान लेते थे। रुपयों और पद के लालच में पहले मुगलों की, फिर अंग्रेजों की चापलूसी करने लगे। भारतीय समाज में आपसी बैर भाव के कारणों को संकेतार्थ से स्पष्ट करते हुए कुंजड़िने व्यंग्य करती है– "ले हिंदुस्तान का मेवा फूट और बैर।" मुगल कहता है कि हमारे मुल्क ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए, ऐसे बहादुर लोग हैं जबकि हिंदुस्तान का आदमी 'लक–लक' है यानी सुदृढ़ नहीं है, लचीला है। जहां लाभ देखता है वहां नीच प्रवृत्ति के लोगों को भी अपना पितामह बना लेता है। 'गोबरधनदास' जैसे लोग धर्म के नाम 'मिठाई चाभ रहे' थे उन्हें 'देश के बुरे होने' से कोई फर्क नहीं पड़ रहा था।

अपना स्वार्थ और तृप्ति ही मुख्य उद्देश्य थे, समाज की मिटती, खंडित होती परंपराओं की रक्षा करने का अपना उत्तरदायित्व उन्हें स्मरण नहीं था। धार्मिक अवमूल्यन को सामने लाना भारतेंदु जी ने आवश्यक समझा। विलासी, स्वार्थी और अविवेकी राजा के चारों ओर अव्यवस्था है। वह सोचता–समझता नहीं सुनकर तुरंत निर्णय करता है जो अन्याय और अमानवीयता से परिपूर्ण होता हैं। निरपराध व्यक्ति को दंड भोगना पड़ता है। मंत्री से लेकर कोतवाल तक राजा को बेवकूफ बनाते हैं तथा उसकी हां–में हां मिलाते हैं। राजसभा में

टिप्पणी

हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण असंगत वार्तालाप, राजा की भीरु प्रवृत्ति और अविवेकपूर्ण न्याय–व्यवस्था में तत्कालीन यथार्थ के दर्शन होते हैं। महारानी विक्टोरिया का इंग्लैंड में बैठकर भारत पर राज्य करना, सुनी हुई बातों पर निर्णय देना तथा अनेक चापलूस हिंदी राजाओं की प्रवृत्ति से जो अंधकार फैला हुआ था, उसे भारतेंदु जी ने व्यंग्योक्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया है। राजा बुद्धि एवं चरित्र दोनों दृष्टियों से चौपट है तो अव्यवस्था फैलेगी ही तथा ऐसे राजाओं के रहते विदेशी आक्रांता यदि पूरे देश को लूट ले जाएं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात न होगी।

'अंधेर नगरी' में 'पाचकवाला' कहता है– 'चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता।' तब वह अंग्रेजों की लूटपाट की प्रवृत्ति और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पर से आवरण हटाता है। यहां भारतीय चूरन की गुणकारिता पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके माध्यम से भारतेंदु जी यह कहना चाहते हैं कि तत्कालीन भारतीय समाज पश्चिमी संस्कृति एवं वस्तुओं के प्रति इतना आकर्षित हो गया था कि अपनी भारतीय संपदा को तुच्छ एवं उपेक्षित दृष्टि से देखने लगा था। वह यह भी नहीं देख पा रहा था कि अंग्रेज–भारतीय संपदा को लूटकर अपना खजाना भर रहे हैं और उसे झूठे माया लोक में उलझा कर कंगाल बना रहे हैं।

'अंधेर नगरी' में पाचकवाला, कुंजड़िने जैसे पात्र भी राष्ट्रीय विचारधारा से ओत–प्रोत हैं एवं जागरण के लिए प्रेरक के रूप में दिखाई देते हैं। भारतीयों को शिक्षित करना, उन्हें अपने कर्तव्यों का ज्ञान कराना, भोगवादी संस्कृति की पश्चिमी चकाचौंध से उन्हें दूर करना आवश्यक था। अतः भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी रचनात्मकता को भारतीय सुरक्षा एवं स्वतंत्रता के चिंतन से जोड़ा। भारतेंदु ने नव चेतना और नव–जागरण के स्वर को गरिमामयी एवं उदात्त बनाने के लिए प्रहसन की रचनात्मक सीमाओं को विस्तार दिया, भाषा, भाव, पहनावा, दृश्य, स्थान, प्रवृत्तियों को एकजुटता के रंग में रंगकर थोड़े से समय और स्थान में बड़ी और सारी बातें कहने का प्रयत्न किया। इसलिए 'राजसभा और 'बाजार' के दृश्यों की रचना की। इन दृश्यों से तत्कालीन समाज, राजनीति, अर्थनीति, न्याय व्यवस्था, धार्मिकता और संस्कृति के यथार्थ के दर्शन हो जाते हैं एवं नाटक का कथ्य भी स्पष्ट हो जाता है। महंत का तीसरे अंक में कहा गया दोहा 'अंधेर नगरी' और अंग्रेजों की अंधेरगर्दी से बचने की सलाह देता है–

"सेत खेत सब एक से, जहां कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजै बास।।"

तत्कालीन यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए भारतेंदु जी ने युग और समय की सीमा का अतिक्रमण करने वाले पात्रों का चयन किया जिससे कथा की सफलता और सार्थकता सिद्ध हुई।

2.5 'अंधेर नगरी' की भाषा एवं लोक तत्व

'अंधेर नगरी' की रचना हिंदी नाट्याकाश में एक चमत्कार की तरह हुई। ऐसा अद्भुत नाटक लिखा नहीं जा सकता बस कभी कभार ईश्वरीय विधान के निर्देश से हो जाया करता है। यह एक ऐसी कृति है जो किसी भी युग से बंधती नहीं, कई–कई युगों को जोड़ती हुई

'अपनी प्रगति जांचिए'

6. अंधेर नगरी कैसा नाटक है?
7. अधेर नगरी की रचना कब हुई?
8. अंधेर नगरी में कितने दृश्य हैं?
9. अंधेर नगरी के पात्रों गुरु, चेले, पाचकवाला और कुंजड़िन के माध्यम से किस भावना को प्रबलता से अभिव्यक्त किया गया है?

आने वाले समय में अपना स्थान सुरक्षित करती चलती है। इस भानुमती के पिटारे में हर आयु, वर्ग, लिंग, जाति, धर्म ओर संप्रदाय को देने के लिए कुछ न कुछ है। कोई हंसते–हंसते दुहरा होकर जाता है तो कोई व्यंग्य के पैने धारदार बाणों में छलनी होकर। कोई विशुद्ध मनोरंजन पाकर धन्य हो जाता है तो कोई अंग्रेजी राज्य के भयावह अराजक. शासन तंत्र को अपनी आंखों के सामने अनावृत्त होता हुआ देखता है। 'अंधेर नगरी' भारत ही नहीं विश्व की किसी भी समाज व्यवस्था द्वारा नियंत्रित विवेकभ्रष्ट, काठ में तब्दील होते चेतना शून्य मनुष्य की करुणगाथा है, जिसकी सोच को लकवा मार गया है। गुलामी जिसके पूरे वजूद को खोखला बना चुकी है, ऐसे चाटुकार, लोभी, मौकापरस्त समाज में न्याय, अन्याय की विभाजक रेखा अपना अर्थ खो चुकी है, कपूर और कपास में फर्क मिट गया है और मनुष्य का जीवन व्यर्थ हो चुका है। यह नाटक इसी मायने में काल एवं स्थान की सीमाओं का अतिक्रमण कर एक सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक क्लासिक है।

भारतेंदु ने स्वयं इस नाटक को प्रहसन स्वीकार किया है। किंतु न तो अंधेर नगरी शुद्ध प्रहसन की सीमाओं को स्वीकार करता है और न ही आधुनिक व्यंग्य नाटक मात्र है। लोक जीवन की अनगढ़ ऊर्जा को ग्रहण करता हुआ यह नाटक इस मायने में अवश्य एक लोक नाटक है कि इसके पात्र एक आयामी या द्विआयामी हैं। नाटक एवं अभिनय दोनों मुखर हैं। लोक संगीत इस नाटक की अंतर्लय का निर्माण करता है और इसकी भाषा जन–भाषा की ठेठ देशी लय को पकड़कर हिंदुस्तान में लाखों–करोड़ों लोगों की आवाज को बुलंद करती है। अंधेर नगरी में बनारस का कोई एक कोना नहीं गूंजता, इसके भीतर पूरे हिंदुस्तान के जनमानस की आवाज है। लोकनाट्य शैली का लचीलापन विख्यात है, यही लचीलापन इस नाटक को पराधीन भारत का एक सशक्त, जीवंत हस्ताक्षर बनाता है। रचना सदैव ही संस्थानिकता और बंधे–बंधाये ढर्रे के खिलाफ होती है। अतः इस पर प्रहसन का लेबल चिपकाना इसकी अनेकार्थी संभावनाओं को सीमित करना ही होगा। हालांकि यह सच है कि भारतेंदु पर नाटक की शास्त्रीय परंपराओं के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

'अंधेर नगरी' नाटक में जैसे उस युग का पूरा भारत जीवंत हो उठा है। नाटक की शुरुआत 'राम भजो' गीत से होती है जो कहीं न कहीं अनास्था के क्षणों में भारतेंदु की गहरी वैष्णव भक्ति में आस्था से जुड़ा है। जीवन हो या साहित्य, गहन अंधकार के क्षणों में हम ईश्वर की ओर ही उन्मुख होते हैं। अमानिशा के बाद केवल एक जलती मशाल जरूरी है अन्यथा साहित्य हमें सिर्फ हताश और कुंठित करेगा और श्रेष्ठ साहित्य हमें गहरी निराशा में भी संबल प्रदान करता है। पहले दृश्य में ही भारतेंदु ने मनुष्य की आदिम वृत्ति, लोभ पर वार करते हुए उसे पाप का मूल बताया है। लोभ मनुष्य की ऐसी वृत्ति है जो उसे पशु–जगत से नैसर्गिक रूप से प्राप्त हुई है। अगला दृश्य क्योंकि बाजार का है, और समूचा बाजार मनुष्य की इसी मनोवृत्ति के दोहन पर टिका है अतः आने वाले दृश्य संकेत भी नाटककार ने दिए हैं। 'अंधेर नगरी' का बाजार वस्तुतः अंग्रेजी राज का भारतवर्ष है। बाजार की प्रकृति असमतामूलक है। याद कीजिए 'ईदगाह' का बाजार। बाजार में पहुंचते ही हामिद अपने दोस्तों की बिरादरी से छिटक जाता है। मोहसिन, नूरे और सिम्मी इत्यादि पैसे वाले एक तरफ और हामिद दमड़ी के अभाव में एक ही चमड़ी होने पर भी दूसरी तरफ। ईदगाह का बाजार एक प्राकृतिक बाजार है, यथार्थ पर आधारित। लेकिन 'अंधेर नगरी' का बाजार किसी स्वप्न के सदृश्य झूठा और इसीलिए इंद्रजाल–सदृश्य आकर्षक और भयावह। 'लुटाय दिया

अनमोल माल। ले टके सेर' सबकुछ टके सेर– सेब, इमरती, लड्डू– सब टके सेर– आश्चर्य कि इतना झूठ फरेब और धोखा फिर भी गोवर्धनदास नहीं चेता– फंस गया। याद कीजिए शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा, भूल से उसमें फंसना मत और फिर भी शिकारी आया जाल बिछाया और फंस गया बेचारा भोला निरीह, मासूम गोवर्धनदास। यह कैसा भयावह, अराजक, अप्राकृतिक बाजार है जहां हीरे और कंकड़ में कोई भेद नहीं! अतः यह तय है कि प्रकृति के खिलाफ या अस्वाभाविक समाज व्यवस्था विवेकहीन, पथभ्रष्ट समाज में ही पनप सकती है। 'अंधेर नगरी' का यह बाजार आभासी यथार्थ (Virtual reality) का सृजन कर भ्रम जाल बुनता है और यह तभी संभव है जब समाज व्यवस्था विवेकहीन हो और मनुष्य के तोता बनने की प्रक्रिया की शुरुआत हो चुकी हो। चेतनाशून्य जड़ मनुष्य ही ऐसे बाजार को स्वीकार कर पाएगा। गुलामी जब मनुष्य की चेतना का अपहरण कर उसे औपनिवेशिक तंत्र के यंत्र में बदल देती है तभी वह अस्वाभाविक स्थितियों को सहज भाव से स्वीकार कर पाता है। जहां मनुष्य सहज भाव से कानून हजम कर जाता है, फूट और बैर का भी ग्राहक बन जाता है। वह धर्म, मर्यादा सब कुछ लुटा पाता है और सारे हिंद को हजम करने वाले शोषक तंत्र को सहज भाव से स्वीकार करता है। मानों उसकी प्रतिरोध की क्षमता एवं शक्ति दोनों चुक गई हो। ऐसे मिट्टी के माधो काठ के मनुष्य पर भारतेंदु ने निशाना साधा है।

भाषा की दृष्टि से भी यह अंक अपने आप में ध्वनि–कौशल, स्वर के आरोह–अवरोह, क्रिया व्यापार, शब्द चमत्कार, गति और समूहन, गति और निश्चलता, वर्ण मैत्री आदि की अद्‌भुत सामर्थ्य से युक्त है। इस दृश्य में व्यवसाय से जुड़े मनुष्य की भाषिक चेतना, शब्दों की जादूगरी, लोभ को उकसाने वाली बाजार की भाषा का मोह–जाल, क्रिया व्यापारों का चतुराई से भाषिक इस्तेमाल, पद–गति एवं यतियों का प्रयोग, शब्दों की अंतर्लय द्वारा विकसित होती बाजार की अंतर्लय, समन्वय एवं अलग–अलग प्रांतों की भाषा के प्रयोग द्वारा दृश्य को चलचित्र की भांति गति देकर भारतेंदु ने रंगमंच की एक ऐसी चपल, गतिशील, मनोरम भाषा का निर्माण किया है जो अभिनय–कौशल को उभारने में मदद करती है। ऐसा अस्वाभाविक बाजार आज की उस बाजारवादी संस्कृति से भी कहीं अधिक घातक और भयावह है जो मनुष्य को वस्तु में तब्दील कर उपयोग के बाद थर्मोकोल के कप–प्लेट की तरह फेंक देता है। इस समाज में न्याय व्यवस्था नष्ट हो चुकी है, धर्म–अधर्म की विभाजक रेखा समाप्त हो चुकी है, मनुष्य के सोचने समझने की शक्ति जवाब दे चुकी है और मनुष्य की आत्मा मर चुकी है। ऐसी बंदी जगत की जड़–समाज स्थिति में यदि 'नाटक' विधा ने प्रतिरोध के साथ ही जन्म लिया तो आश्चर्य क्या?

गुरु की महती जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए गुरु अपने चेले को समझाता है कि हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती और जो प्राकृतिक नहीं है, उसे संदेह की दृष्टि से देख। गुरु सिर्फ कहता ही रहता है कि अनुभव का कोई विकलप नहीं, उपदेश ही देता रह जाता है, पर वाह री मनुष्य की लोभवृत्ति। कच्ची उम्र का बालक गोवर्धनदास, बेचारा फंस ही जाता है।

राजसभा के दृश्य में पदानुक्रम शृंखला से उत्पन्न चाटुकारिता व स्तुति–गान की वह परंपरा अनावृत्त होती है जो किसी भी स्वतंत्र मनुष्य में संभव नहीं। गुलामी की जड़ें हमारे भीतर नपुंसकों की एक ऐसी पीढ़ी तैयार कर रही है कि हमारी भाषा, हमारी चेतना, हमारे

टिप्पणी

विचार यहां तक कि हमारे हाव–भाव, वेश–भूषा, पद गतियां सभी चाटुकारों और दलालों की मंडी में रूपांतरित हो गए हैं। इस दृश्य में तर्क और सोच पर ताला लगा कर नौकरी करने वाले अधिकारी हैं, जिनका कार्य है शक्ति समीकरणों के आगे बिछ जाना और शक्तिहीनों पर बरसना, जोर आजमाइश करना।

यही वजह है कि मूर्खतापूर्ण, बेसिर पैर के प्रतीत होने वाले संवादों से यह दृश्य भरा पड़ा है। कभी दीवार को पकड़ कर लाया जा रहा है, कभी उसके आशना को, कभी मशक ..... बन जाती है तो कभी, खैर–सोपाड़ी चूननेवाले की हाजिरी राज्यसभा में होती है। सवाल उठता है कि भारतेंदु ने इन बेसिर पैर के किरदारों की रचना क्यों की जो असंगत और मूर्खतापूर्ण बयानों द्वारा राजा का वक्त खराब करते हैं? क्या केवल हास्य की सृष्टि के लिए, हंसी–ठिठोली, गुदगुदाने के लिए? इस दृश्य के द्वारा भारतेंदु जंग लगी, रेहन चढ़ी मनुष्य की चेतना को जगाना चाहते थे। शायद ऐसे कुतर्कों से, असंगत वाक्यों से हम समझ पाएं कि पतन और कहां तक हो सकता है। 'येस सर' की मानसिकता हमें मनुष्य से एक दर्जा नीचे धकेल रही है और पुनर्जागरण के दौर में यदि भारतेंदु तमाचा लगाकर, हमें जागृति का मंत्र दे रहे हों तो विस्मय कैसा? इस दृश्य में भाषा का मिजाज, उसकी बानगी बिलकुल वैसी ही है जैसे किसी गुलाम की– ऐसे गुलाम की, जिसने स्वेच्छा से गुलामी स्वीकारी है। पदानुक्रम शृंखला हमें रोबोट बना देती है, सहमति की शृंखला का निर्माण करती है पर असहमति का साहस छीन लेती है। अभिनेयता एवं नाट्य कौशल की दृष्टि से यह दृश्य हाथ बांधे 'राम–राम सा' कहते पूरे औपनिवेशिक समाज पर हंसते–हंसते चुटकी लेता है। कब तक हम–

'राजा बोला रात है
यह सुबह–सुबह की बात है'

की मानसिकता को वहन करते रहेंगे– शायद इन असंबद्ध, अतार्किक, असंगत, मूर्खतापूर्ण वाक्यों की शृंखला हमें ज्यादा संयोजित, विचार करने वाले समाज में रूपांतरित कर पाए।

लोक तत्व के रूप में अंधेर नगरी का आरंभ भजन के साथ होता है। प्रहसन का दूसरा दृश्य पूर्णतः लोक दृश्य है। ग्रामीण बाजारों में उठने वाली ध्वनियां, शोर इस नाटक के प्रेक्षकों को सीधे ग्रामीण हाट से जोड़ देते हैं। ग्राम्य मानसिकता से जोड़ने वाली भाषा का प्रयोग भारतेंदु जी ने किया है। उनके पात्र अपनी भूमिका के अनुरूप भाषा बोलते हैं जिनमें चौपट्ट, निबुआ, बुंबक, मरजादा, निनुआं, मछरिया, कचाका, होरहा, छक जाएंगे, लुआय जैसे अनेक शब्द हैं जो केवल भोजपुरी के नहीं बल्कि राजस्थानी, पंजाबी, बंगाली और अन्य प्रांतों की लोक भाषा के हैं। अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए भारतेंदु जी इन आंचलिक शब्दों और शब्दावलियों का उपयोग किया है जैसे– गठरी भारी होना, सौत बुलाना, चाभना, उपास करना आदि। इन विशिष्ट प्रयोगों से लोक जीवन को दर्शाने में वे सफल हुए हैं। वे ग्रामीण भारतीय चेतना को जाग्रत करना चाहते थे इसीलिए लोक भाषा एवं लोक तत्वों के प्रयोग से उन्होंने कथा को लोक से जोड़ा। महंत जब कहते हैं– 'इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा।' तो यह कथन लोक–विश्वास को प्रकट करता है। भारतेंदु मानव मन के साथ समाज की नब्ज को जानते थे। वे यह समझते थे कि स्वतंत्रता की लड़ाई, नव जागरण के बिना संभव नहीं है तथा केवल नागरिक ——— सचेत एवं

टिप्पणी

जाग्रत कर यह लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती इसके लिए ग्रामीण समाज का जाग्रत होना आवश्यक हैं। अतः ग्रामीण मनःस्थिति को समझना तथा उनके मनोमस्तिष्क तक पैठ बनाने के लिए उन्होंने 'अंधेर नगरी' में लोक भाषा का प्रयोग किया। बाजार का दृश्य एवं संवाद भी ग्रामीण जन से जुड़े प्रतीत होते है। यह नाटक अपनी सरसता, सहजता, प्रवाहमयता, प्रभावात्मकता, रोचकता में अद्वितीय है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषा शैली ने, इसमें निहित लोक तत्वों ने नाटक की उपयोगिता में वृद्धि की तथा भारतेंदु जिस नव जागरण के उद्देश्य को लेकर चले थे उसे पूरा किया। यह अंग्रेजों की मानसिकता से परिचय कराकर उनके विरुद्ध खड़ा होने की चेतना जाग्रत करने में सफल रहा है।

2.6 'अंधेर नगरी'–प्रासंगिकता

भारतेंदु हरिश्चंद्र की समस्त नाट्य रचनाओं में संभवतः 'अंधेर नगरी' को सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। भारतेंदु युग में रचित समस्त नाटकों का तथा मंच पर अभिनीत किये गए नाटकों का समीक्षात्मक अध्ययन करें तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि 'अंधेर नगरी' ही सर्वाधिक लोकप्रिय, उद्देश्यपूर्ण एवं मनोरंजक नाटक था जिसकी प्रासंगिकता एवं लोकप्रियता 21वीं सदी तक बनी हुई है। इस नाटक के शीर्षक एवं कथ्य के स्वरूप में हल्का–फुल्का फेरबदल कर अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। लेकिन वे मूल 'अंधेर नगरी' नाटक की ऊंचाई को नहीं पा सके। शिष्ट हास्य युक्त प्रहसन होने के कारण यह रचना विशिष्ट है।

हम जानते हैं कि आज का सभ्य समाज एक राजनैतिक चेतना संपन्न समाज है और हम राजतंत्र में नहीं, जनतंत्र में सांस लेने वाले नागरिक हैं पर क्या 'अंधेर नगरी' समाप्त हो चुकी है? शासन का खौफनाक चेहरा बदल चुका है, हमारी भाषा सत्ता के आतंक से मुक्त हो चुकी है, हमारी चेतना पर किसी की भयावह छाया नहीं है, हम फंसने वाले गोवर्धनदास की तरह अकेले, निहत्थे और बेचारे नहीं हैं, हमारे बाजार लोभ को उकसाकर हमें ठगते नहीं हैं? नौकरी के चक्कर ने क्या हमें राग दरबारी में प्रवीण नहीं किया गया है, क्या हम गुरु के उपदेश को तुरंत स्वीकार करना सीख गए हैं, अपने से कमजोर को फंसाने और जाल बिछा कर पकड़ने का शातिर काम हमने छोड़ दिया है, हर दूसरे को गलत ठहराना, खुद बचकर निकल भागना क्या हमने त्याग दिया है? क्या आज हम अंधेर नगरी के समाज से ज्यादा चतुर, चालाक, धूर्त, मक्कार नहीं हैं? यदि किसी भी कारण से ऐसी स्थितियां अब भी मौजूद हैं तो 'अंधेर नगरी' आज भी अपनी अनेक अर्थ संभावनाओं के साथ हमें चमत्कृत करती है और आने वाली पीढ़ी को भी करेगी। इसी रूप में यह नाटक जीते–जागते हिंदुस्तान का प्रतिनिधित्व करता है। बेकसूर गोवर्धनदास को अंततः गुरु ही बचाता है, आदर्श न्याय के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। गुरु भी अंततः चतुराई से ही शिष्य को छुड़ा पाता है जिससे लगता है भारतेंदु 'साध्य' की पूर्ति में ही विश्वास रखते थे फिर चाहे साधन जो भी हो।

'अंधेर नगरी' की कथा प्रचलित लोक कथा है। बिहारी प्रांत के किसी जमींदार के अन्याय को लक्ष्य करके भारतेंदु जी ने इस कथा को नाटक का स्वरूप प्रदान किया। इस

'अपनी प्रगति जांचिए'

10. अंधेर नगरी को भारतेंदु ने स्वयं किस प्रकार की रचना माना?
11. नाटक की शुरुआत कहां से होती है?
12. भारतेंदु ने मनुष्य की लोभ प्रवृत्ति को क्या कहा है?
13. इस नाटक की अंतर्लय का निर्धारण किसके माध्यम से संभव हुआ है?

टिप्पणी

लोक प्रचलित कथानक को उन्होंने मनोरंजन के साथ अन्याय पीड़ित भारतीय समाज को जाग्रत और सचेत करने का साधन भी बनाया। लोक रुचि के अनुसार इसमें हास्य–प्रसंग तो है ही तथापि अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास और अकर्मण्यता के अंधकार में डूब भारतीय समाज की व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य भी है। समसामयिक समाज के अनेक विकृत स्वरूपों को इस प्रहसन में अतिरंजना के साथ प्रस्तुत किया गया है। अतिरंजना को प्रहसन साहित्य का प्रधान गुण माना जाता है। भारतेंदु जी ने इस 'अंधेर नगरी' नाटक के सभी पात्रों में विशेष रूप से राजा के चरित्र में अतिरंजना का पर्याप्त प्रयोग किया है। डॉ. भानुदेव शुक्ल कहते हैं कि–"यह अतिरंजित चित्रण विनोद की सृष्टि अवश्य करते हैं किंतु यह विनोद बुद्धिवादी हास्य तथा कलात्मक विनोद की दृष्टि से मध्यम कोटि का ही है।" 'अंधाधुंध मच्यौ सब देशा। मानहुं राजा रहत विदेशा।' जैसी काव्योक्तियां अंग्रेजी शासन के भ्रष्ट, अविवेकी स्वरूप को लक्ष्य करके लिखी गई है। डॉ. भवदेव पांडेय 'अंधेर नगरी' की समीक्षा करते हुए लिखते हैं– 'अंधेर नगरी' में भारतेंदु ने धर्म, समाज, राजनीति और न्याय–व्यवस्था का चित्रण विस्तृत फलक पर किया है। यही कारण है कि इसकी कथा और इसके दृश्य किसी निश्चित काल–खंड तक सीमित नहीं होते। इसमें पात्रों की कल्पना प्रवृत्तियों के आधार पर की गई है। कोई भी प्रमुख पात्र केवल एक 'व्यक्ति' नहीं है बल्कि किसी–न–किसी परंपरा अथवा सामाजिक विचारधारा का प्रतीक है। 'राजा' अव्यवस्था, राज–कर्मचारी दायित्वहीनता और चाटुकारिता, गोबरधनदास उपभोक्ता प्रवृति और धार्मिक अवमूल्यन, महंत और नारायणदास अतीत जीवन–दर्शन, 'जातवाला' जाति–पांति के छद्म आचरण, 'मुगल' राष्ट्रवादी आस्था, घासीराम और पाचकवाला तद्युगीन इतिहास, हलवाई और बनिया भोगवादी आकर्षण के प्रतीक हैं। इसी प्रकार कुंजड़िनें, मछलीवाली जैसे पात्र मानवीय संवेदना को कुरेदने के माध्यम पात्र हैं। स्पष्ट है कि किसी भी समाज में प्रवृत्ति, विचारधारा, मानवीय संवेदना, मूल्यन–अवमूल्यन, चाटुकारिता, न्यायहीनता, राजनैतिक अव्यवस्था का उत्थान–पतन होता रहता है। आरोह–अवरोह का क्रम कभी नहीं टूटता। इसीलिए किसी कृति में प्रवृत्तियों और विचारधाराओं के प्रतीक पात्र तब तक प्रासंगिक बने रहते हैं जब तक समाज का अस्तित्व है। 'अंधेर नगरी' की प्रासंगिकता असंदिग्ध है।

नाटक के मुख्य पात्र महंत, गोबरधनदास एवं नारायणदास के चरित्रों पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि ये पात्र आज इक्कीसवीं सदी में भी जीवंत हैं, अतीत नहीं बने हैं। वर्तमान में धार्मिक आडंबर और धर्म को व्यवसाय बनाने वालों में गोबरधनदास जैसे पात्रों की संख्या बढ़ती जा रही है जो धर्म के नाम पर आराम से 'मिठाई चाभ' रहे हैं उन्हें आत्मपोषण के अतिरिक्त अन्य किसी संस्कार, परिष्कार से कुछ लेना देना नहीं है। इनके लिए धर्म उपभोग का साधन है तथा यही इनकी व्यक्तिगत उपलब्धि है जिसे साधन की तरह उपयोग करके ये जनता को ठग सकते हैं। ऐसे मठाधीशों एवं धर्माचार्यों को जो धर्म के नाम पर जनता से सुख–सुविधाएं प्राप्त करते हैं, सरकार को भी ठगते हैं, मूर्ख बनाते हैं और धर्म को निष्प्राण करने में लगे रहते हैं, सजा मिलनी चाहिए जैसे गोबरधनदास के लोभ ने उसे फांसी के फंदे तक पहुंचा दिया था। लेकिन ऐसा कम ही होता है। भारतीय धर्मांध हैं, धर्म भीरु हैं। अतः ऐसे गरीब लोग भी, जिनके पास खाने, पहनने, रहने के लिए पर्याप्त भोजन, कपड़े और आवास की सुविधा नहीं है, वे भी इन धार्मिकता का मुखौटा पहने ढोंगियों के

टिप्पणी

चक्कर में पड़कर अपनी रही–सही पूंजी गंवा बैठते हैं। गरीबों के पास मकान नहीं हो तो सरकार का ध्यान नहीं जाता लेकिन धर्म के नाम पर बड़े–बड़े भूखंड धर्मगुरुओं के नाम आवंटित कर दिए जाते है। धर्मगुरुओं को राजनीति से लगाव हो गया है। वे किसी–न–किसी पार्टी के प्रचारक के रूप में सामने आते हैं। धर्म के नाम पर दंगे, मार–काट होना आम बात हो गई है। देश में फैली अव्यवस्था, भ्रष्टाचार और कुशासन का लाभ उठाकर धर्म को भोग का साधन और उपभोक्ता संस्कृति का अंग बनाने में धर्म के ठेकेदारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गोबरधनदास जैसे लोगों को अपना पेट भरने से मतलब है उन्हें धार्मिक मूल्यों के पतन और उससे भारतीय संस्कृति को लगने वाले आघातों से कोई लेना देना नहीं है।

नाटक के पांचवें दृश्य में गोबरधनदास आनंद से मिठाई खाते हुए कहता है– "गुरुजी ने हमको नाहक यहां रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है, पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, मिठाई चाभना, मजे में आनंद से रामभजन करना।' यहां गोबरधनदास एक लालची, स्वार्थी एवं दायित्वहीनता से परिपूर्ण पात्र दिखाई देता है। यही दायित्वहीनता आज की पीढ़ी की अधिकांश आम जनता में भी है तथा धर्मगुरुओं और उनके शिष्यों में भी। यह सामाजिक अवस्था और धार्मिक स्थिति खतरनाक है– यह भारतेंदु जानते थे। इस पर रोक लगाना और इसका निवारण करना चाहते थे, इसीलिए इस सफल नाटक की उन्होंने रचना की। उनका एक पात्र 'महंत' जैसे तब गोबरधनदास को नहीं समझा पाया था, रोक पाया था वैसे ही अब भी अल्प संख्या में महंत हैं जो विवश हैं और मूक दर्शक हैं। पश्चिमी संस्कृति के आकर्षण में बंधे गोबरधनदासों की संख्या बढ़ती जा रही है। पश्चिम की भोगवादी, आत्मकेंद्रित संस्कृति से होने वाली हानि को रोकना, धार्मिक मूल्यों के पतन का समाधान भी भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म में ही छिपा है। भारतेंदु जी ने नाटक के अंत में यह समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जब निरपराध गोबरधनदास को फांसी होने वाली है और वह गुरु जी का स्मरण करता है तो वे संकट दूर करने के लिए वहां पहुंच जाते हैं तथा एक धार्मिक चाल चलते हैं कि 'इस मुहूर्त में जो फांसी चढ़ेगा वह सीधा बैकुंठ जाएगा।' बैकुंठ जाने के लोभ में राजा स्वंय फांसी चढ़ने के लिए तैयार होता है। इस तरह एक निर्दोष की प्राण रक्षा हो जाती है तथा राज्य को चौपट करने वाले, अंधेर फैलाने वाले अविवेकी और मूर्ख राजा से राज्य को मुक्ति मिलती है। भारतेंदु महंत के झूठ से प्राप्त सुफल को जनता के सामने गूढ़ार्थ में प्रस्तुत करते हैं ताकि दर्शक और पाठक इस बात को समझ सकें कि मूर्ख शासक कितना बड़ा संकट उपस्थित कर सकता है और दुराचारियों से मुक्त होने के लिए झूठ का आश्रय भी लेना पड़े तो यह कोई पाप कर्म नहीं होगा।

अंग्रेजों और हिंदू राजाओं के चंगुल में फंसी पराधीन जनता के लिए यह पाठ जितना आवश्यक था उतना ही आज स्वतंत्र भारतीय जनता के लिए भी है। भोग–विलास में डूबे, स्वार्थी, विवेकांध मूर्ख शासक जो अपने एयर कंडीशनर युक्त कमरों में बैठे रहकर, चापलूसों की बातों को सच मानकर फैसले सुनाते हैं, वे 'अंधेर नगरी' के चौपट राजा से किसी मायने में कम नहीं हैं। ये शासक जनता की वास्तविक स्थिति से, उनके अभावों और आवश्यकताओं से परिचित नहीं होते, केवल भ्रष्ट अधिकारियों की बातों को ही सच मानकर चलते हैं, जिससे जनता त्रस्त रहती है। कर्मचारी और अधिकारी झूठी चापलूसी करके, कपटपूर्ण छद्म आचरण द्वारा अपने कर्तव्यनिष्ठ होने का विश्वास राजा या वर्तमान संदर्भों में शासक,

टिप्पणी

नेता, मंत्री को दिलाते रहते हैं और अपना स्वार्थ साधते हैं। ऐसी शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार, व्यभिचार, चोरी, हत्याएं, लूट–पाट बढ़ेगी ही, जिसका प्रभाव जन साधारण पर पड़ेगा। झूठे, सच्चे सबूतों के आधार पर होने वाला न्याय, न्याय व्यवस्था को भी कलंकित कर रहा है। चौपट राजा के न्याय पर हंसी और दुख साथ–साथ होता है क्योंकि वह विवेकांध होकर न्याय करता है लेकिन एक सदी व्यतीत हो जाने पर भी नयाय–व्यवस्था अब भी उतनी ही तकलीफ देह है। इस पर हंसा नहीं जा सकता। एक नब्बे वर्ष के वृद्ध को उसके तीस वर्ष पूर्व किये गए अपराध के लिए नब्बे वर्ष जेल में रहने की सजा सुनाई जाती है। यानी अदालत में निर्णय में ही तीस–तीस वर्ष लग जाते हैं। तब तक अनेक अपराधी जमानत पर छूटकर आराम से जीवन बिताते हुए मर जाते हैं या फांसी के हकदार आराम से जनता के रुपयों से रोटियां तोड़ते रहते हैं। यह अकर्मण्य शासन व्यवस्था और न्याय प्रणाली भी 'अंधेर नगरी' की ही सृष्टि करती है। राजा अपने परिवर्तित पदनाम, रंग–रूप के साथ अब भी विराजमान है। राजा और उसके अधीनस्थ मंत्रीगण जब उन्माद और अज्ञान वश वक्तव्य देते हैं तो समस्त राज्य व्यवस्था में अराजकता फैल जाती है। इतिहास में जो हुआ है, वह अब भी हो रहा है।

भारतेंदु युग में अंग्रेजों की शासन व्यवस्था, न्याय–प्रणाली और प्रतिदिन जारी होने के फरमान 'अंधेर नगरी' का गूढ़ कथ्य बने थे। आज भी लोकतंत्र के होते हुए 'लोक' देश की आदर्शहीन शासन प्रणाली के सामने त्रस्त और विवश मूकदर्शक तथा भोक्ता बन जाता हैं। अंधेर मचा है यह लोकोक्ति प्रसिद्ध थी, अब भी प्रसिद्ध है। पश्चिमी शिक्षा ने नैतिक मूल्यों का क्षरण कर एक अजीब से काइयांपन और कुटिलता को जन्म दिया और विकसित किया है जिसके चलते सीधे, सच्चे निर्दोष ही सजा पाते हैं तथा अक्सर झूठे सबूत जुटाकर अपराधी छूट जाते हैं। अदालत में खड़े होकर झूठा बयान देना भी एक व्यवसाय हो गया है। उनके झूठ से मनुष्यता की हानि हुई, धर्म आहत हुआ इस बात से उन्हें कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि पश्चिमी संस्कारों ने, शिक्षा ने उनके भीतर से धर्म, मनुष्यता, नैतिकता, भावनाएं जैसे शब्दों को झाड़–पोंछकर बाहर कर दिया है। महंत और गोबरधनदास 'अंधेर नगरी' में भारतेंदु युग में थे, अब भी हैं। जैसे तब महंत की सीख गोबरधनदास ने नहीं मानी, अब भी नहीं मानते। 'अंधेर नगरी' के दृश्य अब भी यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। चौपट राजाओं का दर्शन भी दुर्लभ नहीं है।

अंधेर नगरी के चौथे दृश्य में 'राज सभा' का चित्रण है। इसमें असंगत संवादों की लंबी शृंखला है, असंबद्ध वार्तालाप, राजा की विवेकहीन, हास्यास्पद भीरुता है, असहज बौखलाए कर्मचारी अधिकारी हैं। इस नाटक का यह दृश्य वर्तमान में भी प्रासंगिक है, कहा जा सकता है। अविवेक पूर्ण न्याय–प्रणाली और भीरु मानसिकता के अंतर्गत किये गए संवादों ने विवादों, बौखलाहट, मार–पीट, उठा–पटक के दृश्य राज भवनों में उपस्थित किये हैं। उत्तरदायित्वहीनता और राज–धर्म के बोध से रहित होकर अपनी शांति, सुख और सुरक्षा को केंद्र में रखकर सुनाए जाने वाले निर्णयों से शासक के राजनैतिक और सामाजिक सरोकारों की संबद्धता एवं पवित्रता का पता चलता है। 'अंधेर नगरी' का चौथा अंक अत्यंत सरस बनकर नाटक की उद्देश्य पूर्ति करता है। यह जनता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। अब भी इसे पढ़ते या देखते हुए दर्शक और पाठक अपने समय की नब्ज पकड़ लेते हैं।

टिप्पणी

शासकों और अधिकारियों के बीच मदिरा का चलन तब जितना था, अब उससे कहीं अधिक हैं। 'अंधेर नगरी' का एक दृश्य दृष्टव्य है–

नौकर– (एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझलकर देता है।) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा– (मुंह बना–बना कर पीता है।) "और दे।"

राजनीति के गलियारों में यह 'और दे' बार–बार ध्वनित होता है।

एक नवीन संस्कृति का विकास हुआ है जिसमें सभ्यता और सदाचरण के साथ स्वागत करने का मानक मदिरा परोसना है। अंग्रेजों ने हिंदू राजाओं और जनता के एक बड़े वर्ग को अतिथि सत्कार का और आनंद मानने का जो मदिरामय मार्ग दिखाया, वह अब भारतीय शासकों और समृद्ध वर्ग की जीवन शैली बन गई है। 'अंधेर नगरी' के इस चौथे अंक में ही हर व्यक्ति अपनी चालाकी से 'अपराध' दूसरे पर थोप देता है। स्वयं की गर्दन बचाकर दूसरे निरपराध को फांसी दिलवा देता है। यह प्रवृत्ति वर्तमान भारत में चौगुनी तीव्रता से बढ़ी है। भारतेंदु काल में हिंदू राजा एवं अंग्रेजी शासक चापलूसों की बातों को सच मानकर निर्दोष को ही दंड दे दिया करते थे, कभी–कभी पीड़ित फरियादी ही सजा पा जाता था इसलिए लोग तब न्याय–व्यवस्था के पास जाकर अपनी व्यथा सुनाने से डरते थे। समय बदल गया, सदी बदल गयी किंतु न्याय–व्यवस्था के प्रति व्याप्त भय जनता के हृदय में अब भी ज्यों का त्यों हैं। अब भी निर्दोष व्यक्ति अमानवीय यातना सहते हैं। जैसे भारतेंदु काल में सहते थे। न्याय–व्यवस्था अब भी पद, रुपया और व्यक्ति के सामाजिक–राजनैतिक रूतवे से प्रभावित होती है। पश्चिमी शिक्षा एवं संस्कृति ने अपराध करने और बचने के सौ तरीके सिखा दिए हैं तथा कानूनी जटिलताओं के जलेबी की तरह घुमावदार होने के कारण न्याय उसमें फंसकर अक्सर दम तोड़ देता है। भारतेंदु जी ने 'अंधेर नगरी' में इसी अमानवीयता को दर्शाया है।

'अंधेर नगरी' के 'बाजार' वाले दृश्य के जो गीत कुंजड़िने, जातवाला, पाचकवाला आदि गाते हैं वे आज भी प्रासंगिक हैं। पांचवे अंक का राग काफी में गोबरधनदास द्वारा गाया गया गीत वर्तमान भारत की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थितियों को देखते हुए अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। इसकी कुछ पंक्तियां उद्धृत करना आवश्यक है–

सांच मारे–मारे डोलैं। छली दुष्ट सिर चढ़ि–चढ़ि बोलैं।।
प्रगट सभ्य अंतर छल धारी। सोई राज सभा बल भारी।।
सांच कहैं ते पनहीं खावैं। झूठे बहु बिधि पदवी पावैं।।
छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहिं लागै।।
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहि अमले अरु प्यादे।।
अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहु राजा रहत विदेसा।।

इस गीत की उपरोक्त अंतिम पंक्ति हमारे वर्तमान का यथार्थ है। भारतेंदु जी ने जिस यथार्थ को प्रकट किया था कि– सच्चे लोग मारे–मारे फिर रहे हैं और छल–कपट जानने वाले दुष्ट सिर पर चढ़कर बोल रहे हैं। बाहर से सभ्य दिखने वाले जो अंतर में ढेर सारा छल समेटे हैं उनके भारी बल से राजसभा सोई पड़ी है उसका विवेक सो गया है। झूठ कहने पर पद प्राप्त होता है, चापलूसी से पद प्राप्त होता है लेकिन सच्ची कड़वी बात कहने

टिप्पणी

पर जूते खाने पड़ते हैं आदि–आदि। यह यथार्थ हमारे वर्तमान में प्रवृत्ति और धर्म बन गया है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में कलियुग का जो चित्रण किया है वही चित्रण हमें भारतेंदु जी के 'अंधेर नगरी' में भी दिखाई देता है और वही सब कुछ वर्तमान भारतीय समाज में हम अपने आस–पास घटित होता हुआ देखते हैं। इस दृष्टि से रामचरितमानस और 'अंधेर नगरी' की प्रासंगिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। तुलसीदास जी ने लिखा है– 'सबसे कठिन जाति अवमाना' लेकिन कलियुग में और 'अंधेर नगरी' में जातवाला कथन यह यथार्थ प्रस्तुत करता है कि लोग जातिगत मान–अपमान से परे हो गए हैं और इसे भी वे वर्तमान में आधुनिक मानव धर्म का नाम देकर अपना स्वार्थ साधते हैं। सचमुच में टके में जात बेच देते हैं, अपनी इच्छापूर्ति के लिए। 'अंधेर नगरी' प्रहसन अपनी उद्देश्य पूर्ति में सफल और सार्थक सिद्ध होता है। भारतेंदु युग में इसकी प्रासंगिकता जितनी थी, सदी बीतने के साथ ही उसमें वृद्धि हुई है। इसके पात्र, संवाद, कथ्य और कथा वर्तमान में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। इस दृष्टि से यह नाटक आज भी उतना ही प्रभावशाली, उपयोगी और मनोरंजक है जितना उस भारतेंदु युग में था। इसके पात्र और कथा काल का अतिक्रमण करने वाले सिद्ध हुए हैं जो पाठकों और दर्शकों के हृदय पर अपनी मजबूत पकड़ अब भी बनाए हुए हैं।

गतिविधि

अपने मित्रों के साथ मिलकर 'अंधेर नगरी' नाटक का मंचन कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

जब भारतेंदु ने कवि वचन–सुधा नामक पत्र का प्रकाशन किया उस समय वे मात्र 18 साल के थे। इस पत्र में उस समय के शीर्षस्थ विद्वानों की रचनाएं प्रकाशित होती थीं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

14. अंधेर नगरी नाटक का मूल स्रोत क्या है?
15. अंधेर नगरी का प्रत्येक पात्र किसका प्रतीक है?
16. इस नाटक में लालची, स्वार्थी, दायित्वहीन एवं पश्चिमी संस्कृति के आकर्षण में बंधने वाला कौन–सा पात्र है?
17. बैकुंठ जाने के लोभ में कौन स्वयं फांसी चढ़ने के लिए तैयार हो जाता है?

2.7 सारांश

हिंदी नाटक का प्रारम्भ भारतेंदु युग से माना जाता है। भारतेंदु एवं उनके सहयोगियों ने गद्य के माध्यम से हिंदी साहित्य को सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आमतौर पर इस काल के नाटकों में समाज की आंतरिक विकृतियों तथा अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष करने के उपरांत ही, भारतीय जन की निराशा को दूर कर, आदर्शों के लिए संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करने का उद्देश्यपूर्ण समाज चिन्तन साफ पहचान में आता है। लोक–नाट्य में यह समय सबसे अधिक समाज सुधार के स्वर लेकर चलता है। भारतेंदु युगीन नाटकों में व्यंग्य की प्रहार क्षमता विश्व–नाट्य साहित्य में किसी से कमजोर नहीं है। बाद में कलापूर्ण तथा साहित्यिक दृष्टि से उत्तम नाटकों में भी यह क्षमता कम नहीं हुई। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, "वास्तव में ऐसा सजीव और चेतन युग हिंदी साहित्य में एक बार ही आया है। भारतेंदु का नाटककार मित्र–समुदाय उनके निर्देश पर सामाजिक प्रश्नों को अपने नाटकों के माध्यम से उठाता है। भारतेंदु युगीन प्रहसन वस्तुगत एवं शिल्पगत दोनों दृष्टियों से नया है तथा यह पहले कहे गए दुहरे संघर्ष की उपज है। भारतेंदु युगीन व्यंग्य नाटकों में शिल्प कौशल की अपेक्षा कथ्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। इस वजह से इनमें नाट्य प्रहार–क्षमता विलक्षण है। पश्चिमी देशों में इब्सन, गाल्सवर्दी और बर्नार्ड शॉ के नाटकों में व्यंग्य का जो पैनापन दिखाई देता है भारतेंदु युगीन व्यंग्य नाटकों की धार उससे अधिक है।

द्विवेदीयुग के पश्चात लगभग दो दशक भावात्मक आदर्शवाद के वर्ष हैं। जयशंकर प्रसाद के श्रेष्ठ नाटक द्विवेदी–युग के समाप्त होने के बाद ही लिखे गए। प्रसाद मूलतः भावुक और अपेक्षाकृत अधिक एकान्तप्रिय व्यक्ति थे। उनके नाटकों में सांस्कृतिक अभियान प्रमुख हैं, यद्यपि इनके माध्यम से प्रसाद जी अंततः अपने युग से ही जुड़े हैं। गंभीर दार्शनिक विवेचन, काव्यात्मक तथा अनुभूति संपन्न उक्तियों की इन नाटकों में प्रचुरता है। इस कारण से इन नाटकों में गंभीरता है तथा व्यंग्य के लिए अनुकूल परिस्थितियों की कमी है। इस युग में साहित्यिक दृष्टि से भले हिंद्री नाटक शिखर पर जा पहुंचा किंतु अन्याय, शोषण और विद्रूप के विरुद्ध जारी संघर्ष में उसका रवैया उदासीन ही दिखाई देता है। प्रसादोत्तर युग में संभवतः एकांकी नाटकों की विकास गति तीव्रतम है। यद्यपि आरम्भिक एकांकियों में सामाजिक चेतना के स्वर तीव्र नहीं हैं किंतु शीघ्र ही वे गुरु गम्भीर होते नजर आते हैं। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात हुए सबसे महत्वपूर्ण नाटककारों में मोहन राकेश का नाम नये हिंदी नाटक की सुदृढ़ नींव रखने वालों में लिया जा सकता है। नाटकों का आकर्षण सदैव बना रहा है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ इसके परिवर्तित तेवरों, रूप–रंग, प्रस्तुति इसे और अधिक आकर्षक, प्रासंगिक और उपयोगिता पूर्ण बनाते रहेंगे। नाटकों के अनेक प्रकार हैं– ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक आदि। सभी अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ पठनीय और उपयोगी होते हैं।

शिल्प की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' नाटक को उत्कृष्ट कोटि का नहीं कहा जा सकता किंतु तत्कालीन समय, समाज और साहित्यिक परिस्थितियों पर दृष्टि डालें तो उत्कृष्ट नाट्य शिल्प की अपेक्षा करना अनुचित ही होगा। पराधीन भारत के संवेदनशील और उत्तरदायित्वपूर्ण रचनाकार भारतेंदु जी ने कथ्य को प्रमुखता दी जो तत्कालीन समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक था, लेकिन ऐसा नहीं कि 'अंधेर नगरी' भाषा, शैली, शिल्प किसी भी कसौटी पर हीन ठहरता हो। यह इस दृष्टि से उत्तम एवं सफल है, सार्थक है कि इसकी भाषा शैली ने तत्कालीन भारतीय समाज को मनोरंजन प्रदान कर उनमें जीवंतता एवं उत्साह जाग्रत किया साथ ही उनके विवेक को झकझोर कर रख दिया। सामाजिक व्यवस्था, राजा एवं प्रजा के कर्तव्य तथा अधिकारों के प्रति सोचने के लिए उन्हें नई चिंतन–दृष्टि प्रदान की। इस काव्यात्मक व्यंग्य प्रधान प्रहसन में कथ्य प्रखर व्यंग्य वाक्यों के माध्यम से लक्ष्य बेध करता है। इसकी कथावस्तु लोक रुचि के अनुकूल है इसलिए इसकी लोकप्रियता बढ़ी साथ ही साथ रंगमंच के अनुकूल होने के कारण यह बार–बार मंचित किया गया। कलात्मक रूप से प्रौढ़ न होने पर भी इसमें साहित्यिक गरिमा है। इस दृष्टि से यह भारतेंदु जी का मौलिक एवं सफल नाटक माना जाता है।

टिप्पणी

टिप्पणी

'अंधेर नगरी' नाटक भारतेंदु हरिश्चंद्र की एक ऐसी ही कृति है जो तत्कालीन यथार्थ की सशक्त एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। पराधीन भारत की अशिक्षित, विवेकहीन, शोषित जनता को झकझोर कर जगाने वाला यह एक अद्‌भुत ऐतिहासिक नाटक है। 'अंधेर नगरी' एक यथार्थवादी नाटक है। भारतेंदु युग में भारतीय जनता दोहरी शासन व्यवस्था के बीच घुन की तरह पिस रही थी। एक ओर भारतीय राजाओं की स्वार्थवश अंग्रेजों की चापलूसी करने की नीति और जनता का शोषण तथा दूसरी ओर अंग्रेजी शासकों की प्रताड़ना, अत्याचार, शोषण और दमन। उन्होंने तत्कालीन यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया। नाटक इस उद्देश्यपूर्ति के लिए एक सशक्त विधा बना।

'अंधेर नगरी' नाटक में जैसे उस युग का पूरा भारत जीवंत हो उठा है। लोक तत्व के रूप में अंधेर नगरी का आरंभ भजन के साथ होता है। प्रहसन का दूसरा दृश्य पूर्णतः लोक दृश्य है। ग्रामीण बाजारों में उठने वाली ध्वनियां, शोर इस नाटक के प्रेक्षकों को सीधे ग्रामीण हाट से जोड़ देते हैं। ग्राम्य मानसिकता से जोड़ने वाली भाषा का प्रयोग भारतेंदु जी ने किया है। उनके पात्र अपनी भूमिका के अनुरूप भाषा बोलते हैं। भाषा की दृष्टि से भी यह नाटक अपने आप में ध्वनि–कौशल, स्वर के आरोह–अवरोह, क्रिया व्यापार, शब्द चमत्कार, गति और समूहन, गति और निश्चलता, वर्ण मैत्री आदि की अद्‌भुत सामर्थ्य से युक्त है।

भारतेंदु का यह नाटक एक कालजयी कृति के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। आज भले ही समय बदल गया है मगर यह नाटक आज भी नये अर्थों के साथ सामयिक बना हुआ है। भारतेंदु ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली से तत्कालीन समाज की मूल्यहीनता, चरित्रहीनता एवं खोखलेपन को रोचकता से प्रस्तुत किया है। अंधेर नगरी' में भारतेंदु ने धर्म, समाज, राजनीति और न्याय–व्यवस्था का चित्रण विस्तृत फलक पर किया है। यही कारण है कि इसकी कथा और इसके दृश्य किसी निश्चित काल–खंड तक सीमित नहीं हैं। इसमें पात्रों की कल्पना प्रवृत्तियों के आधार पर की गई है। कोई भी प्रमुख पात्र केवल एक 'व्यक्ति' नहीं है बल्कि किसी–न–किसी परंपरा अथवा सामाजिक विचारधारा का प्रतीक है। इसीलिए किसी कृति में प्रवृत्तियों और विचारधाराओं के प्रतीक पात्र तब तक प्रासंगिक बने रहते हैं जब तक समाज का अस्तित्व है। 'अंधेर नगरी' के चौथे दृश्य में हर व्यक्ति अपनी चालाकी से 'अपराध' दूसरे पर थोप देता है। स्वयं की गर्दन बचाकर दूसरे निरपराध को फांसी दिलवा देता है। यह प्रवृत्ति वर्तमान भारत में चौगुनी तीव्रता से बढ़ी है। भारतेंदु काल में हिंदू राजा एवं अंग्रेजी शासक चापलूसों की बातों को सच मानकर निर्दोष को ही दंड दे दिया करते थे, कभी–कभी पीड़ित फरियादी ही सजा पा जाता था इसलिए लोग तब न्याय–व्यवस्था के पास जाकर अपनी व्यथा सुनाने से डरते थे। समय बदल गया, सदी बदल गयी किंतु न्याय–व्यवस्था के प्रति व्याप्त भय जनता के हृदय में अब भी ज्यों का त्यों है। अब भी निर्दोष व्यक्ति अमानवीय यातना सहते हैं जैसे भारतेंदु काल में सहते थे। आज भी राजनीति में झूठ बोलने पर पद प्राप्त होता है, चापलूसी से पद प्राप्त होता है लेकिन सच्ची कड़वी बात कहने पर जूते खाने पड़ते हैं आदि–आदि। यह यथार्थ हमारे वर्तमान में प्रवृत्ति और धर्म बन गया है। भारतेंदु के इस यथार्थ को हम वर्तमान में उनकी चुनौती मान सकते हैं। 'अंधेर नगरी' की प्रासंगिकता असंदिग्ध है।

2.8 मुख्य शब्दावली

टिप्पणी

- **विकृति** : खराबी, विकार
- **प्रहसन** : परिहास, दिल्लगी
- **मिथ्या** : झूठ, असत्य
- **श्लाघनीय** : प्रशंसनीय
- **मंथर गति** : धीमी गति, मंद गति
- **सनातन** : परंपरानुसार चला आता हुआ
- **अभिशप्त** : शापित, शाप से ग्रस्त
- **औचित्य** : उचित होने की अवस्था, उपयुक्तता
- **अनौचित्य** : औचित्य का अभाव, अनुचित
- **बिलायत** : विदेश
- **अजीरन** : अजीर्ण
- **टिकस** : टैक्स
- **टका** : अंग्रेजी शासन काल में प्रचलित दो पैसे का सिक्का, चांदी का पुराना सिक्का
- **भिश्ती** : मशक से पानी ढोने वाला व्यक्ति
- **टिकठी** : फांसी का तख्ता

2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. कथ्य
2. नाटक
3. अंग्रेजी और बांग्ला
4. पांच
5. हास्य
6. यथार्थवादी
7. सन् 1981 में
8. छह दृश्य
9. जन जागरण
10. प्रहसन
11. 'राम भजो' गीत से

टिप्पणी

12. पाप का मूल
13. लोक संगीत
14. लोक प्रचलित गाथा
25. परंपरा अथवा सामाजिक विचारधारा
16. गोबरधनदास
17. राजा

2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्यिक परिचय लिखिए।
2. 'अंधेर नगरी' नाटक की मूल संवेदना को अपने शब्दों में अभिव्यक्त कीजिए।
3. अंधेर नगरी नाटक के आधार पर इसके पात्र 'पाचकवाला' के चरित्र की विशेषताएं बताइए।
4. गोबरधनदास के चरित्र का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
5. अंधेर नगरी के भाषा–शिल्प पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी नाटकों की विकास यात्रा का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. नाट्य–शिल्प की दृष्टि से अंधेर नगरी नाटक की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. 'अंधेर नगरी' में वर्णित यथार्थ बोध का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
4. 'अंधेर नगरी' में विद्यमान लोक तत्वों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. सामयिक युगबोध को प्रखरता से व्यंजित करने वाले 'अंधेर नगरी' नाटक की आज के संदर्भ में प्रासंगिकता सिद्ध कीजिए।

2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. रामविलास शर्मा, *भारतेंदु युग और हिंदी भाषा का विकास,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- गोविंद चातक, *भारतेंदु के संपूर्ण नाटक,* तक्षशिला प्रकाशन।
- गोविंद चातक, *संपूर्ण रंग नाटक,* तक्षशिला प्रकाशन।
- *भारतेंदुयुगीन हिंदी नाटक : संदर्भ सापेक्षत,* के.एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद।
- बच्चन सिंह, *हिंदी नाटक,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

इकाई 3 आधे–अधूरे (मोहन राकेश)

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 पात्र परिचय एवं व्याख्याएं
  3.2.1 पात्र–परिचय
  3.2.2 व्याख्या
3.3 आधे–अधूरे में आधुनिकता बोध
3.4 आधे–अधूरे की प्रयोगधर्मिता
3.5 नाट्य समीक्षा की कसौटी पर 'आधे–अधूरे'
  3.5.1 कथानक
  3.5.2 पात्र एवं चरित्र चित्रण
  3.5.3 युग–बोध
  3.5.4 अभिनेयता
3.6 आधे–अधूरे की नाट्यभाषा
  3.6.1 रंगमंच के अनुकूल शब्दों का चयन
  3.6.2 भाषा शैली
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

मोहन राकेश ने 1969 में आधे–अधूरे नाटक का प्रणयन किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति के संघर्ष, टूटते परिवार, तनाव एवं द्वंद्व को जीवंत करने वाला यह अद्भुत नाटक है। स्त्री–पुरुष के मन की अतृप्ति एवं अधूरापन उन्हें किस तरह पथभ्रष्ट करता है तथा रिश्तों में आई दरार और पतित होते युवा वर्ग को दर्शाकर मोहन राकेश मध्यवर्गीय परिवार की जीवंत झांकी प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात हुए सबसे महत्वपूर्ण नाटककारों में मोहन राकेश का नाम नये हिंदी नाटक की सुदृढ़ नींव रखने वालों में लिया जा सकता है किंतु जहां तक उनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रवृत्तियों का प्रश्न है, निस्संकोच हम कह सकते हैं कि वे अत्यंत सूक्ष्म हैं। मोहन राकेश के तीन पूरे तथा एक अधूरे (पैरों तले जमीन) नाटकों में से दो 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'आधे–अधूरे' 'ट्रैंड–सैटर' कहे जा सकते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' (1985) में व्यंग्य बहुत ही सूक्ष्म है।

जनवरी 1969 में प्रकाशित मोहन राकेश का नाटक 'आधे–अधूरे' पारिवारिक जीवन की एक बहुत बड़ी ट्रैजेडी को अंकित करता है। यह ट्रैजेडी न्यूनाधिक रूप में अनेक लोगों की है। इस नाटक के सावित्री और महेंद्र स्वयं में बहुत बड़े व्यंग्य बन गए हैं। सावित्री

टिप्पणी

पौराणिक सावित्री से विपरीत है जो दूसरा पति पाने के प्रयास में संलग्न है। महेंद्रनाथ अपने नाम के ठीक विपरीत लुंज–पुंज व्यक्तित्व वाला चरित्र है। वैसे तो सभी प्राणी किसी न किसी रूप में आधे–अधूरे होते हैं। नायिका सावित्री भी ऐसी ही है किंतु दूसरों के अधूरेपन पर, विशेषतः पति और बच्चों के अधूरेपन पर वह खीझती है। यहां व्यंग्य एक बिल्कुल अलग अंदाज लेकर सामने आया है। 'आधे–अधूरे' वस्तुतः लेखक का स्वयं पर किया गया व्यंग्य है। सावित्री जैसे खुद मोहन राकेश का परिवर्तित अहं (आल्टर ईगो) बन गई है। 'आधे–अधूरे' की ट्रैजेडी अतिरंजित रूप में ही सही हमारी सामाजिक मानसिकता पर किया गया व्यंग्य है। समाज के अभिन्न अंग के नाते स्त्री और पुरुष मूलतः एक दूसरे के पूरक होते हैं किंतु पश्चिमी प्रभावों के कारण एक नयी विकृति भारतीय समाज में प्रतिफलित होती दिखाई देती है। वह है स्त्री–पुरुष के बीच निरन्तर बढ़ता हुआ अविश्वास। स्त्री पुरुष को सुविधाएं जुटाने वाला साथी मानने लगी है और पुरुष नारी को दैहिक संबंधों तक सीमित करने लगा है। सनातन पुरुष और सनातन नारी आपस में मिल ही नहीं पाते। 'आधे–अधूरे' का यह व्यंग्य समाज पर है जिसके अंग स्त्री–पुरुष दोनों हैं। जब शरीर ही विकृत है तो अंग कैसे स्वस्थ होंगे। समाज में विकसित मानसिकता से अभिशप्त उसके सदस्य जब आत्म–केन्द्रित और असामाजिक बनते हैं तो समाज शब्द ही विकृत अथवा अर्थहीन हो जाता है। आज यही विडंबना विकसित होती दिखाई दे रही है। इस इकाई में 'आधे–अधूरे' नाटक की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मोहन राकेश रचित 'आधे–अधूरे' नाटक के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर पाएंगे;
- 'आधे–अधूरे' में विद्यमान आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के अभावों एवं संघर्ष से परिचित हो पाएंगे;
- प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से 'आधे–अधूरे' नाटक की समीक्षा कर पाएंगे;
- 'आधे–अधूरे' के कथानक एवं पात्रों के चरित्रों की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- 'आधे–अधूरे' में चित्रित युगबोध को परिभाषित कर पाएंगे;
- अभिनेयता की दृष्टि से 'आधे–अधूरे' नाटक का आकलन कर पाएंगे;
- रंगमंच की दृष्टि से 'आधे–अधूरे' की भाषा–शैली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

3.2 पात्र परिचय एवं व्याख्याएं

सर्वप्रथम आधे–अधूरे के पात्रों का परिचय देना आवश्यक है क्योंकि नाटक का समस्त घटनाक्रम इन पात्रों के इर्द–गिर्द घूमता है।

3.2.1 पात्र–परिचय

पुरुष एक	– महेंद्रनाथ (सावित्री का पति)
पुरुष दो	– सिंघानिया
पुरुष तीन	– जगमोहन
पुरुष चार	– जुनेजा
स्त्री	– सावित्री
बड़ी लड़की	– बिन्नी
छोटी लड़की	– किन्नी .... सावित्री एवं महेंद्रनाथ के तीन बच्चे
लड़का	– अशोक

पुरुष एक के रूप में महेंद्रनाथ : पतलून–कमीज। जिन्दगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष दो के रूप में सिंघानिया पतलून और बन्द गले का कोट। अपने आपसे संतुष्ट, फिर भी आशंकित। पुरुष तीन के रूप में जगमोहन– पतलून–टीशर्ट। हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव–भाव में। पुरुष चार के रूप में जुनेजा पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट पहने। चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास। काइयांपन।

स्त्री : उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरूचिपूर्ण।

बड़ी लड़की : उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी–कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी : मां से साधारण : पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।

छोटी लड़की : उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर चाल–हर चीज में विद्रोह, फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सूराख।

लड़का : उम्र इक्कीस के आस–पास। पतलून के अंदर दबी भड़कीली बुश्शर्ट धुल–धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहां तक कि हंसी से भी, झलकती खास तरह की कड़वाहट।

3.2.2 व्याख्या

1. **पुरुष एक :** वह छः महीने बाहर रहकर आया है। हो सकता है, कोई नया कारोबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए...

   स्त्री : तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या–क्या करेगा वह जिन्दगी में! पहले ही कुछ कम नहीं किया है। इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में! पता नहीं कहां से चली आती है!

   पुरुष एक : तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ से हमेशा मेरी मदद की है।

   स्त्री : न करता मदद, तो उतना नुकसान तो न होता जितना उसके मदद करने से हुआ है।

   पुरुष एक : (कुढ़कर सोफे पर बैठता) तो नहीं जाता मैं! अपने अकेले के लिए जाना है मुझे! अब तक तकदीर ने साथ नहीं दिया तो इसका यह मतलब तो नहीं कि...।

टिप्पणी

टिप्पणी

स्त्री : यहां से उठ जाओ। मुझे झाड़ लेने दो जरा। उस कुर्सी पर चले जाओ, वह साफ हो गयी है। (बड़बड़ाती) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही जगह जमाखर्च। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दिया, तुम्हारा नहीं दिया।

पुरुष एक : (गुस्से से उठता है) तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे...।

स्त्री : खड़े क्यों हो गए?

पुरुष एक : क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता?

स्त्री : (हलका वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अंदर ही।

संदर्भ – प्रस्तुत संवाद मोहन राकेश के नाटक आधे–अधूरे से लिया गया है।

प्रसंग – यहां पुरुष एक के रूप में महेंद्रनाथ तथा स्त्री के रूप में उसकी पत्नी सावित्री के बीच जुनेजा नामक मित्र को लेकर तीखी झड़प हो रही है जिसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या – महेंद्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री से कहता है कि उसका मित्र जुनेजा जो कारोबार के सिलसिले में बाहर गया था, छह महीने बाद लौटकर आया है। हो सकता है कि वह किसी नये कारोबार के संबंध में कोई योजना बना रहा हो जो मेरे लिए भी लाभदायक हो, तो मैं उससे मिलने जा रहा हूं। सावित्री–जुनेजा से नफरत करंती है वह सोचती है कि जुनेजा अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर उसके पति से काम निकलवाता है, उसका शोषण करता है और उसे ऐसी शिक्षा देता है कि वह अपने घर–परिवार को महत्व न दे। सावित्री का मानना है कि जब कारोबार में लाभ होता है तो उसे जुनेजा रखता है और उसके पति को बराबर का हिस्सेदार होने पर भी उसका हिस्सा नहीं मिलता। इसलिए वह जुनेजा से मिलने जाते हुए पति पर व्यंग्य करती है कि जाओ उसे देने के लिए पैसे नहीं है, बेरोजगार बैठे हो तो कम से कम उसे मुंह तो दिखा ही सकते हो। महेंद्रनाथ कहता है, तुम उस आदमी से बेवजह चिढ़ती हो, उसने मेरी बहुत मदद की है। सावित्री बातें करते हुए कुर्सियां साफ करती जाती है और बड़बड़ाती है कि इस घर में इतनी गर्द हर वक्त भरी रहती है, पता नहीं कहां से आती है? यह गर्द घर में चौबीसों घंटे चलने वाले कलह और तनाव का प्रतीक है। सावित्री कहती है कि जुनेजा को तुम मददगार कहते हो लेकिन उसने अगर मदद न की होती तो अच्छा होता, उसके मंदद करने से अधिक नुकसान हुआ है। महेंद्रनाथ कुढ़ता हुआ बैठ जाता है और कहता है, मैं अपने लिए उसके पास नहीं जा रहा था। किसी व्यवसाय की बात करने जा रहा था ताकि तुम सब के लिए कुछ कर सकूं। पहले जो भी नुकसान हुआ, भाग्य का लिखा, था वही घटा। सावित्री कहती है–पहली बार प्रेस में जो हुआ उसे भाग्य माना जा सकता है लेकिन दूसरी बार तो सरासर बेईमानी थी। एक ही फैक्टरी थी, तुम दोनों ने बराबर पैसा लगाया। फिर तकदीर ने उसका साथ दिया तुम्हारा नहीं, यह कैसे हो सकता है। वह झाड़न से कुर्सी साफ करती हुई महेंद्र के पास पहुंचती है तो वह खड़ा हो जाता है– वह कहती है–खड़े क्यों हो गए? वह चिढ़ कर कहता है– क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता? तब

टिप्पणी

सावित्री व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहती है– तुम केवल घर के अंदर खड़े हो सकते हो, बाहर नहीं। अर्थात तुम घर में पुरुषार्थ का प्रदर्शन करते हो लेकिन बाहर जाकर हर बात में जुनेजा का सहारा लेते हो, स्वयं निर्णय लेने की शक्ति तुममें नहीं रहती। पत्नी–पति के बीच की बहस को राकेश जी ने जीवंत प्रस्तुति दी है।

2. **स्त्री** : वजह का पता तुम्हें होगा या तुम्हारे लड़के को। वह भी तीन–तीन दिन दिखायी नहीं देता घर पर।

पुरुष एक : तुम मेरा मुकाबला उससे करती हो?

स्त्री : नहीं, उसका मुकाबला तुमसे करती हूं। जिस तरह तुमने ख्वार की अपनी जिन्दगी, उसी तरह वह भी....।

पुरुष एक : और लड़की तुम्हारी? उसने अपनी जिन्दगी ख्वार करने की सीख किससे ली है? मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।

स्त्री : (एकटक उसकी आंखों में देखती) तुम कहना क्या चाहते हो?

पुरुष–एक : कहना क्या है... जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इस दृश्य में पति–पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर छींटाकशी कर रहे हैं।

व्याख्या – सावित्री अपने पति महेंद्रनाथ से कहती है कि अब जुनेजा बाहर से लौट आया है तो फिर पहले की ही तरह बिना बताए तुम तीन–तीन दिन के लिए घर से बाहर उसके साथ रहोगे ही। महेंद्रनाथ सफाई देते हुए कहता है कि मैं अगर बाहर रहता भी हूं तो उसका कोई कारण होता है, तुम जानती हो। सावित्री कहती है–कारण मैं नहीं जानती, तुम जानते हो या तुम्हारा बेटा क्योंकि वह भी घर से बिना बताए तीन–तीन दिन तक बाहर रहना सीख गया है। यह शिक्षा तुम्हारी ही है जिस पर चल कर वह तुम्हारी तरह ही अपनी जिन्दगी बर्बाद कर लेगा। सावित्री का आरोप सुनकर महेंद्रनाथ तिलमिला जाता है और कहता है– तुम मेरी बराबरी उस लड़के से कर रही हो? अर्थात बेटा तो बच्चा है, गैर जिम्मेदार है, आवारागर्दी करता है और तुम उससे मेरी बराबरी कर रही हो। सावित्री कहती है– नहीं, तुम्हारी बराबरी उससे नहीं, उसकी बराबरी तुमसे कर रही हूं क्योंकि वह भी तुम्हारी तरह बर्बादी की राह पर चल रहा है। महेंद्रनाथ कुढ़ जाता है और कहता है– ठीक है बेटा मेरी तरह बर्बाद हो रहा है लेकिन बेटी के संबंध में तुम्हारी क्या राय है? वह भी तो तुम्हारे पद–चिह्नों पर चल रही है। मैंने बेटे को यह नहीं सिखाया कि किसी लड़की को लेकर भाग जा। तुम्हारी बेटी किसी लड़के के साथ भाग गई, उसे यह शिक्षा कहां से मिली? सावित्री तिलमिलाकर सवाल पूछती है तो महेंद्रनाथ विवाद खत्म करने की दृष्टि से कहता है– इस संबंध में कुछ नहीं कहना है, जो है, तुम जानती हो।

जाओ चाय बना लाओ।

प्रस्तुत अंश में बाहरी दबावों और परिस्थितिजन्य कुंठा से ग्रस्त पति–पत्नी के संबंध का संकेत है, साथ ही पूरे परिवार की व्यक्तिगत जटिलताओं तथा पारस्परिक संबंधों का भी।

टिप्पणी

आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों और विसंगतियों का भी। मोहन राकेश ने नाटक में आम आदमी की छवि को आम आदमी के तेवर, भाषा एवं लहजे में उभारा है।

3. **पुरुष एक** : हांऽऽ, सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहां चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मानते कि इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से।

पुरुष एक : मैं नहीं शुक्र मनाता? जब–जब किसी नये आदमी का आना–जाना शुरू होता है यहां, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूं। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था।

स्त्री : (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या–क्या बातें रह गयी हैं कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष एक : क्यों... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए?

स्त्री : (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेंद्रनाथ सावित्री और उसके बॉस सिंघानिया के बीच संबंधों को संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए सावित्री पर व्यंग्य कर रहा है।

व्याख्या– सावित्री कहती है, कि सिंघानिया आने वाला है, वह मेरा बॉस है, बड़ा आदमी है लेकिन इतना भला है कि मेरे एक बार कहने पर ही घर आ रहा है। मैंने उसे इसलिए बुलाया है कि उससे संबंध बन जाएं तो वह लड़के की कहीं नौकरी लगवा देगा इसलिए तुम सब लोग उसके आने पर उसका स्वागत करो, उससे मिलो। महेंद्रनाथ व्यंग्यात्मक अंदाज में कहता है– हां, बेचारा सिंघानिया लड़के की नौकरी लगवाने के लिए ही तो यहां आता है, और कुछ नहीं। वैसे भी जिस नये व्यक्ति का घर में आना जाना आरंभ होता है मैं शुक्र ही मानता हूं कि चलो एक और बड़ा आदमी इस घर में आने लगा। पहले जगमोहन आता था, फिर मनोज और सिंघानिया। सावित्री तिलमिलाकर कहती है और भी जो–जो कहना है कह डालो क्योंकि तुम अहसानफरामोश हो, मैं जिसको भी बुलाती हूं तुम लोगों के भले के लिए बुलाती हूं ताकि बड़े लोगों से संबंध बनाकर कुछ लाभ इस घर के लिए कमा सकूं। लेकिन तुम्हारी आरोप वाली बातें सुनकर तो लगता है कि... सावित्री बात अधूरी छोड़ देती है लेकिन उसका आशय स्पष्ट है कि तुम संदेह करते हो तो मन करता है कि आज ही यह घर और तुम्हें छोड़कर उस आदमी अर्थात सिंघानिया के साथ चली जाऊं।

4. **बड़ी लड़की**: वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

पुरुष एक : (उस ओर देखकर) क्या कहा... हवा?

बड़ी लड़की: हां, हवा।

टिप्पणी

पुरुष एक : (निराश भाव से सिर हिलाकर, मुंह फिर दूसरी तरफ करता) यह वजह बतायी है इसने... हवा!

स्त्री : (बड़ी लड़की के चेहरे को आंखों से टटोलती) मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की: (उठती हुई) मैं शायद समझा नहीं सकती (अस्थिर भाव से कुछ कदम चलती) किसी दूसरे को तो क्या, अपने को भी नहीं समझा सकती। (सहसा रुककर) ममा, ऐसा भी होता है क्या कि...?

स्त्री : कि?

बड़ी लड़की: कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक–दूसरे से अजनबी महसूस करें।

स्त्री : तुम दोनों ऐसा महसूस करते हो?

बड़ी लड़की: कम से कम अपने लिए तो मैं कह सकती हूं।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – बड़ी लड़की बिन्नी अपने पति के घर से अचानक मायके आ गई है। सावित्री और महेंद्रनाथ को संदेह है कि यह बार–बार पति से लड़ कर यहां आती है, इसलिए वे उससे अचानक आने का कारण पूछते हैं और बिन्नी अपने अंदाज में उत्तर देती है।

व्याख्या– सावित्री पूछती है बिन्नी से – ऐसी क्या वजह है कि तू बार–बार पति को छोड़कर यहां भाग आती है। विवाह तो तूने उसके (मनोज) के साथ भागकर अपनी इच्छा से किया है फिर क्या समस्या है। माता–पिता द्वारा तय किए गए रिश्तों से समस्या हो सकती है क्योंकि लड़का–लड़की एक दूसरे को पहले से जानते नहीं हैं लेकिन बिन्नी ने मनोज के साथ भागकर शादी की, फिर क्या वजह है कि वह उसे छोड़कर यहां आए। बिन्नी कहती है–मनोज से उसे शिकायत नहीं है। वह अच्छा पति है, प्रेमी है उसका ध्यान रखता है लेकिन कुछ है हमारे बीच कि हम कुछ देर साथ रहने के बाद असहज हो जाते हैं। हमारे बीच से गुजरने वाली 'हवा' ही वह वजह है अर्थात हमारे बीच का कुछ अनजाना सा तत्व। वह मां से कहती है कि क्या ऐसा होता है कि दो लोग जितना अधिक एक–दूसरे के साथ रहें, एक हवा में सांस लें उतना ही ज्यादा वे एक–दूसरे के लिए अजनबी बनते जाते हैं। मां पूछती है क्या तुम दोनों ऐसा अनुभव करते हो? बिन्नी कहती है– कम से कम मैं तो करती हूं। तात्पर्य यह कि पहले दूर–दूर रहकर दो लोग एक दूसरे के प्रति आकर्षित तो होते हैं किंतु एक दूसरे के व्यक्तित्व को परिपूर्णता में नहीं जानते, साथ रहने पर दो व्यक्तित्व आपस में टकराते हैं जिसके कारण वे एक–दूसरे से दूर होते जाते हैं। बिन्नी इसी द्वंद्व से गुजर रही है।

प्रस्तुत अंश में व्यक्तित्वों की टकराहट और अंतर्संबंधों की जटिलता को एक गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दिखाया गया है। व्यक्ति संबंध निभाना भी चाहता है लेकिन अपनी व्यक्तिगत सत्ता, अपनी अस्मिता से समझौता भी नहीं करना चाहता। आज के समाज के आधुनिक व्यक्ति की यही विसंगति है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में व्यक्ति संबंधों की इसी जटिलता को बड़ी बारीकी से उभारा है।

टिप्पणी

5. **बड़ी लड़की:** पर कौन सी अड़चन? उसके हाथ में छलक गयी चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर–ये छोटी–छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इन्तजार में रहती हूं जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूं। और आखिर...। आखिर वह सीमा आ जाती है जहां पहुंचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री : क्या?

बड़ी लड़की: कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूं जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री : (जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो) क्या चीज?

बड़ी लड़की: मैं पूछती हूं क्या चीज, तो उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री : वह क्या?

बड़ी लड़की: कि इसका पता मुझे अपने अंदर से या इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– उपर्युक्त अंश एक आधुनिक विवाहिता स्त्री की दुविधा, उसकी अस्मिता और उससे की जाने वाली अपेक्षाओं के द्वंद्वों को व्यक्त करता है और टूटते हुए परिवारों की विसंगति को भी। प्रस्तुत व्याक्यांश में परिवार की बड़ी पुत्री जो पति का घर छोड़कर आ गई है, मां से अपनी मनःस्थिति व अपने पति के बीच में आई दूरी का जिक्र कर रही है। लेखक ने यहां उसकी मानसिकता को माता–पिता के व्यक्तिगत संबंधों में आई दरारों और परिवार की कुंठाओं और क्लेश से भी जोड़ा है। सावित्री अपनी बेटी बिन्नी से कहती है कि अगर तुम अपने पति के साथ रहते हुए भी अजनबी जैसा अनुभव करती हो तो इसके पीछे कोई अड़चन होगी। तब बिन्नी उत्तर देती है।

व्याख्या– बिन्नी सावित्री से कहती है कि कोई अड़चन या बाधा ऐसी नहीं है जिसके कारण हम पति–पत्नी के बीच के संबंध असहज हो जाते हैं। उसके हाथ से चाय छलक जाए या वह दफ्तर से आधा घंटा देर से आए ये तो छोटी–छोटी बातें हैं, ये अड़चन नहीं होती, लेकिन बन जाती हैं, जिसका कारण मैं हूं। इन छोटी–छोटी बातों को भी बहाना बनाकर मैं अपने भीतर का गुबार निकालती रहती हूं क्योंकि कोई कारण न होने पर भी मेरे भीतर एक गुबार सा हर वक्त भरा रहता है और मैं बहाना या मौका ढूंढती रहती हूं कि कब अपनी भड़ास मनोज पर निकालूं और अंततः जब उसकी कोई कमी नजर नहीं आती तो ऐसे छोटे–छोटे कारणों को लेकर ही मैं उस पर बरस पड़ती हूं। वह समझाता है लेकिन अंततः वह भी थककर हथियार डाल देता है, लेकिन ऐसे अवसरों पर वह यही कहता है कि– इसमें मेरी कोई गलती नहीं है– मेरे परिवेश की है कि मैं इस घर यानी मायके से ही कोई ऐसी चीज लेकर गई हूं जो किसी भी स्थिति में मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती।

टिप्पणी

सावित्री को धक्का लगता है जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो क्योंकि वह जानती है कि आज जो उसका दामाद है, बीते कल में उसका मित्र या प्रेमी था और वह उसकी असंतुष्ट प्रवृत्ति को जानता है। शायद यह अतृप्ति या असंतुष्टि ही वह चीज है जो न मुझे सहज रहने देती थी न उसकी बेटी को। लेकिन वह अपने मनोभाव छिपाकर पूछती है कि मनोज किस चीज का जिक्र करता है। बिन्नी कहती है– मुझे पता नहीं, मनोज भी नहीं बताता। कहता है कि वह चीज जो तुम्हें सहज, स्वाभाविक नहीं रहने देती उसका पता तुम्हें अपने अंदर से यानी अपने भीतर झांकने से या अपने घर के संबंध में सोचने पर मिल सकता है। क्योंकि हर मनुष्य यह जानता है कि वह क्या है।

6. **बड़ी लड़की:** क्योंकि मुझे नहीं लगता है कि... कैसे बताऊं, क्या लगता है? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे मुझे अपने से अजब सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है... मन करता है, आसपास की हर चीज को तोड़–फोड़ डालूं। कुछ ऐसा कर डालूं जिससे...।

स्त्री : जिससे?

बड़ी लड़की: जिससे उसके मन को कड़ी–से–कड़ी चोट पहुंचा सकूं। उसे मेरे लम्बे बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूं, इन्हें जाकर कटा आऊं। वह मेरे नौकरी करने के हक में नहीं है। इसलिए चाहती हूं कहीं भी, कोई भी छोटी–मोटी नौकरी ढूंढकर कर लूं। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नहीं पाती और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर...।

स्त्री : यहां चली आती है?

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– मनोज जब हर बार बिन्नी से कहता है कि वह अपने घर से कोई ऐसी चीज लेकर आई है जो उसे स्वाभाविक, सहज नहीं रहने देती तो बिन्नी खिन्न होकर जो प्रतिक्रिया व्यक्त करती है उसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या– सावित्री बिन्नी से कहती है कि तुम मनोज से क्यों नहीं पूछतीं कि वह किस चीज के संबंध में बात कर रहा है। तब बिन्नी कहती है कि मुझे नहीं लगता कि मनोज गलत कह रहा है क्योंकि मुझे भी ऐसा लगता है कि कुछ है ऐसा मेरे भीतर जो मुझे सहज वातावरण में भी सहज नहीं रहने देता। वह जितने विश्वास से यह बात कहता है उस पर अविश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि मुझे अपने–आपसे चिढ़ होने लगती है। लगता है अपने आस–पास की हर चीज नष्ट कर दूं, तोड़ फोड़ दूं कुछ ऐसा करूं कि मनोज दुखी हो, परेशान हो, उसके मन को चोट पहुंचे। वह भी मेरी तरह असहज हो जाए तो मुझे चैन मिले। मैं हर काम उसकी इच्छा के विरुद्ध करना चाहती हूं ताकि वह चिढ़े, दुखी हो। उसे मेरे लम्बे बाल पसंद हैं इसलिए चाहती हूं इन्हें कटवा दूं ताकि उसके मन को आघात लगे, वह मेरा नौकरी करना पसंद नहीं करता इसलिए लगता है कि कोई भी छोटी–मोटी नौकरी करने के लिए घर से निकलूं ताकि वह दुखी हो। मेरे सामने हार जाए। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर पाती इसलिए खीझकर यहां चली आती हूं।

टिप्पणी

यहां कुछ विशेष प्रकार की स्त्रियों की उस मनोवृत्ति को प्रकट किया गया है जहां वे छोटी–छोटी बातों को लड़ाई का बहाना बनाती हैं और पति को नीचा दिखाने का प्रयास करती हैं।

7. **बड़ी लड़की:** मेरा अपना घर.... हां। और मैं आती हूं। कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है! (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा कि क्या चीज है वह? और कहां है वह? इस घर के खिड़कियों–दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहां छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गयी हूं? (स्त्री की दोनों बांहें हाथ में लेकर) बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहां पर है इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग– बिन्नी सावित्री से कहती है, मैं इस घर में बार–बार इसलिए आती हूं ताकि मनोज के कथनानुसार उस चीज को ढूंढ सकूं जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती।

व्याख्या– बिन्नी सावित्री से कहती है कि हर बार पति के सामने मन का गुबार निकाल कर मुझे यही सुनना पड़ता है कि मैं इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हूं जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती तब मैं लड़कर यहां आती हूं। अपने घर में बार–बार आती हूं यह खोजने कि वह चीज क्या है? कहां है? जिसका उल्लेख करके मनोज बार–बार मुझे नीचा दिखाता है, हीन साबित करता है। बिन्नी दुखी, उदास होकर कहती है तो लगता है वह भीतर से टूट चुकी है। वह मां से पूछती है कि बताओ वह चीज क्या है? कहां है? इस घर के खिड़की दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी और अशोक में? कहां है? किसमें छिपी है वह मनहूस, अशुभ चीज भाव या तत्व जिसे अपने साथ लेकर मैं यहां से गई हूं? वह मां का हाथ पकड़कर झकझोरते हुए जिद करती है कि वह उस चीज का पता बताए ताकि उस चीज का पता लगते ही वह उसे नष्ट कर अपने गृहस्थ जीवन को सुखी बना सके। वह नहीं जानती कि अतृप्ति और असंतोष ही वह चीज, भाव, या संस्कार हैं जो वह अपनी मां से इस घर से लेकर गई है जो उसे असहज बनाये रखते हैं। यह सारी परिस्थिति उन महिलाओं के क्षुद्र भावों की ओर संकेत करती है जिनके मूल में उनके पैतृक परिवार का, पीहर का परिवेश काम कर रहा होता है।

8. **पुरुष एक** : किसे सुना सकता हूं? कोई है जो सुन सकता है? जिन्हें सुनना चाहिए, वे सब तो एक रबड़–स्टैंप के सिवा कुछ समझते नहीं मुझे। सिर्फ जरूरत पड़ने पर इस स्टैंप का ठप्पा लगाकर...।

स्त्री : यह बहुत बड़ी बात नहीं कह रहे तुम?

लड़का : (उसे रोकने की कोशिश में) ममा...!

स्त्री : मुझे सिर्फ इतना पूछ लेने दे इनसे कि रबड़–स्टैंप के माने क्या होते हैं? एक अधिकार, एक रुतबा, एक इज्जत–यही न?

टिप्पणी

लड़का : (फिर उसी कोशिश में) सुनो तो सही, ममा...।

स्त्री : (बिना उसकी तरफ ध्यान दिए) यह सब कब–कब मिला है इनसे किसी को भी इस घर में? किस माने में ये कहते हैं कि...?

पुरुष एक : किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़–स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूं–बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग– महेंद्रनाथ अपनी उपेक्षा से पीड़ित होकर पत्नी, बच्चों के सामने निम्न पंक्तियों में अपने मन का गुबार निकाल रहा है।

व्याख्या– महेंद्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री और बच्चों के सामने जोर–जोर से कहता है कि कितने साल का हो गया मैं? कितने साल से परिवार की देखरेख कर रहा हूं लेकिन इस घर में हर कोई मेरी उपेक्षा करता है, मुझ पर व्यंग्य करता है। मेरा यहां कोई सम्मान है या नहीं? उसकी बात सुनकर सावित्री चिढ़ कर कहती है कि यह रोना किसे सुना रहे हो? तब सावित्री की बात का उत्तर देते हुए महेंद्रनाथ कहता है कि किसे सुनाऊंगा? इस घर के लोग मुझे केवल रबर स्टैंप समझते हैं। जैसे किसी कागज को, लेख को प्रमाणित करना हो तो लोग रबर स्टैंप निकालकर संबंधित अधिकारी या कार्यालय की सील लगा देते हैं, फिर रबर स्टैंप को टेबल या अलमारी के किसी कोने में लापरवाही से डाल देते हैं। स्टैंप लगाते ही कागज मूल्यवान हो जाता है लेकिन जिस स्टैंप ने इस कागज को मूल्यवान और अस्तित्ववान बनाया उसको उपेक्षित पड़ा रहने देते हैं। महेंद्रनाथ का यही तात्पर्य है कि पिता हैं और पति हैं, यह प्रमाणित करने के लिए ही उसका अस्तित्व है, वरना कोई उसे सम्मान नहीं देता। सावित्री चिढ़ कर कहती है कि रबर स्टैंप का मतलब–एक रुतबा, एक इज्जत, एक अधिकार है, लेकिन यह सब घर के लोगों को इन्होंने कब दिया? तात्पर्य यह है कि तुम रबर स्टैंप भी नहीं हो। महेंद्रनाथ कहता है– हां, मैं रबर स्टैंप नहीं बल्कि रबर का एक टुकड़ा हूं, बेकार जिसे रोज–रोज घिसा जाता है। मैं अस्तित्वहीन हूं तो मुझे घर में नहीं रहना चाहिए। क्योंकि मेरे घर में रहने की कोई वजह नहीं है। मैं रहूं तब भी, न रहूं तब भी, कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने ही परिवार में उपेक्षित पति की मनोदशा को ये शब्द मुखर कर रहे हैं।

9. **पुरुष एक** : (सिर हिलाता) हां ..... छोटी सी बात ही तो है यह। अधिकार, रुतबा, इज्जत–यह सब बाहर के लोगों से मिल सकती है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे! मेरे भरोसे तो सब–कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से। (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बिताये एक रात घर से क्यों भाग गयी थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिलकुल सामने आकर) और तुम भी? तुम भी इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि...?

टिप्पणी

स्त्री : (बौखलाकर, शेष तीनों से) सुन रहे हो तुम लोग?

पुरुष एक : अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूं। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूं। इन सबकी जिन्दगियां चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूं। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूं क्योंकि अंदर से मैं आरामतलब हूं, घरघुसरा हूं, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

स्त्री : मैं नहीं जानती, तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या...?

पुरुष एक : सचमुच महसूस करता हूं। मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूं जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है (दरवाजे के पास रुककर) और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता रहूं यहां?

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– घर में अपनी उपेक्षा से तिलमिलाया हुआ महेंद्रनाथ पत्नी के सामने मन का गुबार निकालते हुए उसकी चारित्रिक कमजोरियों पर प्रकाश डाल रहा है।

व्याख्या– महेंद्रनाथ कहता है कि रबरस्टैंप यानी– अधिकार, रुतबा और इज्जत। अगर मैं यह भी नहीं दे सकता, पिता और पति का सम्मान मिलना तो दूर जब मुझे रबर स्टैंप भी नहीं समझा जाता तो मैं इस घर में क्यों रहूं। यह सब चीजें इस घर को सदा बाहर के लोगों से मिलती रही हैं। वे ही इस घर को अधिकार, रुतबा, इज्जत देते, दिलाते रहे हैं और आगे भी ऐसा ही होगा। वह सावित्री के पुरुष मित्रों के साथ अनैतिक संबंधों पर व्यंग्य करता है। कहता है मेरे कारण तो इस घर में सब कुछ बिगड़ता ही रहा है। लड़का बेकार, आवारा होकर घूम रहा है। लड़की किसी के साथ घर से भाग गई। और तुम भी इतने वर्षों से यही चाहती रही हो कि कोई ऐसा मिल जाए जिसके साथ तुम संतुष्ट हो सको और घर छोड़कर जा सको। मैं अपनी, तुम्हारी, बेटा–बेटी, सबकी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार हूं तो मुझे इस घर में रहने का क्या अधिकार है? लेकिन मैं पड़ा हूं यहीं, क्योंकि मैं आरामतलब हूं, घरघुसरा हूं, मेरी हड्डियों में जंग लग गया है मैं काम करने के लिए बाहर जाकर परिश्रम नहीं करना चाहता, तुम्हारी कमाई खाकर ऐश करता हूं।

सावित्री हस्तेक्षप करते हुए कहती है कि मुझे नहीं मालूम कि तुम ऐसा अनुभव करते हो। सावित्री महेंद्रनाथ को नकारा के साथ आत्मसम्मानहीन पुरुष समझती है। महेंद्रनाथ कहता है कि मैं अनुभव करता हूं। जैसे मैं एक कीड़ा हूं, घुन हूं जिसने अंदर–अंदर ही परिवार के सुखी लहलहाते वृक्ष को खाकर, खोखला कर दिया है। लेकिन अब मेरी सहनशक्ति खत्म हो गई है, मेरा पेट भर गया है, अब यहां इस घर में और नहीं रह सकता। वह दुखी और आहत भाव से घर से निकल जाता है।

10. **स्त्री** : तू ठहर, मुझे बात करने दे। (लड़के से) दिलचस्पी तो तेरी सिर्फ तीन चीजों में है–दिन भर ऊंघने में, तसवीरें काटने में और घर की यह चीज वह चीज ले जाकर...।

लड़का : (कड़वी नजर से उसे देखता) इसे घर कहती हो तुम?

टिप्पणी

स्त्री : तो तू इसे क्या समझकर रहता है यहां?

लड़का : मैं इसे...।

बड़ी लड़की: (उसे बोलने न देने के लिए) देख अशोक, ममा के यह सब कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि...।

लड़का : मैं नहीं जानता मतलब? तू चली गयी है यहां से, मैं तो अभी यहीं रहता हूं।

स्त्री : (हताश भाव से) क्यों नहीं तू भी फिर....?

बड़ी लड़की: (झिड़कने के स्वर में) कैसी बात कर रही हो, ममा!

स्त्री : कैसी बात कर रही हूं? यहां पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा–पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? मगर किसी के मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं...।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– महेंद्रनाथ के घर से जाने के बाद अशोक और सावित्री यानी मां–बेटे के बीच बहस हो रही है। अशोक घर को घर नहीं मानता जिससे सावित्री आहत होती है।

व्याख्या– सावित्री का बेटा अशोक बेकार है और आवारागर्दी करता है। वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे घर की चीजें ले जाकर दे देता है। बिना बताए कई दिनों तक घर से गायब रहता है। सावित्री उसे डांटते हुए कहती है कि तू नौकरी नहीं करना चाहता, तेरी किसी चीज में दिलचस्पी है भी या नहीं? तुझे तीन ही चीजों में दिलचस्पी दिखाई देती है– दिन–भर ऊंघने में, तसवीरें काटने में और घर की चीजें ले जाकर उस लड़की को देने में। अशोक तिलमिलाकर कहता है–इस घर को घर कहती हो तुम? सावित्री पूछती है कि तू उसे घर नहीं समझता तो क्या समझकर यहां रहता है। बहन को भी अशोक कड़ा उत्तर देता है कि तू तो यहां से चली गई, मैं यहां रहता हूं इसलिए मैं सब देखता हूं समझता हूं। दूसरे पुरुषों के साथ भटकती मां, नाकारा पिता, कलह का वातावरण, अभाव इन सबके बीच शांति और सुख खो गए हैं जो घर को घर बनाते हैं। घर के सदस्य मुंह खोलते ही एक–दूसरे पर व्यंग्य बाण चलाते हैं। प्रेम की छाया भी जिस जगह न हो उसे अशोक घर नहीं मानता। वह सोचता है ऐसे दमघोंटू वातावरण से घबराकर ही उसकी बहन दूसरे लड़के के साथ भाग गई। बेटे के तात्पर्य को समझकर सावित्री भीतर से लज्जित होती हुई भी अपने आचरण को सही ठहराने के लिए कहती है कि–बहन चली गई, महेंद्रनाथ भी आरोप लगाकर घर से चला गया, तू भी क्यों नहीं चला जाता अगर तेरा दम घुट रहा है तो। क्या घर के ऐसे वातावरण के लिए मैं ही उत्तरदायी हूं जो सभी मुझ पर आरोप लगा रहे हैं? मैं दिन–रात काम करके घर चला रही हूं, मेरी थकान और आवश्यकताओं का किसी को ध्यान नहीं है। सब मुझे मशीन समझते हैं जो सबके लिए दिन–रात आटा–पीसकर सबका पेट भरती है। कोई यह समझता ही नहीं कि इस घर को चलाने के लिए मुझे क्या–क्या करना पड़ता है।

टिप्पणी

11. **लड़का** : जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।

स्त्री : (कुछ स्तब्ध होकर) मतलब?

लड़का : मतलब वही ज़ो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

स्त्री : तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

लड़का : उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक को कि वह इन्टलैक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनखाह पांच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं–उसकी तनखाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

स्त्री : तू कहना क्या चाहता है इससे? कि ऐसे लोगों के आने से इस घर के लोग छोटे हो जाते हैं।

लड़का : बहुत–बहुत छोटे हो जाते हैं।

स्त्री : और मैं उन्हें इसीलिए बुलाती हूं कि...।

लड़का : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलाती सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?

स्त्री : इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का। जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूं तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूंगी कोशिश। हां, इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारियां नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहां दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीखती रहूं रात–दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठ रहूं अपनी जगह? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– सावित्री का बॉस घर आता है। सावित्री अशोक को उससे मिलवाना चाहती है ताकि अशोक को कहीं नौकरी दिलवा दे। लेकिन अशोक बॉस की खिल्ली उड़ाता है, उपेक्षा करता है और उसका वनमानुष जैसा कार्टून बनाता है। बॉस के जाने के बाद दोनों मां बेटे में बहस होती है।

व्याख्या– अशोक कहता है मां से कि तुम हमेशा ऐसे लोगों को क्यों बुलाती हो जिनके आने से हम छोटे लोग और छोटे हो जाते हैं। वे अपना बड़प्पन दिखाते हैं और हमारा

टिप्पणी

हीनताबोध गहरा जाता है। एक को तुमने उसकी पांच हजार तनख्वाह के कारण, दूसरे को उसके इन्टलैक्चुअल होने के कारण, तीसरे को उसके चीफ कमिश्नर होने के कारण घर पर बुलाया। तुम आदमी को नहीं उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाती हो, जिसके कारण हमारी हीनभावना बढ़ जाती है इसलिए मैं ऐसे लोगों से नहीं मिलना चाहता। वे दाता के भाव में बात करते हैं और हमें भिखारी समझते हैं।

सावित्री कहती है कि मैं ऐसे लोगों को इसलिए बुलाती हूं कि इनसे संबंध अच्छे बने रहें। ताकि इनसे लाभ उठाकर इस घर का कुछ भला कर सकूं। तुम्हारे नाकारा पिता को ही कोई काम दिला दें या तुम्हें नौकरी दिलवा दें शायद ये लोग, ताकि इस घर का भार जो मुझे अकेले ढोना पड़ रहा है कुछ हल्का हो जाए, बंट जाए। लेकिन अगर तुम्हें इनके आने से हीनताबोध अनुभव होता है तो नहीं बुलाऊंगी। लेकिन अब मैं भी अकेले इस घर का भार नहीं ढो सकती। सभी अपना–अपना इंतजाम कर लो। महेंद्र व्यवसाय में वर्षों की कमाई गंवा कर हाथ–पर–हाथ धरे बैठे हैं, न स्वयं कुछ करते हैं घर के लिए, न मेरी सहायता से कोई काम बन रहा हो तो उसे स्वीकार करते हैं, उल्टा आरोप लगाते हैं। जब सभी निश्चिंत बैठे हैं इस घर और सबके जीवन से आंखें मूंदकर, तो मैं ही क्यों हैरान रहूं। मैं भी ठाठ से बैठी रहूंगी। किसी की नौकरी की चिंता में बॉस को नहीं बुलाऊंगी ताकि तुम लोग हीनता बोध अनुभव न करो। अब से मैं भी घर परिवार की चिन्ता छोड़कर केवल अपने सुख और आराम के बारे में सोचूंगी। संकेत इस ओर है कि स्त्री यदि किसी बाहरी पुरुष से चाहे नेक इरादे से ही संबंध बढ़ाए तो उसका चरित्र संदेहास्पद हो जाता है। केवल पति ही नहीं अपितु पुत्र भी उसके इस व्यवहार को नहीं सह पाता।

12. **लड़का** : और मैं ही शायद इस घर में सबसे ज्यादा नाकारा हूं।... पर क्यों हूं?

बड़ी लड़की: यह... यह मैं कैसे बता सकती हूं?

लड़का : कम से कम अपनी बात तो बता ही सकती है। तू यह घर छोड़कर क्यों चली गयी थी?

बड़ी लड़की: (अप्रतिभ होकर) मैं चली गयी थी... चली गयी थी... क्योंकि...।

लड़का : क्योंकि तू मनोज से प्रेम करती थी! खुद तुझे ही यह गुट्टी बहुत कमजोर नहीं लगती?

बड़ी लड़की: (रुआंसी पड़कर) तो तू मुझसे... मुझसे भी कह रहा है कि...?

लड़का : मैंने कहा था तुझसे... मत कर बात।

स्त्री (अत्यधिक गंभीर) तुझे पता है न, तूने क्या बात कही है? पता है न? तो ठीक है। आज से मैं सिर्फ अपनी जिन्दगी को देखूंगी... तुम लोग अपनी–अपनी जिन्दगी को खुद देख लेना।

मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक, मेरी तरफ से यह अन्त है उसका ...। निश्चित अन्त।

टिप्पणी

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– सावित्री कहती है कि मैं अकेले अब इस घर का भार नहीं ढो सकती। अशोक कहता है बिन्नी से कि जब इनसे अकेले नहीं निभता तो क्यों निभा रही हैं? बेटे की बात से सावित्री आहत होती है तथा तीनों के बीच निर्णयात्मक संवाद होता है।

व्याख्या– सावित्री को सुनाते हुए अशोक बिन्नी से कहता है कि ये कई बार इस बात को कह चुकी हैं कि अकेले भार ढो रही हैं, अब नहीं निभता, तो क्यों निभा रही हैं? किसके लिए और क्यों कर रही हैं? बिन्नी हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि ममा ये सब स्वयं के लिए नहीं बल्कि इस घर के लोगों के लिए कर रही हैं। किन्नी के लिए, डैडी के लिए, तेरे और मेरे लिए कर रही हैं। अशोक कहता है–गलत है। तेरे लिए करतीं तो तू इस वातावरण से घबराकर घर छोड़कर न भागती। तू चली गई और कलह से घबराकर डैडी भी चले गए। किन्नी दिनों–दिन बिगड़ती जा रही है। न उसकी शिक्षा की ओर, न संस्कारों की ओर इनका ध्यान है। मां होने के नाते जो इन्हें करना चाहिए वह करतीं तो घर क्या इस रूप में होता। एक मैं ही नकारा हूं, इसके पीछे वही घुटन है जो तेरे घर छोड़कर जाने के पीछे थी। बिन्नी कहती है–मैं घुटन के कारण घर से नहीं भागी बल्कि इसलिए गई क्योंकि मैं मनोज से प्रेम करती थी। अशोक उसका मजाक उड़ाते हुए कहता है कि तेरी यह दलील झूठी है, कमजोर है, यह तू भी जानती है। क्योंकि तू मनोज से प्रेम नहीं करती थी बल्कि उसने तुझे प्रेम किया और उज्ज्वल भविष्य का सपना दिखाया। तुझे लगा घर के इस घुटन भरे वातावरण से निकलने का यही एक रास्ता है और तू चली गई। अशोक और बिन्नी की बहस सुनकर सावित्री आहत होती है। बेटे के मन में उसके लिए इतनी कड़वाहट, अपमान और उपेक्षा है यह जानकर वह गहन दुख का अनुभव करती है और अशोक से कहती है–तूने आज बहुत बड़ी बात कह दी, इसे ध्यान रखना। अब तुम सब अपना–अपना ध्यान रखो, मेरी तरफ से इस उत्तरदायित्व का आज निश्चित अंत हो गया समझो। मेरी बची हुई थोड़ी सी जिन्दगी है उसे अब मैं अपने लिए अपने तरीके से जीऊंगी। घर के लिए जितना कर सकती थी, किया और जो पाया, वह देख रही हूं। इसलिए अब मैं स्वयं को सारे उत्तरदायित्वों से मुक्त करती हूं। अपनी मर्यादाओं को भंग करने वाले लोगों का परिवार अंततोगत्वा किस प्रकार टूटन की ओर बढ़ता है, वह परिस्थिति यहां उभरकर सामने आई है।

13. **पुरुष चार** : तुम किसी तरह छुटकारा नहीं दे सकतीं उस आदमी को?

स्त्री : छुटकारा? मैं? उन्हें? कितनी उलटी बात है!

पुरुष चार : उलटी बात नहीं है। तुमने जिस तरह बांध रखा है उसे अपने साथ...।

स्त्री : उन्हें बांध रखा है? मैंने अपने साथ? सिवा आपके कोई नहीं कह सकता था यह बात।

पुरुष चार : क्योंकि और कोई जानता भी तो नहीं उतना जितना मैं जानता हूं।

स्त्री : आप हमेशा यही मानते आये हैं कि आप बहुत ज्यादा जानते हैं। नहीं?

टिप्पणी

पुरुष चार : महेंद्रनाथ के बारे में, हां। और जानकर ही कहता हूं कि तुमने इस तरह शिकंजे में कस रखा है उसे कि वह अब अपने दो पैरों पर चल सकने लायक भी नहीं रहा।

स्त्री : अपने दो पैरों पर! अपने दो पैर कभी थे भी उसके पास?

पुरुष चार : कभी की बात क्यों करती हो? जब तुमने उसे जाना, तब से दस साल पहले से मैं उसे जानता हूं।

स्त्री : इसीलिए शायद जब मैंने जाना, तब तक अपने दो पैर रहे ही नहीं थे उसके पास।

पुरुष चार : मैं जानता हूं सावित्री, कि तुम मेरे बारे में क्या–क्या सोचती और कहती हो...।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– पुरुष चार अर्थात जुनेजा और सावित्री के बीच सावित्री के गृहस्थ जीवन और महेंद्रनाथ को लेकर वार्तालाप हो रहा है।

व्याख्या– जुनेजा सावित्री से कहता है कि मेरा मित्र महेंद्रनाथ गलत नहीं है। उसका भाग्य उसका साथ नहीं दे रहा है। वह तुम्हें और इस घर को बहुत चाहता है इसलिए तुम लोगों की उपेक्षा और अपमान पाकर भी तुमसे बंधा हुआ है। तुम अपनी अतृप्ति और सब कुछ पा लेने की महत्वाकांक्षा में कहां–कहां जाती हो, वह सब जानता है फिर भी तुमसे बंधा है। तुम उसे छोड़ क्यों नहीं देतीं? उसे छुटकारा दे दोगी तो वह फिर से एक नये विश्वास के साथ अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा। अभी बार–बार तुम्हारे ताने सुनकर, उसका आत्मविश्वास खो गया है। उसे छोड़ दो। सावित्री कहती है कि कितनी उलटी बात कर रहे हो। मैं क्यों उन्हें बांध कर रखूंगी। वे मेरे पति हैं लेकिन तुम्हारे मित्र अधिक हैं इसलिए तुम मुझसे ज्यादा उन्हें जानते हो शायद। रही बात पैरों पर खड़े होने की तो मुझे नहीं लगता कि उनके पास कभी खुद के दो पैर थे। अर्थात वे हमेशा तुम्हारी बैसाखी लेकर चलते रहे स्वयं कोई निर्णय लेने की क्षमता उनमें थी ही नहीं। पहले भी तुमसे पूछकर हर कार्य करते थे आगे भी मुझसे ज्यादा उन्हें तुम्हारी आवश्यकता होगी और ऐसा ही तुम लोग चाहते हो। जुनेजा सावित्री के व्यंग्य बाणों को सुन कर कहता है कि तुमसे विवाह के दस वर्ष पहले से मैं महेंद्र को जानता हूं। तुमने ही उसे ऐसा बनाया है पहले वह ऐसा नहीं था। लेकिन तुम मुझ पर ही आरोप लगा रही हो। मैं जानता हूं मेरे संबंध में तुम बहुत कुछ सोचती हो और कहती हो लेकिन मैं बुरा नहीं मानूंगा। सामान्य स्त्री स्वभाव के अनुसार सावित्री को अपना पति नाकारा व निकम्मा प्रतीत हो रहा है जबकि जुनेजा के विचार में विवाह बंधन के कारण उसकी यह दशा हुई है।

14. **स्त्री** : (खड़ी होती) मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूं।... एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन–सी जरूरत! अपने अंदर के किसी उसको... एक अधूरापन कह लीजिए उसे... उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए... अपने में... पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को

टिप्पणी

पूरा करते रहने में ही जिन्दगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेंद्र के लिए जिन्दगी का मतलब रहा है... जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं या जिस तरह वे सोचते हैं, उनकी जिन्दगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।

पुरुष चार : इस्तेमाल हो सकता है?

स्त्री : नहीं? इस काम के लिए और कोई नहीं जा सकता, महेंद्रनाथ चला जाएगा। इस बोझ को और कोई नहीं ढो सकता, महेंद्रनाथ ढो लेगा। प्रेस खुला, तो भी। फैक्टरी शुरू हुई, तो भी। खाली खाने भरने की जगह पर महेंद्रनाथ, और खाने भर चुकने पर? महेंद्रनाथ कहीं नहीं। महेंद्रनाथ अपना हिस्सा पहले ही ले चुका है, पहले ही खा चुका है। और उसका हिस्सा। (कमरे के एक–एक सामान की तरफ इशारा करती) ये ये ये दूसरे–तीसरे–चौथे दरजे की घटिया चीजें, जिनसे वह सोचता था, उसका घर बन रहा है।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– महेंद्रनाथ को लेकर जुनेजा और सावित्री के बीच बहस होती है। इन पंक्तियों में सावित्री महेंद्रनाथ और उसके मित्रों की वास्तविक मनःस्थिति पर प्रकाश डाल रही है।

व्याख्या– सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाते हुए कहती है कि तुम जैसे मित्रों ने महेंद्र का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया लेकिन महेंद्र इस बात को समझता ही नहीं। वह हर बात तुमसे पूछे बिना नहीं मानता, हर काम करने के लिए तुमसे पूछता है कि यह सही है या नहीं। जो तुम सही कहो, वही उसके लिए सही है।

सावित्री कहती है– आदमी अपनी जिन्दगी का अधूरापन मिटाने, खालीपन भरने के लिए विवाह करता है, घर बसाता है लेकिन महेंद्रनाथ के लिए पत्नी और घर से अधिक महत्वपूर्ण था मित्रों के खालीपन को भरना। जब प्रेस का काम शुरू हुआ, जब फैक्टरी शुरू हुई तब भी जहां कोई काम करने के लिए नहीं है उसे तुमने महेंद्र के ऊपर डाल दिया और जब उस जगह पर कोई आ गया तो महेंद्र को निकाल दिया। और निर्णय भी दे दिया कि महेंद्र ने जितना रुपया लगाया था उतना हिस्सा वह ले चुका है, और वह हिस्सा था तीसरे–चौथे दर्जे की घटिया कुर्सियां, मेजें...। महेंद्र इस सामान के रूप में अपना हिस्सा लाकर घर में रखता था और सोचता था कि उसका घर बन रहा है। वह बेवफूक बनता रहा। काम वह करता था और लाभ तुम लोग उठाते थे और उसे यह कहा गया कि उसके हिस्से का पैसा डूब गया उसे नुकसान हुआ। और तब से वह नकारा घूम रहा है। जिसके उत्तरदायी तुम लोग हो। सावित्री जुनेजा को धिक्कारती है कि उसके पति और गृहस्थी को बर्बाद करने वाले कोई और नहीं उसके मित्र ही हैं, जिन्होंने मित्र बनकर शत्रुओं जैसा कार्य किया।

15. वही महेंद्र जो दोस्तों के बीच दब्बू–सा बना हलके–हलके मुसकराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं, कब किसे नोंच लेगा, कब किसे फाड़ खायेगा! आज वह ताव में अपनी कमीज को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूं? मानेगी वह सब कि नहीं जो मैं कहता हूं? पर सावित्री फिर भी नहीं चलती। वह सब नहीं मानती। वह नफरत करती है इस सबसे–इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए–एक... पूरा... आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है इस आदमी में, तो दोस्तों में इसका गम मनाया जाने लगता है। सावित्री महेंद्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही है। सावित्री बेचारे महेंद्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक नहीं रहने दे रही है! जैसा कि आदमी न होकर बिना हाड़–मांस का पुतला हो वह एक–बेचारा महेंद्र!

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाती हुई महेंद्रनाथ के बर्बाद होने के लिए उसकी मित्र मंडली को दोषी ठहराती है।

व्याख्या– सावित्री जुनेजा से कहती है कि महेंद्र ने मुझसे विवाह करके अच्छे गृहस्थ की तरह जीना आरंभ किया तो तुम लोगों को बुरा लगा। तुम्हें लगा तुम्हारे मित्र को मैंने छीन लिया। अब वह तुम्हारा मनोरंजन और बेगार करने के लिए खाली नहीं था इसलिए तुमने उसे शिक्षा देना शुरू किया और उसे मेरी जिन्दगी और गृहस्थी से विमुख कर दिया। परिणाम यह हुआ कि महेंद्र मित्रों के बीच दब्बू और सीधा सादा शालीन बना मुस्कुराता रहता है लेकिन घर के अंदर घुसते ही दरिंदा बन जाता है। चीखता है, चिल्लाता है, मार–पीट करता है, पत्नी की छाती पर चढ़कर उसके बाल नोंचता है, सिर दीवार से रगड़ देता है लगता है जैसे सबको फाड़ कर खा जाएगा। पत्नी को अपने अनुसार चलने के लिए विवश करता है। ऐसे चलो, ऐसे पहनो, ऐसे खाओ, ऐसे मिलो, बात करो। पर नहीं, वह हार जाता है। मैं उसकी दरिंदगी से डरकर उसके अनुसार चलने से मना कर देती हूं। मैं नफरत करती हूं ऐसे दरिंदे आदमी से। मुझे एक पूरा आदमी चाहिए। ऐसा आदमी जो आदमियत की और पति की, प्रेमी की, हर कसौटी पर खरा उतरे। मैंने कभी महेंद्र को ऐसा आदमी बनाने का प्रयत्न किया भी लेकिन नहीं बना सकी तो हार कर उससे अलग होने का प्रयत्न भी किया, वह भी नहीं कर पाई हूं। जब कभी महेंद्र में थोड़ा परिवर्तन आया, उसे मुझसे और घर से लगाव हुआ, उसने मुझे और घर को समय देना शुरू किया तो उसके मित्रों में दुख की लहर फैल गई कि बेचारा महेंद्र कठपुतली बन गया है। बीवी उसे नकेल डालकर नचा रही है। उसकी कमर तोड़कर उसे नकारा बना रही है। अर्थात मित्रों की दृष्टि में पत्नी और घर को समय देना पुरुषार्थ के विरुद्ध माना जाता। मित्रों की इन टीका टिप्पणियों से प्रभावित होकर महेंद्र फिर बदल जाता– और मित्र प्रसन्न हो जाते कि उनका बेगार ढोने वाला वापस आ गया है। सावित्री जुनेजा को सीधे सीधे अपनी गृहस्थी की बर्बादी का जिम्मेदार ठहराती है।

टिप्पणी

टिप्पणी

16. **पुरुष चार** : असल बात इतनी ही कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल–दो साल बाद, तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेंद्र, कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ भी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। वह आदमी भी इसी तरह तुम्हें अपने आसपास सिर पकड़ता और कपड़े फाड़ता नजर आता.... और तुम।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग–सावित्री के द्वारा लगाए गए आरोप सुनकर जुनेजा अत्यंत गंभीरता के साथ उसे उसके वास्तविक चरित्र से परिचित कराता है और कहता है कि सावित्री, अपनी बर्बाद गृहस्थी के लिए तुम स्वयं उत्तरदायी हो।

व्याख्या– सावित्री अपनी पथभ्रष्टता को न्यायसंगत ठहराने के लिए जुनेजा पर आरोप लगाती है कि उसने यदि उसके पति का शोषण करके उसे नाकारा और आत्मविश्वासहीन न बनाया होता तो गृहस्थी चलाने के लिए उसे उतना परिश्रम न करना पड़ता जितना वह कर रही है। इस पर जुनेजा उत्तर देता है कि तुम अपने आप को सही सिद्ध करने के लिए महेंद्र को दोषी ठहरा रही हो लेकिन वास्तव में दोषी तुम हो। तुम अतृप्त हो, कुंठित हो, महत्वाकांक्षी हो, तुम एक साथ सब कुछ पा लेना चाहती हो। किसी एक आदमी में सब कुछ मनचाहा पा लेना स्वाभाविक नहीं है लेकिन यह बात तुम न समझती हो, न मानती हो इसलिए महेंद्र तुम्हें अपूर्ण लगता है और पूर्णता की खोज में तुम एक पुरुष से दूसरे और दूसरे से तीसरे के पास भटकती रही हो लेकिन पूर्णता और स्थायित्व तुम्हें कहीं–नहीं मिला, मिल भी नहीं सकता क्योंकि किसी मनुष्य को सब कुछ नहीं मिलता। महेंद्र की जगह कोई भी आदमी होता–जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत, तुम उससे विवाह के साल–दो–साल बाद यही सोचतीं जो आज सोच रही हो। तुम्हें एक साथ, सब कुछ एक ही जगह नहीं मिलता और तुम इसी तरह खाली, अपूर्ण और अतृप्त अनुभव करतीं। वह आदमी भी तुम्हें महेंद्र की तरह दरिंदा, कपड़े फाड़ता, सिर फोड़ता नजर आता। तुम इसी तरह उसकी अपूर्णता की शिकायत करतीं।

जुनेजा का तात्पर्य है कि अपूर्णता, असंतुष्टि सावित्री के अंदर है। वह सत्य को स्वीकार न करके एक असंभव सी चीज, पूर्णता को पाने के लिए एक पुरुष से दूसरे पुरुष की यात्रा करती हुई पतित हो रही है और गृहस्थी बर्बाद कर रही है। इसका आरोप वह पति पर मढ़ रही है। वैवाहिक संबंधों में एक दूसरे को अपने सांचे में ढालने की कोशिश में प्रायः पति–पत्नी को असफलता ही हाथ लगती है, इस तथ्य की कटुता इन शब्दों में नाटककार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक चित्रित की है।

3.3 आधे–अधूरे में आधुनिकता बोध

टिप्पणी

'आधे–अधूरे' आधुनिक युग के प्रश्नों को लेकर लिखा गया सामाजिक बोध का नाटक है और मध्यवर्गीय नारी–पुरुष संबंधों पर प्रकाश डालता है। पारिवारिक परिवेश में नारी की भूमिका क्या है? उसमें असन्तोष क्यों है? वह कैसी पूर्णता चाहती है, आदि अनेक प्रश्न नाटक में उठते हैं। उत्तर तलाशने की चेष्टा राकेश नहीं करते, उनके पास कोई 'रेडीमेड' समाधान नहीं है। बड़ी लड़की का प्रश्न है: "अंकल, सचमुच कुछ नहीं हो सकता क्या?" और चतुर्थ पुरुष जुनेजा का उत्तर है: "एक दिन के लिए हो सकता है, शायद दो दिन के लिए हो सकता है, पर हमेशा के लिए नहीं।" मोहन राकेश का मुख्य प्रयोजन पारिवारिक परिवेश में मध्यवर्गीय नारी की स्थिति और नारी–पुरुष संबंधों पर दृष्टि डालना है और इसके लिए उन्होंने सावित्री को चुना। समानान्तर चरित्र के रूप में उसकी बेटी बिन्नी को रखा और दोनों को द्वंद्व से गुजारा। दोनों असन्तुष्ट हैं और दोनों विक्षुब्ध! तनाव के कोई बड़े कारण हों, ऐसा भी नहीं है, तनाव है सो है। मां–बेटी के व्यक्तित्व की बनावट के कारण भी ऐसा है, और पूरा पारिवारिक परिवेश तो है ही।

जीवन में पूर्णता की तलाश–वह भी व्यक्ति के माध्यम से, एक निष्फल खोज है। पुरुष चार–जुनेजा, नाटक के लगभग अन्त में नायिका सावित्री का विश्लेषण करते हुए उसी से कहता है: "असल बात इतनी है कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता, तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल–दो साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ छोड़कर जीना। वह उतना कुछ तुम्हें एक साथ किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। यहां राकेश की दृष्टि नारी पक्ष का द्वंद्व उजागर करने में अधिक है, वह भी आज की आधुनिक प्रवृत्ति के सन्दर्भ में। नाटक में नारी का प्रश्न है कि कहां है उसका घर, जिसमें वह अपनी निजता को पा सके? कहां है वह संबंध, जहां वह अपने को सार्थक अनुभव करे? और सबसे बड़ा प्रश्न है कि कहां है वह पुरुष, जिसमें वह पूर्णता देखे?

आधे–अधूरे की कथा सामयिक है इसलिए यहां नारी–पुरुष प्रश्न और भी प्रखरता से उभरे हैं। इसके पूर्व नारी का एक निश्चित स्थान था, स्थिर मान्यताएं थीं और थी स्त्री के मन में उन मान्यताओं के प्रति दृढ़ आस्था, अटूट विश्वास। समय की गति के साथ धारणाएं बदलीं, आस्था का स्थान विद्रोह ने लिया। नारी–जीवन की मान्यताओं में बदलाव आया और उन आस्थाओं को बन्धनों के रूप में देखा जाने लगा। महत्वाकांक्षाओं में डूबी नारी को नयी राह पर चलते–चलते एक असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ा। आरम्भ में तो उस स्वतंत्रता में नारी को कुछ सन्तोष मिला पर शीघ्र ही एक बिखराव आया। सारा ढांचा ही चरमराता प्रतीत होने लगा। पूर्व–पश्चिम के जीवन मूल्यों की टकराहट, आर्थिक समस्याएं, टूटती हुई मान्यताएं, ढहती आस्था इन सबके मध्य नारी स्वयं अपने को खोने लगी, तनावों और अन्तःसंघर्षों से बिखरने लगी। नायिका सावित्री में यह प्रतिबिम्बित है।

नायिका सावित्री अंतःसंघर्ष से गुजरती है– एक नारी, पुरुष अनेक। उसकी बड़ी बेटी बिन्नी भी अपने पति मनोज से असन्तुष्ट है। 'आधे–अधूरे' का नायक थका–हारा महेंद्रनाथ फिर सावित्री के पास लौट आता है। नाटक में स्थिति यह है कि इस मामले में वर्चस्व नारी का है कि पुरुष बार–बार उसके पास लौटता है, मानों यही उसकी नियति है। इन नाटकों का अन्त मार्मिक है। 'आधे–अधूरे' में महेंद्रनाथ फिर लौटता है लड़खड़ाते पांवों पर, क्योंकि उसे घर की आवश्यकता है और वह सावित्री को छोड़कर कहीं जा नहीं सकता। यह एक ऐसा बन्धन है जिससे चाहकर भी वह मुक्ति नहीं पा सकता। मोहन राकेश का आशय नारी को प्रमुखता देना है, और इस माध्यम से नारी–पुरुष संबंधों का विश्लेषण करना भी।

'आधे–अधूरे' में चार पुरुष हैं: महेंद्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा। सबके केन्द्र में है सावित्री। नारी और पुरुष के व्यक्तित्व जब इन नाटक में टकराते हैं तो मोहन राकेश नारी को वर्चस्व देते हैं। यहां नारी प्रिया है तो संवेदनशील भी है और स्त्री है तो प्रभावी, उसका अपना एक व्यक्तित्व है। यह बात दूसरी है कि इसी से द्वंद्व उपजे हैं। यह द्वंद्व, तनाव, अतिरिक्त महत्वाकांक्षा, एक साथ, थोड़े समय में सब कुछ पा लेने की बेचैनी आधुनिक युग में मिला अभिशाप है।

3.4 आधे–अधूरे की प्रयोगधर्मिता

हिंदी नाट्य साहित्य के इतिहास में मोहन राकेश के नाटक कई स्तरों पर बहुत बड़े परिवर्तन एवं नये दिशा–संकेत लेकर आते हैं। उनके नाटकों ने न सिर्फ हिंदी नाटकों की संवेदना और रूपबंध में आमूल परिवर्तन के संकेत दिए, बल्कि हिंदी रंगमंच की दिशा को व्यापक रूप से प्रभावित किया। हिंदी रंग–परिदृश्य पर राकेश का आगमन उस समय हुआ जब स्वाधीनता के बाद सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर पूरे देश को और जीवन के हरेक क्षेत्र को आंदोलित कर रही थी। राकेश के आगमन से पूर्व हिंदी नाट्य परिदृश्य में पर्याप्त जागरूकता एवं सक्रियता विद्यमान थी, लेकिन इन सबके बावजूद हिंदी रंगकर्म को एक गंभीर और दायित्वपूर्ण कलात्मक एवं रचनात्मक क्रिया–कलाप के रूप में व्यापक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई थी। राकेश के नाटकों ने हिंदी रंगकर्म को एक समर्थ एवं महत्वपूर्ण कला माध्यम के रूप में व्यापक स्वीकृति दिलाई और उसे राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने तथा अपनी बहुसंख्यक एवं वैविध्यपूर्ण प्रस्तुतियों से इसे दो–चार महानगरों के सीमित दायरे से आगे बढ़ाकर छोटे–बड़े नगरों एवं कस्बों तक विस्तार देने में निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया है। सुप्रसिद्ध निर्देश ब.व. कारंत की मान्यता है कि 'अल्का जी द्वारा प्रस्तुत 'आषाढ़ का एक दिन' से पहले हिंदी रंगमंच था ही नहीं।' अतः स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी नाटक एवं रंगमंच की विकास परंपरा में मोहन राकेश के नाटक इस क्षेत्र में व्याप्त साहित्यिक एवं रंगमंचीय नाटक जैसे कृत्रिम एवं भ्रामक वर्गीकरण को तोड़कर एक नयी सार्थक रंग–परंपरा की शुरुआत करते हैं। साथ ही इसके माध्यम से हिंदी रंगकर्म को व्यापक स्वीकृति दिलाने एवं वयस्क बनाने का काम भी करते हैं। इस दृष्टि से 1958 में प्रकाशित राकेश का प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' एक उल्लेखनीय दस्तावेज है जिसमें नाटककार ने पाश्चात्य रंगमच की उपलब्धियों से

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. 'आधे–अधूरे' में मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व कौन कर रहा है?
2. 'एक नारी, पुरुष अनेक' के संघर्ष के बीच कौन जूझ रहा है?
3. 'आधे–अधूरे' में कितने पुरुष हैं?
4. महत्वाकांक्षा में डूबी नारी को नयी राह पर चलते–चलते किस स्थिति का सामना करना पड़ा?

प्रभावित और आक्रांत हो रहे हिंदी रंगमंच के स्वस्थ विकास के लिए अपनी मौलिक रंगदृष्टि की तलाश पर जोर दिया है। मोहन राकेश की मान्यता है कि–

"... हिंदी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परंपरा के साथ अनुस्यूत नहीं है। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियां ही हमारे सामने हैं। परंतु न तो हमारा जीवन उन सब उपलब्धियों की मांग करता है और न ही यह संभव प्रतीत होता है कि हम उस रंगशिल्प को व्यापक रूप से ज्यों का त्यों अपने यहां प्रतिष्ठित कर दें।

हिंदी रंगमंच को हिंदी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त संवेगों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए, जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूपविधान नाटकीय प्रयोगों के अभ्यंतर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों इसका विकास होगा।"

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की भूमिका के रूप में लिखे गए राकेश के उपर्युक्त वक्तव्य को हिंदी रंगमंच के लिए एक निजी रंगदृष्टि की तलाश के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इस रंगदृष्टि का पहला आयाम, जो राकेश के नाटकों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, वह है : नाटक और रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध की पहचान तथा नाटककार एवं रंगकर्मी के अपरिहार्य पारस्परिक सहयोग की स्वीकृति। राकेश के अनुसार किसी भी सार्थक रंग प्रक्रिया में नाटककार, निर्देशक तथा अभिनेताओं का पारस्परिक सहयोग अनिवार्य है। हिंदी रंगमंच में नाटककार और रंगमंच के संबंध विधान को रेखांकित करते हुए राकेश ने लिखा है–

"एक तो अपने यहां, विशेष रूप से हिंदी में, उस तरह का संगठित रंगमंच है ही नहीं, जिसमें नाटककार के एक निश्चित अवयव होने की कल्पना की जा सके, दूसरे, उस तरह की कल्पना के लिए मानसिक पृष्ठभूमि भी अब तक बहुत कम तैयार हो पायी है। रंगमंच का जो स्वरूप हमारे सामने है, उसकी पूरी कल्पना परिचालक और उसकी अपेक्षाओं पर निर्भर करती है।

नाटककार की स्थिति एक ऐसे 'अजनबी' की रहती है जो केवल इसलिए कि पांडुलिपि उसकी है, एक नाटक के सफल अभिनय के रास्ते में खामखाह अड़ंगा लगा रहा है।

...रंगमंच की पूरी प्रयोग–प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे, यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं लगती। न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी अपनी अलग चार दीवारी तक सीमित रहे और क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे दूर अपनी अलग चहारदीवारी तक। इन दोनों को एक धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंग–प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन सके।"

'नाटककार और रंगमंच' नामक निबंध में व्यक्त राकेश के उपर्युक्त विचार न केवल नाटककार और रंगमंच के आपसी संबंध पर प्रकाश डालते हैं, बल्कि एक सफल एवं संपूर्ण रंग–प्रक्रिया में नाटककार, निर्देशक एवं अभिनेता के आपसी सहयोग पर बल देते हैं। राकेश के अनुसार रंग–प्रक्रिया एक निरंतर एवं जटिल प्रक्रिया है जिसके बीच नाटककार का एक

टिप्पणी

अनिवार्य अंग की तरह होना और इस प्रक्रिया के क्रम में निर्देशक और अभिनेता की तरह ही शब्दों के स्तर पर बार–बार प्रयोग करते रहना आवश्यक है। इस तरह के आपसी सामंजस्य एवं निरंतर प्रयोग के द्वारा ही उस वातावरण की सृष्टि की जा सकती है, जिसमें रंगमंच की वास्तविक खोज शामिल हो– लेखन के स्तर पर भी और निर्देशन के स्तर पर भी। इस संदर्भ में राकेश द्वारा 'लहरों के राजहंस' के तीसरे अंक का पुनर्लेखन नाटककार एवं निर्देशक के रचनात्मक संबंध का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रसिद्ध निर्देशक श्री श्यामानंद जालान के साथ नाटक की रिहर्सल के दौरान काम करते हुए, और नाटक की पूरी अन्विति में एक–एक शब्द को परखते हुए, इस नाटक के तीसरे अंक का पुनर्लेखन प्रस्तुतिकरण की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया गया।

कालांतर में राकेश ने निर्देशक के आरोपित आतंक और अतिरिक्त महत्व को अस्वीकार करते हुए 'नाटककार का रंगमंच' की धारणा का समर्थन किया और अपने रंग संपूर्ण नाट्यालेखों के माध्यम से रंगकर्म में नाटककार की महत्वपूर्ण भूमिका को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। अपने समय में जयशंकर प्रसाद ने भी हिंदी रंगमंच के विकास के लिए इसी तरह की धारणा का समर्थन करते हुए लिखा था–

"रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक है। हां, रंगमंच पर सुशिक्षित और कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है। इन सबके सहयोग से ही हिंदी रंगमंच का अभ्युत्थान संभव है।"

रंगमंच के संबंध में प्रसाद का उपर्युक्त वक्तव्य नई रंगदृष्टि की ओर संकेत करता है जो नाटक को महज लेखक या निर्देशक की रचना न मानकर उसे एक सहयोगी प्रयास के रूप में देखता है। नाटककार द्वारा शब्दों में लिखे नाट्यालेख को जब तक रंगकर्मी और निर्देशक मिलकर एक सांस्कृतिक–सामाजिक क्रिया कलाप के रूप में मंच पर सजीव नहीं करते, तब तक वह अपनी संपूर्णता को प्राप्त नहीं होता। आलेख की संपूर्णता एवं सार्थकता अनिवार्यतः उसकी प्रस्तुति से जुड़ी होती है, इसलिए नाट्यालेख एवं प्रस्तुति के बीच एक अभिन्न एवं अनिवार्य संबंध आवश्यक है। नाटककार के शब्दाश्रित आलेख को निर्देशक संकेतों और प्रतीकों की भाषा का इस्तेमाल करते हुए दृश्य–सज्जा, मंच–सामग्री, पार्श्व–संगीत, छायालोक एवं रूप विन्यास के साथ–साथ पात्रों के प्रवेश स्थान और उनकी गतियों एवं मुद्राओं द्वारा न केवल प्रभावी दृश्य–बिंब में परिवर्तित करता है, बल्कि अपनी विचारधारा और मंतव्य के अनुकूल आलेख में छोटे–बड़े परिवर्तन या संशोधन भी करता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप जन्मी रचना को प्रस्तुति आलेख (प्रोडक्शन स्क्रिप्ट) कहा जाता है। नाटककार के मूल आलेख पर आधारित निर्देशक के इस प्रस्तुति आलेख को अभिनेता अपने सृजनशील अभिनय द्वारा अर्थात अपनी देह और वाणी के माध्यम से, गतियों, मुद्राओं, भंगिमाओं और क्रियाओं द्वारा दृश्य–बिंबों में रूपांतरित करता है और सहृदय दर्शक की संवेदनशीलता उसके प्रभाव को ग्रहण करती है। इस प्रकार नाटककार द्वारा लिखित नाटक का प्रस्तुति आलेख में रूपांतरण एक जटिल एवं सहयोगी प्रयास की प्रक्रिया है, जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता एवं दर्शक की रचनात्मक भागीदारी अनिवार्य है। नाट्य रचना के सहयोगी प्रयास संबंधी इसी धारणा को राकेश ने बार–बार मुखर शब्दों में अभिव्यक्त किया है। नाटक एवं रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि–

टिप्पणी

"बहुत बार ऐसा होता है कि रंगमंच की अपेक्षाओं के अनुसार नाटकों की रचना की जाती है, पर कई बार ऐसा भी होता है कि एक नाटक के लिए विशेष रंगमंच का संयोजन किया जाता है। परंतु दोनों ही स्थितियों में नाटककार के सामने रंगमंच के रूपविधान का स्पष्ट होना आवश्यक है। विचार और भावपूर्ण गुंफित भाषा नाटकीयता की कसौटी नहीं है। संवादों और घटनाओं को दृश्यों और अंकों में बांट देना ही पर्याप्त नहीं, नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ लिखता है, उसे आंख मूंदकर अपनी कल्पना के रंगमंच पर घटित होते हुए भी देखे। एक कृति के रूप में नाटक तभी सफलता प्राप्त कर सकता है जबकि उसमें रंगमंच पर अभिनीत होने की संभावनाएं निहित हों। लिखा गया नाटक एक हड्डियों के ढांचे की तरह है जिसे रंगमंच का वातावरण ही मांसलता प्रदान करता है।"

नाटक और रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध पर बल देने के साथ–साथ राकेश हिंदी के निजी रंगमंच के विकास की बात भी बराबर करते रहे। उनके अनुसार हिंदी रंगमंच का उत्थान पाश्चात्य रंगमंच की नकल में होने के कारण, उसका निजी व्यक्तित्व अभी तक निखर नहीं पाया है। उनके अनुसार हिंदी के नये रंग–शिल्प के विकास के लिए जिस तरह के रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं अधिक खुला होना चाहिए। यह रंगमंच हमारी लोकरुचि और परंपरा दोनों को मान्यता देते हुए ही विकसित हो सकता है। हिंदी के इस निजी रंगमंच के विकास पर जोर देते हुए राकेश लिखते हैं कि–

"रंगमंच के विषय में सोचते हुए हम पाश्चात्य नाटक के रंग–शिल्प को दृष्टि में रखें और हिंदी के निजी रंगमंच के विकास की बात करें, इसमें असंगति ही प्रतीत होती है। हिंदी रंगमंच के विकास से निःसंदेह हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधाओं से संपन्न रंगशालाएं राजकीय या अर्ध–राजकीय संस्थाओं द्वारा बनवा दी जाएं, जहां हिंदी के नाटककारों की रचनाओं का प्रदर्शन किया जा सके। यह प्रश्न केवल आर्थिक सुविधाओं का नहीं, एक सांस्कृतिक दृष्टि का है। हिंदी का वास्तविक रंगमंच राजकीय आयोजनों से नहीं, समर्थ नाटककारों और अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों विकसित होगा।"

राकेश का उपर्युक्त वक्तव्य हिंदी नाटक एवं रंगमंच के वास्तविक उत्थान के लिए एक निजी रंगमंच के विकास की आवश्यकता को रेखांकित करता है। हिंदी के इस निजी रंगमंच का स्वरूप किस प्रकार का हो, इसका खुलासा करते हुए वे लिखते हैं–

"...हमारे दैनंदिन जीवन के राग–रंग को प्रस्तुत करने के लिए, हमारे ब्याह–त्योहारों के स्पंदनों को आकार देने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य शैली के रंगमंच से कहीं अधिक खुला होना चाहिए। हरे या स्लेटी रंग की पृष्ठभूमि की बजाए हम हल्दी, चंदन और गेरू के रंगों का स्पर्श देकर ऐसी पृष्ठभूमि की रचना कर सकते हैं जो सभी तरह के दृश्यों को प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त और आंखों पर सुखकर प्रभाव छोड़नेवाली हो। आधुनिक पाश्चात्य रंगमंच की तरह कैनवस, गत्ते और लकड़ी की सेटिंग देने और पार्श्व संगीत तथा लाइट और साउंड के इफेक्ट इत्यादि की चर्चा बाद की चीज है।"

टिप्पणी

यह एक सुखद आश्चर्य ही है कि हिंदी रंगमंच के अभ्युत्थान की चर्चा करते हुए जयशंकर प्रसाद भी हिंदी के इसी तरह के रंगमंच के विकास पर बल देते हैं जो न केवल खुला और विस्तृत हो बल्कि भारतीय सामाजिक परंपरा के अनुकूल हो। प्राचीन भारतीय रंगमंच का हवाला देते हुए वे कहते हैं कि उस समय का रंगमंच इतना पूर्ण और विस्तृत होता था कि उसमें बैलों से जुते हुए रथ और घोड़ों के रथ तथा हेमकूट पर चढ़ती अप्सराएं दिखलायी जा सकती थीं। इसी प्रकार रंगमंच पर आकाशगामी–सिद्ध–विद्याधरों के विमानों के दृश्य भी दिखलाए जाते थे। इन दृश्यों को दिखलाने में मोम, मिट्टी, तृण, लाख, अभ्रक, काठ, चमड़ा, वस्त्र और बांस के फंठों से काम लिया जाता था। हिंदी रंगमंच में भारतीय लोक परंपरा के संस्कारों के महत्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं–

"जिस तरह हम वास्तविक या प्राचीन शब्दों में लोकधर्मी अभिनय की आवश्यकता समझते हैं, ठीक उसी प्रकार से नाट्यधर्मी अभिनय को भी देश, काल, पात्र के अनुसार रंगमंच में संग्रहित रहना चाहिए। श्री भारतेंदु ने रंगमंच की आस्थाओं को देखकर जिस हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र स्थापना की थी, उसमें इन सबका समन्वय था। हिंदी रंगमंच की इस स्वतंत्रता चेतना को सजीव रखकर रंगमंच की रचना करनी चाहिए। केवल नयी पश्चिमी प्रेरणाएं हमारी पथ प्रदर्शिका न बन जाएं। हां, इन सब साधनों से जो वर्तमान विज्ञान द्वारा उपलब्ध हैं, हमको वंचित भी न होना चाहिए।"

उपर्युक्त उद्धरण हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र और मौलिक सत्ता की स्थापना पर जोर देता है, जो अपने विकास क्रम में अन्य देशों के रंगमंच से निश्चय ही भिन्न होगा। मोहन राकेश की भी यही मान्यता है कि हर देश में रंगमंच का विकासक्रम वही नहीं होगा, जो विकसित देशों में है। राकेश के अनुसार इस प्रक्रिया में हम प्रयोगशीलता के नाम पर अंधाधुंध अनुकरण करते हुए उसी विकास क्रम में से गुजरने का आभास दे रहे हैं, जो पहले पश्चिमी देशों में हो चुका है। यह तथाकथित प्रयोगशीलता हमें किसी वास्तविक उपलब्धि तक नहीं पहुंचाती है। रचनात्मक एवं सच्चा प्रयोग तो रंगमंच के शब्द और मानव–पक्ष को समृद्ध बनाकर ही किया जा सकता है, केवल बाह्य उपकरणों की नकल करके नहीं। रंगमंच में प्रयोगशीलता की स्थिति पर अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं–

"...हम प्रयोगशीलता के नाम पर अनुकरणात्मक प्रयोग करते हुए किन्हीं वास्तविक उपलब्धियों तक नहीं पहुंच सकते, केवल उपलब्धियों के आभास से अपने को अपनी अग्रगामिता का झूठा विश्वास दिला सकते हैं। यह दृष्टि बाहर से रंगमंच को एक नया और आधुनिक रूप देने की है, अपने निजी जीवन और परिवेश के अंदर से रंगमंच की खोज की नहीं। ...तकनीकी रूप से समृद्ध और संश्लिष्ट रंगमंच भी अपने मन में विकास की एक दिशा है, परंतु उससे हटकर एक दूसरी दिशा दी है और मुझे लगता है कि हमारे प्रयोगशील रंगमंच की भी वही दिशा हो सकती है। वह दिशा रंगमंच के शब्द और मानव–पक्ष को समृद्ध बनाने की है– अर्थात न्यूनतम उपकरणों के साथ संश्लिष्ट से संश्लिष्ट प्रयोग कर सकने की।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राकेश हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र एवं निजी सत्ता की स्थापना के पक्षधर थे, जिसका विकास भारतीय लोकजीवन की पहचान एवं हमारी अपनी रंग–परंपरा के आधार पर होगा। जीवन एक परिवेश तथा भारतीय रंग–परंपरा के तत्वों की खोज ही हमें वास्तविक नये प्रयोगों की दिशा में ले जा सकती है और एक अभिनव रंग–शिल्प को जन्म दे सकती है। विदेशी रंगमंच के बाह्य उपकरणों का अंधाधुंध आयात प्रगतिशीलता का झूठा विश्वास तो दिला सकता है लेकिन वास्तविक उपलब्धि तक नहीं पहुंचा सकता। राकेश की रंगदृष्टि की दूसरी महत्वपूर्ण अवधारणा रंग–प्रक्रिया को एक 'सहयोगी प्रयास' के रूप में देखने की है, जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता एवं दर्शकों की रचनात्मक हिस्सेदारी अनिवार्य है।

आधे–अधूरे
(मोहन राकेश)

टिप्पणी

3.5 नाट्य समीक्षा की कसौटी पर 'आधे–अधूरे'

मोहन राकेश का यह नाटक कथ्य एवं शिल्प दोनों स्तरों पर पाठकों को आंदोलित करता है। इसमें विद्यमान युगबोध आज भी उतना ही प्रासंगिक है। यहां नाटक के कुछ ऐसे ही पक्षों का विश्लेषण किया जा रहा है–

3.5.1 कथानक

यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज है और विकृत मूल्यों, भ्रान्तियों एवं दोगली नैतिकता का निर्गम अनावरण, जो उस रिक्तता के कारण हैं। इसके केन्द्र में पत्नी के वे प्रयत्न हैं, जो वह अपने बिखरते परिवार को बांधने के लिए करती है।

आधे–अधूरे नाटक का विश्लेषण करते हुए उसकी बनावट और भावों पर त्रिपुरारी शर्मा लिखते हैं– 'आधे–अधूरे' नाटक का ढांचा बहुत सावधानी से बनाया गया है और बहुत ही बारीक विशिष्ट बुनावट है। नाटक के हर वाक्य, हर शब्द में दर्द, क्षोभ और विडम्बना संवादों से झांकती है। नाटक उकसाता भी है और जबरन हमें अपने से जोड़ लेता है। अक्सर मन करता है विरोध करने का, कुछ कहने का, अपनी फटेहाल अधूरी जिन्दगी को पूरा करने का। हां, शहरी जिन्दगी के रोजमर्रा जीवनयापन और आपसी व्यवहार का इस नाटक से गहरा नाता है। एक स्तर पर नाटक एक ऐसे परिवार के बारे में है जिसकी जड़ें कहीं नहीं जम पाईं, यह एक ऐसी संस्कृति के बारे में भी है, मध्यवर्गीय परिवार धीरे–धीरे जिस पर आश्रित हो गए, ऐसी आकांक्षाओं की संस्कृति। इसमें वो गर्माहट व आश्वासन नहीं जो निश्चितता से पैदा होता है। अविकासशील समाज को सहारा देने वाले ढांचे अभी तक तैयार नहीं हुए। अकेलेपन की भयानकता और बदलाव को यह नाटक पकड़ता है, साथ ही एक विशेष परिवर्तन को भी रेखांकित करता है। सावित्री के मां–बाप का कहीं कोई जिक्र नहीं फिर भी जब कभी बिन्नी अपनी शादी–शुदा जिन्दगी से लौटना चाहती है तो उसके पास लौटने की एक जगह है। हालांकि यह वही घर है जिसने उसे ऐसा बनाया, फिर भी यही आसरा भी है और आदि बिंदु भी। टूटता हुआ सा घर फिर भी मजबूत है कि हर किसी को वापस खींचता है। एक मजबूरी और निर्भरता सबको एक दूसरे से बांधती है, वे अपनी कमजोरी से नफरत करते हैं इसलिए एक–दूसरे की आजादी को तोड़ते रहते हैं। एक सुखी परिवार के मिथक को यह नाटक साफ तौर पर तोड़ देता है। स्थिरता का आधार विवाह है, इस बात पर गहरे प्रश्न हैं, तीव्र विवाद है। कई अर्थों में यह आदमियत के अधूरेपन का नाटक है, सीमाहीनता और व्यक्तिवादिता और असहिष्णुता सब पर काबिज है, दूसरों की कमियों के साथ। जबकि खुद अपनी भी कोई गहरी पहचान नहीं। खुशी पैदा करने की

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. मोहन राकेश के नाटकों ने एक समर्थ एवं महत्वपूर्ण कला माध्यम के रूप में किसे स्वीकृति दिलाई?
6. मोहन राकेश का पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' कब प्रकाशित हुआ था?
7. मोहन राकेश ने हिंदी रंगमंच के स्वस्थ विकास के लिए किस बात पर जोर दिया है?
8. मोहन राकेश रंगमंच पर हरे या स्लेटी रंगों के स्थान पर किन रंगों को अपनाने की सलाह देते हैं?

टिप्पणी

नालायकी उतनी ही बड़ी है जितनी कि खुशी पाने की ख्वाहिश, कोशिशों की नाकामयाबी में एक अजब व्यंग्य है लेकिन जिंदगी के सबक की तरह हर पीढ़ी को उसका तजुर्बा व पहचान खुद ही करनी पड़ती है।

यह नाटक अपने आप में एक पूरा संसार है, एक ऐसा संसार जो व्यक्ति ने रचाया है काले लिबास वाले व्यक्ति ने, जिसके तजुर्बे और जिसकी नजर का रंग इस संसार पर काबिज है। चूंकि उसने काला चुना है तो यह सारे स्थान में फैल जाता है। इसी में बाकी के पात्र स्थापित किए गए हैं। हालांकि सभी पुरुष इस मानसिकता के प्रतीक हैं, यह औरत सावित्री भी कई औरतों की तरह है, उन पुरुषों से व्यवहार करते हुए उनसे रिश्ते कायम करते हुए हर एक पुरुष से पेश आते हुए इस औरत के व्यक्तित्व के अलग ही रंग सामने आते हैं, जिससे वो बहुरंगी बन जाती है, और उतने ही रंगों में बंट भी जाती है। बीवी, मां, व नौकरीशुदा। वो रूमानियत की भी तलाश करती है, और अपनी वकालत भी खुद करती है। इस संसार में वह असहाय है और पुरुष से शक्ति प्राप्त करती है। किंतु महेंद्रनाथ खुद उसकी शक्ति से बंधा है, उसे आश्वासन या शक्ति नहीं दे सकता, जिसकी जरूरत है। वो कमजोर दीखता है लेकिन सावित्री और उस घर पर अपने अधिकारों को वह कायम रखता है, सभी विरोधों के बावजूद उसका दोस्त, उसका वकील, जुनेजा भी उससे हार जाता है। जुनेजा के शब्दों में स्वीकृत नैतिकता, जो सामाजिक रस्म रिवाज से पैदा हुई है, गूंजती है, उसमें दुहरापन है, फिर भी उसका कहना है कि अलग–अलग मुखौटों के नीचे चेहरा एक ही है। इसलिए सावित्री की तलाश बेमानी है। सावित्री नहीं मानती। वह केवल भूमिकाओं से बंधी औरत ही नहीं बल्कि, मानवीय आत्मा है जो अपने सुख की खोज, शांति और सुन्दरता और मंजिल में संतुलन की खोज स्वयं करती है। और ऐसा लगता है कि नाटक में होने वाली घटनाओं का दोष सावित्री का है, लेकिन यह इसीलिए कि वो ही जिम्मेदारी उठाती है तथा औरों से कम भगोड़ी है। हमने उसे परखने की कोशिश की है, उसे समझने की, उसकी कुंठाओं, इच्छाओं और टूटन को समझने की कोशिश। इस घर के बच्चे कई अर्थों में संक्रमणकालीन समाज की पैदाइश हैं। अशोक को लगता है कि घर निश्चित रूप से टूटा है। बिन्नी की कोशिश है कि सब कुछ बंधा रह सके, इस प्रक्रिया में वह ऐसी धुरी बन जाती है जिसके गिर्द सारी स्थितियां घूमती हैं। किन्नी जैसे घर की आत्मा हो, तरसती हुई कि कोई उसे प्यार करे, कोई उसकी तरफ भी ध्यान दे। घर उन सब में प्रमुख है और वह घटनाओं को आकार देता है– यह चक्र चलता रहता है। क्या चलना ही चाहिए? शायद नाटक धीरे से, अस्पष्ट स्वर में यही प्रश्न करता है।

इस नाटक में समकालीन जीवन के अनेक धूप–छांही चित्र और ढांचे बुने हुए हैं।

'आधे–अधूरे' मोहन राकेश द्वारा एक जीवन्त नाट्य–रूप और हिंदी नाटक–लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम–बिन्दु है। यह उनके स्त्री–पुरुष संबंधों के अन्वेषण की एक कड़ी होते हुए भी यहां वह एक तरह की स्वीकृति पर पहुंच गए हैं। स्त्री और पुरुष के बीच परस्पर अनुकूलता नहीं है, और उनके संबंधों में एक बुनियादी संघर्ष सदा बना रहता है। मगर फिर भी इस संघर्ष को समझना और इसके साथ–साथ रहना भी पड़ता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष पूरी तरह कभी अलग नहीं हो सकते और इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

नाटक की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन–सब कुछ ऐसा है, जो बहुत संपूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है।

मोहन राकेश आधुनिक जीवन में व्याप्त अतृप्ति और महत्वाकांक्षाओं की दौड़ में हारते जीवन की व्यथा कथा कहकर यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि संतोष ही परम सुख है। सब कुछ एक साथ नहीं मिलता, सबको सब कुछ नहीं मिलता लेकिन जो मिला है उसे प्यार से सहेजना ही शांतिपूर्ण जीवन की कुंजी है।

3.5.2 पात्र एवं चरित्र चित्रण

आधे–अधूरे के सभी पात्र भारतीय संस्कृति से भटके और पाश्चात्य संस्कृति से संक्रमित दिखाई देते हैं। महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में लगी स्त्री, सावित्री पथभ्रष्ट प्रतीत होती है तो पुरुष महेंद्रनाथ और अशोक नकारा, अकर्मण्य, आलसी और परजीवी प्रतीत होते हैं। आत्मसम्मान और पौरुष से हीन दिखाई देते हैं। किन्नी, बिन्नी, सावित्री सभी असंतुष्ट, अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए बेचैन, गलत मार्ग पर चलती हुई, कुंठित, हीनता–ग्रंथि का शिकार और खुद में एकाकी दिखाई देती हैं। मोहन राकेश ने अन्य पुरुष पात्रों– सिंघानिया, जगमोहन, जुनेजा, मनोज सभी को भोग–विलास में रत, स्वार्थी, शोषक एवं कुसंस्कारी दिखाकर पाश्चात्य सभ्यता से आच्छादित समाज के प्रतिनिधियों की ओर संकेत किया है जो भावनाओं का, मित्रता का लाभ उठाकर केवल स्वयं का भला करते हैं। यह नाटक असंतुष्ट अधूरेपन से ग्रस्त पात्रों का दस्तावेज है। कथा के अनुकूल पात्रों का चयन किया गया है, जिनकी वेशभूषा, भाषा, संवाद एवं प्रवृत्ति प्रभावशाली है जो नाटक को जीवंत बनाती है। आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में जो विशेष रूप से महानगरों में बसते हैं, ऐसे चरित्रों की भरमार है। अनेक सावित्रियां, किन्नियां, महेंद्रनाथ और अशोकों से समाज भर गया है। असंतुष्टि, आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति, ज्यादा पाने की होड़, कम समय और कम मेहनत कर सब कुछ एक साथ, ज्यादा से ज्यादा पाने की होड़ में लगे भटकते अशोकों, सावित्रियों से समाज पटा पड़ा है। यह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के दुष्परिणाम हैं जिनको दिखाने के लिए ही संभवतः मोहन राकेश ने ऐसे पात्रों का चयन किया जो कथा की कसौटी पर खरे उतरते हैं। चरित्रों के चयन की दृष्टि से भी यह सफल नाटक है।

महेंद्रनाथ

महेंद्रनाथ नाटक का मुख्य पुरुष पात्र है। यह सावित्री का पति है तथा बिन्नी, किन्नी और अशोक का पिता है। व्यवसाय में मित्रों पर निर्भरता और विश्वास के कारण सारा धन गंवाकर अब बेकार बैठा है। यह निकम्मा और दब्बू प्रतीत होता है क्योंकि सावित्री की कमाई पर पलता है और उसके पुरुष मित्रों से उसकी निकटता देखकर यदा–कदा व्यंग्य करता है। बहस करता है और दो–दो, तीन–तीन दिन के लिए घर से गायब होकर मित्रों के घर पड़ा रहता है। महेंद्रनाथ गैर जिम्मेदार है। वह न घर संभालने की जिम्मेदारी उठाता है न बच्चों की। अगर वह बच्चों को प्यार, अनुशासन एवं संस्कार सिखाता तो घर इतना बिखरा हुआ और तनावग्रस्त नहीं होता। नौकरी से लौटने पर सावित्री बच्चों को पिता के साथ बैठकर पढ़ते देखती, घर को व्यवस्थित देखती तो उसके अंदर कार्य करने की लगन और

उत्साह बढ़ जाता। वह सारी थकान भूलकर पति और बच्चों के प्यार तथा सहानुभूति से जीवंतता का अनुभव करती। लेकिन महेंद्रनाथ घर का मुखिया होते हुए भी इस दायित्व को नहीं समझता। उसे यहां–वहां भटकते, बिगड़ते बच्चों की चिंता नहीं है। उसकी खीझ का एक मात्र केन्द्र सावित्री है। महेंद्रनाथ पत्नी को अमानवीय तरीके से पीटता, प्रताड़ित करता हुआ क्रूर पुरुष भी है जो असफल पुरुषार्थ की हीनता को कम करने के लिए पत्नी को प्रताड़ित करता है। लेकिन वह हार जाता है क्योंकि उसकी प्रताड़ना के कारण, उसके अमानवीय व्यवहार के कारण उसके चरित्र का खोखलापन उजागर होता है जिससे पत्नी और बच्चे न केवल दूर हो जाते हैं बल्कि कोई उसका सम्मान भी नहीं करता। सावित्री खुले आम एक के बाद एक पुरुषों के साथ घूमती है। उसे दूसरे पुरुषों के साथ संबंध बनाकर महेंद्र को हीन दिखाने में मजा आने लगता है। वह घर छोड़कर जाने के लिए उतावली है और बार–बार कहती है कि जिस दिन कोई ठीक–ठीक आधार मिल गया, वह चली जाएगी। आधार से तात्पर्य ऐसा पुरुष जो पूर्ण हो, सक्षम हो, जो सावित्री की कामनाओं की कसौटी पर खरा उतरे। जब सावित्री किसी पुरुष मित्र को घर बुलाती है तो महेंद्रनाथ नपुंसक की तरह किसी काम का बहाना करके घर से बाहर चला जाता है। गृहस्वामी होते हुए भी उसका व्यवहार नौकर से भी बदतर है। वह स्वयं खीझ कर कहता है कि उसकी हैसियत एक रबर के टुकड़े के समान है।

महेंद्रनाथ में निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। वह हर निर्णय अपने मित्रों से पूछ कर करता है। उसमें आत्मदृढ़ता भी नहीं है, वह बार–बार बहस करके घर छोड़कर जाता है लेकिन फिर सावित्री के पास लौट आता है क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। अपनी कमजोरियों को महेंद्रनाथ समझता है इसलिए वह कहता है कि– मैं कीड़ा हूं जो इस घर को खोखला कर रहा है। मैं सबके पतन के लिए जिम्मेदार हूं। मेरी हड्डियों में जंग लग गयी है इसलिए पत्नी और बच्चों की उपेक्षा तथा तिरस्कार सहकर भी इस घर में पड़ा रहता हूं। महेंद्रनाथ के अंदर जीवन में कुछ भी हासिल न कर पाने की पीड़ा और कुंठा है। वह ऐसा पुरुष है जिसने पत्नी को अपने अनुसार चलाने में ही अपना पुरुषार्थ समझा, पत्नी को अपने हाथों की कठपुतली बनाना चाहा लेकिन बुरी तरह हार गया। न केवल पत्नी बल्कि बच्चे भी उसके हाथ और अधिकार क्षेत्र से निकल गए। वह असंतुष्ट और निराश व्यक्ति है तथा पलायनवादी है। संघर्ष करके सब कुछ पा लेने का प्रयत्न करने के बजाय वह सिगरेट और शराब में डूबा गम गलत करता है। महेंद्रनाथ कमजोर व्यक्ति है, उसकी आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, स्वार्थ परता उसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का प्रतिनिधि घोषित करती है। वह न अच्छा पति है न अच्छा पिता बल्कि वह श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं लगता। राकेश जी ने आधे–अधूरे के इस पात्र के माध्यम से मध्यवर्गीय, अभावग्रस्त, महत्वाकांक्षी लेकिन अकर्मण्य पुरुष की छवि को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त किया है। पूरे नाटक में यह पात्र अपने लिजलिजेपन से केवल खीझ उत्पन्न करता है, सहानुभूति अर्जित नहीं करता। यह आधुनिक परिवेश के विकारों से ग्रस्त पात्र है।

अशोक

यह सावित्री और महेंद्रनाथ का बेटा है। नाटक में यह एक अल्पशिक्षित, आवारा, निकम्मा और उद्दण्ड पात्र है जो अपनी मां से मर्यादाहीन वार्तालाप करके अपनी खराब छवि प्रस्तुत करता है। संघर्ष करती हुई मां का सहारा बनने की बजाय यह उसके कार्यों को गलत सिद्ध करता हुआ उस पर आरोप लगाता है। यह एक कृतघ्न पात्र है जो मां के सारे अहसानों पर पानी फेर देता है यह कह कर कि ये जो कुछ करती हैं स्वयं के सुख के लिए करती हैं। वह कहता है, किन्नी दिनोंदिन बिगड़ रही है, बिन्नी मनोज के साथ घर से भाग गयी, पिता लड़कर घर से चले गए, मैं नाकारा घूम ही रहा हूं। अगर सावित्री बच्चों और घर के लिए ही संघर्ष कर रही होती तो घर का और बच्चों का यह हाल न होता। वह कटु भाषा में संवाद करता है। अशोक स्वयं कुछ कमाता नहीं, घर से उसे जेबखर्च मिलता नहीं, इसलिए वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे उपहार देने के लिए घर की चीजें उठा–उठाकर ले जाता है।

वर्तमान में आधुनिक युवा पीढ़ी स्वयं परिश्रम करने से बचती है तथा माता–पिता से अपेक्षा करती है कि वे उसकी जिंदगी को ऐशो–आराम युक्त बनाने के साधन उपलब्ध कराएं। ऐसा न हो पाने पर वह माता–पिता के प्रति क्रूरता, असभ्यता से भरा व्यवहार करती है। अशोक ऐसा ही युवा है। जो आलसी और अकर्मण्य है। पढ़ने में उसकी रुचि नहीं है, न ही वह कोई काम करना चाहता है। मां अपने अधिकारियों, पुरुष मित्रों से मिलवाकर उसे काम दिलाना चाहती है तो वह उनसे नहीं मिलना चाहता बल्कि मां को चरित्रहीन समझता है और स्वयं को श्रेष्ठ और स्वाभिमानी प्रदर्शित करता है। अशोक अपने पिता की ही तरह गैर जिम्मेदार है। वह अपने परिवार के प्रति किसी दायित्व को निभाना आवश्यक नहीं समझता। उसके मन में परिवार के लिए प्रेम भी दिखाई नहीं देता क्योंकि प्रेम होता तो वह जिम्मेदारी भी समझता। किन्नी को बिगड़ने से बचाता। मां का सहयोग करता। अशोक एक स्वार्थी युवा है। अपने अधूरेपन को भरने के लिए भी गलत रास्तों पर चल रहा है। अपने समवयस्क युवाओं के साथ रहने पर हीनता से ग्रस्त होने के कारण संभवतः वह कुंठित एवं विकृत आचार–विचार का प्रदर्शन करता है। वह सावित्री के बॉस का कार्टून बनाता है, व्यंग्य करता है। इससे यह तो पता चलता है कि वह बुद्धिमान है, लेकिन वह अपनी बुद्धि का प्रयोग नकारात्मक कार्यों में करता है। वह भी पिता की तरह घर में किसी को बताए बिना कई–कई दिनों तक घर से गायब रहता है।

'आधे–अधूरे' नाटक के हर पात्र की तरह अशोक भी असंतुष्ट भटकता, एकाकीपन से ग्रस्त पात्र है। कमरे में बैठकर फिल्मी अश्लील पत्रिकाएं पढ़ना तथा चित्र–काट–काटकर रखना उस का शौक है। उसे घर में घुटन का अनुभव होता है। वह मानता है कि इसी घुटन से तंग आकर उसकी बहन बिन्नी मनोज के साथ भाग गयी। वह स्पष्ट वक्ता है। बोलते समय यह नहीं सोचता कि उसके शब्दों से किसी का मर्म आहत हो सकता है। इसके दो उदाहरण दिए जा सकते हैं– एक तो वह बिन्नी से कहता है कि तू घर से इसलिए नहीं गई कि तुझे मनोज से प्रेम हो गया था बल्कि मनोज के रूप में तुझे एक खिड़की मिली कि तू इस घर से बाहर जाकर चैन की सांस ले सके। दूसरा, वह मां के लिए कहता है कि बार–बार कहती हैं कि अब अकेले जिम्मेदारी नहीं सम्हाली जाती मुझसे, अब केवल अपने लिए जीऊंगी तो क्यों नहीं छोड़ देतीं जिम्मेदारी निभाना, हमें हमारे हाल पर छोड़कर जाएं जहां जाना हो। अशोक की कटूक्तियों में कहीं सच्चाई भी दृष्टिगोचर होती है। तब लगता है कि भले ही वह आवारा घूमता है, पढ़ता नहीं, कोई काम नहीं करता लेकिन परिस्थितियों

टिप्पणी

को समझने और विश्लेषण करने की उसमें भरपूर क्षमता है। यह नाटक वर्तमान समाज के मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त संघर्ष, तनाव, द्वंद्व, कुंठा के बीच पलती पीढ़ी के आक्रोश एवं मनोवृत्तियों को सफलतापूर्वक दर्शाता है। अशोक एक नकारात्मक छवि को प्रस्तुत करने वाला पात्र है जिसके परिप्रेक्ष्य में सावित्री के प्रति सहानुभूति बढ़ती है। दूसरी ओर यदि सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यही एक पात्र है जो मां के चरित्र के अनुरूप अपने चरित्र/व्यवहार का औचित्य सिद्ध करता है।

सावित्री

सावित्री एक मध्यवर्ग की आधुनिक नारी है। 'आधे–अधूरे' में सावित्री नाटक का मुख्य आधार है। वही प्रमुख स्त्री है जिसे नायिका कहा जा सकता है। उसके अनेक संबंध है– पति महेंद्रनाथ और बॉस सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा–जिन्हें क्रमशः एक, दो, तीन, चार पुरुष कहा गया है। सावित्री के जीवन में ये आते–जाते हैं। सावित्री के माध्यम से राकेश आधुनिक स्त्री को चित्रित करना चाहते हैं जिसकी कई भूमिकाएं हैं। आर्थिक रूप में कई बार वह परिवार की धुरी है। घर के लिए वह कमा कर लाती है, पर गृहस्थी भी उसे ही देखनी पड़ती है; बच्चों की सारी जिम्मेदारी भी उसी के कन्धों पर है। कई पात्र उसके जीवन में आते हैं जिसका कारण उसका असन्तोष तो है ही, पर वह परिवार की बेहतरी भी चाहती है, जैसे बॉस सिंघानिया से बेटे अशोक की नौकरी के लिए निवेदन। नाटक में वह आदि से लेकर अन्त तक सक्रिय है और घटनाचक्र उसी के इर्द–गिर्द घूमता रहा है तो इसके लिए समाजशास्त्रीय कारण तो हैं ही, उसका अहं भी है, परिस्थितियां भी हैं। वह मां है और अपने बेटे–बेटियों को भी ऊपर उठाना चाहती है। यह बात दूसरी है कि वह सफल नहीं हो पाती।

सावित्री के माध्यम से राकेश एक कामकाजी महिला को सामने लाते हैं, और इस दृष्टि से वह आधुनिक नारी है। राकेश ने आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर इस प्रकार के पात्र अपनी अन्य रचनाओं में भी प्रस्तुत किए हैं। सावित्री आधुनिक नारी के रूप में अपना स्वतन्त्र आर्थिक आधार रखती है। वह नौकरी करती है और इस आधार पर स्वतन्त्र सामाजिक संबंध भी बनाना चाहती है। पति महेंद्रनाथ बेकार है, सावित्री के लिए नौकरी करने की यही विवशता नहीं है, स्वभाव से भी वह आर्थिक स्वतन्त्रता चाहती है। आधुनिक भारतीय नारी के विषय में सोचा गया कि यदि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाए तो उसकी स्थिति बेहतर हो सकती है। पर यह अधूरी दृष्टि है। नारी अपने शरीर में तो दुर्बल है ही, भारत में जब तक सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से नारी सम्मानित नहीं होती, स्थिति में परिवर्तन सम्भव नहीं। अब भी जैसे आधुनिकता के नाम पर हम मध्यकाल के सामन्ती समाज में जी रहे हैं– दहेजप्रथा, अनमेल विवाह, बलात्कार, स्त्री के प्रति निरादर भाव आदि आम बातें हैं। इन स्थितियों में आधुनिक भारतीय नारी ने आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होना चाहा तो क्या उसके 'स्टेटस' में सामाजिक दृष्टि से कोई गुणात्मक परिवर्तन हुआ? सम्भवतः नहीं। क्योंकि स्थितियां बाहर–बाहर बदलीं, ऊपर–ऊपर–मानसिकता में अधिक परिवर्तन नहीं आया और नारी के प्रति दृष्टि में प्रायः वही पिछड़ापन मौजूद है।

सावित्री के माध्यम से राकेश जिस आधुनिक नारी का चित्रण करते हैं, वह साधारण मध्यवर्ग की है, और परिवार के साथ तमाम उम्र समझौते करती है। तथाकथित 'इण्टलेक्चुअल'

टिप्पणी

मध्य वर्ग की नारी आर्थिक रूप से स्वतन्त्रता पाने के प्रयत्न में काफी हद तक सफल हुई, पर राकेश प्रश्न उठाते हैं कि वह सन्तुष्ट है क्या? सम्भवतः नहीं। सावित्री की 'ट्रैजिडी' ही यह है कि वह आर्थिक आधार बनाकर अपने जीवन को स्वतन्त्रता देना चाहती है, पर ऐसा हो नहीं पाता। वह स्वयं भी टूट–बिखर जाती है, तरह–तरह के दबावों में रहती है। और परिवार तो विघटन के कगार पर है ही। आधुनिक नारी के रूप में उसकी सीमा यह है कि वह परिवार को अपनें ढंग से चलाना चाहती है–पति से लेकर बेटा, बेटी और तथाकथित मित्रों तक को, पर यह सम्भव नहीं, क्योंकि आजादी तो सभी चाहते हैं–स्कूल में पढ़नेवाली छोटी बेटी तक। सावित्री चाहती है कि घर ठीक–ठाक रहे, और ऐसा न होते देखकर झुंझलाती है, चीखती है। पति महेंद्रनाथ से कहती है: "पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का? रोज आने पर पचास चीजें यहां–वहां बिखरी मिलती हैं।" आधुनिक प्रवृत्ति के कारण सावित्री घर को यन्त्रवत चलाना चाहती है, व्यवस्था चाहती है। पर यह सम्भव नहीं होता और वह खीझती चली जाती है, और इस क्रम में लगातार टूटती है।

सावित्री आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना चाहती है, चाहे अपनी इच्छा से अथवा विवशता में, पर यह उसके जीवन का प्रमुख प्रश्न है। उस पर पूरे परिवार का बोझ है जिसके कारण उसे यथार्थ से समझौते करने पड़ते हैं। उसकी स्वाभाविक इच्छा है कि पति महेंद्रनाथ कुछ काम करे, निठल्ले न बैठे रहें। अशोक को अच्छी नौकरी मिल जाए और बेटियों को अच्छे पति। सावित्री की इच्छाओं को हम आधुनिक प्रवृत्ति से प्रेरित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा भर नहीं कह सकते, इसके मूल में उसके पारिवारिक दायित्व हैं। वह बड़ी लड़की से दर्द से कहती है– "...यहां पर परिवार में सब लोग समझते क्या हैं, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस–पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।" सावित्री यदि समझौता करती है और उसमें स्खलन दिखायी देता है तो इसीलिए कि वह परिवार के लिए खटती है। पुरुष दो (सिंघानिया) सावित्री के साथ विचित्र व्यवहार करता है। बार–बार कहता है कि : "तुम (सावित्री) आओगी ही घर पर।" सावित्री यह यातना सह जाती है क्योंकि उसे अपने बेटे अशोक के लिए नौकरी चाहिए। अशोक इस पुरुष दो (सिंघानिया) को 'वनमानुष' कहता है। पर मां के रूप में सावित्री को बेटे–बेटियों के भविष्य की चिन्ता है, मूल्य कुछ भी चुकाना पड़े। इस दृष्टि से सावित्री समाज की सहानुभूति की भी अधिकारिणी है।

सावित्री परिवार की चिंता में है और जैसे अकेली ही लड़–झगड़ रही है। जब बेटा अशोक कहता है कि ऐसे गलत लोगों को क्यों बुलाती हो? तो सावित्री का उत्तर है– "इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके।" कितनी चिन्ताएं लेकर चल रही है सावित्री! निठल्ला पति, विद्रोही संतान, वह भी आपस में सौमनस्यरहित। बेटा अशोक छोटी बहिन को पीट देता है क्योंकि वह पड़ोस की लड़की सुरेखा से स्त्री–पुरुष संबंधों पर बात करती है। छोटी लड़की भाई के प्रेम–प्रसंग की चर्चा करती है कि ये अपनी प्रेमिका वर्षा के चक्कर लगाते हैं। परिवार का भार वहन करने वाली नारी के रूप में सावित्री अपने पति महेंद्रनाथ से पूर्णरूपेण असंतुष्ट है, वह किसी काम का नहीं। सावित्री में एक गहरा विक्षोभ है कि वह परिवार के लिए अकेली ही पिस रही है, फिर भी उसे टूटने–बिखरने से

टिप्पणी

बचा नहीं पा रही है। परिवार में जैसे सब गैरजिम्मेदार हैं, सारा बोझ उसी पर। बड़े दर्द से सावित्री कहती है– "मेरे पास अब बहुत साल नहीं जीने को। पर जितने हैं, उतने में इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था, इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब अन्त है उसका–निश्चित अन्त।"

सावित्री अपने पारिवारिक दायित्वों की ओर ध्यान देती है पर उसके व्यक्तित्व में संग्रंथन, संयोजन सबको साथ लेकर चल सकनेवाले नेतृत्व की कमी हो सकती है। इसके कारण समाजशास्त्रीय हैं और आर्थिक हैं। औद्योगिक, शहरी समाज बन रहे हैं, पारिवारिक इकाइयों का टूटना एक स्वाभाविक परिणति है। पहले टूटते हैं सामन्ती समाज के बने बड़े संयुक्त परिवार, फिर छोटे परिवार भी व्यक्तियों में बंट जाते हैं, छोटी–छोटी आत्मकेन्द्रित इकाइयों में से यहां तक कि पति–पत्नी, माता–संतान, भाई–बहन आदि संबंध भी टूट जाते हैं। उचित तो यह था कि महेंद्रनाथ और अशोक परिवार का बोझ ढोते, पर दायित्व आ पड़ा है सावित्री पर और वह इसे निभाने में ही टूटती है। यह बात दूसरी है कि उनके पास 'गोदान' की धनिया का जुझारू ग्राम–व्यक्तित्व न होकर मध्यवर्ग की शहरी मानसिकता है, इसीलिए वह भीतर–भीतर टूटती है। इसमें मनोग्रन्थियां बनती हैं, पर जहां तक उसके जीवन का प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं कि पारिवारिक दायित्व उसे थकाते हैं। वह अपने बेटे से पीड़ा के साथ कहती है– "ऐसे में मुझसे नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहां दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूं रात–दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठ रहूं, अपनी जगह?"

सावित्री महेंद्रनाथ का वरण पति के रूप में करती है, पर स्वभाव से दोनों भिन्न–भिन्न दिखायी देते हैं। इनमें कुछ तो अपनी बनावट का रोल है, और कुछ परिस्थितियों की भी भूमिका है। कुल मिलाकर जो मानव व्यक्तित्व बनता है, उसमें व्यक्ति एवं समाज दोनों का योग होता है, अर्थात सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव। सावित्री महेंद्रनाथ को फिजूल का आदमी समझती है। बेकार का, जो निठल्ला बैठा रहता है, कुछ करना ही नहीं चाहता। वह न खुद चलता है और न दूसरों को ही चलने देता है– 'नामुराद मोहरे' की तरह है। पुरुष एक, महेंद्रनाथ पत्नी से खीझकर कहता है– "अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूं। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूं क्योंकि अंदर से मैं आरामतलब हूं, घर–घुसरा हूं, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।" सावित्री महेंद्रनाथ के साथ रहती तो है, पर मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। सावित्री महेंद्रनाथ के साथ–साथ रहने के लिए विवश है, जैसे। यह आज के ठण्डे, तनावपूर्ण स्त्री–पुरुष–संबंधों की एक झांकी है।

पति–पत्नी एक दूसरे को सही ढंग से समझना नहीं चाहते। महेंद्रनाथ कहीं काम पर लगने की कोशिश में है–जुनेजा के पास आता–जाता है, पर सफल नहीं होता। सावित्री धीरे–धीरे मानसिक स्तर पर पति से दूर होती जाती है, उन दोनों में जैसे भावात्मक संबंध गायब हो जाते हैं– एक संवादहीन स्थिति। उनमें बातें होती हैं तो जली–कटी, आक्रोश भरी, जैसे हर वक्त लड़ झगड़ रहे हों। कुछ संवाद हैं–

"**पुरुष एक** (महेंद्रनाथ): तुम लड़ना चाहती हो?

स्त्री (सावित्री) : तुम लड़ भी सकते हो इस वक्त, ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से।... वह आदमी (पुरुष दो, सिंघानिया) आयेगा। तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके (सावित्री के) आदमी को कोई न कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं जान–बूझकर ही भेज देती हूं।

पुरुष एक : वह मुझसे तय करके तो नहीं आता कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूं घर पर!

स्त्री : कह दूंगी, आगे से तय करके आया करे तुमसे। तुम इतने बिजी आदमी हो, पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाय (तीखा व्यंग्य, महेंद्रनाथ की बेकारी पर)।

पुरुष एक : तुम तो बस, आमादा ही रहती हो हर वक्त।

स्पष्ट है कि 'आधे–अधूरे' में मोहन राकेश सावित्री–महेंद्रनाथ के माध्यम से स्त्री–पुरुष के तनाव भरे संबंधों पर टिप्पणी करते हैं। उन पति–पत्नी में वह सौमनस्य नहीं जो दाम्पत्य जीवन को, अभावों के बावजूद भी पूर्णता देता है; इसलिए वे त्रस्त हैं और घर भी टूट रहा है। सावित्री अपने असन्तोष में कई पुरुषों से बंधती दिखायी देती है–जुनेजा, जगमोहन और विवश स्थिति में बॉस सिंघानिया भी। सावित्री खोजती क्या है? पूर्ण मनुष्य! पर वह तो कल्पना है, दार्शनिकों की, कवियों की। महेंद्रनाथ को आधा–अधूरा व्यक्ति करार देते हुए वह कहती है– "आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो?... जबसे मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है।" जैसे वह आधा–अधूरा आदमी है। एक पत्नी के रूप में सावित्री असन्तुष्ट है, भटकती है, पर उसे परितृप्ति नहीं मिलती। पूर्णत्व की इस मृग–मरीचिका के पीछे दौड़कर वह हताश सी हो गयी है। यह हमारे आज के मध्यवर्गीय स्त्रीपुरुष संबंधों पर तीखी टिप्पणी है।

सावित्री–महेंद्र के तनावपूर्ण संबंधों का प्रभाव पूरे घर पर पड़ता है। पूरा परिवार जैसे इस तनाव के कारण टूटता चरमराता दिखायी देता है। बेटे अशोक में तीव्र आक्रोश है, वह विद्रोह पर उतारू है, बेकार होकर भी वर्षा से प्रेम करता है। विचित्र संस्कार हैं उसके– आवारापन के। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के साथ भाग जाती है, फिर पछताती है। छोटी लड़की किन्नी हर चीज से असन्तुष्ट है। भाई–बहन में कोई प्रेम भाव नहीं, इसीलिए कि परिवार के अभिभावक सावित्री–महेंद्रनाथ में सौमनस्य नहीं है। बच्चे भी जानते हैं कि मां के कहां–कहां, कैसे संबंध है? कौन आता–जाता है। परिवेश का प्रभाव परिवार पर पड़ना स्वाभाविक है, इसे राकेश ने नाटक में भलीभांति दिखाया है। बिन्नी (बड़ी लड़की) एक स्थान पर पुरुष चार (जुनेजा) से कहती है– "मैं तो बयान नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।" वह घर को 'चिड़ियाघर का पिंजड़ा' कहती है। इस तरह पारिवारिक तनावों के कारण सभी सदस्य असंतुष्ट हैं–आधे–अधूरे।

मोहन राकेश ने सावित्री का चरित्र मध्यवर्ग से उठाया है और उसे एक परिवार का दायित्व दिया। पति को निठल्ला बनाया और संतान भी इस अर्थ में लापरवाह कि मां में कोई रुचि नहीं। राकेश ने सावित्री को शरीर अथवा यौन स्तर पर भटकती साधारण नारी के रूप में चित्रित नहीं किया, उसे एक व्यक्तित्व देने की कोशिश की। एक प्रकार से 'रैशनलाइज' किया है कि सावित्री पूर्णता चाहती है जो मिलना असंभव है। इस दृष्टि से सावित्री की यात्रा

टिप्पणी

टिप्पणी

'सही संबंधों की खोज की यात्रा' है। वह गृहस्थी की त्रासदी भी झेलती है और अपने मन की यातना भी। वास्तव में सावित्री 'व्यक्ति' नारी नहीं है कि राकेश उसमें 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका अथवा 'लहरों के राजहंस' की सुंदरी जैसी चारित्रिक रेखाएं भरने का अधिक सावधान प्रयत्न करते। 'आधे–अधूरे' में उन्होंने सावित्री को एक स्त्री माना है– और वह मध्यवर्ग की इन परिस्थितियों की कोई भी स्त्री हो सकती है। विवाह के पूर्व महेंद्रनाथ उसका प्रिय था, पर विवाह के अनंतर ऐसा क्या कुछ बदल गया कि सावित्री का मन उससे तिक्त हो जाता है। उसकी बातों में तिक्तता, कड़वाहट, और व्यंग्य है, स्नेह बिल्कुल नहीं। क्यों ये संबंध धीरे–धीरे ठंडे, व्यर्थ होते गए हैं? राकेश ने उसके लिए सावित्री को घर–गृहस्थी के तनाव से गुजारा है– घर से लेकर बाहर तक।

मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' में एक ओर मध्यवर्ग की त्रासदी दिखाते हैं– पारिवारिक स्तर पर, दूसरी ओर यह भी बताते हैं कि सभी को सही संबंधों की खोज है और उसका सबसे अधिक प्रयत्न सावित्री में है। नाटक के लगभग अंतिम दौर में पुरुष नं. चार, जुनेजा आता है और बड़ी लड़की–बिन्नी से उसकी काफी बातचीत होती है जिससे सावित्री–महेंद्र के संबंधों के बिखराव का पता चलता है। जब सावित्री स्वयं रंगमंच पर उपस्थित होती है तो जुनेजा के सामने वह लंबे वक्तव्य देती है, जहां उसकी मानसिकता उजागर होती है। सावित्री कहती है: "...एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरूरत? अपने अंदर के किसी उसको एक अधूरापन कह लीजिए उसे... उसको भर सकने के लिए। इस तरह उसे अपने लिए... अपने में... पूरा होना होता है।" इस क्रम में, अपने बहुत लंबे वक्तव्य में सावित्री बोलती चली जाती है लगातार, और कहती है कि अपने ढंग से जीना चाहती है, सही संबंधों की तलाश है उसे। उसके शब्द है– "वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए... एक... पूरा आदमी।" और मोहन राकेश ने चुना है सावित्री को, पूर्णता की तलाश के लिए। सावित्री की भटकन हर उस व्यक्ति की भटकन हो सकती है जिसे पूर्णता की खोज है– यही सावित्री की 'ट्रैजिडी' है।

बिन्नी

बिन्नी सावित्री की बड़ी लड़की है और किन्नी छोटी। बिन्नी भी मां की तरह पूर्णता की खोज में है। राकेश दिखाते हैं कि बिन्नी उस मनोज के साथ भाग निकलती है जो उसकी मां का प्रेमी था। पर प्रेम और विवाह में अंतर है। विवाह करके बिन्नी भी मां की तरह असंतुष्ट है, कहती है– "एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है..." या "मन करता है कि आसपास की हर चीज को तोड़–फोड़ डालूं।" ऐसा क्यों होता है कि जिस व्यक्ति का स्वयं वरण किया, उसी के साथ असंतोष। नागरिक समाज में उपजे एकाकीपन, अलगावपन, अतृप्ति आदि का संकेत मोहन राकेश अपने पात्रों के माध्यम से करते हैं। बिन्नी निस्संकोच है, अपना असंतोष मां से लेकर अजनबी तक के सामने व्यक्त करती है।'

यदि केवल यह कह दिया जाय कि बेटी ने मां के संस्कार पाये हैं, तो अधूरी बात होगी। यह एक पक्ष है। स्थिति यह कि पारिवारिक परिवेश में माता–पिता में जो तनाव बिन्नी ने देखा है,'यदि उस पर उसका प्रभाव है तो यह चेष्टा भी होनी चाहिए कि वह उससे मुक्त भी हो। पर ऐसा नहीं हो पाता। एक क्षण ऐसा भी आता है जब मां–बेटी,

टिप्पणी

एक–दूसरे को सहानुभूति देती है जैसे उनके जीवनवृत्त एक जैसे हों। दोनों की प्रतिक्रियाओं में कई बार समानता मिल जाती है। माता–पिता दोनों बिन्नी से पूछते हैं कि वह मनोज के साथ खुश तो है न? पहले तो वह टालती है, फिर मां के सामने खुल जाती है, कहती है: "...शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूं। पर अब आकर.... अब आकर लगने लगता है कि वह जानना, बिल्कुल जानना नहीं था। इससे बिन्नी के मन का द्वंद्व पता चल पाता है। मां तरह–तरह के प्रश्न पूछती है, पर बेटी के पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं है। छोटी–छोटी बातों पर तनाव क्यों हो जाता है? फालतूपन है क्या? बिन्नी छोटी–मोटी नौकरी करना चाहती है– क्यों? "कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह (मनोज) अंदर से तिलमिला उठे।" फिर खीझती है और कुछ नहीं कर पाती।

बिन्नी मध्यवर्ग की नारी है, अपनी विसंगतियों से गुजरते हुए परेशान होती है। माता–पिता के संबंधों को देखकर उसमें भय जागता है। सोचती है: "क्या यही नियति उसकी भी है?" और तब वह टूटते स्वरों में मां से कहती है: "...एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज है इस घर में, जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है?" और स्थिति यह कि इस पूर्णता की तलाश मां को भी है, बेटी को भी–यहां दोनों में समानता है। पर बिन्नी का एक शुभ पक्ष है कि वह मनोज के साथ होकर भी माता–पिता, भाई–बहन से जुड़ी है। माता–पिता का तनाव उसे खलता है, वह अपने दुःख को व्यक्त करती है। पर कोई कारगर भूमिका निभाने में स्वयं को असमर्थ पाती है। खुद तनाव से गुजरते हुए प्रायः इंसान दूसरों के सुख–दुःख से अन्यमनस्क हो जाता है। पर बिन्नी ऐसी नहीं है। इसीलिए नाटककार राकेश ने उसे नाटक में काफी स्थान दिया है। बड़ी लड़की बिन्नी मां की सहेली जैसी हो जाती है और इसी तरह का व्यवहार करती है। मां के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहती है– "जब से बड़ी हुई हूं, तभी से देख रही हूं। तुम सब कुछ सहकर भी रात दिन अपने को इस घर के लिए हलाक करती रही हो।" पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है। पर चाहने से तनाव नहीं मिट सकते। भाई को ममता देती है और छोटी बहन को भी। यह बिन्नी के व्यक्तित्व की प्रौढ़ता को भी सूचित करता है कि वह बातों को ठीक से समझती है।

3.5.3 युग–बोध

प्रत्येक रचनाकार अपने युग से प्रभावित होकर रचनाकर्म करता है। तत्कालीन समाज, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थिति और आवश्यकताएं उसकी रचना में प्रतिबिंबित होती है। मोहन राकेश की रचनाओं में भी यह युग बोध अपने चरम पर पूरी उत्कृष्टता के साथ दिखाई देता है। वे अपने युग से प्रभावित हैं और युग की नब्ज पकड़ कर चलते हैं। मोहन राकेश की दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म एवं गहन तत्वों को पकड़ने की क्षमता रखती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के विकास की प्रक्रिया में हर क्षेत्र विज्ञान से, भौतिकवाद से प्रभावित है। पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर आधुनिक बनने की होड़ में भारतीय समाज का मध्यवर्ग सर्वाधिक पतित हुआ है। मध्यवर्ग वैसे भी हर परिवर्तन के लिए, उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए जिम्मेदार माना जाता हैं। उच्च वर्ग में शामिल होने की उसकी महत्वाकांक्षा उसे पथभ्रष्ट, कुंठित, असंतुष्ट, भटकन एवं एकाकीपन का शाप झेलने के लिए

टिप्पणी

विवश करती है। युवा वर्ग काम करना अशोभनीय मानते हुए सोचता है कि वह काम करता हुआ निम्नवर्गीय लगेगा इसलिए अकर्मण्य हो जाता है। महत्वाकांक्षाएं उसे कल्पना लोक में घुमाती हैं और शिक्षा बुद्धि को अर्ध विकसित करती है। इसलिए वह सुखों की परिभाषा को जान नहीं पाता और अशोक, सावित्री, बिन्नी, किन्नी, महेंद्रनाथ जैसे चरित्रों की सृष्टि होती है। वर्तमान युवा पीढ़ी माता पिता के प्रति कितनी कटु, अमर्यादित, असभ्य भाषा का प्रयोग कर सकती है, यह अशोक के चरित्र से पता चलता है। आत्मनिर्भर स्त्रियों की मानसिकता का पता सावित्री के चरित्र से चलता है। हर मध्यवर्गीय आत्मनिर्भर स्त्री सावित्री नहीं होती, लेकिन समाज में ऐसी असंतुष्ट, भटकती, महत्वाकांक्षी स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है।

मोहन राकेश सावित्री और उसके गृहस्थ जीवन के माध्यम से तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब दिखाते हैं। कलह, अशांति, कटुता, व्यंग्यात्मक संवाद, तनाव, द्वंद्व, असंतुष्टि, पलायनवादी प्रवृत्ति, अकर्मण्यता आदि वर्तमान युग की सर्वाधिक व्याप्त रहने वाली प्रवृत्तियां हैं जिन्हें इस नाटक में स्थान मिला है। युग–बोध की अभिव्यक्ति में नाटककार सफल रहा है। नाटक में कथ्य की सफल अभिव्यक्ति है। यह युग के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला नाटक है जिसमें भाषा, ध्वनि, संवाद, पात्र निर्देशन सभी कुछ प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी हैं। मोहन राकेश ने सामान्य विषय वस्तु के माध्यम से जटिल यथार्थ को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। संपूर्णता की तलाश में भटकती स्त्री सावित्री का चरित्र इस युग का सत्य है। कटुता, तनाव, द्वंद्व के कारण नीरस होते पारिवारिक संबंध, बिखरते गृहस्थ जीवनों की झांकी दिखाने वाला यह नाटक बहुत गहरी बात कह जाता है।

3.5.4 अभिनेयता

नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पांच पृथक भूमिकाएं निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेंद्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढांचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है। इसी अनुभव पर बल देने के लिए कुछेक प्रदर्शनों में नाटक की शुरूआत के साथ एक सपाट कमरे में लगे मुखौटे को आलोकित करता था।

'आधे–अधूरे' का कार्य–स्थल एक मकान की बैठक है, जिसमें सोफे, कुर्सियां, अलमारी, किताबें, फाइलें आदि हैं। यह कमरा एक समय साफ–सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गयी है। क्राकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गयी हैं। परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में उस स्थायी तल्खी की गंध है, जो पांचों व्यक्तियों के मन में भरी हुई है– ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप... दम घोंटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।

यह नाटक एक टूटते हुए मध्यवर्गीय परिवार के बारे में है। इसके केंद्र में है सावित्री, तीन बच्चों की मां और एक नाकामयाब पुरुष की पत्नी। परिवार को बचाने के लिए सारे उतार–चढ़ाव का सामना करने के साथ–साथ वह संपूर्ण पुरुष की भी तलाश में है। उसका संपूर्ण मोहभंग, और उससे पैदा होने वाली मध्यवर्गीय अस्तित्व के स्तर पर हताशा, एक सुगठित स्थिति में उजागर हुई है जिसमें सावित्री के जीवन में आने वाले चार

पुरुषों का अभिनय एक ही अभिनेता से कराने की प्रभावी रंगमंचीय युक्ति का प्रयोग किया गया है।

टिप्पणी

मोहन राकेश, 'आधे–अधूरे' के माध्यम से नाट्य लेखन को कई दिशाएं प्रदान करते हैं, उदाहरणार्थ नाटकीय संघर्ष पैदा करने के लिये उन्होंने अतिनाटकीयता का सहारा न लेकर एक आम, साधारण विषय–वस्तु का चुनाव किया है।

'आधे–अधूरे' में मोहन राकेश द्वारा नाट्य संरचना की दृष्टि से अपनी लोक परंपरा से लिया गया सूत्रधार का प्रयोग, जो सभी चरित्रों का अभिनय करता है, आधुनिक हिंदी नाट्य लेखन में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस परंपरा का निर्वाह पूरे नाटक की मूल विषय–वस्तु के ताने–बाने में इतने कौशल के साथ किया गया है कि आरोपित न प्रतीत होकर नाटक के कथ्य का एक अनिवार्य अंग बन जाता है।

इस प्रकार 'आधे–अधूरे' की संरचना में सही अर्थों में यथार्थवादी भाषा, विषय–वस्तु, चरित्र चित्रण, ध्वनियां आदि का कुशलता से सामंजस्य किया गया है और इसी जटिल रूप का इस्तेमाल प्रस्तुति में किया गया है। प्रस्तुति में लोक परंपरा को आगे बढ़ाते हुए छः सदस्यों का कोरस भी शामिल किया गया है, जो सूत्रधार का विकसित रूप है। कोरूस चरित्रों की आन्तरिक भाषा को शब्द देता है तथा कई बार मंच निर्देश भी बोलता है। इस प्रकार नाटकीय स्थितियों पर अपनी प्रतिक्रिया तथा प्रबल मनोभावों के प्रति तटस्थ दृष्टि भी प्रदान करता है। अप्रिय एवं कर्कश संगीत का प्रयोग मात्र नाटकीय चरमोत्कर्ष के लिये ही नहीं है, बल्कि चरित्रों के जीवन में व्याप्त कटुता एवं कर्कशता को प्रकट करने के लिए है। संगीत, वातावरण की ध्वनियों से इतना जुड़ा हुआ है कि किसी चरित्र के स्वर से अथवा किसी वस्तु विशेष की आवाज से शुरू या खत्म होता है। कई स्थल पर यथार्थवादी मनोभावनाओं की अतिरंजना के लिये भी शुद्ध ध्वनियों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रस्तुति में घोर यथार्थवादी एवं अतिनाटकीय तत्वों का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया गया है जिसके माध्यम से नाटक का मूल कथ्य अपनी पूरी प्रखरता से उजागर होता है, जिसका संबंध एक मध्यवर्गीय परिवार की भयानक स्थिति, उनका झूठा दिखावा और पारिवारिक संबंधों की असफलताओं के सत्य का सामना न करने की नपुंसकता से है। 'आधे–अधूरे' हमारे यथार्थ का संपूर्ण प्रतिबिंब है तथा नाटककार की असमझौतावादी साफगोई की रोशनी में प्रकाशित चरित्रों में दर्शक अपने–आपको देखकर अंदर ही अंदर हिल उठता है।

3.6 आधे–अधूरे की नाट्यभाषा

मोहन राकेश की रंगदृष्टि का सबसे महत्वपूर्ण आयाम एक नई नाट्यभाषा की अनवरत तलाश है जो अपने समय के जटिल जीवन अनुभव को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त कर सके। नाट्यभाषा की बनावट की सही पहचान हिंदी नाटक को उनका सबसे बड़ा योगदान कहा जा सकता है। प्रसिद्ध नाटककार आइनेस्को की मान्यता है कि कलाकार भाषा को बदलकर ही पुराने कथानकों को नया रूप दे सकता है। उनके अनुसार चली

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. इस नाटक के प्रमुख पात्र जुनेजा पेशे से क्या हैं?
10. 'आधे–अधूरे' के कथानक का संघर्ष किस प्रकार का है?
11. 'आधे–अधूरे' के सभी पात्र किस संस्कृति से संक्रमित दिखाई देते हैं?
12. जब नाटक की नायिका सावित्री अपने किसी पुरुष मित्र को घर बुलाती है तो महेंद्रनाथ कहां रहता है?
13. नाटककार ने महेंद्रनाथ के माध्यम से किस प्रकार के पुरुष की छवि प्रस्तुत की है?
14. इस नाटक में सबसे सक्रिय पात्र कौन है?
15. सावित्री क्या चाहती है?

टिप्पणी

आती हुई भाषा आज के संश्लिष्ट अनुभव को व्यक्त करने के लिहाज से नाकाफी है अतः एक नई नाट्यभाषा की तलाश आवश्यक है। एक ऐसी भाषा जो दृश्य हो, जो मंच की भाषा हो, ज्यादा प्रत्यक्ष, ज्यादा विश्वसनीय और अपने प्रभाव में शब्दों से कहीं अधिक शक्तिशाली।

3.6.1 रंगमंच के अनुकूल शब्दों का चयन

हिंदी नाट्य साहित्य में नाटक एवं रचनात्मक भाषा के संबंध की पूरी निष्ठा के साथ तलाश एवं इस प्रक्रिया में एक नई नाट्य भाषा के विकास का प्रयास सर्वप्रथम राकेश में ही दिखाई देता है। साहित्य में भाषा के पक्ष को लेकर राकेश कितने जागरूक थे, यह 'बकलम खुद' में अभिव्यक्त उनके इस वक्तव्य से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है–

"अभिव्यक्ति के लिए भाषा से उलझने की समस्या हर लेखक के सामने आती है– अर्थात हर सचेत और अनुभूति प्रवण लेखक के सामने। समस्या नहीं आती तो उन लोगों के सामने, जो अनुभूति और चिंतन की दृष्टि से अंदर से बिल्कुल साफ हैं या केवल कुछ एक बेसिक अनुभूतियों और विचारों के दायरे में सोचते रहते हैं। उनके मन की हर बात पहले से ही किसी न किसी की कही और सोची हुई बात होती है। हजारों बार कही और सोची हुई बातों की कार्बन कॉपी तैयार करने में समस्या पैदा ही कहां होती है? जब एकाध विचार ओर दो–एक अनुभूतियों से आगे व्यक्ति का मन यात्रा ही न कर पाता हो तो उलझे हुए रास्ते पार करने की समस्या ही नहीं होगी, उसके लिए साधन ढूंढने की बात तो बाद में आती है।"

मोहन राकेश का उपर्युक्त वक्तव्य भाषा के संबंध में उनकी जागरूकता को स्पष्ट कर देता है। उन्होंने तब लिखना शुरू किया जब देश मोहभंग के काल से गुजर रहा था। स्वतंत्रता के बाद एक ओर देश का विभाजन जैसी राजनीतिक विपत्ति थी जिसके लाखों लोग शिकार हुए तो दूसरी ओर उससे भी अधिक दर्दनाक थी विभाजन के बाद की परिस्थिति एवं जीवन के सभी पहलुओं में बढ़ता पतन। इस मूल्यहीनता की स्थिति ने न केवल करोड़ों लोगों को प्रभावित किया बल्कि अधिकांश को अंदर से खोखला कर दिया। जाहिर है स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न हुई जीवन और अनुभूतियों की इस जटिलता को पारंपरिक भाषा पूरी प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त नहीं कर सकती थी। जो भाषा राकेश को विरासत में मिली थी, वह मुख्यतः प्रसाद की आभिजात्य भाषा थी। यह भाषा काव्यात्मक होते हुए भी समसामयिक जीवन के रंग को पकड़ पाने में पूरी तरह समर्थ नहीं थी। अतः एक ऐसी नाट्यभाषा की तलाश आवश्यक थी जो रंगानुकूल होने के साथ–साथ समसामयिक जीवन की जटिलता को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्ति दे सके।

एक शिल्पकार की तरह राकेश अपने शब्दों, वाक्यों और मुहावरों को निरंतर संशोधित, परिवर्तित करते रहते थे। वह 'शब्द' को रंगमंच का बुनियादी एवं अनिवार्य तत्व मानते थे, इसीलिए एक सटीक एवं रंगानुकूल नाटकीय शब्द की तलाश वे लगातार करते रहे। राकेश का यह कथन कि 'रंगमंच मूलतः एक श्रव्य माध्यम है', नाटक के संबंध में चली आ रही परंपरागत धारणा को बिलकुल छिन्न–भिन्न कर डालता है। लेकिन उनका यह वक्तव्य महज चौंकानेवाली कोई युक्ति नहीं है, बल्कि भाषा और शब्द को लेकर उनके द्वारा

टिप्पणी

किए गए गंभीर शोध पर आधारित है। अपने अप्रकाशित नाटक 'पैर तले की जमीन' में एक स्थान पर वह तीन भिन्न दृश्यों को एक दूसरे में घुलते हुए दिखाना चाहते थे। इसके लिए उनका फुटनोट इस प्रकार है–

"इन्हें थिएट्रिकली प्रतिष्ठित करो, शब्दों और ध्वनियों के द्वारा।"

राकेश का उपर्युक्त कथन नाटककार की इस मान्यता को स्पष्ट करता है कि शब्द और ध्वनियां ही रंगमंच की जान हैं, न कि बिंब, जैसा कि पारंपरिक रूप से समझा जाता रहा है। अपनी इस मान्यता को स्पष्ट करते हुए राकेश लिखते हैं–

"शब्दों और ध्वनियों को नाटकीय रंगमंच का आधार मानने का अर्थ बिंब का अस्वीकार नहीं है। अर्थ केवल इतना है कि इस माध्यम की आंतरिक निरंतरता शब्दों और ध्वनियों पर निर्भर करती है। सिनेमा मूलतः एक दृश्य माध्यम है जहां शब्दों और ध्वनियों की एक सहायक अतः गौण भूमिका है। वहां दृश्य की अपेक्षा के अनुसार शब्दों और ध्वनियों का संयोजन होता है और उस माध्यम की प्रगति को देखते हुए लगता है कि आगे चलकर उसकी आधारभूत विशेषता और रेखांकित होगी। इसके विपरीत रंगमंच मूलतः एक श्रव्य माध्यम है। रंगमंच में दृश्य की आपेक्षिक स्थिरता के बावजूद जो एक आंतरिक गति रहती है, वह शब्दों और ध्वनियों की निरंतरता से ही उपजती है, क्योंकि यहां जो 'देखा जाता है वह सुने जा रहे' का ही रूपांतर होता है।"

राकेश का उपर्युक्त वक्तव्य रंगमंच में शब्द की बुनियादी भूमिका को उद्घाटित करता है। उनके अनुसार दृश्य नाटक का अनिवार्य तत्व होते हुए भी वह अपने आप में स्वतंत्र नहीं है। वह शब्द की ही परिणति है। रंगमंच की इस शब्द निर्भरता के कारण प्रत्येक नाटककार की सफलता शब्दों और ध्वनियों के सार्थक संयोजन में निहित होती है। राकेश के अनुसार नाटक में अलग से दिए गए रंग निर्देश या प्रस्तुत की गई सामग्री उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती, जितना शब्दों और ध्वनियों का संयोजन, क्योंकि रंगमंच में बिंब का उद्भव शब्दों के बीच से ही होता है। उनके अनुसार किसी भी नाटक की सफलता नाटकीय प्रयोजन से युक्त शब्दों के सटीक प्रयोग पर निर्भर करती है। शब्दों का अतिरिक्त तथा अनपेक्षित प्रयोग वास्तविक रंग–सिद्धि में बाधक ही सिद्ध होता है। रंगमंच में शब्दों की इस महत्वपूर्ण भूमिका को उद्घाटित करते हुए राकेश लिखते हैं–

"रंगमंच की शब्द निर्भरता का अर्थ रंगमंच में शब्द की आधारभूत भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह माध्यम की सीमाओं में शब्दों के संयम से हो सकता है, उनके अतिरिक्त तथा अनपेक्षित प्रयोग से नहीं। शब्दों की बाढ़ से, या बिना नाटकीय प्रयोजन के प्रयुक्त शब्दों से, रंग–सिद्धि संभव नहीं, क्योंकि बिंब को जन्म देने के साथ–साथ उस बिंब से संयोजित रहने की संभावना भी शब्दों में होनी आवश्यक है।"

शब्दों और ध्वनियों को रंगमंच का बुनियादी तत्व मानने के कारण ही राकेश आजीवन नाटकीय शब्दों की तलाश में लगे रहे। उनके सभी नाटक रचनाकार की शब्द संबंधी मान्यता पर खरे उतरते हैं तथा नाटकीय संभावना से युक्त शब्दों के सटीक प्रयोग का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। राकेश की रचनाओं में पहली बार भाषा नाटककार के अतिरिक्त शब्द–मोह, नाटकीय दृष्टि से निरर्थक शब्दजाल के आग्रह और आलंकारिकता के लबादे

टिप्पणी

से सहसा मुक्त हुई है। यद्यपि अपने पहले दो नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'लहरों के राजहंस' में संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण नाट्य–समीक्षकों ने राकेश को प्रसाद की परंपरा का वाहक माना है, लेकिन कई मायनों में राकेश की नाट्यभाषा, प्रसाद की नाट्यभाषा से बुनियादी रूप से भिन्न है। प्रसाद के नाटकों में काव्यात्मकता और अलंकारप्रियता कई स्थानों पर नाट्यभाषा को बांधती हुई चलती है एवं रंग–सिद्धि में बाधा उत्पन्न करती है वहीं राकेश की भाषा साहित्यिक होते हुए भी नाटकीय संभावना से युक्त है एवं आम बोलचाल के काफी निकट है।

'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने एक अनूठा प्रयोग यह किया कि एक मुख्य पुरुष को पांच भूमिकाएं करने के लिए नियुक्त किया। पहले वह काले सूट वाला सूत्रधार बनता है फिर एक के बाद एक ऊपरी वस्त्र बदल–बदल कर रंगमंच पर आता है– महेंद्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा बनकर। किन्नी, बिन्नी, अशोक की वेशभूषा में परिवर्तन नहीं होता केवल सावित्री दूसरे अंक के लिए साड़ी बदलती है। यह खुले एवं बंद नाट्यगृहों दोनों में प्रभावशाली तरीके से मंचित होने वाला नाटक है। मध्यवर्गीय अभावग्रस्त घर को दिखाने के लिए टूटा–फूटा सामान और फर्नीचर प्रयोग किया गया। पात्रों को बिना मेकअप के प्रस्तुत किया गया। ध्वनि, प्रकाश और संवाद का संयोजन अद्‌भुत था। धाराप्रवाह बोले जाने वाली बातों की गहनता भी छूती है और धारावाहिक रूप से बोले जाने वाले छोटे–छोटे वाक्यों का प्रभाव भी अमिट बना रहता है।

मोहन राकेश ने मंच और पात्रों की चमक–दमक के स्थान पर यथार्थ प्रस्तुति देने का प्रयास किया है जो मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष और अनुभूतियों को जीवंत बनाता है। मोहन राकेश प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। नाटक के कथ्य को आम जनता तक पहुंचाने के लिए उन्होंने सरल, आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। अतः जहां–जहां इस नाटक का मंचन हुआ वहां उसने सफलता, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त की। हिंदी नाटककार समकालीन स्थितियों और जीवन से जुड़े चरित्रों को लेकर एक सफल नाटक लिख सकता है, यह बात मोहन राकेश ने सिद्ध कर दिखायी। तीन बच्चों की मां सावित्री का चरित्र दर्शकों को गहराई तक झकझोर देता है। असफल, नाकारा पति महेंद्रनाथ, और सावित्री की भटकन दर्शकों को आम जीवन के बीच ले जाती है।

कलकत्ता के श्यामानंद जालान लिखते हैं–" 'आधे–अधूरे' मोहन राकेश द्वारा रचित एक जीवन्त नाट्य रूप और हिंदी नाटक लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम बिंदु है।" नाटक में उपस्थित दृश्य, जैसे सामानों पर छाई धूल और सावित्री का उसे झाड़ना संकेतात्मक है कि रिश्तों पर गलतफहमी की धुंध पड़ गयी है जिसे सावित्री साफ करने का प्रयास करती है। फटी पत्रिकाएं, दीमक लगी फाइलें, टूटी प्लेटें, बिखरा सामान, घर में छाई कुंठा, तनाव और उदासी को व्यक्त करते हैं। कलात्मक दृष्टि से देखने वालों ने इसे दोष भी कहा किंतु यथार्थ को जानने–परखने की दृष्टि से लैस दर्शकों की भीड़ ने राकेश जी की प्रयोगधर्मिता को सराहा। आधे–अधूरे अपने युग की सफलतम कृति है, जिसे दर्शनीयता और पठनीयता दोनों दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है।

3.6.2 भाषा शैली

टिप्पणी

भाषा और संवाद का विकास इस नाटक में शब्दों के चुनाव और विन्यास के रूप में दिखाई देता है। अभिव्यक्ति, बल्कि निश्चित और प्रभावकारी ढंग से संप्रेषण की निरंतर ललक। अर्थ और ध्वनि दोनों के माध्यम से न सिर्फ विचार बल्कि भावावेग के संप्रेषण की भी। 'आधे अधूरे' की प्रभावी भाषा उसी खोज की उपलब्धि है, जो 'लहरों के राजहंस' के प्रथम लेखन के बाद शुरू हुई थी और उस नाटक के संशोधित रूप में मौजूद है, और जो 'आधे–अधूरे' में खिलकर आयी है।

'आधे–अधूरे' की बहुत बड़ी विशेषता नाटक की रंगमंच की भाषा के प्रति गहरी समझ है। रंगमंच, दृश्य एवं श्रव्य तत्वों का माध्यम है, और इस क्षेत्र में मोहन राकेश, नई, जमीन रचते हैं। नाटकीय उपलब्धियों के लिए अमूर्त काव्य आदि साहित्यिक रुढ़ियों का मोह छोड़कर 'आधे–अधूरे' रोजमर्रा के जीवंत यथार्थ को प्रस्तुत करता है। यह यथार्थ अपने आप में जटिल है जो कि सूत्र में बंधना या परिभाषित होना स्वीकार नहीं करता है किंतु साथ ही अपनी लगातार परिवर्तनशीलता तथा रहस्यात्मक विशेषता के कारण उत्तेजक है। यह अपरिभाषित एवं जटिल यथार्थ केवल इस नाटक के कथ्य का ही नहीं बल्कि इसमें प्रयुक्त भाषा का भी निर्धारण करता प्रतीत होता है। इस प्रकार कथ्य एवं रूप ने एकाकार होकर इस नाटक को रूप दिया है जिसके आधार पर इसे आधुनिक यथार्थवादी नाट्य लेखन में 'क्लासिक' की संज्ञा दी जा सकती है।

नाटक की भाषा सादी, सच्ची और एकसमान तनाव–भरी है। इसमें एक ओर जहां बोलचाल की भाषा की लय और उसकी बुनावट है, वहीं दूसरी ओर सहज प्रवाह एवं स्वतः स्फूर्तता भी है। अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने वाले ध्वनि और मौन के समन्वय की गहरी समझ रखने वाला केवल एक श्रेष्ठ रचनाकार ही वह उपलब्ध कर सकता था जो राकेश ने किया है। संभवतः मुखर मौन में भी नाटक–तत्व अधिक रहता है– सघन संवाद की अपेक्षा अनुच्चरित विचारों में। जैसा कि संगीत में है जो मौन ध्वनि की व्यवस्था का एक भाग होता है। 'नाटकीय शब्द' के लिए राकेश का सम्मोहन उनकी खोज का एक हिस्सा है– अस्तित्व के जटिल, गहरे एवं सूक्ष्म स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए, और उस भाषा को पकड़ने के लिए, जिसमें हमारे समय के विखंडित व्यक्तियों के प्रामाणिक स्वर बोल सकें।

इस नाटक की शक्ति घोर साहित्यिक एवं कृत्रिम भाषावली से मुक्त है। यह वो सहज भाषा है जो हम रोजमर्रा की जिंदगी में बोलते हैं, किंतु जिसमें हमारे सभी अनकहे भावों की कसमसाहट मौजूद है और प्रकटतः बिना काव्यात्मक होते हुए भी जिसमें काव्य का अनुपम सौंदर्य है। संप्रेषणीयता के साथ–साथ भाषा में ध्वनियों की सजगता भी शामिल है। ध्वनियां, जैसे अशोक की कैंची की ध्वनि, टिनकटर, कप–प्लेटों की या महेंद्र के फाईल झटकने की आवाजें आदि जो एक ऐसा वातावरण निर्मित करती हैं जिसमें चरित्रों की आंतरिकता मुंह से बोलने की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठती है। इन आवाजों और कुछ दृश्य बिंबों के अतिरिक्त मोहन राकेश ने, अपने मंच–निर्देश के अनुसार कुछ अन्य रोजमर्रा के हाव–भावों का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से किया है– जैसे सावित्री टेबल कवर को खींच कर उसमें अपना मुंह छिपा लेती है या परेशान सी अपने पर्स को टटोलती है। इन भावों में चरित्र की आंतरिक वेदना एवं खोयापन अपनी पूरी शक्ति एवं समग्रता से प्रकट होता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

16. मोहन राकेश 'शब्द' को किसका बुनियादी एवं अनिवार्य तत्व मानते थे?
17. मोहन राकेश का कौन–सा कथन नाटक के संबंध में चली आ रही परंपरागत धारणा को छिन्न–भिन्न कर डालता है ?
18. शब्दों और ध्वनियों को रंगमंच का बुनियादी तत्व मानने के कारण मोहन राकेश आजीवन किसकी तलाश में रहे?
19. कथ्य एवं रूप में एकरूप होने के कारण 'आधे–अधूरे' को किसकी संज्ञा दी जा सकती है?
20. अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने के लिए मोहन राकेश ने क्या किया है?

टिप्पणी

गतिविधि

मोहन राकेश की प्रयोगधर्मिता पर अपने मित्रों के साथ मिलकर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

क्या आप जानते हैं?

मोहन राकेश को 'आधे–अधूरे' और 'आषाढ़ का एक दिन' की रचना के लिए सन् 1968 में 'संगीत नाटक अकादमी' भारत सरकार द्वारा सम्मानित किया गया।

3.7 सारांश

'आधे–अधूरे' महानगरीय आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त बिखराव एवं संत्रास की कहानी है। यह स्त्री–पुरुष के बीच लगाव एवं तनाव, आसक्ति एवं विरक्ति का दस्तावेज है, जो आडंबर हीन, अकृत्रिम शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसका कथानक एक मध्यवर्गीय घर पर केंद्रित है। इस घर में एक स्त्री सावित्री, उसका पति महेंद्रनाथ तथा तीन बच्चे बिन्नी और किन्नी बेटियां तथा एक बेटा अशोक रहते हैं। ये सभी सदस्य साथ रहते हुए भी एक–दूसरे से कटे हुए, एक–दूसरे को नापसन्द करते हुए, मन से दूर–दूर हैं। सावित्री इस कथा की धुरी है, मुख्य नायिका है। यह संघर्ष करती हुई, अकेली नौकरी करके परिवार का भरण–पोषण करती हुई सहानुभूति की पात्र लगती है लेकिन वहीं दूसरी ओर अनेक पुरुषों के साथ संबंध स्थापित करती हुई वह चारित्रिक दृष्टि से कमजोर महिला दिखाई देती है। पति महेंद्रनाथ व्यवसाय में सब कुछ गंवाकर बेरोजगार घर में बैठा रहता है। लड़का अशोक भी नकारा है। वह न शिक्षा में दिलचस्पी लेता है न व्यवसाय में। एक लड़की से प्रेम करता है और घर की चीजें उठा–उठा कर उसे उपहार में दे देता है। फिल्मी पत्रिकाएं पढ़ना, तस्वीरें काटकर रखना और आवारागर्दी करना, यही उसके काम हैं। वह मां के व्यवहार से और पिता से भी असंतुष्ट खीझ से भरा दिखाई देता है। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज नामक युवक के साथ भागकर विवाह कर लेती है। लेकिन विवाह के बाद भी उसका असंतोष और भटकन समाप्त नहीं होती। वह बार–बार भागकर मायके आ जाती है। मनोज अच्छा व्यक्ति है लेकिन पहले वह सावित्री का अर्थात बिन्नी की मां का प्रेमी या मित्र हुआ करता था। सावित्री के लिए ही घर आता था, सावित्री उस अपने से आयु में छोटे युवक के भीतर भी अपनी संतुष्टि को तलाशती थी। उसे आश्चर्य हुआ जब वह उसकी बेटी को लेकर भाग गया और फिर उसके साथ विवाह करके गृहस्थी बसा ली। बिन्नी यह नहीं समझती थी कि उसके पति के साथ उसकी मां के संबंध कैसे थे। सावित्री की अतृप्त इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के संस्कार बिन्नी में भी हैं। वह भी सदैव बेचैन रहती है। मनोज चूंकि मां और बेटी दोनों के निकट रहा है इसलिए वह दोनों की असंतोषी प्रवृत्ति को जानता है। अतः बिन्नी जब भी बहस करती है, वह कहता है कि– "तुम इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हो जो तुम्हें

टिप्पणी

स्वाभाविक नहीं रहने देगी।" बिन्नी मनोज की बात को सच मानती है, वह जानना चाहती है कि वह ऐसी क्या चीज उसके भीतर है जो उसे स्वाभाविक नहीं रहने देती। वह हर काम मनोज की इच्छा के विरुद्ध करना चाहती है ताकि उसे चोट पहुंचा सके। मनोज को दुखी देखकर, उसे चोट पहुंचाकर उसे शांति मिलती है। वह नौकरी करना चाहती है क्योंकि मनोज को यह पसंद नहीं है। वह अपने लम्बे बाल कटवाना चाहती है क्योंकि वे मनोज को पसंद हैं। वह सावित्री से पूछती है कि–दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा वे एक–दूसरे से अजनबी होते जाते हैं क्या?

छोटी बेटी किन्नी स्कूल में पढ़ती है। कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। न उसके कपड़ों, मोजे, फीस, पढ़ाई के बारे में सोचता। वह लावारिस की तरह घूमती है। भाई की पत्रिकाएं पढ़ती है। अपनी पड़ोस की, स्कूल की लड़कियों से प्रेम–संबंधों की बातें करती है। एक तरह से उसका मानसिक और बौद्धिक पतन आरंभ हो गया है। वह चाहती है, उसे आम बच्चों की तरह माता–पिता, भाई–बहन का प्यार मिले, सभी उसका ध्यान रखें लेकिन यह अभाव उसे विकृत मनोवृत्ति वाला बना देता है। आर्थिक अभाव के साथ–साथ आपसी सौमनस्य का अभाव उस घर में केवल तनाव और टूटन को जन्म देता है। और दिलचस्प बात यह कि सबके आरोपों का केंद्र बिंदु सावित्री बनती है जो घर की एक मात्र कमाने वाली सदस्य है।

महेंद्रनाथ सावित्री से और अपने परिवार से बहुत प्रेम करता है। लेकिन अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने में वह अक्षम है। उसके पास निर्णय लेने की शक्ति नहीं है, मित्रों की बातों में आकर वह व्यावसायिक क्षेत्र में सब कुछ गंवा बैठा। वह मित्रों द्वारा ही ठगा गया, ऐसा सावित्री मानती है। मित्रों की बातों से प्रोत्साहित होकर ही वह घर में सावित्री के साथ दुर्व्यवहार करता है। वह नकारा है। गृह स्वामी होते हुए भी उसकी हैसियत घर में एक 'रबर के टुकड़े' के समान या नौकर के समान है। वह सावित्री की कमाई पर पलता है। सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है। और यदा–कदा उन मित्रों के साथ सावित्री के अनैतिक संबंधों की चर्चा करके मन की भड़ास निकालता रहता है। अपने चोट खाए आत्मसम्मान को बचाने के प्रयत्न में कभी–कभी घर छोड़कर चला जाता है और दो–तीन दिन तक नहीं लौटता।

सावित्री दिन भर नौकरी करने के बाद शाम को घर लौटती है तो उसे घर का सामान बिखरा हुआ, अस्त–व्यस्त मिलता है, पति और बच्चे भी घर पर उसकी प्रतीक्षा करते नहीं मिलते तो वह आहत होती है कि न बच्चे और न पति उसकी प्रतीक्षा में मिलते हैं। न घर, घर जैसा व्यवस्थित मिलता है। वह थकी हुई अवस्था में बड़बड़ाती जाती है और घर को व्यवस्थित करती है। पति और बेटे को नौकरी मिल सके इसलिए वह अपने बॉस से घनिष्ठ संबंध बनाती है, उसे घर बुलाती है और चाहती है कि घर के लोग उसका स्वागत करें। लेकिन उसके बॉस या पुरुष मित्रों का इस तरह घर आना, सावित्री के साथ घूमना बच्चों को पसंद नहीं है, न महेंद्रनाथ को। वे जुनेजा, सिंघानिया, मनोज आदि के साथ सावित्री के संबंधों को अनैतिक और स्वार्थ प्रेरित मानते हैं। अशोक सावित्री से व्यंग्यात्मक वाद–विवाद करता है और स्पष्ट कर देता है कि उसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। इन बड़े बड़े लोगों के आने से उन्हें अपमान और हीनता का बोध होता है।

टिप्पणी

सावित्री आहत स्त्री है। वह बेटे द्वारा की गई उपेक्षा और तिरस्कार से आहत होकर निर्णय लेती है कि वह घर छोड़कर चली जाएगी। इस घर की चिंता नहीं करेगी केवल अपने सुखों और खुशियों का ध्यान रखेगी। सावित्री एक महत्वाकांक्षी स्त्री है। जीवन से उसे अनंत और बहुमुखी अपेक्षाएं हैं। वह सब कुछ, बहुत शीघ्र और एक साथ पा लेना चाहती है। यही कारण है कि महेंद्रनाथ से विवाह करने के बाद जब वह उसकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा तो उसे उससे वितृष्णा हो गई। वह कभी जुनेजा में सब कुछ ढूंढने लगी, कभी सिंघानिया, कभी जगमोहन और कभी मनोज में–। वह अतृप्त स्त्री है। मन की अतृप्ति उसे अमर्यादित बना देती है। पर पुरुष के साथ घूमना, उसके साथ जीवन बिताने की योजना बनाना और स्वयं को कुटिलता पूर्वक परिवार के सुख–समृद्धि का कारण बता कर उसकी आड़ लेना उसकी चारित्रिक दुर्बलता को दिखाता है। महेंद्रनाथ की बेकारी उसे और भी कटु बना देती है। एक ओर घर चलाने का असह्य बोझ है और दूसरी ओर जिंदगी में सब कुछ न पा सकने की तीखी कसक। सावित्री कहती है कि वह अपनी बची खुची जिंदगी को एक पूरे, संपूर्ण पुरुष के साथ बिताना चाहती है। लेकिन यह उसकी भूल है क्योंकि वह नहीं जानती कि संपूर्णता की तलाश ही बेमानी है।

नाटक के अंत में जुनेजा और सावित्री के बीच का संवाद न केवल सावित्री को आईना दिखाता है बल्कि सावित्री अपनी बर्बाद गृहस्थी का आरोप जुनेजा पर मढ़ देती है। जुनेजा उससे कहता है कि– तुम्हारी महेंद्र के संबंध में जो मानसिकता है कि वह अपूर्ण पुरुष है, गलत है। तुम जिस तरह अतृप्त, असंतुष्ट हो वह सोच और भटकन तुम्हारी प्रवृत्ति है। तुम्हारा विवाह महेंद्र से न होकर जगमोहन से, शिवजीत से, जुनेजा, सिंघानिया या मनोज किसी से भी होता, अंततः उस पुरुष के संबंध में तुम्हारी यही धारणा होती। क्योंकि तुम सब कुछ एक साथ, एक व्यक्ति में पाना चाहती हो, जो संभव नहीं है। कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता। हर व्यक्ति को हर चीज एक साथ नहीं मिलती। सब को सब कुछ नहीं मिलता लेकिन तुम सुख, शांति को अपने भीतर न तलाशकर बाहर तलाशती हो इसलिए तुम भटकती रही हो। एक पुरुष से दूसरे पुरुष और दूसरे से तीसरे तक की यात्राओं का कोई अंत नहीं है। महेंद्रनाथ सब कुछ जानते हुए भी सावित्री के पास लौट आता है। वह घर से प्रेम करता है, एक ऐसा घर जिसमें घर जैसी स्निग्धता, सुरक्षा, शांति के भावों और उष्मा का लोप है। जहां बच्चे माता–पिता का सम्मान नहीं करते। जहां पिता बच्चों को पिता जैसी सुरक्षा, प्यार और सुविधाएं नहीं दे पाता। आलसी और कायर पिता जो केवल बड़बड़ाता है, सिगरेट पीता है और घर से कई–कई दिन गायब रहता है, को बच्चे अपना अभिभावक कैसे मान सकते हैं? मां पराए पुरुषों के साथ घूमती है और 'घर का बोझ ढो रही हूं' इस बात का रोना रोती रहती है। बच्चों के जीवन उनके संस्कारों और शिक्षा की ओर उसका ध्यान ही नहीं है। घर के इस तनाव, द्वंद्व और कटुता से भरे वातावरण का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। छोटी लड़की भी बिगड़ती जा रही है। बेटा पढ़ाई छोड़कर आवारागर्दी करता है और बड़ी बेटी ने भागकर विवाह कर लिया। छोटी बेटी की जुबान कैंची की तरह चलती है। वह बदमिजाज होती जाती है। सावित्री को थोड़ी सहानुभूति केवल बड़ी बेटी से मिलती है।

टिप्पणी

यह घर आंतरिक स्तर पर टूटा हुआ है। हर कोई संबंधों के स्तर पर अधूरा है। संतुष्टि और पूर्णता की तलाश में भटक रहा है। आर्थिक स्थिति इस टूटन के लिए उत्तरदायी तो है ही साथ ही बड़ा हाथ मानसिकता का भी है। सावित्री अपनी कमजोरियों की वकालत करती है। वह स्वयं को सही सिद्ध करती है। महेंद्रनाथ के लिए उसका कथन है कि–"आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो? जब से मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है। वह खुद एक आदमी का आधा–चौथाई भी नहीं है।"

सावित्री महेंद्रनाथ से कभी संतुष्ट नहीं रही। वह कहती है कि आदमी घर बसाता है अपने अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए, लेकिन महेंद्रनाथ सदा मित्रों के अधूरेपन को भरने की चीज बना रहा। व्यक्तित्वहीन पति के कारण उसके अंदर खीझ, ऊब और बेचैनी बढ़ती जाती है तथा वह महेंद्रनाथ से बेहतर इनसान खोजने के क्रम में कभी जगमोहन से निकटता बढ़ाती है, कभी सिंघानिया तो कभी जुनेजा से। महेंद्रनाथ को सावित्री के विभिन्न पुरुषों से संबंध की जानकारी है अतः समय–समय पर व्यंग्य करके वह अपनी खीझ व्यक्त करता रहता है।

मोहन राकेश ने स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है। महेंद्रनाथ को दब्बू और नाकारा दिखाया गया है। इस तरह घर की आर्थिक स्थिति की डोर सावित्री के हाथ में है। महानगर हों या गांव, आर्थिक समस्या मानव जीवन की प्रमुख समस्या है जो जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करती है। शिक्षा, रहन–सहन, आचार–विचार सभी इससे प्रभावित होते हैं। आधे–अधूरे के पात्रों को विकृत आचार–विचार वाला बनाने में इस समस्या की मुख्य भूमिका है। यदि महेंद्रनाथ एक जिम्मेदार कमाऊ पति होता तो सावित्री की नौकरी का उपयोग उसके मनोरंजन और ऐशो–आराम के लिए होता, घर चलाने के लिए नहीं। बच्चों की शिक्षा ठीक से हो पाती। बच्चों के भीतर अभावों से उत्पन्न क्रोध, खीझ और हीनता की भावना नहीं होती। लेकिन पूरा दोष आर्थिक स्थिति को ही नहीं दिया जा सकता क्योंकि बहुत गरीबी में जीवन बिताने वाले भी प्यार और सुख से रहते देखे जाते हैं।

दरअसल महानगरीय आधुनिक सभ्यता की देन है– असीम महत्वाकांक्षाएं, असंतोष, द्वंद्व, तनाव, कुंठा, अतृप्ति, भटकाव। यही सब कुछ सावित्री, बिन्नी, किन्नी, अशोक और महेंद्र में है। वे सभी असंतुष्ट और अधूरे हैं। सभी सुख और संतुष्टि के लिए गलत रास्तों का प्रयोग कर रहे हैं। कथा पर दृष्टि डालें तो सावित्री का दोष अधिक दिखाई देता है लेकिन दूसरी ओर आर्थिक स्थिति ठीक करने का संघर्ष करने वाली एक मात्र सदस्य वह है जिससे घर का कोई भी सदस्य सहानुभूति नहीं रखता, सिवाय बिन्नी के। अशोक का उस पर आरोप लगाना और कटु संवाद उसकी कृतघ्नता को दर्शाते हैं जो प्रवृत्ति वर्तमान युवाओं में अधिकतर देखी जा रही है। नाटक में पाश्चात्य संस्कृति का संक्रमण दिखाई देता है जहां सभी अपने–अपने सुख की खोज में भटक रहे हैं। मर्यादाहीन बच्चे, गरिमाहीन माता–पिता और संस्कारहीन घर, जो घर कम धर्मशाला अधिक लगता है।

टिप्पणी

आधुनिक परिवेश को अभिव्यंजित करता यह नाटक मोहन राकेश की अनुपम कृति है जो मन पर अमिट प्रभाव छोड़ता है। तथापि विडम्बना यह है कि नाटक का एक भी पात्र ऐसा नहीं है, जिसका स्वभाव और व्यवहार अनुकरणीय हो। इन पात्रों से केवल यही सीखा जा सकता है कि मनुष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **रुतबा** : पदवी।
- **शिकंजा** : पकड़/गिरफ्त।
- **महसूस** : अनुभव करना।
- **आत्मकेंदित** : स्वयं में केंद्रित।
- **वर्चस्व** : बोलबाला।
- **बदमिजाज** : चिड़चिड़े स्वभाव वाला।
- **अकर्मण्यता** : नकारापन, निकम्मापन।
- **अभिनेयता** : अभिनय किये जाने योग्य।
- **दिग्दर्शक** : दिशाओं का ज्ञान कराने वाला।
- **अभ्यागत** : अतिथि, साधु–संन्यासी, सामने आया हुआ।

3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सावित्री
2. सावित्री
3. चार
4. असमंजस की
5. हिंदी रंगकर्म को
6. 1958
7. मौलिक रंगदृष्टि की तलाश पर
8. हल्दी, चंदन और गेरुए
9. वकील
10. अधूरी जिंदगी को पूरा करने का
11. पाश्चात्य संस्कृति
12. घर से बाहर चला जाता है
13. महत्वाकांक्षी एवं अकर्मण्य
14. सावित्री
15. पूर्णता
16. रंगमंच का
17. 'रंगमंच मूलतः एक श्रव्य माध्यम है'
18. नाटकीय शब्दों की
19. क्लासिक
20. ध्वनि और मौन का समन्वय

टिप्पणी

3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. रंगमंच की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटकों की तुलना जयशंकर प्रसाद से करते हुए टिप्पणी लिखिए।
2. 'आधे–अधूरे' नाटक के कथानक की बनावट पर अपने विचार को प्रस्तुत कीजिए।
3. इस नाटक की सबसे सक्रिय पात्र सावित्री के संघर्ष पर एक निबंध लिखिए।
4. 'आधे–अधूरे' नाटक के आधार पर एक पति एवं पिता की भूमिका में 'महेंद्रनाथ' के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. बिन्नी और किन्नी पात्रों के माध्यम से नाटककार क्या कहना चाहता है? समझाइए।
6. 'आधे–अधूरे' में विद्यमान युग–बोध की समीक्षा कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित अवतरणों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   (क) बड़ी लड़की: मेरा अपना घर ..... इस घर में?

   (ख) असल बात इतनी है कि ..... नजर आता ..... और तुम
2. आधे–अधूरे में विद्यमान आधुनिकता बोध का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
3. 'नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ लिखता है, उसे आंख मूंदकर अपनी कल्पना के रंगमंच पर घटित होते हुए भी देखे'– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश के रंगमंचीय प्रयोगों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
4. पात्र एवं चरित्र–चित्रण की दृष्टि से 'आधे–अधूरे' की समीक्षा कीजिए।
5. अभिनेयता की कसौटी पर 'आधे–अधूरे' नाटक की विशेषताओं का विस्तार से विवेचन कीजिए।

टिप्पणी

6. आधे–अधूरे की नाट्यभाषा का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
7. 'आधे–अधूरे' नाटक वर्तमान जीवन शैली की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। स्पष्ट कीजिए?

3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. मीना पिंपलापुरे, *मोहन राकेश का नारी संसार,* प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, 1987
- संपादक – नेमिचंद जैन, *मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक,* राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1999
- डॉ. नगेंद्र, *आधुनिक हिंदी नाटक,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- बच्चन सिंह, *हिंदी नाटक,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
- गिरीश रस्तोगी, *मोहन राकेश और उनके नाटक,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- डॉ. जयदेव तनेजा, *मोहन राकेश: रंगशिल्प और प्रदर्शन,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

टिप्पणी

इकाई 4 निबंध

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 हृदय – बालकृष्ण भट्ट
  4.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
  4.2.2 हृदय–मूल पाठ
  4.2.3 बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली
  4.2.4 हृदय : प्रतिपाद्य
  4.2.5 हृदय : समीक्षात्मक अध्ययन
4.3 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था – रामचंद्र शुक्ल
  4.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
  4.3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था–मूल पाठ
  4.3.3 निबंध शैली
  4.3.4 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : प्रतिपाद्य
  4.3.5 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : समीक्षात्मक अध्ययन
4.4 साहित्यकारों का दायित्व – हजारी प्रसाद द्विवेदी
  4.4.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
  4.4.2 साहित्यकारों का दायित्व–मूल पाठ
  4.4.3 निबंध शैली
  4.4.4 साहित्यकारों का दायित्व–प्रतिपाद्य
  4.4.5 साहित्यकारों का दायित्व–समीक्षात्मक अध्ययन
4.5 जीवन अपनी देहरी पर – विद्यानिवास मिश्र
  4.5.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
  4.5.2 जीवन अपनी देहरी पर–मूल पाठ
  4.5.3 निबंध शैली
  4.5.4 जीवन अपनी देहरी पर–प्रतिपाद्य
  4.5.5 जीवन अपनी देहरी पर–समीक्षात्मक अध्ययन
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

निबंध के माध्यम से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुंचा सकता है। हिंदी निबंध लेखन का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। निबंध लेखन के प्रारंभिक काल में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है। उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नये प्रयोग किए किंतु निबंधों का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहां एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिंदी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल

टिप्पणी

का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिंदी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। इस इकाई में चार प्रमुख निबंधकारों बालकृष्ण भट्ट, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के चयनित निबंधों को प्रस्तुत किया जा रहा है। ये निबंधकार अपने–अपने युग के हस्ताक्षर रहे हैं।

बालकृष्ण भट्ट अपने युग के प्रमुख निबंधकार हैं। उन्होंने लगभग एक हजार निबंध लिखे हैं। उन्होंने समाज, साहित्य, धर्म, संस्कृति, रीति, प्रथा, भाव, कल्पना सभी क्षेत्रों से विषयों का चयन किया है। भट्ट जी के निबंधों में हास्य–विनोद के साथ कल्पना, भावना और वैचारिकता भी पाई जाती है। उनकी भाषा प्रायः बोलचाल के समीप है। उन्होंने *'चारुचरित्र' 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', 'चरित्रपालन', 'प्रतिभा', 'आत्मनिर्भरता',* जैसे विचारात्मक निबंध, *'आंसू', 'मुग्ध माधुरी', 'पुरुष अहेरी की स्त्रियां अहेर हैं', 'प्रेम के बाग का सैलानी'* आदि भावात्मक निबंध, *'संसार–महानाट्य शाला', 'चंद्रोदय', 'शंकराचार्य'* और *'नानक'* जैसे वर्णनात्मक निबंध, *'आंख', 'नाक', 'कान', 'बातचीत'* जैसे सामान्य विषयों तथा *'इंगलिश पढ़ै सो बाबू होय', 'दंभाख्यान', 'अकिल अजीरन रोग'* जैसे व्यंग्य–विनोदपरक निबंध लिखे। सामाजिक समस्याओं पर लिखे गए निबंध हैं– *'बालविवाह', 'स्त्रियां और उनकी शिक्षा', 'महिला स्वातंत्र्य'* आदि। यहां उनके द्वारा रचित 'हृदय' निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध–साहित्य को एक नई दृष्टि और नया जीवन प्रदान किया। वे अपने युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। शुक्ल जी हिंदी भाषा के बेजोड़ पारखी थे। शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों को वे अच्छी तरह समझते थे। शुक्ल जी ने विचारों के संप्रेषण के लिए संस्कृत, फारसी–उर्दू और बोलचाल की शब्दावली अपनाई है। उन्होंने लोकोक्तियों, मुहावरों तथा लक्षणाओं के नूतन एवं बहुविध प्रयोगों द्वारा एक ओर हिंदी गद्य को व्यंजक बनाया और दूसरी ओर चित्र–विधान में सहायता देने वाली समर्थ भाषा का निर्माण किया। शुक्ल जी ने विषय, भाषा और शैली, सभी दृष्टियों से हिंदी निबंधों को उत्कृष्ट बनाया। शुक्ल जी ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे जो 'चिंतामणि' के तीन भागों में संकलित हैं। उनकी प्रवृत्ति गंभीर विवेचन और तीखे व्यंग्य की रही है। यही कारण है कि निबंधों में उनका चिंतक और मानवतावादी रूप उभरा है। उन्होंने *'भय', 'क्रोध', 'श्रद्धा'* और *'भक्ति', 'घृणा', 'करुणा', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'उत्साह',* आदि विभिन्न मनोभावों पर दस निबंध लिखे जिनमें उन्होंने इन मनोभावों के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण किया। शुक्ल जी ने साहित्य के गंभीर पक्षों पर भी लिखा। जैसे– *कविता क्या है', 'साधारणीकरण', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', 'व्यक्ति–वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप'* आदि। ऐसे निबंधों में गंभीर चिंतन, सैद्धांतिक विवेचना और तर्कपूर्ण व्याख्या तो मिलती ही है, भावुक हृदय के दर्शन भी होते हैं। यहां उनके द्वारा रचित *'काव्य* में लोकमंगल की साधनावस्था' निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंधकारों में प्रमुख स्थान है। ललित निबंधकार की भाषा में तरलता रहती है। वह गहरे विश्लेषण, उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य–रचना से बचता है। ललित निबंधों में रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है। द्विवेदी जी के निबंधों में मानवतावादी जीवनदर्शन और भावुक हृदय के दर्शन होते हैं। वे

टिप्पणी

अध्ययनशील प्रवृत्ति के थे। उन्होंने संस्कृत के प्राचीन साहित्य के साथ–साथ पालि, अपभ्रंश और बांग्ला भाषाओं के साहित्य तथा मध्यकालीन हिंदी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था, लेकिन उनकी दृष्टि आधुनिक थी। इसीलिए उनके निबंधों में पांडित्य के साथ–साथ नवीन चिंतन दृष्टि भी मिलती है। द्विवेदी जी ने अपनी रचना को विचारों से बोझिल होने नहीं दिया बल्कि भावानुकूलता के आवेग में विचारों को प्रस्तुत कर उसे नया रूप प्रदान किया है। उनकी खूबी यह है कि विचार, तर्क और भाव के गठन में कहीं भी बिखराव और शैथिल्य नहीं आ पाता। द्विवेदी जी ने अपनी रचना प्रणाली द्वारा व्यक्तिपरक निबंधों का स्वरूप संगठित किया। उनके निबंधों की भाषा लचीली है। वे देशज शब्दों के साथ संस्कृत के प्रचलित और अप्रचलित शब्दों का सामंजस्य भी बैठा लेते हैं। उनका वाक्य–विन्यास भी ललित एवं भावपूर्ण गद्य के अनुरूप है। उनके प्रमुख निबंध–संग्रह *'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता'* आदि हैं। द्विवेदी जी के निबंधों के विषय समाज के बीच से लिए गए होते हैं और उनकी चिंता राष्ट्रीय होती है। यहां उनके द्वारा रचित 'साहित्यकारों का दायित्व' निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा और साहित्य के विद्वान हैं। किंतु लोक संस्कृति और लोक साहित्य में भी वे गहरी पैठ रखते हैं। इसलिए उनके निबंधों में पांडित्य (शास्त्र ज्ञान) के साथ–साथ लोक संस्कृति का भी सम्मिलन हुआ। निबंधों की शैली भावपूर्ण और काव्यमय है तथा भाषा भी वैसी ही काव्यमय और सरस है। भाषा में संस्कृत के ललित शब्दों का प्रयोग हुआ है। विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख निबंध संग्रह हैं– *'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से', 'संचारिणी', 'लागौ रंग हरि'* आदि। यहां उनके द्वारा रचित 'जीवन अपनी देहरी पर' निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अनेकानेक निबंधकारों की निबंध लेखन शैली से परिचित हो पाएंगे;
- बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'हृदय' की विशेषताओं की व्याख्या कर पाएंगे;
- रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रणीत काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था को परिभाषित कर पाएंगे;
- हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्देशित साहित्यकारों के दायित्वों से परिचित हो पाएंगे;
- विद्यानिवास मिश्र द्वारा प्रस्तुत जीवन अपनी देहरी पर के सत्य से परिचित हो पाएंगे।

4.2 हृदय – बालकृष्ण भट्ट

'हृदय' निबंध की रचना बालकृष्ण भट्ट ने की। 'हृदय' को जानने से पहले जानते हैं भट्ट जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

टिप्पणी

4.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भारतेंदु युग के प्रतिभाशाली लेखक तथा श्रेष्ठ निबंधकार पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म 23 जून, 1844 को अहियापुर मुहल्ला, प्रयाग इलाहाबाद में हुआ। सांदीपनि गुरु के वंशज भट्ट जी के पिता का नाम बेनीप्रसाद भट्ट तथा माता पार्वती देवी थी। भट्ट जी के पिता व्यापारी थे अतः घर में समृद्धि थी। नाना अनंतराम वैद्य थे, पुरोहिताई करते थे, वे भट्ट जी को 'फुशुन' कहकर पुकारते थे। मां शिक्षित एवं समझदार महिला थीं। वे भट्ट जी को संस्कृत पढ़ाती थीं। मां एवं नाना के संस्कारों ने भट्ट जी को प्रभावित किया। वे व्यापार में अरुचि दिखाते एवं शिक्षा की ओर आकृष्ट होते रहे। 12 वर्ष की आयु में ही भट्ट जी ने अमरकोष एवं लघु सिद्धांत कौमुदी कंठस्थ कर ली थी। वे कुशाग्र बुद्धि और विनोदी प्रकृति के थे। कथा सुनना, कबूतर पालना, बागवानी करना उन्हें प्रिय था। 12 वर्ष की आयु में ही इनका विवाह रमादेवी (रमदेई) से हो गया। इन्होंने कई भाषाएं सीखीं, ज्योतिष का अध्ययन किया। जीवन भर बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देते रहे और हानिकर परंपराओं एवं रूढ़ियों का विरोध करते रहे। हिंदी एवं संस्कृत के प्रकांड विद्वान होने के साथ–साथ भट्ट जी स्वाधीन विचारक, सचेत चिंतक भी थे। उन्होंने हिंदी गद्य के विकास के लिए तथा पत्रकारिता के विकास के लिए अमूल्य योगदान किया। भट्ट जी ने आर्थिक कठिनाइयों एवं विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए 32 वर्षों तक 'हिंदी प्रदीप' पत्र निकाला। 20 जुलाई, 1914 को इस महान निबंधकार का देहांत हो गया।

पं. बालकृष्ण भट्ट को आधुनिक हिंदी निबंध, पत्रकारिता एवं आलोचना का जनक माना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न थे। अनेक विधाओं में उनकी पैठ थी। उन्होंने नाटक, कविता, कथाएं, अनुवाद के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के जौहर दिखाए। वे अच्छे संपादक एवं समाजसेवी मनुष्य थे। उनके विचारों में प्रगतिशीलता, निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता दृष्टिगोचर होती थी। संस्कृत, अंग्रेजी के साथ अरबी, फारसी पर भी उनका अधिकार था। विनम्र, परोपकारी एवं सहनशील पं. भट्ट धर्मनिष्ठ वैष्णव थे। शास्त्रार्थ करने में उनकी गहन रुचि थी। उनकी वैचारिक दृढ़ता गहन अध्ययनशीलता की परिचायक थी। उन्होंने वर्ण व्यवस्था, जाति–पांति का विरोध किया। ज्ञान को व्यापक और गहन बनाने के लिए वे विदेश यात्राओं का समर्थन करते थे। वे सीमित संख्या में संतानोत्पत्ति के पक्षधर थे। बहुत–सी संतानें उत्पन्न करके उन्हें शिक्षित, संस्कारित कर श्रेष्ठ मनुष्य बनाना कठिन है, ऐसा वे मानते थे। पाखंड और अंधविश्वासों पर कुठाराघात करते हुए उन्होंने कर्मकांडी ब्राह्मणों के पाखंड का विरोध किया। भट्ट जी तीर्थयात्राओं पर जाना पसंद नहीं करते थे। उन्होंने दहेज प्रथा, बेमेल विवाह तथा पर्दा–प्रथा का विरोध किया। वे शांत, विनम्र, स्नेहशील होने के साथ क्रांतिकारी विचारक थे जो कबीर की तरह आवश्यकता पड़ने पर फटकार लगाना जानते थे। भट्ट जी संवेदनशील मनुष्य थे। अपने युग के यथार्थ को समझकर तदनुसार परिवर्तन लाने के लिए उन्होंने अपने लेखन को धारदार एवं सशक्त बनाया। उनकी वाक्चातुरी, हास्य एवं मस्ती ने उन्हें लोकप्रिय भी बनाया तथा उन्हें जीवन को भरपूर जीवंतता के साथ जीने की शक्ति भी दी।

बालकृष्ण भट्ट का रचना कर्म

भट्ट जी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार थे। हिंदी निबंध लेखन में वे प्रथम पंक्ति के लेखक माने जाते हैं। भट्ट निबंधावली में परिचय के अंतर्गत उनके पौत्र धनंजय भट्ट 'सरल' ने

टिप्पणी

लिखा है कि– "भट्ट जी हिंदी में बचपन से ही लिखने लगे थे। स्कूल में वाद–विवाद एवं निबंध रचना में सदैव भाग लेते एवं प्रथम रहते।" संभवतः सन् 1872 ई. में इन्होंने प्रथम लेख 'कलिराजा की सभा' लिखा जो भारतेंदु जी की 'कवि–वचन सुधा' में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात 'रेल का विकट खेल', 'स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी' आदि लेख 'कवि–वचन सुधा' में छपे। इन लेखों से भट्ट जी को प्रसिद्धि मिली तथा उनके लेख 'काशी पत्रिका', 'बिहार बंधु' में भी प्रकाशित होने लगे। उनके अधिकांश लेख 'हिंदी प्रदीप' में छपे, जिसका संपादन उन्होंने 32 वर्षों तक किया। उन्होंने हजारों निबंध लिखे, ऐसा माना जाता है।

भट्ट जी का पहला निबंध संग्रह 'साहित्य सरोज' 1920 में प्रकाशित हुआ, जिसका संपादन पं. लक्ष्मीकांत भट्ट ने किया। अन्य निबंध संग्रहों में 'साहित्य सुमन', 'भट्ट निबंधावली' भाग–1, 2, 'भट्ट निबंधमाला' भाग 1–2, 'भट्ट निबंधावली' भाग–3, 'बालकृष्ण भट्ट के निबंधों का संग्रह', 'बालकृष्ण भट्ट प्रतिनिधि संकलन' तथा 'बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबंध' हैं।

4.2.2 हृदय–मूल पाठ

हमारे अनुमान से उस परम नागर की चराचर सृष्टि में हृदय एक अद्भुत पदार्थ है। देखने में तो इसमें तीन अक्षर हैं पर तीनों लोक और चौदहों भुवन इस तिहर्फी (अक्षर) शब्द के भीतर एक भुनगे की नाईं दबे पड़े हैं। अणु से लेकर पर्वत पर्यन्त छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा कोई काम क्यों न हो बिना हृदय लगाए वैसा ही पोच रहता है जैसा युगल–दंत की शुभ्रज्ज्वल खूँटियों से शोभित श्याम मस्तक वाले मदश्रावी मातंग को कच्चे सूत के धागे से बांध रखने का प्रयत्न अथवा चंचल कुरंग को पकड़ने के लिए भोले कछुए के बच्चे को उद्यत करना। आँख न हो मनुष्य हृदय से देख सकता है पर हृदय न होने से आँख बेकार है। कहावत भी तो है 'क्या तुम्हारे हिए की भू फूटी है' हृदय से देखो, हृदय से पूछो, हृदय में रखो, हिए–जिए से काम करो; हृदय में कृपा बनाए रखो। किसी का हृदय मत दुखाओ। अमुक पुरुष का ऐसा नम्र हृदय है कि पराया दुख देख कोमल कमल की दंडी–सा झुक जाता है। अमुक का इतना कठोर है कि कमठ पृष्ठ की कठोरता तक को मात करता है। कितनों का हृदय वज्राघात सहने को भी समर्थ होता है। कोई ऐसे भीरु होते हैं कि सगर सन्मुख जाना तो दूर रहा कृपाण की चमक और गोले की धमक के मारे उनका हृदय सिकुड़ कर सोंठ की गिरह हो जाता है। किसी का हृदय रणक्षेत्र में अपूर्व विक्रम और अलौकिक युद्ध कौशल दिखाने को उमगता है। एवं किसी का हृदय विपुल और किसी का संकीर्ण किसी का उदार और किसी का अनुदार होता है। विभव के समय यह समुद्र की लहर से भी चार हाथ अधिक उमड़ता है और विपद–काल में सिमट कर रबड़ की टिकिया रह जाता है। सतोगुण की प्रवृत्ति में राज–पाट तक दान कर संकुचित नहीं होता, रजोगुण की प्रवृत्ति में बाल की खाल निकाल झींगुरों की मुस्कें बाँधता है। फलतः प्रेम, करुणा, प्रीति, भक्ति, माया, मोह आदि गुणों की प्रकृति–दशा में कभी–कभी ऐसा प्रभाव होता है कि उसका वर्णन कवियों की सामर्थ्य से बाहर हो जाता है। उसके अनुभव को हृदय ही जानता है, मुँह से कहने को अशक्य होता है। यदि यह बात नहीं है तो कृपाकर बताइए चिर–काल के बिछुरे प्रेमपात्रों के परस्पर सम्मिलन और एकटक अवलोकन में हृदय को कितनी ठंडक पहुँचती है या सहज अधीर, स्वभावतः चंचल मृदु बालक जब बड़े आग्रह से मचल कर धूलि में लोटते

टिप्पणी

हैं वा किसी नई सीखी बात को बाल स्वभाव से दुहराते हैं उस काल उनके मुँह–मुकुर पर जो मनोहर छवि छाती है वह आपके हृदय पर कितना प्रेम उपजाती है वा जिसको हम चाहते हैं वह गोली भर टप्पे से हमें देख कतराता है तो उसकी रुखाई का हृदय पर कितना गंभीर घाव होता है? अथवा बहु–कुलीन महादुखी जब परस्पर असंकुचित चित्त मिलते और अत्रुटित बातों में अपना दुखड़ा कहते हैं उस समय उनके आश्वासन की सीमा कहाँ तक पहुँचती है। शुद्ध एवं संयमी, नारायण–परायण को प्रभु–कीर्त्तन और भजन में जो अपूर्व आनंद अलौकिक सुख मिलता है व प्राकृतिक शोभा देख कवि का हृदय जो उल्लास, शांति और निस्तब्ध भाव धारण करता है उसका तारतम्य कितना है पाठक! हमारे लिखने के ये सब सर्वथा बाहर है; अपने आप जान सकते हो।

भक्ति–रस पगे हुए महात्मा तुलसीदास जी राघवेन्द्र राघव की प्रशंसा में कहते हैं–

'चितवनि चारु मारु मदहरनी। भावत हृदय जाय नहिं बरनी।।'

इससे जान पड़ता है कि हृदय एक ऐसी गहरी खाड़ी है जिसकी थाह विचारे जीव को उसमें रहने पर भी कभी–कभी उस भाँति नहीं मिलती जैसे ताल की मछलियाँ दिन–रात पानी में बिलबिलाया करती हैं पर उसकी थाह पाने की क्षमता नहीं रखतीं। जब अपने ही हृदय का ज्ञान अपने को नहीं है तो दूसरे के मन की थाह ले लेना तो बहुत ही दुस्तर है। तभी तो असाधारण धीमानों की यह प्रार्थना है 'अनुक्तमप्यूहति पंडितो जनः' कि बिना कहे वे दूसरे के हृदय की थाह लगाना बड़ा दुरंत है। न जाने इस हृदयागार का कैसा मुँह है, पंडित लोग कुछ ही कहें हमारी जान तो इसका स्वरूप स्वच्छ स्फटिक की नाई हैं। इसी से हर चीज का फोटू इसमें उतर जाता है। जिस भाँति सहस्रांश की सहस्र–सहस्र किरणें निर्मल बिल्लौर पर पड़कर उसके बाहर निकल जाती हैं इसी तरह सैकड़ों बातें, हजारों विषय जो दिन–रात में हमारे गोचर होते हैं हृदय के शीशे के भीतर धँसते चले जाते हैं और समय पर ख्याल के, कागज में तस्वीर बन सामने आ जाते हैं। इसमें कोई जल्द फहम होते हैं, कोई सौ–सौ बार बताने पर नहीं समझते। उनका हृदय किसी ऐसी चिंता–कीट से चेहटा रहता है कि वह आवरण होकर रोक करता है जिस तरह अक्स लेने के लिए शीशे को पहले खूब धो–धुवाकर साफ कर लेते हैं इसी भाँति सुंदर बात को धारण के लिए हृदय की सफाई की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

राजर्षि भर्तृहरि का वाक्य है 'हृदिस्वच्छावृत्तिः श्रुतमधिगतैकवृतफलम' अर्थात हृदय स्वच्छवृत्ति से और कान शास्त्र–श्रवण से बड़ाई के योग्य होते हैं। यह स्वच्छ थैली जिनके पास है वही सदाशय हैं, वही महाशय हैं और वह गंभीराशय हैं उन्हें चाहे जिन शुभ नामों से पुकार लीजिए। और जिनकी उदरदरी में इसका अभाव है वे ही दुराशय, क्षुद्राशय, नीचाशय, ओछे, छोटे और पेट के खोटे हैं। देखी सहृदय के उदाहरण ये लोग हुए हैं। सूर्यवंश–शिरोमणि दशरथात्मज रामचंद्र को कराली कैकेयी ने कितना दुःख दिया था। बारह वर्ष के वन के असीम आपदों का क्लेश, नयन ओट न रहने वाली सती सीता का विरहजन्य शोक, स्नेह–सागर पिता का सदा के लिए वियोग; ये सब सहकर उनका शुद्ध हृदय उस सौतेली माँ से पुनर्मिलन में समर्थ हुआ। आज कल के ओछे पात्र माँ–बाप की तिरछी आँख की आँच न सहकर कह बैठते हैं कि हमारा तो उनकी तरफ से हिरदै फट गया। प्रिय पाठक, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी एक बड़े विशद और विशाल हृदय के

टिप्पणी

मनुष्य थे, जिन्होंने लोगों की गाली–गलौज, निंदा–चुगली आदि अनेक असह्य बातों को सह कर उनके प्रति उपकार से मुँह न मोड़ा। आज जिनका विपुल हृदय मानो निकल कर सत्यार्थप्रकाश बन गया है। एक बार यहाँ के चंद लोगों ने कहा कि वह नास्तिक मुँह देखने योग्य नहीं है। यह सुनकर कुछ भी उनकी मुखश्री मलिन न हुई और किसी भाँति माथे पर सिकुड़न न आई। गंभीरता से उत्तर दिया कि यदि मेरा मुँह देखने में पाप लगता है तो मैं मुँह ढाँप लूँगा पर दो–दो बातें तो मेरी सुन लें। बस इसी से आप उनके वृहत् हृदय का परिचय कर सकते हैं। किसी ने सच कहा है–

"सज्जनस्य हृदयनवनीतं यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्।
अन्यतेहबिलसत्परितापात्सज्जनो द्रवतिननवनीतम्।।"

एक सहृदय कहता है कि कवियों ने जो सज्जनों के हृदय की उपमा मक्खन से दी है वह बात ठीक नहीं है। क्योंकि सत् पुरुष पराया दुःख देख पिघल जाते हैं और मक्खन वैसा ही बना रहता है। बस प्यारे, यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार हृदयों का अनुकरण करो, ऐसे ही हृदय दूसरों के हृदयों में क्षमा, दया, शांति, तितिक्षा, शील, सौजन्यता, सच्ची आस्तिकता और उदारता का वीर्यारोपण करने में योग्य होते हैं और सच्चे सुहृद कहाते हैं।

4.2.3 बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली

पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में पर्याप्त विषय वैविध्य, व्यापकता, उदारता एवं व्यंग्यात्मकता के दर्शन होते हैं। इन्होंने विषय प्रधान तथा व्यक्ति प्रधान दोनों प्रकार के निबंधों की रचना की। विवरणात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक एवं विचारात्मक सभी प्रकार की शैलियों में लिखे गए निबंध अपना विशेष महत्व रखते हैं। समाज का विकास एवं जाग्रत, विकसित राष्ट्र का निर्माण इनका उद्देश्य था जिसे इन्होंने कसौटी बनाया तथा समाज, साहित्य, मनोविज्ञान, धर्म दर्शन और उन निबंधों को अपनी कसौटी पर परखा। गहन चिंतक होने के कारण भट्ट जी की विवेचन शैली विचार गांभीर्य से परिपूर्ण होती है। इस दृष्टि से समीक्षा करने पर भट्ट जी भारतेंदु युग के अग्रगण्य निबंधकार ठहरते हैं। श्रेष्ठ निबंधकार होने के साथ वे श्रेष्ठ समीक्षक भी थे। उन्होंने तुलनात्मक समालोचना की नींव रखी, जिस पर बाद में पं. पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक समालोचना का भव्य महल खड़ा कर समालोचना का मार्ग प्रशस्त किया।

पं. बालकृष्ण भट्ट की भाषा और शैली के विविध रूप उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। वे विविध भाषा के शब्दों का प्रयोग कर ऐसी भाषा का निर्माण करते हैं जो सर्व स्वीकृति और सुपाठ्य हो। कहीं वे उर्दू, फारसी, अंग्रेजी के शब्द ही नहीं, पूरा–पूरा का वाक्य ही लिख देते हैं जिससे भाषा रोचक एवं प्रभावशाली बन जाती है। कहीं–कहीं उनकी भाषा काव्यात्मक भावुकता से परिपूर्ण होती है जो सरसता एवं जीवंतता की मिसाल बन जाती है। निबंधों के शीर्षक कभी उर्दू और कभी शुद्ध संस्कृत ढंग से रखते हैं; जैसे– जबान, जी, चंद्रोदय, धिक्काराष्ट्रकम आदि। भारतेंदु युग हिंदी गद्य का आरंभिक काल था। उस समय खड़ी बोली हिंदी में भट्ट जी ने अत्यंत सशक्त एवं सुंदर रचनाओं को जन्म दिया। किस शब्द को कहां प्रयोग करना है वे भली–भांति जानते ही नहीं थे बल्कि अत्यंत कुशलता से शब्द और वाक्यों का प्रयोग करते थे इसलिए तत्कालीन निबंध साहित्य पर दृष्टि डालें तो भट्ट जी की भाषा जैसा अनोखापन अन्यत्र नहीं मिलता। उन्होंने गहन, गूढ़ अर्थों के

टिप्पणी

साथ सशक्त व्यंग्योक्तियां कीं, जो सोद्देश्य होती थीं। भट्ट जी की रचनात्मकता पर विचार प्रकट करते हुए सुधाकर पांडेय जी लिखते हैं– "अपने व्यक्तित्व से उन्होंने अनेक निबंधों की केवल सर्जना ही नहीं की, अपितु उनमें आत्मा का प्रकाश भी भरा है। इसलिए उनके निबंध केवल रूपवान ही नहीं, बल्कि सुंदर भी हैं और हमारे हिंदी के साहित्य को उन्होंने ऐसा ऐतिहासिक मोड़ दिया है जहां से आगे की संभावनाएं सहज ही केवल जानी–पहचानी ही नहीं जा सकतीं, अपितु उनके विविध रंजक और मनोहारी रूपों का बोध सहज ही किया जा सकता है। साहित्य की धारा में निबंध की नदी के वे ऐसे बंध हैं, जिसमें सतत प्राण के प्रवाह का रसस्नात् जल है। वे हिंदी साहित्य में निबंध के ऋषिकेष हैं।"

भट्ट जी के निबंधों में उनके परिपक्व अनुभव एवं अगाध पांडित्य के दर्शन होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि जब भट्ट जी ने लेखन आरंभ किया था तब हिंदी का विकास नहीं हुआ था। वह हिंदी के विकास एवं हिंदी गद्य के विकास का संघर्ष काल था। अतः उनके चिंतन में हिंदी की चिंता भी थी। वे हिंदी में उत्कृष्ट रचनाओं के अभाव को अनुभव कर रहे थे। भट्ट जी भारतेंदु जी की तरह भाषा को सरल, सहज, सरस बनाकर जनता की भाषा के रूप में प्रस्तुत करना पसंद करते थे। अतः क्लिष्ट संस्कृत के शब्दों वाले पंडिताऊपन से हट कर उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और लोक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे। यह अवश्य है कि साहित्य, धर्म और संस्कृति प्रधान निबंधों की रचना करते हुए उन्होंने संस्कृत शब्दों एवं संस्कृत के श्लोकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जिससे विषय के अनुरूप निबंधों की गरिमा में वृद्धि हुई। जब निबंधों में व्यंग्योक्तियों का समावेश होता है, विषय समाज एवं मनुष्य के जीवन से जुड़े सहज और सरल भावपूर्ण होते हैं तब उनमें ग्राम्य जीवन से जुड़ी या लोक में प्रचलित कहावतों एवं मुहावरों का उपयोग कर वे विषय को संप्रेषणीय और ग्राह्य बना देते हैं। बालकृष्ण भट्ट जी की भाषा शैली पर टिप्पणी करते हुए धनंजय भट्ट 'हिंदी की दशा और पत्रकारिता' की भूमिका में लिखते हैं– "इनके निबंध बहुत ही उच्च कोटि के, सुंदर, गंभीर और साहित्यिक सौरभ से युक्त हैं। इनका प्रत्येक निबंध भाषा की सजीवता, रोचकता और स्थान–स्थान पर सुंदर मुहावरों की लड़ी से गुंथा हुआ एक सुंदर गुलदस्ता मालूम होता है।"

वे मानते हैं कि 'साहित्य जनमानस के हृदय का विकास है।' उन्होंने वेदों से लेकर वर्तमान (तत्कालीन) साहित्य का अनुशीलन किया था। तदनुसार रचनाएं कीं। उनकी समस्त रचनाओं पर दृष्टि डालें तो भाव एवं भाषा के, शैली के रंग–रूप दृष्टिगोचर एवं अनुभूत होते हैं। कहीं वीरता का गर्व, कहीं प्रेम का उच्छवास, कहीं क्रोधपूर्ण गर्जन, कहीं शोक, हर्ष, करुणा और भक्ति, कहीं अश्रुपात और निवेदन...। भट्ट जी की भाषा शैली विषय को जीवंत बना देने में सक्षम है। 'हिंदी की दशा और पत्रकारिता' में दो शब्द लिखते हुए सुंदरलाल जी ने भट्ट जी की सरस रचनात्मकता पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं– "हिंदी के दो खास लेखक अपने–अपने ढंग से प्रसिद्ध थे– एक पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी और दूसरे पं. बालकृष्ण भट्ट। मेरी और मेरे जैसे बहुतों की निगाह में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा व्याकरण की दृष्टि से निर्दोष होती थी किंतु भाषा में रस लगभग नदारद। दूसरी ओर पं. बालकृष्ण भट्ट अपनी भाषा में व्याकरण की बहुत अधिक परवाह नहीं करते थे, किंतु उनकी भाषा बढ़िया–से–बढ़िया रसगुल्लों की तरह रस से भरी हुई होती थी। भट्ट जी

टिप्पणी

अपनी भाषा में फारसी, अंग्रेजी और अरबी तक के चालू और आमफहम शब्द और मुहावरे नगीनों की तरह जड़ देते थे।" व्याकरण की चिंता से मुक्त होकर भावों के मुक्त प्रवाह की निरंतरता बनी रहने के कारण बालकृष्ण भट्ट के निबंध जीवन के निकट और जीवंत बन पड़े हैं।

भट्ट जी ने राजनैतिक, सामाजिक, नारी विषयक, धर्म विषयक, भाषा साहित्य एवं साहित्यकार विषयक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, नैतिक आदि विविध विषयों पर विविध शैलियों में निबंध रचना की। उनके चिंतन प्रधान, विवरणात्मक, समालोचनात्मक, व्यंग्यात्मक निबंधों के अतिरिक्त ललित निबंधों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ललित निबंधों की रचना करते हुए जिस हल्केपन के आ जाने का खतरा होता है उससे बचते हुए उन्होंने रोचक एवं सशक्त ललित निबंधों की रचना की। भाषा एवं शैली के प्रति वे अत्यंत अधिकारपूर्ण सजगता से काम लेते हैं। यही कारण है कि ललित निबंधों में भी उनकी बौद्धिकता भारीपन और उबाऊपन उत्पन्न करने के स्थान पर अपनी सूक्ष्म प्रसारता के साथ रोचकता उत्पन्न करती है।

'हृदय' ऐसा ही ललित निबंध है जिसमें बौद्धिकता एवं भावनाओं का अद्‌भुत संगम है। हृदय की विशेषताएं बताते हुए उसकी श्रेष्ठता और सार्थकता को बेहद रोचक भाषा एवं शैली में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। उनके अनेक ललित निबंध विविधता एवं रोचकता से परिपूर्ण अनेक शैलियों में लिखे गए हैं जिनमें व्यंग्य की फुहारें, मुक्त हास्य, चुटकी लेने वाला भाव, अनौपचारिकता यानी बेतकल्लुफी के दर्शन होते हैं। इन छटाओं से युक्त निबंध पाठकों के अंतर्मन को छू लेने वाला प्रभाव रखते हैं। 'रस में फीकापन कब आता है', 'रूपवानों के रूप का रहस्य', 'हिंदुस्तान के रईस', 'खटका', 'जबान', 'आंसू' आदि ऐसे निबंध हैं जिनमें व्यंग्यात्मकता के साथ भाषा की कसावट से जादुई रोचकता उत्पन्न हो गई है। 'खटका' जैसे छोटे शब्द पर किया गया गहन चिंतन रंग–बिरंगे फूलों की माला की तरह आकर्षक और मनोरंजक बनकर सामने आता है। इनमें लेखक के निर्भीक व्यक्तित्व, उन्मुक्त भाव और सशक्त भाषा शैली के दर्शन होते हैं। 'बातचीत', 'परिचित्तानुरंजन', 'मेला–ठेला', 'ढोल के भीतर पोल' आदि अत्यंत सुगठित एवं विचार प्रधान शैली में लिखे गए सुचिंतित निबंध हैं। 'आशा' निबंध में वे निराशा से आशा की ओर ले जाते हुए शुभचिंतक और सलाहकार प्रतीत होते हैं। भट्ट जी ने कुछ निबंधों में नाटकीय शैली का भी उपयोग किया है। जैसे– 'एकांत ज्ञान', 'हिंदुस्तान और अफगानिस्तान', 'मधुप' आदि। स्व–कथन की शैली में लिखे गए 'एकांत ज्ञान' नामक ललित निबंध में ऐसे दुर्भावनायुक्त स्वार्थी पंडित का चरित्र अनावृत्त किया गया है जो अपने को बेहद ज्ञानी और पंडितराज समझता है।

भारतेंदु युगीन ललित निबंधों की रचनात्मकता रोचकता एवं उद्देश्य से परिपूर्ण थी। इसकी रोचकता का एक कारण तत्कालीन प्रचलित स्तोत्र शैली भी थी। इसके अंतर्गत हास्य–व्यंग्य और चुटकी लेने की सूक्ष्म कला का प्रभाव होता था। बालकृष्ण भट्ट जी ने इस शैली में अनूठे व्यंग्य निबंधों की रचना की जो सामाजिक व्यंग्य कहे जा सकते हैं तथा मार्मिकता की दृष्टि से समृद्ध हैं। उनके इस शैली में लिखे गए निबंधों में– कंकड़ स्तोत्र, अंग्रेज स्तोत्र, हाकिम और उनकी हिकमत, म्युनिसिपैलिटी स्तोत्रम्, पत्नीस्तव, हुक्कास्तवम्, ग्राहक स्तुति आदि हैं। उन्होंने समाज, वस्तु, व्यक्ति, सत्ता, स्त्री, पुरुष सभी को विषय

टिप्पणी

बनाकर स्तोत्र शैली में अद्वितीय निबंध लिखे। भट्ट जी ने चरित्र प्रधान ललित निबंध भी लिखे। कथा शैली में लिखे गए निबंधों में–'देवताओं से हमारी बातचीत', 'एक अनोखा स्वप्न', 'धूमकेतु' जैसे निबंध लिखे। हिंदुओं में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, पाखंड, छल–छद्म आदि विकारों को दूर करने के लिए उन्होंने संवाद शैली में भी कुछ प्रभावशाली निबंधों की रचना की। जैसे' 'पंच महाराज', 'पंचों की सोहबत', 'पंचों की एक उमंग', 'पंचों का प्रपंच' आदि।

विषय प्रधान निबंधों में उन्होंने राजनीति, सामाजिक, साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे जिसमें उनका समाज सुधारक का, मार्ग निर्देशक का रूप उभर कर आता है। इन निबंधों में बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह को प्रोत्साहन, पर्दा प्रथा का विरोध, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा, जात–पांत, छुआछूत का उन्होंने घोर विरोध किया। भट्ट जी समस्या के साथ उसका निदान भी प्रस्तुत करने वाले आशावादी व्यक्ति थे। वे किसी भी धर्म के अंधे समर्थक नहीं थे। वे संतुलित विचारों वाले समन्वयवादी व्यक्ति थे। उन्होंने धार्मिक, नैतिक, काव्यशास्त्रीय रस, छंद, अलंकारों पर भी निबंध लिखे। भट्ट जी बहुज्ञ थे। उनकी दृष्टि एकांगी नहीं थी। वे अतीत एवं वर्तमान को दृष्टि पथ में रखते हुए विषय की समीक्षा किया करते थे। 'शब्दों की आकर्षण शक्ति' नामक लेख में वे 'शब्दों की आकर्षण शक्ति न्यूटन की आकर्षण शक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती' ऐसा लिखते हैं। कहते हैं– "केवल शब्द की मधुर ध्वनि में जब इतना प्रलोभन हो तब यदि उन शब्दों में अर्थचातुरी भी भरी हो तो वह कितना मन को खींचने वाला न होगा।"

अंततः यही कहा जा सकता है कि पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंधों की संख्या जो हजारों में हैं उनमें विषय वैविध्य, शैली विविध्य, भाषा एवं भावों का सरस, सहज, सरल प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। वैचारिक समृद्धि के साथ इन निबंधों में शब्दों, वाक्यों, भावों का सुसंयोजन दिखाई पड़ता है। भट्ट जी का उद्देश्य स्पष्ट था– जनता को शिक्षित, सचेत और नवजागरण का पाठ पढ़ाकर कर्मठ बनाना। वे उन्नत शिक्षित भारतीय समाज की कल्पना करते थे जिसमें स्त्री–पुरुष, ग्रामीण एवं नागर जन, हर जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित हों, इसलिए इन सबसे स्पष्ट, सुचारू संवाद बनाए रखने के लिए उन्होंने समयानुकूल, विषयानुकूल भाषा और शैली का उपयोग किया। लोकमंगल की कामना से लिखे गए निबंधों में बोझिलता और धुंधलापन नहीं बल्कि उज्ज्वल आलोक झलकता है। इन निबंधों में स्वतंत्र भारत के सुखों के लिए प्रार्थना करने वाले साधक पं. बालकृष्ण भट्ट का व्यक्तित्व झलकता है।

4.2.4 हृदय : प्रतिपाद्य

पं. बालकृष्ण भट्ट इस ललित निबंध में हृदय की विशेषताएं बताते हुए इसे परमात्मा की चर–अचर, जड़–चेतन से युक्त सृष्टि का सर्वाधिक, सर्वोच्च ही नहीं, बल्कि एक अकेला ऐसा अद्भुत पदार्थ प्रतिपादित करते हैं, जो है तो केवल तीन अक्षरों का, लेकिन इस छोटे से धड़कते मांस–पिंड में तीनों लोक और चौदहों भुवन समा जाते हैं और समा कर किसी भुनगे की तरह दबे पड़े रहते हैं। जैसे हजारों किताबों के ढेर के नीचे दबी किसी किताब में कोई मक्खी, मच्छर या पंखेरू दबा पड़ा हो किसी को पता नहीं चलता, उसी तरह इस छोटे से हृदय में सागर सी गहनता और हिमालय सी ऊंचाई एवं अनंत आकाश का विस्तृत

टिप्पणी

विस्तार है जिसमें सारी सृष्टि समाहित रहती है। इसमें कितनी स्मृतियां, कितने रहस्य छिपे हैं कोई नहीं जान सकता। मनुष्य का जीवन कर्म से बंधा है किंतु कर्मरत शरीर का हर प्रयत्न हृदय के अभाव में निष्प्राण एवं नीरस होता है। अणु से लेकर पर्वत तक यानी छोटे से छोटा काम हो या बड़े से बड़ा– उसे हृदय अर्थात दिल लगाए बगैर करने से वह सफलतापूर्वक संपन्न हो सकेगा, इसमें संदेह रहता है। ऐसा कार्य या तो बिगड़ जाता है या पूर्णतः ठीक न होकर कुछ और हो जाता है। पं. भट्ट जी कहते हैं हृदय लगाए बिना कार्य की सफल पूर्णता की आशा करना वैसा ही है जैसे युगल श्वेतदंत यानी दो सफेद चमकते लंबे सुंदर दांतों वाले मदमस्त हाथी को जिसका काला मस्तक है पकड़ने के लिए या बांधे रखने के लिए कच्चे सूती धागे का उपयोग करना जो कि असंभव होगा...। कच्चे सूत से किसी हाथी को बांधकर नहीं रखा जा सकता। इसी तरह चंचल घोड़े या हिरन को पकड़ने के लिए कछुए जैसी धीमी गति से चलने वाले प्राणी को भेजना...। तात्पर्य यह कि हृदय ही शरीर को कार्य की सही दिशा की ओर प्रेरित करता है, कार्य करने का उत्साह बढ़ाता है और शारीरिक शक्ति और श्रम को साधकर सफल बनाता है। भट्ट जी कहते हैं हृदय ही जीवंतता का केंद्र है। आंख न हो तो हृदय से देखकर, अनुभव के आधार पर देखा समझा जा सकता है लेकिन हृदय न हो आंख शरीर रूपी मशीन का एक पुर्जा भर है यानी उसका होना न होने के बराबर है। इसलिए एक कहावत है कि 'क्या मन की आंखें भी फूट गई हैं' क्योंकि हृदय ऐसा संवेदनशील अंग है जिससे अनुभव के द्वारा देखा जा सकता है। बोला जा सकता है।

लोग कहते हैं अपने हृदय से पूछो क्योंकि वो सच बोलता है। बात हृदय में रखो तथा हृदय से यानी मन लगाकर काम करो। अपने हृदय में दूसरों के लिए सद्भावना, कृपा बनाए रखो। किसी का हृदय मत दुखाओ। उदाहरण दिया जाता है कि फलां व्यक्ति का हृदय अत्यंत कोमल है, विनम्र है। वह दूसरों का दुख देखकर दुखी हो जाता एवं कमल नाल की तरह झुक जाता है। कठोर हृदय वाले लोगों के लिए कहा जाता है कि इसका हृदय कछुए की पीठ की तरह कठोर है। कुछ लोगों का हृदय अत्यंत सहनशील एवं सशक्त होता है जो वज्र (चट्टान) की तरह बड़े–बड़े आघात सह लेता है अर्थात बड़े–बड़े दुख सहते हुए भी विचलित नहीं होता लेकिन कुछ लोग भीरू अर्थात डरपोक होते हैं। कमजोर हृदय वाले ऐसे लोग युद्ध में जाना तो दूर तलवार की चमक एवं गोले–बारूद की धमक ध्वनि सुनकर ही सहमकर सूखी सोंठ की तरह हो जाते हैं। डर के कारण उनके चेहरे का रंग उड़ जाता है और शरीर ऐंठ जाता है। कुछ लोगों के हृदय में साहस एवं वीरता का ज्वार उमड़ता रहता है और वे युद्ध क्षेत्र में अद्भुत, अपूर्व कौशल एवं पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए सदैव उत्साहित रहते हैं। ऐसे लोग देश के लिए मर–मिटने को तैयार रहते हैं तथा सदियों तक याद किये जाते हैं। किसी के हृदय की संकीर्णता उसे आत्मकेंद्रित बना देती है वह स्वार्थी के रूप में जाना जाता है और किसी के हृदय की व्यापकता उसे महान पुरुषों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देती है। ऐसे महापुरुष मानव के कल्याण के लिए जीते–मरते हैं। किसी के हृदय में उदारता कूट–कूट कर भरी होती है और वे दूसरों के सुख के लिए सर्वस्व लुटा देते हैं लेकिन कुछ लोगों का हृदय इतना अनुदार होता है कि वे मरते हुए व्यक्ति को पानी पिलाने में भी कंजूसी करते हैं। ऐसा हृदय सदैव उपेक्षा का पात्र बनता है।

टिप्पणी

अपनी विशेषताओं के कारण हृदय अद्‌भुत है। इसकी माया और लीला का प्रसार व्यापक और अज्ञेय है कि यह कब क्या कर बैठेगा। जब विपत्ति आती है तो यह सूखकर, सिमटकर रबर की तरह हो जाता है और जब यह सुखी, प्रसन्न एवं समृद्ध होता है तो वैभव के इस काल में इसकी उमंगों की ऊंचाई समुद्र की लहरों से भी ऊंची होती है। मनुष्य के हृदय में तीनों गुण– सतो गुण, रजो गुण एवं तमो गुण उपस्थित रहते हैं। शिक्षा एवं संगति के आधार पर यह परिष्कृत होते हैं। अच्छी शिक्षा, संस्कार एवं सत्संगति से सत्व (सतो) गुण परिष्कृत होता है तब व्यक्ति निःसंकोच राज–पाठ तक दान कर देता है। शांत, विनम्र, दानी, परोपकारी होना सत्व गुण के लक्षण हैं। जब रजो गुण परिष्कृत होता है तब व्यक्ति क्षत्रिय की तरह अधिकारों के लिए लड़ता है, बाल की खाल निकालता है अर्थात तर्कशील बनकर सत्य का पता लगाता है एवं 'झींगुर की मुस्कें' बांधता है यानी असंभव कार्य को संभव बनाने का प्रयत्न करता है। तमो गुणी व्यक्ति का हृदय अमानवीयता से भरा, कठोर, झूठा और मक्कार होता है। ऐसे पतित हृदयों से समाज की हानि होती है। मनुष्य का हृदय भावनाओं का खजाना होता है इसलिए प्राकृतिक दशा में हृदय पर प्रेम, करुणा, भक्ति, मोह–माया आदि का जो प्रभाव होता है उससे वह भावनाओं की चरम एवं गहन स्थिति को प्राप्त हो जाता है जिसका वर्णन सामान्य मनुष्य नहीं कर सकता। कभी–कभी यह वर्णन कवियों की सामर्थ्य से भी बाहर हो जाता है। इसे केवल अनुभव किया जा सकता है, कहा नहीं जा सकता। हृदय के कुछ विशिष्ट अनुभवों को केवल हृदय ही जानता है। मनुष्य के वश में नहीं है कि वह उन अनुभवों को शब्द दे सके। उदाहरण के लिए जब दो बिछुड़े हुए प्रेमी वर्षों बाद मिलते हैं तो वे एकटक एक–दूसरे की ओर देखते ही रह जाते हैं। उनकी आंखें एक दूसरे से बात करती हैं, हृदय–हृदय से बातें करते हैं और शीतलता, शांति का अनुभव करते हैं। उस समय के उन हृदयों के अनुभवों को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसी तरह चंचल बच्चे जब मचल कर धूल में लोटते हैं तो उनके कोमल मुख के निर्मल सौंदर्य का वर्णन करना कठिन होता है। वह सुख अनिर्वचनीय होता है। नई सीखी बात को तुतलाते हुए, मासूमियत से दोहराते बच्चों की शोभा और उस समय उन बातों को सुनकर जो सुख मिलता है उसे केवल हृदय अनुभव करता है, बताया नहीं जा सकता। उस समय उस बच्चे के लिए हृदय में प्रेम का सागर उफनता है जिसे हृदय ही जानता है। हृदय पर प्रेम का जितना प्रभाव होता है उसका दोगुना उपेक्षा एवं घृणा का, दुख एवं आघात का..। व्यक्ति जिसे चाहता है, प्रेम करता है वह अगर उस व्यक्ति के बिल्कुल समीप आकर भी उसे न देखे और उपेक्षा करके चला जाए तो हृदय पर गंभीर आघात लगता है। इस घाव की पीड़ा को हृदय ही जानता है। इसी तरह लंबे समय से दुखी लोग जब मिलते हैं तब वे निःसंकोच भाव से खुले शब्दों में एक–दूसरे को अपना–अपना दुखड़ा सुनाते हैं तथा एक–दूसरे को मीठे शब्दों में आश्वासन देते हैं। तब उन दोनों को कितनी राहत कितनी तसल्ली मिलती है यह उनके हृदय ही जानते हैं।

पं. बालकृष्ण भट्‌ट हृदय की विशेषता बताते हुए उन स्थितियों का वर्णन भी करते हैं जिनमें हृदय को सुख मिलता है। भगवान का नाम जप करने वाले शुद्ध आचरण वाले संयमी मनुष्य को भजन–कीर्तन में जो अपूर्व आनंद प्राप्त होता है, अलौकिक सुख प्राप्त होता है उसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। प्रकृति का सौंदर्य ईश्वर की अनुपम सृष्टि है। वह ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव कराती है। कवि का हृदय इस प्राकृतिक सुंदरता को देखकर निस्तब्ध होता है और इस सुख, उल्लास का अनुभव कर उसका हृदय शांत और आत्मलीनता के जिस सरोवर में डूबता जाता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तुलसीदास राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने लिखा है कि– राम का सौंदर्य अद्‌भुत है। नन्हे बालक के रूप में ठुमक–ठुमक कर चलते हैं और जब पलटकर तिरछी चितवन से देखते हैं तो उनका सौंदर्य अत्यंत मारक हो उठता है जो हृदय के सारे मद को, अहंकार एवं अभिमान को मारकर मन को शुद्ध, शांत बना देता है। राम का यह सौंदर्य उनके हृदय को मोहित कर लेता है लेकिन अपने हृदय के इस अनुभव का वे वर्णन नहीं कर सकते। उनका यह सुख अकथनीय है।

टिप्पणी

तुलसीदास जी के इस अनुभव को उद्‌धृत करते हुए पं. बालकृष्ण भट्‌ट कहते हैं कि हृदय एक ऐसी गहरी खाई या खाड़ी की तरह प्रतीत होता है जिसकी गहराई और रहस्यों का पता उसमें जीवन भर रहने वाले प्राणी को भी नहीं चलता। जिस तरह तालाब और बड़े सरोवरों में रहने वाली मछलियां रात–दिन उसमें तैरती रहती हैं लेकिन वे उस ताल और सरोवर की गहराई नहीं जान पातीं। उसी तरह मनुष्य जब जीवन भर अपने ही हृदय को पूरी तरह नहीं जान पाता तो दूसरे के हृदय की गहराई और रहस्यों को कैसे जान सकता है। तात्पर्य, हृदय ईश्वर का अनोखा उपहार है। जैसे ईश्वर को जानना कठिन है वैसे ही हृदय को जानना भी कठिन है। वे असाधारण और दैवीय कृपा प्राप्त लोग होते हैं जो दूसरे के कहे बगैर उसके हृदय की बात जान लेते हैं। उनकी इच्छाओं और सपनों को पढ़ लेते हैं। भट्‌ट जी कहते हैं कि मैं नहीं जान पाता हूं कि इस हृदयागार यानी हृदय रूपी खजाने का मुंह किस तरह का और किस ओर है कि उसमें प्रवेश किया जा सके। भट्‌ट जी को यह स्फटिक की तरह लगता है। इसमें हर दृश्य, हर स्मृति का चित्र सदैव बना रहता है। जैसे बिल्लौरी निर्मल पारदर्शी हीरे पर पड़ी हुई सूर्य की किरणें उसके आर–पार हो जाती हैं उसी तरह इस हृदय रूपी शीशे (आईने) में प्रतिक्षण की सैकड़ों बातें, सहस्रों विषय समा जाते हैं और यथासमय प्रकट होकर सुख–दुख का अनुभव कराते हैं। स्मृतियों का दस्तावेज बन जाते हैं। इनमें कुछ स्मृतियां, बातें जल्दी समझ में आती हैं और कुछ बार–बार समझाने पर भी स्पष्ट नहीं होती। कारण यह कि हृदय पर जब चिंता रूपी कीट चिपका रहता है तो वह विवेक को भी कुंठित कर देता है और बात समझने में मानव बुद्धि और स्वयं हृदय भी अशक्त तथा असमर्थता का अनुभव करते हैं। इसलिए जैसे प्रतिबिंब देखने के लिए हम आईने को धो–पोंछकर साफ कर लेते हैं उसी तरह सुंदर बातों और भावनाओं को धारण करने के लिए हृदय से चिंता तथा दुर्भावनाओं को हटा देना चाहिए।

भट्‌ट जी अपनी सीख को प्रतिपादित करने के लिए राजर्षि भर्तृहरि के कथन को उद्‌धृत करते हैं कि "हृदय वही सराहनीय होता है जो स्वच्छ वृत्ति वाला हो यानी जिसमें सतो गुण हों, सद्‌भावना हो तथा कान का होना तभी सार्थक होता है जब वे शास्त्रों को सुनकर उसे हृदय तक पहुंचाए।" भट्‌ट जी कहते हैं– हृदय एक स्वच्छ थैली है। यह जिसके पास होता है वही सदाशय यानी उच्च श्रेष्ठ आशय को धारण करने वाला तथा महाशय होता है। वही गंभीराशय है क्योंकि जीवन के सत्य को समझकर वह मानवता की प्रतिष्ठा के लिए गंभीरता से विचार करता है। और जिनके पास यह स्वच्छ थैली अर्थात निर्मल हृदय नहीं है वे उथले पेट वाले लोग हैं जिन्हें मानवता के मार्ग से भटका और पतित हुआ नीच, क्षुद्र आशय वाला मनुष्य कह सकते हैं। जो दुराचारी एवं अमानवीय होता है

टिप्पणी

अपना पेट भरने वाला ओछा, स्वार्थी एवं कपटी, झूठा मनुष्य कह सकते हैं। वे सहृदय, सदाशयी लोगों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि दशरथ के पुत्र राम के कैकेयी के वर के कारण चौदह वर्ष का वनवास पाया, पिता को खोया, जंगल में भटके, पत्नी का विरह सहा लेकिन जब लौटकर आए, कैकेयी से अत्यंत प्रेम एवं विनम्रता से मिले। जबकि आजकल की संतान माता–पिता की कड़ी नजर नहीं सह सकती और वे कह बैठते हैं कि मां–बाप की ओर से हमारा हृदय फट गया है।

भट्ट जी नयी पीढ़ी को रामचंद्र जी की तरह विनम्र, सहनशील, मर्यादावान बनने का उपदेश दे रहे हैं। वे चाहते हैं, नयी पीढ़ी सदाशयी बने। भट्ट जी स्वामी दयानंद सरस्वती जी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि उनके जैसे महामना और विशाल हृदय के सदाशयी व्यक्ति को भी लोगों की गालियां खानी पड़ीं। उन्होंने लोगों द्वारा निंदा किये जाने, दुर्व्यवहार किये जाने पर भी धैर्य और साहस नहीं खोया। सब कुछ सहन करते हुए भी लोगों की सेवा करते रहे। परोपकार करते रहे और सत्यार्थप्रकाश के रूप में अमर हो गए। लोगों ने कहा कि वे उनका मुंह नहीं देखना चाहते तो उन्होंने बिना किसी दुख या निराशा के कहा कि ठीक है मैं अपना मुंह ढंक लूंगा लेकिन आप मेरी बातें ध्यान से सुन लें। स्वामी जी का हृदय विशाल था एवं उसमें मानव मात्र के प्रति प्रेम का सागर लहराता था।

पं. बालकृष्ण भट्ट ने किसी महापुरुष के आप्त वचन को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है कि "एक सहृदय कहता है कि कवियों ने जो सज्जनों के हृदय की उपमा मक्खन से दी है वह बात ठीक नहीं है। क्योंकि सत् पुरुष पराया दुख देखकर पिघल जाते हैं और मक्खन वैसा ही बना रहता है।" भट्ट जी कहते हैं कि यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार, विशाल हृदय वाले सत्पुरुषों का अनुकरण करो जो दूसरों को दया, क्षमा, शांति, त्याग, सदाचार, परोपकार करने की शिक्षा देते हैं। शिक्षा अपने आचरण से देते हैं जैसे गांधी जी का व्यक्तित्व और कृतित्व ही उनकी सीख थी। उदारता और आस्तिकता के बीज पड़ें तो हृदय सहृदय बन जाता है और सहृदय व्यक्ति सबका सुहृद यानी निकट का, प्रिय पात्र, प्रेम का पात्र बन जाता है।

भट्ट जी ने इस निबंध के माध्यम से संवेदनशील एवं सहृदय होने की शिक्षा दी है और यह प्रतिपादित किया है कि सहृदय होने की क्या–क्या विशेषताएं हैं। यह कालातिक्रम करने वाला प्रासंगिक निबंध है। वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक युग में हृदय ही अप्रासंगिक होता जा रहा है, मनुष्यता समाप्त होकर यांत्रिकता में परिवर्तित हो गई है, माता–पिता, गुरु–शिष्य की मार्यादा खत्म हो गई है। मनुष्य स्वार्थी, आत्मकेंद्रित और एकांतजीवी होता जा रहा है। ऐसे समय में निबंध अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हृदय के होने की तथा उसके अच्छे और बुरे होने की प्रतिक्रिया एवं परिणाम से परिचित कराकर इस युग की यांत्रिक पीढ़ी को सावधान कर सकता है कि वे सहृदय बनें। सहृदय बने बिना वे जीवन का सच्चा आनंद नहीं ले सकते। भौतिक वस्तुओं से प्राप्त सुख क्षणिक होता है किंतु मानवीय संवेदनाओं से बने रिश्ते और किये गए कार्य अपार, स्थिर सुख और आनंद देते हैं। सहृदय होकर सहा गया दुख भी सुख है जो जीवन की सार्थकता का द्योतक है। भट्ट जी हृदय को ईश्वर की तरह रहस्यमयी प्रतिपादित करते हैं। जैसे

टिप्पणी

निश्छल मन से की गई सहज भक्ति से ईश्वर को जाना और पाया जा सकता है वैसे ही निश्छल होकर हृदय के रहस्यों से परिचित हुआ जा सकता है। हृदय की प्रकृति ही मनुष्य को यश, मान और समृद्धि दिलाती है तथा हृदय की तमोगुणी प्रवृत्ति ही उसे मानवता के धरातल से गिराकर अपमानित करती है। अतः मनुष्य को सत्संगति कर, शास्त्रों का अध्ययन कर सहृदय बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यह निबंध अपनी उद्देश्य पूर्ति में सफल हुआ है।

4.2.5 हृदय : समीक्षात्मक अध्ययन

ललित निबंधों की परंपरा में पं. बालकृष्ण भट्ट का नाम प्रथम पंक्ति में लिखा जाता है। दिविक रमेश 'निबंधों की दुनिया' की भूमिका में लिखते हैं कि "पंडित बालकृष्ण भट्ट ने ललित निबंध पर्याप्त लिखे हैं जिनमें भरपूर रोचकता है। भट्ट जी का ललित निबंधकार रूप भी बहुत ही सशक्त है। ललित निबंधों में हल्कापन आने का खतरा बना रहता है लेकिन बालकृष्ण भट्ट उससे बचे हैं। सच कहें तो ऐसे निबंधों में किसी भी समर्थ लेखक का भाषा और शैलीगत अधिकार भी देखने को मिलता है। भट्ट जी एक सजग चिंतक थे अतः उनके ललित निबंध भी बौद्धिकता की सूक्ष्म परतों से संपन्न हैं।"

भट्ट जी का यह 'हृदय' निबंध ललित निबंधों की कोटि में आता है। इसमें लालित्य का गुण है, प्रवाह है, सहजता से गूढ़ार्थ को अभिव्यक्ति मिली है। ललित निबंधों की कसौटी पर यह खरा उतरता है या नहीं, यह परखने के लिए डॉ. शशिप्रभा पांडेय द्वारा 'निबंध तथा अन्य विधाएं' में भूमिका के अंतर्गत दी गई ललित निबंधों की विशेषताओं पर एक दृष्टि डाली जा सकती है। वे लिखती हैं– "ललित निबंधों में इतिहास, पुरातत्व, दर्शन, वनस्पति, पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि से संबंधित गूढ़, गंभीर एवं सरस, मनोरंजक विषय के विवेचन के साथ ही साथ विचारणा एवं भावना को कल्पना के माध्यम से इस भांति एकरस कर दिया जाता है कि एक के अंत और दूसरे के अथ का कहीं कोई पता ही नहीं चलता। ललित निबंधों की प्रमुख विशेषता उनके लालित्यपूर्ण पद विन्यास तथा लयात्मक भाव और विचार में देखी जा सकती है। व्यक्तित्व की अभिव्यंजना ललित निबंधों का प्राण तत्व है। इसी वैशिष्ट्य के कारण शिल्प या संरचना और गठन आदि की दृष्टि से ये निबंध साहित्य की अन्य विधाओं से पूर्णतः अलग माने जाते हैं।" इस दृष्टि से 'हृदय' निबंध की समीक्षा करें तो यह ललित निबंधों की कोटि में आएगा तथा इस कसौटी पर खरा उतरता है।

'हृदय' निबंध में पं. बालकृष्ण भट्ट का पांडित्य झलकता है। उन्होंने इसमें कोमलकांत पदावली, गूढ़, शब्द गुम्फित भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने विषय को स्पष्ट करने के लिए सुंदर उदाहरणों का प्रयोग किया है। जैसे– "सहज अधीर, स्वभावतः चंचल मृदु बालक जब बड़े आग्रह से मचल कर धूलि में लोटते हैं वा किसी नई सीखी बात को बाल स्वभाव से दुहाराते हैं उस काल उनके मुंह–मुकुर पर जो मनोहर छवि छाती है वह आपके हृदय पर कितना प्रेम उपजाती है।"

पं. भट्ट जी की भाषा में संस्कृत, हिंदी एवं लोक भाषा के शब्दों का समन्वय है इसलिए यह अत्यंत रोचक, सहज एवं सुबोध लगती है। वाक्यों में सरसता है अतः पाठक इस रस के प्रवाह के साथ चलता है। भट्ट जी ने 'हृदय' जैसे अत्यंत गूढ़ और अत्यंत सहज दो विरोधी गुणों के समन्वित अद्भुत पदार्थ को व्याख्यायित करने के लिए लोक से

टिप्पणी

वेदों तक की यात्रा की है। वे सुस्पष्ट तर्क एवं उदाहरण देकर अपनी बात की सत्यता को सिद्ध करते हैं। संस्कृत के वाक्यों एवं श्लोकों का प्रयोग अनके बहुपठ होने के तथ्य को स्पष्ट करता है साथ ही विषय की गरिमा में वृद्धि करता है। पं. बालकृष्ण भट्ट 'हृदय' निबंध में भर्तृहरि के वाक्य 'हृदिस्वच्छावृत्तिः श्रुतमधिगतैकवृतफलम्' को उद्धृत कर प्रशंसा पाने वाले स्वच्छ हृदय एवं कान की विशेषता बताते हैं। उन्होंने संस्कृत के साथ अंग्रेजी, तद्भव, उर्दू, देशज शब्दों का प्रयोग करके कथ्य की रोचकता में वृद्धि की है। जैसे– फोटू उतर जाना, धो–धुवाकर, जल्द फहम्, चिंता–कीट, बिछुरे आदि शब्द भाषा वैविध्य को दर्शाते हैं।

पं. बालकृष्ण भट्ट ने ललित निबंध की रचना का जब श्रीगणेश किया तब ललित निबंधों की कोई कसौटी या पैमाना गठित नहीं था। यह युग हिंदी भाषा के, हिंदी गद्य के आरंभ का युग था। अतः हिंदी भाषा और गद्य का परिष्कृत लेखन करते हुए भट्ट जी ने 'हृदय' निबंध में या अन्य ललित निबंधों में जो भी प्राचीन एवं नवीन सिद्धांतों का प्रयोग किया, जिस तरह की सरसता, प्रवाहमयता के साथ गूढ़ वैचारिक दृष्टिकोणों को सरलता से प्रस्तुत किया वे स्वयं आगामी रचनाओं के लिए एवं रचनाकारों के लिए कसौटी बन गए। भट्ट जी का मानवीय दृष्टिकोण तथा लोकहित, देशहित, उद्देश्य था। अतः वे जो भी लिखते उसके केंद्र में मनुष्य जीवन का सुख और सौंदर्य ही होता था अतः कोमलकांत पदावली, वाक्यावलि का आना स्वाभाविक था। वे भारत के सांस्कृतिक गौरव, सामाजिक परंपराओं, नैतिक एवं धार्मिक पक्ष की प्रतिष्ठा पर विशेष ध्यान देते थे। यह बात 'हृदय' निबंध की उपदेशात्मकता से सिद्ध हो जाती है। वे दशरथ पुत्र रामचंद्र जी के सौंदर्य का उदाहरण रामचरितमानस से देते हैं तथा आगे उनकी विनम्रता, सहनशीलता एवं मार्यादा का उदाहरण देते हुए नयी पीढ़ी को उनके जैसा माता–पिता का आज्ञापालक एवं मर्यादावान बनने की सीख देते हैं। उन्होंने दयानंद सरस्वती जैसा परोपकारी बनने की भी अपेक्षा नयी पीढ़ी से की है वे 'हृदय' को समस्त अच्छे–बुरे गुणों का आगार मानते हुए यह सिद्ध करते हैं कि सतोगुणी हृदय वाला सदाशयी होकर यश प्राप्त करता है एवं सदाशयी मनुष्यों का ही जीवन सार्थक होता है। भट्ट जी मनुष्य का अपने ही 'हृदय' से परिचय कराते हैं। आत्मावलोकन के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी भाषा में गहन अनुसंधान के दर्शन होते हैं तथा वे जमीन से जुड़े सच्चे धरती पुत्र भी दिखाई देते हैं।

'हृदय' निबंध का लालित्य सुंदर कहावतों एवं मुहावरों के प्रयोग से बढ़ गया है। जैसे– 'क्या तुम्हारे हिए की भी फूटी है', 'हृदय सिकुड़ कर सोंठ की गिरह हो जाना', 'बाल की खाल निकाल कर झींगुरों की मुस्कें बांधना' आदि निबंध की रोचकता को बढ़ाते हैं। 'हृदय' की विशालता को व्यक्त करने के लिए उनका कहना है–देखने में तो इसमें तीन अक्षर हैं पर तीनों लोक और चौदहों भुवन इस तिहर्फी (अक्षर) शब्द के भीतर एक भुनगे की नाईं दबे पड़े हैं।" यह वाक्य 'हृदय' की महिमा को अत्यंत सटीक एवं मनोरंजकता के साथ सुपुष्ट करता है। भट्ट जी ने यह निबंध अत्यंत तन्मयता के साथ लिखा है, इसमें रस, भाव, कल्पना और व्यावहारिकता का सुंदर समन्वय है। भट्ट जी के निबंधों का लालित्य उनकी व्यंग्यात्मकता, स्पष्टवक्ता होने के गुण और लोक जीवन के प्रति उनकी गहन–सूक्ष्म दृष्टि को उजागर करता है। मौलिकता और ताजगी उनके निबंधों की विशेषता है। उनकी व्यापक जीवन दृष्टि और काल की गति पर उनका चिंतन, जीवन की शाश्वत और नश्वर उपलब्धियों पर उनका चिंतन उनके उदार हृदयी होने को दर्शाता है। भट्ट जी का व्यक्तित्व उनके

टिप्पणी

निबंधों में, उनकी स्थापित मान्यताओं में दिखाई देता है। भारतेंदु युग में सबसे बड़ी आवश्यकता जन–जागरण की थी। अंग्रेजों की पराधीनता से छुटकारा पाने के लिए जनता को शिक्षित एवं संस्कारित कर सदाशयी बनाना था। ऐसे में 'हृदय' निबंध की रचना का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि यह सामान्य जन को भी 'हृदय' को सतोगुण, रजोगुण से संपन्न कर उदार एवं कर्मशील बनाने को प्रेरित करता है। राम का उदाहरण स्मरण कराता है कि रावण रूपी अंग्रेज से लोहा लेना है। पराधीनता में जब अपनों से भी स्पष्ट बात करने का अवसर न हो तब संकेतों में समझाना ही एक मात्र उपाय होता था। यह निबंध इस उद्देश्य को सफलतापूर्वक संपन्न करता है। इसकी प्रासंगिकता इस इक्कीसवीं सदी में भी उतनी ही है जितनी इसके रचनाकाल में थी।

पं. बालकृष्ण भट्ट की रचनात्मकता सराहनीय, सार्थक एवं उपयोगी है। उनके ललित निबंधों में प्राकृतिक माधुर्य है। अकृत्रिम भाव–भंगिमा ने इन्हें रमणीय बना दिया है। जब वे 'चंचल कुरंग को पकड़ने के लिए भोले कछुए के बच्चे को छोड़ने' की बात करते हैं तब हृदय की गति का भान तीव्रता से होता है। मन की, हृदय की गति को, तीव्रता को भला कोई जान पाया है। यह असंभव तथ्य वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह– "युगल दंत की शुभ्रोज्ज्वल खूंटियों से शोभित श्याम मस्तक वाले मदश्रावी मातंग को कच्चे सूत के धागे से बांध रखने का प्रयत्न करना।" अत्यंक रोचक उदाहरण है। भट्ट जी की हास–परिहास की प्रवृत्ति, चुटकी लेने की प्रवृत्ति तथा बातों–बातों में झलकता गहन पांडित्य इस निबंध में दृष्टिगोचर होता है। उनकी काव्यात्मक अलंकारिक भाषा उनके शास्त्रीय पक्ष के दर्शन कराती है। पं. बालकृष्ण भट्ट अपने समकालीन निबंधकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनका चिंतन पक्ष परवर्तियों के लिए प्रेरणा बना। तत्कालीन ललित निबंधों में 'हृदय' निबंध का विशेष महत्व का स्थान है– "बस प्यारो, यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार हृदयों का अनुकरण करो, ऐसे ही हृदय दूसरों के हृदय में क्षमा, दया, शांति, तितिक्षा, शील, सौजन्यता, सच्ची आस्तिकता और उदारता का वीर्यारोपण करने में योग्य होते हैं और सच्चे सुदृढ़ कहाते हैं।" पं. बालकृष्ण भट्ट एक सफल ललित निबंधकार माने जाते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. आधुनिक हिंदी निबंध, पत्रकारिता एवं आलोचना का जनक किसे माना जाता है?
2. बालकृष्ण भट्ट का पहला निबंध संग्रह कौन–सा है और कब प्रकाशित हुआ?
3. किसके निबंधों की भाषा को बढ़िया रसगुल्लों की तरह रस से भरी भाषा की संज्ञा दी गई है?
4. हृदय किस श्रेणी का निबंध है?
5. भट्ट जी के अनुसार किस गुण से युक्त हृदय सराहनीय होता है?
6. हृदय में लेखक ने नयी पीढ़ी को किसकी तरह विनम्र सहनशील और मर्यादावान बनने को कहा है?
7. 'हृदय' में नयी पीढ़ी से किस महापुरुष की तरह परोपकारी बनने की अपेक्षा की गई है?

4.3 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था – रामचंद्र शुक्ल

'काव्य में ...' का प्रणयन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। इस निबंध का अध्ययन करने से पहले उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जानते हैं–

4.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिला के अगोना गांव में हुआ था। बाल्यकाल में ही शुक्ल जी ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। जब इंटरमिडियेट कर रहे थे तब अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। इसी दौरान आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियां जागीं। छब्बीस वर्ष की आयु में 'हिंदी शब्दसागर' के सहकारी संपादक नियुक्त हुए तथा नौ वर्षों तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संपादक भी रहे। आचार्य शुक्ल हिंदू विश्वविद्यालय, काशी में हिंदी विभाग के अध्यापक नियुक्त हुए तथा बाद में विभागाध्यक्ष भी बना दिए गए। सन् 1937 तक आप हिंदू विश्वविद्यालय में रहे। तत्पश्चात अवकाश ग्रहण

कर साहित्यिक सेवा में जीवन समर्पित कर दिया। सन् 1940 में छप्पन वर्ष की आयु में शुक्ल जी का देहावसान हुआ।

टिप्पणी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल निबंधकार, इतिहासकार, कवि, कोषकार एवं अनुवादक भी थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में आचार्यवत् योगदान किया। इनकी रचनाओं में पांडित्य, गंभीरता और मननशीलता के दर्शन होते हैं। शुक्ल जी ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। जैसे– सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी पर निबंधात्मक आलोचनाएं अत्यंत सतर्क एवं मनोवैज्ञानिक हैं। बुद्ध चरित, हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि भाग–एक, दो आदि शुक्ल जी की मुख्य कृतियां हैं जो साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान रखती हैं। शुक्ल जी ने समीक्षा के जो मानदंड निर्धारित किये हैं वे आज भी प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी रहेंगे। आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व में उनका अध्यापकीय रूप झलकता है। उन्हें हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। वे बहुपठ थे। जीवन, प्रकृति एवं साहित्य के उपासक थे। मानवतावादी शुक्ल जी की लोकमंगल की भावना उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। वे कवि हृदय होने के कारण अत्यंत भावुक व्यक्ति थे। देश प्रेम एवं प्रकृति प्रेम उनमें कूट–कूट कर भरा था। वे समन्यवादी दृष्टिकोण रखते थे। विवेकशील, तर्कशील होने के साथ वे स्वच्छंद चिंतन परक मंनुष्य थे। लोक कल्याण, लोकमंगल के लिए ही उनका संपूर्ण लेखन समर्पित था।

4.3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था–मूल पाठ

(तदेजति तन्नैजति–ईशावस्योपनिषद्)

आत्मबोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवा न की; भावना दोनों को एक ही मानकर चलती रही। इस जगत् के बीच जिस आनन्द–मंगल की विभूति का साक्षात्कार होता रहा उसी दृश्य के स्वरूप को नित्य और चरम भावना द्वारा भक्तों के हृदय में भगवान् के स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। लोक में इसी स्वरूप के प्रकाश को किसी ने 'राम–राज्य' कहा किसी ने 'आसमान की बादशाहत'। यद्यपि मूसाइयों और उनके अनुगामी ईसाइयों की धर्म–पुस्तक में आदम को खुदा की प्रतिमूर्ति बताया गया, परं लोक के बीच नर में नारायण की दिव्य कला का सम्यक् दर्शन और उसके प्रति हृदय का पूर्ण निवेदन भारतीय भक्तिमार्ग में ही दिखायी पड़ा।

सत्, चित् और आनन्द – ब्रह्म के उन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्ति–मार्ग, 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी – साधनावस्था और सिद्धावस्था। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म के 'आनन्द' स्वरूप का सतत आभास नहीं रहता, उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। इस जगत् में न तो सदा और सर्वत्र लहलहाता वसंत–विकास रहता है, न सुख–समृद्धि–पूर्ण हास–विलास। शिशिर के आतंक से सिमटी और झोंके झेलती वनस्थली की खिन्नता और हीनता के बीच से ही क्रमशः आनन्द की अरुण आभा धुँधली–धुँधली फूटती हुई अंत में वसंत की पूर्ण प्रफुल्लता और प्रचुरता के रूप में फैल जाती है; इसी प्रकार लोक की पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार के बीच दबी हुइ आनन्द–ज्योति भीषण शक्ति में परिणत होकर अपना मार्ग निकालती है और फिर लोकमंगल और लोकरंजन के रूप में अपना प्रकाश करती है।

टिप्पणी

कुछ कवि और भक्त तो जिस प्रकार आनंद–मंगल के सिद्ध या आविर्भूत स्वरूप को लेकर सुख–सौन्दर्यमय, माधुर्य, सुषमा, विभूति, उल्लास, प्रेम–व्यापार इत्यादि उपभोग–पक्ष की ओर आकर्षित होते हैं उसी प्रकार आनन्द–मंगल की साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को लेकर पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संचरण में भी। उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा इत्यादि की गतिविधि में भी पूरी रमणीयता देखते हैं। वे जिस प्रकार प्रकाश को फैला हुआ देखकर मुग्ध होते हैं उसी प्रकार फैलने के पूर्व उसका अन्धकार को हटाना देखकर भी। ये ही पूर्ण कवि हैं, क्योंकि जीवन की अनेक परिस्थितियों के भीतर ये सौंदर्य का साक्षात्कार करते हैं। साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को ग्रहण करनेवाले कुछ ऐसे कवि भी होते हैं जिनका मन सिद्धावस्था या उपभोग–पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण। इसी प्रकार कुछ कवि या भावुक आनन्द के केवल सिद्धस्वरूप या उपभोग–पक्ष में ही अपनी वृत्ति रमा सकते हैं। उनका मन सदा सुख–सौंदर्यमय, माधुर्य, दीप्ति, उल्लास, प्रेम–क्रीड़ा इत्यादि के प्राचुर्य ही की भावना में लगता है। इसी प्रकार की भावना या कल्पना उन्हें कला–क्षेत्र के भीतर समझ पड़ती है।

उपर्युक्त दृष्टि से हम काव्यों के दो विभाग कर सकते हैं–

1. आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न–पक्ष को लेकर चलनेवाले।
2. आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग–पक्ष को लेकर चलनेवाले।

डंटन (Theodore Watts-Dunton) ने जिसे शक्ति काव्य (Poetry as an energy) कहा है वह हमारे प्रथम प्रकार के अंतर्गत आ जाता है जिसमें लोक–प्रवृत्ति को परिचालित करनेवाला प्रभाव होता है, जो पाठकों या श्रोताओं के हृदय में भावों की स्थायी प्रेरणा उत्पन्न कर सकता है। पर डंटन ने शक्ति–काव्य से भिन्न को जो कला–काव्य (Poetry as an art) कहा है वह कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानकर। वास्तव में कला की दृष्टि दोनों प्रकार के काव्यों में अपेक्षित है। साधनावस्था या प्रयत्न–पक्ष को लेकर चलनेवाले काव्यों में भी यदि कला में चूक हुई तो लोकगति को परिचालित करनेवाला स्थायी प्रभाव न उत्पन्न हो सकेगा। यहीं तक नहीं व्यंजित भावों के साथ पाठकों की सहानुभूति या साधरणीकरण तक, जो रस की पूर्ण अनुभूति के लिए आवश्यक है, न हो सकेगा। यदि 'कला' का वही अर्थ लेना है जो कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं में है– अर्थात मनोरंजन या उपभोग–मात्र का विधायक– तो काव्य के संबंध में दूर ही से इस शब्द को नमस्कार करना चाहिए। काव्य–समीक्षा में फरांसीसियों की प्रधानता के कारण इस शब्द को इसी अर्थ में ग्रहण करने से योरप से काव्य–दृष्टि इधर कितनी संकुचित हो गई, इसका निरूपण हम किसी अन्य प्रबंध में करेंगे।

आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न–पक्ष को लेकर चलनेवाले काव्यों के उदाहरण– रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपालवध, किरतार्जुनीय। हिंदी में रामचरित्रमानस, पद्मावत (उत्तरार्द्ध), हम्मीररासो, पृथ्वीराज रासो, छत्रप्रकाश इत्यादि प्रबंधकाव्य; भूषण आदि कवियों के वीररसात्मक मुक्तक तथा आल्हा आदि प्रचलित वीरगाथात्मक गीत, उर्दू के वीररसात्मक मरसिये। योरपीय भाषाओं में इलियड, ओडेसी, पैराडाइज लास्ट, रिवोल्ट ऑफ इसलाम इत्यादि प्रबंध काव्य पुराने बैलड्स (Ballads)।

आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग–पक्ष को लेकर चलनेवाले काव्यों के उदाहरण हैं– आर्यासप्तशती, गाथा सप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द तथा शृंगाररस के फुटकल

टिप्पणी

पद्य। हिंदी में सूरसागर, कृष्ण–भक्त कवियों की पदावली, बिहारी–सतसई, रीतिकाल के कवियों में फुटकल शृंगारी पद्य, रास–पंचाध्यायी ऐसे वर्णनात्मक काव्य तथा आजकल की अधिकांश छायावादी कविताएं, फारसी उर्दू के शेर और गजलें। अंग्रेजी की लिरिक (Lyrics) कविताएं तथा कई प्रकार की वर्णनात्मक कविताएं।

आनन्द की साधनावस्था

लोक में फैली हुई दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचंडता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौंदर्य है जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामंजस्य का और कई रूपों में भी दर्शन होता है। किसी कोट–पतलून–हैटवाले को धाराप्रवाह संस्कृत बोलते अथवा किसी पंडित–वेशधारी सज्जन को अंग्रेजी की प्रगल वक्तृता देते सुन कर व्यक्तित्व का जो एक चमत्कार–सा दिखाई पड़ता है उसकी तह में भी सामंजस्य का यही सौंदर्य समझना चाहिए। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचंडता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौंदर्य है। आदि–कवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौंदर्य के उद्‌घाटन महोत्सव का दिव्य संगीत है। सौंदर्य का यह उद्‌घाटन असौंदर्य का आवरण हटाकर होता है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फटती है। इससे कवि हमारे सामने असौंदर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है; रोष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है। पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार भीतर–भीतर आनन्द–काल के विकास में ही योग देते पाये जाते हैं। यदि किसी ओर उन्मुख ज्वलन्त रोष है तो उसके और सब ओर करुण दृष्टि फैली दिखाई पड़ती है। यदि किसी ओर ध्वंस और हाहाकार है तो और सब ओर उसका सहगामी रक्षा और कल्याण है। व्यास ने भी अपने 'जयकाव्य' में अधर्म के पराभव और धर्म की जय का सौंदर्य प्रत्यक्ष किया था।

वह व्यवस्था या वृत्ति, जिससे लोक में मंगल का विधान होता है 'अभ्युदय' की सिद्धि होती है, धर्म है। अतः अधर्म–वृत्ति को हटाने में धर्म–वृत्ति की तत्परता– चाहे वह उग्र और प्रचंड हो, चाहे कोमल और मधुर– भगवान् की आनन्द–कला के विकास की ओर बढ़ती हुई गति है। यह गति यदि सफल हुई तो 'धर्म की जय' कहलाती है। इस गति में भी सुंदरता है और इसकी सफलता में भी। यह बात नहीं है कि जब यह गति सफल होती है तभी इसमें सुंदरता आती है। गति में सुंदरता रहती ही है; आगे चलकर चाहे यह सफल हो, चाहे विफल। विफलता में भी एक निराला ही विषण्ण सौंदर्य होता है। तात्पर्य यह कि यह गति आदि से अंत तक सुंदर होती है– अंत चाहे सफलता के रूप में हो चाहे विफलता के। उपर्युक्त दोनों आर्ष कवियों ने पूर्णता के विचार से धर्म की गति का सौंदर्य दिखाते हुए उसका सफलता में पर्यवसान किया है। ऐसा उन्होंने उपदेशक की बुद्धि से नहीं किया है; धर्म की जय के बीच भगवान् की मूर्ति के साक्षात्कार पर मुग्ध होकर किया है। यदि राम द्वारा रावण का वध तथा कृष्ण के साहार्य द्वारा जरासंध और कौरवों का दमन न हो सकता तो भी रामकृष्ण की गतिविधि में पूरा सौंदर्य रहता, पर उनमें भगवान् की पूर्ण कला का दर्शन न होता, क्योंकि भगवान् की शक्ति अमोघ है।

टिप्पणी

आनन्द–कला के प्रकाश की ओर बढ़ती हुई गति की विफलता में भी सौंदर्य का दर्शन करनेवाले अनेक कवि हैं। अंग्रेजी कवि शैली संसार में फैले पाषण्ड, अन्याय और अत्याचार के दमन तथा मनुष्य–मनुष्य के बीच सीधे सरल प्रेमभाव के सार्वभौम संसार का स्वप्न देखनेवाले कवि थे। उनके 'इस्लाम का विप्लव' (The Revolt of Islam) नामक द्वादशसर्ग–बद्ध महाकाव्य में मनुष्य जाति के उद्धार में रत नायक और नायिका (Laon and Cythna) में मंगल शक्ति के अपूर्व संचय की छटा दिखाकर तथा उनके द्वारा एक बार दुर्दान्त अत्याचार के पराभव के मनोरम आभास से अनुरंजित करके अंत में उस शक्ति की विफलता की विषादमयी छाया से लोक को फिर आवृत्त दिखाकर छोड़ दिया गया है।

जैसे ऊपर कह आये हैं, मंगल–अमंगल के द्वंद्व में कवि लोग अंत में मंगल शक्ति की जो सफलता दिखा दिया करते हैं उसमें सदा शिक्षावाद (Didacticism) या अस्वाभाविकता की गंध समझकर नाक–भौं सिकोड़ना ठीक नहीं। अस्वाभाविकता तभी आएगी जब बीच का विधान ठीक न होगा अर्थात जब प्रत्येक अवसर पर सत्पात्र सफल और दुष्ट पात्र विफल या ध्वस्त दिखाए जाएंगे पर सच्चे कवि ऐसा कभी नहीं करते। इस जगत् में अधर्म प्रायः दुर्दमनीय शक्ति प्राप्त करता है जिसके सामने धर्म की शक्ति बार–बार उठकर व्यर्थ होती रहती है। कवि जहां मंगलशक्ति की सफलता दिखाता है वहां कला की दृष्टि से सौंदर्य का प्रभाव डालने के लिए; धर्म–शासक की हैसियत से डराने के लिए नहीं कि यदि ऐसा कर्म करोगे तो ऐसा फल पाओगे। कवि कर्म–सौंदर्य के प्रभाव द्वारा प्रवृत्ति या निवृत्ति अंतःप्रकृति में उत्पन्न करता है, उसका उपदेश नहीं देता।

कवि सौंदर्य से प्रभावित रहता है और दूसरों को भी प्रभावित करना चाहता है। किसी रहस्मयी प्रेरणा से उसकी कल्पना में कई प्रकार के सौंदर्यों का जो मेल आप से आप हो जाया करता है उसे पाठक के सामने भी वह प्रायः रख देता है जिस पर कुछ लोग कह सकते हैं कि ऐसा मेल क्या संसार में बराबर देखा जाता है। मंगल–शक्ति के अधिष्ठान राम और कृष्ण जैसे पराक्रमशाली और धीर हैं वैसा ही उनका रूप–माधुर्य और उनका शील भी लोकोत्तर है। लोक–हृदय आकृति और गुण, सौंदर्य और सुशीलता एक ही अधिष्ठान में देखना चाहता है। इसी से 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' सामुद्रिक की यह उक्ति लोकोक्ति के रूप में चल पड़ी। 'नैषध' में नल हंस से कहते हैं–

न तुला–विषये तवाकृतिर्न बचो वर्त्मनि ते सुशीलता।
त्व दुदाहरणऽकृतौ गुण इति सामुद्रिक–सार–मुद्रणा।।

भीतरी और बाहरी सौंदर्य, रूप–सौंदर्य और कर्म–सौंदर्य के मेल की यह आदत धीरोदात्त आदि भेद–निरूपण से बहुत पुरानी है और बिलकुल छूट भी नहीं सकती। यह हृदय की एक भीतरी वासना की तुष्टि के हेतु कला की रहस्यमयी प्रेरणा है। 19वीं शताब्दी के कवि शैली– जो राजशासन, धर्म–शासन, समाज–शासन आदि सब प्रकार की शासन व्यवस्था के घोर विरोधी थे– इस प्रेरणा से पीछा न छुड़ा सके। उन्होंने भी अपने प्रबंध काव्यों में रूप सौंदर्य और कर्म सौंदर्य का ऐसा ही मेल किया है। उनके नायक (या नायिका) जिस प्रकार पीड़ा, अत्याचार आदि से मनुष्य जाति का उद्धार करने के लिए अपना प्राण तक उत्सर्ग करनेवाले, घोर से घोर कष्ट और यंत्रणा से मुंह न मोड़नेवाले, पराक्रमी, दयालु और धीर हैं, उसी प्रकार रूप–माधुर्य–संपन्न भी।

टिप्पणी

आज भी किसी कवि से राम की शारीरिक सुंदरता कुंभकर्ण को और कुंभकर्ण की कुरूपता राम को न देते बनेगी। माईकेल मधुसूदन दत्त ने मेघनाद को अपने काव्य का रूप–गुण संपन्न नायक बनाया पर लक्ष्मण को वे कुरूप न कर सके। उन्होंने जो उलट–फेर किया, वह कला या काव्यानुभूति को किसी प्रकार की प्रेरणा से नहीं, बल्कि एक पुरानी धारणा तोड़ने की बहादुरी दिखाने के लिए, जिसका शौक किसी विदेशी नई शिक्षा के पहले पहल प्रचलित होने पर प्रायः सब देशों में कुछ दिन रहा करता है। इसी प्रकार बंगभाषा के एक दूसरे कवि नवीनचंद्र ने अपने 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य में कृष्ण का आदर्श ही बदल दिया है। उसमें वे ब्राह्मणों के अत्याचार से पीड़ित जनता के उद्धार के लिए उठ खड़े हुए एक क्षत्रिय महात्मा के रूप में अंकित किये गए हैं। अपने समय में उठी हुई किसी खास हवा की झोंक में प्राचीन आर्ष काव्यों के पूर्णतया निर्दिष्ट स्वरूपवाले आदर्श पात्रों को एकदम कोई नया मनमाना रूप देना भारती के पवित्र मंदिर में व्यर्थ गड़बड़ मचाना है।

शुद्ध मर्मानुभूति द्वारा प्रेरित कुशल कवि भी प्राचीन आख्यानों को बराबर लेते आए हैं और अब भी लेते हैं। वे उनके पात्रों में अपनी नवीन उद्भावना का, अपनी नई कल्पित बातों का बराबर आरोप करते हैं, पर वे बातें उन पात्रों के चिर प्रतिष्ठित आदर्शों के मेल में होती हैं। केवल अपने समय की परिस्थिति विशेष को लेकर जो भावनाएं उठती हैं उनके आश्रय के लिए जब कि नये आख्यानों और नये पात्रों की उद्भावना स्वच्छंदतापूर्वक की जा सकती है तब पुराने आदर्शों को विकृत या खंडित करने की क्या आवश्यकता है?

कर्म–सौंदर्य के जिस स्वरूप पर मुग्ध होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जिसका विधान कवि परंपरा बराबर करती चली आ रही है, उसके प्रति उपेक्षा प्रकट करने और कर्म–सौंदर्य के एक दूसरे पक्ष में ही केवल प्रेम और भ्रातृभाव के प्रदर्शन और आचरण में ही काव्य का उत्कर्ष मानने का जो एक नया फैशन टाल्सटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है। दीन और असहाय जनता को निरंतर पीड़ा पहुंचाते चले जानेवाले क्रूर आततायियों को उपदेश देने, उनसे दया की भिक्षा मांगने और प्रेम जताने तथा उनकी सेवा–शुश्रुषा करने में ही कर्तव्य की सीमां नहीं मानी जा सकती, कर्मक्षेत्र का एकमात्र सौंदर्य नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौंदर्य के विकास में दिखाई पड़ती है।

भावों की प्रक्रिया की समीक्षा से पता चलता है कि उदय से अस्त तक भाव मंडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश में (Conscious) रहता है और कुछ अंतस्संज्ञा के क्षेत्र (sub-conscious region) में छिपा रहता है। संसारी भावों के संचरण काल में कभी–कभी उनके स्थायी भाव कारण रूप में अंतस्संज्ञा के भीतर पड़ जाते हैं। रतिभाव में संचारी होकर आई हुई असूया या इर्ष्या ही को लीजिए। जिस क्षण में वह अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई होती है, उस क्षण में आश्रय को ही रति भाव की कोमल सत्ता का ज्ञान नहीं रहता, उस क्षण में उसके भीतर ईर्ष्या की तीक्ष्ण प्रतीत रहती है और बाहर ईर्ष्या के ही लक्षण दिखाई देते हैं। जिस प्रकार किसी आश्रय के भीतर कोई एक भाव स्थायी रहता है और अनेक भाव तथा अंतर्दशाएं उसके संचारी के रूप में आती हैं उसी प्रकार किसी प्रबंधकाव्य

टिप्पणी

के प्रधान पात्र में कोई मूल प्रेरक भाव या बीजभाव रहता है जिसकी प्रेरणा से घटना–चक्र चलता है और अनेक भावों के स्फुरण के लिए जगह निकलती चलती है। इस बीजभाव को साहित्य ग्रंथों में निरूपित स्थायी भाव और अंगीभाव दोनों से भिन्न समझना चाहिए।

बीजभाव द्वारा स्फुरित भावों में कोमल और मधुर–कठोर और तीक्ष्ण– दोनों प्रकार के भाव रहते हैं। यदि बीजभाव की प्रकृति मंगलकारी होती है तो उसकी व्यापकता और निर्विशेषता के अनुसार सारे प्रेरित भाव तीक्ष्ण और कठोर होने पर भी सुंदर होते हैं। ऐसे बीजभाव की प्रतिष्ठा जिस पात्र में होती है उसके सब भावों के साथ पाठकों की सहानुभूति होती है। अर्थात पाठक या श्रोता भी रसरूप में उन्हीं भावों का अनुभव करते हैं जिन भावों की वह व्यंजना करता है। ऐसे पात्र की गति में बाधा डालनेवाले पात्रों की उग्र या तीक्ष्ण भावों के साथ पाठकों का वास्तव में तादात्म्य नहीं होता, चाहे उनकी व्यंजना में रस या निष्पत्ति करनेवाले तीनों अवयव वर्तमान हों। राम यदि रावण के प्रति क्रोध या घृणा की व्यंजना करेंगे तो पाठक या श्रोता का भी हृदय उस क्रोध या घृणा की अनुभूति में योग देगा। इस क्रोध या घृणा में भी काव्य का पूर्ण सौंदर्य होगा। पर रावण यदि राम के प्रति क्रोध या घृणा की व्यंजना करेगा तो रस के तीनों अवयवों के कारण 'शास्त्र–स्थिति–संपादन' चाहे हो जाए पर उस व्यंजित भाव के साथ पाठक के भाव का तादात्म्य कभी न होगा। पाठक केवल चरित्र द्रष्टा मात्र रहेगा; उसका केवल मनोरंजन होगा; भाव में लीन करनेवाली प्रथम कोटि की रसानुभूति उसको न होगी।

ऊपर कहा गया है कि किसी शुभ बीजभाव की प्रेरणा से प्रवर्तित तीक्ष्ण और उग्र भावों की सुंदरता की मात्रा उस बीजभाव की निर्विशेषता और व्यापकता के अनुसार होती है। जैसे, यदि करुणा किसी व्यक्ति की विशेषता पर अवलंबित होगी कि पीड़ित व्यक्ति हमारा कुटुंबी मित्र आदि है तो उस करुणा के द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों में उतनी सुंदरता न होगी। पर बीजरूप अंतस्संज्ञा में स्थित करुणा यदि इस ढब की होगी कि इतने पुरवासी, इतने देशवासी या इतने मनुष्य पीड़ा पा रहे हैं तो उसके द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों का सौंदर्य उत्तरोत्तर अधिक होगा। यदि किसी काव्य में वर्णित दो पात्रों में से एक तो अपने भाई को अत्याचार और पीड़ा से बचाने के लिए अग्रसर हो रहा है और दूसरा किसी बड़े भारी जनसमूह की गति में बाधा डालनेवाले के प्रति, तो दोनों के प्रदर्शित क्रोध के सौंदर्य के परिणाम में बहुत अंतर होगा।

भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करनेवाले दो भाव ठहरते हैं– करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर उसके पीछे आता है। अतः साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलनेवाले काव्यों का बीज भाव करुणा ही ठहराता है। यदि इसे शायद अपने दो नाटकों में रामचरित को लेकर चलनेवाले महाकवि भवभूति ने 'करुण' को ही एकमात्र रस कह दिया। रामायण का बीजभाव करुणा है कि जिसका संकेत क्रौंच को मारने वाले निषाद के प्रति वाल्मीकि के मुंह से निकले वचन द्वारा आरंभ ही में मिलता है। उसके उपरांत भी बालकांड के 15वें सर्ग में इसका आभास दिया गया है जहां देवताओं ने ब्रह्मा से रावण द्वारा पीड़ित लोक की दारुण दशा का निवेदन किया है। उक्त आदि काव्य के भीतर लोकमंगल की शक्ति के उदय का आभास ताड़का और मारीच के दमन के प्रसंग में ही मिल जाता

टिप्पणी

है। पंचवटी से वह शक्ति जोर पकड़ती दिखाई देती है। सीताहरण होने पर उसमें आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा का भी योग्य हो जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि इस आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा बीच से प्रकट होकर उस विराट मंगलोन्मुखी गति में समन्वित हो जाती है। यदि राक्षसराज पर चढ़ाई करने का मूल कारण केवल आत्मगौरव या दम्पत्य प्रेम होता तो राम के 'कालाग्नि–सदृश क्रोध' में काव्य का वह लोकोत्तर सौंदर्य न होता। लोक के प्रति करुणा जब सफल हो जाती है, लोक जब पीड़ा और विघ्न–बाधा से मुक्त हो जाता है तब रामराज्य में जाकर लोक के प्रति प्रेम–प्रवर्तन का, प्रजा के रंजन का, उसके अधिकाधिक सुख के विधान का, अवकाश मिलता है।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेमभाव की कोमल व्यंजना में ही नहीं माना जा सकता जैसा कि टाल्सटाय के अनुयायी कुछ कलावादी कहते हैं। क्रोध आदि उग्र ओर प्रचंड भावों के विधान में भी, यदि उनकी तह में करुण भाव व्यक्त रूप में स्थित हो, पूर्ण सौंदर्य का साक्षात्कार होता है। स्वतंत्रता के उन्मत्त उपासक, घोर परिवर्तनवादी शेली के महाकाव्य 'The Revolt of Islam' के नायक–नायिका अत्याचारियों के पास जाकर उपदेश देनेवाले, गिड़गिड़ानेवाले, अपनी साधुता, सहनशीलता और शांत वृत्ति का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन करनेवाले नहीं हैं। वे उत्साह की उमंग में प्रचंड वेग से युद्ध क्षेत्र में बढ़नेवाले, पाषण्ड, लोकपीड़ा और अत्याचार देख पुनीत क्रोध के सात्विक तेज से तमतमानेवाले, भय या स्वार्थवश आतातायियों की सेवा स्वीकार करनेवालों के प्रति उपेक्षा प्रकट करने वाले हैं। शेली ने भी काव्यकला का मूलतत्व प्रेमभाव ही माना था, पर अपने को सुख–सौंदर्यमय माधुर्यभाव तक ही बद्ध न रखकर प्रबंध क्षेत्र में भी अच्छी तरह घुसकर भावों की अनेकरूपता का विन्यास किया था। स्थिर (Static) सौंदर्य और गत्यात्मक (dynamic) सौंदर्य, उपभोग–पक्ष और प्रयत्न–पक्ष दोनों उनमें पाए जाते हैं।

टाल्सटाय के मनुष्य–मनुष्य में भ्रातृ प्रेम संचार को ही एकमात्र काव्य तत्व कहने का बहुत कुछ कारण सांप्रदायिक था। इसी प्रकार कलावादियों का केवल कोमल और मधुर की लीक पकड़ना मनोरंजन मात्र की हल्की रुचि और दृष्टि की परिमिति के कारण समझना चाहिए। टाल्सटाय के अनुयायी प्रयत्न पक्ष को लेते अवश्य हैं पर केवल पीड़ितों की सेवा–शुश्रूषा की दौड़धूप, आततायियों पर प्रभाव डालने के लिए साधुता के लोकोत्तर प्रदर्शन, त्याग, कष्ट, सहिष्णुता इत्यादि में ही उसका सौंदर्य स्वीकार करते हैं। साधुता की इस मृदुल गति को वे 'अध्यात्मिक शक्ति' कहते हैं। पर भारतीय दृष्टि से हम इसे भी प्राकृतिक शक्ति मनुष्य की अंतः प्रकृति की सात्विक विभूति मानते हैं। विदेशी अर्थ में इस 'अध्यात्मिक' शब्द का प्रयोग हमारी देशभाषाओं में भी प्रचार पा रहा है। 'अध्यात्म' शब्द की, मेरी मसझ में, काव्य या कला के क्षेत्र में कोई जरूरत नहीं है।

पूर्ण प्रभविष्णुता के लिए काव्य में हम भी सत्वगुण की सत्ता आवश्यक मानते हैं, पर दोनों रूपों में दूसरे भावों की तह में अर्थात अंतस्संज्ञा में स्थित अव्यक्त बीजरूप में भी और प्रकाश रूप में भी। हम पहले कह आए हैं कि लोक में मंगल विधान की ओर प्रवृत्त करनेवाले दो भाव हैं– करुणा और प्रेम। यह भी दिखा आए हैं कि क्रोध, युद्धोत्साह आदि प्रचंड और उग्र वृत्तियों की तह में यदि इन दोनों में से कोई भाव बीजरूप में स्थित होगा, तभी सच्चा साधारणीकरण और पूर्ण सौंदर्य का प्रकाश होगा। उच्च दशा का प्रेम और करुणा दोनों सत्व

टिप्पणी

गुण प्रधान हैं। त्रिगुणों में सत्व गुण सबके ऊपर है। यहां तक कि उसकी ऊपरी सीमा नित्य पारमार्थिक सत्ता के पास तक व्यक्त और अव्यक्त की संधि तक जा पहुंचती है। इसी से शायद वल्लभाचार्य जी ने सच्चिदानंद के सत् स्वरूप का प्रकाश करनेवाली शक्ति की 'संधिनि' कहा है। व्यवहार में 'सत्' शब्द के दो अर्थ लिए जाते हैं– 'जो वास्तव में हो' तथा 'अच्छा या शुभ'।

जबकि अव्यक्तावस्था से छूटी हुई प्रकृति के व्यक्त स्वरूप जगत में आदि से अंत तक सत्व, रजस् और तमस् तीनों गुण रहेंगे तब समष्टि रूप में लोक के बीच मंगल का विधान करने वाली ब्रह्म की आनन्द–कला के प्रकाश की यही पद्धति हो सकती है कि तमोगुण और रजोगुण दोनों सत्व गुण के अधीन होकर उसके इशारे पर काम करें। इस दशा में किसी ओर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार काम करने पर भी समष्टि रूप में और सब ओर वे सत्व गुण के लक्ष्य की ही पूर्ति करेंगे। सत्व गुण के इस शासन में कठोरता, उग्रता और प्रचंडता भी सात्विक तेज के रूप में भासित होगी। इसी से अवतार रूप में हमारे यहां भगवान् की मूर्ति एक ओर तो 'वज्रादपि' कठोर और दूसरी ओर 'कुसुमादपि' मृदु रखी गयी है–

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।

4.3.3 निबंध शैली

आचार्य रामचंद्र शुक्ल युग निर्माता निबंधकार, साहित्यकार, इतिहासकार, समाजशास्त्री, मनोविज्ञानी हैं। निबंधों में उनके समीक्षा सिद्धांत आज भी कसौटी बने हुए हैं। शुक्ल जी ने शैली के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं। वे मुख्यतः विचारात्मक चिंतन प्रधान शैली को अपनाते हैं तथा उन विचारों के बीच भावात्मकता को भी अवकाश देते हैं। यह बुद्धि एवं हृदय का समन्वय ही उनकी शैली को विशिष्ट बनाता है। उनके गहन, गंभीर निबंधों में हास्य, व्यंग्य के छींटे भी दृष्टिगोचर होते हैं। शुक्ल जी के मनोविकार संबंधी निबंधों में उत्साह, श्रद्धा भक्ति, करुणा, लज्जा, घृणा, लोभ और प्रीति, ईर्ष्या, भय, क्रोध आदि भावों या मनोविकारों को स्थान मिला है। इन निबंधों में उन्होंने विश्लेषण करते हुए भावात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। समीक्षात्मक एवं सैद्धांतिक निबंधों में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। वे वर्णनात्मक शैली का उपयोग भी प्रचुरता से करते हैं। शुक्ल जी अपने विचारों को जन–सामान्य के स्तर पर रखकर परखने के पश्चात ही अभिव्यक्त करते हैं। उनके निबंधों में गंभीरता, स्पष्टता, वैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। अपने निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए वे सूत्रों की व्याख्याएं विस्तार से करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा अत्यंत प्रौढ़, प्रांजल एवं तत्सम प्रधान है। कभी–कभी यह पाठक को बोझिलता का अनुभव भी कराती है। किंतु विषय के अनुकूल भाषा एवं भावों की अभिव्यक्ति की उनकी अद्‌भुत क्षमता पाठक को विरत नहीं होने देती। विश्लेषण और विवेचन करते हुए वे बोधगम्य शब्दों, वाक्यों का प्रयोग करते हुए रोचक उदाहरण, कहावतें और मुहावरों का उपयोग करते हैं। डॉ. विजयेंद्र स्नातक कहते हैं– "शुक्ल जी की भाषा की सबसे महान और उल्लेखनीय विशेषता है, समर्थ एवं व्यंजक शब्दों का नूतन निर्माण।" शुक्ल जी ने निबंध रचना के साथ–साथ साहित्य समीक्षा के क्षेत्र को भी समृद्ध किया तथा समीक्षा सिद्धांतों का निर्माण करते हुए उन्होंने अनेक नये पारिभाषिक शब्द गढ़े। शुक्ल जी

टिप्पणी

के व्यक्तित्व की दृढ़ता, आत्मबल, नैतिकता उनके निबंधों में दिखाई देती है। बुद्धि एवं हृदय का सुंदर समन्वय उनके काव्यशास्त्रीय निबंधों में भी दिखाई देता है। उनकी शैली विषय को जीवंतता प्रदान करने में सक्षम है। शुक्ल जी के निबंधों में संघटित विचार परंपरा दिखाई देती है। इस परंपरा के अंतर्गत वे भावों एवं विचारों की कसावट को महत्व देते हैं तथा दोनों को परस्पर ऐसे गूंथ देते हैं कि पाठक सहज प्रवाह के साथ एक विचार से दूसरे विचार तक पहुंच जाता है। ऐसी प्रवाहमयता के बीच कोई भी शब्द या वाक्य इधर–उधर नहीं किया जा सकता। ऐसी प्रौढ़ता मुक्त शैली उनके लेखन को अद्‌भुत बनाती है। उदाहरण स्वरूप यह वाक्य लिया जा सकता है– "ऊबड़–खाबड़ पहाड़ी रास्तों में जब झाड़ियों के कांटे उसके शरीर में चुभते हैं तब उसमें सानिध्य का यह मधुर भाव बिना उठे नहीं रह सकता कि वे झाड़ उन्हीं प्राचीन झाड़ों के वंशज हैं जो राम, लक्ष्मण, सीता को कभी चुभे होंगे।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में विषयों की प्रधानता के साथ व्यक्ति प्रधानता भी है। वे लोक को साथ लेकर चलते हैं लेकिन कहीं भी उनकी शैली में प्रौढ़ता और प्रांजलता शिथिल नहीं होती। शैली रचनाकार के व्यक्तित्व का आईना होती है। हर रचनाकार की अपनी शैली होती है, जिसे पढ़ते ही पाठक के मनोमस्तिष्क में रचनाकार का नाम उभर आता है। शुक्ल जी की शैली विषय को विस्तार और गहनता से विश्लेषित करने के साथ ही उसे भावात्मकता बनाए रखने की अद्‌भुत कला से परिपूर्ण है। शुक्ल जी की भाषा शैली में भव्यता, विशालता और ओजस्विता की अनुभूति के कारण इसका रचना जगत में विशेष स्थान है। बाबू गुलाब राय कहते हैं– "उनके निबंधों में विषय को शाखा–प्रशाखाओं में ले जाकर उनकी विशद व्याख्या करने की निर्वैयक्तिकता है, किंतु यह निर्वैयक्तिकता इस कोटि तक नहीं पहुंचती है कि वह पुस्तक का अध्याय बन जाए। उसमें विषय प्रतिपादन के वैशिष्ट्य और ओजमयी शैली में अपने–अपने पक्ष समर्थन का उत्साह, उनकी एक सुखद वैयक्तिकता बौद्धिक तंतुओं में इतनी जकड़ी हुई है कि उसमें लेशमात्र भी विशृंखलता नहीं आने पाती।" तात्पर्य यह कि विषय को स्पष्ट करने के लिए शुक्ल जी वैयक्तिक बातों के उदाहरण देते हैं किंतु इससे विषय की सरसता, रोचकता, सौष्ठव बढ़ता ही है, घटना नहीं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में आगमन शैली एवं निगमन शैली दोनों का ही प्रयोग दिखाई देता है। आगमन शैली में विषय की व्याख्या एवं विवेचना करने के पश्चात निष्कर्ष के रूप में सूत्र प्रस्तुत किया जाता है, जबकि निगमन शैली में पहले सूत्र प्रस्तुत किया जाता है तत्पश्चात उसकी व्याख्या एवं विवेचना की जाती है। आचार्य शुक्ल मुख्य रूप से निगमन शैली का प्रयोग करते हैं। वे निगमन शैली के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। सूत्र रूप में अपने चिंतन–सिद्धांतों को प्रस्तुत करते हैं। जैसे– 'यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है।' आचार्य शुक्ल किसी भाव या मनोविकार की तुलना अन्य भाव या मनोविकार से करने के लिए तुलनात्मक शैली का प्रयोग करते हैं; जैसे– उत्साह और भय, लोभ और प्रीति, श्रद्धा और प्रेम आदि। यह उनकी शैली की एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण विशेषता है। आचार्य शुक्ल निबंध में या किसी विषय विशेष का विवेचन करते हुए उस स्थल पर दुरूहता या कठिनता देखते हैं तो 'सारांश यह है' कहकर पद को स्पष्ट करते हैं। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल के द्वारा किया गया विषय प्रतिपादन सौंदर्य से परिपूर्ण होता है। अनावश्यक भूमिकाएं बांधना, निरर्थक, बेमानी चर्चा करना उन्हें प्रिय नहीं है। उनके लेखन

टिप्पणी

की प्रौढ़ता इस बात में भी देखी जा सकती है कि उनकी छोटी–सी बात, छोटे–से वाक्य में भी गहन अर्थ छिपा होता है। 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', 'तुलसी का भक्ति मार्ग', 'मानस की धर्मभूमि' आदि ऐसे ही निबंध है जिनकी प्रौढ़ता सरसता एवं गूढ़ार्थ के साथ अत्यंत सुसंघटित रूप में प्रकट होती है।

आचार्य शुक्ल के निबंधों में परंपरागत काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की स्थापना हुई है इसलिए ये कभी–कभी जटिलता का बोध कराते हैं, तथा पाठक इन्हें नीरस और बोझिल समझ बैठता है। किंतु सूत्रों की व्याख्या करने के साथ–साथ इसका प्रवाह एवं सरसता पाठक को बांधने में सफल हो जाती है। शुक्ल जी के गंभीर निबंधों को समझने के लिए बौद्धिकता आवश्यक है। उनके निबंधों में साधारणीकरण, व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा रसात्मक बोध के विविध रूप मिलते हैं। शुक्ल जी विषय की विवेचना करने के लिए रोचक उदाहरण देते हैं, जिनमें हास्य, व्यंग्य एवं छींटाकशी दृष्टिगोचर होती है। वे विषय को रोचक बनाने के लिए कथाओं का समावेश भी करते हैं। प्रसंगानुकूल एवं अवसरानुकूल किसी पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक कथा को समाविष्ट कर बात को स्पष्ट भी कर देते हैं तथा विषय की सरसता एवं प्रवाह में वृद्धि होती है। वे विषय को बोधगम्य बनाने के लिए कथाओं को जिस तरह से उद्‌धृत करते हैं उससे विषय के अतिरिक्त भी ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे 'कविता क्या है?' में शुक्ल जी लिखते हैं– "मनुष्येतर बाह्य प्रकृति का इसी रूप में ग्रहण कुमार संभव के आरंभ तथा रघुवंश के बीच–बीच में मिलता है। नाटक यद्यपि मनुष्य की ही भीतरी–बाहरी प्रवृत्तियों के प्रदर्शन के लिए लिखे जाते हैं और भवभूति अपने मार्मिक और तीव्र आंतर्वृतिय विधान के लिए ही प्रसिद्ध हैं पर उनके उत्तर रामचरित में कहीं–कहीं बाह्य प्रकृति के ही बहुत सांग और संश्लिष्ट चित्र, खंड–चित्र पाए जाते हैं। पर मनुष्येतर बाह्य प्रकृति को जो प्रधानता मेघदूत से मिली है, वह संस्कृत के किसी और काव्य में नहीं।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा शैली अत्यंत समृद्ध है। उर्दू, अंग्रेजी, तद्‌भव, तत्सम शब्दों के साथ लोक भाषा में कहावतें, मुहावरे उनकी रचनात्मकता के प्रवाह तथा प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करते हैं। भावात्मक एवं विचारात्मक निबंधों में कहीं–कहीं फारसी की लोकोक्तियां भी दीख पड़ती हैं; जैसे 'मग अंबोह जश्ने दारद।' समीक्षात्मक निबंधों में भाषा की प्रौढ़ता अधिक होती है लेकिन उनमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य होता है। इन समीक्षात्मक निबंधों में वे उर्दू शब्दों का, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग कम करते हैं। शुक्ल जी की गठी हुई, मंजी हुई, प्रौढ़ भाषा विषय प्रतिपादन में सक्षम होती है। वे विषयानुकूल भाषा एवं शैली का प्रयोग करते हैं। 'चिन्तामणि' उनके निबंधों का संग्रह है जिसमें हृदय एवं बुद्धि की यात्रा साथ–साथ होती है। इनके निबंधों में भाव एवं विचारों की सुसंबद्धता तथा संघठनात्मकता अपूर्व है। विषय एवं व्यक्तित्व का मणिकांचन संयोग शुक्ल जी के निबंधों में दिखाई देता है। उनके निबंध हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' में वे गहन चिंतन के साथ तुलनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों की विचारधारा में तुलना करते हुए भारतीय चिंतन के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। इसमें सूत्रात्मक एवं विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। संस्कृत के शब्द अर्थात तत्सम शब्दों; जैसे– आत्मबोध, विभूति, नित्य, सम्यक् तथा उर्दू शब्दों; जैसे– आदिम, खुदा, आसमान की बादशाहत आदि के प्रयोग

ने निबंध को प्रौढ़ता, गंभीरता प्रदान करने के साथ विषय की रोचकता में वृद्धि की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल शुद्ध परिमार्जित भाषा एवं तार्किक शैली का भी प्रयोग प्रसंगानुकूल करते हैं।

टिप्पणी

4.3.4 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : प्रतिपाद्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस निबंध में काव्य को भाव योग मानकर उसे ज्ञान योग के समकक्ष प्रतिष्ठित कर उसे जनसमूह के लिए मंगलकारी एवं कल्याणकारी सिद्ध कर रहे हैं। उन्होंने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था पर बल दिया है। वे लोक की उपेक्षा करने वाले ज्ञान मार्ग की पक्षधरता नहीं करते बल्कि उस भक्ति मार्ग की पक्षधरता करते हैं जो अपनी उदारता, व्यापकता एवं सहजता से लोक का कल्याण करता है। शुक्ल जी मानते हैं कि ज्ञानमार्गियों ने आत्मबोध (ज्ञानमार्ग) एवं जगतबोध (लोक कल्याण) के बीच विशाल अंतर उत्पन्न किया। दोनों की दूरियां बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे किंतु हृदय की भावनाएं दोनों को एक मानकर चलती रहीं। आत्मज्ञानी कहते रहे कि इस संसार में रहकर वे कभी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते किंतु भक्तों का परम विश्वास है कि वे इस संसार में ही रहकर लोक कल्याण कर जीवन को सार्थक कर सकते हैं। भक्त लोक कल्याण की भावना को मूल मानकर इसी आनंद में नित्य मग्न रहता है तथा उस परम तत्व परमात्मा के ऐश्वर्य का साक्षात्कार कर आनंदित रहता है। अवतारों के रूप में वह जिस परम विभूति को अपने मध्य पाता है उसके उत्कृष्ट जन कल्याणकारी कार्यों को देखकर उसे अपने हृदय में स्थान दे देता है और स्वयं को उसके प्रति पूरे भक्ति भाव से समर्पित कर देता है। भक्तों ने जिन–जिन लोक मंगलकारी विधायक गुणों को उस तेजस्वी व्यक्तित्व में देखा, उन्हीं के अनुरूप उसने उनकी उपासना की, आराधना की। इस आनंददायी स्वरूप के अद्‌भुत कार्यों से किसी भारतीय ने इसे 'राम राज्य' कहा तो किसी ईसाई ने 'आसमान की बादशाहत'। पैगंबर मूसा के अनुयायी यहूदियों ने अपनी धर्म पुस्तक में आदम को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है या प्रतिमूर्ति माना है किंतु भारतीय भक्ति मार्ग में उस परम तत्व को ईश्वर का अवतार कहा गया है। भारतीय साहित्य में सूर और तुलसी ने अपने आराध्य राम कृष्ण को लोक के मध्य मानव की तरह देखा तथा नर में नारायण की दिव्य कला के दर्शन किये। इसीलिए शुक्ल जी भक्ति मार्ग को महत्वपूर्ण प्रतिपादित करते हैं।

शुक्ल जी कहते हैं– ब्रह्म के तीन रूप हैं– सत्, चित् और आनंद। काव्य में एवं भक्ति में 'आनंद' को महत्व दिया गया है। आनंद की अभिव्यक्ति की दो दशाएं हैं– (1) साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले, (2) सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले।

शुक्ल जी कहते हैं कि अभिव्यक्ति का क्षेत्र हो या लोक, आनंद सदैव स्थायी नहीं रहता, आता जाता रहता है। संसार में सुख रूपी वसंत हो, समृद्धि हो, हास, विलास हो यह सब सदैव नहीं रहते। शिशिर के आतंक से खिन्न वनस्थली में पतझर के बाद नई कोंपलें फूटती हैं एवं वसंत की छटा चहुं ओर व्याप्त हो जाती है। इसी तरह संसार में अन्याय, पीड़ा, अत्याचार के घनी कालिमा के बीच से ही आनंद की ज्योति फूटती है तथा लोक मंगल और लोकरंजन का प्रकाश फैलाती है। कुछ कवि एवं भक्त आनंद की सिद्धावस्था यानी सौंदर्य, सुख, उल्लास, प्रेम, सफलता की ओर आकर्षित होते हैं लेकिन कुछ इस सिद्धि को

टिप्पणी

पाने के पहले प्रयत्न पक्ष अर्थात साधना करने के पक्षधर होते हैं। वे पीड़ा, अन्याय, अत्याचार के दमन में लगी शक्ति के सौंदर्य को देखते हैं। कुछ कवि और भक्तों का मन दोनों पक्षों में रमता है। आचार्य शुक्ल पाश्चात्य विचारक डंटन को उद्‌धृत करते हुए कहते हैं कि उन्होंने जिसे शक्ति काव्य कहा है वही हमारी आनंद की साधनावस्था है। पर उन्होंने दूसरी बात जो कला–काव्य कहा है और उसका उद्देश्य केवल मनोरंजन है तो यह उचित नहीं है। अगर कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं में एक मनोरंजन या उपभोग ही इस कला–काव्य का तात्पर्य है तो यह त्याज्य है। इससे काव्य दृष्टि संकुचित हो जाएगी। वे साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्यों में– रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपाल वध आदि। हिंदी में रामचरितमानस, पृथ्वीराज रासो आदि तथा यूरोपीय भाषाओं में– इलियड, ओडिसी, पैराडाइज लॉस्ट, रिवोल्ट ऑफ इस्लाम आदि को रेखांकित करते हैं। सिद्धावस्था यानी उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले ग्रंथों में– गीतगोविन्द, सूरसागर, बिहारी सतसई तथा अधिकांश छायावादी कविताओं आदि को रेखांकित करते हैं।

आनंद की साधनावस्था

साधनावस्था ऐसा प्रयत्न मार्ग है जहां लोक में फैले दुख, अत्याचार, अन्याय, पीड़ा को हटाने के लिए ब्रह्म की आनंद कला शक्ति का रूप धारण करती है। यह शक्ति भीषण, कटु और प्रचंड होने पर भी अद्‌भुत मनोहरता, मधुरता एवं आर्द्रता का संचार करती है। यही कर्मक्षेत्र का सौंदर्य है जो मानव हृदय को आकर्षित करता है। जैसे कोट पैंट पहना हुआ व्यक्ति धाराप्रवाह संस्कृत बोले और धोती–कुर्ता धारण किया हुआ पंडितनुमा व्यक्ति फर्राटे से अंग्रेजी बोले तो यह विरोधी सामंजस्य आकर्षित किये बिना नहीं रहता। असौंदर्य को हटाकर सौंदर्य तथा अमंगल को हटाकर मंगल की स्थापना होती है। वाल्मीकि का काव्य इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। नायक, जो लोक कल्याण के लिए आनंद की सिद्धि के लिए भीषण हाहाकार मचाता है, युद्ध, मारकाट करता है, अपनी सात्विक भावना के कारण लोक का, दर्शकों का प्रिय पात्र बना रहता है। जैसे राम भीषण युद्ध करते हुए लोगों के प्रिय पात्र हैं, रावण अत्याचारी होने के कारण पांडित्य से परिपूर्ण होने पर अप्रिय ही बना रहता है। यह प्रवृत्ति जिसमें लोकमंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है 'धर्म' कहलाती है। यह ईश्वर की आनंद कला का विकास करने वाली वृत्ति सफल होकर 'धर्म की जय' कहलाती है। विफलता का भी निराला सौंदर्य होता है क्योंकि इसमें आदि से अंत तक सात्विक भाव से प्रयत्न किये गए किंतु विफलता में पूर्ण सौंदर्य या आनंद नहीं होता इसलिए तुलसी एवं सूर ने राम, कृष्ण की साधनावस्था को सफलता के रूप में परिणत दिखाया ताकि धर्म की जय से पूर्ण आनंद का विकास दिखा सकें।

आचार्य शुक्ल अंग्रेजी कवि शेली को उद्‌धृत करते हुए कहते हैं कि उन्होंने आनंद कला की पूर्णता की ओर बढ़ते प्रयत्न की विफलता के सौंदर्य के दर्शन कराए हैं। शैली ने 'रिवोल्ट ऑफ इस्लाम' में नायक–नायिका की लोकमंगल भावना के सुंदर प्रयत्नों और उसके पराभव को दिखाकर एक दुखांत कथा का विषादमयी आनंद उपस्थित किया है। शुक्ल जी कहते हैं कि मंगल–अमंगल के बीच युद्ध में सदैव मंगल की विजय देखकर लोग इसे सामान्य शिक्षावाद या अस्वाभाविक समझकर नाक–भौं सिकोड़ते हैं। सच्चे कवि अपने काव्य में इस अस्वाभाविकता को नहीं आने देते। इस संसार में अधर्म को दबाना कठिन है

टिप्पणी

जिससे धर्म बार–बार पराजित होता है। अतः कवि धर्म के संघर्ष को दिखाता है और अंत में अगर सफलता दिखाता है भी है तो उसका उद्देश्य केवल उपदेश देना नहीं होता बल्कि वह कर्म के द्वारा प्रवृत्ति या निवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। शुक्ल जी कहते हैं कि कवि सौंदर्य से प्रभावित रहता है तथा वह पाठकों को भी प्रभावित करना चाहता है इसलिए उसके नायक राम, कृष्ण का बाह्य सौंदर्य जितना प्रभावी है उतना ही आंतरिक सौंदर्य भी...। उनका रूप–माधुर्य, धीर, शील और पराक्रम सौंदर्य का समन्वित रूप है। संसार में यह आंतरिक और बाह्य सौंदर्य का समन्वय सदा नहीं रहता किंतु कवि का हृदय रूप–सौंदर्य एवं कर्म सौंदर्य के समन्वय को दिखाकर ही अपनी आंतरिक कामनाओं को संतुष्ट करना चाहता है, यह कवि के लिए कला की रहस्यमयी प्रेरणा है। 19वीं सदी के कवि शेली, जो राज्य शासन, धर्म और समाज के शासन के विरोधी थे, वे भी कला की इस रहस्यमयी प्रेरणा से नहीं बच सके। उन्होंने भी नायक–नायिकाओं में रूप सौंदर्य एवं कर्म सौंदर्य का समन्वय दिखाया है। शुक्ल जी कहते हैं कि आदर्श पात्रों को मनमाना रूप देना सरस्वती के मंदिर में गड़बड़ी फैलाने जैसा काम है। उदाहरणस्वरूप– माईकेल मधुसूदन दत्त ने मेघनाद को रूप–गुण संपन्न दिखाया तथा नवीन चंद्र कवि ने 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य में कृष्ण को एक ऐसे क्षत्रिय महात्मा के रूप में अंकित किया गया है जो जनता को ब्राह्मणों के अत्याचार से बचाने के लिए खड़ा हुआ है। यह परिवर्तित आदर्शों की प्रस्तुति त्याज्य है। सच्चे कवि पुराने आख्यानों को उदाहरण के रूप में लेते हैं लेकिन बदली हुई परिस्थितियों और नवजागरण के बाद भी उन आदर्शों को खंडित या विकृत नहीं करते।

आचार्य शुक्ल कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन के, शरीर के, हृदय के दो पक्ष होते हैं– उत्तर और दक्षिण, कोमल और कठोर, मधुर तथा तीक्ष्ण। इन दोनों शाश्वत पक्षों के समन्वय के बीच से मंगल या सौंदर्य की विकास धारा को दिखाना ही काव्य की रमणीयता है। टाल्सटाय के अनुयायी एक नया फैशन चला रहे हैं– वे परंपरागत कर्म सौंदर्य पर मुग्ध होने के बजाय उसकी उपेक्षा करते हैं तथा कर्म सौंदर्य को दूसरे रूप में देखते हैं जैसे क्रूर आततायी को उपदेश देना, अत्याचारी से प्रेम जता कर उससे दया की भिक्षा मांगना...। वे इसे बेमानी मानते हैं। भावों की प्रक्रिया में भावोदय से अस्त तक देखें तो पता चलता है कि कुछ भाव चेतना के स्तर पर रहते हैं कुछ अचेतन में पड़े रहते हैं। ऐसे में संचारी भाव के साथ जीवंत और अभिव्यक्त होता है। जैसे ईर्ष्या संचारी भाव होकर चरम पर पहुंचती है तो स्थायी भाव का ईर्ष्या भाव ही बाहर अभिव्यक्ति पाता है। अतः तात्पर्य यह है कि बीज रूप में मूल स्थायी भाव की प्रकृति यदि मंगलकारी है तो बाह्य रूप में उसके कठोर भाव भी सुंदर दिखाई देते हैं। ऐसे बीज भाव जिस पात्र में होते हैं उसके साथ पाठकों एवं दर्शकों की सहानुभूति होती है। जैसे राम के भीतर बीज भाव मंगलकारी है। वे अधर्मी, अन्यायी रावण का वध करना चाहते हैं तो वे कितने भी कठोर प्रहार रावण पर करें, दर्शक को आनंद ही प्राप्त होगा। वह उन्हीं की विजय की कामना करेगा। जबकि रावण के द्वारा व्यक्त किये गए क्रोध या घृणा में रस के तीनों अवयव– 'शास्त्र–स्थिति संपादन' होने पर भी पाठक के साथ उसका तादात्म्य नहीं हो सकता। हृदय में स्थित बीज भाव द्वारा प्रसारित आनंद और मंगल का सौंदर्य इस स्थिति से प्रभावित होता है कि वह कितने क्षेत्र में व्यापक है। जैसे यदि हमारा मित्र या रिश्तेदार पीड़ित है और नायक उसे बचाता है तो उसका कर्म सौंदर्य कम प्रभावित करेगा लेकिन जब हम देखते हैं कि विशाल जनसमूह को पीड़ा और

टिप्पणी

अत्याचार से बचाने का पराक्रम नायक ने दिखाया तो यहां कर्म सौंदर्य का प्रभाव व्यापक और बड़ा होगा।

आचार्य शुक्ल कहते हैं– मंगल का विधान करने वाले दो भाव होते हैं– करुणा और प्रेम। क़रुणा की गति रक्षा की ओर और प्रेम की मनोरंजन की ओर होती है। लोक में मनुष्य मात्र की रक्षा प्रथम साध्य है इसके बाद रंजन की स्थिति आती है। साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले करुणा को ही मुख्य भाव मानते हैं क्योंकि हृदय में करुणा की उपस्थिति से किये जाने वाले समस्त प्रयत्नों का लक्ष्य लोकमंगल होता है और जब लक्ष्य सात्विक हो तो सफलता के मार्ग पर चलते हुए लोक की सहानुभूति भी प्राप्त होती है। भवभूति ने रामचरित को लेकर दो नाटकों की रचना की है और वे 'करुण' को ही एकमात्र रस मानते हैं। वाल्मीकि रामायण में क्रौंच वध की घटना हो या रामचरितमानस में बिखरे अनेक प्रसंग सबके मूल में करुणा ही है। राम ने केवल पत्नी सीता को मुक्त कराने के लिए रावण को नहीं मारा बल्कि उसके मूल में लोक के पीड़ित जनों के प्रति करुणा तथा लोक मंगल का व्यापक भाव भी उसमें सन्निहित था इसलिए उनके पराक्रम का सौंदर्य भी व्यापक था। तात्पर्य यह कि काव्य का उत्कर्ष केवल टाल्सटाय के अनुयायियों की तरह प्रेम और दया की अभिव्यक्ति में ही नहीं बल्कि लोकमंगल के लिए मन में करुणा रखते हुए पराक्रम दिखाने में भी है। स्वतंत्रता के उन्मत्त उपासक, घोर परिवर्तनवादी शेली भी इसी दृष्टि से स्वीकार करते हैं। शेली काव्य का मूल तत्व प्रेम को ही मानते हैं किंतु उस प्रेम को सुख–समृद्धि के माधुर्य से भरे सौंदर्य तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि भावों की अनेक रूपता को स्वीकार करते हुए स्थिर सौंदर्य एवं गत्यात्मक सौंदर्य, प्रयत्न पक्ष एवं उपभोग पक्ष दोनों के सौंदर्य को आनंद का मूल मानकर स्वीकार करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कलावादियों की दृष्टि को संकुचित एवं सीमित मानते हैं क्योंकि कलावादी काव्य में कोमल एवं मधुर की ही उपासना करते हुए मनोरंजन को ही लक्ष्य मानते हैं जबकि काव्य का लक्ष्य वृहद एवं गंभीर है। लोकमंगल काव्य का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। शुक्ल जी कहते हैं कि टाल्सटाय मनुष्यों के बीच भाईचारे एवं प्रेम को ही एकमात्र काव्यत्व मानते हैं। यह सोच सांप्रदायिक कारणों से हो सकती है। टाल्सटाय के अनुयायी आनंद की साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष को केवल पीड़ितों की सेवा, आततायियों का हृदय परिवर्तन, त्याग, कष्ट, सहिष्णुता आदि के रूप में लेकर उसमें ही सौंदर्य देखते हैं। इस कोमल प्रतिक्रिया, उदारता और सज्जनता को वे 'आध्यात्मिक शक्ति' कहते हैं। पर इस आध्यात्मिक शक्ति को हम भारतीय दृष्टि से मनुष्य की प्राकृतिक शक्ति या अंतर्मन की सात्विक भावना कहते हैं। आचार्य शुक्ल काव्य में इस 'आध्यात्मिक शक्ति' पर टिप्पणी करते हैं कि "आध्यात्म शब्द की, मेरी समझ में, काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई जरूरत नहीं है।" विदेश में भी यह आध्यात्मिक शब्द भारतीय भाषाओं में ही प्रचार पा रहा है।

आचार्य शुक्ल सत्व गुण की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महत्वपूर्ण चिंतन उपस्थित करते हैं। कहते हैं– सतो गुण, रजो गुण और तमो गुण, इन त्रिगुणों में सत्व (सतो गुण) गुण प्रधान है। जब यह चरम सीमा पर पहुंचता है तो परमात्मा की सत्ता के व्यक्त और अव्यक्त रूप की संधि तक जा पहुंचता है यानी उस बिंदु तक जहां वह अपने हृदय में और

टिप्पणी

आस–पास उस परमपिता की उपस्थिति को अनुभव करने लगता है। वह उन्हें देख सकता है। उसका हृदय सत्व गुण के प्रकाश से प्रकाशित होता है। सत्व गुण की यह शक्ति जो सच्चिदानंद के सत् स्वरूप को प्रकाशित करती है, इसे वल्लभाचार्य जी 'संधिनि' कहते हैं। व्यावहारिक रूप में 'सत' के दो अर्थ हैं– 'जो वास्तव में हो' तथा 'अच्छा या शुभ'। लोक में मंगल या कल्याण के लिए प्रेरित करने वाले दोनों भाव– करुणा और प्रेम दोनों सत्व गुण प्रधान हैं। आचार्य शुक्ल काव्य को प्रभावशाली, उपयोगी एवं मंगलकारी बनाने में सत्व गुण की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा इसे अवचेतन में बीज रूप में या अव्यक्त स्थिर स्थायी मानते हैं तथा इसे अवचेतन में बीज रूप में या अव्यक्त स्थिर स्थायी भाव के रूप में स्वीकार करने के साथ ही प्रकाश रूप में या अभिव्यंजित रूप में भी स्वीकार करते हैं। सत्य गुण प्रधान हृदय में करुणा और प्रेम होगा तथा ऐसे हृदय का स्वामी लोक के प्रति दया, त्याग, परोपकार की भावना रखते हुए पीड़ितों के अधिकारों के लिए पराक्रम का प्रदर्शन भी करेगा। सत्व गुण प्रधान हृदय का और काव्य का यही पूर्ण सौंदर्य है।

आचार्य शुक्ल कहते हैं कि उस अव्यक्त परमात्मा ने सृष्टि की रचना की। इसमें अपना व्यक्त रूप मनुष्य के रूप में उपस्थित किया। सृष्टि के आरंभ से अंत तक इसमें तीनों गुण– सत्व, रज एवं तम रहेंगे। जब तक यह सृष्टि है अर्थात लोक है– लोकमंगल के लिए ईश्वर के द्वारा प्रेषित काव्य कला को सत्व गुण का ही आश्रय लेना होगा। सत्व गुण मानव हृदय में, कवि हृदय में एवं काव्य में प्रधान होगा तथा रजो गुण एवं तमो गुण उसके अधीन होकर कार्य करेंगे। रजो गुण एवं तमो गुण द्वारा किये गए कार्य सत्व गुण के लक्ष्य की पूर्ति यानी लोक मंगल के लिए ही किये जाएंगे। सतो गुण की भूमिका कोमल माधुर्य एवं सौंदर्य का संचार तो करेगी ही, यह कठोर अनुशासन भी करेगी। सतो गुण के शासन में कठोरता, उग्रता एवं प्रचंडता का भी सात्विक तेज होगा जो प्रशंसनीय होगा क्योंकि यह लोकमंगल जैसे महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए होगा। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमारे देश में अवतारों की मूर्ति चाहे वह मां दुर्गा की हो, राम या कृष्ण की एक ओर व्रज से भी कठोर दिखाई देती हैं हाथों में अस्त्र–शस्त्र लिए, दूसरी ओर चेहरे पर मृदु मुस्कान सजाए फूलों से भी कोमल दिखाई देती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस निबंध के द्वारा सत्व गुण की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं जिसकी उपस्थिति से मानव हृदय परमात्मा की निकटता पा सकता है तथा कवि हृदय काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था को स्थापित कर समस्त मानव सृष्टि के लिए मंगल कामना कर सकता है।

4.3.5 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : समीक्षात्मक अध्ययन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी के मौलिक आलोचना शास्त्र की आधारशिला रखी। उन्होंने साहित्य की आलोचना एवं समीक्षा के द्वारा उसके मूल्यांकन का स्वतंत्र मार्ग प्रशस्त किया। शुक्ल जी रसवादी आचार्य थे अतः उन्होंने भारतीय रस सिद्धांत को ही काव्य का मानदंड माना किंतु इसकी व्याख्या उन्होंने अपने तरीके से की। उन्होंने काव्य के लक्ष्य को विस्तार दिया। रस सिद्धांत के अनुसार पाठक को आनंद की अनुभूति कराना ही काव्य का लक्ष्य या उद्देश्य है किंतु आचार्य शुक्ल ने इसमें 'लोमंगल' को भी जोड़कर आनंद की दो अवस्थाएं प्रस्तुत कीं– आनंद की साधनावस्था तथा आनंद की सिद्धावस्था। वे कविता को भावयोग

टिप्पणी

से जोड़ते हैं तथा उसकी साधना को कर्मयोग एवं ज्ञान योग के समकक्ष मानते हैं। वे 'भाव ही रस है', का प्रतिपादन करते हैं तथा हृदय की मुक्तावस्था को रस दशा कहते हैं। मुक्त का अर्थ स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति का 'स्व' की स्थिति से उठाकर लोक सामान्य भूमि पर पहुंचना अर्थात जहां मुक्त हृदय लोक हृदय में तल्लीन हो जाता है। ऐसी तल्लीनता की स्थिति का नाम 'रस दशा' है। शुक्ल जी की समीक्षा की विशेषताओं पर दृष्टि डालें तो उपरोक्त (काव्य में लोकमंगल) निबंध की समीक्षा स्वयंमेव हो जाती है।

1. **सैद्धांतिक समीक्षा शास्त्र का आधार–** आचार्य रामचंद्र शुक्ल भारतीय काव्य सिद्धांतों के साथ पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों में से गृहणीय लेकर नये समीक्षा सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हैं। उनकी व्यावहारिक समीक्षाओं में भी इन सैद्धांतिक मानों को प्रतिपादित देखा जा सकता है। वे आनंद की साधनावस्था को लेकर चलने वाले कवि को श्रेष्ठ एवं पूर्ण मानते हैं तथा 'तुलसीदास' को ऐसा ही श्रेष्ठ कवि घोषित करते हैं। आचार्य शुक्ल के इस दृष्टिकोण पर टिप्पणी करते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी लिखते हैं– "जितना उत्कर्ष उन्हें साहित्य के सिद्धांतों का निरूपण करने में प्राप्त हुआ, उतनी ही दक्षता उन्हें उन सिद्धांतों का व्यावहारिक प्रयोग करने में हासित हुई है। पांडित्य में उनकी अप्रतिहत गति थी, विवेचना की उनमें विलक्षण शक्ति थी।" आचार्य शुक्ल एक उत्कृष्ट समीक्षक थे।
2. **समन्वयवादी–** आचार्य शुक्ल समन्वयवादी समीक्षक थे। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया तथा उनके समन्वय को नये तरीके से व्याख्यायित कर नये सिद्धांत गढ़े। साधारणीकरण का सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र का अंग है किंतु शुक्ल जी ने उसकी तुलना पश्चिम के व्यक्ति वैचित्र्यवाद से की तथा दोनों में सामंजस्य प्रदर्शित किया। शुक्ल जी ने तत्व की दृष्टि से डंटन के शक्ति काव्य को काव्य के उस भेद के समान बताया जो आनंद की साधनावस्था को लेकर चलता है। शुक्ल जी का समन्वयवादी दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है।
3. **समीक्षा में व्यक्तित्व की छाप–** आचार्य शुक्ल गंभीर मर्यादावादी व्यक्ति थे। उन्हें साहित्य एवं जीवन दोनों में ही मर्यादा का उल्लंघन पसंद नहीं था। उनका यही व्यक्तित्व उनके निबंधों एवं समीक्षाओं में झलकता है। वे काव्य में लोकमंगल पर बल देते हैं। काव्य में आनंद की साधनावस्था पर बल देते हैं इसलिए उन्हें तुलसीदास श्रेष्ठ कवि लगते हैं। वे तुलसी के शील निरूपण की सराहना करते हैं। आचार्य शुक्ल भावुक एवं संवेदनशील मनुष्य थे।
4. **समीक्षा में स्पष्टता–** आचार्य शुक्ल समीक्षा करते हुए स्पष्टता का ध्यान रखते हैं। हर बात या सूत्र को उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। उनका अध्ययन, चिंतन गहन है तथा वे विषय के हर अंग, हर बात को व्यवस्थित रूप से विचारकर प्रस्तुत करते हैं।
5. **मनोवैज्ञानिक आधार–** आचार्य शुक्ल की समीक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक है। वे मन के विकारों या भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं। यह

टिप्पणी

विश्लेषण मनुष्य के स्वभाव एवं उसके जीवन की कसौटी पर खरा उतरता है। 'सूरदास' के व्यक्तित्व कृतित्व पर समीक्षा प्रस्तुत करते हुए उन्होंने पशु एवं प्रकृति का भी विश्लेषण किया है। शुक्ल जी मानव हृदय के पारखी थे।

6. **आलोचना में कवि की अंतर्वृतियों की खोज–** आचार्य शुक्ल की समीक्षा रचना से रचनाकार की ओर भी जाती है अर्थात रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व की विशेषताओं को खोजना। वर्तमान में यही समीक्षा पद्धति है जिसके दर्शन आचार्य शुक्ल की समीक्षाओं में होते हैं। उदाहरण के लिए– तुलसीदास की भक्ति पद्धति की विवेचना करते हुए शुक्ल जी तुलसीदास के व्यक्तित्व और चित्तवृत्तियों का उद्घाटन करते हैं। कवि के हृदय में सत्व गुण है तो उसकी रचना में भी होगा।

7. **निरपेक्ष दृष्टिकोण–** आचार्य शुक्ल समीक्षा करते हुए निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे रचनाकार के गुण एवं दोषों पर एक समान भाव से स्पष्ट टिप्पणी करते हैं। वे सूरदास द्वारा वर्णित विरह दशाओं के प्रति क्रूर टिप्पणी करते हुए विरह को गोपियों का बैठे–ठाले का रोग कहते हैं लेकिन सूरदास के काव्य में भाव पक्ष की गहराई की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं तथा सूरदास को वात्सल्य रस एवं प्रेम का अद्भुत कवि निरूपित करते हैं।

8. **हास्य–व्यंग्य का प्रयोग–** आचार्य शुक्ल अपने गंभीर व्यक्तित्व के अनुकूल समीक्षाएं करते हैं किंतु बीच–बीच में तीखे व्यंग्य करने एवं चुटकी लेने की सामर्थ्य भी रखते हैं। गंभीर से गंभीर आलोचना भी उनकी व्यंग्य की बौछारों से सरस हो उठती है, भीग जाती है। छायावाद को 'नया नया ऊंट' कहना उनकी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है।

9. **सूत्रात्मकता–** आचार्य शुक्ल बड़ी और गंभीर बात को एक वाक्य में कह जाते हैं जो सूक्ति बन जाती है। ऐसी सूक्तियां या सूत्र वाक्य अपने भीतर गहन चिंतन तथा व्यापक अर्थ समेटे रहते हैं। 'काव्य के लोकमंगल' निबंध में वे लिखते हैं– "करुणा की गति रक्षा की ओर है तथा प्रेम की रंजन की ओर।" शुक्ल जी के निबंधों में ऐसे सूत्रों की भरमार है।

10. **निगमन शैली–** आचार्य शुक्ल की यह रचनात्मक विशेषता है कि वे पहले बड़ी और गहन बात को सूत्र रूप में प्रस्तुत करते हैं फिर उसकी विस्तार से व्याख्या करते हैं। एक सूत्र की व्याख्या करते हुए कई पैराग्राफ में और कभी तो पूरे निबंध में ही कुछ नये सूत्र उपस्थित कर देते हैं। करुणा और प्रेम की व्याख्या का विस्तार, श्रद्धा और भक्ति का विस्तार से वर्णन उनकी निगमन शैली की विशेषता को प्रतिपादित करता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल समीक्षा करते हुए सुगठित, प्रभावशाली, प्रवाहमयी, अलंकारिक भाषा का प्रयोग करते हैं। डॉ. शिवनाथ कहते हैं– "आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों के प्रतिपादन तथा भाषा शैली में एक विचित्र भव्यता है, जिसके द्वारा उनके उठान, उनके विकास और उनकी समाप्ति में प्रभूत प्रभावात्मकता दृष्टिगत होती है।" शुक्ल जी हिंदी, उर्दू, संस्कृत, उर्दू के प्रकांड पंडित थे। उनकी रचनाओं में परिष्कृत, तत्सम भाषा तथा सामासिक

टिप्पणी

पदों का प्रयोग सौंदर्य और गंभीरता की वृद्धि करता है। डॉ. जयनाथ नलिन कहते हैं– "इतनी सम्मत, परिष्कृत, प्रौढ़, विशुद्ध और सुदृढ़ भाषा कम ही मिलेगी। विवेचना की गंभीरता के अनुपात से भाषा गंभीर और प्रौढ़ रूप धारण करती मिलेगी।" वे विषय एवं भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं।

'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' में तत्सम एवं अलंकारिक भाषा है। वे अंग्रेजी रचनाकारों एवं चिंतकों की चर्चा करते हुए आवश्यकतानुसार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर विषय को सहजगम्य बनाने का प्रयत्न करते हैं। संस्कृत काव्य, वेद, पुराणों तथा उपनिषदों के उदाहरण यथावश्यक होने पर देते हैं तथा हिंदी में उसे स्पष्ट भी करते हैं। 'काव्य में लोकमंगल' एक चिंतन प्रधान निबंध है जिसमें आगमन एवं निगमन शैलियों का प्रयोग होने के साथ विचारात्मक और तुलनात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। शेली एवं टाल्सटाय की रचनात्मकता, उनके दृष्टिकोण तथा उनके प्रतिपाद्य की भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन से तुलना करते हुए शुक्ल जी ने तुलनात्मक शैली का प्रयोग किया है। आचार्य शुक्ल इस निबंध में 'लोकमंगल' पर बल देते हैं। मानव हृदय हो या काव्य, दोनों में सत्व गुण की प्रधानता ही लोकमंगल में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है तथा ब्रह्म के 'आनंद' स्वरूप को प्राप्त करने के लिए साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष पर वे बल देते हैं। आचार्य शुक्ल परंपरावादी थे किंतु ऐसे परंपरावादी जो नवीन दृष्टि से संपन्न थे। उन्होंने ऐसे निबंधों की रचना की जो मौलिक तो थे ही जिनमें तत्व की प्रधानता थी। साहित्य में गूढ़ चिंतन और विश्लेषण का आरंभ शुक्ल जी ने ही किया। बाबू गुलाबराय कहते हैं– "आचार्य शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय विकार और परिमार्जन तो पर्याप्त मात्रा में हुआ किंतु उस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने की प्रवृत्ति उत्पन्न न हो सकी।"

आचार्य शुक्ल के भावों एवं विचारों पर लिखे गए निबंध हिंदी निबंध साहित्य को अनुपम भेंट है। उन्होंने भावों एवं विचारों, मनोविकारों के व्यावहारिक और सामाजिक दोनों पक्षों पर समान महत्व देकर उनकी समाज में हुई प्रतिक्रिया का भी सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। इस तरह मनोविज्ञान को एक नयी मान्यता देकर साहित्य का निकटवर्ती बना दिया। शुक्ल जी की दृष्टि में वे ही निबंध श्रेष्ठ निबंध की कसौटी पर खरे उतरते हैं जिनमें नवीन भावों की उद्भावना की गई है। माना जाता है कि यदि शुक्ल जी ने 'जायसी' के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश न डाला होता तो वे हिंदी जगत के लिए अप्राप्य बने रहते। शुक्ल जी ने मनोभावों की जिस गहराई से समीक्षा की, चिंतन किया, उन्हें जिस सहज विश्लेषित रूप में प्रस्तुत किया वह अद्भुत है। पाठक स्वयं को इन विश्लेषित मनोभावों की कसौटी पर रखता है और उसका अपने आप से ही नया परिचय होता है। हर भाव हर मनुष्य के भीतर रहता है और वह समय–समय पर प्रकट भी होता है लेकिन वह मनुष्य इन भावों के प्रकटीकरण के पीछे छिपे क्या, क्यों, किसलिए को नहीं जानता था। आचार्य शुक्ल के निबंधों को पढ़कर उसे अपने मनोभावों को समझने की नयी दृष्टि मिली। पाठक का बौद्धिक विकास तो होता ही है, भावनाओं की गहन प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति को वह समझ पाता है, अनुभव कर पाता है। आचार्य शुक्ल हृदय एवं बुद्धि के इस समन्वय पर प्रकाश डालते हैं कि "इस पुस्तक (चिंतामणि) में मेरी अंतर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को साथ लेकर।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि

टिप्पणी

शुक्ल जी के निबंध मूलतः बुद्धि की यात्रा के फलस्वरूप प्रसूत हुए हैं। शुक्ल जी का निबंधकार रूप निश्चय ही एक गंभीर विचारक, सशक्त शैलीकार तथा सूक्ष्म विश्लेषक का समन्वित रूप है। आचार्य शुक्ल के निबंधों में उनके व्यक्तित्व की छाया भले ही पड़े किंतु विषय ही प्रधान होता है। डॉ. जयचंद्र राय की महत्वपूर्ण टिप्पणी उल्लेखनीय है– "इन निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व भले ही उद्भाषित हो गया हो, किंतु उसका प्रक्षेपण इतना अधिक नहीं हुआ कि विषय विवेचन को गौणता प्राप्त हो गई हो। पाठक को प्रस्तुत विषय की विचारणा में ही डूबे रहने का अवसर मिलता है। लेखक के अप्रत्यक्ष व्यक्तित्व के साथ घनिष्ठता बढ़ाने का संयोग उसे कम ही मिल पाता है।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'काव्य में लोकमंगल कामना की साधनावस्था' निबंध के द्वारा न केवल काव्य के सद्गुणों पर प्रकाश डालते हैं बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को सहृदय बनने की शिक्षा भी दे देते हैं। वे ब्रह्म के तीन रूपों सत् चित् और आनंद तथा त्रिगुणात्मक प्रकृति रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण की व्याख्या करके पाठक को दर्शन के निकट ले जाते हैं जहां वह 'आनंद' स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने भीतर के सत्व गुण को परिष्कृत एवं विकसित करने का प्रयास आरंभ करता है। वह आनंद की साधनावस्था से परिचित होकर अपने संघर्ष, प्रयत्न, दुख, पीड़ा अभाव और अन्याय को नये रूप में देखता है तथा प्रयत्न करता है कि इस साधना के पथ पर बिना विचलित हुए चल सके। शुक्ल जी के निबंध चिंतन प्रक्रिया को गति एवं गहराई देते हैं, ज्ञान का दायरा बढ़ाते हैं। इस निबंध को ही अगर देखें तो साधनावस्था एवं सिद्धावस्था की बात करते हुए वे टाल्सटाय एवं शैली को, डंटन की चिंतन प्रक्रिया को उनके ग्रंथ सहित उद्धृत करते हैं, उनकी भारतीय चिंतन परंपरा से तुलना करते हैं, तब पाठक सहज ही इन विदेशी रचनाकारों की रचनाओं और उनकी चिंतन प्रक्रिया को विस्तार से समझने के लिए उत्सुक हो उठता है। वह उन पुस्तकों को जुटाकर उनका अध्ययन करता है। इस तरह शुक्ल जी की तुलनात्मक अध्ययन शैली पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होती है। वर्तमान विज्ञान एवं तकनीकी के युग में जब कि संवेदनाओं की धार खत्म होती जा रही है, मनुष्य यांत्रिक जीवन जी रहा है, वह स्वार्थी, आत्मकेंद्रित होता जा रहा है, शुक्ल जी के निबंधों की प्रासंगिकता एवं महत्व बढ़ गया है। जब आदमी स्वयं के मंगल पर ही ध्यान केंद्रित किये हो, उसे लोकमंगल का महत्व समझाना आवश्यक है। कवियों एवं साहित्यकारों के लिए अपनी रचना में लोकमंगल की प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। स्वार्थ पूर्ति ने वर्तमान हृदयों को तमोगुणी बना दिया है। कम्प्यूटर, इंटरनेट ने नयी पीढ़ी की बुद्धि को आकर्षित कर भले ही उसे विश्व की जानकारी पल भर में देने की सफल योजना बनाई है किंतु सत्य यह है कि कम्प्यूटर के सामने बैठा मनुष्य अपने हृदय से अनजान, अकर्मण्य और आलसी हो गया है। उसके भीतर रजोगुण से उत्पन्न तेज का कहीं पता नहीं चलता। इस स्थिति में आचार्य शुक्ल की समीक्षाएं, विवेचना, व्याख्याएं पाठक के भीतर की त्रिगुणात्मक प्रकृति में हलचल मचाने में अवश्य सफल होगी। डॉ. जयनाथ नलिन कहते हैं– "शुक्ल जी के मनोभाव एवं सिद्धांत निर्धारण संबंधी निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता है, विज्ञान के समान यथार्थ परिभाषा, गणित के अंकों के समान सही मूल्य मर्यादा और छाया प्रकाश के समान अंतर की स्पष्टता।" अर्थात नपी–तुली शब्दावली में विषय को स्पष्टता देकर सम्यक परिभाषा प्रस्तुत करना शुक्ल जी की निजी विशिष्ट विशेषता है।

टिप्पणी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में सामाजिक आदर्श, नीति तत्व, मानवतावादी सिद्धांतों की व्याख्या मिलती है। वे जीवन को आधार बनाकर तथ्यों का प्रस्तुतीकरण करते हैं, जिससे मानव मात्र के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है। वे व्यक्ति को महत्व देते हुए भी समष्टि को ध्यान में रखकर सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। निबंधों के क्षेत्र में गूढ़ विवेचन और सूक्ष्म विश्लेषण को लाने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को ही जाता है।

4.4 साहित्यकारों का दायित्व – हजारी प्रसाद द्विवेदी

'साहित्यकारों का दायित्व' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित है, निबंध की विशेषताएं जानने से पहले द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जानते हैं–

4.4.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 में बलिया (उत्तर प्रदेश) जिले के आरतदुबे का छपरा नामक गांव में हुआ था। उन्होंने काशी से प्रवेशिका, इंटर एवं ज्योतिष में आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। नौकरी का आरंभ मिर्जापुर के एक विद्यालय में अध्यापक बनने से हुआ किंतु आचार्य क्षितिमोहन सेन ने इनकी प्रतिभा को पहचाना और इन्हें अपने साथ शांति निकेतन ले गए। आचार्य द्विवेदी शांति निकेतन में 20 वर्षो तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। इसके पश्चात उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी तथा पंजाब विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट्. की मानद् उपाधि से सम्मानित किया। भारत सरकार ने उनकी उत्कृष्ट साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें 'पदम् विभूषण' की उपाधि से विभूषित किया। आप ने राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में भी हिंदी की सेवा की। असाधारण व्यक्तित्व एवं अलौकिक प्रतिभा से संपन्न आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का बचपन का नाम बैद्यनाथ दुबे था। तथा उनके जन्म स्थान 'आरत दुबे का छपरा' को 'ओझबलिया' के नाम से भी जाना जाता था। आचार्य द्विवेदी ने काशी में रह कर अध्ययन करते हुए दर्शन शास्त्र एवं संस्कृत भाषा पर अधिकार प्राप्त किया। उनकी जन्मजात प्रतिभा, विद्वता एवं योग्यताओं ने उन्हें आचार्य बनाया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी महान शोधकर्ता, इतिहासकार, उपन्यासकार एवं निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। हिंदी निबंध को उन्होंने नई दिशा दी।

कृतित्व– अशोक के फूल, विचार प्रवाह, विचार और वितर्क, कुटज और आलोक पर्व आपके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा तथा अनामदास का पोथा, आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। आपने 'सूरसाहित्य', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'कबीर', 'सूरदास' और उनका काव्य', 'प्राचीन भारत का कला विकास', नाथ संप्रदाय', आदि समीक्षात्मक ग्रंथों का प्रणयन कर साहित्य जगत को समृद्ध किया। आचार्य द्विवेदी ने विश्व संस्कृति, भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास, ज्योतिष आदि विषयों पर निबंध लिखे। मनुष्यता के प्रति आग्रह होने के कारण उनका मानवतावादी स्वर उनकी प्रत्येक रचना में ध्वनित होता है। वे सौंदर्य के पुजारी थे। मनुष्य की अंतर्बाह्य की सुंदरता को उन्होंने अपने साहित्य में परिष्कृत किया। प्रकृति से प्रेम, देश प्रेम, मानव मात्र से प्रेम ने उनकी रचनाओं में अद्भुत

'अपनी प्रगति जांचिए'

8. ब्रह्म के कौन से तीन स्वरूप बताए गए हैं?
9. साधनावस्था और सिद्धावस्था किसकी अभिव्यक्ति है?
10. रामचंद्र शुक्ल मुख्य रूप से कौन सी शैली को अपनाते हैं?
11. रामचंद्र शुक्ल के निबंध संग्रह का नाम बताइए।
12. आचार्य शुक्ल के अनुसार मंगल का विधान करने वाले दो भाव कौन से हैं?
13. हृदय की मुक्तावस्था का नाम क्या है?
14. शुक्ल जी कलावादियों की दृष्टि को कैसी मानते हैं?

लालित्य को जन्म दिया। अतः मानवतावादी एवं ललित निबंधकार के रूप में आचार्य द्विवेदी का स्थान निबंध साहित्य ही नहीं, सभी विधाओं में उच्चतम है। वे एक संवेदनशील मनुष्य और उत्तम कोटि के रचनाकार हैं।

टिप्पणी

4.4.2 साहित्यकारों का दायित्व–मूल पाठ

भारतवर्ष पराधीनता के जाल से मुक्त हो गया है। हमें इस पुराने राष्ट्र के अनेक पुर्जे दुरुस्त करने पड़ेंगे, अनेक जंजाल साफ करने होंगे, प्रत्येक क्षेत्र में नव–निर्माण का व्रत लेना होगा। हम जो कुछ भी करने जाएंगे उसके लिए हमें साहित्य चाहिए। हमारे कई विश्वविद्यालयों ने हिंदी को उच्चतर शिक्षा का माध्यम मान लिया है, बाकी विश्वविद्यालय बहुत शीघ्र ही मानेंगे। इनमें अध्ययन–अध्यापन करनेवालों के लिए साहित्य चाहिए। हमारी राजनीति और अर्थनीति अब सिर्फ घरेलू झगड़ों तक सीमाबद्ध नहीं रहेगी, उन्हें विदेशों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना होगा। इसीलिए हमें अपने निकट और दूर के सहयोगी राष्ट्रों की भीतरी और बाहरी अवस्था की जानकारी आवश्यक होगी। इसके लिए भी हमें साहित्य चाहिए। बहुत शीघ्र ही इस देश के बड़े–बड़े न्यायालयों और व्यवस्थापिका सभाओं की बहसें और उसके निर्णय देशी भाषा में होंगे। इसके लिए भी हमें साहित्य चाहिए। अगर हमें संसार में महान राष्ट्र बनकर रहना है तो हमें अपनी समूची जनता को ज्ञान–विज्ञान के प्रति उत्सुक और मनुष्य के न्याय–अधिकारों के प्रति जागरूक बना देना होगा। कल तक हम बात बनाकर काम चला सकते थे, आज नहीं चला सकते। हमें जीवन के हर क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए साहित्य चाहिए–साहित्य, जो मनुष्य–मात्र की मंगल भावना से लिखा गया हो और जीवन के प्रति एक सुप्रतिष्ठित दृष्टि पर आधारित हो।

राजनैतिक पराधीनता बड़ी बुरी वस्तु है। वह मनुष्य को जीवनयात्रा में अग्रसर होने वाली सुविधाओं से वंचित कर देती है। हमने उस पराधीनता की जंजीरें तोड़ दी हैं। लेकिन सुविधाओं को पा लेना ही बड़ी बात नहीं है, प्राप्त सुविधाओं को मनुष्य–मात्र के मंगल के लिए नियोजित कर सकना ही बड़ी बात है। हमारी राजनीति, हमारी अर्थनीति और हमारी नव–निर्माण की योजनाएं तभी सर्वमंगलीय–विधायिनी बन सकेंगी जबकि हमारा हृदय उदार और संवेदनशील होगा, बुद्धि सूक्ष्म और सारग्रहिणी होगी और संकल्प महान और शुभ होगा। यह काम केवल उपयोगी और व्यावहारिक साहित्य के निर्माण से ही नहीं हो सकेगा। इसके लिए साहित्य के उन सुकुमार अंगों के व्यापक प्रचार की आवश्यकता होगी जो मनुष्य को मनुष्य के सुख–दुख के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। हमारा काव्य–साहित्य, कथा, अख्यायिका और नाटक–साहित्य ही हमें ऐसी सहृदयता दे सकते हैं। साहित्य का यह अंग केवल वाग्विलास का साधन नहीं होना चाहिए, उसे मनुष्यता का उन्नायक होना चाहिए। जबतक मानव–मात्र के लिए, मंगल के लिए इन्हें नहीं लिखा जाता, तब तक ये अपना उद्देश्य सिद्ध नहीं कर सकेंगे। इस बात के लिए यह भी आवश्यक है कि जीवन के प्रति हमारी जो परंपरालब्ध दृष्टि है, वह स्पष्ट और सतेज हो। हमारे पास प्राचीन आचार्यों का छोड़ा हुआ और दीर्घकाल का आजमाया हुआ ज्ञान–भंडार है। दुर्भाग्यवश अभी तक वह साहित्य हमारी भाषा में नहीं आ सका है। परिणाम यह हुआ है कि अभी तक हम अपनी ही जीवन–दृष्टि के बारे में अस्पष्ट भाव से सोचने के अभ्यस्त हो गए हैं। आये दिन तरह–तरह की बातें 'हमारे यहां' की लिखी हुई बताई जाती हैं। आज जब हम नये सिरे से इस पुराने देश को गढ़ने का प्रयत्न करने जा रहे हैं, तो दीर्घकाल की साधना के फल इस विशाल ज्ञान–भंडार की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। जो लोग साहित्य–निर्माण के कार्य में लगे हुए हैं उन्हें आलस्य और विचिकित्सा का भाव त्याग कर इसे नये और पुराने ज्ञान–भंडार को अपनी भाषा में ले आने के महान कार्य का आरंभ जल्दी ही कर देना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम देश की अग्रगति में सहायता नहीं ही पहुंचायेंगे, अपने प्रति देशवासियों की उपेक्षा और अवज्ञा के भाव को दृढ़ बना देंगे। इस प्रकार साहित्यसेवियों के सामने इस समय बहुत विशाल कार्य है।

यदि आप ध्यान से मनुष्य की अग्रगति का अध्ययन करें तो आपको मालूम होगा कि बहुत काल तक मनुष्य के हाथ में बाधाओं पर विजय पाने वाले साधन संयोगवश मिलते गए हैं। केवल पदार्थ–विद्या, रसायनशास्त्र और प्राणितत्व के क्षेत्र में ही संयोग और दैव ने मनुष्य की सहायता नहीं की है, गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में भी उसने सहायता पहुंचाई है। संयोगलभ्य ज्ञान को लेकर मनुष्य ने अंधेरे में और टटोला है और थोड़ा–थोड़ा और आगे बढ़ता गया है। यह अवस्था अब कट गई है। अब मनुष्य सुचिंतित योजनाओं के आधार पर आगे बढ़ रहा है, परंतु सुचिंतित योजनाओं के भीतर ही इतिहास–विधाता का वरद हस्त उसे प्राप्त है। वह अधिक विश्वांस और अधिक दृढ़ता के साथ बढ़ने का अवसर पा रहा है। नये–नये ज्ञान–विज्ञान ने मानवचित्त को अधिक उदार, अधिक संयमी और अधिक शिष्ट होने को मजबूर किया है। यह और बात है कि वह उतना शिष्ट और उदार नहीं हो सका है, जितना होना चाहिए। क्यों नहीं हुआ है, यह विचारणीय प्रश्न है। विज्ञान बहुत बड़ी शक्ति है। शक्तिशाली के पास उदार और शुभानुध्यायी बुद्धि होनी चाहिए, नहीं तो शक्ति सत्यानाश की ओर घसीट ले जायेगी। ज्यों–ज्यों मनुष्य वैज्ञानिक साधनों को हथियाता गया है, त्यों–त्यों वह बड़े–बड़े राज्यों का और विशाल उत्पादन–यंत्रों का संघटन करता गया है और संसार के सूदूर प्रांत में स्थित देशों को सहज–सभ्यता बनाता गया है। आज इन सबकी सम्मिलित शक्ति इतनी विकट दानवाकार बन गई है कि आश्चर्य होता है। इन बड़े–बड़े राष्ट्रों के पास नये–नये वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए सुचितिंत योजनाएं हैं। उनकी पोषक और विरोधी शक्तियों का पूरा ब्यौरा जानकर ये काम किये जा रहे हैं। इन प्रयत्नों का प्रभाव हमारे ऊपर नाना भाव से पड़ता है। हमारी राजनीति, अर्थनीति, यहां तक कि शिक्षणनीति भी इनसे प्रभावित होती है; परंतु परिणाम देखकर निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इन महान साधनों के मालिकों में उदार हृदय नहीं हैं, चरित्र–बल नहीं है और शुभानुध्यायी बुद्धि नहीं है। अत्यंत घिनौने युद्ध, बुद्धिमत्तापूर्ण मिथ्या प्रचार और राग–द्वेष से विषायित प्रतिस्पर्द्धा यही सिद्ध कर रही है। मैं जितनी दूर तक देखने की दृष्टि पा सका हूं उतनी दूर तक मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि नियमित प्रयत्नों और सुचिंतित योजनाओं के बल पर विज्ञान की सर्वग्रासिनी शक्ति और भी शक्तिशाली होती जाएगी, उसे रोकना अब संभव नहीं है। नदी की धारा को मोड़ना दुष्कर है। इसलिए मैं बराबर सोचता हूं कि यह क्या ऐसे ही छोड़ दिया जाना चाहिए। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे शक्तिशाली को सहृदय और सच्चरित्र बनाया जा सके? मेरे पास इसका एक ही उत्तर है। यह उपाय है, उदार और सरस साहित्य। मेरा मन बार–बार ग्लानि और क्षोभ के साथ जानना चाहता है कि साहित्यिक कहे जानेवाले लोग, जिनका काम ही विश्व को सरस, स्निग्ध और उदार बनाना है, जो संवेदनशीलता को इतना बहुमान देते हैं, विज्ञान की इस

टिप्पणी

टिप्पणी

बढ़ती हुई शक्ति के साथ क्या ताल मिलाकर चल सके हैं? बाधाएं हैं, मैं उन्हें स्वीकार करता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि संसार के अनेक साहित्यकार बार–बार सचेत करते आए हैं कि विज्ञान द्वारा प्राप्त शक्ति के साथ मनुष्य की भीतरी शक्तियों के उद्‌बोधन का सामंजस्य होना चाहिए। संकीर्ण राष्ट्रीयता, मोहग्रस्त जातिप्रेम और पथभ्रांत व्यापार–वाणिज्य के साथ विज्ञान के सार्वभौम सत्यों का कोई मेल नहीं है, अंधाधुंध बढ़ाने वाली अनियंत्रित उत्पादन–व्यवस्था के साथ मनुष्य के सार्वजनीन रागात्मक संबंधों का विरोध अवश्यंभावी है; परंतु मुझे यह भी मालूम हैं कि ऊंचे सिंहासनों तक इन साहित्यिकों की वाणी नहीं पहुंची है। शक्ति–मद से मत्त लोगों ने इन चेतावनियों का उपहास किया है। हमारे देश के श्रेष्ठ साहित्यकार कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने नाना भाव से यह संदेश मदगर्वित राष्ट्रनायकों तक पहुंचाना चाहा; परंतु संदेशा या तो सुना ही नहीं गया या सुनकर भी उपेक्षित हुआ। मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि झूठी, विद्वेष–प्रचारिणी और विषैली बातों का जितना तेजी से प्रचार किया गया है, उतनी ही निर्दयतापूर्वक इन शुभ–विधायी वाणियों की अवहेलना की गई है। साहित्यिकों के विचारने के लिए यह बड़ा भारी प्रश्न है। हार तो माननी ही नहीं है। हमें आज सावधानी से बाधक तत्वों का अध्ययन करना है और देखना है कि हमारे मंगल प्रयत्न अरण्य–रोदन सिद्ध न हों। अगर संसार को महानाश से बचाना है तो साहित्यिकों को विराट प्रयत्न करने होंगे। इन बाधक तत्वों से जूझना होगा। यह मत सोचिये कि हम दुनिया के एक कोने में पड़े हुए ऐसी भाषा के साहित्यिक हैं जो भारतवर्ष की चहारदीवारी के बाहर समझी ही नहीं जाती। इसलिए हमारे प्रयत्न से दुनिया की मदगर्वित राष्ट्रनीति में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। मैं कहना चाहता हूं कि आज हम यह भूल जाएं कि हिंदी दुर्बलों की दुर्बल भाषा है। वह संसार की अत्यंत शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि चीन, थाईलैंड, जावा, सुमात्रा आदि एशियाई देशों में हिंदी सीखने की उत्सुकता बहुत बढ़ गई है। यह निश्चित मानिये कि इन देशों के लोग केवल अक्षर–बोध के लिए हिंदी सीखना नहीं चाहते। वह बड़ी चीजों को पाने की आशा से इधर झुके हैं और अगर आपने बड़ी बातें देने और लेने का प्रयत्न किया तो आपके प्रयत्न उपेक्षित नहीं होंगे। मनुष्य–जाति का अधिकांश इन्हीं देशों में बसा है। इन देशों के मनुष्यों की चिंतन–धारा अगर मंगल–विधायिनी होगी तो समूची मनुष्यता के लिए वह हितकर होगी। साहित्य–सेवा का अवसर पाना बड़े सौभाग्य की बात है और हिंदी साहित्य की सेवा पाना किसी प्रकार कम सौभाग्य नहीं है। यदि हममें दृढ़ निश्चय होगा तो हम निश्चय ही संसार को उदार और चरित्रवान बना सकेंगे और संसार को महानाश के गर्त में गिरने से उबार सकेंगे। इस समय हमें धीर भाव से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना है!

यह लक्ष्य क्या है? देश के स्वतंत्र हो जाने पर हमें राष्ट्र–निर्माण के लिए अनेक प्रयत्न करने होंगे। हमारे साहित्यिक नेताओं ने इस मंच से अनेक उपाय सुझा रखे हैं। इस प्रकार हमारे पास न तो काम की कमी है न उपाय की। परंतु ये काम और ये उपाय हमारे अंतिम लक्ष्य नहीं है। हमारे नेताओं की सुझाई हुई योजनाओं के कार्यान्वित होने में कई बाधाएं हैं। बड़ी भारी बाधा हमारी सामाजिक व्यवस्था ही है। मनुष्य की आदि वृत्तियों को प्रलुब्ध करने से वह लाभ–हानि की चिंता छोड़ देता है। यदि इन वृत्तियों को ही प्रधान उपजीव्य बनाकर आदमी कारबार शुरू करने की छूट पा जाय तो वह निश्चय ही सफलता पा जाएगा। फिर वह यह परवाह नहीं करता कि इससे उसकी दीर्घकाल की प्राप्त की हुई साधना म्लान हो जाती है या नहीं, त्याग और बलिदान से प्राप्त की हुई मनुष्यता म्लान होती है या नहीं। दुर्भाग्यवश इस समय जो व्यवस्था हमारे सिर पर है, उसमें इस बात की छूट है। मनुष्य के पशु–सामान्य मनोभावों को सहला कर रुपया कमाना इस व्यवस्था में एक हद तक विहित है। साहित्य के द्वारा, रंगमंच के द्वारा और सवाक्–पट के द्वारा बहुत–से व्यवसायी उस ओर लग गए। जिन विषयों के गंभीर अध्ययन से मनुष्य का परिष्कृत और हृदय सुसंकृत होता है, उसमें श्रम लगता है, और उसके लिए बाजार आसानी से नहीं मिलता। इसीलिए कितनी भी अच्छी योजना बनाइए और कितना भी सुंदर उपदेश सुना जाइए, सात्विक साहित्य की ओर प्रवृत्ति नहीं जाती और हल्के ढंग का साहित्यिक बाजी मार ले जाता है। यह सच्चाई है। फिर भी इस समूची विरोधिता के होते हुए भी हिंदी में गंभीर और अध्ययनशील साहित्य का सर्जन हुआ है, क्योंकि मनुष्य का इतिहास ही सद्‌वृत्तियों की विजय का इतिहास है। असामाजिक मनोवृत्तियों को दबाकर समाज की मंगल विधायिनी प्रचेष्टाओं के उत्कर्ष का इतिहास है। हर्ष की बात है कि इस देश के विश्वविद्यालय हिंदी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करते जा रहे हैं। इनके लिए पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता भी जरूर होगी। इनके लिए बाजार भी मिलेगा और इनसे रुपया भी कमाया जा सकेगा। गंभीर साहित्य भी इस बहाने कुछ–न–कुछ अवश्य लिखा जाएगा। इस कार्य में आप हाथ–पर–हाथ धरे बैठ नहीं सकते और 'क' नहीं तो 'ख' इस काम को कर ही लेगा। जिसके लिए बाजार में मांग होगी, उसका उत्पादन होकर ही रहेगा। उसके लिए आपको संगठन और सुनिश्चित योजना बनाने की चिंता नहीं करनी होगी। हिंदी को माध्यम स्वीकार कर लेने से ही हमें संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। कारण कि पोथियों की संख्या बढ़ाना या ज्ञान की दुकान चलाना साहित्य का लक्ष्य नहीं है। मेरे मन में हिंदी भाषा और साहित्य का एक विशिष्ट रूप है। हमारे देश में जो स्थान कभी संस्कृत का था और जो स्थान आज अंग्रेजी ने ले लिया है, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर हिंदी को बैठाना है। मैंने यह बात पहले भी कही है और फिर भी दुहरा रहा हूं। हिंदी को संसार के समूचे ज्ञान–विज्ञान का वाहन बनाना है। उसका कर्तव्य बहुत विशाल है। उसे अपने को महान उत्तरदायित्व के योग्य सिद्ध करना है। मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचाना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है। इससे छोटे लक्ष्य की बात मुझे अच्छी नहीं लगती। इस महान उद्देश्य को हिंदी पूर्ति कर सके तभी वह उस महान उत्तरदायित्व के योग्य सिद्ध होगी, जो इतिहास–विधाता की ओर से उसे मिला है। हिंदी भारतवर्ष के हृदय–देश में स्थित करोड़ों नर–नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खूराक देनेवाली भाषा है। हिंदी के ऊपर महान उत्तरदायित्व की बात जब मैं कहता हूं तो मेरा मतलब यही होता है कि भारतवर्ष की राजभाषा चाहे जो हो और जैसी भी हो, पर इतना निश्चित है कि भारतवर्ष की केंद्रीय भाषा हिंदी है। लगभग आधा भारतवर्ष उसे अपनी साहित्यिक भाषा मानता है, साहित्यिक भाषा अर्थात उसके हृदय और मस्तिष्क की भूख मिटानेवाली भाषा, करोड़ों की आशा–आकांक्षा, अनुराग–विराग, रुदन–हास्य की भाषा। उसमें साहित्य लिखने का अर्थ है करोड़ों के मानसिक स्तर को ऊंचा करना, करोड़ों मनुष्यों को मनुष्य के सुख–दुःख के प्रति संवेदनशील बनाना, करोड़ों को अज्ञान, मोह और

टिप्पणी

टिप्पणी

कुसंस्कार से मुक्त कराना। केवल शिक्षित और पंडित बना देने से यह काम नहीं हो सकता। वह शिक्षा किस काम की, जो दूसरों के शोषण में, और अपने स्वार्थ–साधन में ही अपनी चरम सार्थकता समझती हो? इसीलिए आज जब हमारे सामने गंभीर साहित्य लिखने का बहाना आ उपस्थित हुआ है, तो हम जो कुछ भी लिखें, उसे अपने महान उद्देश्य के अनुकूल बनाकर लिखें। संसार के अन्यान्य राष्ट्रों ने अपने साहित्य को जिस दृष्टि से लिखा है, उसकी प्रतिक्रिया और अनुकरण नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य ने संयोग का सहारा लिया है, उसी प्रकार साहित्य और शिक्षण के क्षेत्र में भी अटकल का सहारा लिया है। उसका फल अच्छा नहीं हुआ है। हमें सौभाग्यवश नये सिरे से सब–कुछ करना है। इसीलिए हमारे पाठ्यग्रंथों तथा रसात्मक साहित्य की रचना भी किसी खंड–सत्य के लिए नहीं होनी चाहिए। समूची मनुष्यता जिससे लाभान्वित हो, एक जाति दूसरी जाति से घृणा न करके प्रेम करे, एक समूह दूसरे समूह को दूर रखने की इच्छा न करके पास लाने का प्रयत्न करे, कोई किसी का आश्रित न हो, कोई किसी से वंचित न हो, इस महान उद्देश्य से ही हमारा साहित्य प्रणोदित होना चाहिए। संसार के कई देशों ने अपनी जातीय श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के उद्देश्य से साहित्य लिखा है और कोमल मस्तिष्क वाले युवकों की बुद्धि विषाक्त बना दी है। उसका परिणाम संसार को भोगना पड़ा है। घृणा और द्वेष से कोई बढ़ नहीं सकता। घृणा और द्वेष से जो बढ़ता है, वह शीघ्र ही पतन के गह्वर में गिर पड़ता है। यही प्रकृति का विधान है। लोभ–वश, मोह–वश और क्रोध–वश जो कर्तव्य निश्चित किया जाएगा, वह हानिकारक होगा। बड़ी साधना और तपस्या के बाद मनुष्य ने इन आदिम मनोवृत्तियों पर विजय पाई है। ये वृत्तियां दबी हैं, किंतु वर्तमान हैं। उन पर आधारित प्रयत्न मनुष्यता के विरोधी हैं। प्रेम बड़ी वस्तु है, त्याग बड़ी वस्तु है और मनुष्यमात्र को वास्तविक 'मनुष्य' बनानेवाला ज्ञान भी बड़ी वस्तु है। हमारा साहित्य इन बातों पर आधारित होगा तभी वह संसार को नया प्रकाश दे सकेगा।

हमारे देश में बहुत शुरू से ही काम करना है। यहां की समूची जनता अभी साक्षर भी नहीं हो सकी है। अनेक जातियां अभी अत्यंत आदिम काल की जिंदगी बिता रही हैं। रोग और दारिद्रय के अभिशाप से समूची जनता जर्जर है। इस निरक्षर देश के साहित्यकार की ज़िम्मेदारी भी बहुत है। दूसरे देशों ने जो कुछ किया है या जो कुछ कर रहे हैं, वे ही उपाय हमारे यहां सब समय नहीं चल सकते। हमें सब–कुछ नये सिरे से गढ़ना है। हमारे साहित्य में अभी तक कविता, कहानियों और अन्यान्य रसात्मक साहित्य की ही धूम है; परंतु रसात्मक साहित्य के पोषण के लिए जिस प्रकार के शक्तिशाली वैज्ञानिक और दार्शनिक साहित्य की आवश्यकता है, वह हमारे पास नहीं है। इसीलिए साहित्य को अशिक्षित जनता का चित्त जागरूक करने के लिए जितना कुछ करना चाहिए था, उतना वह नहीं कर सकता है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक बार कहा था, "कहानी, कविता और नाटक इन्हीं से हमारे साहित्य की पंद्रह आने तैयारियां हो रही हैं, अर्थात दावत का आयोजन हो रहा है, शक्ति का आयोजन बिल्कुल नहीं। यह सब कुछ हो रहा है पाश्चात्य देशों की चित्ताकर्षक विचित्र चित्त शक्ति के प्रबल सहयोग से। वहां मनुष्यत्व देह, मन और प्राण सभी दिशाओं से व्याप्त है; इसीलिए वहां अगर त्रुटियां भी हैं, तो साथ–ही–साथ उनकी पूर्ति भी है। मान लो वटवृक्ष की कोई डाली आंधी से टूट रही हैं, कहीं पर कीड़े खा–खाकर उसे खोखला कर रहे हैं, किसी साल वर्षा ही कम हुई है; परन्तु फिर भी सब मिलाकर वनस्पति ने अपने

टिप्पणी

स्वास्थ्य और शक्ति को बनाये रखा है। उसी तरह पाश्चात्य देशों ने मन और प्राणों को क्रियाशील बना रखा है। वहां की अपनी विद्या ने, अपनी शिक्षा ने, अपने साहित्य ने इन सबने मिलकर वाक्शक्ति की अथक उन्नति की। इन सबके उत्कर्ष से ही वहां का उत्कर्ष है।" हमें भी अपने रसात्मक साहित्य को अगर स्वस्थ और सबल बनाना है, तो हमें अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल अपने ढंग की शिक्षा और विद्या की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरों की नकल करके हम अपना हित नहीं कर सकते। हमारी समस्याएं अनेक हैं, परिस्थिति जटिल है। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर हमारी जनता के नाना समूह खड़े हैं। सबका मुंह भी एक ही तरफ नहीं है। सबको उन्नति की ओर ले जाने के लिए हमें नाना प्रकार के प्रयोग करने पड़ेंगे। उद्देश्य की एकता के सिवा इन प्रयोगों में और किसी एकता का आरोप करना भूल होगी। कठिनाइयां चाहे कितनी भी क्यों न हों, रास्ता निकालना ही पड़ेगा। हम अपने प्राचीन और महान देश को अंधकार में भटकने के लिए नहीं छोड़ सकते और काम हमें जितना भी आरंभिक अवस्था से क्यों न शुरू करना हो, हम अपने लक्ष्य को छोटा नहीं होने दे सकते।

हिंदी की अनेक प्रकाशन संस्थाएं उपयोगी काम कर रही हैं। इनमें से कुछ का उद्देश्य रुपया कमाना भी हो सकता है; परन्तु जब तक रुपया है और वह कमाया जा सकता है, तब तक रुपया कमाने को आप निषिद्ध–कर्म नहीं कह सकते। आप केवल इतनी ही आशा कर सकते हैं कि साहित्य जैसी पवित्र वस्तु को निर्माण करने का संकल्प रखने वाली ये संस्थाएं रुपया कमाने को समाज–निर्माण के कार्य से बड़ा न समझें। इनमें कुछ संस्थाएं तो अपना निश्चित उद्देश्य लेकर काम करने लगी हैं। उदाहरणार्थ, कुछ समाज–विज्ञान और समाजवादी व्यवस्था के अध्ययन और प्रचार का प्रयत्न कर रही हैं, कुछ हिंदी–साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन अंगों का अध्ययन और प्रचार कर रही हैं और कुछ हिन्दू–धर्म के नये और पुराने रूपों का ही प्रचार कर रही हैं। मेरे मन में बार–बार यह प्रश्न उठता है कि हिंदी में जो सैंकड़ों पत्रिकाएं और पुस्तकें निकल रही हैं, उनको एक निश्चित योजना के अनुसार क्यों नहीं निकाला जा सकता है? कभी–कभी एक ही विषय की बार–बार पुनरावृत्ति हो जाती हैं मैं इन सभी संचालकों से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे एकत्र होकर अपना–अपना कार्यक्षेत्र बांट लें। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के बल पर कह सकता हूं कि हमारे यहां उच्च कोटि के लेखकों की कमी है और यदि प्रत्येक संस्था कुछ गिने–चुने व्यक्तियों से अपना काम चलाना चाहे तो न तो साहित्य ही उत्तम कोटि का बन पायेगा, न उक्त संस्थाएं ही लाभान्वित होंगी। विद्वानों की हमारे यहां कमी नहीं है। यह साहित्यिक संस्थाओं का कर्तव्य होना चाहिए कि वे विद्वानों को लिखने की ओर प्रवृत्त करायें। हिंदी में न जाने कितनी बेमतलब की पुस्तकें और पत्रिकाएं छप रही हैं। सभी प्रकाशकों से मेरा नम्र अनुरोध है कि वे इस प्रकार राष्ट्र के धन का अपव्यय न करके सुचिंतित योजना के अनुसार पुस्तकें प्रकाशित करें।

वस्तुतः हिंदी में अभी किसी भी साहित्यांग पर संतोषजनक कार्य नहीं हुआ। मेरे नौजवान मित्र जब कभी पूछ बैठते हैं कि क्या लिखें, तो मुझे झुंझलाहट होती है। हमारे पास है ही क्या? हमारा इतिहास विदेशी भाषाओं में थोड़ा बहुत लिखा है। हमारी जनता के आचार–विचार, रीति–नीति भाषा–भाव, नवीन–प्राचीन, धर्म–ईमान के बारे में विदेशियों ने ही थोड़ा–बहुत लिखा है। उनका उद्देश्य सब समय अच्छा ही नहीं होता, उनकी दृष्टि से जो

टिप्पणी

अच्छा है, वह हमारी दृष्टि से भी अच्छा होगा, ऐसा जोर देकर नहीं कहा जा सकता। हमारे कीड़े–मकोड़े, पेड़–पौधे, नदी–पहाड़ जंगल–झाड़, मरु–मालव के बारे में भी विदेशी भाषा में ही थोड़ा बहुत मिल जाता हे। विदेशों के लोग–बाग, जीव–जन्तु, नदी–पर्वत और व्यवसाय–वाणिज्य आदि का तो कहना ही क्या! जिन विदेशी पंड़ितों ने हमारे देश के जड़–चेतन के बारे में परिश्रमपूर्वक और ईमानदारी के साथ बहुत कुछ लिख रखा है, उनके हम अवश्य कृतज्ञ होंगे, पर उतने से ही हमें संतुष्ट नहीं होना है। हमें अपने देश को अपनी आंखों से देखना है। जब तक हम इस विशाल और महान देश को उसकी समूची खूबियों के साथ नहीं चाहते, तब तक इसके प्रति हमारा प्रेम मौखिक और क्षणस्थायी होगा। फिर जिस भाषा से करोड़ों जनता अपनी मानसिक भूख मिटाने की आशा करती हो, उसमें इतना भी न हो तो कोई कैसे समझे कि सचमुच ही हम इस भाषा से प्रेम करते हैं? इसीलिए अगर निश्चित योजना के अनुसार कार्य किया जाए तो अच्छा और उपयोगी साहित्य बन सकता है।

हिंदी–साहित्य के अध्ययन के लिए कई संस्थाएं काम कर रही हैं और अच्छा काम कर रही हैं; परंतु अब आवश्यकता है कि हम इसके मूल उत्सों तक पहुंचे। केवल सुयोग और सौभाग्यवश पाई हुई पुस्तकों के आधार पर हिंदी साहित्य का इतिहास और उसका स्वरूप नहीं समझा जा सकता है। हिंदी–साहित्य लोक–साहित्य था। आज भारतीय जन–समाज की जो अवस्था है वह सदा से नहीं रही है। नये–नये जनसमूह इस देश में आते रहे हैं और पुराने विचारों को बदलते रहे हैं। लोक–कथाओं, लोकोक्तियों और जनता के प्रचलित आचार–विचारों से ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातों का पता लग सकता है, जो पुस्तकों से प्राप्त नहीं हो सकतीं। साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों ओर कवियों के उद्‌भव और विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादिकाल–प्रवाह में निरंतर प्रवहमान जीवंत मानव समाज की ही विकास कथा है। ग्रंथ और ग्रंथकार तो उस धारा की ओर अंगुलि–निर्देश करते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों के स्नातक आजकल आचार्यत्व (डाक्टरेट) प्राप्त करने के लिए उद्‌ग्रीव दिखते हैं। विश्वविद्यालयों के अधिकारी इन स्नातकों को यदि लोक–साहित्य की ओर मोड़ सकें तो वे अनेक महार्घ रत्नों को जुटा ले आयेंगे। पुस्तक–साहित्य का अध्ययन भी तब तक अपूर्ण ही रहेगा जब तक नाथ मत, शाक्त–संप्रदाय, वैष्णव–संहिताओं और बौद्ध और जैन अपभ्रंश साहित्य का अच्छा अध्ययन न प्रस्तुत किया जाए। इन विषयों का अध्ययन अभी तक उपेक्षित है। हिंदी के साहित्य शोधक इनका भी अध्ययन आरंभ करें तो बहुत कुछ दे सकते हैं। हमारे प्राचीनतर साहित्य का तो कुछ भी अध्ययन हिंदी में नहीं हुआ। बहुत थोड़ी–सी धार्मिक पुस्तकों के जैसे–तैसे अनुवाद की ओर यथाशीघ्र ध्यान देना चाहिए। राहुलजी और उनके मित्रों ने पालि–साहित्य का अच्छा अंश हिंदी में अनुवादित कर लिया है; परंतु महायान के विपुल साहित्य को अभी छुआ भी नहीं गया है। यद्यपि देश में जैन विद्वानों और जैन–संस्थाओं का अभाव नहीं है, तथापि अभी तक जैन ग्रंथ सर्वजन–आस्वाद्य बनाकर नहीं लिखे गए। श्री नाथूराम जी प्रेमी, मुनि जिनविजयजी और पं. सुखलालजी आदि विद्वानों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है, परंतु विशाल जैन–साहित्य को देखते हुए यह कार्य बहुत मामूली जान पड़ता है और ब्राह्मण–साहित्य को तो हिंदी में पूरा–पूरा आ जाना चाहिए था; पर सच पूछिये तो यह साहित्य बिल्कुल ही अस्पृष्ट रह गया। वेद, ब्राह्मण, आरण्यकों और उपनिषदों का ही आधुनिक ढंग से संपादन और विवेचन नहीं हुआ तो औरों की तो बात ही क्या! विदेशी विद्वानों ने इस क्षेत्र में हमें

टिप्पणी

पराजित किया है। हमें अपने समूचे साहित्य को, विविध भाषाओं को, विविध रीति–नीतियों को और संपूर्ण जनता को अनासक्त और अनाविल दृष्टि से देखने का अब व्रत लेना है।

बालकों के योग्य पुस्तकों का तो हमारे साहित्य में नितांत अभाव है। यह काम जल्दी ही हो जाना चाहिए। हमें साहित्य के प्रत्येक अंग पर बालकों के लिए साहित्य लिखना ही होगा। हमारे पड़ोसी बांग्ला–साहित्य में इस विषय में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। मेरे बच्चे बांग्ला माध्यम से स्कूल की पढ़ाई करते हैं। आये दिन वे जो पुस्तकें पढ़ने को ले आते हैं, उन्हें देखकर मुझे आश्चर्य और आनंद होता है। ऐसे उल्लेखनीय स्वदेशी–विदेशी, नाटक–काव्य और उपन्यास कम हैं, जिनका सार–मर्म बच्चों की भाषा में बंगाली लेखक ने न लिख दिया हो। नाना विषयों पर उन्होंने लेखनी चलाई है। सभ्य जाति अपने बच्चों और स्त्रियों का ज्यादा ध्यान रखती है। हमने इन दोनों ही क्षेत्रों में लापरवाही का परिचय दिया है। बहुत–से प्रकाशक बालकों का साहित्य छापने का कारोबार करते हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश बहुतों की शक्ति रीडरबाजी में बर्बाद हो जाती है। बालकों और स्त्रियों के लिए साहित्य की विशेष रूप से आवश्यकता है। शांति–निकेतन के हिंदी–भवन के लिए जब हम योजना बना रहे थे, तो महामना भारत–भक्त दीनबन्धु एंड्रयूज ने बालकों का साहित्य उसी योजना का अंग बनाना चाहा था। हम लोगों ने जब आना–कानी की, तो उन्होंने जोर देकर कहा, "और कुछ करो या न करो, बालकों के लिए साहित्य लिखने का काम अवश्य करो।" नाना कारणों से हम वैसा नहीं कर सके, पर एंड्रयूज की वह गम्भीर मुद्रा और अत्यन्त जोर के साथ कही हुई बात मुझको कभी नहीं भूलती। उस महापुरुष ने साहित्य की नींव को ही मजबूत करना चाहा था।

हमारे इस निरक्षर देश में प्रौढ़–शिक्षा का काम शुरू करना पड़ेगा। बालकों के लिए यदि कुछ पुस्तकें मिल भी जाएंगी तो प्रौढ़ों के लिए नहीं मिलेंगी। उत्साही और साहसी साहित्यकों को इस दिशा में दृढ़ता के साथ बढ़ना चाहिए। वैसे तो प्रौढ़–शिक्षा स्वयंमेव बहुत महत्वपूर्ण वस्तु है, पर हमारे देश में एक और महत्व का कार्य इसके साथ जुड़ा हुआ है। इस देश में आदिम जातियां हैं, जिनकी, कहा जाता है, अपनी लिपि नहीं है। अर्थात वे अब तक लिखने–पढ़ने से वंचित थीं। चूंकि ये जातियां लिखना–पढ़ना नहीं जानती थीं, इसलिए मतलबी प्रचारकों ने कहना शुरू किया कि इनकी कोई लिपि नहीं है। इनकी लिपि वही लिपि है जो हजारों वर्षों से इस देश की लिपि बनी हुई है। स्थान और काल के हिसाब से वह बदलती रही है, फिर भी वह लिपि सारे भारतवर्ष की अपनी जातीय लिपि है। प्रौढ़–शिक्षा के लिए हमें अनेक आदिम–भाषी मित्रों की भाषाओं का अध्ययन करना होगा और उनके लिए उपयोगी और स्वस्थ साहित्य देवनागरी लिपि के द्वारा देना होगा। इस कार्य में विलंब नहीं होना चाहिए।

फिर विज्ञान है, दर्शन है, ललित कला है, इनके परिचायक शास्त्र हैं, इनकी पुरानी परंपरा और नई परिणतियों का हमें अध्ययन करना है। हमारे देश का ऐतद्विषयक साहित्य गंभीर और महत्वपूर्ण है। उन ग्रंथों का संपादन, शोधन और अनुवाद हमें करना है। विदेशी साहित्य और दर्शन तथा अन्य विषयों की पुस्तकें और उनका सार–मर्म बताने वाली पुस्तकें भी आवश्यक हैं। पूर्व और पश्चिम का संपूर्ण रस निचोड़कर ही हिंदी–साहित्य अपने को पुष्ट और सबल बना सकता है।

टिप्पणी

हमें हिंदी को एक ऐसी भाषा नहीं बना देना है, जो सर्व–साधारण के निकट अंग्रेजी की भांति दुर्बोध्य बनी रहे या संस्कृत की ही भांति कुछ चुने हुए लोगों के शास्त्रार्थ–विचार की भाषा बन जाए। ऐसा करके तो हम निश्चित रूप से हिंदी का अहित करेंगे। हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मामूली–से–मामूली जनचित्त को ऊपर उठा सके। हमें तो इस भाषा को इस योग्य बना देना है कि वह साधारण–से–साधारण मजदूर से लेकर अत्यंत विकसित मस्तिष्क के बुद्धिजीवी के दिमाग से समान भाव से विहार कर सके।

4.4.3 निबंध शैली

आचार्य द्विवेदी हिंदी के प्रौढ़ शैलीकार हैं। विषय प्रतिपादन के लिए वे कहीं आगमन एवं कहीं निगमन शैली का प्रयोग करते हैं। आगमन शैली प्रायः वर्णन प्रधान होती है और निगमन शैली व्याख्या प्रधान। आगमन शैली में विषय–वस्तु का वर्णन पहले तथा निष्कर्ष अंत में रहता है। निगमन शैली में सूत्र रूप में कुछ कहकर फिर उसकी व्याख्या की जाती है। उनके शोध–संबंधी निबंध तथा लेख आगमन शैली में मिलते हैं। ऐसे निबंधों की शैली गवेषणात्मक है। भावना के उत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए द्विवेदी जी भावनात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। आचार्य द्विवेदी गंभीर विषयों के प्रतिपादन में संस्कृत निष्ठ भाषा का उपयोग करते हैं जिसमें तत्सम शब्दों की भरमार होती है। वे उर्दू, फारसी तथा देशज भाषा के शब्दों का भी बहुतायत से प्रयोग करते हैं। आचार्य द्विवेदी की भाषा व्याकरण सम्मत, सजीव, प्रवाहमयी, सुगठित होती है। वे महादेवी वर्मा की तरह शब्द–चित्रों के अंकन में भी सिद्धहस्त हैं। संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित होने के साथ द्विवेदी जी प्राकृत, अपभ्रंश, एवं बांग्ला भाषा के भी अधिकारी विद्वान हैं। उनका चिंतन वादों से घिरा न होकर मुक्त एवं मौलिक होता है। साहित्य के स्वरूप को अंतःप्रेरणाओं का स्रोत मानते हुए वे कहते हैं– "जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजाद्दीप्त न बना सके उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" वे रचना और रचनाकार में एक्य देखते हैं। वे अपनी सैद्धांतिक आलोचनाओं में साहित्य के विभिन्न अंगों पर विचार करते हैं। रचना को देश और जीवन की तत्कालीन परिस्थितियों में रखकर देखते और परखते हैं। उन्होंने व्यावहारिक आलोचनाएं करते हुए भी मौलिकता का परिचय दिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अधिकांश विचारात्मक निबंध ललित निबंधों की कोटि में आते हैं। इन ललित निबंधों में तन्मयता है, रस है तथा भाव और कल्पना का सुंदर समन्वय है। हास्य–विनोद की झलकियां जीवंतता को और बढ़ा देती हैं। भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक होने के कारण द्विवेदी जी के सांस्कृतिक निबंधों में तथा ललित निबंधों में भी महत्वपूर्ण संदर्भों में विश्व मानव संस्कृति की विराट जीवन और जययात्रा की आभा बिखरी दिखाई देती है। इन निबंधों में समन्वयात्मक शैली में प्राचीन एवं नवीन का अद्भुत संगम दिखाई देता है। उन्होंने अपने आलोचनात्मक निबंधों में विशिष्ट संतुलन और संयम से परिपूर्ण दृष्टि का परिचय दिया है। सैद्धांतिक आलोचना हो या व्यावहारिक आलोचना, विषय का प्रतिपादन करते हुए वे विषयानुकूल भाषा एवं भावों को संतुष्ट करने वाली शैली का प्रयोग करते हैं। आचार्य द्विवेदी ललित निबंधकारों की श्रेणी में अग्रगण्य हैं अतः विषय कोई भी हो वे अपनी रचनात्मक क्षमता से शुष्क, नीरस एवं व्यर्थ से लगने वाले विषयों को

टिप्पणी

भी सरस सार्थक तथा रोचक बना देते हैं। द्विवेदी जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ अवश्य हैं किंतु उसमें वैविध्य एवं भाषायी लालित्य सर्वत्र विद्यमान है। उनकी भाषा में अलंकारिता का भी समावेश है– "मुझे लगता है कि नवल वधू के समान यह बिचारी आम्र मंजरी जरा सा झांकने बाहर निकली है।" द्विवेदी जी दार्शनिक विषयों को व्याख्यात्मक शैली के द्वारा प्रतिपादित करते हैं। ऐसी व्याख्याएं तर्कसंगत तथा तथ्यपरक होने के साथ गहन एवं संयत दिखाई देती हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात द्विवेदी जी ही सर्वाधिक सशक्त एवं सफल निबंधकार माने जाते हैं। ललित निबंधों की समस्त विशेषताओं की कसौटी पर द्विवेदी जी के निबंध खरे उतरते हैं। स्वाभाविकता, तारल्य, सुघड़ता, रोचकता अपने समकालीन निबंधकारों की तुलना में द्विवेदी जी के निबंधों में अधिक दृष्टिगोचर होती है। आचार्य शुक्ल की ही तरह गंभीर विषयों को प्रतिपादित करते हुए वे उनमें हास्य–व्यंग्य–विनोद की संयत पदावली का प्रयोग कर मधुरता, रमणीयता, प्रभावशाली एवं आकर्षक होने का गुण उत्पन्न कर देते हैं। आचार्य द्विवेदी शुक्लोत्तर युग के अग्रणी निबंधकार हैं। द्विवेदी जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि विषय चाहे जो हो साहित्यकार की प्रतिभा का संबल पाकर वह गंभीर एवं पठनीय बन जाता है। उदाहरण के लिए हम प्रस्तुत निबंध 'साहित्यकारों का दायित्व' को ही लें। इसमें लेखक ने भारतीय प्राचीन साहित्य, इतिहास, धर्म ग्रंथों की महत्ता को सिद्ध करते हुए समकालीन परिस्थितियों के अनुसार नया साहित्य रचने की प्रेरणा दी है। उन्होंने अत्यंत सहज शब्दावली में साहित्यकारों को उनके दायित्व की गंभीरता से परिचय कराया है। वे समस्या और उसका समाधान साथ–साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके निबंधों में प्रकट होने वाली मुख्य भावनाएं मानवतावाद तथा लोक संग्रह की भावना है। वे भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान हैं। इसके उदाहरण स्वरूप उन्होंने 'अशोक के फूल', 'भारतीय संस्कृति की देन', 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या' जैसे निबंध लिखे। आचार्य द्विवेदी के निबंधों में गांधीवाद की छाप दिखाई देती हैं। उनके निबंध आकार की दृष्टि से प्रायः छोटे हैं। संक्षिप्त निबंधों में गहन, गूढ़ विषय का सरस प्रतिपादन करना उनकी विशेषता है। आचार्य द्विवेदी एक कुशल अध्यापक हैं। जयनाथ नलिन ने आचार्य द्विवेदी की रचनात्मकता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि– "पांडित्य के साथ सरल सहजता, अध्ययन के साथ भोलापन चिन्तन के साथ विचारों की स्पष्टता और बात करने की सफाई, गंभीर विवेचन के साथ शैली की प्रसादात्मकता का सामन्जस्य, विचार और भावुकता का सानुपातिक मिश्रण ये विशेषताएं द्विवेदी जी के व्यक्तित्व और साहित्य दोनों में मिलेंगी।" आचार्य द्विवेदी की शैली जो भी हो, भाषा में काव्यात्मकता का कोमल मधुर प्रवाह पाया जाता है। वे अलंकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए– "कोमल हाथों में अशोक पल्लवों का गुच्छा आया, अलक्तक से रंजित नूपुरमय चरणों के मृदु आघात से अशोक पाद देश आहत हुआ।" कहीं–कहीं द्विवेदी जी भाव विभोर होकर भागीरथी की भांति कल–कल निनाद करती भाषा का उपयोग करते हैं। विषयानुकूल भाषा में परिवर्तन करते चलते हैं। वाक्य–विन्यास दीर्घ हो या लघु उसमें भावों की सुस्पष्टता देखी जा सकती हैं। उनके निबंधों में विवेचनात्मक शैली में वाक्यों की कलात्मकता एवं सुघड़ता पाठक को कहीं छूटने नहीं देती। वे लंबे वाक्यों को भी प्रभावशाली बनाकर लिखते हैं तथा आवश्यकता के अनुसार सूक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। कुछ सूक्तियों का सौंदर्य दृष्टव्य है–

टिप्पणी

1. सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।
2. आम्र मंजरी मदन देवता का अमोघ वाण है।
3. शंकाशील ह्रदयों में प्रेम की वाणी भी शंका ही उत्पन्न करती है।
4. कमजोरों में भावुकता ज्यादा होती होगी।

द्विवेदी जी की शैली चयन करने की कुशलता पर दृष्टि डालें तो शैली के संबंध में डॉ. देवराज का मत ध्यान में आता है– "शैली अनुभूत विषय वस्तु को सजाने के लिए उन तरीकों का नाम है, जो उस विषय–वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।" आचार्य द्विवेदी अनुभूतियों की सौंदर्यमय अभिव्यक्ति के लिए निम्नलिखित शैलियों का प्रमुख रूप से उपयोग करते थे– (i) विवेचनात्मक शैली (ii) प्रसादात्मक शैली (iii) भावात्मक शैली (iv) व्याख्यात्मक शैली (v) आवेग शैली (vi) अलंकृत शैली (vii) चिंतन प्रधान गंभीर तत्सम शैली।

आचार्य द्विवेदी के निबंध हिंदी साहित्य की अक्षय निधि हैं। उनमें उनके व्यक्तित्व की उपस्थिति हैं। साहित्यकारों का दायित्व विवेचनात्मक, चिंतन प्रधान भावुक एवं भावात्मक शैली में लिखा गया निबंध है जिसे ललित निबंधों में कोटि में रखा जा सकता है।

4.4.4 साहित्यकारों का दायित्व–प्रतिपाद्य

स्वतंत्र भारत के आरंभिक काल में कराची हिंदी साहित्य सम्मेलन परिषद् के सभापति से भाषण देते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बुद्धिजीवी श्रोताओं के सम्मुख अपनी आकांक्षा, चिंता और स्वप्न को अभिव्यक्त किया जो स्वतंत्र भारत की परम आवश्यकता भी थी। उन्होंने कहा कि अब भारत स्वतंत्र हो गया है और हमें इस देश के नवनिर्माण में लग जाना है। इसमें व्याप्त पुरानी रूढ़ियां और परंपराओं के हानिकारक जाले को साफ करना है तथा शिक्षा, कला, संस्कृति की नई रंग–बिरंगी बेलें फैलाना है। जो भी करना है उसके लिए श्रेष्ठ साहित्य चाहिए। अतः साहित्यकारों का दायित्व है कि वे भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन, समाज, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, बच्चे, प्रकृति, विज्ञान, गणित आदि पर ऐसा साहित्य रचें जो समाज के लिए मानव के लिए कल्याणकारी हो। इन विषयों पर उपलब्ध प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करें जो विभिन्न भाषाओं में है। दूसरे देशों के रचनाकारों ने जो भारतीय इतिहास, समाज, धर्म पर लिखा है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं, लेकिन वह सच बहुत कम है तथा विदेशियों की दृष्टि से भारत को जितना और जैसा समझा गया, उतना ही सत्य है। अब भारतीय साहित्यकार इस सत्य को अपनी दृष्टि से देखकर लिपिबद्ध करें ताकि भारत की आगामी पीढ़ियां अपने देश पर गर्व कर सकें।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि स्वतंत्र भारत के नव निर्माण में साहित्यकार अपने दायित्व को गंभीरता से समझें। वे साहित्य की सभी विधाओं में लेखन करें। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, कविता आदि। इन सभी विधाओं में हिंदी भाषा में लिखें। आचार्य द्विवेदी की दो अपेक्षाएं थी। प्रथम यह कि साहित्यकार श्रेष्ठ साहित्य लिखें और दूसरा यह कि हिंदी भाषा में लिखें। वे संसार की अन्य प्रतिष्ठित भाषाओं की तरह हिंदी को भी उच्चासन पर देखना चाहते थे। वे हिंदी को अंग्रेजी की तरह और संस्कृत की तरह दुर्बोध नहीं बनाना चाहते थे। अंग्रेजी कुछ लोग ही समझते हैं तथा संस्कृत चुने हुए लोगों की

टिप्पणी

शास्त्रार्थ की भाषा है। अतः वे चाहते थे कि हिंदी भाषा ऐसी होनी चाहिए जो साधारण मजदूर से लेकर परिपक्व बौद्धिक जनों तक जनचित्त को स्पर्श करे, उनकी आत्मा की उन्नति में सहायक बने। उन्होंने कहा कि अब स्वतंत्र भारत को अंतर्राष्ट्रीय संबंध बनाने के लिए राजनीति, अर्थनीति की गहराई से समझना होगा, न्यायालय में बहसें होंगी, व्यवस्थापिका सभाओं में बहसें होंगी, और उनके निर्णय देशी भाषा में होंगे, इन सब के लिए श्रेष्ठ हिंदी भाषा का साहित्य आवश्यक होगा। अगर हमें संसार में महान राष्ट्र बनकर रहना है तो हमारे देश की जनता को शिक्षित, विज्ञान और न्याय के प्रति उत्सुक, अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाना होगा। इसके लिए लोकमंगल की भावना से लिखा गया साहित्य चाहिए। आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि हमारा राष्ट्र समृद्ध है। वह हम भारतीयों की समस्त सुख–सुविधाओं की पूर्ति कर सकता है। जब तक हम राजनैतिक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े थे, इन सुविधाओं को नहीं पा सके लेकिन अब हमने पराधीनता की जंजीरें काट दी हैं और अब इन सुविधाओं पर हमारा अधिकार है। द्विवेदी जी मूल बिंदु को रेखांकित करते हैं कि इन सुविधाओं को पा लेना ही सब कुछ नहीं है बल्कि इन प्राप्त सुविधाओं को लोक–कल्याण के लिए ठीक–ठीक नियोजित करना बड़ी बात है। वे कहते हैं हमारी राजनीति, अर्थनीति नव निर्माण की योजनाएं लोक कल्याणकारी तभी सिद्ध होंगी जब हम ह्रदय से उदार और संवेदनशील हों, हमारी बुद्धि सारतत्व को ग्रहण करने में सक्षम हो, हमारे संकल्प शुभ और महान हों। हम भारतीयों को इतनी संवेदनशीलता बौद्धिकता और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करने में श्रेष्ठ साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। चाहे वह साहित्य उपन्यास, कविता, नाटक आदि किसी भी विद्या में लिखा गया हो। साहित्य केवल वाग्विलास के लिए न लिखा जाए। लोकमंगल के पवित्र भाव से लिखा गया साहित्य ही हमें सहृदय और संवेदनशील बना सकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि जीवन के प्रति हमारी दृष्टि परंपरागत हो लेकिन वह स्पष्ट और सतेज हो। प्राचीन आचार्यों का लिखा–पढ़ा समृद्ध साहित्य हमारे पास है लेकिन वह हमारी भाषा में नहीं है। अतः योग्य विद्वानों को आलस्य का त्याग कर इन प्राचीन ग्रंथों, ब्राह्मण साहित्य ग्रंथों, वेद आरण्यकों और उपनिषदों का, महायान के विपुल साहित्य का हिंदी में अनुवाद करना चाहिए। वे नाथ मत, शाक्त संप्रदाय, वैष्णव–संहिताओं और बौद्ध तथा जैन–अपभ्रंश साहित्य के समृद्ध भंडार को जनभाषा हिंदी में उपलब्ध देखना चाहते थे ताकि इनमें निहित ज्ञान के भंडार का लाभ हर भारतीय को मिल सके। वे मानते थे कि इस क्षेत्र में विदेशियों ने हमें पराजित किया है अतः हम सब साहित्यकारों का यह दायित्व है कि संपूर्ण भाषाओं के साहित्य और रीति–नीतियों को खुले मन और खुली दृष्टि से स्वीकार करें। द्विवेदी जी ने कहा कि इस देश में नये जन–समूह आते–जाते रहे हैं। अतः सभ्यता, संस्कृति में नये आचार–विचार सम्मिलित होते रहे है। साहित्य का इतिहास केवल पुस्तकों, रचनाकारों के उद्भव और विकास की कहानी नहीं है बल्कि इसमें लोक–कथाओं, लोकोक्तियों और लोक–साहित्य की महत्वपूर्ण भागीदारी है अतः अनादिकाल से प्रवाहित जीवंत मानव–समाज की विकास–गाथा को भी जन–सुलभ बनाना चाहिए।

आचार्य द्विवेदी महामना भारत–भक्त दीनबंधु एंड्रयूज का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि शांति निकेतन में उन्होंने कहा था– "और कुछ करो या ना करो, बालकों के लिए साहित्य लिखने का काम अवश्य करो।" एंड्रयूज साहित्य की नींव को मजबूत करना चाहते

टिप्पणी

थे। बांग्ला साहित्य समृद्ध है। उसमें बालकों के लिए उपन्यास, कहानी, नाटक, आदि भरपूर हैं। हमें भी सभी विधाओं में बाल साहित्य, प्रौढ़ साहित्य की रचना करनी चाहिए ताकि प्रौढ़ शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य आरंभ हो सके। आदिम जातियों की भाषाओं का अध्ययन कर उनके लिए देवनागरी लिपि में उपयोगी एवं स्वस्थ साहित्य तैयार करना होगा ताकि भारत की उन्नति में वे कंधे से कंधा मिलाकर चल सकें। विज्ञान, दर्शन, ललित कला आदि को प्राचीन भारतीय ग्रंथ तथा पाश्चात्य ग्रंथों का संपादन, शोधन एवं अनुवाद कर भारतीय साहित्य को स्वस्थ, सशक्त एवं समृद्ध बनाना है। हिंदी की अनेक प्रकाशन संस्थाएं रुपया कमाने का काम कर रही हैं। आचार्य द्विवेदी कहते है कि ये संस्थाएं रुपया अवश्य कमाएं किंतु समाज–निर्माण के कार्य को सर्वोपरि मानें। सभी संस्थानों को मिलकर निश्चित योजना के तहत अपने कार्य का बंटवारा कर लेना चाहिए ताकि सभी कार्यों को समय एवं महत्व मिले तथा किसी एक की ही पुनरावृत्ति न हो। जैसे कोई बाल साहित्य पर तो कोई प्रौढ़ साहित्य पर ध्यान दे। साथ ही गिने–चुने लेखकों को ही महत्व न देकर राष्ट्र के सभी योग्य साहित्यकारों की उत्तम रचनाओं को प्रकाशित करें ताकि हिंदी साहित्य समृद्ध हो तथा राष्ट्र के धन का अपव्यय न हो।

आचार्य द्विवेदी साहित्यकारों से निवेदन करते हैं कि हमारे देश की परिस्थितियां जटिल हैं, कठिनाइयां हैं, अभाव हैं, दरिद्रता है, जनता अशिक्षित है तथा सभ्यता के अनेक स्तर, रंग–रूप हैं, हमारे पास साहित्य की सभी विधाओं पर पर्याप्त सामग्री नहीं है, लेकिन हमें हारना नहीं है। हम अपने राष्ट्र को अशिक्षा एवं अज्ञान के अंधकार में भटकने के लिए नहीं छोड़ सकते। हमारे पास अभी कविता, कहानियों तथा अन्य रसात्मक साहित्य की ही धूम है। इस साहित्य के पोषण के लिए शक्तिशाली वैज्ञानिक, दार्शनिक समीक्षा साहित्य की आवश्यकता है, जो रचना को, रचनाकारों को एवं आम जनता के चित्त को परिष्कृत कर सके। वे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन उद्धृत करते हैं– "कहानी, कविता और नाटक इन्हीं से हमारे साहित्य की पंद्रह आने तैयारियां हो रही हैं, अर्थात दावत का आयोजन हो रहा है, शक्ति का आयोजन बिल्कुल नहीं। यह सब कुछ हो रहा है पाश्चात्य देशों की चित्ताकर्षक विचित्र चित्त शक्ति के प्रबल सहयोग से। वहां मनुष्यत्व देह, मन और प्राण सभी दिशाओं से व्याप्त हैं, इसलिए अगर वहां त्रुटियां भी हैं, तो साथ–ही साथ उनकी पूर्ति भी है। मान लो, वटवृक्ष की कोई डाली आंधी से टूट रही है, कहीं पर कीड़े उसे खा–खाकर खोखला बना रहे हैं, किसी साल वर्षा भी कम हुई है। परंतु फिर भी सब मिलाकर वनस्पति ने अपने स्वास्थ्य और शक्ति को बनाये रखा है। वहां की अपनी विद्या ने, अपनी शिक्षा ने, अपने साहित्य ने, इन सबने मिलकर वाक्शक्ति की अथक उन्नति की। इन सबके उत्कर्ष से ही वहां का उत्कर्ष है।" आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि हमें भी अपना एक लक्ष्य निर्धारित करना है 'भारतीय हिंदी साहित्य का विकास'। इसके लिए जो भी कठिनाइयां आएं उन्हें हंसकर सहना होगा।

आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि हिंदी साहित्य के विकास एवं राष्ट्र निर्माण के लिए हमारे पास पर्याप्त उपाय हैं किंतु सामाजिक व्यवस्था को इसके अनुकूल बनाना महत्वपूर्ण किन्तु कठिन कार्य है। आचार्य द्विवेदी सुझाव देते हैं कि मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों को यदि जगा दिया जाय तो वे हानि–लाभ की चिंता छोड़ कर काम में जुट जाते हैं। यदि रुपया कमाने की आदिम वृत्ति जाग जाए तो मनुष्य अपनी वर्षों की साधना, तपस्या, त्याग,

टिप्पणी

बलिदान और मनुष्यता के पतन का विचार छोड़ कर रुपया कमाने में जुट जाएगा। बहुत से प्रकाशक तथा अन्य लोक रंगमंच, चलचित्र तथा साहित्य के द्वारा कारोबार कर रहे हैं। विश्वविद्यालय भी हिंदी में शिक्षा देना स्वीकार कर चुके हैं अतः, हिंदी के पाठ्यक्रम की पुस्तकें लिखीं और छापी जाएंगी। इस अवसर का साहित्यकारों को लाभ उठाना चाहिए। पाठ्यक्रम के रूप में तथा स्वतंत्र रुप से गंभीर, उपयोगी साहित्य लिखकर प्रकाशित कराते रहना चाहिए। कारोबारी जहां हल्का साहित्य बेचते हैं वहां बीच–बीच में गंभीर साहित्य भी बिकेगा।

वे कहते हैं कि जिन विषयों के गंभीर अध्ययन से मस्तिष्क परिष्कृत होता और हृदय सुसंस्कृत होता है, उसमें श्रम लगता है, और उसके लिए बाजार आसानी से नहीं मिलता। कारोबारियों और खरीदारों की सात्विक साहित्य की ओर रुचि नहीं जाती। फिर भी यह ऐतिहासिक तथ्य है कि समस्त विरोधों और विपरीत परिस्थितियों के बीच भी सात्विक साहित्य रचा और पढ़ा गया तथा लोगों ने अपनी सद्वृत्तियों को जाग्रत किया है। वर्तमान में साहित्यकारों का दायित्व है कि वे पुनः एक नया इतिहास रचें। हमारे देश में जो स्थान कभी संस्कृत का था और जिसे आज अंग्रेजी ने ले लिया है, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर हिंदी को स्थापित करना है। हिंदी को समूचे ज्ञान–विज्ञान का वाहन बनाना है। आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि सबसे बड़ा उद्देश्य और लक्ष्य है कि हम हिंदी साहित्य के द्वारा मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचाएं। हमें हिंदी को इस महान उत्तरदायित्व की पूर्ति करने योग्य बनाना है। विधाता ने जो इतिहास हिंदी को सौंपा है उसे लेकर वह नया इतिहास रच सके तो सार्थक होगी। हिंदी भारत देश के करोड़ों नर–नारियों के हृदय एवं मस्तिष्क को खुराक देने वाली भाषा है यानी हिंदी साहित्य ही भारतवासियों के ज्ञान की भूख मिटाकर उन्हें सपनों को पूरा करने की सामर्थ्य दे सकता है।

द्विवेदी जी कहते हैं, भारत की राजभाषा चाहे जो भी हो, जैसी हो लेकिन यह सुनिश्चित है कि केन्द्रीय भाषा हिंदी ही है और रहेगी। लगभग आधे भारतवासी हिंदी को ही अपनी साहित्यक भाषा मानते हैं यह उनके मनोमस्तिष्क की भूख से, आशाओं–आकांक्षाओं से, अनुराग–विराग यानी प्रेम और वैराग्य से, रुदन–हास्य से जुड़ी है। हिंदी साहित्य की रचना से करोड़ों लोगों की मानसिक भूख मिटेगी, हृदय संतुष्ट होंगे अशिक्षा और अज्ञान, अंधविश्वास और कुरीतियों के अंधकार से बाहर निकलेंगे। हमें मनुष्य को केवल डिग्रीधारी नहीं बनाना है उसे ऐसा शिक्षित और पंडित भी नहीं बनाना है कि वह अपने ज्ञान का उपयोग केवल अपना स्वार्थ पूरा करने में करे और इसी में अपनी चरम सार्थकता स्वीकार करे। वह शिक्षा जो स्वार्थी और आत्मकेंद्रित बनाए, निरर्थक होगी।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं हिंदी साहित्य की रचना अत्यंत सावधानी से करनी चाहिए। यह रसात्मकता किसी एक सत्य के लिए न हो बल्कि इससे समूची मनुष्यता लाभान्वित हो। यह ध्यान रखना होगा। सभी जातियों और धर्मों के लोग एक–दूसरे से प्रेम करें, सभी जनसमूह वर्ग एक साथ रहने में सुख का अनुभव करें, कोई किसी पर आश्रित न हो, अभाव ग्रस्त न हो, सभी सुखी समृद्ध, आत्मनिर्भर हों, किसी की भी बुद्धि अलगाव या घृणा की भावना से विषाक्त न हो, ऐसा महान हिंदी साहित्य प्रणोदित करना ही हमारा महान्

टिप्पणी

उद्देश्य होना चाहिए। जो ज्ञान मनुष्य की मनुष्यता को निखार दे वह ज्ञान बड़ा है, प्रेम और त्याग बड़ी वस्तुएं है। साहित्य को इन तथ्यों पर आधारित होना चाहिए तभी वह संसार को नये ज्ञान का प्रकाश दे सकेगा। घृणा, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध, इन आदिम वृत्तियों को, जो मनुष्य को पतन के मार्ग पर ले जाती हैं मनुष्य ने अत्यंत कठिनाई से जीता है। ये वृत्तियां दबी हैं, समाप्त नहीं हुई हैं। मनुष्यता की विरोधी इन प्रवृत्तियों को साहित्य में स्थान नहीं मिलना चाहिए या साहित्य ऐसा रचा जाना चाहिए जो इन आदिम बुरी वृत्तियों को मानव के हृदय से निकाल फैंके, तभी साहित्य का लक्ष्य पूरा होगा। मनुष्यता की स्थापना ही साहित्य का लक्ष्य है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि यदि हम मनुष्य के विकास की गति पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि भौतिक, रसायन और प्राणी तत्व शास्त्रों के साथ गणित एवं ज्योतिष विज्ञान का उपहार संयोग और दैवीय कृपा से प्राप्त हुआ था। मनुष्य इसका लाभ उठाकर आगे बढ़ा। किंतु अब वर्तमान परिवर्तित स्थितियों में केवल संयोग और दैवीय कृपा पर निर्भर रहने की विवशता नहीं है। वह सुचिंतित योजनाओं एवं स्वर्णिम इतिहास का आधार लेकर अधिक आत्म विश्वास के साथ विकास के नये मार्ग पर बढ़ रहा है। ज्ञान के नये आलोक और विज्ञान ने मनुष्य को सभ्यता के नये द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया है वह अधिक संयमी और उदार हो गया है। किंतु एक पक्ष ऐसा भी है जो विज्ञान की शक्तियों का प्रयोग सर्वनाश के लिए कर रहा है। विज्ञान अत्यधिक शक्तिशाली है और इसका उपयोग करने वाले को अत्यधिक संयमी एवं लोकमंगल के शुभभावों से ओतप्रोत होना चाहिए। किंतु ऐसा नहीं है। कुछ राष्ट्रों ने वैज्ञानिक तरक्की के नाम पर सर्वनाशक बम, हथियार भी बना लिए हैं, कुछ ने विशेष सुविधाओं पर पूरा अधिकार जमा लिया है इससे अन्य पड़ोसी राष्ट्रों को हानि उठानी पड़ रही है।

विज्ञान एवं तकनीकी का अपने स्वार्थ के लिए ही प्रयोग करना या मनुष्यता की हानि करने के लिए प्रयोग करना यह दर्शाता है कि इनके प्रयोगकर्ताओं के पास उदार चरित्र, आत्मबल, शुभ बुद्धि नहीं है। द्विवेदी जी कहते हैं– विज्ञान की सर्वग्रासिनी शक्ति को रोकना संभव नहीं है। नदी की इस धारा को मोड़ना कठिन है किन्तु हम इस समस्या को यूं ही नहीं छोड़ सकते। केवल सरस और उदार साहित्य ही इसका एक मात्र इलाज है। विज्ञान के साथ साहित्य को जोड़ दिया जाए। साहित्यकारों का यह दायित्व है कि वे ऐसा सात्विक प्रभावशाली साहित्य रचें जिसे पढ़कर मनुष्य की अंतर्वृत्तियां जाग उठें। वह विज्ञान की शक्ति का सीमित एवं उदारतापूर्वक प्रयोग करके मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे। साहित्य संकीर्ण राष्ट्रीयता और मोहग्रस्त जाति प्रेम से निकालकर विश्व बंधुत्व का मार्ग दिखा सकता है। पथभ्रष्ट अर्थनीति को सही मार्ग पर ला सकता है। विज्ञान का सार्वभौम सत्य अलग है तथा साहित्य की संवेदनशीलता अलग है। एक बुद्धि का क्षेत्र है, एक हृदय का।

आचार्य द्विवेदी मानते हैं कि साहित्यकारों की वाणी ऊंचे सिद्धांतों पर बैठ कर निर्णय देने वालों तक नहीं पहुंचती। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने राष्ट्रनायकों तक अनेक भावों में यह संदेश पहुंचाया कि विज्ञान की सर्वग्रासिनी शक्ति का प्रयोग सीमित हो, मानव कल्याण के लिए हो लेकिन उनकी बात किसी ने नहीं सुनी। द्विवेदी जी कहते हैं कि हमारे मंगल

टिप्पणी

प्रयत्न रुकने नहीं चाहिए। हमारी शुभ विधायी वाणी न सुनी जाए या देर से सुनी जाए, हमें अपना संदेश मदगर्वित राष्ट्रनायकों और जन समूह को सुनाते जाना है। साहित्यकारों को यह स्मरण रखना है कि हिंदी दुर्बल भाषा नहीं है। हिंदी संसार की अत्यंत शक्तिशाली भाषाओं में से एक है। आज चीन, जावा, सुमात्रा आदि देशों में हिंदी सीखने की उत्सुकता बढ़ गई है क्योंकि वे इस भाषा के माध्यम से हमारे वेद, धर्मग्रंथों, इतिहास और साहित्य को जानना चाहते हैं। इन देशों के पास भी मनुष्य जाति के स्वर्णिम इतिहास और अतीत के साहित्य की समृद्धि है जिसका लाभ हमारे साहित्यकार उठा सकते हैं। यदि ऐसा हो सका तो निश्चित ही भारत की अज्ञानी, अशिक्षित जनता को पतन के गर्त में गिरने से बचाया जा सकेगा। इस ललित निबंध में आचार्य द्विवेदी ने अत्यंत सहजता से हिंदी भाषा को और हिंदी साहित्य को अपनी संपूर्ण विधाओं के साथ प्रतिष्ठित करने की चिंता प्रकट करते हुए साहित्यकारों को यह दायित्व सौंपा है, जिसमें लोकमंगल की भावना ही सर्वोपरि है।

4.4.5 साहित्यकारों का दायित्व–समीक्षात्मक अध्ययन

'साहित्यकारों का दायित्व' एक चिंतन प्रधान ललित निबंध है। इस निबंध में द्विवेदी जी का देश प्रेम तथा हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रति प्रेम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता के पश्चात जब सत्ता भारतीय शासकों के हाथ में आई, तब लगा कि अब देश को अपने हाथों से नये सिरे से गढ़ना होगा। अब तक भारत को विदेशियों ने अपनी दृष्टि से देखा और अपने विचारों की कसौटी पर कसकर उसे अच्छा या बुरा लिखा लेकिन अब समय आ गया है कि भारतीय अपनी दृष्टि और विचारों की अभिव्यक्ति करें। आचार्य द्विवेदी परिवर्तन के लिए सबसे सशक्त हथियार साहित्य को ही मानते हैं क्योंकि बम, बंदूकों की शक्ति से होने वाला परिवर्तन बाह्य परिवर्तन होता है जो भय के वशीभूत भी हो सकता है। भय के हटते ही परिस्थितियां पूर्वानुसार हो सकती हैं इसलिए ऐसे परिवर्तन अल्पकालिक या क्षणिक हो सकते हैं; किंतु साहित्य के द्वारा होने वाला परिवर्तन शाश्वत होता है। हृदय को, विचारों को स्थायी रूप से परिवर्तित करने की शक्ति सात्विक साहित्य में होती है। यही कारण था कि भारत का नया इतिहास लिखने का दायित्व उन्होंने साहित्यकारों को सौंपा। दायित्व सौंपते हुए वे आदेश नहीं करते, विनम्र निवेदन करते हैं।

आचार्य द्विवेदी नवीन एवं प्राचीन का समन्वय करना चाहते थे। उन्होंनें साहित्यकारों से प्राचीन भारतीय इतिहास, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, कला संस्कृति के ग्रंथों, विविध भाषाओं के तथा विभिन्न राष्ट्रों के ग्रंथों का अध्ययन करने का आग्रह किया ताकि वे उन महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद हिंदी भाषा में कर सकें। इससे भारतीय उन महत्वपूर्ण ग्रंथों का लाभ उठा सकेंगे, हिंदी भाषा की उन्नति होगी तथा साहित्यकार उन ग्रंथों से भारतीय जनसमुदाय के लिए मंगलकारी तत्वों को ग्रहण कर तथा नवीन परिस्थितियों के अनुकूल आवश्यक तथ्यों को समन्वित कर कल्याणकारी साहित्य की रचना कर सकें। आचार्य द्विवेदी का दृष्टिकोण इस निबंध में अत्यंत व्यापक एवं उदार दृष्टिगोचर होता है। वे विदेशी साहित्यों और विविध भाषाओं के साहित्य की प्रशंसा करते हुए तथा उनसे कुछ तत्वों को ग्रहण करने की बात कहते हुए उदार बौद्धिकता का परिचय देते हैं। आचार्य द्विवेदी के निबंध में गांधीवाद का प्रभाव दिखाई देता है। उनकी विनम्र स्वीकारोक्ति मन को छूती है जब वे कहते हैं– 'हमारे पास है ही क्या? हमारा इतिहास विदेशी भाषाओं में थोड़ा–बहुत लिखा है। हमारी जनता

टिप्पणी

के आचार–विचार रीति–नीति, भाषा–भाव, नवीन–प्राचीन, धर्म–ईमान के बारे में विदेशियों ने ही थोड़ा–बहुत लिखा है।" आचार्य द्विवेदी का हृदय एवं बुद्धि दोनों ही अकुंठ और अनाविल भाव से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। इसीलिए भाषा सशक्त एवं मृदु, प्राणवान एवं प्रवाहमयी है। आचार्य द्विवेदी समाज के हर वर्ग की चिंता इस निबंध में व्यक्त करते हैं। वे जानते थे कि बालकों के हृदय और बुद्धि को परिष्कृत सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिवेश, हवा, पानी, खाद देने का कार्य साहित्य के द्वारा ही हो सकता है। बालकों की सच्ची शिक्षा से एक ऐसी पीढ़ी तैयार होगी जो भविष्य में भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा एवं सभ्यता की धूम देश–देशांतर तक धरती से आकाश तक प्रसारित कर सकेगी। साथ ही हिंदी भाषा के साहित्य का अध्ययन करके बालक इस भाषा को अधिक उन्नत और गरिमामयी स्वरूप में स्थापित कर सकेंगे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह निबंध सदैव प्रासंगिक रहेगा क्योंकि समय परिवर्तित हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्त किये हुए अनेक वर्ष हो गए किंतु हिंदी भाषा ने उन्नति करने पर भी वह स्थान अब तक प्राप्त नहीं किया जो आचार्य द्विवेदी चाहते थे। साहित्य की हर विधा में रचनाएं होने लगीं है लेकिन द्विवेदी जी की चेतावनी के बावजूद बाजार में बिकने वाले हल्के साहित्य की रचना ही अधिक हो रही है। सत्साहित्य का अभाव तो है ही, इधर दूरदर्शन और कम्प्यूटर ने नयी पीढ़ी के भीतर पुस्तकें पढ़ने की ललक को लगभग समाप्त ही कर दिया है। वे हर जानकारी इंटरनेट से प्राप्त कर अपनी बौद्धिकता को शांत करते हैं तथा व्यावसायिकता को उन्नत दिशा में ले जाने का प्रयास करते हैं। धन है, सफलता है लेकिन सार्थकता, सुख और शांति नयी पीढ़ी को प्राप्त नहीं हो सकी और उन्हें न इसका मान है, न खेद है। आचार्य द्विवेदी विज्ञान और साहित्य का समन्वय चाहते थे उन्होंने इस निबंध में अपनी यह आकांक्षा व्यक्त की है ताकि विज्ञान का दुरुपयोग न हो उसका उपयोग मानव कल्याण के लिए हो, यह आंशिक रूप से ही सफल हो पाया है। क्योंकि हर राष्ट्र विज्ञान के बल बूते पर शेष राष्ट्रों पर शासन करना चाहता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी समय की नब्ज को पहचानते थे। वे गंभीर चिंतक होने के साथ सरल, संवेदनशील मनुष्य थे। इसलिए विश्वबंधुत्व की बात सोच सके। आचार्य द्विवेदी के अगाध संस्कृति प्रेम और पांडित्य पर टिप्पणी करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं– "उनके परंपरा द्रोह में एक उदासी का भाव है, पीड़ा उनकी आधुनिकता है जो सर्जनात्मक है और सर्जनात्मक होने के कारण आज भी हमारे लिए मूल्यवान है क्योंकि उसमें आज भी संभावनाएं हैं। परंपरा के प्रति यह द्वंद्वात्मकता ही वह जमीन है जिस पर द्विवेदी जी के पांव मजबूती से टिके हैं। उनकी आस्था का आधार यही है। आचार्य द्विवेदी के साहित्य में देखा जाए तो हम पाते हैं कि इनका परंपरा विरोध मात्र या कथित आधुनिकता को प्रदर्शित करने का ढोंग नहीं है, वरन् उसके पीछे पुष्ट चिंतन–मनन की संपूर्ण प्रक्रिया है।" आचार्य द्विवेदी का समन्व्यवादी दृष्टिकोण उनके लेखन का सौंदर्य है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य रामचंद्र शुक्ल की परंपरा के निबंधकार हैं। आचार्य शुक्ल ने भी अपने निबंधों में पाश्चात्य एवं भारतीय मनीषा का सुखद समन्वय दर्शाया था। आचार्य द्विवेदी भी साहित्यकारों से पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन, अनुवाद एवं लाभदायी तत्वों के ग्रहण का निवेदन करते हैं। यह भी सुखद अनुभूति है कि आचार्य द्विवेदी

टिप्पणी

के निबंधों में हमें भारतेन्दु युग के निबंधकारों की स्वच्छता एवं उन्मुक्तता के दर्शन होते हैं। यह कहा जा सकता है कि शुक्ल जी के निबंधों में एक उच्चकोटि के अध्यापक की छाप है और द्विवेदी जी के निबंधों में हमें साहित्यकार का स्वरूप मुखरित दिखता है। आचार्य द्विवेदी ने अपने निबंधों के लिए साहित्येतर विषयों का भी चयन किया जबकि शुक्ल जी के निबंधों के विषय साहित्यिक है। द्विवेदी जी के साहित्येतर विषयों के निबंध 'अभी थकने का समय नहीं आया है', 'जनपद सभाओं का कर्तव्य' आदि उनकी सुधारवादी दृष्टि का परिचय देते हैं। वे 'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली', 'रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय' आदि लिखते हैं तो यह अनुभूति प्रबल होती है कि वे व्यक्ति के जीवन एवं राष्ट्रीय जीवन के हर स्तर पर, अंग–प्रत्यंग में सुधार करना एवं देखना चाहते थे। वे देश की एकता एवं अखंडता को सर्वोपरि मानते थे तथा इसके लिए हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखते थे जिसका साहित्य हर वर्ग–हर जाति के भारतीय को एक सम्मानजनक, आत्मनिर्भर जीवन जीने का अवसर प्रदान करेगा।

द्विवेदी जी ने ज्योतिष जैसे शास्त्रीय एवं नीरस विषय पर सरस एवं सार्थक निबंध लिखे। व्यावहारिकता का पुट देकर इन निबंधों की सरसता को बढ़ाया है। 'ब्राह्मण का विस्तार', 'केतु दर्शन', 'नया वर्ष आ गया' आदि ज्योतिष शास्त्र के तात्विक निबंधों की रचना उनकी बहु–आयामी बौद्धिकता के दर्शन कराती है। द्विवेदी जी के निबंध 'साहित्यकारों का दायित्व' एक उत्तरदायित्व पूर्ण रचना है। उनके निबंध साहित्य पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि द्विवेदी जी पर रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, टाल्सटाय, कालिदास, कबीर, तुलसी जैसे चिंतकों का प्रभाव है। उनके निबंधों में मानव सर्वोपरि है, देश प्रमुख है, भाषा के रूप में हिंदी मान्य है और उसके गौरव की चिंता है। आचार्य द्विवेदी के साहित्यिक योगदान व्यक्तित्व पर टिप्पणी करते हुए डॉ. स्नातक लिखते हैं– "भारतीय वाङ्मय की समृद्ध परंपरा तीन धाराओं में होकर प्रवाहमान है। धर्म और दर्शन के दो कुलों में बहने वाली पहली धारा है। दूसरी धारा भाषा और साहित्य के कुलों से बंधी है और तीसरी धारा इतिहास और विज्ञान के कुलों में बहती है। इन तीन धाराओं में भारतीय वाङ्मय की विशाल ज्ञानराशि समेटी जा सकती है। यह त्रिवेणी किसी एक साहित्यकार में असंभव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व में हम इन तीन धाराओं का संगम पाते हैं।" आचार्य द्विवेदी जी के निबंधों में इन तीन धाराओं को देखा जा सकता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की शैली एक कुशल शिल्पी की शैली है। वे मानवता की महिमा का उद्घोष करने वाले निबंधकार हैं। उन्होंने राष्ट्र को ऊंचाइयों पर देखने की लालसा व्यक्त की है। वे साहित्यकारों को उनका दायित्व याद दिलाते हुए, क्या करना चाहिए, क्या नहीं, यह स्मरण कराते हुए निर्देशक एवं सलाहकार की भूमिका में दिखाई देते हैं। साहित्यकारों का दायित्व अगर सत्साहित्य की रचना करनी है तो हिंदी साहित्य की सेवा उनका सौभाग्य है, यह कहते हुए वे मां सरस्वती के उपासक प्रतीत होते हैं। आचार्य द्विवेदी निःसंकोच भाव से देश की कमजोरियों, अभाव के साथ साहित्य के क्षेत्र की दुर्बलता और अभाव का वर्णन करते हैं तथा इन दुर्बलताओं को जड़ से मिटाने का हल भी सुझाते हैं।

द्विवेदी जी एक सदा स्मरणीय निबंधकार हैं तथा उनके निबंध और समस्त साहित्य, साहित्य जगत की अमूल्य अक्षय निधि हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

15. हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रत्येक रचना में कौन–सा स्वर ध्वनित होता है।
16. हजारी प्रसाद द्विवेदी कौन–सी भाषा को संसार के समूचे ज्ञान–विज्ञान का वाहन बनाना चाहते हैं?
17. मनुष्यमात्र को वास्तविक 'मनुष्य' कौन बनाता है?
18. निबंधकार ने साहित्य निर्माण करने का संकल्प रखने वाली संस्थाओं से क्या अपील की है?
19. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार हमारे साहित्य में किन पुस्तकों का नितांत अभाव है?
20. आचार्य द्विवेदी विज्ञान और साहित्य को किस रूप में देखना चाहते हैं?
21. द्विवेदी जी भारत का नया इतिहास लिखने का दायित्व किसे सौंपते हैं?

टिप्पणी

4.5 जीवन अपनी देहरी पर – विद्यानिवास मिश्र

'जीवन अपनी देहरी पर' निबंध की रचना विद्यानिवास मिश्र ने की, इस निबंध की विशेषता जानने से पूर्व मिश्र जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय प्राप्त करते हैं–

4.5.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य विद्यानिवास मिश्र का जन्म मकर संक्रांति के दिन वि. संवत् 1982 अर्थात सन् 1927 ई. को पकड़डीहा, जिला गोरखपुर उत्तर प्रदेश में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव में हुई। माध्यमिक शिक्षा गोरखपुर में प्राप्त की। संस्कृत की पारंपरिक शिक्षा घर पर और वाराणसी में संपन्न हुई। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में 1945 में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने राहुल सांकृत्यायन की छाया में हिंदी साहित्य सम्मेलन में कोश निर्माण का कार्य किया। फिर पं. श्री नारायण चतुर्वेदी की प्रेरणा से आकाशवाणी में कोश निर्माण कार्य किया। विंध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के सूचना विभागों में सेवा की। अध्यापन कार्य के लिए प्रथमतः श्री मिश्र गोरखपुर विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए। संस्कृत विश्वविद्यालय में भी उन्होंने अध्यापन कार्य किया। आगरा विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान का अध्यापन कार्य किया। आचार्य विद्यानिवास मिश्र 1960–61 तथा 1967–68 में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय तथा वाशिंगटन विश्वविद्यालयों में अतिथि अध्यापक के रूप में अध्यापन के लिए आमंत्रित किये गए। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा में निदेशक के पद पर कार्य किया तथा काशी विद्यापीठ वाराणसी के कुलपति नियुक्त हुए। आचार्य मिश्र की बौद्धिकता, संवेदनशीलता, प्रकांड पांडित्य और श्रेष्ठ अध्यापकीय व्यक्तित्व उन्हें साहित्य जगत् में उच्चासन प्रदान करता है। असाधारण व्यक्तित्व एवं अलौकिक प्रतिभा के धनी इस साहित्यकार ने इस लौकिक जगत से सन् 1997 में महाप्रयाण किया।

रचनाएं

शेफाली झर रही है, गांव का मन, संचारिणी, लागौ रंग हरी, भ्रमरानंद के पत्र, अंगद की नियति, छितवन की छांह, कदम की फूली डाल, तुम चंदन हम पानी, आंगन का पंछी और बनजारा मन, मैंने सिल पहुंचाई, साहित्य की चेतना, वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, मेरे राम का मुकुट भींग रहा है, परंपरा बंधन नहीं, कंटीले तारों के आर–पार, कौन तू फुलवा बीनन हारी, अस्मिता के लिए आदि श्री विद्यानिवास मिश्र जी के प्रमुख *निबंध संग्रह* हैं।

शोध

दि डिस्क्रिप्टिव टेकनीक आफ पाणिनी, रीति विज्ञान, भारतीय भाषा दर्शन की पीठिका, हिंदी की शब्द संपदा, हिंदू धर्मः जीवन में सनातन की खोज' विषयों पर उनके शोध वर्तमान में भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

कविता संग्रह

'पानी की पुकार' तथा रसखान रचनावली, रहीम ग्रंथावली, देव की दीपशिखा नामक ग्रंथों का मिश्र ने प्रणयन एवं संपादन किया।

टिप्पणी

आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने कुमारस्वामी के तात्विक तथा कथात्मक चिंतन से आरंभ करके निबंधकार यहां, लोक और शास्त्र, मनुष्य और उसके परिवेश, विज्ञान और साहित्य के साथ शिव, होली, नवरात्रि आदि भारतीय त्योहारों तक का सरस गहन विवेचन किया। भारतीय एकता और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के परिप्रेक्ष्य में हिंदू होने का सही अर्थ बताते हुए वे हिंदू धर्म और संस्कृति को उनकी जड़ों तक विश्लेषित करते हैं। उनका निबंध साहित्य ललित निबंधों की दुनिया के बहुमूल्य रत्न हैं।

4.5.2 जीवन अपनी देहरी पर–मूल पाठ

जीवन को प्यार के साथ वरण करने वाले आदमी को मृत्यु पता नहीं क्यों सबसे ज्यादा लुभाने की कोशिश करती है। अर्नेस्ट हेमिंग्वे जैसा लेखक जो युद्ध को इसलिए नकारता है कि वह जीवन का घनघोर विनाश है, आत्म–हत्या के लिए प्रेरित होता है। जिन्दगी के रंगों की पहचान करने–कराने वाला वैन गो जैसा चित्रकार छुरे से अपनी गरदन पर वार करने को ललचाता है। जीवन–भर कर्म करते रहने के दर्शन के व्याख्याता कुमारिल प्रयाग में नदी में डूबकर मरने में जीवन की निष्कृति पाते हैं। इनसे लगता यही है कि मृत्यु उसी के पीछे पड़ती है, जो जीने का रस लेता है, दूसरों को रस देता है या शायद मृत्यु का प्रलोभन जीवन की परीक्षा है। ऐसी परीक्षा से गुजरते रहना रचनाकार की विशेष नियति है क्योंकि हर रचना मृत्यु होती है, पर पूरी मृत्यु नहीं होती, रचनाकार कुछ–न–कुछ अवशिष्ट रह जाता है, बल्कि यों कहें, जो अवशिष्ट रह जाता है वह रचनाकार नहीं है, वह बुरी तरह टूटा हुआ व्यक्ति है। जितनी बड़ी रचना करके आदमी बचता है उतना ही अधिक टूटकर बाहर निकलता है। रचनाकार के रूप में वह ध्वस्त हो जाता है।

तुलसीदास का 'हनुमान बाहुक' कोई पढ़े तो पता चलेगा कि 'विनय–पत्रिका' की रचना करने के बाद कवि कितना शीर्ण हुआ है। कवि 'रामचरितमानस' के बाद टूटा तो बहुत दिनों में उसने अपने को जोड़ा, जाने कितनी व्यथाओं से विनतियों से और तब 'विनय–पत्रिका' लिखी और 'विनय–पत्रिका' लिखी नहीं कि गोसाईं जी एकदम ध्वस्त हो गए। बाहु में पीड़ा होती है और उनको लगता है–

पाँय पीर पेट पीर बाँह पीर मुँह पीर
जरजर सकल सरीर पीर भई है।
देव भूत पितर काम खल काल ग्रह
मोहि पर खवाई भयानक–सी दई है।।
हौं तो बिन मोल के बिकानो बलिबारे ही तें
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर विकल बूड़े गोखुरनि
हाय राम राय ऐसी हाल कहूँ भई है।।

सारा शरीर पीड़ामय हो गया है, लगता है, देव, भूत, पितर, दुष्कर्म, काल और दुष्टग्रह सभी एक हो गए हैं कि इस आदमी को मारो, यह आदमी जो बचपन से अपने को राम के हाथ बिना मोल बिका मानता आया है और अपने भाग्य में राम नाम का लेख टँका मानकर इतना निश्चिंत रहा है। समुद्र पीने वाले अगस्त्य के सेवक को गाय की खुर के छाप से बने गड्ढे में डुबाकर मारो।

टिप्पणी

यह तो बहुत बड़ा गरूर होगा कि तुलसी का उद्धरण देकर अपनी बात शुरू करूँ और अपने को उस पंक्ति में बैठाने की कोशिश करूँ, पर भूडोल आता है तो केवल अटारियाँ ही नहीं ढहतीं, छोटी झोंपड़ी भी ध्वस्त हो जाती है। झोंपड़ी का अटारी से कोई मुकाबला नहीं, लेकिन ढहते समय दोनों दयनीय हो जाते हैं। अटारी के ढहने का धमाका जोरदार होता है, झोंपड़ी का गिरना कोई नहीं देख पाता। मैं अपने को झोंपड़ी की स्थिति में पाता हूं तो तुलसी का स्मरण करके कुछ इतराना चाहता हूं। एक राजा साहब का हाथी मरा, उनके पड़ोस में एक गरीब आदमी रहता था, सोचा राजा का हाथी बड़ा शानदार था, शोक प्रकट कर आयें, गया– सरकार क्या कीजिएगा, काली वस्तु न आपको सहती है, न मुझे। मेरी काली कुतिया थी, कल मर गयी। काली चीज राजा साहब को या गरीब पड़ोसी को ही नहीं, किसी रचनाकार को नहीं सहती। अहंकार काला होता है, रचनाकार इस अहंकार को पालता है, इसे बड़ा लाड़ देता है, बड़ा प्यार देता है, इसे बिगाड़ता है, एक दिन यकायक उसका अहंकार रचना की नदी पार करते समय गिरता है, दलदल में धँस जाता है, उस दलदल में तड़प–तड़प कर वह मरता है, रचनाकार उसे बचाना चाहता है पर बचा नहीं पाता। उसमें जाने के बाद वह अनुभव करता है, मैं अहंकार के बल पर ही तो चल रहा था, वह बल टूट गया।

मेरी काली कुतिया थी, बड़ी वफादार और बड़ी ढीठ। वह काफी इतराने लगी थी। छाया की तरह पीछे–पीछे लगी रहती थी और इधर तो आगे जाकर राह दिखाने लगी थी। मैं भी सोचता था, कितना भी भाग्यहीन क्यों न होऊँ, स्वाभिमान तो है, जो बराबर साथ देता है, जो ऐसे रास्ते पर नहीं जाने देता जहां मुझे नीचा देखना पड़े, उसे पहले से आभास रहता है। इस स्वाभिमान में एक आत्मविश्वास बैठा हुआ है कि तुम्हारा स्व छोटा नहीं, बड़ा है, वह अनचीन्हा नहीं है, चिन्हारी ने उसे बड़ा बना दिया है। और यह अहंकार की कुतिया इतनी प्रिय, इतनी आत्मीय एक दिन यकायक पुल के किनारे खड़ी थी, उसके किनारे टूटते ही जाने कहाँ वह बिला गयी।

पर मैंने 'विनय–पत्रिका' नहीं लिखी थी, कुछ भी लिखने लायक नहीं लिखा था, बस लिखूँ, यह संकल्प ले रहा था। अभिमान ऐसा कि शंकराचार्य पर लिखना चाह रहा था। शंकर के 'तत्वमसि' अनुभव को छूना चाहता था, उनकी जन्मभूमि कालडि गया, उनकी नित्य नहलाने वाली नदी पेरियार को हाथ से छुआ। हाथ में उस नदी को लिया, ओंठों से उसका आचमन किया, आंखें शीतल कीं, सिर धोया। ओंकारेश्वर गया, शंकर ने यहां दीक्षा ली थी, नर्मदा ओंकार का आकार ग्रहण करती है और उसकी दो धाराओं के बीच में एक टीला है, उसी पर ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग का मंदिर है, उसमें जाने कैसे नर्मदा का पानी बराबर आता रहता है। शिव को बोरे रहता है। ओंकारेश्वर गया था तो कार्तिक की पूनो थी, सहालग के दिन शुरू हो गए थे। नाव से नर्मदा पार की, देखा, इधर का रिवाज है कि जिस कन्या का विवाह होने को होता है, उसे उसके परिवार की स्त्रियां सजा–बजाकर ओंकारेश्वर के स्थान पर ले जाती हैं, गाती–बजाती हुई। मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ रही थीं, कुछ चढ़ रही थीं, गीत के बोल जैसे एक आवर्त्त बनाकर घूम रहे थे। कतकी पूनो की उजास, मालवा के कंठ की मिठास और सहज गाँव की शोभा के शिवार्पित होने का हुलास, इन सबमें लगता था कि शंकर का तत्वमसि ही रूपायित और शब्दायित हो रहा हो। यह सब तुम हो और तुम हो तो मैं नहीं है। मैं सहज अनुभव की

टिप्पणी

इतनी ऊँची सीढ़ियों पर चढ़ नहीं पाता, नीचे ही ठिठक जाता हूं, उसके पास, कहां ऐसा कंठ, कहां ऐसी शोभा और कहां ऐसी उजास!

बहुत अंतराल के बाद बदरीनाथ गया। सुना था, शंकर ने नर–नारायण की मूर्ति का उद्धार किया था। उन्होंने वहां व्यास गुफा में बैठकर ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्य लिखा था। और तीन ही दिनों में लगा कि शंकर यहीं अद्वैत वेदांत को भाषा दे सकते थे, और केवल शंकर ही, काशी के चांडाल के रूपधारी विश्वनाथ से हारे हुए शंकर, इस भू–बैंकुंठ में नर और नारायण का जोड़ बैठा सकते थे। नर के भीतर से नारायण को और नारायण की आँखों में से नर को झाँकते देख सकते थे। शंकर ने सुदूर दक्षिण से सुदूर उत्तर तक एक महासत्ता का प्रवाह देखा था, हर एक व्यक्ति में वह गूँगा हो तो क्या, मुखर हो तो क्या, एक चैतन्य की पश्यन्ती भाषा की प्रतिध्वनि सुनी थी, मिट्टी के कण–कण को उन्होंने सूँघा था, श्रीपति के चरणकमलों के पराग की गंध उन्होंने पायी थी, उन्होंने प्राण के स्पन्दन में, पवन की हिलोर में, झंझा की झकोर में एक ही स्पर्श पाया था– न ठंडा, न गरम, न रुखा, न मुलायम, बस ऐसा कि रोम–रोम बज उठे। शंकर ने कितनी नदियों का, कितने घाटों का पानी पिया था, इतना पिया था कि वे स्वयं उत्तरगामिनी गंगा हो गए, पूर्वागामिनी नर्मदा हो गए, पश्चिमगामिनी कावेरी हो गए, वे तीर्थों के तीर्थ हो गए, हिंदुस्तान के चार धाम शंकर की दी हुई प्रतिष्ठा के कारण इतने बड़े धाम हैं, उनकी परिक्रमा आदमी के लिए मुक्ति की परिक्रमा है– मुक्ति छोटे देश से, प्रदेश से, अधिष्ठान से। हर पानी में उन्होंने अमृत चखा, अमृत जो सबका है।

बदरीनारायण की यात्रा से लौटा, मैंने अभिमानवश परीक्षा लेनी चाही कि शंकर को मैं अब रच पाऊँगा या नहीं और लगा कि मैं जहां बड़े उल्लास के साथ, विश्वास के साथ खड़ा हूं, वह कगार ढह गया और औचक ही मेरी रचना का अभिमान उस गर्त में गिर पड़ा, उसके साथ ही चिपका हुआ शंकर के तीर्थों के यात्री के अनुभव का अभिमान भी गिर पड़ा। जाने कहां गया तत्वमसि, जाने कहां गया 'जामे द्वै न समाहि'। लगा यह सब झूठ है, संसार को प्रपंच कहना, एक ही सत्ता का अस्तित्व देखना, एक ही भाव के लिए सबको अभिमुख और आकुल देखना– सब भ्रमजाल है। मेरा तीर्थयात्री भाव या कोई भी भाव सब झूठ है, भाव कहीं है ही नहीं, है। सच है केवल टिकाव, सच है सुरक्षा के छोटे–छोटे दुर्ग, एक दुर्ग दूसरे दुर्ग से निरंतर भयभीत और सच है, हर दुर्ग के चारों ओर की परिखा और परिखा को घेरे हुए कँटीले झाड़ों की बाड़। आदमी भी उतना ही सच है, जितना इनसे घिरा हुआ है।

फिर लौट के आता हूं मूल प्रश्न पर, जीना किसलिए? संशय के लिए, द्वैत के लिए, छोटे–छोटे वंचना के दुर्गों के लिए, चौड़ी खाई के लिए, काँटेदार बाड़ों के लिए? महज जीने के लिए जीना बड़ा वैसा लगता है और मरना अपने लिए, अपनी दुराशा के लिए, अपनी यंत्रणा के लिए और भी वैसा लगता है। भवभूति ने जनक के शोक को व्यक्त करते हुए कहा कि जो मेरी संतान का अपमान हुआ, उसके निर्वासित करने का भीषण अपराध हुआ, उससे ऐसा घाव हुआ है जो बराबर नया होता रहता है, जैसे कोई आरे से मर्मस्थल को धीरे–धीरे चीर रहा हो। मुझे भी कुछ वैसा ही लगता है, बल्कि लगता है, हजार–हजार आरे लगे हुए हों, हजार जगह निरंतर चीरा जा रहा हूं।

टिप्पणी

समझ नहीं पा रहा हूं कि कौन–सा टुकड़ा है जहां मैं बचा हुआ हूं या जहां मेरी संभावना बची हुई है!

शंकर पर पुस्तक लिखने के लिए कितना कुछ कटना है, छँटना है, समझ में नहीं आता क्योंकि पुस्तक प्रकाशक के तगादे के बावजूद चल नहीं रही है, अटकी हुई है।

ममता और अहंता के विनाश का प्रतिपादन करने वाले को माँ की ममता के वशीभूत क्यों होना पड़ा और मंडन को पत्नी भारती के प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्हें अमरुक क्यों होना पड़ा? क्या अद्वैत एक अधूरा सिद्धांत है? ममता न होती तो माँ की अन्त्येष्टि वे क्यों करते और अहंता न होती तो परकायप्रदेश करके एक प्रेमिक राजा क्यों बनते? ऐसे शंकर को मेरे जैसा आदमी कैसे रचे, जिसकी ममता और अहंता के जर्रे–जर्रे हो गए हों तो भी वे सभी के अपने–अपने तार–तार जीवन को नचा रहे हों।

मैंने एक रचना और अधूरी रख छोड़ी है, 'विह्वल पल आखिरी', श्रीकृष्ण के जीवन की अंतिम संध्या का एक संश्लिष्ट चित्र। उस चित्र में इतने रंग भरने हैं कि समझ में नहीं आता कैसे उनका अनुपात रखूँ! और श्रीकृष्ण उस समय विह्वल हैं भी कि नहीं, यह भी, निर्णय नहीं ले पाया। शीर्षक ही दुविधा में है। पर मुझे यही लगता है, विह्वल न होते तो अपने प्रिय मित्र उद्धव को पहले ही विदा न दे देते, न अपने सारथी को जबरन द्वारका भेज देते, न वधिक जरा को ही तत्काल पुण्यलोक देकर अपने पास से दूर भेज देते। कहीं–न–कहीं ऐसी बेकली थी, जिसका कोई साक्षी नहीं रहने देना चाहते थे। कहीं–न–कहीं घोर आंगिरस की बात चुभ रही थी। 'प्राणसंशितमसि', ऐसा सोचो कि तुम्हारे प्राण चीरे जा रहे हैं, तब जीवन का रहस्य समझोगे, पूरे जीवन को यज्ञ समझो, अमावस्या में जैसे चन्द्रमा सूर्य में समा जाता है, चन्द्रमा मरकर अमृतकला को प्राप्त करता है, वैसे ही जीवन को खाली करो, खाली करके भरने की प्रक्रिया शुरू करो। एक जीवन को आनुष्ठानिक मृत्यु के रूप में साधो, जीवन के प्रत्येक खंड को सोम की पेराई के रूप में देखो। पहली पेराई होती है बड़े तड़के, तब पत्ती हरी होती है, रस एकदम ताजा– तब उसमें मादन होता भी है तो तत्काल उतर जाता है। दूसरी पेराई होती है मध्याह्न में, पत्ती गरमा जाती है, रस कुछ कम हो जाता है, पर मादन भाव तीव्र हो जाता है। तीसरी पेराई होती है शाम को, पत्ती एकदम सूख जाती है, रस बूँद–बूँद रह जाता है, पर तलछट का नशा बड़ा गहरा होता है। जीवन को दूसरों के आस्वादन के लिए ऐसे ही पेरते रहो और मृत्यु आये तो मानो अनुष्ठान पूरा हुआ, अब यज्ञ–समाप्ति (अवभृथ) का स्नान करना है। एक–एक बूँद निचोड़ ली गयी है, पत्तियों को फिर से धोकर गारना बच रहा है।

श्रीकृष्ण निश्चय ही अपने गुरु के इस उपदेश और उसके अनुसार जिये गए जीवन की मीमांसा करते–करते विह्वल हुए होंगे। पूरी पेराई हुई कहाँ, पूरा रस निचड़ा कहाँ, पत्तियाँ अब भी हरी हैं, इन्हें क्यों धोयें? एक–एक गोपी ने श्रीकृष्ण–रस जितना लिया, जितना पिया, उससे हजार गुना श्रीकृष्ण को रस दिया, पिलाया, पेराई तो गोपी की हो गयी, श्रीकृष्ण की हुई कहाँ? और श्रीकृष्ण की पत्तियों में इतनी पत्तियाँ मिलीं कि कौन वाली सूखी, कौन वाली हरी रही, इसका निर्णय करना कठिन हो गया।

श्रीकृष्ण सोचते हैं, इतनी निर्ममता का अभ्यास मैंने किया, इतने रिश्ते मैंने तोड़े पर क्या मैं निर्मम हो सका? और सोचते हैं, इसी को लीला कहा जाएगा। फिर अटक जाता

टिप्पणी

हूं, श्रीकृष्ण की बेधक हँसी अटका देती है। एक पेड़ की जड़ पर सिर टेके रक्तस्राव से एकदम पीले पड़ते हुए श्रीकृष्ण क्यों हँस रहे हैं! मेरे सर्वशक्तिशाली शरीर में मेरे चरण सबसे अधिक शक्तिशाली कि उनसे गंगा की धार फूट जाती है, और वे इतने वेध्य कि मामूली–सा तीर लगता है, पाँव का तलवा चिर जाता है। यदुकुल के मद का जो लौहखंड चूर्ण नहीं बना, टुकड़े के रूप में छिटक गया, वही तो श्रीकृष्ण को बींधने वाला तीर बना और श्रीकृष्ण इसी बात पर हँस पड़ते हैं कि मैं अपने संकल्प का, कि मदमत्त यदुकुल का विनाश कर डालूँ नहीं तो पृथ्वी इस भार को संभाल नहीं सकेगी, खुद शिकार हो गया। श्रीकृष्ण की हँसी के कारण यह रचना भी अधूरी पड़ी है।

और जब लगता है कि मैं जितना ही इन्हें पूरा करना चाहूंगा उतना ही और खंडित होता जाऊँगा। वाणभट्ट की भाँति हर यायावर रचनाकार की यही नियति है। रचना पूरी नहीं होती, व्यक्ति पूरा नहीं होता, बस पूरे होने की खामखयाली में अधूरा और अधूरा होता जाता है। न पेराई ही पूरी होती है, न रस ही पूरा निचुड़ता है, न अवभृथ स्नान ही कोई आशा की संभावना का संकेत देता है।

कैसा विधाता है जो पेराई की यंत्रणा भी पूरी नहीं होने देता! कितनी बार यह कोल्हू चक्कर काटेगा, कब तक चक्कर काटेगा, कुछ भी अंदाज नहीं लगता, और बत्तीसवें वर्ष में जीवनलीला–संवरण करने वाले, शंकर एक सौ पचीसवें वर्ष में महाप्रयाण करने वाले श्रीकृष्ण हँस रहे हैं, एक और हारा, एक और टूटा, संसार ने एक नया सावज मारा। उनकी हँसी की कल्पना मात्र से तिलमिला उठता हूं और जीवन की हारी–थकी धूलिधूसर देहरी पर लौट आता हूं।

4.5.3 निबंध शैली

आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला, इतिहास, त्यौहार, रीति, आचार–विचार आदि विविध विषयों पर निबंध रचना की है। उन्होंने विषयानुकूल भाषा, भावों एवं शैली का प्रयोग कर निबंध की रोचकता एवं उपयोगिता में वृद्धि की है। वे सर्वश्रेष्ठ ललित निबंधकार हैं। ललित निबंधों में जो लालित्य, प्रवाह, स्निग्धता, रसमयता, अलंकारिता, भावप्रवणता काम्य है वह उनके निबंधों में भरपूर पाई जाती है। वे अनेक प्रकार की शैलियों का समावेश करते है:–

1. विवेचनात्मक शैली
2. प्रसादात्मक शैली
3. आवेग शैली
4. भावात्मक शैली
5. व्याख्यात्मक शैली
6. चिंतन प्रधान गंभीर तत्सम शैली
7. आत्मकथन शैली
8. उदाहरण शैली
9. अलंकृत शैली आदि।

टिप्पणी

आचार्य विद्यानिवास मिश्र विलक्षण प्रतिभा के धनी साहित्यकार, निबंधकार हैं। वे सांस्कृतिक चेतना से संपन्न हैं। मानवता दृष्टि से ओतप्रोत तथा सौंदर्य के उपासक हैं। वे यथार्थवादी हैं तथा वास्तविकता को स्पष्ट रूप से निःसंकोच स्वीकार करने की सामर्थ्य रखते हैं। उनके कथ्य के मूल में लोक कल्याण की भावना होती है। वे कभी कभी आत्मकथन शैली द्वारा स्वयं को उदाहरण के रूप में रखकर अपने विचारों को संतुष्ट करने के बहाने उपदेश देते हैं जैसा कि उन्होंने 'जीवन अपनी देहरी पर' निबंध में किया है। उनके गंभीर कथ्य के बीच में मधुर हास्य–व्यंग्य विनोद की छटा बिखरी होती है जैसे प्रस्तुत निबंध में वे अहंकार के प्रतीकार्थ हाथी और काली कुतिया का उदाहरण देते हैं। मिश्र जी की भाषा तत्सम प्रधान है। वे तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग कर भाषा को सहज बोधगम्य बनाते हैं। उनके निबंधों में तन्मयता, रसभाव, कल्पना का सुंदर समन्वय है। व्यावहारिक विषयों का प्रतिपादन करते हुए वे सतर्क, पुष्ट व्यवहार संयत भाषा का प्रयोग करते हैं। वे नीरस विषयों को भी अपनी सरल, अलंकारिक भाषा, मुहावरों लोकोक्तियों तथा उदाहरणों के प्रयोग से सरस बनाकर प्रस्तुत करते हैं। उनके ललित निबंधों में स्वाभाविकता, तारल्य, सुघड़ता के दर्शन होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के पश्चात महत्वपूर्ण निबंधकारों में आचार्य मिश्र का नाम अग्रणी है। वे सूक्ष्म मानवीय दृष्टि के साथ सूक्ष्म सांस्कृतिक दृष्टि भी रखते हैं। उनके शोधकार्य उनकी गहन अध्ययनशील प्रवृत्ति के परिचायक हैं। मिश्र जी के निबंधों में विचार गांभीर्य, सुसंबद्ध विचार–शृंखला, विषय की स्पष्टता, शैली की प्रसादात्मकता, निरीक्षण की नवीनता, विवेचन–विश्लेषण की सूक्ष्मता, व्यापक जीवन दृष्टि एवं प्रवाहमयी समर्थ, सशक्त भाषा एवं विषयानुकूल शैली विद्यमान रहती हैं। हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के कारण उनका चिंतन, अध्ययन, लेखन का क्षेत्र व्यापक एवं मौलिक है। डॉ. शशिप्रभा पांडेय 'निबंध एवं अन्य विधाएं' में लिखती है– "डॉ. विद्यानिवास मिश्र ललित निबंधों के इतिहास में विशिष्ट महत्व के अधिकारी हैं। इनकी निबंध शैली में आचार्य द्विवेदी की भांति पांडित्य, अंतर्कथाओं का सन्निवेश, कोमलकांत पदावली, लयात्मक किंतू गूढ़ शब्द गुंफित भाषा का प्रयोग मिलता है। छितवन की छांह 'तुम चंदन हम पानी', 'मैंने सिल पहुंचाई', आंगन का पंछी, और 'बनजारा मन' आदि इनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं।" आचार्य विद्यानिवास मिश्र की आस्तिकता, ईश्वरवाद उनके निबंधों में दिखाई देता है। वे खुले विचारों वाले, नवीनता एवं प्राचीनता का समन्वय को महत्व देने वाले निबंधकार हैं। कर्तव्य भावना, देश प्रेम, प्रकृति प्रेम, आत्मावलोकन की प्रेरणा, मर्यादा और संयम के पाठ यत्र–तत्र उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। तुलसीदास, कबीर, गांधीजी का प्रभाव उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में दिखाई देता है। कलात्मकता और सुघड़ता उनकी भाषा की विशेषताएं हैं। संक्षिप्त, चुस्त वाक्य रचना के द्वारा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उनकी व्याख्याओं में काव्यात्मकता के साथ गंभीर चिंतन दृष्टिगोचर होता है। अतः कह सकते हैं कि आचार्य विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में विविध शैलियों का लालित्य देखते ही बनता है। हिंदी साहित्य जगत को उनके निबंधों ने कृतार्थ किया है। वे महत्वपूर्ण शैलीकार, निबंधकार के रूप में स्मरणीय हैं और रहेंगे।

4.5.4 जीवन अपनी देहरी पर–प्रतिपाद्य

यह आत्मकथन शैली में लिखा गया ललित निबंध है। जिसमें आचार्य विद्यानिवास मिश्र रचनाकार के जीवन की विडंबना को अभिव्यक्त करते हैं। अपने साहित्य को जीवन का

टिप्पणी

संदेश बनाने वाला रचनाकार इस संदेश को रचते हुए, रचने के पश्चात किस तरह भीतर ही भीतर टूटता है, बिखरता है, बार–बार मरता है और उसकी रचनाएं जाने कितने ही टूटे हुए लोगों को साहस के साथ एक बार फिर खड़ा होने का संदेश देती है। आचार्य मिश्र इस निबंध के माध्यम से रचनाकार के जीवन और अनुभूतियों के यथार्थ को प्रतिपादित करना चाहते हैं। वे कहते हैं जीवन से प्रेम करने वाले व्यक्ति को मृत्यु अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती है। जो जितना ज्यादा जीवन के प्रति आस्थावान और समर्पित होता है उसे उतना ही मृत्यु घेरने का प्रयत्न करती है। मिश्रजी ने अनेक उदाहरणों के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है जो दूसरों को साहस के साथ जीने की, जीवन से प्रेम करने की शिक्षा देता है। अंततः वह स्वयं जीवन से हार मानकर मृत्यु को गले लगा लेता है।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे एक पाश्चात्य लेखक थे जिन्होंने युद्ध का विरोध किया। वे कहते थे युद्ध एक घनघोर विनाश हैं जिसमें मनुष्य हत्याएं करते हुए जीवन और उसके सौंदर्य का अपमान करता है। इस लेखक ने आत्महत्या कर अपनी जीवन लीला समाप्त की। वे चित्रकार वैन गो का उदाहरण देते है। जिसने रंगों के माध्यम से जीवन की पहचान कराई। वह जीवन के रंगीन सौंदर्य का पुजारी था। आशा, उत्साह एवं उमंगों के रंगों को जीवन में भर लेने की प्रेरणा देता था। इस चित्रकार ने किस परिस्थिति में किन मनोभावों के तहत अपनी गरदन पर छुरे से वार किया और मृत्यु का वरण किया। इतनी क्रूरता से जीवन का त्याग और मृत्यु का वरण किसलिए? दर्शन शास्त्र के व्याख्याता कुमारिल ने प्रयाग में नदी में डूबकर आत्महत्या की, जबकि जीवन भर सुख और दुख पर दार्शनिक व्याख्याएं प्रस्तुत करते हुए मनुष्य को निर्विकार भाव से इन्हें सह लेने का उद्‌बोधन देते रहे। आचार्य मिश्र इन उदाहरणों के द्वारा यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि मनुष्य जिस चीज को प्राणपण से चाहता है विधाता उसकी इस आसक्ति को मिटाने के लिए वियोग का, मृत्यु का मार्ग अपनाता है। जो जीवन में रस लेते हैं, और दूसरों को जीवन में रस लेने की शिक्षा देते हैं, मृत्यु उन्हें जीवन से दूर खींच ले जाती है। यही जीवन की परीक्षा है। मिश्र जी कहते हैं ऐसी परीक्षा से सामना होना रचनाकार के भाग्य में लिखा होता हैं क्योंकि वह रचना में जीवन के विविध रंगों, रसों, भावों का चित्रण करते हुए जीवन को बूंद–बूंद निचोड़ता जाता है। रचना जीवंत हो जाती है रचनाकार का सत्व लेकर और रचनाकार अपना सत्व देकर मरता जाता है। खाली होता जाता है, टूटता जाता है, रचना के रूप में मृत्यु का वरण कर रचना को जीवंत कर देता है। रचना जितनी बड़ी होगी, रचनाकार उतना ही अधिक टूटता है, उसका अंतर्मन ध्वस्त हो जाता है जैसे सब कुछ लुट गया हो।

तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' की रचना के बाद टूटे तो बड़े प्रयत्नों से हिम्मत, साहस, जुटाकर उन्होंने टूटन की पीड़ा व्यक्त करते हुए 'विनयपत्रिका' लिखी। इस निवेदन के बाद उनके बाहुओं में असह्य पीड़ा होने लगी। तब उन्होंने 'हनुमान बाहुक' की रचना की। उनकी पंक्तियां– 'पांय पीर पेट पीर बांह पीर मुंह पीर, जरजर सकल सरीर पीर भई है।' पढ़े तो उनके सर्वांग की दुसह पीड़ा का भान होता है। वे तुलसीदास जी स्वयं के लिए प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु 'समुद्र पीने वाले अगस्त्य के सेवक को गाय की खुर की छाप से बने गड्ढे में डुबाकर मारो।' सात्विक जीवन का संदेश देने वाले, सुख और दुख को राम की कृपा से मिला प्रसाद समझकर निर्विकार भाव से भोगने का उपदेश देने वाले तुलसीदास अपने लिए ऐसी मृत्यु की कामना कर रहे हैं। यह कैसा मनोभाव है?

टिप्पणी

आचार्य विद्यानिवास मिश्र अत्यंत विनम्रतापूर्वक अपनी अवस्था का चित्रण करते हुए यह बताना चाहते हैं कि जो दशा, अनुभूति बड़े रचनाकारों की होती हैं, वही छोटे रचनाकारों की। वे तुलसी से अपनी तुलना करने के लिए उनका उदाहरण नहीं देते बल्कि यह बताने के लिए उन्हें उद्धृत करते हैं कि उनके जैसा बड़ा लेखक, कवि, सहनशील व्यक्ति और रचनाकार भी रचना के उपरांत ऐसे ढहता है जैसे भूकंप आने पर बड़ी–बड़ी अट्टालिकाएं ढह जाती हैं। वे तुलसीदास को बड़ी अटारी एवं स्वयं को झोपड़ी कहते हैं। भूडोल अटारी एवं झोपड़ी पर समान प्रभाव डालता है। दोनों ही ध्वस्त होकर निरीह एवं दयनीय हो उठते हैं। विद्यानिवास मिश्र कहते हैं– ये और बात है कि अटारी का ढहना सबको दिखता है लेकिन झोपड़ी का ढहना कोई नहीं देख पाता। मिश्र जी रचना कर्म के पश्चात अपनी अंतर्दशा का चित्रण कर रहे हैं। थोड़ा मनोविनोद करते हुए वे व्यथा को हल्का करना चाहते हैं अतः कहते हैं कि तुलसी से अपनी तुलना नहीं कर रहा हूं लेकिन उनका उदाहरण देकर इतराना चाहता हूं, गौरवान्वित होना चाहता हूं कि अगर मैं अपने भीतर टूटन का अनुभव करता हूं तो ऐसा नहीं है कि यह मुझ जैसे छोटे लेखकों के साथ ही होता है यह अनुभव बड़े–बड़े लेखकों का है कि महान रचना की पूर्णता के बाद मृतप्राय पड़े रहते हैं। अहंकार की मृत्यु को पुष्ट करने के लिए वे एक उदाहरण देते हैं कि– "राजा के शानदार हाथी के मरने पर उसके पड़ोस का गरीब आदमी शोक प्रकट करने गया और बोला– सरकार क्या कीजिएगा, काली वस्तु न आपको सहती है न मुझे। मेरी काली कुतिया थी, कल मर गयी।" उदाहरण गंभीर है। काला रंग अहंकार का होता है। अहंकार हर मनुष्य के भीतर होता है चाहे वह राजा हो या गरीब, सामान्य मनुष्य हो या रचनाकार। राजा को हाथी बराबर अहंकार था, गरीब को कुतिया के बराबर। दोनों का अंत ईश्वर ने लिखा–मृत्यु। मिश्र जी कहते है जीवन भर जो हमारे पास श्रेष्ठ होता है हम उसके लिए अहंकार को पालते हैं, उससे प्रेम करते हैं, उसका पालन–पोषण करते हैं लेकिन एक दिन वह अहंकार खत्म होता है, मरता है। वह वस्तु छूट जाती है जिस पर अहंकार था तो व्यक्ति को पता चलता है कि वह इस अहंकार के बल पर ही जीवित था, अहंकार के मरते ही वह ध्वस्त हो जाता है।

आचार्य मिश्र अपने अहंकार को काली कुतिया के रूप में चित्रित करते हैं। कहते हैं मेरा अहंकार ढीढ की तरह मुझसे चिपका हुआ मेरा पथ प्रदर्शन करने लगा था। छाया की तरह लगा रहा, दिशा निर्देशक और सलाहकार बन बैठा। मिश्र जी कहते हैं– मैं सोचता था कि अभागा होने पर भी मेरे अंदर प्रबल स्वाभिमान है यही मेरे लिए सौभाग्य की बात है। मनुष्य की श्रेष्ठता उसके स्वाभिमान से प्रकट होती है। मेरा स्वाभिमान मुझे ऐसे स्थान पर जाने से रोकता था जहां मेरा अपमान हो या मुझे नीचा देखना पड़े। इस स्वाभिमान में आत्मविश्वास था कि मेरा 'स्व' छोटा नहीं, बड़ा है। मैं जानता हूं कि मैं क्या हूं। परिचय ने 'स्व' को बड़ा कर दिया है तो स्वाभिमान का अहंकार और पुष्ट हो गया। यह अहंकार की कुतिया एक आत्मविश्वास और आत्माभिमान के पुल पर खड़ी थी। अचानक यह पुल टूट गया और अहंकार की कुतिया बिला गई अर्थात अपने बहुत कुछ होने का अहंकार छूट गया, टूट गया। कारण अंतर्दृष्टि और चिंतन प्रक्रिया ने कुछ ऐसे सत्यों से साक्षात्कार कराया कि लगा मेरा अहंकार व्यर्थ है। कुछ हैं जो हमारी पकड़ और पहुंच से बाहर हैं। आचार्य मिश्र ने शंकराचार्य पर लिखने का संकल्प लिया और उन स्थानों के भ्रमण के लिए निकले जहां बैठकर, रचकर शंकराचार्य ने 'तत्वमसि' 'तुम ही वह ब्रह्म हो' का अनुभव किया

टिप्पणी

था। वे शंकराचार्य की जन्मभूमि कालडि गए। पेरियार नदी में शंकराचार्य नित्य नहाते थे अतः उसके पानी से आचमन किया। ओंकारेश्वर गए जहां शंकराचार्य ने दीक्षा ली थी। ऊँ की आकृति में नर्मदा की दो मुड़ी धाराओं के बीच टीले पर बना मंदिर जिसमें शिव पानी में डूबे रहते हैं, देखकर शीतलता का अनुभव हुआ। कार्तिक पूर्णिमा का उज्ज्वल प्रकाश, ग्रामीण परिवेश, स्वच्छ शीतल वायु के झकोरे किसी ग्रामीण कन्या के विवाह पर मंदिर में आशीर्वाद लेने आए ग्रामीणों का लोक गीत, मिठास से भरे इस वातावरण में मिश्र जी को 'तत्वमसि' का अनुभव हुआ। अहंकार मिट गया, उस ब्रह्मानंद को ही उन्होंने चहुंओर रुपायित, ध्वनित होते हुए देखा, अनुभव किया। कुछ काल के पश्चात वे बदरीनाथ गए जहां शंकराचार्य ने नर–नारायण की मूर्ति का उद्धार किया था तथा व्यास गुफा में बैठकर ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्य लिखा था। यहां के पवित्र, स्निग्ध, मौन से भरे वातावरण में मिश्र जी ने अनुभव किया कि शंकराचार्य की कर्मभूमि यही हो सकती थी। नर में नारायण को और नारायण की आंखों से नर को देखने का कार्य इसी स्वर्ग रूपी धरती पर हो सकता था। काशी में चाण्डाल का रूप धारण किये हुए विश्वनाथ से हारकर शंकराचार्य ने इसी भूमि में, इसके अलौकिक, अनुपम सौंदर्य में, इस धरती के कण–कण में, वायु में उन्होंने परम ब्रह्म के चरणों की पराग को पाया होगा। उन्होंने 'तत्वमसि' का अकथनीय अनुभव पाया जो न ठंडा था न गरम, न रुखा, न मुलायम बस इतना ही कि रोमांचित हो उठे। शंकराचार्य के इस अनुभव ने उन्हें स्वयं को ही तीर्थ बना दिया। वे उत्तर दिशा में बहने वाली गंगा, पूर्व में बहने वाली नर्मदा तथा पश्चिम में बहने वाली कावेरी हो गए। शंकराचार्य द्वारा भारत में स्थापित चारों धाम की यात्रा मुक्ति की यात्रा है। बदरीनाथ की यात्रा से लौटकर, अनुभवों की समृद्धि अनुभव करते हुए उन्होंने शंकराचार्य पर लिखना आरंभ करना चाहा। किंतु मिश्र जी ऐसा नहीं कर सके। 'तत्वमसि' का अनुभव, ब्रह्मानंद की प्राप्ति, वो उल्लास, अहंकार, आत्मविश्वास सब ध्वस्त हो गए। क्यों?

आचार्य विद्यानिवास मिश्र के भीतर आध्यंतरिक प्रलय का सा धमाका हुआ। एक परिवर्तन जिसमें सब कुछ उलट–पुलट गया। अक्सर तीर्थ–यात्राओं से लौटने के बाद रचनाकारों, सद्गृहस्थों के साथ भी ऐसा ही होता है। वे वर्तमान के सत्य से मुख नहीं मोड़ सकते। इसके सुख को 'तत्वमसि' के अनुभव के कारण झुठला नहीं सकते। मिश्र जी सोचते हैं कि संसार को प्रपंच कहना, एक ही सत्ता को कण–कण में देखना, एक ही ब्रह्मानंद के भाव को व्यापक, शाश्वत मानना सब झूठ है। सच केवल वर्तमान की स्थिरता है। हर व्यक्ति अपनी सुरक्षा के लिए हर क्षण बातों के, प्रयत्नों के दुर्ग बनाता है, हर दुर्ग अपनी सुरक्षा के लिए हर क्षण जो प्रयत्न करता है वह सच है। अर्थात व्यक्ति का वर्तमान और वर्तमान के सुख को बचाने का संघर्ष सच है। वे गंभीर चिंतन में डूबते हुए पुनः अपने विचारों को पलटते हैं कि नहीं– वर्तमान और वर्तमान की सुरक्षा के संघर्ष ही सच नहीं है इससे क्या प्राप्त होता है? जीवन की सार्थकता क्या ऐसे जीने से सिद्ध होगी? जीवन के प्रति संशय, द्वैत के भाव को मिटाने का प्रयत्न, ईर्ष्या के कांटे, द्वेष की झाड़ी, रिश्तों के बीच दूरियां इन सब विचारों के लिए जीना, क्या यही जीवन है? मरने की प्रतीक्षा में अपनी निराशा और यंत्रणा का अंत करने के लिए मृत्यु की प्रतीक्षा में जीना, क्या यह जीवन श्रेष्ठ होगा? उन्हें भारी यंत्रणा का अनुभव होता है। जैसे भवभूति के 'उत्तररामचरित' में जनक शोक व्यक्त करते हुए कहते हैं– "मेरी संतान का अपमान हुआ, उसको निर्वासित करने का भीषण अपराध हुआ, उससे

टिप्पणी

ऐसा घाव हुआ है जो बराबर नया होता रहता है, जैसे कोई आरे से मर्मस्थल को धीरे–धीरे चीर रहा हो।" शंकराचार्य पर पुस्तक लिखते हुए मिश्र जी ऐसी ही यंत्रणा का मार्मिक अनुभव करते हैं।

'अद्वैत' अर्थात जहां दो नहीं, एक हैं। अगर 'तत्वमसि' का अनुभव हो गया, शंकर अद्वैतवादी हो गए, उन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया तो फिर वे मां की ममता के अधीन होकर, कर्तव्यपालन को आवश्यक समझ कर मां की अंत्येष्टि करने क्यों गए? उनमें 'अहंता' का भाव समाप्त हो गया था, ब्रह्म से अद्वैत भाव स्थापित हो गया था तो मंडन की पत्नी भारती के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अमरूक की देह में परकाया प्रवेश कर राजा क्यों बने? शंकर ममता और अहंता का ध्वस्त कर चुके थे किंतु फिर भी ध्वस्त ममता और अहंता लिए लीला रची ताकि पृथ्वी का भार हल्का हो सके लेकिन स्वयं शिकार हो गए। कृष्ण की हंसी रचनाकार की विवशता की हंसी है, यह रचना को पूरी नहीं होने देती। 32 वें वर्ष में शंकराचार्य एवं 125 वें वर्ष में कृष्ण ने महाप्रयाण किया और वो भी हंसते–हंसते। शायद विधाता के विधान पर हंस रहे हैं कृष्ण।

आचार्य विद्यानिवास मिश्र इस निबंध के द्वारा यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि कोई रचना अपने आप में पूरी नहीं होती। बाणभट्ट ने भी रचना के अधूरेपन के अनुभव को भोगा। हर रचनाकार के भाग्य में यह पीड़ा सहना लिखा है। जब वह रचना पूरी करता है तभी उसे अनुभव होता है कि वह रचना के रूप में पूरा होकर स्वयं खाली हो गया है किंतु धीरे–धीरे उसके भीतर नया जीवन नया कथ्य आकार लेने लगता है और वह पुनः अपने आपको निचोड़ देने के लिए तैयार हो जाता है। कृष्ण की हंसी से तिलमिलाते हुए पुनः जीवन की देहरी पर लौटते हुए मिश्र जी यही अनुभव करते हैं कि अभी पेराई पूरी नहीं हुई है। अभी और देखना, लिखना, सहना बाकी है। रचनाकार रचना के माध्यम से उस कथ्य को जीता है। पात्रों के साथ सुख, दुख, हंसी और आंसू का सहभागी बनता है अतः वह बार–बार टूटता है और बार–बार जुड़कर, शक्ति समेटकर एक नये रचनाकर्म में प्रवृत्त होता है। ईश्वर ने उसे यह सामर्थ्य देकर उसकी लंबी परीक्षा की व्यवस्था की है। उसे लोक कल्याण का दायित्व सौंपा है, अतः दायित्व की पूर्ति के लिए उसे अपनी बार–बार की मृत्यु को स्वीकार करना पड़ता है। यह तथ्य वास्तव में सत्वपूर्ण रचना और रचनाकारों की प्रतिष्ठा के लिए है। आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने सतोगुणी रचनाकार की पीड़ा और उसके दायित्व निर्वहन पर प्रकाश डाला है। बाजार में बिकने वाले हल्के साहित्य और उनके मानसिक, आत्मिक, बौद्धिक उत्थान के लिए यह निबंध आवश्यक है, उपयोगी है। उन्हें अपने भीतर सतोगुण का विकास कर लोक कल्याणकारी रचना में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। विद्यानिवास मिश्र का यह निबंध भावपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

4.5.5 जीवन अपनी देहरी पर–समीक्षात्मक अध्ययन

आचार्य विद्यानिवास मिश्र का यह निबंध उत्तम कोटि का ललित निबंध है। समीक्षात्मक अध्ययन की कसौटी पर यह शास्त्रीय सिद्धांतों का पालन करता हुआ अत्यंत व्यावहारिक शैली में लिखा गया निबंध है। इसमें आदि से अंत तक करुण रस की प्रधानता दिखाई देती है तथा अनुभूति हृदय को भावपूर्ण बनाती है। भाषा अलंकारिक होने पर भी सहज सौंदर्य उत्पन्न करती है। उदाहरण प्रभावित तथा ज्ञानवर्धन करते हैं। देशी–विदेशी रचनाकारों के,

टिप्पणी

चिंतकों के उदाहरण तथा अंतर्कथाएं मिश्र जी के बहुपठ होने तथा सांस्कृतिक ज्ञान की समृद्धि से भरपूर होने का संकेत देते हैं। लेखक विषय की गंभीरता से उबारने के लिए रोचक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे उन्होंने राजा और गरीब आदमी के अहंकार को हाथी एवं काली कुतिया के संकेतार्थों से रोचक बनाया है। यह निबंध ललित निबंधों की श्रेणी में स्मरणीय एवं रेखांकित करने योग्य है।

आचार्य विद्यानिवास मिश्र 'जीवन अपनी देहरी पर' शीर्षक के माध्यम से जीवन के आदि सें अंत तक के द्वंद्व तथा यथार्थ का चित्रण करते हैं। वे कहते हैं– जीवन देहरी पर ही स्थिर रहता है इसके अंदर और बाहर भ्रमण करता हुआ रचनाकार निरंतर जीवन के सत्य को खोजने में लगा रहता है। कभी उसे प्रतिदिन प्राप्त होने वाला सुख, सौभाग्य सत्य लगता है और कभी वह निर्विकार होकर संसार को देखता है उसे संपूर्ण सुख–दुख से परे एक अभूतपूर्व, अलौकिक आनंद विभोर करता है, उसे लगता है यही वह ब्रह्म है जिसकी खोज में मनुष्य जीवन से मृत्यु तक की यात्रा तय करता है। साधु–संन्यासी वन–वन की खाक छानते फिरते हैं और अंततः अंतिम क्षण में जाने किस सार्थकता, निरर्थकता या व्यर्थता का बोध लिए हुए अंतिम विदा लेते हैं। विद्यानिवास मिश्र भीतर की विह्वलता का कारण और समाधान खोजते हुए समानांतर ब्रह्म रचनाकार तक आते हैं। जो अपने ही नहीं दूसरों के भी हृदय के भावों को उसी शिद्दत से अनुभव और अभिव्यक्त करता है।

मिश्र जी आरंभिक पंक्तियों में ही यह सिद्ध करते हैं कि जो जीवन से जितना अधिक प्रेम करता है मृत्यु का आकर्षण उसे उतना ही अधिक अपनी ओर खींचता हैं। उन्होंने जीवन की नयी व्याख्या करने वाले, दूसरों में जीवंतता का प्रसार करने वाले, जीवन का पाठ पढ़ाने वाले रचनाकारों अर्नेस्ट हेमिंग्वे, चित्रकार वैन गो, कुमारिल आदि की आत्महत्याओं का उदाहरण देते हुए यह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया कि जीवन का दर्शन, जिसमें सुख–दुख विधाता के द्वारा निर्धारित समय और सीमा में प्राप्त और लुप्त होते हैं, रचनाकार को बचा नहीं पाता। एक ऐसा क्षण भी आता है जब वह निराशा से, दुख से, संत्रास से और अधिक जूझने की शक्ति खो देता है और मृत्यु का वरण करता है। रचना के माध्यम से दूसरों को सशक्त बनाने वाला रचनाकार हर रचना की पूर्णता के बाद थोड़ा–थोड़ा मरता जाता है, ध्वस्त होता है, खाली होता है, टूटता है। तब उसकी रचनाएं उसे सहारा नहीं देतीं। वह अपने भीतर से ही शक्ति जुटाकर नयी रचना में जीवन ढूंढने का प्रयत्न करता है। तुलसीदास 'रामचरितमानस' लिखकर टूटे तो 'विनय पत्रिका' का आश्रय लिया। लेकिन तब तक उनकी भुजाओं की पीड़ा ने उन्हें त्रस्त कर दिया और उन्होंने 'हनुमान बाहुक' की रचना की। मिश्र जी शंकराचार्य पर लिखना चाहते हैं लेकिन भटक कर, थक कर उन्होंने जो 'तत्वमसि' का अनुभव पाया था वह अंततः साथ छोड़ देता है, वे सामान्य जीवन के सुख–दुख की क्षणिक उपलब्धि की सत्यता से मुंह नहीं मोड़ पाते। यहां अद्वैत एवं द्वैत के बीच के भेद और अनुभव को उन्होंने कथात्मक रूप दिया है। वे ईश्वर के साथ अद्वैत की स्थिति को शंकराचार्य एवं कृष्ण के संदर्भ में सत्य मानते हुए भी इस बात को भूल नहीं पाते कि शंकराचार्य ने व्यावहारिक जगत की रीत किस भावना के वशीभूत होकर निभाई, क्यों वे मां का अंतिम संस्कार करने आए। क्यों अंतिम क्षणों में कृष्ण ने सब को भेजकर एकांत चुना, क्यों उनकी मधुर हंसी अब तक टिकी हुई है? क्या वे संसार की निरंतर चलने वाली

टिप्पणी

जन्म–मृत्यु की प्रक्रिया और उससे प्रभावित होकर जीवन के सौंदर्य, सुख–दुख का निर्धारण करने वालों पर हंस रहे हैं? या स्वयं पर कि यदुकुल का विनाश करते–करते स्वयं ही मृत्यु का आलिंगन करना पड़ रहा है। विद्यानिवास मिश्र की दृष्टि यहां धर्म और दर्शन से ओत प्रोत है। वे कुशल शैलीकार होने के नाते दार्शनिकता की आड़ में व्यावहारिक जगत के सत्य को खोलना जानते हैं। इसलिए अत्यंत कुशलता से उन्होंने उस महा सत्य को स्वीकार किया है कि सामान्य मनुष्य ही, रचनाकार हो या देवता, अंतिम समय में यह जानते हुए कि मृत्यु अंतिम सत्य है उसका वरण करते हुए विह्वल हो उठता है। संसार की माया का कौन सा आकर्षण है जो अदृश्य रूप से उस पर जाल फेंकता हैं। कौन सा सुख है जिसका स्मरण दुखी जीवन से छुटकारा पाते हुए भी उसे मोह में डालता है और वह विह्वल हो उठता है। अंततः वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सृष्टि में सब कुछ अधूरा है। हर मनुष्य अपूर्ण है, हर रचना अपूर्ण है, विधाता का कोल्हू चक्कर काटता रहेगा, कब तक चक्कर काटेगा मालूम नहीं। हर बार पूर्णता करने के भ्रम में सामान्य मनुष्य हो या रचनाकार और खाली होता जाता है। इस सत्य के निकट पहुंचते–पहुंचते रचनाकार का टूटना, खाली होना निरंतर रहता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

22. जीवन को प्यार के साथ वरण करने वाले व्यक्ति को सबसे अधिक लुभाने का काम कौन करता है?
23. मृत्यु का प्रलोभन क्या है?
24. गरीब के अहंकार को मिश्र जी ने किस रूप में चित्रित किया है?
25. भारत के चार धामों की स्थापना किसने की?
26. 'जीवन अपनी देहरी पर' में आदि से अंत तक किस रस की प्रधानता दिखाई देती है?
27. विद्यानिवास मिश्र ने इस निबंध में 'दार्शनिकता की आड़ में किसका खुलासा किया है'।
28. 'जब भूडोल आता है तो अटारियां ही नहीं ढहती...' में किस भाव को रेखांकित किया गया है?

विद्यानिवास मिश्र परंपरा से मोह रखते हैं साथ ही नवीनता के प्रति उनमें आग्रह भी है। वे बड़ी–बड़ी बातें संक्षिप्त पदावलियों में कह जाने की कला जानते हैं। डॉ. नगेंद्र 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में मिश्र जी पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि 'विद्यानिवास मिश्र ने ललित निबंधों को गंभीरता पूर्वक लिया है। 'छितवन की छांह', 'तुम चंदन हम पानी', 'आंगन का पंछी' और 'बनजारा मन', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' आदि संगृहीत निबंधों में भारतीय साहित्य और संस्कृति को लोक जीवन के साथ जोड़ कर प्रस्तुत करते हैं। जीवन के छोटे–छोटे अनुभव भी उनकी व्याख्याओं को भावनाओं की समृद्धि प्रदान करते हैं। तत्सम भाषा के बीच सहज बोधगम्य उदाहरण, लोकोक्तियां और उदाहरण विषय को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरण के तौर पर वे लिखते हैं कि जब भूडोल आता है तो केवल अटारियां ही नहीं ढहतीं, छोटी झोपड़ी भी ध्वस्त हो जाती है। तो वे प्रकृति के समभाव को रेखांकित करते हैं। पांच तत्वों से बना मनुष्य संसार में भेदभाव की दीवारें खड़ी करता है किंतु ये पांचों तत्व स्वतंत्र रूप से अमीर–गरीब, जाति–पांति का भेद–भाव नहीं रखते। वायु, अग्नि, जल, धरती और आकाश की दृष्टि में सभी समान पाने के योग्य हैं। विद्यानिवास मिश्र की यह शैली उन्हें गंभीर चिंतक के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। यह निबंध चिंतन प्रधान हैं, विचारात्मक शैली, उदाहरण शैली, आत्मकथन शैली एवं भावनापूर्ण शैली को धारण करता है। आकार में छोटा होने पर भी यह जीवन की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमें एक उदासी का भाव निहित है जो स्वयं के प्रति, तथा मानव के प्रति उसकी विवशता को अनुभव करके करुणा से भर जाता है। इसमें रसात्मकता, लयात्मकता, प्रबल आकर्षण है जो पाठक को बांधे रखता है। 'जीवन की देहरी पर' शीर्षक अपने आप में जिज्ञासा उत्पन्न करने वाला है। ललित निबंधकार के रूप में आचार्य विद्यानिवास मिश्र का हिंदी साहित्य जगत के लिए योगदान अमूल्य है। वे स्मरणीय रचनाकार हैं तथा निबंधकार के रूप में उनका स्थान उच्च एवं कीर्ति अक्षुण्ण है।

टिप्पणी

गतिविधि

इस इकाई में उल्लखित चारों निबंधकारों की लेखन शैली की विशेषताओं पर एक चार्ट तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

बालकृष्ण भट्ट और रामचंद्र शुक्ल पत्रकारिता से जुड़े थे। भट्ट जी ने हिंदी प्रदीप का प्रकाशन–संपादन किया और शुक्ल जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का संपादन किया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी को 1957 में तथा विद्यानिवास मिश्र को 1999 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण से सम्मानित किया गया।

4.6 सारांश

पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में पर्याप्त विषय वैविध्य, व्यापकता, उदारता एवं व्यंग्यात्मकता के दर्शन होते हैं। इन्होंने विषय प्रधान तथा व्यक्ति प्रधान दोनों प्रकार के निबंधों की रचना की। विवरणात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक एवं विचारात्मक सभी प्रकार की शैलियों में लिखे गए निबंध अपना विशेष महत्व रखते हैं। समाज का विकास एवं जाग्रत, विकसित राष्ट्र का निर्माण इनका उद्देश्य था जिसे इन्होंने कसौटी बनाया तथा समाज, साहित्य, मनोविज्ञान, धर्म दर्शन और उन निबंधों को अपनी कसौटी पर परखा। गहन चिंतक होने के कारण भट्ट जी की विवेचन शैली विचार गांभीर्य से परिपूर्ण होती है। इस दृष्टि से समीक्षा करने पर भट्ट जी भारतेंदु युग के अग्रगण्य निबंधकार ठहरते हैं। श्रेष्ठ निबंधकार होने के साथ वे श्रेष्ठ समीक्षक भी थे। उन्होंने तुलनात्मक समालोचना की नींव रखी, जब भट्ट जी ने लेखन आरंभ किया था तब हिंदी का विकास नहीं हुआ था। वह हिंदी के विकास एवं हिंदी गद्य के विकास का संघर्ष काल था। अतः उनके चिंतन में हिंदी की चिंता भी थी। वे हिंदी में उत्कृष्ट रचनाओं के अभाव को अनुभव कर रहे थे। भट्ट जी भारतेंदु जी की तरह भाषा को सरल, सहज, सरस बनाकर जनता की भाषा के रूप में प्रस्तुत करना पसंद करते थे। बाद में पं. पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक समालोचना का भव्य महल खड़ा कर समालोचना का मार्ग प्रशस्त किया।

'हृदय' ऐसा ही ललित निबंध है जिसमें बौद्धिकता एवं भावनाओं का अद्भुत संगम है। हृदय की विशेषताएं बताते हुए उसकी श्रेष्ठता और सार्थकता को बेहद रोचक भाषा एवं शैली में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। उनके अनेक ललित निबंध विविधता एवं रोचकता से परिपूर्ण अनेक शैलियों में लिखे गए हैं जिनमें व्यंग्य की फुहारें, मुक्त हास्य, चुटकी लेने वाला भाव, अनौपचारिकता यानी बेतकल्लुफी के दर्शन होते हैं। हृदय की विशेषताएं बताते हुए इसे परमात्मा की चर–अचर, जड़–चेतन से युक्त सृष्टि का सर्वाधिक, सर्वोच्च ही नहीं, बल्कि एक अकेला ऐसा अद्भुत पदार्थ प्रतिपादित करते हैं, जो है तो केवल तीन अक्षरों का, लेकिन इस छोटे से धड़कते मांस–पिंड में तीनों लोक और चौदहों भुवन समा जाते हैं। इस निबंध

टिप्पणी

में भट्ट जी हृदय का महत्व बताते हुए कहते हैं कि मनुष्य का जीवन कर्म से बंधा है किंतु कर्मरत शरीर का हर प्रयत्न हृदय के अभाव में निष्प्राण एवं नीरस होता है। अणु से लेकर पर्वत तक यानी छोटे से छोटा काम हो या बड़े से बड़ा, उसे हृदय अर्थात दिल लगाए बगैर करने से वह सफलतापूर्वक संपन्न हो सकेगा, इसमें संदेह रहता है। ऐसा कार्य या तो बिगड़ जाता है या पूर्णतः ठीक न होकर कुछ और हो जाता है। पं. भट्ट कहते हैं, हृदय लगाए बिना कार्य की सफल पूर्णता की आशा करना वैसा ही है जैसे युगल श्वेतदंत यानी दो सफेद चमकते लंबे सुंदर दांतों वाले मदमस्त हाथी को जिसका काला मस्तक है पकड़ने के लिए या बांधे रखने के लिए कच्चे सूती धागे का उपयोग करना, जो कि असंभव होगा। 'हृदय' निबंध की रचना का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि यह सामान्य जन को भी 'हृदय' को सतोगुण, रजोगुण से संपन्न कर उदार एवं कर्मशील बनाने के लिए प्रेरित करता है। राम का उदाहरण स्मरण कराता है कि रावण रूपी अंग्रेज से लोहा लेना है।

पराधीनता में जब अपनों से भी स्पष्ट बात करने का अवसर न हो तब संकेतों में समझाना ही एक मात्र उपाय होता था। यह निबंध इस उद्देश्य को सफलतापूर्वक संपन्न करता है। इसकी प्रासंगिकता इस इक्कीसवीं सदी में भी उतनी ही है जितनी इसके रचनाकाल में थी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल निबंधकार, इतिहासकार, कवि, कोषकार एवं अनुवादक भी थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में आचार्यवत योगदान किया। इनकी रचनाओं में पांडित्य, गंभीरता और मननशीलता के दर्शन होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल युग निर्माता निबंधकार, साहित्यकार, इतिहासकार, समाजशास्त्री, मनोविज्ञानी हैं। निबंधों में उनके समीक्षा सिद्धांत आज भी कसौटी बने हुए हैं। शुक्ल जी ने शैली के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं। वे मुख्यतः विचारात्मक चिंतन प्रधान शैली को अपनाते हैं तथा उन विचारों के बीच भावात्मकता को भी अवकाश देते हैं। यह बुद्धि एवं हृदय का समन्वय ही उनकी शैली को विशिष्ट बनाता है। उनके गहन, गंभीर निबंधों में हास्य, व्यंग्य के छींटे भी दृष्टिगोचर होते हैं। शुक्ल जी के मनोविकार संबंधी निबंधों में उत्साह, श्रद्धा भक्ति, करुणा, लज्जा, घृणा, लोभ और प्रीति, ईर्ष्या, भय, क्रोध आदि भावों या मनोविकारों को स्थान मिला है। इन निबंधों में उन्होंने विश्लेषण करते हुए भावात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। समीक्षात्मक एवं सैद्धांतिक निबंधों में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। वे वर्णनात्मक शैली का उपयोग भी प्रचुरता से करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में विषयों की प्रधानता के साथ व्यक्ति प्रधानता भी है। वे लोक को साथ लेकर चलते हैं लेकिन कहीं भी उनकी शैली में प्रौढ़ता और प्रांजलता शिथिल नहीं होती। शैली रचनाकार के व्यक्तित्व का आईना होती है। हर रचनाकार की अपनी शैली होती है, जिसे पढ़ते ही पाठक के मनोमस्तिष्क में रचनाकार का नाम उभर आता है। शुक्ल जी की शैली विषय को विस्तार और गहनता से विश्लेषित करने के साथ ही उसमें भावात्मकता बनाए रखने की अद्‌भुत कला से परिपूर्ण है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में आगमन शैली एवं निगमन शैली दोनों का ही प्रयोग दिखाई देता है। आगमन शैली में विषय की व्याख्या एवं विवेचना करने के पश्चात निष्कर्ष के रूप में सूत्र प्रस्तुत किया जाता है, जबकि निगमन शैली में पहले सूत्र प्रस्तुत किया जाता है, तत्पश्चात उसकी व्याख्या एवं विवेचना की जाती है।

टिप्पणी

काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' में वे गहन चिंतन के साथ तुलनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों की विचारधारा में तुलना करते हुए भारतीय चिंतन के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। इसमें सूत्रात्मक एवं विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस निबंध में काव्य को भाव योग मानकर उसे ज्ञान योग के समकक्ष प्रतिष्ठित कर उसे जनसमूह के लिए मंगलकारी एवं कल्याणकारी सिद्ध कर रहे हैं। उन्होंने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था पर बल दिया है। वे लोक की उपेक्षा करने वाले ज्ञान मार्ग की पक्षधरता नहीं करते बल्कि उस भक्ति मार्ग की पक्षधरता करते हैं जो अपनी उदारता, व्यापकता एवं सहजता से लोक का कल्याण करता है। आचार्य शुक्ल सत्व गुण की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महत्वपूर्ण चिंतन उपस्थित करते हैं। कहते हैं– सतो गुण, रजो गुण और तमो गुण, इन त्रिगुणों में सत्व (सतो गुण) गुण प्रधान है। मानव हृदय हो या काव्य दोनों में सत्व गुण की प्रधानता ही लोकमंगल में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है तथा ब्रह्म के 'आनंद' स्वरूप को प्राप्त करने के लिए साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष पर वे बल देते हैं। शुक्ल जी'काव्य में लोकमंगल कामना की साधनावस्था' निबंध के द्वारा न केवल काव्य के सद्‌गुणों पर प्रकाश डालते हैं बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को सहृदय बनने की शिक्षा भी दे देते हैं। वे ब्रह्म के तीन रूपों सत् चित् और आनंद तथा त्रिगुणात्मक प्रकृति रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण की व्याख्या करके पाठक को दर्शन के निकट ले जाते हैं जहां वह 'आनंद' स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने भीतर के सत्व गुण को परिष्कृत एवं विकसित करने का प्रयास आरंभ करता है। वह आनंद की साधनावस्था से परिचित होकर अपने संघर्ष, प्रयत्न, दुख, पीड़ा अभाव और अन्याय को नये रूप में देखता है तथा प्रयत्न करता है कि इस साधना के पथ पर बिना विचलित हुए चल सके। शुक्ल जी के निबंध चिंतन प्रक्रिया को गति एवं गहराई देते हैं, ज्ञान का दायरा बढ़ाते हैं। वर्तमान विज्ञान एवं तकनीकी के युग में जब कि संवेदनाओं की धार खत्म होती जा रही है, मनुष्य यांत्रिक जीवन जी रहा है, वह स्वार्थी, आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। शुक्ल जी के निबंधों की प्रासंगिकता एवं महत्व बढ़ गया है। जब आदमी स्वयं के मंगल पर ही ध्यान केंद्रित किये हो, उसे लोकमंगल का महत्व समझाना आवश्यक है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्लोत्तर युग के अग्रणी निबंधकार हैं। वे सर्वाधिक सशक्त एवं सफल निबंधकार हैं। ललित निबंधों की समस्त विशेषताओं की कसौटी पर द्विवेदी जी के निबंध खरे उतरते हैं। स्वाभाविकता, तारल्य, सुघड़ता, रोचकता अपने समकालीन निबंधकारों की तुलना में द्विवेदी जी के निबंधों में अधिक दृष्टिगोचर होती है। आचार्य शुक्ल की ही तरह गंभीर विषयों को प्रतिपादित करते हुए वे उनमें हास्य–व्यंग्य–विनोद की संयत पदावली का प्रयोग कर मधुरता, रमणीयता, प्रभावशाली एवं आकर्षक होने का गुण उत्पन्न कर देते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अधिकांश विचारात्मक निबंध ललित निबंधों की कोटि में आते हैं। इन ललित निबंधों में तन्मयता है, रस है तथा भाव और कल्पना का सुंदर समन्वय है। हास्य–विनोद की झलकियां ज़ीवंतता को और बढ़ा देती हैं। भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक होने के कारण द्विवेदी जी के सांस्कृतिक निबंधों में तथा ललित निबंधों में भी महत्वपूर्ण संदर्भों में विश्व मानव संस्कृति की विराट जीवन और जययात्रा की आभा बिखरी दिखाई देती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की शैली एक कुशल शिल्पी की शैली है। वे मानवता की महिमा का उद्‌घोष करने वाले निबंधकार हैं।

टिप्पणी

'साहित्यकारों का दायित्व' एक चिंतन प्रधान ललित निबंध है। इस निबंध में द्विवेदी जी का देश प्रेम तथा हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रति प्रेम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। द्विवेदी जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि विषय चाहे जो हो, साहित्यकार की प्रतिभा का संबल पाकर वह गंभीर एवं पठनीय बन जाता है। उदाहरण के लिए हम प्रस्तुत निबंध 'साहित्यकारों का दायित्व' को ही लें। इसमें लेखक ने भारतीय प्राचीन साहित्य, इतिहास, धर्म ग्रंथों की महत्ता को सिद्ध करते हुए समकालीन परिस्थितियों के अनुसार नया साहित्य रचने की प्रेरणा दी हैं। उन्होंने अत्यंत सहज शब्दावली में साहित्यकारों को उनके दायित्व की गंभीरता से परिचय कराया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि स्वतंत्र भारत के नव निर्माण में साहित्यकार अपने दायित्व को गंभीरता से समझें। वे साहित्य की सभी विधाओं में लेखन करें। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, कविता आदि। इन सभी विधाओं में हिंदी भाषा में लिखें। आचार्य द्विवेदी की दो अपेक्षाएं थीं। प्रथम यह कि साहित्यकार श्रेष्ठ साहित्य लिखें और दूसरा यह कि हिंदी भाषा में लिखें। वे संसार की अन्य प्रतिष्ठित भाषाओं की तरह हिंदी को भी उच्चासन पर देखना चाहते थे। वे हिंदी को अंग्रेजी की तरह और संस्कृत की तरह दुर्बोध नहीं बनाना चाहते थे। वे कहते हैं हमारी राजनीति, अर्थनीति, नव निर्माण की योजनाएं लोक कल्याणकारी तभी सिद्ध होंगी जब हम हृदय से उदार और संवेदनशील हों, हमारी बुद्धि सारतत्व को ग्रहण करने में सक्षम हो, हमारे संकल्प शुभ और महान हों। हम भारतीयों को इतनी संवेदनशीलता बौद्धिकता और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करने में श्रेष्ठ साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। चाहे वह साहित्य उपन्यास, कविता, नाटक आदि किसी भी विधा में लिखा गया हो। साहित्य केवल वाग्विलास के लिए न लिखा जाए। लोकमंगल के पवित्र भाव से लिखा गया साहित्य ही हमें सहृदय और संवेदनशील बना सकता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं, हिंदी साहित्य की रचना अत्यंत सावधानी से करनी चाहिए। यह रसात्मकता किसी एक सत्य के लिए न हो बल्कि इससे समूची मनुष्यता लाभान्वित हो। आचार्य द्विवेदी नवीन एवं प्राचीन का समन्वय करना चाहते थे। उन्होंने साहित्यकारों से प्राचीन भारतीय इतिहास, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, कला संस्कृति के ग्रंथों, विविध भाषाओं के तथा विभिन्न राष्ट्रों के ग्रंथों का अध्ययन करने का आग्रह किया ताकि वे उन महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद हिंदी भाषा में कर सकें। इससे भारतीय उन महत्वपूर्ण ग्रंथों का लाभ उठा सकेंगे, हिंदी भाषा की उन्नति होगी तथा साहित्यकार उन ग्रंथों से भारतीय जन समुदाय के लिए मंगलकारी तत्वों को ग्रहण कर तथा नवीन परिस्थितियों के अनुकूल आवश्यक तथ्यों को समन्वित कर कल्याणकारी साहित्य की रचना कर सकें। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह निबंध सदैव प्रासंगिक रहेगा क्योंकि समय परिवर्तित हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्त किये हुए अनेक वर्ष हो गए किंतु हिंदी भाषा ने उन्नति करने पर भी वह स्थान अब तक प्राप्त नहीं किया जो आचार्य द्विवेदी चाहते थे।

विद्यानिवास मिश्र ने धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला, इतिहास, त्योहार, रीति, आचार–विचार आदि विविध विषयों पर निबंध रचना की है। उन्होंने विषयानुकूल भाषा, भावों एवं शैली का प्रयोग कर निबंध की रोचकता एवं उपयोगिता में वृद्धि की है। वे सर्वश्रेष्ठ ललित निबंधकार हैं। वे सांस्कृतिक चेतना से संपन्न हैं। मानवता दृष्टि से ओतप्रोत तथा सौंदर्य के उपासक है। वे यथार्थवादी हैं। इनकी निबंध शैली में आचार्य द्विवेदी की भांति पांडित्य, अंतर्कथाओं का सन्निवेश, कोमलकांत पदावली, लयात्मक किंतू गूढ़ शब्द गुंफित भाषा का प्रयोग मिलता

टिप्पणी

है। 'जीवन अपनी देहरी पर' व्यावहारिक और आत्मकथन शैली में लिखा गया ललित निबंध है। इसमें आदि से अंत तक करुण रस की प्रधानता दिखाई देती है तथा अनुभूति हृदय को भावपूर्ण बनाती है। जिसमें आचार्य विद्यानिवास मिश्र रचनाकार के जीवन की विडंबना को अभिव्यक्त करते हैं। आचार्य विद्यानिवास मिश्र 'जीवन अपनी देहरी पर' शीर्षक के माध्यम से जीवन के आदि सें अंत तक के द्वंद्व तथा यथार्थ का चित्रण करते हैं। वे कहते हैं– जीवन देहरी पर ही स्थिर रहता है इसके अंदर और बाहर भ्रमण करता हुआ रचनाकार निरंतर जीवन के सत्य को खोजने में लगा रहता है। यह निबंध चिंतन प्रधान है, विचारात्मक शैली, उदाहरण शैली, आत्मकथन शैली एवं भावनापूर्ण शैली को धारण करता है। आकार में छोटा होने पर भी यह जीवन की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमें एक उदासी का भाव निहित है जो स्वयं के प्रति, तथा मानव के प्रति उसकी विवशता को अनुभव करके करुणा से भर जाता है। इसमें रसात्मकता, लयात्मकता, प्रबल आकर्षण है जो पाठक को बांधे रखता है।

आचार्य मिश्र इस निबंध के माध्यम से रचनाकार के जीवन और अनुभूतियों के यथार्थ को प्रतिपादित करना चाहते है। वे कहते हैं जीवन से प्रेम करने वाले व्यक्ति को मृत्यु अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती है। जो जितना ज्यादा जीवन के प्रति आस्थावान और समर्पित होता है उतना ही उसे मृत्यु घेरने का प्रयत्न करती है। मिश्रजी ने अनेक उदाहरणों के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है। जो दूसरों को साहस के साथ जीने की, जीवन से प्रेम करने की शिक्षा देता है। अंततः वह स्वयं जीवन से हार मानकर मृत्यु को गले लगा लेता है। आचार्य विद्यानिवास मिश्र इस निबंध के द्वारा यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि कोई रचना अपने आप में पूरी नहीं होती। बाणभट्ट ने भी रचना के अधूरेपन के अनुभव को भोगा। हर रचनाकार के भाग्य में यह पीड़ा सहना लिखा है। जब वह रचना पूरी करता है तभी उसे अनुभव होता है कि वह रचना के रूप में पूरा होकर स्वयं खाली हो गया है किंतु धीरे–धीरे उसके भीतर नया जीवन, नया कथ्य आकार लेने लगता है और वह पुनः अपने आपको निचोड़ देने के लिए तैयार हो जाता है। वह बार–बार टूटता है और बार–बार जुड़कर, शक्ति समेटकर एक नये रचनाकर्म में प्रवृत्त होता है। ईश्वर ने उसे यह सामर्थ्य देकर उसकी लंबी परीक्षा की व्यवस्था की है। उसे लोक कल्याण का दायित्व सौंपा है, अतः दायित्व की पूर्ति के लिए उसे अपनी बार–बार की मृत्यु को स्वीकार करना पड़ता है। यह तथ्य वास्तव में सत्वपूर्ण रचना और रचनाकारों की प्रतिष्ठा के लिए है। आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने सतोगुणी रचनाकार की पीड़ा और उसके दायित्व निर्वहन पर प्रकाश डाला है। उन्हें अपने भीतर सतोगुण का विकास कर लोक कल्याणकारी रचना में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। विद्यानिवास मिश्र का यह निबंध भावपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **अथ–** प्रारंभ।
- **मुंह–** मुकुर।
- **फोटू–** चित्र।
- **कुरंग–** खराब रंग का, हिरन।

टिप्पणी

- **तितिक्षा–** सर्दी–गर्मी आदि द्वंदों को सहने की क्रिया या शक्ति।
- **तिहर्फी–** अक्षर।
- **भुनगा–** उड़ने वाला छोटा कीड़ा, नगण्य प्राणी।
- **आर्ष–** वैदिक।
- **साहाव्य–** सहायता।
- **पाषंड–** छलयुक्त धार्मिक कृत्य, ढोंग।
- **प्रवृत्ति–** प्रवाह, मन का किसी विषय की ओर झुकाव।
- **निवृत्ति–** प्रवृत्ति का अभाव, विरत होना, मुक्ति।
- **दक्षिण–** दाहिना।
- **वाम–** बायां।
- **असूया–** ईर्ष्या का भाव।
- **सत्–** वास्तविक एवं शुभ।
- **अनाविल–** निर्मल, शुद्ध।
- **अनासक्त–** निर्लिप्त।
- **प्रणोदित–** प्रेरित, प्रेषित करना।
- **मदगर्वित–** अभिमान से पूर्ण।
- **सारग्रहिणी–** सार तत्व को ग्रहण करने वाली।
- **आम्र मंजरी–** आम की कोंपल।
- **अलक्तक–** महावर।
- **सहालग–** शुभ वर्ण, शादी–विवाह के दिन।
- **परिखा–** दुर्ग, नगर आदि के चारों तरफ बनी हुई गहरी खाई।
- **सोम–** यज्ञ में तर्पण के काम आने वाली लता, इस लता का रस सोमरस कहलाता है।
- **पेराई–** कोल्हू आदि में दबाकर किसी वस्तु के रस निकालने की क्रिया।
- **गारना–** अभिमान चूर करना, निचोड़ना।
- **अवभृथ स्नान–** यज्ञ के अंत में शुद्धि के लिए किया जाने वाला स्नान।
- **सावज–** वे जानवर जिनका शिकार किया जाए।

4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. पं. बालकृष्ण भट्ट को
2. साहित्य सरोज (1920)
3. बालकृष्ण भट्ट

टिप्पणी

4. ललित निबंध
5. सतो गुण युक्त
6. रामचंद्र की तरह
7. स्वामी दयानंद सरस्वती
8. सत्, चित् और आनंद
9. आनंद की
10. निगमन शैली
11. चिंतामणि
12. करुणा और प्रेम
13. रस दशा
14. संकुचित एवं सीमित
15. मानवतावादी स्वर
16. हिंदी भाषा को
17. ज्ञान
18. समाज–निर्माण की
19. बालकों के योग्य पुस्तकों
20. समन्वित रूप में
21. साहित्यकारों को
22. मृत्यु
23. जीवन की परीक्षा
24. काली कुतिया
25. शंकराचार्य ने
26. करुण रस
27. व्यावहारिक जगत के रस का
28. प्रकृति के समभाव को

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हृदय निबंध की मूल संवेदना को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
2. आनंद की साधनावस्था क्या है? परिभाषित कीजिए।
3. काव्य में लोकमंगल से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।

टिप्पणी

4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
5. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार साहित्यकार किस प्रकार हिंदी भाषा और साहित्य को प्रतिष्ठा दिला सकता है? समझाइए।
6. 'जीवन अपनी देहरी पर' में व्यक्त जीवन के आदि से लेकर अंत तक के द्वंद्व एवं यथार्थ के चित्रण को परिभाषित कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली की विशेषताओं का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. हृदय निबंध का प्रतिपाद्य बताते हुए इसका समीक्षात्मक अध्ययन कीजिए।
3. निबंध शैली की दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध की विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।
4. काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था निबंध का प्रतिपाद्य क्या सिद्ध करता है? विस्तार से लिखिए।
5. समीक्षा तत्वों की कसौटी पर काव्य में लोक–मंगल की साधनावस्था निबंध की समीक्षा कीजिए।
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा बताये गए साहित्यकारों के मुख्य दायित्वों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
7. साहित्यकारों का दायित्व निबंध का प्रतिपाद्य लिखिए।
8. 'जीवन अपनी देहरी पर' की मूल संवेदना एवं प्रतिपाद्य की व्याख्या कीजिए।
9. विद्यानिवास मिश्र की निबंध शैली की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- सत्य प्रकाश मिश्र, *बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबंध*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- डॉ. गणपति चंद्र गुप्त, *हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास*, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।
- राम स्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य साहित्य का विन्यास एवं विकास*, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।
- डॉ. राम विलास शर्मा, *भारतीय साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।

टिप्पणी

इकाई 5 कहानी

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 उसने कहा था – चंद्रधर शर्मा गुलेरी
- 5.2.1 लेखक परिचय
- 5.2.2 उसने कहा था : मूल पाठ
- 5.2.3 चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं
- 5.2.4 कहानी का सार
- 5.2.5 कहानी की समीक्षा
- 5.2.6 कहानी कला के तत्व और 'उसने कहा था'
- 5.2.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

5.3 ठाकुर का कुआं – मुंशी प्रेमचंद
- 5.3.1 लेखक परिचय
- 5.3.2 ठाकुर का कुआं : मूल पाठ
- 5.3.3 प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएं
- 5.3.4 कहानी का सार
- 5.3.5 कहानी की समीक्षा
- 5.3.6 कहानी कला के तत्व और 'ठाकुर का कुआं'
- 5.3.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

5.4 मलबे का मालिक – मोहन राकेश
- 5.4.1 लेखक परिचय
- 5.4.2 मलबे का मालिक : मूल पाठ
- 5.4.3 मोहन राकेश की कहानी कला की विशेषताएं
- 5.4.4 कहानी का सार
- 5.4.5 कहानी की समीक्षा
- 5.4.6 कहानी कला के तत्व और 'मलबे का मालिक'
- 5.4.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

5.5 यही सच है – मन्नू भंडारी
- 5.5.1 लेखिका परिचय
- 5.5.2 यही सच है : मूल पाठ
- 5.5.3 मन्नू भंडारी की कहानी कला की विशेषताएं
- 5.5.4 कहानी का सार
- 5.5.5 कहानी की समीक्षा
- 5.5.6 कहानी कला के तत्व और 'यही सच है'
- 5.5.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

5.6 सलाम – ओम प्रकाश वाल्मीकि
- 5.6.1 लेखक परिचय
- 5.6.2 सलाम : मूल पाठ
- 5.6.3 ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी कला की विशेषताएं
- 5.6.4 कहानी का सार
- 5.6.5 कहानी की समीक्षा
- 5.6.6 कहानी कला के तत्व और 'सलाम'
- 5.6.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

टिप्पणी

5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

इस इकाई में देश के पांच श्रेष्ठ कहानीकारों की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। इस संग्रह के अंतर्गत आप सम्राट चंद्रधर शर्मा गुलेरी की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था', सुप्रसिद्ध कहानी लेखक मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं', कहानीकार, उपन्यासकार और सशक्त नाटककार मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक', हिंदी की सुप्रसिद्ध लेखिका मन्नू भंडारी की बहुचर्चित कहानी 'यही सच है' एवं लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई की पहली कहानी चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखी गई है। इसमें अमृतसर शहर की कहानी है। वहां के वातावरण, बाजार आदि का यथार्थ चित्रण बड़ी ही सजीवता और जीवंतता के साथ किया गया है। यह कहानी बेजोड़ है। बच्चों का बचपन का मजाक आगे जाकर क्या गुल खिलाता है, कहानी किन–किन पड़ावों से गुजरती हुई आगे अपने गंतव्य तक पहुंचती है, यह सब इस कहानी में देखने की बात है। इसका मुख्य पात्र जमादार लहना सिंह सूबेदारनी की बात का पालन अपने जीवन का बलिदान देकर कैसे पूरा करता है, यही इस कहानी का महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। वस्तुतः यह आत्मोत्सर्ग इसीलिए है क्योंकि, 'उसने कहा था'। यह कालजयी कहानी है।

दूसरी कहानी जाने–माने कहानी लेखक मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित है। इसमें निम्न वर्ग के जोखू और उसकी पत्नी गंगी की कहानी है। इसमें ग्रामीण जीवन का यथार्थ–चित्रण बड़ी ही सजीवता के साथ किया गया है। कहानी सामाजिक अन्याय पर आधारित है।

तीसरी कहानी मोहन राकेश की रचना 'मलबे का मालिक' देश–विभाजन के बाद की कहानी है।

पूरी कहानी मलबे के मालिक और उससे संबंधित घटनाओं से जुड़ जाती है। आस, विश्वास और अविश्वास के झूले में झूलती कहानी, बहुत कुछ कहती नजर आती है, लेकिन अंत में गनी मियां सभी को दुआएं देता हुआ लुटा–पिटा–सा वापिस पाकिस्तान (लाहौर) लौट जाता है।

इसमें बताया गया है कि किस प्रकार एक पहलवान मुसलमान परिवार के नए मकान पर कब्जाकरने के लिए उस परिवार के सदस्यों की हत्या कर देता है और परिवार के मुखिया गनी मियां जब पाकिस्तान से अपने बेटे के घर आते हैं तो उन्हें पता चलता है कि पूरे परिवार को खत्म कर दिया गया है और मकान जलकर मलबे में तब्दील हो गया है।

चौथी कहानी मन्नू भंडारी की 'यही सच है' सर्वाधिक चर्चा में रहने वाली मनोवैज्ञानिक कहानी है। यह कहानी अनेक संकलनों, अनुवादों तथा आलोचनाओं में शामिल की जाती

टिप्पणी

रही है। लगता है इस कहानी में कहीं–न–कहीं लेखिका किसी न किसी प्रमुख पात्र के रूप में स्वयं मौजूद रही हैं। किंतु, इस बात को लेखिका स्वीकार नहीं कर पाती हैं। उनका कहना है कि कहानी का केंद्र बिंदु उनका अपना अनुभूत सत्य नहीं है। इसलिए इस कहानी से उनकी कोई विशेष आत्मीयता नहीं है। यह कहानी दो पुरुष पात्र और एक नारी पात्र के बीच पटना, कानपुर और कलकत्ता शहरों के बीच घूमती रहती है, लेकिन इसे यात्रा वृत्तांत का नाम नहीं दिया जा सकता।

पांचवीं कहानी ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी है। यह उनकी और कहानियों की तरह ही दलित–वर्ग के संघर्ष की कहानी है। इसमें भी गांव में रहने वाले दलित–वर्ग को रीति–रिवाजों, रस्म और दस्तूरों के नाम पर कितना अपमानित होना पड़ता है, यही इस कहानी में भी 'सलाम' दस्तूर के माध्यम से दिखाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें पुरानी और नई पीढ़ी का टकराव भी देखने को मिलता है। शिक्षित और अशिक्षित के बीच की खाई भी स्पष्ट दिखाई देती है। जात–बिरादरी और ऊंच–नीच का तड़का तो है ही। कहानी का मुख्य पात्र पढ़ा–लिखा हरीश 'सलाम' के दस्तूर की रस्म करने से मना कर देता है। इसमें उसे अपना अपमान महसूस होता है। ऐसा करके उसे अपनी जीत महसूस होती है। घिसे–पिटे दस्तूरों पर विजय महसूस होती है। तभी तो इस जीत की खुशी का इज़हार करने के लिए वह और उसका अभिन्न मित्र कमल उपाध्याय गर्मजोशी से एक–दूसरे का हाथ भी दबाते हैं। उधर रांघड़ जाति के लोगों की गांव में बहुतायत है, वर्चस्व है। वे जब सुनते हैं कि जुम्मन का जंवाई हरीश 'सलाम' की रस्म के वास्ते उनके द्वार पर नहीं आएगा, तब वे इसे अपना और अपनी ऊंची जाति का अपमान समझते हैं और जंवाई को भेजने की धमकी बल्लू रांघड़ हरीश के ससुर जुम्मन को घर आकर दे जाता है। शादी–ब्याह के घर में रंग में भंग पड़ जाता है। ऐसे में जुम्मन घर की औरतों से जल्दी ही विदाई की रस्म पूरी करके बारात को जल्दी से जल्दी विदा करना चाहता है, क्योंकि उसे डर है कि कहीं रांघड़ अपने अपमान का बदला लेने उसके घर न आ धमके और कोई बखेड़ा न खड़ा कर दे।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित 'उसने कहा था' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे;
- मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित– 'ठाकुर का कुआं' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे;
- मोहन राकेश द्वारा लिखित 'मलबे का मालिक' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे;

टिप्पणी

- मन्नू भंडारी द्वारा लिखित 'यही सच है' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे;
- ओम प्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'सलाम' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे।

5.2 उसने कहा था – चंद्रधर शर्मा गुलेरी

प्रसिद्ध साहित्यकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी का जीवन परिचय इस प्रकार है–

5.2.1 लेखक परिचय

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म कांगड़ा जिले के ग्राम गुलेर में दिनांक 7 जुलाई, सन् 1882 में हुआ था। बचपन से ही उन्होंने संस्कृत, वैदिक साहित्य, व्याकरण तथा भाषा–साहित्य के संस्कार प्राप्त किए और अपने स्वाध्याय तथा रुचि के कारण निरंतर अपनी प्रतिभा में चार चांद लगाते चले गए। वे द्विवेदी युग के प्रतिनिधि लेखक, सशक्त कहानीकार एवं कथाकार रहे हैं। वे साहित्याकाश के ऐसे नक्षत्र थे जो अपनी अमर कथा रचना 'उसने कहा था' के द्वारा न केवल अपने समकालीन बल्कि हिंदी की परवर्ती पीढ़ी के स्मृति पटल पर सदैव के लिए छा गए। उनकी यह अमर कहानी सर्वप्रथम सरस्वती पत्रिका में सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त उनकी बस दो और कहानियां प्रकाश में आई हैं– 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा।' ये दोनों कहानियां सन् 1911 में प्रकाशित हुई थीं। ये दोनों कहानियां इतनी प्रसिद्ध नहीं हुईं किंतु गुलेरी जी की तीसरी कहानी 'उसने कहा था' ने तो प्रसिद्धि के सारे कीर्तिमान ही तोड़ दिए। इसी कहानी के कारण उन्हें वैसे ही 'कहानी–सम्राट' के नाम से जाना जाने लगा, जैसे मुंशी प्रेमचंद को 'उपन्यास–सम्राट', 'कलम का सिपाही' तथा 'कलम का जादूगर' नाम से जाना जाता है।

'साहित्य सृजक, संस्कृति एवं पुरातत्ववेत्ता, प्राच्य विद्या विशारद, प्रकांड भाषाविद्, ज्योतिर्विज्ञानी तथा पत्रकार के रूप में गुलेरी जी ने प्रत्येक क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। उनकी रचनाओं पर संस्कृत के महाकवि माघ की यह पंक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती है–"क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति, तदैव रूपं रमणीयतायाः।"

इन्हें 'इतिहास दिवाकर' की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। इन्होंने अध्यापन और प्राचार्य के पद पर भी कार्य किया।

केवल 39 वर्ष की अल्पायु में इस बहुमुखी प्रतिभा संपन्न विद्वान लेखक तथा कहानी सम्राट का निधन दिनांक 12 सितंबर, सन् 1922 को हो गया।

5.2.2 उसने कहा था : मूल पाठ

(1)

बड़े–बड़े शहरों के इक्के–गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्ट वालों की बोली का मरहम

टिप्पणी

लगावें। जब बड़े–बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आंखों के न होने पर तरस खाते हैं। कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने–ही को सताया हुआ बताते हैं। और संसार–भर की ग्लानि, निराश और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हर–एक लड्ढीवाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर बचो खालसा जी। हटो भाई जी। ठहरना भाई। आने दो लाला जी। हटो बाछा, कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तखों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं; पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार–बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं– हट जा जीणे जोगिए; हट जाकरमांवालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा लंबी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों की प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के नीचे आना चाहती है, बच जा।

ऐसे बंबूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियां। दुकानदार एक परदेसी से गुथ रहा था, जो सेर–भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहां है?"

"मगरे में; और तेरा?"

"मांझे में; यहां कहां रहती हो?"

"अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहां आया हूं, उनका घर गुरु बाजार में है।"

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ–साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्करा कर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई?" इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ा कर धत् कह कर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे–तीसरे दिन सब्जीवाले के यहां, दूधवाले के यहां अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना–भर यही हाल रहा। दो–तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हंसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली– "हां हो गई।"

"कब?"

"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।"

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया। एक छावड़ीवाले की दिन–भर की कमाई खोई। एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक

गोभीवाले के ठेले में दूध उंडेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुंचा।

टिप्पणी

(2)

"राम–राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन–रात खंदकों में बैठे हड्डियां अकड़ गईं। लुधियाना में दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए हैं। जमीन कहीं दिखती नहीं; घंटे–दो–घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ–सौ गज धरती उछल पड़ी है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था। यहां दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहना सिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिए। परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट–भर खा कर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में– मखमल का–सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

"चार दिन तक एक पलक नींद नहीं मिली। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूं, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े–संगीन देखते ही मुंह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यहां अंधेरे में तीस–तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था– चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो....."

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते! क्यों?" सूबेदार हजारा सिंह ने मुस्करा कर कहा– "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा?"

"सूबेदार जी, सच है," लहना सिंह बोला– "पर करें क्या? हड्डियों–हड्डियों में तो जाड़ा धंस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाए, तो गरमी आ जाए।"

"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल ले।"– यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरा सिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गंदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला– "मैं पाधा बन गया हूं। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!"– इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा– "अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा स्वाद का पानी पंजाब–भर में नहीं मिलेगा।"

"हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहां मांग लूंगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।"

"लाडी होरां को भी यहां बुला लोगो? या वहीं दूध पिलानेवाली फरंगी मेम–"

"चुप कर। यहां वालों को शरम नहीं।"

"देश–देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तंबाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूं तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधा सिंह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊं! रात–भर तुम अपने कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो। आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड की किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरा सिंह ने त्योरी चढ़ा कर कहा– "क्या मरने–मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हां भाइयो, कैसे–

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए,
कर लेणा लौंगां दा बपार मड़िए;
कर लेणा नादेडा सौदा अड़िए–
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुं।
कद्दू बणाया वे जेदार गोरिए,
हुण लाणा चटाका कदुए नुं।।

कौन जानता था कि दाढ़ियांवाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएंगे, पर सारी खंदक इस गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए। मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

टिप्पणी

(3)

रात हो गई है। अंधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधा सिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछा कर और लहना सिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहना सिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आंख खाई के मुंह पर है और एक बोधा सिंह के दुबले शरीर पर। बोधा सिंह कराहा।

टिप्पणी

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहना सिंह ने कटोरा उसके मुंह से लगा कर पूछा– "कहो कैसे हो?" पानी पी कर बोधा बोला– "कंपनी छूट रही है। रोम–रोम में तार दौड़ रहे हैं। दांत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो!"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से तुम मेरे लिए–"

"हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन–बुन कर भेज रही हैं मेमें, गुरु उनका भला करें।" यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कह कर नांहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुंह से आवाज आई– "सूबेदार हजारा सिंह।"

"कौन लपटन साहब? हुक्म हुजूर!"– कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे–नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन–चार घुमाव हैं। जहां मोड़ है वहां पंद्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहां दस आदमी छोड़ कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कंबल उतार कर चलने लगा। तब लहना सिंह ने उसे रोका। लहना सिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहना सिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा–बुझा कर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा– "लो तुम भी पियो।"

आंख मारते–मारते लहना सिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपा कर बोला– "लाओ साहब!" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुंह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहां उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहां साहब शराब पिए

टिप्पणी

हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है, लहना सिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पांच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिंदुस्तान कब जाएंगे?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसंद नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहां कहां? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे।"

"हां, हां" वहीं जब आ खोते पर सवार थे और और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था? "बेशक पाजी कहीं का।"

सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थीं। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस में लगाएंगे।

"हां, पर मैंने वह विलायत भेज दिया।"

"ऐसे बड़े–बड़े सींग! दो–दो फुट के तो होंगे?"

"हां, लहना सिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूं"– कह कर लहना सिंह खंदक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन? वजीरा सिंह?"

"हां, क्यों लहना, क्या कयामत आ गई? जरा तो आंख लगने दी होती?"

(4)

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।"

"क्या?"

"लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुंह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है?"

"तो अब!"

"अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होरां, कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते–देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे।"

"सूबेदार से कहो एकदम लौट आएं। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

टिप्पणी

"हुकुम तो यह है कि यहीं–"

"ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम–जमादार लहना सिंह जो इस वक्त यहां सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूं।"

"पर यहां तो तुम आठ है।"

"आठ नहीं, दस लाख! एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौट कर खाई के मुहाने पर लहना सिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह–जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने ही वाला था कि इतने में बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बंदूक को उठाकर लहना सिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहना सिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आंख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए।

लहना सिंह ने तीनों गोले बीन कर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन–चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहना सिंह हंस कर बोला– "क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगाएं होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिन डेम के पांच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहना सिंह कहता गया– "चालाक तो बड़े हो पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आंखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गांव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़–पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिंदुस्तान में आ जाएंगे तो गोहत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रुपया निकाल लो। सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक–बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूड़ दी थी, और गांव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गांव में अब पैर रक्खा तो....."

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल–क्रिया कर दी। धड़ाक सुन कर सब दौड़ आए।

टिप्पणी

बोधा चिल्लाया– "क्या है?"

लहना सिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया" और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बंदूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कस कर बांधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहां थे आठ (लहना सिंह तक–तक कर मार रहा था – वह खड़ा था और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे।

अचानक आवाज आई, 'वाह गुरुजी का खालसा? वाह गुरुजी की फतह!! और धड़ाधड़ बंदूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारा सिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहना सिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और – अकाल सिक्खां दी फौज आई! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुख!!!' और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पंद्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कंधे में गोली आर–पार निकल गई। लहना सिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव–भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था। ऐसा चांद, जिसके प्रकाश से संस्कृत–कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी बाणभट्ट की भाषा में 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरा सिंह कह रहा था कि कैसे मन–मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा–दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहना सिंह से सारा हाल सुन और कागजात पा कर वे उसकी तुरत–बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर–अंदर आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते–होते वहां पहुंच जाएंगे। इसलिए मामूली पट्टी बांध कर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहना सिंह की जांघ में पट्टी बंधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जाएगा। बोधा सिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं

टिप्पणी

थे। यह देख लहना ने कहा–"तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनीजी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियां आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूं? वजीरा सिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर..."

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियां चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा–"तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा, साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते लहना लेट गया– "वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।"

(5)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म–भर की घटनाएं एक–एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुंध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

*** *** ***

लहना सिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहां आया हुआ है। दहीवाले के यहां, सब्जीवाले के यहां, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब धत् कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा– "हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम की फूलोंवाला सालू?" सुनते ही लहना सिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरा सिंह, पानी पिला दे।'

*** *** ***

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहना सिंह नं 77 रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न–मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहां रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारा सिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधा सिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहना सिंह सूबेदार के यहां पहुंचा।

टिप्पणी

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढ़े में से निकल कर आया। बोला– "लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है। जा मिल आ।" लहना सिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती है, कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर मत्था टेकना कहा। असीस सुनी। लहना सिंह चुप।

"मुझे पहचाना?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई – धत् – कल हो गई – देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू– अमृतसर में..."

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला" – उसने कहा था।

*** *** ***

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है– "मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम करती हूं। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक–हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती, एक बेटा है। फौज में है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी। अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन तांगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आंचल पसारती हूं।"

रोती–रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरा सिंह, पानी पिला" – उसने कहा था।

*** *** ***

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरा सिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आधे घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला– "कौन! कीरतसिंह?"

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा– "हां।"

"भइया, मुझे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।" वजीरा ने वैसे ही किया।

"हां, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा–भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वजीरा सिंह के आंसू टप–टप टपक रहे थे।

*** *** ***

टिप्पणी

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा– फ्रांस और बेल्जियम–68वीं सूची–मैदान में घावों से मरा– नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहना सिंह।

5.2.3 चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं

हिंदी कथा–साहित्य में गुलेरी जी भाव व कला दोनों ही दृष्टियों से महानतम रहे हैं। उनकी कहानी कला के विवेचन से यह बात सिद्ध हो जाती है।

कथानक

कहानी के आरंभ में वे अमृतसर के व्यस्त बाजार का ऐसा शब्दचित्र खड़ा करते हैं कि वह सजीव हो उठता है। इसी बाजार में संयोगवश बारह वर्षीय एक लड़के की भेंट एक आठ वर्षीय लड़की से होती है। लड़का सहज भाव से आकृष्ट होकर लड़की से पूछ बैठता है, "तेरी कुड़माई हो गई न।" लड़की 'धत्' कहकर चली जाती है। फिर तो, यही रोजमर्रा का सिलसिला शुरू हो गया। यह कोरी जिज्ञासा थी या फिर उसमें कोई और बात छिपी थी। एक दिन लड़की ने कहा, 'हां, हो गई' तब लड़के का जो हाल हुआ उससे बात की तह खुल गई। बिना कुछ कहे ही तथ्य का आभास, यही तो कला है।

हजारा सिंह, सूबेदार की पत्नी बन जाने पर उस लड़की के प्रति लड़के (लहना सिंह, जमादार) का वह पहले वाला भाव समाप्त हो गया। वह उसे माथा टेकता है। सूबेदारनी युद्ध भूमि के लिए जाते हुए अपने पति और पुत्र (हजारा सिंह और बोधा सिंह) की रक्षा का भार लहना सिंह को सौंपती है। लहना सिंह युद्धभूमि में अपने प्राणों की बलि देकर उन दोनों पिता–पुत्र की रक्षा करता है, क्योंकि उससे (सूबेदारनी) 'उसने कहा था।'

चरित्र–चित्रण

गुलेरी जी की यह कहानी चरित्र–चित्रण की दृष्टि से अपने चरमोत्कर्ष पर है। गुलेरी जी की विशेषता वस्तुतः मानव चरित्र की व्याख्या है। लहना सिंह का चरित्र रघुकुलवंशियों की आन, बान और शान की याद ताजाकरता है। सूबेदारनी के आदेश का पालन वह अपने प्राणों का बलिदान करके भी करता है। इसे दिल की गहराइयों में दबे प्रेम की पराकाष्ठा का नाम भी दे सकते हैं। उधर सूबेदारनी का स्वार्थ अपनी पराकाष्ठा को पार करता प्रतीत होता है या फिर बचपन की छेड़खानी–चुहलबाजी का तो परिणाम इस बदले की भावना में तो परिवर्तित होता दिखलायी नहीं देता। कुछ भी रहा हो, किंतु लहना सिंह का चरित्र प्रेरक बनकर अमर हो गया है। मनुष्य की मनोवृत्ति का चित्र भी इस कहानी के चरित्रों में उभरता है। कहानी की मौलिकता, लड़ाई के मोर्चे की दृश्य योजना पर नहीं, चरित्रों के सृजन और मूल्यों की अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है।

कथोपकथन

इस कहानी का कथोपकथन स्वार्थ, त्याग और बलिदान की सीमा में आता है। देशकाल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुकूल कथोपकथन है। कथोपकथन में सुसंबद्धता भी है।

देशकाल, वातावरण योजना

देशकाल, वातावरण योजना की दृष्टि से यह कहानी मील का पत्थर सिद्ध होती है। वातावरण बहुत ही स्वाभाविकता लिए हुए है। गुलेरी जी के सभी वर्णन सजीव और कथानक के विकास में सहायक हुए हैं। अमृतसर के व्यस्त बाजार का चित्र और वातावरण कितना सजीव और स्वाभाविक बन पड़ा है।

टिप्पणी

भाषा–शैली

इस कहानी और इसके सभी पात्रों की भाषा सहज और सरल है। इसमें कहीं भी बनावट दिखलायी नहीं पड़ती है। जिंदगी की जिन स्थितियों के बिंब गुलेरी जी ने अपनी कहानियों में दिए हैं वे आज भी हमारे लिए ताजा हैं और आगे भी ताजा ही बने रहेंगे। इसका कारण यह है कि ये मौलिक बिंब हैं। उधार लिए हुए नहीं हैं।

शैली और शिल्प की दृष्टि से भी कहानी अनेक रूपों को छूती हुई बढ़ती है। ऐतिहासिक शैली की भी खुशबू इस कहानी में दिखलाई पड़ती है।

उद्देश्य

'उसने कहा था' कहानी उद्देश्यपूर्ण है। इसमें प्रतिबद्धता की सौंधी–सौंधी खुशबू है। बात को रखने की बात है। जिसे मान लो, चाहे दूसरे को ज्ञात हो अथवा न हो, उसे विषम परिस्थितियों में भी पूरा करो। प्रेम प्रदर्शन की वस्तु नहीं है, निभाने की भावना है। मजाक ऐसा करो जो जी का जंजाल न बन जाए। गुलेरी जी की इस कहानी में सभी चरित्र स्वाभाविक बन पड़े हैं। इस कहानी का सबसे बड़ा उद्देश्य यथार्थवाद और आदर्शवाद को प्रस्तुत करना भी है।

हिंदी कथा–साहित्य में स्थान

हिंदी कथा–साहित्य में गुलेरी जी का अपना विशिष्ट स्थान है। यह स्थान उन्हें 'उसने कहा था' से मिला है। इसी कहानी के कारण उन्हें 'कहानी सम्राट' का तमगा भी मिला। आज के और आने वाले कहानीकारों के वे प्रेरणा–स्रोत हैं। अपनी इसी कहानी के बल पर गुलेरी जी हिंदी जगत पर छाये हुए हैं।

5.2.4 कहानी का सार

सच पूछा जाए तो 'उसने कहा था' कहानी प्रेम की आध्यात्मिक अनुभूति है। आध्यात्मिक इस मायने में कि इसमें प्रेमी–प्रेमिका के बीच शारीरिक संबंध की ऊष्मा नहीं है बल्कि प्रेम एक ज्योति की भांति दोनों के हृदय में विद्यमान रहता है और वह अनुभूति इतनी सुखद, इतनी निर्मल है कि युद्ध की विभीषिका भी उसे धीमी नहीं कर पाती।

इस कहानी की शुरुआत में अमृतसर के भीड़–भरे बाजार में एक बारह वर्ष का बालक (लहना सिंह) एक आठ वर्षीय बालिका को तांगे के नीचे आने से बचाता है और इस प्रकार दोनों का प्रथम परिचय होता है। इसे दीदार होना भी कह सकते हैं और उसके बाद बालक, बालिका को यह कहकर छेड़ता है–'तुम्हारी कुड़माई (सगाई) हो गई, और बालिका 'धत्' कहकर भाग जाती है। जब भी बालिका उसे बाजार, हाट, रास्ते या चौराहे पर मिलती है, तभी बालक अपने इस घिसे–पिटे प्रश्न को दोहराता है, लेकिन एक दिन 'धत्' कहकर भागने की बजाय बालिका कहती है, 'हां, कल हो गई। देखते नहीं। यह रेशम के फूलों वाली सालू.....' और बालक लहना सिंह को इस पर दुख होता है। फिर क्रोध आता है न जाने क्यों?

टिप्पणी

उसके बाद कहानी के द्वितीय भाग में, लहना सिंह का परिचय प्रथम विश्व युद्ध के मोर्चे पर होता है और वह याद करता है कि छुट्टी के बाद घर से लाम पर जाते समय सूबेदार हजारा सिंह के घर गया था। वहां सूबेदारनी ने उसे एकांत में बुलाकर कहा था कि मेरे पति (हजारा सिंह, सूबेदार) और मेरे बेटे (बोधा सिंह) का खयाल रखना। यह सूबेदारनी वही बालिका थी जिससे अमृतसर के बाजार में उसका परिचय हुआ था और लहना सिंह सूबेदारनी के प्यार की उस किरण को हृदय में संजोकर, अपने प्राणों की बलि देकर भी हजारा सिंह और बोधा सिंह की रक्षा करता है।

कहानी के तीसरे भाग में, युद्धभूमि में मरणासन्न स्थिति में जमादार लहना सिंह अपने साथी वजीरा सिंह से कहता है–'भइया! मुझे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसा ही किया और बस पानी पीते–पीते कुछ पलों में ही लहना सिंह के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। मरने से पहले उसे बचपन से लेकर अभी तक की पिछली सारी बातें चलचित्र की भांति घूमती नजर आती हैं।

यह कहानी नित नये सौंदर्य का उद्घाटन करती रही है और हर पीढ़ी के लिए इसका आकर्षण जस–का–तस बना रहा है। यह कहानी यथार्थ साहित्य का एक उदाहरण है। गुलेरी जी की यह कहानी भी परिस्थितियों पर इच्छा शक्ति की विजय की रचना है, इसलिए इसमें आज भी ताजगी और ऊर्जा भरपूर है।

5.2.5 कहानी की समीक्षा

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' मूलतः तीन भागों में लिखी गई है। प्रथम–युद्धभूमि से पहले की–अमृतसर शहर में घटित कहानी, दूसरी युद्धभूमि में घटित कहानी और तीसरी युद्ध भूमि से जाते समय की कहानी।

कहानी के क्षेत्र में कम लिखकर ज्यादा नाम कमाने वालों में एक गुलेरी जी भी थे। उन्होंने केवल तीन कहानियां साहित्य जगत को दीं। इनमें से भी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी प्रमुख है। इस कहानी को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है।

कहानी की मूल संवेदना

'उसने कहा था' कहानी में संवेदनाओं की कमी नहीं है। कारण, इस कहानी का ताना–बाना ही कुछ इस प्रकार का बुना हुआ है।

एक बारह साल के बालक और आठ साल की बालिका के बाजार में मिलने और बार–बार मिलने पर भी एक ही संवाद, हर बार कुछ नये–नये मायने दे जाता है। दोनों बाल मनों में संवेदनाओं की ध्वनि फूंक जाता है, जिससे बाल मन में कुछ न कुछ चित्रित होने लगता है। जिसका पता शायद इन अबोध बच्चों को भी नहीं चल पाता, किंतु आगे जाकर यह संवाद पूरी कहानी की आधारशिला बन जाता है। इसी प्रकार सूबेदारनी का एकांत में जमादार लहना सिंह को अपने पति और पुत्र की रक्षा का दायित्व सौंपना, संवेदना के शिखर को छूता प्रतीत होता है। फिर युद्ध भूमि से लौटते समय हजारा सिंह की मार्फत सूबेदारनी के लिए संदेश कम, संवेदना ज्यादा उड़ेलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह कहानी पूरी तरह संवेदनशील बन पड़ी है।

टिप्पणी

5.2.6 कहानी कला के तत्व और 'उसने कहा था'

कहानी कला के तत्वों के आधार पर आलोच्य कहानी की समीक्षा निम्न प्रकार से है–

(1) **कथावस्तु–** 'उसने कहा था' की कथा वस्तु ही मूलतः इस कहानी की जान है। मजाक–मजाक में प्रगाढ़ता, फिर वचन लेने–देने की बात, फिर अपने प्राणों की बाजी लगाकर उस वचन को पूरा करना, कथावस्तु में जीवन डालते प्रतीत होते हैं। इस कहानी की कथावस्तु में बहुत ही मुस्तैदी है। कसाव है। कहीं भी कथावस्तु में ओल–झोल नहीं है। इस कहानी की कथावस्तु में रोचकता और तीव्र गतिशीलता देखने लायक है, इसलिए कहा जा सकता है कि कथावस्तु की दृष्टि से यह कहानी पूर्णरूपेण सफल है।

(2) **चरित्र–चित्रण–** चरित्र–चित्रण की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी का जवाब नहीं है। सभी चरित्रों का चित्रण पूर्णरूपेण मुखर हो उठा है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए इस कहानी के कुछ प्रसंग प्रस्तुत हैं–

फिरंगी मेम के बाग के आम को याद करते हुए लहना सिंह खुशी–खुशी कहता है–'मखमल का–सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो। मेरे मुल्क को बचाने आए हो।' लहना सिंह का चरित्र बड़ा ही सशक्त और प्रभावी बन पड़ा है। वह मस्तमौला किस्म का सैनिक है। दूसरों के काम आने वाला। यारों का यार! उसको अपनी फिक्र तो है ही नहीं। खुद घायल होकर भी बोधा सिंह की तीमारदारी में तनिक भी ढील नहीं छोड़ता और किसी पर जाहिर भी नहीं होने देता। हां, सूबेदार हजारा सिंह यह सब देखता रहता है। उसे सब पता है। सूबेदार के चरित्र का चित्रण भी आत्मीयता और सहृदयता की जीती–जागती तस्वीर बन पड़ा है। जमादार लहना सिंह के चरित्र में समर्पण अद्वितीय कोटि का बन पड़ा है। लहना सिंह बोधा सिंह की फिक्र जी–जान से करता है। फायरों की आवाज सुनकर जब बोधा सिंह चिल्लाता है–'क्या है?' तब लहना सिंह उसे यह कहता हुआ सुला देता है–'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया।' लहना पूरी तरह जख्मी हो चुका था। उसने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कसकर बांधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों को कसने से लहू निकलना बंद हो गया। लड़ाई में लहना को दूसरा घाव–भारी लगा। यहीं लड़ाई खत्म हो गई थी। सूबेदार लहना सिंह से सारा हाल सुनकर और कागज पाकर वे उसकी तुरंत बुद्धि को सराह रहे थे। कह रहे थे, 'तू न होता तो आज सब मर जाते।'

इस कहानी के तीसरे हिस्से में झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां आकर रुकी, घायलों को फील्ड अस्पताल ले जाने के लिए। फर्स्ट एड देकर घायल जवानों को एक गाड़ी में लिटाया गया। दूसरी में जवानों की लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहना सिंह की जांघ में पट्टी बंधवानी चाही परंतु उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जाएगा। उधर बोधा सिंह बुखार में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटा दिया गया। लहना सिंह को छोड़कर सूबेदार

टिप्पणी

जाना नहीं चाहते थे। ये देखकर लहना सिंह बोला–"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

'और तुम?'

"मेरे लिए वहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना और जर्मन युद्धों के लिए भी तो गाड़ी आती होगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूं। वजीरा सिंह मेरे पास है ही।"

'अच्छा पर.....'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया। भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो 'उसने कहा था', वह मैंने कर दिया।'

सूबेदार हजारा सिंह के चरित्र की पराकाष्ठा देखिए–गाड़ियां चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चलते–चलते लहना का हाथ पकड़कर कहा–'तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था।'

सभी पात्रों के चरित्र–चित्रण इस कहानी में अद्‌भुतता लिए हुए हैं।

(3) **कथोपकथन–** इस दृष्टि से भी यह कहानी पूरी तरह सफल कही जा सकती है। इसमें जमादार लहना सिंह, और सूबेदार हजारा सिंह की 'टयूनिंग' देखते ही बनती है। लहना का चरित्र तो कदम–कदम पर वाहवाही लूटता है, जिसका वह हकदार भी है।

(4) **देशकाल और वातावरण–** 'उसने कहा था' कहानी में देशकाल और वातावरण पूरी तरह मुखर हो उठा है। अमृतसर के बाजार का वातावरण, युद्ध भूमि का वातावरण कहानी को यथार्थ और वास्तविकता के एकदम पास ले आते हैं। सजीवता और जीवंतता प्रदान कर देते हैं।

(5) **भाषा–शैली–** इस कहानी की भाषा–शैली पात्रों के चरित्र के अनुकूल ही बन पड़ी है। कहीं भी अखरती नहीं है। इस प्रकार इसकी शैली और शिल्प भी बिल्कुल सही बन पड़े हैं। सभी पात्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। भाषा और शैली की बानगी देखिए–

> "अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, लिख देना और कह भी देना।"
>
> गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया, 'वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।"

(6) **उद्देश्य–** यह कहानी अपने उद्देश्य में भी पूर्णरूप से सफल है। यह कर्तव्यबोध की कहानी बन गई है।

इस प्रकार कहानी कला के सभी तत्वों का इस कहानी में समावेश हुआ है।

टिप्पणी

5.2.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

(1) "वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था। बेशक पाजी कहीं का। सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब! शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट मैस में लगाएंगे।"

संदर्भ

यह गद्यांश चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' से उद्‌धृत है।

प्रसंग

इस गद्यांश में दुश्मन की फौज का अफसर हिंदुस्तानी अफसर का वेश बनाकर आ जाता है और हुक्म चलाने लगता है। लहना सिंह को शक होता है। वह सब समझ जाता है और बातों ही बातों में उसका बेवकूफ बनाकर उसी से उसके नकलीपन को उगलवाने की कोशिश करता है।

व्याख्या

इस गद्यांश में लहना सिंह दुश्मन की फौज के अफसर से जो हिंदुस्तानी वेश धरकर हिंदुस्तानी फौज में आ जाता है। उल्टी–सीधी, बेसिर पैर की अविश्वसनीय बातें करता है।

विशेष

इस गद्यांश में हास्य–व्यंग्यपूर्ण भाषा शैली में बातें हो रही हैं।

(2) "राम–राम! यह भी कोई लड़ाई है? दिन–रात खंदकों में बैठे हड्डियां अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए हैं। जमीन कहीं दिखती नहीं। घंटे–दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ–सौ गज तक धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहां दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्‌टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

संदर्भ

यह गद्यांश पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है।

प्रसंग

युद्ध क्षेत्र में जमादार लहना सिंह चार दिन से खंदक में छिपा हुआ है। ताक में है कि कब दुश्मन दिखलायी भर दे और वह उसे उड़ा दे। प्रस्तुत पंक्तियों में खंदक में छिपे ही वह दुश्मन के छिपने के स्थान के बारे में सोचता है।

टिप्पणी

व्याख्या

कहानी के इस पूरे अंश में युद्ध क्षेत्र का वर्णन है। जवान किस–किस प्रकार से जान हथेली पर रखकर देश की सेवा में रात–दिन जुटे रहते हैं। दुश्मनों के छिपे ठिकानों के बारे में, स्थिति के बारे में सोचते रहते हैं। अनुमान लगाते रहते हैं। यही भाव उद्धृत पंक्तियों में वर्णित है।

विशेष

यह पंक्तियां वर्णनात्मक शैली की हैं। युद्ध के मैदान का लोमहर्षक वर्णन है।

(3) "लहना सिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहां आया हुआ है। दही वाले के यहां, सब्जी वाले के यहां, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा–हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू? सुनते ही लहना सिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?"

संदर्भ

यह गद्यांश चंद्रधर शर्मा गुलेरी की सदाबहार कहानी 'उसने कहा था' से उद्धृत है।

प्रसंग

जमादार लहना सिंह जब युद्धभूमि में मरणासन्न स्थिति में अपने साथी वजीरा सिंह के सामने पड़ा हुआ है–जख्मी है। कराह रहा है–तब उसे अपने बचपन की सारी बातें याद आने लगती हैं और चलचित्र के समान उसकी आंखों के सामने घूमने लगती हैं।

व्याख्या

इन पंक्तियों में लहना स्वयं ही अपनी आंखों से अपने बचपन को देख रहा है–अमृतसर में वह मामा के यहां आया हुआ है। बाजार में वह एक लड़की को देखकर, बस– 'यूं ही' पूछ बैठता है– तेरी कुड़माई हो गई? और तब, वह भी 'धत्' कहकर भाग जाती है। लहना रोज ही, जब भी वह उसे मिलती है–यही प्रश्न करने लगता है और उसे वही 'धत्' जबाव मिलता है। शायद उसे लड़की से मजाक करने में, या फिर इस तरह उससे बात करने में आनंद की अनुभूति होती है किंतु एक दिन उसका अलग–थलग सा जबाव पाकर लहना दुःख और क्रोध, और न जाने किन–किन भावों के आवेगों में बह जाता है, लेकिन यह घटना उसे अभी भी युद्धभूमि में मरणासन्न स्थिति में भी याद हो आती है, क्योंकि इस घटना ने, इस बचपन के मजाक ने उसके जीवन के सिद्धांत के रुख को ही मोड़कर रख दिया था। उसने इस 'मजाक' को, इस हंसी को, अपने हृदय–पटल पर किस रूप में अंकित कर लिया था अथवा यह 'मजाक' किस रूप में स्वयं अंकित हो गया था–इसका पता स्वयं लहना को भी नहीं हो पाया था।

विशेष

यथार्थ के बहुत ही आस–पास की अनुभूति का वर्णन इस गद्यांश में गुलेरी जी ने किया है। हास्य और व्यंग्य इन पंक्तियों की विशेषता बन गई है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. गुलेरी जी ने कुल कितनी कहानियां लिखीं?
2. 'उसने कहा था' सर्वप्रथम कब प्रकाशित हुई?
3. 'उसने कहा था' कहानी सर्वप्रथम कहां प्रकाशित हुई?
4. 'उसने कहा था' कहानी का मुख्य पात्र कौन है?
5. हजारा सिंह और बोधा सिंह का क्या संबंध है?
6. सिख राइफल्स में लहना सिंह का नंबर क्या था?
7. लहना सिंह कितने वर्ष बाद उस बालिका से मिलता है?

टिप्पणी

5.3 ठाकुर का कुआं – मुंशी प्रेमचंद

प्रसिद्ध उपन्यासकार, कथाकार मुंशी प्रेमचंद जी का जीवन परिचय इस प्रकार है–

5.3.1 लेखक परिचय

मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, सन् 1880 को बनारस शहर के पास बसे, लमही ग्राम में हुआ था। उनके पिता मुंशी अजायब लाल डाक मुंशी की नौकरी करते थे, जिससे घर की दाल–रोटी का ही जुगाड़ हो पाता था।

प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपतराय था। सर्वप्रथम इन्होंने उर्दू में नवाबराय के नाम से लिखना शुरू किया। इनकी पहली पुस्तक 'सोजे वतन' ब्रिटिश सरकार द्वारा कब्जाकरके जला दी गई थी। फिर इन्होंने प्रेमचंद के नाम से हिंदी में भी लिखना जारी रखा। प्रेमचंद जी बहुत ही सरल और सीधे स्वभाव के सामान्य व्यक्ति थे किंतु इनका चिंतन बहुत गहन था। समाज की गतिविधियों को बड़ी ही सूक्ष्म, पैनी तथा गहरी दृष्टि से जो भी देखते थे, उसे ही अपनी रचना में ढाल लेते थे। उनका पूरा जीवन संघर्षमय ही रहा। उन्होंने एक विधवा युवती से विवाह रचाया था, जिसका नाम शिवरानी देवी था। वह बहुत ही सच्ची, अक्खड़, स्वाभिमानी और शासकीय वृत्ति की युवती थी, जबकि प्रेमचंद कोमल भावनाओं के प्रतीक थे। उन्होंने अपनी लगभग 56 वर्षीय जिंदगी में देश, समाज और ग्रामीण जीवन से ओत–प्रोत लगभग 300 रचनाएं रचीं। उन रचनाओं को भारतीय जीवन का आईना कहा जा सकता है। इनका पूरा साहित्य पाठक के अंतःस्थल पर अपनी भरपूर छाप छोड़ता है। उन्हें 'उपन्यास सम्राट' के नाम से भी जाना जाता है। मुंशी प्रेमचंद का देहावसान दिनांक 8 अक्टूबर, सन् 1936 को हुआ था।

'साहित्य समाज का दर्पण है', ये बात अक्षरशः मुंशी प्रेमचंद के समग्र साहित्य को पढ़कर जानी जा सकती है। मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य जगत में सदैव अमर रहेंगे।

5.3.2 ठाकुर का कुआं : मूल पाठ

(1)

जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आयी। गंगी से बोला– यह कौन सा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है।

गंगी प्रतिदिन शाम पानी भर लिया करती थी। कुआं दूर था, बार–बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिलकुल न थी, आज पानी में बदबू कैसी! लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। जरूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहां से?

ठाकुर के कुएं पर कौन चढ़ने देगा? दूर से लोग डांट बताएंगे। साहू का कुआं गांव के उस सिरे पर है, परंतु वहां भी कौन पानी भरने देगा? कोई तीसरा कुआं गांव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला– अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा पानी नाक बंद करके पी लूं।

टिप्पणी

गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी से बीमारी बढ़ जाएगी इतना जानती थी, परंतु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली– यह पानी कैसे पियोगे? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएं से मैं दूसरा पानी लाये देती हूं।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा– पानी कहां से लायेगी?

ठाकुर और साहू के दो कुएं तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे?

'हाथ–पांव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्रह्म–देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे?'

इन शब्दों में कड़वा सत्य था। गंगी क्या जवाब देती, किंतु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

(2)

रात के नौ बजे थे। थके–मांदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस–पांच बेफिक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो अब न जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं। कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकदमे में रिश्वत दी और साफ निकल गये। कितनी अक्लमंदी से एक मार्के के मुकदमे की नकल ले आये। नाजिर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती। कोई पचास मांगता, कोई सौ। यहां बेपैसे–कौड़ी नकल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिए।

इसी समय गंगी कुएं से पानी लेने पहुंची।

कुप्पी की धुंधली रोशनी कुएं पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इंतजार करने लगी। इस कुएं का पानी सारा गांव पीता है। किसी के लिए रोका नहीं, सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा– हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक–से–एक छंटे हैं। चोरी ये करें, जाल–फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस–किस बात में हमसे ऊंचे हैं, हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे। कभी गांव में आ जाती हूं, तो रस–भरी आंख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊंचे हैं।

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक–धक करने लगी। कहीं देख लें तो गजब हो जाए। एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया

टिप्पणी

आती है किसी पर। बेचारे महंगू को इतना मारा कि महीनो लहू थूकता रहा। इसीलिए तो कि उसने बेगार न दी थी। इस पर ये लोग ऊंचे बनते हैं?

कुएं पर स्त्रियां पानी भरने आयी थीं। इनमें बात हो रही थी।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं।'

'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हां, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियां ही तो हैं।'

'लौंडियां नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी–कपड़ा नहीं पातीं? दस–पांच रुपये भी छीन–झपटकर ले ही लेती हो। और लौंडियां कैसी होती हैं!'

'मत लजाओ, दीदी! छिन–भर आराम करने को जी तरसकर रह जाता है। इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता! यहां काम करते–करते मर जाओ; पर किसी का मुंह ही सीधा नहीं होता।'

दोनों पानी भरकर चली गईं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गए थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद कर अंदर आंगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ–बूझकर न गया हो। गंगी दबे पांव कुएं की जगत पर चढ़ी, विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें–बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती–भर उम्मीद नहीं। अंत में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएं में डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो–चार हाथ जल्दी–जल्दी मारे। घड़ा कुएं के मुंह तक आ पहुंचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से न खींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुंह इससे अधिक भयानक न होगा।

गंगी के हाथ से रस्सी छूट गईं रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हिलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं।

ठाकुर कौन है, कौन है? पुकारते हुए कुएं की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाये वही मैला–गंदा पानी पी रहा है।

टिप्पणी

5.3.3 प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएं

प्रेमचंद का समग्र साहित्य भाव और कला की दृष्टि से अद्वितीय है। पहली–पहली बार कथा के सभी तत्व उनकी रचनाओं में अपने पूर्ण निखार के साथ देखे गए जिनका अनुसरण उनके बाद के कथाकारों ने किया।

कथानक

कथानक की दृष्टि से प्रेमचंद के कथा–साहित्य का कैनवास बहुत व्यापक है। उसमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और कौतुहल आदि सभी बिंदु अपनी पूर्ण छटा के साथ उभर कर आते हैं। इनमें भी सामाजिक दृष्टिकोण और उसकी पकड़ उनकी रचनाओं में देखते ही बनती है। विसंगतियों का भंडार उनकी रचनाओं में समाया हुआ है। कहीं वे समाज को सुधारने की बात करते हैं तो कहीं नारी जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत करने लगते हैं। ग्रामीण, और उनमें भी निम्न, गरीब और शोषित वर्ग उनकी कहानियों का विशेष आकर्षण रहे हैं, जहां आम पाठक उनसे जुड़े बिना नहीं रहता। उनमें वह अपने को कहीं न कहीं खड़े अवश्य ही पाता है। प्रेमचंद की कहानियों के कथानक बड़े ही स्वाभाविक होते हैं। उन कथानकों को वे बड़ी कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों के पात्र मात्र मनोरंजन ही नहीं करते बल्कि एक उद्देश्य और सिद्धांत के साथ दिखलाई देते हैं।

चरित्र–चित्रण

उनकी कहानियों में मानव–चरित्रों की बुनावट बड़ी ही सहज, सरल तथा स्वाभाविक होती है। सच कहा जाए तो प्रेमचंद के पहले का हिंदी साहित्य कहानी के इस मूल तत्व से बिल्कुल ही अछूता था। चरित्र प्रधान कहानियों को लिखने वालों में प्रेमचंद सर्वप्रथम स्थान पर रहे हैं। उनकी कहानियों के चरित्र काल्पनिक न होकर समाज के ही जीवंत अंग होते हैं। तभी तो उनकी कहानियां वास्तविकता के अधिक समीप होती हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद को मनोवैज्ञानिक माना जाता है। वे सामने वाले के मनोभावों को सहज ही ताड़कर अपनी कहानी के चरित्रों का हिस्सा बना लेते थे। उनके चरित्रों में अच्छाई–बुराई सभी कुछ है। उनकी कहानियों में मजदूर, किसान, सेठ, डॉक्टर, जमींदार, अध्यापक, विद्यार्थी, वैज्ञानिक, बाल–वृद्ध, नर–नारी, विधवा, विमाता, शराबी, संत, महात्मा, भिखारी और चपरासी आदि सभी के चरित्र देखने को मिल जाते हैं। पाठक सहज ही अपने आप को उनमें देख लेता है, अनुमान लगा लेता है। इन सभी के चरित्रों को प्रेमचंद ने अपनी कलात्मक दृष्टि से अपनी रचनाओं में खूब स्वाभाविक रूप से उभारा है।

कथोपकथन

कथोपकथन की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियां बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव बन पड़ी हैं। उनमें भारत के जनजीवन की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। उनकी रचनाएं देश, काल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुरूप गढ़ी गई हैं। उनके पात्र मर्यादानुकूल ही भाषा का प्रयोग करते हैं। साथ ही कथोपकथन के नियंत्रित स्वरूप को भी ध्यान में रखते हैं।

टिप्पणी

देशकाल, वातावरण योजना

प्रेमचंद जी की प्रत्येक रचना में देशकाल और वातावरण पूर्णरूपेण स्वाभाविक रूप से उभर कर आते हैं। घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण में पात्रों के चरित्र के प्रस्तुतीकरण में प्रेमचंद जी अद्वितीय हैं। उनका वर्णन अत्यंत सजीव रहता है। अपनी रचनाओं के वातावरण का ताना–बाना बुनने में प्रेमचंद का जवाब नहीं। उनकी प्रत्येक रचना वातावरण प्रधान होती है। देशकाल का भी वे पूर्ण ध्यान रखते हैं।

भाषा–शैली

प्रेमचंद जी की रचनाओं में भाषा का विशेष योगदान रहता है। उनके पात्र भाषा का सहज और सरल प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा प्रवाहमयी होती है। उनकी भाषा आम बोलचाल की भाषा है जिसमें उर्दू–हिंदी मिश्रित रहती है। अतः कह सकते हैं कि उनकी भाषा हिंदुस्तानी भाषा है। शब्दों का चयन भी वे अपनी भाषा में बड़ी ही चतुरता या आवश्यकतानुसार करते हैं। उनकी भाषा में कृत्रिमता बिल्कुल भी नहीं होती। उनकी भाषा में लोच और प्रवाह भरपूर होता है। उनकी रचना में मुहावरे और कहावतें भी आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाए जाते हैं जिससे उनकी भाषा और भी रोचक और सौंदर्यमयी बन जाती है।

प्रेमचंद की कहानियों में शैली के भी अनेक रूप होते हैं। उनकी शैली वर्णनात्मक, संकेतात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय और हास्य–व्यंग्य का पुट लिए होती है। शिल्प विधान की दृष्टि से भी उन्होंने आत्म चरित्रात्मक, ऐतिहासिक, नाटकीय, पत्रात्मक व डायरी–शैली आदि का प्रयोग अपनी रचनाओं में आवश्यकता को देखते हुए किया है। वैसे ऐतिहासिक शैली उनकी प्रिय शैली रही है। इस शैली की कहानियां खासी चर्चित रही हैं।

उद्देश्य

प्रेमचंद का पूरा साहित्य पूर्णरूपेण उद्देश्य पूर्ण है। उसमें मनोरंजन को उतनी ही जगह दी गई है जितनी कि आवश्यक है। अनावश्यक रूप से मनोरंजन तत्व का प्रयोग नहीं किया गया है। उनकी कहानियों का मूलाधर परिस्थितियों के मध्य मानवीय चरित्र की कमजोरियों को दिखलाकर उनका त्याग करना रहा है। इस दृष्टि से प्रेमचंद जी को आदर्शोन्मुखी तथा यथार्थवादी कथाकार मान सकते हैं। प्रेमचंद जी की रचनाएं वास्तविकता को उजागर करती प्रतीत होती हैं। वे समाज को बदलने में विश्वास रखते थे, इसलिए आदर्शवाद से अधिक उनका रुझान यथार्थवाद की तरफ ज्यादा अधिक था।

हिंदी कथा–साहित्य में स्थान

प्रेमचंद जी का कथा–साहित्य इतना विशाल, सारगर्भित और उद्देश्यपूर्ण है कि उसमें पूरा एक काल समा गया है। वे कहानी–युग के पर्याय बन चुके थे। बांग्ला कहानी साहित्य में जो स्थान रवीन्द्रनाथ ठाकुर को प्राप्त है, वही स्थान हिंदी साहित्य में प्रेमचंद जी को भी सर्वसम्मति से मिला हुआ है। उनका हिंदी कथा–साहित्य बेजोड़ है। तभी तो उनकी अनेकानेक कृतियों के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुके हैं, हो रहे हैं और आगे भी यूं ही होते रहेंगे। उनकी कहानी आधुनिक युग की कहानियों का दर्पण है। सारांश में प्रेमचंद जी की कहानियों में कहानी कला के सभी तत्व उपस्थित रहते हैं।

टिप्पणी

5.3.4 कहानी का सार

मुंशी प्रेमचंद की यह कहानी 'ठाकुर का कुआं' छुआछूत को दर्शाती मर्मस्पर्शी कहानी है।

जिस गांव में जोखू और गंगी रहते हैं उस गांव में बस दो ही कुएं हैं। एक ठाकुर का और दूसरा गांव के दूसरे छोर पर साहू का। साहू के कुएं से सभी पानी भर सकते हैं, बस नीच जाति के लोग ही नहीं। फिर वह दूर भी तो है। जोखू कई दिनों से बीमार पड़ा है। उसने अपनी पत्नी से पानी मांगा। गंगी ने दे दिया। जोखू ने जैसे ही लोटा मुंह से लगाया, तो बोला–इसमें तो बदबू आ रही है। यह कैसा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है।

गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लिया करती थी। बार–बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लाई तो उसमें बदबू बिल्कुल न थी। आज पानी में बदबू कैसे? यही सोचते हुए गंगी ने लोटा नाक से लगाया तो सचमुच बदबू थी। उसने सोचा जरूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा। मगर दूसरा पानी आवे कैसे? तिस पर जोखू बोला–ला, यही पानी दे दे। गला सूखा जा रहा है। थोड़ा पानी नाक बंद करके ही पी लूं। गंगी ने पानी न दिया और कुएं से पानी लाने की बात कहकर घड़ा लेकर अंधेरा होते ही बाहर चली गई।

रात के नौ बजे अंधेरे में छिपती–छिपाती वह ठाकुर के कुएं के पास पहुंची तो देखा वहां थके–मांदे मजदूर सो चुके थे। ठाकुर के दरवाजे पर दस–पांच बेफिक्रे जमा थे। वे हवाई बहादुरी बघार रहे थे। कानूनी बहादुरी की भी बातें हो रही थीं। ठाकुर की होशियारी की बातें भी हो रही थीं तथा चालाकी की बातें भी हो रही थीं। गंगी भी स्वयं में ही ऊंचे–नीचे लोगों की बातों में उलझ गई–अभी इसी ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुराई थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारह महीने जुआ चलता है। यहां तो जितने हैं एक–से–एक छंटे हैं। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं पर मजूरी देते नानी मरती है इनकी। बस फर्क ये है कि हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे हैं। कभी गांव में आ जाती हूं तो रसभरी आंखों से देखने लगते हैं। फिर भी घमंड है कि हम ऊंचे हैं।

तभी कुएं पर हुई आहट से गंगी के विचार भंग हो गए। उसने देखा कि स्त्रियां कुएं पर पानी भरने आई थीं। इनमें भी इधर–उधर की तेरी–मेरी, इसकी–उसकी बातें हो रही थीं। उनके पानी भरकर जाने के बाद गंगी छिपते–छिपाते, इधर–उधर देखते हुए चोर की मानिंद कुएं की जगत के पास आई। बेफिक्रे भी जा चुके थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद करके चले गए थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। देवताओं को याद करके घड़े में रस्सी बांधकर घड़ा कुएं में उतारा। धीरे–धीरे पानी भरा। फिर उसे धीरे–धीरे ऊपर खींचने लगी। घड़ा कुएं के मुंह तक आ गया, परंतु जैसे ही वह घड़े को पकड़ने के लिए झुकी, तभी एकाएक ठाकुर का बंद दरवाजा फटाक से खुल गया। गंगी तो कुएं की जगत से कूदकर सिर पर पांव रखकर लबड़–दबड़ वहां से भागी। उधर ठाकुर, 'कौन है, कौन है', कहते हुए कुएं की तरफ आ रहे थे।

गंगी जब हांफते हुए घर पहुंची तो देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाए वही मैला–गंदा पानी पी रहा था।

टिप्पणी

5.3.5 कहानी की समीक्षा

आधुनिक युग में कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद को वही स्थान प्राप्त हुआ जो काव्य के क्षेत्र में कमोबेश जयशंकर प्रसाद को मिला। जिस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में पूरे एक गांव को बसाकर जीवंत कर दिया है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने अपनी कहानियों में भी जीवन को समूचा सशक्त और समर्थ ग्रहण करते हुए सच्चे मायनों में नयी कहानी का मार्ग बनाकर दिखा दिया है। प्रगतिशील जीवन को भी उन्होंने अपनी कहानियों का कथानक बनाया है। गांव और शहर के जीवन से प्रेमचंद जी भली–भांति परिचित थे। तभी तो उनकी कहानियां दोनों क्षेत्रों के वातावरण को अपने आप में संजोये दीखती हैं। प्रेमचंद जी की कहानियां यथार्थ के बहुत नजदीक रही हैं। उनकी कहानियां चलचित्र जैसी लगती हैं। पढ़ते हुए सब कुछ आंखों के सामने जीवंत होता–सा लगता है। परंपरागत कहानी कला की रचनागत सीमाओं, काल्पनिक चरित्रों को गढ़ना, इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मक शैली, नाटकीय अंत, अविश्वसनीय कथानक तथा मानवीय भावुकता को छोड़कर प्रेमचंद जी ने कहानी कला को समृद्ध और विकसित किया। पाठकों को प्रेमचंद जी ने 9 कहानी–संग्रह प्रदान किए हैं। उनमें से मानसरोवर शीर्षक के छः भागों में उनकी बेमिसाल कहानियां संकलित हैं।

जहां तक मुंशी जी की कहानी 'ठाकुर का कुआं' की बात है, तो कहानी की मूल–संवेदना, कहानी कला के तत्व, कथा वस्तु, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण भाषा, शैली और उद्देश्य की दृष्टि से भी यह कहानी उत्कृष्ट कहानियों की श्रेणी में आती है। इसके अंतर्गत पूरा वातावरण आंखों के सामने जीवंत हो उठता है। कहानी की मूल–संवेदना विचारणीय है। कथा वस्तु की दृष्टि से भी कहानी सशक्त बन पड़ी है। कहानी अपना उद्देश्य एक सीमा तक पूरा करती दृष्टिगोचर होती है। सारांश में कहें तो 'ठाकुर का कुआं' एक बोलती हुई कहानी है। वैसे भी प्रेमचंद जी की कहानियां उद्देश्यपूर्ण तो हैं ही। उनमें कुछ न कुछ बात और समस्या उठाकर, उसका निदान भी कहानी के पात्र करने में कोताही नहीं बरतते हैं।

कहानी की मूल संवेदना

प्रेमचंद की यह कहानी 'ठाकुर का कुआं' पूर्णरूपेण संवेदनशीलता पर आधारित है। एक बीमार व्यक्ति को दवा तो दूर की बात है, स्वच्छ पेय जल भी नसीब न हो, उसके लिए भी उसे तरसना पड़े, उसकी पत्नी को भटकना पड़े, यह बात संवेदनायुक्त तो है ही, साथ ही मानवता की मांग करती भी प्रतीत होती है। प्रेमचंद के समय में तो ज्यादातर इस प्रकार की घटनाएं गांवों में घटती ही रहती थीं। कारण, लोगों का दिमाग दकियानूसी स्तर पर, तेर–मेर पर अधिक सोचता–विचारता था। पहले गांव भर में एक या दो कुएं ही हुआ करते थे, वह भी उच्च वर्गीय लोगों के। वहां ऊंची जाति के लोग अथवा उन्हीं के कुटुम्बियों की स्त्रियां पानी भरा करती थीं। उस समय आम आदमी की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती थी। इस कहानी की मूल संवेदना में इसी ओर ध्यान खींचा गया है।

टिप्पणी

5.3.6 कहानी कला के तत्व और 'ठाकुर का कुआं'

कहानी कला के निम्न तत्व होते हैं– (क) कथावस्तु (ख) पात्र और चरित्र–चित्रण (ग) संवाद (घ) देशकाल और वातावरण (ड.) भाषा–शैली (च) उद्देश्य।

(क) **कथावस्तु–** यह कहानी कला का प्रमुख तत्व है। कहानी उसकी कथावस्तु पर ही विशेष रूप से टिकी होती है। 'ठाकुर का कुआं' कहानी की कथा वस्तु अभाव पर आधारित है। गंगी को अपने बीमार पति को शुद्ध और स्वच्छ जल लाकर देने के लिए क्या–क्या पापड़ नहीं बेलने पड़ते। इतना सब करके भी वह अपने बीमार पति को शुद्ध और स्वच्छ जल लाकर देने में सफल नहीं हो पाती। इस कहानी की कथावस्तु में दयनीयता और विवशता उभरकर आती है।

(ख) **पात्र और चरित्र–चित्रण–** इस कहानी का कैनवास अधिक बड़ा नहीं है। छोटी–सी समस्या को लेकर कहानी रची गई है। यह कहानी उस समय की तंगी का बयान करती प्रतीत होती है। इसमें मुख्य रूप से दो ही पात्र हैं–पति जोखू और उसकी पत्नी गंगा। दोनों ही पात्र निम्न वर्ग से हैं। दोनों के चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक तरीके से सहज रूप में किया गया है। बीमार पति को प्यास लगती है। पत्नी उसे जो जल देती है उसमें बदबू है। शिकायत करने पर वह कुएं से स्वच्छ पानी लाकर देने की बात कहती है और रात को पानी के जुगाड़ में कुएं पर जाती है, परंतु परिस्थितिवश उसे पानी नहीं मिलता। मजबूरन उसके पति को बदबूदार पानी पीकर ही अपना सूखा गला तर करने पर विवश होना पड़ता है। दोनों ही चरित्र मजबूरी से जूझते दिखलाए गए हैं। दोनों ही पात्रों का चरित्र–चित्रण काफी प्रभावी ढंग से किया गया है।

(ग) **संवाद–** प्रेमचंद की कहानियां संवादों के मामले में भी अग्रणी रही हैं। कहानी 'ठाकुर का कुआं' के संवाद भी मन को छूते हुए, दिल की गहराइयों में पहुंचकर खलबली पैदा करने में पूर्ण सक्षम हुए हैं। वैसे भी कहानी में संवाद विशेष महत्व रखते हैं। उनसे कथानक को गति मिलती है। रुचि पैदा होती है।

(घ) **देशकाल और वातावरण–** कहानी 'ठाकुर का कुआं' में घर की मुफलसी और रात्रि में कुएं के आस–पास का वातावरण प्रस्तुत करने में प्रेमचंद ने कमाल कर दिखाया है। उस समय संवाद नहीं, वहां का वातावरण ही बोलता नजर आता है। देशकाल और वातावरण कथा वस्तु पर पूरी तरह हावी हो जाता है। वस्तुतः उस समय कहानी की मांग भी यही होती है।

(ङ) **भाषा–शैली–** प्रेमचंद की इस कहानी की भाषा देसी आम भाषा है। वह भी गरीब–गुरबों और निम्न–वर्गों की भाषा है, लेकिन इस भाषा में भी बुद्धिमानी की बातें हुए बिना नहीं रहती। भाषा प्रभावी बन पड़ी है।

इस कहानी की शैली भी अपनी बात कहने में पूर्णरूपेण सक्षम रही है। शिल्प की दृष्टि से भी कहानी में कोई कमी नहीं अखरती।

(च) **उद्देश्य–** प्रत्येक कहानीकार किसी उद्देश्य को मस्तिष्क में रखकर ही कहानी रचता है और जहां तक बात है मुंशी प्रेमचंद की, तो उनकी तो प्रत्येक रचना ही उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ती है।

'ठाकुर का कुआं' में भी पात्र उद्देश्य को लेकर ही जूझते दिखाए गए हैं। यहां आकर कहानी आदर्श से हटकर यथार्थ पर आकर ठहर जाती है। मुंशी प्रेमचंद समस्या को उठाते हैं, उससे जूझते हैं और अपनी परेशानी को अपने पात्रों से उगलवा कर ही दम लेते हैं। उनके पात्र अपने उद्देश्य को लेकर संघर्ष करते ही रहते हैं। इस प्रकार वे कर्म का पाठ पढ़ाते से लगते हैं।

टिप्पणी

5.3.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

(1) "गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी से बीमारी बढ़ जाएगी। इतना जानती थी, परंतु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली–यह पानी कैसे पियोगे? न जाने कौन–सा जानवर मरा है? कुएं से मैं दूसरा पानी लाये देती हूं।"

संदर्भ

यह गद्यांश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' से लिया गया है।

प्रसंग

जोखू कई दिनों से बीमार है। उसका गला सूखा जा रहा है, इसलिए वह अपनी प्यास बुझाने के उद्देश्य से अपनी पत्नी गंगी से पानी मांगता है।

व्याख्या

पति जोखू के पानी मांगने पर भी जब गंगी ने खराब–बासी पानी न दिया, तब लेखक गंगी की बुद्धि के विषय में सोचते हुए कहता है–गंगी को खराब पानी न देने की तो समझ है। किंतु उसे इतनी अक्ल नहीं है कि बदबू वाले खराब पानी को कैसे शुद्ध किया जाता है? दूसरा ताजा पानी ठाकुर के कुएं से रात में लाने की तो हिम्मत और खतरा जुटा रही है। किंतु इतना नहीं कि इसी पानी को यदि उबालकर ठंडा करके दिया जाए तो पानी की बदबू जाती रहेगी।

विशेष

इन पंक्तियों में पति–पत्नी के बीच एक लगाव, अपनत्व और दायित्व झलकता है। इसमें पात्रों की विवशता और आवश्यकता दोनों एक साथ ही उभरकर आए हैं। भाषा सरल और व्यावहारिक बन पड़ी है।

(2) "दोनों पानी भरकर चली गईं तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गए थे। ठाकुर भी दरवाजा बंदकर अंदर आंगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ–बूझकर न गया हो। गंगी दबे पांव कुएं की जगत पर चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।"

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' से लिया गया है।

टिप्पणी

प्रसंग

इस गद्यांश में गंगी अपने बीमार पति जोखू के लिए शुद्ध और साफ पानी ठाकुर के कुएं से चोरी–छिपे लाने के लिए अंधेरा होने पर घर से निकलती है। वह जैसे–तैसे कुएं की जगत की आड़ में बैठकर मौके का इंतजार करने लगी।

व्याख्या

जैसे ही गंगी ने देखा कि दोनों स्त्रियां पानी भरकर चली गई हैं तो गंगी वृक्ष की छाया तले से निकलकर कुएं की जगत के पास आ गई। उसने देखा कि बेफिक्रे भी जा चुके थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद करके घर के भीतर जा रहे थे। ये सब देखकर गंगी का डर थोड़ा कम हुआ। उसने चैन की सांस ली। उसे मैदान साफ जो लगा था। उसे यह सब देखकर अपनी अब तक की सफलता पर आश्चर्यजनक खुशी हुई। अब उसने फिर से हिम्मत जुटाई और कुएं की जगत पर जा चढ़ी और घड़े में फंदा डालकर कुएं से ताजा, शुद्ध और साफ पानी निकालने की तैयारी में जुट गई।

विशेष

इसमें निम्न वर्ग को गांव के कुएं से एक घड़ा पानी भरने के लिए कितनी जद्दोजहद करनी पड़ती है, यह देखने वाली बात है।

इस गद्यांश में ऊंच–नीच और छोटे–बड़े का अंतर स्पष्ट दिखलाया गया है और साथ ही आतंक और भय का वातावरण भी चित्रित किया गया है।

(3) "गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा–हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक–से–एक छंटे हैं। चोरी ये करें, जाल–फरेब ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गडरिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारह मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस–किस बात में हमसे ऊंचे हैं, हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे। कभी गांव में आ जाती हूं, तो रसभरी आंख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊंचे हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' से ली गई हैं।

प्रसंग

जोखू की पत्नी गंगी शुद्ध पानी लेने के लिए रात को अंधेरे में जब ठाकुर के कुएं के पास छिपती–छिपाती आती है, तब वह वहां एकत्र हुए बेफिक्रों की इधर–उधर की बातें सुनती है, तब उसके मन में भी ऊंच–नीच को लेकर खलबली मचने लगती है, तो वह भी अपनी भड़ास निकालने लगती है–

टिप्पणी

व्याख्या

इन पंक्तियों में गंगी का विद्रोही मन उन रिवाजों और पाबंदियों को लेकर तड़प उठता है, जो समाज के उन ठेकेदारों ने अपने बूते पर बना रखे हैं, क्योंकि वे आर्थिक दृष्टि और जाति–बिरादरी की दृष्टि से मजबूत स्थिति में हैं। वरना तो चारित्रिक दृष्टि से प्रायः सभी अपनी धोती में नंगे ही हैं। इसी नंगई को गंगी खूब जानती है, किंतु कमजोर स्थिति में होने के कारण खुल्लम–खुल्ला कुछ बोल नहीं सकती। वरना तो सबकी पोल–पट्टी एक मिनट में खोल कर रखने का पता रखती है। अब उसमें चाहे चोरी की बात हो, जाल–फरेबी की चाल हो, या फिर झूठे–सच्चे मुकदमों का ही मामला क्यों न हो। वह तो पंडित के घर में पूरे साल जुआ चलते रहने की बात क्या, साहू जी द्वारा घी में तेल मिलाकर बेचने तक की करतूत को भी जानती है। बिना पैसे दिये काम करा लेने वालों के नाम भी उसे पता हैं और तो और उसे देखकर कितनों के मन मचलते हैं–यह भी वह अच्छी तरह समझती है।... और फिर भी इन ऊंचे लोगों की धौंस कि हम ऊंचे हैं। इस धौंस के बूते पर ही ये ऊंचे होने का तमगा गले में बांधे फिरते हैं और हम बस चुप रह जाते हैं, वरना तो ये सब हमारे ठेंगे पर।

विशेष

इस गद्यांश में कमजोर लोगों के दिल से निकली 'हाय' और 'भड़ास' का चित्रण बड़े ही प्रभावी ढंग से किया गया है। भाषा और शैली यथार्थ के बहुत पास की है।

5.4 मलबे का मालिक – मोहन राकेश

मलबे का मालिक कहानी के लेखक मोहन राकेश जी का जीवन परिचय इस प्रकार है–

5.4.1 लेखक परिचय

मोहन राकेश का जन्म दिनांक 8 जनवरी, सन् 1925 को हुआ था। सबसे पहले उन्होंने कहानी लिखी और फिर उपन्यास भी लिखे। उसके बाद उन्होंने नाटक लिखने भी शुरू कर दिए। वैसे वे सशक्त निबंधकार और अनुवादक भी थे। उनके लेखन की क्षमता, विविधता और समग्रता अपने समय, समाज, परिवेश और इनकी मानसिकता को बड़ी प्रामाणिकता से रेखांकित करती रही है। इनके नाटक कम ही हैं, किंतु उनमें 'आधे–अधूरे' नाटक ने उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर स्थान दिलाया।

5.4.2 मलबे का मालिक : मूल पाठ

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था। उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई–न–कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आंखें इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा–खासा आकर्षण–केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक–दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे... देख–फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह

'अपनी प्रगति जांचिए'

8. 'ठाकुर का कुआं' कहानी में कितने मुख्य पात्र हैं?
9. प्रेमचंद शुरू में किस भाषा में लिखते थे?
10. प्रेमचंद जी की प्रथम रचना कौन–सी है?
11. प्रेमचंद जी ने लगभग कुल कितनी रचनाएं रची हैं?
12. प्रेमचंद ने शुरू–शुरू में किस नाम से लेखन किया?
13. विद्वानों और पाठकों ने लेखन के आधार पर मुंशी प्रेमचंद को क्या नाम दिया?
14. ठाकुर और साहू किस वर्ग से थे?
15. गंगी के पति का क्या नाम था?
16. गांव में कितने कुएं थे?

टिप्पणी

गयी हैं! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहां अब वह पानवाला बैठा है।... यह नमक मंडी देख लो, खान साहब! यहां की एक–एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस...!

बहुत दिनों बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियां और लाल तुरकी टोपियां नजर आ रही थीं। लाहौर से आये मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता– वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सबके–सब मकान जल गये थे?... यहां हक़ीम आसिफ़अली की दुकान थी न? अब यहां एक मोची ने कब्जाकर रखा है?

और कहीं–कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते– वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया!

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उस तरफ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज्यादातर वे आगंतुकों से ऐसे–ऐसे सवाल पूछते कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहालमीगेट का बाजार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई खास तब्दीली नहीं आयी? वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है?... कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?... इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हजारों लोगों का सगा–संबंधी है, जिसके हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर–भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।

बाजार बांसां अमृतसर का एक उजड़ा–सा बाजार है, जहां विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहां ज्यादातर बांसों और शहतीरों की ही दुकानें थीं जो सबकी सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाजार बांसां की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाजार बांसां के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गयी थी, पर उसमें मुसलमानों के एक–एक घर के साथ हिंदुओं के भी चार–चार, छः–छः घर जलकर राख हो गए थे। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह–जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच–बीच में मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाजार बांसां में उस दिन भी चहल–पहल नहीं थी क्योंकि उस बाजार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गए थे, और जो बचकर चले गए थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला–पतला बुड्ढ़ा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाजार में आया और वहां की नयी

टिप्पणी

और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैयां में पड़ गया। बायीं तरफ जानेवाली गली के पास पहुंचकर उसके पैर अंदर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहां बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी–कीड़ा खेल रहे थे और कुछ फ़ासले पर दो स्त्रियां ऊंची आवाज में चीखती हुईं एक–दूसरी को गालियां दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं!" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिए खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन–चार पैबंद लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, "इधर आ, बेटे! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ!" और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह–सत्रह साल की लड़की गली के अंदर से दौड़ती हुई आयी और बच्चे को बांह से पकड़कर गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ–साथ अब अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बांहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुंह चुमती हुई बोली, "चुप कर, खसम–खाने, रोएगा तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जाएगा! कह रही हूं, चुप कर!"

बुड्ढ़े मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊंचे–ऊंचे शहतीर रखे रहते थे, वहां अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली की तार पर दो मोटी–मोटी चीलें बिल्कुल जड़–सी बैठी थीं। बिजली के खम्भे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते जर्रों को देखता रहा। फिर उसके मुंह से निकला, "या मालिक!"

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता गली की तरफ आया। बुड्ढे को वहां खड़े देखकर उसने पूछा, "कहिए, मियांजी, यहां किसलिए खड़े हैं?"

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बांहों में हल्की–सी कंपकंपी महसूस हुई। उसने होंठों पर जबान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी है न?"

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बंद करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे मालूम है?"

"साढ़े सात साल पहले तू इतना–सा था।" कहकर बुड्ढ़े ने मुस्कराने की कोशिश की।

"आप आज पाकिस्तान से आये हैं?"

"हां! पहले हम इसी गली में रहते थे," बुड्ढ़े ने कहा, "मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तक़सीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनवाया था।"

टिप्पणी

"ओ, गनी मियां!" मनोरी ने पहचानकर कहा।

"हां, बेटे मैं तुम लोगों का गनी मियां हूं! चिराग और उसके बीवी–बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एक बार मकान की ही सूरत देख लूं!" बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और अपने आंसुओं को बहने से रोक लिया।

"तुम तो शायद काफी पहले यहां से चले गए थे," मनोरी के स्वर में संवेदना भर आयी।

"हां, बेटे यह मेरी बदबख्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया था। यहां रहता, तो उसके साथ मैं भी..." कहते हुए उसे एहसास हो आया कि यह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुंह में रोक लिया पर आंखों में आये आंसुओं को नीचे बह जाने दिया।

"छोड़ो गनी मियां, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है?" मनोरी ने गनी की बांह अपने हाथ में ले ली। "चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूं!"

गली में ख़बर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था... उसकी बहन वक्त पर उसे पकड़ लायी, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर मिलते ही जो स्त्रियां गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे पीढ़े उठाकर घरों के अंदर चली गईं। गली में खेलते बच्चों को भी उन्होंने पुकार–पुकार कर घरों के अंदर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाखिल हुआ, तो गली में सिर्फ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएं पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हां, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झांक रहे थे। मनोरी के साथ गनी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयां शुरू हो गईं। दाढ़ी के सब बाल सफ़ेद हो जाने के बावजूद चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचानने में लोगों को दिक्कत नहीं हुई।

"वह था तुम्हारा मकान," मनोरी ने दूर से एक मलबे की तरफ इशारा किया। गनी पल–भर ठिठककर फटी–फटी आंखों से उस तरफ देखता रहा। चिराग और उसके बीवी–बच्चों की मौत को वह काफी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नये मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से और खुश्क हो गयी और घुटने भी ज्यादा कांपने लगे।

"यह मलबा?" उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बांह को थोड़ा और सहारा देकर जड़–से स्वर में उत्तर दिया, "तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुंच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी जिसमें से जहां–तहां टूटी और जली हुई ईंटें बाहर झांक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाला जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ दो जली हुई अलमारियां थीं जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की–हल्की तह उभर आयी थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, "यह बाकी रह गया है, यह?" और

टिप्पणी

उसके घुटने जैसे जवाब दे गए और वह वहीं जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण–भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा सटा और उसके मुंह से बिलखने की–सी आवाज निकली, "हाय, ओए चिरागदीना!"

जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर आसपास बिखर गए। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे थे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छः–आठ इंच दूर नाली के साथ–साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर–उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख ढूंढ़ता हुआ जरा–सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो–एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता।

खिड़कियों से झांकनेवाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज्यादा हो गयी थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ–न–कुछ जरूर होगा... चिराग़दीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह सारी घटना आज अपने–आप खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा कि शाम के वक्त चिराग ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया– कहा कि वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। वहां के हिंदुओं पर ही उसका काफी दबदबा था– चिराग तो खैर मुसलमान था। चिराग हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियां, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों से नीचे झांकने लगीं। चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज के कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, "रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय, कोई मुझे बचाओ!" ऊपर से जुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश स्वर में चिल्लाईं और चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ दौड़ीं। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दोजहद करती बांहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जांघों को अपने घुटनों में दबाए हुए बोला, "चीखता क्यों है, भैण के.. तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूं, ले पाकिस्तान!" और जब तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुंचीं, चिराग को पाकिस्तान मिल चुका था।

आसपास के घरों की खिड़कियां तब बंद हो गयी थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पायी गईं।

दो दिन चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खायी थी कि वह आग लगाने वाले को जिन्दा जमीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नजर रखकर ही उसने चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध

टिप्पणी

करने के लिए हवन–सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगानेवाले का तब से आज तक पता नहीं चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहां न वह किसी को गाय–भैंस बांधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इजाजत के कोई एक ईंट भी नहीं निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी जरूर किसी न किसी तरह गनी तक पहुंच जाएगी... जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाखूनों से खोद–खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजे के चौखट को बांह में लिये हुए रो रहा था, "बोल, चिरागदीना, बोल! तू कहां चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों छोड़ दिया, ओएऽऽ!"

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया जिससे उसे खांसी आ गयी और उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ देखकर उसकी छाती से धौंकनी की–सी आवाज निकली और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

"गनी अपने मलबे पर बैठा है," उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

"मलबा उसका कैसे है, मलबा हमारा है।" पहलवान ने झाग से घरघराई आवाज में कहा।

"मगर वह वहां बैठा है," लच्छे ने आंखों में एक रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

"बैठा है, बैठा रहे। तू चिलम ला!" रक्खे की टांगें थोड़ी फैल गईं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेर लिया।

"मनोरी ने अगर उसे कुछ बता–वता दिया तो...?" लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण ढंग से कहा।

"मनोरी की क्या शामत आयी है?"

लच्छा चला गया।

कुएं पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों को उठा–उठाकर अपने हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर चिलम उसके हाथ में दी, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, "और तो किसी से गनी की बात नहीं हुई?"

"नहीं।"

"ले," और उसने खांसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। मनोरी गनी की बांह पकड़े मलबे की तरफ से आ रहा था। लच्छा उकडूं होकर चिलम के लंबे–लंबे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की तरफ लगी रहतीं।

टिप्पणी

मनोरी गनी की बांह थामे उससे एक कदम आगे चल रहा था– जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुएं के पास से बिना रक्खे को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएं के पास पहुंचते न पहुंचते उसकी दोनों बांहें फैल गईं और उसने कहा, "रक्खे पहलवान!"

रक्खे ने गरदन उठाकर और आंखें जरा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट–सी घरघराहट हुई, पर वह बोला नहीं।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?" गनी ने बांहें नीची करके कहा, "मैं गनी हूं, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप!"

पहलवान ने ऊपर से नीचे तक उसका जायजा लिया। अब्दुल गनी की आंखों में उसे देखकर एक चमक–सी आ गयी थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियां भी कुछ फैल गयी थीं। रक्खे का निचला होंठ फड़का। फिर उसकी छाती से भारी–सा स्वर निकला, "सुना, गनिया!"

गनी की बांहें फिर फैलने को हुईं, पर पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गईं। वह पीपल का सहारा लेकर कुएं की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयां तेज हो गईं कि अब दोनों आमने–सामने आ गए हैं, तो बात जरूर खुलेगी... फिर हो सकता है दोनों में गाली–गलौज भी हो...। अब रक्खा गनी को हाथ नहीं लगा सकता। अब वे दिन नहीं रहे।... बड़ा मलबे का मालिक बनता था!... असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है। मरदूद किसी को वहां गाय का खूंटा तक नहीं लगाने देता!.... मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बता क्यों नहीं दिया कि रक्खे ने ही चिराग और उसके बीवी–बच्चों को मारा है!... रक्खा आदमी नहीं सांड है! दिन–भर सांड की तरह गली में घूमता है!... गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है! दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गए हैं।

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, "देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है! भरा–पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां यह मिट्टी देखने आया हूं! बसे घर की आज यही निशानी रह गयी है! तू सच पूछे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को मन नहीं करता!" और उसकी आंखें छलछला आयीं।

पहलवान ने अपनी टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी। वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?" गनी किसी तरह अपने आंसू रोककर बोला, "तुम लोग उसके पास थे। सब में भाई–भाई की–सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी।"

"ऐसे ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में एक अस्वाभाविक–सी गूंज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गए थे। मूंछों के नीचे से पसीना उसके होंठ पर आ रहा था। उसे माथे पर किसी चीज का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

टिप्पणी

"पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं?" उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुंह में खींचकर गली में थूक दिया।

"क्या हाल बहाऊं, रक्खे," गनी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला, "मेरा हाल तो मेरा खुदा ही जानता है। चिराग वहां साथ होता, तो और बात थी।.. मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह जिद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊंगा– यह अपनी गली है, यहां कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो, पर बाहर से तो खतरा आ सकता है। मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी!... रक्खे उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आयी, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जांघ के जोड़ पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज उसकी सांस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुओं में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच–बीच में नीली फुलझड़ियां–सी ऊपर से उतरतीं और तैरती हुई उसकी आंखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी जबान और होंठों के बीच एक फासला–सा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से होंठों के कोनों को साफ किया। साथ ही उसके मुंह से निकला, "हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू ही है।"

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आंखों के गिर्द दायरे गहरे हो गए हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना था हो गया रक्खिआ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ़ करे। मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे!" और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा रक्खे, पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम–सी आवाज निकली। अंगोछा लिए हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी हसरत–भरी नजर से आसपास देखता हुआ धीरे–धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयां चलती रहीं– कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर जरूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था। रक्खा अब किस मुंह से लोगों को... मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा!? बेचारी जुबैदा! कितनी अच्छी थी वह! रक्खे मरदूद का घर... न घाट, इसे किसी की मां–बहन का लिहाज था।

थोड़ी देर में स्त्रियां घरों से गली में उतर आयीं। बच्चे गली में गुल्ली–डंडा खेलने लगे। दो बारह–तेरह साल की लड़कियां किसी बात पर एक–दूसरी से गुत्थम–गुत्था हो गईं।

टिप्पणी

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठ खंखारता और चिलम फूंकता रहा। कई लोगों ने वहां गुजरते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था?"

"हां, आया था," रक्खे ने हार बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज की तरह गली के बाहर बायीं तरफ की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज वह रास्ते से गुजरने वाले परिचित लोगों को आवाज दे–देकर पास बुलाता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहां बैठा लच्छे को अपनी वैष्नो देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पंडित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे–देकर हटाने लगा "तत–तत–तत... तत... तत!!"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहां शाम से ही अंधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज करता बह रहा था। रात की खामोशी को काटती हुई कई तरह की हल्की–हल्की आवाजें मलबे की मिट्टी में से सुनाई दे रही थीं– च्यु–च्यु–च्यु... चिक्–चिक्–चिक्... किर्र्र्र्रीरीरीरी–चिर्र्र्र्र्। एक भटका हुआ कौआ न जाने कहां से उड़कर उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकड़ी के कई रेशे इधर–उधर छितरा गए। कौए के वहां बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर–ज़ोर से भौंकने लगा–वउ–अउ–वउ! कौआ कुछ देर सहमा–सा चौखट पर बैठा रहा फिर पंख फड़फड़ाता कुएं के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ मुंह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला, "दुर्–दुर्–दुर्" मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा–वउ–वउ–वउ–वउ–वउ!

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान कुत्ते को मां की गाली देकर वहां से उठ खड़ा हुआ और धीरे–धीरे जाकर कुएं की सिल पर लेट गया। उसके वहां से हटते ही कुत्ता गली में उतर आया और कुएं की तरफ मुंह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता–फिरता नजर नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहां कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

5.4.3 मोहन राकेश की कहानी कला की विशेषताएं

मोहन राकेश की यह कहानी, कहानी कला की सभी विशेषताओं को अपने–आप में समाहित किए हुए है। यह प्रवाहमयी और सशक्त कहानी बन पड़ी है। कहानी कला की विवेचना करने से यह बात और भी सुस्पष्ट हो जाती है।

टिप्पणी

कथानक

मोहन राकेश की यह कहानी एक सशक्त कथानक अपने–आप में समेटे हुए है तथा व्यापकता लिए हुए है। इस कहानी में देशीय, समाज की परिस्थिति की प्रस्तुति बड़ी ही सहजता से की गई है। वैसे भी मोहन राकेश समाज का चित्रण करने में अपने समकालीनों में अग्रणी रहे हैं। इस कहानी का पूरा कथानक आस और दृढ़ विश्वास पर टिका है।

चरित्र–चित्रण

मोहन राकेश की कहानियों में चरित्र–चित्रण एक विशेष विशेषता रखता है। वे छोटे–छोटे चरित्र को भी अपनी लेखनी से जीवंतता प्रदान करते दिखते हैं। मोहन राकेश की यह कहानी भी चरित्र प्रधान बन पड़ी है। इस कहानी का मुख्य पात्र गनी मियां अपना सब कुछ खोकर भी दूसरों को दुआएं देता हुआ लाहौर लौट जाता है। वह मलगुब्बे में है। उसे मलगुब्बे में रखा जाता है। उसके साथ उसका विश्वास पात्र बना मनोरी वैसे तो नवयुवक है लेकिन वह भी गनी मियां से दुराव–छिपाव करता है। तभी तो वह रक्खा पहलवान से उसे छिपाना चाहता है, लेकिन फिर भी गनी मियां की निगाह उस पर पड़ ही जाती है। गनी मियां, मनोरी और रक्खा पहलवान के चरित्र काफी कुछ कहते–सुनते हैं। ये तीनों ही चरित्र बोलते चरित्र हैं। इनका चित्रण बड़ी ही चतुराई से गढ़ा गया है, इसलिए कहा जा सकता है कि चरित्र–चित्रण की दृष्टि से यह कहानी पूर्णतः सफल है।

कथोपकथन

इस कहानी का कथोपकथन वास्तविकता के बहुत समीप है। इसमें यथार्थ उभरा ही रहता है। कथोपकथन में तारतम्यता और जिज्ञासा बनी ही रहती है।

देशकाल, वातावरण योजना

मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में देशकाल और वातावरण का चित्रण बड़ी ही कौशलता से किया है। उनके सभी वर्णन सजीव और कथानक के विकास में सहायक होते हैं। घटनाओं के वर्णन में, घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण में, तथा पात्रों के चरित्र को प्रस्तुत करने में मोहन राकेश को महारथ हासिल है। उनका वर्णन पूर्णरूपेण सजीव होता है। कथा का रूप बिल्कुल जीते–जागते चित्र के समान खिंच जाता है। उनकी कहानियां चलचित्र के समान लगती हैं।

भाषा–शैली

मोहन राकेश के चरित्रों की भाषा शैली सहज, सरल तथा चरित्रों के अनुरूप ही होती है, इसलिए कहा जा सकता है कि कहानी कला की उत्कृष्टता का अधिकांश श्रेय उनकी भाषा को ही जाता है। उनकी भाषा हिंदुस्तानी भाषा अधिक होती है अर्थात हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी मिश्रित अर्थात आम बोलचाल की भाषा है। उनकी भाषा कृत्रिमता से कोसों दूर रहती है।

मोहन राकेश की कहानियों के लेखन की शैली भी अनेक रूपों में मिलती है, यथा– वर्णनात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय और हास्य–व्यंग्य प्रधान भी। शिल्प–विधान की दृष्टि से भी ऐतिहासिक, नाटकीय और आत्म चरित्रात्मक शिल्प उनकी कहानियों में रहता है।

टिप्पणी

उद्देश्य

मोहन राकेश का लेखन उद्देश्यपूर्ण होता है। मनोरंजन और हास्य–व्यंग्य का पुट भी उसमें विद्यमान रहता है। उनकी कहानियों का मूलाधर परिस्थितियों के बीच मानव चरित्र की कहानियों को भी जस–का–तस दिखाना रहता है। उनकी कहानियां बनावट से काफी दूर रहती हैं। इस दृष्टि से वे यथार्थवादी लेखक कहे जा सकते हैं।

हिंदी कथा–साहित्य में स्थान

हिंदी कथा–साहित्य में मोहन राकेश ने अपना अलग और विशिष्ट स्थान बनाया है। उनकी रचनाएं वैसे तो कम हैं, लेकिन जितनी भी हैं, वे सब अपने–आप में मील का पत्थर ही सिद्ध होती हैं।

5.4.4 कहानी का सार

'मलबे का मालिक' मोहन राकेश की बोलती हुई कहानी है। इसमें पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बंटवारे के बाद को कथानक बनाया गया है। यह एक मर्मस्पर्शी और हृदयस्पर्शी कहानी है। कहानी शुरू से आखिर तक पूरे दम–खम के साथ अपना अस्तित्व बनाए रखती है।

कहानी का सार कुछ इस प्रकार है–देश के बंटवारे के साढ़े सात साल के बाद कुछ लोग लाहौर से अमृतसर अपनी पुरानी यादें ताजाकरने आए हैं। वैसे वे लाहौर से अमृतसर हॉकी का मैच देखने का बहाना करके आए हैं। अमृतसर के उन बाजार, घर और गली–मुहल्ले को देखने का उन्हें ज्यादा चाव था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराए हो गए थे। अमृतसर में मुसलमानों की कोई न कोई टोली अकसर ऐसे आती ही रहती थी। अब उसे यह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा–खासा आकर्षण का केंद्र लगता था।

तंग बाजारों से गुजरते हुए वे एक–दूसरे को पुरानी चीजों की यादें दिला रहे थे.. ..... देख, फतहदीना! मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें कितनी कम रह गई हैं। उस नुक्कड़ पर सुक्खी भटियारिन की भट्ठी थी जहां अब वह पान वाला बैठा है। यह नमक मंडी देख लो खान साहब! यहां की एक–एक ललाइन वह नमकीन होती थी कि बस.....!

आज बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियां और लाल तुर्की टोपियां दिखलायी दे रही थीं। लाहौर से आए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें बंटवारे के समय मजबूरन अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आए इन परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता। वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब के सब मकान जल गए थे? यहां... हकीम आसिफ अली की दुकान थी न...? अब यहां एक मोची ने कब्जाकर रखा है और कहीं–कहीं ऐसे भी वाक्य सुनने में आते–वली, यह मस्जिद ज्यों–की–त्यों खड़ी है! इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बनाया।

जिस राह से भी मुसलमानों की टोली गुजरती वहीं शहर के लोग देखने लगते। कुछ लोग तो इन टोलियों को देख भय के मारे रास्ते ही बदल देते थे। कुछ दूर ही से

टिप्पणी

बचकर निकलने लगते थे। कुछ लोग लाहौर के हालचाल इन लोगों से बड़ी ही उत्सुकता से पूछते थे और भी सवाल पूछते। मसलन, अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहनमी गेट का बाजार पूरी तरह नया बना दिया गया है। कृष्ण नगर में कोई बदलाव नहीं आया। वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत की रकम से बना है। कहते हैं पाकिस्तान में अब बुर्का उड़ गया है। ये सब सवाल आत्मीयता भरे होते थे। ऐसे में लगता था कि लाहौर एक शहर नहीं बल्कि इन सबका कोई खास सगा–संबंधी है जिसके हालचाल जानने के लिए ये सब इतने उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर भर के मेहमान थे जिनसे बातचीत करके और मिलकर लोगों की पुरानी यादें ताजा हो रही थीं।

अमृतसर का बाजार बंसां उजड़ा हुआ–सा बाजार रह गया है। यहां विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। यहां ज्यादातर दुकानें बांसों और शहतीरों की ही थीं जो सब एक अग्निकांड में भस्म हो गई थीं। तब इन दुकानों के साथ–साथ जान–माल की भी खूब हानि हुई थी जिसके अवशेष अब भी यहां दिखलाई दे रहे थे। एक बार तो इस लपेट में पूरे अमृतसर को ही निगल जाने का खतरा बन गया था। उस वक्त हिंदुओं और मुसलमानों के घर भी इस आग की लपेट में आ गए थे। अब साढ़े सात साल के बाद कुछ घरों के स्थानों पर नई इमारतें खड़ी हो गई हैं। इन इमारतों के बीच कुछ मलबों के ढेर अजीब–सा वातावरण पैदा करते थे। अब यह बाजार बांसां उजाड़ सा हो गया था। उस दिन भी उसमें चहल–पहल नहीं थी। उस बाजार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गए थे और जो बचकर चले गए थे उनमें से शायद किसी में भी फिर से लौटकर आने की हिम्मत नहीं रह गई थी। परंतु उस दिन एक बुड्ढ़ा दुबला–पतला सा मुसलमान ही उस बाजार में अपनी पुरानी यादें ताजाकरने आया था। बायीं तरफ जाने वाली गली के पास पहुंचकर उसके पैर अंदर जाने को मुड़े परंतु फिर हिचकिचाकर वह वहीं रुक गया। वह कुछ भ्रम की सी स्थिति में पड़ गया था। वास्तव में उसे यह यकीन नहीं हो पा रहा था कि क्या वह वही गली है जिसमें उसे जाना है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे खेल रहे थे। एक तरफ दो औरतें आपस में एक–दूसरे को गालियां दे रही थीं।

बुड्ढ़े मुसलमान ने अपने–आप से कहा–"सब कुछ बदल गया मगर बोलियां नहीं बदलीं।" उसने एक बच्चे को रोता देखा तो प्यार से उसे बुलाया लेकिन तभी उसकी बहन उसे जबरन खींचती हुई वहां से ले गई। कहने लगी–'रो मत। वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जाएगा।'

तभी उसने एक नवयुवक को देखा। उसने–उसे नाम लेकर पुकारा। वह नवयुवक रुका। उसने भी बड़े मियां को गौर से देखा तो पहचान लिया। बोला–"आप आज पाकिस्तान से आए हैं?"

"हां, पहले हम इसी गली में रहते थे। मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों के कपड़े सिला करता था। तकसीम से छः महीने पहले ही हमने अपना नया मकान बनवाया था।"

"ओ, गनी मियां!" मनोरी ने पहचान कर कहा।

टिप्पणी

तब वह बोला–"मुझे मेरा बेटा चिराग और उसके बीवी–बच्चे तो अब मिल नहीं सकते। सोचा मकान की सूरत ही देख लूं।" फिर उसने बतलाया–"मैं पहले यहां से निकलकर चला गया था। यहां रहता तो उनके साथ मैं भी.....।" कहते हुए गनी मियां भावुक हो गए।

मनोरी उन्हें उनका घर दिखाने चल दिया। गनी मियां ने घर के मलबे का ढेर देखा तो वे उदास हो गए। उस मलबे के ढेर पर भी रक्खा पहलवान की गिद्ध दृष्टि जमी थी। वह उसे अपना ही समझ बैठा था क्योंकि उसका दबदबा जो था। सब उससे डरते थे। फिर सब यह भी जानते थे कि रक्खा पहलवान ने ही गनी मियां के बेटे चिराग, उसकी बीवी और दोनों लड़कियों को मौत के घाट उतारा था। यह बात मनोरी को भी पता थीं। लेकिन वह यह बात गनी मियां को नहीं बतलाना चाहता था।

अपने मकान को मलबे के ढेर में तब्दील हुए देखकर जब गनी मियां मनोरी के साथ लौट रहा था तो रक्खा पहलवान से वह उसको मिलवाना नहीं चाहता था, चूंकि बवाल होने का अंदेशा था। परंतु गनी मियां की निगाह कुएं पर, पीपल के नीचे बैठे रक्खा पहलवान पर पड़ी तो उसने उनकी कुशल क्षेम पूछी, लेकिन पहलवान के मन में तो चोर था। इसलिए वह उससे कतराता रहा। फिर भी उसने गनी मियां का हाल पूछा तो गनी मियां बोले–"क्या बताऊं रक्खे! मेरा हाल तो मेरा खुदा ही जानता है। चिराग वहां साथ होता तो और बात थी। मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल, पर वह ज़िद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊंगा। यह अपनी गली है। यहां कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली के बाहर तो खतरा हो सकता है। मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी।" फिर गनी आगे बोला–"रक्खे! उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आयी तो रक्खे के रोके भी न रुकी।"

गनी मियां ने देखा कि रक्खे पहलवान का शरीर बेकाबू हुआ जा रहा था। उसे अपनी जुबान और होंठों के बीच एक फासला–सा महसूस हो रहा था। उसने होंठों के कोनों को अंगोछे से साफ किया। साथ ही उसके मुंह से निकला, "हे प्रभु! तू ही है, तू ही है, तू ही है!"

गनी मियां चलते हुए रक्खे के कंधे पर हाथ रखकर बोले–"जो होना था, हो गया रक्खे। उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है। खुदा नेक की नेकी बनाए रखे और बद की बदी माफ करे। मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया। अल्लाह! तुम्हें सेहतमंद रखे।" फिर चलते हुए बोले–"अच्छा! रक्खे पहलवान।"

उन दोनों की बातों को देखकर चेहमेगोइयां चलती रहीं कि मनोरी ने गली से निकलकर गनी को सब कुछ हकीकत बतला दी होगी। फिर वे बोलीं–रक्खा अब किस मुंह से लोगों को.....मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा? बेचारी जुबैदा! कितनी अच्छी थी वह। रक्खे मरदूद का घर.....न घाट, इसे किसी की मां–बहन का लिहाज था?

थोड़ी देर में गली का माहौल सामान्य होने लगा। कहानी के अंत में रक्खे और कुत्ते की तुलना भी बहुत कुछ कहती प्रतीत होती है।

टिप्पणी

मोहन राकेश की यह कहानी बोलने से भी ज्यादा वह सब कुछ बोलती है जो इस कहानी में उससे नहीं बोला गया। कहानी प्रत्येक दृष्टि से उत्तम है।

5.4.5 कहानी की समीक्षा

मोहन राकेश ने आधुनिकता की प्रक्रिया और उसके प्रश्न चिह्नों को समष्टि–चिंतन के धरातल पर उठाकर युग–सत्य के प्रति अपनी सतर्कता को उजागर किया है। उनके लेखन में सच्चाई और गहराई स्पष्ट दिखलाई देती है। उनके कथानक विश्वसनीय और जमीनी होते हैं। अपने कहानी–लेखन से भी मोहन राकेश ने कहानी कला को समृद्ध और विकसित किया है। लेखक ने तथा उनके समकालीन दूसरे लेखकों ने जिस कहानी को रचा, उसका स्वरूप अपनी पूर्ववर्ती कहानियों से काफी अलग–थलग था। सामाजिक चेतना, सामाजिक समस्याओं के चित्रण, देश प्रेम की भावना एवं आदर्शप्रियता के स्थान पर इनकी कहानियों का मूल स्वर हुआ–व्यक्तिगत समस्याएं, कुंठाएं, स्त्री–पुरुष संबंधों के विभिन्न स्वरूप तथा स्तर, उनमें पड़ी दरारें, चलती आ रहीं सामाजिक मान्यताओं का खंडन एवं उनके स्थान पर व्यक्ति–स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा, यौन संबंधों में दुराव–छिपाव के स्थान पर खुलेपन का आग्रह आदि–आदि। इन्हें नयी कहानी का नाम भी दिया जा सकता है।

कालांतर में इस प्रकार की नई कहानी के सर्वाधिक चर्चित कहानीकार हुए–राजेंद्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर। इस समय के अधिकांश लेखक साहित्य जगत की विभिन्न विधाओं में नयापन लाने की कोशिश में लगे दिखाई दिए। मोहन राकेश ने सन् 1944 से सन् 1972 के बीच कुल 66 कहानियां लिखीं, जिनमें से 12 उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो पाई थीं। उन्होंने अपनी कहानियों में मध्यमवर्गीय समाज को, उसकी विभिन्न स्थितियों को ही अधिक प्रस्तुत किया है। कारण, वे स्वयं भी मध्यवर्ग से ही थे। यह बात 'मलबे का मालिक' कहानी में भी देखी जा सकती है।

कहानी की मूल संवेदना

मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' यथार्थ और वास्तविकता के अत्यंत समीप की कहानी है। इसके सभी पात्र हमारे ही समाज के जीवंत पात्र हैं।

5.4.6 कहानी कला के तत्व और 'मलबे का मालिक'

इस कहानी में कहानी के अधिकांश सभी तत्व मौजूद हैं। जैसे–कथावस्तु, पात्र और चरित्र–चित्रण, संवाद, देशकाल और वातावरण, भाषा–शैली और उद्देश्य।

5.4.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

(1) "बुड्ढ़े मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था वह उसने वापिस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊंचे–ऊंचे शहतीर रखे

टिप्पणी

रहते थे, वहां अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी–मोटी चीलें बिल्कुल जड़–सी बैठी थीं। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह थोड़ी देर तक धूप में उड़ते जर्रों को देखता रहा, फिर उसके मुंह से निकला, "या मालिक!"

संदर्भ

यह गद्यांश मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' से लिया गया है।

प्रसंग

बूढ़े मुसलमान ने रोते हुए बच्चे को देखकर चुप कराने के लिए उसे अपने पास बुलाकर जब पैसा देना चाहा तभी एक सोलह–सत्रह साल की लड़की गली के अंदर से दौड़ती हुई आई। उसने बच्चे को झट से अपनी बांहों में भरा और गली के अंदर ले जाती हुई बोली–'चुपकर खसम–खाने! रोएगा, तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जाएगा। कह रही हूं, चुपकर!'

व्याख्या

बूढ़े मुसलमान ने जो पैसा जेब से निकाला था, वह उसने फिर जेब के हवालेकर दिया और फिर वहां के बदले हुए वातावरण का जायजा लेने लगा। साढ़े सात साल पहले जब उसे बंटवारे की भनक पड़ी तब वह लाहौर चला गया था। अब इतने मुद्दत बाद वह अपने नये मकान और वहां के वातावरण को देखने की हसरत लिए अमृतसर आया था लेकिन यहां तो अब सब कुछ उसे बदला–बदला–सा लगा मगर बोलियां अभी भी वही थीं। ये बदलाव देखकर उसने अपने मालिक (खुदा) को याद किया।

विशेष

कहानी में प्रवाह तारतम्यता और उत्सुकता अंत तक बनाए रखना लेखक की लेखन कला का कमाल है। कहानी आदर्शवाद पर न टिककर यथार्थवाद पर टिकी हुई है। संवाद अति सुंदर और चरित्रों के अनुरूप बन पड़े हैं।

(2) "पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया था, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है। उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया जिससे उसे खांसी आ गई और उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ देखकर उसकी छाती से धौंकनी की सी आवाज निकली और उसका निचला होंठ बाहर को फैल आया।"

संदर्भ

यह गद्यांश मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' से उद्धृत है।

प्रसंग

इस गद्यांश में अब्दुल गनी के मकान की 'राम कहानी' कहीं उसे न मालूम हो जाए, इस बात का अंदेशा पूरी बस्ती के लोगों को सता रहा है। यहां तक कि रक्खा पहलवान को भी अब्दुल गनी के पाकिस्तान से आने की भनक पड़ती है।

टिप्पणी

व्याख्या

रक्खा पहलवान की हालत पतली होने लगती है। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली कहावत उस पर सौ फीसदी लागू होने लगती है। गले में झाग उठ जाने के कारण उसे खांसी भी आ गई थी। उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया था। अब्दुल गनी के नये मकान को मलबे में परिवर्तित करने–कराने में और उसे बर्बाद करने में रक्खा पहलवान का ही पूरा हाथ था। अब्दुल गनी के आने की खबर से ही उसके पैर की जमीन उसे खिसकती सी महसूस होने लगी थी और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को भी फैल आया था।

विशेष

आदमी कितना भी बड़ा हो चोरी करते अथवा गलत काम करते ही वह आधा रह जाता है। यही बात इस गद्यांश से निकलकर आती है।

(3) तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक–दूसरे को पुरानी चीजों की यादें दिला रहे थे....देख–फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं। उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहां अब वह पानवाला बैठा है।.....यह नमक मंडी देख लो, खान साहब! यहां की एक–एक ललाइन वह नमकीन होती है कि बस....।"

संदर्भ

यह गद्यांश कहानी लेखक मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' से लिया गया है।

प्रसंग

देश–विभाजन के साढ़े सात साल बाद मुसलमानों की एक टोली अमृतसर के एक तंग बाजार में जब आयीं, तब उन लोगों की पुरानी यादें ताजा होने लगीं। वे वहां आए परिवर्तन को देखकर पिछली और वर्तमान की स्थिति का जायजा लेने लगे।

व्याख्या

यह टोली साढ़े सात साल के बाद अमृतसर के तंग बाजार में अपने मकान–दुकान, गली और कूचों को देखने आई है। यहां के परिवर्तन को देखकर कभी उन्हें आश्चर्य होता है, कभी दुःख होता है। वे आपस में बोल–बतिया रहे हैं। उन्हें देखकर वहां के लोग भी आपस में कानाफूसी कर रहे हैं। वे उनको आश्चर्य मिश्रित निगाहों से देख रहे हैं। उधर वह टोली भी अपने शहर को, जो साढ़े सात साल पहले उनका अपना हुआ करता था, लेकिन आज बेगाना होकर रह गया है, उसे ही आज वे अच्छा–खासा आकर्षण का केंद्र मान और समझकर देख रही है। इनमें एक–दो लोग हंसी–मजाक और रंगीन मिजाज की तबीयत के भी हैं। तभी तो उस समय की नमक की मंडी की नमकीन बातें करने से भी स्वयं को पीछे नहीं कर पा रहे हैं।

विशेष

मोहन राकेश ने इस गद्यांश में मनःस्थिति का, पुरानी–नयी बातों का हल्के–फुल्के अंदाज में वर्णन हास्य और व्यंग्यपूर्ण शैली में किया है। भाषा भी चुटीली है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. चिरागदीन की हत्या किसने की थी?
18. गनी मियां को उसके मकान तक कौन ले गया था?
19. रक्खे पहलवान के शागिर्द का क्या नाम था?
20. किश्वर और सुलताना कौन थीं?
21. 'मलबे का मालिक' कहानी का मुख्य पात्र कौन है?
22. जुबैदा कौन थी?
23. चिरागदीन कौन था?
24. रक्खा पहलवान का चिरागदीन की हत्या करने के पीछे क्या उद्देश्य था?

टिप्पणी

5.5 यही सच है – मन्नू भंडारी

यही सच है कहानी की लेखक मन्नू भंडारी का जीवन परिचय इस प्रकार है–

5.5.1 लेखिका परिचय

मन्नू भंडारी का जन्म भानपुरा (मध्य प्रदेश) में दिनांक 3 अप्रैल, सन् 1931 को हुआ था। इन्होंने एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। लेखन के संस्कार पिता श्री सुख संपतराय भंडारी से मिले। दिल्ली विश्वविद्यालय से संबद्ध मिरांडा हाउस में हिंदी प्राध्यापिका के रूप में सालों कार्यरत रहीं। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचंद सृजन पीठ की अध्यक्ष भी रहीं। प्रकाशित सामग्री–5 उपन्यास, *कहानी*–एक प्लेट सैलाब, मैं हार गयी, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, त्रिशंकु। *सर्वश्रेष्ठ कहानियां*, आंखों देखा झूठ, *नाटक*–बिना दीवारों के घर।

5.5.2 यही सच है : मूल पाठ

कानपुर

(1)

सामने आंगन में फैली धूप सिमट कर दीवारों पर चढ़ गई और कंधे पर बस्ता लटकाए नन्हे–नन्हे बच्चों के झुंड–के–झुंड दिखाई दिए, तो एकाएक ही मुझे समय का आभास हुआ। घंटा भर हो गया यहां खड़े–खड़े और संजय का अभी तक पता नहीं! झुंझलाती–सी मैं कमरे में आती हूं। कोने में रखी मेज पर किताबें बिखरी पड़ी हैं, कुछ खुली, कुछ बंद। एक क्षण मैं उन्हें देखती रहती हूं, फिर निरुद्देश्य–सी कपड़ों की अलमारी खोलकर सरसरी–सी नजर से कपड़े देखती हूं। सब बिखरे पड़े हैं। इतनी देर यों ही व्यर्थ खड़ी रही; इन्हें ही ठीक कर लेती। पर मन नहीं करता और फिर बंद कर देती हूं।

नहीं आना था तो व्यर्थ ही मुझे समय क्यों दिया? फिर यह कोई आज ही की बात है! हमेशा संजय अपने बताए हुए समय से घंटे–दो–घंटे देरी करके आता है, और मैं हूं कि उसी क्षण से प्रतीक्षा करने लगती हूं। उसके बाद लाख कोशिश करके भी तो किसी काम में अपना मन नहीं लगा पाती। वह क्यों नहीं समझता कि मेरा समय बहुत अमूल्य है; थीसिस पूरी करने के लिए अब मुझे अपना सारा समय पढ़ाई में ही लगाना चाहिए। पर यह बात उसे कैसे समझाऊं।

(2)

मेज पर बैठकर मैं फिर पढ़ने का उपक्रम करने लगती हूं, पर मन है कि लगता ही नहीं। पर्दे के ज़रा–से हिलने से दिल की धड़कन बढ़ जाती है और बार–बार नजर घड़ी के सरकते हुए कांटों पर दौड़ जाती है। हर समय यही लगता है, वह आया! वह आया!

तभी मेहता साहब की पांच साल की छोटी बच्ची झिझकती–सी कमरे में आती है।

"आंटी, हमें कहानी सुनाओगी?"

"नहीं, अभी नहीं, पीछे आना!" मैं रुखाई से जवाब देती हूं। वह भाग जाती है। ये मिसेज मेहता भी एक ही हैं! यों तो महीनों शायद मेरी सूरत नहीं देखतीं, पर बच्ची को

टिप्पणी

जब–तब मेरा सिर खाने को भेज देती हैं। मेहता साहब तो फिर भी कभी–कभी आठ–दस दिन में खैरियत पूछ ही लेते हैं, पर वे तो बेहद अकड़ू मालूम होती हैं। अच्छा ही है, ज़्यादा दिलचस्पी दिखाती तो क्या मैं इतनी आजादी से घूम–फिर सकती थी?

खट–खट–खट वही परिचित पद–ध्वनि! तो आ गया संजय। मैं बरबस ही अपना सारा ध्यान पुस्तक में केंद्रित कर लेती हूं। रजनीगंधा के ढेर सारे फूल लिए संजय मुस्कुराता–सा दरवाज़े पर खड़ा है। मैं देखती हूं, पर मुस्कुराकर स्वागत नहीं करती। हंसता हुआ वह आगे बढ़ता है और फूलों को मेज पर पटककर, पीछे से मेरे दोनों कंधे दबाता हुआ पूछता है, "बहुत नाराज हो?"

रजनीगंधा की महक से जैसे सारा कमरा महकने लगता है।

"मुझे क्या करना है नाराज होकर?" रुखाई से मैं कहती हूं। वह कुर्सी सहित मुझे घुमाकर अपने सामने कर लेता है, और बड़े दुलार के साथ ठोड़ी उठाकर कहता, "तुम्हीं बताओ क्या करता? क्वालिटी में दोस्तों के बीच फंसा था। बहुत कोशिश करके भी उठ नहीं पाया। सबको नाराज करके आना अच्छा भी नहीं लगता।"

इच्छा होती है, कह दूं–"तुम्हें दोस्तों का खयाल है, उनके बुरा मानने की चिंता है, बस मेरी ही नहीं!" पर कुछ कह नहीं पाती। एकटक उसके चेहरे की ओर देखती रहती हूं उसके सांवले चेहरे पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं। कोई और समय होता तो मैंने अपने आंचल से इन्हें पोंछ दिया होता, पर आज नहीं। वह मंद–मंद मुस्कुरा रहा है, उसकी आंखें क्षमा–याचना कर रही हैं, पर मैं क्या करूं? तभी वह अपनी आदत के अनुसार कुर्सी के हत्थे पर बैठकर मेरे गाल सहलाने लगता है। मुझे उसकी इसी बात पर गुस्सा आता है। हमेशा इसी तरह करेगा और फिर दुनिया भर का लाड़–दुलार दिखलाएगा। वह जानता जो है कि इसके आगे मेरा क्रोध टिक नहीं पाता। फिर उठकर वह फूलदान के पुराने फूल फेंक देता है, और नये फूल लगाता है। फूल सजाने में वह कितना कुशल है! एक बार मैंने यों ही कह दिया था कि मुझे रजनीगंधा के फूल बड़े पसंद हैं, तो उसने नियम ही बना लिया कि हर चौथे दिन ढेर सारे फूल लाकर मेरे कमरे में लगा देता है। और अब तो मुझे भी ऐसी आदत हो गई है कि एक दिन भी कमरे में फूल न रहें तो न पढ़ने में मन लगता है, न सोने में। ये फूल जैसे संजय की उपस्थिति का आभास देते रहते हैं।

थोड़ी देर बाद हम घूमने निकल जाते हैं। एकाएक ही मुझे इरा के पत्र की बात याद आती है। जो बात सुनने के लिए मैं सवेरे से आतुर थी, इस गुस्सेबाजी में जाने कैसे उसे ही भूल गई!

"सुनो, इरा ने लिखा है कि किसी दिन भी मेरे पास इंटरव्यू का बुलावा आ सकता है, मुझे तैयार रहना चाहिए।"

"कहां, कलकत्ता से?" कुछ याद करते हुए संजय पूछता है, और फिर एकाएक ही उछल पड़ता है, "यदि तुम्हें वह जॉब मिल जाए तो मजा आ जाए, दीपा, मजा आए!"

हम सड़क पर हैं, नहीं तो अवश्य ही उसने आवेश में आकर कोई हरकत कर डाली होती। जाने क्यों, मुझे उसका इस प्रकार प्रसन्न होना अच्छा नहीं लगता। क्या वह चाहता है कि मैं कलकत्ता चली जाऊं, उससे दूर?

टिप्पणी

तभी सुनाई देता है, "तुम्हें यह जॉब मिल जाए तो मैं भी अपना तबादला कलकत्ता ही करवा लूं, हेड ऑफिस में। यहां की रोज की किच–किच से तो मेरा मन ऊब गया है। कितनी ही बार सोचा कि तबादले की कोशिश करूं, पर तुम्हारे खयाल ने हमेशा मुझे बांध लिया। ऑफिस में शांति हो जाएगी, पर मेरी शामें कितनी वीरान हो जाएंगी।"

उसके स्वर की आद्रता ने मुझे छू लिया। एकाएक ही मुझे लगने लगा कि रात बड़ी सुहावनी हो चली है।

हम दूर निकलकर अपनी प्रिय टेकरी पर जाकर बैठ जाते हैं। दूर–दूर तक हल्की–सी चांदनी फैली हुई है और शहर की तरह यहां का वातावरण धुएं से भरा हुआ नहीं है। वह दोनों पैर फैलाकर बैठ जाता है और घंटों मुझे अपने ऑफिस के झगड़े की बात सुनाता है और फिर कलकत्ता जाकर साथ जीवन बिताने की योजनाएं बनाता है। मैं कुछ नहीं बोलती, बस एकटक उसे देखती हूं, देखती रहती हूं।

जब वह चुप हो जाता है तो बोलती हूं, "मुझे तो इंटरव्यू में जाते हुए बड़ा डर लगता है। पता नहीं, कैसे–क्या पूछते होंगे! मेरे लिए तो यह पहला ही मौका है।"

वह खिलखिलाकर हंस पड़ता है।

"तुम भी एक ही मूर्ख हो! घर से दूर, यहां कमरा लेकर अकेली रहती हो, रिसर्च कर रही हो, दुनिया–भर में घूमती–फिरती हो और इंटरव्यू आदि तो सब दिखावा–मात्र होते हैं। वहां किसी जान–पहचान वाले से इन्फ्लूएंस डलवाना जाकर!"

"पर कलकत्ता तो मेरे लिए एकदम नई जगह है। वहां इरा को छोड़कर मैं किसी को जानती भी नहीं। अब उन लोगों की कोई जान–पहचान हो तो बाद दूसरी है।" असहाय–सी मैं कहती हूं।

"और किसी को नहीं जानतीं?" फिर मेरे चेहरे पर नजरें गड़ाकर पूछता है, "निशीथ भी तो वहीं है?"

"होगा, मुझे क्या करना है उससे?" मैं एकदम ही भन्नाकर जवाब देती हूं। पता नहीं क्यों, मुझे लग ही रहा था कि अब वह यही बात कहेगा।

"कुछ नहीं करना?" वह छेड़ने के लहजे में कहता है।

और मैं भभक पड़ती हूं, "देखो संजय, मैं हजार बार तुमसे कह चुकी हूं कि उसे लेकर मुझसे मजाक मत किया करो! मुझे इस तरह का मजाक जरा भी पसंद नहीं है!"

वह खिलखिलाकर हंस पड़ता है, पर मेरा तो मूड ही खराब हो जाता है।

हम लौट पड़ते हैं। वह मुझे खुश करने के इरादे से मेरे कंधे पर हाथ रख देता है। मैं झपटकर हाथ हटा देती हूं, "क्या कर रहे हो? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?"

"कौन है यहां जो देख लेगा? और देख लेगा तो देख ले, आप ही कुढ़ेगा।"

"नहीं, हमें पसंद नहीं हैं यह बेशर्मी!" और सच ही मुझे रास्ते में ऐसी हरकतें पसंद नहीं हैं चाहे रास्ता निर्जन ही क्यों न हो, पर है तो रास्ता ही, फिर कानपुर जैसी जगह।

कमरे में लौटकर मैं उसे बैठने को कहती हूं, पर वह बैठता नहीं, बस, बाहों में भरकर एक बार चूम लेता है। यह भी जैसे उसका रोज का नियम है।

टिप्पणी

वह चला जाता है। मैं बाहर बालकनी में निकलकर उसे देखती रहती हूं। उसका आकार छोटा होते–होते सड़क के मोड़ पर जाकर लुप्त हो जाता है। मैं उधर ही देखती रहती हूं– निरुद्देश्य–सी खोई–खोई–सी। फिर आकर पढ़ने बैठने जाती हूं।

रात में सोती हूं तो देर तक मेरी आंखें मेज पर लगे रजनीगंधा के फूलों को हीं निहारती रहती हैं। जाने क्यों, अक्सर मुझे भ्रम हो जाता है कि ये फूल नहीं हैं, मानो संजय की अनेकानेक आंखें हैं, जो मुझे देख रही हैं, सहला रही हैं, दुलरा रही हैं, और अपने को यों असंख्य आंखों से निरंतर देखे जाने की कल्पना से ही मैं लजा जाती हूं।

मैंने संजय को भी एक बार यह बात बताई थी, तो वह खूब हंसा था और फिर मेरे गालों को सहलाते हुए उसने कहा था कि मैं पागल हूं, निरी मूर्खा हूं!

कौन जाने, शायद उसका कहना ही ठीक हो, शायद मैं पागल ही होऊं!

कानपुर

मैं जानती हूं संजय का मन निशीथ को लेकर जब–तब सशंकित हो उठता है, पर मैं उसे कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैं निशीथ से नफरत करती हूं, उसकी याद–मात्र से मेरा मन घृणा से भर उठता है। फिर अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी कोई प्यार होता है भला! निरा बचपन होता है, महज पागलपन! उसमें आवेश रहता है पर स्थायित्व नहीं, गति रहती है पर गहराई नहीं। जिस वेग से वह आरंभ होता है, जरा–सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट भी जाता है। और उसके बाद आहों, आंसुओं और सिसकियों का एक दौर, सारी दुनिया की निस्सारता और आत्महत्या करने के अनेकानेक संकल्प और फिर एक तीखी घृणा। जैसे ही जीवन को दूसरा आधार मिल जाता है, उन सबको भूलने में एक दिन भी नहीं लगता। फिर तो वह सब ऐसी बेवकूफी लगती है, जिस पर बैठकर घंटों हंसने की तबीयत होती है। तब एकाएक ही इस बात का अहसास होता है कि ये सारे आंसू, ये सारी आहें उस प्रेमी के लिए नहीं थीं, वरन जीवन की उस रिक्तता और शून्यता के लिए थीं, जिसने जीवन को नीरस बनाकर बोझिल कर दिया था।

तभी तो संजय को पाते ही मैं निशीथ को भूल गई। मेरे आंसू हंसी में बदल गए और आहों की जगह किलकारियां गूंजने लगीं। पर संजय है कि जब–तब निशीथ की बात को लेकर व्यर्थ ही खिन्न–सा हो उठता है। मेरे कुछ कहने पर वह खिलखिला अवश्य पड़ता है, पर मैं जानती हूं, वह पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं है।

उसे कैसे बताऊं कि मेरे प्यार का, मेरी कोमल भावनाओं का, भविष्य की मेरी अनेकानेक योजनाओं का एकमात्र केंद्र संजय ही है। यह बात दूसरी है कि चांदनी रात में, किसी निर्जन स्थान में, पेड़–तले बैठकर भी मैं अपनी थीसिस की बात करती हूं या वह अपने ऑफिस की, मित्रों की बातें करता है, या हम किसी और विषय पर बात करने लगते हैं, पर इस सबका यह मतलब तो नहीं कि हम प्रेम नहीं करते! वह क्यों नहीं समझता कि आज हमारी भावुकता यथार्थ में बदल गई है, सपनों की जगह हम वास्तविकता में जीते हैं! हमारे प्रेम को परिपक्वता मिल गई है, जिसका आधार पाकर वह अधिक गहरा हो गया है, स्थायी हो गया है।

टिप्पणी

पर संजय को कैसे समझाऊं यह सब? कैसे उसे समझाऊं कि निशीथ ने मेरा अपमान किया है, ऐसा अपमान, जिसकी कचोट से मैं आज भी तिलमिला जाती हूं। संबंध तोड़ने से पहले एक बार तो उसने मुझे बताया होता कि आखिर मैंने ऐसा कौन–सा अपराध कर डाला था, जिसके कारण उसने मुझे इतना कठोर दंड दे डाला? सारी दुनिया की भर्त्सना, तिरस्कार, परिहास और दया का विष मुझे पीना पड़ा। विश्वासघाती! नीच कहीं का! और संजय सोचता है कि आज भी मेरे मन में उसके लिए कोई कोमल स्थान है! छिः! मैं उससे नफरत करती हूं! और सच पूछो तो अपने को भाग्यशालिनी समझती हूं कि मैं एक ऐसे व्यक्ति के चंगुल में फंसने से बच गई, जिसके लिए प्रेम महज एक खिलवाड़ है।

संजय, यह तो सोचो कि यदि ऐसी कोई भी बात होती, तो क्या मैं तुम्हारे आगे, तुम्हारी हर उचित–अनुचित चेष्टा के आगे, यों आत्मसमर्पण करती? तुम्हारे चुंबनों और आलिंगनों में अपने को यों बिखरने देती? जानते हो? विवाह से पहले कोई भी लड़की किसी को इन सबका अधिकार नहीं देती। पर मैंने दिया। क्या केवल इसीलिए नहीं कि मैं तुम्हें प्यार करती हूं, बहुत–बहुत प्यार करती हूं? विश्वास करो संजय, तुम्हारा मेरा प्यार ही सच है। निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भ्रम था, झूठ था।

कानपुर

परसों मुझे कलकत्ता जाना है। बड़ा डर लग रहा है। कैसे क्या होगा? मान लो, इंटरव्यू में बहुत नर्वस हो गई, तो? संजय को कह रही हूं कि वह भी साथ चले, पर उसे ऑफिस से छुट्टी नहीं मिल सकती। एक तो नया शहर, फिर इंटरव्यू! अपना कोई साथ होता तो बड़ा सहारा मिल जाता है। मैं कमरा लेकर अकेली रहती हूं, यों अकेली घूम–फिर भी लेती हूं तो संजय सोचता है, मुझमें बड़ी हिम्मत है, पर सच, बड़ा डर लग रहा है।

बार–बार मैं यह मान लेती हूं कि मुझे नौकरी मिल गई है और मैं संजय के साथ वहां रहने लगी हूं। कितनी सुंदर कल्पना है, कितनी मादक! पर इंटरव्यू का भय मादकता से भरे इस स्वप्नजाल को छिन्न–भिन्न कर देता है।

काश, संजय भी किसी तरह मेरे साथ चल पाता!

कलकत्ता

गाड़ी जब हावड़ा स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर प्रवेश करती है तो जाने कैसी विचित्र आशंका, विचित्र–से भय से मेरा मन भर जाता है। प्लेटफार्म पर खड़े असंख्य नर–नारियों में मैं इरा को ढूंढ़ती हूं। वह कहीं दिखाई नहीं देती। नीचे उतरने के बजाय खिड़की में से ही दूर–दूर तक नजरें दौड़ाती हूं। आखिर एक कुली को बुलाकर, अपना छोटा–सा सूटकेस और बिस्तर उतारने का आदेश दे, मैं नीचे उतर पड़ती हूं। उस भीड़ को देखकर मेरी दहशत जैसे और बढ़ जाती है। तभी किसी के हाथ के स्पर्श में मैं बुरी तरह चौंक जाती हूं। पीछे देखती हूं तो इरा खड़ी है।

रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछते हुए कहती हूं, "ओफ! तुझे न देखकर मैं घबरा रही थी कि तुम्हारे घर भी कैसे पहुंचूंगी!"

बाहर आकर हम टैक्सी में बैठते हैं। अभी तक मैं स्वस्थ नहीं हो पाई हूं। जैसे ही हावड़ा पुल पर गाड़ी पहुंचती है, हुगली के जल को स्पर्श करती हुई ठंडी हवाएं तन–मन

टिप्पणी

को एक ताजगी से भर देती हैं। इरा मुझे इस पुल की विशेषता बताती है और मैं विस्मित–सी उस पुल को देखती हूं। दूर–दूर तक फैले हुगली के विस्तार को देखती हूं, उसकी छाती पर खड़ी और विहार करती अनेक नौकाओं को देखती हूं, बड़े–बड़े जहाजों को देखती हूं।

उसके बाद बहुत ही भीड़–भरी सड़कों पर हमारी टैकसी रुकती–रुकती चलती है। ऊंची–ऊंची इमारतों और चारों ओर के वातावरण से कुछ विचित्र–सी विराटता का आभास होता है, और इस सबके बीच जैसे मैं अपने को बड़ा खोया–खोया–सा महसूस करती हूं। कहां पटना और कानपुर और कहां यह कलकत्ता! मैंने तो आज तक कभी बहुत बड़े शहर देखे ही नहीं!

सारी भीड़ को चीरकर हम रैड रोड पर आ जाते हैं। चौड़ी शांत सड़क। मेरे दोनों ओर लंबे–चौड़े खुले मैदान।

"क्यों इरा, कौन–कौन लोग होंगे इंटरव्यू में? मुझे तो बड़ा डर लग रहा है।"

"अरे, सब ठीक हो जाएगा! तू और डर? हम जैसे डरें तो कोई बात भी है। जिसने अपना सारा कैरियर अपने आप बनाया, वह भला इंटरव्यू में डरे! फिर कुछ देर ठहरकर कहती है, "अच्छा, भैया–भाभी तो पटना ही होंगे? जाती है कभी उनके पास भी या नहीं?"

"कानपुर आने के बाद एक बार गई थी। कभी–कभी यों ही पत्र लिख देती हूं।"

"भई कमाल के लोग हैं! बहन को भी नहीं निभा सके!"

मुझे यह प्रसंग कतई पसंद नहीं। मैं नहीं चाहती कि कोई इस विषय पर बात करे। मैं मौन ही रहती हूं।

इरा का छोटा–सा घर है, सुंदर ढंग से सजाया हुआ। उसके पति के दौरे पर जाने की बात सुनकर पहले तो मुझे अफसोस हुआ था, वे होते तो कुछ मदद ही करते! पर फिर एकाएक लगा कि उनकी अनुपस्थिति में मैं शायद अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर सकूं। उनका बच्चा भी बड़ा प्यारा है।

शाम को इरा मुझे कॉफी हाऊस ले जाती है। अचानक मुझे वहां निशीथ दिखाई देता है। मैं सकपकाकर नजर घुमा लेती हूं। पर वह हमारी मेज पर ही आ पहुंचता है। विवश होकर मुझे उधर देखना पड़ता है, नमस्कार भी करना पड़ता है, इरा का परिचय भी करवाना पड़ता है। इरा पास की कुर्सी पर बैठने का निमंत्रण दे देती है। मुझे लगता है, मेरी सांस रुक जाएगी।

"कब आई?"

"आज सवेरे ही।"

"अभी ठहरोगी, ठहरी कहां हो?"

जवाब इरा देती है। मैं देख रही हूं, निशीथ बहुत बदल गया है। उसने कवियों की तरह बाल बढ़ा लिए हैं। यह क्या शौक चर्राया? उसका रंग स्याह पड़ गया है। वह दुबला भी हो गया है।

विशेष बातचीत नहीं होती और हम लोग उठ पड़ते हैं। इरा को मुन्नू की चिंता सता रही थी, और मैं स्वयं भी घर पहुंचने को उतावली हो रही थी। कॉफी हाऊस से धर्मतल्ला तक वह पैदल चलता हुआ हमारे साथ आता है। इरा उससे बात कर रही है, मानो वह इरा का ही मित्र हो! इरा अपना पता समझा देती है और वह दूसरे दिन नौ बजे आने का वायदा करके चला जाता है।

टिप्पणी

पूरे तीन साल बाद निशीथ का यों मिलना! न चाहकर भी जैसे सारा अतीत आंखों के सामने खुल जाता है। बहुत दुबला हो गया है निशीथ! लगता है, जैसे मन में कहीं कोई गहरी पीड़ा छिपाए बैठा है।

मुझसे अलग होने का दुःख तो नहीं साल रहा है इसे?

कल्पना चाहे कितनी भी मधुर क्यों न हो, एक तृप्ति–युक्त आनन्द देनेवाली क्यों न हो, पर मैं जानती हूं, यह झूठ है। यदि ऐसा ही था तो कौन उसे कहने गया था कि तुम इस संबंध को तोड़ दो? उसने अपनी इच्छा से ही तो यह सब किया था।

एकाएक ही मेरा मन कटु हो उठता है। यही तो है वह व्यक्ति जिसने मुझे अपमानित करके सारी दुनिया के सामने छोड़ दिया था, महज उपहास का पात्र बनाकर! ओह, क्यों नहीं मैंने उसे पहचानने से इनकार कर दिया? जब वह मेज के पास आकर खड़ा हुआ, तो क्यों नहीं मैंने कह दिया कि माफ कीजिए, मैं आपको पहचानती नहीं? जरा उसका खिसियाना तो देखती! वह कल भी आएगा। मुझे उसे साफ–साफ मना कर देना चाहिए था कि मैं उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती, मैं उससे नफरत करती हूं।

अच्छा है, आए कल! मैं उसे बता दूंगी कि जल्दी ही मैं संजय से विवाह करनेवाली हूं। यह भी बता दूंगी कि मैं पिछला सब कुछ भूल चुकी हूं। यह भी बता दूंगी कि मैं उससे घृणा करती हूं और उसे जिन्दगी में कभी माफ नहीं कर सकती।

यह सब सोचने के साथ–साथ जाने क्यों, मेरे मन में यह बात भी उठ रही थी कि तीन साल हो गए, अभी तक निशीथ ने विवाह क्यों नहीं किया? करे न करे, मुझे क्या?

क्या वह आज भी मुझसे कुछ उम्मीद रखता है? हूं। मूर्ख कहीं का!

संजय! मैंने तुमसे कितना कहा था कि तुम मेरे साथ चलो, पर तुम नहीं आए। इस समय जबकि मुझे तुम्हारी इतनी–इतनी याद आ रही है, बताओ, मैं क्या करूं।

कलकत्ता

नौकरी पाना इतना मुश्किल है, इसका मुझे गुमान तक नहीं था। इरा कहती है कि डेढ़ सौ की नौकरी के लिए खुद मिनिस्टर तक सिफारिश करने पहुंच जाते हैं, फिर यह तो तीन सौ का जॉब है। निशीथ सवेरे से शाम तक इसी चक्कर में भटका है, यहां तक कि उसने अपने ऑफिस से भी छुट्टी ले ली है। वह क्यों मेरे काम में इतनी दिलचस्पी ले रहा है? उसका परिचय बड़े–बड़े लोगों से है और वह कहता है कि जैसे भी होगा, वह काम मुझे दिलाकर ही मानेगा। पर आखिर क्यों?

कल मैंने सोचा था कि अपने व्यवहार की रुखाई से मैं स्पष्ट कर दूंगी कि अब वह मेरे पास न आए। पौने नौ बजे के करीब, जब मैं अपने टूटे हुए बाल फेंकने खिड़की पर गई, तो देखा, घर से थोड़ी दूर पर निशीथ टहल रहा है। वही लंबे बाल, कुरता–पाजामा। तो वह समय से पहले ही आ गया! संजय होता तो ग्यारह के पहले नहीं पहुंचता, समय पर पहुंचना तो वह जानता ही नहीं।

टिप्पणी

उसे यों चक्कर काटते देख मेरा मन जाने कैसा हो आया। और जब वह आया तो मैं चाहकर भी कटु नहीं हो सकी। मैंने उसे कलकत्ता आने का मकसद बताया, तो लगा कि वह बड़ा प्रसन्न हुआ। वहीं बैठे–बैठे फोन करके उसने इस नौकरी के संबंध में सारी जानकारी प्राप्त कर ली, कैसे क्या करना होगा, उसकी योजना भी बना डाली, बैठे–बैठे फोन से ऑफिस को सूचना भी दे दी कि आज वह ऑफिस नहीं आएगा।

विचित्र स्थिति मेरी हो रही थी। उसके इस अपनत्व–भरे व्यवहार को मैं स्वीकार भी नहीं कर पाती थी, नकार भी नहीं पाती थी। सारा दिन मैं उसके साथ घूमती रही, पर काम की बात के अतिरिक्त उसने एक भी बात नहीं की। मैंने कई बार चाहा कि संजय की बात बता दूं पर बता नहीं सकी। सोचा, कहीं वह सुनकर यह दिलचस्पी लेना कम न कर दे। उसके आज–भर के प्रयत्नों से ही मुझे काफी उम्मीद हो चली थी। यह नौकरी मेरे लिए कितनी आवश्यक है, मिल जाए तो संजय कितना प्रसन्न होगा, हमारे विवाहित जीवन के आरंभिक दिन कितने सुख में बीतेंगे।

शाम को हम घर लौटते हैं। मैं उसे बैठने को कहती हूं, पर वह बैठता नहीं, बस खड़ा ही रहता है। उसके चौड़े ललाट पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं। एकाएक ही मुझे लगता है, इस समय संजय होता, तो मैं अपने आंचल से उसका पसीना पोंछ देती, और वह क्या बिना बाहों में भरे, बिना प्यार किए यों ही चला जाता?

"अच्छा, तो मैं चलता हूं।"

यंत्रचलित–से मेरे हाथ जुड़ जाते हैं, वह लौट पड़ता है और मैं ठगी–सी देखती रहती हूं।

सोते समय मेरी आदत है कि संजय के लाए हुए फूलों को निहारती रहती हूं। यहां वे फूल नहीं हैं तो बड़ा सूना–सूना सा लग रहा है। पता नहीं संजय, तुम इस समय क्या कर रहे हो! तीन दिन हो गए, किसी ने बांहों में भरकर प्यार तक नहीं किया।

कलकत्ता

आज सवेरे मेरा इंटरव्यू है। मैं शायद बहुत नर्वस हो गई थी और जैसे उत्तर मुझे देने चाहिए, वैसे नहीं दे पाई। पर निशीथ ने आकर बाताया कि मेरा चुना जाना करीब–करीब तय हो गया है। मैं जानती हूं, यह सब निशीथ की वजह से ही हुआ।

ढलते सूरज की धूप निशीथ के बाएं गाल पर पड़ रही थी और सामने बैठा निशीथ इतने दिन बाद एक बार फिर मुझे बड़ा प्यारा–सा लगा।

मैंने देखा, मुझसे ज्यादा वह प्रसन्न है। वह कभी किसी का अहसान नहीं लेता, पर मेरी खातिर उसने न जाने कितने लोगों का अहसान लिया। आखिर क्यों? क्या वह चाहता है कि मैं कलकत्ता आकर रहूं उसके साथ, उसके पास? एक अजीब–सी पुलक से मेरा तन–मन सिहर उठता है। वह ऐसा क्यों चाहता है? उसका ऐसा चाहना बहुत गलत है, बहुत अनुचित है! मैं अपने मन को समझाती हूं, ऐसी कोई बात नहीं है, शायद वह केवल मेरे प्रति किए गए अन्याय का प्रतिकार करने के लिए यह सब कर रहा है! पर क्या वह समझता है कि उसकी मदद से नौकरी पाकर मैं उसे क्षमा कर दूंगी, या जो कुछ उसने किया है, उसे भूल जाऊंगी? असंभव! मैं कल ही उसे संजय की बात बता दूंगी।

टिप्पणी

"आज तो इस खुशी में पार्टी हो जाए।"

काम की बात के अलावा यह पहला वाक्य मैं उसके मुंह से सुनती हूं, मैं इरा की ओर देखती हूं। वह प्रस्ताव का समर्थन करके भी मुन्नू की तबीयत का बहाना लेकर अपने को काट लेती है। अकेले जाना मुझे कुछ अटपटा–सा लगता है। अभी तक तो काम का बहाना लेकर घूम रही थी, पर अब? फिर भी मैं मना नहीं कर पाती। अंदर जाकर तैयार होती हूं। मुझे याद आता है, निशीथ को नीला रंग बहुत पसंद था, मैं नीली साड़ी ही पहनती हूं। बड़े चाव और सतर्कता से अपना प्रसाधन करती हूं, और बार–बार अपने को टोकती जाती हूं– किसको रिझाने के लिए यह सब हो रहा है? क्या यह निरा पागलपन नहीं है?

सीढ़ियों पर निशीथ हल्की–सी मुस्कुराहट के साथ कहता है, "इस साड़ी में तुम बहुत सुंदर लग रही हो।"

मेरा चेहरा तमतमा जाता है, कनपटियां सुर्ख हो जाती हैं। मैं चुपचाप ही इस वाक्य के लिए तैयार नहीं थी। यह सदा चुप रहनेवाला निशीथ बोला भी तो ऐसी बात।

मुझे ऐसी बातें सुनने की ज़रा भी आदत नहीं है। संजय न कभी मेरे कपड़ों पर ध्यान देता है, न ऐसी बातें करता है, जबकि उसे पूरा अधिकार है। और यह बिना अधिकार ऐसी बातें करे?

(3)

पर जाने क्या है कि मैं उस पर नाराज नहीं हो पाती हूं, बल्कि एक पुलकमय सिहरन महसूस करती हूं। सच, संजय के मुंह से ऐसा वाक्य सुनने को मेरा मन तरसता रहता है, पर उसने कभी ऐसी बात नहीं की। पिछले ढाई साल से मैं संजय के साथ रह रही हूं। रोज ही शाम को हम घूमने जाते हैं। कितनी ही बार मैंने शृंगार किया, अच्छे कपड़े पहने, पर प्रशंसा का एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं सुना। इन बातों पर उसका ध्यान ही नहीं जाता, यह देखकर भी जैसे यह सब नहीं देख पाता। इस वाक्य को सुनने के लिए तरसता हुआ मेरा मन जैसे रस से नहा जाता है। पर निशीथ ने यह बात क्यों कही? उसे क्या अधिकार है?

क्या सचमुच ही उसे अधिकार नहीं है? नहीं है?

जाने कैसी मजबूरी है, कैसी विवशता है कि मैं इस बात का जवाब नहीं दे पाती हूं। निश्चयात्मक दृढ़ता से नहीं कह पाती कि साथ चलते इस व्यक्ति को सचमुच ही मेरे विषय में ऐसी अवांछित बात कहने का कोई अधिकार नहीं है।

हम दोनों टैक्सी में बैठते हैं। मैं सोचती हूं, आज मैं इसे संजय की बात बता दूंगी।

"स्काई–रूम!" निशीथ टैक्सीवाले को आदेश देता है।

'टुन' की घंटी के साथ मीटर डाउन होता है और टैक्सी हवा से बातें करने लगती है। निशीथ बहुत सतर्कता से कोने में बैठा है, बीच में इतनी जगह छोड़कर कि यदि हिचकोला खाकर भी टैक्सी रुके, तो हमारा स्पर्श न हो। हवा के झोंके से मेरी रेशमी साड़ी का पल्लू उसके समूचे बदन को स्पर्श करता हुआ उसकी गोदी में पड़कर फरफराता है। वह उसे हटाता नहीं है। मुझे लगता है, यह रेशमी, सुवासित पल्लू उसके तन–मन को रस

टिप्पणी

से भिगो रहा है, यह स्पर्श उसे पुलकित कर रहा है, मैं विजय के अकथनीय आह्लाद से भर जाती हूं।

आज भी मैं संजय की बात नहीं कह पाती। चाहकर भी नहीं कह पाती। अपनी इस विवशता पर मुझे खीज भी आती है, पर मेरा मुंह है कि खुलता ही नहीं। मुझे लगता है कि मैं जैसे कोई बहुत बड़ा अपराध कर रही होऊं, पर फिर भी मैं कुछ नहीं कह सकी।

यह निशीथ कुछ बोलता क्यों नहीं? उसका यों कोने में दुबककर निर्विकार भाव से बैठे रहना मुझे कतई अच्छा नहीं लगता। एकाएक ही मुझे संजय की याद आने लगती है। इस समय वह यहां होता तो उसका हाथ मेरी कमर में लिपटा होता। यों सड़क पर ऐसी हरकतें मुझे स्वयं पसंद नहीं, पर जाने क्यों, किसी की बाहों की लपेट के लिए मेरा मन ललक उठता है। मैं जानती हूं कि जब निशीथ बगल में बैठा हो, उस समय ऐसी इच्छा करना, या ऐसी बात सोचना भी कितना अनुचित है। पर मैं क्या करूं? जितनी द्रुतगति से टैक्सी चली जा रही है, मुझे लगता है, उतनी ही द्रुतगति से मैं भी बही जा रही हूं, अनुचित, अवांछित दिशाओं की ओर।

टैक्सी झटका खाकर रुकती है तो मेरी चेतना लौटती है। मैं जल्दी से दाहिनी ओर का फाटक खोलकर कुछ इस हड़बड़ी से नीचे उतर पड़ती हूं, मानो अंदर निशीथ मेरे साथ कोई बदतमीजी कर रहा हो।

"अजी, इधर से उतरना चाहिए कभी?" टैक्सीवाला कहता है। मुझे अपनी गलती का भान होता है। उधर निशीथ खड़ा है, इधर मैं, बीच में टैक्सी!

पैसे लेकर टैक्सी चली जाती है तो हम दोनों एक–दूसरे के आमने–सामने हो जाते हैं। एकाएक ही मुझे खयाल आता है कि टैक्सी के पैसे तो मुझे ही देने चाहिए थे। पर अब क्या हो सकता था! चुपचाप हम दोनों अंदर जाते हैं। आस–पास बहुत कुछ है, चहल–पहल, रौशनी, रौनक। पर मेरे लिए जैसे सबका अस्तित्व ही मिट जाता है। मैं अपने को सबकी नजरों से ऐसे बचाकर चलती हूं, मानो मैंने कोई अपराध कर डाला हो, और कोई मुझे पकड़ न ले।

क्या सचमुच ही मुझसे कोई अपराध हो गया है?

आमने–सामने हम दोनों बैठ जाते हैं। मैं होस्ट हूं, फिर भी उसका पार्ट वही अदा कर रहा है। वही ऑर्डर देता है। बाहर की हलचल और उससे अधिक मन की हलचल में मैं अपने को खोया–खोया–सा महसूस करती हूं।

हम दोनों के सामने बैरा कोल्ड–कॉफी के गिलास और खाने का कुछ सामान रख जाता है। मुझे बार–बार लगता है कि निशीथ कुछ कहना चाह रहा है। मैं उसके होंठों की धड़कन तक महसूस करती हूं। वह जल्दी से कॉफी का स्ट्रॉ मुंह से लगा लेता है।

मूर्ख कहीं का! वह सोचता है, मैं बेवकूफ हूं। मैं अच्छी तरह जानती हूं कि इस समय वह क्या सोच रहा है।

तीन दिन साथ रहकर भी हमने उस प्रसंग को नहीं छेड़ा। शायद नौकरी की बात ही हमारे दिमागों पर छाई हुई थी। पर आज, आज अवश्य ही वह बात आएगी! न आए, यह कितना अस्वाभाविक है! पर नहीं, स्वाभाविक शायद यही है। तीन साल पहले जो

टिप्पणी

अध्याय सदा के लिए बंद हो गया, उसे उलट कर देखने का साहस शायद हम दोनों में से किसी में नहीं है। जो संबंध टूट गए, टूट गए। अब उन पर कौन बात करे? मैं तो कभी नहीं करूंगी। पर उसे तो करना चाहिए। तोड़ा उसने था, बात भी वही आरंभ करे। मैं क्यों करूं, और मुझे क्या पड़ी है? मैं तो जल्दी ही संजय से विवाह करनेवाली हूं। क्यों नहीं मैं इसे अभी संजय की बात बता देती? पर जाने कैसी विवशता है, जाने कैसा मोह है कि मैं मुंह नहीं खोल पाती। एकाएक मुझे लगता है जैसे उसने कुछ कहा–

"आपने कुछ कहा?"

"नहीं तो!"

मैं खिसिया जाती हूं।

फिर वही मौन! खाने में मेरा ज़रा भी मन नहीं लग रहा है, पर यंत्रचलित–सी मैं खा रही हूं। शायद वह भी ऐसे ही खा रहा है। मुझे फिर लगता है कि उसके होंठ फड़क रहे हैं, और स्ट्रॉ पकड़े हुए उंगलियां कांप रही हैं। मैं जानती हूं, वह पूछना चाहता है, "दीपा, तुमने मुझे माफ तो कर दिया न?"

वह पूछ ही क्यों नहीं लेता? मान लो, यदि पूछ ही ले, तो क्या मैं कह सकूंगी कि मैं तुम्हें जिंदगी–भर माफ नहीं कर सकती, मैं तुमसे नफरत करती हूं, मैं तुम्हारे साथ घूम–फिर ली, या कॉफी पी ली, तो यह मत समझो कि मैं तुम्हारे विश्वासघात की बात को भूल गई हूं?

और एकाएक ही पिछला सब कुछ मेरी आंखों के आगे तैरने लगता है। पर यह क्या? असह्य अपमानजनित पीड़ा, क्रोध और कटुता क्यों नहीं याद आती? मेरे सामने तो पटना में गुजारी सुहानी संध्याओं और चांदनी रातों के वे चित्र उभरकर आते हैं, जब घंटों समीप बैठ, मौन भाव से हम एक–दूसरे को निहारा करते थे। बिना स्पर्श किए भी जाने कैसी मादकता तन–मन को विभोर किए रहती थी, जाने कैसी तन्मयता में हम डूबे रहते थे। एक विचित्र–सी, स्वप्निल दुनिया में! मैं कुछ बोलना भी चाहती तो वह मेरे मुंह पर उंगली रखकर कहता, "आत्मीयता के ये क्षण अनकहे ही रहने दो, दीपा!"

आज भी तो हम मौन ही हैं, एक–दूसरे के निकट ही हैं। क्या आज भी हम आत्मीयता के उन्हीं क्षणों में गुजर रहे हैं? मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर चीख पड़ना चाहती हूं, नहीं! नहीं! नहीं! पर कॉफी सिप करने के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कर पाती। मेरा यह विरोध हृदय की न जाने कौन–सी अतल गहराइयों में डूब जाता है।

निशीथ मुझे बिल नहीं देने देता। एक विचित्र–सी भावना मेरे मन में उठती है कि छीना–झपटी में किसी तरह मेरा हाथ इसके हाथ से छू जाए! मैं अपने स्पर्श से उसके मन के तारों को झनझना देना चाहती हूं। पर वैसा अवसर नहीं आता। बिल वही देता है, मुझसे तो विरोध भी नहीं किया जाता।

मन में प्रचंड तूफान! पर फिर भी निर्विकार भाव से मैं टैक्सी में आकर बैठती हूं फिर वही मौन, वही दूरी। पर जाने क्या है कि मुझे लगता है कि निशीथ मेरे बहुत निकट आ गया है, बहुत ही निकट! बार–बार मेरा मन करता है कि क्यों नहीं निशीथ मेरा हाथ पकड़ लेता, क्यों नहीं मेरे कंधे पर हाथ रख देता? मैं जरा भी बुरा नहीं मानूंगी, जरा भी नहीं! पर वह कुछ भी नहीं करता।

टिप्पणी

सोते समय रोज की तरह मैं आज भी संजय का ध्यान करते हुए सोना चाहती हूं, पर निशीथ है कि बार–बार संजय की आकृति को हटाकर स्वयं आ खड़ा होता है।

कलकत्ता

अपनी मजबूरी पर खीज–खीज जाती हूं। आज कितना अच्छा मौका था सारी बात बता देने का! पर मैं जाने कहां भटकी थी कि कुछ भी नहीं बता पाई।

शाम को मुझे निशीथ अपने साथ 'लेक' ले गया। पानी के किनारे हम घास पर बैठ गए। कुछ दूर पर काफी भीड़–भाड़ और चहल–पहल थी, पर यह स्थान अपेक्षाकृत शांत था। सामने लेक के पानी में छोटी–छोटी लहरें उठ रही थीं। चारों ओर के वातावरण का कुछ विचित्र–सा भाव मन पर पड़ रहा था।

"अब तो तुम यहां आ जाओगी!" मेरी ओर देखकर उसने कहा।

"हां!"

"नौकरी के बाद क्या इरादा है?"

मैंने देखा, उसकी आंखों में कुछ जानने की आतुरता फैलती जा रही है, शायद कुछ कहने की भी। मुझसे कुछ जानकर वह अपनी बात कहेगा।

"कुछ नहीं!" जाने क्यों मैं यह कह गई। कोई है जो मुझे कचोटे डाल रहा है। क्यों नहीं मैं बता देती कि नौकरी के बाद मैं संजय से विवाह करूंगी, मैं संजय से प्रेम करती हूं, वह मुझसे प्रेम करता है? वह बहुत अच्छा है, बहुत ही! वह मुझे तुम्हारी तरह धोखा नहीं देगा, पर मैं कुछ भी तो नहीं कह पाती। अपनी इस बेबसी पर मेरी आंखें छलछला आती हैं। मैं दूसरी ओर मुंह फेर लेती हूं।

"तुम्हारे यहां आने से मैं बहुत खुश हूं!"

मेरी सांस जहां–की–तहां रुक जाती है आगे के शब्द सुनने के लिए, पर शब्द नहीं आते। बड़ी कातर, करुण और याचना–भरी दृष्टि से मैं उसे देखती हूं, मानो कह रही होऊं कि तुम कह क्यों नहीं देते निशीथ, कि आज भी तुम मुझे प्यार करते हो, तुम मुझे सदा अपने पास रखना चाहते हो, जो कुछ हो गया है, उसे भूलकर तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो? कह दो, निशीथी, कह दो! यह सुनने के लिए मेरा मन अकुला रहा है, छटपटा रहा है! मैं बुरा नहीं मानूंगी, जरा भी बुरा नहीं मानूंगी। मान ही कैसे सकती हूं निशीथ! इतना सब हो जाने के बाद भी शायद मैं तुम्हें प्यार करती हूं– शायद नहीं, सचमुच ही मैं तुम्हें प्यार करती हूं।

मैं जानती हूं– तुम कुछ नहीं कहोगे, सदा से ही मितभाषी जो हो। फिर भी कुछ सुनने की आतुरता लिए मैं तुम्हारी तरफ देखती रहती हूं। पर तुम्हारी नजर तो लेक के पानी पर जमी हुई है शांत, मौन!

आत्मीयता के ये क्षण अनकहे भले ही रह जाएं पर अनबूझे नहीं रह सकते। तुम चाहे न कहो, पर मैं जानती हूं, तुम आज भी मुझे प्यार करते हो, बहुत प्यार करते हो! मेरे कलकत्ता आ जाने के बाद इस टूटे संबंध को फिर से जोड़ने की बात ही तुम इस समय सोच रहे हो। तुम आज भी मुझे अपना ही समझते हो, तुम जानते हो, आज भी दीपा तुम्हारी है! और मैं?

टिप्पणी

लगता है, इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस मुझमें नहीं है। मुझे डर है कि जिस आधार पर मैं तुमसे नफरत करती थी, उसी आधार पर कहीं मुझे अपने से नफरत न करनी पड़े।

लगता है, रात आधी से अधिक ढल गई है।

कानपुर

मन में उत्कट अभिलाषा होते हुए भी निशीथ की आवश्यक मीटिंग की बात सुनकर मैंने कह दिया था कि तुम स्टेशन मत आना। इरा आई थी, पर गाड़ी पर बिठाकर ही चली गई, या कहूं कि मैंने जबर्दस्ती ही उसे भेज दिया। मैं जानती थी कि लाख मना करने पर भी निशीथ आएगा और विदा के अंतिम क्षणों में मैं उसके साथ अकेली ही रहना चाहती थी। मन में एक दबी–सी आशा थी कि चलते समय ही शायद वह कुछ कह दे। गाड़ी चलने में जब दस मिनट रह गए तो देखा, बड़ी व्यग्रता से डिब्बों में झांकता–झांकता निशीथ आ रहा था। पागल! उसे इतना तो समझना चाहिए कि उसी प्रतीक्षा में मैं यहां बाहर खड़ी हूं!

मैं दौड़कर उसके पास जाती हूं, "आप क्यों आए?" पर मुझे उसका आना बड़ा अच्छा लगता है! वह बहुत थका हुआ लग रहा है। शायद सारा दिन बहुत व्यस्त रहा और दौड़ता–दौड़ता मुझे सी–ऑफ करने यहां आ पहुंचा। मन करता है कुछ ऐसा करूं, जिससे इसकी सारी थकान दूर हो जाए। पर क्या करूं? हम डिब्बे के पास आ जाते हैं।

"जगह अच्छी मिल गई?" वह अंदर झांकते हुए पूछता है।

"हां।"

"पानी–वानी तो है?"

"है।"

"बिस्तर फैला लिया?"

मैं खीज पड़ती हूं। वह शायद समझ जाता है, सो चुप हो जाता है। हम दोनों एक क्षण को एक–दूसरे की ओर देखते हैं। मैं उसकी आंखों में विचित्र–सी छायाएं देखती हूं, मानो कुछ है, जो उसके मन में घुट रहा है, उसे मथ रहा है, पर वह कह नहीं पा रहा है। वह क्यों नहीं कह देता? क्यों नहीं अपने मन की इस घुटन को हल्का कर लेता?

"आज भीड़ विशेष नहीं है," चारों ओर नजर डालकर वह कहता है।

मैं भी एक बार चारों ओर देख लेती हूं, पर नजर मेरी बार–बार घड़ी पर ही जा रही है। जैसे–जैसे समय सरक रहा है, मेरा मन किसी गहरे अवसाद में डूब रहा है। मुझे कभी उस पर दया आती है तो कभी खीज। गाड़ी चलने में केवल तीन मिनट बाकी रह गए हैं। एक बार फिर हमारी नजरें मिलती हैं।

"ऊपर चढ़ जाओ, अब गाड़ी चलनेवाली है।"

बड़ी असहाय–सी नजर से मैं उसे देखती हूं मानो कह रही होऊं, तुम्हीं चढ़ा दो। और फिर धीरे–धीरे चढ़ जाती हूं। दरवाजे पर मैं खड़ी हूं और वह नीचे प्लेटफॉर्म पर।

"जाकर पहुंचने की खबर देना। जैसे ही मुझे इधर कुछ निश्चित रूप से मालूम होगा, तुम्हें सूचना दूंगा।"

टिप्पणी

मैं कुछ बोलती नहीं, बस उसे देखती रहती हूं।

सीटी, हरी झंडी, फिर सीटी। मेरी आंखें छलछला आती हैं।

गाड़ी एक हल्के–से झटके के साथ सरकने लगती है। वह गाड़ी के साथ कदम आगे बढ़ाता है और मेरे हाथ पर धीरे–से अपना हाथ रख देता है। मेरा रोम–रोम सिहर उठता है। मन करता है चिल्ला पड़ूं– मैं सब समझ गई, निशीथ, सब समझ गई! जो कुछ तुम इन चार दिनों में नहीं कह पाए, वह तुम्हारे इस क्षणिक स्पर्श ने कह दिया। विश्वास करो, यदि तुम मेरे हो तो मैं भी तुम्हारी हूं, केवल तुम्हारी, एकमात्र तुम्हारी! पर मैं कुछ कह नहीं पाती। बस, साथ चलते निशीथ को देखती–भर रहती हूं। गाड़ी के गति पकड़ते ही वह हाथ को जरा–सा दबाकर छोड़ देता है। मेरी छलछलाई आंखें मुंद जाती हैं। मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, बाकी सब झूठ है, अपने को भूलने का, भरमाने का, छलने का असफल प्रयास है।

आंसू–भरी आंखों से मैं प्लेटफॉर्म को पीछे छूटता हुआ देखती हूं। सारी आकृतियां धुंधली–सी दिखाई देती हैं। असंख्य हिलते हुए हाथों के बीच निशीथ के हाथ को, उस हाथ को, जिसने मेरा हाथ पकड़ा था, ढूंढ़ने का असफल–सा प्रयास करती हूं। गाड़ी प्लेटफॉर्म को पार कर जाती है, और दूर–दूर तक कलकत्ता की जगमगाती बत्तियां दिखाई देती हैं। धीरे–धीरे वे सब दूर हो जाती हैं, पीछे छूटती जाती हैं। मुझे लगता है, यह दैत्याकार ट्रेन मुझे मेरे घर से कहीं दूर ले जा रही है– अनदेखी, अनजानी राहों में गुमराह करने के लिए, भटकाने के लिए।

बोझिल मन से मैं अपने फैलाए हुए बिस्तर पर लेट जाती हूं। आंखें बंद करते ही सबसे पहले मेरे सामने संजय का चित्र उभरता है कानपुर जाकर मैं उसे क्या कहूंगी? इतने दिनों तक उसे छलती आई, अपने को छलती आई, पर अब नहीं। मैं उसे सारी बात समझा दूंगी। कहूंगी, संजय जिस संबंध को टूटा हुआ जानकर मैं भूल चुकी थी, उसकी जड़ें हृदय की किन अतल गहराइयों में जमी हुई थीं, इसका अहसास कलकत्ता में निशीथ से मिलकर हुआ। याद आता है, तुम निशीथ को लेकर सदैव संदिग्ध रहते थे, पर तब मैं तुम्हें ईर्ष्यालु समझती थी, आज स्वीकार करती हूं कि तुम जीते, मैं हारी! सच मानना संजय, ढाई साल मैं स्वयं भ्रम में थी और तुम्हें भी भ्रम में डाल रखा था, पर आज भ्रम के, छलना के सारे ही जाल छिन्न–भिन्न हो गए हैं। मैं आज भी निशीथ को प्यार करती हूं, और यह जानने के बाद, एक दिन भी तुम्हारे साथ और छल करने का दुस्साहस कैसे करूं? आज पहली बार मैंने अपने संबंधों का विश्लेषण किया, तो जैसे सब कुछ ही स्पष्ट हो गया और जब मेरे सामने सब कुछ स्पष्ट हो गया, तो तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊंगी, तुम्हारे सामने मैं चाहूं तो भी झूठ नहीं बोल सकती।

आज लग रहा है, तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो भी भावना है वह प्यार की नहीं, केवल कृतज्ञता की है। तुमने मुझे उस समय सहारा दिया था, जब अपने पिता और निशीथ को खोकर मैं चूर–चूर हो चुकी थी। सारा संसार मुझे वीरान नजर आने लगा था, उस समय तुमने अपने स्नेहिल स्पर्श से मुझे जिला दिया, मेरा मुरझाया, मरा मन हरा हो उठा, मैं कृतकृत्य हो उठी, और समझने लगी कि मैं तुमसे प्यार करती हूं। पर प्यार की बेसुध घड़ियां, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वे पल, जहां शब्द चुक जाते हैं, हमारे जीवन में कभी

टिप्पणी

नहीं आए। तुम्हीं बताओ, आए कभी? तुम्हारे असंख्य आलिंगनों और चुंबनों के बीच भी, एक क्षण के लिए भी तो मैंने कभी तन–मन की सुध बिसरा देनेवाली पुलक या मादकता का अनुभव नहीं किया।

सोचती हूं, निशीथ के चले जाने के बाद मेरे जीवन में एक विराट शून्यता आ गई थी, एक खोखलापन आ गया था, तुमने उसकी पूर्ति की। तुम पूरक थे, मैं गलती से तुम्हें प्रियतम समझ बैठी।

मुझे क्षमा कर दो संजय और लौट जाओ। तुम्हें मुझ जैसी अनेक दीपाएं मिल जाएंगी, जो सचमुच ही तुम्हें प्रियतम की तरह प्यार करेंगी। आज एक बात अच्छी तरह जान गई हूं कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है, बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का, भरमाने का प्रयास–मात्र होता है।

इसी तरह की असंख्य बातें मेरे दिमाग में आती हैं, जो मैं संजय से कहूंगी। कह सकूंगी यह सब? लेकिन कहना तो होगा ही। उसके साथ अब एक दिन भी छल नहीं कर सकती। मन से किसी और की आराधना करके तन से उसकी होने का अभिनय करती रहूं? छीः! नहीं जानती, यही सब सोचते–सोचते मुझे कब नींद आ गई।

लौटकर अपना कमरा खोलती हूं, तो देखती हूं, सब कुछ ज्यों–का–त्यों है, सिर्फ फूलदान के रजनीगंधा मुरझा गए हैं। कुछ फूल झरकर जमीन पर इधर–उधर भी बिखर गए हैं।

आगे बढ़ती हूं तो जमीन पर पड़ा एक लिफाफा दिखाई देता है। संजय की लिखाई है, खोला तो छोटा–सा पत्र था–

दीपा,

तुमने तो कलकत्ता जाकर कोई सूचना ही नहीं दी। मैं आज ऑफिस के काम से कटक जा रहा हूं। पांच–छः दिन में लौट आऊंगा। तब तक तुम आ ही जाओगी। जानने को उत्सुक हूं कि कलकत्ता में क्या हुआ?

तुम्हारा

संजय

एक लंबा निःश्वास निकल जाता है। लगता है, एक बड़ा बोझ हट गया। इस अवधि में तो मैं अपने को अच्छी तरह तैयार कर लूंगी। नहा–धोकर सबसे पहले मैं निशीथ को पत्र लिखती हूं। उसकी उपस्थिति से जो हिचक मेरे होंठ बंद किए हुए थी, दूर रहकर वह अपने–आप ही टूट जाती है। मैं स्पष्ट शब्दों में लिख देती हूं कि चाहे उसने कुछ नहीं कहा, फिर भी मैं सब कुछ समझ गई हूं। साथ ही यह भी लिख देती हूं कि मैं उसकी उस हरकत से बहुत दुखी थी, बहुत नाराज भी, पर उसे देखते ही जैसे सारा क्रोध बह गया। इस अपनत्व में क्रोध भला टिक भी कैसे पाता? लौटी हूं, तब से न जाने कैसी रंगीनी और मादकता मेरी आंखों के आगे छाई है।

एक खूबसूरत–से लिफाफे में उसे बंद करके मैं स्वयं पोस्ट करने जाती हूं।

रात में सोती हूं तो अनायास ही मेरी नजर सूने फूलदान पर जाती है। मैं करवट बदलकर सो जाती हूं।

टिप्पणी

कानपुर

आज निशीथ को पत्र लिखे पांचवां दिन है। मैं तो कल ही उसके पत्र की राह देख रही थी। पर आज की भी दोनों डाकें निकल गईं। जाने कैसा सूना–सूना, अनमना–अनमना लगता रहा सारा दिन! किसी भी तो काम में जी नहीं लगता। क्यों नहीं लौटती डाक से ही उत्तर दे दिया उसने? समझ में नहीं आता, कैसे समय गुजारूं!

मैं बाहर बालकनी में जाकर खड़ी हो जाती हूं। एकाएक खयाल आता है, पिछले ढाई सालों से करीब इसी समय, यहीं खड़े होकर मैंने संजय की प्रतीक्षा की है। क्या आज मैं संजय की प्रतीक्षा कर रही हूं? या मैं निशीथ के पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूं? शायद किसी की नहीं, क्योंकि जानती हूं कि दोनों में से कोई भी नहीं आएगा। फिर?

निरुद्देश्य–सी कमरे में लौट पड़ती हूं। शाम का समय मुझसे घर में नहीं काटा जाता। रोज ही तो संजय के साथ घूमने निकल जाया करती थी। लगता है, यहीं बैठी रही तो दम ही घुट जाएगा। कमरा बंद करके मैं अपने को धकेलती–सी सड़क पर ले आती हूं। शाम का धुंधलका मन के बोझ को और भी बढ़ा देता है। कहां जाऊं? लगता है, जैसे मेरी राहें भटक गई हैं, मंजिल खो गई है। मैं स्वयं नहीं जानती, आखिर मुझे जाना कहां है। फिर भी निरुद्देश्य–सी चलती रहती हूं। पर आखिर कब तक यों भटकती रहूं? हारकर लौट पड़ती हूं।

आते ही मेहता साहब की बच्ची तार का एक लिफाफा देती है।

धड़कते दिल से मैं उसे खोलती हूं। इरा का तार था–'नियुक्ति हो गई है। बधाई!'

इतनी बड़ी खुशखबरी पाकर भी जाने क्या है कि खुश नहीं हो पाती। यह खबर तो निशीथ भेजनेवाला था। एकाएक ही एक विचार मन में आता है– क्या जो कुछ मैं सोच गई, वह निरा भ्रम ही था, मात्र मेरी कल्पना, मेरा अनुमान? नहीं–नहीं! उस स्पर्श को मैं भ्रम कैसे मान लूं, जिसने मेरे तन–मन को डुबो दिया था, जिसके द्वारा उसके हृदय की एक–एक परत मेरे सामने खुल गई थी? लेक पर बिताए उन मधुर क्षणों को भ्रम कैसे मान लूं, जहां उसका मौन ही मुखरित होकर सब कुछ कह गया था? आत्मीयता के वे अनकहे क्षण! तो फिर उसने पत्र क्यों नहीं लिखा? क्या कल उसका पत्र आएगा? क्या आज भी उसे वही हिचक रोके हुए है?

तभी सामने की घड़ी टन्–टन् करके नौ बजाती है। मैं उसे देखती हूं। यह संजय की लाई हुई है। लगता है, जैसे यह घड़ी घंटे सुना–सुनाकर मुझे संजय की याद दिला रही है। फहराते ये हरे पर्दे, यह हरी बुक–रैक, यह टेबल, यह फूलदान, सभी तो संजय के ही लाए हुए हैं। मेज पर रखा यह पेन उसने मुझे साल–गिरह पर लाकर दिया था। अपनी चेतना के इन बिखरे सूत्रों को समेटकर मैं फिर पढ़ने का प्रयास करती हूं, पर पढ़ नहीं पाती। हारकर मैं पलंग पर लेट जाती हूं।

सामने के फूलदान का सूनापन मेरे मन के सूनेपन के और अधिक बढ़ा देता है। मैं कसकर आंखें मूंद लेती हूं। एक बार फिर मेरी आंखों के आगे लेक का स्वच्छ, नीला जल उभर आता है, जिसमें छोटी–छोटी लहरें उठ रही थीं। उस जल की ओर देखते हुए निशीथ

टिप्पणी

की आकृति उभरकर आती है। वह लाख जल की ओर देखे, पर चहेरे पर अंकित उसके मन की हलचल को मैं आज भी, इतनी दूर रहकर भी महसूस करती हूं। कुछ न कह पाने की मजबूरी, उसकी विवशता, उसकी घुटन आज भी मेरे सामने साकार हो उठती है। धीरे–धीरे लेक के पानी का विस्तार सिमटता जाता है, और एक छोटी–सी राइटिंग टेबल में बदल जाता है, और मैं देखती हूं कि एक हाथ में पेन लिए और दूसरे हाथ की उंगलियों को बालों में उलझाए निशीथ बैठा है वही मजबूरी, वही विवशता, वही घुटन लिए। वह चाहता है, पर जैसे लिख नहीं पाता। वह कोशिश करता है, पर उसका हाथ बस कांपकर रह जाता है। ओह! लगता है, उसकी घुटन मेरा दम घोंटकर रख देगी। मैं एकाएक ही आंखें खोल देती हूं। वही फूलदान, पर्दे, मेज, घड़ी!

आखिर आज निशीथ का पत्र आ गया। धड़कते दिल से मैंने उसे खोला। इतना छोटा–सा पत्र!

प्रिय दीपा,

तुम अच्छी तरह पहुंच गई, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम्हें अपनी नियुक्ति का तार तो मिल ही गया होगा। मैंने कल ही इरा जी को फोन करके सूचना दे दी थी, और उन्होंने बताया था कि तार दे देंगी। ऑफिस की ओर से भी सूचना मिल जाएगी।

इस सफलता के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करना। सच, मैं बहुत खुश हूं कि तुम्हें यह काम मिल गया! मेहनत सफल हो गई। शेष फिर।

शुभेच्छु,

निशीथ

बस? धीरे–धीरे पत्र के सारे शब्द आंखों के आगे लुप्त हो जाते हैं, रह जाता है केवल, "शेष फिर!"

तो अभी उसके पास 'कुछ' लिखने को शेष है, क्यों नहीं लिख दिया उसने अभी? क्या लिखेगा वह?

"दीप!"

मैं मुड़कर दरवाजे की ओर देखती हूं। रजनीगंधा के ढेर सारे फूल लिए मुस्कुराता–सा संजय खड़ा है। एक क्षण मैं संज्ञा–शून्य–सी उसे इस तरह देखती हूं, मानो पहचानने की कोशिश कर रही हूं। वह आगे बढ़ता है, तो मेरी खोई हुई चेतना लौटती है, और विक्षिप्त–सी दौड़कर उससे लिपट जाती हूं।

"क्या हो गया है तुम्हें, पागल हो गई हो क्या?"

"तुम कहां चले गए थे संजय?" और मेरा स्वर टूट जाता है। अनायास ही आंखों से आंसू बह चलते हैं।

"क्या हो गया? कलकत्ता का काम नहीं मिला क्या? मारो गोली काम को। तुम इतनी परेशान क्यों हो रही हो उसके लिए?"

टिप्पणी

पर मुझसे कुछ नहीं बोला जाता। बस, मेरी बांहों की जकड़ कसती जाती है, कसती जाती है। रजनीगंधा की महक धीरे–धीरे मेरे तन–मन पर छा जाती है। तभी मैं अपने भाल पर संजय के अधरों का स्पर्श महसूस करती हूं, और मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था।

और हम दोनों एक–दूसरे के आलिंगन में बंधे रहते हैं–चुम्बित, प्रति–चुम्बित।

5.5.3 मन्नू भंडारी की कहानी कला की विशेषताएं

मन्नू भंडारी की कहानी कला की विशेषताओं के विभिन्न तत्वों के द्वारा जाना जा सकता है–

कथानक

कथानक की दृष्टि से मन्नू भंडारी का कथा–साहित्य सामाजिक ही अधिक रहा है। सामाजिक परिवेश की कहानियों में मन्नू भंडारी को काफी सफलता मिली है। उनकी कहानी के केंद्र में प्रायः नारी की ही प्रमुख भूमिका रही है। उन्होंने नारी जीवन को काफी गहरी दृष्टि से परखा है। उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। कहीं अनेक नारी पात्र समझौता करते दीखते हैं तो कहीं अड़ियल रवैया भी अपनाते हैं। उनका स्वाभिमान भी अपनी जगह रहता है। भारतीय जीवन की कई पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं को लेकर उन्होंने अद्‌भुत कहानियां लिखी हैं। उनके कथानक वास्तविकता के बहुत ही समीप होते हैं तथा यथार्थ का पुट लिए दिखते हैं।

चरित्र चित्रण

मन्नू भंडारी की कहानियों की सबसे सशक्त विशेषता नारी पात्रों के चरित्रों को बड़ी चतुराई से गढ़ना रही है। इनकी कहानियां चरित्र प्रधान रही हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना भी उन्हें खूब आता है। उनके चरित्र चित्रण में कल्पना कम, अनुभूतियां अधिक होती हैं। उन्होंने नारी और पुरुष मन के भी गूढ़ रहस्यों को अपनी कहानी के चरित्रों में काफी गहराई और गंभीरतापूर्वक टटोला है, परखा है और बड़ी ही सच्चाई के साथ उन्हें व्यक्त भी किया है। उनके पात्रों के चरित्रों में अच्छाई और बुराई मिली–जुली रहती है। वे पाठकों को अपनी ओर खींचती हैं। उनके पात्र मध्यमवर्गीय अधिक होते हैं।

कथोपकथन

मन्नू भंडारी की कहानियों के कथोपकथन स्वाभाविक और सजीव लगते हैं। वे देशकाल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुकूल होते हैं। उनके पात्र मर्यादित होते हैं किंतु मानवीय गुण और अवगुणों के शिकार भी होते रहते हैं। उनके कथोपकथन में जिज्ञासा और तारतम्यता निरंतर बनी रहती है।

देशकाल, वातावरण योजना

मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों में परिस्थितियों और वातावरण का चित्रण बड़ी ही संजीदगी से किया है। उनके सभी वर्णन सजीव और कथानक के विकास में सहायक होते हैं। घटनाओं के वर्णन भी वास्तविकता लिए होते हैं। इसी प्रकार घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण में, पात्रों के चरित्र को प्रस्तुत करने में, मन्नू भंडारी को महारथ हासिल है।

टिप्पणी

भाषा–शैली

मन्नू भंडारी की कहानियों में भाषा–शैली पात्रों के चरित्रों को पूरा संबल प्रदान करती है। स्वाभाविक भाषा का प्रयोग होता है। उनकी भाषा आम आदमी की भाषा होती है। शब्दों का भंडार उनके पास प्रचुर मात्रा में है। भाषा के द्वारा ही वे प्रत्येक प्रकार के भाव को सुस्पष्ट करने में सफल रहती हैं। उनकी भाषा सरल, सजीव और पात्रों के चरित्रों के अनुरूप ही होती है।

इसी प्रकार मन्नू भंडारी की कहानियों के लेखन की शैली भी अनेक रूपों में मिलती हैं। वह वर्णनात्मक, नाटकीय और हास्य का पुट लिए भी होती है। उनका शिल्प विधान भी देखने योग्य रहता है।

उद्देश्य

मन्नू भंडारी का कहानी–संसार उद्देश्यपूर्ण है। वह किसी–न–किसी निश्चित उद्देश्य का प्रतिपादन करता हुआ चलता है। मन्नू भंडारी का अपना जीवन दर्शन है। उनकी अपनी विचारधारा है जो उनकी कहानियों में स्पष्ट रूप से झलकती है। वे जीवन की सच्चाई को जाहिर करने में लगी रहती हैं, वह भी कलात्मक रूप में।

हिंदी कथा–साहित्य में स्थान

मन्नू भंडारी ने कम लिखा है किंतु जितना भी लिखा है वह उनको सुधि लेखकों की श्रेणी में सम्मानीय स्थान दिलाता है।

5.5.4 कहानी का सार

मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' मुख्य रूप से तीन पात्रों के बीच घूमती रहती है–दीपा, निशीथ और संजय।

कहानी पटना, कानपुर और कलकत्ता शहरों के बीच यात्रा करती रहती है।

दीपा पटना से कानपुर रिसर्च करने के लिए आयी हुई है। उसे ढाई साल यहां आए हुए हो चुके हैं। यहां वह जिस मकान के कमरे में रहती है उसी मकान के आस–पास संजय भी रहता है। इस ढाई वर्ष के दौरान एक अकेली, शहर में रह रही लड़की को संजय हर प्रकार का सहारा देता है। उसके हर अच्छे–बुरे में काम आता है। इस प्रकार वह दीपा का विश्वास पूरी तरह जीत लेता है। दीपा भी उस पर पूरी तरह निर्भर रहने लगी है। यही नहीं वह तो उसको अपना जीवन साथी बनाने का निश्चय भी कर बैठी है।

दीपा की एक सहेली इरा कलकत्ता में अपने पति और बच्चे के साथ रहती है। कलकत्ते में ही निशीथ भी रहता है। यह निशीथ वही है जिसने दीपा के साथ विवाह पक्का करके भी अकारण विवाह तोड़कर उसके सारे सपने चूर–चूर कर दिए थे। अतः दीपा उससे नफरत करती है किंतु दूसरी ओर उसे अपना पहला प्यार भी मानती है लेकिन अब मुद्दतों से उनके बीच कोई संपर्क वाली बात नहीं है। हां, दीपा को यह पता जरूर है कि निशीथ कलकत्ता में ही काम करता है।

दीपा और निशीथ के प्रेम–संबंध और विवाह वाली बात को संजय भी भली–भांति जानता है। इसलिए वह जब–तब उसे चिढ़ाता रहता है, मजाक करता रहता है, किंतु

टिप्पणी

वह निशीथ को लेकर अंदर ही अंदर सशंकित भी रहता है। यह बात दीपा भी बखूबी समझती है।

इरा के कहने से दीपा कलकत्ते में सर्विस के लिए आवेदन भेजती है। दीपा का साक्षात्कार–पत्र तीन सौ रुपये की नौकरी के लिए कलकत्ते से आ जाता है। वह कलकत्ता अकेले जाते हुए डरती है, इसलिए वह संजय को साथ ले जाना चाहती है, किंतु संजय को ऑफिस से अवकाश नहीं मिल पाता। सो, दीपा अपने आने और स्टेशन पर आकर उसे लेने की खबर इरा को दे देती है और नियत तिथि और समय पर हावड़ा स्टेशन पर पहुंच जाती है। इरा जब उसे वहां नहीं दिखलाई देती तब वह कुली से अपना सामान उठवाकर जैसे ही चलती है, तभी पीछे से इरा उसका स्पर्श करती है। दोनों टैक्सी से घर आ जाती हैं। शाम को इरा दीपा को कॉफी हाऊस ले जाती है। तभी वहीं उनको निशीथ भी यकायक मिल जाता है। दीपा उसे नजरअंदाज़ करना चाहती है किंतु ऐसा हो नहीं पाता। एक–दूसरे का आमना–सामना हो ही जाता है। इरा उसको अपने घर आमंत्रित कर लेती है। वह नियत समय पर पहुंच जाता है। जब उसे दीपा के साक्षात्कार की बात ज्ञात होती है तब वह उसके लिए पूरी कोशिश करने में लग जाता है और दीपा को विश्वास दिलाता है कि यह नौकरी उसे अवश्य ही मिली समझो। फिर निशीथ और दीपा घूमने जाते हैं। वह उसे 'स्काई–रूम' रेस्टोरेंट में ले जाता है। वहां जलपान के बीच बातें भी होती हैं। उसके व्यवहार से दीपा समझ जाती है कि निशीथ के मन में अभी भी उसके लिए कुछ है या फिर दीपा के साथ किए गए अपमान का प्रायश्चित करने के उद्देश्य से ही वह यह सब कर रहा है। इतना जानकर दीपा चाहती है कि वह उसे बतला दे कि अब वह संजय के साथ शीघ्र ही शादी करने जा रही है। उसके साथ उसका जो संबंध था वह एक छल था, भ्रम था, झूठ था।

दीपा का इंटरव्यू हो जाता है। फिर भी वह नौकरी मिल जाने के प्रति ज्यादा विश्वस्त नहीं है, किंतु निशीथ उसे पूरा आश्वासन देता है। निशीथ कहता है कि आवश्यक मीटिंग के कारण वह उसे स्टेशन छोड़ने नहीं आ पाएगा। सो, उसे स्टेशन छोड़ने इरा आई थी, किंतु उसे गाड़ी छूटने से पहले ही दीपा ने भेज दिया था। गाड़ी छूटने से 10 मिनट पहले निशीथ प्लेटफार्म पर पहुंच गया था। उसके आने की दीपा को उम्मीद भी थी, इसीलिए वह डिब्बे से बाहर खड़ी थी। वह उससे यात्रा संबंधी बातें पूछता है। आत्मीयता दिखलाता है। यह देखकर दीपा को उस पर दया भी आती है, तो कभी खीझ भी आती है। जब गाड़ी चलने में तीन मिनट रह जाते हैं तब निशीथ दीपा को डिब्बे में जाकर बैठ जाने को कहता है। दोनों एक–दूसरे को देखते हैं। गाड़ी अपने नियत समय पर जब प्लेटफार्म छोड़ने लगती है तब निशीथ दीपा के हाथ पर धीरे से अपना हाथ रख देता है। इससे दीपा का रोम–रोम सिहर उठता है। वह बिखरने लगती है और धीरे–धीरे गाड़ी गति पकड़ने लगती है। दोनों के बीच दूरियां बढ़ने लगती हैं।

रास्ते भर दीपा के मन में संजय को लेकर ऊहापोह की स्थिति चलचित्र की भांति चल ाी रहती है। वह सोचती है कि उसके मन में संजय के प्रति जो भावना है, वह प्यार की नहीं है केवल कृतज्ञता की है, क्योंकि उसने उसे उस समय सहारा दिया था जब वह अपने पिता और निशीथ को खोकर चूर–चूर हो चुकी थी। उसी कृतज्ञता को वह प्यार समझ बैठी थी। निशीथ के चले जाने के बाद की शून्यता को संजय ने अपने व्यवहार व अपनत्व से पूरी तरह भर दिया था। इसलिए दोनों एक–दूसरे के करीब आ गए थे और यहीं दीपा शायद गलती से उसे अपना प्रियतम समझ बैठी थी, आदि–आदि।

टिप्पणी

कानपुर आने पर वह अपना कमरा खोलकर सब कुछ यथावत देखती है। केवल रजनीगंधा के फूल मुरझा गए हैं। उनमें से कुछ फूल झड़कर जमीन पर इधर–उधर बिखर गए हैं। कमरे में दीपा को जमीन पर पड़ा लिफाफा मिलता है। वह खोलकर पढ़ती है। संजय ने लिखा है कि वह ऑफिस के कार्य से कटक जा रहा है। उसने पांच–छः दिन में लौटने के बारे में भी लिखा था।

दीपा ने नहा–धोकर तरोताजा होकर निशीथ को अपने कानपुर सकुशल पहुंचने का पत्र लिखा और उसे स्वयं ही पोस्ट–बॉक्स में जाकर डाल आई।

अब वह निशीथ के पत्र की प्रतीक्षा करती है। वह बालकनी में खड़े होकर पोस्टमैन को देखती है। काफी देर खड़ी रहने के बाद वह निराश हो अपने कमरे में लौट आती है। तभी मेहता साहब की बच्ची उसे तार का एक लिफाफा दे जाती है। उससे उसे अपनी नियुक्ति होने की खबर मिलती है। फिर भी उसे इसलिए खुशी नहीं होती कि यह खबर तो निशीथ भेजने वाला था, किंतु तार भेजा है इरा ने। इसी बात को लेकर उसे निशीथ से फिर शिकायत होने लगी थी। वह कल भी उसके पत्र की प्रतीक्षा में मन को लगाए बैठी थी। फिर वह संजय के खयालों में लौट आती है। संजय और निशीथ को लेकर उधेड़–बुन करने लगती है।

अगले दिन दीपा को निशीथ का पत्र मिलता है। उसमें उसने लिखा कि कल ही मैंने इरा जी को तुम्हारी नियुक्ति की खबर दे दी थी और तुम्हें भी सूचित करने के लिए कह दिया था। शेष फिर–कहकर निशीथ ने पत्र लिखना बंद कर दिया था।

तभी दीपा ने मुड़कर दरवाजे की ओर देखा तो संजय रजनीगंधा के ढेर सारे फूल लिए खड़ा मुस्करा रहा था। दोनों आपस में एक–दूसरे को देखकर एक हो जाते हैं।

5.5.5 कहानी की समीक्षा

मन्नू भंडारी की कहानियों में जीवन के मूल्यों को छुआ गया है। प्रगतिशील जीवन–दृष्टि से प्रभावित होकर उन्होंने अपने रचना–संसार को युग और समाज की विसंगतियों तथा विषमताओं से जोड़ा है। वे आधुनिकता की सोच को लेकर आगे बढ़ी हैं। नारी के जीवन की घुटन, विवशता, चाह और आह को भी उन्होंने अपनी कहानियों में खूब स्थान दिया है।

कहानी की मूल संवेदना

मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' अंतर्द्वंद्व की कहानी है। इसमें मुख्य नारी पात्र का दोहरा चरित्र सामने आता है। वह अपने भूत और वर्तमान की भूल–भुलैया में पड़ी रहती है किंतु अंततः वर्तमान को ही सच मानकर सहर्ष स्वीकार कर लेती है। नारी मन की संवेदना इस कहानी में अपने चरम पर दिखलाई गई है। उसे एक साहसी लड़की दिखलाया गया है। हालांकि वह सामाजिक परिवेश से भी भयभीत रहती है। बदलते हुए, विघटित होते हुए मानव संबंध और दरकते हुए जीवन इस कहानी की विशेषता बन पड़े हैं।

टिप्पणी

5.5.6 कहानी कला के तत्व और 'यही सच है'

कहानी के सर्वमान्य तत्वों के आधार पर कह सकते हैं कि 'यही सच है' कहानी में ये सभी तत्व कमोबेश विद्यमान हैं।

कथावस्तु

जहां तक 'कथावस्तु' की बात है, उसके लिहाज से यह कहानी बिल्कुल सफल है। कहानी मुख्यतया तीन पात्रों के बीच घूमती है–दीपा, संजय और निशीथ। इसी प्रकार तीन शहर इस कहानी में हैं–पटना, कानपुर और कलकत्ता। कहानी शुरू होती है कानपुर से।

पटना से आकर कानपुर में दीपा रिसर्च कर रही है। वहीं से उसे कलकत्ता एक साक्षात्कार में जाना पड़ता है। वहां उसकी सहेली इरा सपरिवार रहती है। हां, वहां निशीथ भी है जिसने दीपा से रिश्ता बनाकर, बिना कोई खास वजह बतलाए खुद ही तोड़ दिया था। उसके बाद मिलना तो नहीं होता, किंतु, दीपा और निशीथ को एक–दूसरे की खबर रहती ही है। उधर संजय कानपुर में दीपा को पूरा सपोर्ट करता है। दीपा उस पर 'डिपेंड' भी रहने लगी है। आखिर, अकेली लड़की का कानपुर जैसे शहर में, कोई तो अपना होना ही चाहिए–दुःख, दर्द और सुख को बांटने वाला। इसके लिए दीपा और संजय सहर्ष एक–दूसरे के लिए पूर्ण समर्पित भाव रखते हैं। सहज रूप से रहते हैं। दीपा जब साक्षात्कार के लिए कलकत्ता जाती है, तो वहां निशीथ भी मिलता है जबकि दीपा उससे मिलना नहीं चाहती, किंतु इरा के माध्यम से वह उससे मिलता है। दीपा के पुराने जख्म हरे हो जाते हैं। निशीथ उसे तीन सौ रुपये की नौकरी के लिए होने वाले साक्षात्कार में पूरा सहयोग और आश्वासन देता है। दीपा वहां से साक्षात्कार के बाद कानपुर लौट आती है। उसे यहीं आकर अपनी नियुक्ति का समाचार तार द्वारा मिलता है। तार इरा ने भेजा। कलकत्ता में निशीथ को पुनः मिलने के बाद दीपा के मन में निशीथ के प्रति जो भाव उठते हैं या जो वह कल्पना करती है वह कहीं नहीं निकलती है। अंततः दीपा भूत को सच न मानकर, वर्तमान को ही सच मानकर संजय की तरफ झुक जाती है।

चरित्र–चित्रण

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से दीपा और संजय का चरित्र काफी सूझ–बूझ से रचा गया है। दोनों ही सहज, सरल और सामान्य जीवन जीने के आदी हैं। इरा और निशीथ सह चरित्र बनकर रह गए हैं, किंतु उनका योगदान नकारा नहीं जा सकता।

कथोपकथन

इस दृष्टि से मन्नू भंडारी की यह कहानी पूरे सहज रूप में उभर कर आई है। हां, कहानी में दीपा के संबोधन के कारण भ्रम पैदा हो जाता है कि यह लेखिका की अपनी जिंदगी को छूती हुई कहानी तो नहीं है। सच तो नहीं है।

यह भी कटु सत्य है कि लेखक अपनी रचना में कहीं–न–कहीं, किसी–न–किसी रूप में विद्यमान रहता/रहती ही है। प्रत्यक्ष में या परोक्ष में, यह बात दूसरी है।

टिप्पणी

देशकाल और वातावरण

देशकाल और वातावरण कहानी को एक अनिवार्य विश्वास देता है। इस दृष्टि से 'यही सच है' कहानी सफल बन पड़ी है। देशकाल और वातावरण का मन्नू भंडारी ने स्वाभाविक वर्णन किया है।

भाषा शैली

इस कहानी की भाषा सहज, सरल, स्वाभाविक एवं व्यावहारिक है। भाषा पात्रों के मुंह ठूंसी नहीं लगती है। जो भाषा कहानी की होनी चाहिए वही इस कहानी में प्रयोग की गई है। शैली और शिल्प की दृष्टि से भी यह कहानी सहज और सरल ही कही जाएगी। कहानी बनावट से, हर दृष्टि से कोसों दूर है।

उद्देश्य

उद्देश्य की दृष्टि से यह कहानी थोड़ी भ्रामक स्थिति पैदा करती है कि इधर तो दीपा पटना से आकर रिसर्च कर रही है और उधर वह नौकरी के लिए कलकत्ता साक्षात्कार देने जा रही है। उसे नौकरी मिल भी जाती है। एक तरफ तो वह संजय से संबंधों की पींगें बढ़ा रही है तो दूसरी तरफ उसके मन में उसके पहले प्यार निशीथ की यादें भी करवटें ले रही हैं। इस प्रकार तीन नावों में एक साथ पांव हैं दीपा की–रिसर्च, नौकरी और विवाह! तो तीन उद्देश्य? और एक अकेली लड़की?

5.5.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

1. "परसों मुझे कलकत्ता जाना है। सच, बड़ा डर लग रहा है! कैसे क्या होगा? मान लो, इंटरव्यू में बहुत नर्वस हो गई तो? संजय को कह रही हूं कि वह भी साथ चले पर उसे ऑफिस से छुट्टी नहीं मिल सकती है। एक तो नया शहर, फिर इंटरव्यू? सच, अपना कोई साथी होता तो बड़ा सहारा मिल जाता। मैं कमरा लेकर अकेली रहती हूं। यों अकेली घूम–फिर भी लेती हूं, तो संजय सोचता है मुझ में बड़ी हिम्मत है। पर सच, बड़ा डर लग रहा है।"

संदर्भ

यह गद्यांश मन्नू भंडारी की सुप्रसिद्ध कहानी 'यही सच है' से लिया गया है।

प्रसंग

कानपुर से कलकत्ता। अकेली लड़की! पहली बार रात–दिन का इतना लंबा सफर। दीपा के मन में तरह–तरह की शंकाएं उथल–पुथल मचाए हुए हैं।

व्याख्या

भारतीय लड़की चाहे कितनी भी आधुनिक क्यों न हो, मध्यवर्गीय समाज के, परिवार के, उसके संस्कार यकायक उसे जब ऐसी परिस्थिति में डाल देते हैं तब यह सब कुछ सोचना स्वाभाविक हो जाता है क्योंकि हमारा जो आज का कुत्सित समाज है वह यह सब सोचने पर विवश कर देता है। ऐसे में वह कोई–न–कोई तो विश्वास भरा सहारा चाहती है, क्योंकि परिस्थितिवश यह उसकी अति जरूरी आवश्यकता बन जाती है।

टिप्पणी

विशेष

पूरा गद्यांश स्वाभाविकता और सहजता से ओंत–प्रोत बन पड़ा है। भाषा सहज, सरल और आम बोलचाल की है।

2. "आज सवेरे मेरा इंटरव्यू हो गया। मैं शायद नर्वस हो गई थी और जैसे उत्तर मुझे देने चाहिए थे, वैसे नहीं दे पायी पर निशीथ ने आकर बतलाया कि मेरा चुना जाना करीब–करीब तय हो गया है। मैं जानती हूं यह सब निशीथ की वजह से ही हुआ।"

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश मन्नू भंडारी की चर्चित कहानी 'यही सच है' से उद्धृत है।

प्रसंग

निशीथ उसका पहला प्यार भी है। उसने दीपा से पहले विवाह की 'हां' की, परंतु फिर 'ना' कर दी और वह भी बिना किसी ठोस कारण के। अब वह दीपा को नौकरी दिलवाकर अपना प्रायश्चित करने की मंशा रखता है। ऐसा दीपा मानती है तभी तो वह कहती है–

व्खाख्या

कभी–कभी, जाने–अनजाने में जब मनुष्य से गलती हो जाती है तो वह उसके लिए प्रायश्चित के अवसर की तलाश में रहता है। निशीथ को आज वह अवसर हाथ लग ही गया। इसलिए उसने पूरे मनोयोग से दीपा की नौकरी लगवाने में स्वयं को झोंक दिया। इसका आभास दीपा को भी इन पंक्तियों में हो जाता है।

विशेष

पूरी पंक्तियां मानवीय वृत्ति के बहुत ही समीप बन पड़ी हैं। पुनः विश्वास जगाने में सहायक होती प्रतीत होती हैं। कभी–कभी मौन भी कहने की अपेक्षा बहुत कुछ कहने में सक्षम होता है।

3. "तुम भी एक ही मूर्ख हो! घर से दूर, यहां कमरा लेकर अकेली रहती हो, रिसर्च कर रही हो, दुनिया भर में घूमती–फिरती हो और इंटरव्यू के नाम से डर लगता है। क्यों?" और गाल पर हल्की–सी चपत जमा देता है। फिर समझाता हुआ कहता है, "और देखो, आजकल ये इंटरव्यू आदि तो सब दिखावा–मात्र होते हैं। वहां किसी जान–पहचान वाले से इन्फ्लूएंस डलवाना जाकर।"

संदर्भ

उद्धृत पंक्तियां कहानी लेखिका मन्नू भंडारी की चर्चित कहानी 'यही सच है' से ली गई हैं।

प्रसंग

दीपा का कलकत्ते से जब साक्षात्कार–पत्र आ जाता है, तब वह कलकत्ते रेल से अकेली जाने के भय से घबराने लगती है, तब उसे संजय दिलासा देता हुआ बेबाक तरीके से समझाने के रूप में कहता है–

टिप्पणी

व्याख्या

संजय जब दीपा को कलकत्ता जाने को लेकर बेहद बोझिल और भारीपन से दबी–दबी देखता है, तब वह उसे उस वातावरण से बाहर निकालने के लिए हास्य और व्यंग्यपूर्ण शैली का सहारा लेता है। चुटकी लेते हुए और लगभग छेड़ने के हल्के अंदाज में कहता है–'तुम भी अपनी ही तरह की मूर्ख हो। वैसे तो बहादुर बनी घूमती–फिरती रहती हो, वह भी अकेली, लेकिन अब भीगी बिल्ली बनी बैठी हो। इंटरव्यू को हव्वा समझे बैठी हो। अरे बाबा! इंटरव्यू वगैरह तो आजकल सब औपचारिकताएं मात्र होती हैं। सोर्स–फोर्स का टाइम है–वहां बहादुरी से पहुंचकर किसी जान–पहचान वाले से सोर्स लगवाना। फिर देखना नौकरी तुम्हारी जेब में होगी', और ये कहते हुए उससे पूरी तरह घुला–मिला और खुला हुआ संजय उसके गाल पर हल्की सी प्यार भरी चपत जड़ देता है, ताकि वह नॉर्मल हो सके।

विशेष

यहां जान–पहचान वाले से तात्पर्य प्रत्यक्ष में–इरा और अप्रत्यक्ष में–निशीथ से है। यहां संजय मन–ही–मन एक तीर से दो निशाने लगाता प्रतीत होता है। इन पंक्तियों में कटाक्ष भी है, मार्गदर्शन भी है और समझाने का बेबाकीपन भी आत्मीयतापूर्ण तरीके से है।

5.6 सलाम – ओम प्रकाश वाल्मीकि

सलाम कहानी के लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि का जीवन परिचय इस प्रकार है–

5.6.1 लेखक परिचय

ओम प्रकाश वाल्मीकि का जन्म जनपद मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) के बरला गांव में दिनांक 30 जून, सन् 1950 को हुआ। उन्होंने एम. ए. हिंदी में उत्तीर्ण की। उनकी प्रकाशित कृतियां हैं–सदियों का संताप, बस बहुत हो चुका (कविता–संग्रह), जूठन (आत्मकथा), सलाम, घुसपैठिए (कहानी–संग्रह)। आपने प्रज्ञा साहित्य के दलित विशेषांक में अतिथि–संपादक की भूमिका भी निभाई है। विभिन्न भाषाओं में भी रचनाएं अनुदित की। आपकी नाटक में भी रुचि रही है। आपने अब तक 60 नाटकों में अभिनय और निर्देशन भी किया।

डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार, 1993 से सम्मानित, परिवेश सम्मान, 1995 तथा जयंती सम्मान, 1996 से भी सम्मानित।

5.6.2 सलाम : मूल पाठ

शादी की रस्म पूरी होते–होते रात के दो बज गए थे। ज्यादातर बाराती सो चुके थे। गिने–चुने लोग ही दूल्हे के साथ विवाह–मंडप में मौजूद थे। कमल उपाध्याय अतिरिक्त उत्साह में हरीश के साथ हर जगह मौजूद था। घर–परिवार के सदस्य की तरह सारी व्यवस्था कमल उपाध्याय की देख–रेख में संपन्न हो रही थी। हरीश और कमल के संबंध ही कुछ ऐसे थे।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. मन्नू भंडारी का जन्म किस प्रदेश में हुआ था?
26. लेखिका को लेखन के संस्कार किससे प्राप्त हुए?
27. संजय दीपा के घर पर कौन–से फूल लेकर आता था?
28. निशीथ कौन था?
29. दीपा के घर पहुंचने पर उसे तार का लिफाफा किसने दिया था?

टिप्पणी

फेरों से लौटकर वे बरामदे में ऐसी जगह तलाशने लगे, जहां थोड़ी देर पीठ टिकाकर पांव सीधे किए जा सके। छोटे से बरामदे में एक साथ इतने सारे लोग गुड़–मुड़ होकर सोए थे। कहीं ऐसी जगह नहीं बची थी कि खुलकर लेटा जा सके।

बारात ठहराने के लिए स्कूल का बरामदा ही मिल पाया था। प्रधान जी ने स्कूल खोल देने की हामी तो भर दी थी। लेकिन ऐन वक्त पर हेडमास्टर कहीं रिश्तेदारी में चले गए थे। काफी भागदौड़ के बाद भी चाबी नहीं मिली थी। आखिर हारकर बारात को बरामदे में ही ठहराना पड़ा था। स्कूल में जो हैंडपंप था, एक रात पहले किसी ने उसका हत्था और वाल्व भी खोल लिए थे। पीने के पानी का और कोई इंतजाम वहां नहीं था। बड़ी मुश्किल से दो मिट्टी के घड़े ही मिल पाए थे।

रोशनी के नाम पर भी सिर्फ अंधेरा ही था। सड़क के लैंपपोस्ट की हलकी पीली रोशनी बरामदे तक आकर अंधेरे में तब्दील हो गई थी।

हरीश ने दूल्हेपन के भार को उतारकर दीवार के सहारे पीठ टिका दी। कमल के लिए जगह बनाते हुए बोला, "थोड़ी देर कमर सीधी कर लो। थक गए होगे... तुम्हें तो यहां काफी अटपटा लग रहा होगा।"

कमल ने मोजे और जूते सहेजते हुए कहा, "रात भर की ही तो बात है किसी तरह गुजर जाएगी। गांव के बारे में सिर्फ पढ़ा था। देखा आज ही है।"

"कैसा लग रहा है?" हरीश ने कमल को अपनी ओर खींचा।

"कैसा क्या...हालत दयनीय है...कितना धैर्य है लोगों में..." कमल ने गहरी सांस ली।

बरामदे के किनारे पर दो बुजुर्ग अभी तक जगे थे। रुक–रुककर बातचीत कर रहे थे। हरीश और कमल की वार्तालाप सुनकर उनकी ओर मुखातिब हुए। उनमें से एक बोला, "बेट्टे, हरीश, तुम्हारा ये दोस्त पहली बार गांव आया है क्या?"

"हां, ताऊ जी..." उत्तर कमल ने दिया।

"कौन बिरादर हो?" बुजुर्ग ने बात आगे बढ़ाई।

"ताऊ, क्या इतना काफी नहीं है कि यह मेरा दोस्त है, और मेरी बारात में शामिल है?" हरीश ने नाराजगी व्यक्त की।

बुजुर्ग किसी जमाने में अंग्रेज अफसर की सेवा–टहल में थे, जब भी मौका मिलता, दिखाने की कोशिश करते।

"मैंन्ने कोई इंसलेट बात कही है क्या?...जो बुरा मान गए!" बुजुर्ग चुप हो गया।

"ताऊ जी... आपकी बात का बुरा क्या मानना...मैं ब्राह्मण हूं...और कुछ पूछना हो तो पूछिए..." कमल ने विनम्रता दिखाई। बुजुर्ग ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

"सो जाओ कमल, सुबह होने में अब ज्यादा देर नहीं है।" हरीश ने बात बदलने की कोशिश की।

कमल सोने का प्रयास करने लगा। कुछ देर की खामोशी के बाद बोला, "हरीश, सो गए क्या... सुबह क्या होगा?"

टिप्पणी

हरीश की आंखों में नींद भरी हुई थी। अलसाए स्वर में बोला, "सुबह...क्या मतलब?"

"हरीश, सुबह जल्दी उठने की आदत है मेरी। चाहे देर रात दो बजे सोऊं, नींद पांच बजे ही टूट जाती है। मां सुबह पांच बजे से ही पूजा–पाठ में लग जाती है। उनकी खटर–पटर से मैं भी उठ जाता हूं। बरसों से ऐसे ही चल रहा है। मां सुबह–सुबह चाय बनाकर मेरे हाथ में थमा देती हैं। अब तो ऐसी आदत पड़ गई है कि यदि छह बजे तक चाय न मिले तो सिर भारी होने लगता है।" कमल ने अपनी तकलीफ सुनाई।

"यहां सुबह–सुबह छह बजे चाय कहां मिलेगी..." हरीश ने असमर्थता जताई।

बुजुर्ग ने बीड़ी सुलगा ली थी। जो अंधेरे में चमक पैदा कर रही थी। कमल से बोले, "बाबू जी, गांव के बाहर एक दुकान तो है। आप सुबह जाकर देख लेना। शायद मिल जाए।"

"आपने देखी है दुकान? कितनी दूर है?" कमल ने उत्सुकता दिखाई।

"पास ही है। शाम को मैंने वहां से बीड़ी का बंडल खरीदा था। सामने जो गली है उससे सीधे चलते जाना। गली खत्म होते ही सड़क है। वहीं पर एक दुकान है।" बुजुर्ग ने बताया।

सुबह उठते ही कमल चाय की तलाश में निकल पड़ा। गली लगभग सुनसान थी। इक्का–दुक्का लोग अजीब–सी बुक्कल मारे आ–जा रहे थे। रात वाली चहल–पहल कहीं दिखाई नहीं पड़ रही थी।

खड़ंजे पर फिसलन थी। नालियों में बहते पानी से बचते–बचाते वह गली के मुहाने पर एक खुली और रेतीली जगह पर आ गया। सामने ही सड़क के पार एक छप्परनुमा दुकान थी। जिसमें एक किनारे पर भट्टी बनी थी। भट्टी के साथ ही एक चबूतरा भी था। जिस पर लकड़ी के खोके में पान–बीड़ी, जर्दा, तंबाकू की थैलियां रखी थी। साथ ही दो–तीन बदरंग से डिब्बे रखे थे। भट्टी में सुलगते कोयलों से गहरा काला धुआं निकल रहा था। जिसका कसैलापन उसने अपने फेफड़ों में महसूस किया। दीवार पर किसी सिने तारिका का अर्द्धनग्न बदरंग कैलेंडर टंगा था। जो धूल और धुएं के हमलों से मटमैला हो गया था।

भट्टी के पास ही एल्युमिनियम की एक बड़ी–सी केतली रखी थी। जिसका रंग स्याह काला पड़ गया था। कुछ कांच के मटमैले गिलास, कप प्लेटें और शीशे के एक जार में कुछ बिस्कुट पड़े थे। भगोना बाहर से काला और भीतर से भूरा, मटमैला दिखाई पड़ रहा था। आसपास मक्खियों के झुंड के झुंड भिनभिना रहे थे।

चबूतरे पर ही एक जर्जर–सा बूढ़ा आदमी मैले–चीकट कपड़ों में उकडूं बैठा बीड़ी पी रहा था। उसके हाथों, पैरों की नसें उभरी हुई थीं। जैसे किसी ने शरीर का मांस उतारकर त्वचा हड्डियों से चिपका दी हो।

पास ही एक पुरानी–सी बेंच पड़ी थी। जिसकी हालत उस बूढ़े आदमी से भी बदतर थी। कमल ने बेंच पर बैठने की कोशिश की। बेंच चरमराई। किसी तरह अपने आपको बेंच पर टिकाकर कमल ने बूढ़े से कहा, "चाय मिलेगी?"

"मिलेगी...थोड़ा टेम लगेगा।" बूढ़े ने बीड़ी का आखिरी कश खींचा।

टिप्पणी

कमल दुकान में रखी हर चीज को उत्सुकता से देख रहा था। उसके जेहन में मां का खयाल आ गया। यदि इस समय घर में होता तो मां गर्म–गर्म चाय लेकर आती। चाय बनाते समय भी मां कोई–न–कोई श्लोक दोहराती रहती है।

धुएं का झोंका कमल के मुंह और आंखों में भर गया। उसने जेब से रूमाल निकालकर नाक–मुंह पर रखा। कड़वाहट उसके भीतर समा गई थी।

"कितनी देर लग जाएगी चाय में...?" कमल ने जिज्ञासा की।

"बस...अभी हो जागी...भट्टी सुलग री है। बैट्ठो आप..." चायवाले ने आश्वस्त किया।

चायवाला लोहे के सरिए से भट्टी में कोयले संवारने लगा।

"नए दिख रहे हो बाबू जी...कहां से आए हो?" चाय वाले ने बात शुरू की।

"देहरादून से।" कमल ने सहजता से कहा। उसका ध्यान सुलगती भट्टी पर टिका था।

देहरादून का नाम सुनकर चायवाला चौंका, "देहरादून से तो कल एक बारात भी आई है।" चायवाले ने प्रश्न की तरह कहा।

"हां, मैं उसी बारात में आया हूं।"

"वह बारात तो चूहड़ों के घर आई है।" चायवाले की जिज्ञासा गोली में बदल चुकी थी।

"तो क्या हुआ?" कमल ने सवाल किया।

चायवाला एकदम चुप हो गया था। उसकी चुप्पी ने कमल को संशय में डाल दिया था। चायवाले के हाव–भाव बदल गए थे।

वह भट्टी के पास से हटकर इधर–उधर के काम करने लगा था। कभी इस डिब्बे को उठाकर उधर रख रहा था, कभी मटके से पानी निकालकर कनस्तर में भर रहा था। भट्टी सुलगकर लाल–लाल अंगारों में बदल गई थी। अंगारों से लपटें उठ रही थीं, लेकिन चाय बनने के आसार दिखाई नहीं पड़ रहे थे।

कमल का गला खुश्क होने लगा था। "भट्टी तो धधक गई है। एक कप चाय बना दीजिए।" कमल ने शालीनता से कहा।

चायवाला अनसुना करके अपने काम में लगा हुआ था। कमल का धैर्य टूटने लगा, "भई, चाय बना दो।"

चायवाले ने वहीं से जवाब दिया, "तुझे यहां चाय ना मिलने की।" चायवाले की आवाज में रूखापन था। जिसे महसूस करते हुए कमल ने तीखेपन से पूछा, "लेकिन क्यों? अभी थोड़ी देर पहले तो आपने कहा था, चाय मिलेगी।"

"कहा था...और इब कह रा हूं नहीं मिलेगी..." चायवाले ने कठोरता से कहा।

कमल चायवाले के व्यवहार से चकित था। फिर भी नम्रता से बोला, "लेकिन भाई साहब हुआ क्या है...? ...क्या मैं पैसे नहीं दूंगा?"

टिप्पणी

चायवाला उसके ठीक सामने तनकर खड़ा हो गया। दोनों हाथ कूल्हों पर टिकाकर सीना चौड़ा करते हुए बोला, "यो पैसे सहर में जाके दिखाणा। दो पैसे हो गए जेब में तो सारी दुनिया को सिर पे ठाये घूमो...ये सहर नहीं गांव है...यहां चूहड़े–चमारों को मेरी दुकान में तो चाय ना मिलती...कहीं और जाके पियो।"

कमल की नसें फड़फड़ाने लगीं। उसने चायवाले को आग्नेय नेत्रों से घूरा। आवाज में सख्ती भरकर बोला, "चूहड़े–चमारों को नहीं मिलती है तो किसे मिलती है?"

चायवाला उसकी बात अनसुनी करके फिर अपने काम में लग गया था। कमल को वह असभ्य वनमानुष दिखाई पड़ रहा था। उसने साहस करके पूछा, "तुम्हारी क्या जात है?"

चायवाला भभक पड़ा, "मेरी जात से तुझे क्या लेणा–देणा। इब चूहड़े–चमार भी जात पूछने लगे...कलजुग आ गया है कलजुग।"

"हां, कलजुग आ गया है, सिर्फ तुम्हारे लिए, तुम अपनी जात नहीं बताना चाहते हो तो सुनो– मेरा नाम कमल उपाध्याय है। उपाध्याय का मतलब तो जानते ही होगे, या समझाऊं...उपाध्याय यानी ब्राह्मण।" कमल ने आंखें तरेरकर कहा।

"चूहड़ों की बारात में बामन?" चायवाला कर्कशता के साथ हंसा।

"सहर में चूतिया बणाना... मैं तो आदमी कू देखते ही पिछाण (पहचान) लूं...कि किस जात का है?" चायवाले ने शेखी बघारी।

उनका वार्तालाप सुनकर राह चलते लोग ठिठककर मजा लेने लगे। सुबह–सुबह का वक्त था, देखते–ही–देखते लोग जमा हो गए। लोगों को देखकर चायवाले की बूढ़ी हड्डियों में जोश आ गया था। आवाज का तेवर चढ़ने लगा।

बल्लू रांघड़ का रामपाल भी भीड़ देखकर ठिठक गया। माजरा क्या है, जानने के लिए चाय की दुकान की ओर बढ़ा। बूढ़ा चायवाला किसी शहरी को फटकार रहा था। रामपाल ने छूटते ही पूछा, "चाच्चा, कोण है यो?"

रामपाल को देखते ही चायवाला और बिफर पड़ा, "चूहड़ा है। खुद कू बामन बतारा है। जुम्मन चूहड़े का बाराती है। इब तुम लोग ही फैसला करो। जो यो बामन है तो चूहड़ों की बारात में क्या मूत पीणे आया है। जात छिपाके चाय मांग रा है। मैंने तो साफ कह दी। बुद्धू की दुकान पे तो मिलेगी ना चाय चूहड़ों–चमारों कू, कहीं और ढूंढ ले जाके।" चायवाले ने आसपास खड़े लोगों का समर्थन जुटाने की कोशिश की।

दुबला–पतला–सा रामपाल सीकिया पहलवान था। गाल पिचके हुए, हड्डियां उभरी हुईं। बारीक मूंछें, तेल से चीकट बाल। कुल मिलाकर ऐसा हुलिया, जिसे देखकर यह अंदाज बिलकुल नहीं हो सकता था कि इस डेढ़ हड्डी के आदमी का गांव भर में दबदबा है।

रामपाल को देखते ही खुसर–पुसर एकदम शांत हो गई थी। कमल भी स्वयं को चक्रव्यूह में फंसा महसूस करने लगा था। उसने आसपास खड़े लोगों पर नजर डाली। उसने उनकी बात का विरोध करने के लिए मुंह खोला, "भाइयो...!"

बात पूरी होने से पहले ही रामपाल ने उसे डांटा, "ओ, सहरी जनखे हम तेरे भाई हैं?– साले जबान सिभाल के बोल, गांड में डंडा डाल के उलट दूंगा। जाके जुम्मन चूहड़े

टिप्पणी

से रिश्ता बणा। इतनी जोरदार लौंडिया लेके जा रे हैं सहर वाले, जुम्मन के तो सींग लिकड़ जाए हैं। अरे, लौंडिया को किसी गांव में ब्याह देता तो म्हारे जैसों का भी कुछ भला हो जाता..." एक तीखी हंसी का फव्वारा छूटा। आसपास खड़े लोगों ने उसकी हंसी में अपनी हंसी मिला दी।

कमल को लगा जैसे अपमान का घना बियाबान जंगल उग आया है। उसका रोम–रोम कांपने लगा। उसने आसपास खड़े लोगों पर निगाहें डालीं। हिंसक शिकारी तेज नाखूनों से उस पर हमला करने की तैयारी कर रहे थे।

उसने पहली बार अखबारों में छपी उन खबरों को शिद्दत से महसूस किया। जिस पर विश्वास नहीं कर पाता था वह। फलां जगह दलित युवक को पीट–पीटकर मार डाला, फलां जगह आग में भून दिया। घरों में आग लगा दी। जब–जब भी हरीश इस तरह का समाचार कमल को सुनाता, वह एक ही तर्क दोहरा देता था।

"हरीश अपने मन से हीन–भावना निकालो। दुनिया कहां–से–कहां निकल गई और तुम लोग वहीं–के–वहीं हो। उगते सूरज की रोशनी को देखो। अपने आप पर विश्वास करना सीखो। पढ़–लिखकर ऊपर उठोगे तो सब कुछ अपने–आप मिट जाएगा।"

लेकिन इस वक्त कमल के सामने हरीश का एक–एक शब्द सच बनकर खड़ा था। सच साबित हो रहा था।

कमल ने फिर से साहस बटोरा और विरोध किया, "क्या यही है गांव का अतिथि सत्कार। आप लोग अपने ही गांव की लड़की के लिए ऐसी बातें कर रहे हो। क्या वह इस गांव की बेटी नहीं है?"

कमल आगे कुछ और बोलता उससे पहले ही रामपाल ने अपने वजूद से ज्यादा शक्ति से चीखकर बोला, "जा चुपचाप चला जा...वरना एक भी जिंदा वापस ना जा सकेगा, ना बो लौंडिया ही जा पाएगी..." कमल को धक्का देकर छप्परनुमा दुकान से बाहर कर दिया रामपाल ने।

कमल कोई बवेला खड़ा करना नहीं चाहता था। सीने में उठ रहे ज्वार को उसने शांत रखा। उसे हरीश का खयाल आ गया। वक्त की नजाकत भांपकर चुप रह जाना ही ठीक लगा।

सड़क से उतरकर वह रेतीले रास्ते पर आ गया। उसकी रग–रग में अंगारे दहक रहे थे। लड़कों का झुंड उसके पीछे लग गया था। वे कमल को चिढ़ाने का प्रयास करने लगे।

"चूहड़ा–चूहड़ा...चूहड़ा..." वे जोर–जोर से चिल्ला रहे थे। प्रत्येक शब्द नश्तर की तरह उसके जिस्म को चीरकर लहूलुहान कर रहा था।

कमल लड़कों से बचकर गली की ओर लपका। तेज कदमों से लगभग दौड़ते हुए वह जनवासे में पहुंचा। उसकी सांस फूल गई थी। मूड बुरी तरह उखड़ा हुआ था। जिस्म पर अभी तक हजारों–चीटियां रेंग रही थीं। पोर–पोर गर्म दहकते लावे–सा जल रहा था।

उसे देखते ही हरीश ने पूछा, "क्या बात है? चेहरा उतरा हुआ है?"

"कुछ नहीं...ठीक हूं।" कमल ने गहरी सांस ली।

टिप्पणी

"कहां चले गए थे? बड़ी देर लगा दी। चाय का इंतजाम कराया है। बस तुम्हारा ही इंतजार था।" हरीश ने कहा।

कमल दीवार के सहारे टिककर बैठ गया। चुपचाप। जैसे विचारों की सुनसान पगडंडियों पर अकेला विचरण कर रहा हो, उसे इस तरह खामोश देखकर हरीश ने पूछा, "क्या बात है? कुछ परेशान लग रहे हो?"

"नहीं, कुछ नहीं...बस थोड़ा सिर भारी है।" कमल ने टालना चाहा।

उसके जेहन में पंद्रह वर्ष पुरानी घटना दस्तक देने लगी। जिसकी स्मृति मात्र से ही उसके शरीर में एक लहर–सी दौड़ गई।

उस रोज कमल हरीश को पहली बार स्कूल से सीधा अपने घर ले गया था। पिताजी कहीं बाहर गए हुए थे। उसने अपनी मां से हरीश को मिलाया था। मां ने दोनों को खाने के लिए कुछ दिया था। हरीश ने पहला कौर उठाकर मुंह में रखा ही था कि कमल की मां ने पूछा, "बेटे, तुम्हारे पापा क्या करते हैं?"

"जी, नगरपालिका में सफाई कमचारी हैं।" हरीश ने सहजता से उत्तर दिया।

हरीश का जवाब सुनते ही कमल की मां आग–बबूला हो गई थी। कमल के गाल पर एक झन्नाटेदार थप्पड़ पड़ा था।

"पता नहीं कहां–कहां से इन कंजड़ों को पकड़कर घर ले आता है। खबरदार जो आगे से किसी हरामी को दुबारा यहां लाया..." कमल पर यह हमला अप्रत्याशित था। वह न रोया, न कोई प्रतिरोध ही कर सका था। सिर्फ फटी–फटी आंखों से मां के गुस्से से भरे चेहरे को देखता रह गया था।

मां ने हरीश को भी ढेर–सी गालियां देकर घर से भगा दिया था। मां की दुत्कार, फटकार से हरीश बुरी तरह आहत हुआ था। उसे पहली बार लगा था कमल और वह दोनों अलग–अलग हैं। दोनों के बीच कोई फासला है। उसे अपने पड़ोसी सुगना के शब्द याद आ रहे थे, "बेट्टे, बामन से दोस्ती रास नहीं आएगी।" लेकिन हरीश ने सुगना की बात को कभी अहमियत नहीं दी थी। कमल उसके लिए अपना था, एकदम सगा। बल्कि अपनों से कहीं ज्यादा। इस घटना ने हरीश के मन पर कई खरोंचें डाल दी थीं।

हरीश के जाने के बाद मां लगातार बड़बड़ाती रही थी। सारा घर दुबारा धोया गया था। गंगाजल छिड़ककर जमीन पवित्र की गई थी।

कमल के बालमन में भी एक दरार पैदा हो गई थी। वह चुपचाप जाकर अपने कमरे में लेट गया था। ढेरों सवाल उसके मन को कचोट रहे थे आखिर मां ने ऐसा क्यों किया। क्या कमी है हरीश में। दिन भर उसने कुछ नहीं खाया था। रात में भी मां ने बहुत समझाया था। ऊंच–नीच बताई थी। फिर भी वह चुपचाप निर्विकार मुद्रा में बैठा था। मां के सारे दांव उसे मनाने में हार गए थे।

"बेटे, इनके संस्कार गलत हैं, ये छोटे लोग हैं। इनके साथ बैठने से बुरे विचार मन में पैदा होते हैं..." और भी कई बातें मां ने बताई थीं। लेकिन कमल के अनुभव इन सबसे भिन्न थे।

टिप्पणी

मां के तर्कों से जब वह ऊबने लगा तो आखिर उसने मां से पूछ ही लिया, "तुम कभी उनके घर गई हो? उनसे मिली हो? फिर कैसे जानती हो वे बुरे लोग हैं?"

मां अवाक होकर कमल का चेहरा देखने लगी थी। कमल की आंखों में गुस्सा नहीं था। ऐसा कुछ था जो धीरे–धीरे बर्फ की तरह पिघल रहा था। जिसे वह पकड़ना चाहती थी, पर उसकी पकड़ में नहीं आ रहा था।

मां ने हारकर एक समझौता कर लिया था। जिसकी जानकारी हरीश को कभी नहीं हुई। हरीश के खाने–पीने के लिए कुछ बर्तन अलग रख दिए थे। तब से आज तक कमल एक ऐसी अंधेरी गली में चल रहा था जहां रोशनी का कोई कतरा दिखाई नहीं देता है। उसे हमेशा लगता है जैसे वह हरीश से विश्वासघात कर रहा है।

कमल को खयालों में डूबा देखकर हरीश ने उसे टोका, "कहां खो गए...लो चाय पियो...!"

एक देहाती लड़का चाय के दो गिलास थामे खड़ा था। कमल ने एक गिलास उसके हाथ से ले लिया। चाय की चुस्की लेते हुए कमल का बिगड़ा हुआ मूड बदलने लगा। चाय पीने के बाद सिरदर्द से भी थोड़ी राहत महसूस की उसने।

सूरज सिर के ऊपर चढ़ गया था। शादीवाले घर में काफी चहल–पहल थी। दोपहर के खाने में विशेष इंतजाम किया गया था। पास के कस्बे से 'नान' और 'मीट' बनाने के लिए कारीगर बुलाया गया था। एक मोटा ताजा बकरा काटा गया था। पके हुए 'मीट' और गर्म मसालों की महक पूरे आंगन में फैल गई थी। कुछ लोग सुबह से ही दारू पीने बैठ गए थे। काफी हो–हल्ला होने लगा था। बच्चों की चिल्ल–पों अलग थी। बड़े–बूढ़े हुक्के की गुड़–गुड़ में अपने जमाने को याद कर रहे थे। औरतों की व्यस्तता कुछ अलग थी। हरीश की सास ने पुराने कपड़ों पर एक नई ओढ़नी डाल ली थी। दूल्हे को साथ लेकर उसे 'सलाम' पर जाना था।

हरीश के पिताजी कुछ परेशान दिखाई दे रहे थे। कमल ने परेशानी का कारण जानना चाहा तो वे टाल गए। सुबह से ही कुछ चल रहा था। जिसका थोड़ा आभास कमल को होने लगा। लेकिन कोई भी उसके सामने खुलकर बात नहीं कर रहा था।

हरीश के ससुर जुम्मन ऋषिकेश में सरकारी कर्मचारी थे। परिवार गांव में रहता था। पारंपरिक जीवन था। गांव के कई परिवारों में साफ–सफाई का काम हरीश की सास करती थी। जुम्मन की बड़ी लड़की बाप के साथ ऋषिकेश में ही रहती थी, सरकारी मकान में। आस–पड़ोस की देखा–देखी जुम्मन ने उसे भी स्कूल भेज दिया। देखते–देखते उसने हाईस्कूल की परीक्षा पास कर ली थी। साथ ही उसमें सुघड़ता भी आ गई थी। अच्छा परिवेश पाकर उसमें बदलाव आ गया था। गांव–भर की लड़कियों से अलग दिखाई पड़ती थी। वैसे इस गांव की वह पहली लड़की थी। जिसने हाईस्कूल पास किया था।

जुम्मन की घरवाली जिन परिवारों में काम करती थी, उनमें अधिकतर रांघड़ थे। गांव देहात के नियम कायदे के हिसाब से हरीश को 'सलाम' के लिए विदाई से पहले रांघड़ों के दरवाजे पर जाना था। यह एक रस्म थी। जिसे न जाने कितनी सदियों से निभाया जा रहा था।

टिप्पणी

हरीश के पिताजी ने साफ इनकार कर दिया था, "हम 'सलाम' पर अपने लड़के को नहीं भेजेंगे।"

रांघड़ परिवारों से कई बार बुलावा आ चुका था। बिरादरी के बड़े–बूढ़े अपने–अपने तर्क देकर ऊंच–नीच समझा रहे थे।

"बाप–दादों की रीत है, एक दिन में तो ना छोड़ी जावे है। वे बड़े लोग हैं। 'सलाम' पे तो जाणा ही पड़ेगा। और फिर जल में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना तो ठीक नहीं है। और इसी बहाने कपड़ा–लत्ता, बर्तन–भांडे भी नेग–दस्तूर में आ जाते हैं।"

हरीश ने भी स्पष्ट तौर पर कह दिया था, "मुझे न ऐसे कपड़े चाहिए, न बर्तन, मैं अपरिचितों के दरवाजे 'सलाम' पर नहीं जाऊंगा।"

हरीश ने जब–जब भी किसी दूल्हे या दुल्हन को इस तरह दरवाजे–दरवाजे घूमते देखा, उसे लगता था जैसे स्वाभिमान को चिंदी–चिंदी करके बिखेरा जा रहा है। बाजे–गाजे के साथ घूमता दूल्हा निरीह जीव दिखाई पड़ता था। "दामाद हो या नई–नवेली दुल्हन 'सलाम'– के लिए घर–घर जाने का रिवाज है, जो हमने नहीं पुरखों ने बनाया था। जिसे इस तरह छोड़ देना ठीक नहीं है। गांव में रहना है। दस जरूरतें हैं।" जुम्मन ने जोर देकर कहा।

हरीश ने तीखे शब्दों में कहा, "आप चाहे जो समझें...मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूं। यह 'सलाम' की रस्म बंद होनी चाहिए।"

आवाज सुनकर कमल हरीश की ओर बढ़ा। कमल को अपनी ओर आते देखकर हरीश चुप हो गया। हरीश का चेहरा तनाव से कसा हुआ था। "क्या बात है हरीश...कुछ मुझे भी तो बताओ...!" कमल ने जिज्ञासा प्रकट की।

प्रत्येक कार्य–कलाप में कमल हरीश के साथ था। घर से लेकर यहां तक। लेकिन इस वक्त वह अपने आपको अलग–थलग महसूस कर रहा था।

हरीश के पिताजी ने कमल के कंधे पर हाथ रखा, "कुछ नहीं है बेटे...आप वहां बैठो। सामने आंगन में नीम के पेड़ के नीचे मैंने आपके लिए चारपाई डलवा दी है, आराम करो, जात–बिरादरी की कुछ समस्याएं हैं...हम निबटा लेंगे...!"

कमल को लगा जैसे वह सचमुच बाहरी व्यक्ति है, उसने कातर दृष्टि से हरीश की ओर देखा, हरीश ने आंखों के इशारे से शांत रहने के लिए कहा, कमल जाकर चारपाई पर बैठ गया।

दोपहर होते–होते बात पूरे गांव में फैल गई। जुम्मन के जंवाई ने 'सलाम' पर आने से मना कर दिया है। गांव के रांघड़ बल्लू रांघड़ की चौपाल पर जुटने लगे थे। ऐसा लग रहा था जैसे जोहड़ के पानी में किसी ने कंकड़ फेंक दिए हों। गोल–गोल लहरें घूमकर किनारों तक फैल गई थीं। रांघड़ गुस्से में फनफनाए घूम रहे थे।

बल्लू रांघड़ का सीकिया पहलवान रामपाल कमल उपाध्याय को चाय की दुकान से धकियाकर चौड़ा हुआ घूम रहा था। अपनी बहादुरी का किस्सा समूचे गांव को सुना चुका था। कैसे एक चूहड़े को उसने चाय की दुकान में जात छिपाकर चाय पीते, रंगे हाथों पकड़

टिप्पणी

लिया। बराती था इसलिए छोड़ दिया। यह हरकत किसी और ने की होती तो अभी तक अरथी सज रही होती। लोग सुनते और मजा लेते, साथ ही अपनी ओर से कुछ जोड़ देते। दोपहर तक चर्चा पूरे गांव में फैल गई थी।

बल्लू रांघड़ हालात देखकर खुद जुम्मन के घर आया। आते ही उसने जुम्मन और उसकी घरवाली को मेहमानों के सामने ही फटकार सुनाई।

"जुम्मन तेरा जंवाई इब तक 'सलाम' पर क्यों नहीं आया। तेरी बेटी का ब्याह है तो हमारा बी कुछ हक बनता है। जो नेग–दस्तूर होता है, वो तो निभाना ही पड़ेगा। हमारी बहू–बेटियां घर में बैठी इंतजार कर रही हैं। उसे ले के जल्दी आ जा...।"

जुम्मन ने सिर पर लपटा कपड़ा उतारकर बल्लू रांघड़ के पांव में धर दिया, "चौधरी जी, जो सजा दोगे भुगत लूंगा। बेटी कू बिदा हो जाण दो। जमाई पढ़ा–लिखा लड़का है, गांव–देहात की रीत ना जाणे है।"

"तभी तो कहूं–जातकों (बच्चों) कू स्कूल ना भेज्जाकरो। स्कूल जाके कोण–सा इन्हें बालिस्टर बणना है। ऊपर से इनके दिमाग चढ़ जांगें। यो न घर के रहेंगे न घाट के। गांव की नाक तो तूने पहले ही कटवा दी जो लौंडिया कू दसवीं पास करवा दी। क्या जरूरत थी लड़की कू पढ़ाने की, गांव की हवा बिगाड़ रहा है तू। इब तेरा जंवाई 'सलाम' पे जाणे से मना कर रहा है...उसे समझा दे...'सलाम' के लिए जल्दी आवे..." बल्लू ने फैसला सुनाया।

जुम्मन ने गिड़गिड़ाकर रिरियाहट भरे शब्दों में कहा, "चौधरी जी, मेरी लाज रख लो ...मैं तो थारा गुलाम हूं...मेरा तो जीना–मरणा सब कुछ थारी ही गेल है। जो कहोगे करूंगा ...बस करके बेटी कू विदा हो जाण दो। मैं थारे पांव में नाक रगडूं...।"

बल्लू रांघड़ गुस्से में फनफनाता चल दिया। जाते–जाते चेतावनी देकर बोला, "इन सहर वालों कू कह देणा–कव्वा कबी बी हंस ना बण सके है।"

बल्लू के जाते ही कमल ने हरीश से पूछा, "कौन था यह? इस तरह डरा–धमका क्यों रहा था?" हरीश ने चुप रहने का इशारा किया। सभी भय से सहम गए थे। बल्लू रांघड़ के जाते ही बिदाई की तैयारी शुरू हो गई थी। जुम्मन ने जात–बिरादरी की स्त्रियों को हिदायत दे दी थी, "टीके की रस्म जल्दी निबटाएं, बिना हो–हल्ले के रांघड़ कभी भी रौला कर सकते हैं।"

शादी की सारी चहल–पहल पल–भर में सन्नाटे में सिमटकर बदल गई थी। इस सन्नाटे का शोर कमल उपाध्याय को बेचैन कर रहा था। उसका दम घुट रहा था। उसने हरीश की ओर देखा। हरीश की आंखों में आत्मविश्वास और स्वाभिमान के उगते सूरज की चमक दिखाई पड़ रही थी। दोनों ने एक–दूसरे का हाथ गर्मजोशी से दबाया। आंखों–ही–आंखों में एक–दूसरे को आश्वस्त किया। नीम के पेड़ पर हरी नर्म पत्तियां हिल रही थीं, मानो हौंसला दे रहीं हों।

जल्दी–जल्दी बारात को खाना खिलाया गया। कमल और हरीश खाना खाकर नीम की छांव में पड़ी चारपाई पर बैठ गए थे। सामने दीवार की ओर मुंह करके एक दस–बारह बरस का लड़का खड़ा था। उसके चेहरे पर गुस्से के भाव थे।

उसे ढूंढ़ते–ढूंढ़ते एक बूढ़ा आंगन में घुसा। उसके हाथ में 'नान' और 'मीट' था?

टिप्पणी

"दीपू...ओ...दीपू...कहां है...ये लौंडा भी बहुत दिक करे है। चूहड़ों के घर पैदा होके बामनों–सी बोली बोले है।" उसे दीवार के पास खड़ा देख, उसने डांटा, "तू यहां छुपा खड़ा है...मैं कब से तुझे ढूंढ़ रहा हूं। ले रोटी खा ले...ले देख कितना अच्छा मीट वणा है।" बूढ़े ने मनाने की कोशिश की।

"ना...मैं नी खात्ता...इसे खाए मेरा मूत।" लड़के ने ऐंठते हुए कहा।

"पर क्यूं?...क्या हुआ है इसमें?" बूढ़े ने तल्खी से कहा।

"मुसलमान के हाथ की बणी रोट्टी मैं नी खात्ता।" लड़के ने दूर हटते हुए कहा।

"मुसलमान?" ...कोण मुसलमान?"

"वो जो गाड़ा वहां बैट्ठा बणा रा है।" लड़के ने रोटी बनाने वाले कारीगर की ओर इशारा किया।

"वो...वो तो हिंदू है...चलकर देख ले!" बूढ़ा उसे खींचकर ले जाने लगा। लड़का घिसटते हुए बूढ़े के पीछे–पीछे जा रहा था। चीख–चीखकर कह रहा था, "नहीं...वह मुसलमान है। मैं नी खाऊंगा उसके हाथ की बाणी रोट्टी...मैं नहीं खाऊंगा।"

"अबे, उल्लू की दुम...एक बार चलके तो देख ले। फेर कहणा।" बूढ़ा उसे घसीटकर भट्टी की ओर ले गया जहां 'नान' बन रहे थे। लड़के के चीखने की आवाज लगातार आ रही थी।

"नहीं...नहीं, मैं मुसलमान के हाथ की बणी रोट्टी नहीं खाऊंगा...नहीं खाऊंगा...नहीं खाऊंगा।"

कमल और हरीश फटी–फटी आंखों से उस लड़के को देख रहे थे। कुछ देर पहले जगा आत्मविश्वास लड़के की आवाज में दबने लगा था। कमल और हरीश दोनों खामोशी के अंधेरे जंगल में भटक गए थे। उन्होंने एक–दूसरे की ओर देखा और गहरी सांस ली।

5.6.3 ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी कला की विशेषताएं

कथानक

ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' का कथानक यथार्थ के एकदम समीप का है। उनका ध्यान लेखन के समय कहानी के कला तत्व के स्थान पर न होकर कथानक के यथार्थ पर अधिक रहता है। यही बात 'सलाम' कहानी को पढ़ते समय मस्तिष्क में आती है। उनका यथार्थ भी अपनी नंगई पर उतरता प्रतीत होता है। इससे कथानक और भी सशक्त रूप में उभर कर आता है, किंतु इससे लेखन का कला–पक्ष कमजोर पड़ जाता है, क्योंकि लेखन एक कला है। कला में सौंदर्य, शिष्टता और भद्रता का होना नितांत आवश्यक माना जाता है अन्यथा तो अपने द्वारा देखे गए तथा अनुभव किए गए को कोई भी लिख सकता है, किंतु जब वह लेखन की शर्तों पर खरा उतरता है तभी उसे स्वस्थ लेखन–कला का प्रतीक माना जाता है। उदाहरण के लिए, 'काने को काना न कहकर, यदि उसे नयनसुख कह दिया जाए' तो उसे बुरा भी नहीं लगेगा और सुधि पाठक लेखक के मंतव्य को भी समझ जाएगा।

टिप्पणी

चरित्र–चित्रण

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी के प्रायः सभी पात्र चरित्र–चित्रण की दृष्टि से पूर्णरूपेण सशक्त बन पड़े हैं। उनमें कहीं भी बनावटीपन दिखलाई नहीं देता। पढ़ते समय लगता है कि जैसे कोई चलचित्र देख रहे हों। घटनाएं बड़ी तारतम्यता के साथ बड़ी तेजी से आगे दौड़ती हैं। उनके साथ उनके चरित्र भी उसी स्फूर्ति से आगे भागते प्रतीत होते हैं, इसलिए कहा जा सकता है कि 'सलाम' कहानी के सभी चरित्र कहानी से पूरी तरह जुड़े रहते हैं। कमल उपाध्याय पात्र का चरित्र छोटा–सा है, किंतु उसका चित्रण पूरी कहानी के आंतरिक कथानक को मजबूत संबल प्रदान करता है। वह कहानी को अपने उद्देश्य से भटकने नहीं देता।

कथोपकथन

इस कहानी का कथोपकथन बड़ा ही स्वाभाविक एवं सजीव बन पड़ा है। वह देशकाल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुकूल ही बन पड़ा है परंतु पात्रों की भाषा कहीं–कहीं मर्यादा और शिष्टता को लांघती दिखाई देती है जो कि लेखक का 'प्लस प्वाइंट' होते हुए भी 'मायनस प्वाइंट' बन जाता है। हां, कथोपकथन में तारतम्यता पूरी तरह बनी रहती है।

देशकाल, वातावरण योजना

देशकाल और वातावरण की दृष्टि से 'सलाम' कहानी पूर्णरूपेण सफल कही जा सकती है। कहानी को पढ़कर लगता है कि लेखक को ग्रामीण वातावरण की पूर्ण जानकारी है, समझ है। देशकाल की दृष्टि से भी कहानी उत्तम कही जा सकती है। ओम प्रकाश जी ने परिस्थितियों और वातावरण के चित्रण को बड़े ही कौशल से प्रस्तुत किया है। पूरा देशकाल और वातावरण बड़ा ही सजीव बन पड़ा है और कथानक के विकास में पूर्णरूपेण सहायक है। कथानक का वर्णन कहीं–कहीं यथार्थ के पास होते हुए भी खलता है।

भाषा–शैली

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी की भाषा–शैली गांव के वातावरण के अनुकूल ही बन पड़ी है। यह स्वाभाविक है, सशक्त है। किंतु सभ्य समाज में अथवा पूरे परिवार में बैठकर पढ़ने में कान खड़े करने वाली है जो कि साहित्य और लेखन कला की दृष्टि से स्वस्थ एवं उचित नहीं कही जा सकती। ओम प्रकाश जी की भाषा सरल, सजीव और सादगी भरी है। वह जन समाज की सस्ती भाषा है, जिसे संभालना, स्तरीय बनाना लेखक का दायित्व बन जाता है, लेकिन शायद वास्तविकता और यथार्थ के चक्कर में पड़कर ओम प्रकाश जी यह बात भूल बैठे हैं। उनकी भाषा में कृत्रिमता और आडंबर बिल्कुल भी नहीं है। यह देश और पात्र के अनुकूल भी है। भाषा–शैली में प्रवाह खूब बन पड़ा है। इसमें कहावतों और मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग किया गया है।

ओम प्रकाश जी की शैली वर्णनात्मक अधिक बन पड़ी है। शिल्प विधान की दृष्टि से 'सलाम' कहानी की शैली 'आत्म–चरित्रात्मक' ही अधिक बन पड़ी है।

टिप्पणी

उद्देश्य

ओम प्रकाश वाल्मीकि जी की यह कहानी मनोरंजन की दृष्टि से नहीं लिखी गई है। यह पूर्णतः उद्देश्य को केंद्र में रखकर लिखी गई है। इस कहानी का मूलाधर परिस्थितियों के बीच मानव चरित्र की कमजोरियों को दिखाकर उनका बहिष्कार करना ज्यादा रहा है। उनकी इस कहानी का उद्देश्य पूरी तरह पुराने रीति–रिवाजों को जड़ मूल से उखाड़ फेंकना अधिक रहा है। इस कहानी का उद्देश्य गांव में चलने वाले दस्तूरों के घिनौने रूप को उजागर करना, सामने रखना अधिक रहा है। लेखक इस उद्देश्य में पूर्णरूपेण सफल रहा है–लेकिन जीवन आगे बढ़ने का नाम है। पुराने को बदलने के प्रयास भी करते रहना ठीक है। परिवर्तन जीवन का वास्तविक सत्य है। यह अपनी गति से होता रहता है। हां, इसमें प्रयास इसको एक अलग गति प्रदान करते हैं। यह भी सत्य है।

इसी प्रसंग में कहानीकार यतीन्द्र नाथ गौड़ ने लिखा भी है–

परिवर्तन की छाया में, हम जीते हैं ये जीवन सारा।
परिवर्तन से ही होता है, ये जीवन सुखद–दुखद हमारा।।

5.6.4 कहानी का सार

ओम प्रकाश वाल्मीकि यथार्थवाद के नये लेखकों में से एक हैं। उनकी कहानी में यथार्थवाद खूब मुखरित हुआ है। ऐसा ही उनकी 'सलाम' नामक कहानी को पढ़कर लगता है।

'सलाम' कहानी का कथानक छुआछूत और जातिवाद को लेकर लिखा गया लगता है। पुराने सच को उगलती, दिल को छू जाने वाली कहानी है। यह वातावरण को उभारने में पूर्णरूपेण सफल है। इसका सार कुछ इस प्रकार है–

देहरादून, नगर पालिका में कार्यरत सफाई कर्मचारी के लड़के हरीश की शादी ऋषिकेश में कार्यरत सरकारी दफ्तर में सफाई कर्मचारी जुम्मन की लड़की से तय हो गई थी। जुम्मन का परिवार गांव में ही रहता था। उनका पारंपरिक जीवन था। अतः हरीश अपने सगे–संबंधियों के साथ बारात लेकर यहां गांव में आया था। उसके साथ उसका अभिन्न मित्र कमल उपाध्याय भी आया। इस विवाह में भी वह हर जगह मौजूद था। लगभग सारे कामकाज उसी की देख–रेख में हो रहे थे। कमल शहरी वातावरण में पला–बढ़ा था। संभवतः उसने कभी गांव का माहौल नहीं देखा था।

परिस्थितिवश बारात एक स्कूल के बरामदे में ठहरी थी। फेरों से लौटकर हरीश ने दूल्हेपन के बाने को उतारकर एक तरफ रखा और अपने मित्र कमल के साथ बरामदे में ही एक स्थान पर दीवार के सहारे पीठ लगाकर बैठ गया था। उसने कमल के लिए भी अपने ही पास जगह बनायी और उसे भी थोड़ी देर कमर सीधी करने के लिए कहा। फिर उसने पूछा–कमल! कैसा लग रहा है? वह बोला–"कैसा क्या.....? हालत दयनीय है। कितना धैर्य है लोगों में....." और कमल ने गहरी सांस ली। फिर वे आपस में बातें करते रहे। उनकी बातों को बरामदे के किनारे पर बैठे दो बुजुर्ग भी सुन रहे थे। वे भी अपनी बातें रुक–रुककर कर रहे थे। तभी उनका ध्यान दोनों मित्रों की बातों पर गया तो वे पूछ बैठे–"बेट्टे हरीश! तुम्हारा ये दोस्त पहली बार गांव आया है क्या?"

"हां, ताऊ जी!" उत्तर कमल ने दिया।

"कौन बिरादर हो?" बुजुर्ग ने बात आगे बढ़ाई।

"ताऊ, क्या इतना काफी नहीं कि ये मेरा दोस्त है और मेरी बारात में शामिल है।" हरीश ने नाराजगी जाहिर की। इस पर कमल ने विनम्रता से जवाब दिया–"ताऊ जी आपकी बात का बुरा क्या मानना.....। मैं ब्राह्मण हूं... और कुछ पूछना हो तो पूछिए।" इसके पश्चात जब हरीश ने कमल से सोने के लिए कहा तो वह बोला– "मुझे जल्दी उठने की आदत है। उठते ही चाय की इच्छा होती है। न पिऊं तो सिर भारी हो जाता है।" तिस पर उनमें से एक बुजुर्ग ने पास ही चाय की दुकान बतलायी। दिशा–निर्देश भी दे दिया।

सुबह उठते ही कमल अकेला ही दुकान ढूंढ़ता हुआ चाय की दुकान पर जा पहुंचा। वहां जब मालूम हुआ कि वह सफाई कर्मचारी की बारात में आया है तब दुकानदार ने उसे खूब खरी–खोटी सुनाई। लोग भी एकत्र हो गए। वहीं बल्लू रांघड़ भी आ गया। उसने उसे वहां से अच्छी तरह अपमानित करके भगा दिया। वह स्थिति को भांपते हुए वहां से बिना चाय पिये ही वापिस लौट आया। तब तक हरीश जाग चुका था। उसने उसके लिए भी चाय का प्रबंध करा दिया। यहां आकर कमल ने समझा कि गांव में छुआछूत और जातिवाद को लेकर हरीश जो हृदय विदारक समाचार सुनाया करता था, उस पर कमल को एकाएक विश्वास नहीं होता था, लेकिन अब जब उसने अपनी आंखों से ट्रेलर (झलक) स्वयं देख लिया, तब उसे उसकी बातों का विश्वास हो गया।

वहां के रीति–रिवाज के अनुसार हरीश को विदा होने से पहले अपनी सास के साथ रांघड़ों के उन घरों में जाकर 'सलाम' की रस्म अदा करनी थी, जहां उसकी सास साफ–सफाई का काम करती थी। जब हरीश से इस दस्तूर के लिए चलने को कहा गया तो उसने साफ मना कर दिया। उसे इस रीति–रस्म से अपमान की बू आती थी। इस पर सभी बड़े–बुजुर्गों ने समझाया और कहा कि रांघड़ों के घरों की औरतों ने कई बार आने को कहलवाया है। वे रस्म के लिए तैयार खड़ी हैं। सो, हरीश का वहां जाना अनिवार्य है। इस रीति के अनुसार दूल्हा अपनी सास के साथ जब उच्च वर्ग के दरवाजे पर जाता है और आदर सहित उनको नमस्ते (सलाम) कहता है तब वहां की औरतें उसे कपड़े, बर्तन आदि सामान देती हैं।

हरीश ने जब इस रीति को करने से बिल्कुल ही मना कर दिया, तब यह खबर रांघड़ों के परिवारों में फैल गई। तब आग–बबूला होता हुआ बल्लू रांघड़ जुम्मन के घर आ धमका। उसने जुम्मन और उसकी घरवाली को उनके मेहमानों के सामने खूब फटकार लगाई। नेग–दस्तूर को निभाने की बात कही और बोला–"जुम्मन! तेरा जंवाई इब तक 'सलाम' पर क्यों नहीं आया। तेरी बेटी का ब्याह है तो हमारा भी कुछ हक बनता है। जो नेग–दस्तूर होता है, वो तो निभाना ही पड़ेगा। हमारी बहू–बेटियां घर में बैठी इंतजार कर रही हैं। उसे ले के जल्दी आ जा.....।"

ये सुनकर जुम्मन ने अपने सिर पर बंधा कपड़ा उतारकर बल्लू रांघड़ के पांव में धर दिया–"चौधरी जीं! जो सजा दोगे भुगत लूंगा। बेटी कू बिदा हो जाण दो। जमाई पढ़ा–लिखा लड़का है। गांव देहात की रीत ना जाणे है।" इतना सुनते ही बल्लू फिर भाषण झाड़ने लगा और यह कहता हुआ धमकी भी देने लगा कि–"इब तेरा जंवाई 'सलाम' पे जाणे से मना कर रहा है....। उसे समझा दे.....सलाम के लिए जल्दी आवे.....।"

जुम्मन गड़गिड़ाता और रिरियाता रह गया–"चौधरी जी! मेरी लाज रख लो....। मैं तो थारा गुलाम हूं.....। मेरा तो जीना–मरना सब कुछ थारी ही गेल है। जो कहोगे, करूंगा. ....। बस करके बेटी कू विदा हो जाण दो। मैं थारे पांव में नाक रगडूं.....।" ये सुनकर बल्लू रांघड़ गुस्से में फनफनाता चल दिया, लेकिन जाते हुए भी चेतावनी देकर बोला–'इन सहर वालों कू कह देणा, कव्वा कबी बी हंस ना बण सके है।"

बल्लू के जाते ही कमल ने हरीश से बल्लू के विषय में पूछा। तब हरीश ने चुप रहने का संकेत किया। सभी घबराए हुए थे। सभी भय से सहम रहे थे।

बल्लू रांघड़ के जाते ही विदाई की तैयारी आनन–फानन में शुरू हो गई थी। जुम्मन ने जात–बिरादरी की औरतों को हिदायत दे दी थी–"टीके की रस्म जल्दी निबटाएं, बिना किसी हो–हल्ले के। रांघड़ कभी भी रौला कर सकते हैं।"

शादी की चहल–पहल सन्नाटे में बदल गई। इससे कमल उपाध्याय परेशान हो रहा था। उसने हरीश की ओर देखा। हरीश की आंखों में आत्मविश्वास और स्वाभिमान के उगते सूरज की चमक स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। दोनों मित्रों ने एक–दूसरे का हाथ गर्म जोशी से दबाया। नीम के पेड़ पर हरी नर्म पत्तियां हिल रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे, हरीश को प्रोत्साहित कर रही हों।

जल्दी–जल्दी बारात को खाना खिलाया गया। सामने दीवार की तरफ एक दस–बारह साल का लड़का मुंह फुलाए गुस्से में खड़ा था। तभी उसे ढूंढ़ता एक बूढ़ा हाथ में नान और मीट लिए आया। उसे खाना खाने के लिए जब कहने लगा, तब उस लड़के का गुस्सा फूट पड़ा–"ना मैं नी खात्ता। मुसलमान के हाथ की बणी रोट्टी मैं नी खात्ता।" तब बूढ़ा झुंझलाते हुए बोला–"ये लौंडा भी बहुत दिक करे है। बामनों सी बोली बोले है..." और फिर वह उससे कहने लगा–"अरे! वो रोटी बनाने वाला कारीगर मुसलमान ना है, हिंदू है।" फिर भी वह लड़का अपनी बात पर अड़ा रहा। कमल और हरीश फटी–फटी आंखों से उसको देख रहे थे। कुछ देर पहले जगा आत्मविश्वास लड़के की आवाज में दबने लगा, घुटने लगा था।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की यह कहानी अतिक्रमण का शिकार होती प्रतीत होती है। इसमें वस्तु जगत का आनंद नहीं, अपितु, दारुण दुःख भोगते लोगों की बेचैनी है। यह कहानी पुराने रीति और दस्तूरों पर भी चोट करने में पूर्ण सफल रही है।

5.6.5 कहानी की समीक्षा

दलित वर्ग पर सटीक लिखने वाले लेखकों में एक नया और महत्वपूर्ण नाम और जुड़ गया है श्री ओम प्रकाश वाल्मीकि का। ओम प्रकाश जी का साहित्य यथार्थ से बहुत ही गहरे से जुड़ा है। उनकी सलाम कहानी भी संवेदनशीलता और अनुभव की कहानी है। यह एक ऐसे यथार्थ से सामना कराती है जहां सालों साल की पीड़ा अंधेरे कोने में दुबकी पड़ी है।

टिप्पणी

यह कहानी जीवन–संघर्ष की कहानी है। लेखक की बेचैनी का लिखित दस्तावेज है। दलित जीवन की व्यथा और छटपटाहट इस कहानी की विशेषता बनकर रह गई है।

लेखक ने साहित्य में वर्चस्व की सत्ता को चुनौती–सी दी है। दबे–कुचले, शोषित–पीड़ित जन समूह को मुखरता देकर उनके आजू–बाजू फैली विसंगतियों पर भी चोट की है। यह चोट दलित विमर्श को सार्थक और गुणात्मक बनाती प्रतीत होती है।

वस्तुतः इस कहानी में वस्तु–जगत का आनंद नहीं, अपितु दारुण दुःख भोगते आ रहे कमजोर मनुष्यों की तिलमिलाहट अधिक है।

इस कहानी में जाति–बिरादरी और ऊंच–नीच तथा असमानता से भी अधिक सदियों से चले आ रहे रीति–रिवाजों और दस्तूरों का मुद्दा विशेष रूप से उठाया गया है।

कहानी की मूल संवेदना

इस कहानी की मूल संवेदना पुराने रीति–रिवाजों और दस्तूरों की रही है। यह सच्चाई भी है कि आज भी पिछड़े और दूर–दराज के कुछ गांवों में यह स्थिति देखी जा सकती है। गांवों में जातिवाद अपनी गहरी जड़ें जमाए है और गांवों में ही क्यों बल्कि शहरों में भी जातिवाद खूब सिर उठाकर चलता है। हां, यह बात जरूर है कि आज उसके पैर शहरों में नहीं के बराबर रह गए हैं। जो जातिवाद के विरुद्ध हैं वे ही अपने नाम के आगे खूब 'सरनेम' लगाते हैं बल्कि आज तो ऐसी–ऐसी जातियां सुनने को मिल जाती हैं जो पहले कभी सुनी ही नहीं गई थीं।

5.6.6 कहानी कला के तत्व और 'सलाम'

कहानी कला के कुछ तत्व इस प्रकार हैं, यथा–(अ) कथावस्तु, (आ) पात्र और चरित्र–चित्रण, (इ) संवाद; (ई) देशकाल और वातावरण, (उ) भाषा–शैली, (ऊ) उद्देश्य।

कहानी कल के तत्वों का विस्तारपूर्वक वर्णन निम्न प्रकार से है–

(अ) **कथावस्तु–** कथावस्तु की दृष्टि से 'सलाम' कहानी बड़ी ही सशक्त है। कहानी की कथावस्तु ही पूरी कहानी की 'जान' बनी हुई है। घिसे–पिटे, पुराने रीति–रिवाजों और दस्तूरों को ढोने के लिए शहर में कार्य करने वाले जुम्मन को गांव के रीति–रिवाजों और दस्तूरों के आगे नाक तक रगड़नी पड़ती है। यहां मानवता और आधुनिकता का हृदय चित्कार उठता है।

(आ) **पात्र और चरित्र–चित्रण–** कहानी 'सलाम' के सभी पात्रों का चरित्र–चित्रण कहानी की मांग के अनुसार ही बन पड़ा है। सभी पात्रों का चरित्र अपने–आप में उभरकर आया है। इसके प्रमुख पात्र हैं–हरीश, कमल, जुम्मन और बल्लू रांघड़। इस कहानी में लेखक ने सभी चरित्रों के चरित्र को खासी जीवंतता प्रदान की है।

(इ) **संवाद–** संवाद भी कहानी कला का विशेष और प्रमुख तत्व है। संवाद से कहानी में जान आ जाती है। संवाद हमें कहानी से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वास्तविकता से रूबरू कराते हैं। 'सलाम' कहानी में संवादों का कमाल देखते ही बनता है। यथा–

टिप्पणी

बल्लू रांघड़ गुस्से में फनफनाता चल दिया। जाते–जाते चेतावनी देकर बोला–"इन सहर वालों कू कह देणा, कव्वा कबी बी हंस ना बण सके है।"

बल्लू के जाते ही कमल ने हरीश से पूछा–"कौन था यह? इस तरह डरा–धमका क्यों रहा था?" हरीश ने चुप रहने का इशारा किया।

10–12 साल के नाराज बच्चे और बूढ़े का संवाद देखिए–

"पर क्यूं! क्या हुआ है इसमें?" बूढ़े ने तल्खी से कहा।

"मुसलमान के हाथ की बणी रोट्टी मैं नी खात्ता।" लड़के ने दूर हटते हुए कहा।

"मुसलमान.....!" कौण मुसलमान?

"वो जो गड़ा वहां बैट्ठा रोट्टी बणा रा है।" लड़के ने रोटी बनाने वाले कारीगर की ओर इशारा किया।

वस्तुतः संवादों की अपनी जुबान होती है, जो पूर्णरूपेण अपने–आप में सक्षम होती है।

(ई) **देशकाल और वातावरण–** इस कहानी में पिछड़े हुए गांव को दिखाया गया है। लेखक ने गांव का पूरा चित्र सजीव कर दिखाया है। पाठक पूरी तरह इसमें स्वयं को रचा–बसा पाता है। कहानी की पृष्ठभूमि भी ग्रामीण ही है। कहानी को पढ़ते हुए लगता है–जैसे सब कुछ वास्तविक रूप में सामने ही घट रहा है। इसे लेखक की पूर्ण सफलता माना जा सकता है।

(उ) **भाषा–शैली–** इस कहानी के पात्रों की भाषा–शैली वैसे तो कहानी की मांग के अनुरूप ही है परंतु, कहीं–न–कहीं गाली–गलौच की भी सीमा को तोड़ती दृष्टिगोचर होती है जोकि भद्रता तथा सद्–साहित्य से बाहर की बात हो जाती है। अप्रत्यक्षता का सहारा लेकर उनसे बचकर भी निकला जा सकता था। शैली और शिल्प की दृष्टि से यथार्थ को देखते हुए कहानी सफल कही जा सकती है।

(ऊ) **उद्देश्य–** कहानी अपने उद्देश्य में शत–प्रतिशत खरी उतरती है। लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि ने जिस उद्देश्य को लेकर कहानी लिखी है, उसमें वे पूर्ण सफल रहे हैं। उनका उद्देश्य उजाले की किरण में अभी भी अंधेरे की कालिमा के दर्शन कराने का था, वे उन्होंने करा दिए हैं। इस बात का साक्षी कमल उपाध्याय स्वयं भी है जो पहले हरीश द्वारा बताई गई इन हृदयविदारक बातों पर विश्वास नहीं करता था किंतु जब वह हरीश के विवाह में गांव में आता है और यहां के सत्य को स्वयं भोगता है, तब उसकी आंखें फटी की फटी रह जाती हैं।

5.6.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

(1) "हरीश, सुबह जल्दी उठने की आदत है मेरी। चाहे देर रात दो बजे सोऊं, नींद पांच बजे ही टूट जाती है। मां सुबह पांच बजे से ही पूजा–पाठ में लग जाती है। उनकी खटर–पटर से मैं भी उठ जाता हूं। बरसों से ऐसे ही चल रहा है। मां

टिप्पणी

सुबह–सुबह चाय बनाकर मेरे हाथ में थमा देती हैं। अब तो ऐसी आदत पड़ गई है कि यदि छः बजे तक चाय न मिले तो सिर भारी होने लगता है।"

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश ओम प्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित कहानी 'सलाम' से लिया गया है।

प्रसंग

देहरादून से हरीश की बारात गांव में आई है। उसी में दूल्हे हरीश का अभिन्न मित्र कमल उपाध्याय भी आया हुआ है। बारात स्कूल के बरामदे में ही पसरी हुई है, जहां व्यवस्था के नाम पर अभावों का ही साम्राज्य है। देर रात को सोने से पहले कमल अपने मित्र से अपनी आदत और आवश्यकता के बारे में बतलाता हुआ कहता है–

व्याख्या

प्रायः सभी की आदत होती है अथवा दिनचर्या होती है। बारात में तो सब चलता ही है, लेकिन कमल इस ब्याह में भी बाराती से अधिक हरीश का दाहिना हाथ बना हुआ है। शादी की रस्म पूरी होते–होते रात के दो बज गए तो हरीश और कमल भी बरामदे में ही थके–मांदे जगह तलाश कर सुस्ताने से लगते हैं। तब कमल हरीश से अपनी सुबह–सवेरे उठने की तथा उठते ही छः बजे तक चाय पीने की आदत के विषय में बताता है और यह भी बताता है कि यदि किसी कारण से उसे पांच से छः बजे के बीच सुबह–सवेरे चाय न मिले तो उसके सिर में काफी दर्द होने लगता है, इसलिए प्रातः चाय उसके लिए नितांत आवश्यक है, एक दवा है।

विशेष

हरीश और कमल गहरे मित्र हैं। इसलिए कमल उससे अपनी आदत की बात बेबाक तरीके से बयान कर देता है। यह गद्यांश कहानी का मूल भाग है। इसी के बाद से कहानी को पूर्ण गति मिलने लगती है।

(2) "तभी तो कहूं–जातकों (बच्चों) कू स्कूल ना भेज्जाकरो। स्कूल जाके कोण–सा इन्हें बालिस्टर बणना है। ऊपर से इनके दिमाग चढ़ जांगें। यो न घर के रहेंगे न घाट के। गांव की नाक तो तूने पहले ही कटवा दी जो लौंडिया कू दसवीं पास करवा दी। क्या जरूरत थी लड़की कू पढ़ाने की। गांव की हवा बिगाड़ रहा है तू। इब तेरा जंवाई 'सलाम' पे जाणे से मना कर रहा है..... उसे समझा दे.....'सलाम' के लिए जल्दी आवे।" बल्लू ने फैसला सुनाया।

संदर्भ

यह गद्यांश ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' से उद्धृत है।

प्रसंग

जब दलित वर्ग का दूल्हा 'हरीश' गांव के उच्च वर्ग रांघड़ परिवारों में 'सलाम' का दस्तूर निभाने के लिए जाने से साफ–साफ मना कर देता है तो इसकी भनक बल्लू रांघड़ को लगती है। तब वह फनफनाता हुआ जुम्मन के घर आकर उसे चेतावनी के रूप में हिदायत देता हुआ धमकी भी देता है।

टिप्पणी

व्याख्या

गांव के दस्तूर के अनुसार कुछ रिवाज है कि उच्च वर्ग के परिवारों में सेवा, छोटे–मोटे काम करने वाले निम्न वर्गीय जातियों के घर जब भी कोई विवाह होता है तब दूल्हा अपनी सास के साथ उच्च वर्ग के परिवारों के द्वार पर जाकर 'सलाम' करता है। तब उन घरों की औरतें उन्हें बर्तन, वस्तु, अनाज तथा अन्य सामान उपहार के रूप में देती हैं। हरीश इस दस्तूर को निभाने से जब अपने ससुर, पिता आदि सभी बुजुर्गों को मना कर देता है और इसकी भनक जब रांघड़ जाति के बल्लू रांघड़ को लगती है तब वह जुम्मन के घर आ धमकता है और उसे खरी–खोटी सुनाने लगता है। जुम्मन ऋषिकेश के सरकारी कार्यालय में कार्य करते हुए भी गांव के रीति–रिवाज के अनुसार बल्लू की सारी बातें सिर झुकाकर सुन लेता है। सुनने के बाद अपनी मजबूरी भी बताता है। किंतु, बल्लू उसकी एक भी नहीं सुनता और वहां से फनफनाता हुआ चला जाता है।

विशेष

इस गद्यांश में उच्च वर्ग का दलित वर्ग पर दबदबा स्पष्ट दिखायी देता है। इस गद्यांश में वही उक्ति चरितार्थ होती है–"का समरथ को दोष गुसाईं।"

(3) "खड़ंजे पर फिसलन थी। नालियों में बहते पानी से बचते–बचते वह गली के मुहाने पर एक खुली और रेतीली जगह पर आ गया। सामने ही सड़क के पार एक छप्परनुमा दुकान थी, जिसमें एक किनारे पर भट्टी बनी थी। भट्टी के साथ ही एक चबूतरा भी था जिस पर लकड़ी के खोके में पान–बीड़ी, ज़र्दा और तम्बाकू आदि की थैलियां रखी थीं। साथ ही दो–तीन बदरंग से डिब्बे रखे थे। भट्टी में सुलगते कोयलों से गहरा काला धुआं निकल रहा था, जिसका कसैलापन उसने अपने फेफड़ों में महसूस किया। दीवार पर किसी सिने तारिका का अर्द्धनग्न बदरंग कैलेंडर टंगा था। जो धूल और धुएं के हमलों से मटमैला हो गया था।"

संदर्भ

यह गद्यांश ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' से लिया गया है।

प्रसंग

जिस गांव में हरीश की बारात गई है उसी गांव की एक चाय की दुकान का यथार्थ वर्णन इस गद्यांश में किया गया है। इसी दुकान में हरीश का खासमखास दोस्त कमल उपाध्याय चाय पीने की इच्छा से जाता है। इस दुकान का पता पिछली ही रात को बारात में आए हरीश के ताऊजी ने कमल को बताया था।

व्याख्या

कमल को सुबह ही चाय पीने की आदत है। इसी चक्कर में वह गांव की तंग, गंदी गलियों और फिसलन भरे खड़ंजों को पार करता हुआ बड़ी सड़क के किनारे बनी इस चाय की दुकान पर आता है। चाय की दुकान की खस्ता और गंदी हालत देखकर वह परेशान हो उठता है। भट्टी के कोयलों के धुएं का कसैलापन वह अपने फेफड़ों में जाता हुआ महसूस करता है। परंतु चाय पीना उसकी मजबूरी भी है, आदत और आवश्यकता भी, क्योंकि सुबह

टिप्पणी

के छः बजे तक यदि उसे चाय न मिले तो उसके सिर में दर्द उभरने लगता है। इसीलिए वह चाय की दुकान के मालिक जर्जर बूढ़े से सहज भाव से चाय देने के लिए कहता है।

विशेष

ओम प्रकाश वाल्मीकि जी ने इस पद्यांश में भी गांव के गली–कूचे और फिसलन भरे खड़ंजों का बड़ा ही जीवंत वर्णन किया है। वे यथार्थ और वास्तविकता को अपनी कहानी में निरंतर बनाए रखते हैं। इसी प्रकार गांव की चाय की दुकान का चित्रण भी इसी गद्यांश में बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है। इस दुकान से ही कहानी 'सलाम' की जड़ें और फिर उनमें से उप–जड़ें निकलती हैं और कहानी गतिमान होकर अपने उद्देश्य तक पहुंचती है।

गतिविधि

किसी दूर–दराज के पिछड़े गांव में जाकर वहां के इस प्रकार के वातावरण का जायजा लेकर आप भी किसी और समस्या अथवा अभाव को आधार बनाकर कहानी लिखने का प्रयास कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

- चंद्रधर शर्मा गुलेरी प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद के समकालीन थे। प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें 'अमर कथा शिल्पी' की संज्ञा से विभूषित किया है।
- मुंशी प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' के नाम से सर्वप्रथम बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने संबोधित किया था।
- मोहन राकेश जी की सबसे बड़ी उपलब्धि उनका नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' था जो सन 1958 में प्रकाशित हुआ था।
- मन्नू भंडारी ने साफ सुथरी सुपर हिट फिल्म 'रजनीगंधा' की कहानी लिखी थी।
- ओम प्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'जूठन' उनकी अपनी आत्मकथा है जिससे उन्हें हिंदी साहित्य में पहचान और प्रतिष्ठा मिली।

5.7 सारांश

'उसने कहा था' कहानी में स्वार्थ और बलिदान दोनों ही अपने चरम पर रहे हैं। कहानी का कैनवास काफी विस्तृत रूप लिए हुए है। कभी–कभी बचपन की बात बहुत अंदर तक घर कर जाती है और समय आने पर रंग लाती है। यही वास्तविकता इस कहानी में दिखलायी गई है। बाजार में ऐसे ही मिलने वाली एक आठ वर्षीय लड़की बड़ी होकर लहना के सूबेदार की सूबेदारनी बन जाती है। सूबेदार भी पास ही के गांव के हैं। जब फिर से लाम पर आने का बुलावा आता है तब सूबेदारनी लहना को बुलाकर अपने पति और पुत्र बोधा सिंह के जीवन की रक्षा की भीख मांगती है। लहना अपने प्राणों की परवाह न करके पिता और पुत्र दोनों की रक्षा करता है। बोधा सिंह सूबेदार के पांच बच्चों में से एक ही बचा है।

प्रेमचंद द्वारा रचित 'ठाकुर का कुआं' कहानी यथार्थवादी है। मानवीय सोच से ओत–प्रोत कहानी है। इसमें जोखू और गंगी की दयनीय स्थिति दर्शायी गई है। गंगी को सुलझी हुई, समझदार स्त्री के रूप में दिखाया गया है। वह कर्तव्य–परायणा दिखलाई गई है, जो संघर्ष करने में पीछे नहीं रहती और जुझारू प्रवृत्ति की है। जोखू तो बस कहानी का संबल मात्र ही बनकर रह गया है, किंतु वह है प्रखर बुद्धि वाला। दोनों पति–पत्नी एक–दूसरे के प्रति समर्पित भाव रखते हैं। दोनों के बीच अच्छी और सच्ची सोच है।

'मलबे का मालिक' मोहन राकेश की यथार्थवादी कहानी है। मानवीय सोच कितनी स्वार्थी हो सकती है–यही इस कहानी में दिखलाया गया है। विश्वासघात भी इस कहानी में अपने चरम पर है। 'रक्षक ही भक्षक' कैसे होते हैं, ये भी इस कहानी में देखा जा सकता है। व्यक्तिगत स्वार्थ में रंगे चरित्र यही शिक्षा देते हैं कि भौतिक वस्तुएं जीवन से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई हैं। अब्दुल गनी 'बेचारा' बनकर रह गया है। कहानी अपने आप में पूर्ण सफल है।

मन्नू भंडारी की कहानी 'सलाम' पूर्णरूपेण सामाजिक कहानी है। मानवीय सोच की कहानी है। आज के आधुनिक युग की कुप्रवृत्तियों से आतंकित भी दिखती है– दीपा कानपुर से कलकत्ता अकेली यात्रा करने की सोचकर कितनी उधेड़–बुन में लग जाती है। यहां नारी को लता की उपमा क्यों दी जाती है, इस ओर भी यह कहानी इशारा करती प्रतीत होती है। छोटे–छोटे चरित्र भी अपनी मौजूदगी दर्ज कराते हैं। यह मध्यम वर्ग की अच्छी तथा बेबाक कहानी है। साथ ही नारी प्रधान तो है ही।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' यथार्थवादी है। मानवीयता की सोच और संवेदना से जूझती कहानी है। आज भी पिछड़े गांव की वास्तविकता का कच्चा–चिट्ठा खोलती कहानी है। कहानी के सभी चरित्र सजीव लगते हैं। शहर और गांव की सोच को बयान करती 'सलाम' कहानी में लेखक ने वास्तविकता को पूरी तरह परोस कर रख दिया है। कुछ ग्रामीणों के दकियानूसी विचार दूसरों को कितनी ठेस पहुंचा सकते हैं–यह इस कहानी के माध्यम से समझा जा सकता है। शायद इसीलिए अधिकांश दलित समाज ग्रामीण वातावरण के इस दलदल से निकलकर, पढ़–लिखकर शहरों का रुख कर रहा है। अतः 'सलाम' कहानी अपने उद्देश्य में पूणरूपेण सफल है।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **समष्टि** : सार रूप में।
- **कुड़माई** : सगाई।
- **पारसाल** : गत वर्ष।
- **पट्ट** : जांघ।
- **बास** : बदबू।
- **बू** : गंध।

'अपनी प्रगति जांचिए'

30. ओम प्रकाश वाल्मीकि के कितने कहानी–संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं?
31. लेखक को कौन–से वर्ष में डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया?
32. कमल किस जाति का था?
33. कमल और बल्लू रांघड़ के बीच क्या संबंध थे?
34. बारात किस शहर से आई थी?
35. दुल्हन ने कहां तक शिक्षा पाई थी?

टिप्पणी

टिप्पणी

- **दुआर** : द्वार।
- **बेफिक्रे** : अपने ही में रहने वाले/मस्तमौला।
- **रसभरी आंख** : ललचाई आंख।
- **कुएं की जगत** : कुएं के चारों तरफ का चौंतरा, जिस पर खड़े होकर कुएं से पानी खींचा जाता है।
- **चौकन्नी** : सावधान।
- **बड़ा शहजोर** : बड़ा ताकतवर/जोर आजमाने में कुशल।
- **हिलकोरे** : हिलने/गिरने।
- **चेहमेगाइयां** : कानाफूसी।
- **मरदूद** : रद्द किया हुआ, तिरस्कृत, नीच।
- **बत्ती** : प्रकाश/रोशनी।
- **भुरभुरे** : खस्ताहाल।
- **रजनीगंधा** : पुष्प का नाम।
- **भभक** : भड़क उठना, तुनकना, तेज बदबू।
- **कठोर** : दंड/सजा।
- **गुमान** : अनुमान/अंदाजा।
- **भाल** : मस्तक।
- **सलाम** : दस्तूर का नाम।
- **बिरादर** : भाई, बंधु; भाई बंद, सजातीय।
- **खड़ंजा** : ईंटों की बनी गली/सड़क।
- **टेम** : टाइम/समय।
- **बिफरना** : क्रोध में आग–बबूला हो जाना, भड़कना, नाराज होना।
- **बियाबान** : निर्जन/सुनसान।
- **सीकिया** : अधिक ही दुबला–पतला/सींक जैसा।

5.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. तीन
2. सन् 1915
3. 'सरस्वती' पत्रिका में
4. लहन
5. पिता–पुत्र का

टिप्पणी

6. 77
7. 25 वर्ष बाद
8. दो
9. उर्दू में
10. सोजे–वतन (अप्रकाशित)
11. 300 रचनाएं
12. नवाबराय
13. उपन्यास–सम्राट
14. उच्च वर्ग से
15. जोखू
16. दो
17. रक्खे पहलवान ने
18. मनोरी
19. लच्छे पहलवान
20. चिरागदीन की बेटियां
21. अब्दुल गनी
22. चिरागदीन की पत्नी
23. अब्दुल गनी का बेटा
24. चिरागदीन का मकान हड़पना
25. मध्यप्रदेश में
26. पिता से
27. रजनीगंधा के
28. दीया का पहला प्रेमी
29. मेहता साहब की बच्ची ने
30. दो
31. सन् 1993 में
32. ब्राह्मण
33. कोई संबंध नहीं था
34. देहरादून से
35. दसवीं तक

टिप्पणी

5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'उसने कहा था' कहानी की समीक्षा कीजिए।
2. लहना सिंह और सूबेदारनी के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
3. लेखक मुंशी प्रेमचंद का परिचय दीजिए।
4. 'ठाकुर का कुआं' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।
5. 'मलबे का मालिक' कहानी के पात्र अब्दुल गनी के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
6. अब्दुल गनी के आने पर रक्खा की मनोदशा का वर्णन कीजिए।
7. 'यही सच है' कहानी की पात्र 'दीपा' के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
8. 'सलाम' कहानी के जुम्मन की विवशता को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'उसने कहा था' कहानी का सार एवं चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं लिखिए।
2. कहानी 'ठाकुर का कुआं' में कहानी कला के तत्वों पर प्रकाश डालते हुए कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. 'मलबे का मालिक' कहानी का सार लिखिए।
4. 'यही सच है' कहानी का सार एवं इस कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।
5. 'सलाम' कहानी का सार लिखिए।
6. 'सलाम' कहानी के कला तत्वों पर प्रकाश डालिए।

5.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. मस्तराम कपूर, *साहित्य के निर्माता–चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'*, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
2. मुंशी प्रेमचंद, *ईदगाह* व अन्य कहानियां, राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली, सन् 2004.
3. प्रतिभा अग्रवाल, *साहित्य के निर्माता : मोहन राकेश,* साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
4. मन्नू भंडारी, *मेरी प्रिय कहानियां,* राजपाल एंड सन्स, दिल्ली।
5. ओम प्रकाश वाल्मीकि, *'सलाम'*, राधा–कृष्ण पेपर बैक्स, नई दिल्ली, सन् 2010

इकाई 6 यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी

इकाई की रूपरेखा

6.0 परिचय
6.1 इकाई के उद्देश्य
6.2 यात्रावृत्त : परशुराम से तुरख तक : अज्ञेय
  6.2.1 परशुराम से तूरखम– (एक टायर की रामकहानी)
  6.2.2 लेखन–शैली
6.3 रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल – फणीश्वरनाथ रेणु
  6.3.1 ऋणजल–धनजल
  6.3.2 लेखन शैली
  6.3.3 साहित्यिक अवदान
6.4 रेखाचित्र : भाभी – महादेवी वर्मा
  6.4.1 भाभी
  6.4.2 भाषा शैली
6.5 संस्मरण : विष्णु प्रभाकर : यादों की तीर्थयात्रा : जैनेन्द्र कुमार
6.6 आत्मकथा : गुड़िया भीतर गुड़िया – मैत्रेयी पुष्पा
  6.6.1 गुड़िया भीतर गुड़िया
  6.6.2 भाषा और शिल्प
6.7 जीवनी : महापंडित राहुल – गुणाकर मुले
6.8 सारांश
6.9 मुख्य शब्दावली
6.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
6.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
6.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

6.0 परिचय

हिंदी साहित्य की नयी गद्य विधाओं में यात्रावृत्त, रिपोतार्ज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी आदि विधाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इन विधाओं में गद्य इतनी सरसता के साथ प्रस्तुत किया जाता है कि पढ़ने वाला व्यक्ति भाव सागर पर तैरते हुए लहर रूपी चित्रों को उकेरता चला जाता है। इन विधाओं में कथ्य का नयापन और शिल्प की नवीनता इन्हें पारंपरिक गद्य विधाओं से अलग खड़ा करती है। जो विषय कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध की सीमाओं में नहीं बांधे जा सकते वे विषय इन नयी विधाओं में निसृत होकर आये हैं।

इस इकाई में अज्ञेय के यात्रावृत्त, फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज, महादेवी वर्मा के रेखाचित्र, विष्णु प्रभाकर के संस्मरण, मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा तथा गुणाकर मुले द्वारा लिखित जीवनी आदि विविध विधाओं का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है। इन लेखकों की लेखन शैली की विशेषताओं का भी विवेचन किया जा रहा है।

6.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप--

- अज्ञेय के यात्रावृत्त 'परशुराम से तूरखम तक' की विशिष्टताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज 'ऋणजल–धनजल' की लेखन शैली का विश्लेषण कर पाएंगे;
- महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'भाभी' की भाषा शैली की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- विष्णु प्रभाकर के संस्मरण 'यादों की तीर्थयात्रा–जैनेन्द्र कुमार' की भावव्यंजना की समीक्षा कर पाएंगे;
- मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' की भाव व्यंजना का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- गुणाकर मुले द्वारा लिखित राहुल सांकृत्यायन की जीवनी की विशेषताओं का अध्ययन कर पाएंगे।

6.2 यात्रावृत्त : परशुराम से तुरख तक : अज्ञेय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' आधुनिक साहित्य के शलाका पुरुष होने के साथ–साथ जिज्ञासु, विचारक एवं प्रतिभा संपन्न थे। अज्ञेय ने अपनी सृजनक्षमता एवं मौलिक चिंतन से आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया।

अज्ञेय का जन्म 7 मार्च, 1911 ई. को उत्तर–प्रदेश के देवरिया जिले के कसया में हुआ था। उनके पिता का नाम हीरानंद शास्त्री तथा माता का नाम वयन्ती देवी था। पिता डॉ. हीरानंद शास्त्री का कार्य क्षेत्र लगातार बदलते रहने के कारण अज्ञेय की शिक्षा–दीक्षा एक स्थान पर नहीं हुई। इनका बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। इनकी प्रारंभिक शिक्षा की शुरुआत लखनऊ में और स्कूली शिक्षा की समाप्ति लाहौर में हुई। उनके परिवार में बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही दी जाती थी। अज्ञेय की शिक्षा का आरंभ भी लखनऊ में संस्कृत के श्लोकों को याद करने की मौखिक रीति से हुआ और जम्मू कश्मीर में उन्हें संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी की शिक्षा मिली। नालंदा में रहते हुए पिता से हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया। पटना में राखालदास बंदोपाध्याय के संपर्क में आकर बांग्ला सीखी। अज्ञेय ने मैट्रिक की परीक्षा 1925 में पंजाब से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसके बाद मद्रास क्रिश्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहां से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एस.सी. करने के लिए लाहौर के फॉरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 ई. में वहां से बी.एस.सी. पास करने के बाद 1930 में एम.ए. (उत्तरार्द्ध) की परीक्षा नहीं दे पाये और क्रांतिकारी संगठन में शामिल हो गए। अज्ञेय का क्रांतिकारी जीवन लगभग 7 वर्ष तक (1929–1936) रहा। उन्होंने जेल की यातना सहते हुए इसी कालावधि में अनेक कहानियां और उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' लिखा जिसे प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में मील के पत्थर के रूप में स्वीकार किया गया। इसी दौरान पत्र–पत्रिकाओं में भी उनकी कहानियां छपनी शुरू हुईं।

यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी

टिप्पणी

अज्ञेय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सन् 1945 ई. में तारसप्तक का संपादन–प्रकाशन था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अज्ञेय 'फासिस्ट–विरोधी', युद्ध के समर्थक थे। अपनी प्रतिबद्धिता को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने निश्चय किया कि युद्ध में शामिल होना है और सन् 1943 में वे युद्ध में शामिल हो गए। अज्ञेय ने तीन वर्षों तक सेना की नौकरी की। सेना से मुक्त होने के बाद कुछ दिनों तक गुरुदासपुर (पंजाब), मेरठ और बनारस में भटकते रहे। अंततः मार्च 1947 में अपने कार्य का विस्तार करने के लिए इलाहाबाद में अपना निवास बनाया और उसी वर्ष प्रयाग से प्रतीक नामक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका निकालना प्रारंभ किया। इसी बीच उन्होंने 'थॉट' (अंग्रेजी – पत्रिका) का भी संपादन किया। बाद में उन्होंने 'वाक्' नामक पत्रिका निकाली और उसका संपादन भी किया। सन् 1951 में 'दूसरा सप्तक' कविता संग्रह का संपादन किया। सन् 1952 में 'थॉट' से अलग होने के बाद आकाशवाणी में कार्य करना प्रारंभ किया। सन् 1955 तक भाषा सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

आकाशवाणी से त्यागपत्र देकर वे अप्रैल 1955 में पहली बार 'यूनेस्को' के निमंत्रण पर पश्चिम यूरोप की यात्रा पर गए। यूरोप प्रवास के उनके अनुभव उनके यात्रा संस्मरण 'एक बूंद सहसा उछली' में संकलित हैं। 1958–60 तक के दो वर्ष उनकी साहित्यिक गतिविधियों एवं रचनात्मक क्रियाशीलता से परिपूर्ण रहे। सन् 1959 में अज्ञेय ने 'तीसरा सप्तक' कविता संग्रह का संपादन प्रकाशन किया। सन् 1960 में उन्होंने सुमित्रानंदन पंत की षष्ठिपूर्ति के उपलक्ष्य में उन्हें समर्पित किये जाने वाले मान ग्रंथ 'रूपाम्बरा' का संपादन किया। 1964 में उन्होंने टाइम्स ऑफ इण्डिया पत्रिका का संपादन कार्य स्वीकार किया। पत्रिका के लिए 'दिनमान' नाम का चुनाव भी अज्ञेय ने ही किया। फरवरी 1965 में दिल्ली से 'दिनमान' निकलना शुरू हुआ। सितम्बर, 1969 में दिनमान के 'प्रधान संपादक' पद से त्याग पत्र दे दिया। अज्ञेय ने जुलाई 1971 से दिसम्बर, 1972 तक 'जोधपुर विश्वविद्यालय' में 'तुलनात्मक साहित्य' विषय के प्रोफेसर पद पर रहकर अध्यापन कार्य किया। 1973 में 'नया प्रतीक' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया।

सन् 1979 में नवभारत टाइम्स से अलग होने के बाद अज्ञेय ने स्वतंत्र लेखन के अतिरिक्त नौकरी जैसा कोई बंधन स्वीकार नहीं किया। 'भारतीय ज्ञानपीठ' से मिली पुरस्कार राशि से 'वात्सल्य निधि' की स्थापना की। सन् 1983 में अज्ञेय यूगोस्लाबिया गए क्योंकि मई 1983 के अंतर्राष्ट्रीय काव्य समारोह की संचालन समिति ने उस वर्ष 'स्वर्णमाल' पुरस्कार अज्ञेय को दिया था। यह सम्मान किसी भारतीय को पहली बार मिला था। अज्ञेय ने 14 अप्रैल, 1987 को करीब 7:30 बजे सुबह सीने में दर्द की शिकायत की और सुबह करीब 8:30 बजे उनके निधन के साथ एक साहित्यिक युग का अंत हो गया।

'अज्ञेय' का यात्रा साहित्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। वे अपने को एक यायावर के रूप में देखते हैं। उनका सारा जीवन ही एक अविराम यात्रा है। उन्होंने देश–विदेश के अनेक स्थानों का भम्रण किया। भम्रण के समय उनकी दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौंदर्य पर ही नहीं, वरन स्थान विशेष के मानव जीवन की समस्याओं पर भी टिकती है। वे पर्वतमालाओं के तमाशबीन नहीं हैं, वरन उन पर निवास करने वाले पहाड़ियों के जीवन की कुरुपताओं

के साक्षी भी हैं, वे भूगोल में ही नहीं इतिहास में भी गहरी दिलचस्पी रखते हैं। उन्होंने जिस स्थान की यात्रा की, उसके समूचे परिप्रेक्ष्य को व्यक्त करने की चेष्टा की है। 'अज्ञेय' के यात्रा वृत्तांत जीते–जागते चित्र हैं, जिनमें वस्तुओं का यथातथ्य वर्णन ही नहीं है, स्वयं लेखक की मानसिक प्रतिक्रिया भी व्यक्त होती गई है। विभिन्न भाषाओं के जाने कितने शब्द, मुहावरे, उक्तियां और वाक्यांश सहज रूप से गृहीत होकर उनके यात्रा–वर्णनों को सजीव रूप प्रदान करते हैं।

कृतित्व

अज्ञेय की रचनात्मक प्रतिभा साहित्य की नाना विधाओं में प्रस्फुट हुई है। उनके द्वारा सृजित रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

कवितासंग्रह – भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए, अरी ओ करुणा प्रभामय, आंगन के पार द्वार, पूर्वा, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूं, सागरमुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं, महावृक्ष के नीचे, नदी की बांक पर छाया, ऐसा कोई घर आपने देखा है।

उपन्यास– शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने–अपने अजनबी, छायामेखल।

कहानी– विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल और ये तेरे प्रतिरूप।

यात्रा–संस्मरण– अरे यायावार! रहेगा याद?, एक बूंद सहसा उछली।

काव्य–नाटक– उत्तर प्रियदर्शी।

वैचारिक लेख– भवन्ती, अंतरा, शाश्वती, आलवाल, संवत्सर, त्रिशंकु, जोग लिखी, अद्यतन, कहां है द्वारका, कवि दृष्टि।

आत्मालोचन– आत्मनेपद, लिखि कागद कोरे, आत्मपरक, स्मृतिलेखा, सब रंग और कुछ राग।

संपादन– तार सप्तक, दूसरा सप्तक, होमवती स्मारक ग्रंथ, पुष्करिणी, नवधा, तीसरा सप्तक, चौथा सप्तक, सर्जना और संप्रेषण, साहित्य का परिवेश, साहित्य और समाज–परिवर्तन की प्रक्रिया, सामाजिक यथार्थ और कथाभाषा तथा जन जनक जानकी।

पुरस्कार एवं सम्मान– नागरी प्रचारिणी सभा पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, स्वर्णमाल पुरस्कार, भारत भारती पुरस्कार।

उपाधियां– सन् 1968 में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की और सन् 1971 में उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट् की उपाधि से विभूषित किया।

कुल मिलाकर कहें तो अज्ञेय भारतवर्ष के उन गिने–चुने कवियों में से एक हैं, जिनका हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अप्रतिम योगदान है।

6.2.1 परशुराम से तूरखम– (एक टायर की रामकहानी)

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध हिंदी साहित्य में नयी गद्य विधाओं के उद्भव का साक्षी रहा है। इन्हीं नवजात गद्य विधाओं में से यात्रा वृत्तांत एक है।

श्रीमती हरदेवी के लिखे हुए यात्रा वृत्तांत 'लंदन की यात्रा' का मुद्रण 1883 ई. में हुआ। हालांकि यात्रा लेखन की शुरुआत 60 के दशक में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से कर दी थी। भारतेंदु के यात्रा वृत्तांत सिर्फ स्थानों का ब्यौरा ही नहीं देते बल्कि वहां के लोगों को भी रूपायित करते हैं। इनमें भारतेंदु की प्रतिभा एवं आत्म छवि भी किसी न किसी रूप में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होती है। अधिकांश यात्रा वृत्तों में लेखक की वैचारिकी, उसकी अस्मिता एवं आत्मानुभूति किसी न किसी रूप में प्रकट होती है।

उपलब्ध सूचना के आधार पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ही हिंदी यात्रा वृत्त के जनक माने जाते हैं। डॉ. बापूराव देसाई अपनी पुस्तक "यात्रा–साहित्य विधा" में लिखते हैं, "आश्चर्य की बात यह है कि हिंदी आलोचक वर्ग ने अब तक आधुनिक यात्रा साहित्य के आदि स्रोतों का अध्ययन नहीं किया है।"

भारतेंदु को यात्रा वृत्त का जनक मानकर हम हिंदी यात्रा साहित्य के आदि स्रोतों से स्वयं को वंचित रख सरल एवं उपलब्ध प्रमाणों को ही आधार मान लेते हैं जबकि यात्रा वृत्तों के आदि स्रोत आदिकालीन हिंदी साहित्य में निहित हैं। अतः हिंदी की आदिकालीन रचनाओं का गंभीर विश्लेषण जरूरी है जिससे आधुनिक यात्रा लेखन की जड़ों को पहचाना जा सके और इस विधा की गहन समझ विकसित की जा सके। इस शोध से हिंदी साहित्यलोचन एवं साहित्येतिहास दोनों को गति मिलेगी।

बारहवीं शताब्दी में आचार्य भट्ट लक्ष्मीधर ने तीर्थयात्रा संबंधी पौराणिक स्थलों को तीर्थ विवेचन के नाम से संकलित किया जो मध्यकाल में यात्रा के महत्व को प्रमाणित करता है। यह कहा जा सकता है कि तीर्थाटन एक लौकिक स्थान से अलौकिक भूमि की ओर प्रस्थान है और धार्मिक महत्व होने के बावजूद तीर्थाटन से संबंधित यात्रा साहित्य को हिंदी के यात्रा वृत्तों के आदि स्रोत के रूप में देखा जा सकता है।

तीर्थाटन और देशाटन के संबंध में 'अज्ञेय' का मत कुछ इस प्रकार है– "किंतु देशाटन कैसे किया जाए इसकी कोई विशेष पद्धति शास्त्रकारों ने नहीं बताई। तीर्थाटन की परंपरा थी लेकिन उसका उद्देश्य अनुभव संचय नहीं बल्कि पुण्य संचय था और वह भी भावनानुभव से मुक्ति पाने के लिए।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि उद्देश्य की दृष्टि से अज्ञेय पुरानी तीर्थयात्रा को आधुनिक 'पर्यटन' के रूप में नहीं देखते क्योंकि तीर्थाटन का उद्देश्य पुण्य संचय है जबकि आधुनिक पर्यटन का अनुभव संचय। अतः यह स्पष्ट है कि समकालीन संदर्भ में यात्रा का लक्ष्य अनुभव समृद्धि ही है। यदि भारतेंदु ने आधुनिक यात्रा वृत्तांत का सूत्रपात किया तो अज्ञेय ने इसे नये सांचे में ढाला।

अज्ञेय के यात्रा वृत्तों की विशिष्टता यह है कि वे संस्मरणात्मक हैं। भारतेंदु के यात्रा वृत्त दृष्टा द्वारा रचित है जबकि अज्ञेय के यात्रा–संस्करण जीवनानुभव पर आधारित हैं। स्पष्ट है कि आरंभिक यात्रा वृत्तों का केंद्र बाह्य परिवेश है, जिसका वर्णन वस्तुपरक दृष्टि से किया जाता है। इसके विपरीत समकालीन यात्रा संस्मरण का केंद्र स्वयं लेखक है, जो व्यक्ति–सापेक्ष दृष्टि से अपने निजी विचार एवं यात्रानुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। यात्रा लेखन की प्रारंभिक अवस्था में बाह्य यथार्थवाद अथवा प्रत्यक्षवाद दृष्टिगोचर होता है, जबकि समकालीन यात्रा संस्मरणों में लेखक बाहरी संसार द्वारा ग्रहण किये गए अनुभवों को अपने निजी सांचे में ढाल रचनाओं का आधार बनाता है, जिसका उद्देश्य घटनाओं का विवरण न होकर लेखक के आंतरिक अनुभवों का वर्णन है।

स्मरण या स्मृति–चित्र यहां सहज यथार्थ का प्रतिबिंब न होकर अनुभूत–यथार्थ के आत्म बिंदु हैं। यदि अज्ञेय के इस कथन को स्वीकार कर लें कि "अस्मिता की पुनः प्रतिष्ठा सत्ता बोध से जुड़ी हुई है और स्मृति उसका ही आधार है" तो हम यह कह सकते हैं कि स्मृति आत्म सत्ता के बोध के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है। सन् 1953 ई. में अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद' शीर्षक यात्रा–संस्मरण प्रकाशित हुआ था, जिसे यात्रा संस्मरण का घोषणा–पत्र कहना गलत न होगा। इसमें लेखक अपने यात्रानुभवों के संसार में पाठक को निमंत्रित करता है "भ्रमण या देशाटन केवल दृश्य परिवर्तन या मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भी योग दे, यही उसकी वास्तविक सफलता होती है। अपने यात्रा संस्मरणों में मेरा यह प्रयत्न रहा है कि उन यात्राओं के मेरी होने की बात उन्हें तात्कालिक अनुभव की प्रामाणिकता और टटकापन देने के लिए सामने आये; नहीं तो वे वृत्तांत एक समग्र दृष्टि को उभारने में ही योग दें जिससे भविष्यत यात्री अपने–अपने अनुभव को और समृद्ध बना सकें।" अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि अज्ञेय ने यात्रा लेखन को मनोरंजन के पद से उठाकर एक गंभीर रचना कर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया, क्योंकि उनके अनुसार यात्रा संस्मरण देखे हुए स्थानों का वर्णन ही नहीं है, अपितु उन यात्रानुभवों का संप्रेषण भी है, जिसको पढ़ने से पाठक का अनुभव भंडार अधिक समृद्ध बनता है। अज्ञेय इस वक्तव्य को आगे बढ़ाकर लिखते हैं कि–

"लेकिन स्पष्ट है कि अरे यायावर रहेगा याद?" जैसी पुस्तकों को उनसे मिलने वाली भौगोलिक अथवा प्रादेशिक जानकारी के लिए नहीं पढ़ा जाएगा। ऐसे यात्रा संस्मरण 'टूरिस्ट गाइड' का स्थान लेने के लिए नहीं लिखे और पढ़े जाते हैं। ऐसी पुस्तकों में प्रस्तुत ब्यौरा एक व्यक्ति की यात्रा का ब्यौरा होता है और वह यात्रा जितनी बाहरी होती है उतनी भीतरी भी। यात्रा विवरण जितना स्थूल भू–विस्तार से संबद्ध होता है उतना ही सूक्ष्म मानसिक भूगोल से भी। 'टूरिस्ट गाइड' के सहारे अनेक व्यक्ति एक ही यात्रा कर सकते हैं; यात्रा संस्मरण के सहारे की गयी प्रत्येक पाठकीय यात्रा भी उतनी ही विशिष्ट होती है जितनी लेखक की यात्रा रही और प्रत्येक के लिए संस्मरण–लेखक के मानस में प्रवेश करना आवश्यक होता है। अर्थात यात्रा संस्मरण भौगोलिक मार्ग दर्शन की कुंजी न होकर लेखक के मानसिक भूगोल पर प्रकाश डालता है। वह पृथ्वी की भौगोलिक परिधि तक सीमित न होकर संस्मरण लेखक के अंतःकरण तक विस्तृत होता है। 'टूरिस्ट गाइड' जहां बाहरी यथार्थ की विभिन्न जानकारियों का स्रोत होती है और व्यक्ति की ज्ञान पिपासा बुझाती है वहीं यात्रा संस्मरण में रचनाकार की आंतरिक अनुभूतियों की स्पष्ट छाप होती है। वस्तुपरक सूचनाएं जहां बोझिल और एक जैसी होती है, वहीं यात्रा संस्मरण लेखक के व्यक्तित्व की मनोभूमि का जीवंत संसार होता है। रचनाकार का स्मृति भंडार बाहरी वास्तविकता को आत्मसात कर स्वतंत्र भाव से ग्रहण करता है और स्मृति चित्रों के रूप में अपने भ्रमणानुभवों को व्यक्त करता है। इस संबंध में डॉ. रामचंद्र तिवारी का निम्नलिखित उद्धरण संगत प्रतीत होता है– "वे (अज्ञेय) अनुभव और अनुभूति में अंतर करते हैं, उनके अनुसार अनुभव तो घटित होता है पर अनुभूति संवेदन और कल्पना के सहारे उस सत्य को आत्मसात कर लेती है जो वास्तव में कृतिकार के साथ घटित नहीं हुआ, जो आंखों के सामने नहीं आया, जो घटित के अनुभव में नहीं आया वही आत्मा के सामने ज्वलंत प्रकाश में आ जाता है, तब वह अनुभूति प्रत्यक्ष हो जाती है। तात्पर्य यह कि काव्यगत भाषा घटित अनुभव न होकर

अनुभूति प्रत्यक्ष होती है और इसी अर्थ में वह अ–वैयक्तिक या इम्पर्सनल होती है। साहित्य–सृष्टि की मूल प्रेरणा साहित्यकार की एक आंतरिक विवशता होती है, अज्ञेय की यह मान्यता विवाद से परे है।"

अतः अनुभव (जो घटित हुआ) तथा अनुभूति (जो वस्तुतः संवेदना द्वारा ग्राह्य है) दोनों का संश्लेषण ही यात्रा साहित्य को पूर्णता दिलाता है। कुछ वर्षों के पश्चात 1960 में अज्ञेय का दूसरा यात्रा संस्मरण 'एक बूंद सहसा उछली' प्रकाशित हुआ जिसमें अज्ञेय ने फिर से गाइड तथा पुराने यात्रा वृत्तांतों पर इतिवृत्तात्मकता, मार्गदर्शकों को उपयोगी सूचनाएं प्रदान करने का आरोप लगाते हुए लिखा "यह पुस्तक मार्गदर्शिका नहीं है इसके सहारे यूरोप की यात्रा करने वाला यह जान लेना चाहे कि कैसे वह कहां से कहां जा सकेगा, या कैसे मौसम के लिए कैसे कपड़े, उसे ले जाने होंगे या कि कहां कितने में उसका खर्चा चल सकेगा, तो उसे निराशा होगी। जो यह जानना चाहते हों कि कहां से नायलॉन की साड़ियां या कैमरे या घड़ियां या सेंट, या ऐसी दूसरी चीजें जो कि भारतवासी विदेशों से उन कला वस्तुओं के एवज में लाते हैं जो कि विदेशी यहां से ले जाते हैं– कहां से किफायत से मिल जाएगी उसके भी काम की यह पुस्तक नहीं होगी। वास्तव में ऐसे पाठक को यह पुस्तक पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

उपर्युक्त उद्धरण में गाइड की व्यावहारिक जानकारियों पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय अपने आदर्श पाठक को हमारे सम्मुख इन शब्दों में परिभाषित करते हैं : 'संवेदनशील', 'उदारमना', तथा 'अनुभव के प्रति खुला' ताकि वह लेखक की संवेदना ग्रहण कर सके, लेखक के विचारों का सम्मान करे और जीवन को प्रेम की दृष्टि से देखे, परखे। यात्रानुभूति के साथ ही अज्ञेय यात्रा संस्मरणों की एक और विशेषता संकेतित करते हैं तीर्थाटन के संबंध में वे लिखते हैं : "तीर्थ यात्री की धर्म–भावना का स्थान मिथक के अन्वेषी की विस्मय–भावना ले लेती है।.... ये पुरानी यात्राएं मिथक के सहारे दोहरायी जा कर भूगोल के आयाम में ही नहीं, इतिहास के आयाम में भी अग्रसर करती हैं– देश को ही नहीं नापती, काल को भी नापती चलती है।"

इस उद्धरण में अज्ञेय काल के दो स्तरों की चर्चा करते हैं– पहला ऐतिहासिक, दूसरा मिथकीय। ऐतिहासिक समय की सीमाएं निश्चित होती हैं जबकि मिथक अपनी प्रकृति में सनातन, अनादि, अनंत होता है। अज्ञेय अपने "वैज्ञानिक सत्ता, मिथकीय सत्ता और कवि" शीर्षक निबंध में मिथक का महत्व रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "इतना तो है कि पौराणिक अवस्थिति की चर्चा में हम अपने को एक ऐसे अतीत के साथ जोड़ रहे होंगे जो हमारी सांस्कृतिक अस्मिता का आधार है।" अर्थात मिथक एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को अपने अतीत के साथ जोड़ सकती है। जिस प्रकार इतिहास बाह्य संसार की घटनाओं का कालक्रमानुसार वस्तुपरक विवरण होता है उसी प्रकार मिथक मनुष्य के शाश्वत अंतःकरण अथवा उसकी अस्मिता का रूपात्मक वर्णन होता है। इतिहास में मनुष्य की स्थूल बाह्य क्रियाएं महत्वपूर्ण होती हैं जबकि मिथक में उसकी सूक्ष्म मानसिक संघटनाएं। इस प्रकार इतिहास एवं मिथक में जो अंतर होता है वही अंतर आरंभिक यात्रा वृत्तांत एवं आधुनिक यात्रा संस्मरणों में देखने को मिलता है। आरंभिक यात्रा वृत्तांतों में इतिवृत्तात्मकता, कालक्रमिकता तथा तटस्थ दृष्टि निहित है जबकि आधुनिक यात्रा संस्मरण कालातीत है एवं इतिहास की एक रेखीय अवधारणा को तोड़ते हैं। यात्रा साहित्य अपने में अनेक गद्य

विधाओं को समा लेता है। एक मिश्रित गद्य विधा होने की वजह से यह संस्मरण दैनन्दिनी तथा पत्र–लेखन की आकृति में भी प्रस्तुत होता है। यात्रा–साहित्य में न केवल गद्य विधाएं समाविष्ट होती है वरन पद्य और गद्य की विभाजक रेखाएं भी अस्पष्ट होती है कई बार यात्रा लेखक उत्कृष्ट काव्यात्मक भाषा का प्रयोग भी करता है।

हालांकि आरंभिक यात्रा वृत्तों में भाषा का सर्जनात्मक रूप कम ही देखने को मिलता है परंतु आधुनिक यात्रा संस्मरणों की भाषा सृजनशक्ति की अद्‌भुत मिसाल है, यथा : "कहते हैं कि सृष्टि की सर्वोत्तम आकृति चक्र है– क्योंकि इसका आदि–अंत कुछ नहीं है। मैंने देश की भिन्न–भिन्न संकरी–चौड़ी, कच्ची–पक्की, ऊबड़–खाबड़ सड़कों पर लुढ़कते–पुढ़कते अनेकों बार सोचा है कि चक्राकृति में सौंदर्य के लिए बहुत अधिक नंबर चाहे न भी पाऊं, अपनी आदि–अंतहीन गति–क्षमता का दावा तो कर ही सकता हूं और यह भी कह सकता हूं कि स्वयं सुंदर न होकर भी मैं संसार के अखिल सौंदर्य की नींव हूं, क्योंकि मैं संस्कृति की नींव हूं। संस्कृति और सभ्यता के विकास में अग्नि के अवतरण के बाद जो दूसरी पीढ़ी मानव प्राणी चढ़ा, वह मैं हूं; या यूं कह लीजिए कि देवताओं के समुद्र–मंथन से जैसे सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि अग्नि की हुई, उसी प्रकार मानव–मन–रूपी महासागर के मंथन से जो श्रेष्ठ नवनीत प्राप्त हुआ है, वह है चक्राकार की उद्‌भावना।"

यात्रा साहित्य की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि लेखक स्वयं अपनी कथा यात्रा का नायक होता है। अतः यात्रा न केवल दूसरे को पहचानने की क्रिया है, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें लेखक अपनी अस्मिता का निर्माण कर आत्मान्वेषण की ओर प्रवृत्त होता है। हालांकि 'परशुराम से तूरख़म' एक टायर की रामकहानी है जिसके माध्यम से अज्ञेय बाह्य यथार्थ से अपनी भीतरी दुनिया में प्रवेश करते हैं अर्थात यात्रा प्रस्थान की क्रिया न होकर निरंतर वापसी की क्रिया होती है। स्मृति तथा कल्पना व्यक्ति की नितांत निजी अभिव्यक्ति का आधार होती है।

अतः हम कह सकते हैं कि यात्री भौगोलिक स्तर पर एक अनजान जगह की ओर जाता है जबकि मानसिक स्तर पर यात्रा एक ज्ञान की क्रिया न होकर पुनः अन्वेषण की क्रिया होती है। इसमें लेखक न केवल कल्पित स्थान को पहचानने की चेष्टा करता है बल्कि उसके बहाने स्वयं को पहचानने का भी प्रयत्न करता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि यात्रा एक आत्म–साक्षात्कार भी होती है। अतः कह सकते हैं कि यह एक प्रकार का कालिक विस्थापन है जिसका तात्पर्य यह है कि यात्रा वृत्तांत का लेखक अपनी ज्ञात संस्कृति–भूमि से प्रस्थान कर अज्ञात या कल्पित संस्कृति क्षेत्र में प्रवेश करता है। परशुराम से तूरखम में भी लेखक साक्षी के रूप में पाठक के सम्मुख आता है हालांकि यहां वह साक्ष्य टायर के ब्याज से प्रस्तुत करता है। यथा "मैं जो राम–कहानी कहूंगा, वह भी मेरी राम–कहानी इसलिए है कि वह मेरे चालक की कहानी है। अपने अनुभव को दूसरे के–अपने मालिक के इतिवृत्त के रूप में कहना ही तो मर्यादा–संगत है;..... मैं अपने प्रतीक–पुरुष को ही आधार बनाता हूं।" दृष्टि का यात्रा साहित्य में अत्यंत महत्व है अनेक यात्रा वृत्तांतों के शीर्षक इसके प्रमाण हैं, जैसे पं. जवाहर लाल नेहरू का 'आंखों देखा रूप' और कमलेश्वर का 'आंखों देखा पाकिस्तान।' अज्ञेय के यात्रा संस्मरण में भी अनेक दृश्य बिम्बों की योजना की गयी है। यथा–

"जंगल में बीच–बीच में खुला घास–भरा प्रदेश आ जाता, जिसमें महाकाय सेमल के धवल–गात पेड़ मानो आगमिष्यत् रक्त प्रसूनों की सुलगती हुई पूर्वानुभूति से कंटकित हो रहे थे; और कहीं–कहीं किंशुकों के झुरमुट। कुछ ही दिन में इनमें आग खिल जाएगी; पहाड़ियों के पार्श्व को चिपटती हुई, लपलपाती एक के बाद एक रुख को लीलती हुई ऊपर तक फैल जाएगी और बालुका के पीले उत्तरीय में लिपटा हुआ ब्रह्मपुत्र का नीलगात मानो वसंत–श्री के लाल चुंबनों से मुद्रांकित हो उठेगा! फिर धीरे–धीरे नद उमगेगा और उसका उदबुद्ध पौरुष आस–पास के प्रदेश को लील लेना चाहेगा–लील लेगा और अपनी सफलता के खेद से खिन्न और गंदला हो उठेगा....।"

ऐसे दृश्य बिंबों की भरमार इस यात्रा संस्मरण को अद्‌भुत रमणीयता और नाटकीयता से भर देती है। इस तरह के रूपक यात्रा वृत्तांत को बोझिल नहीं होने देते एवं उसको रोचक बनाते हैं। यात्रा साहित्य की तथ्यात्मकता केवल पाठ के स्तर पर ही निर्दिष्ट की जा सकती है भौतिक स्तर पर सत्यापित नहीं की जा सकती। विश्वसनीयता के संबंध में डॉ. बापू राव देसाई मानते हैं कि इस विधा की अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यात्रा लेखन में यात्रा के समय, स्थान, दूरी की सही–सही जानकारी होती है उदाहरणतः "प्रातःकाल चलकर 'विलिंगडन ब्रिज' द्वारा हुगली पार करके उत्तर–पाड़ा और वर्धमान (बर्दवान) होते हुए आसनसोल पहुंचे। आसनसोल में एक खुले मैदान के बीच में कैंप था, वहीं एक 'बासे' में रात काटी। सबेरे स्टेशन जाकर नाश्ता किया और चल पड़े। 'आसनसोल से बढ़ी–110 मील।" हालांकि अज्ञेय की रचनाओं में इस प्रकार की जानकारी यदा–कदा मिलती है जबकि राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृत्तांतों में इतिवृत्तात्मकता स्पष्टतया पायी जाती है। शुरुआती यात्रा वृत्तांतों की इतिवृत्तात्मकता का द्योतक क्रियाओं की प्रधानता है जैसे– बस पकड़ना, चल पड़ना, नौका खेना आदि जबकि यात्रा संस्मरण मूलतः विशेषण प्रधान होते हैं। यथा– "जोधपुर में रंगों की विविधता उसे विशिष्ट करती है, श्रीनगर में गंधों की विविधता 'सहस्त्रगंधा नगरी' लाहौर में गंदगी की अथवा (इस विषय में कलकत्ते को प्रतियोगी मान लें तो), फैशन की, इत्यादि।" यात्रा वृत्तांतों की शैली विवरणात्मक होती है तथा यात्रा संस्मरणों की वर्णनात्मक। अज्ञेय उक्त यात्रा संस्मरण में खुद को पाठक के सामने दूसरी संस्कृति के अनुवादक के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस क्रम में समकालीन जीवन स्थितियों और साहित्यिक प्रवृत्तियों पर टिप्पणी भी करते चलते हैं। कहते हैं "सुना है कि जब कवि ताजगंज से गधा हांकते निकलते थे कि मदरसे जाकर लड़कों को पढ़ा आवें, तब रास्ते में इतनी जगह लोग उन्हें रोक–रोक कर उनसे दो–चार बंद सुना के जाने का सफल आग्रह करते थे कि नजीर मियां को गोकुलपुरे में अपने मदरसे से पहुंचते–पहुंचते सांझ हो जाती थी, और वह लड़कों को छुट्टी देकर फिर रुकते चलते रात तक घर पहुंच जाते थे। एक वह दिन था, जब कविता का स्वाभाविक उद्रेक राह चलते को खींचता था और फक्कड़ कवियों की बानी सीधे लोक–हृदय में पैठ जाती थी; एक हमारा दिन है कि ट्रक हांकते धूल उड़ाते चले जा रहे हैं, हर पोखरे में ढील फेंकते हैं और हर झमेले में टांग अड़ाते हैं (क्योंकि 'जीवन की धारा के बीचों–बीच रहना कलाकार का धर्म है') किंतु फिर भी उस लोक हृदय के आस–पास भी नहीं फटकते जो वास्तव में जीवन का मूल स्रोत है! क्योंकि जीवन का स्रोत घटनाओं का स्रोत नहीं है, वह चेतना का स्रोत है। हमारी कविता बानी नहीं रही, लिखतम हो गयी है; हृदय से हृदय तक नहीं जाती वरन एक मस्तिष्क की शिक्षा–दीक्षा

के संस्कारों की नली से होकर कागद पर ढाली जाती है जहां से दूसरा मस्तिष्क अपने संस्कारों की नली से उसे फिर खींचता है.....।"

रस सिद्धांत के आलोक में यात्रा साहित्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता हमारे सम्मुख प्रकट होती है– अद्‌भुत रस की प्रधानता। प्रथम दृष्टया इस काव्यशास्त्रीय अवधारणा को यात्रा साहित्य पर आरोपित करना कुछ विचित्र जान पड़ता है। परंतु कुछ दशकों से यह प्रवृत्ति पश्चिमी साहित्यालोचन में उभरने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यात्री– लेखक की मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रक्रियाओं तथा लेखक द्वारा रचित छवियों के निर्माण की प्रक्रियाओं को भली–भांति समझने के लिए यात्रा–साहित्य को रसों की आभा में विश्लेषित करना अत्यंत जरूरी है। अज्ञात संस्कृति भूमि में प्रवेश करते हुए अक्सर उस गैर संस्कृति के प्रति वैचित्र्य का भाव उत्पन्न होता है यही आश्चर्य भाव अद्‌भुत रस की निष्पत्ति का आधार है।

यात्रा–संस्मरण में गति का महत्व लगभग वैसा ही है जैसा यात्रा में। अज्ञेय ने स्वयं गति की अनिवार्यता को स्वीकार किया है– "किंतु यायावर ने समझा है कि– देवता भी जहां मंदिर में रुके कि शिला हो गए और प्राण–संचार के लिए पहली शर्त है गति, गति, गति।"

एक अच्छा यात्रा संस्मरण अनायास ही कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का संग्रह भी बन जाता है जो यात्राकार अनेक स्थानों से गुजरते हुए संकलित करता चलता है। यथा– "छुटपन में चीनी कहावतों के एक संग्रह में जिस वाक्य ने उसे सबसे अधिक प्रभावित किया था और जिसे उसने अपना गुरुमंत्र मानकर डायरी के मुख–पृष्ठ पर लिख लिया था वह था : 'मैं क्यों चाहूं कि मेरी अस्थियां भी मेरे पुरखों की अस्थियों के साथ एक सुरक्षित समाधि–स्तूप में दबी रहे?' जहां भी कोई चला जाए, वहीं कोई हरी–भरी पहाड़ी मिल जाएगी... (कहावत)।" इस यात्रा संस्मरण की एक अन्य विशेषता है स्वयं को किसी नाम से संबोधित न कर यायावर कहना और इस यायावर से दूरी स्थापित कर भोक्ता के सच से सर्जक के सच को अलगाना। शीर्षक 'अरे यायावर, रहेगा याद?' देकर अज्ञेय ने यात्रा वृत्तों के लेखक की उत्तम पुरुष प्रधान शैली से खुद को अलग रख भोक्ता के सच और सर्जक के सच के बीच दूरी कायम की है, यथा "यायावर प्रायः कहा करता कि देश की पराधीनता सबसे अधिक अखरती है तो एक अपने हिमालय के अंग, संसार के सबसे ऊंचे शिखर का नाम 'एवरेस्ट' सुनकर और एक सीमा–प्रदेशों में जाने के परमिट के लिए फिरंगी पॉलिटिकल एजेंट के दफ्तर में जाकर। देश की प्रत्येक सीमा तीर्थ होती है। नहीं तो देश पुण्यभूमि कैसे होता है? पर अपने ही तीर्थ तक जाने के लिए परदेशीय सत्ता के अहंमन्य प्रतिनिधि का मुंह जोहना जैसा चुभता है, उसे भुक्तभोगी जानते हैं...।" यहां लेखक स्वयं अपने ब्यौरे का नायक बनने का मोह छोड़ टायर के बहाने स्वयं को प्रस्तावित करता है। इस यात्रावृत्त में भाषा की व्यंजकता अर्थपूर्ण प्रतीकों के माध्यम से भी प्रस्तुत हुई है। "यायावर ने कुंड में और धारा के नीचे स्नान किया। कुंड का जल बर्फ सा ठंडा है। सोते का जल गर्म।... स्नान से पाप धुल जाते हैं, पाप तो दिखते नहीं, अतः उनके दृश्य प्रतीक के रूप में जिन वस्त्रों से स्नान किया जाता, उन्हें कुंड पर ही छोड़ देने की प्रथा है। इस सरल उपाय से यात्री अपने पाप वहीं छोड़कर चले आ सकते हैं।... मुमुक्षु नहाकर निकले–न–निकले कि मुक्ति–पथ के ये सहायक उसकी धोती–गमछा–लंगोट जो कुछ हो खींच लेते हैं,... इसका विरोध संभव नहीं है, यही रीति चली आयी है और सभ्य मुमुक्षुओं के

पाप का बोझ इस प्रतीक के द्वारा ढोने का अधिकार सदा से असभ्य उपत्यकावासी मिश्मियों का रहा है। विकसित नागरिक सभ्यता के पापों का बोझ अविकसित वन्य जातियों द्वारा ढोया जाता है। इस सत्य की यह रीति स्वयं कितनी अर्थपूर्ण प्रतीक है, इसकी ओर कदाचित दोनों ही पक्षों का ध्यान कभी नहीं जाता होगा।" 'परशुराम से तूरखम' तक पूर्व से पश्चिम की ओर प्रस्थान के क्रम में बरबस ही लोक कथाओं, जन–श्रुतियों, दंत कथाओं, एवं अनेक किंवदंतियों का कोश भी बन जाता है जिसमें पिता आज्ञा से मातृ–वध करने के पश्चात परशुराम की ब्रह्मधारा और कुंड में नहाने की कथा, महाभारत कालीन राजा भीष्म की कथा, कोच राजवंश के प्रतापी राजा नर नारायण से जुड़ी कथाएं, मियां नजीर की कहानी आदि महत्वपूर्ण हैं। कहीं–कहीं भाषा चुटीली, चपल एवं हास्य व्यंग्य प्रधान है।

यायावर की यात्रा के रोचक किस्से, लेखक के अपने निजी अंदाज में पाठक को हंसते–हंसाते यात्रा का साथी बना देते हैं। पाठक भी यायावर के साथ पूरी ईमानदारी से उन सभी जगहों से गुजरता है जहां से टायर गुजरा। हंसी, चुहल और जीवनेच्छा, यात्रा की ही तरह संस्मरण को भी ताजा और जीवन से लवरेज बनाए रखती है। यथा–

1. भीगते–भीगते यायावर को उस जाट की कहानी याद आयी जो गाभिन घोड़ी को हांकता हुआ चला जा रहा था। थक कर सोचने लगा कि कहीं एक घोड़ा होता तो क्यों उसे घोड़ी हांकते पैदल चलना पड़ता। राह में ही घोड़ी ब्याह गयी। जाट ने बछेरे को कंधे पर लादा और फिर चला, तब लंबी सांस लेकर खुदा की ओर मुखातिब होकर बोला, "वाह रे सखी–सर्वरा, तेरी उलटी अकल की बलिहारी–मांगा था नीचे, दे दिया ऊपर।"
2. "नयी दिल्ली... सब की वह भाभी, जो कि गरीब की जोरू नहीं है जिसकी मुसकान की अपेक्षा सबको है, लेकिन जिससे ठिठोली करने की हिम्मत किसी को नहीं होती।"

अज्ञेय के अनुसार यायावर पुराविद नहीं होते, न पुरातत्व उनके लिए साध्य होता है। वह उनके लिए दूसरों के संचित अनुभव का ही फल होता है, पर इसका कार्य यह नहीं कि वह महत्वहीन है। शायद इसीलिए चाहे तक्षशिला हो या शहरे बहलोल के बौद्ध अवशेष यायावर के लिए बेहद जरूरी पर्यटक स्थल हैं।

यह सच है कि चाहे वह दर्रा खैबर हो या सदिया यात्राकार की स्मृति में हर अच्छा, बुरा, चुनौती भरा रमणीय स्थान अपनी विशेष जगह रखता है पर एबटाबाद की 'जंगली नरगिस' उनके स्मृति–चित्रों की दुनिया में अपने रंग, रूप, गंध के साथ कुछ इस तरह मौजूद है कि जैसे जादू– यथा–

"एबटाबाद की सबसे स्पष्ट स्मृति है वहां के जंगली नरगिस.....सारा ढलान इनसे छाया हुआ था और दूर पेड़ों के झुरमुट के भीतर तक फूल ही फूल दीख रहे थे– और उसके आगे धुंध की दीवार और उनकी असंख्य चकित आंखें नीचे जमीं बर्फ को निहार रही थीं, मानो अपलक विस्मय कि यह कठोर भूमि ही इस रूप–श्री की जननी है।"

जहां एक ओर एबटाबाद की नरगिस है (तो दूसरी ओर यात्राकार) उसका रूप रस–रंग, गंध–स्पर्श का इंद्रिय सुख है तो वहीं दूसरी ओर राजनैतिक विप्लव का बीज–वपन काल भी वही है, तभी तो यायावर ने अपनी डायरी में लिखा भी था कि "मेरी

कल्पना देखती है। इन नरगिसों को हजारों पैर रौंद रहे हैं, बेदर्द और बेरहम पैर और फूलों की डांठो के टूटने की आवाज, वातावरण में नारों के बीच में डूब जाती है... सिनेमा का प्रतीक–चित्र–सा सामने आता है– बर्फ में झूमते नरगिस, रौंदते हुए पैर, केवल पैर..." यहां लेखक आने वाले समय की हलचल का पूर्वानुमान ही नहीं लगाते अपितु उसके बेरहम और भयावह' रूप को अपने काल्पनिक संसार में प्रत्यक्ष देख भी लेते हैं। यह यात्रा–संस्मरण इस मायने में विशिष्ट है कि उन्नीस सौ पचास के भूकंप से लुहित नदी और डि–डांग की धाराओं में अनेक परिवर्तन हुए। जिस श्रृंग के कारण ब्रह्मपुत्र में परशुराम कुंड नामक आवर्त बना था वह श्रृंग भी धंस गया है, वह कुंड अब नहीं है। आज यदि कोई यायावर परशुराम कुंड को देखने का अभिलाषी है तो वह इस वर्णन के माध्यम से ही संभव है। पूरब में परशुराम को 'मातृ–घात' के 'महापातक' से मुक्ति दिलाने वाला यह कुंड जहां यायावर की आंखों को शीतलता पहुंचा मनःसंताप को कम करता है वहीं तूरखम का गर्बीला उभार उनकी हृतंत्री के तारों को झंकृत करता हुआ चेतना का अविभाज्य अंग बन जाता है। यात्रा में अलग–अलग जगहों से गुजरते हुए अज्ञेय सिर्फ भांति–भांति के भौगोलिक विस्तार से ही चमत्कृत नहीं होते बल्कि भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व, युगों के संस्कार, शताब्दियों की सांस्कृतिक परंपराओं को संयोजित करते हुए अनेकता में एकता के सूत्रों का अन्वेषण भी करते हैं।

'तूरख़म' जो हमारे देश का मर्यादा पर्वत है जिसके नीचे क्षितिज स्पर्शी अनंत सागर है और ऊपर नभ चुंभी हिमालय का अंचल। वह सदा से आलोक की खोज में लवलीन रहा है, और इसी क्रम में चहुंओर से आती प्रज्ञा किरणों को उसने आभार के साथ स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति जड़ धातु–पिंड नहीं है, वह तो एक ऐसी परंपरा है जिसमें मानव का समस्त अर्जित ज्ञान कड़ी–कड़ी जुड़ता रहा है। बनना और मिटना, पाना और खोना, उठना और गिरना, मनुष्य के जीवन के साथ उसी तरह जुड़े है जैसे हवा और पानी। यदि पतझड़ न हो तो वासंतिक नवरात्र का कैसा महात्म्य। यदि नीरव निशा का घटाटोप अंधकार न हो तो कौन रोशनी की आस में सूरज को अर्ध्य देगा। जो बढ़ता है, पत्ते झारता ही है, केंचुल छोड़ता ही है, चोला बदलता ही है।

दैनंदिन जीवन के राग–विराग, ईर्ष्या–द्वेष, छल–कपट और बेहद व्यस्त दिनचर्या के बीच विस्मृति के घटाटोप अंधकार को चीरते 'अज्ञेय' के अपराजेय जीवनेच्छा का प्रमाण स्विनबर्न के पृथ्वी स्त्रोत हेर्था के पद सिर्फ यायावर के मन में ही नहीं गूंजते, पाठक के एकांत में भी चुपके से प्रवेश कर जाते हैं।

"विश्वास एक रूढ़ि है,
राज–मुकुट तामस है,
ईश्वर एक यही बात है–
पूरे सामर्थ्य के साथ मानव होना :
प्राणों के संपूर्ण बल के साथ सीधा
विकसित होना, प्रकाश की तरह जीना।
'मैं तुझ में हूं, मेरी रक्षा के लिए

यह मेरा स्वर तेरे भीतर बोलता है :
तू दे, जैसे कि मैंने तुझे दिया हो
अपना जीवन–रस और अपने प्राण,
अपने कर्म के हरित पत्र, अपने ज्ञान के
शुभ्र सुमन और अपनी मुक्ति के लाल फल।"

क्या यही यात्रांत है? नहीं यायावर तो वैसे भी अजातशत्रु होता है– निर्भय, स्वाधीन और राहों का अन्वेषी।

6.2.2 लेखन–शैली

आधुनिक हिंदी साहित्य की नयी उपलब्धियों में अकाल्पनिक गद्य–वृत्तों का विशिष्ट स्थान है। अकाल्पनिक गद्य–वृत्त अर्थात यात्रा–संस्मरण, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र आदि। इन गद्य–वृत्तों का उपजीव्य ज्यादातर वास्तविक घटनाएं होती हैं और इसी वजह से कल्पना का योग इनमें काफी कम होता है। छायावादी युग के पूर्व तक ऐसे गद्य वृत्तांत सूचनापरक एवं विवरणात्मक ही होते थे किंतु स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य में इन वृत्तों का सर्जनात्मक रूपांतरण आरंभ हुआ और भाषिक सर्जनात्मकता के सहारे ये गद्य–वृत्त उपयोगी सूचनात्मक साहित्य की परिधि से बाहर निकलकर स्वतंत्र कला रूपों के वर्ग में प्रतिष्ठित हो गए, और फिर धीरे–धीरे इन अकाल्पनिक गद्य वृत्तों की एक श्रृंखला बनती चली गई। अज्ञेय ने इन अकाल्पनिक गद्य वृत्तों के वर्ग में से यात्रा–संस्मरण को चुना और विकसित किया जिसमें संस्मरण, डायरी, रेखाचित्र और यात्रा–वर्णन के तत्वों का अनोखा मिश्रण है। यात्रा–संस्मरणों में वातावरण की एकरसता विधान की दृष्टि से सबसे कम संभव है, इसलिए वह आधुनिक लेखकों की रुचि और जरूरतों के सर्वाधिक निकट है।

अज्ञेय के दो यात्रा संस्मरण –'अरे यायावर, रहेगा याद!' (1953) और 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) जिनमें से पहले की पृष्ठभूमि स्वदेश है और दूसरे की विदेश। 'अरे यायावर, रहेगा याद!' में सर्जनात्मक चमक है, वर्णनात्मकता के बावजूद इसे पढ़ने पर लेखक का समृद्ध और संवेदनशील व्यक्तित्व पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। जीवन से प्रेम यों तो अज्ञेय के समूचे कृतित्व में ही व्यक्त हुआ है, पर यात्रा वृत्तों में वह अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। क्योंकि जीवन से प्रेम के कारण ही अज्ञेय यायावर बने। यह जीवन–प्रेम उनके भीतर के यायावर एवं रचनाकार दोनों को अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, फिर लक्ष्य चाहे व्यक्ति हो, दृश्य हो या फिर कोई विचारधारा। 'अरे यायावर, रहेगा याद!' में प्रकृति के प्रति गहरी आसक्ति एवं उत्सवधर्मिता का भाव है, और है उसकी जादुई सम्मोहन–शक्ति, यहां रचनाकार को महसूस होता है कि यायावर के मन में 'जो जंगल की पुकार गूंजती है, उसे सर्किट हाउस के कमरे की दीवार नहीं रोक सकती ....'। और इस तरह जंगल की यह पुकार उनके यात्रा वृत्तांत में बीच–बीच में कौंधती भी है और गूंजती भी है। उनके यात्रा–संस्मरण एक संवेदनशील एवं समृद्ध मन की ही प्रतिक्रिया है। लेखक की भाषा संबंधी सजगता उनके यात्रा–संस्मरणों में सर्वत्र सहज रूप में देखी जा सकती है। भाषा शालीन, मर्यादित और अनौपचारिक के बीच संतुलन कायम रखकर चलती है। भाषिक स्तर पर संघटित यात्रा–प्रसंग में लेखक के प्रबुद्ध व्यक्तित्व की

छटा सम्मोहित करती है। दोनों ही यात्रा वृत्तों में मानविकी और प्राकृतिक शास्त्रों में दीक्षित, एक असाधारण रुचि संपन्न और अधीत व्यक्तित्व का जीवन स्पर्श मिलता है, किंतु पांडित्य प्रदर्शन कहीं नहीं मिलता। लेखक के जीवन दर्शन से संबद्ध स्थितियों का उल्लेख यत्र–तत्र हुआ है। यों अपनी ललित शैली, सांस्कृतिक वातावरण और विनोदप्रिय मानसिकता के साथ ये यात्रा–संस्मरण अज्ञेय के 'आस्तिक मन' की 'हां' के साथ जीवन को देखने–समझने की कोशिश का रचनात्मक प्रतिफलन है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. अज्ञेय का जन्म कब हुआ?
2. अज्ञेय ने मैट्रिक की परीक्षा कब और कहां से उत्तीर्ण की?
3. अज्ञेय ने तारसप्तक का संपादन–प्रकाशन किस वर्ष शुरू किया?
4. अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' कविता संग्रह का संपादन कब किया?
5. अज्ञेय ने दिनमान के 'प्रधान संपादक' पद से त्यागपत्र किस वर्ष दिया?
6. अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद' शीर्षक यात्रा–संस्मरण कब प्रकाशित हुआ?
7. अज्ञेय का दूसरा यात्रा संस्मरण कौन–सा है?
8. यात्रा–वृत्तांत 'आंखों देखा रूप' के लेखक कौन हैं?
9. 'आंखों देखा पाकिस्तान' नामक यात्रा–वृत्तांत किसकी कृति है?
10. 'यायावर पुराविद नहीं होते, न पुरातत्व उनके लिए साध्य होता है'– प्रस्तुत कथन किसका है?

6.3 रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल – फणीश्वरनाथ रेणु

साहित्य जीवन सत्य से असंपृक्त होकर एकांगी और निष्प्राण हो जाता है। कल्पना के पंखों पर सवार होकर अंतरिक्ष की सैर करने पर भी साहित्य मानवीय संभावनाओं की तर्क प्रणाली से पृथक नहीं हो सकता। साहित्यकार की समस्त कल्पना शक्ति, कला कौशल एवं रचना कौशल जीवन सत्य को ही उद्घाटित करने का प्रयत्न करते हैं। विचारधारा जीवन का पर्याय नहीं होती लेखक मूलतः जीवन से ही जुड़ी होती है एवं उसी में लक्षित होने वाली विसंगतियां, विडम्बनाएं, अंतर्विरोध उसकी रचनाओं का विषय बनते हैं। जीवन की कसौटी पर ही विचारधाराओं का खरापन भी परखा और आंका जाता है, उसी भांति जीवन की कसौटी पर ही किसी लेखक की रचनाएं भी परखी और आंकी जाती हैं। कहां तक उनमें जीवन की सच्चाई की झलक देखने को मिलती है, कहां तक मानव हृदय का स्पंदन, उसकी छटपटाहट, उसके हर्ष–विषाद, उसकी आकांक्षाएं व्यक्त हो पाती हैं, उसी में रचना की सार्थकता निहित होती है। ऐसा ही व्यक्तित्व हिंदी कथाकारों में रेणु का है। 'रेणु' प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन के साथ आत्मीयता स्थापित करने वाले प्रमुख साहित्यकार हैं।

हिंदी कथा साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म औराही हिंगना, जिला– पूर्णिया (बिहार) में 4 मई, 1921 को हुआ। वे एक साधारण मध्यवर्गीय किसान परिवार के संस्कारों में पले बढ़े। उन्होंने फार्बिसगंज, विराटनगर, नेपाल तथा काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। रेणु के बचपन का नाम फणीश्वरनाथ मण्डल था। यही नाम उनके हाथ पर गुदा हुआ था। 'रेणु' उपनाम को कुछ लोग उनके काव्यात्मक रुझान का प्रभाव मानते हैं, परंतु इसकी असली कथा वे स्वयं इस प्रकार बताते हैं–"जब मैं पैदा हुआ था तो घर वालों पर कुछ कर्ज यानि ऋण हो गया। दादी बोली– अरे, यह रिणुआ है। बाद में उसी रिणुआ से रिणु और फिर रुणु हो गया। बड़ा हुआ तो पिता जी के एक मित्र ने कहा, इसे रेणु कहो, रेणु, और मैं रेणु हो गया। रेणु जी के पिता का नाम शिलानाथ मण्डल एवं माता जी का नाम पानो देवी था। उनके तीन भाई तथा पांच बहनें थीं। रेणु से बड़ी केवल एक बहन थी। पिता जी की मृत्यु के बाद परिवार का पूरा दायित्व रेणु पर आ गया। उनके जीवन को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो उसमें एक विशिष्ट रूप उभरता हुआ दिखायी देता है वह है– द्वंद्वात्मक संघर्ष और नैसर्गिक प्रवाह, परंतु कभी–कभी उसमें उद्दाम तरंगे भी अवसरानुकूल प्रकट होने लगती हैं। एक स्वतंत्रता सेनानी, एक राजनीतिक व्यक्तित्व और रचनाकार में जहां सतही तौर पर एक द्वंद्व परिलक्षित होता है वहीं गहरे पैठ कर देखने पर तीनों एक चरणबद्ध प्रक्रिया के अंग ही अधिक जान पड़ते हैं। 'रेणु' एक संवेदनशील, कर्मठ और सुलझे हुए व्यक्तित्व के स्वामी थे। राजनीति में उनकी सक्रिय भागीदारी थी। वे दमन और शोषण के विरुद्ध आजीवन संघर्षरत रहे। उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों में स्वतंत्रता सेनानी की भूमिका का निर्वाह किया। इसी दौर में 'रेणु' का रचनाकार, जो शोषण के विरुद्ध आवाज उठा रहा था, जाग उठा और अपनी संवेदना को शोषित से जोड़कर जब रचनात्मक स्तर पर प्रकट किया तो सन् 1945 से 1948 की परिस्थितियां मैला–आंचल (1954) उपन्यास के रूप में कलमबद्ध हो गयीं।

सन् 1942 में 'रेणु' ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में एक प्रमुख सेनानी की भूमिका निभाई और तीन वर्ष तक नजरबंद रहे। जेल से छूटने पर 'किसान आंदोलन' का नेतृत्व किया। सन् 1950 में उन्होंने नेपाल में राणाशाही और जनता के शोषण के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष और राजनीति में जीवंत योगदान दिया। उन्होंने नेपाल के मजदूरों को, जो सामंती शिकंजे में जकड़े हुए थे, एकजुट होकर, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। इस संघर्षमय जीवन की वजह से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे एक वर्ष तक पटना अस्पताल में रहे। 1952–53 की दीर्घकालीन बीमारी ने उनके जीवन में बदलाव लाकर उनका झुकाव राजनीति से साहित्य–सर्जन की ओर कर दिया। वे देहात की पगडंडी पर चलते हुए पात्र, कथानक और वातावरण ढूंढ़ने में सफल रहे। आम मनुष्य का चेहरा, उसका अक्खड़ व्यक्तित्व, उसका उज्ज्वल चरित्र, जीवन के प्रति उसकी आस्था और उसकी भावनाओं को रेणु ने पूरी सजीवता और रचना कौशल से अभिव्यक्त किया।राजनीतिक आंदोलन से पुनः गहरा जुड़ाव, पुलिस और प्रशासन का दमन सहते हुए जेल यात्रा और समानांतर साहित्य–सृजन रेणु जी के जीवन के आकस्मिक अंत तक जारी रहा। उनके स्वर्गवास से भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल नक्षत्र डूब गया। सत्ता के दमनचक्र के विरोध में उन्होंने पद्मश्री की उपाधि का भी त्याग किया।

कृतित्व

रेणु ने कथा साहित्य (उपन्यास एवं कहानियां) के अतिरिक्त अन्य विधाओं में लिखा, यथा–संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि।

उपन्यास– मैला–आंचल 1954, परती परिकथा 1957, दीर्घतपा 1963 (परिवर्धित संस्करण कलंक मुक्ति के नाम से 1972 में प्रकाशित), जुलूस 1965, कितने चौराहे 1966 एवं पल्टूबाबू रोड़ (मरणोपरांत 1979)।

कहानी– ठुमरी 1957, आदिमरात्रि की महक 1967, तीसरी कसम, अग्निखोर 1974।

रिपोर्ताज– पटना की बाढ़, नेपालीक्रांति–कथा, ऋणजल–धनजल।

'तीसरी कसम', 'लाल पान की बेगम', रसपिरिया, पंचलाइट, विकट संकट तथा तीन बिंदियां आदि कहानियां आंचलिक साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं में शुमार की जाती हैं। रेणु 'रचनावली' तीन में उनका एक अधूरा उपन्यास 'रामरतनराय' नाम से प्रकाशित हुआ है। 'ठुमरी' एवं 'मैला आंचल' में इलाके की बोली मुहावरे, आचार–विचार एवं ग्रामीण जीवन संपूर्णता में अभिव्यक्त किये गए हैं। अद्भुत सौंदर्य से ओत–प्रोत देहाती जीवन के प्रति उनकी सबल आस्था, उनकी रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। फणीश्वरनाथ रेणु 'आदिमरात्रि की महक' तथा 'तीसरी कसम' आदि रचनाओं के साथ कथा–साहित्य में नये प्रतिमान स्थापित करने में सफल हुए। अपनी रचनाओं में वे मानवीय समस्याओं के प्रति सजग थे। फणीश्वरनाथ रेणु पीड़ित एवं हारे मनुष्य के प्रति सहानुभूति ही नहीं बरतते थे

बल्कि उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देते थे। रेणु की कृतियों का प्रिय क्षेत्र कोसी नदी के आर–पार का देहात है। उस नदी की बाढ़ के समय उनकी करुणा उभरती है और बाढ़ के उतर जाने पर उनकी भावना जीवन की ओर मुड़ जाती है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने एक कथाकार होने के साथ–साथ गद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को समृद्ध किया है। 'रेणु' जन्मजात विद्रोही हैं। वे कभी और कहीं दायरे में नहीं बंधे। उन्होंने उपन्यास ही नहीं, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, दृश्यालेख सभी के प्रचलित ढांचे को तोड़ा है। नये प्रयोग किये हैं। हां, उन्होंने यह ध्यान अवश्य रखा है कि प्रयोग खालिस प्रयोग बनकर न रह जाय। उन्होंने रचना में जीवन के स्पंदन को सुरक्षित करते हुए उसके ढांचे को नया आयाम देने की कोशिश की है। उनकी लेखकीय ईमानदारी के प्रमाण मैला–आंचल में स्पष्ट मिलते हैं– "इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी, मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।" यह ईमानदार सृजनधर्मिता ही वह तत्व है, जो 'रेणु' के साहित्य को मूल्यवान और स्पृहणीय बनाता है।

6.3.1 ऋणजल–धनजल

रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, जिसका संबंध अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट से है। किसी घटना के यथा तथ्य वर्णन को 'रिपोर्ट' कहते हैं। रिपोर्ट सामान्यतः समाचार पत्रों के लिए लिखी जाती है और उसमें साहित्यिकता का नितांत अभाव होता है। रिपोर्ट का कलात्मक एवं साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज कहलाता है। वस्तुगत तथ्य को स्मृति के आधार पर रेखाचित्र की शैली में प्रभावशाली ढंग से अंकित करने में ही रिपोर्ताज की सफलता है। रिपोर्ताज आंखों देखी घटनाओं पर ही लिखा जा सकता है कल्पना के आधार पर नहीं लेकिन तथ्यों के वर्णन से रिपोर्ताज नहीं बना करता रिपोर्ट भले बन जाए क्योंकि घटना प्रधान होने के साथ ही यह कथा तत्व से युक्त होता है। रिपोर्ताज लेखक पत्रकार भी होता है और कलाकार भी एवं वह जनसाधारण के जीवन की प्रामाणिक जानकारी भी रखता है। लोगों का जीवन, उनके तीज–त्योहार, मेले–ठेले, बाढ़–अकाल, युद्ध और महामारियों को वह केवल अखबारी रिपोर्टर की तरह देखता ही नहीं अपितु रचनाकार की हैसियत से जन–जीवन का प्रभावोत्पादक ब्यौरा भी प्रस्तुत करता है। यह मिश्रित साहित्यिक गद्य विधा, द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में पाश्चात्य साहित्य विशेषकर रूसी साहित्य में बहुत प्रचलित हुई। हिंदी में रिपोर्ताज साहित्य वस्तुतः विदेशी साहित्य के प्रभाव से आया परंतु आज भी इस गद्य विधा की शैली पूर्णतः मंजकर विकसित नहीं हो सकी। हिंदी में विभिन्न जन आंदोलनों पर, बंगाल के अकाल पर या बाढ़ पर कुछ रिपोर्ताज लिखे अवश्य गए हैं पर आज भी हिंदी में रिपोर्ताज को एक सुनिश्चित साहित्य रूप की प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी है। इस विधा को समृद्ध करने में श्री प्रकाश चंद्रगुप्त, प्रभाकर माचवे, रांगेय राघव, अमृत राय, फणीश्वरनाथ रेणु आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् 1966 का भयानक सूखा जब अकाल के काले साये ने पूरे दक्षिण बिहार को लील लिया था और शुष्क बंध्या धरती पर चारों ओर कंकाल ही कंकाल नजर आते थे... और सन् 1975 की जल प्रलय जब पटना की सड़कों पर वेगवती बन्या उमड़ पड़ी थी और लाखों लोग बेघर हो जीने के लिए संघर्ष कर रहे थे। इन दोनों प्राकृतिक आपदाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज है ऋणजल–धनजल। अपने समक्ष और अपने चहुं ओर बेबस मनुष्यों की भीड़ और

यंत्रणा का त्रासद हाहाकार देखकर रेणु जैसे कथाकार का व्यथित हो उठना स्वाभाविक ही था। रेणु प्राकृतिक प्रकोप की इन दो अभूतपूर्व घटनाओं के प्रत्यक्ष द्रष्टा तो थे ही, बाढ़ के दौरान कई दिनों तक अपने मकान के दुत्तल्ले पर फंसे रहने के कारण भुक्तभोगी भी। मानव यातना के चरम साक्षात्कार के क्षणों को शब्दचित्रों के आकार में ढालने के क्रम में उन्होंने संस्मरणात्मक रिपोर्ताज लिखे। जिनमें उनके चारों ओर बिखरे लोग और उनका सत्य अक्षय करुणा और संस्पर्श संवेदना को पाकर सजीव हो उठा है। इस रिपोर्ताज में व्यापक मानवीय त्रासदी की वह अकथ–कथा वर्णित है जो शब्द–शिल्पी रेणु की विलक्षण मर्मस्पर्शी दृष्टि से सहज ही रेखाचित्रों के रूप में आश्चर्यजनक रूप से जीवंत हो उठी है उनके लिए लोग ही सत्य थे– वहां तक सत्य जहां तक वह उन्हें जानते थे। उनकी रचना (ऋणजल–धनजल, बाढ़ 1975, सूखा : 1966 बिहार) ऋणजल–धनजल दो खंडों में विभाजित रिपोर्ताज संग्रह है जिनमें पहले खंड के अंतर्गत, कुत्ते की आवाज, जो बोले सो निहाल, पक्षी की लाश, कलाकारों की रिलीफ पार्टी, एवं मानुष बने रहो नामक रिपोर्ताज हैं। यहां कुत्ते की आवाज शीर्षक रिपोर्ताज का विश्लेषण अभीष्ट है। रेणु ने परती क्षेत्र में जन्म लिया और वहां के ज्यादातर लोगों की तरह उन्हें भी तैरना नहीं आता था। परंतु बालचर, स्वयं सेवक राजनीतिक कार्यकर्ता अथवा रिलीफ वर्कर की हैसियत से उन्होंने अनेक बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों में काम किया था। जय गंगा (1947), डायन कोसी (1948), हड्डियों का पुल (1948) आदि छुटपुट रिपोर्ताजों के अलावा उन्होंने अपने कई उपन्यासों में बाढ़ की भयंकर विनाश लीलाओं के चित्र अंकित किये हैं। पर गांव में रहते हुए बाढ़ से घिरने, बहने और भोगने का अनुभव उन्हें कभी नहीं हुआ। वह पहली बार हुआ 1967 में जब लगातार अठारह घंटे की बारिश की वजह से पुनपुन का पानी पटना शहर के अनेक निचले हिस्सों में घुस गया। रेणु ने बाढ़ को शहरी आदमी की हैसियत से भोगा। बाढ़ से घिरने के प्रथम अनुभव को रेणु इन शब्दों में व्यक्त करते हैं– "बाढ़ को मैंने भोगा है, शहरी आदमी की हैसियत से। इसलिए इस बार जब बाढ़ का पानी प्रवेश करने लगा; पटना का पश्चिमी इलाका छाती–भर पानी में डूब गया, तो हम घर में ईंधन, आलू, मोमबत्ती, दियासलाई, सिगरेट, पीने का पानी और कांपोज की गोलियां जमाकर बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे। सुबह सुना, राजभवन और मुख्यमंत्री निवास प्लावित हो गया है। दोपहर में सूचना मिली, गोलघर जल से घिर गया है। (यो, सूचना बंगला में इस वाक्य से मिली थी– "जानो! गोलघर डूबे गेछे!") और पांच बजे जब कॉफी हाउस जाने के लिए (तथा शहर का हाल मालूम करने) निकला तो रिक्शेवाले ने हंसकर कहा– "अब कहां जाइएगा? कॉफी हाउस में तो 'अबले' पानी आ गया होगा।" "चलो, पानी कैसे घुस गया है, वही देखना है।" कहकर हम रिक्शा पर बैठ गए।... "आचार्य जी, आगे जाने की जरूरत नहीं। वह देखिये– आ रहा है... मृत्यु का तरल दूत!"

आतंक के मारे दोनों हाथ बरबस जुड़ गए और सभय प्रणाम– निवेदन में मेरे मुंह से कुछ अस्फुट शब्द निकले (हां, मैं बहुत कायर और डरपोक हूं!)।

रिक्शावाला बहादुर है कहता है– "चलिए न– थोड़ा और आगे!"

यह रेणु की ईमानदार आत्म स्वीकृति है जो उन्हें पहली बार बाढ़ में घिरने पर हुई। दूसरी बार इस विभीषिका से उनका सामना 1975 में हुआ और इस बार यह सिर्फ बाढ़ ही नहीं थी लगभग जल–प्रलय थी। हर किसी की जुबान पर एक ही पंक्ति थी "काहो! पनिया आ रहलौ है?"

जवाब में एक कुत्ते ने रोना शुरू किया। फिर दूसरे ने सुर में सुर मिलाया। फिर तीसरे ने। करुण आर्तनाद की भयोत्पादक प्रतिध्वनियां सुनकर सारी काया सिहर उठी, किंतु एक साथ करीब एक दर्जन मानवकंठों से गालियों के साथ प्रतिवाद के शब्द निकले– "मार स्साले को। अरे चुप...चौप!... (प्रतिध्वनि : चौप! चौप! चौप!!) कुत्ते चुप हो गए। वे अपने सिक्स्थ सेंस से भांप चुके थे...।"

कहते हैं कि कुत्ते यूं ही नहीं रोते 'तार सप्तक' में उनका रोना निश्चित ही खतरे की घंटी है। फिर चाहे वह कैसी भी प्राकृतिक आपदा हो। कुत्तों के सामूहिक रूदन के साथ ही जनसंपर्क वालों का स्वर भी गूंज रहा था। जिनके ऐलान में खतरा, होशियार और आशंका जैसे शब्द बार–बार दोहराये जा रहे थे। चाहे 1947 की मनिहारी (तब पुर्णिया अब कटिहार जिला) की बाढ़ हो जिसमें रेणु जी बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों पर 'पकाही घाव' की दवा 'दियासलाई की डिबिया, किरोसिन का तेल और खाने–पीने की चीजों के साथ लोगों को राहत पहुंचाने गए थे या फिर 1949 की महानंदा की बाढ़ जिसमें वे राहत बांटने के लिए डॉ. साहब के साथ गए थे। खबर मिली थी कि मुसहरों की बस्ती में लोग कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसा कर खा रहे थे। पर मुसहर टोले के पास पहुंचने पर रेणु को ढोलक और मंजीरे की आवाज सुनाई पड़ी। एक ऊंची जगह पर 'मचान' बनाकर स्टेज बनाया गया था जिस पर 'बलवाही' नाच हो रहा था। लाल सांड़ी पहनकर काला कलूटा 'नटुआ' 'धानी' बन दुलहिन का हाव–भाव दिखला रहा था और ढोलक पर द्रुत ताल बज रही थी– "धागिड़गिड़, धागिड़गिड़चकैकै चकधुम चकैके चकधुम–चकधुम–चकधुम।" कीचड़ भर पानी में लथपथ भूखे–प्यासे, नर–नारिओं के झुंड और उनकी मुक्त खिलखिलाहट, ताज्जुब होता है, भारत के इन भूखे–नंगे असंख्य लोगों की इस जीवनी शक्ति पर। जिसे जल प्रलय भी मद्धम नहीं कर पायी आखिर किन पंचतत्वों से बने हैं ये 'लोग' (हमारे मध्यवर्गीय आलोचक वर्ग के सम्मानित सदस्य तो अपने घर में तेज झोंके के साथ आयी बारिश से ही बेसाख्ता परेशान होकर छींकने–खांसने और हाहाकार करने लगते हैं) रेणु के लेखक का सरोकार जिंदगी जिंदाबाद के नारे लगाते, यही लोग हैं जो गरीबी और जहालत में जीते हुए भी पराजित नहीं होते। बाढ़ के भयावह दृश्यों से खुद को विलगाते हुए रेणु बार–बार आंखें मूंद कर सफेद भेड़ों का झुंड देखने की चेष्टा करते हैं... उजले सफेद भेड़। पर पता नहीं कैसे ये उजले भेड़ काले हो जाते हैं। या फिर भूरे या गेंहुएं, सारी रात अशांति में बिताने के बाद सबेरे मुंह में झाग (फेन) लिए मोती डोरी की शक्ल में चारों ओर शोर, कोलाहल, कलरव और चीख–पुकार के बीच पानी तेजी से आकर उनके चारों ओर नाचने लगता है। लहरों का नर्तन 1967 में एक सप्ताह तक पुनपुन का पानी झेल चुके ये मकान पता नहीं इस चक्राकार जल प्रलय की तेज धारा का सामना कर पाएंगे या नहीं। बस चारों ओर लाचार कुत्तों का सामूहिक रूदन, बहुत हुए सूअर के बच्चों की चिचिआहट, कलरव, कोहराम। इस भयावह दृश्य के साक्षी रेणु आने वाले कल की आशंका में थर–थर कांपने लगे और ठाकुर रामकृष्ण के पास जाकर शहर को बचाने की प्रार्थना करने लगे। यथा : "अरे दुर साला। कांददिस केन? रोता क्यों है? बाहर देख साले! तुम लोग थोड़ी सी मस्ती में जब चाहो तब राह–चलते कमर दुलिए–दुलिए (कमर लचकाकर, कूल्हे मटकाकर) ट्वीस्ट नाच सकते हो। रंबा–संबा–हीरा–टीरा और उलंग नृत्य कर सकते हो और वृहत सर्वग्रासी महामत्ता रहस्यमयी प्रकृति कभी नहीं नाचेगी?... ए–बार नाच देख! भयंकरी नाच रही है– ता–ता थेई–थेई, ता–ता थेई–थेई। तीव्रा तीव्रवेगा, शिवनर्तकी गीतप्रिया वाद्यरता प्रेतनृत्यपरायणा नाच रही है। जा, तू भी नाच!"

अगरबत्ती जलाकर, शंख फूंकता हूं– नाचो मां! .....उलंगिनी नाचे रण रंगे, आमरा नृत्य करि संगे। ताता थेई–थेई, ता–ता थेई–थेई..... मदमत्ता मातंगिनी उलंगिनी जी भरकर नाचो!

बाहर कलरव–कोलाहल बढ़ता ही जाता है, मोटर, ट्रक, टैक्टर, स्कूटर, पानी की धारा को चीरती, गरजती–गुर्राती, गुजरती हैं... सुबह सात बजे ही धूप इतनी तीखी हो गयी? सांस लेने में कठिनाई हो रही है। संभवतः ऐसी घड़ी में वातावरण में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। उमस, पसीना, कंपन, धड़कन? तो, क्या... तो क्या?

अब, तुमुल तरंगिनी के तरल नृत्य और वाद्य की ध्वनियों को शब्दों में बांधना असंभव है! अब... अब... सिर्फ हिल्लोल–कल्लोल–कलकल कुलकुल–छहर–छहर– झहर–झहर–झर झरन्अर, र–र–र है–ए–ए धिग्रा–धिंग–धातिन–धा तिन धा–आ– आहै, मैया–गे– झांय–झांरय–झप–झप झांय झिझिना–झिझिना कलल कुलल–कुल– कुल–बॉ–ऑ–य– बां–ऑ–म– भौ–ऊं–ऊं–ऊं... चेंईं–चेंईं छछना–छछना–हा–हा–हा ततथा–ततथा–कलकल–कुलकुल...!!

उपर्युक्त पंक्तियां कविता नहीं हैं ना भाषिक सौंदर्य का उदाहरण ही हैं यह जल–प्रलय का वह विनाशकारी नाद है जो प्रकृति के रौद्र रूप और उसकी सत्ता के सम्मुख मनुष्य को विनीत बना अपने विकास की प्रकृति संरचना एवं स्वरूप पर सोचने को विवश भी करता है प्रकृति के इस विनाशकारी तांडव से भी मनुष्य यदि कुछ सीख नहीं पाया तो इसकी पुनरावृत्ति होती रहेगी। केदार घाटी की वर्तमान जलप्रलय इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। हमारे विवेचन का सरोकार 'भूमिदर्शन की भूमिका' भाग–एक (1966) में बिहार में पड़े सूखे से है। इस रिपोर्ताज में रेणु ने बुद्धिजीवी वर्ग की खोखली सहानुभूति के दंभ को बेबाकी से स्वीकार किया है। किस तरह सूखा और बाढ़, आज की अमानवीय जीवन स्थितियों में पत्रकार और लेखकों के लिए सिर्फ लेखन के 'विषय' होकर रह गए हैं। जिसको वे अंधों के हाथी की तरह ऊपर से टटोलकर शब्द क्रीड़ा जिह्वा विलास में रत रहते हैं। इसका माखौल वे स्वयं खुद पर हंसते हुए उड़ाते हैं। आज के संबंध–विहीन जड़ होते समाज में 'सूखा' महज एक ऐसी खबर है, जिसको लोग पढ़कर भूल जाते हैं। पर उनके अंतर्जगत पर कहीं कोई फर्क नहीं पड़ता। रेणु लिखते हैं– "पिछले कई वर्षों से सैकड़ों शब्द, नाम, देश, समस्याएं और समाचार मेरे लिए बेमानी हो रहे हैं, होते जा रहे हैं, उनमें डेमोक्रेसी, चाइना, चुनाव, रेल–दुर्घटना, खाद्यान्न, भ्रष्टाचार, जनता, सत्यमेव जयते, कर्फ्यू, फायरिंग, बाढ़–फ्लड, दहाड़, सूखा–जरी–सुखाड़ जैसी नित्य के समाचारों में इस्तेमाल होने वाले शब्द भी हैं जिनके बिना आजकल किसी का काम नहीं चल सकता।... इसलिए, 'हथिया–नच्छत्तर' नहीं 'फरा' और भयानक सूखे की आशंकाओं और संभावनाओं–भरी खबरें प्रकाशित होने लगीं तो 'फ्लड–बाढ़–दहाड़' की तरह 'ड्राउट' सूखा–सुखाड़–भुखमरी भी मेरे लिए धीरे–धीरे बेमतलब हो गए।

इसी कारण, कलकत्ते के एक प्रसिद्ध बंगला (अंग्रेजी) दैनिक का विशेष संवाददाता जिसको विशेष रूप से 'ड्राउट' देखने के लिए भेजा गया था– मेरी बातें सुनकर हतप्रभ हो गया (हूं! ड्राउट देखने आये हैं मानो छत्तर सोनपुर का मेला देखने आये हैं।)

हैरत होती है कि 'सूखा', 'पिकनिक' बन गया है और जैसे लोग 'बहरी–अलंग' में गोंठ के लिए जाते हैं कुछ–कुछ उसी तरह सूखा पीड़ित क्षेत्र का भी हवाई दौरा कुछ विशिष्ट लोग करते हैं।

वाह रे मनुष्य! कितना तेल लगाकर नहाता है। ऐसे विशेष पत्रकारों से मिलने के बाद रेणु को अपने लेखक पर दया आती है। ऐसा, लेखक, जो सांस्कृतिक रिक्तता के दौर में कुंठित और पतित हो गया है। आईने में अपनी काया देखकर वह स्वयं से पूछते हैं– "तुमने कभी कोसी–कवलित जनों, अकाल पीड़ितों और शरणार्थियों के दुःख–दर्द को भोगकर, जीती–जागती छवियां आंकी थीं? क्या हो गया तुझे जो इस तरह 'बोतल प्रसाद' हो गया तू?"

इस सवाल के जवाब में मुझसे सवाल किया जाता है– "कौन कहता है सूखा पड़ा है? सरकार? सोशलिस्ट (प्रजा–संयुक्त)? कम्युनिस्ट? कांग्रेसी? कौन बोलता है? कोई मिनिस्टर? कोई जनता का सेवक?... ऑल फ्रॉड।" किंतु, दूसरे ही दिन लेखक जी यानी 'बोतल प्रसाद' ने देखा कि सूखे के नाम पर राजधानी के 'बार' और सब्जी बाजार में सुरा से लेकर बैंगन तक की कीमतें अचानक बढ़ गयी है, तो उसका माथा ठनका, तब वह पटना की सड़कों पर 'ड्राउट' देखने निकला।" देश की राजधानी दिल्ली अर्थात केंद्र से रोज ही कोई–न–कोई अन्दाता उड़कर आता है भयाऩक और भीषण स्थिति है, बयान दे डालता है, पर न बयान देने से पहले उसकी आत्मा उसे कचोटती है और न बयान देने के बाद उसके भीतर कुछ पिघलता है। सूखा सिर्फ अखबार की मोटी सुर्खी बनकर रह जाता है जिसका कोई प्रभाव शहरों पर नहीं पड़ता। रेणु के शब्दों में "राजधानी में, शहरों में, दीपावलियां सजती हैं। पटाखे फूटते हैं, फुलझड़ियां छूटती हैं।... उधर, गया के गांव में, मुंगेर के दक्षिणी हिस्से में, पलामू और हजारीबाग की पहाड़ियों और जंगलों की धरती की छातियां दरकती जाती हैं, पानी पाताल की ओर खिसकता जा रहा है। आदमी भूख से ऐंठ–ऐंठकर मरने लगते हैं।

...सब झूठ! जय प्रकाश नारायण नामक 'आदमी' को कोई काम तो है नहीं। अतः वह इसी तरह कभी भूदान, कभी भोटान, कभी नागालैंड, कभी कश्मीर पर बे–बात की बात करता है। अब सूखा की समस्याओं पर बात करता है और एक सर्वदलीय सभा बुलाकर सुख–चैन से सोये हुए लोगों के सूखे हृदय, में 'करुणा' का संचार करने की कोशिश कर रहा है। मगर, उसकी अपील लोगों के सिर और टोपियों के ऊपर से गुजर जाती है... इतना फालतू समय और पैसे किसके पास है?... चलो दिल्ली... जय हिंद!?

'आदमी मर रहे हैं' खबरें आने लगीं।"

'हम न मरहिं मरिहैं संसारा' जिस देश के बुद्धिजीवियों का नारा हो, उस देश का तो ईश्वर ही मालिक है। यह रिपोर्ताज अपने भीतर के लेखक को कोंचकर उदासीन से सक्रिय बनाने की प्रक्रिया का गवाह है। इस रिपोर्ताज में अपनी रचना प्रक्रिया के प्रति विश्लेषणात्मक रवैया अपनाते हुए परिवेश से अपने संबंध को पुनर्जीवित करने की चेष्टा की है। 'ऋणजल' और 'धनजल' को एक साथ रखने में निश्चय ही 'रेणु' का कोई रचनात्मक प्रयोजन रहा होगा, यह महज शाब्दिक मनोविनोद नहीं है। रघुवीर सहाय के शब्दों में "इन लेखों में कहानी, कविता या नाटक उस रूप में विद्यमान नहीं है। जिसमें साहित्यिक

व्याख्याता उन्हें देखने के आदी हो चुके हैं पर इनमें यह सब है और यह प्रमाण भी है कि कोई रपट भी उतनी सर्जनात्मक हो सकती है जितनी वह रचना जो रपट नहीं है– बशर्ते की लेखक अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है।" इससे स्पष्ट है कि रेणु ने रिपोर्ताज को पत्रकारिता के क्षेत्र से चुना, लेकिन उसे अद्‌भुत सृजन क्षमता से भर कालातीत बना दिया। यह उनके रपटों की खासियत है कि खबरों की तरह वह सिर्फ वर्तमान में नहीं जीतीं, बल्कि समय के अंतराल को पार कर भविष्य में भी अपनी दखल कायम रखती हैं। रेणु समकालीन हिंदी साहित्य के एक ऐसे संत लेखक थे जिन्होंने हर जीवित तत्व में सौंदर्य का अन्वेषण किया। उन्होंने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, गरीबी और जहालत को देखा था और संभवतः इसीलिए वह उसके साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सके, भवानी प्रसाद मिश्र की ये पंक्तियां रेणु के समस्त रचनाकर्म को परिभाषित करती हैं–

"जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख।
और इसके बाद भी, हमसे बड़ा तू दिख।।"

वस्तुतः यह रेणु की जनस्वीकृति का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उनका 'बोलक' और 'लेखक' एक ही 'संवेदनशील मन' है। वे अपनी पीड़ा को दूसरों पर नहीं थोपते और न ही उसका प्रदर्शन कर वाहवाही लूटने का स्वांग रचते हैं उनके लिए लेखन जीवन का अविभाज्य अंग हैं। निर्मल वर्मा उनकी इस विशेषता को कुछ इस तरह से देखते हैं– "रेणु जी की इस समग्र मानवीय दृष्टि को अनेक जनवादी और प्रगतिवादी आलोचक संदेह की दृष्टि से देखते थे– कैसा है यह अजीब लेखक, जो गरीबी की यातना के भीतर भी इतना रस, संगीत, इतना आनंद छक सकता है। सूखी परती जमीन के उदास मरुस्थल में सुरों, रंगों और गंधों की रासलीला देख सकता है। सौंदर्य को बटोर सकता है, आंसुओं को परखता है किंतु उसके भीतर में झांकती धूल–धूसरित मुस्कान को देखना नहीं भूलता– एक सौंदर्यवादी की तरह नहीं, जो सुंदरता को अन्य जीवित तत्वों से अलग करके उसका रसास्वादन करता है। रेणु एथीस्ट नहीं थे। किंतु वह हाय–हाय करते, छाती पीटते प्रगतिशील लोगों के आडंबर से बहुत दूर थे, जो मनुष्य की यातना को उसके समूचे जीवन से अलग करके अपने सिद्धांतों की लेबोरेटरी में एक रसायन की तरह इस्तेमाल करते हैं।"

अतः यह तय है कि 'समग्र मानवीय दृष्टि' के वाहक रेणु के ये स्मृति चित्र उनकी आंखों देखी पीड़ा का रूपांकन है। जिस वर्ग पर 'बाढ़' या 'सूखा' अपने अमिट निशान छोड़ जाता है। उस वर्ग की भाषिक संरचना में गालियों का एक खास महत्व है। यथा : "गांधी मैदान (सरवा) एकदम लबालब भर गया... (अरे तेरी मतारी का) करंट में इतना जोर का फोर्स है कि (ससुरा) रिक्सा लगा कि उलटियै जाएगा... गांजा फुरा गया का हो रामसिंगार? चल जाए एक चिलम 'बालचरी–माल'– फिर यह शहर (बेट्‌चः) डूबे या उबरे।"

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि रेणु के ये रिपोर्ताज 'प्रत्यक्ष', 'सजीव', 'रोमांचक', 'बिंबधर्मी', 'विश्वसनीय', और 'प्रभावी' हैं, जैसा कि कलात्मक रिपोर्ताज को होना चाहिए। रिपोर्ताज को एक स्वतंत्र गद्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में रेणु का अविस्मरणीय योगदान है उनके इस संकलन के विषय में डॉ. रामचंद्र तिवारी का यह उद्धरण दृष्टव्य है– " 'रेणु' में स्थितियों को शब्दों में अंकित करने की अद्‌भुत क्षमता है।

स्थितियों को वे देखकर ही नहीं, पूरी तरह महसूस करके लिखते हैं। उनकी सारी इंद्रियां सहज होकर एक साथ काम करती हैं। इसलिए उनके रिपोर्ताजों में स्थितियों का समग्र अनुभव उभर आता है।"

6.3.2 लेखन शैली

इनकी लेखन शैली वर्णनात्मक थी जिसमें पात्र की मनोवैज्ञानिक सोच को लुभावने तरीके से प्रस्तुत किया जाता था। पात्रों का चरित्र–निर्माण काफी गति से होता था। कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रभावित होती थी। रेणु की कहानियों और उपन्यासों में एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है। उन्होंने आंचलिक जीवन की हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता और हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा शैली में एक जादुई असर है जो पाठकों को अपने साथ बांध कर रखता है। रेणु एक अद्‌भुत किस्सागो थे और उनकी रचनाएं पढ़ते हुए लगता है मानो कोई कहानी सुना रहा हो। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है। इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा का अतिक्रमण करता है। अपनी कृतियों में इन्होंने आंचलिक पदों का प्रयोग किया है।

6.3.3 साहित्यिक अवदान

इन्होंने गद्य–साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को समृद्ध किया है। सभी विधाओं पर उनकी छाप है। 'रेणु' जन्मजात विद्रोही हैं। वे कभी और कहीं दायरे में नही बंधे। उन्होंने उपन्यास ही नहीं, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, दृश्यालेख सभी के प्रचलित ढांचे को तोड़ा है। नये प्रयोग किये हैं। हां, उन्होंने यह ध्यान अवश्य रखा है कि प्रयोग, खालिस प्रयोग बनकर न रह जाए। उन्होंने रचना में जीवन के स्पंदन को सुरक्षित रखते हुए उसके ढांचे को नया आयाम देने की कोशिश की है। 'रेणु' ने गद्य को नई अर्थवत्ता और नवीन व्यंजना–शक्ति प्रदान की है। उन्होंने गद्य–भाषा को रूप, रस, गंध और स्पर्श की संवेदना से दीप्त करके पूर्णतः बिंबधारण की क्षमता प्रदान की है। 'रेणु' की सबसे बड़ी शक्ति – उनकी अत्यंत संवेदनशील मानवीय दृष्टि है। उनकी रचनाओं में यह दृष्टि सारी नैतिक वर्जनाओं का अतिक्रमण करती हुयी पात्रों की भाव–तंत्रियों को झंकृत करके उनके अंतस को उद्‌घाटित कर देती है। उनकी इसी दृष्टि ने उन्हें सभी तरह के आग्रहों से मुक्त रखा है। वे सर्वत्र विवेकनिष्ठ और संतुलित रहे हैं। वे सत्ता और व्यवस्था के प्रति भी निर्मम नहीं हैं। वे उसके सकारात्मक पक्ष को सामने लाने से हिचकते नहीं। उन्होंने व्यवस्था के उजास को भी देखा है। इसी दृष्टि से प्रेरित होकर उन्होंने यह लक्षित किया है कि अत्यंत पिछड़े अंचलों में भी जीवन को सीचने वाली सांस्कृतिक रस–वेलि अभी मुरझाई नहीं है। जीवन में अभी भी बहुत कुछ कोमल, सुंदर, शालीन और शेष है, जो रक्षणीय है। 'मैला आंचल' के विषय में कहे हुए उनके ये शब्द– "इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी; कीचड़ भी है, चंदन भी; सुंदरता भी है; कुरूपता भी; मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया"– उनकी लेखकीय ईमानदारी के प्रमाण हैं। यह ईमानदार सृजनधर्मिता ही वह तत्व है, जो 'रेणु' के साहित्य को मूल्यवान और स्पृहणीय बनाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

11. फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म कब हुआ?
12. 'मैला आंचल' उपन्यास कब प्रकाशित हुआ?
13. रेणु 'रचनावली' तीन में 'रेणु' का अधूरा उपन्यास किस नाम से प्रकाशित हुआ?
14. 'रिपोर्ताज किस भाषा का शब्द है?
15. 'ऋणजल–धनजल' कितने खंडों में विभाजित रिपोर्ताज संग्रह है?
16. 'भूमिदर्शन की भूमिका' भाग–एक कब प्रकाशित हुई?

6.4 रेखाचित्र : भाभी – महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। घर पर पढ़ाई के लिए एक पंडित, एक मौलवी, एक कला शिक्षक तथा एक संगीत शिक्षक का प्रबंध किया गया। सन् 1916 ई. में इनका विवाह हो गया तथा कुछ समय के लिए शिक्षा स्थगित हो गई। इन्होंने सन् 1919 ई. में प्रयाग के क्राइस्ट कॉलेज से पुनः शिक्षा प्रारंभ की। 1921 ई. में इन्होंने मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की एवं प्रांत भर में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति भी मिली। सन् 1926 में इंटर की परीक्षा पास की। 1929 ई. में बी.ए. उत्तीर्ण किया। सन् 1930 में अस्वस्थ होने के कारण सालभर के लिए अध्ययन कार्य स्थगित हो गया तथा प्रयाग में अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन का संयोजन किया। 1932 में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया। प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का कार्यभार संभाला एवं 'चांद' पत्रिका का संपादन शुरू किया। 1933 में प्रयाग में ही इनकी भेंट कवीन्द्र रवीन्द्र से हुई। इसी वर्ष इन्होंने मीरां जयंती का शुभारंभ किया। इसी समय इन्होंने कलकत्ता में जापानी कवि योग नागची के स्वागत समारोह में भाग लिया तथा शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ से भेंट की। 1936 में इन्होंने रामगढ़ (नैनीताल) में 'मीरा मंदिर' नाम के कुटीर का निर्माण कराया। 1942 में 'विश्ववाणी' के बुद्ध अंक का संपादन किया एवं साहित्यकार संसद की स्थापना भी की। सन् 1943 में इन्हें 'स्मृति की रेखाएं' पर द्विवेदी पदक प्राप्त हुआ। 1944 में इन्हें हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'मंगला प्रसाद' पुरस्कार मिला। 1945 में इन्होंने साहित्यकार संसद की ओर गंगा किनारे रसूलाबाद (प्रयाग) में एक भवन खरीदा। 1950 में साहित्यकार संसद की ओर से अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन तथा साहित्य पर्व का सफल आयोजन किया तथा तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद द्वारा साहित्यकार संसद में 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास कराया।

1952 में स्वतंत्रता के बाद उ. प्र. की विधान परिषद की सम्मानित सदस्या मनोनीत हुईं तथा दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्या के लिए भी चुनी गयीं। 1955 में साहित्यकार संसद के मुख पत्र पर 'साहित्यकार' का प्रकाशन और श्री इलाचंद्र जोशी के साथ संपादन शुरू किया। साहित्यकार संसद के तत्वाधान में उत्तरापथ (ताकुला) नैनीताल में अंतः प्रादेशिक साहित्यकार शिविर का एक माह के लिए आयोजन किया। प्रयाग में नाट्य–संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापना की। सन् 1956 में इन्हें भारत सरकार की 'पद्म भूषण' उपाधि से सम्मानित किया गया। 1960 में सर्वसम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की कुलपति निर्वाचित की गईं। 1963 में लेखिका संघ, दिल्ली की ओर से तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन द्वारा अभिनंदित की गई। 1966 में षष्ठि प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से कविवर पंत जी ने संस्मरण ग्रंथ भेंट किया। 1976 में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित की गईं एवं बिहार सरकार के द्वारा भी विशेष रूप से सम्मानित की गईं। 1981 में साहित्य अकादमी की सम्मानित सदस्यता (फेलोशिप) व 1982 में उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा प्रथम 'भारत–भारती' पुरस्कार से सम्मानित की गईं। 1983 में 'यामा' व 'दीपशिखा' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1984 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया गया। 11 सितंबर, 1987 ई. को इनका निधन हो गया तथा 1988 ई. में मरणोपरांत 'पद्म विभूषण' उपाधि प्रदान की गई।

महादेवी वर्मा छायावाद युग की प्रतिनिधि कवयित्री मानी जाती हैं। इनकी कविताओं में जिज्ञासा, व्यथा, विस्मय, आध्यात्मिकता के भाव परिलक्षित होते हैं। समय के साथ ये भाव और भी परिपक्व एवं परिमार्जित होते गए हैं। इन्होंने अज्ञात प्रियतम के विरह में वेदनात्मक गीतों की सर्जना की। वे प्रिय से मिलने में विश्वास नहीं करती क्योंकि उनकी मान्यता है कि मिलन में तो व्यक्तित्व का नाश हो जाता है– 'मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूं।'

उनका दुःखवाद किसी सीमा तक समाज–कल्याण के भाव से परिपूरित है। यह व्यक्तिगत होकर भी समस्त समष्टि के कल्याण की भावना से संपृक्त है। महादेवी जब अपने जीवन की तुलना 'नीर–भरी दुःख की बदली' से करती हैं तो वहां आध्यात्मिक साधना के साथ–साथ लोक–कल्याण का भाव भी निहित रहता है। जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर संसार को आलोकित करता है उसी प्रकार महादेवी भी स्वयं साधना रूपी अग्नि में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद एवं मंगलमय बनाना चाहती हैं।

महादेवी के रचनाओं की प्रेरणाभूमि करुणा और पीड़ा रही है। यह वेदना कहीं वैयक्तिक तो कहीं सामाजिक है। 'रश्मि' की भूमिका में महादेवी ने लिखा है– "अपने दुःखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख के धूप छाई डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या को सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"

प्रेम, करुणा, वेदना के भाव ही उनकी कृतियों में सघन से सघनतर होते गए हैं। इनकी प्रथम कृति 'नीहार' है जिसका रचना काल 1924–1928 है। इसमें कवयित्री के हृदय का उद्वेलन और भावनाओं का बिखराव ही देखने को मिलता है। इसमें गंभीर चिंतन व्यक्त नहीं हुआ है।

'रश्मि' महादेवी के काव्य–पथ का दूसरा चरण है। स्वभावतः प्रथम की अपेक्षा सशक्त और कुछ निश्चित। 'नीहार' की भटकती हुई कवयित्री 'रश्मि' में पथ पा लेती है। उनकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति एक निश्चित पथ की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है। 'रश्मि' के गीतों में महादेवी के द्वारा, मृत्यु और जीवन का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'नीहार' में आत्मा और परमात्मा का पृथक–पृथक अस्तित्व था, पर 'रश्मि' में आकर एक ओर आत्मा और दूसरी ओर प्रकृति और परमात्मा में द्वैत का निराकरण हो गया है।

'नीरजा' इनकी काव्य–साधना की तीसरी सीढ़ी है। इसमें 'नीहार' की अनुभूति और 'रश्मि' का चिंतन दोनों मिलकर रचना को वयस्कता प्रदान करते हैं। 'नीरजा' में रसात्मक अनुभूतियों का उत्कर्ष और अभिव्यक्ति की सुंदरता एवं सहजता देखते ही बनती है। 'नीरजा' में आकर वे सुख–दुःख में सामंजस्य ढूंढती हैं।

'सांध्य गीत' महादेवी के काव्य विकास की चौथी सीढ़ी है। "प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन" इस संकलन की मूल कविता है। इस रचना में भाषा व छंद गौण हो जाते हैं और

आत्मा के स्वर प्रधान। 'सांध्यगीत' में जहां अनेक भावों का समन्वय है वहां उसमें एक स्थिरता भी है। इस संग्रह में उनकी दार्शनिक एकाग्रता भी उच्च–स्तर की है। इसके गीतों पर एक रहस्यावरण सा छाया हुआ है।

'दीपशिखा' महादेवी की पांचवीं कृति है। स्वयं महादेवी का कथन है– "दीपशिखा में अविश्वास का कोई बंधन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका ध्यान रहे ऐसी कामना नहीं, पर रात की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक ही रहेगी।"

'सप्तपर्णा' उनके चिंतन और विश्लेषण का परिणाम है। यह कृति उन्हें एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर देती है। इसमें उन्होंने भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर को कुशल अभिव्यक्ति के माध्यम से हिंदी जगत के समक्ष रखा।

गद्य रचनाएं– 'महादेवी' का विवेचनात्मक गद्य, श्रृंखला की कड़ियां (1942), क्षणदा (1957), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध 1964 ई., संभाषण 1975 ई., भारतीय संस्कृति के स्वर (1984), संकल्पिता (1968)।

महादेवी काव्य के सीमित कलेवर में जीवन की विविधता का चित्र नहीं उकेर पायीं हैं। उसे उन्होंने गद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पद्य की अपेक्षा गद्य कहीं अधिक भाव–प्रवण और विविधतापूर्ण है। 'अतीत के चलचित्र', 'श्रृंखला की कड़ियां', 'स्मृति की रेखाएं', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार' आदि गद्य कृतियां हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएं' में उन्होंने समाज के उपेक्षित, अभावग्रस्त तथा अत्याचार से जर्जर व्यक्तियों के अत्यंत मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'श्रृंखला की कड़ियां' नारी यातना पर लिखे गए महादेवी के निबंधों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि वह 'नारी जागरण' का प्रामाणिक दस्तावेज है। इसमें भारतीय नारी के संघर्ष एवं उसकी अदम्य जिजीविषा का इतिहास मौजूद है। 'नारी–जागरण' की लय में आकर भारतीय नारी न केवल घर–परिवार की चाहारदीवारी को तोड़कर आत्म प्रसार करना चाहती है अपितु बौद्धिक सजगता से पुरानी संकीर्णताओं को तोड़ना चाहती है।

इस निबंध संग्रह में महादेवी का व्यक्तित्व उभरकर सामने आया है। यहां उनके कवि हृदय ने समाज की संकीर्णताओं के कारणों को समझना चाहा है। 'चांद' पत्रिका की संपादिका के रूप में उन्होंने जो संपादकीय लेख लिखे वे ही 'श्रृंखला की कड़ियां' में संकलित है।

'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएं' उनके जीवन में आए अविस्मरणीय चरित्रों के संग्रह हैं। भाभी, बालिका, मां, अभागी स्त्री, लछमा आदि रेखाचित्रों में पुरुष प्रधान समाज द्वारा नारी की उपेक्षा एवं अत्याचार का स्वर मुखर है। लेकिन समाज द्वारा शोषित और उपेक्षित कई पुरुष पात्र भी इसमें मौजूद हैं।

महादेवी की रचनाओं में स्त्री–शिक्षा पर विशेष आग्रह रहा है। 'लछमा' को भी महादेवी इलाहाबाद लाकर पढ़ाना चाहती थीं। उनके प्रस्ताव के उत्तर में लछमा ने केवल अपने जीर्ण–शीर्ण घर की ओर देखकर सिर झुका लिया। उतने प्राणियों को वह किसके

भरोसे छोड़ आती।" (अतीत के चलचित्र) अंततः महादेवी को उसे इलाहाबाद लाने का विचार छोड़ना पड़ा। उसे पढ़ाने के लिए उन्हें दूसरा जन्म लेना पड़ेगा वे ऐसा सोचती हैं।

उनके कथा–साहित्य में समाज में व्याप्त दरिद्र विधवाओं की दशा और अबला जीवन की विवशता है। टूटी देह और फूटे भाग्य लिए उनके पात्र जीवन के प्रति आस्था रखने वाले हैं। भाभी के पास विधवा जीवन के आंसू हैं तो भक्तिन के पास जुल्म से लड़ने की शक्ति। मुन्नू की माई सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते हुए परिश्रम को महत्व देती है चीनी देश–प्रेम की मिसाल प्रस्तुत करता है तो ठकुरी बाबा लोक संस्कृति के महत्व को बताते हैं। ये सभी तकलीफों से न पराजित होने वाले मानव हैं। ये अपने अभावों में जीते हैं और गरीब को जीने की दृष्टि देते हैं। महादेवी ने इनके कष्टों को निकट से देखा और महसूस किया है। महादेवी अपनी तरफ से जितना संभव होता है उनकी सहायता भी करती हैं।

'पथ के साथी' के प्रथम संस्करण में महादेवी जी ने कवि रवीन्द्र का स्मरण किया है। कवि रवीन्द्र युग प्रवर्त्तक माने गए हैं। उस युग के प्रायः सभी लेखक रवीन्द्र से प्रभावित एवं प्रेरित हुए। महादेवी कहती हैं–"उस साहित्यकार अग्रज ने अनजाने में ही हमारे छोर में अपना उत्तराधिकार बांधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा सूर्य जब अपना आलोकवादी कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तब जब उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है– जब उठना ही उसका जाने वाले को प्रणाम है।" महादेवी ने अपनी सृजन यात्रा में उनसे बहुत कुछ सीखा।

उन्होंने न अपने युग के रचना नायकों और युग नायकों का चाटुकारिता पूर्ण गुणगान किया, न ही अधिक बढ़ा–चढ़ा कर प्रशंसा की है। केवल उनके गुणों को ध्यानपूर्वक देख, उनका साक्षात्कार किया और अपनाया। 'पथ के साथी' ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह स्मृति की ऐसी साहित्य सृष्टि है जो हिंदी गद्य की एक अमूल्य रचना के रूप में महत्वपूर्ण है।

महादेवी ने सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर अनेक निबंधों की रचना की है। इन निबंधों में उन्होंने प्राचीन वाङ्मय का खुलकर प्रयोग किया है। समकालीन समस्याओं के प्रति ध्यान आकृष्ट करना इन निबंधों की विशेषता है। इन निबंधों में उन्होंने पारंपरिक सोच से हटकर नवीन बोध जागृत करने की कोशिश की है। ये निबंध उनकी मानसिक एवं बौद्धिक चेतना का परिचय देते हैं।

महादेवी का प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग था। प्राकृतिक सौंदर्य तथा पशु–पक्षियों से निकटता उनके संस्मरणों की धुरी रही है। 'मेरा परिवार' पशु–पक्षियों से संबंधित महादेवी के संस्मरणों का संग्रह है। उन्होंने इनके माध्यम से यह संदेश दिया है कि व्यक्ति और प्रकृति का सहअस्तित्व ही मानव–समाज के लिए श्रेयस्कर है। उन्होंने दैनिक जीवन से लेकर साहित्यिक जगत तक पशु–पक्षियों को जैसी महत्ता प्रदान की, वह अद्वितीय है। महादेवी का समूचा गद्य–साहित्य जीवन, समाज तथा साहित्य के विविध संदर्भों का महाकाव्यात्मक लेखा जोखा है। पीड़ितों एवं वंचितों की पक्षधर होने के कारण ये रचनाएं तत्कालीन समाज का प्रामाणिक दस्तावेज कही जा सकती हैं।

6.4.1 भाभी

रेखाचित्र अंग्रेजी के स्केच (SKETCH) का पर्यायवाची है परंतु स्केच शब्द मूलतः चित्रकला का शब्द है। स्केच उन चित्रों को कहते हैं जिनमें केवल रेखाओं के माध्यम से एक भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। उनमें न रंगों की छटा होती है, न वातावरण की पृष्ठभूमि पर बल, साधारण–सी संक्षिप्त रेखाओं द्वारा इच्छित व्यक्ति का ऐसा चित्र उपस्थित किया जाता है जिसे देखकर संपूर्ण व्यक्तित्व उभर सके। अतः सरलता, संक्षिप्तता एवं वस्तुनिष्ठता रेखाचित्र की विशेषताएं हैं। यही कार्य जब हम रेखाओं के द्वारा न करके शब्दों के द्वारा करते हैं तो उसे शब्दचित्र या रेखाचित्र (साहित्यिक) कहते हैं। यहां शब्द रेखाओं का कार्य करते हैं। डॉ. नगेंद्र के अनुसार–

"जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आयी अर्थात रेखाचित्र शब्द एक ऐसी विधा के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएं हों परंतु शब्द रूप में। कथानक का उतार–चढ़ाव न हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र हो।"

डॉ. भगीरथ मिश्र रेखाचित्र के स्वरूप पर विचार करते हुए कहते हैं– "अपने संपर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य घटना से युक्त किसी मर्मस्पर्शी चरित्र को देखी–सुनी या संकलित घटना की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभारकर दिखाना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाए रेखाचित्र या शब्द चित्र कहलाता है।" उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में प्रमुखतः किसी प्रतिनिधि चरित्र के हृदयग्राही स्वरूप को संक्षिप्त घटनाओं के माध्यम से उभारने का प्रयत्न किया जाता है। अतः रेखाचित्र कहानी और संस्मरण की कतिपय विशेषताओं को अपने रचना संसार में समाहित कर लेता है, इसमें कहानी के चरम विकास की उत्सुकता न होकर संस्मरण की आत्मीयता ही अधिक रहती है। रेखाचित्र की सीमाएं निश्चित हैं। उसे कम शब्दों में संक्षिप्त रूप–विधान और छोटे–छोटे वाक्यों में अधिक से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना करनी पड़ती है। संक्षेप में रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का वह मर्मस्पर्शी एवं भावमय रूप विधान है जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि निजीपन उड़ेल कर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलात्मक संस्पर्श से चित्रपटल पर अंकित कुछ उभरी रेखाओं को संवारकर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है उसी प्रकार एक रेखाचित्रकार मानस पटल पर विश्रृंखलित रूप से बिखरी हुई स्मृति की रमणीय रेखाओं को स्वानुभूति की तूलिका के रंगों में रंग कर जीते–जागते शब्दचित्र प्रस्तुत करता है। महादेवी जी के रेखाचित्र इस मामले में विशिष्ट हैं कि वे संस्मरणात्मक हैं जैसा कि स्मृति–चित्र की भूमिका में उन्होंने लिखा है– "रेखाचित्र के साथ लेखक का संबंध चित्र और चित्रकार के संबंध के समान है जिसमें चित्र का आधार चित्रकार की दृष्टि से ही महत्व पाता है। दो चित्रकार एक ही वस्तु के दो ऐसे भिन्न चित्र आंक सकते हैं जिनमें एक में चित्रित वस्तु महत्वपूर्ण हो उठे और दूसरे में महत्वहीन। संस्मरण में स्मृति का सामंजस्यपूर्ण पुनः अवतरण है। अतः इसमें हमारी मानसिक क्रियाएं अधिक सक्रिय होकर ही स्मृति के आधारों से हमें एक आत्मीय संबंध में जोड़ती हैं।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अतीत की दुखद स्मृतियां भी पुनर्जीवन पाकर सुखद अनुभूति का कारण बन जाती हैं। अतीत कथाएं इसी से नित्य रसमयी हैं। स्मृति के आधार, जब समय का दीर्घ व्यवधान पार कर लौटते हैं, तब हमें मित्र–मिलन की विस्मयमयी सुखद

भरोसे छोड़ आती।" (अतीत के चलचित्र) अंततः महादेवी को उसे इलाहाबाद लाने का विचार छोड़ना पड़ा। उसे पढ़ाने के लिए उन्हें दूसरा जन्म लेना पड़ेगा वे ऐसा सोचती हैं।

उनके कथा–साहित्य में समाज में व्याप्त दरिद्र विधवाओं की दशा और अबला जीवन की विवशता है। टूटी देह और फूटे भाग्य लिए उनके पात्र जीवन के प्रति आस्था रखने वाले हैं। भाभी के पास विधवा जीवन के आंसू हैं तो भक्तिन के पास जुल्म से लड़ने की शक्ति। मुन्नू की माई सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते हुए परिश्रम को महत्व देती है चीनी देश–प्रेम की मिसाल प्रस्तुत करता है तो ठकुरी बाबा लोक संस्कृति के महत्व को बताते हैं। ये सभी तकलीफों से न पराजित होने वाले मानव हैं। ये अपने अभावों में जीते हैं और गरीब को जीने की दृष्टि देते हैं। महादेवी ने इनके कष्टों को निकट से देखा और महसूस किया है। महादेवी अपनी तरफ से जितना संभव होता है उनकी सहायता भी करती हैं।

'पथ के साथी' के प्रथम संस्करण में महादेवी जी ने कवि रवीन्द्र का स्मरण किया है। कवि रवीन्द्र युग प्रवर्त्तक माने गए हैं। उस युग के प्रायः सभी लेखक रवीन्द्र से प्रभावित एवं प्रेरित हुए। महादेवी कहती हैं–"उस साहित्यकार अग्रज ने अनजाने में ही हमारे छोर में अपना उत्तराधिकार बांधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा सूर्य जब अपना आलोकवादी कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तब जब उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है– जब उठना ही उसका जाने वाले को प्रणाम है।" महादेवी ने अपनी सृजन यात्रा में उनसे बहुत कुछ सीखा।

उन्होंने न अपने युग के रचना नायकों और युग नायकों का चाटुकारिता पूर्ण गुणगान किया, न ही अधिक बढ़ा–चढ़ा कर प्रशंसा की है। केवल उनके गुणों को ध्यानपूर्वक देख, उनका साक्षात्कार किया और अपनाया। 'पथ के साथी' ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह स्मृति की ऐसी साहित्य सृष्टि है जो हिंदी गद्य की एक अमूल्य रचना के रूप में महत्वपूर्ण है।

महादेवी ने सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर अनेक निबंधों की रचना की है। इन निबंधों में उन्होंने प्राचीन वाङ्मय का खुलकर प्रयोग किया है। समकालीन समस्याओं के प्रति ध्यान आकृष्ट करना इन निबंधों की विशेषता है। इन निबंधों में उन्होंने पारंपरिक सोच से हटकर नवीन बोध जागृत करने की कोशिश की है। ये निबंध उनकी मानसिक एवं बौद्धिक चेतना का परिचय देते हैं।

महादेवी का प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग था। प्राकृतिक सौंदर्य तथा पशु–पक्षियों से निकटता उनके संस्मरणों की धुरी रही है। 'मेरा परिवार' पशु–पक्षियों से संबंधित महादेवी के संस्मरणों का संग्रह है। उन्होंने इनके माध्यम से यह संदेश दिया है कि व्यक्ति और प्रकृति का सहअस्तित्व ही मानव–समाज के लिए श्रेयस्कर है। उन्होंने दैनिक जीवन से लेकर साहित्यिक जगत तक पशु–पक्षियों को जैसी महत्ता प्रदान की, वह अद्वितीय है। महादेवी का समूचा गद्य–साहित्य जीवन, समाज तथा साहित्य के विविध संदर्भों का महाकाव्यात्मक लेखा जोखा है। पीड़ितों एवं वंचितों की पक्षधर होने के कारण ये रचनाएं तत्कालीन समाज का प्रामाणिक दस्तावेज कही जा सकती हैं।

6.4.1 भाभी

रेखाचित्र अंग्रेजी के स्केच (SKETCH) का पर्यायवाची है परंतु स्केच शब्द मूलतः चित्रकला का शब्द है। स्केच उन चित्रों को कहते हैं जिनमें केवल रेखाओं के माध्यम से एक भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। उनमें न रंगों की छटा होती है, न वातावरण की पृष्ठभूमि पर बल, साधारण–सी संक्षिप्त रेखाओं द्वारा इच्छित व्यक्ति का ऐसा चित्र उपस्थित किया जाता है जिसे देखकर संपूर्ण व्यक्तित्व उभर सके। अतः सरलता, संक्षिप्तता एवं वस्तुनिष्ठता रेखाचित्र की विशेषताएं हैं। यही कार्य जब हम रेखाओं के द्वारा न करके शब्दों के द्वारा करते हैं तो उसे शब्दचित्र या रेखाचित्र (साहित्यिक) कहते हैं। यहां शब्द रेखाओं का कार्य करते हैं। डॉ. नगेंद्र के अनुसार–

"जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आयी अर्थात रेखाचित्र शब्द एक ऐसी विधा के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएं हों परंतु शब्द रूप में। कथानक का उतार–चढ़ाव न हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र हो।"

डॉ. भगीरथ मिश्र रेखाचित्र के स्वरूप पर विचार करते हुए कहते हैं– "अपने संपर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य घटना से युक्त किसी मर्मस्पर्शी चरित्र को देखी–सुनी या संकलित घटना की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभारकर दिखाना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाए रेखाचित्र या शब्द चित्र कहलाता है।" उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में प्रमुखतः किसी प्रतिनिधि चरित्र के हृदयग्राही स्वरूप को संक्षिप्त घटनाओं के माध्यम से उभारने का प्रयत्न किया जाता है। अतः रेखाचित्र कहानी और संस्मरण की कतिपय विशेषताओं को अपने रचना संसार में समाहित कर लेता है, इसमें कहानी के चरम विकास की उत्सुकता न होकर संस्मरण की आत्मीयता ही अधिक रहती है। रेखाचित्र की सीमाएं निश्चित हैं। उसे कम शब्दों में संक्षिप्त रूप–विधान और छोटे–छोटे वाक्यों में अधिक से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना करनी पड़ती है। संक्षेप में रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का वह मर्मस्पर्शी एवं भावमय रूप विधान है जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि निजीपन उड़ेल कर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलात्मक संस्पर्श से चित्रपटल पर अंकित कुछ उभरी रेखाओं को संवारकर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है उसी प्रकार एक रेखाचित्रकार मानस पटल पर विश्रृंखलित रूप से बिखरी हुई स्मृति की रमणीय रेखाओं को स्वानुभूति की तूलिका के रंगों में रंग कर जीते–जागते शब्दचित्र प्रस्तुत करता है। महादेवी जी के रेखाचित्र इस मामले में विशिष्ट हैं कि वे संस्मरणात्मक हैं जैसा कि स्मृति–चित्र की भूमिका में उन्होंने लिखा है– "रेखाचित्र के साथ लेखक का संबंध चित्र और चित्रकार के संबंध के समान है जिसमें चित्र का आधार चित्रकार की दृष्टि से ही महत्व पाता है। दो चित्रकार एक ही वस्तु के दो ऐसे भिन्न चित्र आंक सकते हैं जिनमें एक में चित्रित वस्तु महत्वपूर्ण हो उठे और दूसरे में महत्वहीन। संस्मरण में स्मृति का सामंजस्यपूर्ण पुनः अवतरण है। अतः इसमें हमारी मानसिक क्रियाएं अधिक सक्रिय होकर ही स्मृति के आधारों से हमें एक आत्मीय संबंध में जोड़ती हैं।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अतीत की दुखद स्मृतियां भी पुनर्जीवन पाकर सुखद अनुभूति का कारण बन जाती हैं। अतीत कथाएं इसी से नित्य रसमयी हैं। स्मृति के आधार, जब समय का दीर्घ व्यवधान पार कर लौटते हैं, तब हमें मित्र–मिलन की विस्मयमयी सुखद

अनुभूति होती है। संस्मरण में तटस्थता का प्रश्न नहीं उठता। रेखाचित्र के समान वर्ण्य घटना या व्यक्ति का महत्व भी लेखक की दृष्टि पर निर्भर नहीं रहता, क्योंकि महत्वहीन वस्तुओं और व्यक्तियों से उसके संबंध पर समय विस्मृति की कई परतें बिछा चुका होता है। संस्मरण पुरातत्व का उत्खनन नहीं है, जिसमें आश्चर्यजनक तथा अपरिचित सामग्री मूल्यांकन या अनुमान के लिए प्राप्त होती है। संस्मरण में हम अपनी स्मृति के आधारों पर से समय की धूल पोंछ–पोंछ कर उन्हें अपने मनोजगत के निभृत कक्ष में बैठाकर उनके साथ जीवित रहते हैं और अपने आत्मीय संबंधों को पुनः जीवित करते हैं। इस स्मृति–मिलन में मानो हमारा मन बार–बार दोहराता है– हमें आज भी तुम्हारा अभाव है। अन्य आत्मपरक विधाओं में वर्तमान अतीत की ओर चलता है, किंतु संस्मरण में अतीत समय का अंधकार पार कर वर्तमान में लौटता है। मेरे संस्मरण उन स्मरणीयों का स्मरण है, जिनके अभाव की मुझे तीव्र अनुभूति होती है, चाहें वे मनुष्य हों चाहे पशु पक्षी।" स्मृति चित्रों में संकलित, मेरे संगी के अंतर्गत लिखा गया 'भाभी' नामक रेखाचित्र महादेवी जी के रेखाचित्रों में अप्रतिम है। भाभी से जुड़ी लेखिका की स्मृतियां शब्द संकेतों द्वारा उनकी मानसिक क्रिया से एकाकार होकर शब्द रूप में कुछ इस प्रकार ढल जाती हैं कि भाभी अनायास ही हमारे सम्मुख सजीव रूप में उपस्थित हो जाती है। भाभी की करुण, कोमल काया का वर्णन करते हुए महादेवी जी लिखती हैं, "छोटे गोल मुख की तुलना में कुछ अधिक चौड़ा लगने वाला, पर दो काली रूखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को एक साथ अपने भीतर बंद कर लेने का प्रयास–सा करती हुई, लंबी बरौनियों वाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई–सी आंखें, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी–सी नाक और मानो अपने ऊपर छपी हुई हंसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहने वाले ओठ समय के प्रभाव से फीके भर हो सके हैं, घुल नहीं सके।

घर के सब उजले–मैले, सहज–कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा–जाल से गुंथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न–सा करती हुई, कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियां, काली रेखाओं में जड़े कांतिहीन नखों से कुछ भारी जान पड़ने वाली पतली उंगलियां, हाथों का बोझ संभालने में भी असमर्थ–सी दुर्बल, रूखी पर गौर बांहें और मारवाड़ी लहंगे के भारी घेरे से थकित–से, एक सहज–सुकुमारता का आभास देते हुए, कुछ लंबी उंगलियों वाले दो छोटे–छोटे पैर, जिनकी एड़ियों में आंगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर–सी लगती थी, भुलाए भी कैसे जा सकते हैं?"

उपर्युक्त शब्दचित्र सिर्फ भाभी की तस्वीर ही नहीं प्रस्तुत करता अपितु तत्कालीन हिंदू समाज में बाल विधवा की बेबस, करुण एवं बेचैन करने वाली दास्तान है। रेखाचित्र की यह विशेषता है कि वह पाठक के स्मृति पटल पर न भूलने वाला प्रभाव अंकित कर सके और भाभी का यह शब्दचित्र बिना किसी प्रचार या नारे के पाठक के अंतर्जगत में न केवल अपनी जगह बनाता है, बल्कि उसे तीव्र अकुलाहट से भर देता है। अतः बिना किसी कोशिश के हम महादेवी जी के बचपन की संगी भाभी के घर की अंधेरी चारदीवारी का हिस्सा बन जाते हैं। कल्लू की मां चाहे महादेवी के लिए विशेष जंतु रही हों, जिसकी बात कहकर बच्चों को डराया जाता है पर निरीह आंखों की स्वामिनी भाभी से परिचय कराने का श्रेय उससे नहीं छीना जा सकता है।

जाति, बिरादरी, मर्यादा, संयम जैसे भारी–भरकम शब्दों के बोझ तले किशोरी विधवा बिना किसी संगी–साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद–प्रमोद के, समाधि जैसे घर में, मानो

निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी। प्रायः निराहार और निरंतर मिताहार से दुर्बल देह से भाभी कितना परिश्रम करती थी। यह बचपन में भी लेखिका से छिपा न था। विधवा बालिका के अंतर्मन की गहन पीड़ा को महादेवी जी ने इस रेखाचित्र में हमारे सम्मुख अनावृत्त कर दिया है।

स्वाधीनता से पूर्व शृंखला की कड़ियों को तोड़ने की छटपटाहट एवं संस्थानों से टकराती हुई स्त्री जहां महादेवी जी के रचना संसार का अभिन्न हिस्सा है वहीं भाभी का आर्त मौन क्रंदन हिंदू समाज की बाल विधवा का जीवंत दस्तावेज है। भाभी निरक्षर थी अतः स्त्री अधिकारों से जुड़ी प्रखरता उसके व्यक्तित्व में न थी। उसका जीवन तो जैसे चौका–बरतन, कूटना–पीसना, खंडहर जैसे घर और लंबे–चौड़े आंगन को बुहारना, कुएं से पानी काढ़ना एवं मैले कपड़ों को काठ की मोंगरी से पीटकर साफ करना एवं अंधेरी रसोई की कोठरी के घुटते हुए धुएं में खुद को दफन कर देने के लिए हुआ था।

बूढ़े सेठ जब सबके मना करते–करते भी इसे अपने इकलौते लड़के के लिए ब्याह लाए और वह लड़का बिना किसी बीमारी के मर गया तो यह बाल विधवा बिना किसी प्रतिरोध अपने वृद्ध ससुर के अनुशासन के सम्मुख समर्पण कर देती है। वृद्ध सेठ की सौभाग्यवती पुत्री जब कभी नैहर आती थी, तो उसके जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर लंबे काले निशान और पैरों पर पड़े नीले दाग घरेलू हिंसा व शोषण सहने को मजबूर, बेसहारा, असहाय बाल विधवाओं की शोचनीय जीवन स्थितियों को उद्घाटित करती है। विधवाओं के जीवन में रंगों का प्रयोग उस समाज में अकल्पनीय था। तमाम निषेधों में एक और निषेध। अतः भाभी सदैव सफेद ओढ़नी और काला लहंगा या काली ओढ़नी और सफेद बूटदार कत्थई लहंगा ही पहनती थी, जबकि उसकी सौभाग्यवती नंद वृद्ध ससुर से हर तीज–त्योहार पर सुंदर रंगीन कपड़े उपहार स्वरूप पाती थीं। रंगों का यह निषेध भाभी पर तब गाज बन गिरा, जब लेखिका ने रंगीन ओढ़नी बनाकर, चुपचाप, छिपाकर, दबे पांव जाकर, तीज के दिन भाभी के सिर पर डाल दी, आश्चर्य नहीं कि वह छण भर के लिए अपनी स्थिति भूल गयी, वैधव्य बिसर गया, (जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे) और एक बेसुधपन में उसे ओढ़ वह खिलखिला पड़ी, 'बिंदनी' सुनकर जब उस अबोध बाल विधवा की सुध लौटी तब क्रोध से जलते अंगारे कैसे वज्र बन भाभी पर टूटे इसकी स्मृति भी शरीर की कोशिकाओं में रक्त को जमाने के लिए काफी है क्योंकि संयम एवं मर्यादा के नाम पर क्रूरता का ऐसा नग्न प्रदर्शन किसी भी सभ्य समाज में अन्यत्र दुर्लभ है। क्षण भर के लिए जो रंग भाभी की आंखों में दिखे उन्होंने भाभी के जीवन लेख पर विषाद का गाढ़ा रंग पोत दिया। उस एक छोटी–सी घटना से बालिका प्रौढ़ हो गयी और युवती वृद्धा। इंदौर छोड़ने के बाद अनेक वर्षों के उपरांत पता चला कि भाभी की रक्षा का भार संसार को सौंपकर वृद्ध ससुर बैकुंठ सिधार चुके हैं परंतु इस निर्मम संसार ने उस बाल विधवा की रक्षा कैसे की यह आज भी अज्ञात है। रंगीन कपड़ों के प्रति आसक्ति एक भारतीय बाल विधवा के लिए कितना अक्षम्य अपराध है। यह इस इक्कीसवीं सदी में भी कट्टर हिंदू आचार संहिता पर प्रश्नचिह्न लगाता है।

6.4.2 भाषा शैली

इस रेखाचित्र के विकास के मूल में स्मृति की महत्वपूर्ण और क्रियाशील भूमिका है। मनुष्य के व्यक्तित्व की रचना करने वाली बौद्धिक और रागात्मक क्रियाएं और उनसे जुड़े संस्कार

स्मृति में ही संरक्षित रहते हैं। मनुष्य के मनोजगत का निर्माण अनेक अंतर बाह्य तत्वों से मिलकर हुआ है। पर उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम सदैव भाषा ही रही है। इस मारवाड़ी विधवा बहू से जुड़ी महादेवी जी की व्यक्तिगत अनुभूति शब्द–संकेतों द्वारा ही संपन्न हुई है। भाषा की सारी शक्तियां लेखिका की मानसिक क्रिया से एकाकार होकर शब्द रूप में ढल गयी हैं। चित्रण प्रधान कलात्मक गद्य का स्वरूप इस रेखाचित्र को मानवीय संवेदना एवं भाव परिधि का वाहक बनाकर विशिष्ट बनाता है। साधारण शब्द समाज की इन बिसरी हुई विधवाओं के जीवन को किस तरह महादेवी जी के सहानुभूति की परिधि में लाकर उनके संसार में पाठक को प्रवेश देते हैं। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है, "काम चाहे कैसा ही कठिन रहा हो, शरीर चाहे कितना ही कलांत रहा हो, मैंने न कभी उसकी हंसी से आभासित मुख–मुद्रा में अंतर पड़ते देखा और न कभी काम रुकते देखा और इतने काम में भी उस अभागी का दिन द्रौपदी के चीर से होड़ लेता था। सवेरे स्नान, तुलसी–पूजा आदि में कुछ समय बिताकर ही वह अपने अंधेरे रसोई घर में पहुंचती थी, परंतु दस बजते–बजते ससुर को खिला–पिलाकर, उसी टाट के परदे से मुझे शाम को आने का निमंत्रण देने के लिए स्वतंत्र हो जाती थी। उसके बाद चौका–बर्तन, कूटना–पीसना भी समाप्त हो जाता, परंतु तब भी दिन का अधिक नहीं तो एक प्रहर शेष रह ही जाता था। दुकान की ओर जाने का निषेध होने के कारण, वह अवकाश का समय उसी टाट के परदे के पास बिता देती थी, जहां से कुछ मकानों के पिछवाड़े और एक–दो आते–जाते व्यक्ति ही दिख सकते थे, परंतु इतना ही उसकी चंचलता का ढिंढोरा पीटने के लिए पर्याप्त था।"

संक्षिप्त, तीखी और धारदार भाषा ने इस रेखाचित्र को चलचित्र की–सी गति प्रदान की है। अल्पविरामों का इस्तेमाल अनेक क्रिया व्यापारों को जोड़ने के लिए किया गया है। विस्मयबोधक चिह्न एवं अंतराल ने इस शब्द चित्र को नाटकीय संभावना से युक्त किया है और अधूरे वाक्यों का प्रयोग इस बाल 'बिंदनी' के अनिश्चित भविष्य की ओर संकेत करता है।

"प्रायः सोचती हूं– जब वृद्ध ने कभी न खोलने के लिए आंखें मूंद ली होंगी तब वह, जिसे उन्होंने संसार की ओर देखने का अधिकार ही नहीं दिया था, कहां गयी होगी।

और तब–तब न जाने किस अनिष्ट संभावना से, न जाने किस अज्ञात प्रश्न के उत्तर में मेरे मन की सारी ममता आर्त–क्रंदन कर उठती है नहीं नहीं.....।"

उन्नीस वर्ष की इस युवती की दयनीयता महादेवी जी की अनुभूति के सांचे में ढल इस शब्द चित्र को अद्भुत, अनूठेपन से भर देती है और भाभी जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़ियों के घरौंदों के समान नष्ट हो, उसे एकाकी छोड़ गए, उन अधूरे स्वप्नों की कथा हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में आज भी हमें चमत्कृत करती है। यह मारवाड़ी विधवा सिर्फ एक स्त्री न होकर उस समाज में विधवाओं के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में उभरती है और उसका मौन–क्रंदन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति पर एक बेबाक टिप्पणी है। महादेवी जी के रेखाचित्र का आकलन करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी का यह उद्धरण दृष्टव्य है– "महादेवी की स्मृत्याधृत संवेदनशील चित्र रचना तो हिंदी–गद्य–साहित्य में एक नवीन कला–विधा की अवतारणा है। चित्र–रचना करते हुए, स्वयं चित्रित हो जाना और चित्र को अपनी संवेदना से सिक्त करके प्राणवान बना देना, महादेवी की अनुपम कला–साधना का

प्रतीक है। महादेवी ने सामान्यजनों को चित्रित करके विशिष्ट बना दिया है और विशिष्ट जनों को आकार देकर, उनके भीतर अनुस्यूत मानवीयता के सामान्य–धरातल को लक्षित करके साहित्य रस की सार्वजनिकता को समर्थन प्रदान किया है। सबसे बड़ी बात है– मानवीय संवेदना और भावपरिधि का विस्तार। यह विस्तार ही मनुष्य की मनुष्यता की पहचान है। मनुष्य इसलिए मनुष्य है कि वह जड़–चेतन, पशु–पक्षी, कीट–पतंग सभी को अपना ममत्व और स्नेह दे सकता है। सभी के प्रति द्रवीभूत हो सकता है। सभी को अपनी भाव–परिधि में लाकर व्यक्तित्व प्रदान कर सकता है। महादेवी जी को हम मनुष्यत्व की इसी उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित पाते हैं।"

इस रेखाचित्र में कम से कम शब्दों में मारवाड़ी बाल विधवा (भाभी) का मर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है। इसकी विशेषता विस्तार में नहीं अपितु तीव्रता में है। यह पूर्ण चित्र नहीं है अपितु कुछ घटनाओं को एक निश्चित दृष्टि–बिंदु से प्रतिबिंबित किया गया है, जिसमें विवरण महत्वपूर्ण न होकर संवेदन प्रधान है। दृष्टि की सूक्ष्मता तथा अधिक से अधिक अभिव्यक्त करने की तत्परता रेखाचित्रकार को शब्दों और वाक्यों से परे भी बहुत कुछ संकेतित करने की सामर्थ्य से युक्त करती है। कहते हैं निर्मल जल के पुष्कर में तट के वृक्ष प्रतिबिंबित होते हैं, किंतु शैवाल, रजकण आदि से आच्छादित जल प्रतिबिंब ग्रहण नहीं करता। अभागिनी भाभी के जीवन–सरोवर में तद्युगीन समाज अपनी पूरी क्रूरता एवं निर्मम हस्तक्षेप के साथ प्रतिबिंबित हुआ है। अबला जीवन का यह मार्मिक रेखाचित्र अपनी दुखभरी कहानी से हमें आंदोलित ही नहीं करता वरन हमारी अनुभूतियों के संसार में अपना विशिष्ट स्थान बनाता है लेखिका के ही शब्दों में

"हरसिंगार झरते हैं झर झर।
आज नयन आते क्यों भर–भर।।"

6.5 संस्मरण : विष्णु प्रभाकर : यादों की तीर्थयात्रा : जैनेन्द्र कुमार

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912ई. में मीरापुर गांव जिला– मुजफ्फरनगर में हुआ था। पंजाब से बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में रचनाएं कर हमें सर्वथा नयी भावभूमि से परिचित कराया। कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी, नाटक, एकांकी, रिपोर्ताज, यात्रा वृत्त आदि अनेक विधाओं में विष्णु प्रभाकर का लेखन बिखरा हुआ है। लगभग एक सौ साठ रचनाओं के सर्जक इस लेखक की अविराम रचना यात्रा चकित करने वाली है। खासकर तब जब हम देखते हैं कि जीवन के अंतिम समय 2009 ई. तक वे सृजनरत रहे। उनकी कृतियों को देखकर यह निर्णय करना कठिन है कि उनका कौन सा रूप अधिक महत्वपूर्ण है? यों उनकी प्रसिद्धि और अपराजेय जिजीविषा का स्तंभ है– 'आवारा मसीहा' नाम से प्रकाशित बांग्ला के अप्रतिम कथा शिल्पी शरतचंद्र की जीवनी। अपने लेखन के संबंध में रचनाकार का कहना है कि : "अपनी बात कहूं लिखना मेरा धर्म और कर्म दोनों ही रहा है। मजबूरी भी कह सकते हैं, पर प्रयत्न कदापि नहीं। प्रयत्न यदि कुछ किया होगा तो बस अपने को जानने को किया होगा और इसी प्रक्रिया में अपने परिवेश से जुड़ा हूंगा। मेरे शब्द मुखौटे नहीं

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. महादेवी वर्मा का जन्म कब और कहां हुआ था?
18. महादेवी वर्मा ने रामगढ़ (नैनीताल) में 'मीरा मंदिर' नाम के कुटीर का निर्माण कब कराया?
19. महादेवी को हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'मंगल प्रसाद' पुरस्कार कब मिला?
20. महादेवी को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट. की उपाधि से कब सम्मानित किया गया?
21. महादेवी वर्मा का निधन कब हुआ?
22. महादेवी जी की प्रथम कृति 'नीहार' का रचना काल क्या है?
23. 'भाभी' रेखाचित्र में महादेवी जी ने किसका मर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन किया है?

लगाते, अर्थ की तलाश में भी नहीं भटकते क्योंकि मेरा प्रयत्न अपनी क्षमता के अनुसार अर्थ को शब्द देना रहा है, शब्द के अर्थ ढूंढ़ना नहीं। मेरे सृजन की शक्ति प्रतिभा नहीं प्रीति है। सरल–प्राण प्रीति। 'ढाई आखर' की यही पवित्र पूंजी मेरा मूल धन है।" (विष्णु प्रभाकर, 'क्या खोया क्या पाया', 1982)

अतः यह स्पष्ट है कि विष्णु प्रभाकर का लेखन स्वतः स्फूर्त, सहज एवं आडंबर विहीन है। उनकी भावभूमि आदर्श, यथार्थ एवं स्वभाविकता की टकराहट से उपजी प्रतीत होती है। उनकी कहानियों में कोमल क्षणों की मार्मिक संवेदना मिलती है। चरित्र चित्रण में कहीं–कहीं आदर्शवादी प्रवृत्ति खटकती जरूर है, लेकिन वह कहानी के प्रवाह और प्रभाव को रोकती नहीं। उनकी अधिकांश कहानियां रोचक होने के साथ–साथ संवेदनशील भी हैं। अब तक लेखक के 'आदि और अंत', 'रहमान का बेटा', 'जिंदगी के थपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'सफर के साथी',' खंडित पूजा', 'सांचे और कला', 'मेरी तैंतीस कहानियां', 'पुल टूटने से पहले', 'मेरी प्रिय कहानियां', 'मेरा वतन', 'खिलौने', 'मेरी लोक प्रिय कहानियां', 'इक्यावन कहानियां', 'दस प्रतिनिधि कहानियां', 'मेरी कहानियां', 'मेरी कथा यात्रा', 'एक और कुंती', 'जिंदगी एक रिहर्सल', 'जीवन का एक आदमी', 'आखिर क्यों', 'मैं नारी हूं' (दो खंडों में), 'संपूर्ण कहानियां' (आठ खंडों में), 'ईश्वर का चेहरा' आदि लगभग 30 कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अपनी रचनाओं में लेखक ने जिस विधा को सर्वाधिक महत्व दिया वह कहानी ही है। वे गद्य की सभी विधाओं में कथात्मक सूत्र की महत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके नाटक भी मंच से कही गई कहानी ही हैं एवं उपन्यास कथात्मक घटनाओं का विस्तार। इसी प्रकार रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी एवं यात्रा–विवरणों में भी कथात्मक सूत्र विद्यमान हैं।

उपन्यासों में वे रोमानी एवं आदर्शवादी तत्वों को मिलाकर कथासूत्र की संभावना को विकसित करते हैं। 'ढलती रात', 'निशिकांत', 'तट के बंधन', 'स्वप्नमयी', 'दर्पण का व्यक्तित्व', 'परछाई', 'कोई तो', 'अर्द्धनारीश्वर', 'संकल्प' आदि विष्णु प्रभाकर के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। उनके उपन्यासों में शिल्प की अपेक्षा भाव पर अधिक बल दिया गया है। वैष्णव वृत्ति, आर्य–समाज एवं गांधी के प्रभाव ने उनके उपन्यासों को आदर्शवादी भावभूमि प्रदान की, जिसके कारण ये उपन्यास प्रेम एवं मानवीयता के मजबूत स्तंभ तो बने लेकिन उपन्यास कला के अभाव में मील के पत्थर साबित नहीं हुए। हालांकि 'अर्द्धनारीश्वर' को साहित्य अकादमी पुरस्कार के रूप में पर्याप्त सफलता मिली फिर भी विष्णु प्रभाकर आने वाले समय में अपने उपन्यासों से ज्यादा अपनी कहानी एवं जीवनी की वजह से जाने जाएंगे।

एक सिद्ध नाटककार के रूप में विष्णु प्रभाकर की ख्याति कम नहीं हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं– 'नव प्रभात', 'समाधि', 'गांधार की भिक्षुणी', 'डॉक्टर', 'युगे–युगे क्रांति', 'टूटते परिवेश', 'कुहासा और किरण', 'टगर', 'बंदिनी', 'अब और नहीं', 'श्वेत कमल', 'केरल का क्रांतिकारी', एवं 'सूरदास'। इनके अलावा रचनाकार ने अनेक रेडियो नाटक भी लिखे हैं। इन नाटकों में समकालीन समाज एवं परिवेश के महत्वपूर्ण मुद्दों को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त किया गया है। लेखक ने तीन उपन्यासों के नाट्य रुपांतरण भी किए हैं– 'चंद्रहार', 'होरी' और 'सुनंदा' नाम से। इसके अलावा उन्होंने अनेक एकांकियों की भी रचना की है। उनके अब तक 17 एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनके नाम हैं– 'इंसान और अन्य एकांकी', 'अशोक तथा अन्य एकांकी', 'प्रकाश और परछाईं', 'धरती

एकांकी', 'दस बजे रात', 'ये रेखाएं ये दायरे', 'ऊंचा पर्वत गहरा सागर', 'मेरे प्रिय एकांकी', 'मेरे श्रेष्ठ एकांकी', 'तीसरा आदमी', 'नए एकांकी', 'डरे हुए लोग', 'मैं भी मानव हूं', 'दृष्टि की खोज', 'स्वाधीनता संग्राम', 'मैं तुम्हें क्षमा करुंगा' एवं 'अभया'। उनकी एकांकियों के केंद्रीय सरोकार स्त्री जीवन एवं उससे जुड़े हुए प्रश्न हैं। इन एकांकियों में हमें रचनाकार के कुशल कहानीकार एवं नाटककार रूप के समान रूप से दर्शन होते हैं। कहानी की मार्मिकता एकांकियों में उभरकर आ जाती है। उनकी एकांकियां नाटकों से अधिक निर्दोष हैं क्योंकि इनमें तात्कालिकता की अनिवार्यता लेखक को भावुक होने से रोकने में समर्थ सिद्ध होती है। मानवीय अनुभूति एवं सत्य का अन्वेषण उनके एकांकियों के महत्वपूर्ण बिंदु हैं।

विष्णु प्रभाकर ने शरतचंद्र के अतिरिक्त शहीद भगत सिंह, काका कालेलकर, सरदार वल्लभ भाई पटेल, स्वामी श्रद्धानंद और दयानंद सरस्वती की जीवनियां भी लिखी हैं। महात्मा गांधी का प्रभाव तो रचनाकार के जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक ही बन गया है। निश्चय ही इन महापुरुषों से वे किसी न किसी रूप में प्रभावित रहे पर शरतचंद्र के जीवन पर रचित 'आवारा मसीहा' इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय हुई और इसका अनुवाद बांग्ला भाषा में भी प्रकाशित हुआ। विष्णु जी अपने रेखाचित्रों एवं संस्मरणों के लिए भी जाने जाते हैं। उनकी सफलता यह है कि वे किसी भी व्यक्ति के भीतर उसके बाहरी आवरण के होते हुए भी मुख्य रूप से उसके कोमल एवं मानवीय पहलुओं को पकड़ने का प्रयास करते हैं। जीवन के सामान्य स्तरों पर विद्यमान मार्मिक अनुभूतियों की पहचान कर उसे सहज रूप में प्रस्तुत कर देना रचनाकार की श्रेष्ठ कलात्मक प्रतिभा को इंगित करता है। उनके संस्मरणों में एक गहरी तटस्थ अन्वेषण दृष्टि है जो निरपेक्ष भाव से जीवन स्थितियों को अक्षरों में लिपिबद्ध कर देती है। फोटोग्राफिक यथार्थ, वस्तुनिष्ठ जीवन दृष्टि एवं संक्षेप में परिवेश को संपूर्णता से उद्घाटित करने की क्षमता इनकी कृतियों को जीवंत बनाते हैं। विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित प्रमुख जीवनी एवं संस्मरण हैं– 'आवारा मसीहा', 'अमर शहीद भगत सिंह', 'सरदार वल्लभ भाई पटेल', 'जाने अनजाने', 'कुछ शब्द कुछ रेखाएं', 'यादों की तीर्थयात्रा', 'मेरे अग्रज मेरे मीत', 'समांतर रेखाएं', 'हम इनके ऋणी हैं', 'मेरे हमसफर', 'राह चलते–चलते', 'भारतीय साहित्य के निर्माता', 'हमारे पथ प्रदर्शक', 'हमसफर मिलते रहें', 'सृजन के सेतु', 'स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती', 'शब्द और रेखाएं', 'आकाश एक है', 'यादों की छांव में', 'उनके जाने के बाद', 'स्वामी दयानंद सरस्वती', 'साहित्य के स्वप्न पुरुष', 'एक दिशाहीन सफर', 'पंखहीन' आदि।

संस्मरण हिंदी गद्य की एक नई किंतु महत्वपूर्ण विधा है। संस्मरण का अर्थ है सम्यक स्मरण। कोई लेखक जब अतीत की अनुभूतियों को स्मृति के आधार पर पुनर्जीवित करता है तो संस्मरण का जन्म होता है। संस्मरण वर्तमान को अधिक सार्थक, समृद्ध एवं संवेदनशील बनाता है, अतीत और वर्तमान के बीच एक सेतु का काम करते हुए संस्मरण गुजरे हुए वक्त को पुनर्सृजित कर उसका मूल्यांकन भी करता है और स्मरणीय संबंधों का आत्मीयता के आधार पर तटस्थ आकलन भी। डॉ. रामचंद्र तिवारी के शब्दों में– 'संस्मरण किसी स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी

अंकित होता चलता है।" (रामचंद्र तिवारी, 'हिंदी का गद्य साहित्य')

संस्मरण का संबंध उस अतीत से है जो अनुभव के रूप में वर्तमान में जीवित है। संस्मरण में रचनाकार आत्मप्रकाशन भी करता है। हालांकि संस्मरण में कहानी, जीवनी, आत्मकथा आदि अनेक विधाओं की विशेषताएं मिलती हैं किंतु इन सभी विधाओं में यह रेखाचित्र के सर्वाधिक निकट है। बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुसार, "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित्र इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक की सीमा दूसरे से कहां मिलती है और कहां अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है।" (पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, 'संस्मरण')

हिंदी में संस्मरण–लेखन की शुरुआत 20वीं सदी के तीसरे दशक में शुरू हो चुकी थी लेकिन स्वतंत्र विधा के रूप में उसकी पहचान पांचवें दशक तक ही बन सकी। हिंदी में आरंभिक संस्मरण–लेखक के रूप में पद्मसिंह शर्मा का नाम आता है जिनकी संस्मरणात्मक पुस्तक 'पद्म पराग' 1329 ई. में प्रकाशित हुई। ये संस्मरण भावुक हृदय लेखक के विनोद भाव से युक्त हैं।

इस क्षेत्र में बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीधर पाठक, गणेश शंकर विद्यार्थी, किशोरी लाल गोस्वामी, द्विजेन्द्र नाथ ठाकुर आदि का नाम आदर से लिया जाता है, आरंभिक संस्मरण होने की वजह से इन संस्मरणों में व्यक्तित्व विश्लेषण कम, व्यक्तित्व से अभिभूत होने की प्रवृत्ति अधिक है। संस्मरण लेखन में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान है, उनके गद्य लेखन में संस्मरण एवं रेखाचित्र एक दूसरे में संक्रमित होते रहते हैं, हालांकि 'पथ के साथी' में संस्मरण का रंग गहरा है।

संस्मरण लेखन की शृंखला में सेठ गोविन्ददास, देवेन्द्र सत्यार्थी, विनोद शंकर व्यास, राधिकारमण प्रसाद सिंह, जैनेन्द्र, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, राहुल सांकृत्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, हरिवंशराय बच्चन, जगदीश चंद्र माथुर, रामधारी सिंह दिनकर, शिवपूजन सहाय, नगेन्द्र, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, विद्यानिवास मिश्र, कृष्णा सोबती आदि उल्लेखनीय हैं।

यादों की तीर्थयात्रा

'यादों की तीर्थयात्रा' नाम से ही स्पष्ट है कि जिन लोगों की यादों को संस्मरणों में सहेजने की कोशिश की गई है वे लेखक की श्रद्धा के पात्र रहे हैं फिर चाहे वे जगदीश चंद्र माथुर हों, भवानी प्रसाद मिश्र हों या जैनेन्द्र। इन सभी को याद करते हुए विष्णु प्रभाकर की दृष्टि शुभ और सुंदर पर अधिक रही है, चीर–फाड़ पर कम। भारतीय मानसिकता यूं भी प्रशंसा और निंदा दोनों में ही अतिवादी दृष्टि का पोषण करती है, संतुलन बहुत बिरले लेखकों का गुण है। 'कमजोर से कटकर कोई महान नहीं होता', यह बात हमें कम ही समझ आती है। विष्णु प्रभाकर ईमानदारी से यह बात स्वीकार करते हैं कि खुद से जुड़ा लेखक वास्तविकता से कुछ दूर ही होता है, फिर भी 'यादों की तीर्थयात्रा' में संकलित 'जैनेन्द्र कुमार' शीर्षक संस्मरण में उन्होंने पाठक से जैनेन्द्र जी का परिचय कराने की सार्थक एवं सफल कोशिश की है। अपने संस्मरण 'जैनेन्द्र कुमार' शीर्षक में उन्होंने पूरी वस्तुनिष्ठता के साथ जैनेन्द्र जी के साथ बिताएं क्षणों को पुनर्जीवित किया है।

जैनेन्द्र कुमार

विष्णु प्रभाकर का जैनेन्द्र कुमार से प्रथम परिचय 1930 के आसपास उनकी मां के माध्यम से हुआ। जैनेन्द्र जी की मां का चित्रण करते हुए प्रभाकर जी लिखते हैं– "लम्बा कद, धवल वस्त्र, गौर वर्ण और मुख पर मृदु मुस्कान – किसी उद्देश्य के लिए अर्पण कर देने वाली भिक्षुणी की तरह वह मुझे लगीं।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

जैनेन्द्र जी की मां ने उल्लास के साथ अपने बेटे की महिमा और उनके लेखन के जादू का प्रभाव किशोर विष्णु प्रभाकर के मन पर कुछ इस तरह दर्ज किया कि जैनेन्द्र जी की महानता से अभिभूत विष्णु जी में उनकी तरह बनने की इच्छा बलवती होने लगी। मां से प्राप्त परिचय को उनकी पुस्तकों ने कुछ और पुष्ट किया पर उनका पहला दर्शन तो दिल्ली के कंपनी बाग में हो रही एक सभा में हुआ। इस प्रथम दर्शन का वर्णन करते हुए विष्णु जी लिखते हैं–

"इकहरा बदन, मझोला कद, प्रशस्त ललाट और प्रमुख नासिका, बातें करने पर अंतर में लय हो जाने को आतुर आंखें और तदनुसार कुछ–कुछ तनी हुई ग्रीवा– देखता रहा, पर पास जाकर उनसे बातें करने का साहस नहीं पा सका। कहां वे हिंदी के महान लेखक, कहां एक क्षुद्र पाठक।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

इस अंश से स्पष्ट है कि जैनेन्द्र के प्रति श्रद्धा और उनकी महानता का आतंक विष्णु जी पर इस कदर हावी था कि वे उनसे मिले बगैर ही लौट गए। हालांकि जैनेन्द्र के लेखन ने उन्हें प्रेरणा और ऊर्जा से भर दिया और वे लेखक बनने की साधना में लीन हो गए, जैसा कि सर्वविदित है भाग्य भी सदा मेहनत करने वाले का साथ देता है, एक दिन ऐसा भी आया जब प्रभाकर जी का लेखन 'हंस' पत्रिका की शोभा बढ़ाने लगा और जब 'हंस' पत्रिका के संपादक जैनेन्द्र कुमार हो गए तो 1937 के आसपास विष्णु प्रभाकर अपनी कहानी 'हंस' पत्रिका में छपने के लिए भेजकर उत्सुक हृदय से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे, और उनकी प्रतीक्षा रंग लाई जब जैनेन्द्र कुमार का उत्साहवर्धक पत्र मिला। हालांकि अग्रज होने के नाते उन्होंने विष्णु जी को भावना में बहने के प्रति सजग किया पर ऐसा करना किसी वरिष्ठ लेखक का सुझाव ही था जिसमें स्नेह अधिक था दुराग्रह कम। पत्र ने जिस अनौपचारिक संबंध की नींव रखी उससे उत्साहित हो विष्णु प्रभाकर अपने भाई के साथ जैनेन्द्र से मिलने उनके घर पहुंच गए। विष्णु प्रभाकर जी जैनेन्द्र कुमार के घर का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं–

"वह छोटा सा कमरा जिसके एक कोने में एक मेज़ कुर्सी पड़ी है, चटाई पर बैठे हुए व्यक्तियों से भरा हुआ है और बीच में टहल रहा है इक इकहरे बदन और मझले कद का व्यक्ति, जिसने केवल बनियाइन और जांघिया पहना है और कंधे पर डाला है तौलिया। मैं शक्ल से जैनेन्द्र को पहचानता था, इसलिए यह समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि घूमने वाले व्यक्ति से ही मिलना है।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

उपर्युक्त वर्णन विष्णु प्रभाकर जी की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि का सटीक उदाहरण है जो तटस्थ होकर अपने आस–पास के परिवेश का चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। आत्मीय

व्यक्ति का निर्लिप्त चित्र प्रभाकर जी के संस्मरणों की विशेषता है। जैनेन्द्र जी ने प्रभाकर जी के सुंदर लेखन की सराहना करते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया। उनके वाक्य "You write remarkably well" ने विष्णु प्रभाकर के ऊपर जादू का–सा प्रभाव डाला क्योंकि किसी नये लेखक की मुक्त प्रशंसा उन दिनों चलन में नहीं थी। 'चक्षुराग' का जो सिलसिला उस दिन से शुरू हुआ वह ताउम्र बना रहा।

जैनेन्द्र कुमार जी के पारखी नेत्रों ने विष्णु प्रभाकर जी की प्रतिभा को पहचान लिया। दोनों का संबंध और आत्मीय हो गया, जब 1937 के शरदकाल की एक रात जैनेन्द्रकुमार गहरे सन्नाटे और घने कुहरे की परवाह न कर विष्णु प्रभाकर के घर पहुंच गए। इस घटना के छः सात दिन बाद 'आश्रिता' कहानी मिलने के बाद उन्होंने मुक्तकंठ से उसकी प्रशंसा की और कहानी के सूक्ष्म ताने–बाने को रचने के लिए विष्णु प्रभाकर जी को बधाई दी। लगभग साढ़े तीन महीने में ही विष्णु प्रभाकर जैनेन्द्र कुमार के लिए 'प्रिय महोदय' से 'भाई विष्णु जी' बन गए थे। जिससे यह स्पष्ट है कि प्रामाणिक एवं ईमानदार संबंध दायित्वयुक्त आचरण से ही संभव है। यह तय था कि दोनों लेखकों में अब तक ऐसा संबंध बन चुका था जहां आपसी समझदारी एवं एक दूसरे के लिए सम्मान का भाव था। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए विष्णु प्रभाकर जी उनके माहिर खिलाड़ी और सिद्ध तैराक होने की चर्चा करते हैं और उनके अच्छे साइकिल चालक होने की बात पर सहज विश्वास नहीं कर पाते। वह जैनेन्द्र जी की सरलता और सादगी के पीछे दबी उनकी गहरी महत्वाकांक्षा को भी रेखांकित करते हैं।

इस महत्वाकांक्षा के साक्ष्य स्वरूप कई उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं जैसे उन्हें सेकेण्ड क्लास में ट्रैवल करने की आदत थी और वायुयान उन्हें बेहद प्रिय था। छोटे–मोटे चंदे को एकत्रित करने से वह परहेज करते थे पर हजार दस हजार के लिए वे चल सकते थे। ये घटनाएं उनकी सादगी के पीछे छिपी दोहरी मध्यवर्गीय मानसिकता को उभारती हैं, उनके जीवन की इस जटिलता के विषय में प्रभाकर जी लिखते हैं–"साहित्य चर्चा करते हुए उन्होंने मुझसे कहा था कि धर्म–विचार में मैं सेक्स और अर्थ इन दोनों को ही मनन और अन्वेषण का विषय मानता हूं। सौदे के दो भागों की तरह सेक्स जड़ की भांति धरती के नीचे फैलती है और अर्थ पत्र–पुष्प के समान धरती के ऊपर फैलता है।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

यों तो जैनेन्द्र अहिंसा के पुजारी थे और ऊपरी तौर पर अहिंसा और महत्वाकांक्षा का मेल अनहोनी प्रतीत होता है पर जैनेन्द्र जैसे साधक के लिए यह कठिन नहीं था। जैनेन्द्र अपने ऊपर हुए हमले पर कभी उग्र रूप धारण नहीं करते थे पर भीतर–भीतर खौलते रहते थे और समय आने पर उसका प्रत्युत्तर भी देते थे। वे बेहद हाजिर जवाब व्यक्ति थे। एक बार जब उन्हें छकाने के लिए बार–बार शराब पीने का आग्रह किया गया और उनसे पूछा गया कि आखिर उसमें दोष क्या है? तो उनका उत्तर था कि शराब का नशा उतर जाता है। उनकी प्रखरता का लोहा दुनिया मानती है पर जब एक बार एक बंधु जो हृदय रोग से पीड़ित थे अचानक अस्वस्थ हो गए और प्रभाकर जी के बुलाने पर भी जैनेन्द्र नहीं आए तो विष्णु प्रभाकर को गहरा क्षोभ हुआ और शायद पहली बार उनका जैनेन्द्र से मोह भंग हुआ। आदर्श और व्यवहार के बीच के अंतर ने मध्यवर्गीय गड़बड़झाले की सीवन उधेड़ दी पर अंततः हम सभी तो अदने मनुष्य हैं और मनुष्य को दोष देने का नहीं सिर्फ दोष स्वीकार करने का अधिकार है। स्वय जैनेन्द्र यही मानते हैं अतः उन्हें इसी दृष्टि से आंकना न्याय संगत होगा। प्रभाकर जी लिखते हैं–"असाध्य आदर्श की तपस्या साधना है, तपस्या में पतन की गुंजाइश अधिक रहती है, पर इसी कारण जो तपस्या से डरकर बैठा रह जाए, उस अभागे से तो गिरने वाला लाख बार बड़ा है।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

विष्णु प्रभाकर के अनुसार जैनेन्द्र कुमार अव्यावहारिक एवं एक सीमा तक असहिष्णु भी थे। असहिष्णु इसलिए कि वह विरोधियों से काम नहीं ले पाते थे और उनकी परिषदें अव्यावहारिक दृष्टि की वजह से बिखर जाती थीं। वे दूसरे के दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं कर पाते थे और हर किसी से अपनी शर्तों पर काम करवाना चाहते थे। व्यक्ति जैनेन्द्र की असफलता ही लेखक जैनेन्द्र की ताकत थी। उनके साहित्य में असाध्य को साधने का प्रयास है। उन्होंने किसी विश्वविद्यालय से विद्यार्जन नहीं किया बल्कि जीवन के अनुभवों की भट्टी में तपकर स्वयं साधना कर विद्या का उपार्जन किया, अपनी प्रतिभा को प्रयत्नपूर्वक निखारा। जैनेन्द्र का दार्शनिक कई बार उनके लेखक पर इस कदर हावी हो जाता था कि उनका लिखा बेहद जटिल हो उठता था पर जीवन और जगत की जटिलता और सूक्ष्मता की यह पकड़ उनके संश्लिष्ट जीवन अनुभवों की ही निसृति थी। उनकी कहानियों में विचारों की बहुलता होती है पर यह तय था कि उनके लेखन पर उनकी गहरी छाप थी। उनके शब्द, वाक्य, भाव, भाषा, विचार सब पर उनका रंग था उनके पास सूक्ष्म पैनी पर्यवेक्षण दृष्टि थी और नव–निर्माण करने वाली बुद्धि। अनुवाद में उनका मन नहीं रमा और अनवरत अध्ययन उनके स्वभाव का बुनियादी गुण नहीं था किंतु यह सच है कि वे एक नितांत मौलिक कलाकार के रूप में जाने जाएंगे जिनकी अपनी एक मौलिक शैली थी।

हर बड़े कलाकार की ही तरह उनके प्रशंसकों एवं निंदकों की कमी नहीं रही। निंदा करने वालों का आक्षेप था कि तद्युगीन कोई बड़ी समस्या उन्हें उद्वेलित नहीं कर सकी फिर चाहे वह बंगाल का अकाल हो, विश्व युद्ध या सांप्रदायिक हत्या–कांड। कुछ को शिकायत थी कि वे प्रगतिशील नहीं हैं तो कुछ उन्हें सेक्स के विकृत रूप के प्रचार का दोषी समझते थे। खैर जो भी हो, सत्य हमेशा व्यक्ति सापेक्ष नहीं होता उसकी अपनी भी सत्ता होती है और सच तो यह भी है कि प्रतिभाशाली कभी समाप्त नहीं होता। जैनेन्द्र का उदय धूमकेतु की तरह हुआ था और सिर्फ धूमकेतु ही क्यों? वे आकाश में झिलमिलाते ऐसे एकाकी तारे के रूप में आज भी मौजूद हैं जो अपनी रोशनी से अनेक पथिकों को राह दिखा सकता है।

भाषा और शिल्प

विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में भावपक्ष की प्रधानता है, इसलिए शिल्पगत प्रयोग बहुत कम है। उनके यहां कला या शिल्प की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, बल्कि वह संवेदनाओं को सार्थक ढंग से प्रस्तुत करने का माध्यम है। समुद्र के जल और उसमें उठती हुई लहरों की तरह शब्द और अर्थ में भी अन्योन्याश्रित संबंध होता है, वैसे ही विष्णु प्रभाकर के संस्मरणों में भाव एवं शिल्प का संतुलन है। स्वतंत्र सत्ता होते हुए भी दोनों एक दूसरे से परस्पर गुंथे हुए हैं– 'गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न'। अपनी रचनाओं के बारे में विष्णु प्रभाकर ने स्वयं कहा है कि ये रचनाएं प्रयत्न जनित नहीं हैं, बल्कि स्वयं को जानने एवं परिवेश से जुड़ने का माध्यम हैं। लेखक के अनुसार उनके शब्द मुखौटे नहीं लगाते, अर्थ की तलाश में भटकते नहीं है, बल्कि स्वाभाविक रूप से अर्थ को संप्रेषित करते हैं। भाषा की यही सादगी और सहजता विष्णु जी के संस्मरणों की जान हैं। बोलचाल की भाषा का रचनात्मक प्रयोग कविता में जिस प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र और नागार्जुन ने किया है, वही

काम गद्य रचनाओं में खासतौर पर संस्मरणों में विष्णु प्रभाकर ने किया है। बोलचाल की भाषा का संस्कार विष्णु जी के संस्मरण 'श्री जैनेन्द्र कुमार' में आद्यंत विद्यमान हैं। संस्मरण के आरंभ में ही भाषा का यह रूप जैनेन्द्र कुमार की माता जी और लेखक के बीच संवाद के दरम्यान स्पष्ट हो जाता है–

"उन्होंने मुझसे पूछा– 'क्या पढ़ रहे हो?'

मैंने उपन्यास का नाम बता दिया। सुनकर बोली, 'परख पढ़ा है?'

'जी नहीं। किसने लिखा है?'

'जैनेन्द्र कुमार ने।'

'अच्छी पुस्तक है?'

'उस पर हिंदुस्तानी एकेडमी से पुरस्कार मिला है।'

मैंने सोचा, जिसे पुरस्कार मिला है, वह अवश्य महान लेखक है।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

उपर्युक्त संवाद में बोलचाल की सामान्य भाषा का जिस सादगी और सहजता से प्रयोग किया गया है, वह पाठक को चमत्कृत नहीं करती बल्कि आत्मीयता के साथ चलने का आग्रह करती है। उस आत्मीयता को लेखक ने संवादों के माध्यम से और भी विश्वसनीय बनाया है। ये संवाद स्वतःस्फूर्त एवं मानवीय संबंधों की ऊरूमा से भरे हुए हैं और संस्मरण को कृत्रिमता के बोझ से बचाए रखते हैं। विष्णु प्रभाकर के घर अचानक रात में जैनेन्द्र कुमार के पहुंचने के प्रसंग में संवाद शैली का प्रभावी प्रयोग किया गया है–

"किवाड़ खोलकर किसी तरह कहा, नमस्ते! आप इस समय.....!

जवाब दिया, 'हां, इधर आना हुआ, सोचा तुमसे मिलता चलूं, कहानी पर से तुम्हारी गली का नाम पढ़ा था।'

'बड़ी कृपा की आपने।'

'अरे कृपा क्या बला है', उन्होंने कुछ हंसकर कहा। फिर चढ़ते–चढ़ते पूछा, 'बड़ा सन्नाटा है?'

'जी छोटे शहर में रात जल्दी आ जाती है और फिर यहां तो बिजली भी नहीं है।'" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

मेजबान की विनम्रता एवं अकिंचनता, जैनेन्द्र कुमार का अनौपचारिक एवं खुला व्यक्तित्व एवं छोटे शहर की परिस्थितियां– सब कुछ इन संवादों के माध्यम से जीवंत हो उठे हैं। इनमें कोई शिल्पगत चमत्कार भले ही न हों, प्रमाणिकता और संप्रेषणीयता जबरदस्त है जिसके कारण रचना सीधे पाठकों के दिल में जगह बना लेती है।

लेकिन पारदर्शी और सहज होने के बावजूद विष्णु प्रभाकर की भाषा अखबारी भाषा की तरह सपाट, इकहरी और तुरंत हजम हो जाने वाली भाषा नहीं है। छायावादी रचनाकारों की भाषा में जिस तरह की जटिलता और कृत्रिमता आ गई थी उसका विष्णु प्रभाकर के यहां नितांत अभाव है। पारदर्शिता और सादगी उनकी भाषा का सामान्य स्वभाव है। अपने परिवेश से गहरी संपृक्ति के कारण उसमें जीवन की ऊष्मा और जीवंतता है। यह भाषा सामान्य बोलचाल के काफी निकट है, जिसमें वस्तुनिष्ठता के बावजूद प्रत्यक्ष संवाद करने की क्षमता है। इस रूप में उनकी भाषा अपने श्रद्धेय जैनेन्द्र कुमार की भाषा से भी बिल्कुल अलग है, जिसमें कभी–कभी इतनी दार्शनिक जटिलता आ जाती है कि पाठक उसे भेद नहीं पाता। यही वस्तुनिष्ठता विष्णु प्रभाकर के संस्मरणों की विशेषता है जो एक ओर उसे अतिशय भावुकता से बचाती है तो दूसरी और उसे इतिवृत्तात्मक विवरण नहीं बनने देती। संस्मरणों में इन दोनों अतिवादों का खतरा बना रहता है क्योंकि जिस व्यक्ति को आप निकट से जानते हैं, उनका चित्रण करते समय रचनाकार या तो भावुकता में बह जाता है या घटनाओं एवं प्रसंगों के तथ्यात्मक विवरण के जाल में फंस जाता है। 'श्री जैनेन्द्र कुमार' नामक संस्मरण में विष्णु प्रभाकर इन अतिवादों से बचते हुए, जैनेन्द्र कुमार का तटस्थ चित्रण कर पाए हैं, यह इस संस्मरण की अन्यतम विशेषता है। संस्मरण से एक अंश इस संदर्भ में उद्धृत करना प्रासंगिक होगा–

"जैनेन्द्र जो नहीं हैं वह बनना चाहते हैं, पर उसके लिए जो शक्ति चाहिए वह उनके पास नहीं है। शक्ति से अधिक प्रकृति का अभाव है, इसलिए गड़बड़ है। जैनेन्द्र के जीवन में यही उलझन है, यही संघर्ष है। पर व्यक्ति जैनेन्द्र की जो असफलता दिखाई देती है, आलोचक लोग लेखक–जैनेन्द्र की वही सफलता बताते हैं। उनके साहित्य में असाध्य को साधने की पुकार है, प्रयत्न भी है, पर किसी दिन वे सुलझ सके तो उनका साहित्य युग–युग का संदेश बनने की क्षमता प्राप्त कर सकता है।" (विष्णु प्रभाकर, 'यादों की तीर्थयात्रा')

स्पष्टतः विष्णु प्रभाकर की भाषा में बोलचाल की स्वाभाविकता, जीवन की ऊष्मा और जीवंतता है जो अपने परिवेश से गहरी संपृक्ति के कारण उपजा है।

6.6 आत्मकथा : गुड़िया भीतर गुड़िया – मैत्रेयी पुष्पा

आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से संबंधित होती है। इसके द्वारा विगत का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व रेखांकित किया जाता है।

6.6.1 गुड़िया भीतर गुड़िया

रेखाचित्र के लेखक से उम्मीद होती है कि वह अपने निजी जीवन के तथ्यों का सच्चाई के साथ चित्रण करे। सामान्यतः "आत्मकथा उपन्यास की भांति व्यक्तिगत मानवीय प्रकृति से संबंधित है पर यह अपनी प्रकृति में उपन्यास की भांति नई खोजों के लिए स्वतंत्र नहीं है। इतिहास की भांति यह तथ्यात्मक रूप से सत्य होने की कोशिश करती है, पर यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इसमें तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह अपने सत्य का कागजी या वस्तुगत प्रमाण नहीं प्रस्तुत करती है। आत्मकथा का सत्य तथ्य और आत्मकथाकार द्वारा तथ्य में जोड़े गए का अर्थ दोनों से है।"

परंतु आत्मकथाकार का सत्य पाठक के 'सत्य' से भिन्न हो सकता है। यह भी संभव है कि एक समय का सत्य दूसरे समय में उतना महत्वपूर्ण न हो। अतः इसमें कोई विस्मय नहीं कि अनेक आत्मकथाकारों ने माना है कि आत्मा का पूर्ण इतिहास लिखना असंभव है। इसमें "कोई भी अपने बारे में पूर्ण सत्य नहीं बता सकता है क्योंकि पूर्ण सत्य लिखने में पूर्ण सत्य को जीने से ज्यादा संघर्ष है।"

अतः यह तय है कि स्मृतियों के पिटारे से तथ्यों का चुनाव जितना तटस्थ होकर किया जाएगा आत्मकथा उतनी ही सत्य के करीब होगी।

'अपनी प्रगति जांचिए'

24. विष्णु प्रभाकर का जन्म कब हुआ?
25. विष्णु प्रभाकर के अब तक कितने एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं?
26. विष्णु प्रभाकर की एकांकियों का केंद्रीय सरोकार क्या है?
27. 'आवारा मसीहा' किसके जीवन पर रचित है?
28. हिंदी में संस्मरण–लेखन की शुरुआत कब हुई?
29. विष्णु प्रभाकर का जैनेन्द्र कुमार से प्रथम परिचय कब हुआ?

बर्नार्ड शॉ ने दो टूक शब्दों में कहा है कि "सभी आत्मकथाएं असत्य हैं।" हालांकि इस कथन से पूर्णतः सहमत होना संभव नहीं है परंतु इसे अतिवादी कहकर खारिज भी नहीं किया जा सकता। इतना तो तय है कि आत्मकथा, लेखक को अपने 'स्व' की सीमा में, अपने बारे में सत्य उद्घाटित करने का अवसर देती है। फिर चाहे वह सत्य ऐतिहासिक सत्यापित तथ्य न हो। "एक आत्मकथा विशुद्ध रिकॉर्ड, एक खाता या एक लॉग बुक नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार का रिकॉर्ड चाहे कितनी भी बारीकी से क्यों न लिखा गया हो वास्तविक जीवन का कार्टून खींचने के बराबर होगा।"

डायरी, जर्नल, पत्र–लेखन आदि रचना प्रकार भी आत्मकथा के ही स्फुट रूप हैं। इन्हें व्यक्तिगत प्रकाशन–वाले साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है क्योंकि जाने–अनजाने आत्मांकन करना ही इन विविध रचना प्रकारों का उद्देश्य होता है। प्रश्न उठता है कि आत्मकथात्मक साहित्य आखिर क्यों लिखा जाता है, क्या सिर्फ आत्म परीक्षण, आत्म निर्माण, आत्म समर्थन या अतीत की स्मृतियों के बहाने खुद को पुनर्जीवित करने का मोह या फिर अपनी सांसारिक यात्रा के तमाम भंवरों में खुद को अन्वेषित करने का प्रयास करना भी हो सकता है। कहीं न कहीं लेखक के मन में यह भी छिपा रहता है कि उसके अनुभवों का लाभ पाठकों को मिले। इसके अतिरिक्त लेखन के मूल में कहीं न कहीं कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी छिपी होती है। परंपरागत आलोचना दृष्टि मानती है कि ऐतिहासिक आत्म की निश्चित पहचान के सत्यापित संकेत ही आत्मकथा लेखन का आधार हैं। पर सत्यापित और निश्चित संकेतों के बिना भी 'आत्म का' पुनः सृजन हो सकता है और यह पुनर्रचना अपने अंतिम रूप में एक कलाकृति ही है। हर रचनात्मक कलाकृति की तरह आत्मकथा भी यथार्थ और कल्पना के सम्मिश्रण से ही बनती है। हालांकि यह संभवतः सर्वाधिक आत्मनिष्ठ साहित्यिक विधा है।

यह सर्वविदित है कि हाल के वर्षों में महिला आत्मकथाओं में इजाफा हुआ है। कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा', पद्मा सचदेव की 'बूंद–बावड़ी', शीला झुनझुनवाला की 'कुछ कही कुछ अनकही', प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या तक', मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी', निर्मला जैन की 'दिल्ली शहर दर शहर' आदि सभी रचनाएं किसी न किसी रूप में आत्मकथात्मक है। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– "मैंने अपनी आप–बीती को बिल्कुल तटस्थ मुद्रा के साथ अभिव्यक्त किया है..... मेरे मरघट, मधुबन नहीं बने परंतु यहां जलती भावनाओं के शव जिंदगी की ओर खींच ले जाते हैं और एक प्रश्न उभरता है– हम क्यों नहीं मानव बने रह सकते? क्यों नहीं स्वयं मानव रहकर अन्य मानव की अस्मिता स्वीकार कर लेते हैं?"

अपने उपन्यासों 'चाक', 'इदन्नमम्' और 'अल्मा कबूतरी' के कारण हिंदी जगत् में चर्चित मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा भाग–1 'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास की ही तरह सर्जनात्मक है। मैत्रेयी की मां कस्तूरी उन्हीं की तरह एक संघर्षशील महिला थीं, जिन्होंने अपना जीवन अपनी शर्तों पर जिया। मैत्रेयी को विद्रोही संस्कार विरासत में मिले थे और 'कस्तूरी कुंडल बसै' को हम मां–बेटी की संघर्ष गाथा भी कह सकते हैं। पारंपरिक समाज की जड़ता को तोड़ती यह कथा उनके अंतर्संबंधों के विविध रूप भी उद्घाटित करती है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' इसी कड़ी में एक और साहसिक प्रयास है। अधिकांश आत्मकथाएं झूठ और आत्मप्रशंसा की अभ्यास पुस्तिकाएं

लगती हैं, क्योंकि सच कहने की हिम्मत बिरले लोगों के पास होती है ज्यादातर लिहाज में या तो कुछ छोड़ दिया जाता है या उसे बचाकर छिपाकर प्रस्तुत किया जाता है। मैत्रेयी ने निर्मम होकर लक्ष्मण रेखाओं को लांघने का जोखिम उठाया है। सच कितना भी परेशान करने वाला हो उसे व्यक्त करना आत्मकथा की अनिवार्य शर्त है।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' स्त्री मन की स्वच्छंद उड़ान और उस उड़ान को रोकने की तमाम कोशिशों की ईमानदार आत्म स्वीकृति है। हिचक–झिझक की सीमा लांघने के उपरांत मैत्रेयी ने डॉ. सिद्धार्थ एवं राजेंद्र यादव के साथ अपने संबंधों को आत्महन्ता बेबाकी के साथ स्वीकार किया है। इस दुःसाहसिक आकांक्षा की वजह से मैत्रेयी को न जाने कितनी लांछना–प्रताड़ना झेलनी पड़ी। ग्रामीण पृष्ठभूमि से आयी मैत्रेयी के लिए दिल्ली का महानगरीय जीवन किसी अजायबघर से कम न था। जहां दो चोटी बांधने पर गंवारू का लेबल चस्पां कर दिया जाता था और आधुनिक बनने की परिभाषा, ऊंची सैंडल, उस समय की सिने तारिकाओं की तरह पफ वाला जूड़ा और चुस्त पोशाकें हुआ करती थीं।

ताज्जुब की बात है कि साहित्य जगत में जिसे बोल्ड, साहसिक और आपत्तिजनक कहा जाता है, ऐसा सारा लेखन मैत्रेयी ने घर–परिवार के बीच रहकर किया। अपने पति से उनका संबंध निश्चित ही सर्वाधिक नाटकीय और आश्चर्यजनक है, पति जो एक तरफ मैत्रेयी के यश और सफलताओं पर गर्व करते हैं और दूसरी तरफ उनके 'संबंधों' को लेकर किसी मालिक की ही तरह सशंकित। झांसी–अलीगढ़ से होते हुए दिल्ली तक की यात्रा एक गृहिणी की लंबी संघर्ष यात्रा तो है ही स्त्री मन की निर्बाध उड़ान भी है। इस आत्मकथा के माध्यम से मैत्रेयी ने दुनिया की तमाम औरतों को जीवन जीने का एक अमोघ अस्त्र प्रदान किया। उनके सुख–दुःख, जय–पराजय, राग–विराग, मान–अपमान, हर्ष–विषाद सिर्फ उनके न होकर हर स्वाभिमानी एवं जागरूक स्त्री की लंबी लड़ाई का हिस्सा प्रतीत होते हैं। उनके जीवन का यह खुला चिट्ठा सच्चाई की मशाल लेकर चलने वालों की प्रेरणा का सबब बना। जिस मनुवादी समाज ने उन्हें कुलक्षिणी, कुल्टा, दुश्चरिता, चरित्रहीन आदि विशेषणों से सुशोभित कर उनकी बदनामी का ढिंढ़ोरा पीटा उसी समाज के पुरोधा, सम्मान समारोहों में उनके मान–पत्र को पढ़ खीसें निपोरते नजर आए।

यह आत्मकथा बिलाशक एक स्त्री द्वारा अपने भीतर की स्वतंत्र स्त्री की खोज है। "इन दिनों मैं थी, मां और पति के बीच का ऐसा बिंदु जिसका वजूद हिंडोले पर चढ़ा रहता था। शारीरिक और मानसिक तौर पर इस छोर से उस छोर तक आना और लौटना....। ऐसा क्यों? मैं तो पहले ही मां के सपनों को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थी। मकसद भी साफ था, एक पुरुष साथी मिलने से मेरे रात–दिन सुरक्षित हो जाएंगे। मैं अपने आचरण से पत्नी! लेकिन मानसिक स्तर पर जो दखल देने लगती, वह कौन थी? मैं आसपास देखती किस–किस ने मेरी दृष्टि बदली और दृष्टिकोण पलटकर रख दिया? शायद वह मां थी जो परोक्ष रूप से मेरा रास्ता परिवर्तनकामी लोगों की ओर ले गई।" मां ही की तरह मैत्रेयी ने भी जीवन पर्यंत सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति की गुहार लगाई। अठारह खंडों में विभक्त उनका यह आत्मविवेचन 'काहे री नलिनी तू कुम्हलानी' से शुरू होकर 'हम न मरहिं मारहिं संसारा' पर खत्म होता है।

जिस नलिनी के तले सरोवर भांति–भांति के जीवन–चक्रों को संरक्षित करता हुआ फैला होता है उसका कुम्हलाना, निश्चय ही समझ से परे है। परंतु स्त्री जीवन की यही

विडंबना है, जिसकी परिधि अनेक वर्जनाओं, निषेधों, रीति–रिवाजों, कुरीतियों एवं सामूहिक दमन से मिल–जुल कर बनी है। उसकी हंसी, उसकी बेशर्मी है और उसके स्वप्न उसकी ढिठाई हैं। हर पति अपने लिए एक आधुनिका चाहता है। पर इस आधुनिकता बोध की परिभाषा वह स्वयं गढ़ता है। अधिकांश स्त्रियों के लिए आधुनिक हो जाना या कहलाना एक खुला विकल्प न होकर उनकी मजबूरी है।

सच ही है कि पत्नी से बड़ा 'शॉक एब्जारबर' नौकर भी नहीं क्योंकि उसके पास नौकरी छोड़ने का विकल्प खुला है। इस छोटे से अध्याय में मैत्रेयी ने अपने जीवन के उस अनुभव खंड को चुना है, जब उन्होंने बिना अनुमति डॉ. सिद्धार्थ के साथ पार्टी में नृत्य करने का जोखिम उठाया। यह नाचना महज औपचारिकता निभाना नहीं है, बल्कि मैत्रेयी की अपनी इच्छा का परिणाम है। ऐसी इच्छा जो किसी भी विवाहिता के लिए सारी आचार संहिताओं में वर्जित थी। पति, जो शादी–शुदा स्त्री पर मालिकाना हक रखते हैं, अपने लिए आधुनिका पत्नी अवश्य चाहते हैं पर विवाहिता के मन का यह तनिक सा विचलन उनके विश्वास को जर्जर और ध्वस्त कर देता है। एक विवाहिता स्त्री मैत्रेयी के लिए जरूरी था कि वह पति की इच्छा से नाचे–गाए, रसोई बनाए, पकवान बनाए, घर की साज–सज्जा का ध्यान रखे और ऐसे में उन्होंने किसी पर पुरुष के हाथों में अपना हाथ दे दिया। अपने मन के लगाव को पूरी ईमानदारी से सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया। इस बेखौफ–बेलौस कदम का पश्चाताप तो उन्हें करना ही था। जैसा कि उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है– "तुम्हारे पांव तो खुल गए दिल्ली आकर...। इन्हें गेरु घोलने (कलह खींचने) की बुरी आदत है। तनाव का सूत्र ऐसा तना है जैसे बिजली का नंगा तार हो। छूते ही झटका लगेगा। पर छूना ही किसलिए? झटका खाना हमारी ड्यूटी में शामिल हो तो भी हम नहीं छूएंगे।"

आदमी हैं हम, पशु तो नहीं...। वे निकल गए। मैं दस मिनट बाद उठी और द्वार बंद करने पहुंची। देखकर चौंक गई, वे बाहर वाले बरामदे में खड़े थे।

"अरे गए नहीं?"

"किस मुंह से जाऊं? तुमने छोड़ा है जाने लायक?"

"बात क्या है? मैंने गंभीर होकर पूछा, रिरियाकर नहीं।

"क्यों मेरे मुंह से कहलवा रही हो?"

"अरे! यह भी कोई बात हुई? मैं अंतर्यामी हूं क्या?"

"तो चलो सुन लो" वे सख्ती से मेरी बांह पकड़कर भीतर आ गए।"

"सुनो कि लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ. शर्मा नहीं भा रहे। लोग, लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ. सिद्धार्थ डुगडुगी की तरह नचा....."

"डुगी डुगी?"

"हां, डुगडुगी। वह तुम्हारी कमर में हाथ डालकर मनमाने तौर पर नचा नहीं रहा था ?"

अच्छा तो यह बात है।.....लोग नहीं कह रहे, मेरे पति कह रहे हैं। उस रात की बात..... तूल पकड़कर यहां तक आ गई। इन्होंने भी तभी मुझे क्यों नहीं रोक दिया था ? और नहीं तो पकड़कर बिठा ही लेते। मैं तो यह सोच रही थी कि गैरमर्द के उठाए उठाना यहां गलत है या सही?

"तुमने तो सब कुछ देखा था, मैंने छिपकर तो कुछ नहीं किया और वहां नाचने वाली अकेली मैं ही तो नहीं थी, दूसरी भी थीं। वे नहीं हुईं डुगडुगी? मेरे पीछे तुम्हारे विभाग के लोग क्यों पड़ गए?"

विचारणीय है कि जिस स्त्री को डुगडुगी कहा जा रहा है वह डॉ. साहब की अपनी पत्नी है। 'डुगडुगी' जिसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है उसकी आवाज बजाने वाले की इच्छा पर निर्भर है। वर्षों से स्त्री 'डुगडुगी' ही तो रही है कभी पिता की, कभी पति की, कभी पुत्र की, तो कभी समाज व्यवस्था के नियमों की। आश्चर्य है कि आधी दुनिया की आवाज उसकी अपनी अभिव्यक्ति न होकर बजाने वाले के हाथों के हुनर की गुलाम है।

एक स्वाधीन स्त्री को संस्थानों के अनेक रूपों से जूझना पड़ता है समाज, परिवार, धर्म, आदि के साथ–साथ उसे स्वयं से भी जूझना पड़ता है, क्योंकि स्त्री की पराधीनता के पीछे उसके अपने पारंपरिक स्वरूप से गहरी आसक्ति भी रही है और अपनी इस कुलीन, शालीन छवि की रक्षा में वह स्वयं प्राणपण से लगी रहती है।

इस संदर्भ में 'सिमॉन दि बोउवार' का उद्धरण दृष्टव्य है, "यह ठीक है कि आधुनिक समाज में पहले की अपेक्षा स्त्री के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितियां मिलती हैं किंतु अब भी उसको पहला कदम सामाजिक विद्वेष के बीच ही उठाना पड़ता है।.....

एक नई शुरुआत में जो एक गोरे अमेरिकी को पहले से विरासत में मिली होती है, एक औरत को एक नीग्रो की ही तरह अपने आस–पास के माहौल से जूझना पड़ता है। .....स्त्री चाहे विवाहित हो या अपनी गृहस्थी और परिवार में रहती हो, एक पुरुष की तुलना में परिवार उसके कार्य–व्यवसाय को अपेक्षित महत्व नहीं देता। परिवार उस पर कार्यों का बोझ तो लादता ही जाता है, आचार–व्यवहार के नाम पर, कदम–कदम पर उसके कामों में अनावश्यक हस्तक्षेप भी करता है।"

यह अनाधिकृत हस्तक्षेप अनेक छद्म रूपों में प्रकट होता है। कभी प्यार से, कभी मनुहार से, कभी गरज कर तो कभी हेकड़ी दिखा उसे बंधनों में बांधने का जतन किया जाता है। छोटी–सी पार्टी में किसी गैर मर्द के साथ नृत्य, जो किसी पुरुष के लिए मनोरंजन होता है, स्त्री के लिए अय्याशी बन जाता है। उसकी स्वतंत्रता उसकी उच्छृंखलता बन उसे चर्चाओं का विषय बना देती है जो कभी दबी जबान तो कभी निर्मम होकर उसकी सीवन को उधेड़, उसे लज्जित और अपमानित कर, अपराध बोध से भर देती है।

'पुरुषस्य भाग्यं, त्रियाचरित्रं.....किमपि न जानाति.....' अर्थात पुरुष के भाग्य और स्त्री के चरित्र को कोई नहीं जान सकता। महत्वपूर्ण है कि पुरुष के भाग्य से घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र का विकास, समृद्धि और शांति जुड़ी हुई है। किंतु स्त्री का जीवन तो चारित्रिक शुचिता से इतर किसी अन्य उपलब्धि के लिए बना ही नहीं है। स्त्री के जिस चरित्र को गोपन बना उसे अंधेरों में गर्क करने की आजादी पुरुष ने अपने हाथों में ले ली उस चारित्रिक शुचिता के परे जैसे उसकी दुनिया की संभावना ही न हो। हैरानी होती है कि इक्कीसवीं सदी में भी स्त्री की शारीरिक पवित्रता ही उसकी उपलब्धि का पासपोर्ट है। वह मॉडर्न हो सकती है, कामकाजी हो सकती है पर उतनी ही जितनी पुरुष अनुमति दे। विवाह

के रूप में जिस कारावास में उसकी आकांक्षाओं को घोट दिया जाता है और स्वाभिमान को मसल दिया जाता है उसका प्रतिरोध संभव है कई बार अप्रत्याशित रूप से प्रकट हो जैसा कि मैत्रेयी ने स्वयं स्वीकारा है– "जो लोग इल्ज़ाम लगा रहे हैं, उन्हें जाकर बता दो कि शादी के बाद मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है, जिसके लौह–कपाट मैं तभी से तोड़ने में लगी हूं और देखना चाहती हूं कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है? पति के अलावा कितने लोग हैं बाहर? वैसे पति से बैर भाव नहीं पाला, मगर उनके किसी खूंटे से बंधना? .....मैं भी अपने अंदर गहरी भावनाएं रखती हूं, जैसे कोई गुप्त प्यार को बचा ले। नाचने की स्मृति मेरे साथ रहेगी। प्रियतम्, मेरी उसी भावना ने तुम्हारे दीक्षांत समारोह में तुम्हारे साथ जाने की ठानी थी, तुम नहीं ले गए। मैं आहत और अपमानित हुई, क्योंकि अयोग्य ठहराई गई। मैंने घर आए यू.पी.एस.सी. चेयरमैन से बाहर आकर अभिवादन करना चाहा था, तुमने मुझे रसोई में सिकुड़े रहने की हिदायत दी, मेरे मन को ठेस लगी। ऐसी घटनाओं पर तुमसे किसी ने कुछ नहीं कहा। मैंने भी नहीं, क्योंकि मैं विनम्र रहना सीख रही थी। तुम्हारे प्यार की कसम खाकर कहती हूं, ऐसे दर्दनाक लम्हों को याद करके ही डॉ. सिद्धार्थ के कंधे पर मेरा सिर टिक गया था या लग रहा था, मैं आज अपनी हिम्मत के बूते खड़ी हो गई हूं। तुम कहते हो, मैं उसके सीने से भी लग गई थी तो लोग सकते में आ गए थे, गाना–वाना भूल गए थे। बस, यहीं से मुझे ताकत मिलती है कि लोगों के साथ जो हुआ, वह मेरे अप्रत्याशित चलन के कारण हुआ।"

तिरस्कार स्त्री को दुस्साहसी बना देता है और दाम्पत्य के दर्पण को चकनाचूर कर देता है। उसका निजी फैसला विवाहोपरांत उसका अपना नहीं रह जाता। उसके भावात्मक खालीपन में डॉ. सिद्धार्थ के प्रवेश से उसके पति के संस्कारों को गहरी ठेस लगती है। अपनी ग्रामीण केंचुल को छोड़ती मैत्रेयी हर हाल में जद्दोजहद को तैयार हो जाती है। उनका तर्क है कि उन्हें हीन भावनाओं से बाहर निकालने वाला चरित्रहीन कैसे हो सकता है। वह सिर्फ नृत्य के लिए नहीं उठी थी, अपने अधिकारों के लिए उठी थी।

डॉ. सिद्धार्थ की मंत्रणा कि 'आप पी.एचडी. कर डालिए' उनके लिए जीवन जीने का, खुद को साबित करने का एक ऐसा रास्ता था जिससे शायद उनके आने वाले भविष्य की दिशाएं खुल जाती। बंधन सदैव से मैत्रेयी को परेशान करते थे। जिसकी वजह से उनके पति शायद पछताते भी होंगे, क्योंकि आधुनिकता का जो बीजवपन उन्होंने किया, अपनी बीवी को स्मार्ट बनाना चाहा तो वह हाथ से निकलने लगी। पढ़ाई के लिए मोह और पी.एचडी. करने की जिद ने मैत्रेयी को जीने का मकसद दे दिया था। बक्से में साड़ी की तहों के नीचे जिन प्रमाण पत्रों को सहेज कर रख दिया गया था उन्हें निकालने की ठान ली। परंतु जब पी.एचडी. में पंजीयन नहीं हुआ तो रेखा अग्रवाल के कहने पर मैत्रेयी ने भाषा–विज्ञान के पाठ्यक्रम में दाखिला लेने की ठान ली। पर पति ने कॉल लेटर नहीं दिया। और वह फिर एक बार परिस्थितियों के दलदल में धंस गयीं जहां उसके पास फूट–फूट कर रोने के सिवा कोई दूसरा विकल्प नहीं था। घरेलू महिला के जीवन की परिधि से बाहर निकलने की जितनी वो कोशिश करती उतना ही धंसती जाती।

बच्ची को नहलाना, कपड़े धोना, डस्टिंग और घर की सफाई ही जैसे जीवन जीने का कुल अर्थ हो गया था और उसकी अपनी जिंदगी, हाथ से खिसक रही थी। घरेलू महिला होना न तो कोई गुनाह है और न ही स्त्री की कमजोरी परंतु फिर भी एक पढ़ी–लिखी स्वतंत्र स्त्री के चाहने की सीमा जरूरी नहीं कि चारदीवारी तक सीमित होकर रह जाए।

वस्तुतः शिक्षित और सुसंस्कृत होने की चाह सिर्फ मैत्रेयी की ही नहीं वरन भारतीय स्त्रियों की उस वृहत्तर आकांक्षा का एक भाग है, जिससे समाज में उन्हें एक सम्मानित व्यक्ति की मान्यता मिल सके और अपने दोयम दर्जे से मुक्ति भी। स्त्री आकांक्षा के निरंतर विस्तृत होते आयाम और इस प्रक्रिया में संस्थान के विभिन्न रूपों में उसकी टकराहट सिर्फ मैत्रेयी पुष्पा में ही नहीं मिलती अपितु उनसे भी बहुत पहले 'आशापूर्णा देवी' ने 'सुवर्ण' के माध्यम से भारतीय नारियों की सामूहिक इच्छा को प्रकट किया था।

"किंतु उसके चाहने की सीमा इतनी ही है क्या? एक टुकड़ा बरामदा, छत पर जाने की एक सीढ़ी? बस? और कुछ नहीं।

आजीवन सुवर्णलता ने इतना ही चाहा?

नहीं!

बेहया सुवर्णलता ने और भी बहुत कुछ चाहा। पाया नहीं, फिर भी चाहा। चाहने के कारण लांछित हुई, उत्पीड़ित हुई, हास्यास्पद हुई, फिर भी उसके चाहने की परिधि बढ़ती ही गयी। सुवर्णलता ने भव्यता चाही, सभ्यता चाही, आदमी की तरह जीना चाहा। बाहर की दुनिया से नाड़ी का योग रखना चाहा। उसने देश के बारे में सोचना चाहा। देश की पराधीनता का अंत चाहा। तो फिर सुवर्णलता को उसका पति, सास, जेठ, देवर पागल क्यों न कहें।"

आत्मसम्मान के साथ जीने की आकांक्षा सिर्फ मैत्रेयी की ही नहीं अपितु भारतीय नारियों के जीवन का मुख्य सरोकार रही है। घरेलू महिलाओं की आधुनिक खेप सिर्फ पारंपरिक मूल्यों को जीने और परिवार के लिए खुद को होम कर देने में ही जीवन की सार्थकता नहीं मानती, बल्कि सितारों से आगे अपने लिए एक ऐसे जहान की तलाश भी करती हैं जहां उसके पर कतरने वाला कोई न हो। जहां उसका मन उड़ान के लिए स्वतंत्र हो और जहां उसके सृजन के सभी विकल्प खुले हों।

पति के इंटरव्यू के लिए वह खाने में सफाई से लेकर चिकनाई और मसाले का ध्यान रखे, पोंछा लगाकर झट–पट फर्श सुखा दे कि किसी भी तरह इंटरव्यू के दिन कोई अप्रत्याशित घटना ना हो, यहां तक कि बच्ची भी कोई ऐसा काम न करें कि पिता परेशान हों। दूसरी ओर पढ़े–लिखे पति जब पत्नी को कॉल लेटर देना भी जरूरी ना समझें, उसे केंचुएं की तरह रेंग–रेंग कर जीवन काटने के लिए छोड़ दें। और फिर भी, वह मीना कुमारी की फिल्मी भूमिका से खुद को जोड़ 'मैं चुप रहूंगी' के अंदाज में जीवन को स्वीकार कर ले, तो तय है कि मन में भरता हुआ यह गुबार किसी दिन निश्चित ही हंगामे का सबब साबित होगा। जैसा कि नृत्य पार्टी में हुआ।

6.6.2 भाषा और शिल्प

आत्मकथा "मैं" की शैली को अपनाकर, गद्य का परिनिष्ठित रूप प्रस्तुत करती है, 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में लेखिका ने 'स्व' का आकलन 'पर' दृष्टि से किया है। 'मैं' को 'पर' भाव से देखना और एक छायाकार की भांति उस सच को बिना मिलावट प्रस्तुत करना ही आत्मकथाकार की कसौटी है जिस पर 'गुड़िया भीतर गुड़िया' पूरी तरह खरी उतरती है।

अधूरे वाक्य : "मैं अभ्यागत सी..... पृ0 19

"नहीं, इसलिए कि तुमने कुछ ऐसा....." पृ0 12

अंतराल, विराम चिह्नों का प्रयोग, छोटे–छोटे धारदार पैने वाक्यों की योजना इस आत्मकथा को नाटकीय सर्जनात्मकता से भर देती है। 'गुडिया भीतर गुड़िया' की एक अन्य शैलीगत विशेषता है 'स्त्री–भाषा' की गहन रचनाधर्मिता की खोज कर इस प्रक्रिया में स्त्रीत्व का अन्वेषण। लेखिका ने अपने लिए जिन शब्दों का इस्तेमाल किया है, वह अधिकांश भारतीय मध्यवर्गीय स्त्रियों पर लागू होता है, यथा : 'शॉक एब्जॉर्बर', 'धरा के धैर्य सी सर्द स्त्री', 'डुगडुगी', 'ट्रेजेडी–क्वीन'। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भारतीय शहरी मध्यवर्ग की रोजमर्रा की जिंदगी का अभिन्न अंग है, अतः इन शब्दों का प्रयोग 'पैचवर्क' न लगकर, आत्मकथा को प्रामाणिक बनाता है। स्त्री से की जाने वाली अपेक्षाएं अनंत हैं। पारिवारिक और सामाजिक अपेक्षाओं के तले उनके अपने सपने किस तरह घुट–घुट कर दम तोड़ देते हैं इसका सिलसिलेवार ब्यौरा, यहां देखने को मिलता है। मैत्रेयी को क्या–क्या करना चाहिए इसकी छोटी सी सूची इस प्रकार है–

- 'गृहिणी के सद्गुणों' की अभ्यस्तता बनाए रखना।
- 'किताबों का गृहणियों के घर, क्या काम' के सिद्धांत को लेकर चलते हैं हमारे परिवार। हर सदस्य के लिए गृहिणी हर समय उपलब्ध रहनी चाहिए।
- शास्त्रों में लिखा है, स्वामी की बात पर विचार नहीं किया जाता, उसका पालन किया जाता है।

ज्ञान दुख का कारण है। अपनी जीवन–स्थिति का बोध ही स्त्री को परेशान कर विद्रोहिणी बनाता है। जब तक वह गहनों, कपड़ों एवं अन्य सजावटी वस्तुओं को प्राप्त कर इठलाती रहेगी एवं गृह–स्वामिनी बन खुद को धन्य समझती रहेगी, उसकी स्थिति में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन संभव नहीं, जैसा कि मैत्रेयी स्वयं कहती हैं– "मुझे माताजी याद आईं, जिन्होंने कहा था– लाली तेरे हाथ में ज्ञान का दीपक है, तू अपना रास्ता खुद बनाती जाएगी। मां, तुमने यह क्यों नहीं बताया कि ज्ञान बड़ा खतरनाक होता है। जिंदगी मुहाल कर देता है क्योंकि शांति भंग होती है। क्योंकि ज्ञान बदलाव के लिए प्रेरित करता है। काश, मां तुम मुझे इस ज्ञान से न गुजारतीं।"

अपनी स्थिति का ज्ञान ही पीड़ा का कारण है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश स्त्रियां अज्ञानता वश खुशहाली में जीवन गुजार देती हैं।

स्त्री की लड़ाई बेमानी है क्योंकि यह उसके अपनों से है। वह हर बार अस्त्र उठाती है और कहीं उसके प्रिय क्षत–विक्षत न हो जाएं, यह सोचकर रख देती है। सारा विद्रोह क्रंदन बन किसी कंधे से लगकर सिसकियों में तब्दील हो जाता है–फिर किसी ऐसे दिन के इंतजार में जब वह फिर अस्त्र उठा ले..... और यह अभ्यास और इसकी पुनरावृत्ति ही तथाकथित आधुनिक स्त्री का जीवन है। पुरुष किसी एक बार नहीं बार–बार अपनी साजिश में कामयाब होता है उसे 'कटघरे' में खड़ा भी करता है, अभियोग भी लगता है और फिर परम दयालु बनकर माफ भी कर देता है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में भी डॉ. साहब अपनी पत्नी के प्रति यही रवैया अपनाते हैं, यथा– "डॉ. साहब ने आकर मेरा हाथ अपने दोनों हाथों में थाम लिया और बोले– "बहुत रोई हो। जानता हूं। मुझसे नाराज हो, पर इतना जरूर कहूंगा, मैं जो करता हूं तुम्हारे भले के लिए करता हूं। तुम परेशान होती फिरोगी, मुझे चैन नहीं आएगा।"

और मेरा यह निजी संग्राम..... डॉ. साहब के कंधे से लगकर सिसकने लगा। मैंने बोलना चाहा, मगर बोलूं क्या? क्या आश्वासन दे सकती थी कि जीवन के ऐसे युद्ध क्षेत्र में हम फिर आमने–सामने न होंगे?

यह आश्वासन संभवतः कोई स्वाधीन स्त्री किसी को नहीं दे सकती और शायद इसी वजह से आज बाजार में स्त्री–आत्मकथाओं की बाढ़–सी आ गई है। स्त्री भी चाहती है कि उसके 'कार्य–क्षेत्र' पर सबकी नजर जाए। जिस 'काम' को गैर–जरूरी मानकर हाशिए पर धकेल दिया गया है वह कितना महत्वपूर्ण एवं जिम्मेदारी भरा है इस ओर भी गौर किये जाने की आवश्यकता है। 'घरेलू महिला' कहकर जो कोड़े उसके वजूद पर लगाए जाते हैं उसे कितना छलनी करते हैं और 'छोटा' महसूस कराते हैं यह विचारणीय प्रश्न है। स्त्री 'घरेलू' हो या 'कामकाजी' उसके जीवन का प्रामाणिक इतिहास लिखा जाना अब भी शेष है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' इसी प्रक्रिया में निश्चित तौर से एक सार्थक पहल है।

मैत्रेयी पुष्पा का रचना संसार

अनुभूति एवं सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि ही रचनाकार के लेखन की कसौटी है और मैत्रेयी पुष्पा प्रतिभा की धनी होने के साथ–साथ अपनी पैनी सत्यान्वेषी दृष्टि से जीवन और जगत के बहुविध चित्र बेहद सरलता एवं सहजता से उकेरती है। उन्होंने 40 की उम्र में आकर लेखन की शुरुआत की और आज लगभग 25 वर्षों से इस क्षेत्र में सक्रिय होने के बावजूद सर्वाधिक ऊर्जावान लेखिकाओं में से एक है। अपनी रचनात्मक प्रतिभा एवं ईमानदार अभिव्यक्ति की वजह से उन्होंने हिंदी साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। मैत्रेयी जी के अब तक 10 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं– स्मृतिदंश, बेतवा बहती रही (1994), इदन्नमम् (1994), चाक (1997), झूलानट (2000), अल्मा कबूतरी, अगन पाखी (2001), विज़न (2001), कही ईसुरी फाग (2004) और त्रियाहठ (2006)।

इनके अलावा दस प्रतिनिधि कहानियां, 'चिन्हार', 'ललमनियां, तथा 'गोमा हंसती है' (कहानी–संग्रह), 'खुली खिड़कियां' तथा 'सुनो मालिक सुनो' (स्त्री–विमर्श), लकीरें (कविता–संग्रह) और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (आत्मकथात्मक उपन्यास) के साथ–साथ अनेक निबंध तथा कहानियां पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

'इदन्नमम्' में साहित्य–जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली मैत्रेयी पुष्पा को उनके लेखन के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं– सार्क लिटरेरी अवॉर्ड, हिंदी अकादमी साहित्य कृति सम्मान, उ.प्र. साहित्य संस्थान द्वारा उपन्यास 'बेतवा बहती रही' को प्रेमचंद सम्मान, नंजानागुडू निरुमालम्बा पुरस्कार, सरोजिनी नायडू पुरस्कार, कथाक्रम सम्मान, साहित्यकार सम्मान, वीरसिंह जू देव पुरस्कार और शाश्वती सम्मान।

मैत्रेयी का लेखन इस मायने में महत्वपूर्ण है कि उसमें विध्वंस और विनाश के औजार नहीं हैं बल्कि सृजन की भूख से सतत स्पंदित पात्र हैं। विगत दो दशकों में जिस तरह उन्होंने अपनी पहचान बनाई है, वह कम आश्चर्यजनक नहीं है। मैत्रेयी उन अवांछित विषयों के साथ साहित्य के बिहड़ में प्रवेश करती हैं जिनमें न रस है, न गुदगुदाने की क्षमता। ऐसे ज्वलंत विषयों को भी ढाल और हथियार दोनों रूपों में इस्तेमाल करती हैं। उनका समस्त लेखन स्त्री–मुक्ति की सार्थक बहस बन प्रेरणा देता है। उनकी रचनाओं में जहां समकालीन

प्रश्न और संदर्भ तीव्रता से कौंधते हैं, वहीं स्त्री विमर्श का प्राथमिक स्वर भी मिलता है। मैत्रेयी के लेखन पर टिप्पणी करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं– "मैत्रेयी न वक्तव्य देती हैं, न भाषण। वह पात्रों को उठाकर उनके जीवन और परिवेश को पूरी नाटकीयता में देखती हैं। संबंधों के बीहड़ में धीरे–धीरे उतरना उन्हें पठनीय बनाता है। अपनी प्रामाणिकता में उनका हर चरित्र आत्मकथा का सा प्रभाव देता है। और यही उनकी कथा संपन्नता है।'

बीसवीं शती का अंतिम दशक उपन्यास के नाम रहा और लगभग इसी समय साहित्य का अनिवार्य विषय बन गया। हालांकि स्त्री–विमर्श के बहाने एक ओर अश्लीलता की वकालत और स्त्री देह की मुक्ति तक स्त्री की पक्षधरता को समेटने की कोशिश हुई तो दूसरी ओर बौद्धिक विमर्श के ताने बाने में विषय को उलझाने की साजिश भी की गई लेकिन इन प्रयासों के बावजूद महिला लेखिकाओं ने अपने ईर्द–गिर्द जकड़े सामाजिक नैतिक बंधनों को तोड़ने की कोशिश की।

जहां तक मैत्रेयी की बात है तो इदन्नमम् उनकी पहली रचना है जिससे साहित्य जगत में उनकी पहचान बनती है। यद्यपि इसके पूर्व भी 'स्मृतिदंश' और 'बेतवा बहती रही' प्रकाशित हो चुके थे लेकिन 'स्मृतिदंश' कथानक और भाषा दोनों दृष्टियों से साहित्य में कोई ठोस उपस्थिति दर्ज करने में असफल रहा, वहीं 'बेतवा बहती रही' में झांसी की गरीबी, डाकुओं का आतंक, राजनीति में पनपते अपराध और भ्रष्टाचार और इन सबके बीच स्त्री का चौतरफा शोषण, महत्वपूर्ण होने के बावजूद यह उपन्यास भावुकता से ग्रस्त है। इसमें यथार्थ की गहरी पकड़ की बजाए पाठकों को भावनाओं में बहाने की क्षमता अधिक है। संभवतः इसी वजह से यह उपन्यास साहित्य में अपनी जगह बनाने में नाकाम रहा।

'इदन्नमम्' अपनी सादगी एवं सरलता के बावजूद एक जटिल उपन्यास है। समीक्षकों के लिए जहां यह उपन्यास 'औरतों और वंचितों की संघर्ष गाथा है' वहीं स्त्री का आत्मसंघर्ष भी है। यह उपन्यास आंचलिक संदर्भों में उभरती स्त्री चेतना का आख्यान है और भारतीय उपन्यास शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी। वास्तव में इदन्नमम् स्त्री मन की सार्थक पहचान है और नई जमीन की तलाश भी।

यह उपन्यास मंदा नाम की एक ऐसी जुझारु युवती की वास्तविक कहानी है जो केवल परिवार एवं अपने लिए निर्मित बंधनों को ही नहीं तोड़ती वरन शोषण के विरुद्ध भी तनकर खड़ी हो जाती है। इस उपन्यास में ग्रामीण समाज में उभरती चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। 'इदन्नमम्' तीन पीढ़ियों (बऊ, प्रेम और मंदा) की ऐसी जटिल कहानी है, जहां तीनों के अपने–अपने निर्णय हैं। यह कहानी तीनों के समानांतर भी चलती है और तीनों के विरुद्ध भी। मैत्रेयी यहां तीनों को ही गलत नहीं ठहराती बल्कि तीनों के बरक्स एक चौथी सत्ता– पुरुष वर्चस्व को खड़ा करती हैं जिसके खिलाफ तीनों अपने–अपने स्तर से जूझती हैं।

'चाक' में मैत्रेयी ने सारंग नैनी के माध्यम से भारतीय ग्रामीण समाज की विवाहित स्त्रियों के संघर्ष को उभारा है। यह संघर्ष समाज में चुपचाप जुल्म सहती आ रही एक पत्नी, एक मां, एक बेटी और एक बहन के लिए दूसरी बहन का संघर्ष है। 'चाक' की मैत्रेयी प्रेम और व्यभिचार के बीच फ़र्क करती हैं और प्रेम की एक नई परिभाषा गढ़ती हैं। इस उपन्यास में मैत्रेयी ने सामंती कृषि संबंधों की जड़ मानसिकता और तथा कथित उच्च जातियों के नैतिक अंतर्विरोध को दर्शाया है, वहीं स्त्री दुनियां में हो रहे बदलावों को भी रेखांकित किया है।

'झूलानट' एक छोटे से परिवार के बेहद उलझे हुए समीकरणों की कहानी है। यह उपन्यास एक जुझारु मां, दो बेटे और एक उतनी ही जुझारु बहू के माध्यम से स्त्री और पुरुष के संबंधों को, उनके उतार–चढ़ाव, उनकी मार्मिकता और बनावटीपन को सजीवता के साथ सामने लाता है। मां का बेटों के प्रति मोह, प्रेम और सम्मान की चाहत, बेटों द्वारा तिरस्कार, पति द्वारा पत्नी का त्याग इस उपन्यास की अन्य महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। इस तरह की अनेक घटनाओं को जोड़कर मैत्रेयी जी ने परिवार, अपनी स्थिति तथा सामाजिक संघर्ष को चित्रित किया है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास एक ऐसी जनजाति (क्रिमिनल ट्राइब) की कहानी है जो गरीबी, जहालत, अंधविश्वास और अपराधों के कारण हाशिये पर जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। यह उपन्यास एक जनजाति के अपराधी प्रवृत्ति अपनाने के समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक कारणों की पड़ताल करता है। हाशिये पर धकेल दिये गए कुज्जा समुदाय की वास्तविक जीवन स्थितियां, मूल्य व्यवस्था, मान्यताएं, रीति–रिवाज के साथ–साथ इनका जीवन संघर्ष, सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज के बीच अपनी पहचान बनाने की जद्दोजहद और मुख्य धारा के लोगों द्वारा तिरस्कार की कहानी तो कहता ही है, परंपरागत समाज शास्त्रीय मनोविज्ञान के मिथक को तोड़ते हुए अपराधी समुदायों के प्रति समाज की मानसिकता को भी कठघरे में खड़ा कर देता है। यह उपन्यास जहां जरायम पेशा जाति के रूपांतरण की कथा है वहीं औरत के संघर्ष और आंतरिक तथा बाह्य सशक्तीकरण की भी दास्तान है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अगन पाखी' यद्यपि 'स्मृतिदंश' की ही उत्तर कथा है। इसके बावजूद जहां 'स्मृतिदंश' की नायिका नियति को स्वीकार कर बेतवा में डूबकर आत्महत्या कर लेती है वहीं 'अगन पाखी' की नायिका भुवन नियति से संघर्ष कर अपने हक के लिए विद्रोह भी करती है। यह उपन्यास जहां एक औरत के अस्तित्व की संघर्ष गाथा है वहीं इसमें बेतवा के आस–पास के गांव तथा वहां के जमींदारों द्वारा जर, जोरु और जमीन के लिए हर हथकंडे अपनाने और अपनी जरूरत के लिए धर्म का इस्तेमाल करने वाले समाज की परतें भी खोलता है। डॉ. नामवर सिंह ने इसे एक साथ स्त्री–विमर्श एवं सती विमर्श का उपन्यास कहा है।

मैत्रेयी 'विजन' में पहली बार अपनी देहाती दुनियां से बाहर निकल कर चकाचौंध की दुनियां की आंतरिकता विडंबना और दोहरी नैतिकता की चीर–फाड़ करती है। इस उपन्यास में परत दर परत अनावृत्त होती है– चिकित्सा संस्थानों की गहराती धांधली, अराजकता और अमानुषिकता। बावजूद इसके यह उपन्यास डॉ. आभा और डॉ. नेहा शरण की कहानी है लेकिन यह स्त्रियों का शोक गीत न होकर उनकी व्यावसायिक परेशानियों और समाज से अंतर्संबंधों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में बौद्धिक कर्म के दोहरे चरित्र को उजागर किया गया है। दया, करुणा और संवेदना का मंदिर कहे जाने वाले चिकित्सा संस्थानों की वास्तविक स्थिति और डॉक्टरों के पैसे कमाने के हथकंडों को भी यहां अनावृत्त किया गया है। यह उपन्यास कई सवाल उठाता है– आर्थिक आत्मनिर्भरता ही यदि स्त्री–विमर्श का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा है तो डॉ. नेहा शरण की यह नियति क्यों? पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में विवाह संस्था का औचित्य क्या है? क्या शिक्षा, समानता

यात्रावृत्त, रिपोर्ताज,
रेखाचित्र, संस्मरण,
आत्मकथा और जीवनी

टिप्पणी

और जागरूकता मात्र ढोंग है, दिखावा है? क्या व्यवस्था में बदलाव के बिना स्त्री अधिकारों की बात खोखली है?

'कही ईसुरी फाग' स्त्री–दृष्टि से लोक–विमर्श है। यह उपन्यास एक साथ स्त्री–मुक्ति, राष्ट्र–मुक्ति के साथ प्रेम और परिवार के द्वंद्व को समाज के पटल पर उभारता है। वहीं यह प्रश्न भी उठाता है कि क्या स्त्री को अपने लिए जीने का कोई हक नहीं है। विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करती स्त्री की व्यथा को यह उपन्यास सामने लाता है। इस उपन्यास का फलक इतना विस्तृत है कि इसमें सभ्य समाज का दोगला चरित्र भी है और बुंदेलखंड के लोक जीवन का कच्चा चिठ्ठा भी। प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष की अनुगूंज भी है और वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था का कुरूप चेहरा भी। वोट के लिए जाति और सांप्रदायिक की घिनौनी राजनीति, लूटमार और हत्या भी है साथ ही इन समस्याओं में चिंतित समाज भी। स्त्री–पुरुष के प्रेम का संवेदनात्मक पाठ तो है ही।

'त्रियाहठ' 'बेतवा बहती रही' की उत्तर कथा है। उत्तर कथा इसलिए कि 'बेतवा बहती रही' में लेखिका जिन सवालों से बचती रही, 'त्रियाहठ' में खुद को उन्हीं सवालों के घेरे में खड़ा पाती हैं। आज का युवा वर्ग उन छलावों को समझने लगा है, जिनको आधार बनाकर सदियों तक स्त्री को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा गया। यहां लेखिका सामाजिक परिवर्तन के लिए युवा वर्ग में संभावना तलाशती हैं।

यद्यपि मैत्रेयी का रचना संसार 'स्त्री' को केंद्र में रखकर ही रचा गया है किंतु उसमें भूत और वर्तमान की सभी समस्याएं और स्त्री को प्रभावित करने लगे लगभग सभी मुद्दे आ जाते हैं। मैत्रेयी ने भाषा की छवियों से पाठक को भरमाने या आतंकित करने की कोशिश नहीं की है बल्कि बड़े सीधे ढंग से पूरी सच्चाई के साथ अपनी बात पाठक के सम्मुख रखी है।

मैत्रेयी की आत्मकथा भाग (1) 'कस्तूरी कुंडल बसै' को पढ़ने के बाद यह महसूस होता है कि वे जिस स्त्री संसार को अपने लेखन के केंद्र में रखती हैं, वे कमोवेश उनके अपने अनुभव हैं। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में मां–बेटी आमने–सामने हैं पर दोनों ही पुरुष वर्चस्व के खिलाफ खड़ी हैं, फिर चाहे शुरू में मैत्रेयी पुष्पा साथी में सुरक्षा खोजती क्यों न नजर आएं, गुड़िया भीतर गुड़िया तक वह भ्रम भी छूट जाता है। इसमें मां–बेटी के वैचारिक टकराहट के कई आयाम हैं। एक विधवा स्त्री और एक कुंवारी लड़की का भिन्न–भिन्न स्त्री परिप्रेक्ष्य भी है। मां कस्तूरी जहां आत्मनिर्भरता को महत्व देती हैं, वहीं मैत्रेयी पढ़ लिखकर नौकरी नहीं शादी में अपनी सुरक्षा तलाशती हैं। यह स्त्री मुक्ति का प्रति विमर्श है। जो सिद्धांतों से गढ़ा न होकर पारंपरिक भारतीय समाज की उन सच्चाईयों द्वारा निर्मित है, जहां आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर भी कामकाजी औरतों की अपनी कोई स्वतंत्र पहचान नहीं है।

कस्तूरी कुंडल बसै की मौलिकता इस बात में है कि वह स्त्री जीवन के अनेक गोपन रहस्यों को खोल, सेक्स को निषिद्ध बनाने के पाखंड का खुलासा करती है। पुरुष से मुक्ति के साथ पुरुष अधिग्रहण की भी कथा है। यहां मां–बेटी में लगाव भी है तनाव भी, टकराव भी है प्रतिद्वंद्विता भी है। कुल मिलाकर यह आत्मकथात्मक उपन्यास अपनी ईमानदारी से प्रभावित करता है।

उपन्यासों की अपेक्षा कहानी का कैनवास भले ही छोटा हो पर उसका स्वरूप अधिक संश्लिष्ट एवं उलझा होता है। मैत्रेयी जब इस कथा संसार में आती हैं तो कहानियों की दुनिया नगरीय मध्यमवर्गीय जीवन स्थितियों तक सीमित थी। मैत्रेयी अपनी कहानियों का केंद्र उस ग्रामीण समाज को बनाती है जो सामंती भाव भूमि पर पुरुष वर्चस्व की अनुवादी अवधारणाओं के बीच आज भी जिंदा है। मैत्रेयी बिना किसी सैद्धांतिकी का सहारा लिए ग्रामीण समाज के माध्यम से स्त्री विमर्श से जुड़े मुद्दों को उठाती है। यद्यपि यह संदर्भ जटिल है क्योंकि इसमें धर्म ग्रंथ भी है। भारतीय संविधान एवं विधिक संदर्भ भी। अपने कथा साहित्य के माध्यम से लेखिका पारंपरिक समाज के बीच रहते हुए पुरुष वर्चस्व वाले उस छद्म को चुनौती देती है।

समकालीन कहानियों में ग्रामीण संदर्भ ज्यादातर पाठकों को चमत्कृत करने के लिए होने लगा है किंतु मैत्रेयी की कहानियों में गांव से उनका जुड़ाव बनावटी न होकर उनके सृजनात्मक लेखन की वास्तविक पहचान है। लेखिका के कहानी संग्रह 'ललमनियां' की दस कहानियों में से छः का परिवेश ग्रामीण है जो उनकी प्राथमिकता को स्पष्ट करता है। ग्रामीण परिवेश की कहानियां बेहद प्रामाणिक एवं ठेठ देशज परंपरा की विरासत को आगे बढ़ाती है– यथा; फैसला, सेंध, रिजक, ललमनियां आदि। 'फैसला' कहानी पर टेलीफिल्म 'वसुमति की चिठ्ठी' नाम से बन चुकी है। मैत्रेयी अपनी इन कहानियों में नाटकीयता, आकस्मिकता एवं संयोग का सहारा लेती हैं, जैसे – पति के खिलाफ पत्नी का वोट देना और इसी एक वोट से पति का हारना। मैत्रेयी की इन कहानियों में बदलते रिश्ते और बदलती सामाजिक वास्तविकताओं के साथ मानवीय मूल्यों और जड़ संस्कारों का ताना–बाना गूंथने की सचेत कोशिश झलकती है।

मैत्रेयी के कहानी–संग्रह 'गोमा हंसती है' को पढ़ते हुए 'रेणु' की याद ताजा हो उठती है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा–लोक की स्त्रियां शरत चंद्र की कथा–नायिकाओं की तरह भावना में बहकर दम नहीं तोड़ती अपितु पारंपरिक समाज के बीचों बीच रहकर भी अपना अलग रास्ता बनाती है। 'गोमा हंसती है' की गोमा, अपने बेमेल विवाह का प्रतिकार बली सिंह से विवाहेतर संबंध बनाकर करती है।

मैत्रेयी का कथा–संग्रह अनगढ़ है जिसमें यथार्थ की ठोस पकड़ तो है लेकिन शब्दों का इंद्रजाल और भाषा का चमत्कार नहीं। अपनी कहानियों में वे प्रतिरोध का स्वर बुलंद करती हैं। 'गोमा हंसती है' संग्रह की कहानियां स्त्री की नई नैतिकता का सवाल उठाती है।

जहां तक मैत्रेयी के लेखों या निबंधों का सवाल है वे उनकी वैचारिक गहनता, तीखी पर्यवेक्षण सामर्थ्य युक्त दृष्टि, परंपरा एवं धर्म को नए तरीके से परिभाषित करने की क्षमता का प्रतिफलन हैं। 'खुली खिड़कियां' स्त्री दासता और मुक्ति–चेतना के साथ अनुवादी समाज में पुरुष के छद्मावरण को बेनकाब करती है। लेखिका स्त्री को गुलाम बनाकर रखने की साजिश को अपने निबंधों के माध्यम से सामने लाती हैं। 'खुली खिड़कियां' स्त्री को संपत्ति मानते हुए उसे पशु एवं दलित बनाकर भोगने वाले पुरुषों के साथ–साथ सुख–सुविधा एवं सत्ता भोगती विलासी स्त्रियों की मानसिकता को भी उधेड़ती हैं। 'सुनो मालिक सुनो' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है में मैत्रेयी पुरुष सत्ता के लिए चुनौती प्रस्तुत करती हैं। वे

मनुवादी समाज के मानदंड भी रचती हैं। वे स्त्री विमर्श की नई परिभाषा ही नहीं गढ़ती बल्कि उसे जीती भी हैं।

मैत्रेयी की लेखन शैली में अद्भुत ताजगी है और विषय की विविधता भी इसलिए 'स्त्री–मुद्दों' पर लगातार लिखने के बावजूद वे बासी नहीं प्रतीत होती। वे जिस समाज के बारे में लिख रही होती हैं, उन्हीं की बोली में उनको अभिव्यक्त करती हैं। संभवतः इसीलिए उनकी भाषा खुरदरी है पर भाषा का यह खुरदरापन उनके लेखन की कमजोरी न होकर ताकत है क्योंकि यही उन्हें अतिशय साहित्यिकता के बोझ से उबार कर जीवन के अधिकाधिक निकट ले जाता है और उनका समस्त लेखन जीवन का यथार्थ बनकर अपनी रोचकता और वैविध्य से पाठक को फिर–फिर उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

मैत्रेयी का साहित्यिक अवदान किसी एक विधा तक सीमित नहीं। कविता, कहानी, उपन्यासों का विस्तृत कैनवास तो है ही लेखों, समीक्षाओं, बहसों और परिचर्चाओं तक उसकी अनुगूंज सुनाई पड़ती है। गुड़िया भीतर गुड़िया ने इस कड़ी में एक और अध्याय जोड़ दिया है जिसमें लेखिका की अनंत संभावनाएं उजागर होती हैं। इतना तय है कि अंग्रेजी की ऊर्जा अभी चुकी नहीं है और पाठक की उम्मीद भी.....।

6.7 जीवनी : महापंडित राहुल – गुणाकर मुले

प्रगतिशील चिंतनधारा एवं हिंदी नवजागरण के शिखर पुरुष राहुल सांकृत्यायन को 'महापंडित' की उपाधि दिए जाने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। हिंदी साहित्य जगत के लिए उनका योगदान अमूल्य, अद्भुत, अविस्मरणीय और अगाध है। ज्ञान पिपासु राहुल जी 'महापंडित' ही थे। बेहतर समाज के निर्माण और मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए वे आजीवन संघर्षरत रहे। 'राहुल सांकृत्यायन : सृजन और संघर्ष' में उर्मिलेश लिखते हैं– "वे घुमक्कड़ जरूर थे पर सैलानी नहीं थे। कम्युनिस्ट विचारधारा के वे पक्के समर्थक थे पर संकीर्णतावादी नहीं थे... और वे महज यही नहीं थे। एक महान उपन्यासकार, कहानीकार, प्रखर दार्शनिक, अन्वेषक इतिहासकार, हिंदी के प्रथम पुरातत्ववेत्ता, साहित्येतिहास लेखक और जनयोद्धा थे– राहुल सांकृत्यायन।" रोचक, कष्टसाध्य एवं जटिल जीवन यात्रा के इस यायावर ने 34 भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया एवं 150 ग्रंथों की रचना की।

राहुल सांकृत्यायन का जन्म 9 अप्रैल, 1893 को पूर्वी उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ जिले के पंदहा ग्राम में हुआ। 'पंदहा' राहुल जी का ननिहाल था। पंदहा से 10 मील दूर 'कनैला' नामक ग्राम इनका वास्तविक ग्राम था। पिता का नाम गोवर्धन पाण्डेय एवं माता का नाम कुलवन्ती था। राहुल जी सरयूपाशी ब्राह्मण थे। इनका बचपन का नाम केदारनाथ था। चार भाइयों एवं एक बहन के बीच राहुल जी ज्येष्ठ पुत्र थे। सन् 1898 में जब केदारनाथ (राहुल) की आयु 5 वर्ष थी इन्हें मदरसे में दाखिल कराया गया। सादगी और संतोष की भावना के साथ अच्छा खाना और घुमक्कड़ी की आदत राहुल में बचपन से ही उत्पन्न हो गयी थी। 1900 में जब उनके गांव के भीतर और आसपास कई गांवों में हैजा फैला तब हैजे में अपने मित्र 'बिरजू' को खोकर वे शोकग्रस्त हो गए। उनके नाना सन् 1902 में उन्हें विंध्याचल ले गए जहां उनका जनेऊ संस्कार कराया गया। यह भविष्य के घुमक्कड़ महापंडित की प्रथम पहाड़ यात्रा थी। राहुल जी ने लिखा है कि– "1903 में पाठ्यपुस्तक (मो. इस्माईल की उर्दू की चौथी पुस्तक) में मैंने 'नवा जिंदा बाजिंदा' की कहानी (खुदराई का नतीजा) पढ़ी। उसमें बाजिंदा के मुंह से निकले इस शेर ने मेरे मनोमस्तिष्क पर गहन प्रभाव डाला तथा भविष्य के जीवन पर बहुत गहरा असर डाला।" वह शेर है–

'सैर कर दुनिया की गाफिल जिंदगानी फिर कहां।
जिंदगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहां।।'

सन् 1904 में जब राहुल जी 11 वर्ष के थे, उनका विवाह कर दिया गया। बालक केदारनाथ को वह सब 'तमाशा' जैसा लगा। उन्होंने लिखा है– "उस वक्त ग्यारह वर्ष की अवस्था में मेरे लिए यह तमाशा था। जब मैं सारे जीवन पर विचारता हूं तो मालूम होता है कि समाज के प्रति विद्रोह का प्रथम अंकुर पैदा करने में उसने ही पहला काम किया। 1908 में जब मैं पंद्रह साल का था, तभी से मैं उसे शंका की नजर से देखने लगा था। सन् 1909 ई. के बाद से तो मैं गृह–त्याग का बाकायदा अभ्यास करने लगा, जिसमें भी इस तमाशे का थोड़ा–बहुत हाथ जरूर था।" यह विरक्ति राहुल जी के मन में सदैव बनी रही। उनकी यह प्रथम पत्नी श्रीमती संतोष निःसंतान रहीं तथा अपने पितृ गृह अहिरौला गांव जिला आजमगढ़ में जीवन व्यतीत करती रहीं। राहुल जी की मां की मृत्यु 1905 में हुई तब वे मात्र 28 वर्ष की थीं एवं 5 बच्चों की मां थी। नानी की मृत्यु भी प्लेग से हो गई। स्त्री जीवन की दुर्दशा और बाल विवाह के दुष्परिणामों ने राहुल जी को विद्रोही चिंतक बनाया।

राहुल सांकृत्यायन की तीक्ष्ण बुद्धि और शिक्षा प्राप्त करने की जिज्ञासा, ललक, निष्ठा और उत्साह ने उन्हें हर कक्षा में प्रथम श्रेणी प्रदान की। 1906 में उन्होंने निजामाबाद के मिडिल स्कूल में दाखिला लिया और 1909 में यहां शिक्षा पूरी की। इसी बीच वे 1907 में घर से भागकर बनारस चले गए और फिर कलकत्ता गए।

भ्रमण कार्य

राहुल सांकृत्यायन का घर से मोह–भंग होने लगा था। बाजिंदा का शेर और नाना द्वारा सुनाई गई शिकार की कथाएं अब रंग लाने लगी थी। घर में रखा आटा–चावल बेचकर दो रुपये इकट्ठे किये और 1907 में बनारस भाग गए। वहां कुछ दिनों में पैसे खत्म हो गए घबराहट हुई तो लौट आए किंतु फिर कलकत्ता चले गए। महान पर्यटक की यह दूसरी यात्रा थी। लौटकर आए और फिर 1909 में कलकत्ता चले गए वहां बनारस के सुंघनी साहू की बड़ी दुकान थी उसमें नौकरी करने लगे। कुछ समय में ही नौकरी से ऊब गए तथा 1910 में उत्तराखंड की यात्रा की। इसके पश्चात घुमक्कड़ी और सधुक्कड़ी ही उनकी प्रवृत्ति बनती गई। 1911–12 में छपरा के 'परसा मठ' के महंत रामकुमार दास से भेंट हुई। यहीं महंत लछुमन दास से दीक्षा लेकर वैरागी बने और महंत के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए। इस दौरान जब वे पंदहा और कनैला गए तो वहां लोगों की फटकारें सुनीं और वापस मठ आकर रहने लगे। उनका नाम 'रामोदार दास' पड़ा। 'रामोदार दास' बनकर भी राहुल जी के भीतर का यायावर शांत नहीं हो सका। वे मठ की यांत्रिक जिंदगी से ऊबने लगे तथा 1913–14 में दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल गए। आसनसोल, आद्रा, खडगपुर होते हुए पुरी गए, फिर मद्रास गए, तिरुमलै की भी यात्रा की। यहां उन्होंने तमिल सीखी। तिरूपति, कांची, कांचीपुरम और रामेश्वरम घूमकर पुनः परसा मठ में लौटे। कुछ दिन रहकर फिर अयोध्या

अपनी प्रगति जांचिए'

30. मैत्रेयी पुष्पा की माता का क्या नाम था?
31. आत्मकथा किस शैली में लिखी जाती है?
32. मैत्रेयी दुख का कारण किसे मानती हैं?
33. मैत्रेयी जी के अब तक कितने उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं?
34. किस उपन्यास में मैत्रेयी ने सारंग नैनी के माध्यम से भारतीय ग्रामीण समाज की विवाहित स्त्रियों के संघर्ष को उभारा है?

चले गए। आगरा में रहकर आर्य मुसाफिर विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने लगे। यहीं 1915 में उन्होंने संस्कृत और अरबी के धर्मग्रंथों और इतिहास का अध्ययन किया। संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए 1916 में वे आमौर गए। इसी दौरान उन्होंने वेदांत का अध्ययन किया, आर्य समाज से प्रभावित हुए तथा काली मंदिर में बकरे की बलि देने के विरोध में अद्‌भुत प्रखर व्याख्यान दिया। सनातनी पुरोहितों ने लाठियों से उनकी पिटाई की। वे एक 'युवा नास्तिक आर्यसमाजी संन्यासी' के रूप में प्रसिद्ध हो रहे थे। उन्होंने ढोंगी साधुओं के खिलाफ एक लंबा लेख लिखा जो मेरठ से छपने वाले 'भास्कर' समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ। 1917–1920 तक राहुल जी ने आर्य मिशनरी यात्राएं कीं, चंदा इकट्‌ठा किया। चित्रकूट आदि उत्तर प्रदेश के नगरों का भ्रमण किया। 1920 में बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर उन्होंने बौद्ध तीर्थों की यात्राएं की। 1921 से 1927 तक दक्षिण भारत की यात्रा और स्वाधीनता के संघर्ष में जुटे रहे। भूख हड़ताल, सत्याग्रह और जेल यात्रा की। 1923 में नेपाल तथा 1926 में पंजाब, कश्मीर सीमा प्रांत में घूमते रहे। 1927–28 में 19 महीने तक लंका में रहे। पुनः भारत आकर सांची, कौशांबी, कुशीनगर, छपरा होते हुए 1928–29 का काल व्यतीत किया। सवा साल तक तिब्बत, नेपाल में अज्ञातवास कर 1930 के अप्रैल में भारत लौटे। मद्रास गए फिर दूसरी बार लंका गए और लौटकर रामोदार दास से राहुल बने। श्रीलंका में बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद वे 'राहुल सांकृत्यायन' बने।

राहुल जी 1930 में भारत लौटकर पुनः सत्याग्रह में शामिल हुए। 1931 में उन्होंने तीसरी बार लंका की यात्रा की। महंत आनंद, कौसल्यायन के साथ 1932 में यूरोप की यात्रा की। फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी आदि देशों की यात्रा करते हुए 1933 में भारत पहुंचे। 1934 में पुनः लद्‌दाख यात्रा पर निकल पड़े तथा तिब्बत, जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत रूस तथा ईरान की यात्रा करते हुए 1935 में भारत लौट आए। 1936 में तीसरी बार तिब्बत गए। 1937–38 में दूसरी बार रूस गए और यहीं येलेना बोजरोस्काया से दूसरा विवाह किया। जिससे 1938 में ही एक पुत्र प्राप्त हुआ नाम रखा गया ईगोर। इसके पश्चात राहुल जी भारत लौट आए येलेना साथ नहीं आई। 1939 में किसान आंदोलन का नेतृत्व किया। सत्याग्रह, भूख हड़ताल आदि करते हुए जेल यात्रा की। 1945 में पुनः रूस की यात्रा की। 1958 में चीन गए। 1959–61 के दौरान वे श्रीलंका में दर्शन शास्त्र के महाचार्य नियुक्त रहे। इस दौरान 1950 में उन्होंने मसूरी में घर बसा लिया था। कमला जी से तीसरा विवाह किया। 1953 एवं 1955 में क्रमशः पुत्री जया और पुत्र जेता उत्पन्न हुए। उपरोक्त विवरण से पता चल जाता है कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन की घुमक्कड़ी और अनंत ज्ञान पिपासा उन्हें कहां–कहां भटकाती रही। वे जहां भी गए वहां की भाषा सीखी तथा वहां के इतिहास, संस्कृति, समाज और राजनीति पर गहन अध्ययन किया और उन अनुभवों और ज्ञान को लेखनीबद्ध करते रहे। अतः वे सामान्य यायावर नहीं थे बल्कि ज्ञान और ज्ञान पाने की, संसार को जानने की जिज्ञासा में भटकने वाले यायावर थे।

महाप्रयाण

सन् 1961 में दिसंबर के माह में राहुल जी पर 'स्मृतिलोप' का आघात हुआ। वे बीमार हुए। बार–बार भूल जाने की अवस्था में बेचैन होकर बिस्तर पर पड़ गए। क्रांतिकारी, यायावर, आंदोलनकारी लेखक की गति थम गई। 1947 में जब वे रूस से भारत के लिए प्रस्थान कर रहे थे तब उनके पुत्र 'ईगोर' ने कहा था– 'तुम अब कभी नहीं आओगे।' उसकी भविष्यवाणी सच निकली। 15 वर्ष बाद 1962 को रूग्ण, जर्जरित और स्मृति शून्य अवस्था में चिकित्सा के लिए रूस गए तो वे येलेना को पहचानने में असमर्थ थे। अंततः 14 अप्रैल 1963 को राहुल जी की सांसे थम गईं। एक महान लेखक और यायावर महापंडित का महाप्रयाण हुआ।

यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी

टिप्पणी

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महापंडित के व्यक्तिगत जीवन से बात आरंभ करें तो कमला सांकृत्यायन (पत्नी) से अधिक विश्वसनीय बात किसकी हो सकती है। वे लिखती हैं कि– "राहुल जी अच्छे पिता और अच्छे पति थे। महान लेखक होने पर भी घर–गृहस्थी के कार्यों में उनकी सहायता किया करते थे। वे पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह के विरोधी थे। समय–समय पर पत्नी और बच्चों को उपहार देना, घर में ढेर सारी सब्जियां लाकर रख देना, बच्चों के कपड़े बदल देना जैसे कार्यों के साथ ही वे मैकेनिक का काम भी थोड़ा जानते थे और घर में बिजली, रेडियो आदि स्वयं ठीक कर दिया करते थे।"

राहुल सांकृत्यायन ने धर्म, राजनीति, दर्शन, जगत और जीवन पर गहन अध्ययन किया। 34 भाषाएं सीखीं। पत्नी येलेना को संस्कृत पढ़ाते थे और उनसे रूसी भाषा सीखते थे। 1917 में रूसी क्रांति की खबरे वे बड़ी रुचि से पढ़ते थे। 1918 में साम्यवादी दर्शन का अध्ययन किया। 1922 में वे छपरा जिला कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। एक बैठक के दौरान गिरफ्तार किये गए तथा बक्सर जेल में रहे। छूटने के बाद एक आंदोलन के चलते पुनः गिरफ्तार हुए और 1923 में उन्हें हजारीबाग जेल भेजा गया। जेल प्रवास के दौरान उन्होंने 'बाईसवीं सदी' पुस्तक लिखी। इस विद्वान संन्यासी घुमक्कड़ का आंदोलन, जेल, यात्रा, अध्ययन और लेखन से अटूट रिश्ता बन चुका था। अंग्रेज सरकार के लिए वे सिरदर्द बन चुके थे। 1925–26 में वे कानपुर कांग्रेस के प्रतिनिधि एवं ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्य बने। उन्होंने गोहाटी कांग्रेस में भी भाग लिया। 1930–31 तक उन पर बौद्ध दर्शन का गहन प्रभाव पड़ा था और वे अनीश्वरवादी हो चुके थे। 1939 में अमबारी के किसानों का नेतृत्व किया। इस आंदोलन में उन पर प्राणघातक हमला हुआ और वे जेल भेजे गए। जेल में उन्होंने 'तुम्हारी क्षय' पुस्तक लिखी।

1939 में ही बिहार में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। राहुल जी संस्थापक सदस्यों में एक थे। 1940 में उन्हें प्रांतीय किसान सभा का सभापति चुना गया। वे रामगढ़ कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि और प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी चुने गए। इसी बीच उन्हें गिरफ्तार किया गया और हजारीबाग से देवली कैंप जेल भेजा गया। यहां उन्होंने कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के साथ 23 अक्टूबर, 1941 से इतिहास प्रसिद्ध भूख हड़ताल आरंभ की। इन जेल यात्राओं हड़तालों के बीच उनका रचनाकर्म प्रभावित नहीं हुआ। वे निरंतर और प्रतिदिन लिखते रहे। उर्मिलेश लिखते हैं– "समाज और मानव की पीड़ा से उनका करुणामय जुड़ाव ही आगे चलकर उनके क्रांतिकारी वामपंथी व्यक्तित्व के विकास का आधार बना। इसलिए वामपंथी राजनीति उनके लिए कभी भी नारे, जुमलों और सत्ता–समीकरण का पर्याय नहीं रही। राहुल जी ने उसे विश्व के सबसे वैज्ञानिक और मानवीय राजनीतिक दर्शन के रूप में ग्रहण किया।" स्वतंत्रता को मनुष्य जीवन के गरिमामय अधिकार के रूप में लेने वाले राहुल जी शोषण और अत्याचार से तीव्र घृणा करते हुए उसे जड़ से समाप्त

कर देना चाहते थे। राहुल जी शालीन एवं सहिष्णु थे। स्पष्टवादी, सहज एवं सरल व्यक्तित्व के धनी थे। पहाड़ और समुद्र उन्हें लुभाते थे। हिमालय उनकी आत्मा में बसी जीवंत स्मृति था। हिमालय की उदात्तता, गरिमा और श्रेष्ठता उसके उतुंग शिखरों का आत्म सम्मान से उठा होना उनके लिए प्रेरक प्रतीक रहा। उन्होंने परसा मठ से अपना जीवन समाज सुधारक संन्यासी के रूप में आरंभ किया था। बाद में आर्य समाज के प्रभाव में आए। कांग्रेस से प्रभावित रहे। किंतु शीघ्र ही कांग्रेस और आर्य समाज से उनका मोहभंग भी होने लगा था। बौद्ध दर्शन के प्रभाव को उन्होंने वैचारिकता और चिंतन का आधार बनाया।

राहुल जी भारतीय समाज की रूढ़ियों, परंपराओं से जूझते रहे। वे जाति, वर्ण, वर्ग पर आधारित भारतीय समाज में शोषण और अत्याचार से आहत होते हुए उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते रहे। उन्हें मार्क्सवाद में इसका हल दिखाई दिया। वे समाज के प्रति जितने प्रतिबद्ध थे उतने ही लेखन के प्रति भी। उनकी मौलिक प्रतिभा, बौद्धिक प्रखरता, तेजस्वी मानसिकता, निष्ठा और आस्था के चलते साहित्य, दर्शन और इतिहास के ज्ञान का फलक विस्तृत होता गया। जयनाथ नलिन ने लिखा– "जीवन में अनेक विपरीतताओं, विविधताओं, विरोधाभासों, समता–विषमताओं–असाधारणताओं, संबद्धताओं–असंबद्धताओं और इन सबके विलक्षण मिश्रण और सामंजस्य के कारण राहुल जी का व्यक्तित्व बौद्धिक वर्ग के लिए आश्चर्य–उल्लास, आकर्षण–विकर्षण, श्रद्धा–अरुचि और गरिमा का आलंबन बना रहा।" राहुल जी ने एक अध्यापक के रूप में सोवियत संघ के लेनिनग्राद में दो वर्षों तक कार्य किया। 1940 में भारत लौटे और हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनाए गए। 1948 में भाषा विवाद को लेकर कम्युनिस्ट पार्टी से गहरे मतभेद हुए। बंबई में साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में दिए गए भाषण पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने आपत्ति जताई और उन्हें सदस्यता से मुक्त कर दिया गया। राहुल जी ने अपना सहयोग देना बंद नहीं किया तथा 1955 में वे पुनः कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए। यह सदस्यता उनकी मृत्यु तक बनी रही। 1959 में राहुल जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। राहुल सांकृत्यायन एक महान बौद्धिक योद्धा थे। वे असत्य, अन्याय, अत्याचार, अंध–विश्वासों से जूझते और लिखते रहे। उनमें अपार जीवट था। संघर्ष की अदम्य क्षमता थी। डॉ. प्रभाकर माचवे लिखते हैं– "तिब्बत जैसे वर्जित प्रदेश की दुर्गम यात्राओं की बाधाओं और राष्ट्रीय आंदोलन के राजनैतिक संघर्ष में कारावास की कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने इतने ग्रंथ कैसे रचे? छः फुट लंबे स्वस्थ और सुंदर देह वाले राहुल ने तेरह–चौदह वर्ष की अवस्था से अंत तक लगातार संघर्ष किया। समाज और मानव जीवन की बेहतरी के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। अपने जीवन के किसी भी पल को वे व्यर्थ नहीं गुजरने देना चाहते थे, हर समय किसी–न–किसी योजना में लगे रहते।" बौद्ध दर्शन एवं मार्क्सवादी विचारधारा ने उनके चिंतन को धारदार बनाया। वे भारतीय समाज के सुधार के लिए मार्क्सवादी सिद्धांतों को लागू करना चाहते थे। ब्राह्मणवादी चिंतन का उन्होंने घोर विरोध किया। जातिवाद, सामंतवाद, संप्रदायवाद का विरोध किया और कष्ट भी पाया। लेकिन डटे रहे। वे मानते थे कि जन्म के आधार पर जाति का विभाजन समाज विरोधी है। समाज को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए पूर्वजों ने कर्म के आधार पर जो वर्ण विभाजन किया था, वह ठीक था। 'मानव समाज' नामक अपने ग्रंथ में उन्होंने लिखा है– "कार्य विभाजन की यह प्रणाली अपनी उपयोगिता खोकर शनैः शनैः झूठे भेदभाव के गर्त में जा पड़ी है।... जब तक

जाति–पांति की व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, भारत के विकास के लिए किये गए सभी प्रयत्न अपूर्ण रहेंगे।" राहुल जी ने मायावाद, रहस्यवाद और पुनर्जन्मवाद पर भी प्रहार किया। राहुल जी स्वतंत्रता सेनानी थे। क्रांतिकारी किसान नेता और कम्युनिस्ट थे। इतिहासकार, विचारक, दार्शनिक, निबंधकार, नाटककार, गीतकार, कहानीकार, उपन्यासकार, पुरातत्ववेत्ता और साथ में यायावर श्रेष्ठ मनुष्य थे। उनके जीवन और रचनाकर्म की विविधता और असीमता आश्चर्यचकित करती है। वे असाधारण प्रतिभा के धनी असाधारण मनुष्य थे। उन्होंने जीवन भर हर चुनौती स्वीकार की और उनके समृद्ध साहित्य को देखकर लगता है जैसे वे एक सीमित जीवन में अधिक से अधिक जानने और लिखने के उत्तरदायित्व को पूर्ण कर समाज को यह धरोहर सौंप देना चाहते थे। समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनके प्रति भेद–भाव और शोषण से आहत होकर उन्होंने भोजपुरी नाटक रचा जिसका यह गीत दृष्टव्य है–

एकै माई बपवा से एक ही उदरवा में
इनों के जनमबां भइल रे पुरूखबा।।
पूत के जनमबा में नाच आ सोहर होला
बेटी के जनम परे सोग रे पुरूखबा।।
धनबा धरातिया या बेटबा के हम होला
बिटिया के किछुवो ना हक रे पुरूखबा।।
मरदा के खइला कमइला के रसता बा
तिरिया के लागेला केवाड़ रे पुरूखबा।।

राहुल जी की तीव्र और सूक्ष्म अन्वेषणात्मक प्रतिभा अद्भुत है। वे मनुष्य के पक्षधर हैं उनकी सारी सोच, खोज और चिंतन मनुष्य के कल्याण के लिए है। वे महान स्वप्नदर्शी और प्रगतिशील मनीषा से संपन्न हैं। वे हिंदी भाषा को सहज, सुगम बनाकर उसके प्रचार–प्रसार पर बल देते रहे। राहुल जी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का पक्ष लेते हैं किंतु मातृभाषाओं पर हिंदी थोपे जाने का विरोध करते हैं। क्षेत्रीय स्तर की मातृभाषाओं के विकास पर बल देते हुए वे भावपूर्ण टिप्पणी करते हैं कि– "हिंदी को हम अंतरप्रांतीय भाषा मान सकते हैं पर वह हमारी मातृभाषा नहीं है और उसे कभी किसी भी मातृभाषा को मारकर 'पूतना' बनने का अधिकार नहीं है।" राष्ट्रभाषा से उनका तात्पर्य 'राष्ट्रीय संपर्क भाषा' या 'अंतर्देशीय संवाद' की भाषा से है। यहां मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के बीच निरर्थक विरोध खड़ा हुआ।

राहुल जी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को इसलिए देखना चाहते थे क्योंकि वह भारत के विशाल भू–भाग में बोली जाती थी। उन्होंने उर्दू का कभी विरोध नहीं किया। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने 'बोधिसत्व राहुल सांकृत्यायन' नामक लेख में लिखा है कि– "राहुल जी त्रिपिटकाचार्य थे, महापंडित थे, महाग्रंथ लेखक थे। राहुल जी ने जितने विविध विषयों पर जितनी शीघ्रता के साथ लिखा है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। भारतीय राजनीति में गांधीजी और हिंदी में राहुल बीसवीं शताब्दी में विद्यमान थे, इस बात पर अगली शताब्दियों में आश्चर्य प्रकट किया जाएगा।" राहुल जी हिंदी के आदि कवि सिद्धों–नाथों से भी प्रभावित थे। 'वैराग्य' से उनका अभिप्राय यह नहीं था कि घुमक्कड़ का अपनी जन्मभूमि से लगाव नहीं होता। बल्कि दूर देशों की यात्रा करने पर अपनी मातृभूमि के प्रति उसका प्रेम निरंतर बढ़ता है। वे मानते थे कि घुमक्कड़ को स्वावलंबी भी होना चाहिए। उसे

अपने बुद्धि, बाहु और साहस पर विश्वास होना चाहिए। वे सत्य, न्याय और समानता के लिए निरंतर जीवन भर संघर्ष करते रहे। उर्मिलेश कहते हैं– "उनकी संघर्षकामी चेतना ही उनके व्यक्तित्व की विराटता और लेखन की व्यापकता के मूल में है। उनके लेखन और जीवन में दिखाई पड़ने वाले अंतर्विरोध उनकी कमजोरी नहीं अपितु शक्ति हैं। लगभग सत्तर वर्ष के जीवन में विभिन्न विचारों और धाराओं से होकर गुजरने वाले राहुल जी ने 'मज्झिम निकाय' के इस प्रसिद्ध कथन को हमेशा 'आदर्श' के रूप में ग्रहण किया कि– "मैं धर्म का उपदेश देता हूं नाव की भांति पार जाने के लिए, पकड़ कर बैठ जाने के लिए नहीं।"

राहुल सांकृत्यायन के लिखे ग्रंथों को अलग–अलग कोटि में बांटकर अध्ययन करने की दृष्टि से सूची आगे संलग्न है। उनका जीवन और रचनाकर्म उनकी अदम्य जिजीविषा कई सदियों तक कई पीढ़ी के जिज्ञासुओं, शोधार्थियों का पथ प्रशस्त करती रहेगी। वे अज्ञान के अंधकार को, भ्रम के तम को हटाने वाली मशाल की तरह भारतीय मानस में प्रज्वलित रहेंगे।

राहुल सांकृत्यायन का साहित्यिक योगदान

राहुल जी देश में रहते हुए और विदेश में, गांव, शहर, जंगल, पर्वत, अपनों या परायों के बीच हों उनकी अध्ययन और लेखन की प्रवृत्ति सदैव जागृत और कर्मरत रही। आजीवन जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह सीखते रहे, शोधार्थी की तरह शोध करते रहे एवं गंभीर चिंतक और साधक बनकर मां सरस्वती की आराधना करते रहे। उन्होंने लगभग 150 ग्रंथों की रचना की। वे लगभग 34 भाषाओं के ज्ञाता एवं अधीत (अध्येता) माने जाते थे। बाल्यावस्था में ही उर्दू पढ़ी। वाराणसी गए तो संस्कृत एवं दर्शन साहित्य का अध्ययन किया। कलकत्ता जाकर अंग्रेजी साहित्य पढ़ा। आर्य समाजी बने तो वेदों का अध्ययन किया, बौद्ध बने तो पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। विदेश गए तो तिब्बती, चीनी, जापानी, सिंहली आदि भाषाओं के साहित्य पर गहन अध्ययन और चिंतन किया। यूरोप में पूंजीवाद, समाजवाद का अध्ययन किया तथा रूस में मार्क्स, लेनिन तथा साम्यवाद के सिद्धांतों का अध्ययन किया। उनका साहित्य उनके विस्तृत और गहन अध्ययन, उनके पांडित्य एवं संवेदनशील रचनाधर्मिता का परिचायक है। राहुल जी के साहित्य पर विषय और विधा के अनुरूप इस तरह देखा जा सकता है–

उपन्यास– 'बाइसवीं सदी', 'जीने के लिए', 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न', 'राजस्थानी रनिवास', 'विस्मृत यात्री', 'दिवोदास'।

अंग्रेजी उपन्यासों का अनुवाद– 'शैतान की आंख', 'विस्मृति के गर्भ में', 'जादू का मुल्क', 'सोने की ढाल', 'जो दास थे', 'अनाथ', 'सूदखोर की मौत', 'दाखुंदा', 'अदीना', 'शादी'– ये छह ताजिक भाषा के उपन्यासों का अनुवाद है।

कहानी– 'सतमी के बच्चे', 'वोल्गा से गंगा', 'बहुरंग मधुपुरी', 'कनैला की कथा', 'सप्तसिंधु'।

नाटक– तीन नाटक– 'मेहरारून की दुरदसा', 'नइकी दुनिया', 'जोंक'।

पांच नाटक– 'ठुनमुन नेता', देसस्वछक', 'ई हमार लड़ाई', 'जपनिया राछछ', 'जरमनवा के हार निहिचय'।

साहित्य, इतिहास, भाषा संबंधी चिंतन ग्रंथ

पुरातत्व निबंधावली, हिंदी काव्यधारा, साहित्य निबंधावली, दक्खिनी हिंदी काव्यधारा, संस्कृत काव्यधारा, पालि साहित्य का इतिहास, राहुल निबंधावली, आदि हिंदी की कहानियां और गीत, सरह दोहा कोश (हिंदी साहित्य का वृहत कोश, शासन शब्द कोश, संक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश, तिब्बती– हिंदी कोश)

आत्मकथा– मेरी जीवन यात्रा (पांच खंडों में)

जीवनी और संस्मरण– 'नये भारत के नए नेता', 'सरदार पृथ्वीसिंह', 'अतीत से वर्तमान', 'धर्मरत्न' 'पमि', 'स्टालिन', 'कार्ल मार्क्स', 'लेनिन', 'बचपन की स्मृतियां', 'माओत्से तुंग', 'महामानव बुद्ध', 'जिनका मैं कृतज्ञ', 'वीर चंद्र सिंह गढ़वाली', 'घुमक्कड़ स्वामी', 'मेरे असहयोग के साथी', 'कप्तान हाल', 'सिंहल के वीर', 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्द्धन'।

यात्रा वृत्तांत– तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी यूरोप यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, जापान, सोवियत भूमि, मेरी लद्दाख यात्रा, घुमक्कड़ शास्त्र, किन्नर देश, सोवियत मध्य एशिया, लंका, दार्जिलिंग परिचय, रूस में पच्चीस मास, यात्रा के पन्ने, कुमाऊं, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, एशिया के दुर्गम भूखंडों में, चीन में क्या देखा?, जौनसार देहरादून, जेतवन श्रावस्ती, नेपाले (नेपाली में), ईरान, आजमगढ़ की पुराकथा।

राजनैतिक चिंतन– साम्यवाद ही क्यों?, क्या करें?, भागो नहीं दुनिया को बदलो, आज की समस्याएं, आज की राजनीति, कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं?, तुम्हारी क्षय, रामराज्य और मार्क्सवाद, चीन के कम्यून, दिमागी गुलामी, सोवियत न्याय (अनुवादित)।

दर्शन– बौद्ध दर्शन, वैज्ञानिक–भौतिकवाद, दर्शन–दिग्दर्शन।

विज्ञान– विश्व की रूपरेखा, मानव समाज।

संस्कृति, धर्म तथा अन्य– बौद्ध संस्कृति, तिब्बत में बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म की रूपरेखा, नवदीक्षित बौद्ध।

संपादन एवं अनुवाद– बुद्ध चर्या, मज्झिम निकाय, विनय पिटक, थेरी गाथा, सुत्तपिटक का दीघ निकाय, इतिवुक्क, उदानं, खुद्दक पाठां, चरियपिटकं, प्रमाणवार्तिकं, प्रमाणवार्तिक भाष्य, प्रमाणवार्तिक वृत्ति, वाद–न्याय, प्रमाणवार्तिक स्ववृत्ति टीका, प्रमाणवृत्ति स्ववृत्ति, संबंध परीक्षा, धम्मपदं, असंबद्ध सुत्त, दीर्घागमस्य सूत्रद्वयम्।

गतिविधि

साहित्य की नवीन विधाओं की लेखन शैली की विशेषताओं का अध्ययन कर अपने मित्रों के साथ एक परिचर्चा का आयोजन करें।

क्या आप जानते हैं?

घुमक्कड़ धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और इससे बढ़कर कोई नगद धर्म नहीं है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

35. राहुल सांकृत्यायन का कितनी भाषाओं पर अधिकार था?
36. राहुल सांकृत्यायन ने कितने ग्रंथों की रचना की?
37. राहुल सांकृत्यायन का जन्म कब हुआ?
38. राहुल जी ने 1932 में महंत आनंद और कौसल्यायन के साथ कहां की यात्रा की?
39. राहुल जी ने साम्यवादी दर्शन का अध्ययन कब किया?
40. बिहार में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना कब हुई?

6.8 सारांश

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध हिंदी साहित्य में नयी गद्य विधाओं के उद्‌भव का साक्षी रहा है। इन्हीं नवजात गद्य विधाओं में से यात्रा वृत्तांत एक है।

अज्ञेय के यात्रा वृत्तों की विशिष्टता यह है कि वे संस्मरणात्मक हैं। भारतेंदु के यात्रा वृत्त दृष्टा द्वारा रचित है जबकि अज्ञेय के यात्रा–संस्करण जीवनानुभव पर आधारित हैं। स्पष्ट है कि आरंभिक यात्रा वृत्तों का केंद्र बाह्य परिवेश है, जिसका वर्णन वस्तुपरक दृष्टि से किया जाता है। इसके विपरीत समकालीन यात्रा संस्मरण का केंद्र स्वयं लेखक है, जो व्यक्ति–सापेक्ष दृष्टि से अपने निजी विचार एवं यात्रानुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। यात्रा लेखन की प्रारंभिक अवस्था में बाह्य यथार्थवाद अथवा प्रत्यक्षवाद दृष्टिगोचर होता है, जबकि समकालीन यात्रा संस्मरणों में लेखक बाहरी संसार द्वारा ग्रहण किये गए अनुभवों को अपने निजी सांचे में ढाल रचनाओं का आधार बनाता है, जिसका उद्देश्य घटनाओं का विवरण न होकर लेखक के आंतरिक अनुभवों का वर्णन है।

आधुनिक हिंदी साहित्य की नयी उपलब्धियों में अकाल्पनिक गद्य–वृत्तों का विशिष्ट स्थान है। अकाल्पनिक गद्य–वृत्त अर्थात यात्रा–संस्मरण, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र आदि। इन गद्य–वृत्तों का उपजीव्य ज्यादातर वास्तविक घटनाएं होती हैं और इसी वजह से कल्पना का योग इनमें काफी कम होता है। अज्ञेय के दो यात्रा संस्मरण –'अरे यायावर, रहेगा याद!' (1953) और 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) जिनमें से पहले की पृष्ठभूमि स्वदेश है और दूसरे की विदेश। 'अरे यायावर, रहेगा याद!' में सर्जनात्मक चमक है, वर्णनात्मकता के बावजूद इसे पढ़ने पर लेखक का समृद्ध और संवेदनशील व्यक्तित्व पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

सन् 1966 का भयानक सूखा जब अकाल के काले साये ने पूरे दक्षिण बिहार को लील लिया था और शुष्क बंध्या धरती पर चारों ओर कंकाल ही कंकाल नजर आते थे... और सन् 1975 की जल प्रलय जब पटना की सड़कों पर वेगवती बन्या उमड़ पड़ी थी और लाखों लोग बेघर हो जीने के लिए संघर्ष कर रहे थे। इन दोनों प्राकृतिक आपदाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज है ऋणजल–धनजल। अपने समक्ष और अपने चहुं ओर बेबस मनुष्यों की भीड़ और यंत्रणा का त्रासद हाहाकार देखकर रेणु जैसे कथाकार का व्यथित हो उठना स्वाभाविक ही था। रेणु प्राकृतिक प्रकोप की इन दो अभूतपूर्व घटनाओं के प्रत्यक्ष द्रष्टा तो थे ही, बाढ़ के दौरान कई दिनों तक अपने मकान के दुत्तल्ले पर फंसे रहने के कारण भुक्तभोगी भी। मानव यातना के चरम साक्षात्कार के क्षणों को शब्दचित्रों के आकार में ढालने के क्रम में उन्होंने संस्मरणात्मक रिपोर्ताज लिखे।

कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रभावित होती थी। रेणु की कहानियों और उपन्यासों में एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है। उन्होंने आंचलिक जीवन की हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता और हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा शैली में एक जादुई असर है जो पाठकों को अपने साथ बांध कर रखता है। रेणु एक अद्‌भुत किस्सागो थे और उनकी रचनाएं पढ़ते हुए लगता है मानो कोई कहानी सुना रहा हो।

रेखाचित्र अंग्रेजी के स्केच (SKETCH) का पर्यायवाची है परंतु स्केच शब्द मूलतः चित्रकला का शब्द है। स्केच उन चित्रों को कहते हैं जिनमें केवल रेखाओं के माध्यम से एक भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। उनमें न रंगों की छटा होती है, न वातावरण की पृष्ठभूमि पर बल, साधारण–सी संक्षिप्त रेखाओं द्वारा इच्छित व्यक्ति का ऐसा चित्र उपस्थित किया जाता है जिसे देखकर संपूर्ण व्यक्तित्व उभर सके। अतः सरलता, संक्षिप्तता एवं वस्तुनिष्ठता रेखाचित्र की विशेषताएं हैं।

'यादों की तीर्थयात्रा' नाम से ही स्पष्ट है कि जिन लोगों की यादों को संस्मरणों में सहेजने की कोशिश की गई है वे लेखक की श्रद्धा के पात्र रहे हैं फिर चाहे वे जगदीश चंद्र माथुर हों, भवानी प्रसाद मिश्र हों या जैनेन्द्र। इन सभी को याद करते हुए विष्णु प्रभाकर की दृष्टि शुभ और सुंदर पर अधिक रही है, चीर–फाड़ पर कम। भारतीय मानसिकता यूं भी प्रशंसा और निंदा दोनों में ही अतिवादी दृष्टि का पोषण करती है, संतुलन बहुत बिरले लेखकों का गुण है। 'कमजोर से कटकर कोई महान नहीं होता', यह बात हमें कम ही समझ आती है। विष्णु प्रभाकर ईमानदारी से यह बात स्वीकार करते हैं कि खुद से जुड़ा लेखक वास्तविकता से कुछ दूर ही होता है, फिर भी 'यादों की तीर्थयात्रा' में संकलित 'जैनेन्द्र कुमार' शीर्षक संस्मरण में उन्होंने पाठक से जैनेन्द्र जी का परिचय कराने की सार्थक एवं सफल कोशिश की है।

आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से संबंधित होती है। इसके द्वारा विगत का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व रेखांकित किया जाता है। लेखक से उम्मीद होती है कि वह अपने निजी जीवन के तथ्यों का सच्चाई के साथ चित्रण करे। सामान्यतः "आत्मकथा उपन्यास की भांति व्यक्तिगत मानवीय प्रकृति से संबंधित है पर यह अपनी प्रकृति में उपन्यास की भांति नई खोजों के लिए स्वतंत्र नहीं है। इतिहास की भांति यह तथ्यात्मक रूप से सत्य होने की कोशिश करती है, पर यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इसमें तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह अपने सत्य का कागजी या वस्तुगत प्रमाण नहीं प्रस्तुत करती है। आत्मकथा का सत्य तथ्य और आत्मकथाकार द्वारा तथ्य में जोड़े गए का अर्थ दोनों से है।"

महापंडित के व्यक्तिगत जीवन से बात आरंभ करें तो कमला सांकृत्यायन (पत्नी) से अधिक विश्वसनीय बात किसकी हो सकती है। वे लिखती हैं कि– "राहुल जी अच्छे पिता और अच्छे पति थे। महान लेखक होने पर भी घर–गृहस्थी के कार्यों में उनकी सहायता किया करते थे। वे पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह के विरोधी थे। समय–समय पर पत्नी और बच्चों को उपहार देना, घर में ढेर सारी सब्जियां लाकर रख देना, बच्चों के कपड़े बदल देना जैसे कार्यों के साथ ही वे मैकेनिक का काम भी थोड़ा जानते थे और घर में बिजली, रेडियो आदि स्वयं ठीक कर दिया करते थे।"

राहुल जी देश में रहते हुए और विदेश में, गांव, शहर, जंगल, पर्वत, अपनों या परायों के बीच हों उनकी अध्ययन और लेखन की प्रवृत्ति सदैव जागृत और कर्मरत रही। आजीवन जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह सीखते रहे, शोधार्थी की तरह शोध करते रहे एवं गंभीर चिंतक और साधक बनकर मां सरस्वती की आराधना करते रहे। उन्होंने लगभग 150 ग्रंथों की रचना की। वे लगभग 34 भाषाओं के ज्ञाता एवं अधीत (अध्येता) माने जाते थे। बाल्यावस्था में ही उर्दू पढ़ी।

6.9 मुख्य शब्दावली

- **तमाशबीन** : तमाशा देखने वाला, ऐयास।
- **यायावर** : हमेशा घूमते रहने वाला।
- **टटकापन** : ताजापन, कोरापन।
- **इतिवृत्तात्मकता** : घटना प्रधान, वर्णनात्मक।
- **उद्रेक** : प्रचुरता, आरंभ।
- **प्लावित** : डूबना।
- **जहालत** : अज्ञान, मूर्खता।
- **उजास** : उजाला, रोशनी।
- **निभृत** : छिपा हुआ, गुप्त।
- **विस्मयकारी** : आश्चर्य से भरा।
- **तूलिका** : चित्रकारों की रंग भरने की कूची।
- **सहअस्तित्व** : सहजीवन।
- **अधीत** : जिसने अध्ययन पूरा कर लिया हो।
- **चस्पां** : चिपका हुआ, उपयुक्त।
- **तारिका** : अभिनेत्री, ताड़ी।

6.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 7 मार्च, 1911
2. 1925 में पंजाब में
3. सन् 1945 में
4. सन् 1951 में
5. सन् 1969 में
6. सन् 1953 में
7. एक बूंद सहसा उछली
8. पं. जवाहर लाल नेहरू
9. कमलेश्वर
10. अज्ञेय
11. 4 मई, 1921 को
12. सन् 1954 में
13. रामरतनराय
14. फ्रांसीसी भाषा का
15. दो
16. 1966 में
17. 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जिले में
18. सन् 1936 में
19. सन् 1944 में
20. सन् 1976 में
21. 11 सितंबर, 1987 ई. को
22. सन् 1924–1928
23. मारवाड़ी बाल विधवा (भाभी) का
24. 21 जून, 1912 ई. में
25. 17 एकांकी संग्रह
26. स्त्री जीवन एवं उससे जुड़े प्रश्न
27. शरतचंद्र के जीवन पर
28. 20वीं सदी के तीसरे दशक में
29. 1930 के आसपास
30. कस्तूरी
31. 'मैं' की शैली में
32. ज्ञान को
33. 10 उपन्यास
34. 'चाक' उपन्यास में
35. 34 भाषाओं पर
36. 150 ग्रंथों की
37. 9 अप्रैल, 1893 को
38. यूरोप की
39. 1918 ई. में
40. 1939 ई. में

6.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'अज्ञेय' का यात्रा साहित्य किन दृष्टियों से महत्वपूर्ण है?
2. तीर्थाटन का क्या उद्देश्य है?

टिप्पणी

3. यात्रा–संस्मरण में गति के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. 'रिपोर्ट' किसे कहते हैं?
5. फणीश्वरनाथ रेणु की लेखन शैली को स्पष्ट कीजिए।
6. महादेवी की गद्य रचनाएं बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'परशुराम से तूरखम' यात्रावृत्तांत की मूल संवेदना को स्पष्ट करते हुए अज्ञेय की लेखन शैली की विशेषताएं बताइए।
2. " 'ऋणजल–धनजल' प्राकृतिक आपदाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज है"– कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
3. फणीश्वरनाथ रेणु की लेखन शैली को स्पष्ट करते हुए उनके साहित्यिक अवदान का वर्णन कीजिए।
4. रेखाचित्र के तत्वों के आधार पर 'भाभी' का मूल्यांकन कीजिए।
5. विष्णु प्रभाकर के संस्मरण 'यादों की तीर्थयात्रा' के आधार पर जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. आत्मकथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए 'गुड़िया भीतर गुड़िया' का आत्मकथा के तत्वों के आधार पर मूल्यांकन कीजिए।
7. महापंडित राहुल सांकृत्यायन की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनके साहित्यिक योगदान का वर्णन कीजिए।

6.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
3. महीप सिंह, विष्णु प्रभाकर, *व्यक्ति और साहित्य,* अभिव्यंजना प्रकाशन।
4. अज्ञेय, *आधुनिक हिंदी साहित्य,* राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।
5. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, *समकालीन हिंदी कविता,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. डॉ. शिवकुमार शर्मा, *हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां।*



एम. ए. हिंदी
(उत्तरार्द्ध)
MAHIND-503

INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION
Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

प्रयोजन मूलक हिंदी

प्रयोजन मूलक हिंदी

एम.ए. (हिंदी)

(उत्तरार्द्ध)

MAHIND 503

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA - 791 112

BOARD OF STUDIES

Dr. Oken Lego, Head (i/c) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Devraj Dean, School of Translation and Interpretation Mahatma Gandhi Antarashtriya Hindi Vishwavidhyalaya Vardha Maharastra - 442 005	**External Member**
Dr. Harish Kr. Sharma Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. A. Tripathi Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Ashan Riddi Director, I.D.E Rajiv Gandhi University	**Member Secretary**

Author: Dr Seema Sharma, Lecturer, Department of Hindi, Ginni Modi Girls (PG) College, Modinagar

Copyright © Reserved, 2014

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE—Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi 110 014
Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गांधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने, जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, 4 फरवरी, 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी। यहीं विश्वविद्यालय का वर्तमान कैंपस विद्यमान है।

आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित हैं। 28 मार्च, 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12-V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल, 2007 से, विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि. मी. और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए हैं कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर, एम. फिल व पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड. का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध हैं। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फंडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही, विभिन्न फंडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है। देश–विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं।

2000–2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढ़ीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामतः छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया। बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है। परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती हैं और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए हैं बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं, उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं।

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

आईडीई : एक परिचय

हमारे देश में उच्च शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों, सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विभिन्न विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते हैं कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण सीखना और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने का वैकल्पिक माध्यम है। यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है, जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार व कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नहीं निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर–पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में। सन् 2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर 'दूरस्थ शिक्षा संस्थान' (आईडीई) रखा गया।

दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013–14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों (शिक्षा, अंग्रेजी, हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान) को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन (पहली मंजिल) का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती हैं।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

1. **नियमित माध्यम के समकक्ष**–पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।
2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री (एसआईएसएम)**– छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी), नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रवेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।
3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)**– शैक्षिक कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7–15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी.ए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।
4. **फ़ील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट**– व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।
5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम**–परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।
6. **विषय परामर्श संयोजक**– पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं। ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

प्रयोजन मूलक हिंदी

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 343 से 351 तक; राष्ट्रपति के आदेश सन् 1952, 1955 एवं 1960; राजभाषा अधिनियम 1963; राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967); राजभाषा अधिनियम, 1976; राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियां एवं भूमिका	**इकाई 1** : भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान **(पृष्ठ : 3–28)**
इकाई 2 प्रारूपण; पत्र लेखन; संक्षेपण; पल्लवन; टिप्पण अथवा टिप्पणी; परिपत्र; ज्ञापन	**इकाई 2** : कार्यालयी हिंदी के प्रमुख प्रकार्य **(पृष्ठ : 29–79)**
इकाई 3 अनुवाद : अर्थ, परिभाषा एवं अभिप्राय; अनुवाद की पद्धतियां–मानवीकृत अनुवाद व मशीनी अनुवाद; अनुवाद के प्रकार; अनुवाद की कसौटी; अनुवादक की कसौटी; अनुवाद की चुनौतियां; अनुवाद की भूमिका	**इकाई 3** : अनुवाद : अर्थ एवं अभिप्राय **(पृष्ठ : 81–131)**
इकाई 4 समाचार लेखन; रेडियो लेखन; विज्ञापन लेखन; फीचर लेखन; पटकथा लेखन; कम्प्यूटर; मीडिया	**इकाई 4** : कम्प्यूटर एवं मीडिया लेखन **(पृष्ठ : 133–200)**
इकाई 5 दुभाषिया : अर्थ एवं परिभाषा; दुभाषिया की भूमिका; दुभाषिया का कार्य क्षेत्र; दुभाषिया के गुण; आशु अनुवाद : अभिप्राय एवं परिभाषा; अनुवाद एवं आशु अनुवाद में अंतर; आशु अनुवाद का क्षेत्र; आशु अनुवाद की प्रक्रिया; आशु अनुवाद की पूर्व तैयारी; आशु अनुवाद की पद्धतियां	**इकाई 5** : दुभाषिया विज्ञान **(पृष्ठ : 201–213)**

CONTENTS

परिचय 1

इकाई 1 भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान 3—28

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 343 से 351 तक
1.2.1 संघ की राजभाषा
1.2.2 राजभाषा के लिए आयोग और संसदीय समिति
1.2.3 एक राज्य, अन्य राज्य अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा
1.2.4 एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार हेतु राजभाषा
1.2.5 किसी राज्य के जन समुदाय के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध
1.2.6 न्यायालयों की भाषा
1.2.7 भाषा संबंधी कुछ विधियों को अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया
1.2.8 विशेष निर्देश : व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा
1.2.9 हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश
1.2.10 अष्टम अनुसूची (अनुच्छेद 344(1) और 351)
1.2.11 संवैधानिक प्रावधान की विशेषताएं
1.3 राष्ट्रपति के आदेश सन् 1952, 1955 एवं 1960
1.4 राजभाषा अधिनियम 1963
1.5 राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967)
1.6 राजभाषा अधिनियम, 1976
1.7 राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियां एवं भूमिका
1.8 सारांश
1.9 मुख्य शब्दावली
1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 कार्यालयी हिंदी के प्रमुख प्रकार्य 29—79

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 प्रारूपण
2.2.1 प्रारूपण का अर्थ और परिभाषा
2.2.2 प्रारूपण के प्रकार
2.2.3 प्रारूपण के नियम
2.2.4 सरकारी पत्रों का प्रारूपण
2.3 पत्र लेखन
2.3.1 पत्र लेखन के गुण एवं विशेषताएं
2.3.2 पत्र लेखन में विशेष उल्लेखनीय बातें
2.3.3 पत्र लेखन के प्रकार
2.4 संक्षेपण
2.4.1 अर्थ और परिभाषा

2.4.2 संक्षेपण के प्रकार
2.4.3 संक्षेपण के नियम/संक्षेपण की प्रविधि
2.4.4 श्रेष्ठ संक्षेपण की विशेषताएं
2.4.5 संक्षेपण के उदाहरण
2.5 पल्लवन
2.5.1 अर्थ और परिभाषा
2.5.2 पल्लवन के प्रकार
2.5.3 पल्लवन के नियम
2.5.4 पल्लवन कं कुछ उदाहरण
2.6 टिप्पण अथवा टिप्पणी
2.6.1 अर्थ और परिभाषा
2.6.2 टिप्पण के प्रकार
2.6.3 टिप्पण के नियम
2.6.4 टिप्पण के रूप और उदाहरण
2.7 परिपत्र
2.8 ज्ञापन
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 अनुवाद : अर्थ एवं अभिप्राय 81–131

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 अनुवाद : अर्थ, परिभाषा एवं अभिप्राय
3.3 अनुवाद की पद्धतियां–मानवीकृत अनुवाद व मशीनी अनुवाद
3.4 अनुवाद के प्रकार
3.4.1 अंतःभाषिक अनुवाद
3.4.2 अंतरभाषिक अनुवाद
3.4.3 अंतर अनुशासनिक अनुवाद
3.4.4 साहित्यिक अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार
3.4.5 जनसंचार संबंधी सामग्री का अनुवाद
3.4.6 कार्यालयी सामग्री का अनुवाद
3.4.7 अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद
3.5 अनुवाद की कसौटी
3.6 अनुवादक की कसौटी
3.7 अनुवाद की चुनौतियां
3.8 अनुवाद की भूमिका
3.9 सारांश
3.10 मुख्य शब्दावली
3.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 कम्प्यूटर एवं मीडिया लेखन 133–200

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 समाचार लेखन
4.2.1 समाचार लेखन के गुण व विशेषताएं
4.2.2 समाचार के प्रकार
4.2.3 समाचार लेखन की भाषा–शैली
4.2.4 समाचार के स्रोत
4.3 रेडियो लेखन
4.3.1 बोली जाने वाली भाषा का लेखन
4.3.2 कार्यक्रम लेखन
4.3.3 रेडियो विज्ञापन लेखन
4.3.4 रेडियो समाचार लेखन
4.4 विज्ञापन लेखन
4.4.1 विज्ञापन प्रक्रिया
4.4.2 विज्ञापन लेखक की विशेषताएं
4.4.3 विज्ञापन की भाषा
4.4.4 विज्ञापन का वर्गीकरण
4.4.5 विज्ञापन का महत्व
4.5 फीचर लेखन
4.5.1 फीचर लेखन के सहायक तत्व
4.5.2 फीचर लेखन के प्रमुख चरण
4.6 पटकथा लेखन
4.6.1 दृश्यों के लिए लेखन
4.6.2 वीडियो के लिए लेखन
4.6.3 शब्दों के लिए संदर्भ दृश्य
4.6.4 शोध, दृश्य और उत्पादन पटकथा
4.6.5 पटकथा लेखन : फिल्म
4.7 कम्प्यूटर
4.7.1 कम्प्यूटर के विविध उपयोग
4.7.2 कम्प्यूटर की विशेषताएं
4.7.3 कम्प्यूटर की सीमाएं
4.7.4 कम्प्यूटर शब्दावली
4.8 मीडिया
4.8.1 जनसंचार माध्यमों का वर्गीकरण
4.8.2 संचार के मुख्य कार्य
4.8.3 संचार क्रिया के प्रमुख तत्त्व
4.8.4 जन संचार माध्यमों की उपयोगिता
4.8.5 जनसंचार माध्यमों का स्वरूप
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 दुभाषिया विज्ञान

201–213

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 दुभाषिया : अर्थ एवं परिभाषा
5.3 दुभाषिया की भूमिका
5.4 दुभाषिया का कार्य क्षेत्र
5.5 दुभाषिया के गुण
5.6 आशु अनुवाद : अभिप्राय एवं परिभाषा
5.7 अनुवाद एवं आशु अनुवाद में अंतर
5.8 आशु अनुवाद का क्षेत्र
5.9 आशु अनुवाद की प्रक्रिया
5.10 आशु अनुवाद की पूर्व तैयारी
5.10.1 विषयगत ज्ञान
5.10.2 तकनीकी ज्ञान
5.11 आशु अनुवाद की पद्धतियां
5.11.1 व्यक्ति आशु अनुवाद
5.11.2 मशीनी आशु अनुवाद
5.12 सारांश
5.13 मुख्य शब्दावली
5.14 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'प्रयोजनमूलक हिंदी' विश्वविद्यालय द्वारा एम.ए. हिंदी (उत्तरार्द्ध) के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

'प्रयोजनमूलक हिंदी' अंग्रेजी के 'फंक्शनल हिंदी' शब्द का पर्याय है। शब्दार्थ की दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिंदी का अर्थ है– ऐसी विशेष हिंदी, जिसका उपयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए किया जाए। इसे 'कामकाजी हिंदी' अथवा 'व्यावहारिक हिंदी' भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में, जीवन-जगत की विभिन्न आवश्यकताओं अथवा लोक-व्यवहार, उच्च शिक्षा तथा जीविकोपार्जन आदि के लिए विशेष अभ्यास और ज्ञान के द्वारा विशेष शब्दावली में समाज-सापेक्ष व्यावहारिक प्रयोजनों की संपूर्ति के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा प्रयुक्तियों को प्रयोजनमूलक हिंदी कहते हैं। इस प्रकार ''प्रयोजनमूलक हिंदी वह हिंदी है, जिसका प्रयोग हम व्यवसाय के तौर पर दैनिक काम-काज के रूप में करते हैं और जिसमें व्यावहारिक उपयोगिता के साथ-साथ संपर्क तथा संप्रेषण भी आवश्यक रूप से हो।''

प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच-बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। 'गतिविधि' एवं 'क्या आप जानते हैं' के माध्यम से प्रयोजनमूलक हिंदी में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक को *पांच* इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई भारतीय संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 के अंतर्गत दिए गए राजभाषा संबंधी प्रावधानों, राष्ट्रपति द्वारा सन् 1952, 1955 और 1960 में जारी किए गए आदेशों, राजभाषा अधिनियम 1963 यथा संशोधित 1967 और राजभाषा नियम 1976 एवं राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियों एवं भूमिका पर प्रकाश डालती है।

दूसरी इकाई में कार्यालयी हिंदी के प्रमुख कार्यों यथा प्रारूपण (मसौदा), पत्र लेखन, संक्षेपण, पल्लवन, टिप्पणी, परिपत्र एवं ज्ञापन के विषय में बताया गया है।

तीसरी इकाई अनुवाद, अनुवाद की पद्धतियों, अनुवाद के प्रकारों, अनुवाद की कसौटी, अनुवादक की कसौटी, अनुवाद की चुनौतियों और अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डालती है।

चौथी इकाई में कम्प्यूटर एवं मीडिया लेखन यथा समाचार लेखन, रेडियो लेखन, विज्ञापन लेखन, फीचर लेखन एवं पटकथा लेखन का वर्णन किया गया है।

पांचवीं इकाई दुभाषिया विज्ञान के अर्थ एवं परिभाषा, दुभाषिया की भूमिका, कार्यक्षेत्र एवं गुणों; आशु अनुवाद, अनुवाद एवं आशु अनुवाद में अंतर, आशु अनुवाद के क्षेत्र, प्रक्रिया एवं पद्धतियों आदि पर प्रकाश डालती है।

इस पुस्तक की भाषा अत्यंत सहज एवं सुगम है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक की उपादेयता बढ़ाने के लिए सुधी विद्वानों के सुझावों का सदैव स्वागत किया जाएगा।

इकाई 1 भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 343 से 351 तक
1.2.1 संघ की राजभाषा
1.2.2 राजभाषा के लिए आयोग और संसदीय समिति
1.2.3 एक राज्य, अन्य राज्य अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा
1.2.4 एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार हेतु राजभाषा
1.2.5 किसी राज्य के जन समुदाय के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध
1.2.6 न्यायालयों की भाषा
1.2.7 भाषा संबंधी कुछ विधियों को अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया
1.2.8 विशेष निर्देश : व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा
1.2.9 हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश
1.2.10 अष्टम अनुसूची (अनुच्छेद 344(1) और 351)
1.2.11 संवैधानिक प्रावधान की विशेषताएं
1.3 राष्ट्रपति के आदेश सन् 1952, 1955 एवं 1960
1.4 राजभाषा अधिनियम 1963
1.5 राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967)
1.6 राजभाषा अधिनियम, 1976
1.7 राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियां एवं भूमिका
1.8 सारांश
1.9 मुख्य शब्दावली
1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

संविधान सभा द्वारा सघन विचार–विमर्श के उपरांत 14 सितंबर, 1949 के दिन भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया गया। हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने में संविधान सभा की यह मानसिकता रही है कि हिंदी भारत जैसे बहुभाषी देश में एक संपर्क भाषा के रूप में अपनाई जाएगी। संविधान सभा ने अन्य अनेक बातों पर विचार करते हुए राजभाषा हिंदी तथा उसके स्वरूप के संदर्भ में अनेक प्रावधान किए हैं जो राजभाषा हिंदी के संवैधानिक प्रावधान माने जाते हैं। इस इकाई में संवैधानिक उपबंध के अनुच्छेद 343 से अनुच्छेद 351 का विवरण दिया जा रहा है। इसके साथ ही राष्ट्रपति आदेश 1952, 1955 और 1960, राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा अधिनियम यथा संशोधित 1967 तथा राजभाषा नियम 1976 का विवरण दिया जा रहा है।

टिप्पणी

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संवैधानिक उपबंध के अनुच्छेद 343 से अनुच्छेद 351 का विवरण प्राप्त कर पाएंगे;
- राष्ट्रपति आदेश 1952, 1955 और 1960 के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- राजभाषा अधिनियम 1963 के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- राजभाषा अधिनियम यथा संशोधित 1967 का विवरण प्राप्त कर पाएंगे;
- राजभाषा नियम 1976 का विवरण प्राप्त कर पाएंगे;
- राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियां एवं भूमिका की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;

1.2 भारतीय संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान (अनुच्छेद 343 से 351 तक)

भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और 17 राजभाषा संबंधी उपबंध हैं। इसमें भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। भारतीय संविधान में कहीं भी 'राजभाषा' शब्द की कोई परिभाषा या व्याख्या नहीं दी गई है। इसका प्रारंभिक उल्लेख 343 (1) में यह कहकर हुआ है– "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।"

1.2.1 संघ की राजभाषा

अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

खंड (1) के अनुसार किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए प्रारंभ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी। इस संबंध में आगे कहा गया है– राष्ट्रपति उक्त अवधि (26 जनवरी, 1950, से 25 जनवरी, 1965 के दौरान) अपने आदेश से संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी) रूप का प्रयोग अधिकृत कर सकेंगे। अनुच्छेद 343 (3) में कहा गया है– "इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात विधि द्वारा–

(क) अंग्रेजी भाषा अथवा (ख) अंकों के देवनागरी रूप का, ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसा कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।

1.2.2 राजभाषा के लिए आयोग और संसदीय समिति

अनुच्छेद 344 (1) में कहा गया है– "राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष (अर्थात् 26 जनवरी, 1955 ई.) की समाप्ति पर और तत्पश्चात ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग का गठन करेंगे। इस आयोग में एक अध्यक्ष तथा आठवीं अनुसूची में बताई गई विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य प्रतिनिधि होंगे जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा। राष्ट्रपति के इस आदेश में आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया भी निर्दिष्ट की जाएगी।

भारतीय संविधान में
राजभाषा संबंधी प्रावधान

टिप्पणी

अनुच्छेद 344 (1) में इस आयोग के पांच कर्तव्य बताए गए हैं–

1. संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग की सिफारिश।
2. संघ के सभी या किसी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों की सिफारिश।
3. अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा की सिफारिश।
4. संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप की सिफारिश।
5. संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गए किन्हीं अन्य विषय में सिफारिश।

अनुच्छेद 344 (2)

भारत के संविधान 1949 में अनुच्छेद 344(2) में कहा गया है कि यह आयोग का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को इस रूप में सिफारिशें करे–

1. संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग;
2. संघ के राजकीय प्रयोजनों के सभी या किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबंध;
3. अनुच्छेद 348 में उल्लिखित भाषा का सभी प्रयोजनों के लिए या किसी के लिए इस्तेमाल किया जाएगा;
4. अंकों का रूप संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाएगा।
5. संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को भेजा गया विषय।

अनुच्छेद 344 (3)

अनुच्छेद 344 (3) में उपर्युक्त आयोग के लिए यह कहा गया है कि "आयोग अनुच्छेद–344(2) के अधीन अपनी सिफारिशें करते समय भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

टिप्पणी

अनुच्छेद 344 (4)

इस अनुच्छेद में राजभाषा संबंधी संसदीय समिति के गठन के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है– इसमें कुल तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोकसभा के सदस्य होंगे। शेष दस सदस्य राज्यसभा से होंगे। इन सदस्यों का निर्वाचन लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाएगा।

अनुच्छेद 344 (5)

इसमें इस संसदीय समिति के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है– "समिति अनुच्छेद 344(1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की जांच करके, उस पर अपनी राय राष्ट्रपति को देगी।" खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना ही समिति का कार्य होगा।

अनुच्छेद 344 (6)

इसमें स्पष्ट कहा गया है– "अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति अनुच्छेदों– 344(5) के अधीन समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश/आदेश जारी कर सकेंगे।

1.2.3 एक राज्य, अन्य राज्य अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा

संविधान के अनुच्छेद 345 में कहा गया है– "किसी राज्य का विधानमंडल अनुच्छेद 346 और 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विधि द्वारा उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को, उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा। इसी अनुच्छेद 345 में आगे कहा गया है– "परंतु जब तक राज्य का विधानमंडल, विधि द्वारा कोई अन्य उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतरी उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए वह इस संविधान से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।"

1.2.4 एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार हेतु राजभाषा

संविधान के **अनुच्छेद 346** में कहा गया है– "संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने हेतु जो भाषा उस समय प्राधिकृत होगी, वही एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच और किसी राज्य तथा संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होगी।

परंतु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

1.2.5 किसी राज्य के जन समुदाय के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध

संविधान के **अनुच्छेद 347** में यह व्यवस्था की गई है– "यदि किसी राज्य के जन समुदाय का कोई भाग अपने द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध की मांग करता है और जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए और राष्ट्रपति को यह तसल्ली हो जाए कि यह मांग युक्तिसंगत है तो राष्ट्रपति यह निर्देश कर सकते हैं कि ऐसी भाषा को भी राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में प्रयोजनार्थ जिसे वे विनिर्दिष्ट करें, शासकीय मान्यता दी जाए।

टिप्पणी

1.2.6 न्यायालयों की भाषा

संविधान के भाग 17 में उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में **अनुच्छेद 348** में निर्देश दिए गए हैं–

अनुच्छेद 348(1)

इसमें कहा गया है– "जब तक संसद विधि द्वारा कोई और उपबंध न करे तब तक निम्नलिखित कार्यकलापों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में होंगे–

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां।

(ख) 1. संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी विधेयक या उनके प्रस्तावित संशोधन;

2. संसद या किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा पारित सभी अधिनियम और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा जारी किए गए अध्यादेश;

3. इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन जारी किए गए सभी आदेश, नियम, विनियम और उपविधियां।

अनुच्छेद 348(2)

इसमें किसी राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, संबंध राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिंदी भाषा या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली किसी अन्य भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत करने का अधिकार दिया गया है, परंतु यह बात संबद्ध उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगी। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी राज्य के राज्यपाल उच्च न्यायालय में हिंदी भाषा के प्रयोग को तो प्राधिकृत कर सकते हैं किंतु न्यायाधीश को अपना निर्णय हिंदी में देने/सुनाने के लिए बाध्य नहीं कर सकेंगे।

अनुच्छेद 348(3)

इसमें कहा गया है कि किसी राज्य के विधान मंडल में प्रस्तुत विधेयकों तथा उनसे संबंधित संशोधनों में यदि राज्यपाल के प्रयोग की अनुमति है तो उसका अंग्रेजी प्राधिकृत पाठ वही माना जाएगा जो राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया होगा।

संविधान की आठवीं अनुसूची में निम्नलिखित अठारह भाषाएं सम्मिलित हैं–

1. असमिया	2. उड़िया	3. उर्दू
4. कश्मीरी	5. कन्नड़	6. कोंकणी

टिप्पणी

7. गुजराती	8. तमिल	9. तेलुगु
10. नेपाली	11. पंजाबी	12. बंगला
13. मणिपुरी	14. मराठी	15. मलयालम
16. संस्कृत	17. सिंधी और	18. हिंदी

(बाद में समय–समय पर संशोधनों द्वारा इस सूचि में अन्य भाषाएं भी जोड़ी जाती रही हैं।)

1.2.7 भाषा संबंधी कुछ विधियों को अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया

अनुच्छेद 349 संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्षों की कालवधि तक अनुच्छेद 348 खंड (1) में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की मंजूरी के बिना पुनः स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुनः स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित सिफारिशों पर उस अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर तथा उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात ही राष्ट्रपति देगा, अन्यथा नहीं।"

1.2.8 विशेष निर्देश : व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा

अनुच्छेद 350 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

(क) प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

(ख) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी

(1) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संवधिान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करें और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दें और राष्ट्रपति ऐसे प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

टिप्पणी

1.2.9 हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश

अनुच्छेद 351– संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि निश्चित करें।

1.2.10 अष्टम अनुसूची (अनुच्छेद 344(1) और 351)

1. असमिया	2. उड़िया	3. उर्दू
4. कश्मीरी	5. कन्नड़	6. कोंकणी
7. गुजराती	8. तमिल	9. तेलुगु
10. नेपाली	11. पंजाबी	12. बंगला
13. मणिपुरी	14. मराठी	15. मलयालम
16. संस्कृत	17. सिंधी	18. हिंदी
19. मैथिली	20. संथाली	21. बोडो
22. डोगरी		

भारतीय संविधान के 5, 6 तथा 17 इन तीन भागों में राजभाषा संबंधी प्रावधान हैं। इनके 17वें भाग के चार अध्यायों में राजभाषा संबंधी उपबंध प्रस्तुत किए गए हैं। प्रथम अध्याय में संघ की भाषा के रूप में अनुच्छेद 343 और 344, द्वितीय अध्याय में अनुच्छेद 345 अनुच्छेद 346 और 347 में राजभाषा के रूप में प्रांतीय भाषाओं के प्रयोग के संबंध में निर्देश हैं। तृतीय अध्याय के अनुच्छेद 348, 349 में उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा के संबंध में निर्देश हैं। चौथे अध्याय के अनुच्छेद 350, 351 में अन्याय निवारण के लिए अभिवेदन में प्रयुक्त भाषा का निर्देश है। अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के संबंध में निर्देश हैं।

1.2.11 संवैधानिक प्रावधान की विशेषताएं

1. संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी, लिपि देवनागरी तथा अंक भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप होंगे–

   जैसे 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 एवं 10

2. संविधान के अनुच्छेद 343 (2) में प्रावधान है कि संविधान लागू होने के आरंभ के पंद्रह वर्ष की कालावधि अर्थात् 26 जनवरी 1950, 26 जनवरी 1965 तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग सरकारी कामकाज में जारी रहेगा।

टिप्पणी

3. संविधान के अनुच्छेद 344 में राजभाषा के लिए आयोग और संसदीय राजभाषा समिति के गठन एवं कार्य संबंधी प्रावधान भी हैं।

4. अनुच्छेद 345 में विभिन्न राज्यों के राजभाषाओं संबंधी प्रावधान हैं। उसके अनुसार संबंधित राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उस राज्य की किसी एक अथवा अनेक भाषाओं को अपनी राजभाषा के रूप में अंगीकार कर सकता है। इस प्रावधान की यह विशेषता है कि संघ का प्रत्येक राज्य विधि द्वारा अपने राज्य की राज्यभाषा को अपनाने में सक्षम और स्वतंत्र है।

5. अनुच्छेद 346 में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा के प्रयोग के संदर्भ में उल्लेख किया गया है अर्थात् इसके अनुसार किसी एक राज्य और दूसरे राज्य और संघ के बीच संचार की भाषा 'तत्समय प्राधिकृत भाषा' होगी।

6. अनुच्छेद 347 में किए गए प्रावधान में किसी राज्य के विशिष्ट जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष प्रावधान किया गया है। इसके अनुसार यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाता है कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त समूह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली किसी भाषा को मान्यता दी जाए तो वैसा करने के लिए संबंधित राज्य को आदेश दे सकते हैं।

7. अनुच्छेद 348 में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों आदि की भाषा के बारे में प्रावधान करते हुए स्पष्ट किया गया है कि जब तक संसद विधि द्वारा उपबंध न करे तब तक उच्चतम न्यायालयों की सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होगी और संसद एवं राज्यों के विधानमंडलों में पारित विधेयक तथा राष्ट्रपति एवं राज्यपालों द्वारा जारी सभी अध्यादेश, आदेश, विनिमय एवं नियम आदि सब के प्राधिकृत पाठ भी अंग्रेजी भाषा में ही माना जाएगा।

8. अनुच्छेद 349 के अनुसार संविधान के लागू होने के पंद्रह वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी के अलावा किसी भी दूसरी भाषा का पाठ प्राधिकृत पाठ नहीं माना जाएगा लेकिन किसी अन्य भाषा के प्राधिकृत पाठ हेतु राजभाषा आयोग तथा संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदनों एवं सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

9. अनुच्छेद 350 के अनुसार किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ अथवा राज्य के किसी भी अधिकारी या प्राधिकारी को संघ अथवा राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का प्रत्येक व्यक्ति का हक होगा। इसमें यह भी प्रावधान है कि प्राथमिक स्तर पर बालकों को मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं संबंधित राज्य उपलब्ध कराएगा।

10. अनुच्छेद 351 अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके अनुसार राजभाषा हिंदी के बहुमुखी विकास तथा प्रचार–प्रसार का कानूनी दायित्व केंद्र सरकार को सौंपा गया है। और किसी प्रकार हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार तथा विकास किया जाएगा इसके लिए स्पष्ट निर्देश दिए गए हैं।

1.3 राष्ट्रपति के आदेश सन् 1952, 1955 एवं 1960

भारतीय संविधान 1952 के अनुच्छेद 343 खंड 2 के अनुसार राष्ट्रपति को प्रदत्त अधिकार के अधीन राष्ट्रपति ने 27 मई, 1952 को एक आदेश जारी किया, जिसके द्वारा राज्यों के राज्यपालों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियों के अधिपत्रों में संघ के राजकीय प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ हिंदी भाषा और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत किया गया।

महामहिम राष्ट्रपति ने संविधान 1952 के अनुच्छेद 343(2) के द्वारा प्राप्त अधिकार का दूसरी बार प्रयोग 3 दिसंबर, 1955 को किया। यह संविधान आदेश सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा से संबंधित था। इसके अनुसार संघ के निम्नलिखित सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया–

1. जनता के साथ पत्र व्यवहार।
2. प्रशासनिक रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाओं तथा संसद में प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट।
3. सरकारी संकल्प और विधायी (लेजिस्लेटिव इनैक्टमेंट्स) अधिनियमितताएं।
4. जिन राज्य सरकारों ने हिंदी को अपनी राजभाषा मान लिया है, उनके साथ पत्र–व्यवहार।
5. संधिपत्र और करारनामे।
6. अन्य देशों की सरकारों तथा उनके दूतों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत के प्रतिनिधियों को जारी किए जाने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज।

विभिन्न मंत्रालयों में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए गृह मंत्रालय ने 1955 में एक विज्ञप्ति जारी करके सभी मंत्रालयों को निम्नवत् सुझाव दिए–

1. जनता से प्राप्त पत्रों का उत्तर यथासंभव हिंदी में दिया जाए। पत्र की भाषा सरल होनी चाहिए।
2. प्रशासनिक रिपोर्टों, सरकारी पत्रिकाओं, संसद को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टों आदि को यथा संभव अंग्रेजी और हिंदी में दोनों में प्रकाशित किया जाए।
3. सरकारी संकल्पों, विधायी अधिनियमों आदि को यथा संभव अंग्रेजी–हिंदी में जारी किया जाए, किंतु यह स्पष्ट कर दिया जाए कि अंग्रेजी पाठ ही प्रामाणिक माना जाएगा।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

1. भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और..... राजभाषा संबंधी उपबंध हैं।
2. अनुच्छेद.....के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।

सही/गलत बताइए

3. अनुच्छेद 346 में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा के प्रयोग के संदर्भ में उल्लेख किया गया है।
4. अनुच्छेद 348 में किए गए प्रावधान में किसी राज्य के विशिष्ट जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष प्रावधान किया गया है।

टिप्पणी

4. जिन राज्यों ने हिंदी को राजभाषा स्वीकार कर लिया है, उनके साथ पत्र व्यवहार में हिंदी का अनुवाद भी भेजा जाए ताकि संविधानिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

संविधान के अनुच्छेद 344(6) राजभाषा आयोग के अनुसरण में सन् 1955 में राजभाषा आयोग की नियुक्ति की गई और उसकी रिपोर्ट पर एक संसदीय समिति ने विचार किया। राज भाषा आयोग की सिफारिशों पर संसदीय समिति द्वारा प्रकट किए गए मंतव्य के संदर्भ में 27 अप्रैल, 1960 को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया था। इसमें निहित निर्देश इस प्रकार से हैं–

1. अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केंद्रीय सेवाओं में भरती के लिए परीक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी बनी रहे और कुछ समय बाद हिंदी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाए। बाद में किसी प्रकार की नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करने की व्यवहार्यता की जाए।
2. प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही परीक्षा का माध्यम रहें।
3. निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण एवं समन्वय का प्रयत्न किया जाए तथा इसके लिए शिक्षा मंत्रालय आवश्यक व्यवस्था करते हुए एक आयोग का निर्माण करे।
4. सभी प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद किया जाए तथा उसमें एकरूपता हो। असांविधिक अनुवाद शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया जाए और सांविधिक अनुवाद विधि मंत्रालय करे।
5. शिक्षा मंत्रालय हिंदी प्रचार की व्यवस्था करे और इस कार्य में लगी गैर सरकारी संस्थाओं की भी सहायता करे।
6. केंद्रीय सरकार के विभागों के स्थानीय कार्यालय अपने आंतरिक कार्यों के लिए हिंदी का प्रयोग करें और जनता से पत्र व्यवहार में प्रादेशिक भाषा का प्रयोग किया जाए। कर्मचारियों की भर्ती तथा विकेंद्रीकरण आदि में इस आवश्यकता को ध्यान में रखा जाए।
7. संसदीय अधिनियम और विधेयक अंग्रेजी में बनते रहें, किंतु उनका प्राधिकृत हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराया जाए। यह विधि मंत्रालय का उत्तरदायित्व होगा।
8. उच्चतम न्यायालय की भाषा अंततः हिंदी होनी चाहिए। उच्च न्यायालय के निर्णयों, आज्ञप्तियों और आदेशों के लिए हिंदी और राज्यों की राजभाषाओं का प्रयोग विकल्पतः किया जा सकेगा। इस संबंध में विधि मंत्रालय को आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए।
9. तृतीय श्रेणी से नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक संस्थाओं के कर्मचारियों और कार्य प्रभावित कर्मचारियों को छोड़कर उन सभी केंद्रीय कर्मचारियों के लिए हिंदी का सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य बना दिया जाए, जिनकी आयु 01 जनवरी, 1961 को 45 वर्ष से कम हो। गृह मंत्रालय टंककों और आशुलिपिकों को हिंदी टंकण तथा आशुलेखन में प्रशिक्षण देने के लिए भी प्रबंध करे।
10. एक मानक विधि शब्दकोश बनाने, हिंदी में कानून बनाने और कानूनी शब्दावली के निर्माण के लिए विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कानून के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग स्थापित किया जाए।

टिप्पणी

इस आयोग ने 1956 में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की वह इस प्रकार थी–

1. प्रजातंत्रिक व्यवस्था की सफलता के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को चलाना ठीक नहीं है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। केवल कतिपय अंतर्राष्ट्रीय मामलों, विज्ञान एवं अनुसंधान के क्षेत्रों में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है, शेष शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक जीवन एवं सामान्य कार्यों में विदेशी भाषा का व्यवहार अनुचित है।
2. भारत की सभी भाषाओं को साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध मानते हुए भी हिंदी को सारे देश के लिए सामूहिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।
3. पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में स्पष्टता, अर्थ की शुद्धता, सरलता, देशज और लोकप्रिय शब्दों के प्रयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार थोड़े हेर–फ़ेर के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण कार्य में तेजी लाई जाए।
4. 14 वर्ष तक की आयु सीमा में आने वाले सभी विद्यार्थियों के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाए जिससे वे सार्वजनिक जीवन के कार्य–कलापों और सरकारी कार्यवाहियों को समझने में समर्थ हो सकें।
5. सारे देश में माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हिंदी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए।
6. जो परीक्षार्थी हिंदी के माध्यम से परीक्षाओं में बैठना चाहें, उनके लिए विश्वविद्यालय उचित प्रबंध करे।
7. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा संस्थाओं के छात्र जब किसी एक भाषा वर्ग के हों तो उन्हें शिक्षा उसी भाषा में दी जाए और जहां छात्र विभिन्न भाषा वर्ग के हों, वहां हिंदी को सामान्य माध्यम बनाया जाए।
8. सरकारी प्रकाशनों के हिंदी अनुवाद में एकरूपता लाई जाए और इसकी देखरेख का कार्य केंद्रीय सरकार के एक अधिकरण को दिया जाए।
9. सभी प्रशासनिक कर्मचारियों को निश्चित अवधि में हिंदी का ज्ञान कराया जाए और इसके लिए नियम लागू किया जाए। प्रोत्साहन के लिए कर्मचारियों को पुरस्कृत किया जाए।

टिप्पणी

10. जनता के संपर्क में आने वाले विभागों और कार्यालयों के आंतरिक कार्य हिंदी में हों और जनता के साथ संपर्क स्थापित करने में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग हो। ऐसे विभागों के कर्मचारियों की भर्ती के लिए क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान के साथ–साथ हिंदी की योग्यता का स्तर निर्धारित किया जाए और ऐसे कर्मचारियों की प्रशिक्षण द्वारा हिंदी में योग्यता बढ़ाई जाए।

11. केंद्रीय सरकार के सांविधिक प्रकाशनों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए और हिंदी की प्रगति के लिए सरकारी प्रबंध किए जाएं।

12. संसद और विधानसभाओं की कार्यवाही हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं में की जाए, केवल विशेष परिस्थितियों में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाए। कानून हिंदी में हों लेकिन क्षेत्रीय जनता के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में इन्हें जारी किया जाए। हिंदी माध्यम अपनाए जाने पर सभी विधिसम्मत पुस्तकें हिंदी में होनी चाहिए।

13. न्याय की भाषा देश की भाषा हो। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की कार्यवाही अभिलेखों, निर्णयों और आदेशों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद रखा जाए। इनमें अभिव्यक्तियों के लिए क्षेत्रीय भाषाएं काम में लाने की स्वीकृति प्राप्त हो। कई क्षेत्रों के लिए लागू निर्णय और आदेश हिंदी में लिखे जाने चाहिए।

14. केंद्रीय सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए हिंदी की कुछ योग्यता अनिवार्य हो और हिंदी का एक प्रश्न पत्र हो। समानता की दृष्टि से हिंदी भाषियों से इतर भाषाओं पर वैकल्पिक प्रश्न पूछे जाएं। हिंदी को अंग्रेजी के साथ–साथ वैकल्पिक माध्यम के रूप में ग्रहण किया जाए। राज्यों के लोक सेवा आयोग हिंदी भाषा का ज्ञान रखने वालों को प्रोत्साहन दें।

15. हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए सरकार ठोस कदम उठाए और हिंदी सेवी संस्थाओं के बीच सामंजस्य स्थापित कर हिंदी को बढ़ावा दे तथा ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करे।

16. सभी भाषाओं के लिए यदि एक लिपि बनाने की बात हो तो उसके लिए देवनागरी लिपि को मान्यता दी जाए। रोमन लिपि इसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त होगी। देवनागरी में यथावश्यक सुधार के लिए कार्यवाही की जाए।

17. भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों को हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं की शब्दावली तथा मानकीकरण की दृष्टि से विशेष सुविधाएं दी जाएं और इसके लिए समाचार संस्थाओं का निर्माण करने का प्रयास किया जाए।

18. संघ की राजभाषा हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के संवर्धन तथा विकास के लिए "भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय अकादमी" की स्थापना करना विशेष उपयोगी होगा।

19. भारतीय भाषाओं के बीच की दूरी कम करने तथा देश के भाषागत एवं सांस्कृतिक ढांचे में समानता लाने के लिए बहुभाषिकता के सिद्धांत को प्रोत्साहित किया जाए और इस उद्देश्य के लिए शिक्षा पद्धति में समुचित व्यवस्था की जाए।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

5. राष्ट्रपति ने संविधान 1952 के अनुच्छेद 343(2) के द्वारा प्राप्त अधिकार का दूसरी बार प्रयोग .....को किया।

सही/गलत बताइए

6. राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर संसदीय समिति द्वारा प्रकट किए गए मंतव्य के संदर्भ में 27 अप्रैल, 1960 को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया था।

टिप्पणी

1.4 राजभाषा अधिनियम 1963

उन भाषाओं का जो संघ की राजकीय प्रयोजनों, संसद में कार्य के संव्यवहार, केंद्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी, उपबंध करने के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद द्वारा यह अधिनियमित हो–

धारा (1) संक्षिप्त नाम– यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 होगा।

धारा 3, 26 जनवरी, 1965 को प्रवृत्त होगी और इस अधिनियम के शेष उपबंध उस तिथि को प्रवृत्त होंगे जिसे केंद्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें रखी जा सकेंगी।

परिभाषाएं– इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो–

(क) 'नियत दिन से, धारा 3 के संबंध में, 26 जनवरी, 1965 का दिन है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में वह दिन है जिस दिन वह उपबंध प्रवृत्त होता है।

(ख) 'हिंदी' से वह हिंदी है जिसकी लिपि देवनागरी है।

संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का रहना–

1. संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा नियत दिन से ही–

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए वह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी, तथा

(ख) संसद के कार्य व्यवहार के प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी।

परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्र व्यवहार के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी। ऐसे पत्रों के साथ–साथ उनका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिंदी को राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ जिसने हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य के साथ सहमति से पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बाध्यकर न होगा।

धारा (2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी या अंग्रेजी भाषा–

1. केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच,

टिप्पणी

2. केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण में किसी निगम या कंपनी या उनके किसी कार्यालय के बीच,
3. केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी या कार्यालय के बीच, प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या विभाग या कंपनी का कर्मचारीवृंद हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद यथास्थिति अंग्रेजी भाषा या हिंदी में दिया जाएगा।

धारा (3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिंदी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही–

1. संकल्पों, सामान्य आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी के द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं,
2. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज–पत्रों के लिए,
3. केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञा पत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों के लिए प्रयोग में लाई जाएगी।

धारा (4) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केंद्रीय धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाता है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य की शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा। और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिंदी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं, वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं, उनका कोई अहित नहीं होता है।

धारा (5) उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंध और उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधानमंडलों द्वारा जिन्होंने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और तब तक

टिप्पणी

पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।

इस धारा में केंद्रीय अधिनियम आदि के अधिकृत हिंदी अनुवाद के संबंध में बताया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा अधिकृत हिंदी अनुवाद मान्य होगा।

धारा (6) में, राज्य के विधानमंडल के नियमों, अधिनियमों आदि के हिंदी–अनुवाद का वही रूप मानने की बात कही गई है जिसे राज्यपाल द्वारा अधिकृत किया जाएगा।

धारा (7) में उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिंदी या अन्य राज भाषा के वैकल्पिक प्रयोग का प्रावधान है। इसमें बताया गया है कि हिंदी या अन्य राज भाषा में दिए गए निर्णय का उच्च न्यायालय द्वारा अधिकृत अंग्रेजी अनुवाद देना आवश्यक होगा।

धारा (8) में केंद्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि राज भाषा अधिनियम (1963) के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी जिन्हें शासकीय गजट में अनुसूचित किया जाएगा। ऐसे नियम संसद के प्रत्येक सदन के सत्र के समय शीघ्र कुल मिलाकर तीन दिन के लिए उसके सामने रखे जाएंगे।

धारा (9) में यह निर्देश है कि इस नियम की धारा 6, 7 जम्मू कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होगी।

1.5 राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967)

संक्षेप में राजभाषा अधिनियम एवं बुनियादी नियमावली की मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

1. राजकीय काम काज में हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग साथ–साथ होगा।
2. जिन राज्यों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है उनके साथ पत्र व्यवहार अंग्रेजी में किया जाएगा अर्थात् जिन राज्यों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अपने पत्र व्यवहार के माध्यम के रूप में अपना लिया है, उनके बीच पत्रादि हिंदी में ही लिखे जाएंगे।
3. हिंदी में पत्र व्यवहार निम्नलिखित कार्यालयों के बीच होगा–
   (क) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालयों को।
   (ख) एक विभाग या कार्यालय से दूसरे विभाग या कार्यालय को।
   (ग) उन कंपनियों या निगमों के बीच जिनको केंद्रीय सरकार ने अपना लिया है।
   (घ) केंद्रीय सरकार और हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित राज्य सरकार के कार्यालयों या विभागों के बीच निम्नलिखित में हिंदी और अंग्रेजी का साथ–साथ प्रयोग अनिवार्य है–
      (*i*) संकल्प (Resolutions)
      (*ii*) सामान्य आदेश (General order/circular)
      (*iii*) अधिसूचनाएं (Notifications)
      (*iv*) नियम (Rules)

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

7. धारा (9) में यह निर्देश है कि इस नियम की धारा 6, 7 .....राज्य पर लागू नहीं होगी।

सही/गलत बताइए

8. धारा (6) में राज्य के विधानमंडलों के नियमों अधिनियमों आदि के हिंदी अनुवाद का वही रूप मानने की बात कही गई है जिसे राज्यपाल द्वारा अधिकृत किया जाएगा।

टिप्पणी

(v) प्रशासनिक और अन्य रिपोर्टें (Administrative and other Reports)

(vi) विज्ञापन (Advertisements)

(vii) प्रेस विज्ञप्तियां (Press Releases)

(viii) संविदा (Contracts)

(ix) करारनामे (Agreements)

(x) सूचनाएं (Notices)

(xi) निविदाएं (Tenders)

(xii) लाइसेंस (Licences)

(xiii) परमिट (Permits)

जब तक अहिंदी–भाषी राज्य अंग्रेजी को समाप्त कर देने का संकल्प नहीं करेंगे, तब तक हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी भी काम में लाई जाएगी।

4. संसदीय राजभाषा समिति– इस समिति के तीस सदस्य होंगे, लोकसभा के बीस और राज्यसभा के 10, यह समिति हिंदी के प्रयोग में की गई प्रगति का समय–समय पर निरीक्षण करेगी और अपनी सिफारिशें राष्ट्रपति के सामने रखेगी।

1.6 राजभाषा अधिनियम, 1976

सन् 1963 ई. राज भाषा अधिनियम की धारा 3 उपधारा (4) तथा धारा 8 के अधीन प्राप्त शक्तियों का उपयोग करते हुए, भारत सरकार ने सन् 1976 ई. में 'राजभाषा नियम' लागू किया। सा. का. नि. 1052–राजभाषा अधिनियम 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 के अंतर्गत निम्नलिखित नियमों की संरचना की गई–

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

9. राज भाषा अधिनियम (संशोधित 1967) के अनुसार राजकीय काम–काज में हिंदी और.....का प्रयोग साथ–साथ होगा।

सही / गलत बताइए

10. राज भाषा अधिनियम (संशोधित 1967) के अनुसार संसदीय राज भाषा समिति के 20 सदस्य होंगे।

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और आरंभ–** (1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है।

(i) इनका विस्तार तमिलनाडु राज्य के अतिरिक्त संपूर्ण भारत पर है।

(ii) ये राजपत्र में प्रकाशित की गई तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. **परिभाषाएं–** इन नियमों में जब तक कि संदर्भ अन्यथा अपेक्षित न हो–

(क) "अधिनियम" से राजभाषा अधिनियम 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत है।

(ख) "केंद्रीय सरकार के कार्यालय" के अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं अर्थात्

(i) "केंद्रीय सरकार का कोई भी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय,

(ii) केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय, और

(iii) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कंपनी का कोई कार्यालय

टिप्पणी

(ग) "कर्मचारी" से केंद्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है।

(घ) "अधिसूचित कार्यालय" से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत है।.

(ङ) "हिंदी में प्रवीणता" से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत हैं।

(च) "क्षेत्र क" से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के राज्य तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(छ) "क्षेत्र ख" से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(ज) "क्षेत्र ग" से खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(झ) "हिंदी कार्यसाधक ज्ञान" से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत हैं।

3. राज्यों आदि और केंद्र सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्र व्यवहार– राज्यों आदि का परस्पर तथा केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों से पत्र व्यवहार के संबंध में बनाए गए नियम निम्नवत् हैं–

(i) केंद्रीय सरकार के कार्यालय के क्षेत्र 'क' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या किसी ऐसे राज्य या संघ या राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि असाधारण दशाओं को छोड़कर हिंदी में होंगे और उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

(ii) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से–

(क) क्षेत्र "ख" में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतः हिंदी में होंगे और यदि कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसके साथ उनका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा; परंतु यदि कोई राज्य या संघ राज्य क्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि उसके किसी कार्यालय के लिए आशायित पत्रादि संबद्ध राज्य या संघ राज्य क्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिंदी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति में भेजे जाएंगे।

(ख) क्षेत्र 'ख' के किसी राज्य या संघ क्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिंदी में या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं।

(iii) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'ग' में किसी राज्य या संघ क्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे।

टिप्पणी

(iv) उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी क्षेत्र 'ग' में केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' या 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिंदी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं, परंतु हिंदी पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिंदी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुसंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय समय पर अवधारित करे।

4. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में पत्र व्यवहार

(क) केंद्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्र व्यवहार हिंदी में हो सकता है।

(ख) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र 'क' में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिंदी का कार्य साधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिंदी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुसंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करे।

(ग) क्षेत्र 'क' में स्थित केंद्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिंदी में होंगे।

(घ) क्षेत्र 'क' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी या अंग्रेजी में हो सकते हैं।

(ङ) क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी या अंग्रेजी में हो सकते हैं।

परंतु जहां ऐसे पत्रादि–

(i) क्षेत्र 'क' या क्षेत्र 'ख' में किसी कार्यालय को संबोधित हैं, वहां यदि आवश्यक हो, तो उनका दूसरी भाषा में अनुवाद पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा।

(ii) क्षेत्र 'ग' के किसी कार्यालय को संबोधित है, तो वहां उनका दूसरी भाषा में अनुवाद उनके साथ भेजा जाएगा। परंतु यह और है कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

5. हिंदी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर– नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी हिंदी में पत्रादि के उत्तर केंद्रीय सरकार के कार्यालय से हिंदी में दिए जाएंगे।

6. हिंदी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग– अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों का उपयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार किए जाते हैं, निष्पादित किए जाते हैं और जारी किए जाते हैं।

टिप्पणी

7. आवेदन, अभ्यावेदन आदि

(i) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिंदी या अंग्रेजी में कर सकता है।

(ii) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिंदी में किया गया हो उस पर हिंदी में हस्ताक्षर किए गए हों तब उसका उत्तर हिंदी में दिया जाएगा।

(iii) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अंतर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिनका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिंदी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक विलंब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी।

8. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणी का लिखा जाना

(i) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पणी या कार्यवृत्त हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे वह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे।

(ii) केंद्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिंदी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की तभी मांग कर सकता है जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का हो, अन्यथा नहीं।

(iii) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसको विनिश्चित करेगा।

(iv) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय सरकार आदेश द्वारा ऐसी अधिसूचना कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है, जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिंदी का प्रयोग किया जाएगा।

9. हिंदी में प्रवीणता– यदि किसी कर्मचारी ने–

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिंदी माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है; या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिंदी को वैकल्पिक रूप में लिया गया था; या

(ग) यदि वह इन नियमों के उपाब; प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिंदी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

टिप्पणी

10. हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान

1. (क) यदि किसी कर्मचारी ने–

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिंदी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है; अथवा

(ii) केंद्रीय सरकार की हिंदी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, उस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लिया है; या

(iii) केंद्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

2. यदि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिंदी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतः यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

3. केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं।

4. केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे;

परंतु केंद्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत में कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकता है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा।

5. मैनुअल संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि।

(i) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिंदी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति, मुद्रित या प्रकाशित किया जाएगा

(ii) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्रारूप और शीर्षक हिंदी और अंग्रेजी में होंगे।

(iii) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचनापट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिंदी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगी।

परंतु यदि केंद्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह साधारण या विशेष आदेश द्वारा केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबंधों से छूट दे सकती है।

12. अनुपालन उत्तरदायित्व

(अ) केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह–

(i) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए नए निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है; और

(ii) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करे।

(ब) केंद्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों के सम्यक अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय–समय पर आवश्यक निर्देश जारी कर सकती है।

1.7 राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियां एवं भूमिका

हिंदी का राजभाषा स्वरूप आज किसी भी परिचय का मोहताज नहीं है और न ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किसी भी संदर्भ से अछूता है। आज हिंदी अपनी परंपरागत धारा को समसामयिकता के अनुरूप नया मोड़ देने में सफल रही है। यही कारण है कि हिंदी अपने समग्र राजभाषा स्वरूप में उन्नत तकनीक एवं व्यावसायिकता की समर्थ भाषा बन चुकी है। इस के सुखद परिणाम हमें भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के अधीन विभिन्न विभागों, उपक्रमों एवं बैंकों के कामकाज में देखने को मिल रहे हैं। यहां तक कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी हिंदी की व्यावसायिक शक्ति को पहचान चुकी हैं और यथेष्ट रूप में हिंदी को अपना रही हैं।

जैसा कि सर्वविदित है कि हिंदी भाषा को संविधान में संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। विभिन्न हिंदी भाषी राज्यों के मध्य तथा केंद्र और कुछ राज्यों– पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र व केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के बीच संपर्क के लिए राजभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया गया है। हिंदी भाषी राज्यों की राजभाषा तो हिंदी है ही। अब अंडमान निकोबार भी 'क' क्षेत्र में है। प्रयोग की दृष्टि से हिंदी का व्यवहार क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है। राजभाषा की दृष्टि से कार्यालयों में फाइलों पर 'टिप्पणी' हिंदी में लिखी जाने लगी है जिसका सीधा संबंध 'आलेखन' से है। 'आलेखन' के अंतर्गत सरकारी तथा गैर सरकारी पत्राचार के सभी पक्षों को समाहित कर लिया गया है। 'प्रतिवेदन' (रिपोर्ट) लिखने का कार्य भी हिंदी में संपन्न होने लगा है।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

11. "हिंदी में प्रवीणता" से नियम.....में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है।

सही/गलत बताइए

12. "हिंदी कार्यसाधक ज्ञान" से नियम 12 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है।

टिप्पणी

जवाहर लाल नेहरू ने कहा है, "किसी भी राज्य या लोकतांत्रिक देश में यदि वह विकसित है या जनकल्याणकारी विकास कार्यों की ओर अग्रसर है, तो जन और प्रशासन में कार्य कर रहे लोगों के मध्य सभी अवरोध समाप्त हो जाने चाहिए और यह कार्य केवल जनसंपर्क द्वारा ही संभव है।" अतः राजभाषा हिंदी आज आर्थिक व औद्योगिक विकास की स्थापित भाषा है। किसी भी क्षेत्र का कोई भी कार्य क्यों न हो, वह जनभाषा में हो तभी सफल हो सकता है। भारत सरकार का उपक्रम होने के नाते हमारा यह उत्तरदायित्व है कि हम राजभाषा का कार्यान्वयन पूर्ण निष्ठा से करें।

संसदीय राजभाषा समिति ने यह भी अनुभव किया है कि प्रायः राजभाषा नीति के अनुपालन की जिम्मेदारी हिंदी अधिकारी पर छोड़ दी जाती है यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि राजभाषा अधिनियम 1976 के अनुसार सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालन की जिम्मेदारी प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान की है, विभाग के अन्य वरिष्ठ अधिकारी भी राजभाषा संबंधी आदेशों का निष्ठा से अनुपालन करें और कराएं। राजभाषा औपचारिक माध्यम के रूप में प्रशासन और प्रशासित के मध्य सेतु का काम करती है। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के अनुसार, "राजभाषा उसे कहते हैं जो केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा पत्र–व्यवहार राजकार्य और अन्य सरकारी लिखा–पढ़ी के कार्य में लाई जाए।"

डॉ. झाल्टे के अनुसार, "भारत में विज्ञान और टेक्नॉलोजी के प्रस्फुटन और फैलाव के कारण भी इनको अभिव्यक्त करने के माध्यम के रूप में हिंदी को अपने सर्वथा नवीनतम रूप में ढालने की सरल आवश्यकता महसूस हुई। ऐसा नया रूप जो विज्ञान और टेक्नॉलोजी के गुण–सूत्रों, सिद्धांतों, नवीनतम प्रयोगों, विधियों तथा भाषिक संरचना को वैज्ञानिक रूप में यथास्थिति अभिव्यक्त कर सके। ...विभिन्न ज्ञान के क्षेत्रों तथा पश्चिम से आई नई टेक्नॉलोजी एवं भौतिक शास्त्र, रसायन, कंप्यूटर, इंजीनियरी, अंतरिक्ष विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक, दूरसंचार आदि अनछुए विज्ञान के क्षेत्रों से संबंद्ध तकनीकी तथा प्रयोजनमूलक शब्दावली के निर्माण एवं प्रयोग की आवश्यकता हिंदी भाषा के लिए अनिवार्य रूप से सामने आई। इसी के साथ–साथ प्रशासन, विधि, दूरसंचार, व्यवसाय, वाणिज्य, खेल–कूद, पत्रकारिता आदि से संबंधित पारिभाषिक शब्दावली, पदावली तथा संकल्पनाओं का पुनः स्थापन, पुनः नियोजन एवं पुनरुत्थान हिंदी की अहम जरूरत बनकर उभरी। फलतः हिंदी का एक विशिष्ट प्रयुक्ति परक रूप उभरकर सामने आया।"

बावजूद इसके हिंदी राजभाषा बनी क्योंकि हिंदी के पीछे विराट भारतीय जनगण की संपर्क भाषा होने की शक्ति थी, पर शक्ति ही सब कुछ नहीं होती। संकल्प महत्वपूर्ण होता है। स्वाधीन भारत में राजभाषा बनते ही हिंदी कार्यालयों में संकल्पविहीन, वैचारिक रूप से विभाजित तथा विवेकशून्य बाबू वर्ग की भाषा बनी। फलतः लोकभाषा की ताकत से विच्छिन्न हिंदी राजकाज में कृत्रिम, अनगढ़ और अबूझ बन कर रह गई। हिंदी की यह स्थिति अंततः अंग्रेजी का ही पक्षपोषक साबित हुई। यह स्थिति जिन क्षेत्रों में सर्वाधिक परिलक्षित हुई, उनमें सूचना, संचार तथा पत्रकारिता सर्वोपरि है। फिल्म, टेलीविजन, इंटरनेट आदि के अधिकतर सूत्रधारों की भाषा प्रमुखतः हिंदी नहीं है। हिंदी बोलने व लिखने के अनुकूल मानसिकता का सर्वथा अभाव है। 'अंग्रेजी' फैशनेबल व आधुनिकता का प्रतीक हो गई है। यह चुनौतियां आज भी लक्ष्य भाषा को प्रधानता देते हुए अनुवाद को अनिवार्य बना रही हैं, ऐसे में मौलिकता का सवाल तो शेष रहता ही है, जो राजभाषा की आत्म–उन्नति के विश्लेषण से सीधा जुड़ा है।

भारतीय संविधान में
राजभाषा संबंधी प्रावधान

टिप्पणी

गतिविधि

सांविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं का एक चार्ट बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

भारतीय संविधान सभा को भारतीय संविधान का निर्माण करने में 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन का समय लगा था।

1.8 सारांश

भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और 17 राजभाषा संबंधी उपबंध हैं। इसमें भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। भारतीय संविधान में कहीं भी 'राजभाषा' शब्द की कोई परिभाषा या व्याख्या नहीं दी गई है। इसका प्रारंभिक उल्लेख 343 (1) में यह कहकर हुआ है– "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।" इनके 17वें भाग के चार अध्यायों में राजभाषा संबंधी उपबंध प्रस्तुत किए गए हैं। प्रथम अध्याय में संघ की भाषा के रूप में अनुच्छेद 343 और 344, द्वितीय अध्याय में अनुच्छेद 345 अनुच्छेद 346 और 347 में राजभाषा के रूप में प्रांतीय भाषाओं के प्रयोग के संबंध में निर्देश हैं। तृतीय अध्याय के अनुच्छेद 348, 349 में उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा के संबंध में निर्देश हैं। चौथे अध्याय के अनुच्छेद 350, 351 में अन्याय निवारण के लिए अभिवेदन में प्रयुक्त भाषा का निर्देश है। अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के संबंध में निर्देश हैं।

भारतीय संविधान 1952 के अनुच्छेद 343 खंड 2 के अनुसार राष्ट्रपति को प्रदत्त अधिकार के अधीन राष्ट्रपति ने 27 मई, 1952 को एक आदेश जारी किया, जिसके द्वारा राज्यों के राज्यपालों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियों के अधिपत्रों में संघ के राजकीय प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ हिंदी भाषा और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत किया गया।

महामहिम राष्ट्रपति ने संविधान 1952 के अनुच्छेद 343(2) के द्वारा प्राप्त अधिकार का दूसरी बार प्रयोग 3 दिसंबर, 1955 को किया। यह संविधान आदेश सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा से संबंधित था।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

13. राज भाषा की दृष्टि से कार्यालयों में फाइलों पर.....हिंदी में लिखी जाने लगी है।

सही/गलत बताइए

14. राजभाषा अधिनियम 1976 के अनुसार सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालन की जिम्मेदारी प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान की है।

संविधान के अनुच्छेद 344(6) राजभाषा आयोग के अनुसरण में सन् 1955 में राजभाषा आयोग की नियुक्ति की गई और उसकी रिपोर्ट पर एक संसदीय समिति ने विचार किया। राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर संसदीय समिति द्वारा प्रकट किए गए मंतव्य के संदर्भ में 27 अप्रैल, 1960 को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया था।

राजभाषा अधिनियम 1963 उन भाषाओं का जो संघ की राजकीय प्रयोजनों, संसद कार्य के संव्यवहार, केंद्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कुछ प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी उनका उपबंध करने का अधिनियम है। राजभाषा अधिनियम 1967 में संशोधित किया गया जिसमें राजभाषा अधिनियम एवं बुनियादी नियमावली की बातों का उल्लेख है।

सन् 1963 ई. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 उपधारा (4) तथा धारा 8 के अधीन प्राप्त शक्तियों का उपयोग करते हुए, भारत सरकार ने सन् 1976 ई. में 'राजभाषा नियम' लागू किया। सा.का.नि. 1052–राजभाषा अधिनियम 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 के अंतर्गत नियमों की संरचना की गई।

हिंदी का राजभाषा स्वरूप आज किसी भी परिचय का मोहताज नहीं है और न ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किसी भी संदर्भ से अछूता है। आज हिंदी अपनी परंपरागत धारा को समसामयिकता के अनुरूप नया मोड़ देने में सफल रही है। यही कारण है कि हिंदी अपने समग्र राजभाषा स्वरूप में उन्नत तकनीक एवं व्यावसायिकता की समर्थ भाषा बन चुकी है। इस के सुखद परिणाम हमें भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के अधीन विभिन्न विभागों, उपक्रमों एवं बैंकों के कामकाज में देखने को मिल रहे हैं। यहां तक कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी हिंदी की व्यावसायिक शक्ति को पहचान चुकी हैं और यथेष्ट रूप में हिंदी को अपना रही हैं।

1.9 मुख्य शब्दावली

- **प्राधिकृत** : विधिविहित अधिकार प्राप्त
- **आत्मसात** : अपने अधिकार में, अपने में मिलाया हुआ
- **व्यवहार्य** : व्यवहार के योग्य
- **उपबंध** : संबंध, संयोग
- **अभिप्रेत** : प्रिय, रुचिकर, चाहा हुआ
- **आनुषंगिक** : आप से आप घटित होने वाला, अनावश्यक रूप से साथ होने वाला
- **प्रस्फुटन** : व्यक्त होना, प्रकट होना
- **पक्षपोषक** : पक्ष लेने वाला व्यक्ति

1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुच्छेद 343(1) के अनुसार संघ की राजभाषा पर प्रकाश डालिए।
2. अनुच्छेद 344(1) में राजभाषा के लिए आयोग के बताए गए पांच कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।
3. राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967) के अनुसार राजभाषा अधिनियम एवं बुनियादी नियमावली की मुख्य बातें लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक में दिए गए राजभाषा संबंधी प्रावधानों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रपति द्वारा सन् 1952, 1955 एवं 1960 में लागू आदेशों पर प्रकाश डालिए।
3. राजभाषा अधिनियम 1960 का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967) पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
5. राजभाषा अधिनियम 1976 का सविस्तार वर्णन कीजिए।
6. राजभाषा के रूप में हिंदी की चुनौतियों एवं भूमिका पर प्रकाश डालिए।

1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 17
2. 343(1)
3. सही
4. गलत
5. 3 दिसंबर, 1955
6. सही
7. जम्मू कश्मीर
8. सही
9. अंग्रेजी
10. गलत
11. 9
12. गलत

13. टिप्पणी

14. सही

टिप्पणी

1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. ब्रजकिशोर शर्मा, *भारत का संविधान : एक परिचय,* पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली

2. डी.डी. बासु, *भारत का संविधान : एक परिचय,* LexisNexis, गुड़गांव, हरियाणा

इकाई 2 कार्यालयी हिंदी के प्रमुख प्रकार्य

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 प्रारूपण
  2.2.1 प्रारूपण का अर्थ और परिभाषा
  2.2.2 प्रारूपण के प्रकार
  2.2.3 प्रारूपण के नियम
  2.2.4 सरकारी पत्रों का प्रारूपण
2.3 पत्र लेखन
  2.3.1 पत्र लेखन के गुण एवं विशेषताएं
  2.3.2 पत्र लेखन में विशेष उल्लेखनीय बातें
  2.3.3 पत्र लेखन के प्रकार
2.4 संक्षेपण
  2.4.1 अर्थ और परिभाषा
  2.4.2 संक्षेपण के प्रकार
  2.4.3 संक्षेपण के नियम/संक्षेपण की प्रविधि
  2.4.4 श्रेष्ठ संक्षेपण की विशेषताएं
  2.4.5 संक्षेपण के उदाहरण
2.5 पल्लवन
  2.5.1 अर्थ और परिभाषा
  2.5.2 पल्लवन के प्रकार
  2.5.3 पल्लवन के नियम
  2.5.4 पल्लवन के कुछ उदाहरण
2.6 टिप्पण अथवा टिप्पणी
  2.6.1 अर्थ और परिभाषा
  2.6.2 टिप्पण के प्रकार
  2.6.3 टिप्पण के नियम
  2.6.4 टिप्पण के रूप और उदाहरण
2.7 परिपत्र
2.8 ज्ञापन
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

इस इकाई में कार्यालयी हिंदी के स्वरूप, उनके नियमों व कार्य प्रणालियों के बारे में बताया गया है जिससे कार्यालयी हिंदी के महत्व को समझा जा सकता है। कार्यालयी हिंदी के स्वरूप हैं– प्रारूपण (मसौदा), पत्र लेखन, संक्षेपण, पल्लवन, टिप्पणी, परिपत्र और ज्ञापन जिनके बारे में इस इकाई में चर्चा की गई है। प्रारूपण का अर्थ 'आलेखन' या 'मसौदा तैयार

टिप्पणी

करना' होता है। इसका प्रयोग सरकारी या गैर सरकारी कार्यालय में कामकाज के संदर्भ में आने वाले पत्र, परिचय या सूचना आदि के (अंतिम रूप से पहले का स्वरूप) कच्चे रूप में तैयार करने में होता है। प्रारूपण के भी कुछ खास नियम होते हैं जिनका पालन आवश्यक है। संक्षेपण में सार लेखन होता है जिसमें अनावश्यक प्रसंगों को छोड़कर आवश्यक, प्रासंगिक व उपयोगी तथ्यों का संकलन इस प्रकार किया जाता है कि रचना का आकार एक तिहाई रह जाए। इसके कुछ खास नियम हैं जिनका पालन आवश्यक है। पल्लवन का अर्थ भाव, विस्तार है जो संक्षेपण के विपरीत है। 'संक्षेपण' में जहां समास शैली का प्रयोग होता है वहां पल्लवन में व्यास शैली अपनाई जाती है।

इसी तरह पत्रों पर अंतिम निर्णय होने तक कार्यालयों के लिपिक व अधिकारीगण उन पर जो–जो अभियुक्तियां लिखा करते हैं वह 'टिप्पणी– कहलाती है तथा इस प्रक्रिया को 'टिप्पण' कहते हैं। इस इकाई में इसके स्वरूप, प्रकार व नियमों की भी चर्चा की गई है तथा विभिन्न रूप एवं उदाहरण दर्शाए गए हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कार्यालयी हिंदी में प्रारूपण (मसौदा), पत्र लेखन, संक्षेपण, पल्लवन टिप्पणी के साथ–साथ परिपत्र और ज्ञापन का भी काफी महत्व है।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रारूपण (मसौदा) तैयार करने की प्रक्रिया से अवगत हो पाएंगे;
- पत्र लेखन एवं इनके प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- संक्षेपण एवं पल्लवन से अवगत हो पाएंगे;
- टिप्पणी, परिपत्र एवं ज्ञापन की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

2.2 प्रारूपण

2.2.1 प्रारूपण का अर्थ और परिभाषा

प्रारूपण अंग्रेजी के Drafting शब्द का हिंदी अनुवाद है। इसे 'आलेखन' या 'मसौदा तैयार करना' भी कहा जाता है। वैसे अंग्रेजी शब्द Draft के लिए हिंदी में 'प्रारूप', 'आलेख' और 'मसौदा' तीनों शब्द प्रचलित हैं परंतु 'प्रारूप' शब्द सर्वथा उपयुक्त है और इसी कारण Drafting के लिए हिंदी का 'प्रारूपण' शब्द सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। प्रारूपण का अभिप्राय सरकारी या गैर सरकारी कामकाज में आने वाले पत्र, परिचय या सूचना आदि के कच्चे रूप को तैयार करने से है। प्रायः सरकारी या गैर–सरकारी कर्मचारी अथवा अधिकारी किसी पत्र या परिचय को अपने उच्च अधिकारी के पास अनुमोदन के लिए भेजने से पहले उसका कच्चा रूप या प्रारूप तैयार करते हैं। जब वह प्रारूप उच्च अधिकारी के पास पहुंचता है, तब वह उसमें उचित संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन के साथ अनुमोदन करके फिर अपने अधीनस्थ कर्मचारी या अधिकारी के पास भेज देता है और तदुपरांत उस संशोधित तथा अनुमोदित प्रारूप को टंकित, साइक्लोस्टाइल या मुद्रित कराकर जहां आवश्यक होता है वहां भिजवा दिया जाता है। इस प्रकार 'प्रारूपण' की सर्वमान्य परिभाषा यह हो सकती है–

परिभाषा– सरकारी या गैर–सरकारी कामकाज में प्रयुक्त पत्र, परिचय पत्र, ज्ञापन, सूचना, आदेश आदि को अंतिम रूप देने से पहले उनका जो कच्चा रूप तैयार किया जाता है, उसे प्रारूपण कहते हैं।

2.2.2 प्रारूपण के प्रकार

सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालयों में पत्र व्यवहार करते समय विविध प्रकार के प्रारूपणों का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त प्रस्ताव पारित करने, तार देने, सूचना भेजने, आदेश देने, उद्घोषणा करने आदि के लिए भी प्रारूप तैयार किए जाते हैं। अतएव प्रारूपण का विविध रूपों में प्रयोग होने के कारण उसके अनेक प्रकार हैं, जिनमें से कुछ ये हैं–

1. सरकारी पत्रों का प्रारूपण
2. कार्यालय–ज्ञापन का प्रारूपण
3. परिपत्र का प्रारूपण
4. स्वीकृति पत्र का प्रारूपण
5. कार्यालय–आदेशों का प्रारूपण
6. अर्द्धसरकारी पत्रों का प्रारूपण
7. अशासनिक पत्रों का प्रारूपण
8. अनुस्मारक का प्रारूपण
9. पृष्ठांकन का प्रारूपण
10. अधिसूचना का प्रारूपण
11. प्रस्ताव या संकल्प का प्रारूपण
12. प्रैस–विज्ञप्ति या प्रैस–नोट का प्रारूपण
13. तार का प्रारूपण
14. सूचना का प्रारूपण
15. उद्घोषणा का प्रारूपण
16. प्राप्ति–स्वीकार का प्रारूपण

2.2.3 प्रारूपण के नियम

1. प्रारूपण सदैव शुद्ध एवं सही होना चाहिए। उसमें संदर्भ, क्रमांक, दिनांक एवं साक्ष्य की तनिक भी भूल नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसी भूल सदैव बड़ी हानिकारक होती है।
2. प्रारूपण की भाषा और प्रस्तुतीकरण में किसी तरह की कमी नहीं होनी चाहिए। उसमें अंकित तथ्य, सूचनाएं, संदर्भ आदि अपने–आप में पूर्ण और स्पष्ट होने

टिप्पणी

टिप्पणी

चाहिए, साथ ही प्रारूपण तैयार करते समय 'विषय' उल्लेख भी इस तरह होना चाहिए कि पत्र लेखक का आशय उससे स्पष्ट पता चल जाए और नये कर्मचारी को भी फाइल को देखते ही मामला शीघ्र समझ में आ जाए।

3. सरकारी पत्रों, परिपत्रों, आदेशों, उद्घोषणाओं आदि की भाषा कभी आलंकारिक एवं कवित्वपूर्ण नहीं होनी चाहिए।
4. सभी प्रकार के प्रारूपण तथ्यों पर आधारित होने चाहिए, उनका विश्लेषण सुव्यवस्थित होना चाहिए तथा एक तर्क की दूसरे तर्क से एवं एक अनुच्छेद की दूसरे अनुच्छेद से संगति रहनी चाहिए।
5. प्रारूपण की रचना अधिकतर अन्य पुरुष में ही होनी चाहिए। जहां 'मैं' या 'हम' का प्रयोग हो वे व्यक्तिबोधक न होकर पदबोधक होने चाहिए।
6. प्रारूपण सदैव सत्यनिष्ठ, पूर्वाग्रहहीन एवं पक्षपातरहित होने चाहिए।
7. प्रारूपण की शैली संक्षिप्त, सरल एवं सुबोध होनी चाहिए। इसमें कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने की क्षमता होनी चाहिए।
8. प्रारूपण की अपनी निश्चित प्रणाली होती है, निर्धारित वाक्यावली होती है और निश्चित नियम होते हैं। अतः इनका उल्लंघन करके अनौपचारिक पद्धति का प्रयोग सर्वथा अवांछनीय है।
9. प्रारूपण में सबसे ऊपर बाईं ओर पत्र–क्रमांक, दाईं ओर प्रशासकीय संस्थान का नाम, उसके नीचे दिनांक, बाईं ओर ही पत्र–क्रमांक के नीचे पत्र–प्रेषक का नाम, पद एवं पता अवश्य होना चाहिए।
10. प्रारूपण आरंभ करने से पहले विषय का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए, फिर संबोधन के रूप में महोदय/महोदया, प्रिय महोदय/प्रिय महोदया, माननीय मान्यवर, श्रीमन् आदि लिखना चाहिए और तत्पश्चात् विषय–विवेचना करते हुए तर्कपूर्ण एवं शिष्ट वाक्यावली का प्रयोग करना चाहिए।
11. यदि कोई सरकारी या गैर–सरकारी पत्र किसी व्यक्ति, संस्था, मंत्रालय, अनुभाग आदि के पत्र के उत्तर में लिखा जाना हो, उसका प्रारूपण तैयार करते समय उस पत्र की क्रम संख्या, दिनांक तथा संदर्भ का उल्लेख आरंभ में ही अवश्य कर देना चाहिए।
12. यदि कोई प्रारूपण कई अनुच्छेदों में करना हो तो प्रत्येक अनुच्छेद पर 1, 2, 3 क्रम से संख्या अवश्य डाल देनी चाहिए। इसके लिए क, ख, ग या अ, आ, इ आदि अक्षरों का प्रयोग भी हो सकता है।
13. यदि आवश्यक हो तो प्रारूपण में अपने तर्क की पुष्टि हेतु नियमों, उपनियमों, उच्चाधिकारियों के स्थानों, उद्धरणों, विनियमों आदि का उल्लेख भी अवश्य करना चाहिए।

टिप्पणी

14. प्रारूपण की समाप्ति पर स्वनिर्देश का संकेत अर्थात 'भवदीय', 'भवदीया', 'आपका', 'आपका आज्ञाकारी' आदि के रूप में अवश्य होना चाहिए। उसके नीचे अपने हस्ताक्षर और तत्पश्चात अपने पद का उल्लेख भी अवश्य करना चाहिए।
15. प्रारूपण द्वारा तैयार पत्र के साथ अपनी बात स्पष्ट करने के लिए अथवा किसी अन्य पत्र की सूचना देने के लिए या कोई हवाला देने के लिए कुछ पत्र या मूल पत्र अथवा कोई कागज भेजना जरूरी हो, तो उसके नीचे 'संलग्नक' शीर्षक देकर जितने भी पत्र या कागज हों उनको क्रम संख्या देकर नत्थी कर देना चाहिए और उनका उल्लेख संलग्न के नीचे क्रमशः कर देना चाहिए।
16. यदि किसी पत्र की प्रतियां अन्य अधिकारियों या कार्यालयों को भेजनी हों तो प्रारूपण के नीचे पहले पृष्ठांकन संख्या डालनी चाहिए और फिर 'प्रतिलिपि निम्नलिखित को प्रेषित' लिखकर उसके नीचे क्रमशः उन सभी अधिकारियों के नाम व पते लिखने चाहिए जिनको प्रतिलिपियां भेजी जा रही हैं।
17. यदि किसी पत्र को कोई अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारी की ओर से भेजना चाहता है तो प्रारूपण के अंत में पहले उसी वरिष्ठ अधिकारी के पत्र का उल्लेख होना चाहिए, फिर 'कृते' शब्द का प्रयोग करके उस अधिकारी के पद को लिखना चाहिए जिसके हस्ताक्षर से पत्र जा रहा है।
18. पहले उच्च अधिकारी या संबंधित अधिकारी से परामर्श करके प्रारूपण की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए, फिर उसका कच्चा रूप तैयार करके 'अनुमोदनार्थ' अपने अधिकारी के पास भेजना चाहिए और जब अधिकारी उसमें आवश्यक संशोधन कर दे या वैसे ही अनुमोदन करके लौटा दे, तब उसे टंकित करके यथास्थान भेजना चाहिए।

2.2.4 सरकारी पत्रों का प्रारूपण

शासन की ओर से विविध प्रकार के पत्रों का आदान–प्रदान नित्यप्रति होता है। जैसे, भारत सरकार की ओर से विदेशी सरकारों, विभिन्न दूतावासों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, विदेश स्थित अपने कार्यालयों, स्वदेश स्थित सरकारी कार्यालयों, प्रांतीय सरकारों, सहकारी संगठनों, कर्मचारी संघों, सार्वजनिक निकायों, राज्यों के अन्य या गैर–सरकारी व्यक्तियों आदि को जो भी पत्र लिखे जाते हैं या उनके पत्रों के उत्तर दिए जाते हैं, वे सब 'सरकारी पत्र' कहलाते हैं। मंत्रालयों के बीच होने वाले पारस्परिक पत्र–व्यवहार या अंतर्विभागीय पत्र–व्यवहार के लिए प्रयुक्त पत्रों को 'सरकारी पत्र' नहीं माना जाता। जब कोई अधिकारी सरकार की ओर से पत्र लिखता है, तब वह सरकारी आदेश या निर्देश को सूचित करने के लिए प्रथम पुरुष, एकवचन में ही पत्र लिखता है और इस वाक्य का प्रयोग करता है– 'मुझे आपको यह सूचित करने का आदेश हुआ है अथवा मुझे आपसे यह अनुरोध करने का निर्देश हुआ है।' जब कोई स्वायत्त संस्था या स्थानीय निकाय का अधिकारी पत्र लिखता है, तब वह उक्त वाक्य का प्रयोग न करके 'निवेदन है कि' अथवा 'सादर निवेदन किया जाता है कि' आदि वाक्य लिखा करता है क्योंकि वह जन साधारण से अधिक संपर्क रखता है और वह सरकार के सीधे अधीनस्थ भी नहीं होता।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. प्रारूपण अंग्रेजी के शब्द.....शब्द का हिंदी अनुवाद है।
2. सभी प्रकार के प्रारूपण.....पर आधारित होने चाहिए।

सही/गलत बताइए–

3. सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालयों में पत्र व्यवहार करते समय विविध प्रकार के प्रारूपणों का प्रयोग किया जाता है।
4. प्रारूपण की समाप्ति पर स्वनिर्देश का संकेत अर्थात 'भवदीय', 'भवदीया', 'आपका', आपका आज्ञाकारी के रूप में होना जरूरी नहीं है।

टिप्पणी

2.3 पत्र लेखन

पत्र मानव सभ्यता के विकास के वाहक हैं। आज के वैज्ञानिक युग में संचार–माध्यमों के विकास के द्वारा पत्राचार से हजारों मील दूर बैठे आत्मीयों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। पत्र आज की दुनिया में वैचारिक प्रगति के पहिए हैं। लिपि के विकास से पूर्व चित्रों अथवा विभिन्न संकेतों के माध्यम से सूचना–संप्रेषण का काम किया जाता था। पत्र लेखन में क्षमता प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति की कामना होती है। पत्र को हम विश्वबंधुत्व का एक प्रबल माध्यम भी कह सकते हैं। दुनिया के अनेक साधारण और असाधारण व्यक्तियों ने पत्रों के द्वारा मित्र बनाकर जीवन में महती सफलता प्राप्त की है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में इन पत्रों से जुड़ा हुआ है। किसी भी महापुरुष, नेता, साहित्यकार द्वारा लिखे गए पत्रों के द्वारा हम उसकी चिंतनकला, विचारधारा, जीवन दर्शन, देश–विदेश नीति तथा अन्य बहुत–सी उपयोगी क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

2.3.1 पत्र लेखन के गुण एवं विशेषताएं

1. **स्पष्टता** : पत्र किसी भी प्रकार का हो, उसमें स्पष्टता होनी चाहिए, यदि कोई पत्र–प्राप्तकर्ता पत्र लिखने वाले के मंतव्य को स्पष्ट रूप से ग्रहण न कर पाए तो ऐसी स्थिति में पत्र का उद्देश्य खत्म हो जाता है।
2. **संक्षिप्तता** : संक्षिप्तता एक आदर्श पत्र–लेखन का मूलभूत गुण है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक शब्दों का प्रयोग ही करना चाहिए। एक अच्छा पत्र तभी संक्षिप्त माना जाता है, जब उसमें प्रयुक्त किया गया एक–एक शब्द उपयोगिता और आवश्यकता लिए हुए हो।
3. **मौलिकता** : पत्र की प्रस्तुति नवीन और मौलिक ढंग से होनी चाहिए। ऐसा करने से जहां कही हुई बात पत्र–प्राप्तकर्ता के हृदय को प्रसन्न करती है, वहीं उस पर अपना एक विशेष प्रभाव भी छोड़ती है।
4. **सुसंबद्धता** : पत्र लिखते समय जिस विषय का पत्र प्राप्तकर्ता तक पहुंचता है, प्रेषक उसी को मुख्य रूप से प्रस्तुत करे। पत्र में मुख्य विषय से हटकर कही गई कोई अन्य बात पत्र की एकान्विति या सुसंबद्धता को भंग कर देती है। पत्र में निर्दिष्ट सभी बातें एकसूत्रता या तारतम्यता में कही गई होनी चाहिए।
5. **यथार्थता** : इस गुण का संबंध मुख्य रूप से औपचारिक पत्रों से है, क्योंकि इस प्रकार के पत्रों में तथ्य–प्रस्तुति का होना आवश्यक होता है। औपचारिक पत्रों के व्यावसायिक और कार्यालयी– दोनों रूपों के पत्रों में यह गुण अहम् भूमिका निभाता है।
6. **संपूर्णता** : पत्र लिखने वाले के लिए यह जरूरी होता है कि वह अपने कथ्य या मंतव्य को संपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करे। उसे पढ़ने के उपरांत पत्र प्राप्तकर्ता के मन में किसी भी प्रकार की जिज्ञासा या शंका नहीं रहनी चाहिए।

टिप्पणी

7. **सहजता और सरलता** : सहजता का अर्थ है– स्वाभाविकता। पत्र में लिखी हर बात सहज और अकृत्रिम होनी चाहिए। सरलता से अभिप्राय भाषा की सरलता से है। पत्र की भाषा में संप्रेषणीयता का गुण होना चाहिए।
8. **शालीनता** : शालीनता का गुण औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के पत्रों में आवश्यक है। इसमें पत्र के लिखने वाले के व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा, पद, व्यावहारिक आचरण और स्वभाव की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।
9. **प्रभावान्विति** : उत्कृष्ट पत्र–लेखन का महत्वपूर्ण गुण उसका समग्र प्रभावान्वित होना है। पत्र की भाषा, शैली और प्रस्तुतीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि पत्र प्राप्तकर्ता के हृदय पर विशेष छाप छोड़े।

2.3.2 पत्र लेखन में विशेष उल्लेखनीय बातें

पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो लिखने वाले के हाथ से छूटकर किसी अन्य के हाथ में जाता है। उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि बोलते समय एक बार सोचो और लिखते समय तीन बार। भावावेश में कभी मत लिखो। क्रोध, द्वेष आदि के आवेश में लिखे गए पत्रों के लिए बड़े–बड़े दिग्गजों को क्षमायाचना करते हुए देखा गया है। लिख चुकने के बाद संपूर्ण पत्र को एक बार सावधानी से पढ़ लेना चाहिए, जिससे शीघ्रता में लिखी गई वर्तनी आदि की अशुद्धियों को ठीक किया जा सके तथा फालतू बातों को पत्र से काट दिया जाए। एक सफल पत्र तैयार करने के लिए, उसे काट–छांट आदि से बचाने के लिए समझदार लोग पत्र की कच्ची रूपरेखा पहले तैयार कर लेते हैं। प्राप्तकर्त्ता का पता लिफाफे आदि पर सावधानीपूर्वक लिखा जाना चाहिए, जिसमें जनपद, प्रांत तथा पिन कोड आदि का उल्लेख पत्र को उसके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए अत्यंत अनिवार्य है। यदि पत्र में प्रमाण स्वरूप कुछ प्रमाण–पत्र लगाने पड़ें, तो उन पर पहले क्रमांक डालें, फिर पत्र के अंत में बांईं ओर उनका उल्लेख करें, जैसे–

संलग्नक– 1. हाई स्कूल प्रमाण–पत्र, 2. चरित्र प्रमाण–पत्र आदि

2.3.3 पत्र लेखन के प्रकार

पत्र व्यवहार विभिन्न प्रकार से किया जाता है, समय और स्थान के अनुसार उनका प्रारूप परिवर्तित हो जाता है। पत्रों के मुख्य प्रकारों का वर्णन यहां किया जा रहा है।

1. **कार्यालयी पत्र**–राजकीय सहायता प्राप्त संस्थाओं एवं कार्यालयों द्वारा किसी भी संस्था, व्यक्ति या अन्य कार्यालयों को जो पत्र लिखे जाते हैं उन्हें कार्यालयी पत्र कहते हैं। कार्यालयी पत्रों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–
   (क) **स्पष्टता**–पत्र की विषय–वस्तु बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे पत्र को पाने वाला उसके सही रूप को ग्रहण कर सके। पत्र–लेखक को पत्र की स्पष्टता का ध्यान रखना चाहिए।
   (ख) **अचूकता**–पत्र लिखने वाले को कार्यालयी पत्र लिखते समय उसमें प्रस्तुत विधान, अवतरण, संदर्भ और उसके तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। इसके लिए बहुत सावधानी से उसका मसौदा तैयार करना चाहिए।

टिप्पणी

(ग) **संक्षिप्तता**–पत्र लिखते समय अनावश्यक शब्द–प्रयोग, एक ही बात को बार–बार न लिखकर पत्र को संक्षिप्त व केवल आवश्यक जानकारी देते हुए लिखना चाहिए।

(घ) **परिपूर्णता**–परिपूर्ण पत्र हम उसे कहेंगे जिसमें पत्र के विषय और उद्देश्य से संबंधित सारी जानकारियां उस पत्र में आ जाएं। पूर्णता के लिए हस्ताक्षर, दिनांक, क्रमांक का होना आवश्यक है।

(ङ) **भाषा**–व्याकरण की दृष्टि से कार्यालयी पत्र की भाषा शुद्ध, सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए

कार्यालयी पत्र के रूप

केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों में अनेक स्तर पर पत्राचार होता है जिसके अनेक रूप होते हैं, जिनका संक्षिप्त रूप में विवरण किया जा रहा है। ये पत्र निम्न प्रकार के होते हैं–

• सरकारी पत्र

कार्यालयी पत्रों में सरकारी पत्रों का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। इन्हें आधिकारिक एवं नियमित पत्र भी कहते हैं। सरकारी पत्रों का प्रयोग एक सरकार द्वारा दूसरी सरकार को, उसके अधीन राज्य सरकार को, निर्वाचन आयोग को, संघ लोक सेवा आयोग, योजना आयोग, अर्ध सरकारी आयोगों एवं निकायों को, विभिन्न अर्धसरकारी/गैर सरकारी संघों, संरचनाओं, प्रांतीय सरकारों प्रमुख मामलों में भारत सरकार को तथा अपने क्षेत्र के उच्च न्यायालयों, आयोगों एव निगमों, विभागीय अध्यक्षों एवं अधिकारियों को, सरकार से अलग सार्वजनिक प्रतिष्ठानों एवं स्वतंत्र कार्यालयों आदि के लिए किया जाता है।

इसके निम्नलिखित अंग माने गए हैं जिनका सरकारी पत्र लिखते समय ध्यान रखना चाहिए–

1. पत्र की संख्या
2. कार्यालय का नाम
3. प्रेषक का नाम एवं पद
4. प्राप्तकर्ता का नाम, पद एवं पता
5. दिनांक
6. संबोधन
7. पत्र की मुख्य विषय वस्तु
8. स्वनिर्देश
9. हस्ताक्षर
10. संलग्नक, यदि हो तो

उदाहरण– सरकारी पत्र के कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं जो निम्न प्रकार से हैं–

टिप्पणी

उदाहरण 1

नई दिल्ली

दिनांक : 6 जुलाई, 2013

प्रेषक :

विनोद कुमार शर्मा
डेस्क अधिकारी
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
नई दिल्ली।

सेवा में

अध्यक्ष
महाराष्ट्र हिंदी परिषद
पुणे–38

विषय : हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता योजना के तहत दिए जाने वाले अनुदान के संबंध में।

महोदय,

आपके दिनांक 12 मई, 2012 के पत्र संख्या 1/10/05 के संबंध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि आप अपना प्रस्ताव निर्धारित प्रपत्र में सभी आवश्यक विवरण/दस्तावेज के साथ इस मंत्रालय को यथाशीघ्र प्रेषित करें, ताकि इस संबंध में कार्यवाही की जा सके।

संलग्न : योजना की प्रति

भवदीय
हस्ताक्षर
विनोद कुमार शर्मा
डेस्क अधिकारी

उदाहरण 2

क्रम संख्या 02/102/9/05 सूचना

दिनांक : 5 जून, 2013

भारत सरकार
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

प्रेषक : सूर्य प्रकाश शर्मा
अपर सचिव, नई दिल्ली–1

टिप्पणी

सेवा में

महानिदेशक
आकाशवाणी
नई दिल्ली

विषय : निदेशक के पद का स्थायीकरण

महोदय,

उपर्युक्त विषय पर आपके दिनांक 10 अप्रैल, 2013 के पत्र संख्या 10/100/6 के संदर्भ में मुझे यह सूचित करने का निर्देश हुआ है कि राष्ट्रपति ने सूचना एवं प्रसारण सेवाओं के महानिदेशालय में विद्यमान अस्थायी निदेशक के पद को दिनांक 1 जुलाई, 2013 से स्थायी बनाने हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी है।

उक्त स्वीकृति हेतु वित्त मंत्रालय ने अपनी सहमति दिनांक 15 मई, 2012 की अपनी औपचारिक टिप्पणी संख्या 11/110 वि, के अनुसार प्रदान की है।

भवदीय

हस्ताक्षर
सूर्य प्रकाश शर्मा
अवर सचिव, भारत सरकार

उदाहरण 3

दिनांक 10 जनवरी, 2013

संदर्भ सं./षा.प्र.इ/900/84

शाखा प्रबंधक
इटावा

श्री रमेश मिश्र
16, कृष्ण कुंज
राजनाथ चौक, पाली

विषय : जमानोंद–आपका बचत बैंक खाता सं. 1369

प्रिय महोदय,

आपको सादर सूचित किया जाता है कि हमने अपने बैंक की इस शाखा में उपरोक्त खाते में रुपए 1,60,768 (रुपए एक लाख साठ हजार सात सौ अड़सठ) की राशि जमा कर दी है। यह राशि आपकी भविष्य निधि की है।

भवदीय

हस्ताक्षर
शाखा प्रबंधक

टिप्पणी

• अर्ध सरकारी पत्र

सरकारी कार्यों के लिए अर्ध सरकारी पत्रों का प्रयोग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है–

(क) पत्र पाने वाले का ध्यान किसी भी विषय की तरफ व्यक्तिगत रूप से आकर्षित करना।

(ख) किसी भी सरकारी कार्य को करने की विधि के बारे में अधिकारियों द्वारा बिना किसी औपचारिकता के आपस में विचार–विमर्श करना।

(ग) यदि कोई समस्या सरकारी अनुस्मारक देने पर भी नहीं सुलझती, तो उसे जल्दी निपटाने के लिए किसी विशेष अधिकारी का ध्यान आकर्षित करना।

अर्ध सरकारी पत्र अधिकतर विशेष अधिकारी को ही लिखा जाता है। इसमें भेजने वाले की भाषा सरल, स्पष्ट एवं विनम्र होनी चाहिए। पत्र के अंत में भेजने वाले के केवल हस्ताक्षर ही होते हैं, उसके पद का नाम आदि नहीं लिखा जाता है।

उदाहरण 1

भारतीय साधारण बीमा निगम

दिनांक 25 जून, 2013

प्रहलाद शर्मा
उपप्रबंधक
प्रधान कार्यालय
मुंबई

संदर्भ सं./6(अ स प) 2011

प्रिय श्री महेश

आपके आंचलिक प्रबंधक के पत्र से ज्ञात हुआ है कि आपने हाल ही में पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त कर ली है। आपके द्वारा अर्जित इस उच्च स्तरीय शैक्षिक उपाधि पर हमें गर्व है। इस अवसर पर हमारे प्रबंधक महोदय एवं समस्त कर्मचारियों की ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करें। आशा है, आपका अर्जित ज्ञान निगम में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि के लिए सहायक सिद्ध होगा।

शुभ कामनाओं सहित

आपका
हस्ताक्षर
(प्रहलाद शर्मा)

प्रति :

डॉ. सौरभ जोशी
राजभाषा अधिकारी
भारतीय साधारण बीमा निगम
आंचलिक कार्यालय, पुणे–24

टिप्पणी

उदाहरण 2

अ. सं. पत्र संख्या 5–6/70–75 दिनांक 22 अप्रैल, 2013

भारत सरकार
रेल मंत्रालय
नई दिल्ली

प्रिय श्री नायडू जी,

आपका ध्यान इस मंत्रालय के पत्र दिनांक 3 मार्च, 2011 के क्रम संख्या 5/12/23–25 की ओर आकृष्ट किया जाता है। उक्त पत्र में कर्मचारियों को स्थायी करने के संदर्भ में विशिष्ट नियमावली की प्रतिलिपि मांगी गई थी, ताकि केंद्रीय मंत्रालय से संबंधित निर्देशों का अध्ययन किया जा सके, परंतु अभी तक नियमावली की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई है।

नियमावली के न मिलने के कारण, स्थायी न किए जाने वाले कर्मचारियों में असंतोष की भावना पनपती जा रही है, इसलिए शीघ्र ही नियमावली भेजने की व्यवस्था करें, ताकि इस संबंध में इस कार्यालय में उचित कार्यवाही की जा सके।

आपका
हस्ताक्षर
(कमल प्रसाद द्विवेदी)

श्री नायडू
संयुक्त सचिव, वित्त मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली।

• अनुस्मारक

जब किसी मंत्रालय या कार्यालय से, पूर्व पत्र में मांगी गई सूचना, निर्णय या टिप्पणी समय पर प्राप्त नहीं होती उस समय अनुस्मारक का प्रयोग किया जाता है। अनुस्मारक सरकारी और अर्धसरकारी पत्र के रूप में लिखा जा सकता है।

उदाहरण 1

दिनांक 6 जुलाई, 2013 अ.स. पत्र संख्या 6/12/24
सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया
प्रधान कार्यालय, मुंबई

प्रिय विकास जी,

हम आपका ध्यान इस कार्यालय के दिनांक 4 दिसंबर, 2012 के परिपत्र सं./प्र./हिंदी/100 की ओर आकृष्ट कराते हैं, जिसमें बैंक की हिंदी प्रयोग संबंधी रिपोर्ट तुरंत भेजने के निर्देश दिए गए थे। हमें खेद है कि आपके अंचल क्षेत्र की रिपोर्ट हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। कृपया उक्त रिपोर्ट तुरंत भेज दें।

भवदीय
संजय त्यागी
वरिष्ठ हिंदी अधिकारी

प्रति :
श्री विकास गुप्ता
हिंदी अधिकारी
क्षेत्रीय कार्यालय

टिप्पणी

उदाहरण 2. (ज्ञापन)

संख्या–च–403/28/78 दिनांक 3 मई, 2013
रेल सेवा आयोग
दक्षिण क्षेत्र, चेन्नई

विषयः टी.एक्स.आर. पद का चुनाव।

श्री विश्वनाथ शास्त्री को सूचित किया जाता है कि वे जनवरी, 2013 में ली गई उक्त पद की चयन–परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किए गए हैं, अतः वे 20 मई, 2013 को प्रातः 10.00 बजे डॉक्टरी जांच के लिए इस कार्यालय में उपस्थित हों।

विकास शर्मा
उपाध्यक्ष,
रेलवे सर्विस कमीशन

• कार्यालय आदेश

कार्यालय आदेश का प्रयोग किसी अधिकारी के द्वारा मंत्रालय, विभाग, प्रभाग, अनुभाग एवं कार्यालय के कर्मचारियों के लिए संबंधित कार्य करने के लिए किया जाता है। अधिकारी द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करना संबंधित कर्मचारियों का कर्तव्य हो जाता है। अधिकतर ये कार्यालय आदेश कर्मचारियों की वेतन–वृद्धि जारी करने, पदोन्नति करने या उसे रोकने के लिए छुट्टी मंजूर करने के लिए, प्रयोग किए जाते हैं।

उदाहरण 1

क्रम संख्या 100/1 दिनांक 10 जुलाई, 2013

भारत सरकार
रेल मंत्रालय
नई दिल्ली

कार्यालय आदेश

भारतीय रेल सेवा में अधीक्षक के पद पर नियुक्त डॉ. नरेंद्र को, उनकी पदवृद्धि पर दिनांक 1 अगस्त, 2012 से रेल मंत्रालय के सचिवालय से स्थानापन्न रूप में प्रशासन अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया है। अगले आदेश तक उनकी नियुक्ति सामान्य अनुभाग 'अ' में कर दी गई है।

रीना कुमारी
अपर सचिव, भारत सरकार

पृष्ठांकन सं. 8/6/76

10 जुलाई, 2013

टिप्पणी

प्रतिलिपि निम्नलिखित को सूचनार्थ भेजी जाती है–
1. मंत्रालय के सभी विभाग, अनुभाग
2. डॉ. सुरेशचंद्र, प्रशासन अधिकारी
सामान्य अनुभाग 'अ'

कृते

अपर सचिव, भारत सरकार

• सूचना

कई बार सरकार जन–साधारण को या किन्हीं संबंधित व्यक्तियों को सूचित करने के लिए, नौकरी हेतु रिक्त स्थानों की, नीलामी की, निविदा की, न्यायालयीन नोटिस की, कार्यालय के स्थान परिवर्तन की सूचनाएं प्रायः समाचार–पत्रों में प्रकाशित करवाती है। लेकिन इन सूचनाओं का रूप प्रेस नोट व प्रेस विज्ञप्तियों से बिल्कुल अलग होता है। इसमें सूचना प्रकाशित करने वाले कार्यालयों का नाम और अंत में हस्ताक्षर कर्ता का नाम व पता लिखा जाता है। ये सूचनाएं संक्षिप्त, स्पष्ट व सुनिश्चित होती हैं।

उदाहरण 1

मध्य रेलवे

सूचना

यात्रियों की सुविधा के लिए थाना (मुंबई) स्टेशन पर पूछताछ कार्यालय में टेलीफोन की व्यवस्था की गई है, जिसके नंबर इस तरह हैं–

पूछताछ कार्यालय : 6667129, 6667130, 6667031

उदाहरण 2

महाराष्ट्र सरकार
(पुलिस विभाग)
टेंडर सूचना

महाराष्ट्र राज्य पुलिस विभाग द्वारा पुलिस कर्मचारियों की वर्दियां बनवाने के लिए स्वीकृत ठेकेदारों से 30 जनवरी, 2013 को दोपहर 2.00 बजे तक मुहर बंद टेंडर आमंत्रित किए जाते हैं।

विशिष्ट विवरणों की सूची प्रति सेट 5 रुपए अदा करने पर अधोहस्ताक्षरी के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

यदि कोई अन्य जानकारी अपेक्षित हो तो ठेकेदार 29 जनवरी, 2013 तक प्रतिदिन दोपहर 2.00 बजे से 3.00 तक अधोहस्ताक्षरी से व्यक्तिगत रूप से मिल सकते हैं।

दिनांक 8 जनवरी, 2013

हस्ताक्षर
पुलिस अधीक्षक
महाराष्ट्र राज्य पुलिस

टिप्पणी

• प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट

सरकार के किसी भी निर्णय को विस्तृत रूप में प्रचारित करने के लिए प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट का प्रयोग किया जाता है। इन्हें समाचार–पत्रों में ही प्रकाशित किया जाता है। प्रेस विज्ञप्ति किसी विषय पर सरकार का नपा–तुला बयान है और प्रेस नोट सरकार की ओर से दी जाने वाली जानकारी है।

उदाहरण

विषय : भारत तथा पाकिस्तान के बीच राजनैतिक संबंध।

भारत सरकार और पाकिस्तान की सरकार इस बात पर सहमत हो गई हैं कि दोनों के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किए जाएं। आशा है कि इस व्यवस्था से दोनों देशों में पारस्परिक संबंध और भी अधिक सुदृढ़ हो जाएंगे, जो दोनों के लिए लाभकारी होंगे।

मुख्य सूचना अधिकारी, प्रेस ब्यूरो, नई दिल्ली को प्रेस विज्ञप्ति जारी करने तथा उसे विस्तृत रूप से प्रसारित करने के लिए प्रेषित।

हस्ताक्षर
ललित पांडे
अपर सचिव, भारत सरकार
विदेश मंत्रालय
नई दिल्ली, दिनांक 15 जुलाई 2013

(प्रेस नोट)

पूर्वोत्तर रेलवे
गोरखपुर (उ.प्र.)
दिनांक 22 सितंबर, 2013

पूर्वोत्तर रेलवे ने अपने कर्मचारियों और अधिकारियों में हिंदी का प्रचार–प्रसार बढ़ाने के लिए इस दिशा में अनेक प्रभावशाली प्रयास किए हैं, जैसे 17 हिंदी प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना, हिंदी टंकण और आशुलिपि प्रशिक्षण, हिंदी में परीक्षा–विशेष योग्यता के लिए पुरस्कार।

हिंदी का ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों को अपने आवेदन–पत्र हिंदी में देने और हिंदी में प्राप्त होने वाले पत्रों के उत्तर हिंदी में भेजने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

उदाहरण 1 (प्रेस विज्ञप्ति)

(इसके प्रारंभ में यह निर्देश होता है कि इसे कब छापा जाए। यह निर्देश नकारात्मक होता है)

सोमवार, दिनांक 2 अगस्त, 2013 को सांयकाल 5.00 बजे से पूर्व प्रसारित, प्रकाशित न किया जाए।

• अन्य कार्यालयों के पत्र

सरकारी कार्यालयों के अलावा अन्य कार्यालय भी होते हैं। इनमें बस इतना ही अंतर होता है कि सरकारी कार्यालयों के पत्रों की एक निश्चित रूपरेखा होती है, जबकि अन्य कार्यालयों के पत्रों को लिखते समय आवश्यकतानुसार छूट ली जा सकती है। अन्य

टिप्पणी

कार्यालयों में– सेवाभावी संस्थाओं के कार्यालय, विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों के कार्यालय तथा व्यावसायिक प्रचार/विस्तार/शर्तों आदि के लिए स्थापित किए गए कार्यालय आते हैं। इनमें अधिकतर सरकारी पत्र, अर्ध सरकारी पत्र, ज्ञापन, परिपत्र, सूचना, तार आदि का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण 1. (पूछताछ संबंधी पत्र)

दिनांक 12 जून, 2013

विद्या बुक्स

(विद्यालयी एवं महाविद्यालयी पुस्तकों के वितरक व विक्रेता)

58, नेता जी सुभाषचंद्र मार्ग,
तार : विद्या बुक्स, अहमदाबाद
दूरभाष 3517

सेवा में
श्री सन्मार्ग प्रकाशन
दिल्ली–110007

प्रिय महोदय,

कृपया लौटती डाक से अपने प्रकाशनों का नवीनतम सूचीपत्र भिजवाने का कष्ट करें, साथ ही अपनी व्यावसायिक शर्तें भी लिखें। यदि आपकी शर्तें संतोषजनक और आकर्षक पाई गईं तो आपके प्रकाशन की पुस्तकें हम अपनी दुकान में विक्रय के लिए रखना चाहते हैं।

आपका पत्र मिलने पर आपको पुस्तकों के लिए आदेश भेजा जाएगा।

धन्यवाद

भवदीय

व्यवस्थापक
विद्या बुक्स
अहमदाबाद

2. व्यावसायिक पत्र

व्यावसायिक पत्रों के प्रकार

ऐसे पत्रों का संबंध व्यक्ति के अपने व्यवसाय से संबंधित होता है। एक व्यापारी/व्यापारिक संस्था की ओर से दूसरे व्यापारी दूसरी व्यापारी संस्था के नाम लिखे जाने वाले पत्र को व्यावसायिक पत्र कहते हैं। इसमें व्यापारी माल भेजने संबंधी निर्देश, नया माल मंगवाने के लिए, राशि के भुगतान के विषय में जानकारी देता है। इनकी भाषा सरल, सहज व स्पष्ट होती है।

पत्र लिखना अपने–आप में एक कला है। यह प्राचीन समय से चली आ रही है, व्यावसायिक जगत में मौखिक शब्दों की अपेक्षा लिखित शब्दों का महत्व अधिक है, क्योंकि व्यावसायिक

टिप्पणी

क्षेत्रों में पत्र अपना अलग ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अतः इस क्षेत्र में भी पत्र लिखने की अपनी ही एक कला होती है, ऐसे पत्र बड़ी सूझ–बूझ के साथ लिखे जाते हैं। इस सूझ–बूझ के बिना हम अपनी समस्या और कार्य सही रूप में नहीं करवा सकते। व्यावसायिक क्षेत्र में मूल्य–पत्र, विज्ञापन–पत्र, क्रयादेश–पत्र, विक्रय–पत्र, अनुरोध–पत्र एवं निविदा पत्र आदि आते हैं। वर्तमान समय में व्यावसायिक क्षेत्र में पत्रों का अपना अलग ही महत्व है।

पत्र कई प्रकार के होते हैं। व्यक्ति, संदर्भ, विषय और क्षेत्र के अनुसार पत्रों को लिखने का तरीका भी अलग–अलग होता है। व्यावसायिक पत्रों को लिखते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(क) **प्रेषक का नाम व पता**–व्यावसायिक पत्रों में सबसे ऊपर प्रेषक का नाम व पता लिखा होता है, जिससे पत्र पाने वाले को पत्र देखते ही पता चल जाता है कि पत्र किसने भेजा है तथा कहां से आया है। प्रेषक का नाम व पता ऊपर दाएं कोने में लिखा जाता है। साथ में फोन नं., फैक्स नंबर तथा ई–मेल आदि भी लिखा जाता है।

(ख) **पत्र पाने वाले का नाम व पता**– पत्र के बाईं ओर पत्र प्राप्त करने वाले का नाम व पता लिखा जाता है तथा कभी–कभी उसका केवल नाम या पदनाम या दोनों भी दिए जाते हैं। जैसे–नाम, पदनाम, कार्यालय का नाम, स्थान, जिला, शहर व पिन कोड आदि।

(ग) **विषय संकेत**– व्यावसायिक पत्रों में यह आवश्यक है कि पत्र पाने वाले के नाम व पते के पश्चात बाईं ओर जिस विषय में पत्र लिखा गया हो, उस विषय को संक्षेप में लिखा जाए, ताकि जिससे पत्र को देखते ही पता चल जाए कि पत्र किस विषय में है और उसे आगे की कार्यवाही के लिए उससे संबंधित अधिकारी के पास भेजा जा सके। उदाहरण के लिए विषय–नियुक्ति पत्र।

(घ) **संबोधन**–पत्र भेजने वाला सबसे पहले, पत्र पाने वाले के लिए आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के संबोधन सूचक शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे– प्रिय महोदय या प्रिय महोदया, माननीय/मानवीय, महामहिम आदि।

(ङ) **पत्र की मुख्य सामग्री**– संबोधन के बाद हम पत्र के मूल विषय पर आते हैं। यह नये पैराग्राफ से शुरू किया जाता है। यदि व्यावसायिक पत्रों में किसी विषय पर पहले पत्राचार हो चुका हो या हो रहा हो तो उसके संदर्भ में सबसे पहले संकेत दिया जाना चाहिए; जैसे– उपर्युक्त विषय पर कृपया दिनांक..... का अपना पत्र सं..... देखें। कोई भी नया तथ्य, नवीन तर्क, नई मांग तथा नया स्पष्टीकरण अलग अनुच्छेद से ही शुरू करना चाहिए। व्यावसायिक पत्रों में विषयों को एक–दूसरे से अलग रखना चाहिए, आपस में मिलाना नहीं चाहिए।

(च) **अभिव्यक्ति शैली**– हमारे पत्र लिखने की शैली स्पष्ट होनी चाहिए, इसकी भाषा स्पष्ट, सरल व सहज होनी चाहिए। वाक्य छोटे होने चाहिए। पत्र पूरी तरह स्पष्ट होना चाहिए, जिससे प्राप्त करने वाले के मन में संदेह न रहे। अगर यह सब बातें पत्र में नहीं होंगी तो पत्र प्राप्त करने वाला पत्र पढ़कर संतुष्ट नहीं हो पाएगा। इससे उसे नाराजगी भी हो सकती है।

टिप्पणी

(छ) **समापनसूचक शब्द–** पत्र समाप्त होने पर भेजने वाला अपने हस्ताक्षर से पहले प्राप्तकर्ता से अपने संबंध के विषय में कुछ शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे– आपका आज्ञाकारी, विनीत, शुभाकांक्षी आदि। व्यावसायिक पत्रों में अधिकतर 'भवदीय' शब्द का प्रयोग होता है। आज के समय में ऐसे पत्रों में बाएं कोने में यह सब लिखा जाता है। पहले दाहिने तरफ लिखा जाता था।

(ज) **हस्ताक्षर और नाम–** पत्र समाप्ति के बाद नीचे भेजने वाले के हस्ताक्षर और फिर उसका पूरा नाम कोष्ठक में दिया जाता है। कभी–कभी बड़े अधिकारी की ओर से कोई अन्य अधिकारी या कर्मचारी पत्र पर हस्ताक्षर करता है तो ऐसे में 'कृते' प्राचार्य, 'कृते' निदेशक आदि लिखा जाता है।

(झ) **संलग्नक–** मूल पत्र के साथ कभी–कभी जरूरी कागजात भी भेजने पड़ते हैं। उन्हें ही पत्र में 'संलग्न' या संलग्नक कहते हैं। 'संलग्नक' भवदीय शब्द के ठीक बाईं ओर लिखा जाता है। यहां पर 'संलग्न पत्र' शीर्षक लिखकर सब पत्रों या कागजों का विवरण संकेत के रूप में लिखा जाता है। ये संकेत संख्या 1, 2, 3 के द्वारा क्रमशः देनी चाहिए।

(ञ) **पुनश्च–** 'पुनश्च' शब्द का अर्थ होता है– 'एक बार पुनः'। कभी–कभी पत्र लिखते समय कोई महत्वपूर्ण बात छूट जाती है। पत्र पूरा टाइप होकर आ जाता है। तब जो बात छूट गई है, उसको लिखने के लिए समापनसूचक शब्द, हस्ताक्षर, संलग्नक आदि लिखने के बाद अंत में सबसे नीचे 'पुनश्च' शीर्षक देकर छूटा हुआ अंश लिख दिया जाता है, फिर एक बार अपने हस्ताक्षर कर दिए जाते हैं।

व्यावसायिक पत्र का नमूना

रबर स्टाम्प

प्रेषक का नाम :

पद नाम

पत्र संख्या/संदर्भ:.....

पाने वाले का नाम

पद नाम

कार्यालय

पूरा पता

पता

फैक्स संख्या .....

टेलीफोन नं. .....

दिनांक : .....

विषय: .....

प्रिय महोदय/महोदया

पत्र की विषय–वस्तु

आभार या धन्यवाद ज्ञापन

समापनसूचक शब्द

भवदीय

हस्ताक्षर

(पूरा नाम)

पद नाम

संलग्नक : 1.

2.

3.

सूचनार्थ प्रतिलिपि

1. नाम व पता.....
2. नाम व पता .....

पुनश्चः छूटा हुआ अंश लिखना

हस्ताक्षर

व्यावसायिक पत्रों को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं–

1. दर (मूल्य) जानने के लिए
2. मूल्य–सूची मंगाने के लिए
3. वस्तु–विशेष का नमूना मंगाने के लिए
4. विक्रय–प्रस्ताव संबंधी पत्र
5. क्रयादेश संबंधी पत्र
6. व्यापारिक संदर्भ संबंधी पत्र
7. भुगतान संबंधी पत्र
8. बीमा–पत्र
9. बैंक पत्र
10. निविदा पत्र
11. एजेंसी लेन–देन संबंधित पत्र

व्यावसायिक पत्रों में संबोधन के लिए महोदय, प्रिय महोदय, मान्यवर व श्रीमान आदि का प्रयोग किया जाता है।

विषय : बिजली के बिल की शिकायत संबंधी पत्र

पंजीकृत

51/10, शांतिनगर, मेरठ

दिनांक : 20–5–2013

सेवा में

अधिशासी अभियंता

मेरठ बिजली सप्लाई कंपनी

(वितरण शाखा)

मेरठ

टिप्पणी

टिप्पणी

महोदय

विषय : मीटर–संख्या एम. एल. 1050

निवेदन है कि इस बार उक्त मीटर संख्या के संबंध में मेरे पास अत्यधिक बढ़ा हुआ बिल भेजा गया है। पिछले दस वर्षों के अभिलेख द्वारा स्पष्ट हो जाएगा कि मेरा बिल 350 रुपए से अधिक कभी नहीं आया। परंतु इस बार के बिल की देय धनराशि 900 रुपए से अधिक दिखाई गई है। मेरी समझ में नहीं आता, इतना बिल क्यों भेजा गया है।

आपसे निवेदन है कि आप इस मामले में गंभीरतापूर्वक आवश्यक जानकारी प्राप्त करके पता लगाएं कि किस प्रकार से लापरवाही करके उपभोक्ता को परेशान करने का प्रयास किया गया है।

आशा है, आप आवश्यक कार्यवाही करके संशोधित बिल भिजवाने की कृपा करेंगे। मूल बिल संलग्न है।

सधन्यवाद

भवदीय

ह. महीपाल सिंह

संलग्नक–1

बिजली का मूल बिल

नियुक्ति स्वीकृति–पत्र

25/15 नागर कॉलोनी

खतौली

दिनांक 15 मई, 2013

सेवा में

प्रबंधक

सर्वश्री जिंदल एंड कंपनी

लाल डिग्गी सरदारशहर

महोदय

मेरी नियुक्ति की स्वीकृति संबंधी आपका दिनांक 28.3.2013 का पत्र संदर्भ एल/252/2012–13 प्राप्त हुआ। धन्यवाद। मैं दिनांक 3.7.2013 को पूर्वाह्न कार्यभार संभालने हेतु आपके कार्यालय में उपस्थित होऊंगा।

सधन्यवाद

भवदीय

हस्ताक्षर

सौरभ मिश्रा

टिप्पणी

पुत्र का माता के नाम पत्र

दिनांक : 5 अप्रैल, 2013

बी.आर. अंबेडकर होस्टल

महाराजा कालेज, दिल्ली

आदरणीय माता जी,

सादर चरण स्पर्श।

आपका पत्र मुझे समय पर मिल गया था, लेकिन विश्वविद्यालय परीक्षा में व्यस्त होने के कारण मैं पत्र का उत्तर तुरंत नहीं दे पाया। मेरी चिंता बिलकुल भी न करें, मैं ठीक प्रकार से हूं। अब मेरा स्वास्थ्य भी ठीक है। यहां मेरी पढ़ाई ठीक चल रही है। सभी प्रोफेसर अच्छे और छात्रों के शुभचिंतक हैं। वे खूब मन लगाकर पढ़ाते हैं और छात्रों की समस्याओं पर भी अच्छी तरह से ध्यान देते हैं।

होस्टल के वार्डन तो हम लोगों की फिक्र अपने बच्चों की तरह करते हैं। वे हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि छात्रों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। मेरे कमरे का साथी भी बहुत अच्छा है। वह जयपुर का रहने वाला है। वहां उसके पिता जी का सोने–चांदी का कारोबार है। उसका व्यवहार मेरे प्रति भाई जैसा है। सायंकाल को हम लोग विश्वविद्यालय के क्रीड़ा मैदान पर हॉकी और वॉलीबाल खेलते हैं। विश्वविद्यालय की हॉकी की टीम में सदस्य के रूप में मेरा चयन हो गया है। टीम शीघ्र ही अंतर–विश्वविद्यालयी हॉकी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए कोलकाता जाएगी। आप आशीर्वाद दें कि हमारी टीम विजयी होकर लौटे। मैं दशहरे की छुट्टियों में घर आऊंगा।

आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें तथा पत्र का उत्तर शीघ्र देने की कृपा करें। रामू एवं राजी को आशीर्वाद। पिता जी को चरण स्पर्श।

आपका प्यारा बेटा

शिवांश

परीक्षा में असफल हो जाने पर भाई को धैर्य बंधाने हेतु पत्र

125–डी, साकेत, जयपुर

दिनांक : 3 मई, 2013

प्रिय चिरंजीव अनिल,

शुभ आशीर्वाद।

आशा है, तुम सकुशल होंगे। मुझे पिता जी द्वारा भेजे गए पत्र से ज्ञात हुआ कि तुम विश्वविद्यालय की मुख्य परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए हो। यह जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि तुम विश्वविद्यालय की परीक्षा में फेल हो सकते हो। अवश्य ही कोई विशेष कारण रहा होगा जो तुम उत्तीर्ण नहीं हो पाए।

टिप्पणी

खैर, जो हुआ उसे अब भूल जाओ। दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। मत भूलो कि "गिरते हैं शहसवार ही मैदान–ए–जंग में"। इस बार मैं कुछ और किताबें भेज रहा हूं। विश्वविद्यालय की परीक्षा के फार्म अगले माह निकलने वाले हैं। अभी से पूर्ण मनोयोग के साथ पढ़ाई शुरू कर दो। यदि जरूरत समझो तो ट्यूशन ले लेना। अन्य किसी मदद की आवश्यकता हो तो लिखना। मैं शीघ्र ही एक सप्ताह की छुट्टी लेकर घर आऊंगा। तब इस बारे में विस्तार से बात करेंगे।

पिता जी व माता जी को चरण स्पर्श। सोनू व प्रीति को आशीर्वाद।

सस्नेह

तुम्हारा शुभचिंतक
रंजन गर्ग

4. सामाजिक पत्र

पुरस्कार प्राप्ति पर बधाई पत्र

55/35 रेलवे रोड सहारनपुर

दिनांक : 3 अप्रैल, 2013

प्रिय योगेश,

आज के समाचार–पत्र में यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम्हें अपनी श्रेष्ठ रचना 'क्षितिज के पार' पर वर्ष 2008 का 'साहित्य श्री' पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा भाषा साहित्य सम्मेलन द्वारा की गई। मेरे विचार से हिंदी–साहित्य जगत में यह श्रेष्ठ पुरस्कार है। इसे प्राप्त करना वास्तव में असामान्य प्रतिभा का द्योतक है। इस दृष्टि से यह स्पृहणीय भी है। यह तुम्हारे अनवरत अध्ययन एवं अध्यवसाय का सुफल है। इसके लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करो। ईश्वर से प्रार्थना है कि भविष्य में तुम्हें इससे भी उच्चतर श्रेणी का पुरस्कार व सम्मान मिले।

तुम्हारे इस प्रकार पुरस्कृत होने पर हमारे समस्त मित्र एवं शुभचिंतक अपने–आपको गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

हिंदी के प्रति की गई तुम्हारी सेवाएं चिरस्मणीय रहेंगी। हमारी हार्दिक कामना है कि तुम अधिकाधिक उत्साह से मां भारती के भंडार को भरने में संलग्न रहो।

तुम्हारा शुभाकांक्षी

मनोज

5. वैवाहिक पत्र

मान्यवर

श्रीमती एवं श्री.....

20/2, शास्त्री नगर मेरठ

टिप्पणी

अपनी सुपुत्री

सौभाग्याकांक्षिणी .....

एवं

चिरंजीव .....

(सुपुत्र श्रीमती एवं श्री .....)

के

विवाह के शुभ अवसर पर

आपको सपरिवार सादर निमंत्रित करते हैं। कृपया कार्यक्रमानुसार सपरिवार सम्मिलित होकर उत्सव की शोभा बढ़ाएं और नव–युगल को आशीर्वाद प्रदान कर हमें कृतार्थ करें।

उत्तराकांक्षी

....

....

दर्शनाभिलाषी

....

....

वैवाहिक कार्यक्रम

दिनांक .....

स्वागत बारात.....6 बजे सायः

वर स्वागत ..... 10 बजे रात्रि

दिनांक .....

विदा.....तारों की छांव में

व्यक्तिगत पत्र

ऋण के लिए आवेदन पत्र

सेवा में

वरिष्ठ शाखा प्रबंधक
पूजा फाइनेंस कंपनी
चौमू

महोदय

सप्रेम नमस्कार।

निवेदन है कि मैं निजी क्षेत्र की कंपनी अमर सेल्स कारपोरेशन चौमू में स्थायी तौर पर सहायक निरीक्षक के पद पर कार्यरत हूं। मैं पिछले 30 वर्ष से उक्त कंपनी में नौकरी कर रहा हूं।

मैं अपनी बेटी की शादी के लिए आपकी कंपनी से दो लाख रुपए का ऋण लेने का इच्छुक हूं, जिसकी अदायगी मैं किश्तों में निर्धारित समय पर करता रहूंगा। ऋण की प्रतिभूति स्वरूप मैं अपनी भूमि और मकान के कागजात आपके पास रखने के लिए तैयार हूं। कृपया कंपनी

टिप्पणी

के नियम व शर्तों के अनुरूप मुझे यथाशीघ्र ऋण देने की कृपा करें ताकि मैं ठीक प्रकार से अपनी बेटी का विवाह संपन्न करा सकूं।

कृपया इस संबंध में अपने निर्णय से शीघ्र अवगत कराने का कष्ट करें।

सधन्यवाद।

आवेदक

.....

.....

पता.....

दिनांक.....

2.4 संक्षेपण

संक्षेपण का वर्णन इस प्रकार है–

2.4.1 अर्थ और परिभाषा

'संक्षेपण' शब्द अंग्रेजी के शब्द 'Precis' का अनुवाद है। इसके लिए हिंदी में संक्षेपीकरण, संक्षिप्तीकरण, संक्षिप्त लेख, संक्षिप्त लेखन, सार लेखन आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है परंतु सर्वाधिक प्रचलित शब्द 'संक्षेपण' ही है। संक्षेपण करते समय मुख्य रूप से यह ध्यान रखना पड़ता है कि अनावश्यक एवं अप्रासंगिक अंशों को छोड़कर आवश्यक संबद्ध प्रासंगिक एवं उपयोगी तथ्यों का संकलन इस प्रकार किया जाए कि रचना का आकार तो एक तिहाई रह जाए, परंतु मूल रचना के कथ्य में किसी प्रकार का अंतर नहीं आना चाहिए। अतएव किसी विस्तृत व्याख्यान, वर्णन, पत्र, लेख, निबंध, अनुच्छेद आदि को सीमित या संक्षिप्त करना संक्षेपण के अंतर्गत आता है। इसी कारण 'संक्षेपण' की सर्वमान्य परिभाषा ही हो सकती है जो इस प्रकार है–

परिभाषा

किसी विस्तृत अवतरण, वक्तव्य, लेख, निबंध, अनुच्छेद आदि में व्यक्त भावों एवं विचारों को मूल की अपेक्षा बहुत कम शब्दों में सरल, स्पष्ट एवं क्रमबद्ध रूप से प्रकट करना 'संक्षेपण' कहलाता है।

2.4.2 संक्षेपण के प्रकार

प्रायः व्याख्यान, कहानी, समाचार, संदेश, पत्र, संवाद आदि विविध विषयों का संक्षेपण किया जाता है। अतः सुविधा की दृष्टि से सभी विषयों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(1) स्वतंत्र विषयों का संक्षेपण
(2) समाचारों का संक्षेपण
(3) पत्रचारों का संक्षेपण

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5. पत्र मानव सभ्यता के.....के वाहक हैं।
6. कार्यालयी पत्रों में .....पत्रों का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है।

सही/गलत बताइए–

7. कार्यालय आदेश का प्रयोग किसी अधिकारी के द्वारा मंत्रालय, विभाग, प्रभाग, अनुभाग एवं कार्यालय के कर्मचारियों के लिए संबंधित कार्य करने के लिए किया जाता है।
8. व्यावसायिक पत्रों में सबसे नीचे प्रेषक का नाम व पता लिखा होता है जिससे पत्र पाने वाले को पत्र देखते ही पता चल जाता है कि पत्र किसने भेजा है।

टिप्पणी

(1) **स्वतंत्र विषयों का संक्षेपण**– इस भाग के अंतर्गत व्याख्यान, उपदेश, शिक्षा, साहित्य, दर्शन, लेख, कहानी आदि से संबंधित सभी विषय आ सकते हैं। इनमें कुछ विषय विचारात्मक होते हैं, कुछ भावात्मक होते हैं और कुछ वर्णनात्मक होते हैं। कहीं–कहीं संवादों का भी संक्षेपण किया जाता है। इस तरह इस भाग में सभी प्रकार के विषय आ जाते हैं।

(2) **समाचारों का संक्षेपण**– इस भाग के अंतर्गत वे समाचार आते हैं जो दैनिक, पाक्षिक या मासिक पत्रों में प्रकाशित होते हैं और जिनको आकर्षक शीर्षक देकर उपयुक्त ढंग से संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि मूल घटना या तथ्य पूर्ण रूप से पाठकों की समझ में आ जाएं और समाचार–पत्र का अधिक स्थान भी न घिरे।

(3) **पत्राचारों का संक्षेपण**– इस भाग के अंतर्गत सरकारी, अर्द्ध–सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालयों में संदेश, आदेश, सहमति, विरोध, सुझाव, सम्मति, सूचना आदि देने के लिए जो पत्राचार होता है– वे सभी पत्र आ जाते हैं। यथा– पत्राचार का संक्षेपण और सूची–संक्षेपण। सामान्य संक्षेपण को 'प्रवाह संक्षेपण' भी कहते हैं। इसमें किसी पत्र के सभी संदर्भ तथा विषय को एक ही प्रवाह में सामान्य ढंग से संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जाता है। 'सूची संक्षेपण' को 'तालिका संक्षेपण' भी कहते हैं। इसमें पत्र या पत्रों की सूची अथवा तालिका संक्षेप में तैयार की जाती है। इस सूची का स्वरूप इस प्रकार होता है–

क्रम सं.	पत्र सं.	दिनांक	प्रेषक	प्रेषिती	पत्र का संक्षिप्त विषय
1	2	3	4	5	6

2.4.3 संक्षेपण के नियम/संक्षेपण की प्रविधि

1. सबसे पहले संक्षेपण के लिए दिए अनुच्छेद या अवतरण को अच्छी तरह ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। जब तक इस अनुच्छेद या अवतरण में विद्यमान भाव या विचार का ठीक–ठाक चित्र सामने न आए अथवा जब तक वह पूर्णतया स्पष्ट न हो, तब तक उसे बार–बार पढ़ना चाहिए। भले ही उस अनुच्छेद या अवतरण के प्रत्येक शब्द का अर्थ ज्ञात न हो, किंतु सर्वप्रथम विवेचित वस्तु, कथ्य या मूल विषय को पूर्णतया ग्रहण कर लेना आवश्यक होता है।
2. उस अनुच्छेद या अवतरण के केंद्रीय भाव या मूल विचार को जान लेने के उपरांत उसके शीर्षक का चुनाव करना चाहिए। शीर्षक सदैव भाव या मूल विचार से संबद्ध होना चाहिए और वह आकर्षक होने के साथ–साथ कथ्य के साथ मेल खाने वाला एवं सार्थक होना चाहिए। इसी कारण पहले दो–तीन शीर्षक को लिख लेना चाहिए और फिर उनमें जो अधिक उपयुक्त, समीचीन एवं तथ्यपूर्ण प्रतीत हो उसी को वास्तविक मान लेना चाहिए।

टिप्पणी

3. अनुच्छेद या अवतरण को पढ़ते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि उसमें से कौन–सा अंश संक्षेपण की दृष्टि से प्रमुख है। ऐसे सभी अंशों को रेखांकित कर लेना चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि कोई आवश्यक अंश छूट तो नहीं गया है।

4. संक्षेपण तैयार करने से पहले मूल अवतरण या अनुच्छेद में दिए गए शब्दों की गणना कर लेनी चाहिए क्योंकि इसके उपरांत ही यह निर्णय किया जा सकता है कि आपको कितने शब्दों में संक्षेपण तैयार करना है। प्रायः संक्षेपण के लिए यह नियम है कि यह मूल अवतरण या अनुच्छेद का एक तिहाई होना चाहिए। अतः यदि किसी अनुच्छेद या अवतरण में 180 शब्द हैं, तो आपको लगभग 60 शब्दों में अपना संक्षेपण तैयार करना चाहिए परंतु यह कोई अटूट सिद्धांत नहीं है कि उस संक्षेपण में केवल 60 शब्द ही हों अर्थात 65 या 58 शब्द भी हों तो कोई आपत्ति नहीं है।

5. शब्द गणना करने के बाद मूल अनुच्छेद या अवतरण में रेखांकित या गृहीत मूल तत्वों एवं विचारों को लेकर संक्षेपण का प्रारूप तैयार करना चाहिए। इस प्रारूप के अंतर्गत पहले तो समस्त विशृंखलित विचारों को रखा जा सकता है परंतु फिर उनमें संशोधन या परिवर्तन करके उन्हें क्रमबद्ध रूप में लिखना चाहिए जिससे उसमें विचारों या भावों का प्रवाह आ जाए और वह पूर्णतया व्यवस्थित हो जाए।

6. उस संक्षेपण को एक ओर रखकर एक बार मूल अवतरण या अनुच्छेद को पढ़ना चाहिए और यह देखना चाहिए कि तैयार संक्षेपण के मूल भाव या विचार में कोई अंतर तो नहीं आ गया है। संक्षेपण करते समय अपनी ओर से कुछ जोड़ने या परिवर्तन करने का अधिकार आपको नहीं है।

7. संक्षेपण को अंतिम रूप देने से पहले उसे एक बार पढ़कर फिर यह देखना चाहिए कि वह एक स्पष्ट, स्वतंत्र एवं सुव्यवस्थित अनुच्छेद के समान है अथवा नहीं। एक अच्छे संक्षेपण की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह मूल अनुच्छेद या अवतरण से पूर्णतया संबद्ध हो और ऐसा न जान पड़े कि यह इधर–उधर से इकट्ठे किए गए तथ्यों का अव्यवस्थित संकलन है।

8. संक्षेपण में कदापि किसी भाव या विचार की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।

9. संक्षेपण में मूल अवतरण या अनुच्छेद में दिए गए विचारों या भावों की आलोचना भी नहीं होनी चाहिए क्योंकि वह तो मूल विषय का संक्षेप में पुनः प्रस्तुतीकरण होता है।

10. संक्षेपण में स्पष्टता और सरलता का होना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना मूल अवतरण या अनुच्छेद का स्पष्ट अर्थ समझ में नहीं आ सकता।

11. संक्षेपण की भाषा व्याकरण–सम्मत, शुद्ध, सरल एवं प्रवाहमयी होनी चाहिए। उसमें क्लिष्ट शब्द, लोकोक्ति, मुहावरे, कहावत, सूक्ति आदि का प्रयोग नहीं होना चाहिए और जहां तक संभव हो मूल अवतरण या अनुच्छेद में दिए गए शब्दों का ही प्रयोग होना चाहिए। साथ ही संक्षेपण की भाषा अलंकारों, विशेषणों, भावुकतापूर्ण प्रयोगों से सर्वथा रहित होनी चाहिए।

टिप्पणी

12. संक्षेपण में उत्तम पुरुष तथा मध्य पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का ही प्रयोग करना चाहिए।

13. पत्र, व्याख्यान, आदेश आदि में भूतकालिक क्रियाओं का ही प्रयोग होना चाहिए।

14. संवादों का संक्षेपण करते समय वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करना चाहिए और संवादों के सभी वर्णन भी भूतकालिक ही होने चाहिए।

15. पत्राचार संबंधी संक्षेपणों में से अधिकारियों के नाम हटा देने चाहिए और केवल उन पदों का ही उल्लेख करना चाहिए।

16. समाचारों का संक्षेपण करते समय उनमें तिथि, स्थान तथा संबद्ध व्यक्तियों का उल्लेख अवश्य होना चाहिए और उन समाचारों का शीर्षक आकर्षक, उपयुक्त एवं तथ्यपूर्ण होना चाहिए क्योंकि समाचार–पत्रों में शीर्षक का सर्वाधिक महत्व होता है और उसी को पढ़कर पाठक समाचार पढ़ते हैं।

17. संक्षेपण में किसी प्रकार की भूमिका तथा उपसंहार का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए और उसमें उदाहरणों एवं दृष्टांतों का प्रयोग भी नहीं होना चाहिए।

2.4.4 श्रेष्ठ संक्षेपण की विशेषताएं

एक श्रेष्ठ संक्षेपण वही माना जाता है जिसमें निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. संक्षिप्तता
2. समाचार शक्ति
3. अभिव्यक्ति में स्पष्टता
4. विवेचनात्मकता
5. तारतम्यता
6. पूर्णता
7. प्रभावोत्पादकता

2.4.5 संक्षेपण के उदाहरण

किसी भी गद्यांश, अवतरण या अनुच्छेद का संक्षेपण करते समय दो बातों की ओर ध्यान देना परमावश्यक होता है– एक तो गद्यांश, अवतरण या अनुच्छेद का उपयुक्त शीर्षक देना तथा दूसरे उसका एक तिहाई में संक्षेपण करना। नीचे इसके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं–

उदाहरण 1

शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी को स्वीकार करने का प्रश्न दिनों–दिन जटिल होता जा रहा है। यद्यपि भारतीय संविधान में सार्वदेशिक आधार पर, विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी–भाषा के व्यवहार की व्याख्या की गई

टिप्पणी

है, तथापि विभिन्न राज्यों को क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में, स्थानीय प्रयोजनों के लिए अपने राज्य की भाषाओं के समुचित व्यवहार की सुविधा भी दी गई है। इस वैधानिक व्यवस्था के अनुसार भारत के भिन्न–भिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों तथा अन्य प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में, शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न भाषाओं का व्यवहार किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग अंग्रेजी को इन क्षेत्रों में बनाए रखना चाहते हैं, जो अंग्रेजी के जाने के बाद अपने–आप को अनाथ अनुभव करने लगे हैं। संभवतः राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से ये प्रवृत्तियां कदापि वांछनीय नहीं है। देश के स्वाभाविक विकास और एकता के लिए सभी शिक्षण–संस्थाओं में, सभी शिक्षार्थियों और परीक्षार्थियों के लिए, राष्ट्रभाषा हिंदी–भाषी क्षेत्रों में कतिपय अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों द्वारा जो प्रचार और व्यापार हो रहे हैं, उनका अविलंब अंत होना राष्ट्रभाषा एवं अन्य प्रांतीय भाषाओं के विकास और राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह तभी संभव है, जब इस प्रश्न पर राष्ट्रीय दृष्टि से सहानुभूति के साथ विचार हो। हमें ऐसा यत्न करना चाहिए कि सभी देशवासी, अपनी–अपनी मातृभाषा की समुचित शिक्षा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिंदी का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करना राष्ट्रहित की सिद्धि का साधन समझें।

संक्षेपण

शीर्षक–मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के अध्ययन की अनिवार्यता

भारतीय संविधान में विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं के व्यवहार की सुविधा दी गई है। इसी से विभिन्न प्रांतों में शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं का व्यवहार हो रहा है परंतु कुछ अंग्रेजी पढ़े–लिखे व्यक्ति स्वार्थवश इसका विरोध कर रहे हैं जो राष्ट्रभाषा और क्षेत्रीय भाषा दोनों के विकास में बाधक है। अतः राष्ट्रहित में ऐसा यत्न होना चाहिए कि सभी देशवासी मातृभाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा का अध्ययन भी अनिवार्य रूप से करें।

उदाहरण 2

शिवाजी बहुत वीर और साहसी थे, यह तो उनकी विजय गाथाओं और सफलताओं से ही स्पष्ट है परंतु उनका सबसे अधिक महत्व इस कारण है कि उन्होंने भारत में एक नयी युद्धकला की शुरुआत की। शिवाजी से पहले राजपूत लोग यह समझते थे कि युद्ध में पीठ दिखाना कायरता की निशानी है इसलिए चाहे अपना बल कम और शत्रु का बल अधिक भी हो तो भी युद्ध में लड़ते–लड़ते मर जाना ही वीरता है परंतु शिवाजी ने इस बात को समझा कि युद्ध का अंतिम उद्देश्य विजय है, वीरता–प्रदर्शन अपने–आप में कोई उद्देश्य नहीं है।

संक्षेपण

शीर्षक– शिवाजी की युद्धकला

वीर और साहसी होते हुए भी शिवाजी का महत्व उनकी नई युद्धकला के कारण है। उनसे पहले राजपूत वीर युद्ध से भागने को कायरता और लड़ते हुए मरने को वीरता मानते थे, भले ही शत्रु उनसे कहीं अधिक बलवान क्यों न हो परंतु शिवाजी ने वीरता प्रदर्शन को महत्व न देकर विजय को ही युद्ध का अंतिम उद्देश्य समझा था।

उदाहरण 3

टिप्पणी

प्रेषक,

कुल सचिव,

चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

सेवा में,

समस्त प्राचार्य

आगरा विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय।

पत्रांक–ए/आ/आध्या/4015/2013

दिनांक : 4–8–2013

महोदय/महोदया,

इस कार्यालय के परिपत्र संख्या ए/आ/आध्या/4001/2013 दिनांक जून 10, 2013 के संदर्भ में कहा गया है कि विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों के अध्यापकों के सेवानिवृत्त होने पर, सेवामुक्ति देने पर अथवा विद्यालयों की सेवाएं त्यागने पर महाविद्यालय उनको पूरा वेतन, भविष्यनिधि, वेतन वृद्धि, संशोधित वेतनमान, संशोधित महंगाई भत्ता आदि का शीघ्र ही भुगतान कर दें। यदि सेवानिवृत्त होने पर कोई अध्यापक नये नियमानुसार पेंशन लेना चाहे, तो उनके द्वारा जमा की गई भविष्य निधि ही दी जाए, जबकि महाविद्यालय द्वारा जमा की गई भविष्यनिधि सरकारी कोष में ही रहने दी जाए।

मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि उपर्युक्त तथ्य महामंत्री विश्वविद्यालय शिक्षक संघ के उत्तर प्रदेश के प्रस्ताव पर आधारित है। इसे केवल न्याय एवं सिद्धांत के आधार पर उचित समझा गया है। अतः आप इसे विश्वविद्यालय का साग्रह अनुरोध समझकर अपने महाविद्यालय में कार्यान्वित करें।

भवदीय,

राजकुमार

कुल सचिव

टिप्पणी

संक्षेपण की सूची–पद्धति

क्रम संख्या	पत्रांक	दिनांक	प्रेषक	प्रषिती	संक्षेप में विवरण
1	ए/आ/आध्या/4015/2013	4–8–2013	कुल सचिव चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ	समस्त प्राचार्य चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से संबद्ध महाविद्यालय	विश्वविद्यालय शिक्षक संघ उ.प्र. के प्रस्ताव पर आधारित, अध्यापकों की सेवा–निवृत्ति, सेवा–मुक्ति या सेवाएं त्यागने पर वेतन आदि का शीघ्र भुगतान तथा सेवा–निवृत्त अध्यापकों के नये नियमानुसार पेंशन लेने पर उनके द्वारा जमा भविष्य–निधि का भुगतान तथा महाविद्यालय द्वारा जमा की गई भविष्य–निधि को सरकारी कोष में ही रहने देने का अनुरोध।

सामान्य संक्षेपण की पद्धति

पत्रंक ए/आ/आध्या/4015/2013 दिनांक 4–8–2013 के द्वारा कुल सचिव, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय का, विश्वविद्यालय शिक्षक संघ उ.प्र. के प्रस्ताव पर आधारित विश्वविद्यालय से संबंधित महाविद्यालयों के प्राचार्यों से अनुरोध; जिसमें अध्यापकों को सेवानिवृत्ति, सेवा–मुक्ति या सेवाएं त्यागने पर वेतन आदि के शीघ्र भुगतान हेतु कहा गया है और सेवानिवृत्त अध्यापकों के नये नियमानुसार पेंशन लेने पर उनके द्वारा जमा की गई भविष्यनिधि का भुगतान करने तथा महावविद्यालयों द्वारा जमा की गई भविष्य निधि की राशि को सरकारी कोष में रहने देने का आदेश दिया गया है।

उदाहरण 4

आधुनिक संस्कृति मूलतः बुद्धिवादी और विश्लेषण–प्रिय है, जिसमें ज्ञान की अपार महिमा है, परंतु हृदय के स्रोत निरंतर सूखते जा रहे हैं। जिसे शिक्षा कहकर चलाया जा रहा है, वह सूचना मात्र है। उसमें अनुभूति को जगह नहीं मिली है। फलतः आज का शिक्षित मनुष्य व्यर्थता से भर गया है। कविता का स्रोत है–आनंद, जिज्ञासा एवं रहस्य। हमारे ज्ञान की परिधि इतनी विस्तृत हो गई है कि कुछ भी अप्रत्याशित नहीं रह गया है। काव्यरूढ़ियां आज हास्यास्पद जान पड़ती हैं। अद्‌भुत का थोड़ा भी स्पंदन जीवन में शेष नहीं रह गया है। वैसे, ज्ञान और कविता में निरंतर विरोध ही हो, यह आवश्यक नहीं, क्योंकि विज्ञान रहस्योन्मुखी है। इसमें जिज्ञासा और समाधान के अनेक सूत्र हैं। परंतु आज विज्ञान विशेषता के उस संसार में पहुंच गया है, जहां तालिकाओं का राज्य है और मानव–शिशु तथ्यों की मरुभूमि

टिप्पणी

में खो गया है। फल यह हुआ कि हम अहं के स्तूप बन गए हैं। हम चमत्कृत होने में मानहानि समझते हैं। हमारी सहज अंतर्वृत्तियां जड़ होती जा रही हैं।

शीर्षक : अनुभूति रहित शिक्षा

संक्षेपण–आधुनिक शिक्षा अंनुभूति–पक्ष से रहित है। इसमें बुद्धि की प्रधानता होने से मनोगत विकारों का कोई स्थान नहीं है, इसीलिए यह आकर्षक भी नहीं रही है। कविता और विज्ञान में कोई बैर–भाव नहीं, फिर भी आधुनिक विज्ञान रहस्यों का प्रतिपादन करने के कारण महत्वशाली बन गया है। अतः मानव आज सहृदय न रहकर तथ्यग्राही बन गया है।

- **वाक्य संक्षेपण अथवा संक्षिप्त शब्दावली के उदाहरण–**

शब्दावली/वाक्य–खंड	शब्द–संक्षेप
हृदय को विदीर्ण करने वाला	हृदय–विदारक
दूसरों के काम में दखल देना	हस्तक्षेप
काम करने में चतुर	सिद्धहस्त
जानने की इच्छा	जिज्ञासा
जिसका कोई नाथ (भरण–पोषण करने वाला) न हो	अनाथ
जिसके हृदय में ममता न हो	निर्मम
जिसके समान कोई दूसरा न हो	अद्वितीय
जिसके आने की तिथि मालूम न हो	अतिथि
जिससे हानि की आशंका न हो	निरापद
जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो	विचारणीय
जिसका कोई वारिस न हो	लावारिस
जिसने मृत्यु को जीता हो	मृत्युंजय
वह जो कम खर्च करता हो	मितव्ययी
जो जलकर राख हो जाए	भस्मीभूत
समझ में आने योग्य	बोधगम्य
जिसने बहुत सुना हो	बहुश्रुत
जैसे पहले था वैसे ही	पूर्ववत
वह वस्तु जिसके आर–पार दिखाई पड़े	पारदर्शी
कतार में बंधा/रखा हुआ	पंक्तिबद्ध
भले–बुरे का विचार न करने वाला	अविवेकी
अतिथि से सादर मिलना	अगवानी
ऐसे स्थान पर रहना जहां कोई पता न पा सके	अज्ञातवास
नीचे की ओर जाने वाला	अधोमुखी

टिप्पणी

जिसके बिना काम न चल सके	अनिवार्य
जो अवश्य हो, टले नहीं	अवश्यंभावी
जो नियत समय से पहले या पीछे हो	असामयिक
आज्ञा मानने वाला	आज्ञाकारी
किसी घटना का अचानक हो जाना	अकस्मात
संकट का समय	आपातकाल
वह जो किसी के न रहने पर उसकी संपत्ति का मालिक हो	उत्तराधिकारी
जिसका चित उदार हो	उदारमना
बहुत जगने के कारण अलसाया हुआ	उनींदा
दूसरे के सहारे पर गुजर करने वाला	उपजीवी/परजीवी
अन्य स्थान से आए हुए लोगों की बस्ती	उपनिवेश
एक ही पर श्रद्धा रखने वाला	एकनिष्ठ
काम करने के लिए कमर बांधे हुए	कटिबद्ध
सब लोगों के प्रयोग में आने वाला	सार्वजनिक
वर्तमान समय से संबंध रखने वाला	समसामयिक
सब–कुछ जानने वाला	सर्वज्ञ
मेहनत कर पेट भरने वाला	श्रमजीवी
जो वेतन लेकर काम करता है	वेतनभोगी
एक स्थान से दूसरे स्थान को हटाया हुआ	स्थानान्तरित
जो दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से कार्य करे	स्थानापन्न
जिसकी आशा न की गई हो	आशातीत
जो भेदा न जा सके	अभेद्य
कम बोलने वाला	मितभाषी
जो स्मरण रखने योग्य हो	स्मरणीय
जो सबके आगे रहता है	अग्रणी
जिसे देख/सुन कर दुःख हो	दुःखद
युग का निर्माण करने वाला	युगनिर्माता
जिसका मन किसी दूसरी ओर हो	अन्यमनस्क
जहां तक हो सके	यथासाध्य/यथासंभव
आदि से अंत तक	आद्योपांत, आद्यंत
तर्क के द्वारा माना जा चुका हो	तर्कसम्मत
जिस पर विश्वास किया गया हो/किया जा सके	विश्वस्त
क्षण भर में नष्ट होने वाला	क्षणभंगुर

टिप्पणी

नियत समय पर किया जाने वाला कार्य	समयबद्ध
नियत समय पर मिलने संबंधी वचन का पालन करने वाला	समयनिष्ठ
किसी रूप में प्राप्त राशि का अंश जो प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में आए	लाभांश
जो नुकसान हो चुका है उसकी भरपाई करना	प्रतिकर
जो लोक में संभव न हो	अलौकिक
शक्ति के अनुसार	यथाशक्ति
समय के अनुसार	यथासमय
याचना करने वाला	याचक

शब्द निर्माण में भी संक्षेपण का विशेष महत्व है। शब्द निर्माण में संक्षेपीकरण के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं–

नार्थ एटलांटिक ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन	नाटो
इंडियन पीपुल थियेट्रिकल पिक्चर एसोसिएशन	इप्टा
युनाइटेड नेशंज एजुकेशनल साइंटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन	यूनेस्को
इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस	इंटक
इंडियन मूवी पिक्चर एसोसिएशन	मीटो
साउथ–ईस्ट एशियन ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन	सीटो

इन शब्दों के अलावा दैनिक जीवन में समाचार–पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक लंबे वाक्यों के संक्षिप्त रूप देखने, पढ़ने व सुनने को मिलते हैं, जैसे–

सेल्फ एंप्लाइड वीमेंस एसोसिएशन	सेवा
एसोसिएशन ऑफ वॉलेंटरी एजेंसीज फॉर रूरल डेवलपमेंट	एवार्ड
भारतीय जनता पार्टी	भाजपा
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	भाकपा
भारतीय लोकदल	भालोद

2.5 पल्लवन

पल्लवन का वर्णन इस प्रकार है–

2.5.1 अर्थ और परिभाषा

'पल्लवन' अंग्रेजी के 'Expansion' शब्द का हिंदी अनुवाद है। इसे 'भाव विस्तार' या 'भाव पल्लवन' भी कहते हैं परंतु 'पल्लवन' शब्द अधिक उपयुक्त एवं समीचीन है। यह शब्द संक्षेपण का पूर्णतया विरोधी है क्योंकि 'संक्षेपण' में जहां विस्तार में वर्णित किसी भाव या

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. 'संक्षेपण' शब्द अंग्रेजी के शब्द..... का अनुवाद है।
10. संक्षेपण में कदापि किसी भाव या विचार की.....नहीं होनी चाहिए।

सही/गलत बताइए–

11. पत्र, व्याख्यान, आदेश आदि में भविष्यकालिक क्रियाओं का ही प्रयोग होना चाहिए।
12. किसी भी गद्यांश या अनुच्छेद का संक्षेपण करते समय दो बातों का ध्यान रखना परमावश्यक है–गद्यांश या अनुच्छेद को उचित शीर्षक देना और दूसरे गद्यांश या अनुच्छेद का एक तिहाई में संक्षेपण करना।

टिप्पणी

विचार को संक्षिप्त रूप दिया जाता है, वहां 'पल्लवन' के अंतर्गत सूत्र रूप में वर्णित किसी भाव या विचार का विस्तार किया जाता है। इसी कारण 'संक्षेपण' में जहां दृष्टांत, उदाहरण, विशेषण, अलंकार, मुहावरे, लोकोक्ति आदि को हटाकर मुख्य आशय पर जोर दिया जाता है, वहां 'पल्लवन' में दृष्टांतों, उदाहरणों, प्रसंगों आदि का प्रयोग करके मुख्य आशय को विस्तारपूर्वक समझाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'संक्षेपण' में जहां समास शैली का प्रयोग होता है, वहीं 'पल्लवन' में व्यास–शैली अपनाई जाती है। इस दृष्टि से 'पल्लवन' की सामान्य परिभाषा यह हो सकती है–

परिभाषा– सूत्र रूप में या संक्षेप में व्यक्त भाव या विचार के विस्तार को 'पल्लवन' कहते हैं।

2.5.2 पल्लवन के प्रकार

पल्लवन के विविध प्रकार प्रचलित हैं। कभी किसी एक शब्द का पल्लवन कराया जाता है तो कभी दो या दो से अधिक शब्दों वाले किसी भाव या विचार का पल्लवन कराया जाता है। कभी किसी वाक्य का पल्लवन कराया जाता है तो कभी किसी लोकोक्ति या मुहावरे को पल्लवन के लिए दिया जाता है या किसी वार्ता या कथा की रूपरेखा का पल्लवन किया जाता है। इस तरह पल्लवन को छः भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **किसी एक शब्द का पल्लवन–** जैसे– पंचायत, प्रतिभा, बसंत, सहकारिता, मितव्ययिता, पुस्तकालय, सूर्यग्रहण आदि।
2. **दो या दो से अधिक शब्दों का पल्लवन–** जैसे–राजकीय प्रयोजन, परीक्षा का माध्यम, वैधानिक व्यवस्था, राष्ट्रहित की सिद्धि, मानसिक संकीर्णता, कुसंगति का प्रभाव, प्रातः काल का दृश्य आदि।
3. **किसी वाक्य का पल्लवन–** जैसे– गरीबी हमारा मानसिक रोग, हमें विजय और सफलता पूर्णतया मन की वैज्ञानिक क्रिया से प्राप्त होती है, मानव के साथ दुःख–सुख का भी जन्म होता है; वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है; श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है आदि।
4. **किसी मुहावरे या लोकोक्ति का पल्लवन–** जैसे– समरथ को नहिं दोष गुसाईं, होनहार बिरवान के होत चीकने पात, सबै दिन होत न एक समान, थोथा चना बाजे घना, बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद, आप काज महाकाज, तिल की ओट पहाड़, सावन सूखे न भादों हरे, गड़े मुर्दे उखाड़ना, ईंट से ईंट बजाना, मन के हारे हार है मन के जीते जीत आदि।
5. **किसी कथा या वार्ता की रूप रेखाओं का पल्लवन–** जैसे– किसी हाथी का नित्य तालाब की ओर जाना.....मार्ग में दर्जी की दुकान पड़ना..... हाथी का दर्जी की दुकान की ओर सूंड करना.....दर्जी का हाथी की सूंड में सूई चुभोना.....हाथी का दर्जी की दुकान में कीचड़ फेंकना। ऐसे ही किसी जंगल में शेर का रहना.....उसका नित्य जानवरों को मारकर खाना.....जानवरों की सभा करना.....खरगोश का शेर के पास जाना.....शेर का कुंए में झांकना.....उसका कुएं में गिरकर मर जाना आदि।

टिप्पणी

6. **किसी कथा या वार्ता के शीर्षक का पल्लवन–** जैसे– खरगोश और कछुआ, लोमड़ी और सारस, बंदर और मगर, सावित्री और सत्यवान, तुलसी और सालिग्राम, रुक्मिणी–हरण, नरसी का भात, जहांगीर का न्याय, पन्नाधाय का त्याग आदि।

2.5.3 पल्लवन के नियम

1. पल्लवन के लिए दिए हुए भाव या विचार का पहले भली–भांति चिंतन एवं मनन करना चाहिए जिससे उसके विभिन्न पहलुओं का भली प्रकार बोध हो सके। इसके साथ ही अपना संपूर्ण ध्यान उसके मूल अर्थ पर केंद्रित करके फिर उससे संबंधित विविध आयामों के बारे में विचार करना चाहिए।
2. पल्लवन के केंद्रीय भाव या विचार का अर्थ समझ लेने के बाद उसके विस्तार हेतु विषय के पक्ष और विपक्ष संबंधी रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।
3. विपक्ष के तर्कों को काटने के लिए और अपने पक्ष की पुष्टि के लिए प्रमाण, दृष्टांत या उदाहरणों का संग्रह करना चाहिए।
4. प्रमाण, दृष्टांत या उदाहरणों का संग्रह करने के पश्चात यह देखना चाहिए कि कौन–सा प्रमाण, दृष्टांत या उदाहरण मूल भाव को स्पष्ट करने में तर्कसंगत है और कौन–सा अधिक उपयुक्त नहीं है। इनमें से तर्कसंगत प्रमाण या दृष्टांत का चयन कर लेना चाहिए।
5. पल्लवन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई उपयुक्त सामग्री छूट तो नहीं गई है अथवा मूल भाव या विचार के समर्थन में संकलित उपयुक्त सामग्री का उपयोग ठीक ढंग से हो रहा है या नहीं।
6. पल्लवन करते समय सदैव तर्कसम्मत पद्धति का प्रयोग होना चाहिए। यदि कहीं तार्किक क्रम भंग होता हुआ प्रतीत हो तो उसे ठीक कर लेना चाहिए।
7. पल्लवन के दौरान मूल भाव या विचार के विरोधी अथवा उसके समानांतर चलने वाले बिंदुओं को छोड़ देना चाहिए क्योंकि उनको महत्व देने से मूल विषय गौण हो जाता है और विरोधी बातें प्रमुख हो जाती हैं।
8. पल्लवन करते समय उन्हीं प्रमाणों, दृष्टांतों या उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिए, जो मूल भाव या विचार को स्पष्ट करने, समझने अथवा उसके विविध पहलुओं को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होते हैं।
9. इस दौरान मूल विषय या मूल भाव के विरोध में दिए तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है परंतु ऐसा करते समय उन विरोधी तथ्यों का खंडन करने वाले तर्कों का निरूपण भी अवश्य होना चाहिए।
10. पल्लवन करने के लिए प्रयुक्त सभी वाक्य एक क्रम से व्यक्त होने चाहिए, उनमें पारस्परिक पूर्वापर संगति होनी चाहिए और वे इतने सुगठित एवं शृंखलाबद्ध होने चाहिए कि उनमें से यदि एक वाक्य भी निकाल दिया जाए तो पूरा ढांचा बिखरा हुआ सा प्रतीत होना चाहिए।

टिप्पणी

11. पल्लवन के लिए दिए हुए विषय पर लंबे–लंबे निबंध भी लिखे जा सकते हैं परंतु जब कोई विषय पल्लवन के लिए दिया जाता है, तब उस पर लंबा निबंध लिखना उचित नहीं है, अपितु उसका एक ही अनुच्छेद में डेढ़ सौ शब्दों से लेकर पांच सौ शब्दों तक विस्तार होना चाहिए।
12. पल्लवन का अंतिम निष्कर्ष सदैव मूल भाव या प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप होना चाहिए। यदि अपेक्षित निष्कर्ष न निकल रहा हो, तो रचना को पुनः ठीक करना चाहिए और उसे ऐसा रूप देना चाहिए, जिससे मूल भाव या प्रतिपाद्य विषय का सही चित्र उतरकर आ सके।
13. पल्लवन के लिए भूमिका, मध्यभाग और उपसंहार की अलग–अलग व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें तो पूरे कथ्य को एक ही अनुच्छेद में व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए।
14. पल्लवन की भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं व्याकरण–सम्मत होनी चाहिए, इसके लिए व्यास–शैली का प्रयोग होना चाहिए और भावों एवं विचारों को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति करने वाली प्रवाहपूर्ण पद्धति का प्रयोग होना चाहिए।
15. अंत में वर्तनी, शुद्ध–प्रयोग, वाक्य–रचना, विराम–चिह्नों के प्रयोग आदि की दृष्टि से भी लिखित अंश को अच्छी तरह सावधानी से देख लेना चाहिए। यदि कहीं संशोधन, परिवर्तन या परिवर्द्धन की आवश्यकता हो तो यथास्थान कर देना चाहिए।

2.5.4 पल्लवन के कुछ उदाहरण

मूल : ईर्ष्या

पल्लवन– जैसे दूसरे के दुःख को देखकर दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दुःख होता है, जिसे 'ईर्ष्या' कहते हैं। ईर्ष्या की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है, इससे इसका प्रादुर्भाव बच्चों में कुछ देर में देखा जाता है और पशुओं में तो शायद होता भी न हो। ईर्ष्या एक संकर भाव है, जिसकी संप्राप्ति आलस्य और नैराश्य के योग से होती है। जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए झगड़ते हैं तब कभी–कभी ऐसा देखा जाता है कि दोनों में से कोई एक बच्चा उस खिलौने को लेकर फोड़ देता है, जिससे वह किसी के काम में नहीं आता। इससे अनुमान हो सकता है कि उस लड़के के मन में यही रहता है कि चाहे वह खिलौना मुझे मिले या न मिले, दूसरे के काम में न आए अर्थात उसकी स्थिति मुझसे अच्छी न रहे। ईर्ष्या पहले–पहले इसी रूप में व्यक्त होती है।

मूल : वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है

पल्लवन– जिससे हमें दुःख पहुंचता है उस पर यदि हमने क्रोध किया और यह क्रोध यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो यह वैर कहलाता है। इसके स्थायी रूप में टिक जाने के कारण क्रोध का वेग और उग्रता तो धीमी पड़ जाती है पर लक्ष्य को पीड़ित करने की प्रेरणा हमेशा हुआ करती है। क्रोधी अपना बचाव करते हुए शत्रु को पीड़ित करने की युक्ति आदि सोचने में प्रायः समय नहीं लगाता, पर वैर उसके लिए बहुत समय देता

टिप्पणी

है। दुःख पहुंचने के साथ ही दुःख देने वाले को पीड़ित करने की प्रेरणा देने वाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरित करने वाला भाव वैर है। जैसे– किसी ने आपको गाली दी। अगर आपने उसी समय उसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिए कि वह गाली देकर भाग गया और दो महीने बाद आपको कहीं मिला। अब यदि आपने उससे बिना गाली सुने, मिलने के साथ ही उसे मार दिया तो आपका वैर निकालना हुआ। इसी कारण वैर को क्रोध का अचार या मुरब्बा कहा जाता है।

मूल : लालच बुरी बला है

पल्लवन– एक मनुष्य के पास एक मुर्गी थी। वह नित्य एक अंडा देती थी परंतु वह अंडा अन्य दूसरे अंडों के समान नहीं होता था। वह सोने का अंडा था। वह मनुष्य सोने के अंडे को पाकर बड़ा प्रसन्न रहता था। परंतु साथ ही वह लालची भी था। वह अपने मन में सोचा करता था कि मुझे केवल एक ही अंडा रोज मिलता है। मुझे सारे सोने के अंडे एक साथ ही क्यों नहीं मिलने चाहिए? मैं मुर्गी को मारूंगा और सभी अंडे एक साथ ही निकाल लूंगा। इसी कारण उसने सारे अंडे एक साथ लेने के लिए मुर्गी को मार डाला। वह मुर्गी भी अन्य मुर्गियों के ही समान थी। उसके पेट में सोने के अंडे भरे नहीं थे। मुर्गी के मरने के बाद उसको सोने का एक भी अंडा प्राप्त नहीं हुआ। सच है लालच बड़ी बुरी बला है।

कतिपय काव्य सूक्तियों का वृद्धिकरण

मूल : "प्रकृति के यौवन का शृंगार, करेंगे कभी न बासी फूल"

पल्लवन– प्रकृति निरंतर परिवर्तनशील है, प्रकृति नित्य ही सुंदर पुष्पों से अपना सौंदर्य सजाती है। यदि आज एक पुष्प खिलता है तो वह दूसरे दिन मुरझा जाता है और वृक्ष की डालियां उसे गिरा देती हैं। उस स्थान पर नये पुष्प विकसित होते हैं। प्रकृति नित्य ही नूतनता धारण करती रहती है, सौंदर्य वही है जो हर क्षण नवीन रूप धारण करता रहता है। प्रकृति की इस गतिविधि का अर्थ है– 'परिवर्तन'। मानव जीवन भी परिवर्तनशील है। मानव नित्य ही नवीन विचारों से ओत–प्रोत रहता है। उसकी पुरानी मान्यताएं नष्ट होती जाती हैं और उन स्थानों पर नये विचार विकसित होते हैं। जीवन में यदि कोई परिवर्तन न हो तो वह उत्साह से परिपूर्ण एवं आकर्षक न रह जाए।

मूल : "विपत्ति कसौटी जे कसे वे ही सांचे मीत"

पल्लवन– मनुष्य के जीवन में मित्र तो होते हैं पर अमीर व्यक्ति के लिए सभी मित्र होते हैं और निर्धन के नहीं। अपना कार्य बनाने वाले मित्र तो बहुत होते हैं और सुख में साथ देने वाले मित्र भी कम नहीं होते परंतु वास्तविक मित्र वही होते हैं जो कि विपत्ति के समय मनुष्य की तन–मन–धन से सहायता करते हैं। सच्चे मित्र की पहचान विपत्तियों में ही होती है– 'धीरज धर्म मित्र अरू नारी, आपत्ति काल परखिए चारी', इसलिए मनुष्य को सच्चा मित्र ही बनना चाहिए।

मूल : "बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय।"

पल्लवन– कभी–कभी मनुष्य अपने बीते हुए जीवन के विषय में सोचता रहता है। यदि कोई कार्य बिगड़ जाता है अथवा कोई हानि हो जाती है तो वह निराश हो जाता है तथा आगे कार्य नहीं करता है परंतु उसे बीती बातों को भुला देना चाहिए और आगे के

टिप्पणी

जीवन के विषय में विचार करना चाहिए क्योंकि यदि वह पिछली बातों को ही सोचता रहेगा तो वह भविष्य में कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है।

मूल : 'मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को नेक
पालहिं पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक।"

पल्लवन– मुख संपूर्ण शरीर में मुख्य है। वह मुखिया की भांति समस्त भोजन को शरीर में पहुंचाता है। यद्यपि वह संपूर्ण सामग्री को सबसे पहले ही पाता है तथापि वह सभी अंगों के पालने–पोसने में ही उसे दे देता है। यदि राजा इसी प्रकार का हो कि वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करके सभी का हित करे व प्रजा के धन को निजी सुख के लिए न लेकर प्रजा की भलाई के लिए ही ग्रहण करे तो इसमें कोई भी समस्या पैदा नहीं होगी। जिस प्रकार सूर्य भूमि के जल को ग्रहण करता है और उसे पृथ्वी की श्यामलता के लिए बादलों द्वारा बरसाता है उसी प्रकार मुखिया व राजा को टैक्स आदि के रूप में प्रजा से प्राप्त धन को विवेकपूर्वक प्रजा के हित में ही व्यय करना चाहिए।

मूल : "परहित सरिस धर्म नहिं भाई।"

पल्लवन– उक्त कथन गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस से संकलित है। 'धर्म' शब्द जितना व्यापक है उतना ही उसका प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाता है। राजनीति प्रधान आधुनिक युग में तो वह प्रायः अवज्ञा का विषय ही बन गया है तथा धर्म के नाम पर नाक भौं सिकोड़ना एक फैशन की चीज समझी जाती है।

धर्म के बारे में दो बातें स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए। वह अंग्रेजी का शब्द Religion का पर्यायवाची नहीं है। अतः धर्म, मजहब, मिल्लत, पंथ, संप्रदाय आदि से सर्वथा भिन्न है। दूसरी बात यह है कि धर्म के लक्षणों में परमात्मा की चर्चा कहीं नहीं की गई है। धर्म एक ऐसा विहित कार्य है, जिसमें अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है जिससे लौकिक समृद्धि और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होती है।

धर्म का महत्व व्यक्ति और समष्टि दोनों ही दृष्टियों में माना गया है। धर्म की व्याख्या करते समय आचार्यों ने व्यक्ति के सम्मुख सामाजिक संदर्भ को सदैव रखा है अर्थात धर्म का अभिप्रेत कर्तव्य है, अधिकार नहीं। यम और नियम धर्म के आवश्यक अंग हैं तथा धर्म के प्रत्येक भेद जैसे– वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म तथा नैमित्तिक धर्म के संदर्भ में केवल कर्तव्यों की चर्चा की गई है। धर्म व्यक्ति के अधिकारों की बात नहीं करता है, वह समाज को देने की बात करता है, समाज से लेने की बात नहीं करता। भारत के आम ऋषियों ने भारतीय धर्म साधना का विधान समाज सेवा की भाव भूमि पर किया है।

लोकोक्ति : "अधजल गगरी छलकत जाए"

भाव पल्लवन– जब घड़ा जल से पूर्ण भरा हुआ है तो पानी सरलता से सिर पर रखकर जाया जा सकता है। घड़े से पानी छलक नहीं पाता और वह बाहर नहीं आ सकता है। अतः पानी को पूरा ही भरना चाहिए। इसके विपरीत जब मनुष्य घड़े को आधा ही भरता है, तो उसमें से पानी के छलकने व गिरने की संभावना ज्यादा होती है। इसी प्रकार जो मनुष्य अल्प ज्ञानी अथवा सीमित साधनों वाले होते हैं, वे अपनी योग्यता अथवा सामर्थ्य प्रकट करने के लिए उतावले बने रहते हैं। जरा–सा भी अवसर मिलने पर वे अपना बखान करने लग जाते हैं जिससे उनका अल्प ज्ञान परिलक्षित होने लगता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

13. सूत्र रूप में या संक्षेप में व्यक्त भाव या विचार के विस्तार को.....कहते हैं।
14. पल्लवन करते समय सदैव तर्कसम्मत..... का प्रयोग करना चाहिए।

सही/गलत बताइए–

15. पल्लवन अंग्रेजी के शब्द 'Precis' का हिंदी अनुवाद है।
16. संक्षेपण में जहां व्यास–शैली का प्रयोग होता है वहीं पल्लवन में समास शैली का प्रयोग होता है।

2.6 टिप्पण अथवा टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पण और टिप्पणी का वर्णन इस प्रकार है–

2.6.1 अर्थ और परिभाषा

अंग्रेजी के 'Noting' शब्द का हिंदी अनुवाद 'टिप्पण' है। प्रायः जब कोई सरकारी या गैर–सरकारी पत्र कार्यालय में आता है, तभी से उस पर कार्यवाही का एक सिलसिला शुरू हो जाता है। यह सिलसिला उस समय तक चलता रहता है जिस समय तक उस पत्र पर अंतिम निर्णय नहीं हो जाता। पत्र पर अंतिम निर्णय होने तक अथवा उस पत्र के अंतिम तौर पर निपटाने तक कार्यालयों के लिपिक तथा अधिकारीगण उस पर जो–जो अभ्युक्तियां लिखा करते हैं, वे ही 'टिप्पणी' कहलाती हैं। इन टिप्पणियों को लिखने की प्रक्रिया को 'टिप्पण' कहा जाता है। अतः 'टिप्पण' की परिभाषा निम्न प्रकार से हो सकती है–

परिभाषा– 'टिप्पण' अभ्युक्तियों के लिखने की उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें किसी विचाराधीन पत्रादि के संबंध में अंतिम निर्णय तक पहुंचने के लिए अपने–अपने सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं।

टिप्पण का स्वरूप

टिप्पण एक लिखित अभ्युक्ति होता है। अतः इसमें निम्नलिखित कार्यवाही होती रहती है–

1. विचारार्थ प्रस्तुत कागजों पर पहले से हुई कार्यवाही, पत्र व्यवहार आदि का संक्षेप होता है।
2. विचारार्थ प्रस्तुत कागजों में विद्यमान समस्याओं का विश्लेषण करने के पश्चात उस पर आगे की जाने वाली कार्यवाही के लिए कथन अंकित किया जाता है।
3. विद्यमान समस्याओं के सुझावों पर अधिकारियों के आदेशों अथवा निर्देशों का उल्लेख होता है।
4. विचारार्थ समस्याओं के स्पष्टीकरण हेतु उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अंकित किया जाता है।
5. सही निर्णय लेने के लिए पहले के निर्णयों अथवा दृष्टांतों का उल्लेख किया जाता है।
6. विचारार्थ विषय से संबंधित नियमों, अधिनियमों, अध्यादेशों आदि को अंकित किया जाता है।
7. टिप्पणी लेखकों द्वारा अंकित सुझावों के अतिरिक्त अन्य संभाव्य सुझावों तथा टिप्पणी लेखकों की तत्संबंधित दलीलों का उल्लेख भी हो सकता है।
8. विचारार्थ प्रस्तुत समस्याओं पर अधिकारियों के अंतिम निर्णय या अंतिम कार्यवाही का उल्लेख होता है।

इस प्रकार टिप्पण ही एक अधिकारी को अंतिम निर्णय लेने के लिए निहित समस्या के संबंध में पूरी जानकारी प्रदान करता है, कार्यवाही संबंधी विविध विकल्पों का बोध कराता

टिप्पणी

है और इस बात के लिए भी प्रेरित करता है कि विविध विकल्पों में से अंतिम निर्णय के लिए किसका चयन करना चाहिए और किसको छोड़ देना चाहिए।

2.6.2 टिप्पण के प्रकार

वैसे तो टिप्पण के विविध रूप प्रचलित हैं परंतु आधुनिक कार्यालयों में छः प्रकार के टिप्पणों का प्रयोग देखा जाता है–

1. सूक्ष्म टिप्पण
2. सामान्य टिप्पण
3. संपूर्ण टिप्पण
4. विभागीय या अनुभागीय टिप्पण
5. नेमी टिप्पण
6. अनौपचारिक टिप्पण

2.6.3 टिप्पण के नियम

1. टिप्पण के लिए सदैव निर्धारित कागज का ही प्रयोग करना चाहिए।
2. यदि किसी सरकारी पत्र पर टिप्पण लिखना हो, तो पहले पत्रंक संख्या, दिनांक तथा पत्र व्यवहार का उल्लेख अवश्य कर देना चाहिए।
3. टिप्पण सदैव विषय के अनुरूप ही होना चाहिए, उसमें अवांतर विषयों का उल्लेख नहीं करना चाहिए।
4. टिप्पण सदैव संक्षिप्त एवं स्पष्ट होना चाहिए, उसमें व्यर्थ का विस्तार अवांछनीय है।
5. सदैव एक विषय पर एक ही टिप्पण होना चाहिए और जिस क्रम से पत्र प्राप्त हुए हों, उसी क्रम से उन्हें फाइल में लगाकर उन पर टिप्पण लिखना चाहिए।
6. यदि टिप्पण किसी कारणवश कुछ लंबा हो जाए, तो उसे अनुच्छेदों में बांट देना चाहिए और पहले अनुच्छेद में कोई संख्या न देकर फिर सभी अनुच्छेदों पर क्रमशः 1, 2, 3, 4 आदि लिख देना चाहिए।
7. टिप्पण में पहले विचारणीय विषय पर उल्लेख करके फिर उसकी पृष्ठभूमि या इतिवृत्त देना चाहिए, इसके बाद विविध दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए तार्किक विश्लेषण करना चाहिए और फिर अंत में उसे निपटाने के लिए अपने निश्चित सुझाव देने चाहिए।
8. टिप्पण में कभी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए बल्कि उसी मामले को स्पष्ट करना चाहिए, जिस पर पहले विचार नहीं किया गया है।
9. टिप्पण लिखते समय उन सभी नियमों, उपनियमों या अधिनियमों को भली प्रकार देख लेना चाहिए जिनका संबंध विषय से है और यदि आवश्यक हो तो उनका उल्लेख भी कर देना चाहिए।

टिप्पणी

10. यदि मूल पत्र में या पूर्व लिखित टिप्पणों में कोई तथ्य, वक्तव्य, तर्क या अन्य कोई बात त्रुटिपूर्ण हो तो संयत एवं शिष्ट भाषा में त्रुटि की ओर ध्यान आकर्षित कर देना चाहिए।
11. टिप्पण में उन सभी विकल्पों का सुझाव भी अवश्य देना चाहिए जो मामले को निपटाने या स्पष्ट करने में सहायक हो।
12. टिप्पण में किसी पत्र के उत्तर न आने तथा उसको अनुस्मारक भेजने आदि का उल्लेख अवश्य कर देना चाहिए साथ ही अंतिम अनुस्मारक भेजने की तिथि भी लिख देनी चाहिए।
13. टिप्पण में बाईं ओर लिपिक, सहायक, अधीक्षक या अनुभाग अधिकारी को अपने हस्ताक्षर करने चाहिए और दाईं ओर उच्चाधिकारी को अपने हस्ताक्षर करके अपने पद, फ़ोन नं. आदि का उल्लेख करना चाहिए। यदि कोई अधिकारी संक्षिप्त हस्ताक्षर करता है तो उसके नीचे कोष्ठक में उसका पूरा नाम अंकित कर देना चाहिए।
14. टिप्पणकर्ता को यदि अन्य किसी विभाग की अनुभाग से कोई अनुमति मांगनी है तो टिप्पण में उसका उल्लेख कर देना चाहिए।
15. टिप्पण के लिए सदैव सरल, स्पष्ट एवं सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिए तथा तर्कपूर्ण आलोचना करते समय या कोई सुझाव देते समय किसी प्रकार की अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए।
16. टिप्पण लिखते समय संबंधित फाइल के क्रमांक अथवा अन्य पत्रादि के संकेत बगल में हाशिये के पास अवश्य देने चाहिए।
17. टिप्पण में जिन तर्कों, तथ्यों एवं नियम–उपनियमों का उल्लेख किया जाए, उनकी सही–सही जांच–पड़ताल करके ही उनका प्रयोग करना चाहिए।

2.6.4 टिप्पण के रूप और उदाहरण

टिप्पण के रूप

1. **सूक्ष्म टिप्पण**– इसे अंग्रेजी में Short Noting कहते हैं। हिंदी में इसके लिए 'टीप' शब्द भी प्रचलित है। जब किसी कार्यालय में बहुत से पत्र/कागज आते हैं, तब अनुभाग या विभाग से ऐसे पत्रों/कागजों को अधिकारियों के पास भेजने के लिए उन पर बगल में जो सूक्ष्म अभ्युक्ति लिखी जाती हैं उसके लिए सूक्ष्म टिप्पण का प्रयोग किया करते हैं। जैसे– 'देख लिया है। ठीक है', 'देखकर वापिस किया जाता है', 'देख लिया, धन्यवाद', 'कृपया मिल लीजिए' आदि।
2. **सामान्य टिप्पण**– इसे अंग्रेजी में Simple Noting कहते हैं। कार्यालय में आए हुए जिन पत्रों/कागजों पर उनको निपटाने के लिए किसी पूर्व इतिहास अथवा पुरानी कार्यवाही का विवरण देने की आवश्यकता नहीं होती तथा नयी कार्यवाही ही प्रारंभ होती है ऐसे पत्रों/कागजों पर जो टिप्पण लिखे जाते हैं उन्हें 'सामान्य टिप्पण' कहते हैं। उदाहरण के लिए– 'अभ्यावेदन (रिप्रेजेंटेशन) उचित माध्यम से नहीं मिला है। हमें इस पर कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं।'

टिप्पणी

3. **संपूर्ण टिप्पण**– इसे अंग्रेजी में Full Noting कहते हैं। इसका प्रयोग तब होता है जब किसी विचाराधीन विषय से संबंधित पुरानी फाइलों की छानबीन करके उनका पूरा इतिहास खोजना पड़े और तत्संबंधी नियमों, अधिनियमों आदि का अध्ययन किया जाए। यह सब करने के बाद विचाराधीन विषय संबंधी पत्र/कागज पर विस्तारपूर्वक गहराई से टिप्पण लिखा जाता है, तब उसे 'संपूर्ण टिप्पण' कहते हैं। ऐसे टिप्पण प्रायः कार्यालयों में लिपिकों द्वारा तैयार किए जाते हैं और अधिकारी कभी ऐसे टिप्पण नहीं लिखते। वे तो ऐसे टिप्पणों को देखकर अंतिम निर्णय दिया करते हैं। जैसे ...

प्राप्ति संख्या 12, पृष्ठ 10, पत्र व्यवहार

(i) श्री विट्ठलभाई, सदस्य, विधान सभा ने प्रश्न पूछा है कि गुजरात सरकार शासकीय सेवाओं के निमित्त कौन–कौन–सी जातियों एवं पिछड़े वर्गों को ध्यान में रखती हैं। यह प्रश्न विधान सभा के वर्तमान सभा के अधिवेशन में 20 अगस्त, 1980 के लिए निर्धारित है।

(ii) गुजरात राज्य सरकार ने 15 दिसंबर, 1955 को एक आदेश जारी किया था जिसमें उन जातियों के नाम दिए गए थे, जिन्हें तत्कालीन राज्य सरकार सार्वजनिक सेवाओं के लिए अनुसूचित जातियों एवं पिछड़े वर्गों में सम्मिलित करती थी।

(iii) पुनर्गठित गुजरात राज्य सरकार ने 21 सितंबर, 1957 के आदेश द्वारा इस आदेश को संशोधित किया था। राज्य के निर्माण के पश्चात गुजरात राज्य सरकार ने 26 अक्टूबर, 1962 को इस संबंध में एक नया आदेश जारी किया था।

(iv) 15 दिसंबर, 1955 के आदेश में जिन जातियों एवं जमातों को अनुसूचित एवं पिछड़ा माना गया था, उससे अधिक जातियां एवं जमातें 21 सितंबर, 1957 के आदेश में सम्मिलित थीं। इसका कारण यह था कि गुजरात राज्य के पुनर्गठन के बाद कच्छ, सौराष्ट्र आदि के कई क्षेत्र गुजरात राज्य में सम्मिलित कर लिए गए थे। अतः वहां की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियों को भी सूची में सम्मिलित करना आवश्यक हो गया था। ऐसे ही जिन अनुसूचित जातियों ने धर्म–परिवर्तन कर लिया था, उन्हें सूची से हटाना आवश्यक था। अतएव 20 अक्टूबर, 1962 को गुजरात सरकार ने एक नया आदेश जारी किया। इस आदेश में जिन जातियों के नाम दिये गए थे, वे गुजरात सरकार द्वारा शासकीय सेवाओं की दृष्टि से अधिकृत एवं मान्य हैं।

सदन के पटल पर उपर्युक्त जानकारी में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती।

आदेशार्थ

एन.पी. देसाई

21–7–2005

अवर सचिव

टिप्पणी

4. **विभागीय या अनुभागीय टिप्पण**– जब किसी विषय में ऐसे मसले आ जाते हैं कि उनको हल करने के लिए विभिन्न अनुभागों से अलग–अलग आदेश प्राप्त करना जरूरी हो जाता है, तब विभागीय तथा अनुभागीय टिप्पण तैयार किया जाता है। ऐसे टिप्पणों को 'आंशिक' या 'अनुभागिक' टिप्पण भी कहते हैं। इन टिप्पणों को ध्यान में रखते हुए ही पूर्ण टिप्पण तैयार किया जाता है। जैसे–

प्रार्थना–पत्र : छुट्टी मंजूरी के आदेश के लिए प्रस्तुत।

योगेश कुमार

अवर श्रेणी लिपिक

दिनांक : 25–3–2013

श्री महेश चंद्र अवर श्रेणी लिपिक को 1–4–13 से 30–4–13 तक छुट्टियां बढ़ाने के संबंध में चिकित्सा–प्रमाण पत्र देने के लिए कहा जाए।

सचिन बंसल

अवर सचिव

दिनांक : 26–3–2013

श्री महेश चंद्र अवर लिपिक को उनके 1–4–2013 से 30–4–2013 तक छुट्टियां बढ़ाने के संबंध में चिकित्सा प्रमाण–पत्र देने के लिए कहा गया था। उन्होंने चिकित्सा प्रमाण–पत्र दे दिया है। नियमानुसार और उनके छुट्टी के लेखे के अनुसार भी उन्हें 30 दिन की छुट्टियां मंजूर कर दी जाएं और अंतरिम व्यवस्था का आदेश दिया जाए।

अंगन पाल सिंह

अवर श्रेणी लिपिक

दिनांक : 28–3–2013

आवेदित छुट्टियां दे दी जाएं और अंतरिम व्यवस्था के रूप में छुट्टियों के कारण हुई रिक्त जगह पर एक माह के लिए एवजी नियुक्त कर लिया जाए।

सिद्धांत पाराशर

अवर सचिव

दिनांक : 28–3–2013

5. **नेमी टिप्पण**– इसे अंग्रेजी में Routine Noting कहते हैं और इसके लिए हिंदी में 'नित्यक्रमिक टिप्पण' शब्द भी प्रचलित है। ऐसे टिप्पणों का संबंध कार्यालयों की छोटी–छोटी बातों से होता है और इन्हें अभिलेख के लिए नहीं रखा जाता है। जैसे, 'देख लिया', 'धन्यवाद', 'कागज–पत्र मिला दिए गए हैं', 'संगत आदेशों पर पर्ची लगा दी गई है', 'कार्यालय इसे सावधानी से नोट कर लें', 'कृपया सभी को दिखाकर फाइल कर दीजिए' आदि।

6. **अनौपचारिक टिप्पण**– जो टिप्पण एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय को अथवा एक कार्यालय को किसी प्रस्ताव या कागज की जानकारी प्राप्त करने के लिए सीधे

टिप्पणी

भेजे जाते हैं और जिनमें उपयुक्त सीढ़ियों को पार करने का बंधन नहीं होता उन्हें 'अनौपचारिक टिप्पण' कहते हैं। ऐसे टिप्पणों के जो उत्तर प्राप्त होते हैं वे भी अनौपचारिक कहलाते हैं। जैसे– 'बात कर जाइए', 'मैं सहमत हूं', 'विचाराधीन कागज में जो प्रस्ताव रखे गए हैं, वे उचित हैं', 'यह निश्चय किया गया है कि आपातकाल के दौरान कोई नया पद न बनाया जाए', 'अभ्यावेदन' उचित माध्यम से नहीं मिला है, हमें इस पर कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं' आदि।

संक्षिप्त टिप्पणियों के उदाहरण

Please see over leaf	कृपया पिछला पृष्ठ देखें
Please turn over	कृपया पृष्ठ उलटें
Relevant paper may be put up	संबद्ध कागज/पत्र प्रस्तुत करें
Report for duty	काम पर हाजिर हों
Sanctioned as a special case	विशेष प्रकरण के रूप में स्वीकृत किए जाएं
Submitted for perusal	सूचनार्थ प्रस्तुत
This is inadmissible	यह अस्वीकार्य है
This is receiving attention	इस पर गौर किया जा रहा है
This office letter may be treated as cancelled	इस कार्यालय का पत्र रद्द समझा जाए
This requires administration approval	इसमें प्रशासनिक अनुमोदन अपेक्षित है

कुछ विस्तृत टिप्पणियों के उदाहरण

1. मूल में ही इस टिप्पणी के साथ लौटाया जाता है कि अपेक्षित सूचना पहले इस कार्यालय के पत्र सं.....दिनांक.....द्वारा भेजी जा चुकी है।
2. इस विषय के पहले कागज पत्र.....अनुभाग को अंतरित कर दिए गए हैं। यह अनुभाग कृपया इस बारे में आगे की कार्यवाही के लिए देख लें।
3. आवेदन पत्र ठीक ही लगता है। मंजूरी के प्रारूप (मसौदे) के अनुसार आवश्यक अनुमति देने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।
4. मैंने इस मामले पर अवर सचिव तथा अधीक्षक दोनों से बात कर ली है। उनका विचार है कि इस मामले को फिलहाल रोक लिया जाए।
5. विचाराधीन पत्र पदोन्नति संबंधी है। श्री.....का प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया जाए।
6. श्री.....का कोई भी आकस्मिक अवकाश बाकी नहीं है, इसलिए उनका अवकाश प्रार्थना–पत्र मूल रूप में अर्जित अवकाश की स्वीकृति के लिए सेवा "ब" विभाग में भिजवा दिया जाए।

7. मेरे विचार में इस संबंध में हमें अपना मत निश्चित कर लेना चाहिए। उच्च अधिकारियों से आदेश लेकर अगली आवश्यक कार्यवाही अवश्य कर लेनी चाहिए।
8. इस मामले में अनुमति देना लोकहित के प्रतिकूल होगा।
9. मैंने आज ही संबंधित पत्रावली देखी है। उसमें भी इस बात पर प्रकाश नहीं डाला गया है। इसलिए.....(संबंधित) विभाग से आज ही जानकारी मांग ली जाए और इस मामले को सचिव तक भेज दिया जाए।
10. इस पर हमारी ओर से किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं दिखती। यदि अनुमति हो तो कागजातों/प्रपत्रों को रिकॉर्ड कर लिया जाए।

2.7 परिपत्र

परिपत्र के माध्यम से मंत्रालयों व विभिन्न विभागों द्वारा उनके अधीनस्थ कार्यालयों, विभागों तथा अनुभागों को सूचना, निर्देश और आदेश भेजे जाते हैं।

उदाहरण 1

ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स
विभागीय कार्यालय

दिनांक : 25 मार्च, 2010, संदर्भ परि/10/85

शाखा प्रबंधक,
ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स

विषय : प्रस्तावित शाखाओं के लिए कर्मचारियों से स्थानांतरण के आवेदन–पत्र की मांग।

सूचित किया जाता है कि निम्नलिखित स्थानों पर हमारे बैंक की शाखाएं खोलने का प्रस्ताव है–

1. हबीबगंज (लखनऊ)
2. सीतापुर
3. कटरा रामजस
4. भाटापारा

अतः बैंक के कार्यरत कर्मचारियों से टंकक, लिपिक, खजांची तथा अधीनस्थ पदों के लिए आवेदन–पत्र आमंत्रित किए जा रहे हैं। इच्छुक कर्मचारी अपना आवेदन–पत्र शाखा–प्रबंधक के माध्यम से निम्नलिखित बातों की जानकारी देते हुए भेज सकते हैं–

1. आवेदक का नाम व पता
2. बैंक में सेवा आरंभ की तिथि
3. वर्तमान कार्य का स्वरूप
4. आहरित विशेष भत्ते, यदि हों

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

17. 'टिप्पण'.....शब्द 'Noting' का हिंदी अनुवाद है।
18. टिप्पणियों को लिखने की प्रक्रिया को..... कहा जाता है।

सही/गलत बताइए–

19. 'आधुनिक कार्यालयों' में दस प्रकार के टिप्पणों का प्रयोग किया जाता है।
20. सूक्ष्म टिप्पण को अंग्रेजी में Short Noting कहते हैं।

टिप्पणी

5. चुने गए स्थानों के क्रम

आवेदन पत्र इस कार्यालय में दो सप्ताह के अंदर पहुंच जाने चाहिए।

भवदीय
सहायक विभागीय प्रबंधक
(प्रशासन)

उदाहरण 2

नई दिल्ली 28 जून, 2013

संख्या सा./परि./100
भारतीय डाक तार विभाग
डाक तार महानिदेशालय

विषय : कार्यालय में ठीक समय पर उपस्थिति।

सभी कर्मचारियों का ध्यान इस महानिदेशालय के दिनांक 7 मई, 2013 के परिपत्र सं. 10/90–91 की ओर आकृष्ट किया जाता है। उक्त परिपत्र में यह बताया गया था कि कार्यालय में किसी भी कर्मचारी के निश्चित समय से देरी करके आने पर आधे दिन का अवकाश समझा जाएगा।

विगत माह विभिन्न विभागों, अनुभागों तथा प्रभागों के आकस्मिक निरीक्षण के बाद पाया गया कि अनेक कर्मचारी कार्यालय में समय पर उपस्थित नहीं हो रहे हैं। ऐसे कर्मचारियों को सावधान किया जाता है कि वे कार्यालय में ठीक समय पर (सुबह 10.00 बजे) उपस्थित हों, अन्यथा उनके विरुद्ध कठोर अनुशासनिक कार्यवाही की जाएगी और उक्त सूचनानुसार उनका आधे दिन का अवकाश समझा जाएगा।

निदेशक (सेवा)
पृष्ठांकन सं. 5क/10/22/75 (सेवा)
दिनांक 28 जून, 2013

प्रतिलिपि निम्नलिखित को सूचना और आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित–

1. सभी अनुभागों के अधिकारी/अधीक्षक
2. विभागाध्यक्ष

वे कृपया इस परिपत्र की ओर, अपने सभी अधीनस्थ कर्मचारियों का ध्यान–आकर्षित करें।

3. नोटिस बोर्ड

निदेशक (सेवा)

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

21. .....के माध्यम से मंत्रालयों व विभिन्न विभागों द्वारा उनके अधीनस्थ कार्यालयों, विभागों तथा अनुभागों को सूचना, निर्देश और आदेश भेजे जाते हैं।

सही/गलत बताइए–

22. सरकारी कार्यालयों में ज्ञापन का प्रयोग कर्मचारियों की नियुक्तियों, अधिकारियों की नियुक्तियों, तैनातियों, स्थानांतरण, वेतनवृद्धि, प्रार्थनापत्रों, याचिकाओं, आवेदन–पत्रों की स्वीकृति के लिए किया जाता है।

2.8 ज्ञापन

सरकारी कार्यालयों में ज्ञापन का प्रयोग कर्मचारियों की नियुक्तियों, अधिकारियों की नियुक्तियों, तैनातियों, स्थानांतरण, वेतनवृद्धि, प्रार्थनापत्रों, याचिकाओं, आवेदन–पत्रों की स्वीकृति के लिए किया जाता है। इसके अलावा, कार्यालयों को आवश्यक आदेश आदि भेजने के लिए भी ज्ञापन का प्रयोग किया जाता है। इसमें संबोधन और स्वनिर्देश नहीं होता तथा ज्ञापन के अंत में भेजने वाले का पद व हस्ताक्षर होते हैं।

टिप्पणी

उदाहरण

क्रम संख्या 27/13/86 अ.ब.

भारत सरकार
स्वास्थ्य मंत्रालय
नई दिल्ली 23 जून, 2013

विषय : प्राथमिक पाठशालाओं के छात्रों के स्वास्थ्य की जांच संबंधी व्यवस्था।

भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने यह निर्णय लिया है कि सभी राज्यों में प्राथमिक शाला में पढ़ने वाले छात्रों के स्वास्थ्य की जांच की जाए।

इसीलिए सभी राज्य सरकारों से यह अनुरोध है कि वे इस दिशा में शीघ्र कदम उठाएं।

पी.एल. माथुर
अवर सचिव, भारत सरकार

प्रतिलिपि प्रेषित :
भारत की सभी राज्य सरकारों को।

कार्यालय ज्ञापन

कार्यालय ज्ञापन का प्रयोग सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के बीच आपस में संपर्क करने एवं सूचना देने के अलावा मंत्रालयों के अधीन कार्यालयों, विभागों तथा अधिकारियों के पास कोई सूचना भेजने के लिए किया जाता है। इस तरह के पत्र अन्य पुरुष में लिखे जाते हैं।

उदाहरण

दिनांक : 10 नवम्बर, 2013

सं. 10/12/75
भारत सरकार
रक्षा मंत्रालय
नई दिल्ली

विषय : राष्ट्रीय सैनिक स्कूल पूना में हिंदी की पाठ्य–पुस्तकों का अभाव

इस मंत्रालय के दिनांक 2 सितंबर, 2013 के पत्र संख्या 4/13/70 के संदर्भ में अधोहस्ताक्षरी को यह निवेदन करने का निर्देश हुआ है कि रक्षा मंत्रालय द्वारा संचालित सैनिक स्कूलों में शिक्षा मंत्रालय द्वारा तैयार की गई हिंदी की पाठ्य–पुस्तकें समान रूप से निर्धारित की गई हैं। इस मंत्रालय को यह सूचना मिली है कि राष्ट्रीय सैनिक स्कूल, पूना को वे पाठ्य–पुस्तकें अभी प्राप्त नहीं हुई हैं।

अतः अनुरोध किया जाता है कि सैनिक स्कूल, पूना को हिंदी की पाठ्य–पुस्तकें यथाशीघ्र भिजवाने की व्यवस्था की जाए, ताकि जनवरी में स्कूल खुलते ही छात्रों को पुस्तवेंक प्राप्त हो सकें।

टिप्पणी

हस्ताक्षर
भाग चंद
अवर सचिव, भारत सरकार
सेवा में
अपर सचिव, शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली।

गतिविधि

पत्र लेखन के प्रकारों का एक चार्ट बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक में राजभाषा संबंधी प्रावधान दिए गए हैं।

2.9 सारांश

सरकारी या गैर–सरकारी कामकाज में प्रयुक्त पत्र, परिचय पत्र, ज्ञापन, सूचना, आदेश आदि को अंतिम रूप देने से पहले उनका जो कच्चा रूप तैयार किया जाता है, उसे प्रारूपण कहते हैं। सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालयों में पत्र व्यवहार करते समय विविध प्रकार के प्रारूपणों का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त प्रस्ताव पारित करने, तार देने, सूचना भेजने, आदेश देने, उद्घोषणा करने आदि के लिए भी प्रारूप तैयार किए जाते हैं। पत्र मानव सभ्यता के विकास के वाहक हैं। आज के वैज्ञानिक युग में संचार–माध्यमों के विकास के द्वारा पत्राचार से हजारों मील दूर बैठे आत्मीयों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। पत्र आज की दुनिया में वैचारिक प्रगति के पहिए हैं। लिपि के विकास से पूर्व चित्रों अथवा विभिन्न संकेतों के माध्यम से सूचना–संप्रेषण का काम किया जाता था। पत्र–लेखन में क्षमता प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति की कामना होती है। पत्र को हम विश्वबंधुत्व का एक प्रबल माध्यम भी कह सकते हैं। दुनिया के अनेक साधारण और असाधारण व्यक्तियों ने पत्रों के द्वारा मित्र बनाकर जीवन में महती सफलता प्राप्त की है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में इन पत्रों से जुड़ा हुआ है। किसी भी महापुरुष, नेता, साहित्यकार द्वारा लिखे गए पत्रों के द्वारा हम उसकी चिंतनकला, विचारधारा, जीवन दर्शन, देश–विदेश नीति तथा अन्य बहुत–सी उपयोगी क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एक सफल पत्र तैयार करने के लिए, उसे काट–छांट आदि से बचाने के लिए समझदार लोग पत्र की कच्ची रूपरेखा पहले तैयार कर लेते हैं। प्राप्तकर्त्ता का पता लिफाफे आदि पर सावधानीपूर्वक लिखा जाना चाहिए, जिसमें जनपद, प्रांत तथा पिन कोड आदि का उल्लेख पत्र को उसके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए अत्यंत अनिवार्य है। यदि पत्र में प्रमाण स्वरूप कुछ प्रमाण–पत्र लगाने पड़ें, तो उन पर पहले क्रमांक डालें, फिर पत्र के अंत में बांयी

टिप्पणी

ओर उनका उल्लेख करें। किसी विस्तृत अवतरण, वक्तव्य, लेख, निबंध, अनुच्छेद आदि में व्यक्त भावों एवं विचारों को मूल की अपेक्षा बहुत कम शब्दों में सरल, स्पष्ट एवं क्रमबद्ध रूप से प्रकट करना 'संक्षेपंण' कहलाता है। प्रायः व्याख्यान, कहानी, समाचार, संदेश, पत्र, संवाद आदि विविध विषयों का संक्षेपण किया जाता है। कसी भी गद्यांश, अवतरण या अनुच्छेद का संक्षेपण करते समय दो बातों की ओर ध्यान देना परमावश्यक होता है– एक तो गद्यांश, अवतरण या अनुच्छेद का उपयुक्त शीर्षक देना तथा दूसरे उसका एक तिहाई में संक्षेपण करना। सूत्र रूप में या संक्षेप में व्यक्त भाव या विचार के विस्तार को 'पल्लवन' कहते हैं। 'पल्लवन' अंग्रेजी के (Expansion) शब्द का हिंदी अनुवाद है। इसे 'भाव विस्तार' या 'भाव पल्लवन' भी कहते हैं परंतु 'पल्लवन' शब्द अधिक उपयुक्त एवं समीचीन है। यह शब्द संक्षेपण का पूर्णतया विरोधी है क्योंकि 'संक्षेपण' में जहां विस्तार में वर्णित किसी भाव या विचार को संक्षिप्त रूप दिया जाता है, वहां 'पल्लवन' के अंतर्गत सूत्र रूप में वर्णित किसी भाव या विचार का विस्तार किया जाता है। प्रायः जब कोई सरकारी या गैर–सरकारी पत्र कार्यालय में आता है, तभी से उस पर कार्यवाही का एक सिलसिला शुरू हो जाता है। यह सिलसिला उस समय तक चलता रहता है जिस समय तक उस पत्र पर अंतिम निर्णय नहीं हो जाता। पत्र पर अंतिम निर्णय होने तक अथवा उस पत्र के अंतिम तौर पर निपटाने तक कार्यालयों के लिपिक तथा अधिकारीगण उन पर जो–जो अभ्युक्तियां लिखा करते हैं, वे ही 'टिप्पणी' कहलाती हैं। इन टिप्पणियों को लिखने की प्रक्रिया को 'टिप्पण' कहा जाता है। टिप्पण ही एक अधिकारी को अंतिम निर्णय लेने के लिए निहित समस्या के संबंध में पूरी जानकारी प्रदान करता है, कार्यवाही संबंधी विविध विकल्पों का बोध कराता है और इस बात के लिए भी प्रेरित करता है कि विविध विकल्पों में से अंतिम निर्णय के लिए किसका चयन करना चाहिए और किसको छोड़ देना चाहिए।

परिपत्र के माध्यम से मंत्रालयों व विभिन्न विभागों द्वारा उनके अधीनस्थ कार्यालयों, विभागों तथा अनुभागों को सूचना, निर्देश और आदेश भेजे जाते हैं। सरकारी कार्यालयों में ज्ञापन का प्रयोग कर्मचारियों की नियुक्तियों, अधिकारियों की नियुक्तियों, तैनातियों, स्थानांतरण, वेतनवृद्धि, प्रार्थनापत्रों, याचिकाओं, आवेदन–पत्रों की स्वीकृति के लिए किया जाता है। इसके अलावा, कार्यालयों को आवश्यक आदेश आदि भेजने के लिए भी ज्ञापन का प्रयोग किया जाता है। इसमें संबोधन और स्वनिर्देश नहीं होता तथा ज्ञापन के अंत में भेजने वाले का पद व हस्ताक्षर होते हैं।

2.10 मुख्य शब्दावली

- **प्रारूपण** : मसौदा, प्रलेख
- **संलग्नक** : साथ लगा हुआ पत्र/दस्तावेज
- **कृते** : के वास्ते
- **अधोहस्ताक्षरी** : नीचे हस्ताक्षर करने वाला
- **आशुलिपि** : शार्ट हैंड
- **संक्षेपण** : सार लेखन

टिप्पणी

- **पल्लवन** : भाव विस्तार करना
- **सुव्यवस्थित** : ठीक प्रकार से व्यवस्थित
- **व्याकरण–सम्मत** : व्याकरण के अनुकूल

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रारूपण का अर्थ और परिभाषा लिखिए।
2. पत्र लेखन के गुण एवं विशेषताएं लिखिए।
3. संक्षेपण के प्रकार लिखिए।
4. पल्लवन का अर्थ और परिभाषा लिखिए।
5. टिप्पणी का अर्थ और परिभाषा लिखिए।
6. परिपत्र के स्वरूप का एक उदाहरण दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रारूपण के अर्थ और परिभाषा का वर्णन करते हुए इसके प्रकारों एवं नियमों पर प्रकाश डालिए।
2. पत्र लेखन के प्रकारों का विस्तारपूर्वक उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
3. संक्षेपण के अर्थ और परिभाषा का वर्णन करते हुए संक्षेपण के नियम/प्रविधि पर प्रकाश डालिए।
4. पल्लवन के प्रकार एवं नियमों पर प्रकाश डालिए।
5. टिप्पणी के स्वरूप, प्रकार एवं नियमों का वर्णन कीजिए।

2.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. Drafting
2. तथ्यों
3. सही
4. गलत
5. विकास
6. सरकारी
7. सही
8. गलत
9. Precis

10. पुनरावृत्ति
11. गलत
12. सही
13. पल्लवन
14. पद्धति
15. गलत
16. गलत
17. अंग्रेजी
18. टिप्पण
19. गलत
20. सही
21. परिपत्र
22. सही

2.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. सिंह दिनेश प्रसाद, *प्रयोजनमूलक हिंदी और पत्रकारिता,* वाणी प्रकाशन, 2007
2. ओम प्रकाश और वीना गंजू, *व्यावहारिक हिंदी शुद्ध प्रयोग,* राजपाल एंड सन्स, 2007
3. माधव सोनतक, *प्रयोजनमूलक हिंदी,* लोकभारती प्रकाशन, 2009
4. हरिमोहन, *समाचार, फीचर लेखन एवं संपादन कला,* तक्षशिला प्रकाशन 2008
5. भाटिया डॉ. कैलाशनाथ, *कामकाजी हिंदी,* तक्षशिला प्रकाशन, 2006
6. भाटिया कैलाशचन्द्र और रचना, *व्यावहारिक हिंदी प्रक्रिया और स्वरूप,* तक्षशिला प्रकाशन, 2007

टिप्पणी

इकाई 3 अनुवाद : अर्थ एवं अभिप्राय

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 अनुवाद : अर्थ, परिभाषा एवं अभिप्राय
3.3 अनुवाद की पद्धतियां–मानवीकृत अनुवाद व मशीनी अनुवाद
3.4 अनुवाद के प्रकार
  3.4.1 अंतःभाषिक अनुवाद
  3.4.2 अंतरभाषिक अनुवाद
  3.4.3 अंतर अनुशासनिक अनुवाद
  3.4.4 साहित्यिक अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार
  3.4.5 जनसंचार संबंधी सामग्री का अनुवाद
  3.4.6 कार्यालयी सामग्री का अनुवाद
  3.4.7 अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद
3.5 अनुवाद की कसौटी
3.6 अनुवादक की कसौटी
3.7 अनुवाद की चुनौतियां
3.8 अनुवाद की भूमिका
3.9 सारांश
3.10 मुख्य शब्दावली
3.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

अनुवाद का प्रारंभ कब और किस प्रकार से हुआ यह सप्रमाण नहीं कहा जा सकता लेकिन यह अवश्य निश्चित किया गया है कि धर्म प्रचार के लिए अनुवाद की आवश्यकता हुई थी। इसाई धर्म प्रचारकों ने बाइबिल के उपदेश संसार में फैलाने के उद्देश्य से अनुवाद का सहारा लिया था। 'अनुवाद' शब्द का अंग्रेजी में समानार्थी शब्द ट्रांसलेशन (Translation) है। Translation शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। Trans का अर्थ है 'पार' और Lation का अर्थ है 'ले जाना'। इस प्रकार Translation का अर्थ हुआ 'एक पार से दूसरी पार' ले जाना। Translation शब्द लैटिन भाषा से आया है। भारत में प्राचीन शिक्षा पद्धति वाचक परंपरा पर आधारित रही है। इसलिए 'अनुवाद' शब्द बोलने के अर्थ में प्रचलन में आया। अनुवाद एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में बोलने की प्रक्रिया है। यद्यपि आज अधिकतर अनुवाद लिखित में ही होता है फिर भी इसे बोलने वाले अर्थ में ही प्रयोग में लाया जाता है। यह परंपरागत रूप में प्रचलित शब्द का प्रभाव है। अनुवाद के दो मुख्य पहलू हैं–पारिभाषिक शब्दावली और सुगठित तथा सहज वाक्य रचना। अनुवाद दो भाषाओं के बीच घटित प्रक्रिया का नाम है। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है उसे 'स्रोत भाषा' और जिस

टिप्पणी

भाषा में अनुवाद किया जाता है उसे 'लक्ष्य भाषा' कहते हैं। इस इकाई में अनुवाद एवं इसके प्रकार, अनुवाद और अनुवादक की कसौटी तथा अनुवाद की चुनौतियों और अनुवाद की भूमिका का वर्णन किया गया है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अनुवाद की परिभाषा, स्वरूप, क्षेत्र एवं प्रक्रिया से परिचित हो पाएंगे;
- हिंदी की प्रयोजनशीलता में अनुवाद की भूमिका से अवगत हो पाएंगे;
- कार्यालयी हिंदी अनुवाद तथा साहित्यिक हिंदी अनुवाद का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे;
- अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार; काव्यानुवाद और संबंधित समस्याएं तथा कहानी अनुवाद और संबंधित समस्याओं को जान पाएंगे;
- विज्ञापन एवं विधि साहित्य का अनुवाद कर पाएंगे।

3.2 अनुवाद : अर्थ, परिभाषा एवं अभिप्राय

'अनुवाद' शब्द संस्कृत 'वद्' धातु में 'घञ' प्रत्यय तथा 'अनु' उपसर्ग लगाने से संपन्न हुआ। 'वद्' धातु का अर्थ है 'पश्चात्' अतः अनुवाद का अर्थ है–कही हुई बात को फिर से कहना। कोश के अनुसार 'पहले कहे गए अर्थ को फिर से कहना 'अनुवाद' है।'

अनुवाद की प्रक्रिया जटिल है लेकिन इसको परिभाषित करना भी उतना ही जटिल है–

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद हैं इन्हीं प्रतीकों का प्रति–स्थापन अर्थात एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा में निकटतम (कथनतः और कथ्यतः) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद निकटतम, समतुल्य और सहज प्रति–प्रतीकन है।"

ए.एच. स्मिथ के अनुसार, "अर्थ को बनाए रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण करना अनुवाद है।"

अनुवाद की कोई सर्वसम्मत निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है। वास्तव में, अनुवाद मूल भाषा में अभिव्यक्त विचार, वक्तव्य रचना अथवा सूचना साहित्य को यथासंभव मूल भावना के समानांतर बोध एवं संप्रेषण के धरातल पर जिसमें अनुवाद किया जाए उसे अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया है।

परिभाषा– अनुवाद की प्रक्रिया जितनी जटिल है उसको परिभाषित करना भी उतना ही जटिल है। फिर भी अनेक मनीषियों, भाषाविदों तथा अनुवादकों ने इसे इस प्रकार से परिभाषित किया है–

टिप्पणी

डॉ. स्टर्ट के अनुसार, "अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसका घनिष्ठ संबंध किसी एक सुनिश्चित प्रतीक समूह को दूसरे विन्यासगत प्रतीक समूह में अंतरित करने की प्रक्रिया अथवा समस्या से होता है।" अनुवाद में अर्थ को प्रधानता देते हुए उन्होंने कहा था कि "अर्थ हमारे विचार में भाषा गुणधर्म है।" किसी भी स्रोत भाषा के पाठ का अर्थ अपना होता है और लक्ष्य भाषा के पाठ का अर्थ भी अपना होता है।

डॉ रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार, "एक भाषा की पाठ सामग्री में अंतर्निहित तथ्य का समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर दूसरी भाषा में संगठनात्मक रूपांतरण अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन ही अनुवाद कहा जाता है।"

डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर के अनुसार, "अनुवाद की प्रविधि एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करने तक सीमित नहीं है। एक भाषा के एक रूप के कथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना भी अनुवाद है। छंद में बताई गई बात को छंद में उतारना भी अनुवाद है।"

डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया के शब्दों में, "अनुवाद वह प्रविधि है जिसके माध्यम से एक भाषा में कही गई बात को/विचार को/सामग्री को दूसरी भाषा में उसी क्षमता के अनुसार कह दिया जाता है।"

The Oxford Universal Dictionary में भी कहा गया है– "The action of process of turning from one language into another, also the product of this, a version in a different language." अर्थात एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण की कार्यवाही अथवा प्रक्रिया, साथ ही इसका उत्पादन जो अलग तरह की भाषा में होता है (अनुवाद है)।

विभिन्न विद्वानों द्वारा अनुवाद के संदर्भ में प्रस्तुत परिभाषाओं के अवलोकन के पश्चात अनुवाद की मूल परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

"मूल पाठ में निहित भावों, विचारों को अन्य (लक्ष्य) भाषा में अक्षुण्ण रूपांतरित करने एवं सौंदर्य उपकरणों को सहज रूप से अभिव्यक्त करने की संप्रेषण प्रक्रिया अनुवाद है।"

अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार

अनुवाद का प्रारंभ कब और किस प्रकार हुआ यह नहीं कहा जा सकता लेकिन यह अवश्य निश्चित किया गया है कि धन प्रचार के लिए अनुवाद की आवश्यकता हुई थी। अनुवाद के सिद्धांत एवं व्यवहारों के अनुसार उसे निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया गया है।

सिद्धांत

1. **प्रेरणावादी सिद्धांत–** इस सिद्धांत के अनुयायी इस बात के पक्षधर हैं कि लक्ष्य भाषा के वाक्य विन्यास को बहुत अधिक ध्यान में रखकर केवल अर्थ का अनुवाद किया जाए।
2. **भाषाशास्त्रीय सिद्धांत–** भाषा शास्त्र के प्रकांड पंडितों ने इस बात पर जोर डाला है कि प्रत्येक शब्द को मूल रचना के अनुसार ही अनूदित करना चाहिए। इनका मानना है कि मूल रचना के शब्दों के क्रम बदल देने से उसके वास्तविक अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

टिप्पणी

3. **परंपरावादी सिद्धांत**–इसके समर्थकों का मानना है कि बाइबिल के संदेशों में ईश्वरीय वचन निहित है। इन वचनों के क्रम में परिवर्तन करने का अधिकार किसी को नहीं है क्योंकि शब्दों का क्रम और विन्यास बदल देनें से बाइबिल के उपदेशों की गरिमा में कमी आएगी।

व्यवहार

अनुवाद का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज विश्व एक इकाई हो गया है। ऐसी स्थिति में हर क्षण यह जानने की आवश्यकता होती है कि किसने क्या कहा, किसने क्या लिखा? यह सब अनुवाद के द्वारा ही संभव है। दिन–प्रतिदिन इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है–

1. **शिक्षा**–ज्ञानार्जन के लिए एक देश के शिक्षार्थी दूसरे देश में और दूसरे देश के शिक्षार्थी किसी और देश में आते–जाते रहते हैं। आजकल शिक्षा दूर–शिक्षण (Distance Education) के आधार पर की जा रही है। इस पद्धति में उपग्रहों के द्वारा दूर–दराज में बैठे लोगों को शिक्षित करने का काम किया जाता है। इस कार्य में अनुवाद सबसे महत्वपूर्ण सहायक तत्व है।

   इसके अलावा अनूदित पुस्तकें शिक्षा के लिए सामग्री उपलब्ध करवाती हैं। भारतीय विद्वानों के शोध विदेशों में वहां की भाषाओं में अनूदित होकर ही उपलब्ध हो रहे हैं तथा विदेशों के विद्वानों के विचार हमारे यहां अनूदित होकर पढ़ाए जा रहे हैं। इस प्रकार शिक्षा अनुवाद का सबसे विशाल क्षेत्र है।

2. **अंतर्राष्ट्रीय संबंध**–आज कोई देश अकेले रहते हुए विकास नहीं कर सकता। अनेक आवश्यकताओं के लिए एक–दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है। इस निर्भरता के परिणामस्वरूप भाषाओं के समीप आने से अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है तथा अनुवाद के लिए क्षेत्र बनता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए प्रत्येक देश में दूतावासों की व्यवस्था की गई है। इन दूतावासों के माध्यम से सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए काम होता है जो अनुवाद के सहारे ही संभव हो पाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रयोग होने वाली छह भाषाओं का है।

3. **विज्ञान**–आज का युग विज्ञान का युग है। मनुष्य प्रतिदिन प्रकृति के नए–नए रहस्य खोल रहा है। विज्ञान आधारित ज्ञान का आदान–प्रदान बिना अनुवाद के संभव नहीं है। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के द्वारा स्थापित किए गए सिद्धांत पूरी दुनिया में अनुवाद के सहारे ही फैलाए जा रहे हैं। विज्ञान का क्षेत्र अनुवाद के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र है।

4. **संचार माध्यम**–यह सूचना क्रांति का समय है। सूचना के अधिकार की चर्चा पूरे विश्व में हो रही है। संसार में घटित घटनाओं का ब्यौरा दुनिया की सभी भाषाओं में प्रचलित व प्रसारित किया जाता है। आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों एवं दूरदर्शन के सभी केंद्रों से खबरों का प्रसारण निरंतर होता है जो स्थानीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाता है।

टिप्पणी

5. **विधि**–कानून का क्षेत्र भी अनुवाद की मांग करता है। आज हिंदी भले ही राजभाषा के रूप में स्थापित की गई हो लेकिन यह सच है कि भारत के सभी न्यायालयों में पूरा कामकाज अंग्रेजी के माध्यम से ही हो रहा है जिसका अनुवाद देश की भाषाओं में किया जाता है। भारत सरकार ने विधि संबंधी अनुवाद की व्यवस्था अलग से की है। हिंदी के मानकीकृत शब्दों की शब्दावली अलग से तैयार की गई है जो सरकार के प्रतिष्ठानों में काम आ रही है। अनुवाद के कामकाज के लिए "भारत सरकार विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय (विधायी विभाग), राजभाषा खंड" द्वारा तैयार शब्दावली बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। कानून के क्षेत्र में अनुवाद की अपार संभावनाएं हैं। आज भी प्रादेशिक भाषाओं में प्रकरण दर्ज होते हैं लेकिन इनकी सुनवाई केवल अंग्रेजी में ही होती है। अंग्रेजी में होने के कारण वकीलों, प्रार्थियों और कर्मचारियों को अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है।

   इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरने वाले घटनाक्रमों में भी अनुवाद के माध्यम से ही दस्तावेज तैयार कर प्रस्तुत किए जाते हैं।

6. **पत्राचार कार्यालय**–सरकार का पूरा कामकाज पत्राचार के सहारे ही चलता है। इसके अलावा सरकार के साथ जनता का पत्र व्यवहार भी होता है। देश के विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के लोग सरकार के साथ प्रांतीय भाषाओं में पत्राचार करते हैं जिसका अनुवाद किए बिना कार्य को अंतिम रूप नहीं दिया जा सकता।

   सरकार की राजभाषा नीति के अनुसार धारा 3 के अंतर्गत जारी किए गए सभी कागजात द्विभाषी रूप में ही होते हैं। इसके अलावा देश के 'क' व 'ख' क्षेत्रों से 'ग' क्षेत्रों को भेजे गए सभी पत्रों के साथ उनका अंग्रेजी अनुवाद भेजना आवश्यक होता है। इस काम की पूर्ति के लिए सरकार ने अपने सभी विभागों में अनुवादकों की नियुक्ति की है।

7. **बातचीत**– बातचीत ही अनुवाद की पहली मांग है। देश के विभिन्न प्रांतों के लोग जब आपस में मिलते हैं तो वार्तालाप के दौरान अनुवाद का सहारा लेते हैं। अनुवाद के लिए बातचीत ही सबसे बड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र में किसी एक विषय विशेष पर नहीं बल्कि सभी विषयों पर चर्चा भी की जाती है। इसी प्रकार दुनिया के नागरिक एक– दूसरे के साथ विचार विनिमय अनुवाद के माध्यम से ही करते हैं।

8. **धर्म**– कहा जाता है कि धार्मिक प्रचार–प्रसार के लिए ही अनुवाद का जन्म हुआ था। ऐसा विश्वास है कि बाइबिल का अनुवाद हिब्रू से लैटिन और अन्य भाषाओं में केवल इसलिए किया गया था ताकि बाइबिल के आदेशों का प्रचार–प्रसार किया जा सके। भारत में ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए अनुवाद का सहारा लिया गया था। यह भी कहा जाता है कि हिंदी को पूरे राष्ट्र में फैलाने का काम ईसाई मिशनरियों ने किया था। यह प्रचार अपने प्रारंभिक समय में केवल अनुवाद के सहारे ही हुआ था।

9. **राजनीति**– राजनीति में अनुवाद की अपार संभावनाएं हैं। इन संभावनाओं में राजनीतिक उद्देश्यों से जब एक देश का शासनाध्यक्ष या राष्ट्राध्यक्ष दूसरे देश की यात्रा करता है तब वह अपने साथ पूरा शिष्टमंडल ले जाता है। वार्तालाप के दौरान

टिप्पणी

राजनेता द्विभाषिया अनुवादकों के माध्यम से ही एक–दूसरे की आवश्यकताओं को समझते हैं तथा राष्ट्रों के बीच संबंधों को मजबूती प्रदान करते हैं। इस प्रकार अनुवाद विश्व स्तर पर बंधुत्व को बढ़ावा देने में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह करता है।

इन क्षेत्रों के अलावा मानवीय संबंधों के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो वैचारिक आदान–प्रदान के धरातल पर टिके हैं। यह विचार विनिमय बिना अनुवाद के संभव नहीं है।

10. **अन्य**

- ✓ विधि/न्याय संबंधी निर्णयों की जानकारी के लिए
- ✓ विश्व के विभिन्न देशों में वैचारिक स्तर पर आदान–प्रदान करने हेतु
- ✓ अन्य देशों द्वारा किए गए शोध कार्य को जानने के लिए
- ✓ व्यापारिक क्षेत्र में आदान–प्रदान के लिए
- ✓ विश्व की प्रमुख संस्कृतियों का परिचय प्राप्त करने के लिए
- ✓ विभिन्न कार्यालयों में द्विभाषिकता के कारण
- ✓ सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए
- ✓ विश्व पर्यटन के संदर्भ में
- ✓ विश्व की श्रेष्ठ रचनाओं एवं कृतियों को जानने के लिए
- ✓ भारतीय तथा अन्य देशों के साहित्य की जानकारी के लिए
- ✓ अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए
- ✓ संचार के विभिन्न माध्यमों में एक भाषा का दूसरी भाषा में रूपांतरण और उस भाषा के जनसंचार के विभिन्न आयामों को समझने के लिए।

अनुवाद के स्वरूप

1. **शाब्दिक अनुवाद**–अनुवाद में सबसे पहले आवश्यकता होती है– उचित शब्द भंडार का निर्माण और संग्रह। केवल एक भाषा के शब्द को दूसरी भाषा के शब्द में बदल देना ही शाब्दिक अनुवाद नहीं है वरन स्रोत भाषा के व्याकरणिक रूप के स्थान पर दूसरी (लक्ष्य) भाषा के व्याकरणिक रूप को भी रख लिया जाता है। मूल स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा में समानुपाती संबंध होता है।

   इस अनुवाद के अनुवादक का ध्यान मूल सामग्री के प्रत्येक शब्द के अनुवाद पर केंद्रित होता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल सामग्री की हर शब्दाभिव्यक्ति का सामान्य रूप से उसी क्रम में अनुवाद करता है जिस क्रम में सामग्री दी जाती है। इसलिए अनुवाद के क्षेत्र में शब्दानुवाद को उच्च श्रेणी की कोटि में नहीं रखा जा सकता लेकिन अनुवाद प्रक्रिया में कई बार ऐसे बिंदु आते हैं जब शब्दानुसार के अलावा कोई पर्याय नहीं होता है।

2. **भावानुवाद**– नाम से ही हम समझ सकते हैं कि अनुवादक मूल रचना की आत्मा को लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। उसकी संपूर्ण चेतना, संपूर्ण ज्ञान मूल भाषा में साहित्य की आत्मा में लगा रहता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि सामान्यतः मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है, तो उसका भावानुवाद करते हैं और यदि वह तथ्यात्मक वैज्ञानिक या विचार प्रधान है तो उसका शब्दानुवाद करते हैं। अनुवाद के क्षेत्र में कभी–कभी ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं जब अनुवादक किसी पाठ या वाक्यांश का ठीक–ठीक शब्दानुवाद करने में असमर्थ होता है। तब ऐसी स्थिति में भावानुवाद ही करना पड़ता है। अनुवाद के क्षेत्र में अन्य सभी अनुवादों की अपेक्षा भावानुवाद को उत्तम कोटि का अनुवाद माना जाता है।

   शब्द केवल भाव के वाहक होते हैं। वे किसी वस्तु विशेष या भाव–विशेष को स्पष्ट करने के लिए संकेत मात्र हैं। भावानुवाद करते समय उस शब्द के अस्तित्व से अधिक उस भाव का ध्यान रखना चाहिए जो उसमें निहित है।

3. **पर्याय के आधार पर अनुवाद**–जिस प्रकार वाक्य किसी अनुच्छेद का सहज अंग होता है उसी प्रकार वाक्य में भी प्रत्येक 'शब्द' का महत्व उसमें निहित अर्थ से है। मूल लेखक के पास पर्याप्त पर्याय होते हैं जिनमें से छांटकर वह उपयुक्त शब्द रखने का प्रयास करता है।

   अनुवादक के पास भी अपनी भाषा में पर्याप्त पर्याय हो सकते हैं जिनमें से उसे चुनाव करना होता है। सभी भाषाओं में अनेक ऐसे शब्द होते हैं जिनको प्रायः पर्याय समझ लिया जाता है। मूल कृति में प्रयुक्त शब्द की मूल आत्मा को समझकर अनुवादक को उपयुक्त शब्द चुनना चाहिए। मूल कृति में प्रयुक्त शब्द के भाव को दूसरी भाषा में संप्रेषित करने की भरपूर कला अनुवादक में होनी चाहिए और उस भाषा में प्राप्त शब्दकोषों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म शब्दार्थों का विवेचन होना चाहिए, क्योंकि शब्द की वास्तविक शक्ति प्रयोग में ही निहित है।

4. **टीकानुवाद**–टीकानुवाद में मूल पाठ की व्याख्या तथा टीका के साथ अनुवाद किया जाता है। व्याख्या स्वाभाविक रूप से अनुवादक के व्यक्तित्व तथा चिंतन प्रणाली पर आधारित होती है। अनुवादक का महत्व उभरकर सामने आ जाता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल विचारों, भावों तथा संकल्पनाओं को अपनी शैली के अनुसार सविस्तार रूपायित करता है।

5. **सारानुवाद**–जब किसी लंबे वक्तव्य अथवा रचना को, उसके सारतत्व को पूर्ण तथा सुरक्षित रखते हुए, किन्हीं कारणों से संक्षिप्त किया जाता है तो उसे सारानुवाद कहते हैं। यह सामान्यतः समाचार–पत्रों के लिए विभिन्न एजेंसियों द्वारा किया जाता है। इस का सहारा मुख्यतः दुभाषिए, समाचार–पत्रों के संवाददाता तथा संसद अथवा विधानमंडलों की कार्यवाही के रिकॉर्डकर्ता आदि लेते हैं। इसमें पूरी रचना के कथ्य की आवश्यक जानकारी के साथ पाठक, श्रोता एवं अनुवादक के श्रम एवं समय की बचत होती है।

अनुवाद की प्रक्रिया

अनुवादक स्रोत भाषा के कथ्य एवं कथन भंगिमा को लक्ष्य भाषा में समतुल्य एवं निकटतम रूप में अभिव्यक्त करने के लिए जिस क्रिया विधि से गुजरता है उसे अनुवाद की प्रक्रिया

टिप्पणी

टिप्पणी

कहते हैं। अनुवाद प्रक्रिया पर जिन विद्वानों ने गंभीरतापूर्वक चिंतन मनन किया है उनमें नायडा और न्यूयार्क के विचार अधिक चर्चित हैं। नायडा ने अनुवाद को एक वैज्ञानिक तकनीक के रूप में स्वीकार किया है। इनके अनुसार अनुवाद भाषा विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष है। इनके अनुसार अनुवाद प्रक्रिया के तीन सोपान हैं–1. विश्लेषण 2. अंतरण 3. पुनर्गठन। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं–

स्रोत भाषा

मूल पाठ

अनूदित पाठ

विश्लेषण

पुनर्गठन

अंतरण

अनुवादक सबसे पहले पाठ का विश्लेषण करता है, उदाहरण के लिए "Vimal frightens Asha" गहरे स्तर पर इसकी दो व्याकरणिक संरचना संभव है। एक में विमल कर्ता के रूप में, सक्रिय प्राणी के रूप में कार्य करता है और दूसरे में वह कारण के रूप में मात्रा क्रिया के साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। इसी के अनुसार क्रिया के दो अर्थ भी संभव हो पाते हैं।

1. विमल आशा को डराता है और
2. आशा विमल से डरती है। विश्लेषण के बाद प्राप्त इन दोनों संदेशों के उपरांत ही अनुवादक पाठ के संदर्भ के अनुसार उनमें से किसी एक या दोनों संदेशों को अनूदित पाठ में संप्रेषित करने का निर्णय लेता है।
3. विश्लेषण से प्राप्त अर्थ बोध का लक्ष्य भाषा में अंतरण–अनुवाद प्रक्रिया का दूसरा सोपान है। प्रत्येक भाषा मूल संदेश को अपने ढंग से भाषित इकाइयों में बांधती है। अतः संदेश को एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरित करने का अर्थ ही अभिव्यक्ति के धरातल पर उसका पुनर्विन्यास करना है। जैसे हिंदी की लोकोक्ति "नाच न जाने आंगन टेढ़ा" के अंग्रेजी अनुवाद A bad carpenter quackels with his tools" में न तो नाच का प्रसंग है, न आंगन का और न ही उसके टेढ़े होने का, पर भाव या संदेश के धरातल पर दोनों अभिव्यक्तियां समतुल्य हैं।
4. अनुवाद प्रक्रिया का तीसरा सोपान है– पुनर्गठन। प्रत्येक भाषा की अपनी अभिव्यक्ति–प्रणाली और कथनरीति होती है। लक्ष्य भाषा में अनूदित पाठ का निर्माण अगर मूल रचना के संदेश को यथा रूप रखने के प्रयास से जुड़ा होता है, तो उसके साथ लक्ष्य भाषा की उस अभिव्यक्ति–संस्कार के साथ भी संबद्ध रहता है जो अनूदित पाठ को सहज, स्वाभाविक और बोधगम्य बनाता है।

'न्यूयार्क' ने अनुवाद प्रक्रिया के तीन सोपान ही माने हैं लेकिन उन्होंने इसे नये ढंग से प्रस्तुत किया है–(1) मूल भाषा पाठ (2) बोधन तथा व्याख्या (3) अभिव्यक्ति।

टिप्पणी

अनुवाद में मूलभूत इकाई है– मूल पाठ। इस मूल पाठ का बोधन तथा उसकी लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति के बीच की सैद्धांतिक प्रक्रिया ही अनुवाद की प्रक्रिया है। अनुवाद की प्रक्रिया में अनुवादक का विशेष ध्यान मूल पाठ की विषय वस्तु, विषय अभिव्यक्ति की शैली, मूल पाठ की व्याकरणिक संरचना तथा पाठ के विषयगत सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ आदि की ओर रहता है। अनुवादक मूल पाठ को समझकर लक्ष्य पाठ में अंतरित करने हेतु उसे विश्लेषित करता है। उसके बाद मूल पाठ की विषय वस्तु, भाव तथा विचारों के समतुल्य लक्ष्य पाठ के विचार, भाव तथा शैली आदि का चयन करने की प्रक्रिया संपन्न होती है। इसमें अनुवादक स्रोत भाषा पाठ के संदर्भ–विशेष तथा प्रयुक्ति विशेष को भी दृष्टिगत रखते हुए लक्ष्य भाषा पाठ के समतुल्य अभिव्यक्ति की खोज करता है। इस प्रक्रिया में अनुवादक का विवेक और उसका द्विभाषी ज्ञान, विषय के बारे में गहरी रुचि तथा अभिव्यक्ति की खोज करता है। इसके बाद अनुवाद प्रक्रिया का अंतिम चरण प्रारंभ होता है। मूल भाषा पाठ के बोधन तथा समुचित विश्लेषण के बाद अनुवादक लक्ष्य भाषा की विषय वस्तु, संदर्भ–विशेष, प्रकृति तथा संरचना के अनुरूप अनुवाद पर्यायों को संगठित एवं संयोजित करता है। तदनंतर मूल भाषा पाठ के साथ अनुवादित पाठ का पुनर्निरीक्षण एवं तुलना की जाती है और अनुवाद को अंतिम रूप दिया जाता है।

अनुवाद की विशेषताएं

एक अच्छे अनुवाद की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. अनुवाद करने से पहले यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिए कि अनुवादक को भाषा स्रोत एवं लक्ष्य भाषा दोनों का पूर्ण ज्ञान हो।
2. साहित्यिक, समाचार–संबंधी या वैचारिक अनुवाद 'शब्द–प्रति–शब्द' नहीं होने चाहिए।
3. अनुवादक को मूल कथन में 'कुछ' भी जोड़ने या छोड़ने का अधिकार नहीं है। खास तौर पर तथ्यपरक आंकड़ों से युक्त अथवा सुनिश्चित नियमों से संबंधित 'औपचारिक' कोटि की सामग्री के अनुवाद ज्यों के त्यों ही प्रस्तुत करने चाहिए।
4. अंग्रेजी में रचित किसी कृति के मूल कथ्य के संप्रेषण में यथा तथ्यता का निर्वाह करते हुए भी अनुवाद करने वाले की कथनशैली अर्थात अभिव्यंजना–पद्धति लक्ष्य भाषा के संरचना–स्तर के अनुरूप ही ग्रहण करनी होगी।
5. जो बात हम कहना चाहते हैं उसे हम दूसरे के सामने उसी अर्थ में पहुंचा सकें। उत्तम अनुवाद वही है, जिसकी प्रेषणीयता भी इस बात से आंकी जाती है कि अनुवाद पढ़ने के बाद इसकी मूल भाषा पढ़ने की जरूरत न पढ़े।
6. अनुवाद का अर्थ सुस्पष्ट होना चाहिए।
7. एक ही कथन के अनुवाद में कहीं स्रोत भाषा के किसी शब्द का कोई एक पर्याय और कहीं कोई अन्य पर्याय अपनाना भी असंगत तथा अनुवाद की स्पष्टता में बाधक होता है। जैसे–'प्रेजीडेंट' (President) के लिए कहीं अध्यक्ष, कहीं प्रधान,

टिप्पणी

कहीं सभापति तथा कहीं राष्ट्रपति का प्रयोग अनुवादक के अज्ञान का सूचक होगा।

8. आम जनता जिन प्रचलित शब्दों का अधिक प्रयोग करती है अनुवाद करने में वे ही शब्द प्रयोग करने चाहिए, नहीं तो अनुवाद का प्रवाह टूट जाएगा।

9. मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों आदि का प्रयोग करते समय अधिक सावधानी रखनी चाहिए; जैसे–अंग्रेजी कहावत Only the wearer knows where the shoe pinches. का यह अनुवाद– "केवल पहनने वाला ही जानता है कि जूता कहां काटता है।" यह उतना प्रभावशाली नहीं लगता जितना "जाके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई" लगता है।

10. अच्छे अनुवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसको पढ़ने में मूल कृति जैसा ही आनंद आए। अनुवाद, अनुवाद न लगे, मूल जान पड़े। रूसी लेखक गोगोल की उक्ति– "अनुवाद उस बेदाग कांच की तरह है जिसके माध्यम से दर्शक उस पार के सारे दृश्य–सौंदर्य का आनंद ले सकें और साथ ही कांच के अस्तित्व से भी अनभिज्ञ रहें।"

11. अनुवाद की भाषा में प्रसाद गुण अर्थात सहजता और सरलता होनी चाहिए तथा वाक्य छोटे व सरल होने चाहिए।

12. अनुवाद की भाषा कृत्रिम व अधिक संस्कृतनिष्ठ नहीं होनी चाहिए, साथ ही भाषा एकदम गांव की भी न हो जाए, यह भी ध्यान रखना चाहिए।

सफल अनुवादक का विवेचन करते हुए हरिवंश राय बच्चन जी ने लिखा है–"सफल अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस भाषा से अनुवाद करे और जिस भाषा में करे, दोनों पर उसका समान अधिकार हो, साहित्यिक ख्याति ग्रंथों के लिए यह भी आवश्यक है कि उनके साथ अनुवादक का रागात्मक संबंध हो।"

13. मूल रचनाकारों और उनकी रचनाओं से अनुवादक का पूर्ण तादात्म्य होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो अनुवादक न मूल लेखक के प्रति न्याय कर पाएगा और न उसकी रचना के प्रति। इसके लिए अनुवादक को अपने–आप को मूल रचनाकार की भूमिका में ले जाना पड़ेगा।

14. अनुवाद दो भाषा–भाषी वर्गों को आपस में लाने का एक सेतु होता है। इसके लिए अनुवादक को सतर्क रहना पड़ेगा कि यह सेतु खाई न बन जाए।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि अनुवादक का उद्देश्य मूल रचना के भाव और अर्थ का संप्रेषण है। किसी लेखक के मूल भाव और अर्थ का बोध कराना उतना कठिन नहीं है जितना उसकी शैली और अभिव्यंजना–पद्धति की बारीकियों को सही रूप में समझ लेना। उसे इस ढंग से अपने अनुवाद में उतार लेना कि पढ़ने वाले को मूल कृति का ही सुख मिले।

संदर्भ के अनुसार पर्याय चुनें

टिप्पणी

हम अपने दैनिक कार्य–व्यवहार में अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे– स्टैंप (Stamp), टिकट (Ticket), डिलीवरी (Delivery), लेट (Late), प्रेजेंट (Present), पोस्ट (Post), सीट (Seat), बर्थ (Birth), ग्रांट (Grant), सिक (Sick) आदि। इनके अतिरिक्त आज भी असंख्य ऐसे अंग्रेजी शब्द हैं जिनका अलग–अलग संदर्भों में, अलग–अलग अर्थ में प्रयोग होता है। अनुवाद करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि किस अंग्रेजी शब्द का किस संदर्भ में क्या हिंदी–पर्याय प्रयोग में लाना उपयुक्त है। उदाहरणतया:

स्टैम्प (Stamp) : इसका बहुप्रचलित अर्थ 'मुहर' है; जैसे–

(क) This copy of the document should be attested by a gazetted officer with his stamp.

इस दस्तावेज की प्रतिलिपि किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा, उसकी मुहर के साथ सत्यापित होनी चाहिए।

(ख) Please bring some revenue stamps from the Post Office. इस वाक्य में 'स्टैम्प' (Stamp) का पर्याय 'टिकट' होगा, मुहर नहीं– कृपया डाकघर से कुछ रसीदी टिकट ले आइए।

टिकट (Ticket)

हम बस या रेल–यात्रा में 'टिकट' लेते हैं, कार्ड–लिफाफों पर 'टिकट' लगाते हैं, चुनाव में किसी को किसी दल से 'टिकट' मिलती है, किसी प्रदर्शनी या सिनेमा–हॉल मे जाने के लिए भी 'टिकट' लेनी पड़ती है। एक ही अंग्रेजी शब्द 'टिकट' (Ticket) अलग–अलग संदर्भों में एक ही रूप में प्रयुक्त होता है किंतु हिंदी के अनुवाद करते समय हम संदर्भ के अनुसार अलग–अलग पर्याय प्रयुक्त करेंगे– बस या रेल में 'यात्रा–पत्र' कार्ड–लिफाफे के लिए 'टिकट' चुनाव के संदर्भ में भी 'टिकट' किंतु प्रदर्शनी या सिनेमा–हॉल के लिए 'प्रवेश–पत्र' आदि।

डिलीवरी (Delivery)

(क) You will get delivery of these goods at your home.

आपका यह माल आपके घर पहुंच जाएगा।

(ख) At the time of delivery, every mother wishes the child's welfare.

प्रसूति के समय, हर मां बच्चे के कल्याण की कामना करती है।

लेट (Late)

(क) लेट (Late)- Late Mr. Gandhi worked hard for national integration and world peace.

स्वर्गीय (दिवंगत) श्री गांधी ने राष्ट्रीय एकता और विश्व–शांति के लिए कठोर परिश्रम किया।

(ख) You are late by two hours.

आपको दो घंटे की देर हो गई है।

टिप्पणी

प्रेजेंट (Present)

(क) We should give some new present to the child on his birthday.

हमें बच्चे के जन्मदिन पर उसे कोई नया उपहार देना चाहिए।

(ख) You should be present at the time of election.

आपको चुनाव के समय उपस्थित रहना चाहिए।

वर्कर (Worker)

(क) The workers of this mill are on strike.

इस मिल के कर्मचारी हड़ताल पर हैं।

(ख) The Party workers are not satisfied with the performance of their leader.

दल के कार्यकर्ता अपने नेता के कार्यों से संतुष्ट नहीं हैं।

सीट (Seat)

(क) Take your seat.

आसन ग्रहण कीजिए।

(ख) The Congress and B.J.P. got one seat each.

कांग्रेस और भाजपा ने एक–एक स्थान प्राप्त किया।

ग्रांट (Grant)

(क) Please grant me one day leave.

कृपया मुझे एक दिन का अवकाश प्रदान करें।

(ख) The Government has granted two crore rupees for the victim of Gas-Accident.

सरकार ने गैस–दुर्घटना पीड़ितों के लिए दो करोड रुपए की मंजूरी दी है।

(ग) You can also get a grant for your research project.

आप अपनी अनुसंधान–योजना के लिए अनुदान भी प्राप्त कर सकते हैं।

सिक (Sick)

(क) He is sick.

वह बीमार है।

(ख) Government should take over the sick cloth-mills.

सरकार को ठीक से न चलने वाली कपड़ा मिलों को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

स्पेस (Space) : इसका सामान्य अर्थ है– 'स्थान'। किंतु विज्ञान के क्षेत्र में 'Space Technology' में इसका अर्थ बिलकुल अलग हो गया। वहां यह 'अंतरिक्ष' अर्थ का वाचक है।

इस प्रकार, अनुवाद करते समय, पूरे कथन, वाक्य या अनुच्छेद का संदर्भ समझकर उसके अनुसार ही अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्याय चुनना उपयुक्त है।

टिप्पणी

किन अंशों, शब्दों वाक्यों आदि का अनुवाद नहीं करना चाहिए–

कई बार अनुवाद के लिए दिए गए अनुच्छेदों के हर अंश, हर शब्द का अथवा हर वाक्य का अनुवाद करना जरूरी नहीं होता। उदाहरणतया, 'व्यक्तिवाची संज्ञाओं' का अनुवाद नहीं करना चाहिए। 'नागालैंड' (Nagaland) को 'नागालैंड' ही लिखेंगे, नागभूमि नहीं। पंजाब नेशनल बैंक को 'पंजाब राष्ट्रीय बैंक' कहना या लिखना गलत है। 'पंजाब एंड सिंध बैंक' हिंदी में 'पंजाब और सिंध बैंक' नहीं कहलाएगा। 'बैंक ऑफ बड़ौदा' को 'बड़ौदा का बैंक' लिखना भी ठीक नहीं होगा।

इस प्रकार रेलवे, डाक–तार तथा बैंक–संबंधी अन्य अनेक शब्द भी अंग्रेजी से ज्यों–के–त्यों हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– रेल, प्लेटफार्म, सिगनल, लाइन क्लियर, गार्ड, इंजिन, टिकट आदि। पोस्टकार्ड, मनीऑडर फार्म, पोस्टल ऑर्डर के समान ही बैंक, चेक, लॉकर आदि कुछ शब्दों का 'अनुवाद' करने की आवश्यकता नहीं।

कुछ वैज्ञानिक प्रयोग भी अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित नहीं होंगे– जैसे 'स्पूतनिक', 'रिकवरी', 'इनसैट–1 बी', 'डॉक्टर', 'शटल', 'राडार', 'सेल्सियस', 'वीडियो', 'केसेट', 'टेप', 'टेपरिकॉडर' आदि।

कई विशेष कथनों को ज्यों–का–त्यों 'प्रत्यक्ष शैली' के उद्धरण चिह्न "....." के अंर्तगत दिया जाता है। उनका भी अनुवाद करना आवश्यक नहीं क्योंकि मूल वक्ता के वास्तविक कथन को ज्यों–का–त्यों देने से जो प्रभाव पड़ता है, वह 'अनुवाद' से नहीं पड़ता; जैसे–

जैसे–

Dayana cried, "Please!"

डायना चिल्लाई, "प्लीज!"

Crowd raised the slogan – "Down! Down!! Down!!!"

भीड़ ने नारा लगाया, "डाउन! डाउन!! डाउन!!!

अनुवाद करते समय जब भी किसी अंग्रेजी शब्द अंश या प्रयोग को, भाषा बदले बिना ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत करना पड़े तब 'रोमन' (अंग्रेजी की लिपि) के स्थान पर 'देवनागरी' (हिंदी की लिपि) का प्रयोग करना चाहिए; जैसे–

"Oh my God! What a wonder!"

इसे इस प्रकार लिखेंगे–"ओह माइ गाड! कैसा आश्चर्य!"

Oh my God!

कैसा आश्चर्य!

तात्पर्य यह है कि अनुवाद करते समय बड़ी सावधानी से, संदर्भ समझकर, मूल कथन का अपनी भाषा में संप्रेषण करना चाहिए।

पुनरीक्षण– 'पुनरीक्षण' को अंग्रेजी में 'Vetting' कहा जाता है। हिंदी भाषा में अनुवाद के संदर्भ में 'पुनरीक्षण' अथवा 'पुनरावलोकन' से तात्पर्य है– 'सम्यक मूल्यांकन'। अनुवाद

टिप्पणी

करने के पश्चात उसका पुनरीक्षण अनिवार्य है। उपर्युक्त विवेचन में अनुवाद की विशेषताओं आदि में जिन–जिन अपेक्षाओं का वर्णन किया है वे सब हमारे इस अनूदित अंश में पूर्णतः लागू हुई हैं या नहीं। अनुवाद करने के पश्चात अनुवादक को निश्चिंत नहीं हो जाना चाहिए उसे विभिन्न दृष्टियों से उसकी परीक्षा करनी चाहिए; यथा– (1) मूल अंश में जो भाव–विचार आए हैं, उन्हें पूर्ण रूप से लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत किया गया है अथवा कोई बात छूट गई है। (2) तथ्यों और आंकड़ों का पूरा उल्लेख वैसा ही हुआ है अथवा नहीं। (3) कहीं भूल से शब्दानुवाद तो नहीं हो गया। (4) लक्ष्य भाषा का अंश स्रोत भाषा अंश के समान आनंद दे रहा है या कुछ अधूरा–अधूरा लग रहा है। (5) स्रोत–भाषा की शैली, उक्तिवैचित्रय व्यंजना, लाक्षणिकता, मुहावरे आदि से परिपूर्ण सामग्री उसी मार्मिक और सारगर्भित रूप में लक्ष्य भाषा में अनूदित हो पाई है या नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि लक्ष्य सामग्री एकदम सपाट और सीधी–सादी बनकर रह गई हो। ऐसा होने पर उसमें मूल के जैसा गूढ़ अर्थ नहीं मिल सकेगा, और समग्र प्रभाव क्षीण हो जाएगा आदि।

प्रायः प्रत्येक अनुवादक अनुवाद–कार्य के अंत में पुनरीक्षण कार्य भी स्वयं करता है। स्वयं ही उसे यह करना भी चाहिए। कभी–कभी अनुवाद की बड़ी–बड़ी परियोजनाओं में यह कार्य अनुवादक से अलग किसी अन्य व्यक्ति को भी करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि समस्त कृति में एकरूपता बनी रहे। पुनरीक्षक के लिए ऐसा कार्य अनुवाद कार्य से भी अधिक कठिन होता है। यदि अनुवादक प्रबुद्ध है तब तो ठीक है। किन्तु अनुवादक सामान्य है तब पुनरीक्षक को उसके अनुवाद में संशोधन–परिवर्तन करने में अनुवाद से भी अधिक समय लग सकता है। अरस्तु अनुवाद के क्षेत्र में पुनरीक्षक का महत्व भी निर्विवाद है। उसके द्वारा अनुवाद में किए गए परिश्रम को एक सार्थक और सफल दिशा मिलती है। अंतः अनुवाद श्रेष्ठता की कोटि में रखा जाता है।

3.3 अनुवाद की पद्धतियां– मानवीकृत अनुवाद व मशीनी अनुवाद

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

1. अर्थ को बनाए रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण करना..... है।

सही/गलत बताइए

2. भाषा शास्त्र के प्रकांड पंडितों ने इस बात पर जोर डाला है कि प्रत्येक शब्द को मूल रचना के अनुसार ही अनूदित करना चाहिए।

मानवीकृत अनुवाद

मानवीकृत अनुवाद में विशेषज्ञ अनुवादक पाठ का अनुवाद उस भाषा में करता है जिस भाषा में अनुवाद करने का उससे अनुरोध किया जाता है। हम मानव अनुवाद पर भरोसा कर सकते हैं कि वह गलतियों से मुक्त होगा। मानव अनुवादक एक भाषा से लिखित शब्दों को लेता है और मशीन की बजाय मौखिक रूप से दूसरी भाषा में अनुवाद करता है। मानव अनुवादक द्वारा आमतौर पर लिखित भाषा से संबधित शब्दों और व्याख्या का दूसरी भाषा के सही शब्दों और उचित रूपरेखा में अनुवाद किया जाता है। अनुवाद करना एक पाठ (Text) की परिभाषा की व्याख्या करने की तकनीक है जिसमें पाठ का अनुवाद इस प्रकार से किया जाता है कि वह ठीक वैसा ही अर्थ प्रस्तुत करे जैसा कि उस पाठ की भाषा करती है जिसका अनुवाद किया गया है। दूसरी भाषा में अनुवाद किए जाने वाली सामग्री, स्रोत पाठ कहलाती है और जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है उस भाषा को वांछित भाषा कहा जाता है। किए गए अनुवाद को कभी–कभी एक विशिष्ट अनुवाद कहा जाता है।

मानवीकृत अनुवाद का महत्व

टिप्पणी

मानव अनुवाद को पूरी तरह से मशीन अनुवाद में बदलने का प्रयास करने पर निश्चित रूप से असफलता का सामना करना होगा, जिसका सीधा–सा कारण यह है कि कोई भी मशीन अनुवाद व्याख्या करने में सक्षम नहीं है। उदाहरण के लिए स्रोत पाठ में मौजूद कुछ सांस्कृतिक घटकों का, जिनका मशीन सही संदर्भ में अनुवाद नहीं कर सकती, ऐसे में इन सांस्कृतिक घटकों की सही व्याख्या करने में मानव अनुवादक ही सक्षम है। ऐसा माना जाता है कि लक्ष्य पाठ में स्रोत पाठ जैसा प्रभाव बनाए रखना अनुवाद के कार्यों में से सबसे कठिन कार्य है। इस संबंध में मशीन : अनुवाद की तुलना जब मानव अनुवाद से की गई। तब कई बार स्वत : अनुवाद ने अपनी इस कमजोरी को साबित कर दिया है। मानव अनुवादक ही केवल ऐसा व्यक्ति है जो भाषाई और अर्थ कारकों को समझने की स्थिति में होता है और स्रोत पाठ में छोड़े गए प्रभाव को, लक्ष्य पाठ में प्रदर्शित करने में योगदान दे सकता है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि मशीन अनुवाद को अनुवादित ग्रंथों के त्वरित और बड़ी संख्या में उत्पादन के लिए एक उपकरण के रूप में माना जाता है, फिर भी, अनुवाद की गुणवत्ता अभी भी एक बड़ी बहस का मुद्दा है। उदाहरण के लिए स्वतः अनुवाद ऐसे शब्दों, जो विभिन्न vowelized रूप लिए होते हैं, का निश्चित अनुवाद नहीं कर पाता; जैसे अरबी शब्द 'Kotob' जिसका अंग्रेजी में अर्थ है–किताबें। दूसरी ओर किसी भी मानव अनुवादक ने विभिन्न विशेष चिह्नों और शब्दों को पढ़ने में गलती नहीं की होगी। इस प्रकार मानव अनुवाद का अपना अलग ही महत्व है।

मशीनी अनुवाद

मनुष्य के हजारों वर्षों के अर्जित और संचित ज्ञान विज्ञान के विपुल वाङमय को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है– संवदेना प्रधान वाङमय और ज्ञान प्रधान वाङमय। पहले के अंतर्गत संवेदनात्मक साहित्य आता है। इससे इतर समस्त साहित्य ज्ञान का साहित्य होता है। सृजनात्मक साहित्य के आधार तत्व हैं– अनुभूति, भाव, कल्पना आदि। दूसरी ओर, ज्ञान के साहित्य के आधार तत्व, तथ्य और विचार हैं। इन दोनों श्रेणियों को क्रमशः ललित साहित्य और तकनीकी साहित्य कहा जा सकता है।

जैसा कि हम जानते हैं, मशीनी शब्द का उपयोग यहां प्रौद्यौगिकी के सीमित अर्थ में न करके व्यापक अर्थ में किया गया है। इसके अंतर्गत समस्त विचार विश्लेषण, सूचना, संश्लेषण और व्यवहारमूलक ज्ञान–विज्ञान समाहित है।

साहित्यिक अनुवाद की भांति मशीनी अनुवाद के लिए दो भाषाओं का ज्ञान, विषय की जानकारी और अभ्यास आवश्यक हैं। दोनों ही प्रकार के अनुवादों में भाषा का संरचनात्मक ढांचा एक–सा ही रहता है। स्रोत और लक्ष्य भाषा में संरचनात्मक घटकों का विश्लेषण व्यतिरेक (Contrast) की पहचान और उपयुक्त पर्याय की तलाश दोनों प्रकार के अनुवाद में सामान्य ढंग से होती है। इस प्रकार से दोनों तरह के अनुवाद की स्थितियों में प्रारंभिक प्रक्रिया कुछ दूर तक लगभग समान चलती रहती है। अनुवाद चाहे सृजनात्मक साहित्य का हो या विज्ञान के सूचनापरक पाठ का या फिर विज्ञापन का, उसका प्रमुख उद्देश्य संप्रेषण होता है, इसलिए अभिव्यक्ति की सहजता इन सभी में अनिवार्य है। इसके लिए अनुवादक

को लेखक का मूल अभिप्राय समझना नितांत आवश्यक है। लेखक का मूल अभिप्राय ही विषय के प्रति उसके रुझान का संकेत देता है। अभिप्राय को समझे बिना अनुवादक सही प्रतिशब्द या पर्याय चुनने में सफल नहीं हो पाता है।

टिप्पणी

• मशीनी अनुवाद की विशेषताएं

1. ज्ञान के साहित्य की भाषा अभिधा पर आश्रित रहती है। विविध शास्त्रों, विज्ञानों और अनुशासनों के गंभीर चिंतन–भार तथा प्रयोजन–मूलक व्यावहारिकता को वह अभिधा के द्वारा ही वहन करती है।
2. तकनीकी साहित्य का अनुवाद सृजनात्मक साहित्य की तुलना में सरल होता है। इसकी अनुभूति अमूर्त और संश्लिष्ट होती है, जबकि तथ्य अपेक्षाकृत मूर्त होते हैं। अतः उनका भाषांतरण अपेक्षाकृत सरल होता है।
3. ज्ञान विज्ञान का साहित्य अभिधा प्रधान होने के कारण प्रायः एकार्थी होता है। यह अनेकार्थता और एकार्थता ही इन दोनों के अनुवाद में मूलभूत अंतर उत्पन्न करती है।
4. मशीनी अनुवाद सूचना और ज्ञानपरक तथ्यों के विस्तार–प्रसार की आकांक्षाओं से स्फूर्त होता है, जबकि साहित्यिक अनुवाद अंतः प्रेरणा से स्फूर्त होता है। साहित्यिक अनुवाद में सृजनात्मक प्रतिभा अपेक्षित होती है, जबकि वैज्ञानिक अनुवाद के लिए विषय का ज्ञान। तकनीकी या विज्ञान के विषय प्रायः विशेषज्ञता की श्रेणी में आते हैं। तकनीकी लेख विचार प्रधान होते हैं।
5. मशीनी अनुवाद में भाषा का प्रयोग न कम न ज्यादा होता है, यानी गणितात्मक भाषा का प्रयोग होता है। उसके अर्थ में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं होती है। मशीनी भाषा एकार्थक और आवेग रहित होती है। भाषा मनुष्य मात्र की प्रतीक सर्जक प्रतिभा की देन है, परंतु मशीनी भाषा में प्रतीयमान का एक ही संबंध होता है। मशीनी भाषा में शब्द सपाट होते हैं। मशीनी अनुवाद में यथातथ्य अनुरूपता आवश्यक है।
6. तकनीकी साहित्य अथवा ज्ञान के साहित्य का अनुवाद, कृति अथवा अनूदित सामग्री के मूल भाव अथवा लेखक के अभीष्ट अर्थ में अपनी ओर से कुछ जोड़ नहीं सकता। उसे इतना ही कहना होता है कि जितना मूल लेखक का आशय होता है।
7. तकनीकी साहित्य का अनुवाद तकनीकी क्षेत्र विशेष की पारिभाषिक एवं सामान्य शब्दावली के प्रयोग के लिए काफी हद तक प्रतिबद्ध होता है। उसके ज्ञाता द्वारा किया गया अनुवाद उस विषय विशेष की वस्तु होनी चाहिए, विषय के क्षेत्र में अजनबी या अटपटी वस्तु नहीं। इसमें कुछ साहित्यिक भाषा के विपरीत पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया जाता है। कहा जा सकता है कि मशीनी अनुवाद की पहचान मुख्य रूप से उसकी शब्दावली से होती है। अतः मशीनी अनुवाद में मूल अभिप्राय के अनुकूल पारिभाषिक शब्दावली की सहायता से स्रोत की भाषा के अनुरूप शैली का प्रयोग करना ही ठीक रहता है। किसी भी सामग्री का अनुवाद इसलिए किया जाता है कि लोग उसे पढ़ें और उसका सही–सही अर्थ निकाल सकें।

टिप्पणी

• मशीनी अनुवाद की प्रविधियां

मशीनी अनुवाद के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि मुख्य रूप से दो मुख्य विधियां प्रयोग की जाती रही हैं– 1. नियम–आधारित मशीनी अनुवाद 2. कार्पोरा आधारित मशीनी अनुवाद

1. **नियम–आधारित मशीनी अनुवाद–** इसके अंतर्गत मशीनी अनुवाद को स्रोत भाषा पाठ के विश्लेषण तथा उसमें निहित आर्थी तत्वों के प्रतिरूपण तथा लक्ष्य भाषा के पाठ के रूप में से उसकी प्रजनन प्रक्रिया के रूप में माना जाता है। स्रोत पाठ के विश्लेषण से उद्‌भूत प्रतिरूपण इस प्रकार का होना चाहिए ताकि उसमें किसी प्रकार की शाब्दिक या कोशीय संरचनात्मक द्रवि अर्थता न हो। इनके अंतर्गत दो मुख्य प्रविधियों का विकास हुआ है–

   (क) **अंतरण प्रविधि–** इसके अंतर्गत अनुवाद को त्रिस्तरीय प्रक्रिया–विश्लेषण, अंतरण तथा संश्लेषण के रूप में स्वीकार किया जाता है तथा माध्यमिक प्रतिरूपण प्रविधि–इसके अंतर्गत अनुवाद को दो–स्तरीय प्रक्रिया–स्रोत भाषा पाठ का माध्यमिक भाषा में अंतरण तथा उसके लक्ष्य–भाषा का पाठ प्रजनन माना जाता है। 1980 के दशक के दो महत्वपूर्ण अनुवाद परियोजनाएं ARIANE तथा Eurotra नियमाधारित अंतरण प्रविधि के उपयोग का सफल नमूना है। इनमें विभिन्न स्तरीय विश्लेषण शाब्दिक, वाक्य विन्यासीय, अभ्यांतर वाक्य विन्यासीय तथा आर्थी का प्रयोग किया गया। भाषा व्यवहार एवं प्रोक्ति विषयक सूचनाओं का प्रयोग नहीं किया गया। इसी प्रविधि का प्रयोग METAL अनुवाद तंत्र के विकास में किया जा रहा है। 1985–86 में प्रारंभ हुई LMT (Logic based M.T.) परियोजना में भी इसी प्रविधि का प्रयोग किया जा रहा है। इसके अंतर्गत अनुवाद को चार स्तरीय प्रक्रिया के रूप में लिया गया है। ये प्रक्रियाएं हैं–शब्दस्तरीय विश्लेषण, स्रोत भाषा के शब्दों का विवरण और अंतरण स्रोत भाषा के पाठ का वाक्य विन्यासित विश्लेषण (बाह्य एवं आभ्यांतर तार्किक संबंधों के विश्लेषण) अंतरण (संरचनात्मक अंतरण एवं समायोजन) तथा लक्ष्य भाषा का पाठ का शब्दस्तरीय प्रजनन। इसमें स्लाट ग्रामर Slot Grammar तथा एल.एफ.जी. का मिला–जुला रूप भी प्रयोग किया गया। जापानी PIVOT अनुवाद तंत्र के निर्माण में अंतरण प्रविधि को नकारा गया किंतु ये भी नियम आधारित माध्यमिक प्रतिरूपण का ही नमूना माना जाता है। इसी प्रविधि का अन्य महत्वपूर्ण अनुवाद तंत्र KBMT (1989) है। इस प्रविधि के अंतर्गत अनुवाद के लिए यह माना जाता है कि भाषा वैज्ञानिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। इसमें बोधन को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस तंत्र के विकास में सामान्य वाक्यविन्यासीय विश्लेषण और प्रजनन के अतिरिक्त भाषिक संरचनाओं को आर्थी प्रतिरूपण में परिवर्तित करने के लिए 'मैपिंग रूप इंटरपेटर' का प्रयोग किया गया। इसका उद्‌देश्य विषय क्षेत्र विषयक (Domain Specific) ज्ञान को ज्ञान–डेटा बेस से प्राप्त करना था। इस अनुवाद तंत्र के लिए संगणक भाषा विश्लेषण

टिप्पणी

सिद्धांत एल.एफ.जी. का प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग की सफलता से प्रेरित होकर न्यू मैक्सिको स्टेट विश्वविद्यालय में माध्यमिक प्रतिरूपण आधारित दूसरी अमेरिकी परियोजना ULTRA 1991 में प्रारंभ की गई है, जिसके अनुसार इस बहुभाषी माध्यमिक भाषिक तंत्र (अंग्रेजी, बोली जर्मन, जापानी तथा स्पेनिश) में कई व्याकरणिक–विश्लेषण–सिद्धांतों–डीसीजी कारक व्याकरण, कैटेमोरियल ग्रामर के अलावा मशीन द्वारा पठनीय शब्दकोश (Machine Readable Dictionary) तथा बहुभाषिक पाठ–संपादन का प्रयोग किया जा रहा है।

नियम आधारित मशीनी अनुवाद में एल.एफ.जी, एफ.यू.जी. (Functional Unification Grammar) का काफी प्रभाव रहा है। अन्य महत्वपूर्ण भाषा विश्लेषण सिद्धांत जो METEO परियोजना के सफल क्रियान्वयन से निकला, वह है Q System भाषा विश्लेषण मॉडल, इसी से डेफिनिट क्लाट ग्रामर, (डी.सी.जी.) तथा स्लाट ग्रामर मॉडलों का विकास हुआ। ये सभी भाषा विश्लेषण मॉडल और गैर रूपांतरण मूलक हैं। गैर रूपांतरण मूलक विश्लेषण मॉडलों के विकास में जी.पी.जी. तथा एच.वी.एस.जी. (Head Driver Phrase Structure Grammer) का अपना विशिष्ट स्थान है। मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में पिछले 10 वर्षों में जो पार्सिंग विकास का कार्य हुआ है वह इन्हीं सिद्धांतों से काफी प्रभावित या इन पर आधारित है।

(ख) **सिद्धांत आधारित मशीनी अनुवाद–** पिछले कुछ वर्षों में विशेषकर 1980 के दशक में गवर्नमेंट एंड वाइडिंग मॉडल के अंतर्गत प्रिंसिपल्स एंड पैरा–मीटर प्रविधि के अंतर्गत काफी काम हुआ है। इस सिद्धांत का मुख्य आधार यह है कि ये प्रिंसिपल्स सार्वभाषिक है–विभिन्न भाषाओं में प्राप्त अंतर 'पैरामीटरों' की स्थिति के अनुसार होता है। जेनेवार में I.T.S. नामक फ्रेंच–अंग्रेजी अनुवाद को इसी सिद्धांत के आधार पर विकसित किया जा रहा है। इसका अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण UNITRAN है। इसके अंतर्गत दो संसाधन घटक हैं–वाक्य विन्यासीय संसाधन (व्याकरणिक रूप से शुद्ध वाक्यों को स्वीकार करने तथा उनका लक्ष्य भाषा में प्रजनन करने के लिए तथा कोशीय आर्थी संसाधन) आभ्यांतर, संकल्पनात्मक प्रतिरूपण प्राप्त करने तथा लक्ष्य भाषा की तदनुरूपी संरचना से मिलान करने के लिए।

2. **कार्पोरा–आधारित मशीनी अनुवाद–** सन् 1980 के दशक में विशेषकर जापान में कार्पोरा (मशीन पठनीय रूप में) "विपुल भाषिक सामग्री के विकास के लिए विशेष कार्य हुआ। विभिन्न कंपनियों द्वारा मशीन पठनीय कोश तैयार किए गए। कार्पेरा विकसित किया गया।" इस का प्रभाव विशेषकर आगे चलकर मशीनी अनुवाद तंत्रों के विकास तथा तीसरी पीढ़ी के मशीनी अनुवाद पर पड़ा। सन् 1989 से मशीनी अनुवाद में नए युग का सूत्रपात हुआ। 1980 के दशक के अंतिम चरण में एल्पैक–पूर्व मशीनी अनुवाद की सांख्यिकीय प्रविधि को पुनर्जीवित किया गया है। आई.बी.एम. ने संसदीय परिचर्या के विपुल भंडार के आधार पर भाषिक पैटर्न

टिप्पणी

निकालने का काम किया। इसे मशीनी अनुवाद के साहित्य में पैटर्न आधारित या उदाहरण आधारित (Example Based MT) मशीनी अनुवाद की संज्ञा दी जाती है। इसका प्रयोग Speech Recognition के क्षेत्र में सफलतापूर्वक किया गया है। जिसमें स्रोत तथा लक्ष्य भाषाओं के शब्दों के तदनुरूपों Bigrms की भावनाओं का पता लगाया जाता है। इस सिद्धांत की सफलता ने मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में शोधकर्ताओं का ध्यान आकृष्ट किया।

(क) **उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद–** 1984 के आसपास इसका प्रस्ताव नागाओं (Nagao) ने किया लेकिन इसका क्रियान्वयन उत्रेख्त में डी.एल.टी. परियोजना के रूप में 1989 में किया गया। इसका एक अन्य महत्वपूर्ण क्रियान्वयन मौखिक भाषा के अनुवाद के क्षेत्र में ATR परियोजना के रूप में किया जा रहा है। इसमें स्रोत तथा लक्ष्य भाषाओं की संरचनाओं के समान सांचों का विश्लेषण किया जाता है तथा उसका अनुवाद में अंतरण किया जाता है। इसे ट्रांसफर ड्रिवन मशीनी अनुवाद की संज्ञा भी दी जाती है। आई.बी.एम. जापान को SHALT परियोजना पर भी इसी सिद्धांत के आधार पर कार्य चल रहा है। इसमें पांच प्रकार के ज्ञान साधनों का उपयोग किया जा रहा है। व्याकरिणक नियम, संकल्पनात्मक परिभाषाएं, वाक्य विन्यासीय तथा संकल्पनात्मक संरचनाओं के मैपिंग नियम संकल्पनात्मक पैराफ्रेजिंग नियम तथा उदाहरण–वाक्यों का कार्पोरा। यह मशीनी अनुवाद सिद्धांत एल.एफ.जी. व्याकरणिक सिद्धांत का उपयोग करता है।

उक्त सांख्यिकी एवं उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद सिद्धांतों ने मशीनी अनुवाद के अनुसंधान में भाषा–कार्पोरा की महत्ता को स्वीकार किया है–यहां तक कि नियम आधारित अनुवाद में भी विश्वसनीय डेटा की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। मशीनी अनुवाद में कार्पोरा विकास को निम्नलिखित कार्यों के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है–

(i) विषय क्षेत्र विशिष्ट मशीनी अनुवाद तंत्रों के विकास के लिए : इन तंत्रों के विकास के लिए स्रोत भाषा की शब्दावली तथा व्याकरणिक संरचनाओं का विस्तृत ज्ञान अपेक्षित होता है।

(ii) कोशीय तथा ज्ञान डेटा बेसों का निर्माण माध्यमिक प्रतिरूपण तंत्रों के विकास के लिए भी आवश्यक होता है। इस क्षेत्र में एक बार डेटा बेस निर्माण होने के बाद उसके विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा उपयोग करने से इस क्षेत्र में सहकारिता की भावना का विकास हुआ है। इसी का एक महत्वपूर्ण उदाहरण जापान में आठ कंपनियों द्वारा 'इलैक्ट्रानिक शब्दकोश निर्माण' का है।

(iii) द्विभाषी टैक्स्ट डेटा बेसों की आवश्यकता उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद तथा अनुवादक 'वर्क स्टेशन' निर्माण में भी अनुभव की जा रही है।

टिप्पणी

कार्पोरा का उपयोग शब्दों की द्वि अथवा बहु अर्धता के समाधान के लिए भी किया जा सकता है। इधर बहुत–सी जापानी परियोजनाओं में सांख्यिकी तथा उदाहरण आधारित प्रविधि का प्रयोग स्रोत भाषा में बहुअर्थता तथा लक्ष्य भाषा में कोशीय चयन की समस्याओं के समाधान के लिए किया जा रहा है। इन सिद्धांतों के समन्वय पर आधारित अनुवाद तंत्र अंग्रेजी–चीनी अनुवाद के लिए ताईवान में विकसित किया जा रहा है। इधर मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण दिशा सामान्य एवं पूर्ण अनुवाद से हटकर विषय क्षेत्र–विशिष्ट अनुवाद की ओर चल रही है। एल्पैक–पूर्व काल में मशीनी अनुवाद से जैसी अपेक्षित रही जबकि अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि मशीन की अपनी सीमाएं हैं तथा इसे मानव अनुवादक के तदनुरूप समझना एक भारी भूल होगी। अब मशीनी अनुवाद–तंत्रों के विकास का उद्देश्य अनुवादक के लिए मशीनी–सहायक तंत्र विकसित करना है जो पश्व–संपादन के द्वारा अनुवाद को लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुरूप बन सके।

3.4 अनुवाद के प्रकार

3.4.1 अंतःभाषिक अनुवाद

किसी एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण अंतःभाषिक अनुवाद कहलाता है। इसमें एक ही भाषा के भीतर एक ही कथ्य को उसी भाषा की अन्य शैली, विधा, बोली आदि में व्यक्त किया जाता है। संस्कृत में किसी कृति का जो 'भाष्य' या 'टीका' होती थी, वह भी एक प्रकार का अंतःभाषिक अनुवाद है। इसे 'अन्वयांतर' भी कहते हैं। किसी एक भाषा के पद्य रूप का गद्य में, नाटक का कहानी में, औपचारिक शैली का अनौपचारिक शैली जैसे–'उसकी बेटी का पाणि–ग्रहण हो गया' का 'उसकी बेटी की शादी हो गई'; भाषा की एक बोली के पाठ को दूसरी बोली में जैसे हिंदी की ब्रजभाषा बोली के पाठ का अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली आदि किसी भी बोली में किया गया रूपांतरण अंतःभाषिक अनुवाद है।

3.4.2 अंतरभाषिक अनुवाद

यह एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के अर्थ का दूसरी भाषा के प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण है। सीमित संदर्भ में स्रोतभाषा और लक्ष्य भाषा दोनों भाषाओं के बीच होनेवाला अनुवाद वास्तव में अंतरभाषिक अनुवाद अथवा भाषांतर ही है। इस अनुवाद में पाठधर्मी और प्रभावधर्मी अनुवाद के मुख्य रूप से दो रूप होते हैं। पाठधर्मी अनुवाद में अनूदित पाठ की संरचना और बुनावट यथासंभव मूलपाठ के अनुरूप होती है। इसमें अनुवाद को पाठ से बाहर जाने की छूट नहीं होती। प्रभावधर्मी अनुवाद में स्रोतभाषा का मूल पाठ उसी भाषा के पाठक को जिस प्रकार प्रभावित करता है, उसका अनूदित पाठक लक्ष्य भाषा के पाठक को उसी प्रकार प्रभावित करता है। अतः अनुवाद के प्रभाव के आधार पर पाठ–सृजन करने की अपेक्षा रहती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

3. हम मानव अनुवाद पर भरोसा कर सकते हैं कि वह .....से मुक्त होगा।

सही/गलत बताइए

4. तकनीकी साहित्य का अनुवाद सृजनात्मक साहित्य की तुलना में सरल नहीं होता है।

टिप्पणी

3.4.3 अंतर अनुशासनिक अनुवाद

एक विशेष विषय का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने में सामान्य अनुवादक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विषय केंद्रित अनुवाद करने के लिए केवल यही पर्याप्त नहीं है कि अनुवादक मूल भाषा व लक्ष्य भाषा को जानता हो। इसके लिए यह भी अत्यावश्यक है कि अनुवादक को विषय विशेष की पर्याप्त जानकारी हो अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो सकता है। दरअसल, एक ही विषय में भी विभिन्न प्रकार से सामग्री को अनूदित करने के लिए अनुवादक के पास विषय की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। एक ही विषय के तहत विभिन्न प्रकार की सामग्री का अनुवाद करने की प्रक्रिया अंतर अनुशासनिक अनुवाद प्रक्रिया कहलाती है।

इसके अंतर्गत अनुवादक न सिर्फ संबंधित सामग्री का विषय के भीतर ही तुलनात्मक अध्ययन करता है वरन वह उस सामग्री का विश्लेषण करके उसका अनुवाद करने की एक निश्चित योजना भी निर्धारित करता है।

विधि के क्षेत्र में अंतर अनुशासनिक अनुवाद की अनेक संभावनाएं हैं–

विधि अनुवाद का क्षेत्र

अनुवाद के क्षेत्र में विधि साहित्य से संबंधित सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और इसके अनुवाद की अनेक संभावनाएं विद्यमान हैं। इस क्षेत्र के अंतर्गत भारतीय संविधान, कानून की नियमावली, कोर्ट–कचहरी के मुकद्दमे, संविधान की संशोधित धाराएं, विविध प्रकार के नियमों–अधिनियमों की पुस्तकें, कानूनी संहिताएं, शासकीय अधिसूचनाएं आदि सामग्री आती है। ये सभी विषय विधि अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। भारत जैसे बड़े देश में केंद्र तथा राज्य सरकार और न्याय व्यवस्था में संबंधित सामग्री विधि–साहित्य के अनुवाद की स्रोत सामग्री के रूप में उपलब्ध है। विधि अनुवाद की भाषा अन्य प्रकार के विषयों से भिन्न होती है। हमारे यहां विधि–साहित्य चूंकि अंग्रेजी में ही है, इसलिए इसका अनुवाद अंग्रेजी से हिंदी में किया जाता है। यह सर्वविदित है कि इन दोनों भाषाओं में काफी अंतर है। वाक्य–रचना में तो इतना अंतर है कि दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञाता ही उन्हें समझ–परख सकता है। अंग्रेजी की प्रकृति लंबे जटिल वाक्यों की है, जबकि हिंदी की प्रकृति छोटे और सरल वाक्यों की। इसके अतिरिक्त अर्थ की स्पष्टता, अर्थ को पूर्णतया लक्ष्य भाषा में सुरक्षित रखना, अर्थ की सुनिश्चितता, भाषा की सरलता एवं सहजता, पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में एकरूपता, मूल प्रारूपण की जटिलता आदि की दृष्टि से विधि साहित्य का अनुवाद करने पर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है।

विधि साहित्य का अनुवाद

अनुवाद एक भाषा में कही गई बात का दूसरी भाषा में संप्रेषण है। दोनों भाषाओं की अपनी–अपनी कथ्यपरक एवं शैलीपरक विशिष्टताएं होती हैं। दोनों शब्द सामर्थ्य की दृष्टि से अधिक तथा कम समृद्ध हो सकती हैं। दोनों की अर्थछवियों में सूक्ष्म या स्थूल अंतर हो सकता है। इन कारणों से अनुवाद का स्वरूप भी प्रभावित होता है। अनुवाद की सामग्री की जैसी प्रकृति होगी, उसका प्रभाव भी वैसा ही होगा। अनुवाद की सामग्री यदि साहित्यिक

टिप्पणी

है तो उसके अनुवाद का स्वरूप कलात्मक होगा, यदि प्रशासनिक है तो उसके अनुवाद की भाषा अलग होगी, वैज्ञानिक अथवा विधि संबंधी है तो उसके अनुवाद की भाषा का मिजाज अलग होगा। जहां तक विधि संबंधी सामग्री के अनुवाद का संबंध है, इसकी भाषा में एकार्थता, स्पष्टता, सरलता, सुनिश्चितता आदि गुण अपेक्षित होते हैं। स्पष्ट है कि अनुवाद की भाषा के ये गुण सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद के लिए आवश्यक नहीं होते।

सामान्य भाषा में भाषा का प्रयोग इतना सूक्ष्म नहीं होता। बहुधा लोग शब्दों के सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखते हैं, किंतु कठिनाई इसलिए नहीं होती कि वे एक–दूसरे का भाव समझने की स्थिति में हैं और उनकी बात का भिन्न अर्थ लगाने का कोई प्रयत्न नहीं करेगा। किंतु विधि में इस अंतर की उपेक्षा से अनेक विषम परिस्थितयां उत्पन्न हो सकती हैं। बोलचाल में हम जिस व्यक्ति पर मुकदमा चल रहा होता है, उसे भी 'अभियुक्त' कहते हैं और दण्ड पाए व्यक्ति को भी अभियुक्त कहते हैं। किंतु विधि में दोनों के लिए अलग–अलग शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता होगी, नहीं तो एक के लिए की गई व्यवस्था दोनों पर लागू हो जाएगी।

अनुवाद क्षेत्र में आने पर भी वे सिद्धांत लागू होते हैं जो विधि के प्रारूपण के लिए लागू होते हैं। अनुवाद की भाषा भी संक्षिप्त और स्पष्ट होनी चाहिए। किंतु यहां आकर एक बहुत बड़ी कठिनाई इस बात की हो जाती है कि एक भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रतिस्थापित करना होता है। यह एक भाषा–वैज्ञानिक सिद्धांत है कि एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा के शब्दों में प्रतिबिंब नहीं होते। अतः एक भाषा में बनी विधि को दूसरी भाषा में व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव होना स्वाभाविक है। यहां कृष्णगोपाल अग्रवाल के विचार उल्लेखनीय हैं–"विधि में शब्द का विशेष महत्व होने के कारण यह आवयक हो जाता है कि अनुवाद की भाषा में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ बिल्कुल वही हो जो मूल भाषा में प्रयुक्त शब्दों का है। यहां प्रस्तुत और अप्रस्तुत सभी का महत्व होता है। बहुत से शब्द अनेकार्थक होते हैं और परिस्थितियों के साथ उनके भिन्न–भिन्न अर्थ लिए जा सकते हैं। अनुवाद करने में यह सुनिश्चित करना होता है कि ये सारी बातें अनुवाद में भी आ जाएं, अर्थात मूल के जो–जो अर्थ जिन–जिन परिस्थितियों में लिए जा सकते हैं वे सारे अर्थ अनुवाद से भी लिए जा सकें। यह कितना भी वैज्ञानिक क्यों न प्रतीत हो किंतु वास्तविक स्थिति यह है कि विधि का अनुवाद करने में हमें एक भाषा की शब्दावली का दूसरी भाषा में प्रतिबिंब प्रस्तुत करना होता है।

कहने का तात्पर्य यही है कि विधि के अनुवाद की भाषा को सामान्य भाषा की कसौटी पर कसना ठीक न होगा। उसका औचित्य विधि भाषा की आवश्यकताओं की दृष्टि से आंका जाना चाहिए। यह आशा करना कि हिंदी में अनूदित विधि बोलचाल की भाषा–जैसी लगे, ठीक नहीं। बोलचाल की भाषा में आज किसी भी सभ्य देश की विधि प्राप्त नहीं। हां, यह अवश्य है कि विधि के क्षेत्र में हिंदी का प्रचार एवं व्यापक प्रयोग होने पर यह स्वयं सरल एवं स्वाभाविक लगने लगेगी और अधिकाधिक व्यक्तियों का सहयोग होने से स्वयं उसका स्वरूप सामान्य आकांक्षाओं के अधिक अनुकूल हो जाएगा।

विधि साहित्य के अनुवाद की समस्याएं

टिप्पणी

आज विधि के अनुवाद की उत्तरोतर बढ़ती हुई महत्ता के कारण विधि साहित्य के अनुवादकों के सामने आने वाली कठिनाइयों का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है। इनमें से कुछ प्रमुख कठिनाइयां नीचे दी गई हैं–

1. **हिंदी में प्रारूपण की समस्या–** विधि का अनुवाद करते समय सबसे बड़ी समस्या है– प्रारूपण की समस्या जोकि विधि से भिन्न अन्य किसी विषय में इतनी जटिल नहीं होती। इस समस्या का उल्लेख करने से पूर्व विधि के वाक्यों की प्रकृति पर दृष्टिपात करना आवश्यक होगा। इसके लिए हम विधि को मुख्य रूप से दो भागों में बांट सकते हैं– (क) संविधि जिसका निर्माण–स्रोत विधान मंडलों और संसद की संप्रभुता में होता है तथा (ख) असांविधिक और वाद विधि जिसका प्रादुर्भाव मुख्यतः विद्वान विधिवेत्ताओं तथा सर्वोच्च न्यायाधीशों के निर्णयों से संबंधित होता है। इसी वर्ग में हम विभिन्न अधिनियमों की व्याख्यात्मक टीकाओं को भी रख सकते हैं।

   विधि की भाषा–शैली संयुक्त वाक्य–विन्यासमयी, अंतरापेक्षी तथा दुर्बोध होती है। इसके विपरीत असांविधिक विधियों तथा नाद्विधि आदि अन्य विधियों की भाषा–शैली इससे भिन्न होती है। वाद विधि में, संविधि में दी गई व्यवस्था का विवेचन और विश्लेषण कर उसे व्यावहारिक जीवन के तथ्यों का स्वरूप प्रदान किया जाता है। इसलिए इसकी भाषा–शैली विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक होने के साथ वर्णनात्मक तथा जीवन की यथार्थ घटनाओं का निरूपण करने वाली होती है। अभिप्राय यह है कि वाद् विधि में न्यायालय द्वारा विधि का निर्वाचन होता है जोकि संविधि के समान ही प्रभावी होता है अतः वाद् विधि के अनुवाद की समस्या संविधि I के प्रारूपण की समस्याओं से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

2. **हिंदी में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों की समस्या–** विधि शब्दावली के अनुवाद के संदर्भ में एक समस्या अंग्रेजी भाषा के हिंदी भाषा में प्रचलित शब्दों की है। समस्या यह है कि क्या ऐसे शब्दों का ज्यों का त्यों लिप्यंतरण किया जाए या उनका हिंदी में अनुवाद किया जाए। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शब्द देखें–

	अंग्रेजी शब्द	हिंदी अनुवाद	लिप्यंतरण
1.	Report	प्रतिवेदन	रिपोर्ट
2.	Premium	अधिमूल्य	प्रीमियम
3.	Decree	आज्ञप्ति	डिक्री
4.	Company	समवाय	कम्पनी
5.	Registration	पंजीकरण	रजिस्ट्रेशन

स्पष्ट है कि इन अंग्रेजी शब्दों के लिए नए शब्दों का निर्माण करने का कोई विशेष कारण नजर नहीं आता। एक तो ये शब्द प्रचलित नहीं हैं और दूसरे उन्हें अपनाने में भी कठिनाई आएगी। ऐसे शब्दों को लिप्यंतरण द्वारा या अपनी भाषा की प्रकृति

टिप्पणी

के अनुसार ढाल कर प्रयोग में लाने से भाषा की सहजता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

3. **विधि शब्दावली की विशिष्ट अर्थवत्ता की समस्या–** विधि शब्दावली के अनुवाद की एक समस्या शब्दों की विशिष्ट अर्थवत्ता से संबंधित है। विधि साहित्य में प्रत्येक शब्द अपने विशिष्ट अर्थ का वाहक होता है। विधि की शब्दावली में सूक्ष्म अर्थ का अंतर निहित होता है। अनुवाद में भी इस तरह शब्द के सूक्ष्म अंतर को याद रखना पड़ता है कभी–कभी दो भिन्न परिस्थितियों के लिए दो स्वतंत्र शब्दों की अपेक्षा एक ही शब्द के प्रयोग से काम चला लिया जाता है। इसका कारण स्वतंत्र शब्द का अभाव मानना पड़ेगा। उदाहरण के लिए 'अभियुक्त' शब्द को ले सकते हैं। जिस व्यक्ति पर मुकद्दमा चल रहा है उसे 'अभियुक्त' कहा जाता है और जिसे सजा या दंड हुआ उसे भी 'अभियुक्त' कहा जाता है। वस्तुतः विधि में उपर्युक्त दोनों के लिए अलग–अलग शब्दों के प्रयोग जरूरी हो जाते हैं। वरना एक के लिए की गई व्यवस्था दोनों पर लागू होती है और यहीं पर भ्रम हो जाता है। अलग–अलग परिस्थिति में उसके लिए अलग शब्द न मिलना विधि–अनुवाद की मुख्य समस्या है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के शब्द 'Appear', 'Present', 'Attend' जैसे शब्दों को देखने से उनके अर्थों में सूक्ष्म अंतर दृष्टिगोचर होगा जिनके क्रमशः हिंदी पर्याय होंगे 'उपसंजात', 'प्रस्तुत' तथा 'उपस्थिति'। इन तीनों अर्थों में अत्यंत सूक्ष्म क्यों न हो किंतु अंतर जरूर है। कोई व्यक्ति विद्यालय के लिए शिक्षण विभाग में दर्शक के रूप में 'प्रेजेंट' हो सकता है लेकिन तब नहीं कहा जा सकता कि उसने 'अटेंड' किया। दूसरी तरफ कोई छात्र अपने स्नातकोत्तर क्लास को 'अटेंड' कर कहता है कि मैं इस बार परीक्षा में 'एपियर' नहीं होने वाला। उसी तरह कोई दर्शक न्यायाल में 'प्रेजेंट' हो सकता है लेकिन कहना गलत होगा कि उसने न्यायालय 'अटेंड' किया और कोई वकील न्यायालय 'अटेंड' जरूर करता है परंतु कह सकता है कि मैं इस मुकद्दमे में 'एपीयर' नहीं हो रहा हूं। अतः विधि शब्दावली के अनुवाद में ऐसे शब्दों एवं उनके अर्थों के सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

4. **विधि शब्दावली में एकरूपता का अभाव–** विधि साहित्य के अनुवाद में शब्दावली में एकरूपता का अभाव भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई या अनुवादकों द्वारा अनूदित की गई पुस्तकों में यह समस्या प्रायः दृष्टिगोचर होती है। कभी–कभी तो यह स्थिति भी सामने आती है कि एक ही पुस्तक में एक ही मूल शब्द के लिए भिन्न–भिन्न हिंदी पर्यायों का प्रयोग देखने को मिलता है। चूंकि विधि का अनुवाद, कविता–कहानी आदि साहित्य के अथवा मानविकी या विज्ञान के विभिन्न विषयों के अनुवादों से सर्वथा भिन्न है। इसका कारण यह है कि जो अन्य विषयों में अनुवाद के लिए आवश्यक गुण समझे जाते हैं वे विधि साहित्य में आकर दोष बन जाते हैं या जो साहित्यानुवाद में दोष समझे जाते हैं, वे विधि साहित्य में अनिवार्य गुण माने जाते हैं। साहित्य का पुनरुक्तिदोष इसका स्पष्ट प्रमाण है। विधि साहित्य में एक ही मूल शब्द के लिए भिन्न–भिन्न

टिप्पणी

हिंदी समानकों का प्रयोग करना दोषपूर्ण हो जाता है। यह विधि की सुनिश्चितता एवं एकरूपता की दृष्टि से दोषपूर्ण है। अतः विधि के प्रारूपकारों को इस ओर बड़ा सचेत एवं सचेष्ट रहना पड़ता है कि जो मानक शब्द (मूल का हिंदी समानक) उसने एक स्थल पर प्रयुक्त किया है संपूर्ण रूपांतर में उसी का प्रयोग किया जाए। यहां कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

	मूल शब्द	हिंदी पर्याय
1.	Receipt	पावती, रसीदी
2.	Company	कंपनी, समवाय
3.	Registration	पंजीकरण, रजिस्ट्रेशन
4.	Order	क्रम, आदेश
5.	Civil	दीवानी, सिविल
6.	Receiver	आदाता, प्रापक
7.	Acquiscene	उपमति, मौन सम्मति

5. **विधि की मानक शब्दावली–** 'शब्द ही ब्रह्म है'– की उक्ति विधि के क्षेत्र में सर्वाधिक चरितार्थ होती है। विधि के किसी भी उपबंध में प्रयुक्त शब्द के पीछे विधानांग का अनुमोदन निहित होता है और वही एक शक्ति है जो उस शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने या उसे निकाल देने के लिए सक्षम है। अतः विधि के अनुवादकों को यह स्वतंत्रता नहीं होती कि वे किसी मूल शब्द के स्थान पर अपनी भाषा के उपलब्ध पर्यायों में से किसी भी उपयुक्त शब्द का चयन करके प्रयोग कर लें। क्योंकि विधि के अनुवाद में प्रयुक्त शब्दों में अतिव्याप्ति दोषों का परिणाम विशाल जनसमुदाय के जीवन के साथ जुड़ा होता है। अनुवादक की किंचित–सी छूट से उनका जीवन संकटमय हो सकता है। ऐसी स्थिति की संभावना सबसे अधिक इसीलिए है कि विधि की मानक शब्दावली का सर्वथा अभाव रहा है। ब्रिटिश शासनकाल में जो हिंदी भाषी क्षेत्रों में विधि के नागरी लिपि में हिंदुस्तानी भाषा में अनुवाद प्रकाशित होते थे उनमें विधि की एक मानक शब्दावली का सर्वथा अभाव पाया जाता था। उनमें प्रयुक्त शब्दावली अधिकांशतः फारसी और अंग्रेजी भाषाओं की होती थी जिसे हिंदी भाषा की मानक शब्दावली के रूप में अंगीकार नहीं किया जा सकता। कृष्णगोपाल अग्रवाल के शब्दों में–"इस क्षेत्र में एकरूप मानक शब्दावली का प्रश्न हिंदी अनुवादकों के सामने एक जटिल प्रश्न बनकर आया। सबसे पहले संविधान का हिंदी रूपांतर तैयार करते समय जब भारत सरकार के सामने शब्दावली का प्रश्न आया तो इसके लिए विधायी आयोग की स्थापना हुई जो इस काम में 1961 से लगा हुआ है। और अब तक प्रायः सभी अधिनियमों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली का प्रयोग अधिनियमों के हिंदी अनुवादों में किया है। अतः आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली को ही न्यायालयों में न्याय–प्रशासन हेतु मान्यता दी जाएगी। निश्चय ही विधिक संकल्पनाओं की इस आधार पर रचित शब्दावली को प्रमाणित माना जा सकता है।"

टिप्पणी

6. **एकार्थता–** विधि के प्रारूपकार के समक्ष दूसरा सबसे बड़ा प्रश्न यह होता है कि उसकी वाक्य रचना से सर्वथा एक ही अर्थ ध्वनित हो। प्रयुक्त शब्द से अभिधेय की ही अभिव्यक्ति होनी चाहिए, द्वियार्थकता से अनावश्यक मुकद्दमेबाजी और न्याय–प्रशासन के क्षेत्र में व्यवस्था भंग होने का भय रहाता है। रूपांतरण करते समय यह देखना पड़ता है कि प्रत्येक शब्द का अर्थ अभिधा द्वारा प्रकट हो और अभिवक्ताओं को उसमें लक्ष्यार्थ या व्यंजनार्थ खोज निकालने का अवसर न मिले।

7. **विशुद्धता–** अन्य किसी भी विषय की अपेक्षा विधि के अनुवादक को प्रारूपण करते समय मूल पाठ के प्रति विशुद्धता का अधिक ध्यान रखना पड़ता है। अधिनियम के किसी भी उपबंध अथवा उसके निर्वाचन को हिंदी में अनूदित करते समय अनुवादक का यह कर्तव्य होता है कि वह मूल विधि के प्रति पूर्णतः निष्ठावान बना रहे। मूल पाठ के अभिप्रेत अर्थ को घटाने–बढ़ाने की बात तो दूर रही उसे if, it, any and every आदि सामान्य–से–सामान्य शब्दों की महता और अर्थगर्भिता का पूर्णरूपेण ध्यान रखना पड़ता है। अभिप्राय यह है कि मूल के उपबंध से भी अर्थ अभिप्रेत हो वह रूपांतर के शब्दों द्वारा यथावत स्पष्टतः ध्वनित हो। प्रायः अनुवादकों का विचार है कि अंग्रेजी के वाक्य–विन्यास को हिंदी अनुवाद में ज्यों–का–त्यों उतार देना चाहिए। बल्कि कहीं–कहीं तो ऐसा होता है कि एक विचार को अनवरत अभिव्यक्ति प्रपत्र करना तथा उस पर बल देने के लिए हिंदी व्याकरण का सामान्य क्रम भी बदलना पड़ता है। उदाहरणार्थ भारतीय परिसीमन अधिनियम की धारा 122 का हिंदी अनुवाद देखिए–

मूल

"No person who is or has been married, shall be compelled to disclose any communication made to him during marriage by any person to whom he i s or has been married, nor shall he be permitted to disclose any such communication, unless the person who made it, or his representative in interest, consents, except in suits between married persons or proceedings in which one married person is procecuted for any crime committed agaist the other."

अनुवाद :

"कोई भी व्यक्ति जो विवाहित है, या रह चुका है, किसी संसूचना को, जो किसी व्यक्ति द्वारा जिससे वह विवाहित है या रह चुका है, विवाहित स्थिति के दौरान उसे दी गई थी, प्रकट करने के लिए विवश न किया जाएगा और न वह किसी ऐसी संसूचना को प्रकट करने के लिए विवश किया जाएगा और न वह किसी ऐसी संसूचना को प्रकट करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, जब तक कि वह व्यक्ति जिसने वह संसूचना दी है या उसका हित प्रतिनिधित्व सम्मत न हो सिवाय उन वादों में जो विवाहित व्यक्तियों के बीच हो, या उन कार्यवाहियों में जिनमें एक विवाहित व्यक्ति दूसरे के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के लिए अभियोजित है।"

8. **अनुवाद की भाषा की सरलता व सहजता–** विधि के अनुवादों के आलोचकों का कहना है कि वाक्य लंबे होने के कारण दुर्बोध और जटिल हो जाते हैं इसलिए हिंदी में अनुवाद करते समय मूलपाठ के एक वाक्य को विभिन्न वाक्यों में तोड़कर अनूदित करना चाहिए क्योंकि हिंदी अंग्रेजी भाषा की भांति संलिष्ट भाषा नहीं है। वस्तुतः हिंदी अनुवादकों के समक्ष यह प्रश्न एक समस्या बनकर आता है जिसका परिणाम कभी–कभी यह होता है कि अनुवाद की सरलता के प्रभाव में आकर विधि के जटिल एवं गंभीर विचारों को प्रकट करने की संक्षिप्तता जोकि विधि प्रारूपण का एक आवश्यक गुण है, जैसे गुण से हाथ धो बैठता है। अनुवादक विधि का अनुपयुक्त विस्तार कर देता है। किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि अनुवादक सरलता का सर्वथा बहिष्कार कर जटिल एवं दुर्बोध वाक्यों की संरचना करे जिसका अर्थ भी निकलना दुःसाध्य हो जाए। वस्तुतः हिंदी के प्रारूपकार को जहां तक हो सके, विधि के विचार को अक्षुण्ण रखते हुए सरल एवं स्पष्ट वाक्यों की रचना करनी चाहिए।

निष्कर्ष : यही विवेचना हम विज्ञान, इंजीनियरिंग या अकाउंट्स विषयों के संबंध में भी कर सकते हैं। कहना न होगा, कि वर्तमान में हिंदी में अंतर अनुशासनिक अनुवाद के क्षेत्र में बहुत कार्य नहीं हुआ है। लेकिन यह स्वीकार्य तथ्य है कि एक विषय का विशेषज्ञ ही इस अनुवाद प्रक्रिया को सार्थक कर सकता है।

3.4.4 साहित्यिक अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार

किसी भी भाषा का परिष्कृत स्वरूप उसके साहित्य में प्रयुक्त होता है। लेखन की अन्य प्रणालियों के साहित्य जैसे तकनीकी, विधि, वाणिज्य, बैंकिंग, परिवहन आदि में भाषा का वह संस्कार प्रकट नहीं हो पाता जो साहित्य में होता है। साहित्य, किसी देश के चिंतन को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाता है। संस्कृति, सभ्यता और विरासत सभी को अक्षुण्ण बनाए रखने का काम साहित्य करता है। जैसे एक भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं होती बल्कि वह अपने भाषिक समाज की प्राचीन पीढ़ियों के चिंतन को संरक्षित करने का माध्यम होती है। भाषा का एक–एक शब्द चिंतन का जीवंत दस्तावेज होता है। यह बात भाषा वैज्ञानिकों ने शब्दों की उत्पत्ति और उनके विकास के संदर्भों में प्रमाणित की है। इसीलिए प्रत्येक देश अपनी–अपनी भाषाओं को बचाए रखने का उद्यम करता है।

साहित्य में भाषा का लालित्य प्रकट होता है। छंद, अलंकार, रस शैली और काव्यशास्त्र के अनेक सिद्धांत लेखन में आकर भाषा की संप्रेषणीयता को बढ़ाते हैं। अनुवाद के अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली सुनिश्चित होती है किंतु साहित्य में शब्दों के प्रयोग की कोई सीमा नहीं है। सच तो यह है कि साहित्य लेखन से नये–नये शब्दों का प्रचलन बढ़ता है। उपसर्गों और प्रत्ययों के नवीनतम प्रयोगों से शब्द सर्जना का काम साहित्यकार करता है। विश्व की सबसे अधिक शब्द सृजन करने वाली भाषा संस्कृत मानी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि संस्कृत भाषा के सभी शब्दों का प्रयोग महाकवि 'माघ' ने किया था। संस्कृत में एक कहावत है 'नौ सर्ग गते माघो नव शब्द न विद्यते' अर्थात माघ द्वारा रचित पुस्तक के नौ सर्ग पढ़ने के बाद कोई नया शब्द शेष नहीं बचता। किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन करना हो, तो उस राष्ट्र के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। इन्हीं अर्थों में साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। राष्ट्रीय जीवन की चिंतन धारा को समझने का सर्वाधिक उपयुक्त साधन साहित्य है।

टिप्पणी

टिप्पणी

जैसे–जैसे संसार एक गांव में तब्दील होता जा रहा है वैसे–ही–वैसे अनेक राष्ट्रों की संस्कृतियां एक–दूसरे के साथ घुलमिल रही हैं। विभिन्न संस्कृतियों और साहित्यों को समझने का एक मात्र उपाय अनुवाद ही है। यह तो संभव नहीं कि हर किसी को कई भाषाओं का ज्ञान हो। अगर कोई दो एक भाषाओं का ज्ञान अर्जित कर भी ले तो भी विश्व के तमाम साहित्यों में व्याप्त ज्ञान का आनंद वह तब तक नहीं ले सकता जब तक उनका अनुवाद उपलब्ध न हो। अनुवाद की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन है। गीता का अनुवाद भारत की सभी भाषाओं में उपलब्ध है। इसी तरह रामायण का अनुवाद भी सभी भारतीय भाषाओं एवं विश्व की अनेक भाषाओं में उपलब्ध हो सका है। अनुवाद की आवश्यकता धर्म ग्रंथों के अनुवाद से प्रारम्भ हुई है। आध्यात्मिक पुस्तकों को साहित्य की श्रेणी में ही रखा जाना चाहिए। आध्यात्मिक साहित्य मनुष्य की अंतरात्मा से प्रस्फुटित हुआ है इसलिए इसका प्रभाव भी आत्मा पर पड़ता है।

साहित्यिक अनुवाद की कोई निश्चित तकनीक नहीं है फिर भी कुछ व्यावहारिक और सैद्धांतिक मान्यताएं हैं जिनका अनुगमन करके अनुवाद करने से उसमें प्राणवत्ता आती है।

मूल रचना साहित्यिक पाठ

अनुवाद करने से पूर्व मूल रचना का साहित्यिक दृष्टि से पाठ करना चाहिए साहित्यिक दृष्टि से पाठ करने का अर्थ है– रचना के साहित्यिक गंभीर्य को समझना। पूरी रचना पढ़ने के बाद उसके विषय में एक दृष्टि तैयार करना। मूल पाठ के बाद उसके विषय में जो दृष्टि बनती है अनुवाद करते समय वह दृष्टि लक्ष्य भाषा में भावों और विचारों को प्रतिबिंबित करने में सहायक होती है।

लक्ष्य भाषा के साहित्यिक स्वरूप का निर्धारण

स्रोत भाषा की साहित्यिक संप्रेषणीयता के आधार पर लक्ष्य भाषा में अनुवाद करने का आंकलन करना।

अनुवादक को स्वयं साहित्यकार होना चाहिए

अनुवाद के अन्य क्षेत्रों में अनुवादक की बहुज्ञता एवं विषय की जानकारी उसकी वांछनीय योग्यता है। किंतु साहित्य की किसी भी विधा का अनुवाद करने वाले अनुवादक के लिए उसका साहित्यकार होना अपरिहार्य होता है। दुनिया की भाषाओं में अब तक जितने भी साहित्यिक सफल अनुवाद हुए हैं उनके सभी अनुवादक स्वयं अच्छे साहित्यकार थे।

साहित्य की निम्नलिखित विधाओं के अनुवाद पर इस प्रकार चिंतन किया जा सकता है–

काव्यानुवाद

कविता किसी भी साहित्य की सबसे पैनी शैली में की गई अभिव्यक्ति होती है। इसमें अभिध, लक्षणा और व्यंजना शब्द की तीनों शक्तियों का प्रयोग होता है। संकेतों, व्यंग्यों तथा रस, छंद अलंकारों की बाहुल्यता कविता में ही होती है। कविता का अनुवाद असंभव माना गया है। असंभव शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि कविता अत्यंत सूक्ष्म भावों को

टिप्पणी

अभिव्यक्त करती है और इन भावों को पकड़ पाना सर्वदा संभव नहीं होता। कविता का अनुवाद करने से पूर्व अनुवादक को मूल कवि की रचनाधर्मिता के साथ स्वयं को एकाकार करना होता है। कविता का अनुवाद नहीं, पुनर्लेखन होता है और पुनर्लेखन या पुनर्सृजन करने के लिए अनुवादक का कवि होना अपरिहार्य योग्यता मानी जाती है। कविता के अनुवाद में इतनी कठिनाइयों के रहते हुए भी साहित्य में कविताओं के बहुत अनुवाद हुए हैं। डॉ. प्रभाकर माचवे ने कविता के अनुवाद के विषय में लिखा है–

'काव्यानुवाद सुगंध–शीशी के बदलने के बराबर है। एक शीशी की सुगंध दूसरी शीशी में उड़ेलने की प्रक्रिया में सुगंध का कुछ अंश हवा में विलीन हो जाता है।'

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रंथों का अनुवाद हिंदी में हुआ है। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास की रचनाओं का सफल अनुवाद किया है।

प्रारंभ से ही काव्यानुवाद विवाद का विषय रहा है। विश्व के अनेक श्रेष्ठ कवियों ने काव्यानुवाद किए हैं और अनेक श्रेष्ठ रचनाएं भी मात्र काव्यानुवाद हैं अतः काव्यानुवाद को असंभव मानना अब तक हुए काव्यानुवादों को नकारना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है "ऐसे अनुवाद (काव्यानुवाद) हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। ऐसी स्थिति में जो हो चुका है, जो हो रहा है, भविष्य में भी होता रहेगा, उसे कैसे कह दें कि नहीं हो सकता।"

काव्यानुवाद करते समय प्रायः निम्नलिखित समस्याएं आती हैं–

1. **छंदानुवाद की समस्या**–हर अनुवादक छंद का अनुवाद नहीं कर सकता। जब तक उसमें सहज प्रक्रिया और अभ्यास का अभाव हो। दूसरा कारण एक भाषा के छंद दूसरी भाषा में नहीं मिलते, तीसरा कारण यदि मूल छंद को लक्ष्य भाषा में लिया जाए, तो भी मूल छंद का जो प्रभाव स्रोत भाषा–भाषी पर पड़ता है उसे अनुवाद में किसी तरह लक्ष्य भाषा पर नहीं डाला जा सकता है।
2. **अलंकारों के अनुवाद की समस्या**–छंदानुवाद के बाद काव्यानुवाद में अलंकारों के अनुवाद की समस्या भी है। शब्दालंकारों का अनुवाद तो फिर भी हो जाता है लेकिन अर्थालंकारों का अनुवाद करना लगभग असंभव ही होता है।
3. **बिंबों के अनुवाद की समस्या**– काव्य में बिंबों का विशेष स्थान होता है काव्यानुवाद में बिंबों के अनुवाद की समस्या भी एक प्रमुख समस्या है। सुरेश सिंगला ने कहा है "बिंबों के माध्यम से कवि जिस कल्पनाशक्ति के सौष्ठव का नियोजन करता है, जिस नई चेतना की संक्षिप्त एवं समग्र अभिव्यक्ति करता है, अनुवादक के लिए उसे लक्ष्य भाषा में उतारना ही सबसे बड़ी चुनौती बन जाता है।"
4. **पर्यायों के अनुवाद की समस्या**–किसी भाषा में एक ही शब्द के अनेक पर्याय होते हैं जिनके अर्थ–बिंबों में सूक्ष्म अंतर होते हैं अतः काव्यानुवाद में एक और समस्या पर्यायों के अनुवाद की है।
5. **शैली के अनुवाद की समस्या**–प्रत्येक कवि की शैली अलग–अलग होती है काव्यानुवाद में शैली का अपना महत्व होता है। उसी शैली का अनुवाद दूसरी भाषा में तो क्या मूल भाषा में भी कोई नहीं कर सकता है।

टिप्पणी

6. **सृजन की मनोभूमि को पकड़ना कठिन**–सृजन की मनोभूमि को पकड़ने के लिए मूल कवि की आत्मा में प्रवेश करना पड़ता है, इसीलिए कहा जाता है, कि काव्य का सफल एवं श्रेष्ठ अनुवाद कवि द्वारा ही हो सकता है। कविता है ही ऐसी चीज जिसे स्रोत भाषा में भी अन्य शब्दों से कहने पर उसका सौंदर्य नष्ट हो जाता है।

कहानी अनुवाद

मनुष्यता की विकास यात्रा में कहानी या कथा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक समाज, प्रदेश और देश अपने प्रेरणा पुरुष के विषय में कहानी कहता और सुनता रहा है। कहानी के दोनों स्वरूप बड़ी कहानी और लघु कथा प्रचलन में हैं। आजकल लघु कहानियों का प्रचलन बढ़ा है। भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक अनुवाद कहानियों का ही हुआ है। रामायण की कहानी और महाभारत की कहानी तो भारतीय समाज में रोज–रोज सुनी जा रही हैं। जातक कथाओं और पंचतंत्र की कहानियों के अनुवाद भी सभी भाषाओं में हुए हैं।

साहित्य की सभी विधाओं में कहानी ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसका विश्व की भाषाओं में सर्वाधिक अनुवाद हुआ है और आज भी हो रहा है। कहानियों के निरंतर अनुवाद से साहित्य परिमार्जित होता है तथा रचनाकारों के बीच विचारों का एक सेतु निर्मित होता है। बंगला के सभी चर्चित उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद उपलब्ध है। कविता की ही तरह यदि कहानी का अनुवादक स्वयं भी कहानीकार हो तो उसके कथ्य की स्वाभाविकता अक्षुण्ण बनी रहती है। बंगला के कई उपन्यास जो हिंदी में अनूदित हुए हैं, उनकी मांग बंगला से अधिक हिंदी में हुई। शरतचंद् के उपन्यास हिंदी पाठक ढूंढ़कर पढ़ते हैं। मराठी उपन्यासकार शिवाजी सावंत का उपन्यास 'मत्युंजय' का हिंदी अनुवाद हिंदी जगत में खूब जनप्रिय हुआ।

कथाओं के अनुवाद कविता की अपेक्षा सरल हैं किन्तु इसकी स्वाभाविकता और मूल प्रवाह को बचाए रखने के लिए अनुवादक को कठिन श्रम करने की आवश्यकता होती है।

कथा साहित्य के अंतर्गत कहानी, उपन्यास और लघुकथा को लिया जा सकता है। साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में सर्वाधिक मांग कहानी साहित्य के अनुवाद की रहती है।

संबंधित समस्याएं

1. **भाषा के विभिन्न रूपों की समस्या**–कहानी साहित्य का अनुवाद करते समय स्रोत–भाषा के कई रूपों का रूपांतरण लक्ष्य भाषा में करना होता है। कथा साहित्य में महत्वपूर्ण तत्व चरित्र–चित्रण है। प्रत्येक पात्र उसकी भाषा, उसकी भूमिका और उसकी स्तरीयता को उद्घाटित करता है। किसी भी कथा साहित्य में देश, काल एवं वातावरण भी अपना विशेष महत्व रखता है, अतः अनुवाद करते समय देशकाल विषयक परिवेश का ध्यान रखना जरूरी है।
2. **आंचलिकता का अनुवाद**–आंचलिकता का आशय है "किसी विशेष क्षेत्र की सभ्यता, रीति–रिवाज, लोक संस्कृति, मान्यताओं, लोकगीत एवं लोक साहित्य आदि को अपने संपूर्ण परिवेश के साथ व्यक्त करना।" इन सबका अनुवाद किसी विदेशी भाषा में केसे संभव हो सकेगा, क्योंकि विदेशी भाषा में तो उस प्रकार का

टिप्पणी

अंचल तो होगा ही नहीं। इन सबका अनुवाद करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

3. **वातावरण के पुनः निर्माण की समस्या**–अनुवाद में वातावरण के पुनः निर्माण की समस्या बड़ी समस्या होती है। इसमें विदेशी वातावरण, भौगोलिक नाम, देश काल आदि, भेद, व्यक्तियों के नाम, सांस्कृतिक संकल्पनाएं आदि सम्मिलित हैं। इन सभी का पुनः निर्माण अनुवाद में बहुत कठिन कार्य है।
4. **मूल कथा साहित्य का अध्ययन आवश्यक**–अनुवादक के लिए अनुवाद कार्य प्रारंभ करने से पूर्व उस साहित्य का अध्ययन करना जरूरी है, जिसका वह अनुवाद करने जा रहा है। कथा या उपन्यास के तत्त्वों को ध्यान में रखकर उसका अध्ययन करे। वह उस कृति और कृतिकार के साथ तादात्म्य स्थापित करे जिसने वह कृति लिखी है। इसके बाद ही अनुवाद कार्य आरंभ करे।

नाट्यानुवाद

संस्कृत साहित्य में नाटक को काव्य माना गया है। नाटक में कविता की तरह श्रव्य तो है ही पर साथ ही इसमें दृश्य भी होता है। संस्कृत में कहा गया है– 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्' अर्थात काव्य में नाटक रमणीय है। नाटक रमणीयता इसकी संप्रेषणीयता में निहित होती है। जैसे कविता के अनुवाद के लिए स्वयं अनुवादक को कवि होना चाहिए, उसी प्रकार नाटक के कथ्यों का अनुवाद करने वाले अनुवादक को स्वयं एक कलाकार होना चाहिए। नाटक पढ़ने से आनंद नहीं देता, उसका सही आनंद उसके मंचन में निहित होता है। मंचन अलग तरह के कौशल की मांग करता है, जो बिना अभिनेता बने अर्जित नहीं किया जा सकता।

नाटक में संवादों के द्वारा कथानक आगे बढ़ता है। संवाद जितने छोटे और सरल होंगे उनका प्रभाव उतना ही गहरा होगा। संवादों का अनुवाद करते समय अनुवादक के मस्तिष्क में यह विचार अवश्य रहना चाहिए कि श्रोताओं और दर्शकों के लिए भाषा बोझिल न होने पाए। बोझिल भाषा में अनूदित संवाद अपनी अर्थवता खो देते हैं और नाटक का उद्देश्य समाप्त हो जाता है।

साहित्य की किसी भी विधा का अनुवाद सरल नहीं होता। मानवीय संवेदनाओं की गहरी समझ और साहित्यिक सूक्ष्मताओं के चित्रण का अनुभव रखने वाला अनुवादक ही साहित्य का अनुवाद कर सकता है, अन्यथा नहीं।

नाटक में दो बातें महत्वपूर्ण हैं– एक संवाद और दूसरा मंचन, इसीलिए कहा जा सकता है "नाटक संवादों पर आधारित मंचविद्या है।" नाटक एक दृश्य विधा है इसलिए इसका अनुवाद अन्य साहित्य विधाओं से काफी भिन्न है। नाटक के दो रूप होते हैं–

1. मंचीय नाटक
2. साहित्यिक नाटक

मंचीय नाटक के अनुवाद के लिए अनुवादक को रंगमंच का व्यापक ज्ञान होना चाहिए। साहित्यिक नाटक मूल रूप से पढ़ने की दृष्टि से लिखे जाते हैं।

टिप्पणी

नाट्यानुवाद से संबंधित समस्याएं

नाटक का अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने कुछ समस्याएं आती हैं वे इस प्रकार हैं–

1. **नाटक संवादों की विधा**–नाटक संवादों की विधा है। नाटक के संवाद एवं भाषा शैली को लेकर अनुवादक को सदैव सतर्क रहना चाहिए। बड़े–बड़े वाक्यों को रंगमंच पर बोलने में कठिनाई होती है। नाटक में वाक्य छोटे–छोटे होते हैं अतः नाटक का अनुवाद करते समय भी वाक्य छोटे रखने चाहिए।
2. **नाटक के वाक्यों में उलझाव नहीं**–नाटक के वाक्यों में उलझाव नहीं होना चाहिए। पात्र के केवल एक बार वाक्य बोलने पर ही दर्शक उसका आशय आसानी से निकाल लें।
3. **नाटक अनुवाद में जीवंतता जरूरी**–नाटक की जीवंतता मुहावरों, लोकोक्तियों और अलंकारों आदि के प्रयोग से आती है। इसलिए अनुवादक को उस संस्कृति का अच्छा ज्ञान होना चाहिए क्योंकि ये सारी बातें मूल भाषा की संस्कृति से जुड़ी होती हैं।
4. **नाटक की भाषा व्याकरण के नियमों में आबद्ध नहीं**–नाटक की भाषा नाटकीयता से भरी होती है। नाटक के वाक्य हमेशा पूरे नहीं होते। उनके कई अवयव लुप्त होते हैं। इस लुप्तता की पूर्ति संदर्भ और पात्र की भाव–भंगिमाओं से कर दी जाती है। अनुवादक को हर प्रकार के अधूरे वाक्यों का अनुवाद अधूरेपन के साथ ही करना चाहिए, लेकिन उसे यह भी देखना चाहिए कि उसका अनुवाद लक्ष्य–भाषा की प्रकृति के अनुरूप है या नहीं।
5. **नाटक का अनुवाद सृजनात्मक लेखन**–नाटक के अनुवाद में सृजनात्मकता के तत्त्व अधिक और शब्दानुवाद की गुंजाइश कम होती है। इसी कारण श्रेष्ठ नाट्यानुवाद किसी भी साहित्य का अभिन्न अंग बन जाता है। नाटक के अनुवाद की सृजनात्मकता में ही उसकी सफलता निर्भर करती है।
6. **संवाद एवं अभिनय का तालमेल आवश्यक**–नाटक वही सफल होता है जिसमें पात्रों के संवाद और अभिनय का सही तालमेल हो। एक अच्छे अनुवादक को यह प्रयास करना चाहिए कि संवाद और अभिनय का यह तालमेल उसके अनुवाद में उतर आए। जिस अनुवादक को रंगमंच के वांछनीय–अवांछनीय तत्वों का ज्ञान हो वही नाटक की अभिनेयता, शैलीगत सुंदरता एवं गरिमा को बनाए रख सकता है।

3.4.5 जनसंचार संबंधी सामग्री का अनुवाद

जनसंचार माध्यमों का क्षेत्र अनुवाद की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके अंतर्गत प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से संबंधित सामग्री का अनुवाद सम्मिलित है। डॉ. सुरेश सिंहल के अनुसार–"जनसंचार माध्यमों से संबंधित सामग्री पर प्रायः अंग्रेजी का अत्यधिक प्रभाव होता है जिसके परिणामस्वरूप अनुवाद की भाषा में

टिप्पणी

कृत्रिमता एवं नीरसता आ जाती है। इसका एक कारण इस सामग्री का शब्दानुवाद करना है। वास्तव में, जनसंचार के माध्यमों की सामग्री का अनुवाद आम आदमी से संबंध रखता है। इस कारण इसकी भाषा सरल, स्पष्ट और सहज ही होनी चाहिए। अटपटी, निरर्थक और बेजान अभिव्यक्तियों के लिए इस प्रकार के अनुवाद का कोई स्थान नहीं होता।" पत्रकारों और संपादकों को मीडिया के अनुवाद में समाचार और भाषा दोनों में संतुलन बनाए रखने का महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह करना होता है। इसकी भाषा पाठक एवं दर्शकों का ध्यान आकर्षित करने वाली तथा उन्हें प्रभावित करने वाली होती है। जनसंचार माध्यमों में विज्ञापन का उल्लेखनीय स्थान होता है। विज्ञापन की भाषा के अपने अलग ही तेवर होते हैं। विज्ञापन के अनुवाद की भाषा में चुटीलापन, पैनापन, आकर्षण आदि गुणों का होना आवश्यक होता है।

3.4.6 कार्यालयी सामग्री का अनुवाद

कार्यालयी अनुवाद से तात्पर्य है– कार्यालय से संबद्ध साहित्य का अनुवाद। भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अंतर्गत हिंदी को देवनागरी लिपि में राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने के पश्चात् से राजकाज में सक्षम बनाने तथा प्रशासनिक अंग्रेजी भाषा के साथ स्थान दिलाने के लिए यह आवश्यक थी कि तेजी से हिंदी को प्रशासनिक कार्य के विविध स्तरों, रूपों पर तैयार किया जाए ताकि सभी संवैधानिक तथा अन्य साहित्य को हिंदी में प्रस्तुत किया जा सके। कार्यालयी साहित्य का हिंदी में अनुवाद द्रुतगति से आरंभ हुआ। 1976 के अनुसार निम्नलिखित कार्यों के लिए अनुवाद की व्यवस्था करना अनिवार्य है–

1. केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय से क्षेत्र 'क' अर्थात बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली और अंडमान निकोबार द्वीप समूह प्रशासन को या इनके किसी कार्यालय को अथवा इनमें निवास करने वाले किसी व्यक्ति को यदि कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसके साथ उसका हिंदी अनुवाद भी भेजना अनिवार्य होगा।
2. केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय से क्षेत्र 'ख' अर्थात गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, संघ राज्य क्षेत्र के अतिरिक्त इनके किसी कार्यालय को यदि कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसके साथ उसका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा।
3. क्षेत्र 'ग' में अर्थात 'क' एवं 'ख' क्षेत्रों में स्थित राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में यदि हिंदी में कोई पत्र भेजा जाता है तो उसके साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजा जाएगा।
4. कहीं से भी हिंदी में प्राप्त पत्र का उत्तर हिंदी में भेजा जाएगा। यदि उसे मूलरूप से अंग्रेजी में तैयार किया जाता है तो उसका हिंदी अनुवाद भी भेजना होगा।
5. राजभाषा नियम की धारा 8 के अनुसार प्रत्येक कर्मचारी को अपनी फाइल पर टिप्पणियां या मसौदा हिंदी अथवा अंग्रेजी में लिखने की छूट है किंतु यदि किसी कर्मचारी को हिंदी का कार्य साधक ज्ञान नहीं है तो संबंधित कार्यालय को उसके अंग्रेजी अनुवाद की व्यवस्था करनी होगी। इसके अतिरिक्त यदि कोई दस्तावेज

टिप्पणी

विधिक या तकनीकी प्रकृति का है तो कार्यालय प्रधान के आदेश पर उसका अनुवाद किया जाएगा।

6. केंद्रीय सरकार के सभी कार्यालयों से संबंधित मैनुअल संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य तथा लेखन सामग्री की वस्तुएं हिंदी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में मुद्रित कराई जाएंगी। इस व्यवस्था के कार्यान्वयन के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ेगी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि केंद्रीय कार्यालयों में अनुवाद कार्य का बड़ा महत्व है। कार्यालयी साहित्य का अनुवाद ललित साहित्य के अनुवाद से भिन्न होता है। यह लक्षणा और व्यंजना प्रधान शैली की बजाय अभिधात्मक शैली में लिखा जाता है। अतः इसकी भाषा जितनी सरल और सपाट होगी उतनी ही अधिक बोधगम्य होगी। यह सूचना प्रधान होता है, इसमें काव्यात्मकता के बजाय सहजता को प्रधानता दी जाती है क्योंकि यह मुख्यतः प्रचार साहित्य होता है। कार्यालयी साहित्य पूर्णतः एकार्थी होना चाहिए।

कार्यालयी अनुवाद की समस्याएं

साहित्येतर विषयों के अनुवाद के क्षेत्र में कार्यालयी अनुवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। कार्यालयी साहित्य का अनुवाद साहित्यिक अनुवाद से नितांत भिन्न होता है। चूंकि दोनों प्रकार के अनुवाद की सामग्री की प्रकृति में काफी अंतर होता है। इसलिए इन दोनों प्रकार के अनुवाद की समस्याओं में भी अंतर होना स्वाभाविक ही है। साहित्यिक अनुवाद की समस्याएं पुनः सृजन के स्तर पर प्रस्तुत होती हैं; जबकि कार्यालयी अनुवाद की समस्याएं प्रतिस्थापन के स्तर पर अनुवादक के सामने आती हैं। दोनों प्रकार के अनुवाद में भाषा का स्वरूप भी बदल जाता है। साहित्यिक अनुवाद में भाषा की प्रयुक्तियां सृजनात्मक, सांस्कृतिक, व्यंजनात्मक आदि हुआ करती हैं; जबकि कार्यालयी अनुवाद में भाषा की प्रयुक्तियां मुख्यतः पारिभाषिक, अभिधामूलक एवं सुनिश्चित अर्थ रखने वाली होती हैं। कार्यालयी अनुवाद में कुछ समस्याएं भी आती हैं।

1. **शब्द–** कार्यालयी अनुवाद में सर्वप्रथम समस्या शब्द–चयन की समस्या है। शब्द–चयन की समस्या का मूल कारण यह होता है कि किन्हीं दो भाषाओं की सूचना संप्रेषित करने की क्षमता एक जैसी नहीं होती। एक भाषा में जो संदेश जितनी सूक्ष्मता के साथ संप्रेषित किया जा सकता है, संभवतः दूसरी भाषा में वही संदेश उतनी सूक्ष्मता के साथ संप्रेषित नहीं किया जा सकता।

2. **शब्द प्रयुक्ति की समस्या–** कार्यालयी अनुवाद के संदर्भ में दूसरी समस्या शब्द–प्रयुक्तियों से संबंधित है। प्रायः देखने में आया है कि कार्यालयी अनुवाद में शब्द–प्रयुक्तियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि अनुवाद में भाषा–प्रयोग संबंधी अनेक त्रुटियां रह जाती हैं और उपेक्षित अर्थ को क्षति पहुंचती है।

3. **भाषा की प्रकृति–** अंग्रेजी के वाक्यों की संरचना हिंदी में वाक्यों की संरचना की तुलना में कुछ कठिन होती है। अंग्रेजी के वाक्यों का शब्द–क्रम हिंदी के वाक्यों के शब्द–क्रम से अलग होता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के वाक्यों में

टिप्पणी

कर्ता–क्रिया–कर्म होता है, जबकि हिंदी में यह क्रम कर्ता–कर्म–क्रिया हो जाता है। अंग्रेजी में वाक्य लंबे होते हैं, जबकि हिंदी में छोटे। अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करते समय अंग्रेजी का प्रभाव हिंदी की वाक्य–संरचना पर प्रायः देखा जाता है। इसके परिणामस्वरूप अनुवाद की भाषा में कृत्रिमता का दोष उत्पन्न हो जाता है।

4. **भाषा की क्लिष्टता की समस्या–** अनुवाद की भाषा अंग्रेजी के कारण छाया कलुषित हो जाती है और वह अपनी स्वाभाविकता खो बैठती है। इससे पाठक के लिए भाषा बोधगम्य नहीं रह जाती। इसके लिए अनुवादक को हिंदी की प्रकृति से पूर्णतया परिचित होना चाहिए और सदैव सकर्त रहना चाहिए। ऐसा करने पर ही कार्यालयी अनुवाद को भाषा सहज स्वरूप प्रदान कर सकेगी।

5. **अनुवाद में अर्थ के अनर्थ की समस्या–** कार्यालयी अनुवाद के संदर्भ में प्रायः ऐसी स्थिति भी सामने आती है जब अर्थ का अनर्थ हो जाता है और अनुवाद अपना सही भाव खो बैठता है। ऐसी स्थिति निश्चित रूप से हास्यास्पद हो जाती है।

6. **पारिभाषिक शब्दावली की समस्या–** कार्यालयी साहित्य के अनुवाद की एक समस्या या विशेषता पारिभाषिक शब्दों के समुचित प्रयोग की है। डॉ. राजमणि तिवारी का कहना है कि "संविधान द्वारा जब हिंदी को राजभाषा बनाया गया तो सबसे पहले यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि यदि हिंदी में सरकारी कार्य किया जाता है तो उन सभी पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय सुलभ होने चाहिए जो सामान्यतया कार्यालयी प्रयोग में आते हैं। यद्यपि हिंदी में पर्यायों को निर्धारित करना भी अर्थ की सूक्ष्मता की दृष्टि से और अनेकार्थकता के भ्रम से बचने के लिए अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्यायों को निर्धारित करना था तथा जहां वे उपलब्ध नहीं थे, वहां उनका नव–निर्माण करना अत्यावश्यक था। भारत सरकार ने इसके लिए पहले केंद्रीय निदेशालय और बाद में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं ने जो कभी अलग–अलग और कभी एक संस्था के रूप में कार्य करती है पिछले 39–35 वर्षों में लगभग 4 लाख अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्याय निर्धारित अथवा निर्मित किए हैं। ऐसा करने में उपलब्ध शब्दावली के सभी स्रोतों का पूर्णतया उपयोग किया गया है।"

3.4.7 अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद

इस अनुवाद में एक भाषिक प्रतीक होता है और दूसरा भाषेतर प्रतीक। हम जानते हैं कि चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि में भी भावों या विचारों की अभिव्यक्ति होती है। इनमें भाषिक ध्वनियों का प्रयोग नहीं होता, इसलिए ये सभी भाषेतर प्रतीक हैं। इन प्रतीकों का रूपांतरण प्रतीकांतरण है। इस दृष्टि से अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में भाषिक प्रतीक के कथ्य का अंतरण भाषेतर प्रतीक में होता है। किसी मार्ग पर 'खतरे की चेतावनी' भाषा के माध्यम से देने के बजाय 'खोपड़ी का चिह्न' लगाया जाता है। सड़क पर वाहनों को 'रोकने' या 'चलने' के लिए भाषायी ध्वनियों के माध्यम से बताने के बजाय 'लाल बत्ती' का प्रयोग होता है। अतः 'खोपड़ी' का चिह्न, 'लालबत्ती', 'हरी बत्ती' आदि भाषेतर प्रतीक हैं। इन भाषेतर प्रतीकों का रूपांतरण भाषिक प्रतीकों से हुआ है, जो अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद के उदाहरण

टिप्पणी

हैं। इसी प्रकार कवि के भावों या विचारों को चित्रकार अपनी–अपनी कूची से चित्र में व्यक्त करता है, संगीतकार नाद–संयोजन से और नर्तक या नृत्यांगना अपनी नृत्य से व्यक्त करता है। कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की कथावस्तु का दृश्यांकन चित्र अथवा नृत्य से भी हो सकता है और टेलीविजन अथवा फिल्म के दृश्य बिंबों के द्वारा भी प्रतीकांतर हो सकता है और टेलीविजन अथवा फिल्म के दृश्य बिंबों के द्वारा भी प्रतीकांतर हो सकता है। संस्कृत और हिंदी के रामायण, महाभारत, देवदास, सारा आकाश, तीसरी कसम, मैला आंचल, राग दरबारी आदि कृतियों का फिल्मीकरण और टेलीविजनीकरण अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद हैं।

3.5 अनुवाद की कसौटी

एक अच्छे अनुवाद में साहित्यिक, समाचार–संबंधी या वैचारिक अनुवाद 'शब्द–प्रति–शब्द' नहीं होने चाहिए। मूल कथन में 'कुछ' भी जोड़ना या छोड़ना नहीं जाना चाहिए। खास तौर पर तथ्यपरक आंकड़ों से युक्त अथवा सुनिश्चित नियमों से संबंधित 'औपचारिक' कोटि की सामग्री के अनुवाद ज्यों के त्यों ही प्रस्तुत करने चाहिए।

अंग्रेजी में रचित किसी कृति के मूल कथ्य के संप्रेषण में यथातथ्यता का निर्वाह करते हुए भी अनुवाद करने वाले की कथनशैली अर्थात अभिव्यंजना–पद्धति लक्ष्य भाषा के संरचना–स्तर के अनुरूप ही ग्रहण करनी होगी। जो बात हम कहना चाहते हैं उसे हम दूसरे के सामने उसी अर्थ में पहुंचा सकें। उत्तम अनुवाद वही है, जिसकी प्रेषणीयता भी इस बात से आंकी जाती है कि अनुवाद पढ़ने के बाद इसकी मूल भाषा पढ़ने की जरूरत न पढ़े।

अनुवाद का अर्थ सुस्पष्ट होना चाहिए। एक ही कथन के अनुवाद में कहीं स्रोत भाषा के किसी शब्द का कोई एक पर्याय और कहीं कोई अन्य पर्याय अपनाना भी असंगत तथा अनुवाद की स्पष्टता में बाधक होता है। जैसे–'प्रेजीडेंट' (President) के लिए कहीं अध्यक्ष, कहीं प्रधान, कहीं सभापति तथा कहीं राष्ट्रपति का प्रयोग अज्ञान का सूचक होगा इसलिए पर्याय का प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी गलती न हो।

आम जनता जिन प्रचलित शब्दों का अधिक प्रयोग करती है अनुवाद करने में वे ही शब्द प्रयोग करने चाहिए, नहीं तो अनुवाद का प्रवाह टूट जाएगा। मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों आदि का प्रयोग करते समय अधिक सावधानी रखनी चाहिए; जैसे–अंग्रेजी कहावत Only the wearer knows where the shoe pinches का यह अनुवाद– "केवल पहनने वाला ही जानता है कि जूता कहां काटता है।" उतना प्रभावशाली नहीं लगता जितना "जाके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई" लगता है।

अनुवाद की भाषा में प्रसाद गुण अर्थात सहजता और सरलता होनी चाहिए तथा वाक्य छोटे व सरल होने चाहिए। अनुवाद की भाषा कृत्रिम व अधिक संस्कृतनिष्ठ नहीं होनी चाहिए, साथ ही भाषा एकदम गांव की भी न हो जाए यह भी ध्यान रखना चाहिए। अनुवाद दो भाषा–भाषी वर्गों को आपस में लाने का एक सेतु होता है। इसलिए अनुवाद करते समय सतर्क रहना पड़ेगा कि यह सेतु खाई न बन जाए।

अच्छे अनुवाद की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसको पढ़ने में मूल कृति जैसा ही आनंद आए, अनुवाद, अनुवाद न लगे, मूल जान पड़े। रूसी लेखक गोगोल की उक्ति–

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

5. किसी एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण .....अनुवाद कहलाता है।

सही/गलत बताइए

6. संस्कृत में किसी कृति का जो 'भाष्य' या 'टीका' होती थी, वह भी एक प्रकार का अंतःभाषिक अनुवाद है।

"अनुवाद उस बेदाग कांच की तरह है जिसके माध्यम से दर्शक उस पार के सारे दृश्य–सौंदर्य का आनंद ले सकें और साथ ही कांच के अस्तित्त्व से भी अनभिज्ञ रहें।"

टिप्पणी

3.6 अनुवादक की कसौटी

अनुवादक को स्रोत भाषा का ज्ञान होना चाहिए। स्रोत भाषा का ज्ञान भी कई प्रकार का हो सकता है। मान लें किसी रूसी पुस्तक का अनुवाद करना है। यदि वह पुस्तक गणित की है तो रूसी भाषा के सामान्य ज्ञान से काम चल सकता है, किंतु मान लीजिए वह कोई कविता की पुस्तक है या ऐसा उपन्यास है जिसमें आंचलिकता की पुट है तो फिर भाषा–ज्ञान का स्तर अच्छा–खासा होना आवश्यक है। वस्तुतः इसका कोई खास अर्थ नहीं है कि अनुवादक को स्रोत भाषा का ज्ञान हो। उसे मूल सामग्री के स्तर का वैसा ज्ञान होना चाहिए जैसा कि उसे पढ़कर अच्छी तरह समझने या रसास्वादन करने वाले मूल भाषा–भाषी का होता है। ज्ञान उस स्तर से जितना ही कम होगा, उतनी ही त्रुटि होने की संभावना अनुवाद में बढ़ जाएगी।

अनुवादक को लक्ष्य भाषा का विषय के अनुरूप समुचित ज्ञान होना चाहिए अर्थात उतना ही ज्ञान, जितना लक्ष्य भाषा–भाषी को उस विषय में ठीक अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित है। यह ज्ञान भी जितना कम होगा अनुवाद के उतने ही त्रुटिपूर्ण होने की संभावना बढ़ जाएगी।

अनुवादक को विषय का ज्ञान होना आवश्यक है। विषय के ठीक ज्ञान के बिना प्रायः देखा गया है कि अनुवादक अर्थ का अनर्थ कर बैठता है। विषय के ज्ञान के संदर्भ में भी उपर्युक्त बातें दुहराई जा सकती हैं। अर्थात वह ज्ञान कम–से–कम उस स्तर का तो होना ही चाहिए जिस स्तर की अनूद्य सामग्री हो।

स्रोत भाषा का ज्ञान, लक्ष्य भाषा का विषय के अनुरूप समुचित ज्ञान और विषय का ज्ञान रखने वाला अनुवादक ही एक अच्छे अनुवादक की कसौटी पर खरा उतर सकता है।

अनुवादक को स्वयं साहित्यकार होना चाहिए

अनुवाद के अन्य क्षेत्रों में अनुवादक की बहुज्ञता एवं विषय की जानकारी उसकी वांछनीय योग्यता है। किंतु साहित्य की किसी भी विधा का अनुवाद करने वाले अनुवादक के लिए उसका साहित्यिकार होना अपरिहार्य होता है। दुनिया की भाषाओं में अब तक जितने भी साहित्यक सफल अनुवाद हुए हैं उनके सभी अनुवादक स्वयं अच्छे साहित्यकार थे।

3.7 अनुवाद की चुनौतियां

अनुवाद की चुनौतियों के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं: 1. संस्कृति विषयक चुनौती 2. भाषावैज्ञानिक चुनौती

1. संस्कृति विषयक चुनौतियां

अनुवाद की चुनौतियों के दो प्रमुख पहलू– संस्कृति विषयक चुनौती और भाषा वैज्ञानिक चुनौती हैं। भाषा वैज्ञानिक चुनौती में लिंग, वचन संबंधी समस्याएं आती हैं। संस्कृति अनुवाद

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

7. अनुवाद करते समय मूल कथन में..... भी जोड़ना या छोड़ना नहीं चाहिए।

सही/गलत बताइए

8. अच्छे अनुवाद की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसको पढ़ने में मूल कृति जैसा ही आनंद आए, अनुवाद, अनुवाद न लगे, मूल जान पड़े।

टिप्पणी

कार्य में अहम भूमिका निभाती है। अनुवादक को स्रोत भाषा की संस्कृति का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है। संस्कृति को संजोकर रखने का साधन भाषा है। अतः संस्कृति के अनुसार भाषा बनती है। भाषा संस्कृति का प्रतिबिंब होती है, इसलिए अनुवाद कार्य में संस्कृति महत्वपूर्ण अंश बनती है। दो संस्कृतियों के समानांश तथा भिन्नांशों के अनुसार अनुवाद कार्य सरल तथा कठिन बनता है। समानांश अधिक हों तो सरल और भिन्नांश अधिक हों तो कठिनाई।

यही संस्कृति भिन्नता की कठिनाई अनुवाद के अलग–अलग प्रकार के अनुसार भिन्न–भिन्न हो जाती है। वैज्ञानिक तकनीकी साहित्य का अनुवाद हो तो संस्कृति की समस्या उतनी नहीं होती। सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद में विशेष रूप से ये समस्याएं आती हैं। क्योंकि सृजनात्मक साहित्य संस्कृति विशिष्ट का प्रतिबिंब होता है। एक संस्कृति में जो है और दूसरी संस्कृति में अगर वह नहीं है तो उस सांस्कृतिक अंश को उस भाषा में कैसे अनूदित करें? यह समस्या सामने आती है।

सांस्कृतिक समस्याओं को निम्नलिखित वर्गों में बांटा गया है–

- परिसर/पर्यावरण संस्कृति
- वस्तु संस्कृति
- समाजिक संस्कृति
- धार्मिक संस्कृति
- भाषिक संस्कृति

इनमें से भाषिक संस्कृति संबंधी विचारों का विवरण आगे भाषा वैज्ञानिक चुनौतियों में दिया गया है। अतः शेष चार वर्गीय संस्कृति संबंधी समस्याओं का विश्लेषण इस प्रकार है–

• परिसर संस्कृति

परिसर अथवा पर्यावरण संस्कृति पर विशेष प्रभाव डालता है। मरुभूमि में स्थित जलाशय को 'ओयासिस' कहते हैं, जिसे मैदानी प्रदेश के लोग नहीं जानते। उन्हें इसे समझाकर कल्पना लोक में निर्मित करना कठिन है। ऐसे ही पर्वत, नदी, सरोवर को जिन्होंने नहीं देखा उन्हें अनुवाद कर समझाना उतना ही कष्टदायक होता है। तमिल में 'कुलिर इदय स्वागतम्' है। कुलिर का अर्थ है शीतल। तमिल प्रदेश उष्ण प्रदेश होने के कारण शीतल स्वागत अर्थपूर्ण होता है। संस्कृति में भौगोलिक परिवेश का प्रमुख योगदान होता है। वही कन्नड में नहीं हो सकता–भव्य स्वागत, हार्दिक/हृदयपूर्वक स्वागत होता है।

• वस्तु संस्कृति

प्रत्येक प्रदेश की जनजाति के द्वारा उपयोग में लाई जानेवाली वस्तुएं उनकी आवश्यकता तथा परिवेश के अनुसार होती हैं। उनकी जीवन–रीति तथा जीवन–विधान के अनुसार वस्तु वैविध्य अनुवाद संदर्भ में सांस्कृतिक समस्या पैदा करता है। सागर किनारे बसने वाले लोग कई प्रकार की मछलियों और नावों का उपयोग करते हैं। इनके अलग–अलग नाम होते

टिप्पणी

हैं। एक ही भाषा में भी ऐसे विविध शब्द हर कहीं प्रचलित नहीं होते। सागर तट से दूर भीतरी प्रदेश में रहने वाले इन्हें अलग–अलग और इनके अलग–अलग प्रकारों को पहचान नहीं पाते। ऐसे में उन्हीं संज्ञा पदों को रखकर उन्हें परिभाषित करना होगा। गांवों में दाल बनाने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले 'कल्लमरिगे' के बारे में नगरवासी हम नहीं जानते। उसे 'पत्थर पात्र' कहकर समझाने के बजाए वैसे ही रखकर पाद टिप्पणी देना अनिवार्य है। क्योंकि स्टील, प्लास्टिक बर्तनों के आने से उनका परिचय रहना असंभव बात हैं। पूरणपोली आदि इसी तरह के उदाहरण हैं।

• सामाजिक संस्कृति

व्यक्ति समाज का अंग है और वह उसी में वास करता है। सामाजिक बर्ताव ही संस्कृति है। सामाजिक व्यवस्था के अनुसार भाषा का सांस्कृतिक पदकोश होता है। भाषा विज्ञानी भाषा की पाद संपदा को दो वर्गों में बांटते हैं–

(i) Intimate Vocabulary–Intimate का अर्थ होता है घनिष्ठ, मित्रता, आत्मीय। अतः इससे जुड़े शब्द मानव संबंधों से जुड़े हैं। इसका अनुवाद सरल है क्योंकि जो शब्द है उसके लिए पर्याय शब्द रखने से काम बन जाएगा।

(ii) Culture Vocabulary– सांस्कृतिक शब्द/पद कोश–इनका अनुवाद कठिन है। क्योंकि हर जनजाति में पद/शब्द कोश के सामान्य अंश अवसर नहीं मिलते। उदाहरणतः बांधव्य सूचक शब्द/पद भाई के लिए बड़े–छोटे का भेद बताना होगा। लेकिन कन्नड में बड़े भाई के लिए 'अण्ण', छोटे भाई के लिए 'तम्म' और तेलुगु में क्रमशः तम्मुडु शब्द हैं। सहोदर जैसे शब्द कन्नड़ में नहीं जिसमें दोनों आ जाते हैं और सहोदर– सह + उदर मिलकर बना संस्कृत पद है।

जाति व्यवस्था रहित समाज के संदर्भ में जैसे सामाजिक आचार विचारों के विषय को अनूदित करना बड़ा कठिन है, ऐसे में परिभाषा विधान अथवा पाद–टिप्पणी देना एक मात्र विकल्प है। कन्नड़ का एक उदाहरण : कन्नड़ के, 12वीं शती के क्रांतिकारी पुरुष बसवेश्वर की उक्ति 'कायकवे कैलास– का अनुवाद अनुवादकों ने 'कर्म ही कैलास' के रूप में किया है। लेकिन भक्ति भाव से काया, वाचा, मनसा किया जाने वाला कर्म ही 'कायक' है। अतः इसी शब्द का प्रयोग सार्थक होता है। इसी तरह कन्नड़ शब्द हैं–सिडी खेलना, संस्कार (यू.आर. अनंतमूर्ति का उपन्यास), करट हिडी, मलयालम शब्द हैं–तरवाड, अप्लन; कोंकणी शब्द धांला आदि। तेलुगु में जीतगाडु, पालेगाडु जैसे शब्द हैं। बंधुआ मजदूर को जीतमाडु कहते हैं और पालेमाडु शब्द का एक इतिहास है। अंग्रेजी के आने से पूर्व मन्नो नामक अधिकारी के आने के पहले किसान के नाम पर जमीन नहीं होती थी। जमींदार की जमीन हुआ करती थी। जमींदारी पद्धति से पूर्व पालेगाडु पद्धति थी। इसमें एक आदमी स्वतंत्र शासक के रूप में कुछ गांवों को अपने कब्जे में लेकर शासन करता था। आम जनता उसके मातहत काम करती थी और शासक आदमी हर तरह से उनकी देखभाल करता था। इसे 'पालेगाडु' कहते हैं। ऐसे शब्दों का दूसरी भाषा में अनुवाद असंभव है।

टिप्पणी

इस प्रकार के शब्द तथा पदों की एक सूची ही दी जा सकती है जो इस प्रकार है–

कन्नड़	तेलुगु
सिट्टु (गुस्सा)	आग्रटमु (बिनती)
शिक्षे (सजा)	शिक्षा (बिद्या)
उपन्यास (भाषण)	उपन्यासमु (हिंदी में उपन्यास एक विधा है)
वगरू (फल में मीठापन–खट्टापन दोनों का होना)	वगरू (हिंदी में शब्द नहीं)
कसगाइ (फल बनने की स्थितिवाला कच्चा फल)	कुसुरगाय (हिंदी में शब्द नहीं) दोरवयसु (लड़की और युवती के बीच की अवस्था लेकिन युवती के समीप की अवस्था)

अनेकार्थी शब्द :

ताली – मंगलसूत्र (दूसरा अर्थ रुकिए के अर्थ में आता है और सहिष्णुता का भाव होता है। हिंदी में ऐसा शब्द नहीं है।)

मुहावरे और कहावतें–

शब्दश : अनुवाद और समानार्थी अनुवाद मुहावरे और कहावतों के संदर्भ में कठिन होता है। उदाहरण :

हिंदी	कन्नड़
जले पर नमक छिड़कना	गायद मेले बरे एलेदंते (घाव पर दागना)
आंखें चार होना	चश्चा आना
चुल्लू भर पानी में डूब मरना	इसका अनुवाद कन्नड़ में संभव नहीं।

कन्नड़ के–

अवन मूगु मेलाइतु – (हिंदी में शब्दशः अर्थ उसकी नाक ऊपर हो गई) लेकिन वह आगे हो गया, विजयी हो गया के रूप में अर्थ लेना पड़ता है।

कै केसरादरे बाइ मोसरु – (हाथ कीचड़ से सना होगा तो मुंह में दही होगा) इसका हिंदी में कठिन मेहनत से अच्छा फल मिलेगा अर्थ लेकर अनुवाद करना पड़ता है।

हर प्रदेश के लोकगीत (कन्नड में गीगी पद, लावणी), लोक नृत्य गायन, नाटक (कन्नड़ के यक्षगान, सण्णाट, दोड्डाट), लोक नृत्य (कन्नड़ के वीरगासे कुणित आदि) का अनुवाद करते समय शब्दों को वैसे ही जोड़कर व्याख्या करनी पड़ती है।

टिप्पणी

• धार्मिक संस्कृति

हरेक जनजाति, समाज का अपना विशिष्ट धार्मिक विधान होता है। ये धार्मिक रीति–नीतियां बड़ी समस्याएं पैदा करती हैं। क्योंकि हरेक धार्मिक शब्द के लिए अपनी ही एक परंपरा होती है। यू.आर. अनंतमूर्ति जी का उपन्यास 'संस्कार' को दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय शव संस्कार के अर्थ के साथ (उपन्यास में नारायाणप्प के शव संस्कार), सुधार (प्राणेशाचार्य के जीवन के संदर्भ में) तक व्यापक अर्थ देना कठिन होता है। अतः इसे यथावत रखकर विवरण देना अनिवार्य है।

इस प्रकार संस्कृति विषयक, अनुवाद की कठिनाइयों को सहजता से दूर करने के लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं की संस्कृति का ज्ञान होना एक आवश्यक शर्त है। मूल का अनुवाद लक्ष्य भाषा में समूचे रूप में संभव नहीं हो सकता। कई बार अनुवाद करते समय अर्थ संकोच, अर्थोत्कर्ष, अर्थापकर्ष, अर्थ विस्तार, अर्थादेश और अर्थांतर होता है। उपर्युक्त संदर्भों में स्थानांतरण सिद्धांत और समांतर पुनः निर्माण का सिद्धांत, व्याख्यात्मक एवं वर्णनात्मक सिद्धांत को अपनाते हुए कथ्य और शिल्प के स्तर पर क्षति पहुंचाए बिना मूल सामग्री के संदेश व संवेदना के रूपांतर के साथ उसकी प्रेषणीयता की रक्षा करना अनिवार्य है। यही नहीं आज के वैश्वीकरण के संदर्भ में केवल दक्षिण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में मात्र नहीं, विश्व की अन्य भाषाओं के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। अतः अनुवाद का योगदान निस्संदेह महत्वपूर्ण है।

2. भाषा वैज्ञानिक चुनौतियां

लिंग संबंधी :

कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, कोडगु में एकवचन में तीन लिंग हैं, बहुवचन में अलिंगन बहुवचन तथा नपुंसक लिंग बहुवचन के रूप में दो ही लिंग होते हैं। तेलुगु में एकवचन में पुल्लिग और पुल्लिगेतर के रूप में दो लिंग हैं। बहुवचन में अलिंग बहुवचन तथा नपुंसक लिंग बहुवचन दो हैं। आधुनिक मलयालम में लिंग तत्व की अन्विति नहीं मानी जाती। हिंदी में दो ही लिंग हैं। इस विलक्षणता के कारण अनुवाद कार्य में कदम–कदम पर बाधा उत्पन्न होती है।

लिंग व्याकरण में अपनी सत्ता रखती है। इसलिए वह एक व्याकरणिक कोटि है और इसे व्याकरणिक लिंग माना जाता है। और एक लौकिक जगत में अपनी सत्ता रखनेवाला प्राकृतिक लिंग (Sex) है जो व्याकरणिक लिंग के अनुरूप भी हो सकता है या अलग भी हो सकता है। भाषाओं में प्राणिवाचक शब्द प्राकृतिक लौकिक जगत में पुल्लिग अथवा स्त्रीलिंग होते हैं। खासकर मानव समुदाय के संदर्भ में। और कभी–कभी मानवेतर प्राणिवाचक शब्द पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग भी होते हैं। तीसरी स्थिति है–अचेतन शब्द की, जो अकसर नपुंसक लिंग में होते हैं। लेकिन हिंदी के संदर्भ में अचेतन शब्द पुल्लिग या स्त्रीलिंग में वर्गीकृत हैं। तमिल, तेलुगु, तुलु, कोडगु में एकवचन के रूप में दो ही लिंग होते हैं। तेलुगु, नायिकी आदि में एकवचन में पुल्लिग और पुल्लिगेतर के रूप में दो ही लिंग हैं। बहुवचन में अलिंग बहुवचन तथा नपुंसक लिंग बहुवचन दो हैं। गोडा, कोंड, कूयि और कूबि आदि में पुल्लिग और पुल्लिगेतर दो ही लिंग हैं। हिंदी में दो ही लिंग हैं,

टिप्पणी

पुल्लिग और स्त्रीलिंग। कुछ भाषाओं में (जैसे हिंदी) मानवेतर प्राणिवाचक तथा अचेतन शब्दों को यादृच्छिक ढंग से पुल्लिग, स्त्रीलिंग में रखा गया है। हिंदी में मानवेतर प्राणिवाचक शब्दों का तथा अचेतन शब्दों का मानवीकरण किया जाता है।

हिंदी–कन्नड में लिंग व्यवस्था :

प्राणिवाचक, लौकिक तथा प्राकृतिक जगत के शब्द :

मानव जगत पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग के शब्द :

हिंदी – पिता, लड़का, छात्रा, दीदी

कन्नड – तंदे, हुडुग, विद्यार्थिनी, अक्क

मानवेतर जगत के शब्द :

हिंदी – कुत्ता, कुतिया

कन्नड़ – नाई

अचेतन शब्द :

हिंदी	–	दूध, पेड़, हाथ	मेज, नाक, दीवार	हालु, मर कै
कन्नड़	–	–	–	मेजु, मूगु, गोडे

मलयालम में लिंग व्यवस्था :

मलयालम में संज्ञा शब्दों की लिंग व्यवस्था अर्थ पर आधारित है। लिंग तीन हैं–पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग के अतिरिक्त वचन आधारित सलिंग, अलिंग और पूजक के प्रकार भी मिलते हैं (इसका विवरण वचन संदर्भ में दिया गया है)। उदाहरण :

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	नपुंसक लिंग
अवन्	अवल	अतुँ (वह)
इवन्	इवल	इतुँ (यह)
एवन्	एवल	एतुँ (जो/कौन)

तमिल में लिंग व्यवस्था :

मलयालम की लिंग व्यवस्था का मूल ही तमिल है। तमिल में दो प्रकार हैं–

उयरतिणै (उच्च वर्गीय शब्द) – राानन्
मनितन (आदमी)
चंतिरन् (चंद्र)
सीतै (सीता)
पेण (स्त्री)
अरशि (रानी)

टिप्पणी

अहिणै (निम्न वर्गीय शब्द) – मादु (गाय)
मरम (पेड़) आदि।

तेलुगु में लिंग व्यवस्था : दो ही लिंग हैं–सर्वनाम, संज्ञापदों के उदाहरण :

यह (He) – वाडु, राम–रामुडु पुल्लिग

वह (She) – अदी/आमे, सीता–सीते नुपंसक लिंग

यह, वह (it) – अदी/इदी, पेड़–कोडुकु नपुंसक लिंग

ऐसी स्थिति में अर्थ भिन्नता अनुवादक को कठिनाई में डालती है। चेतन का अचेतन में तथा अचेतन का चेतन में परिवर्तन शारदा मां का गला काटना जैसा है। इस विलक्षण स्थिति में अनुवाद कार्य में बाधाओं का होना सहज है।

वचन संबंधी :

सम्मानसूचक बहुवचन का प्रयोग यद्यपि सलिंग एक वचन के संदर्भ में हिंदी में भी होता है, फिर भी परस्पर अनुवाद के समय इनका ज्ञान कुशल अनुवादक के लिए आवश्यक है।

वचन लिंग की जैसी ही एक व्याकरणिक कोटि है। वचन व्यवस्था लौकिक जगत की संख्या पद्धति से अलग भी होती है। यह अनिवार्य नहीं कि बहुवचन के रूप का हमेशा एक से अधिक संख्या का बोध हो। कन्नड़–हिंदी के कुछ बहुवचन सर्वनामों से दो या दो से अधिक कोटियों का बोध होता है और पूजक/आदरार्थ/सम्मानसूचक और कुछ विशेष शब्दों के एकवचन का भी बहुवचन और उसकी अर्थव्यवस्था भिन्न होती है। हिंदी, कन्नड़, मलयालम, तमिल में दो वचन हैं। लेकिन सम्मान सूचक बहुवचन का प्रयोग भी अलग–अलग प्रत्यय, शब्दांश जोड़कर किया जाता है। सलिंग बहुवचन, अलिंग बहुवचन और पूजक बहुवचन की प्रवृत्ति द्रविड़ भाषाओं में विशेष रूप में पाई जाती है। जब समान लिंग के बहुवचन का प्रयोग होता है तब शब्द के बहुवचन विधान होता है और मिश्र लिंग के बहुवचन का प्रयोग होता है तो विधान अलग होता है।

हिंदी : दो वचन	एकवचन	बहुवचन
	लड़का	लड़के (–ए)
	लड़की	लड़कियां (–इयां)
	माला	मालाएं (एं)
	पत्ता	पते (–ए)
	पेड़	पेड़

विशिष्ट शब्दों के पूजक बहुवचन :

उदाहरण : आपके **दर्शन हो गये।**
गुरुजी आ **गये।**
वे/**आप बड़े हैं।**

टिप्पणी

कन्नड़ : दो वचन

एकवचन	बहुवचन
हुडुग	हुडुगरु (–ए)
हुडुगि	हुडुगियरु (–यरु)
माले	मालेगलु (गलु)
मर	मरगलु (–गलु)

पूजक बहुवचन :

गुरुगलु बंदरु। (गलु, रु)

नीऊ दोड्डवरु। (अरु)

मलयालम–दो वचन :

एकवचन	बहुवचन
बालन्	बालन्मार
अम्म् (मां)	अम्ममार्
ओरु रोट्टी (एक रोटी)	मुन्नु रोट्टी (तीन रोटियां)
ओरू पैसा (एक पैसा)	पतु पैसा (दस पैसे)

पूजक बहुवचन :

सम्मान सूचक बहुवचन प्रत्यय शब्दांश लगाकर पूजक बहुवचन बनाया जाता है।

मारार्, चेट्टियार, गोपालन्, अवर्कलू।

तमिल : दो वचन :

तमिल में वचन से जुड़ी लिंग व्यवस्था है। विवेकयुक्त प्राणी को उयर्तिणै में विवेकरहित प्राणी को तथा अचेतन वस्तु को अरिरणै में रखा गया है। उयर्तिणै के संज्ञा शब्दों के दो भेद–स्त्रीलिंग, अलिंग।

उदाहरण : अस्वन (राजा) – अरचरकल् (राजा लोग)

कन्नि (कन्या) – कन्नियरकल् (कन्याएं)

अलिंगन बहुवचन–

एकवचन	बहुवचन
चिरुवन (लड़का)	चिरुवर्कल्
चिरुमि (लड़की)	

पूजक बहुवचन

ताय् (मां) – तायर

पुलवन् (विद्वान) – पुलवर्

टिप्पणी

तेलुगु : दो वचन :

एकवचन	बहुवचन
लड़का–अब्बाइ,	लड़के–अब्बाइलु,
हाथी–एनुग,	हाथी (ब.व) – एनुगलु

संज्ञा के वचन की कठिनाइयां भी देखते ही बनती हैं।

हिंदी – शारदा की आंखों में आंसू उमड़ आए।

मलयालम – शारदयुटे कण्णिल कण्णुनीर निरंञ्ञु।

कन्नड – शारदेय कण्णुगलल्लि कण्णीरु तुंबिबंदवु।

इस प्रकार वचन व्यवस्था की इस भिन्नता के कारण अनुवाद में अर्थांतर होने की संभावना रहती है। एकवचन का बहुवचन में और बहुवचन के एकवचन में परिवर्तित होने की संभावना होती है।

3.8 अनुवाद की भूमिका

हिंदी की प्रयोजनीयता के संदर्भ में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। डॉ. पूरनचंद टंडन के मतानुसार प्राचीन युग में अनुवाद को दूसरे दर्जे का कार्य कहा जाता था। अनुवाद को 'पाप' या 'छल' भी कहा जाता था किंतु आज पूरे विश्व की दृष्टि अनुवाद के प्रति बदल रही है। 'भाषा–प्रौद्योगिकी' के इस युग ने भाषाओं के सदुपयोग तथा उनके कार्यान्वयन के नए एवं विविध आयाम उजागर किए हैं। विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों के इस देश में न जाने क्यों हमने भाषाओं को अपनी ताकत नहीं बनाया। इन तमाम भाषाओं की ताकत को हमने पहचाना भी नहीं। बल्कि इन भाषाओं को अपनी कमजोरी बनाकर हम भाषायी–संघर्ष में डूबे रहे। विदेशियों ने जब हमारे ही देश में अपने व्यवसाय को जमाने के लिए, हमारे बाजारों पर कब्जा करने के लिए हमारी ही भाषाओं का सदुपयोग किया तो हमें भी लगा कि हम अनुवाद की ताकत को पहचानें। वास्तव में 'अनुवाद' इस नए युग और नई शताब्दी का सर्वाधिक क्रांतिकारी आयाम बनेगा। आज अनुवादक का महत्व मूल लेखक से अधिक भले ही न हो, पर उससे कम भी नहीं है। एक समय था जब अनुवादक को महत्व दिया ही नहीं जाता था। उसका नाम, उसका मानदेय, उसका योगदान नगण्य या गौण समझा जाता था और यह धारणा थी कि असफल साहित्यकार 'अनुवादक' बन जाता है। किंतु आज स्थितियां इससे ठीक विपरीत हैं। अनुवादकों के वेतनमान भी अब पहले की तुलना में सम्मानजनक हुए हैं। अनुवादकों को नाम भी मिलने लगा है। मानदेय की राशि भी अधिकांशतः अच्छी हो गई है। अनुवादकों का सामाजिक, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय महत्व भी बढ़ा है।

डॉ. हरीश सेठी के मतानुसार भाषाओं में स्नातक एवं स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम करने वाले युवाओं के लिए 'अनुवाद' एक नई आशा बनकर उभरा है। न केवल भाषाओं को अध्येता–युवा, अपितु दूसरे विषयों और अनुशासनों में कार्य करने वाले युवा भी इस रोजगारोन्मुख क्षेत्र की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। अनुवाद अब केवल माध्यम नहीं रहा।

टिप्पणी

'अनुवाद' आज एक स्वतंत्र विषय भी बन गया है। पहले अनुवाद 'लोकहित' या 'जनहित' के लिए किया जाता था, किंतु उसका प्रसार बहुत कम था। आज अनुवाद की भूमिका 'विश्व कुटुंबकम' भी भारतीय अवधारणा को साकार करने की तो है ही, साथ ही रोजी–रोटी के लिए, रोजगार और व्यवसाय के लिए, कलात्मकता तथा निपुणता की पुष्टि के लिए तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय निर्माण के लिए भी उल्लेखनीय बन गई है।

डॉ. सुरेश सिंहल का मानना है कि हमारे जो युवा विज्ञान, तकनीक एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपना 'कैरियर' नहीं चुनते या नहीं चुन पाते, आज अत्यंत आवश्यक है कि उनके सामने भी रोजी–रोटी के पर्याप्त अवसर हों तथा वे अवसर सम्मानजनक एवं संतोषजनक भी हों। हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, पंजाबी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगला या अन्य भारतीय भाषाओं को तथा इनके साहित्य को, औपचारिक स्तर पर अथवा उपाधि हेतु पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों के लिए तो रोजगार की दृष्टि से आज के समाज में निराशा ही हाथ लगती है, जबकि भाषा और साहित्य आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले सबसे अधिक सशक्त उपकरण एवं माध्यम माने जाते हैं। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की स्थिति ही रही है। लेकिन केवल भाषा और साहित्य के अध्येताओं की निराशा का ही प्रश्न नहीं, आज तो कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में राजनीतिशास्त्र, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान तथा बौद्ध–अध्ययन जैसे विषयों के अध्येताओं के सामने भी रोजी–रोटी जुटाने की चुनौती खड़ी हो गई है।

भारतीय भाषा विभाग हो या योरोपियन भाषाओं का विभाग, अरेबिक और पार्शियन भाषाओं के विभाग हों या जापानी, चीनी, जर्मनी, रूसी, स्पैनिश, अफ्रीकी आदि अन्य अनेक भाषाओं को लिखने वाली संस्थाएं–सभी के समक्ष भाषाओं को प्रौद्योगिकी में बदलने तथा उनके अनुप्रयोग को प्रोन्नत करने की चुनौती खड़ी हो गई है। अब तो विज्ञान के विभिन्न पाठ्यक्रम भी प्रयोग और अनुप्रयोग की तरफ उन्मुख हो रहे हैं। वित्त, वाणिज्य, पत्रकारिता, कम्प्यूटर, व्यवस्थापन, फार्मेसी, शिक्षा–शास्त्र, पुस्तकालय–विज्ञान, अर्थशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, इंजीनियर, इलेक्ट्रॉनिक्स तथा बिजनेस स्टडीज आदि में रोजगार की कुछ संभावनाएं अभी शेष हैं। विधि, गणित, ऑप्रेशन रिसर्च, संगीत, कला, समाज–कार्य आदि क्षेत्रों में भी अब रोजगार की संभावनाएं क्षीण–सी हो गई हैं। अनुवाद इन सभी विषयों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ा है। अनुवादक यदि ईमानदार, एकनिष्ठ तथा संकल्प–जीवी हो तो नौकरी में रहकर भी और नौकरी में रहे बिना भी खूब पैसा कमा सकता है। आज बैंकों में, रेलवे में, पत्रकारिता में, मीडिया के सभी क्षेत्रों में, संसद में, राजदूतावासों में, विज्ञापन–लोक में, शिक्षा क्षेत्र में, वित्त, वाणिज्य और विज्ञान के क्षेत्रों में, तकनीक एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में, बीमा, कार्यालय, प्रशिक्षण संस्थान, पाकशास्त्र, सज्जा–शास्त्र, सौंदर्य–शास्त्र, पर्यटन, विधि, कम्प्यूटर, राजनीति, व्यवसाय, पर्यावरण तथा इसी तरह के अन्य क्षेत्रों में अनुवाद का बोलबाला है। यही नहीं आज किसी भी क्षेत्र और किसी भी नौकरी या व्यवसाय में जाएं, जितनी अधिक भाषाएं जानते होंगे उतने ही अधिक सफल हो सकेंगे। इसका भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय अनुवाद ही है। अनुवाद वास्तव में आज के युग और आज के दौर की प्राण–शक्ति है। अनुवाद में 'एकवर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा', 'एकवर्षीय निष्णातोत्तर डिप्लोमा' तथा 'एक वर्षीय एडवांस डिप्लोमा' जैसे महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम तो चल ही रहे हैं

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

9. अनुवादक को लक्ष्य भाषा का जितना कम ज्ञान होगा अनुवाद के उतने ही..... होने की संभावना बढ़ जाएगी।

सही/गलत बताइए

10. स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा का विषय के अनुरूप समुचित ज्ञान और विषय का ज्ञान न रखने वाला अनुवादक भी एक अच्छे अनुवारक की कसौटी पर खरा उतर सकता है।

टिप्पणी

साथ ही कुछ संस्थान अथवा विश्वविद्यालय तो अब अनुवाद में एम.ए., एम.फिल, पीएच.डी. की उपाधि भी प्रदान कर रहे हैं। स्पष्ट है कि आज अनुवाद एक स्वतंत्र 'अनुशासन' एवं एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है।

गतिविधि

अनुवाद की प्रक्रिया पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

कुछ संस्थान एवं विश्वविद्यालय अब अनुवाद में एम.एम., एम.फिल. एवं पीएच.डी. की उपाधि प्रदान कर रहे हैं।

3.9 सारांश

अनुवाद की कोई सर्वसम्मत निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है। वास्तव में, अनुवाद मूल भाषा में अभिव्यक्त विचार, वक्तव्य रचना अथवा सूचना साहित्य को यथासंभव मूल भावना के समानांतर बोध एवं संप्रेषण के धरातल पर जिसमें अनुवाद किया जाए उसे अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया है। अनुवाद की प्रक्रिया जितनी जटिल है उसको परिभाषित करना भी उतना ही जटिल है। अनुवाद का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज विश्व एक इकाई हो गया है। ऐसी स्थिति में हर क्षण यह जानने की आवश्यकता होती है कि किसने क्या कहा, किसने क्या लिखा? यह सब अनुवाद के द्वारा ही संभव है।

अनुवादक स्रोत भाषा के कथ्य एवं कथन भंगिमा को लक्ष्य भाषा में समतुल्य एवं निकटतम रूप में अभिव्यक्त करने के लिए जिस क्रिया विधि से गुजरता है उसे अनुवाद की प्रक्रिया कहते हैं। अनुवाद प्रक्रिया पर जिन विद्वानों ने गंभीरतापूर्वक चिंतन मनन किया है उनमें नायडा और न्यूयार्क के विचार अधिक चर्चित हैं। नायडा ने अनुवाद को एक वैज्ञानिक तकनीक के रूप में स्वीकार किया है। इनके अनुसार अनुवाद भाषा विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष है।

अनुवाद में मूलभूत इकाई है– मूल पाठ। इस मूल पाठ का बोधन तथा उसकी लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति के बीच की सैद्धांतिक प्रक्रिया ही अनुवाद की प्रक्रिया है। अनुवाद की प्रक्रिया में अनुवादक का विशेष ध्यान मूल पाठ की विषय वस्तु, विषय अभिव्यक्ति की शैली, मूल पाठ की व्याकरणिक संरचना तथा पाठ के विषयगत सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ आदि की ओर रहता है। अनुवादक मूल पाठ को समझकर लक्ष्य पाठ में अंतरित करने हेतु उसे विश्लेषित करता है। उसके बाद मूल पाठ की विषय वस्तु, भाव तथा विचारों के समतुल्य लक्ष्य पाठ के विचार, भाव तथा शैली आदि का चयन करने की प्रक्रिया संपन्न होती है। मानवीकृत अनुवाद में विशेषज्ञ अनुवादक पाठ का अनुवाद उस भाषा में करता है जिस भाषा में अनुवाद करने का उससे अनुरोध किया जाता है। हम मानव अनुवाद पर भरोसा कर सकते हैं कि वह गलतियों से मुक्त होगा। मानव अनुवादक एक भाषा से लिखित शब्दों को लेता है और मशीन की बजाय मौखिक

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

11. अनुवाद की चुनौतियों के दो प्रमुख पहलू हैं–भाषावैज्ञानिक चुनौती और..... चुनौती।

सही/गलत बताइए

12. संस्कृत विषयक अनुवाद की कठिनाइयों को सहजता से दूर करने के लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं की संस्कृति का ज्ञान होना एक आवश्यक शर्त है।

टिप्पणी

रूप से दूसरी भाषा में अनुवाद करता है। मानव अनुवादक द्वारा आमतौर पर लिखित भाषा से संबधित शब्दों और व्याख्या का दूसरी भाषा के सही शब्दों और उचित रूपरेखा में अनुवाद किया जाता है। मशीनी अनुवाद के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि मुख्य रूप से दो मुख्य विधियां प्रयोग की जाती रही हैं– 1. नियम–आधारित मशीनी अनुवाद 2. कार्पोरा आधारित मशीनी अनुवाद। साहित्यिक अनुवाद की भांति मशीनी अनुवाद के लिए दो भाषाओं का ज्ञान, विषय की जानकारी और अभ्यास आवश्यक हैं। दोनों ही प्रकार के अनुवादों में भाषा का संरचनात्मक ढांचा एक–सा ही रहता है। स्रोत और लक्ष्य भाषा में संरचनात्मक घटकों का विश्लेषण व्यतिरेक (Contrast) की पहचान और उपयुक्त पर्याय की तलाश दोनों प्रकार के अनुवाद में सामान्य ढंग से होती है।

किसी एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण अंतःभाषिक अनुवाद कहलाता है। सीमित संदर्भ में स्रोतभाषा और लक्ष्य भाषा दोनों भाषाओं के बीच होनेवाला अनुवाद वास्तव में अंतरभाषिक अनुवाद अथवा भाषांतर ही है। किसी भी भाषा का परिष्कृत स्वरूप उसके साहित्य में प्रयुक्त होता है। लेखन की अन्य प्रणालियों के साहित्य जैसे तकनीकी, विधि, वाणिज्य, बैंकिंग, परिवहन आदि में भाषा का वह संस्कार प्रकट नहीं हो पाता जो साहित्य में होता है। साहित्य, किसी देश के चिंतन को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाता है। संस्कृति, सभ्यता और विरासत सभी को अक्षुण्ण बनाए रखने का काम साहित्य करता है। साहित्यिक अनुवाद की कोई निश्चित तकनीक नहीं है फिर भी कुछ व्यावहारिक और सैद्धांतिक मान्यताएं हैं जिनका अनुगमन करके अनुवाद करने से उसमें प्राणवत्ता आती है।

जनसंचार माध्यमों का क्षेत्र अनुवाद की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके अंतर्गत प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से संबंधित सामग्री का अनुवाद सम्मिलित है। वास्तव में, जनसंचार के माध्यमों की सामग्री का अनुवाद आम आदमी से संबंध रखता है। इस कारण इसकी भाषा सरल, स्पष्ट और सहज ही होनी चाहिए।

कार्यालयी अनुवाद से तात्पर्य है– कार्यालय से संबद्ध साहित्य का अनुवाद। भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अंतर्गत हिंदी को देवनागरी लिपि में राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने के पश्चात् से राजकाज में सक्षम बनाने तथा प्रशासनिक अंग्रेजी भाषा के साथ स्थान दिलाने के लिए यह आवश्यक थी कि तेजी से हिंदी को प्रशासनिक कार्य के विविध स्तरों, रूपों पर तैयार किया जाए ताकि सभी संवैधानिक तथा अन्य साहित्य को हिंदी में प्रस्तुत किया जा सके। कार्यालयी साहित्य का हिंदी में अनुवाद द्रुतगति से आरंभ हुआ।

साहित्येतर विषयों के अनुवाद के क्षेत्र में कार्यालयी अनुवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। कार्यालयी साहित्य का अनुवाद साहित्यिक अनुवाद से नितांत भिन्न होता है। चूंकि दोनों प्रकार के अनुवाद की सामग्री की प्रकृति में काफी अंतर होता है। इसलिए इन दोनों प्रकार

टिप्पणी

के अनुवाद की समस्याओं में भी अंतर होना स्वाभाविक ही है। साहित्यिक अनुवाद की समस्याएं पुनः सृजन के स्तर पर प्रस्तुत होती हैं; जबकि कार्यालयी अनुवाद की समस्याएं प्रतिस्थापन के स्तर पर अनुवादक के सामने आती हैं। दोनों प्रकार के अनुवाद में भाषा का स्वरूप भी बदल जाता है। साहित्यिक अनुवाद में भाषा की प्रयुक्तियां सृजनात्मक, सांस्कृतिक, व्यंजनात्मक आदि हुआ करती हैं; जबकि कार्यालयी अनुवाद में भाषा की प्रयुक्तियां मुख्यतः पारिभाषिक, अभिधामूलक एवं सुनिश्चित अर्थ रखने वाली होती हैं।

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में एक भाषिक प्रतीक होता है और दूसरा भाषेतर प्रतीक। अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में भाषिक प्रतीक के कथ्य का अंतरण भाषेतर प्रतीक में होता है। किसी मार्ग पर 'खतरे की चेतावनी' भाषा के माध्यम से देने के बजाय 'खोपड़ी का चिह्न' लगाया जाता है। सड़क पर वाहनों को 'रोकने' या 'चलने' के लिए भाषायी ध्वनियों के माध्यम से बताने के बजाय 'लाल बत्ती' का प्रयोग होता है। अतः 'खोपड़ी' का चिह्न, 'लालबत्ती', 'हरी बत्ती' आदि भाषेतर प्रतीक हैं। इन भाषेतर प्रतीकों का रूपांतरण भाषिक प्रतीकों से हुआ है, जो अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद के उदाहरण हैं।

एक अच्छे अनुवाद में साहित्यिक, समाचार–संबंधी या वैचारिक अनुवाद 'शब्द–प्रति–शब्द' नहीं होने चाहिए। मूल कथन में 'कुछ' भी जोड़ना या छोड़ना नहीं जाना चाहिए। खास तौर पर तथ्यपरक आंकड़ों से युक्त अथवा सुनिश्चित नियमों से संबंधित 'औपचारिक' कोटि की सामग्री के अनुवाद ज्यों के त्यों ही प्रस्तुत करने चाहिए। अनुवाद की भाषा में प्रसाद गुण अर्थात सहजता और सरलता होनी चाहिए तथा वाक्य छोटे व सरल होने चाहिए। अनुवाद की भाषा कृत्रिम व अधिक संस्कृतनिष्ठ नहीं होनी चाहिए। अच्छे अनुवाद की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसको पढ़ने में मूल कृति जैसा ही आनंद आए, अनुवाद, अनुवाद न लगे, मूल जान पड़े। अनुवादक को स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा और विषय का ज्ञान होना चाहिए। इनके ज्ञान के बिना एक अनुवाद अच्छा अनुवादक सिद्ध नहीं हो सकता।

अनुवाद की चुनौतियों के दो प्रमुख पहलू–भाषा वैज्ञानिक चुनौती और संस्कृति विषयक चुनौती हैं। भाषा वैज्ञानिक चुनौती में लिंग, वचन संबंधी समस्याएं आती हैं। संस्कृति अनुवाद कार्य में अहम भूमिका निभाती है। संस्कृति भिन्नता की कठिनाई अनुवाद के अलग–अलग प्रकार के अनुसार भिन्न–भिन्न हो जाती है। वैज्ञानिक तकनीकी साहित्य का अनुवाद हो तो संस्कृति की समस्या उतनी नहीं होती। सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद में विशेष रूप से ये समस्याएं आती हैं। क्योंकि सृजनात्मक साहित्य संस्कृति विशिष्ट का प्रतिबिंब होता है। एक संस्कृति में जो है और दूसरी संस्कृति में अगर वह नहीं है तो उस सांस्कृतिक अंश को उस भाषा में कैसे अनूदित करें? यह समस्या सामने आती है।

'अनुवाद' आज एक स्वतंत्र विषय भी बन गया है। पहले अनुवाद 'लोकहित' या 'जनहित' के लिए किया जाता था, किंतु उसका प्रसार बहुत कम था। आज अनुवाद की भूमिका 'विश्व कुटुंबकम' भी भारतीय अवधारणा को साकार करने की तो है ही, साथ ही रोजी–रोटी के लिए, रोजगार और व्यवसाय के लिए, कलात्मकता तथा निपुणता की पुष्टि के लिए तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय निर्माण के लिए भी उल्लेखनीय बन गई है।

टिप्पणी

3.10 मुख्य शब्दावली

- **ध्वन्यात्मक** : ध्वनि से युक्त
- **अक्षुण्ण** : समूचा, अखंडित
- **प्रकांड** : श्रेष्ठ
- **अनूदित** : अकथनीय
- **संप्रेषित** : संप्रेषण किया हुआ
- **प्रेषणीयता** : यह गुण कि कोई कृति पाठक तक पहुंचती है
- **निर्विवाद** : बिना विवाद का
- **वाङ्मय** : वाक्यात्मक
- **सौष्ठव** : दक्षता, उत्तमता

3.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुवाद का अर्थ और परिभाषाएं लिखिए।
2. अनुवाद के सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए।
3. मानवीकृत अनुवाद का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. अंतःभाषिक एवं अंतरभाषिक अनुवाद पर प्रकाश डालिए।
5. अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद का वर्णन कीजिए।
6. अनुवादक की कसौटी पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुवाद के स्वरूप अथवा प्रकार एवं प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. अनुवाद की विशेषताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. मशीनी अनुवाद, इसकी विशेषताओं और प्रविधियों पर प्रकाश डालिए।
4. साहित्यिक अनुवाद के सिद्धांत एवं व्यवहार का वर्णन कीजिए।
5. कार्यालयी सामग्री के अनुवाद एवं समस्याओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
6. अनुवाद में, संस्कृति संबंधी समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

3.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. अनुवाद
2. सही
3. गलतियों
4. गलत
5. अंतःभाषिक
6. सही
7. कुछ
8. सही
9. त्रुटिपूर्ण
10. गलत
11. संस्कृत विषयक
12. सही

3.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. राजकमल बोरा, *अनुवाद क्या है,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, *अनुवाद कला,* प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली

टिप्पणी

इकाई 4 कम्प्यूटर एवं मीडिया लेखन

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 समाचार लेखन
  4.2.1 समाचार लेखन के गुण व विशेषताएं
  4.2.2 समाचार के प्रकार
  4.2.3 समाचार लेखन की भाषा–शैली
  4.2.4 समाचार के स्रोत
4.3 रेडियो लेखन
  4.3.1 बोली जाने वाली भाषा का लेखन
  4.3.2 कार्यक्रम लेखन
  4.3.3 रेडियो विज्ञापन लेखन
  4.3.4 रेडियो समाचार लेखन
4.4 विज्ञापन लेखन
  4.4.1 विज्ञापन प्रक्रिया
  4.4.2 विज्ञापन लेखक की विशेषताएं
  4.4.3 विज्ञापन की भाषा
  4.4.4 विज्ञापन का वर्गीकरण
  4.4.5 विज्ञापन का महत्व
4.5 फीचर लेखन
  4.5.1 फीचर लेखन के सहायक तत्व
  4.5.2 फीचर लेखन के प्रमुख चरण
4.6 पटकथा लेखन
  4.6.1 दृश्यों के लिए लेखन
  4.6.2 वीडियो के लिए लेखन
  4.6.3 शब्दों के लिए संदर्भ दृश्य
  4.6.4 शोध, दृश्य और उत्पादन पटकथा
  4.6.5 पटकथा लेखन : फिल्म
4.7 कम्प्यूटर
  4.7.1 कम्प्यूटर के विविध उपयोग
  4.7.2 कम्प्यूटर की विशेषताएं
  4.7.3 कम्प्यूटर की सीमाएं
  4.7.4 कम्प्यूटर शब्दावली
4.8 मीडिया
  4.8.1 जनसंचार माध्यमों का वर्गीकरण
  4.8.2 संचार के मुख्य कार्य
  4.8.3 संचार क्रिया के प्रमुख तत्त्व
  4.8.4 जनसंचार माध्यमों की उपयोगिता
  4.8.5 जनसंचार माध्यमों का स्वरूप
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

टिप्पणी

4.0 परिचय

जहां तक समसामयिक घटनाक्रम विषयक लेखन का प्रश्न है, यह इस बात के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है कि पत्रिका साप्ताहिक है, पाक्षिक है या मासिक। इस संदर्भ में समाचार क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। वर्तमान युग में समाचार की व्याख्या इतनी व्यापक हो गई है कि उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है। समाचार लेखन एक कला है। कोई भी घटना जो लोगों पर प्रभाव डालती है, वह समाचार बन जाती है। समाचार लेखन सृजनात्मक लेखन से अलग होता है, क्योंकि साहित्य लेखन में सबसे पहले प्रस्तावना होती है।

मीडिया उद्योग जिसमें विभिन्न मीडिया के लिए सामग्री लेखन में अच्छे कौशल की आवश्यकता होती है, में बड़ी संख्या में नौकरियों के कारण वर्तमान में 'मीडिया लेखन' शब्द का उपयोग किया जाने लगा है। मीडिया के लिए लेखन की आवश्यकता और मांग को समझने के लिए लेखन के मूल और विकास पर ध्यान देना आवश्यक है।

विज्ञापन में सामान्य भाषा न होकर विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाता है। यदि विज्ञापन का संदेश पाठक या दर्शक का ध्यान आकर्षित नहीं करता तो विज्ञापन निरर्थक है। फीचर एक बहुअर्थी शब्द है, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न अर्थ व्यक्त करता है। फीचर के शाब्दिक अर्थ हैं– आकृति, मुखाकृति, ध्यान, आकृष्ट कर लेने वाली विशिष्टता, खास बात प्रदर्शित करना तथा प्रमुखता देना आदि। कम्प्यूटर इलेक्ट्रानिक मशीन है, अतः इसके कार्य करने की गति आभासी रूप में तो तात्क्षणिक है, किंतु आज का कम्प्यूटर एक सैकंड में कई प्रचालन कर सकने में सक्षम है।

रेडियो, टेलीफोन, इंटरनेट, टी.वी. आदि सभी उपकरणों का संचार के लिए उपयोग किया जाने लगा है। इन्हीं के समुदायों को हम 'मीडिया' नाम से पुकारते हैं।

आज यह बताने की जरूरत नहीं है कि मीडिया की किसी भी देश की प्रगति में क्या भूमिका रहती है। स्वस्थ मीडिया एक प्रगतिशील देश का द्योतक होता है। इस इकाई में समाचार लेखन, रेडियो लेखन, विज्ञापन एवं फीचर लेखन और पटकथा लेखन एवं कम्प्यूटर और मीडिया का वर्णन किया गया है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- समाचार लेखन एवं इसकी विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे;
- रेडियो लेखन की प्रक्रिया से अवगत हो पाएंगे;
- विज्ञापन लेखन एवं इसके प्रमुख चरणों से अवगत हो पाएंगे;
- फीचर लेखन लेखन एवं इसके प्रमुख चरणों से अवगत हो पाएंगे;
- पटकथा लेखन की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- कम्प्यूटर एवं मीडिया के विषय में जान पाएंगे।

4.2 समाचार लेखन

टिप्पणी

पत्रकारिता की भाषा में समाचार को स्टोरी कहा जाता है। समाचार को स्टोरी के रूप में प्रस्तुत करना वास्तव में एक कठिन कार्य है, यह समाचार लेखन की श्रेणी निर्धारित करता है। समाचार लेखन के विविध आयाम होते हैं। समाचार लेखन की मुख्य विशेषताओं के बारे में जानने से पूर्व समाचार की संरचना के बारे में जान लेना सुविधाजनक होगा।

व्युत्पत्तिपरक अर्थ– 'समाचार' को अंग्रेजी में **'न्यूज'** (News) कहा जाता है जो 'न्यू' (New) का बहुवचन है और लैटिन के **'नोवा'** तथा संस्कृत के **'नव'** शब्द से निर्मित है।

हिंदी के 'समाचार' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम–आचर् यञ्' है, जिसका आशय सम्यक आचरण करना अथवा बतलाना है। सम्यक आचरण के अनुरूप ही जब निष्पक्ष भाव से तथ्यों की सूचना प्रदान की जाती है, तब उसे समाचार समझा जाता है।

'हेडेन' के कोश के अनुसार अंग्रेजी के 'NEWS' के N = North (उत्तर), E = East (पूर्व), W = West (पश्चिम) और S = South (दक्षिण); सभी चारों दिशाओं की घटनाओं की जानकारी को ही समाचार की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

विभिन्न अर्थ– समाचार को अन्य जिन नामों से जाना जाता है उनमें 'सूचना', 'संवाद', 'खबर', 'विवरण' एवं 'वृतांत' प्रमुख हैं। ये समाचार के ही पर्याय हैं। अमरकोश में 'वृति', 'वार्ता', 'उदंत' और 'प्रवृत्ति' ये चार शब्द समाचार के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इन सभी शब्दों से किसी घटना की संपूर्ण जानकारी देने का भाव स्पष्ट होता है।

परिभाषा– विभिन्न विद्वानों ने समाचार की परिभाषा अपने–अपने तरीके से इस प्रकार दी है–

टर्नर केटलिज के अनुसार, "समाचार कोई ऐसी चीज है, जिसे आप कल (बीते हुए) तक नहीं जानते थे।"

जे.जे. सिंडलर के अनुसार, "पर्याप्त संख्या के लोग जिसे जानना चाहें, वह समाचार है।"

मैन्सफील्ड के अनुसार, "घटना समाचार नहीं है अपितु वह घटना का विवरण है, जिसे उनके लिए लिखा जाता है जिन्होंने उसे देखा नहीं है।"

प्रो. विलियम जी. ब्लेयर के अनुसार, "अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामयिक बात में हो, वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है जिसमें बहुसंख्यकों की अधिकतम रुचि हो।"

रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर के अनुसार– "दुनिया में कहीं भी, किसी भी समय कोई छोटी–मोटी घटना या परिवर्तन हो, उसका शब्दों में जो वर्णन होगा उसे समाचार या खबर कहते हैं।"

'मानक हिंदी कोश' (आचार्य रामचंद्र वर्मा) के अनुसार, "समाचार का अर्थ आगे बढ़ना, चलना, अच्छा आचरण अथवा व्यवहार है। मध्य और परवर्ती काल में किसी कार्य या

टिप्पणी

व्यापार की सूचना को समाचार मानते थे– ऐसी ताजी या हाल की घटना की सूचना जिसके संबंध में पहले लोगों को जानकारी न हो।"

इन परिभाषाओं के निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि "समाचार ऐसी सूचना, घटना, विवरण, हलचल या संवाद है, जो रुचिपूर्ण हो और पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर सकने में सफल हो। साथ ही उसमें कोई नई जानकारी भी होनी चाहिए।"

महात्मा गांधी ने समाचार पत्रों के संबंध में कहा था कि– "समाचार पत्र का पहला उद्देश्य जनता की इच्छाओं, विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है। दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जाग्रत करना है। तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को प्रकट करना है।"

"इस अंधियारे विश्व में, दीपक है अखबार।
सुपथ दिखावे आपको, आंख करत है चार।।"

संक्षेप में, विश्व में जो कुछ भी हुआ या हो रहा है अथवा होगा, वह सभी समाचार है, बशर्ते कि वह जनता के लिए नया हो और उसमें जनता की रुचि हो।

समाचार के दो प्रमुख भेद हैं– वास्तविक और जनश्रुत। वास्तविक के भी दो भेद हैं– सामान्य समाचार और मामूली दिलचस्प कहानियां। जनश्रुत समाचार भी दो प्रकार के होते हैं– वास्तविकता पर आधारित– गोपनीय, रहस्य और संभावित घटना से संबंधित।

दैनिक पत्रों के लिए समाचार या संवाद लेखन में कब, कहां, क्या, कौन, कैसे और क्यों का संतोषजनक उत्तर होना ही चाहिए और जहां तक हो सके, इन समस्त प्रकारों का समाचार के प्रथम चरण में ही समावेश होना चाहिए। इस संबंध में 'वस्तुपरकता' पर बहुत जोर दिया जाता है, किंतु आधुनिक दर्शनानुसार 'पूर्ण वस्तुपरकता' जैसी कोई स्थायी वस्तु नहीं होती क्योंकि हर व्यक्ति एक वस्तु को समान दृष्टि से नहीं देखता। संवाददाता या पत्रकार की विशिष्टता, शैली, उसकी सारतत्त्व निर्णायक बुद्धि तथा समझने की सामर्थ्य समाचार की वस्तुपरकता में वैयक्तिकता का समावेश कर ही देती है।

दैनिक पत्र के लिए समाचार लेखन में केवल एक दिन की घटना का समावेश रहता है, किंतु साप्ताहिक पत्र के लिए उस समाचार पत्र के लिए उस समाचार से संबंधित सात दिन के घटनाक्रम का सारांश समाहित होता है। दैनिक के लिए समाचार लेखन में समाचार की पृष्ठभूमि आदि का तथा उसी प्रकार की अन्यत्र हुई घटना से तुलना आदि का भी समावेश होता है।

समाचार लेखन एक कला है। कोई भी घटना जो लोगों पर प्रभाव डालती है, वह समाचार बन जाती है। समाचार लेखन सृजनात्मक लेखन से अलग होता है, क्योंकि साहित्य लेखन में सबसे पहले प्रस्तावना होती है। जबकि समाचार लेखन में वह बात बताई जाती है जो सबसे प्रमुख है।

किसी भी संवाददाता को रिपोर्ट तैयार करनी पड़ती है और तब उस सूचना को प्रसारण के रूप में लिखने का काम लेखक या संपादक करता है। समाचार लेखन का आरंभ

टिप्पणी

बहुत ही चुस्त और प्रभावशाली होना चाहिएं, ताकि समाचार के मुख्य बिंदु को पढ़कर पाठक को पूरा समाचार पढ़ने की उत्सुकता हो। वर्तमान समय में जबकि विभिन्न संचार माध्यमों से पाठक बहुत कम समय समाचार पत्र के लिए निकालता है, सबसे अच्छा तरीका यह है कि समाचारों को बहुत प्रभावशाली और रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया जाए, ताकि पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो और वह पूरा समाचार पढ़ सके। इसके लिए समाचार लेखक शब्द–चित्रमय वर्णन करके भी पाठकों में रुचि उत्पन्न कर सकता है।

एक ही समाचार पत्र के पाठक कई तरह की भाषा–विशेषज्ञता और अल्पज्ञता वाले हो सकते हैं। अतः समाचार लिखते समय भाव के स्तर तथा समाचार के उद्देश्य को ध्यान में रखकर भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए। समाचार छोटे और स्पष्ट वाक्यों में लिखे जाने चाहिए उन्हीं शब्दों का चयन करना चाहिए जो आम पाठक के समझ में आ सकें।

समाचार लिखते समय मुख्य–रूप से निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए–

1. **समझने में आसानी**–समाचारों को समझने के लिए पाठकों को कठिनाई न हो और मुख्य अंश को समझने में उसे कम–से–कम समय लगे। पाठकों की रुचि और उनके हित का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। समाचार पत्रों का संबंध पाठक समाज के प्रत्येक वर्ग से होता है। समाचार पत्र का एक पाठक यदि उस समाचार विशेष की भाषा का विशेषज्ञ है तो दूसरा पाठक ऐसा भी हो सकता है जो उस भाषा को सीख हो। अतः समाचार इस प्रकार लिखे जाएं कि वे भाषा–विशेषज्ञों को भी रुचिकर लगें और भाषा सीख रहे पाठक में भी अरुचि पैदा न करें।
2. **भाषा, भाव के स्वर तथा समाचार उद्देश्य के अनुरूप हो**– जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, एक ही समाचार पत्र के पाठक कई तरह की भाषा–विशेषज्ञता और अल्पज्ञता वाले हो सकते हैं, अतः समाचार लिखते समय भाव के स्तर तथा समाचार के उद्देश्य को ध्यान में रखकर भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए। समाचार छोटे और स्पष्ट वाक्यों में लिखे जाने चाहिए। उन्हीं शब्दों का चयन किया जाना चाहिए जो आम पाठक भी आसानी से समझ सकें। यदि पाठक को शब्द–कोश का सहारा लेना पड़ा तो समाचार पढ़ने में उसकी रुचि नहीं होगी।
3. **समाचार का गठन**–समाचार की रचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसका रूप जितना संक्षिप्त हो सके, आवश्यकतानुसार कर देना चाहिए। इन बातों का पाठकगण और समाचार पत्र के गठन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। समाचार लिखते समय विषयवस्तु से ही सीधे लिखना शुरू करना चाहिए। सरल और आकर्षक भाषा के अतिरिक्त यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि समाचारों में वाक्यों में तारतम्य है कि नहीं, उनका गठन ठीक प्रकार से हुआ है अथवा नहीं। व्यर्थ के विस्तार से यथा संभव बचने की कोशिश की जानी चाहिए।

टिप्पणी

4. **तथ्यों की महत्ता**–समाचार लिखते समय घटना की तथ्यात्मक सत्यता और निश्चितता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि एक आदर्श पत्रकार के लिए विचार से अधिक तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं। किसी घटना को समझने के अनेक रूप हो सकते हैं, परंतु तथ्यों की एकरूपता में मिलावट तथा फेरबदल पाठकों के साथ धोखा होगा, क्योंकि अभी भी वे पत्र को सत्यता का पर्याय मानते हैं।

5. **प्रभावशाली तथा चुस्त प्रारंभ**–समाचार लेखन की यह एक अन्य विशेषता है। समाचार का प्रारंभ बहुत ही चुस्त और प्रभावशाली होना चाहिए ताकि समाचार के शीर्षक को पढ़कर पाठक पूरा समाचार पढ़ने को उत्सुक हो। वर्तमान में, जबकि विभिन्न संचार माध्यमों से पाठक बहुत कम समय समाचार पत्र के लिए निकालता है, सर्वोत्तम तरीका यही है कि समाचारों को बहुत रुचिकर और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाए ताकि पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो और वह पूरा समाचार पढ़ सके।

6. **सारगर्भित प्रारंभ**–समाचार संवाददाता को चाहिए कि वह समाचारों को सारगर्भित रूप से पेश करने में दक्ष हो। सारगर्भित शब्दों से युक्त समाचार होने से घटना का शब्द–चित्र पाठक के समक्ष रहता है। यदि समाचार लेखक इस बात को ध्यान में रखेगा कि उसके समाचार को पाठक यदि पूरा न भी पढ़ पाए तो उसकी प्रारंभिक कुछ पंक्तियां ही पूरे समाचार का भाव पाठक के मस्तिष्क में रख सकने में समर्थ सिद्ध हों, तो उसका समाचार लेखन सार्थक माना जाएगा। यहां लेखक शब्द–चित्रमय वर्णन करके पाठकों में रुचि उत्पन्न कर सकता है।

7. **सार–संकलन की प्रवृत्ति**–आजकल विज्ञापनों की होड़, घटनाओं की बहुलता, पाठकों के पास समयाभाव, पठन–पाठन का गिरता स्तर आदि कितनी ही समस्याओं के चलते समाचार पत्र में इतना स्थान नहीं होता कि प्रत्येक घटना को सविस्तार दिया जा सके। अतः समाचार–लेखक को चाहिए कि सार–संकलन की प्रवृत्ति अपनाकर अपना कार्य सिद्ध करे। कई बार कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं स्थानाभाव के कारण रह जाती हैं। ऐसी महत्वपूर्ण घटनाओं का सार देकर काम निकाला जा सकता है।

8. **संदर्भ संकेत**–समाचार का आकार छोटा हो या बड़ा, इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना अपेक्षित होता है कि कोई महत्वपूर्ण प्रसंग छूटने न पाए। समाचार के पूर्वापर संबंध को याद दिलाने के लिए कतिपय संदर्भ दे देने चाहिए, क्योंकि बीते हुए समय में छपे समाचारों की स्मृति प्रत्येक पाठक के मस्तिष्क में एक–सी नहीं रहती। संदर्भ संकेत को समाचार के प्रथम अंश के अत्यधिक निकट ही रखना चाहिए।

9. **अंकों की पूर्व योजना**–भावी अंकों की सामग्री–चयन का अर्थ यह नहीं होता कि जो लेख विभिन्न लेखकों ने अपनी भावाभिव्यक्ति करते हुए भेज दिए, उन्हीं में से कुछ को छांटा और छाप दिया। वस्तुतः सामग्री–चयन से भी अधिक महत्व का काम होता है पत्रिका के भावी अंकों का पूर्व–आयोजन। संपादक सामयिक स्थितियों के अनुसार

टिप्पणी

अंक छापने से बहुत पहले ही, प्रायः 1–2 महीने पहले से ही कल्पना करता है कि उसके अगले अंक में क्या रहना चाहिए। यह निर्धारित करते समय वह देखता है कि जब अंक प्रकाशित होगा, उस समय कौन–कौन–से ज्वलंत प्रश्न, घटनाएं या समस्याएं होंगी। उसके अनुरूप वह अपनी पत्रिका के अंक के लिए सामग्री की पूर्व–योजना बनाता है। आकार–विशेष के लिए उपयुक्त लेख, रिपोर्ताज, भेंटवार्ता, फीचर आदि तैयार कराता है और जो स्थायी स्तंभ हैं, उनमें से सामयिक सामग्री देने का प्रयास करता है। इसके लिए वह अपने कार्यालय के सहयोगियों के बीच काम बांटता है, कुछ काम अपने लिए लेता है, बाहर के लेखकों से संपर्क करता है, छविकारों से अवसर–विशेष के चित्र खिंचवाता है और उस संबंध में पिछले दिनों के चित्र भी प्राप्त करता है। इस सामग्री–आयोजन के साथ संपादक की सजग दृष्टि स्थायी महत्व की रचनाओं का भी समावेश करती है। इस प्रक्रिया में वह ऐसे व्यक्तियों को भी प्रकाश में लाता है जो गुणी तथा विद्वान तो हैं, किंतु प्रचार पराङ्मुख हैं। उनके महत्वपूर्ण कार्यों से परिचित रहना तथा विद्वान लोगों से तत्त संपर्क रखकर उनसे उत्कृष्ट रचनाएं लिखने का आग्रह करते रहना भी संपादक का काम होता है। इस प्रकार सजग संपादक उत्तम सामग्री प्राप्त करता है। संक्षेप में कहें तो पत्रिका का प्रत्येक अंक संपादक की इस कल्पना, सामग्री–चयन एवं संपादकीय दृष्टि का प्रतिफलन होता है।

4.2.1 समाचार लेखन के गुण व विशेषताएं

समाचार लेखन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. **सत्यता**– कोई भी सूचना समाचार नहीं होती, सूचना छापने से पहले उसकी सत्यता की परख जरूर कर लेनी चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठकों को उसकी सत्यता पर संदेह न हो। 'वार्ता', 'रायटर', 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया' कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जो कि विश्वसनीय मानी जाती हैं।

2. **वस्तुपरकता**– समाचार लेखन के समय लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह जो भी समाचार लिख रहा है किसी के दबाव में आकर न लिखे बल्कि समाचार पूर्ण रूप से वस्तुपरक होना चाहिए।

3. **विश्वसनीयता**–जैसा कि हम जानते हैं, समाचार लिखने का समय बहुत ही महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि बासी समाचार पढ़ने में पाठक की रुचि समाप्त हो जाती है। प्रतियोगिता की दृष्टि से भी समाचार–संप्रेषण में अभिनवता और विश्वसनीयता को ही महत्व दिया जाता है।

4. **संक्षिप्तता**–समाचार लेखन संक्षिप्त, सरल एवं स्पष्ट होने चाहिए। द्विअर्थी शब्दों व वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। समाचार का प्रस्तुतीकरण विशेष शैली द्वारा होना चाहिए तथा समाचार में सुसंबद्धता, संहिता व अन्विति के गुण होने चाहिए, जिससे पाठकों के समक्ष पूरी स्थिति स्पष्ट हो जाए व समाचार पढ़ने में उसकी रुचि उत्पन्न हो।

टिप्पणी

5. **उचित संतुलन**–समाचार लेखन में विषय से संबंधित समाचार में एक संतुलन होना आवश्यक है। थोड़ी–सी लगन व अभ्यास से यह संभव हो जाता है। जिस विषय का समाचार दे रहे हैं, पाठकों के सामने उसका चित्र–सा उपस्थित हो जाना चाहिए। उचित संतुलन बनाए रखने के लिए शब्दों और वाक्यों का चुनाव भी सोच–समझकर करना चाहिए। समाचार लेखन में शुरू में ही समाचार का सार आ जाना चाहिए, ताकि समाचार का ज्यादा विस्तार न करना पड़े।

समाचार पत्रों के लेखन की विशेषताओं को समझने के पश्चात यह जानना आवश्यक है कि हमारे जीवन में उपयोगी समाचार पत्रों के लिए किस प्रकार की सामग्री आवश्यक होती है। इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि समाचार कितने प्रकार के होते हैं।

4.2.2 समाचार के प्रकार

समाचार दो प्रकार के होते हैं–

1. **प्रत्याशित समाचार**– ये वे समाचार होते हैं, जिनका होना आवश्यक या निश्चित होता है; जैसे– नगरपालिकाओं, नगर निगमों व विधानसभाओं की बैठक की कार्यवाही, स्कूल, कॉलेज या राजनीतिक दल का उत्सव, सम्मेलन या भेंटवार्ताएं आदि। नाटक, खेलकूद या अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम, ऐसे समाचार कार्यालय में अपने–आप आ जाते हैं।
2. **अप्रत्याशित समाचार**– ये वे समाचार होते हैं, जो अचानक ही घट जाते हैं; जैसे हत्या, आग, बाढ़, दुर्घटना, भूकंप, डकैती, चोरी, बलात्कार आदि। इसमें समाचार लेखक को पुलिस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, अस्पताल, टाउन हाल आदि से स्वयं ही संपर्क रखना पड़ता है।

कुछ विद्वानों ने इसके अतिरिक्त समाचार के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं–

(क) विचार प्रधान समाचार

(ख) भाव–प्रधान समाचार

(ग) शोध–प्रधान समाचार

(घ) सनसनीखेज समाचार

(ङ) व्यक्तिपरक समाचार

(च) विवरण प्रधान समाचार

(छ) एकांगी समाचार

प्रसिद्ध ब्रिटिश पत्रकार **लार्ड नार्थ क्लिफ** के शब्दों में, "समाचार–संग्राहक समाचार पत्र को लिखता है, जबकि उप–संपादक उसे गढ़ता है, निखारता है। समाचार–संग्राहक समाचारों की खोज में सड़कों, गलियों और मुहल्लों में घूमता है, समाचार सूंघता है, खोजता है, निकालता और बनाता है। उसके समाचार कभी एटम बम की भांति विस्फोटक होते हैं तो कभी एकदम करुणाजनक।"

4.2.3 समाचार लेखन की भाषा–शैली

समाचार लेखन में भाषा–शैली के संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है। लेकिन यह आवश्यक है कि वे लोगों के लिए सहज, सरल, सुबोध भाषा–शैली में ही लिखे गए हों क्योंकि

टिप्पणी

समाचार पत्रों को सभी वर्ग के लोग पढ़ते हैं। समाचार चाहे किसी भी विषय से संबंधित क्यों न हो, उसे लिखते समय उस विषय के लिए प्रचलित शब्दावली का प्रयोग ही करना चाहिए। इस विषय का पूर्ण विवरण ऐसी भाषा–शैली में देना चाहिए जिसे सामान्य व साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ सके और रुचि के साथ पढ़ सके। इसके लिए समाचार लेखक को सामाजिक शिष्टता, सौजन्यता तथा सांस्कृतिक मान्यताओं का भी ध्यान रखना चाहिए। उसे छोटे व सरल वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए।

4.2.4 समाचार के स्रोत

समाचार संवाददाता के द्वारा 'प्रेस' में जाता है। प्रेस में संपादक की संस्तुति के पश्चात यह छापेखाने में जाता है। तत्पश्चात सीधे पाठक तक पहुंच जाता है। इस प्रकार प्रसारण होने से पूर्व समाचार काफी समय तक संवाददाता और 'प्रेस' के बीच दौड़ता रहता है। इस समाचार को प्राप्त करने के लिए संवाददाता और 'प्रेस' के अलग–अलग स्रोत हैं। पाठक समाचार पाता है, उसके भी अपने स्रोत हैं। पाठक को समाचार पत्र, रेडियो और टी.वी. से मिलता है। इस तरह ये माध्यम पाठक के सामाचार प्राप्त करने वाले स्रोत हैं। अखबार के कार्यालय अर्थात 'प्रेस' को समाचार मिलता है, देश–भर में फैले अपने अंशकालिक संवाददाताओं, कार्यालय संवाददाताओं या विशेष संवाददाताओं के द्वारा। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशी–विदेशी समाचार एजेंसियों के द्वारा भी समाचार पत्रों को समाचार मिलता है। कई बार टी.वी. व रेडियो चैनलों से समाचार पत्र प्राथमिक सूचना के रूप में समाचार का कुछ भाग ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार 'प्रेस' को समाचार प्राप्त करने के लिए उक्त माध्यम स्रोत के रूप में कार्य करते हैं।

अब यहां स्पष्ट कर दें कि समाचार सर्वप्रथम संवाददाता के हाथ लगता है। रेडियो, टी.वी. चैनल या समाचार एजेंसी– ये सभी माध्यम संवाददाता से ही समाचार प्राप्त करते हैं। स्पष्ट–सी बात है कि संवाददाता ही समाचार पत्र, टी.वी., न्यूज चैनल, रेडियो या समाचार एजेंसी की रीढ़ होते हैं, जो विभिन्न स्रोतों से समाचार एकत्र करके अपने पत्र या किसी अन्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से समाचार को जनता के बीच पहुंचाते हैं।

एक अच्छे पत्रकार के लिए विभिन्न माध्यमों की तकनीकों को सीखना तथा उसमें निपुण होना आवश्यक है, परंतु पहले उसे विभिन्न माध्यमों की आवश्यकता, विशेषताओं तथा लेखन के विभिन्न तरीकों को जानना चाहिए। उसका ध्येय केवल अच्छे कार्यों के लिए ही माध्यमों का प्रयोग होना चाहिए ताकि उसके द्वारा वह अपने आपको सही ढंग से और पूरी तरह अभिव्यक्त कर सके।

प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और न्यू इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मुख्य माध्यम हैं जिनमें पत्रकार को काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पारंपरिक माध्यम हैं, जिसके अंतर्गत लोक–नृत्य, नाटक तथा कहानियां आदि के प्रसार के लिए इस प्रकार के समाचार सहायक होते हैं।

समाचार पत्रों में समाचार लेखन सबसे महत्वपूर्ण कला मानी जाती है, क्योंकि विभिन्न माध्यमों से प्राप्त समाचारों को रोचक कथा की भांति प्रस्तुत करना असाधारण और कलात्मक कार्य है। इससे भी अधिक उपसंपादक के लिए समाचार निर्धारित पृष्ठों में किसी

टिप्पणी

तरह प्रस्तुत किए जाएं, यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। अतः समाचार को कथा के रूप में रसीला, नशीला, चुटीला और दिलचस्प बनाकर प्रस्तुत करना एक सफल पत्रकार या उपसंपादक की क्षमता पर निर्भर है। समाचार लिखते समय संवाददाता को सत्यता, स्पष्टता, संक्षिप्तता और सुरुचि का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

संवाददाता निम्न वर्णित स्रोतों से समाचार संकलित करते हैं–

1. प्रत्याशित स्रोत
2. पूर्वानुमानित स्रोत
3. अप्रत्याशित स्रोत

1. **प्रत्याशित स्रोत**–समाचार प्राप्त करने के लिए संवाददाता को पुलिस स्टेशन, अस्पताल, नगरपालिका, जिला मुख्यालय, सहायक सूचना निदेशक का कार्यालय, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक व जिलाधिकारी का कार्यालय विभिन्न सरकारी व गैर–सरकारी संस्थाओं के कार्यालयों, प्रेस, क्लब, संसद, विधान–सभा भवन, मुख्यमंत्री सचिवालय, प्रेस कॉन्फ्रेंस, सार्वजनिक स्थान, श्मशान गृह, प्रेस विज्ञप्तियों, विभिन्न सभास्थलों के संपर्क में रहना पड़ता है। उक्त स्थल संवाददाता के प्रत्याशित स्रोत हैं।

2. **पूर्वानुमानित स्रोत**–शिक्षा संस्थान, गंदी बस्तियां व उपेक्षित स्थल, कल–कारखाने, बूचड़खाने आदि स्थलों के संदर्भ में पहले से अनुमान लगाकर समाचार को खोज निकाला जाता है।

3. **अप्रत्याशित स्रोत**–अप्रत्याशित स्रोत अचानक ही उत्पन्न हो जाते हैं, ये पूर्व नियोजित नहीं होते। संवाददाता की अपनी तर्कशक्ति समाचार के प्रति जागरूकता, खोजीवृत्ति व दूरदृष्टि के आधार पर ये स्रोत अचानक खुद–ब–खुद बन जाते हैं। इन्हीं स्रोतों से संवाददाता समाचार खोज लेते हैं। अप्रत्याशित स्रोत को वरिष्ठ पत्रकार श्री कमलापति त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'पत्र और पत्रकार' में इस तरह समझाया है– "कुछ वर्ष पूर्व की बात है, काशी के एयरोड्रम से 'आज' के कार्यालय में संपादक के नाम एक टेलीफोन आया क्या आप कोई ऐसा प्रबंध कर सकते हैं कि मुझे 15–16 गैलन पेट्रोल मिल जाए? उक्त असंगत प्रश्न से संपादक की उत्सुकता बढ़ गई। संपादक ने पूछा कि आप कौन हैं? पेट्रोल की खोज क्यों कर रहे हैं? उत्तर मिला– मैं टाटानगर का हूं और टाटा के विमान का संचालक हूं। जमशेदपुर से अपने विमान में पं. जवाहरलाल नेहरू को लेकर लखनऊ जा रहा था। अंधड़ के कारण रास्ता भूल गया। व्यर्थ ही लंबा चक्कर लगाना पड़ा, इस कारण मेरे विमान का पेट्रोल खत्म हो गया। फलतः यहां बनारस में अभी उतरा हूं। मुझे पेट्रोल की टंकी भरनी है और पंडित जी को लेकर उड़ जाना है। मुझे नहीं पता पेट्रोल कहां मिलेगा, इसलिए आपको टेलीफोन किया है।" संपादक ने फोनवार्ता के पश्चात पेट्रोल की व्यवस्था की और टेलीफोन की वार्ता के आधार पर अप्रत्याशित समाचार भी प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अचानक बने या मिले समाचार के स्रोत अप्रत्याशित स्रोतों की गिनती में आते हैं।

टिप्पणी

समाचार पत्र की डमी बनाने के बाद संपादक कार्य का वितरण कर देता है और उपसंपादक कार्य आरंभ कर देते हैं। उनके पास जितने भी समाचार आते हैं वे उनमें से प्रत्येक का परीक्षण करते हैं, उनमें से अधिकांश पर छापने से पहले बहुत बारीकी से सोच–विचार करना होता है। उप–संपादक किसी भी बात पर यों ही विश्वास नहीं कर लेता। उसके पास नाम, तथ्य, तारीखें आदि होनी चाहिए। वह कॉपी देखता है और उसके तथ्य को समझ लेता है। वह इसकी जांच करता है कि संवाददाता ने पर्याप्त 'लीड' दी है और कथा संवाद का मसौदा ठीक से तैयार किया गया है। उसे यह देखना होता है कि क्या समाचार का विकास अच्छी तरह से किया गया है। इसके महत्वपूर्ण होने का एक कारण और भी है। मेकअप मैन यह देखता है कि समाचार में पंक्तियां अधिक हैं और पैराग्राफ छोटा है या बड़ा। अगर ऐसा है तो वह पंक्तियां काट देता है। उपसंपादक ऐसे समाचारों के विषय में स्वयं भी सचेत रहता है। वह उनके अंतिम पैराग्राफों में यह सुनिश्चित कर देता है कि समाचार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश कम रहे, ताकि उन्हें यदि निकाल भी दिया जाए तो समाचार को हानि न पहुंचे।

4.3 रेडियो लेखन

मीडिया उद्योग जिसमें विभिन्न मीडिया के लिए सामग्री लेखन में अच्छे कौशल की आवश्यकता होती है, में बड़ी संख्या में नौकरियों के कारण वर्तमान में 'मीडिया लेखन' शब्द का उपयोग किया जाने लगा है। मीडिया के लिए लेखन की आवश्यकता और मांग को समझने के लिए लेखन के मूल और विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। मीडिया लेखन रचनात्मक और शैक्षणिक लेखन से अलग है क्योंकि मीडिया लेखन एक गतिविधि है जिसमें सूचना, अनुनय, प्रचार और मनोरंजन आदि विषय शामिल हैं। इसमें साधारण भाषा में लिखना शामिल है और संवाद की सार्थकता के लिए कई अन्य रूपों जैसे ऑडियो, दृश्यों और एनीमेशन का उपयोग किया जाता है।

प्रिंट मीडिया में सब कुछ लिखा या मुद्रित होता है जो अखबार या पत्रिका के पन्नों पर मौजूद होता है। इन्हें हमेशा के लिए बनाए रखा जा सकता है और एक से अधिक बार किसी भी समय पढ़ा जा सकता है। एक रेडियो के संदर्भ में आप प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों को सुनते हैं जिन्हें आप केवल एक बार सुन सकते हैं। बेशक आप कह सकते हैं कि आप उन्हें सुनने के लिए रिकॉर्ड कर सकते हैं और बाद में सुन सकते हैं। हालांकि आमतौर पर ऐसा नहीं होता। अपनी दैनिक बातचीत में हम बोलते हैं और कोई दूसरा सुनता है और कोई दूसरा बोलता है और हम सुनते हैं। यह एक क्षणिक अनुभव है। आपने क्या कहा था और क्या सुना था इसे याद करने में आप सक्षम हो भी सकते हैं और नहीं भी।

इस प्रकार रेडियो पर जो सुनते हैं वह केवल एक बार सुनते हैं और ज्यादातर मामलों में उसे भूल जाते हैं। अपनी दिन–प्रतिदिन की बातचीत में हम अखबार के संपादकीय लेख और फीचर लेख में पाए जाने वाले शब्दों और अभिव्यक्तियों का प्रयोग नहीं करते क्योंकि ये शब्द और अभिव्यक्तियां न तो आम हैं और न ही इन्हें समझ पाना आसान है। इसके विपरीत आपकी दैनिक बातचीत में सरल शब्दों, वाक्यों और परिचित अभिव्यक्तियां शामिल

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

1. समाचार के दो प्रमुख भेद हैं–वास्तविक और .....।

सही/गलत बताइए

2. समाचार लेखन सृजनात्मक लेखन से अलग होता है, क्योंकि साहित्य लेखन में सबसे पहले प्रस्तावना होती है।

टिप्पणी

होती हैं। जिस व्यक्ति से आप बात कर रहे होते हैं उसे भी एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में देखा जाता है। आपके इशारे और हरकतें आपके भाषण के प्रवर्धक हैं। यहां तक कि यदि आप उद्घोषक को देखने में सक्षम नहीं हैं, तब भी आप उस व्यक्ति से अपनेपन की भावना महसूस करते हैं। ज्यादातर मामलों में आप जो रेडियो पर सुनते हैं वह लिखा हुआ या पटकथा होती है। इसे केवल एक बार बोला और सुना जाता है। पटकथा (स्क्रिप्ट) उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसलिए लेखन अनिवार्य है। ध्वनि का रेडियो संचार में बड़ा महत्व है जो मानसिक छवियों के निर्माण में प्रभावी होती है। ध्वनि श्रोता के लिए एक उपयुक्त वातावरण बनाने में अद्वितीय है। विभिन्न लेखन और उत्पादन तकनीकों का रचनात्मक उपयोग मानव मन में पूरी दुनिया का निर्माण कर सकता है। ध्वनि के साथ एक माहौल बनाने में कई तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

भाषा

भाषा का प्राथमिक उद्देश्य विचारों और जानकारी के संप्रेषण में निहित है जिसे आसानी से समझा जा सकता है। शब्दों का चयन और प्रयोग तथा अर्थपूर्ण वाक्यों में इनको जोड़ना अच्छे उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है।

शब्द

शब्द विचारों की अभिव्यक्ति, विचारों और भावनाओं के मुख्य उपकरण हैं। वे अर्थ और शक्ति से संपन्न होते हैं और इस प्रकार इनका उचित रूप से इस्तेमाल किया जाना चाहिए। सदैव यथार्थवादी शब्दों का प्रयोग करें। औपचारिक शब्दों की बजाय अनौपचारिक शब्दों को पसंद किया जा रहा है।

वाक्य

वाक्य संगठित विचारों की प्रमुख इकाइयां हैं। स्पष्टता, सादगी, बातचीत की शैली और संक्षिप्तता प्रभावी वाक्यों के निर्माण की कुंजी हैं।

4.3.1 बोली जाने वाली भाषा का लेखन

सबसे पहले, रेडियो के मामलों में, आप एक व्यक्ति को देखने की बजाए, सुनने में सक्षम होते हैं। व्यक्ति एक लिखित स्क्रिप्ट को पढ़कर बोलता है। आपको ऐसा महसूस होता है कि जैसे आप किसी व्यक्ति से बातचीत कर रहे हैं। उस व्यक्ति की आवाज अनौपचारिक लगती हैं जिसे आसानी से समझा जा सकता है। रेडियो स्क्रिप्ट में प्रयोग की जाने वाली भाषा या शब्दों को लिखित शब्दों या प्रिंट मीडिया में प्रयुक्त छपे शब्दों के विपरीत उच्चारित शब्द कहा जाता है। बोले गए शब्दों को श्रवण के प्रभाव के लिए जबकि मुद्रित शब्दों को दृश्य प्रभाव के लिए लिखा जाता है। बोले गए शब्दों की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. लिखने की बजाय इसे बोला जाता है।
2. इसे आंखों के लिए नहीं कानों के लिए लिखा जाता है।
3. इसे दोहराया नहीं जाता।

4. यह संवादी है इसलिए इसमें निम्नलिखित गुण होने चाहिए–
   (क) इसमें सरल शब्दों को शामिल करना चाहिए।
   (ख) वाक्य संक्षिप्त और स्टीक होने चाहिए।
   (ग) एक वाक्य में कई विचारों को शामिल नहीं करना चाहिए।
   (घ) श्रोताओं की संख्या चाहे अधिक हो, लिखित सामग्री केवल एक श्रोता से संबंधित होनी चाहिए।
   (ङ) चयनित शब्द स्पष्ट होने चाहिए न कि अस्पष्ट।
   (च) शब्द इतने प्रभावी होने चाहिए कि वे श्रोता के मन पर अपनी छवि बना सकें।
   (छ) शब्दों के संक्षिप्त रूप के उपयोग से बचना चाहिए। यदि संक्षिप्त रूप का उपयोग किया जाए तो उसका विस्तार किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

4.3.2 कार्यक्रम लेखन

बोलचाल की भाषा एक रेडियो स्क्रिप्ट का मूल घटक हैं। ये वे शब्द हैं जो व्याकरण, भाषण शैली और मौखिक ध्वनियों की कुछ विभिन्नताओं से सुसज्जित होते हैं जो श्रोताओं के मन में इसके द्वारा वर्णित मामले की एक छवि बनाते हैं।

रेडियो लेखन करते समय पहला याद रखने वाला सिद्धांत यह है कि लक्षित श्रोतागण श्रोता है न कि दर्शक। बोलचाल के शब्दों को लिखना बहुत मुश्किल है जैसा कि लिखने और बोलने में एक साथ मांग की जाती है। रेडियो स्क्रिप्ट का लेखक स्वयं एक अच्छा वक्ता नहीं हो सकता लेकिन उसे अपने दिमाग में यह बात रखनी चाहिए कि जो स्क्रिप्ट वह लिख रहा है वह पढ़ने और सुनाने के लिए है। इसलिए वाक्यों के प्राकृतिक प्रवाह को वाक्यों की संरचना, उनका क्रमांक और शब्दों का चयन निर्धारित करता है जो स्पष्ट और साफ होने चाहिए। यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि जब कार्यक्रम चल रहा होता है तो श्रोता इसे रिवाइंड नहीं कर सकते। रेडियो कार्यक्रम श्रोताओं के लिए होते हैं इसलिए वे पहले आते हैं अर्थात उनका स्थान प्रथम है।

विभिन्न प्रकार के रेडियो कार्यक्रमों के लिए लक्षित श्रोताओं का समूह बच्चे, महिलाएं, किसान या छात्र हो सकते हैं। समूह जो भी हो, स्क्रिप्ट सीधे श्रोताओं को प्रभावित करने वाली होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, 'श्रोता जो उत्तर देना चाहते हैं.....लिखने की बजाय' 'क्या आप उत्तर देना चाहते हैं.....एक बेहतर विकल्प है। स्क्रिप्ट वर्णनात्मक होनी चाहिए। इस प्रकार एक व्यक्ति जो कुछ कहना चाहता है वह इस रूप में हो जो सीधे श्रोताओं को संबोधित करे। इसलिए संवादी भाषा में लिखना महत्वपूर्ण है। ऐसा करने का सबसे अच्छा तरीका है लिखी हुई स्क्रिप्ट को बोल कर देखना। अधिक उपवाक्यों के प्रयोग से बचना अच्छा है क्योंकि स्क्रिप्ट में ये भाषा के प्राकृतिक प्रवाह को बाधित करते हैं और पढ़ते समय भ्रम की स्थिति पैदा कर सकते हैं। विराम चिह्नों का सही स्थान पर उपयोग किया जाना चाहिए, ऐसा करने से यह सही स्थान पर रुकने में मदद करता है। अलग–अलग भाषाओं को पढ़ने की हमारी गति अलग–अलग होती है। अंग्रेजी भाषा को पढ़ने की गति सामान्यतः 140–180 शब्द प्रति मिनट होती है। लेकिन हिंदी में यह गति

टिप्पणी

160–180 शब्द प्रति मिनट पर टिकी हुई है। इसलिए स्क्रिप्ट लिखते समय यह मापदंड बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। हार्ड कॉपी के रूप में मुद्रित होने पर एक पेज के एक ही तरफ का उपयोग करने की सलाह दी जाती है। यह स्लाइड करने में आसान है और इसे स्टूडियो में संभालते समय उसके फड़फड़ाने की आवाज उत्पन्न नहीं होती। माइक्रोफोन अत्यंत संवेदनशील होते हैं जो कम से कम श्रव्य ध्वनि को भी पकड़ लेते हैं। पूरी स्क्रिप्ट में डबल स्पेस को पसंद किया जाता है ताकि यदि कोई आवश्यक परिवर्तन करना हो तो या किया जाए तो कॉपी साफ और पढ़ने में आसानी हो। कभी–कभी व्यापक मार्जिन किसी नोट, निर्देश या कठिन शब्दों के उच्चारण के लिए रखा जाता है। इसके अलावा कुछ प्रस्तुतकर्ता अपनी बात पर जोर देने के लिए लघु विराम को भी चिन्हित करते हैं। ऐसे में डबल स्पेस और हाशिए बड़ी मदद करते हैं। यदि स्क्रिप्ट लंबा है और एक या अधिक पृष्ठों की आवश्यकता है तो यह सलाह दी जाती है कि पैराग्राफ और वाक्य को आगे बढ़ने से पहले एक ही पृष्ठ पर पूरा कर लिया जाए। एक वाक्य को दो पृष्ठों के बीच विभाजित नहीं करना चाहिए। प्रत्येक पृष्ठ को एक नंबर से चिह्नित करना चाहिए अधिमानत : बोल्ड अक्षरों में, जैसे **पृष्ठ संख्या 3**। ऐसा करने से भ्रम से बचा जा सकता है।

आमतौर पर संक्षिप्त रूपों से बचना चाहिए, लेकिन एक सामान्यतः ज्ञात संक्षिप्त नाम के मामले में यह प्रत्येक अक्षर के बीच स्पेस देकर लिखा जाना चाहिए। उदाहरण स्वरूप–Y. W.C. A.

सभी औपचारिक प्रस्तुतियों के लिए एक स्क्रिप्ट जरूरी है, हालांकि औपचारिक बातचीत के कार्यक्रमों, एफ एम पर चैट करना, रनिंग कमेंटरीज या संगीत पर अन्य सहज कार्यक्रमों आदि पर नाम, उपाख्यानों, महत्वपूर्ण घोषणाओं और निर्देशों से युक्त पटकथा (स्क्रिप्ट) नोट्स आवश्यक हैं। इस प्रकार की स्क्रिप्ट एक व्यवस्थित रूपरेखा में हो सकती है जो एक चिट्ठी के रूप में कार्य करती है। जब कोई प्रोग्राम रेडियो पर प्रसारित हो रहा होता है तो शायद ही कोई समय सोचने और किसी वाक्यांश को वाक्य बनाने के लिए मिलता है। स्क्रिप्ट प्रस्तुतकर्ता को सभी बातें को आवश्यक क्रमांश में याद रखने के तनाव से बचाती है और उसे वह सब कहने का उचित अवसर प्रदान करती है वास्तव में जो वह कहना चाहता है। दूसरे शब्दों में, स्क्रिप्ट कही जाने वाली महत्वपूर्ण बात के न छूटने और समय पर कार्यक्रम समापन की सुविधा प्रदान करती है। इसके अलावा, एक स्क्रिप्ट हमें अच्छी तरह से डिजाइन किए गए कार्यक्रम को वांछित भाव से पेश करने के बारे में सोचने के लिए अधिक समय प्रदान करती है।

प्रसारण में, श्रोता के पास यह विकल्प होता है कि यदि कोई रेडियो प्रोग्राम उसे उबाऊ लगे तो वह रेडियो को बंद कर दे। श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करने और उसे बनाए रखने के लिए स्क्रिप्ट की शुरुआत दिलचस्प और प्रभावी होनी चाहिए। प्रिंट में, पाठक को यदि अगली कहानी या विषय दिलचस्प लगता है तो वह उस कहानी या विषय पर आसानी से जा सकता है या वह किसी बिंदु पर पुनर्विचार के लिए वापस उस बिंदु को देख सकता है परंतु रेडियो कार्यक्रम में यह संभव नहीं है। यह दर्शाता है कि एक रेडियो स्क्रिप्ट में भावों और विचारों की संरचना करना क्यों आवश्यक है। एक बार प्रभावशाली शुरुआत

टिप्पणी

से दिलचस्पी पैदा होने पर स्क्रिप्ट लेखक तथ्यात्मक जानकारी को स्क्रिप्ट के मध्य में रख सकता है। यदि तथ्यों को सही ढंग से जोड़ा गया हो, तो श्रोता की दिलचस्पी अगले तथ्य को जानने की होगी। छोटे–छोटे वाक्यों से मुश्किल विचार भी समझ में आ जाते हैं। वाक्यों में एक ही शब्द को बार–बार दोहराने से श्रोता को परेशानी होती है, फिर भी यदि एक ही बात को दोहराना जरूरी हो तो इसके लिए किसी अन्य शब्द या मुहावरे आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए। स्क्रिप्ट को मुख्य बिंदुओं के दोहराव के साथ समाप्त करना चाहिए ताकि मूल विषय श्रोताओं के मन में बना रहे।

4.3.3 रेडियो विज्ञापन लेखन

रेडियो, टी.वी और प्रिंट के लिए विज्ञापन एक ग्राहक द्वारा कमीशन किए जाते हैं। आमतौर पर एक विज्ञापन की अवधि लगभग 20 से 60 सेकंड होती है। इतने कम समय में एक छोटा और शक्तिशाली संदेश लिखना एक कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। लेखक के पास दर्शकों को आकर्षित करने का बहुत कम और सीमित समय होता है। छोटे और आकर्षक वाक्य दर्शकों का ध्यान खींचने के लिए आवश्यक हैं। आमतौर पर 30 सेकंड के विज्ञापन में 30 से 40 शब्दों से अधिक नहीं होते। दर्शकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए विज्ञापन का मुख्य वाक्य प्रभावकारी होना चाहिए। दर्शकों का ध्यान आकर्षित करने के बाद अगले वाक्य में कुछ अतिरिक्त विवरण दिया जा सकता है। विज्ञापन का समापन संदेशपूर्ण होना चाहिए ताकि वह दर्शकों के मन पर अपनी छाप छोड़ जाए।

4.3.4 रेडियो समाचार लेखन

समाचार कक्ष में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त समाचारों को स्कैन, संसाधित, संपादित और बोलचाल के शब्दों में संक्षिप्त कर दिया जाता है। इसे विभिन्न भाषा इकाइयों को 'पूल' के रूप में वितरित किया जाता है। पूल को सुबह, दोपहर, शाम और रात्रि पूल में वर्गीकृत किया जाता है। एक सुबह पूल दोपहर से पहले प्रसारित किए जाने वाले बुलेटिनों के लिए खबरों की स्रोत सामग्री के रूप में कार्य करता है। एक बुलेटिन की निर्बाध प्रस्तुति के लिए मुख्य रूप से समाचार संपादक जिम्मेदार है। वह अपने बुलेटिन के लिए कहानियों का चयन करता है और उन्हें प्रसारण के क्रम में एक रन डाऊन शीट पर लगा देता है। कुछ रिपोर्टें प्रसारण के दौरान लाइव (live) ली जाती हैं और कुछ रिकॉर्ड की हुई। अपने बुलेटिन के लिए कहानियों का चयन करने के बाद, यदि आवश्यक हो तो समाचार संपादक कहानियों को सहायक समाचार संपादक और न्यूज रीडर/अनुवादकों आदि को अनुवाद और संपादन के लिए आवंटित करता है। इस बीच ऑडियो संपादक पत्रकारों और स्टॉफ द्वारा प्रदान की गई रिकॉर्डिंग का संपादन करता है। यदि रिकॉर्डिंग या डाली गई आवाज को प्रसारण के लिए उनकी घटिया ऑडियो गुणवत्ता के कारण अनुपयुक्त पाया जाता है तब इस प्रकार की रिपोर्टों की सामग्री को स्टुडियो में रिकॉर्ड किया जाता है। मुख्य बुलेटिनों के अलावा भी बुलेटिन कई प्रकार के होते हैं; जैसे रोजगार बुलेटिन, धीमी गति बुलेटिन, खेल समाचार बुलेटिन, विदेशी राज्यों के लिए बुलेटिन आदि। उनमें से कुछ बुलेटिन कम अवधि के होते हैं और कुछ खबरों, साक्षात्कारों, रिपोर्टों और अखबार समीक्षा से युक्त पूर्ण बुलेटिन होते हैं। लघु बुलेटिन आम तौर पर पांच मिनट की अवधि के होते हैं जिनमें रिपोर्ट, साक्षात्कार

टिप्पणी

शामिल नहीं होते। पांच मिनट की अवधि वाले बुलेटिनों में जहां कोई रिपोर्ट या संगीत आदि नहीं होता वहां संपादक को शब्द सीमा का ध्यान रखना होता है। संपादकीय टीम के सदस्यों और न्यूज रीडर के नाम प्रसारण कॉपी के सबसे ऊपर, प्रसारण की तारीख और समय सहित दिए जाते हैं। बुलेटिन की शुरुआत मुख्य सुर्खियों के साथ की जाती है और उसके बाद विस्तार से खबरें दी जाती हैं। इस प्रकार के लंबे बुलेटिनों के घटक होते हैं–वॉयस कास्ट्स, इंटरव्यू और समीक्षाएं। रिकॉर्ड की गई रिपोर्टों की सामग्री प्रसारण कॉपी में सदैव दी जाती है।

हेडलाइंस, टीजर्स और प्रोमो लेखन

हेडलाइंस को खबरों का एक अभिन्न अंग माना जाता है। रेडियो के मामले में हम श्रोता हैं क्योंकि रेडियो एक ऑडियो माध्यम है। श्रोताओं के ध्यान को खींचना और बनाए रखना बड़ा कठिन और चुनौतीपूर्ण काम है। खबरों के मामले में हेडलाइंस जहां तक संभव हो सटीक और टू–दा–प्वाइंट होनी चाहिए। तभी ये श्रोताओं पर प्रभाव डालेंगी और इस तरह श्रोता शेष खबरों में भी दिलचस्पी लेंगे।

टीजर्स संक्षिप्त तत्व हैं जिन्हें एक कार्यक्रम के दौरान हल्के मूड में जोड़ देते हैं। हालांकि यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक टीजर लोगों की भावनाओं को प्रभावित करने के लिए प्रकृति में मर्मभेदी या व्यंग्यात्मक नहीं है।

प्रोमो या गानों की प्रोन्नति, फिल्में या विज्ञापन भी रेडियो कार्यक्रमों के महत्वपूर्ण पहलु हैं। प्रोमो या टीजर को किस प्रकार 'प्ले' किया जाए, इसमें संगीत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। टीजर्स और प्रोमो संक्षिप्त होने चाहिए ताकि वे प्रमुख कार्यक्रम के सार पर हावी न हो सकें।

4.4 विज्ञापन लेखन

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

3. ध्वनि का रेडियो संचार में बड़ा महत्व है जो मानसिक छवियों के.....में प्रभावी होती है।

सही/गलत बताइए

4. रेडियो के मामले में आप बोलने वाले को सुनने की बजाय देखने में सक्षम होते हैं।

विज्ञापन शब्द, वि + ज्ञापन के योग से बना है। 'वि' का अर्थ है–विशेष और 'ज्ञापन' से तात्पर्य है–जानकारी। इस प्रकार विज्ञापन का अर्थ है–किसी व्यक्ति या वस्तु के बारे में विशेष जानकारी। अंग्रेजी में इसके लिए 'Advertising' शब्द है। यह शब्द लैटिन भाषा के 'Adverter' शब्द से बना है जिसका अभिप्राय है–किसी की ओर मोड़ना। विज्ञापन के द्वारा पाठक, श्रोता या दर्शक को किसी वस्तु के बारे में विशेष जानकारी दी जाती है जिससे उसका मन उस वस्तु या सेवा की ओर मुड़ता है। उपभोक्ता को अपने उत्पाद की ओर उन्मुख करना ही विज्ञापनदाता का मूल प्रयोजन होता है। इससे विक्रय बढ़ाने में सहायता मिलती है, ख्याति का निर्माण होता है तथा साख बढ़ती है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो सकती है जब विज्ञापन का लेखन इस ढंग से किया जाए कि यह उपभोक्ता को प्रभावित ही नहीं करे अपितु उसे वस्तु या सेवा को खरीदने के लिए अनुप्रेरित भी करे। विज्ञापन लेखक को समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि के लिए विज्ञापनों का लेखन करना पड़ता है और इन विधाओं की अलग–अलग मांग होती है जिसकी पूर्ति उसे करनी होती है। यहां पर हम उन बिंदुओं की चर्चा करेंगे जो विज्ञापन लेखन के लिए आवश्यक हैं–

टिप्पणी

1. **समाचार पत्र के लिए विज्ञापन–** समाचार पत्र के लिए लिखे जाने वाले विज्ञापनों में ध्यानाकर्षण की क्षमता, गतिशीलता, तथ्यों की तर्कपूर्ण प्रस्तुति, अभिनव साज–सज्जा, विज्ञापित वस्तु की प्रमुख विशेषताओं पर बल, स्मृति को प्रभावित करने और उसमें बने रहने की क्षमता, लिखित शब्द, चित्र, ट्रेडमार्क और शीर्षक आदि का समन्वय आदि विशेषताएं होनी चाहिए।
2. **रेडियो विज्ञापन–** रेडियो विज्ञापन उत्पाद विशेष के विक्रय में सहायता पहुंचाता है। रेडियो कार्यक्रम को सुनते हुए विज्ञापन द्वारा श्रोताओं तक उत्पादक का संदेश पहुंचाया जाता है जिसका सकारात्मक परिणाम होता है। रेडियो विज्ञापन का समय के साथ संबंध है। अतः इसे ध्यान में रखकर विज्ञापन का लेखन किया जाता है। श्रोताओं की रुचि का ध्यान, वस्तु के बारे में पूर्ण जानकारी, श्रोताओं की भागीदारी, वस्तु को खरीदने की प्रेरणा, दिशा–दर्शन आदि गुण रेडियो विज्ञापन में होने चाहिए।
3. **टेलीविजन विज्ञापन–** श्रव्य–दृश्य गुणों से समन्वित होने के कारण टेलीविजन विज्ञापनों का आज महत्वपूर्ण स्थान है और दिन प्रतिदिन इनका प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। आज प्रत्येक वस्तु और सेवा का विज्ञापन इसी के माध्यम से किया जाता है। श्रव्य–दृश्य गुणों के साथ गतिशील फोटोग्राफी के कारण इसकी प्रभावोत्पादकता सर्वाधिक है। इन गुणों के कारण इसका प्रभाव मानस पट पर दीर्घ काल तक रहता है। अन्य माध्यमों में प्रस्तुत किए जाने वाले विज्ञापनों की अपेक्षा टेलीविजन के विज्ञापन बच्चों और स्त्रियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ये कभी सीधी उद्घोषणा, कभी नाट्यकृत, कभी प्रदर्शन, कभी एनीमेटड और कभी संगीतात्मक रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं।

विज्ञापन–प्रति

विज्ञापन की सफलता की पृष्ठभूमि में कॉपी अर्थात लेखन की प्रमुख भूमिका होती है। टेलीविजन के लिए कॉपी में शब्द तथा चित्र दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। इसके लिए लेखक को दो बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. उत्पाद तथा उपभोक्ता के बारे में ज्ञान तथा
2. उसके प्रस्तुतीकरण तथा तकनीक का पूरा ज्ञान।

गहन अध्ययन तथा शब्द भंडार भी लेखक की अतिरिक्त सहायता करते हैं। मनोविज्ञान का ज्ञान, विज्ञान की समझ भी लेखक की लेखन क्षमता को बढ़ा देते हैं। इन सभी के संयोग से उपभोक्ता की आवश्यकता को उभार कर उसे वस्तु खरीदने के लिए अनुप्रेरित किया जा सकता है।

4.4.1 विज्ञापन प्रक्रिया

विज्ञापन की एक विशेष प्रक्रिया है जिसका आरंभ निर्माता से होता है। निर्माता सर्वप्रथम विज्ञापन एजेंसी से संपर्क स्थापित करता है। वह कई बार अनेक एजेंसियों से संपर्क स्थापित कर विचार–विमर्श करता है और जिससे प्रभावित होता है, उसे अपने उत्पाद के लिए

टिप्पणी

विज्ञापन बनाने का कार्य सौंप देता है। निर्माता की सहमति हाथ में आते ही एजेंसी का कार्य आरंभ हो जाता है। इसे ग्राहक सेवा कहा जाता है। विज्ञापन एजेंसी के कई विभाग होते हैं। पहला विभाग शोध से जुड़ा हुआ है और जो उत्पाद विशेष से संबंधित बाजार, उसकी स्थिति तथा बाजार पर उसके प्रतिपूरक उत्पाद की स्थिति, उपभोक्ता की स्थिति का पता लगाता है ताकि उत्पादों की बिक्री के संबंध में अल्पकालीन या दीर्घकालीन कार्यक्रम और लक्ष्य निर्धारित करने में सुविधा हो। सर्वेक्षण से विज्ञापन व्यय आदि के बारे में निर्माता को परामर्श भी दिया जाता है।

दूसरे भाग में सृजन आता है जिसे 'क्रिएटिव' कहा जाता है। इसके अधीन कॉपी लेखक और कला'निर्देशक आते हैं। विज्ञापन की मांग के अनुसार वस्तु को नए ढंग में मोहक और आकर्षक शब्दों में बांधने का कार्य प्रति लेखक या कॉपी राइटर का होता है। उत्तम तकनीक से विज्ञापन को सजाने–संवारने का काम कला विभाग करता है। कला विभाग के दो अंग होते हैं–मैकेनिकल और विजुअल। किसी मीडिया से निकालने का कार्य मैकेनिकल का और दृश्यकरण का भार विजुअल विभाग को करना होता है।

एजेंसी का प्रोडक्शन विभाग विज्ञापन को आकार देता है। इसके बाद विज्ञापन को मीडिया विभाग में प्रेषित कर दिया जाता है। वहां पर प्लानिंग विभाग विज्ञापन के मीडिया को निर्धारित करता है और एक्जीक्यूटिव विभाग उसका क्लास–निर्धारित करता है। लेखा विभाग इस प्रक्रिया में आने वाली लागत और खर्चों का लेखा–जोखा रखता है।

विज्ञापन तैयार करते हुए विज्ञापन संस्थान को इस बात का ध्यान रखना होता है कि इसमें समाज के किसी वर्ग, धर्म या संप्रदाय पर किसी प्रकार की कोई टिप्पणी न हो और न ही ऐसी भाषा का प्रयोग हो जिससे विद्वेष या घृणा फैले। प्रत्येक विज्ञापन में संयत भाषा, संयत चित्रावली और संयत विन्यास के मार्ग का चुनाव करना आवश्यक होता है। ऐसा विज्ञापन उपभोक्ता की रुचियों को जाग्रत कर, उत्पाद के प्रति उसमें आकर्षण पैदा करता है और उपभोक्ता में उसे खरीदने की इच्छा उत्पन्न करता है। विज्ञापन संस्थान की सफलता विज्ञापन की मंतव्य सिद्धि में होती है।

विज्ञापन आलेखन

विज्ञापन–शीर्षक : विज्ञापन का शीर्षक सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। कॉपी राइटर को विज्ञापन का प्रारूप तैयार करते हुए सर्वप्रथम यह बात ध्यान में रखनी होती है कि वह विज्ञापन के लिए जिस शीर्षक की रचना करे वह उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करे। डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ के शब्दों में शीर्षक पूरे विज्ञापन का प्राणतत्व और तीन चौथाई प्रारूप की पूर्णता का प्रतीक होता है। शीर्षक विज्ञापन की केंद्रीय स्थिति में पूरे विज्ञापन की कथावस्तु का इस प्रकार निर्देश करता है कि वह पाठक, श्रोता या दर्शक का ध्यान आकर्षित करता है। विज्ञापन के पूरे कथ्य की समग्र व्यंजना शीर्षक में ही निहित होती है। शीर्षक लेखन में कुछ स्थितियां इस प्रकार प्रयुक्त होती हैं–

1. **ध्यानाकर्षण**–जब परिवार की सेहत का मामला हो तो मैं कभी समझौता नहीं करती।
2. **स्मरण तत्व**–विज्ञापन को स्मरण शक्ति को प्रभावित करना चाहिए।

टिप्पणी

(क) आयोडेक्स मलिए, काम पे चलिए।

(ख) लाइफबॉय है जहां तन्दुरुस्ती है वहां।

3. **विश्वास**–ये हाथ जीवन बीमा के हैं।

ये सुरक्षा के प्रतीक हैं।

4. **सुझाव**–ये बेचारा काम का मारा, इन्हें चाहिए हमदर्द का सिंकारा।

5. **कौतूहल**–यह तो मम्मी का तीस साल पुराना राज है।

विज्ञापन के उपशीर्षक– उपशीर्षक वस्तुतः प्रमुख या मूल शीर्षक के ऊपर किसी–न–किसी शीर्षक संदर्भ को लिए होता है।

विज्ञापन का विस्तार– कॉपी राइटर विज्ञापन में शीर्षक, उपशीर्षक के चुनाव के साथ विषयवस्तु का विस्तार से वर्णन या स्पष्टीकरण करता है। इसे शीर्षक और उपशीर्षक की सांकेतिकता का विस्तार और मूल कथ्य भी कहते हैं।

विज्ञापन का उपसंहार– उपसंहार में विज्ञापन–लेखक दर्शक/पाठक/श्रोता को उत्पाद को खरीदने की प्रेरणा देता है। उदाहरण देखें–

तुरंत आराम पाइए–**उपशीर्षक**।

100 नंबर घुमाइए–**शीर्षक**

जितनी जल्दी आप पुलिस को सूचित करेंगे उतनी ही जल्दी आपको सहायता मिलेगी–**विस्तार**

याद रखिए–अपनी तथा औरों की पूरी सुरक्षा कीजिए हरियाणा पुलिस–**उपसंहार**।

दृश्य प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र में कॉपी राइटर की भूमिका समाप्त होती है लेकिन वहां पर दृश्य–निर्माता (विजुअलाजर) तथा विन्यासकार (ले–आउट कलाकार) की भूमिका का परिचय प्राप्त होता है। इसमें प्रथम स्तर पर निर्माता को विज्ञापक और उत्पाद के अनुरूप कल्पना करनी आवश्यक होती है। दृश्य कल्पना पूर्ण होने पर विन्यासकार को उचित रंग और रंग–प्रभावों द्वारा संदेश और विषयवस्तु के अनुरूप रंग कल्पना का प्रयोग करना होता है। इसके लिए आवश्यक है कि दृश्य निर्माता उपभोक्ता की इच्छा, अपेक्षा तथा खरीददारी की प्रेरणा का ध्यान रखे और कला–विन्यास के क्षेत्र, माडल तथा विज्ञापन के लिए प्रयुक्त मुद्रण कला का उचित प्रयोग करे। ये सब ऐसे हों कि उपभोक्ता की स्मृति में बस जाएं।

4.4.2 विज्ञापन लेखक की विशेषताएं

विज्ञापन–लेखक को विज्ञापन का लेखन करते हुए निम्नलिखित अनिवार्य बातों का ध्यान रखना चाहिए तभी विज्ञापन आकर्षक, प्रभावोत्पादक तथा उपभोक्ता को वस्तु खरीदने की प्रेरणा देने वाला बन सकेगा–

1. विज्ञापन से यह सूचना उपभोक्ता को मिल सके कि उत्पाद कहां मिलेगा।
2. विज्ञापन उसे आश्वासन दे कि उत्पाद उसके लिए लाभकारी होगा।
3. विज्ञापन उपभोक्ता को उसकी रुचियों और विचारों के अनुरूप लगे।

टिप्पणी

4. उत्पाद खरीद करने की इच्छा जगाए।
5. विज्ञापन सहज और बोधगम्य हो।
6. विज्ञापन का प्रत्येक वाक्य और शब्द उपभोक्ता की रुचि के अनुकूल हो।
7. विज्ञापन की भाषा परिवेश से भिन्न न हो।
8. विज्ञापन का मूल कथ्य संतुष्टि की गारंटी देता हो।
9. विज्ञापन सांप्रदायिक सौमनस्य पर स्वाभाविक प्रभाव पैदा करे।
10. भाषा, शब्द और वाक्यांश चित्रात्मक विन्यास में टाइपोग्राफिक आकार पाकर विज्ञापन को आकर्षक और लुभावना बनाएं।

वस्तुतः विज्ञापन एक सर्जनात्मक व्यवसाय है जिसमें विज्ञापन–लेखक अपनी कल्पना को उत्पादक के लिए आलेखबद्ध कर दृश्य का निर्माण करता है और रंग योजना के साथ संबंधित स्लोगन या संदेश का सृजन करता है।

4.4.3 विज्ञापन की भाषा

संचार माध्यमों में से विज्ञापन माध्यम को जबसे व्यावसायिक रूप में स्वीकृति मिली है, उसने अपने लिए एक विशिष्ट भाषा का विकास कर लिया है जो अपने लक्ष्य अर्थात उपभोक्ता वर्ग तक बड़ी सहजता से पहुंच रही है। विज्ञापनदाता जब भी अपने विज्ञापन के लिए अनुबंध करता है तो उसे इस बात का ध्यान रखना होता है कि उसका विज्ञापन किस वर्ग के दर्शक अथवा श्रोता तक पहुंचना है। उसके उत्पाद के प्रचार के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाए जो सभी वर्गों के अनुकूल हो। भाषा क्योंकि अभिव्यक्ति का एक सशक्त और प्रभावशाली माध्यम है, अतः यह भाषा साहित्यिक न होकर व्यावहारिक होती है ताकि उत्पादक विज्ञापन की भाषा के माध्यम से अपने संदेश को उपभोक्ता तक प्रभावी ढंग से संप्रेषित कर सके। वह अपने उत्पाद के प्रति जनरुचि जाग्रत कर सके, उपभोक्ता के मन में खरीदने की इच्छा का सृजन कर सके, मांग में वृद्धि कर सके तथा वस्तु की खरीद के लिए ग्राहक को तैयार कर सके। विज्ञापनदाता की इच्छा की पूर्ति के लिए विज्ञापन बनाने वाले संस्थान द्वारा एक ऐसी भाषा का प्रयोग करना आवश्यक होता है जो सुझावपूर्ण हो, जीवन्त हो तथा उसे तत्काल प्रभावित कर सके। यह भाषा सामान्य न होकर विशिष्ट होती है तथा उसकी विशिष्टता व्याकरण के नियमों से मुक्त होती है। वह अपने भाव या विचार को प्रभावशाली बनाने के लिए अभिधात्मक न रहकर व्यंजनात्मक हो जाती है। ऐसी स्थिति में विज्ञापन की भाषा की विशेषताएं अलग प्रकार की होती हैं। विज्ञापन के संदेश को संप्रेषित करने के लिए भाषा के तीन रूप प्रयुक्त होते हैं–1. लिखित रूप, 2. वाचिक रूप, 3. मौखिक–लिखित रूप।

विज्ञापन की भाषा का सर्वाधिक प्रचारित रूप लिखित होता है और माध्यम प्रेस होता है। भाषा का सौंदर्य उचित शब्दों के साभिप्राय प्रयोग में अभिव्यक्त होता है। जब वह भाषा विज्ञापन में लिखित रूप में प्रयोग की जाती है तब इसका उद्देश्य विज्ञापन को स्मरणीय आकर्षक और प्रभावशाली बनाना होता है।

टिप्पणी

भाषा का दूसरा रूप है वाचिक जो लिखित नहीं होता। इस प्रकार की भाषा का प्रयोग आकाशवाणी पर प्रचारित विज्ञापनों में होता है। यह भाषा का श्रव्य रूप है। वाचिक भाषा के रूप में विज्ञापन की भाषा में शब्दों की ध्वनि का उतार–चढ़ाव, पात्रानुकूलता, संगीतमयता, नाटकीयता आदि का समन्वय किया जाता है। इससे वह कर्णप्रिय, मधुर और आकर्षक लगती है।

विज्ञापन की भाषा का तीसरा रूप उक्त दोनों भाषाओं का समन्वित रूप है। इसका प्रयोग दूरदर्शन पर संचारित विज्ञापनों में होता है। यहां पर विज्ञापन सचित्र होते हैं। अतः दोनों रूपों का प्रयोग किया जाता है। चित्र प्रस्तुति के साथ संदेश आता है। कभी विशिष्ट भाषा अंश को लिखित रूप में पर्दे पर भी दिखाया जाता है। चलचित्रों में भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है। इसे बड़े पर्दे के विज्ञापनों की भाषा कहा जा सकता है। विज्ञापन की लंबाई के अनुसार शब्द आड़े–तिरछे, छोटे–बड़े, गोल–लंबे रूप में आते हैं और आकृतियां साथ उभरती हैं।

विज्ञापन की भाषा की संरचना

विज्ञापन की विषय वस्तु को तैयार करते समय भी कॉपी–लेखक उस विज्ञापन के अनुरूप भाषा का निर्माण कर लेता है। इसमें प्रयुक्त होने वाली शब्दावली का चुनाव कल्पना के आधार पर विज्ञापन के आयामों–क्षेत्र, प्रकार लक्ष्य–श्रोता तथा शैली को ध्यान में रखकर किया जाता है। **क्षेत्र** से अर्थ है–विज्ञापन को किस वर्ग में जाना है अर्थात विज्ञान या संचार के क्षेत्र में या सामान्य क्षेत्र में। क्षेत्र के अनुसार भाषा भी परिवर्तित हो जाती है।

प्रकार से तात्पर्य है–संप्रेषण माध्यम, अर्थात विज्ञापन को समाचार पत्र में जाना है या रेडियो में या टी.वी. में। समाचार पत्र में लिखित भाषा की विशेषता होगी, रेडियो में शब्दों पर विशेष बल होगा तथा टी.वी. की भाषा में मिश्रित भाषा होगी।

शैली से अभिप्राय है–अभिधात्मक, लक्षणात्मक या व्यंजनात्मक शैली। अभिधात्मक में सीधी, सपाट और वस्तुगत शैली होती है। लक्षणात्मक में लक्षणायुक्त भाषा का प्रयोग किया जाता है। व्यंजनात्मक शैली में व्यंजना का प्रयोग किया जाता है– "मर्जी है आपकी। आखिर सिर है आपका।" लिखित रूप में भाषा की अर्थवत्ता पर वाचिक में भाषा के उतार–चढ़ाव पर तथा व्यंजनात्मक में श्रव्य–दृश्य माध्यमों के अतिरिक्त व्यंजनार्थक पर बल दिया जाता है। विज्ञापन की भाषा में औपचारिक शैली का प्रयोग नहीं होता। इसमें आलंकारिक शैली ही पाठक/दर्शक/श्रोता को आकर्षित करती है।

विज्ञापन–भाषा की विशेषताएं

विज्ञापन में सामान्य भाषा न होकर विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाता है। विशिष्ट भाषा के प्रयोग से अर्थ–विशेष प्रकट करने की क्षमता विकसित हो जाती है। विज्ञापन की भाषा में ये विशेषताएं होनी चाहिए–

1. **आकर्षण क्षमता–** इसका विज्ञापन में प्रमुख स्थान है। यदि विज्ञापन का संदेश पाठक या दर्शक का ध्यान आकर्षित नहीं करता तो विज्ञापन निरर्थक है। दर्शक

टिप्पणी

या पाठक पहले विज्ञापन की भाषा की ओर आकर्षित होता है बाद में वस्तु की ओर। इसके लिए विज्ञापनकर्ता काव्यात्मक, सूत्रात्मक व तुकात्मक शब्दों का चयन करता है; यथा–

(क) आयोडैक्स मलिए। काम पर चलिए।

(ख) सबका सपना। घर हो अपना।

(ग) जिधर से गुजरें। पीछा करें नजरें।

(घ) सौदा एक। फायदे अनेक।

(ङ) सबसे बढ़कर। सबसे बेहतर।

2. **स्मरणीयता–** दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता–विज्ञापन का याद रह जाना है। इसके लिए विशेष पदरचना या वाक्यांश बनाए जाते हैं जो सामान्य से अलग होते हैं। इसके लिए विशेष भाषा, शैली और शब्दों का चुनाव किया जाता है। यथा–

(क) सावधानी हटी। दुर्घटना घटी।

(ख) आह से आहा तक।

(ग) सवारी अपने सामान की खुद जिम्मेवार।

(घ) रुकावट के लिए खेद है।

(ङ) देगी मिर्च का तड़का। अंग–अंग फड़का।

3. **पठनीयता–** यह विज्ञापन भाषा की तीसरी विशेषता है। भाषा ऐसी होनी चाहिए जो प्रत्येक वर्ग के पाठक, दर्शक या उपभोक्ता की समझ में आ जाए। जब तक विज्ञापन की भाषा सहज रूप में पढ़कर पाठक सही अर्थ तक न पहुंचे, तब तक वह अर्थहीन होती है। विज्ञापन–लेखक का शब्द–चयन, वर्ग, आर्थिक स्तर, जीवन–स्तर के अनुरूप होना चाहिए। इसके लिए उसे विभिन्न स्रोतों से शब्दों का चुनाव करना पड़ता है। उदाहरण देखें–

(क) प्यार की मीठी भेंट.....

(ख) ये बेचारा, काम का मारा। इन्हें चाहिए सिंकारा।

4. **प्रभावोत्पादकता–** विज्ञापित उत्पाद का प्रभाव तभी उपभोक्ता पर पड़ता है जब भाषा में प्रभावोत्पादकता की क्षमता हो। वस्तु की गुणवत्ता तथा विशेषताओं को उभारने के लिए ऐसी शब्दावली, वाक्य रचना, पदबंध, मुहावरे, लोकोक्ति का प्रयोग करना जिसका पाठक/दर्शक/ श्रोता पर गहरा प्रभाव पड़े–

(क) जान है तो जहान है।

(ख) अब आएगा असली मजा।

5. **विक्रयशीलता–** उपभोक्ता को क्रय के लिए तत्पर करना विक्रयशीलता है। ऐसी भाषा का यदि प्रयोग किया जाए तो विज्ञापन लेखक का श्रम सफल हो जाता है। बाजार में उपलब्ध उत्पादों की तुलना में विज्ञापित वस्तु की गुणवत्ता और उत्तमता सिद्ध करने वाली भाषा का प्रयोग वस्तु की बिक्री को बढ़ा देता है। इसके लिए वह

टिप्पणी

आज्ञार्थक प्रश्नात्मक, व्याख्यामूलक, गुणवत्ताबोधक वाक्यांशों का प्रयोग कर खरीददार को वस्तु खरीदने के लिए प्रेरित करता है, यथा–

(क) धूम मचा दे रंग जमा दे।

(ख) क्या आपने इस्तेमाल किया?

(ग) आज ही ले आइए, अपने घर।

6. **विश्वसनीयता–** विज्ञापन के लिए सामग्री तैयार करते समय विज्ञापित की जाने वाली वस्तु के वास्तविक गुणों का उल्लेख उसकी विश्वसनीयता को बढ़ा देता है। उदाहरण देखें–

(क) मोर का वादा, दाम कम, काम ज्यादा।

(ख) इनके मजबूत दांतों का राज है एम.डी.एच. दंतमंजन।

7. **अतिप्रयोजनपरकता–** आधुनिक युग में अतिप्रयोजनपरकता के बिना काम नहीं चलता। अतः ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जिससे उत्पाद के विशिष्ट प्रयोजन को संकेत दिया जाता है; यथा–

(क) दांतों का डॉक्टर ही इससे बेहतर देखभाल कर सकता है।

(ख) कम दाम हवा ज्यादा। वोल्टाज़ का वादा।

8. **स्वच्छंदता–** कई बार विज्ञापन–लेखक वस्तु के सभी गुणों की व्याख्या के लिए और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वथा मुक्त रह कर स्वच्छंद भाषा का प्रयोग करता है। वह भाषागत नियमों, वाक्य–विन्यास तथा रूप–विन्यास के प्रयोग में भी स्वच्छंदता ले आता है–मेरे सौंदर्य का पर्याय लक्स साबुन।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त कई विज्ञापनों में परंपरामुक्ति के उदाहरण भी मिलते हैं; जैसे–

(क) खुजली सताए तो खुजलाइए मत।

(ख) यही समय है, पीजिए।

विज्ञापन भाषा का संरचनात्मक रूप–विज्ञापन

निर्माणकर्ता विज्ञापन की रचना करते समय सचित्र आलेखन के साथ संदेश लेखन के लिए विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है। वह तभी उत्तम परिणाम प्राप्त कर सकता है जब प्रयुक्त भाषा तथा वाक्य–संरचना का कौशल प्रदर्शित किया जाए। इसके लिए विज्ञापन की भाषा में वाक्य संरचना का रूप इस प्रकार रहता है– 1. साधारण वाक्य, 2. मिश्र वाक्य, 3. संयुक्त वाक्य, 4. उपवाक्य, 5. विशेषण उपवाक्य, 6. क्रियाविशेषण वाक्य।

1. **साधारण वाक्य–** विज्ञापित वस्तु में साधारण वाक्य वैयाकरणिक दृष्टि को एक उद्देश्य लिए होता है। विज्ञापन–निमार्णकर्ता ऐसे वाक्यों की संरचना से विज्ञापन के कलेवर, शीर्षक पंक्ति, उपशीर्षक तथा संकेतीय पंक्ति (सिग्नेचर लाइन) के निर्धारण में प्रयोग करता है; यथा–

टिप्पणी

(क) चलने में हल्की और भरोसेमंद है।

(ख) कपड़ों में धूप सी सफेदी लाए।

2. **मिश्र वाक्य–** विज्ञापनकर्ता संदेश–लेखन के लिए कुछ ऐसे वाक्य प्रयुक्त करता है जिसमें मुख्य उद्देश्य और विधेय के अतिरिक्त एकाधिक क्रियाएं प्रयोग में लाई जाती हैं। इसमें एक वाक्य प्रमुख और दूसरा उसका आश्रित उपवाक्य होता है। उदाहरण देखें–

(क) बच्चों की पढ़ाई या सेहत का मामला हो तो, मैं कोई समझौता कभी नहीं करती।

(ख) मसूढ़ों को संकुचित करे, दांतों की सड़न रोके।

3. **संयुक्त वाक्य–** साधारण और मिश्र वाक्यों का व्याकरणिक दृष्टि से प्रयोग संयुक्त वाक्य कहलाता है जिसका प्रयोग विज्ञापनकर्ता विज्ञापन की विषयवस्तु के आलेखन में विस्तार के लिए करता है। उदाहरण प्रस्तुत है–

(क) प्राकृतिक कोमलता से गोरा बनाए.....ऐसा कि सभी को नजर आए..... फेयर एंड लवली.....गोरेपन की क्रीम।

4. **उपवाक्य–** विज्ञापित वस्तु के उल्लेख और विस्तार के लिए विज्ञापनकर्ता मिश्र वाक्य का प्रयोग करते समय उपवाक्य का भी उपांग रूप में प्रयोग करता है; यथा–

(क) .....सरदर्द हटाए, मुस्कान जगाए

(ख) क्योंकि सिर्फ एस्प्रो ही माइक्रोफाइण्ड है।

5. **विशेषण उपवाक्य–** विज्ञापित वस्तु की विशेषता या गुणों की व्याख्या के लिए विशेषण उपवाक्य का प्रयोग किया जाता है। ये विशेषण उपवाक्य 'जो', 'जिसमें', जिसके, 'जैसे संबंधवाचक प्रयुक्त होते हैं और व्याख्या बोधक व गुण निर्देशक होते हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(क) एक ऐसा पारिवारिक साबुन है जो त्वचा के कीटाणुओं को नष्ट करता है।

(ख) एकमात्र टूथपेस्ट जिसमें सदियों से आजमाया हुआ लौंग तेल है।

6. **क्रिया–विशेषण उपवाक्य–** विज्ञापित वस्तु का कार्यकाल तथा उसकी उपयोगिता और प्रयोग का कारण बताने के लिए क्रिया–विशेषण उपवाक्य का प्रयोग किया जाता है जो मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बताते हैं; जैसे–जब भी खरीदें सर्वोत्तम ही खरीदें। यहां पर कालवाचक क्रिया–विशेषण के रूप में 'जब' का प्रयोग है। कारणवाचक क्रिया विशेषण में 'क्योंकि' का प्रयोग किया जाता है– निरमा टिकिया ज्यादा चलती है क्योंकि कम गलती है।

क्रियाविहीन वाक्य संरचना

विज्ञापनों में वाक्य संरचना की दृष्टि से अधिकतर क्रियाविहीन वाक्यों का प्रयोग बहुलता से होता है। तकनीकी दृष्टि से विज्ञापन में शीर्षक प्रायः क्रियाविहीन रहता है। संज्ञा–विशेषण

टिप्पणी

पदबंधों की प्रचुरता होने के कारण विज्ञापन में क्रिया–प्रयोग न्यूनतम हो जाता है। लिखित विज्ञापनों में यह क्रियाविहीनता इसलिए होती है क्योंकि विशेषणों की बहुलता होती है। क्रियाविहीनता से वाक्य संक्षिप्त और क्षिद्र हो जाते हैं। उदाहरण देखें–

1. भव्य साड़ियों की सेल
2. बी.पी.एल. : सॉलिड स्टेट टी.वी.
3. वी.आई. ब्रीफकेस
4. सर्दी में गर्मी का अहसास
5. बिल्कुल सोने जैसा खरा
6. शेर दिल इन्सानों के लिए कड़क चाय
7. कीमती ही सही झंडू स्पेशल च्यवनप्राश
8. केल्विनेटर–इसकी ठंडक बेमिसाल

इस प्रकार विज्ञापनकर्ता वाक्य–संरचना के विविध रूपों के माध्यम से उपभोक्ता या पाठक या श्रोता का ध्यान आकर्षित कर वस्तु की आवश्यकता निर्मित करके उसे खरीदने के लिए उत्प्रेरित करता है।

4.4.4 विज्ञापन का वर्गीकरण

बाजारीकरण के इस दौर में विज्ञापनों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। अच्छे से अच्छा उत्पाद विज्ञापनों का सहारा लिए बिना बेचा नहीं जा सकता। आज लोगों की सोच बदल चुकी है, जिसके आधार पर जिस उत्पाद का जितना बड़ा विज्ञापन उस उत्पाद की बाजार में उतनी ही मांग। विज्ञापनों के प्रकारों में अग्रलिखित स्वरूप शामिल हैं–

1. **वर्गीकरण विज्ञापन–** इस प्रकार के विज्ञापनों में खोए हुए व्यक्तियों की सूचनाएं, खोई हुई वस्तुओं के विषय में जानकारी, कार, मकान, दुकान, मशीन जैसी वस्तुओं को खरीदने और बेचने के विज्ञापन आते हैं।
2. **संस्थागत विज्ञापन–** कभी–कभी सरकारी विभागों व्यवसायों, निजी संस्थाओं, राज्य सरकारों, शैक्षिणक व धार्मिक संस्थाओं के द्वारा अपने कामकाज को प्रचारित करने के लिए विज्ञापन दिए जाते हैं।
3. **प्रदर्शन विज्ञापन–** इस प्रकार के विज्ञापनों में परिवार नियोजन के समर्थक तथा तंबाकू और शराब के विरुद्ध विज्ञापन प्रकाशित किए जाते हैं।
4. **प्रशासन संबंधी विज्ञापन–** नागरिकों को आवश्यक सूचनाएं देने के उद्देश्य से प्रशासन के द्वारा समय–समय पर विज्ञापन छपवाए जाते हैं। इन विज्ञापनों में कर्फ्यू, आपातकालीन जैसी सूचनाएं शामिल होती हैं।
5. **व्यापारिक विज्ञापन–** उत्पादों की बिक्री को बढ़ावा देने के लिए व्यापारिक विज्ञापन दिए जाते हैं।
6. **व्यवसाय या नौकरी से संबंधित विज्ञापन–** इस प्रकार के विज्ञापनों में नौकरी के लिए सूचनाएं दी जाती हैं। सरकारी और गैर सरकारी दोनों तरह के विज्ञापन दिए जाते हैं।

टिप्पणी

4.4.5 विज्ञापन का महत्व

यह 21वीं सदी का युग है और विज्ञापन उतना ही पुराना है जितना वाणिज्य। इसकी शुरुआत सभ्यता के दौर में तब हुई थी, जब कृषक अपने उत्पाद व शिल्पकार अपने सामान के व्यापार की शुरुआत करने लगा था। वस्तुओं के आदान–प्रदान या वस्तु विनियम के दौर से ही विज्ञापन का प्रयोग वस्तु विशेष की तरफ ध्यान आकर्षित करवाने, ग्राहकीयता तथा बिक्री बढ़ाने के कार्य के लिए होता आ रहा है। चिह्न, प्रतीक, ढिंढोरा आदि के शुरुआती दौर से बहुत आगे बढ़ते हुए निःसंदेह आज विज्ञापन एक पूर्ण विकसित उद्योग के रूप में उभरा है। विज्ञापन के बारे में प्रलोभकारी, भ्रामक, झूठी दिलासा देना, दिखावा करना आदि कई आलोचनाओं के साथ–साथ प्रशंसाएं भी अकसर होती रहती हैं, लेकिन इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि 21वीं सदी का आधुनिक समाज विज्ञापन के मायावी जाल में फंसता जा रहा है। किसी वस्तु, सेवा या विचार के प्रचार–प्रसार से लेकर चुनावों में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता की प्रतिष्ठा बढ़ानी हो तो विज्ञापन का सहारा लिया जाता है। विज्ञापन का साम्राज्य घर के अंदर और बाहर सभी जगह व्याप्त है। रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, सिनेमा घर से लेकर ऊंचे–ऊंचे भवनों पर, दिवारों पर तथा सड़कों के दोनों तरफ विज्ञापन अपनी पहुंच बनाए हुए हैं। कोई वस्तु या सामान चाहिए तो उसकी जानकारी हमें विज्ञापन से मिलती है। विज्ञापन लोगों को दांपत्य सूत्र में बांधने में सहायक है। यह हमें कपड़े पहनाता है। क्या खाना खाया जाए एवं किन साधनों से पकाया जाए, यह भी विज्ञापन ही तय करवाता है। एक जगह से दूसरी जगह आने–जाने के साधनों की जानकारी देता है। और तो और, नौकर चाहिए या नौकरी, तब भी हमें विज्ञापन का सहारा लेना पड़ता है। निःसंदेह विज्ञापन आज प्रचार व प्रसार का एक सर्वव्यापी व शक्तिशाली माध्यम बन चुका है। सारे जनसंचार माध्यमों (समाचार पत्रों से लेकर इंटरनेट तक) की मुख्य आमदनी विज्ञापन से होती है। विज्ञापन केवल धनार्जन ही नहीं करता, बल्कि सामाजिक परिवर्तन भी करता है। इसके द्वारा लाखों–करोड़ों लोगों में नए विचारों का सृजन भी होता है; यथा परिवार–नियोजन, कृषि–कार्यक्रम तथा स्वास्थ्य संबंधी विज्ञापन से देश की उन्नति होती है इससे लोगों का दृष्टिकोण बदलता है और बदला है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

5. विज्ञापन की एक विशेष प्रक्रिया है जिसका आरंभ..... से होता है।

सही/गलत बताइए

6. सही विज्ञापन का संदेश पाठक या दर्शक का ध्यान आकर्षित नहीं करता तो विज्ञापन निरर्थक है।

4.5 फीचर लेखन

नवीन चंद पंत के शब्दों में, "फीचर आधुनिक लेखन विधा है, जो पत्रकारिता के क्षेत्र में विकसित, पल्लवित और समृद्ध हुई है।"

सविता चड्ढा के शब्दों में, "कोई भी विशेष व प्रधान लेख जो किसी समाचार पत्र व पत्रिका में किसी भी प्रकरण संबंधी विषय पर प्रकाशित होता है उसे फीचर या प्रधान लेख कहते हैं।" फीचर को मनोरंजक ढंग से लिखा गया प्रासंगिक लेख भी कहा जाता है।

डॉ. हरिमोहन के शब्दों में "यह अभिव्यक्ति का ऐसा रूप है जिसमें ज्ञान, कल्पना, यथार्थ, घटना, चमत्कार, कौशल, समस्या आदि सभी कुछ भावना प्रधान एवं रसमय गद्य में बना हुआ रहता है। दृश्यात्मकता इसका आवश्यक गुण है।"

टिप्पणी

व्युत्पत्तिपरक अर्थ– फीचर एक बहुअर्थी शब्द है, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न अर्थ व्यक्त करता है। फीचर के शाब्दिक अर्थ हैं– आकृति, मुखाकृति, ध्यान, आकृष्ट कर लेने वाली विशिष्टता, खास बात प्रदर्शित करना तथा प्रमुखता देना आदि। व्युत्पत्तिक दृष्टि से यह शब्द फीट (Feat) तथा फेच (Fetch) शब्दों से निर्मित है। 'फीट' के अर्थ हैं– महान कार्य, बड़ा कार्य, बहादुरी तथा कौशल से भरा काम आदि जबकि 'फेच' के मूलार्थ हैं– खींचना, ऊपर उठाना तथा लाना आदि।

परिभाषा– फीचर को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से परिभाषित किया है। यथा–

'फीचर राइटिंग फॉर न्यूज पेपर्स' में **डेनियल आर. विलियमसन** के अनुसार "फीचर ऐसा रचनात्मक तथा कुछ स्वानुभूतिमूलक लेख है जिसका गठन घटना, स्थिति अथवा जीवन के किसी पक्ष के संबंध में पाठक का मूलतः मनोरंजन करने एवं सूचना देने के उद्देश्य से किया गया हो।"

डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी ने फीचर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "इसमें सूचना होती है, पर यह रिपोर्ट या खबर नहीं है। बातचीत होती है, पर इंटरव्यू या चर्चा नहीं है। शोध संदर्भ ज्ञान का समावेश है, पर लेख नहीं है। समस्या का विश्लेषण होता है, पर संपादकीय नहीं है। अनुभव व दृश्य बोध का पूरा उपयोग होता है, पर संस्मरण या रिपोर्ताज नहीं है। व्यक्ति केंद्रित फीचर भी होते हैं पर जीवनी नहीं हो जाते।"

अतः निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है– "एक फीचर वह सीमा रहित लेख है जिसमें रोचकता, कल्पना व मनोरंजकता के साथ किसी घटना, विषय का चित्र सुसंबद्ध तरीके से संपूर्ण जानकारी के साथ प्रस्तुत किया गया हो।"

4.5.1 फीचर लेखन के सहायक तत्व

रोचकता तथा आकर्षण, फीचर का सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण होता है, अतः फीचर को रोचक और मनोरंजक बनाने के लिए निम्नांकित सहायक तत्त्वों पर ध्यान देना चाहिए–

1. फीचर लेखक को निश्चित और उपयुक्त के साथ–साथ अपनी विशिष्टता का ध्यान भी रखना चाहिए। किसी तथ्य अथवा विचार को छिपाकर, घुमा–फिरा कर या बार–बार प्रकट नहीं करना चाहिए। लेखन–शैली को विशेष रूप से सहज और सरल रखते हुए आदि से अंत तक विषय की सीमा के भीतर रहना चाहिए।
2. फीचर लेखक को अपने पाठकों को सतर्क रखने का प्रयास करना चाहिए ताकि पाठक आगे आनी वाली बातों को पढ़ने के लिए उत्सुक हों।
3. फीचर पाठक के मन में जिज्ञासा तथा अभिरुचि उत्पन्न करने में सक्षम होना चाहिए। कभी–कभी मनोरंजक घटना से प्रारम्भ करने अथवा नाटकीय पुट देने से अच्छा प्रभाव पड़ता है। फीचर लिखने की सफलता का महत्वपूर्ण तत्त्व अच्छा प्रारम्भ और आनंदमय अंत होता है।

टिप्पणी

4. फीचर को रोचक और आकर्षक बनाने के लिए प्रतिक्रियाओं और घटनाओं का उचित प्रयोग करें। कुछ प्रसिद्ध लोगों के वाक्यों और कथनों को उद्धृत किया जा सकता है। जो बातें प्रसिद्ध और बड़े लोग कह गए हैं पाठक उन्हें पढ़ना पसंद करते हैं। पाठकों को अखरने वाली शब्दावली का प्रयोग न करें।
5. हास्य रस के प्रयोग से फीचर को सुन्दर बनाया जा सकता है। परंतु यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हास–परिहास श्लील होने के साथ–साथ शिष्ट भी हो तथा लेखक के विचार सटीक और सूझ–बूझ युक्त हों।
6. फीचर गद्य–गीत होता है, अतः उसे छोटा, सरस और गम्भीर्य–मुक्त रखें। वह निश्चय ही रोचक और धमाकेदार होना चाहिए। फीचर मुख्यतः विनोद और आनंद के लिए ही लिखा जाना चाहिए।
7. पुरानी पत्रिकाओं का अध्ययन करके आवश्यक सामग्री निकाली जा सकती है। कभी–कभी पुराने विचार भी मन में आ जाते हैं और नए पुराने के मेल से नया फीचर तैयार हो जाता है।
8. लेखक का अनुभव और कल्पना फीचर के महत्वपूर्ण तत्व हैं। इनसे बहुत सारे फीचर स्वतः ही निस्सृत हो जाते हैं।

4.5.2 फीचर लेखन के प्रमुख चरण

फीचर लिखने की प्रक्रिया अथवा फीचर लेखन के विभिन्न चरण निम्नानुसार हैं–

1. **विषय का चुनाव–** फीचर का विषय सामान्य भी हो सकता है और विशिष्ट भी। विषय चाहे जैसा भी हो वह अनिवार्य रूप में लोकरुचि से संबद्ध कल्याणकारी, शिक्षाप्रद, नवीन जानकारी से भरपूर और पाठकों में जिज्ञासा जगाने वाला होना चाहिए। विषय–चयन में उस पत्र–पत्रिका की रीति–नीति और दृष्टिकोण का ध्यान भी रखना चाहिए।
2. **विषय से संबद्ध सामग्री का आकलन–** फीचर की सामग्री एकत्रित करने के लिए लेखक को पूरी तैयारी के साथ उस स्थान अथवा घटना स्थल पर जाना चाहिए जहां से सामग्री उपलब्ध होने की अधिकाधिक संभावना हो। घटना की सही और पूरी जानकारी के लिए निरीक्षण परीक्षण के अतिरिक्त आस–पास के लोगों से मिलकर घटनाओं की सत्यता, प्रतिक्रिया आदि का पता करना चाहिए। सभी बातें संक्षेप में नोट की जानी चाहिए और आवश्यक चित्र ले लेने चाहिए।
3. **अभिव्यक्ति प्रक्रिया अथवा फीचर–** फीचर से संबद्ध सभी प्रकार की सामग्री संकलित करके लेखन–कार्य आरम्भ किया जाता है हालांकि लेखन–प्रक्रिया के इस पड़ाव के कोई सामान्य–नियम नहीं हैं, तथापि आरंभ, मध्य और अंत पर ध्यान देना चाहिए।
4. **शीर्षक का निर्धारण–** प्रायः लेखक फीचर लिखने से पहले ही शीर्षक का निर्धारण कर लेते हैं। कुछ लेखक यह कार्य बाद में करते हैं। फीचर का शीर्षक यह सोचकर सावधानी से बनाना चाहिए कि यह पूरे फीचर का दर्पण हो, उसका प्राण हो।

टिप्पणी

5. **छायांकन–** फीचर लेखन में छायांकन का विशेष महत्व है। इस विधा में शब्दों के साथ चित्रों का उचित सम्मिश्रण होना अनिवार्य है। अतः फीचर के लिए सुन्दर, स्पष्ट, विषय–वस्तु से संबद्ध, जीवंत, परिपूर्ण चित्र खींचने चाहिए और मुद्रण की सुविधानुसार उन्हें प्रकाशित करनी चाहिए।

फीचर (रूपक) का वर्गीकरण

फीचर को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **समाचार रूपक–** ये रूपक अपने–आप में पूर्ण कथा हैं। ये समाचार के तथ्यों एवं विवरण को साथ रखते हैं। अंग्रेजी पत्रकारिता में इसका व्यापक प्रचलन होने के कारण यह प्रतिरूप ही रूपक का पर्याय बन गया है। रूपक में लेखक घटित घटना के किसी महत्वपूर्ण अंग पर ध्यान केंद्रित कर उसे इस तरह प्रस्तुत करता है कि वह अपने नवीन रूप में समाचार से भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेता है।
2. **मानवीय रुचि विषयक रूपक–** मानवीय रुचि के रूपक अधिकांशतः करुण एवं शान्त रस की उद्रेक घटनाओं से संबंधित होते हैं, क्योंकि संयत शैली हास्य–व्यंग्य की उद्भावना अपेक्षाकृत एक कठिन प्रक्रिया है। मानवीय रुचि विविधतामय है।
3. **व्याख्यात्मक रूपक–** ये रूपक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रतिदिन की समस्याओं को उनकी पृष्ठभूमि और भावना के परिवेश के साथ उनकी व्याख्या कर पाठक का मार्गदर्शन करते हैं। इस तरह जिन रूपकों में घटना अथवा तथ्यों की व्याख्या पर विशेष ध्यान दिया जाता है, उसे व्याख्यात्मक रूपक कहते हैं।
4. **पार्श्वचित्र रूपक–** इस प्रतिरूप के अंतर्गत व्यक्ति–रेखाचित्र और महत्वपूर्ण स्थान का स्थूल–चित्रण दोनों का समावेश होता है। अपने इस रूप में वह व्यक्ति–रेखाकृति से व्यापक बन जाता है। व्यक्ति–रेखाचित्र के अंतर्गत मृत एवं जीवित विशिष्ट व्यक्तियों पर रूपक की रचना की जाती है, जो निष्पक्षता या विशिष्टता के कारण समाज में विशेष स्थान बना लेते हैं।
5. **आत्मचरितात्मक रूपक–** इस श्रेणी के रूपकों में लेखक व्यक्तिगत अनुभवों और मानवी दस्तावेजों के तटस्थ मूल्यांकन को प्रमुखता देता है। जब यह प्रतिरूप समाचार रूपक के साथ परस्पर व्याप्त हो जाता है, तब कभी–कभी कुछ लेखक घनिष्ट वैयक्तिक प्रकरणों को भी अभिव्यक्ति देते हैं। इसमें लेखक व्यक्तिनिष्ठ रूप से जीवन के ऐसे प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण कर सकता है जो सामान्य रूप से जनता के सम्मुख न आए हों। इस रूप में यह 'आत्म स्वीकृति कथा' का स्वरूप ले सकता है।
6. **ऐतिहासिक रूपक–** ऐतिहासिक रूपकों में इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों, घटनाओं एवम् स्मारकों का मानवीय अभिरुचि के अनुकूल विवरणात्मक आलेखन रहता है। इस अभिरुचि के आधारभूत कारण निम्नवत् हैं–
   (क) नियतकालिकता
   (ख) अद्वितीयता
   (ग) प्राचीन इतिहास पर नूतन दृष्टि

टिप्पणी

(घ) लोकप्रिय विश्वासों का प्रतिपादन अथवा खंडन

(ङ) ऐतिहासिक व्यक्तियों के संदर्भ में परबोध–वृद्धि

7. **यात्रा रूपक–** यात्राएं ज्ञानार्जन और मनोरंजन दोनों का साधन हैं। मनुष्य में अपने अनुभव से परे ज्ञान के बारे में जानने की उत्कट लालसा रहती है। यात्रा–वृत्तांत उसकी इसी वृत्ति को संतुष्ट करते हैं। अतः लोकप्रिय है। इस श्रेणी के रूपकों का लेखक किसी स्थान विशेष के दर्शनीय स्थलों, वहां के लोगों और उनके रहन–सहन के संदर्भ में आवश्यक एवं विशिष्ट जानकारी मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत कर पाठक के ज्ञान को बढ़ाता है।

8. **विज्ञान रूपक–** जीवन को प्रभावित करने वाले विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे नित्य नवीन आविष्कारों के प्रति लोगों की अभिरुचि में वृद्धि हुई है। पत्रकारिता का लक्ष्य सामान्य जन को नवीन समाचारों से परिचित कराना है। विज्ञान–रूपक भी इसी लक्ष्य की पूर्त्ति करते हैं। समाचार पत्रों में विज्ञान विषयक समाचार तथा सामग्री के प्रकाशन से पत्रकार, वैज्ञानिक और पाठक एक–दूसरे के निकट आए हैं।

9. **खेलकूद तथा क्रीड़ा रूपक–** खेलकूद तथा क्रीड़ा रूपक में किसी खेल का विवरण, पूर्व इतिहास, खिलाड़ियों के संस्मरण, उनके चित्र, खेल शैली सुधारने के निर्देश, रोचक ढंग से प्रस्तुत किए जाते हैं। खेलकूद समाचार में तकनीकी शैली के कारण अरुचि नहीं होती है। इनके लिए आवश्यक है कि लेखक को संबंधित पूर्व इतिहास, कीर्तिमान, आयोजन का पूर्ण विवरण एवं नियमों का ज्ञान भली–भांति होना चाहिए।

10. **साक्षात्कार रूपक–** साक्षात्कार या समालाप, रूपकों के लिए किसी निर्धारित विषय पर वांछित सामग्री संचयन का एक साधन है। साक्षात्कार विशिष्ट एवं सामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों से किया जा सकता है। महत्वपूर्ण व्यक्तियों से भेंटवार्ता का अर्थ है– महत्वपूर्ण समाचारों की उपलब्धि।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

7. लेखक का अनुभव और कल्पना..... के महत्वपूर्ण तत्व हैं।

सही/गलत बताइए

8. फीचर की सामग्री एकत्रित करने के लिए लेखक को पूरी तैयारी के साथ उस स्थान अथवा घटना स्थल पर जाना चाहिए जहां से सामग्री उपलब्ध होने की अधिकाधिक संभावना हो।

4.6 पटकथा लेखन

टेलीविजन कार्यक्रमों का उत्पादन आम तौर पर स्टूडियो सेट में किया जाता है। एक पटकथा लेखक की पटकथा कैमरा शाट्स के साथ मेल खाती है। टेलीविजन का परदा छोटा होने के कारण मिड–शॉट और क्लोज अप की जरूरत होती है। एक पटकथा लेखक उन भावनाओं, अनुभवों और अन्य एक्शनों की कल्पना करता है जिन्हें वह डायलॉग के माध्यम से प्रदर्शित करता है। ज्यादातर धारावाहिकों या सीरियलों की पटकथा लेखकों की एक टीम के द्वारा शूटिंग के दौरान पुनः लिखी जाती है। ऐसी पटकथा में दृश्यों, पात्रों और उनके संवाद, उनके द्वारा किए जाने वाले एक्शन और कभी–कभी कैमरों की स्थिति और शॉट विवरण का वर्णन होता है। शीट के शीर्ष पर प्रत्येक दृश्य के लिए एक Slug लाइन होती है जिसका निर्देशों और मंच निर्देशन द्वारा अनुसरण किया जाता है। इसके बाद चरित्र का नाम आता है जो संवाद के साथ मध्य में लिखा होता है। एक अन्य प्रारूप है प्रत्यक्ष

टिप्पणी

विभाजन जिसमें शीट के बाईं ओर कैमरा निर्देशों सहित दृश्य का विवरण दिया होता है और दाईं ओर संवाद के अनुसार चरित्र और एक्शन के बारे में विवरण दिया गया होता है। इस प्रकार के प्रारूप को दोहरे–कॉलम वाली पटकथा प्रारूप कहा जाता है जहां बाईं ओर के कॉलम में कैमरा शॉट्स, विडियो टेप और दृश्य शामिल होते हैं जिन्हें दर्शक देख सकता है। दाईं ओर के कॉलम में वे सब शामिल होते हैं जिन्हें दर्शक सुन सकता है; जैसे कथन, संगीत, आवाजें और ऑडियो संकेत।

4.6.1 दृश्य के लिए लेखन

एक चित्र अथवा दृश्य एक स्थिर छवि है जिसमें एक निश्चित मूड, एक्शन, कोई अवसर अथवा घटना समायी होती है। यह लोगों का समूह, वस्तुएं, एक व्यक्ति या एक स्थान हो सकता है। दृश्यों के लिए लिखना एक चुनौती भरा काम है। प्रिंट माध्यम में चित्र के नीचे चित्र का परिचय करवाता या व्याख्या करता शीर्षक या कैप्शन हो सकता है। शीर्षक लिखते समय ध्यान रखना चाहिए कि शीर्षक संक्षिप्त और सटीक हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि शीर्षक केवल सूचनात्मक होना चाहिए। यह आकर्षक और चित्र को समझाने वाला होना चाहिए। शीर्षक चित्र की मनोदशा को दर्शाने और इसके विषय में जानकारी देने वाला होना चाहिए। कई बार शीर्षक तस्वीर के पीछे की कहानी सुनाते हैं। इस प्रकार यह पाठक का ध्यान खींचते हैं और चित्र के पीछे के मुद्दे को अधिक प्रभावी ढंग से पेश करते हैं। यह सदैव कहा जाता है कि एक चित्र हजारों शब्दों के समान होता है जो आंशिक रूप से सच है। तस्वीर का शीर्षक या इसके नीचे लिखा हुआ इसे अधिक मूल्यवान बना देता है।

टेलीविजन में चित्र के लिए लेखन का पूरी तरह से एक अलग अर्थ है। यहां स्थिर चित्रों का असेंबल आमतौर पर एक समाचार कार्यक्रम या एक प्रोमो प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस असेंबल अथवा मोंताज में इन स्थिर चित्रों का कोई चरित्र नहीं होता परंतु वे पटकथा के द्वारा उन्हें एक चरित्र व अर्थ प्रदान किया जाता है। यह पटकथा संक्षिप्त होती है, दृश्यों और कार्यक्रमों की समान रूप से पूर्ति करती है। स्थिर चित्र जीवंत बन जाते हैं क्योंकि शब्दों के द्वारा उन्हें गति प्रदान की जाती है। उदाहरणस्वरूप भारतीय संसद पर होने वाले आतंकवादी हमले को स्थिर चित्रों द्वारा ही बताया गया था।

4.6.2 वीडियो के लिए लेखन

वीडियो लेखन एक मुश्किल कार्य है। वीडियो के लिए लिखते समय हमें यह पता होना चाहिए कि हम जो लिख रहे हैं उसका प्रारूप क्या है। यदि यह वृत्त है तो इसकी पटकथा शैली, अलग होगी। नाटक लेखन की अलग शैली होगी। नाटक में संवाद महत्वपूर्ण होते हैं। लक्षण वर्णन की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। बैकग्राउंड संगीत और विराम लेना भी महत्वपूर्ण है। टी.वी. समाचार लेखन के लिए पूरी तरह से एक अलग शैली की आवश्यकता है।

मोटे तौर पर वीडियो के लेखन के लिए निम्नलिखित तत्वों की आवश्यकता होगी–

1. **अनुक्रमण (सीक्वेंसिंग)**–वीडियो लेखन की दिशा में पहला कदम है वीडियो फुटेज को एक अनुक्रम में डालना। पटकथा को या तो पहले लिखा जाता है और

टिप्पणी

उसके अनुसार वीडियो को समायोजित किया जाता है अथवा वीडियो को पहले देखा जाता है, उसका मूल्यांकन किया जाता है, उसे एक क्रम में डालकर फिर पटकथा लिखी जाती है।

वृत्तचित्र और टी.वी. समाचारों के लिए यह बेहतर है कि हमारा एक व्यापक विचार हो कि हमारी पटकथा कैसे आगे चलेगी और इसे अंतिम रूप तभी दिया जाएगा जब हम वीडियो को देख लेंगे और उसे एक क्रम में डाल देंगे। अतः पटकथा को अंतिम रूप देने का कार्य सबसे अंत में किया जाना चाहिए।

2. **परिचय (इंट्री)–** दृश्य और विषय को प्रस्तुत करना आवश्यक है अन्यथा पूरे वीडियो को गलत समझा जा सकता है। परिचय संक्षिप्त होना चाहिए वीडियो के प्रारूप को ध्यान में रखते हुए परिचय अलग–अलग तरीके से लिखे जाने चाहिए। यह उपलब्ध फुटेज के आधार पर नाटकीय, भावनात्मक, प्रभावी अथवा स्टीक हो सकता है।

3. **लक्षित दर्शकगण–** दर्शकगण बहुत महत्वपूर्ण हैं। जिस भाषा और शैली का चुनाव हम करते हैं वह दर्शकों की मांग और स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। यदि वीडियो का लक्ष्य आम जनता तक पहुंचना है तो हम कठिन शब्दों और साहित्यिक भाषा का उपयोग नहीं कर सकते। यही कारण है कि अधिकांश चैनलों ने 'हिंग्लिश' का उपयोग शुरू कर दिया है क्योंकि उनके लक्षित दर्शकगण नियमित रूप से मध्यमवर्ग की शहरी जनता है। टी.वी. जनता का एक माध्यम है इसलिए जिस भाषा का आम लोग उपयोग करें वही भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए। यदि उन्हें भाषा समझने में कठिनाई होगी तो वे बिना समय बर्बाद किए चैनल बदल देंगे। यदि हम वृत्तचित्र के लिए लिख रहे हैं जिसे फिल्म समारोहों में भी दिखाया जाएगा, तो हमारी भाषा तब भाषा बदल जाएगी। यह शुद्ध और अधिक परिष्कृत हो जाएगी।

4. **दृश्यों को जोड़ना–** पटकथा का प्रवाह दृश्यों के अनुसार होना चाहिए। वे एक–दूसरे के साथ सही क्रम में जुड़े होने चाहिए। शॉट में किया गया एक बदलाव भी पटकथा में परिलक्षित होता है। वीडियो के मूड और गति में किया गया संक्रमण भी पटकथा में परिलक्षित होता है।

5. **वीडियो में अर्थ और मूल्य जोड़ना–** वीडियो में वहां पहले से ही क्या है, पटकथा अभी यह बताने वाली नहीं होनी चाहिए, यह उस वीडियो के पीछे की कहानी, पृष्ठभूमि और तथ्यों को अधिक व्यक्त करने वाली होनी चाहिए। वास्तव में, कई बार, पटकथा एक वीडियो को काफी दिलचस्प बना सकती है। इसका जीता–जागता उदाहरण है एक वीडियो सीरियल American Furriest Videos. कार्यक्रम में कुछ बहुत ही सामान्य होम वीडियो को बुद्धिमान पटकथा और संपादन के द्वारा हास्यास्पद वीडियो में बदल दिया गया है।

6. **शब्दों, दृश्यों और चुप्पी के बीच एक संतुलन कायम करना–** पटकथा दृश्य पर प्रबल नहीं होनी चाहिए। कई बार बहुत अधिक वॉइस ओवर व संवाद वीडियो

टिप्पणी

के प्रभाव को कम कर देते हैं। एक कॉपी लेखक को दृश्यों की समझ ऐसी होनी चाहिए कि उसे पता हो कि कहां मौन अधिक प्रभावी होगा। उसे पटकथा में अत्यधिक तथ्यों, डेटा या जानकारी की भरमार नहीं करनी चाहिए। अत्यधिक भरमार के फलस्वरूप ये दर्शकों को भ्रमित कर सकते हैं और वीडियो अपनी प्रभावशीलता को खो देगा।

7. लेखक को यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि टी.वी. जनसंचार का लगभग एक पूर्ण माध्यम है। यह ऐसा माध्यम है जिसे संचार में सरल और संक्षिप्त किए जाने की आवश्यकता है। वह व्यक्ति जो इस लक्ष्य को हासिल कर सकता है या हासिल करने को तैयार है, वह एक अच्छा टी.वी. लेखक हो सकता है।

4.6.3 शब्दों के लिए संदर्भ दृश्य

दृश्यों और शब्दों के बीच एक जटिल संबंध है। इसकी व्याख्या करना एक पांडित्य पूर्ण बात होगी। पत्रकारिता के क्षेत्र में एक साधारण तथ्य को समझना महत्वपूर्ण है कि एक दृश्य को कई तरह से समझा जा सकता है। हमारे दृश्यमान करने के तरीके एक–दूसरे से जैसे अलग होते हैं, हम अपने दृष्टिकोण के अनुसार दृश्यों को देखें। इसलिए दृश्य को परिभाषित करने और ध्यान केंद्रित करने में शब्द अनिवार्य हैं। एक बच्चे के रोने के साधारण दृश्य को अलग–अलग तरीकों से समझा जा सकता है। जब तक हम कहेंगे कि बच्चा रो रहा है क्योंकि वह भूखा है या उसे छोड़ दिया गया है, दृश्य व्याख्या के लिए खुला रहेगा। इसलिए दृश्य को अर्हता प्राप्त करने के लिए शब्दों की आवश्यकता है। इस प्रकार यदि हमारे पास शब्द हैं तो उन्हें अर्हता प्राप्त करने के लिए दृश्यों को इकट्ठा करते हैं। यह एक कठिन कार्य है। ऐसी स्थिति में, संग्रह फुटेज का पता लगाया जाता है और जरूरत हो तो ताजा दृश्यों को लोकेशन से इकट्ठा किया जाता है। इस प्रकार दृश्यों को शब्दों के साथ सज्जित किया जाता है।

4.6.4 शोध, दृश्य और उत्पादन पटकथा

टी.वी कार्यक्रमों के लिए शोध एक बहुत आवश्यक शर्त है और पूर्व उत्पादन चरण का अभिन्न हिस्सा है। शोध के बिना कोई भी टी.वी. कार्यक्रम अच्छी तरह नहीं बनाया जाता है तो उपयुक्त पात्रों, कहानी, वेशभूषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को विकसित करने के लिए एक उचित अनुसंधान किया जाता है। विभिन्न टीवी कार्यक्रम के प्रारूपों के लिए विभिन्न प्रकार के शोध किए जाते हैं। टीवी समाचार के लिए शोध दो स्तरों पर कार्य करता है–आउटडोर शोध यानी Recce और दस्तावेज आधारित शोध। न्यूज स्टोरी के मौके और स्थान की जांच, साउंड बाइट/संक्षिप्त साक्षात्कार के लिए लोगों का चयन, मौके पर ही साक्षात्कार के लिए अधिकारियों का चयन–ये सभी समाचार के लिए शोध का एक अभिन्न हिस्सा हैं। इसमें स्थान पर खबर की तलाश भी शामिल है। एक समाचार कहानी के कोण की पुष्टि करने के लिए दस्तावेज आधारित एक विषय से संबंधित तथ्यों और आंकड़ों को खोजने पर अधिक केंद्रित होता है।

टिप्पणी

एक वृत्तचित्र के लिए शोध में अधिक विस्तृत recce और दस्तावेजों का अध्ययन शामिल होता है। एक विषय की गहरी समझ विकसित करने और एक वृत्तचित्र को एक बेहतर, रचनात्मक और आसानी से प्रदर्शित करने के लिए साक्षात्कार विशेषज्ञों या विश्लेषकों की आवश्यकता हो सकती है। साक्षात्कारों या सेलिब्रिटी आधारित कार्यक्रमों के लिए साक्षात्कार देने वाले सेलिब्रिटी की पृष्ठभूमि उससे संबंधित विवादों, उसके व्यवसाय और निजी जीवन के प्रमुख बिंदुओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में प्रश्नावली की तैयारी करना भी शोध का एक हिस्सा होगा। खेल आधारित कार्यक्रमों के विशेषज्ञों की राय, अनुभव, तथ्यों और आंकड़ों पर आधारित एक शोध की आवश्यकता होती है। लोग खेल आधारित कार्यक्रम केवल इसलिए देखते हैं क्योंकि उन्हें खेल हस्तियों, उनके अनुभवों और उस विशेष खेल की पृष्ठभूमि के बारे में अधिक जानने को मिलता है। इसलिए इन सब बातों की अच्छी तरह से छानबीन करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

दृश्यावलोकन विजुअलाइजेशन एक टेलीविजन के संबंध में दर्शकों के दृष्टिकोण को संदर्भित करता है। दृश्यावलोकन उस तरीके से निर्धारित किया जाता है जिस प्रकार एक प्रोग्राम को जिसमें तथ्य और समग्र सामग्री शामिल होती है, प्रस्तुत किया जाएगा। उत्पादन पटकथा टीवी कार्यक्रम के उत्पादन मंच का एक बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। एक कार्यक्रम उत्पादन के स्तर पर तब पहुंचता है जब सभी कुछ तैयार हो और उत्पादन टीम फ्लोर पर जाने अर्थात कार्यक्रम को शूट करने के लिए तैयार हो। यह वह स्तर है जहां कार्यक्रम आकार लेता है और निर्देशक को स्पष्ट जानकारी मिलती है कि क्या उस अवधारणा पर अमल किया गया है जिसकी उसने सैद्धांतिक रूप से कल्पना की थी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि पूर्व उत्पादन के दौरान जो भी अवधारणा है उस पर सही ढंग से अमल किया जाए, हर डिटेल को लिखा और प्रलेखित किया जाना चाहिए।

4.6.5 पटकथा लेखन : फिल्म

फिल्म को एक पूर्ण संप्रेषण माध्यम कहा जाता है क्योंकि इसमें दृश्य–श्रव्य दोनों का प्रयोग होता है। यदि कुछ पठन योग्य है तो उसे भी दिखाया जा सकता है और दर्शक उसे पढ़ सकते हैं। फिल्म लेखन इसलिए चुनौतीपूर्ण है क्योंकि लेखक को इस बात का पूरा ध्यान रखना होता है कि क्या देखा जाएगा, और क्या सुना जाएगा। इस माध्यम के लिए लिखने हेतु इसमें प्रयुक्त तकनीक की समझ की आवश्यकता है। कैमरा, डायलॉग, एडिटिंग इत्यादि की एक वृहद समझ लेखक के लिए आवश्यक है।

जैसा कि टीवी लेखन में स्पष्ट किया गया है, फिल्म पटकथा लेखन की मुख्यतः प्री–प्रोडक्शन प्रक्रिया का भाग होता है लेकिन पटकथा प्रोडक्शन और पोस्ट प्रोडक्शन के दौरान भी आकार लेती रहती है। अतः लेखक को इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि आरंभिक स्क्रिप्ट में प्रोडक्शन एडिटिंग के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन आ सकते हैं।

फिल्म विभिन्न प्रकार की होती है; शॉर्ट फिल्म, मूक फिल्म, डाक्यूमेंट्री व फीचर फिल्म। आजकल फिल्म के माध्यम में अनेक प्रयोग भी किए जा रहे हैं जिनमें काव्य–फिल्म प्रमुख है। काव्य फिल्म अर्थात काव्य पर फिल्म बनाना या फिल्म के माध्यम से काव्य रचना।

टिप्पणी

सभी प्रकार की फिल्मों के लिए स्क्रिप्ट (पटकथा) की आवश्यकता होती है। प्रायः ये समझा जाता है कि स्क्रिप्ट का अर्थ है–संवाद लेखन। लेकिन यह सत्य नहीं है। एक मूक फिल्म की भी स्क्रिप्ट होती है। पटकथा का अर्थ होता है कि जो भी आप दर्शकों को दिखाना चाहते हैं उसका पूर्ण लेखा–जोखा जिसमें संवाद, चरित्र की वेशभूषा, शॉट्स, सेट्स, चरित्रों की पर्दे की गति, कैमरा मूवमेंट्स इत्यादि सभी कुछ शामिल होता है।

पटकथा लेखन से पहले सर्वाधिक आवश्यकता होती है एक विचार की, जिसे कहानी में तबदील किया जाता है और फिर उस कहानी के लिए आवश्यक शोध किया जाता है। यानी हम कह सकते हैं कि स्क्रिप्ट लेखन से पहले निम्नलिखित तीन चरण आवश्यक हैं;

1. फिल्म की अवधारणा
2. कथा
3. शोध

तत्पश्चात लेखन की प्रक्रिया आरंभ होती है। कहानी को फिल्म की अवधि के अनुसार विभिन्न भागों में बांटा जाता है और उन भागों को शॉट्स में। कहानी के चरित्रों को शोध के दौरान ही निर्धारित कर लिया जाता है कि कौन–सा चरित्र कैसी वेशभूषा पहनेगा, उसकी सामाजिक सांस्कृतिक व आर्थिक पृष्ठभूमि कैसी लगनी चाहिए तथा उसके संवाद किस शैली के होंगे।

शोध के दौरान ही फिल्म शूट करने के लिए लोकेशन का भी चयन किया जाता है। यदि लोकेशन 'इन्डोर' है तो किस तरह का सैट और प्रॉपर्टीज (अर्थात सैट के लिए आवश्यक फर्नीचर इत्यादि) होंगे और अगर 'आउटडोर' है तो किस तरह का वातावरण होना चाहिए–शहर का, गांव का, हरियाली या बीहड़ इत्यादि।

पटकथा लेखन से पहले कथा की पृष्ठभूमि और चरित्रों के नाम जैसी मूल बातें संक्षेप में दी जाएं तो श्रेष्ठ है। कुछ लेखक स्क्रिप्ट को ऑडियो व विजुअल दो भागों में बांट लेते हैं तथा ऑडियो में संवाद, संगीत व साउंड इफेक्ट्स लिखते हैं तथा विजुअल के कॉलम में सैट व लोकेशन इत्यादि का वर्णन होता है। लेकिन कुछ लेखक ऑडियो व विजुअल विवरण संवाद के साथ–साथ देते हैं।

साधारण लेखन व पटकथा लेखन में एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सामान्य लेखन लेखक की निजी प्रक्रिया होती है और वह अपनी शैली में लिख सकता है या प्रयोग कर सकता है। पटकथा लेखन में लेखक अपने किरदारों से बंधा होता है और मुख्यतः संवाद उसी शैली में लिखता है जो उसके किरदार के अनुकूल हों। यदि किरदार (चरित्र) विशुद्ध ग्रामीण है या एक निश्चित अंचल का है तो यह निर्देशक पर छोड़ दिया जाता है कि वह संवाद की शैली को किस तरह बदलेगा। इस प्रकार पटकथा लेखन एक व्यक्तिगत प्रक्रिया न होकर सामूहिक प्रक्रिया हो जाती है जिसमें न केवल लेखक बल्कि कैमरा मैन, निर्देशक और चरित्र एक अहम भूमिका का निर्वाह करते हैं।

पटकथा लेखक को 'मौन' की महत्ता की पूर्ण समझ होनी चाहिए। कई बार भावनात्मक स्थितियों, रहस्य या भयावह की अनुभूति देने के लिए 'मौन' का प्रयोग

टिप्पणी

अत्यावश्यक होता है। संवाद या संगीत उसकी प्रभावशीलता को कम कर सकते हैं। वहीं यह मौन इतना लंबा भी नहीं खिंचना चाहिए कि दर्शक ऊबने लगें।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि पटकथा लेखक को जानकारी हो कि उसका 'लक्ष्य दर्शक' कौन है। यदि वह फिल्म एक विशेष वर्ग के दर्शकों को या एक विशेष फिल्म फैस्टिबल में प्रदर्शित होनी है तो उसके लिए संवाद लेखन, चरित्र चित्रण, संगीत व पृष्ठभूमि भिन्न प्रकार की होगी लेकिन यदि वह एक व्यावसायिक फिल्म है तो उसका लेखन व संरचना तदनुकूल होगी।

पटकथा लेखन एक प्रकार से गत्यात्मक लेखन है, जिसमें अनेक प्रकार के प्रयोग किए जाते रहे हैं। वैसे तो प्रत्येक लेखक अपने आसपास के जीवन, समाज व रिश्तों को बहुत गहनता से समझता और महसूस करता है लेकिन पटकथा लेखक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने परिवेश में स्वं–बसे चरित्रों, कहानियों और रिश्तों से बाहर निकल कर एक गहरी सामाजिक सांस्कृतिक व भाषायी समझ विकसित करे जो उसके चरित्रों व कहानी को और भी जीवंत बना सके।

4.7 कम्प्यूटर

कम्प्यूटर एक ऐसी स्वचालित इलेक्ट्रॉनिक मशीन है जो हमारे द्वारा बताए गए प्रोग्राम के नियंत्रण में आंकड़ों का संसाधन (Processing) तेजी एवं परिशुद्धता से करते हुए उपयोगी सूचनाएं प्रस्तुत करती है। निर्देशों के समूह को प्रोग्राम कहते हैं। कोई भी समस्या जो क्रमिक (Automation) कार्य विधि (Procedure) द्वारा हल की जा सकती है, वह कम्प्यूटर द्वारा भी हल की जा सकती है। स्वचालन एक अति महत्वपूर्ण व्यवस्था है, क्योंकि प्रोग्राम के माध्यम से दिए गए निर्देशों की स्वतः अनुपालना करते हुए गणितीय एवं तार्किक संक्रियाओं को निष्पादित करने की क्षमता के कारण ही कम्प्यूटर आज विशिष्ट श्रेणी का यंत्र हो गया है।

4.7.1 कम्प्यूटर के विविध उपयोग

मीडिया और सूचना तकनीकी के वर्तमान युग में विभिन्न सूचनाओं को सुचारू रूप से संग्रहीत करने तथा आवश्यकतानुसार उनका उपयोग विविध रूपों में करने हेतु जिस मशीन का उपयोग किया जाता है वह कम्प्यूटर है। आंकड़ों का परिमाण दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ते हुए परिमाण को कम समय में और कम खर्च में कुशलतापूर्वक संसाधित करने के लिए इस स्वचालित यंत्र की हमेशा आवश्यकता बनी रहेगी।

साधारण हिसाब या लेखा के रख–रखाव से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार का प्रबंधन आज कम्प्यूटरों द्वारा किया जा रहा है। कम्प्यूटर और इंटरनेट के संयोग से एक नई व्यापार प्रणाली आज प्रचलन में है, जिसे ई–कॉमर्स कहते हैं। इसके माध्यम से कम्प्यूटर द्वारा घर पर बैठे ही सारे व्यापारिक कार्य संपन्न किए जा सकते हैं। आज लगभग सभी बैंकों में भी कम्प्यूटर पहुंच चुका है और बैंकिंग कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से ही हो रहा है। कम्प्यूटर के उपयोग से आज संचार व्यवस्थाओं एवं प्रणालियों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

9. एक पटकथा लेखक की पटकथा कैमरा ..... के साथ मेल खाती है।

सही/गलत बताइए

10. पटकथा लेखन से पहले तीन चरणों–फिल्म की अवधारणा, कथा और शोध आवश्यक है।

टिप्पणी

आए हैं। अब हम सिर्फ बटन दबाकर विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से संपर्क कर सकते हैं, और वह भी बहुत ही मामूली खर्च पर। आज हमारे पास ऐसी सुविधाएं उपलब्ध हैं जिनके द्वारा नक्शा कम्प्यूटर पर तैयार किया जा सकता है, और उस नक्शे पर आधारित मकान कैसा दिखेगा इसका स्वरूप भी स्क्रीन पर देखा जा सकता है। स्वास्थ्य सेवाओं में भी कम्प्यूटर का उपयोग बढ़ा है। कुछ परीक्षण ऐसे हैं, जिनका उपयोग विभिन्न बीमारियों के परीक्षण हेतु किया जाता है। इन सभी में कम्प्यूटर जनित चित्रों के माध्यम से रोगों का निदान करने में बहुत आसानी हो गई है। शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग अध्यापक के पूरक रूप में किया जा रहा है। मनोरंजन के क्षेत्र में संगीत, सिनेमा, टेलीविजन में भी कम्प्यूटर का उपयोग हो गया है। आजकल संगीत कम्प्यूटर की सहायता से तैयार होता है। कम्प्यूटर पर खेलों की अपनी एक अलग दुनिया है, जिसने बच्चों से लेकर बड़ी उम्र के लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है। ये खेल न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि ज्ञानवर्धन भी करते हैं। इसमें ऐसे खेल भी हैं, जो बच्चों की तार्किक क्षमता का विकास करते हैं। कम्प्यूटर आज मानवीय क्षमताओं में वृद्धि कर रहा है। वे लोग जो शारीरिक रूप से सक्षम नहीं हैं, उनके लिए भी कम्प्यूटर एक वरदान सिद्ध हुआ है। इस प्रकार आज कम्प्यूटर का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ गया है। अब यह किसी विषय विशेष, वर्ग विशेष के लिए ही उपयोगी हो, ऐसी बात नहीं रही। प्रत्येक व्यक्ति इसका उपयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर सकता है।

4.7.2 कम्प्यूटर की विशेषताएं

1. **गति**–कम्प्यूटर इलेक्ट्रानिक मशीन है, अतः इसके कार्य करने की गति आभासी रूप में तो तात्क्षणिक है, किंतु आज का कम्प्यूटर एक सैकंड में कई प्रचालन कर सकने में सक्षम है।
2. **स्मृति**–उच्च गति के स्वचालित संसाधन के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रचालन एवं सभी आंकड़े पहले से कम्प्यूटर में संग्रहीत हों, ताकि आवश्यकतानुसार उनका उपयोग किया जा सके। इस हेतु कम्प्यूटर में स्मृति का प्रावधान किया गया है।
3. **स्वचालित संसाधन**–कम्प्यूटर में प्रचालनों का संसाधन स्वचालित रूप से होता है, अर्थात कम्प्यूटर में डाटा एवं प्रोग्राम एक बार देने के पश्चात सभी प्रचालन स्वचालित रूप से पूर्व निर्धारित अनुक्रम में निष्पादित होते हैं।
4. **सर्वतोमुखी**–यदि किसी कार्य को तार्किक या त्वरित प्रचालनों की एक शृंखला में बदला जा सकता है तो वह कार्य कम्प्यूटर द्वारा भी किया जा सकता है। इस प्रकार कम्प्यूटर का उपयोग विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु किया जा सकता है।
5. **कर्मनिष्ठता/कर्मठता**–मनुष्य के कार्य करने की सीमाएं हैं। वह लगातार कार्य नहीं कर सकता। एक ही प्रकार का कार्य करने से ऊब महसूस होने लगती है, तब वह अपनी एकाग्रता खो बैठता है। ये सारी समस्याएं कम्प्यूटर के साथ नहीं हैं, क्योंकि वह एक मशीन है।

टिप्पणी

6. **विश्वसनीयता**–आज का कम्प्यूटर बहुत ही सही एवं विश्वसनीय समाधान करने में सक्षम है। किसी तकनीकी खराबी अथवा मानवीय भूल के कारण कभी ऐसा हो सकता है कि परिणाम आशानुरूप न आएं। लेकिन यदि ये दोनों कारण नहीं हैं तो कम्प्यूटर के परिणाम विश्वसनीय ही होंगे।

4.7.3 कम्प्यूटर की सीमाएं

कम्प्यूटर की प्रमुख सीमाएं निम्नांकित हैं–

1. **सहज बोध का अभाव**– एक सीमा तक कम्प्यूटर एक मनुष्य की भांति व्यवहार करता है, परंतु कम्प्यूटर जड़ मशीन है। यह सोच नहीं सकता है। इसके पास सहजबोध नहीं है।
2. **स्वयंमेव त्रुटि–सुधार का अभाव**– कम्प्यूटर को दिए गए निर्देश पूर्णरूपेण सही सटीक होने चाहिए, अन्यथा वह इन्हें समझ नहीं सकता और आगे कार्य नहीं कर सकता। साथ ही, कम्प्यूटर गलत निर्देशों को सुधार भी नहीं सकता। इसका कारण यह है कि कम्प्यूटर अपना दिमाग नहीं लगाता, क्योंकि उसके पास दिमाग है ही नहीं। वह स्वयंमेव कुछ नहीं करता, उसे जो कहा जाता है, जितना कहा जाता है, बस, उतना ही करता है।
3. **सोच का अभाव**– सारी समस्याएं कम्प्यूटर द्वारा हल नहीं की जा सकती हैं। उन सभी समस्याओं में जहां मानवीय सहज बोध तथा सोच की आवश्यकता होती है, कम्प्यूटर काम नहीं कर पाता।

4.7.4 कम्प्यूटर शब्दावली

कंपैक्ट डिस्क (CD)– डाटा या आंकड़ा संग्रह की विद्युत चुंबकीय युक्ति, जो संगीत के उत्पादन तथा बड़े डाटाबेसों के संग्रहण में मदद करती है। इसमें डिजिटल रूप में डाटा लंबे समय तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं। एक सी डी 74 मिनट तक चलने वाले संगीत का संग्रह कर सकती है, अर्थात लगभग 783 MB या 783 मेगावाट।

साइबर स्पेस– साइबर (Cyber) का अर्थ है नियंत्रण अथवा निदर्शन। परंतु साइबर स्पेस का अर्थ है– कम्प्यूटर नेटवर्क पर आधारित सूचना का विश्वभर में आदान–प्रदान करने हेतु एक सेतु।

डाटा फैक्स– डाटा नेटवर्क पर आधारित एक उच्चगतिक डिजिटल प्रतिकृति, जिसमें गलतियों के शुद्धीकरण की व्यवस्था होती है।

डिजिटल सिग्नल प्रोसेसिंग– उच्च गति पर आधारित प्रोसेसिंग, जो सामान्य लक्ष्यात्मक प्रोसेसर्स की तुलना में अधिक प्रभावी रूप से कार्य करती है। दूरसंचार वायसप्रोसेसिंग, मल्टीमीडिया, मेडिकल, इलैक्ट्रॉनिक्स, रक्षा प्रणाली तथा ऑटोमोटिव में इसका उपयोग किया जा रहा है। डिजिटल संकेत व्यवस्था के कारण इस प्रणाली में कम समय में अधिक आंकड़ों का संकलन और संप्रेषण संभव है।

फ्लॉपी डिस्क– माइक्रो कम्प्यूटरों में सहायक स्टोरेज के रूप में सबसे ज्यादा इस्तेमाल फ्लॉपी डिस्क का होता है। यह प्लास्टिक के खोल में बंद गोल विनाइल डिस्क होती है। इसका अब अंतर्राष्ट्रीय मानक आकार साढ़े तीन इंच है। इसके दोनों ओर सूचनाएं स्टोर की जा सकती हैं। सूचनाओं को सिंगल, डबल या हाई डेंसिटी में स्टोर किया जाता है। डिस्क की रिकॉर्डिंग क्षमता का पता डेंसिटी से चलता है। अमूमन ज्यादातर डिस्कें 180KB, 360KB, 720KB, 1500KB, और 1440KB की होती हैं। अब मैंग्रटो ओप्टिव ड्राइव और काट्रिज 21MB, 128 MB, 650 MB, 1GM क्षमता में भी उपलब्ध हैं।

टिप्पणी

हार्ड डिस्क ड्राइव– विचेस्टर या हार्ड डिस्क की क्षमता फ्लॉपी डिस्क से काफी ज्यादा होती है लेकिन उन्हें फ्लॉपी डिस्क की तरह बदला नहीं जा सकता। आजकल की हार्ड डिस्कें 3 इंच तक छोटी हो सकती हैं और क्षमता 40 MB से 80 GB तक होती है। अक्सर फ्लॉपी डिस्क को हार्ड डिस्क के साथ कंजक्शन में इस्तेमाल किया जाता है।

आपरेटिंग सिस्टम (OD)– यह किसी भी कम्प्यूटर में ऐसे प्रोग्रामों का समूह है जो कम्प्यूटर में सभी ऑपरेशनों, जैसे CPU मेमोरी, की–बोर्ड, फ्लॉपी डिस्क, VDU आदि की देखरेख और इंतजाम रखता है। इसका मुख्य काम डिस्क में फाइलें सुरक्षित रखना और कम्प्यूटर और इसके अंदर मौजूद अन्य पुर्जों में संचार बनाए रखना है।

बेसिक– (Beginner All purpose Symbolic Instruction Code)– यह एक सरल और उपयोगी उच्च स्तरीय भाषा है। लोकप्रिय भाषा होने के कारण प्रायः सभी कम्प्यूटरों में उपलब्ध रहती है।

द्विआधारी–(Binary)– कम्प्यूटर की सभी गणनाओं में प्रयुक्त संख्या प्रणाली, जिसमें केवल दो अंक 0 और 1 होते हैं।

बिट (Bit)– 'बाइनरी इकाई' के आरंभिक एवं अंतिम अक्षरों से बने संक्षिप्त शब्द 0 से 1 को बिट कहा जाता है। यह कम्प्यूटर सूचना की सबसे छोटी इकाई है।

बाइट (Byte)– कम्प्यूटर क्रियाओं में सामूहिक रूप से भाग लेने वाले (प्रायः आठ) द्विआधारी अंक। इस प्रकार 8 बिटों से बनने वाले अक्षर को 'बाइट' कहा जाता है। एक किलोबाइट (KB) में 1024 बाइट होते हैं तथा 10, 48, 576 बाइटों का एक मेगाबाइट (MB) होता है। कम्प्यूटर के स्मृति भंडार को मेगाबाइट में ही नापा जाता है। करेक्टर (अक्षर) जो कि कम्प्यूटर शब्द का एक अंश होता है भी बाइट कहलाता है।

चिप (Chip)– सिलिकॉन की एक पतली चिप, जिस पर विशेष प्रक्रिया से इलेक्ट्रानिक सर्किट बनाए जाते हैं। यह वस्तुतः अर्धचालक पदार्थ का वह छोटा–सा टुकड़ा होता है जिस पर इलेक्ट्रॉनिक सर्किट खुदा होता है। सिलिकॉन जैसे किसी अर्धचालक चिप पर बना संपूर्ण इलेक्ट्रॉनिक सर्किट 'इंटेग्रेटिड सर्किट' (Intigrated Circuit-IC) कहलाता है। इसका उपयोग कम्प्यूटरों, रेडियो, टेलिविजन, तथा अन्य आधुनिक इलेक्ट्रानिक युक्तियों में किया जाता है।

कम्प्यूटर प्रोग्राम– (Computer Program) कम्प्यूटर के कार्य निर्देशन के लिए बनाए गए आदेशों का सिलसिला। यह संकेतों का वह संग्रह होता है, जो कम्प्यूटर को यह बताता है कि किसी विशेष कार्य को कैसे करना है। कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग कुछ निश्चित सूचनाओं का समूह होता है, जो स्पष्ट भाषा में एक विशेष शृंखला में समस्या हल करने के

टिप्पणी

लिए लिखी गई होती हैं। इन्हें JOB कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप, फोर्ट्रान (Fortran), बेसिक (BASIC), कोबोल (COBOL) पास्कल (Pascal), सी (C), सी+ (C+) आदि कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग की भाषाएं हैं।

फाइल (File)– एक ही प्रकार के कई रिकॉर्डों को सामूहिक रूप से फाइल कहते हैं।

प्रांप्ट (Prompt)– एक अंकित अक्षर या शब्द, जो सूचित करता है कि की–बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट विवरण स्वीकार करने के लिए कम्प्यूटर तैयार है अथवा नहीं।

रैम (Ram)– कम्प्यूटर की मुख्य स्मृति, जिसमें हर स्थान का अलग पता होता है। उस पते का उल्लेख कर उस स्मृति स्थान में संचित विवरण को प्राप्त किया जा सकता है। इस कम्प्यूंटर स्मृति का उपयोग आंकड़ों तथा प्रोग्राम के अल्पकालिक संग्रहण हेतु किया जाता है। इसके डाटा को पढ़ा एवं सुधारा जा सकता है। ये तथ्य कम्प्यूटर को बंद करने पर समाप्त हो जाते हैं।

कम्प्यूटर वायरस (Computer Virus) – यह मानव निर्मित डिजिटल परजीवी है, जो 'फाइल संक्रामक' के नाम से जाना जाता है। ये वायरस एक प्रकार के प्रोग्राम होते हैं, जो डाटा व फाइलों को नष्ट कर देते हैं।

रोम (Rom) इसमें स्थायी रूप से रिकॉर्ड किया गया निर्देश होता है, जिसे पढ़ा तो जा सकता है, परंतु इसे सुधारा नहीं जा सकता है। इसके निर्देश कम्प्यूटर बंद करने पर भी समाप्त नहीं होते हैं।

मेमोरी (Memory) – कम्प्यूटर के वे साधन, जिस पर सूचनाएं व प्रोग्राम संचित रहते हैं, मेमोरी (Memory) कहलाते हैं। ये दो तरह के होते हैं–रैम (Ram) एवं रोम (Rom).

हार्डवेयर– कम्प्यूटर और कम्प्यूटर से जुड़े अन्य सभी यंत्रों तथा उपकरणों को हार्डवेयर कहा जाता है। फ्लॉपी डिस्क–ड्राइव, प्रिंटर, केथोड–रे, ट्यूब टर्मिनल, मॉनिटर एवं की–बोर्ड आदि।

सॉफ्टवेयर– कम्प्यूटर के संचालन के लिए जिन प्रोग्रामों की आवश्यकता होती है, उन्हें सॉफ्टवेयर कहते हैं।

साइबर स्पेस– साइबर (Cyber) का अर्थ है– नियंत्रण। साइबर स्पेस का अर्थ है– कम्प्यूटर नेटवर्क पर आधारित सूचना का विश्वभर में आदान–प्रदान करने हेतु एक सेतु (नेटवर्क)।

बायोचिप (Biochip)– सिलिकॉन माइक्रोचिप की तकनीक के आधार पर ही कम्प्यूटरों का विकास संभव हो पाया है। सिलिकॉन चिप्स पर कम्प्यूटर परिपथ के लिए आवश्यक अनेक छोटे–छोटे परिपथ बनते हैं। लेकिन इनकी सीमाओं को देखते हुए वैज्ञानिकों ने अब जैव–प्रौद्योगिकी (Bio-Technoloy) के आधार पर माइक्रोचिप्स की क्षमता बढ़ाने का प्रयास किया है। इसी का परिणाम बायोचिप (Biochips) है, जिसके आधार पर बायोकम्प्यूटर (Bio-Computer) की संकल्पना की गई है।

टिप्पणी

डाटाबेस (Database) – कम्प्यूटर में संग्रहीत सूचनाओं का भंडार। इसमें से इच्छित जानकारी ढूंढ़ी जा सकती है और उसे कम्प्यूटर की स्क्रीन पर दिखलाया जा सकता है।

माइक्रोप्रोसेसर (Micro-Processor) – सिलिकॉन चिप पर बना एक इंटेग्रेटिड सर्किट (I.C.), जिस पर कम्प्यूटर का अधिकांश भाग मौजूद होता है। इनका उपयोग छोटे कम्प्यूटर बनाने, केमरे, कपड़े सीने की मशीनों, कपड़े धोने की मशीनों आदि में किया जाता है।

मॉडम (Madem) – यह मॉडुलेटर–डीमॉडुलेटर (Modulator-Demodulator) शब्द का संक्षिप्त रूप है, जिसके द्वारा कम्प्यूटर को टेलीफोन लाइन से जोड़ा जाता है। इसकी मदद से कम्प्यूटर सूचनाएं टेलीफोन लाइनों द्वारा दूर–दूर तक भेजी जा सकती हैं। यह कम्प्यूटर के डिजिटल संकेतों को ध्वनि संकेतों में बदल देता है और उन्हें टेलीफोन लाइनों द्वारा भेज दिया जाता है।

लैपटॉप (Laptop)– लैपटॉप एक निजी कम्प्यूटर है, जिसे एक व्यक्ति द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है तथा इसे मार्ग में आंतरिक बैटरी की शक्ति से इस्तेमाल किया जा सकता है।

व्हाइट नॉइज (White Noise)– कम्प्यूटर के प्रिंटर या अन्य उपकरणों द्वारा उत्पन्न आवाज को व्हाइट नॉइज कहते हैं।

ई–2 के (E-2K)– यह रूसी कम्प्यूटर कंपनी द्वारा विकसित सर्वाधिक तेज चिप है। यह पैरेलल प्रोससिंग तकनीक पर कार्य करता है, जिसमें एक साथ अनेक निर्देशों पर कार्य किया जा सकता है।

ग्रे–कोड (Gray Code)– कम्प्यूटर को दिए जाने वाले जिन निर्देशों द्वारा इनपुट और आउटपुट की प्रक्रिया संपन्न होती है, वे 'ग्रे–कोड' कहलाते हैं।

ऑरवेल (Orwel)– ऐसी व्यवस्था जिसके द्वारा अपने कम्प्यूटर स्क्रीन पर अपने पड़ोसी से लेकर दुनिया के किसी भी भू–भाग के दृश्य जब चाहे देख सकते हैं। इस प्रणाली का विस्तृत नाम 'आब्जर्विंग राडार फॉर अर्थ लो कॉस्ट लुकिंग' है। इस अनोखी प्रणाली को कारगर बनाने में लगभग 12 उपग्रहों और राडार का इस्तेमाल किया जाता है। इस राडार के कारण आसमान में बादल छाए रहने या अंधेरा होने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। किसी निश्चित समय में क्या बदलाव आ रहा है, कम्प्यूटर पर इस प्रणाली का उपयोग करके जाना जा सकता है। इसका मुख्य उपयोग प्राकृतिक आपदाओं के समय में हो सकेगा। 'ऑरवेल' प्रणाली मुख्य रूप से यूरोपीय समुदाय द्वारा चलाई जा रही है।

वायरलेस ऐप्लीकेशन प्रोटोकॉल (WAP)– वैप विभिन्न संचार प्रोटोकॉल के लिए बनाए गए विनिर्देश हैं जिनके तहत विभिन्न बेतार या वायरलेस तकनीकों यथा सेलुलर फोन तथा रेडियो ट्रांस रीसीवर्स का इंटरनेट, ई–मेल, वर्ल्ड वाइड वेब, न्यूज ग्रुप और इंटरनेट रिले, चैट के लिए मानकीकृत तरीके से प्रयोग किया जा सकता है।

जॉय स्टिक (Joystick)– हैंडल्स की आकृति की युक्ति, जो 3600 के चाप पर घूमती है तथा जिसका उपयोग स्क्रीन पर चित्र को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। इसे कम्प्यूटर गेम खेलने में प्रयुक्त किया जाता है।

टिप्पणी

क्रोजर– क्रोजर एक सॉफ्टवेयर है। इसको एक बार कम्प्यूटर में इंस्टाल कर देने पर जो साइट बच्चों की मानसिकता पर बुरा प्रभाव डालते हैं, वे इंटरनेट पर नहीं आएंगे और इस प्रकार बच्चे उस साइट को नहीं देख सकेंगे। क्रोजर यह भी देखता है कि उपयोगकर्ता जो साइट देखना चाहता है वह उसके लिए उपयुक्त है या नहीं। इस प्रकार क्रोजर ब्राउजर का भी काम करते हैं।

एएमडी (AMD)– एएमडी एक कंपनी है जो प्रोसेसर चिप बनाती है जिसे एएमडी चिप कहते हैं।

Basic Input / Output system (BIOS)– BIOS बुनियादी कम्प्यूटर निर्देशों की एक शृंखला 'सेट' है। यह चिप में होता है। कम्प्यूटर में मेमोरी की मात्रा तय करने, कुंजीपटल व दूसरे उपकरण की जांच करने तथा आपरेटिंग सिस्टम को जोड़ने जैसे कार्यों के लिए जिन सूचनाओं की जरूरत होती है, वे BIOS में होती हैं।

बूट सैक्टर (Boot Sector)– किसी भी डिस्क के प्रथम भाग को बूट सैक्टर कहा जाता है। किसी सीडी के पहले ट्रैक को बूट सैक्टर कहा जाएगा। बूट सैक्टर में डिस्क के बाकी हिस्से के बारे में जानकारियां रहती हैं एवं मौजूद डायरेक्टरियों की भी जानकारी सम्मिलित रहती है।

बिटमैप (Bitmap)– जब तस्वीरों को अलग–अलग रंगों की आयताकार बिंदुओं के रूप में सुसज्जित रूप से रखा जाता है, तो इन्हें बिटमैप कहा जाता है। बिटमैप देखने में टीवी स्क्रीन जैसे होते हैं।

केश (Cache)– यह मेमोरी का एक हिस्सा है, जिसमें उन सूचनाओं को अलग रखा जाता है जिन सूचनाओं की जरूरत बार–बार पड़ती है। जिस सूचना की जरूरत आपको पड़ती है, वह आसानी व तेजी से आपके सामने स्क्रीन पर आ जाती है। मेमोरी के बाकी हिस्सों या हार्ड डिस्क को सक्रिय होने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

क्लिप आर्ट (Clip Art)– ये छोटी तस्वीरें हैं। इनका इस्तेमाल लिखित शब्दों से भरी सामग्री को सजीव बनाने के लिए किया जाता है।

सीपीयू (CPU)– इसका अर्थ है– सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट अर्थात पीसी की केंद्रीय संसाधन इकाई। इसे प्रोसेसर के नाम से भी जाना जाता है। इसके द्वारा ही आप किसी भी प्रोग्राम को चला तथा गणनाएं कर सकते हैं।

कर्सर (Cursor)– यह स्क्रीन पर छोटी–सी रेखा जैसी होती है, जिससे यह संकेत मिलता है कि स्क्रीन पर टाइप (अथवा कार्य) किस स्थान पर हो रहा है। इसे निब भी कहते हैं।

डाउनलोड (Download)– किसी दूर के स्रोत से आंकड़े को कम्प्यूटर पर उतारने की प्रक्रिया को डाउनलोड कहा जाता है। अब खासकर इंटरनेट के आंकड़े उतारने में इस शब्द का इस्तेमाल किया जा रहा है। इंटरनेट से टेलीफोन लाइन के जरिए लिखित सामग्री और चित्रों को कम्प्यूटर पर उतारा जा सकता है।

डबल क्लिक (Double Click)– माउस के बटन को दो बार जल्दी–जल्दी दबाना और फिर छोड़ देना डबल क्लिक कहलाता है।

टिप्पणी

ब्ल्यू टूथ (Blue Tooth)– यह एक बेतार संचार अभिकरण है, जिसके माध्यम से विभिन्न डिजिटल उपकरणों, जैसे–कम्प्यूटर आदि के अंदर संग्रहीत विभिन्न आंकड़ों को बेतार व्यवस्था द्वारा अन्य कम्प्यूटर अथवा डिजिटल उपकरणों जैसे मोबाइल आदि से जोड़ा जा सके। यह अवरक्त किरणों पर आधारित तकनीक है।

ड्रेग एंड ड्राप (Drag and Drop)– एक विंडो (स्थल) से किसी विषय को खींचकर दूसरी विंडो (स्थल) के ऊपर ले जाकर माउस के बटन को छोड़ देना, ड्रैग एंड ड्राप कहलाता है। इसके जरिए प्रोग्राम मैनेजर में अनुप्रयोग आईकॉन एक प्रोग्राम ग्रुप से खींचकर दूसरे में डाले जा सकते हैं। एक डायरेक्टरी से फाइलें खींच कर दूसरी में डाली जा सकती हैं।

एजुटेनमेंट (Edutainment)– शिक्षा और मनोरंजन में काम आने वाले सॉफ्टवेयर बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं। इन्हीं सॉफ्टवेयर के लिए 'एजुटेनमेंट' शब्द प्रचलित हुए हैं।

एक्सटेंशन (Extension)– किसी फाइल नाम के साथ एक बिंदु द्वारा अलग कर तीन अक्षर या संकेत को लिखा जाना एक्सटेंशन कहलाता है। एक्सटेंशन नाम आम तौर पर यह बताते हैं कि फाइल में किस तरह की सूचना दी गई है।

हाइपरटेक्स्ट (Highpertext)– इसका प्रयोग विंडोज, सीडी रोम और इंटरनेट आदि में होता है। हाइपरटेक्स्ट लिखित सामग्री का हाइलाइट किया हुआ हिस्सा है। हम जैसे ही इस पर क्लिक करते हैं, किसी दूसरे पेज या उस लिखित सामग्री से संबंधित ब्यौरे में पहुंच जाते हैं, अर्थात हाइलाइट किए हुए भाग के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है।

लीविंग बुक्स (Leaving Books)– सॉफ्टवेयर कंपनी ब्रॉडरबैंड बच्चों के लिए रोचक सीडी रोम की यह मशहूर सीरीज बनाती है, जिससे बच्चे सीरीज की तस्वीरों से संवाद बनाने में सक्षम होते हैं। इन पर क्लिक करने से यह स्क्रीन पर सजीव हो जाता है। कंपनी इस शृंखला में लगातार नए सीडी–रोम पेश कर रही है।

मिडी (MIDI)– इसका पूरा नाम है– म्युजिकल इन्स्ट्रमेंट डिजिटल इंटरपेस। इसके जरिए संगीत संबंधी उपकरणों पर डिजिटल नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

माइक्रोसाफ्ट वर्ड (Microsoft Word)– यह एक शब्द संसाधक है, जिसकी ब्रिकी सबसे अधिक है।

एमपीईजी (MPEG)– इसका पूरा नाम है– मोशन पिक्चर्स एक्सपर्ट ग्रुप। यह एक विस्तार कार्ड है, जिसका प्रयोग पीसी पर फिल्मों को देखने के लिए किया जाता है। वीडियो सीडी एक ऐसा कार्ड होता है जिसके जरिए फिल्मों को सीडी में उतार दिया जाता है।

एमएसएन (MSN)– इसका पूरा नाम है– माइक्रोसाफ्ट नेटवर्क। माइक्रोसाफ्ट कंपनी ने अगस्त, 1995 में यह सूचना सेवा शुरू की थी। विंडोज–95 ले चुके लोगों के पास इस सेवा से जुड़ने के लिए सभी सॉफ्टवेयर हैं।

मल्टीमीडिया (Multimedia)– ग्राफिक्स (रेखा चित्रण) ध्वनि, संगीत आदि माध्यमों से युक्त पीसी को मल्टीमीडिया कहा जाता है। इन सभी माध्यमों को पीसी में एक साथ रख दिया जाता है।

टिप्पणी

पी 75, पी 100, (P 75, P 100)– यहां P का अर्थ है– पेंटियम प्रोसेसर तथा इसके साथ लिखी संख्या का अर्थ है कि पेंटियम किस गति से चलने वाला है, मसलन 75 मेगाहट्र्ज, 100 मेगाहट्र्ज आदि।

पेंटियम (Pentium)– इंटेल कंपनी के पुराने प्रोसेसरों के नाम 286, 386, 486 थे। जब और कंपनियों ने भी अपने प्रोसेसर का नाम 486 रखकर बाजार में उतारा तब इंटेल कंपनी ने इस नाम पर कॉपीराइट का दावा करते हुए उन पर मुकदमा कर दिया। लेकिन अदालत ने यह फैसला दिया कि संख्याओं पर किसी का कॉपीराइट मानना मुश्किल है तब इंटेल ने अपने नये 586 चिप का नाम पेंटियम रखकर बाजार में पेश किया।

4.8 मीडिया

'Media' शब्द का अर्थ है– माध्यम जोकि 'Medium' का बहुवचन है। 'माध्यम' शब्द का सामान्य अर्थ है – वह साधन जिससे कुछ अभिव्यक्त या संप्रेषित किया जाए। साधारण शब्दों में कहा जाए तो "वे साधन, जिनके द्वारा जनसंचार का कार्य संपन्न कियां जाए, जनसंचार के माध्यम कहलाते हैं"

4.8.1 जनसंचार माध्यमों का वर्गीकरण

वर्तमान समय में प्रचलित जनसंचार माध्यम मुख्यतः तीन वर्गों में रखे गए हैं–

1. शब्द संचार माध्यम (मुद्रण माध्यम)– इसके अंतर्गत समाचार, पत्र–पत्रिकाएं, पुस्तकें, आदि आते हैं।
2. श्रव्य संचार माध्यम (Audio Media) – इस माध्यम के अंतर्गत रेडियो, ऑडियो व टेपरिकार्डर आदि आते हैं।
3. दृश्य संचार माध्यम (Video Media) – इसके अंतर्गत टेलीविजन, वीडियो केसेट्स व फिल्म आदि आते हैं।

इस प्रकार, जनसंचार के उपर्युक्त अर्थ को ग्रहण करते हुए कहा जा सकता है कि "किसी भाव, विचार, संदेश या जानकारी को दूसरों तक पहुंचाने की सामूहिक प्रक्रिया को जनसंचार कहते हैं।"

वर्तमान समय में प्रचलित प्रमुख जनसंचार माध्यमों का परिचय निम्नवत् है–

1. प्रेस

'प्रेस', शब्द संचार माध्यम के अंतर्गत आता है। इसे प्रिंट मीडिया या मुद्रण माध्यम भी कहते हैं। संसार के सभी संचार माध्यमों में मुद्रण माध्यम आधुनिक माध्यमों की अपेक्षा सबसे प्राचीन है। इस माध्यम के अंतर्गत समाचार पत्र, पत्रिकाएं, जर्नल, पुस्तकें, पैम्फलेट व पोस्टर आदि आते हैं। इन सभी माध्यमों का उदय छापेखाने (प्रेस) से हुआ। ये सभी लिखित माध्यम आज भी अन्य आधुनिक जनंसचार माध्यमों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीयता रखते हैं। इनकी प्रामाणिकता में जनता इसलिए भी भरोसा करती है क्योंकि रेडियो तथा टेलीविजन

टिप्पणी

जैसे संचार माध्यमों पर सरकारी नियंत्रण है। मुद्रण माध्यम उनकी अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है क्योंकि यह स्वशासित स्वरूप का है।

समाचार पत्र–प्रेस का प्रमुख जनसंचार माध्यम समाचार पत्र है। विश्व के प्रायः सभी विकसित एवं विकासशील देशों में लगभग प्रत्येक पढ़ा–लिखा व्यक्ति दैनिक समाचार पत्र पढ़ता है। यहां तक कि ऐसा व्यक्ति, जिसने कायदे से कभी कोई पूरी किताब नहीं पढ़ी हो वह भी समाचार पत्र पढ़ने में पूरी रूचि लेता है।

समाचार पत्र के कार्य–किसी प्रकार की सूचना, घटना, दुर्घटना की जानकारी, खोज, रहस्य आदि को उजागर कर उसे जनसामान्य के बीच प्रस्तुत करना समाचार पत्र का मुख्य कार्य होता है। इसके अलावा समाज की एकता, समता, आचरण, व्यवहार व सूक्ष्म दृष्टि को बनाए रखने में भी समाचार पत्र अहम भूमिका का निर्वाह करता है। वर्तमान परिवेश में समाचार पत्र के बगैर मनुष्य जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता। समाचार पत्र की अर्थ, वित्त व नौकरी–पेशों की खबरों पर करोड़ों लोगों का भविष्य व व्यवसाय टिका हुआ है। प्राचीन समय में जिन सूचनाओं व जानकारियों को हम महीनों बाद पाते थे, अब उनको कुछ ही क्षणों में समाचार पत्रों के माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं।

समाचार पत्र की परिभाषा–इस संबंध में अनेक मत और परिभाषाएं हो सकती हैं, पर संक्षेप में समाचार पत्र को इस प्रकार पारिभाषित किया जा सकता है– "वह लिखित सामग्री, जो निर्धारित समय पर प्रकाशित होकर सार्वजनिक रूप से जनसामान्य को दुनिया या देश की हलचलों, घटनाओं व सरकार से लेकर जनता तक की खबर पहुंचाती है, समाचार पत्र कहलाती है।"

समाचार पत्र की शुरुआत– समाचारों के प्रसार के लिए समाचार पत्रों के वितरण करने की कोई निश्चित तिथि तो इतिहास में वर्णित नहीं है, किंतु ज्यादातर विद्वान इस बात से सहमत हैं कि दुनिया में समाचार पत्रों का चलन पुनर्जागरण काल से हुआ। जैसे–जैसे शहरों का विकास हुआ और यूरोप में व्यापार का फैलाव हुआ, वैसे–वैसे वहां के व्यापारियों को यह जानने की आवश्यकता महसूस होने लगी कि दुनिया के सुदूर स्थानों पर क्या हो रहा है। प्राचीन समय में वहां के व्यापारी यात्रियों के माध्यम से अपने ग्राहकों का 'समाचार चौपन्ने' (News Pamphlets) भिजवाते थे। ये समाचार चौपन्ने अनियतकालीन थे और कभी–कभी ही ग्राहकों तक पहुंचते थे। सन् 1622 में लंदन से सर्वप्रथम समाचार पत्र का उदय हुआ। इस अवधि में वहां लगभग एक दर्जन मुद्रक थे। प्रारंभ में लंदन से विदेशी समाचारों से ही युक्त साप्ताहिक पत्रों का प्रचलन आरम्भ हुआ। सन् 1702 में लंदन का पहला दैनिक 'डेली करंट' अस्तित्व में आया। सन् 1815 में लंदन का ही 'दि टाइम्स ऑफ लंदन', जिसकी लगभग 5,000 प्रतियां प्रतिदिन छपती थीं, पूरी दुनिया में अद्वितीय था। लंदन के पश्चात अमेरिका और अन्य देशों में भी समाचार पत्र छपने लगे। जैसे–जैसे अन्य देशों से समाचार पत्र निकलने लगे, वैसे–वैसे समाचार पत्रों की कीमत भी कम होने लगी तथा उन पर सरकार का अंकुश भी कम होता गया। 19वीं शताब्दी के मध्य में 'प्रेस' से टैक्स हटा लिए गए। जनसामान्य तक भी समाचार पत्रों का प्रचार–प्रसार होने लगा।

भारत में प्रेस और समाचार पत्र–भारत में प्रेस अंग्रेजों के आगमन के पश्चात आया। इसकी शुरुआत सर्वप्रथम पुरानी राजधानी कलकत्ता से हुई। कलकत्ता के उपनगर

टिप्पणी

श्रीरामपुर में धर्म प्रचार के उद्देश्य से मुद्रणालय खोला गया और पहला समाचार पत्र 'बंगाल गजेट' या 'कलकत्ता जर्नल एडवरटाइजर' था जोकि अंग्रेजी भाषा का था। यह 29 जनवरी, सन् 1780 को प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे– जेम्स आगस्टस हिकी। इसके पश्चात कलकत्ता से ही 'इंडियन वर्ल्ड' और 'बंगाल जर्नल' पत्र भी प्रकाशित हुए।

हिंदी समाचार पत्रों का श्रीगणेश– अंग्रेजी पत्रकारिता के श्रीगणेश की तरह ही हिंदी पत्रकारिता का उदय भी कलकत्ता से हुआ। 30 मई, सन् 1826 को सर्वप्रथम 'उदंत मार्तंड' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र कलकत्ता की कोलूटीला जगह से प्रकाशित होना शुरू हुआ। इस पत्र के संपादक थे– पं युगलकिशोर शुक्ल। इसके पश्चात शुक्ल जी ने सन् 1850 में 'सामदंड मार्तंड' नामक पत्र भी निकाला। हिंदी के पत्रों से पूर्व सन् 1820 में भवानीकरण बनर्जी के द्वारा बंगला भाषा में 'संवाद कौमुदी' नाम का एक पत्र निकाला गया। इसी समयावधि में फारसी पत्र 'मीरात उल अखबार' भी निकला।

हिंदी भाषी क्षेत्र से पहला हिंदी समाचार पत्र 'बनारस अखबार' निकला। इसके संपादक थे– मराठी भाषी गोविंद रघुनाथ। यह एक दैनिक समाचार पत्र था। इसके पश्चात इंदौर से 'मालवा अखबार', आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' बनारस से 'सुधाकर' आदि समाचार पत्रों के अलावा देश भर के विभिन्न स्थानों से सैकड़ों पत्रों की शुरुआत होने लगी।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी प्रेस की महती भूमिका रही। साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता उस समय अलग–अलग मार्गों पर चलने लगी थी। 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'वीणा', 'चांद', 'माधुरी', 'मतवाला', 'सुधा', 'जागरण', 'हंस', 'विशाल भारत', 'हिंदू पंच' आदि पत्र–पत्रिकाएं जनता में साहित्यिक चेतना और गांधीवादी विचारधारा प्रसारित करने में अग्रणी रहीं। इस समय के दैनिक पत्रों में 'आज', 'भारत', 'स्वतंत्र' और आर्यावर्त, की भी भूमिका सराहनीय रही।

आज हमारे देश में हजारों दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक समाचार पत्र निकल रहे हैं। सभी का यहां उल्लेख भी नहीं किया जा सकता है। विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में समाचार पत्रों की भूमिका बड़ी ही निर्णायक है। आज समाचार पत्र आम जनता के बीच की महती आवश्यकता बन गए हैं। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाचार पत्र (प्रेस) अपना रंग बरकरार रखे हुए हैं। वर्तमान समय में प्रेस सरकारी नीतियों और हलचलों पर जितना ध्यान देता है, आम जनता से भी उसे उसी तरह सरोकार है। भारत में 'प्रेस' को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। प्रेस के संदर्भ में प्रसिद्ध पत्रकार बी. के. नेहरू का यह कथन दृष्टव्य है– "सरकार किसी भी तरीके से बनी हो, उसमें प्रेस की भूमिका निःसंदेह बहुत महत्वपूर्ण है। तानाशाही सरकारें भी किसी न किसी तरह के लोक समर्थन के बिना नहीं चल पातीं।

प्रेस के प्रभाव– 'प्रेस' जो छापता है उसका लिखित सबूत होता है। रेडियो या टी. वी. पर प्रसारित खबर का कोई प्रमाण सुरक्षित नहीं रह पाता। कभी–कभी यह चिंता भी उत्पन्न होती है कि रेडियो तथा टी.वी. जैसे जनसंचार माध्यम आ जाने से 'प्रेस' पिछड़ गया है या भविष्य में 'प्रेस' पिछड़ जाएगा। लेकिन यह चिंता निर्मूल हैं। 'प्रेस' का प्रभाव और प्रसार कभी भी कम नहीं हुआ है और न ही कभी कम होगा। जिन स्थानों/घरों में

टिप्पणी

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की मौजूदगी रहती है, वहां भी समाचार पत्रों का अस्तित्व बखूबी देखने को मिलता है।

2. रेडियो

मुद्रण माध्यम (प्रेस) के उपरांत दूसरा महत्वपूर्ण जनसंचार माध्यम है 'रेडियो' जो श्रव्य संचार माध्यम की श्रेणी में आता है। इस माध्यम को पत्रकारिता की दृष्टि से 'श्रव्य समाचार पत्र' (Audio News paper) भी कह सकते हैं क्योंकि वह माध्यम श्रवणेंद्रियों के जरिए सारी दुनिया को श्रोता के निकट ले आता है। जहां सुदूर क्षेत्रों में समाचार पत्र तत्काल नहीं पहुंच पाता, वहां भी संचार के इस माध्यम के द्वारा देश, दुनिया की खबरों और अन्य मनोरंजक कार्यक्रमों का लाभ उठाया जा सकता है।

रेडियो का प्रारंभिक विकास– रेडियो का आविष्कार 19वीं शताब्दी में हुआ। वैसे रेडियो की कहानी सन् 1815 से ही शुरु हो जाती है। इस वर्ष इटली में एक इंजीनियर गुग्लियो मार्कोनी ने रेडियो टेलीग्राफी के जरिए पहला संदेश प्रसारित किया। रेडियो पर मनुष्य की आवाज पहली बार सन् 1906 में सुनाई दी। सर्वप्रथम सन् 1916 में सार्वजनिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र में राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम की रिपोर्ट रेडियो पर प्रसारित की गई। सन् 1920 के पश्चात् तो अमेरिका और ब्रिटेन के अलावा विश्व के अन्य कई देशों में भी रेडियो ने धूम मचा दी।

भारत में रेडियो– भारत में रेडियो प्रसारण का इतिहास सन् 1926 से शुरू होता है। तत्कालीन समय में कलकत्ता, बंबई तथा मद्रास में व्यक्तिगत रेडियो क्लब स्थापित किए गए थे। इन क्लबों के व्यवसायियों ने एक प्रसारण कंपनी का गठन कर रेडियो की निजी प्रसारण सेवा का प्रारंभ किया था। सन् 1926 में ही सरकार ने इस कंपनी को देश में निजी प्रसारण केंद्र स्थापित करने के लिए लाइसेंस प्रदान किया। इस कम्पनी की ओर से रेडियो का पहला प्रसारण 23 जुलाई, सन् 1927 को बंबई से हुआ। इसे प्रसारित करने वाली कंपनी का नाम था 'इंडिया ब्रॉडकास्टिंग कंपनी'। उस समय वायसराय लार्ड इरविन का कार्यकाल था। कलकत्ता केंद्र का उद्घाटन 'बंगला समाचार बुलेटिन' के साथ 26 अगस्त, सन् 1927 को हुआ। इस प्रकार प्रादेशिक भाषाओं को सर्वप्रथम रेडियो पर प्रसारित होने का श्रेय प्राप्त है। कुछ ही समय पश्चात 'इंडिया ब्रॉडकॉस्टिंग कंपनी' घाटे के कारण बंद हो गई। इसी अवधी में सन् 1930 में भारत सरकार ने प्रसारण सेवा का प्रबंध अपने अधिकार में ले लिया। तभी से 'इंडियन ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' के नाम से एक नये सरकारी उपक्रम के तहत रेडियो के बंबई और कलकत्ता केंद्र कार्य करने लगे। अब इस उपक्रम का नाम 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' (आई.एस.बी.एस.) हो गया। इस सर्विस के प्रथम महान निदेशक थे लियोनेल फील्डेन। यह रेडियो उपक्रम आगे कार्य करता रहा और बाद में इसका नाम 'ऑल इंडिया रेडियो' हो गया। यह नाम सन् 1936 में पड़ा।

सन् 1935 में तत्कालीन देशी रियासत मैसूर में एक स्वतंत्र रेडियो स्टेशन की शुरुआत हुई। इस रियासत ने इस स्टेशन को 'आकाशवाणी' नाम दिया। देश की आजादी के पश्चात सन् 1957 में भारत सरकार ने इस संगठन का नाम 'आकाशवाणी' घोषित किया,

टिप्पणी

जो मैसूर रियासत के रेडियो स्टेशन का नाम था। लेकिन 'आकाशवाणी' नाम का प्रयोग केवल हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए ही हो रहा है; अंग्रेजी प्रसारणों और विदेशी सेवा के प्रसारणों में अभी भी 'ऑल इंडिया रेडियो' नाम ही प्रसारित होता है।

स्वतंत्रता के पश्चात 'आकाशवाणी' या 'ऑल इंडिया रेडियो' का व्यापक प्रसार हुआ है। सन् 1947 में जहां पूरे देश में मात्र 6 प्रसारण केंद्र, एक दर्जन ट्रांसमीटर और मात्र दो–ढाई लाख रेडियो सेट थे, वहीं आज हमारे पास 100 से अधिक रेडियो स्टेशन हैं, जो देश के तीन–चौथाई से अधिक भौगोलिक क्षेत्र तथा 90 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या को अपनी प्रसारण सीमा में लिए हुए हैं। आज देश–भर में तीन करोड़ से भी अधिक रेडियो सेट घरों में बज रहे हैं।

रेडियो प्रसारण– भारत में ही नहीं दुनिया के प्रायः सभी देशों में रेडियो प्रसारण सेवा स्थिति में आशातीत प्रगति हुई है और इस जनमाध्यम को एक व्यापक समाज रुचिपूर्वक अपना चुका है। रेडियो की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि इस जनमाध्यम की क्षमता के कारण दुनियां–भर में रेडियो सेटों की संख्या सन् 1950 से सन् 1960 के बीच चार गुणा बढ़ चुकी थी। इसी प्रकार सन् 1960 से सन् 1975 के बीच प्रति हजार जनसंख्या के पीछे रेडियो सेटों की संख्या में 95 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नए–नए देशों में रेडियो स्टेशनों की स्थापना और उनका विस्तार हुआ। माना जाता है कि विश्व के हर चौथे व्यक्ति को रेडियो प्रसारण सुनने की सुविधा उपलब्ध है।

विदेश प्रसारण सेवा– रेडियो के व्यापक प्रभाव को देखते हुए दुनिया के कई देशों ने अपनी विदेश प्रसारण सेवा शुरू की है। इनमें अमेरिका तथा पूर्व सोवियत संघ प्रमुख हैं। विदेश प्रसारण सेवा में ब्रिटेन की बी.बी.सी. (ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्टिंग कॉरपोरेशन) अभी तक अग्रणी बनी हुई है। यह लंदन से एक साथ विश्व के 22 देशों में रेडियो कार्यक्रम प्रसारित करती है। इसकी क्षमता भी अत्यधिक हैं। भारत ने भी विदेश प्रसारण सेवा की शुरुआत की है, लेकिन इसकी क्षमता कम है। एक अध्ययन के अनुसार सन् 1978 में अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ क्रमशः 1,813 और 2,010 घंटे प्रतिवर्ष प्रसारण विदेशी श्रोताओं के लिए करते थे। चीन द्वारा प्रतिवर्ष 1,400 घण्टे के विदेशी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे, जबकि पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन, उत्तरी कोरिया, अल्बानिया और मिस्र प्रतिवर्ष मात्र 500 घंटे से अधिक के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। इसके अलावा 26 देश 100 घंटे से अधिक के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। कुल मिलाकर 80 से अधिक देश अंतर्राष्ट्रीय प्रसारण के क्षेत्र में सक्रिय थे। इनकी संख्या वर्तमान में और भी बढ़ी है।

भारत में रेडियो प्रसारण– अन्य देशों में रेडियो प्रसारण के समय और गुणवत्ता में तेजी से सुधार जारी हैं। भारत भी इस मामले में किसी अन्य देश से कम नहीं है। सन् 1939–40 तक ऑल इंडिया रेडियो 27 बुलेटिन प्रसारित करने लगा था।

वर्तमान समय में आकाशवाणी से 24 घंटे में अनगिनत समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं। एक छोटा समाचार बुलेटिन पांच मिनट का और बड़ा समाचार बुलेटिन 15 मिनट का होता है। सामान्य समाचार बुलेटिनों के अलावा समाचार पत्रों से टिप्पणियां, करंट अफेयर्स, लोकरुचि के समाचार जैसे बुलेटिन भी प्रसारित होते हैं। इसके अलावा मार्निंग

टिप्पणी

न्यूज, साप्ताहिकी, संसद की कार्यवाही, न्यूज रील, चुनाव और उसके परिणामों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए विशेष समाचार बुलेटिन आदि कार्यक्रम भी समय–समय पर प्रसारित किए जाते हैं।

प्रादेशिक प्रसारण– राष्ट्रीय प्रसारणों के साथ ही आकाशवाणी ने प्रादेशिक सेवाओं को भी महत्व दिया है। विभिन्न प्रदेशों की राजधानियों एवम् प्रमुख नगरों में आकाशवाणी के 42 एकांश हैं जहां से 131 समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं। ये बुलेटिन उनके अतिरिक्त हैं जो दिल्ली से प्रादेशिक भाषाओं में ब्रॉडकास्ट किए जाते हैं। दिल्ली से प्रसारित होने वाले प्रादेशिक भाषाओं के बुलेटिन असमिया, नेपाली, कन्नड़, कश्मीरी, डोगरी, बंगला, मलयालम, उड़िया, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के होते हैं। आकाशवाणी के सूचनापरक कार्यक्रमों के अलावा बीसियों तरह के अन्य कार्यक्रम भी समय–समय पर रेडियो स्टेशनों के द्वारा प्रसारित किए जाते हैं।

वर्तमान में रेडियो पर प्रसारित की जा रही नई विधाओं में फीचर, प्रहसन, वार्ता, साक्षात्कार, डॉक्यूमेंटरी, विचारगोष्टी, आंखों देखा हाल, नाटक, कहानी, काव्य पाठ, कवि सम्मेलन, विशेष प्रसारण, न्यूज रील, रेडियो रिपोर्ट, बच्चों का कार्यक्रम, महिला कार्यक्रम, युवा कार्यक्रम, कृषकों के लिए, खेल जगत, पर्व और जयंतियों के कार्यक्रम, विज्ञान कार्यक्रम, स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम, बुजुर्गों के लिए तथा परिवार कल्याण के कार्यक्रम आदि भी सम्मिलित हैं।

रेडियो का महत्व– जनसंचार माध्यमों में रेडियो का अपना खासा महत्व है। यह साधारण व्यक्ति की पहुंच वाला माध्यम है। निर्धन से लेकर रईस तक सभी व्यक्ति इस माध्यम का प्रयोग आसानी से कर सकते हैं क्योंकि इसकी कीमत बहुत कम होती है। घर के बेडरूम से लेकर खेतों, सड़कों और पहाड़ों की दुर्गम चोटियों तक श्रोता हर समय अपनी जेब में रखे रेडियो के श्रवण का लुफ्त उठा सकते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ज्वेरीमल पारीख ने ठीक ही लिखा है –"रेडियो निरक्षरों के लिए भी एक वरदान है, जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान और मनोरंजन हासिल कर लेते हैं। कम कीमत और अधिक से अधिक जनता के लिए सुलभ होने के कारण भी, टी. वी. के व्यापक प्रसार के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो का अपना महत्व आज भी कायम है।" इस माध्यम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि निरक्षर लोग भी इस जनमाध्यम से रुचिपूर्वक संदेश व मनोरंजन के कार्यक्रम सुन सकते हैं और उनका भरपूर आनंद ले सकते हैं।

आज रेडियो जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। इसकी अपरिहार्यता और व्यापकता से आज कौन परिचित नहीं है। यह माध्यम लोगों को आपसी अनुभवों के जरिए परस्पर जोड़ता है और ऐसे विषय प्रदान करता है, जिन पर संवाद हो सकें।

3. टेलीविजन (टी.वी.)

शाब्दिक अर्थ– 'टेलीविजन' शब्द 'दूरदर्शन' शब्द का पर्याय है। 'टेलीविजन' को हिंदी में 'दूर–दर्शन' (हाइफन लगाते हुए) लिखना उचित है, 'दूरदर्शन' नहीं। 'टेलीविजन' शब्द ग्रीक तथा लैटिन भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। इनमें 'टेली' ग्रीक शब्द है, जिसका

टिप्पणी

शाब्दिक अर्थ है– दूरी पर जबकि 'विजन' लैटिन शब्द है, जिसका आशय है– देखना। इस प्रकार 'दूरदर्शन' का सामान्य अर्थ हुआ– 'दूर से देखना' या 'दूर के दर्शन'। कुछ लोग टेलीविजन के लिए 'रेडियो–वीक्षण' शब्द का प्रयोग करने का भी सुझाव देते हैं, लेकिन ज्यादा सटीक शब्द 'दूरदर्शन' ही है।

जनसंचार माध्यमों में फिल्म और टेलीविजन की लोकप्रियता सबसे अधिक है। बल्कि फिल्म माध्यम भी अब टेलीविजन के साथ सांठ–गांठ करके दुनिया का चेहरा बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सच तो यह है कि इन इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों ने जहां मनुष्य को घर बैठे सारी दुनिया से जोड़ दिया है, वहीं वह शिक्षित होते हुए भी अशिक्षा के अंधकार की और लौट रहा है। टी.वी. ने हमारी पढ़ने की आदत बिगाड़ दी है और कम्प्यूटर ने हमारी गणित की क्षमता को बांध दिया है। यह एक कटु सत्य है इसके बावजूद फिल्म, दूरदर्शन (टी.वी.) और कम्प्यूटर की उपयोगिता एवं लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई है।

उपयोगिता– जहां तक पत्रकारिता के संदर्भ में इन माध्यमों की उपयोगिता का सवाल है, तो फिल्म की अपेक्षा दूरदर्शन (टी.वी.) बहुत महत्वपूर्ण हो चला है। इसने पत्रकारिता को पूरे विश्व में एक नया आयाम दिया है। इसका सबसे अच्छा प्रमाण है अभी कुछ वर्ष पूर्व हुए खाड़ी युद्ध का सी. एन. चेनल द्वारा उपग्रह के जरिए पूरे विश्व में जीवंत (सीधा) प्रसारण। इस प्रसारण से सारी दुनिया ने अपने शयनकक्ष या ड्राइंगरूम में बैठकर उस युद्ध के सजीव दृश्य देखे थे। दूरदर्शन से पूर्व श्रोताओं को केवल रेडियो की आवाज ही सुनाई देती थी, लेकिन टी. वी. से आवाज के साथ–साथ चित्र भी देखने को मिले। इससे दूरदर्शन ने लोगों को चित्र दिखाकर उसका विश्वास ही नहीं जीता बल्कि दर्शकों के सामने मनोरंजन का भरपूर खजाना भी परोस दिया।

टेलीविजन का विकास– दुनिया में टेलीविजन यानी दूरदर्शन का आविष्कार बहुत पुराना नहीं है। तस्वीरों को प्रसारित करने की युक्ति सन् 1890 में ही ब्रिटेन में ज्ञात हो गई थी। आगे चलकर सन् 1930 में 'टेलीविजन' ब्रिटेन में एक लोकप्रिय घरेलू शब्द बन चुका था। संसार का पहला सार्वजनिक नियमित प्रसारण सन् 1936 में जे. एल. बेयर्ड ने बनाया और उसका प्रदर्शन किया। इसके दो वर्ष पश्चात 'बेल टेलीफोन कंपनी' में काम करने वाले एक इंजीनियर सी. एफ. जेकिंस ने पहली बार अमेरिका में प्रसारित तस्वीर दिखाई। वे आरंभिक टेलीविजन यांत्रिक थे, इलेक्ट्रॉनिक नहीं।

टेलीविजन के विकास का दूसरा चरण सन् 1930 में शुरू हुआ। इस काल में यांत्रिक प्रणाली का स्थान इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली ने ले लिया। नए इलेक्ट्रॉनिक कैमरे एवं रिसीविंग ट्यूब ने न केवल पुरानी यांत्रिक समस्याओं को दूर किया, अपितु तस्वीर की गुणवत्ता को भी बढ़ा दिया। इस प्रकार निरंतर सुधार प्रक्रिया में चल रहे टेलीविजन (आवाज वाले) का प्रथम सार्वजनिक प्रसारण ब्रिटेन में सन् 1930 में हुआ। उस समय ब्रिटेन में मात्र 300 व्यक्तिगत रिसीवर थे, जो बाद में सन् 1930 से सन् 1938 के बीच बढ़कर 4000 तक हो गए। फ्रांस में नियमित प्रसारण सन् 1938 में शुरू हुआ। अमेरिका में नियमित प्रसारण सन् 1941 में शुरू हुआ। सन् 1955 में 'यूरोविजन' नेटवर्क विधिवत् देखा गया, जिसमें ब्रिटेन,

टिप्पणी

फ्रांस, इटली, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, पश्चिम जर्मनी, बेल्जियम तथा नीदरलैंड को जोड़ा गया। सन् 1962 में सेटेलाइट के जरिए पहले जीवंत (लाइव) कार्यक्रम का आदान–प्रदान यूरोप तथा अमेरिका के बीच शुरू हुआ।

भारत में टेलीविजन और इसके कार्यक्रम– भारत में प्रायोगिक टी.वी. केंद्र का उद्घाटन 15 सितम्बर, सन् 1959 को देश के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के हाथों हुआ। उन दिनों भारत में यूनेस्को का सम्मेलन आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन का टेलीविजन से प्रसारण करने के लिए यूनेस्को ने भारत को 20000 डॉलर का अनुदान दिया था। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार व यूनेस्को के सहयोग से आकाशवाणी भवन में एक लघु टेलीविजन स्टूडियो की स्थापना की गई। सन् 1961 में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में एक नियमित 'स्कूल टी.वी. कार्यक्रम' की शुरुआत की गई। उस समय टी.वी. आम आदमी से बहुत दूर था। सन् 1965 में जनता की मांग और अनुकूल परिणामों से उत्साहित होकर सरकार इस बात पर सहमत हुई कि शिक्षा के साथ–साथ मनोरंजन तथा सूचना कार्यक्रम शुरू किए जाएं। इस प्रकार धीरे–धीरे टेलीविजन के कार्यक्रम दिन–प्रतिदिन रोचक होते चले गए

भारत में सबसे पहले टेलीविजन से समाचार बुलेटिन 15 अगस्त, सन् 1965 को प्रसारित हुआ। 1 अप्रैल, सन् 1976 से देश में टेलीविजन 'दूरदर्शन' नाम से आकाशवाणी से पृथक होकर स्वतंत्र अस्तित्व में आ गया है। अपने दूरदर्शन के अलावा सेटेलाइट के जरिए स्टार टी.वी., जी.टी.वी., एम.टी.वी., वी.टी.वी., बी.बी.सी, एल.टी.वी., जी सिनेमा, पी. टी. वी., स्टार मूवीज, सोनी टी.वी., ए.टी.एन. आदि सैकड़ों प्रकार के टी.वी. नेटवर्क का जाल भारत और दुनिया के अन्य देशों में तेजी से फैल रहा है।

आज इन टी.वी. चैनलों के प्रसार के चलते देश भर के दर्शक अपने घरों को संगीत, फिल्म, समाचार, धारावाहिक, नाटक, ज्ञानवर्धक वृत्तचित्रों आदि से गूंज रहे हैं। रंग–बिरंगे देशी–विदेशी दृश्यों, बिंब और संगीत लहरों से बहुत बड़ी जनसंख्या अपने आप को आनंदित कर चुकी है। आजकल दूरदर्शन के प्रमुख कार्यक्रमों में समाचार, वार्ता, साक्षात्कार, रिपोर्ट, नाटक, परिचर्चा, रूपक या फीचर, कमेंटरी, खेल, वृत्तचित्र, आखों देखा प्रसारण, कवि सम्मेलन, मुशायरा, यू.जी.सी. व इग्नू के कार्यक्रम प्रथम वर्ग के कार्यक्रमों के अंतर्गत आते हैं। द्वितीय वर्ग के कार्यक्रमों में फीचर फिल्म, फिल्मी गीत व संगीत, लोकगीत व संगीत, पारंपरिक संगीत, सुगम संगीत, शास्त्रीय संगीत, गायन, वाद्य संगीत आदि सम्मिलित हैं, जो 24 घंटे दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों से प्रसारित होते रहते हैं।

4. फिल्म

फिल्म भी जनसंचार का एक प्रमुख माध्यम है। फिल्मों का असर जनसाधारण पर ही नहीं, बच्चों व महिलाओं (अनपढ़) पर भी बहुत तेजी से होता है। आजकल फिल्म का आशय वीडियो फिल्म, सी.डी. फिल्म आदि से भी लगाया जाता है। जिनका प्रयोग सरकारी संगठन ही नहीं, गैर–सरकारी संगठन भी अपने प्रचार–प्रसार के लिए कर रहे हैं। इतना ही नहीं, व्यक्तिगत तौर पर भी फिल्म का प्रयोग बढ़ गया है।

टिप्पणी

यह देश के नागरिकों का दुर्भाग्य ही है कि फिल्म का ज्यादातर प्रयोग मनोरंजन के लिए ही हो रहा है। फिर भी, अब शिक्षा, साहित्य, देशभक्ति, संगीत आदि समस्त विषयों पर फिल्म निर्माण जारी है।

भारत में फिल्म निर्माण– देश में सर्वप्रथम सन् 1913 में दादा साहेब फाल्के ने पहली बार मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण किया। देश की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' थी। सन् 1959 में गुरूदत्त द्वारा बनी 'कागज के फूल' पहली सिनेमास्कोप फिल्म थी। प्रारम्भ में भले ही 'बॉलीवुड' की फिल्में 'हॉलीवुड' की तर्ज पर बनीं, पर वर्तमान दौर में भारतीय फिल्म उद्योग तेज गति से फल–फूल रहा है। प्रतिवर्ष यहां विभिन्न भाषाओं की 800 से अधिक फिल्में बन रही हैं। देश की एक अरब से अधिक की आबादी का मनोरंजन करने में फिल्मों का व्यापक योगदान है। खासतौर से हिंदी भाषी राज्यों, जैसे दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश आदि में तो हिंदी फिल्मों का सामान्य जनजीवन पर व्यापक असर होता है।

5. वीडियो टेक्स्ट

वीडियो टेक्स्ट भी संचार का एक अत्याधुनिक साधन है। सूचनाओं के इलेक्ट्रॉनिक भंडारण की पद्धति, इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस के नाम से जानी जाती है। इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस में कई प्रणालियां शामिल की जा सकती हैं। वीडियो टेक्स्ट, केबल टेक्स्ट, ऑन लाइन, डाटा बेसेज, इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन बोर्ड, टेली टेक्स्ट, ऑडियो टेक्स्ट जैसी प्रणालियां इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस के ही अंग हैं।

वीडियो टेक्स्ट प्रणाली– यह वीडियो और टेक्स्ट (पाठ) से मिलकर बनी है। इसमें मुद्रित सूचना का पाठ टेलीविजन के पर्दे पर पढ़ा जा सकता है। इस प्रणाली में एक मेनफ्रेम कम्प्यूटर रहता है जिसमें मनचाही सूचनाएं एकत्र रहती हैं।

वीडियो टेक्स्ट प्रणाली में दुतरफा संवाद की सुविधा रहती है। इलेक्ट्रॉनिक संवाद प्रेषण पद्धति से उपभोक्ता अपने संदेश टाइप करके दूसरे उपभोक्ता तक आसानी से भेज सकते हैं।

'वीडियो टेक्स्ट सेवा' चलाने वालों में 'कंपूसर्व इंफार्मेशन सर्विसेज' और 'प्रोडिजी' अग्रणी हैं।

6. इंटरनेट

इंटरनेट दुनियाभर में अलग–अलग जगहों पर लगे कम्प्यूटरों को जोड़कर सूचना की आवाजाही के लिए बनाई गई एक विशेष प्रणाली है। इसकी स्थापना अमेरिका में एक विशेष परियोजना के तहत हुई थी। उस समय संचार की इस सेवा का उद्देश्य था– परमाणु हमले की स्थिति में संचार का नेटवर्क बनाए रखना। लेकिन जल्दी ही यह सुविधा रक्षा शोध केंद्रों से निकलकर व्यावसायिक क्षेत्रों में पहुंच गई।

आज इंटरनेट पर कई सेवाएं उपलब्ध हैं; जैसे– ई–मेल (इलेक्ट्रॉनिक मेल); जिसके माध्यम से कोई भी सूचना, संदेश, पत्र, पता दुनिया के किसी भी कोने में तत्काल पहुंचाया जा सकता है। डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू (वर्ल्ड वाइड वेब) डाटा बेस के द्वारा कोई भी उपभोक्ता

टिप्पणी

इच्छित सूचना प्राप्त कर सकता है। शुरू–शुरू में इंटरनेट पर केवल लिखित सामग्री उपलब्ध थी। लेकिन अब इस पर चित्र, ध्वनि, कार्टून आदि सभी प्रकार की सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इसके अलावा इंटरनेट की अन्य सुविधाओं में 'होमपेज' है। इसमें कोई भी व्यक्ति, कंपनी या संस्था अपने बारे में विवरण देकर एक तरह से विज्ञापन कर सकती है। 'होमपेज' की जानकारी लेने को 'हिट' कहा जाता है। 'नेट' में सूचना भंडार, विश्वकोश, पुरानी–नई लोकप्रिय पुस्तकें, विशेष लेख, शोध पत्र, अखबारों की कतरनें, पूरे अखबार व पत्रिकाएं, कोर्ट के फैसले आदि के विशाल सूचना भंडार में से कोई भी उपभोक्ता मनचाही सूचना ले सकता है। इसके अतिरिक्त खेल बुलेटिन तथा फाइल ट्रांसफर प्रोटोकॉल (एफ.टी.पी.) है जिसके जरिए हम दूर बैठे किसी व्यक्ति से जानकारी अपनी फाइल में ले सकते हैं और अपनी जानकारी दे सकते हैं यहां तक कि ऐतिहासिक महत्व के दस्तावेज, गीत, कविताएं, टी.वी. कार्यक्रमों के सार संक्षेप आदि भी हम अपनी फाइल में ले सकते हैं।

नियंत्रण– 'इंटरनेट' को संक्षेप मे 'नेट' कहने का चलन भी हो गया है। यह एक ऐसा विश्वव्यापी कम्प्यूटर नेटवर्क है, जिस पर दुनियाभर में फैले रहने के बावजूद किसी का नियंत्रण नहीं है। यह किसी कानून के दायरे में भी नहीं आता। 'इंटरनेट' से कोई भी व्यक्ति जानकारी ले सकता है और किसी भी प्रकार की सामग्री व जानकारी, अपना कोई पता या कोड देकर नेट पर छोड़ सकता है, जो कुछ ही क्षणों में दुनियाभर में फैले उसके चिरपरिचितों को कम्प्यूटर पर क्लिक करते ही उपलब्ध हो जाएगी। इंटरनेट का नकारात्मक पहलू यह है कि इसको निजी तौर पर इस्तेमाल करने वालों के नाम–पते का कोई रिकॉर्ड नहीं होता है। अतः किसने कब और क्या जानकारी किस उद्देश्य को लेकर नेट पर डाली, इसका पता लगाया जाना मुश्किल है। इस कारण ही आजकल 'इंटरनेट' के दुरुपयोग की घटनाएं दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हैं।

छापेखाने के आविष्कर्ता ने सन् 1455 में यह कभी नहीं सोचा होगा कि एक दिन उसकी मुद्रण मशीन मानव के अत्याधुनिक कम्प्यूटर से पिछड़ जाएगी। डिजिटल टेक्नालॉजी की सहायता से 'इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र' अब घर–घर पहुंचने लगे हैं। आज हमारे देश में अनेक समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं मुद्रण माध्यम (प्रेस) से प्रकाशित होने के साथ–साथ इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं। इस शृंखला में सर्वप्रथम 'दि हिंदू' और 'इंडिया टुडे' इस सेवा से जुड़े, इसके बाद 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया', 'दि इंडियन एक्सप्रेस', 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'आउटलुक', 'नवभारत टाइम्स', 'डेकन हेरल्ड', 'दि हिंदूस्तान टाइम्स', 'हिंदुस्तान', 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर' आदि समाचार पत्र भी इंटरनेट से जुड़ गए हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध समाचार पत्रों का मुख्य उद्देश्य यही होता है कि देश–विदेश में बैठे अपने पाठकों से संवाद स्थापित किया जा सके। इससे उनको विज्ञापन भी मिलता है।

देश में कुछ समाचार–पत्र केवल इंटरनेट पर ही प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें 'तहलका डॉट काम' भी एक ऐसा प्रसारण है जो मात्र इंटरनेट पर किसी खास विषय पर जानकारी और रहस्य उजागर करता है।

ब्रजमोहन गुप्त ने इलेक्ट्रॉनिक अखबार के विषय में अपने एक लेख में लिखा है कि "दरअसल इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र की कल्पना नई नहीं है। टेली–टेक्स्ट सेवा की तरह

टिप्पणी

से इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र अद्यतन रूप में उपलब्ध होते रहते हैं। नेत्रहीनों के लिए निकलने वाले 'दि गार्जियन' का संस्करण भी इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से प्रसारित होता है और अपने पाठकों को कम्प्यूटर की आवाज में जोर–जोर से पढ़कर सुनाया जाता है। कुछ मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि परंपरागत अखबार की तुलना में इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र काफी सस्ता होता है।

4.8.2 संचार के मुख्य कार्य

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जो प्रेषक, प्राप्तकर्ता और संदेशक के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। यह एक–दूसरे से संबंध जोड़ने का एक बहुत बड़ा और सुदृढ़ माध्यम है, जो एक को दूसरे से, दूसरे को तीसरे से, इस तरह यह समूहों के समूह को एक–दूसरे का जानकार बना देता है अर्थात यह सामाजिक प्रक्रिया है। इसकी मुख्य क्रियाएं इस प्रकार हैं–

1. **सूचना तथा जानकारी–** खबरों का प्रसारण चित्रों, संदेशों, तथ्यों, विचारों और समीक्षा की ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करता है। पर्यावरण, देश, परिस्थिति की समझ, प्रतिक्रिया आदि के लिए संचार कार्य महत्वपूर्ण है।
2. **प्रेरक–** संचार माध्यमों के द्वारा व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। उसके मन की भावनाएं प्रबल होती हैं। इससे वह व्यक्तिगत या सामूहिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयास करता है।
3. **वाद–विवाद परिचर्चा–** इसके माध्यम से हम भिन्न–भिन्न विषयों पर अपने विचारों का आदान–प्रदान करके अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं।
4. **समाजीकरण–** संचार के माध्यम से ही जन–सामान्य तक आवश्यक जानकारी पहुंच पाती है। संचार के माध्यम से व्यक्ति अपने भावों, अनुभावों से दूसरों को परिचित करवा सकता है।
5. **शिक्षा–** संचार माध्यम से मिलने वाली शिक्षा आदि से जीवन कलामय हो जाता है। व्यक्ति का चरित्र–निर्माण होता है। वह सद्भावी तथा सद्विचारी बनता है। उसका ध्यान बौद्धिक कार्यक्रमों की तरफ जाता है।
6. **मनोरंजन–** संचार का एक महत्वपूर्ण कार्य मनोरंजन है। महत्वपूर्ण जानकारियां, संप्रेषण आदि के अतिरिक्त यह शारीरिक थकान दूर करने का भी कार्य करता है। नाटक, नृत्य, कला, संगीत, कॉमेडी आदि का संकेतों, चित्रों, ध्वनियों द्वारा विकास करके व्यक्ति समाज का मनोरंजन करता है।
7. **बिक्री विज्ञापन–** संचार एक प्रकार का बिक्री विज्ञापन भी है। जब भी कोई नई वस्तु बाजार में आती है तो वह विज्ञापन के माध्यम से ही जनता तक पहुंचती है। यह जनता में विश्वास पैदा करने और बिक्री बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

टिप्पणी

4.8.3 संचार क्रिया के प्रमुख तत्त्व

1. **संप्रेषण या स्रोत–** संचार प्रक्रिया को क्रियान्वित करने वाला संचारक कहलाता है और स्रोत से अभिप्राय– उत्पत्ति स्थान से है। स्रोत सूचना को समाज से ग्रहण कर पुनः उसी में प्रेषित कर देता है। संचार स्रोत या संप्रेषक व्यक्ति को संचारित विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए। उसमें भाषायी कौशल के साथ–साथ मनोवृत्ति और ज्ञान का स्तर ऊंचा स्तर भी होना चाहिए तथा उसे सामाजिक सांस्कृतिक आचरण का भी ज्ञान होना चाहिए।
2. **चयनित सूचना–** संप्रेषक सभी घटनाओं का संकलन भले ही कर ले, किंतु उसका संप्रेषण सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही कर सकता है। इसीलिए उसे प्राप्त सूचनाओं में से श्रोता अथवा समाज के लिए महत्वपूर्ण सूचनाएं ही प्रेषण के लिए चुननी पड़ती हैं और इसे ही चयनित सूचना कहा जाता है।
3. **संदेश–** संप्रेषक जब बोलकर, लिखकर या चित्र बनाकर या संकेत के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करता है या सूचना देता है, वह संदेश कहलाता है जिसके आदान–प्रदान से ही संचार–प्रक्रिया चलती है। संदेश उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए तथा प्रापक की जरूरतों के अनुकूल एवं ग्रहण क्षमता के अनुरूप होना चाहिए। इसका प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है।
4. **संचार साधन–** संचार–प्रक्रिया में संचार–साधन या मार्ग वह संघटक है, जिसके द्वारा स्रोत श्रोता तक संदेश पहुंचाता है। वस्तुतः संचार मार्ग वह साधन है जिसके द्वारा संप्रेषक द्वारा प्रेषित संदेश को प्रापक ग्रहण करता है, जैसे–टेलीफोन का तार।
5. **संचार–माध्यम–** स्रोत तथा श्रोता अथवा संप्रेषक तथा संग्राहक के बीच सेतु ही संचार माध्यम है। यह अंग्रेजी शब्द का हिंदी पर्याय है, जिसका अर्थ है– दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला। संदेश को प्रभावशाली ढंग से प्रापक तक पहुंचाने के लिए संचारक जिस माध्यम का सहारा लेता है वही संचार माध्यम है। ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर संचार माध्यम को अग्रलिखित तीन वर्गों में बांट सकते हैं।
   (क) श्रव्य संचार माध्यम– आकाशवाणी, टेप–रिकॉर्डर, लाउड स्पीकर।
   (ख) दृश्य संचार माध्यम– पत्र, पत्रिकाएं, पोस्टर, चार्ट आदि।
   (ग) दृश्य–श्रव्य संचार माध्यम– फिल्म, टी.वी., नाटक, नाच–गाना आदि।
6. **श्रोता या प्रापक–** संचार प्रक्रिया में श्रोता उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि संप्रेषक। प्रापक या श्रोता में भी वे सभी गुण होने चाहिए जो संप्रेषक के लिए जरूरी हैं– जैसे किसी प्रकार की कार्यवाही का ज्ञान जितना संप्रेषक के लिए जरूरी है उतना श्रोता के लिए भी। वर्तमान समय में जनसंचार माध्यमों के प्रापक वर्ग में भी भौगोलिक विस्तार आया है।
7. **संकेतीकरण–** संप्रेषक जब भावों या विचारों को अपने रचनात्मक कौशल से संकेत के रूप में परिवर्तित कर रचनात्मक विधि से प्रापक तक पहुंचाता है तो इसे संकेतीकरण कहते हैं।

टिप्पणी

8. **गंतव्य रचना–** जिन व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों के लिए संदेश का महत्व होता है, उन व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह तक संदेश का गन्तव्य स्थल या मंजिल होता है।

9. **संकेत वाचन–** प्रापक सूचना ग्रहण करने से पूर्व अपने तरीके से सूचना को समझता है तथा उसे ग्रहण करता है। इसी प्रक्रिया को संकेत वाचन अथवा डिकोडिंग कहा जाता है।

10. **प्रतिपुष्टि–** जब प्रापक संदेश प्राप्त कर उस पर अपनी प्रतिक्रियां व्यक्त करता है तो उसे प्रतिपुष्टि, या फीडबैक कहते हैं। प्रतिपुष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण संघटक है। प्रतिपुष्टि के बिना संचार प्रक्रिया पूर्ण नहीं मानी जा सकती क्योंकि संचार तो सूचनाओं का आदान–प्रदान है। संपादक के नाम पत्र, अखबार में पाठकों के पत्र, आकाशवाणी में श्रोताओं के पत्र तथा दूरदर्शन में दर्शकों के पत्र प्रतिपुष्टि के अंतर्गत आते हैं।

4.8.4 जन संचार माध्यमों की उपयोगिता

जन संचार माध्यमों की उपयोगिता निम्नानुसार है–

1. **सूचना–** जन संचार माध्यमों का कार्य विश्व की घटनाओं, समाज की गतिविधियों और व्यक्ति की कृतियों को लोगों तक पहुंचाना है। जन सामान्य की समस्याओं को शासन तक तथा शासन की उपलब्धियों को जनता तक पहुंचाकर पारस्परिक सद्भावना जागृत करने का कार्य भी जन संचार माध्यम का ही है।
2. **अंतर्संबंधों की व्याख्या–** सत्य और सामयिक टिप्पणियों द्वारा जनसंचार के माध्यम समाज के विभिन्न वर्गों में सामंजस्य पैदा करते हैं। जनता और सरकार राष्ट्र के हित के लिए उचित व उत्तम निर्णय लें, जन संचार माध्यम ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं।
3. **मनोरंजन–** सामाजिक तनाव, व्यक्तिगत द्वेष को समाप्त करके 'सबजन हिताय' स्वस्थ मनोरंजन का प्रस्तुतीकरण जन संचार माध्यमों के द्वारा ही संभव है।
4. **निरंतरता–** प्राचीन तथा नवीन में सामंजस्य उत्पन्न करके राष्ट्रीय हितों–एकता, सांप्रदायिक सौहार्द जैसे तत्वों को प्रस्तुत करके जन संचार माध्यम अपनी उपयोगिता को सिद्ध करते हैं।
5. **गतिशीलता–** राजनीतिक परिवर्तन, आर्थिक विकास एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना हेतु जन संचार माध्यम प्रभावकारी अभियान चलाते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जन संचार माध्यमों में कैद होकर मनुष्य अपना अधिकांश समय व्यतीत करता है। सूचना, परामर्श, आज्ञा, सुझाव तथा उत्थान के लिए प्रेरणा देना ही जन संचार माध्यमों का लक्ष्य है।

अनादि काल से पृथ्वी के जन्म के साथ–साथ उसकी सबसे महत्वपूर्ण कला संचार रही है। संचार के विकास की अवधारणा के बारे में अगर हम अनुमान लगाएं तो इसके बारे

टिप्पणी

में निश्चित प्रमाण मिलना मुश्किल ही नहीं लगभग नामुकिन है। विकास हुआ, जन संपर्कों का दायरा बढ़ा उसे जनसंचार का रूप दिया गया। प्राचीन काल में जिस समय पर जैसा संचार उपक्रम विकसित हुआ उसी के माध्यम से जन समुदायों को संबोधित किया जाने लगा। धीरे–धीरे विकास और मनुष्य की सोच के अनुरूप गठित संचार माध्यमों से जन संचार किया जाने लगा। रेडियो, टेलीफोन, इंटरनेट, टी.वी. आदि सभी उपकरणों का संचार के लिए उपयोग किया जाने लगा। इन्हीं के समुदायों को आधुनिक नाम 'मीडिया' से पुकारते हैं।

आज यह बताने की जरूरत नहीं है कि मीडिया की किसी भी देश की प्रगति में क्या भूमिका रहती है और इसी भूमिका की एक जड़ हमारे भारत देश में विद्यमान है। परंतु विकास के साथ–साथ हमारे भारत देश की कुछ महत्वपूर्ण पृष्ठभूमियों को भी ध्यान में रखा जाता है। इसी कारण आज मीडिया से जहां एक ओर जन समुदायों को सूचनाएं आसानी से उपलब्ध करायी जाती हैं वहीं मीडिया के कुछ सांस्कृतिक विरोधी पहलुओं पर आए दिन जन–आक्रोश देखने को मिल जाता है।

यह बात अलग है कि आज औद्योगिक विकास एवं राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय सामुदायिक विकास के लिए आई.टी. डेवलपमेंट की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मीडिया के माध्यम से प्राप्त होने वाली पलपल की सूचनाओं से हमें अपने व्यावसायिक एवं निजी समझौतों एवं निर्णयों में आकस्मिक बदलाव के लिए भी पर्याप्त अवसर मिलते हैं। देश–विदेश में होने वाली प्रत्येक घटनाओं को हम प्रतिपल प्राप्त करते रहते हैं। परंतु सब आज व्यवसाय के पहलुओं के मद्देनजर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और यह व्यवसाय का पहलू भी बहुत हद तक सही है क्योंकि अगर व्यवसाय ही नहीं होगा तो हम तक खबरे पहुंचाने के लिए कोई भी न्यूज चैनल शायद हमारे बीच ही न हो फिर संभवतः सरकार बजट का एक बड़ा भाग खर्च करके दूरदर्शन के माध्यम से हम तक खबरें पहुंचाए।

अब बात आती है व्यवसाय के साथ–साथ प्रत्येक मीडिया प्रबंधक की जो कि भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर अपने कुछ व्यक्तिगत आदर्शों को अपनाकर अथवा कुछ नियम बनाकर भारतीय संस्कृति पर प्रहार करने वाले कुछ विज्ञापनों एवं सूचनाओं आदि पर रोक लगाने अथवा उन्हें बंद करने के लिए अग्रसर हो।

आज प्रत्येक चैनल विज्ञापनों के आधार पर बाजार में नं. 1 और नं. 2 की श्रेणी पर विद्यमान है। क्योंकि जितना ज्यादा पैसा उन्हें मिलता है वे उतना ही माल परोसते हैं और लोगों को आशानुरूप अपनी ओर आकर्षित करते हैं। आज सकारात्मक समाचार को कम अहमियत देकर उसकी अपेक्षा नकारात्मक समाचार को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि लोगों का रुझान हमेशा से ही नकारात्मक शक्ति से ज्यादा भरा रहता है। मनुष्य जन्म के साथ अपने 84 लाख योनियों के स्वभाव के कुछ अंशों को लेकर पृथ्वी पर जन्म लेता है जिसे संस्कारों को परिवेश के माध्यम से ठगने की बातों को अकसर कई महापुरुषों द्वारा कहा जाता है कि सौ प्रतिशत सत्य है। उसी क्रम में अगर उसका विकास नकारात्मक परिवेश के बीच होगा

टिप्पणी

तो परिस्थितिवश उसका चिंतन नकारात्मक और हिंसा वाला होगा। अतः हमें चाहिए कि उसको सकारात्मक परिवेश मिले जो कि आज के मीडिया परिवेश को देखते असंभव नहीं तो कम से कम बहुत मुश्किल तो जरूर मालूम होता है।

अगर हम भारत को वर्तमान मीडिया स्वरूप का केंद्र बिंदु मानकर अवलोकन करें तो मीडिया का वर्तमान स्वरूप हमारे भारत की छवि एवं उसके आशानुरूप आध्यात्मिक विकास के लिए घातक सिद्ध होता जा रहा है। किसी भी राष्ट्र की लंबी उम्र एवं विकास यात्रा का आधार उसका आध्यात्मिक विकास होता है। यही कारण है कि भारत एक मात्र आध्यात्मिक देश है जिसका इतिहास कई लाखों वर्ष पुराना है। बाकी सभी देश क्षणिक समय से खोजे गए हैं एवं शायद कुछ समय बाद आध्यात्मिक क्षितिज से लुप्त हो जाएंगे।

भारत के भविष्य की दिशा धारा में हमारा वर्तमान मीडिया के द्वारा किए गए कार्यों का अवलोकन सकारात्मक प्रतीत होने की स्थिति में नहीं है। उसका कारण, मर्डर, बलात्कार, लूट, आदि की घटनाओं को मुख्य बिंदु बनाकर लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाता है जबकि आवश्यकता इस बात की है कि अच्छी और धर्मक्षेत्र संबंधी एवं आध्यात्मिक खबरों को मुख्य बिंदु बनाकर बाकी खबरों को द्वितीय प्राथमिकता देकर पहुंचाएं क्योंकि दोनों ही खबरें महत्वपूर्ण की श्रेणी में आती हैं लेकिन विभाजन का आधार सकारात्मक ऊर्जा देने वाला होना चाहिए

उदाहरण के तौर पर प्रातः काल कोई अखबार में हमेशा नकारात्मक खबरें पढ़ता है तो उसका पूरा दिन लगभग समाज की वही घिसी–पिटी घटनाओं एवं कलह क्लेश के बीच बीतता है धीरे–धीरे उसका दिमाग भी नकारात्मक की श्रेणी में आ जाता है और सकारात्मक खबरें पढ़कर पूरा दिन सकारात्मकता के साथ बीतता है।

वर्तमान में मीडिया का उद्देश्य केवल पैसा कमाना है लेकिन इसके विपरीत कुछ संशोधनों के साथ–साथ भारतीय पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर जनसमुदायों के बीच काम करें। जैसे अश्लील विज्ञापनों को न दिखाएं। अगर अति आवश्यक विज्ञापन है तो उसका एक समय सुनिश्चित हो ताकि बाकी समय अपने परिवार के साथ टी.वी. देखने में किसी को भी असुविधा (आपत्ति) महसूस न हो व नकारात्मक खबरों को प्राथमिकता न देकर सकारात्मक खबरों को प्रसारित करें।

अब बात आती है कि सकारात्मक खबरों में क्या करें। संसार में होने वाली प्रत्येक अच्छी घटना को मुख्य खबर बनाएं। समाज में जहां जागरूकता की आवश्यकता है वहां जागरूकता फैलाएं। चाहे जनता के लिए अपील सरकार से हो या सरकार के हित के लिए अपील जनता से हो। उदाहरण के लिए कुछ आंकड़े और खबरों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. 26 करोड़ भारतीय अभी भी प्रतिदिन 50 रुपये से भी कम में गुजारा करते हैं। इसके संदर्भ में जनता के माध्यम से अपील सरकार से की जाए।
2. दूसरा भारत में कुल श्रमिकों में 28.3 प्रतिशत महिलाएं हैं और इनमें से 36.1 प्रतिशत महिलाएं 15 से 64 वर्ष के बीच की हैं। इसमें जनता एवं सरकार दोनों से अपील की जाए कि इस दिशा में सुधार के प्रयासों को बल दिया जाए।

टिप्पणी

3. 1991 से 2001 के बीच जनसंख्या में 181 करोड़ लोगों की वृद्धि भारत में हुई। इसके मद्देनजर कोई क्रांतिकारी कदम उठाया जाए।
4. 57 लाख लोग भारत में एच.आई.वी. पॉजीटिव से ग्रसित हैं। उनके लिए नियमित दिशा–निर्देश एवं क्रिया–कलापों को अंजाम दिया जाए।

आज भारत में औसतन प्रत्येक व्यक्ति 2 घंटे रोज टी.वी. देखता है व 9.7 करोड़ युवा लोग क्षेत्रीय अखबार पढते हैं एवं 1.2 करोड़ लोग अंग्रेजी अखबार पढ़ते हैं। भारतीय सिनेमा के हर साल लगभग 4 अरब टिकट बिकते हैं। भारत में 12500 सिनेमा घर हैं एवं 250 मल्टीप्लैक्स हैं, 18.57 करोड़ लोग सप्ताह में कम से कम एक बार रेडियो सुनते हैं, 10.8 करोड़ घरों में टी.वी. है, 2.30 करोड़ लोग भारत में हर रोज सिनेमा देखते हैं, सन् 2005 तक 300 टेलीविजन चैनल भारत में थे।

उपरोक्त आंकड़े यह साबित करते हैं कि भारत में मीडिया अच्छी पत्रकारिता एवं मीडिया की नई–नई तकनीकें अपनाकर पाठकों की संख्या बढ़ाने में सफल रहा है। इससे उसे अपना यौवन फिर से प्राप्त करने में सहायता मिली है। आज रेडियो पर एफ.एम. का माध्यम भी लोगों तक महत्वपूर्ण खबरें पहुंचाने का साधन है व लोग इसकी नकल भी करते नजर आते हैं। देश में आज लगभग कितने ही एफ.एम. स्टेशन हैं।

मीडिया आज प्रोद्यौगिकी की मदद से कुलांचे भरता हुआ आगे बढ़ रहा है। आप लोगों के रुझान का अनुमान इस बात से लगा सकते हैं कि स्टार प्लस पर प्रसारित होने वाला धारावाहिक 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' 190 बार टी.आर.पी. में अव्वल रहा और तो और 26 जुलाई 2006 तक के 258 हफ्तों में तो इस धारावाहिक की एक अदाकारा तकनीकी तौर पर 104 साल की हो चुकी थीं।

लोगों के इसी रुझान को सही दिशा में प्रेरित करने के लिए कुछ ऐसे परिवर्तन करने की जरूरत है जो हमारी भारतीय संस्कृति एवं अखंडता को कायम रख सकें।

4.8.5 जनंसचार माध्यमों का स्वरूप

जनसंचार के अनेक माध्यम हैं जिन्हें अनेक रूपों में रखा जा सकता है।

1. **मुद्रण माध्यम**–इसमें समाचार पत्र पत्रिकाएं और पुस्तकों आदि का समावेश होता है।
2. **श्रव्य संचार माध्यम**–इसका संबंध रेडियो, ऑडियो केसेट, टेपरिकॉर्डर से होता है।
3. **दृश्य श्रव्य संचार माध्यम**–इसमें टेलीविजन, वीडियो केसेट, फिल्म, सीडी सभी का समावेश है।
4. **इंटरनेट**–यह कम्प्यूटर पर संचालित होने वाला नेटवर्क है और कम्प्यूटर तथा इंटरनेट सभी संचार माध्यमों पर कार्य कर सकता है।

1. मुद्रण माध्यम

इसमें मुद्रित समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, जर्नल, पोस्टर आदि अनेक प्रकार के मुद्रित माध्यम आते हैं। समाचार पत्रों को प्रकाशित करने की जब से परंपरा पड़ी, पत्रकारिता के

टिप्पणी

उद्देश्य स्वतः ही प्रकट हुए। सबसे अधिक यदि कोई बात भयभीत करती है तो वह लोकनिंदा करती है। लोकनिंदा या यश से जनमत का निर्माण होता है इसी कारण सरकारें भी यही चाहती हैं कि उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हो। विशेष रूप से आजकल जबकि सरकारें लोकमत का प्रतिनिधित्व पाकर ही गठित होती हैं। अखबारों ने भी लोकमत निर्माण की अपनी शक्ति की हर तरह से परीक्षा करने के प्रयोग प्रारंभ किए हैं। इसके अतिरिक्त प्रशासन यह भी नहीं चाह सकता कि प्रेस मनमाने ढंग से स्वच्छंद होकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ भी छापती रहे। इस कारण राष्ट्र में उसके लिए भी समाचार तंत्र को अनुशासित रखना आवश्यक रहा है।

आज अनेक समाचार पत्र, व्यावसायिक और साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सारी चुनौतियों के बाद भी प्रिंट मीडिया के प्रभाव में कोई कमी नहीं आई है।

मुद्रण के निम्नलिखित प्रकार हैं–

1. **लेटर प्रेस प्रिंटिंग–** लेटर प्रेस प्रिंटर तथा अक्षर मुद्रण को रिलीफ प्रिटिंग, रेज्ड़ सरफेस प्रिंटिंग या टाइपो–ग्राफिक प्रिंटिंग भी कहते हैं। इसमें मुद्रण तल, उप मुद्रण तल से ऊपर उठा हुआ होता है। स्याही लगाने के उपरांत उस पर कागज रखकर मशीन द्वारा दबाव दिया जाता है इससे मुद्रण तल का प्रतिरूप कागज पर उठ जाता है।

2. **लिथोग्राफी तथा प्लेनोग्राफिक प्रिंटिंग–** जब मुद्रण तल और अमुद्रण तल दोनों एक समान अर्थात समतल रहते हैं तो इसे प्लेनोग्राफिक प्रिंटिंग कहा जाता है। इस विधि में मुद्रण एवं अमुद्रण दोनों तल रासायनिक क्रिया द्वारा अलग किए जाते हैं। ग्रीज तथा पानी एक–दूसरे से अलग रहते हैं। मुद्रण तल चिकनी स्याही का बना होता है तथा अमुद्रण तल पर चिकनाई नहीं होती। मुद्रण स्याही को अपेक्षित भाग की ओर खींचने तथा मुद्रण स्याही को शेष भागों से दूर करने का कार्य रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा होता है। स्टोन के स्थान पर जस्ते अथवा एल्यूमीनियम की प्लेट का भी प्रयोग किया जाता है। मुद्रण तल पर इमेज उल्टी रहती है तो कागज पर उतरने के पश्चात सीधी हो जाती है। इसमें कई रंगों की छपाई एक साथ हो जाती है।

3. **इंटेग्लियो प्रिंटिंग–** जब मुद्रण तल, मुद्रण तल से नीचे खुदा हुआ होता है और ऐसे खुदे हुए तल या निम्न तल से मुद्रण कार्य संपन्न होता है तब इसे इंटेग्लियो प्रिंटिंग कहते हैं। इसमें प्लेट पर खोदकर कार्य किया जाता है। समूचे प्लेट पर स्याही निचली स्थिति में मुद्रण तल में भर दी जाती है। इसके उपरांत समूचे प्लेट से स्याही पोंछी जाती है। गैर प्लेट पर कागज रखकर दबाव दिया जाता है जिससे खुदे हुए तल में भरी स्याही कागज पर उठ जाती है। इसे कापर प्लेट प्रिंटिंग, स्टील प्लेट प्रिंटिंग, रिसेस प्रिंटिंग आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है।

4. **स्टेंसिल प्रिंटिंग–** स्टेंसिल को जाली फटा तल भी कह सकते हैं। इस मुद्रण प्रकार में मुद्रण तेज काटा जाता है। इसमें कागज की शीट लेकर उसमें छपने वाला क्षेत्र काटा जाता है। इसे स्टेंसिल कहते हैं। इस फटे भाग पर स्याही लगाई जाती है जो स्लिक स्क्रीन में से पार होकर कागज या अन्य पदार्थ पर छप जाती है।

5. **जिरोग्राफी या शुष्क मुद्रण–** इस मुद्रण विधि में किसी भी अधातु प्लेट पर मुद्रण किए जाने वाला चित्र या अक्षर धनात्मक चार्ज्ड किया जाता है। उस पर ऋणात्मक चार्ज्ड पाउडर छिड़का जाता है। यह पाउडर वस्तु से चिपक जाता है फिर इसे पोंछ दिया जाता है और वस्तु का प्रतिरूप कागज पर छप जाता है।

6. **फोटोग्राफी प्रिंटिंग–** इसमें निगेटिव फिल्म मुद्रण क्षेत्र होता है। इसमें कागज पर प्रकाश किरणों को छोड़कर मुद्रण कार्य संपन्न किया जाता है।

7. **ग्रेवियोर मुद्रण–** यह लेटर प्रेस पद्धति के ठीक विपरीत है। जहां लेटर प्रेस में उभरे हुऐ अक्षर होते हैं, वहीं ग्रेवियोर में नीचे की सतह की तरफ दबे हुए होते हैं। इन नीचे दबे हुए भागों में ज्यादा स्याही भरी जाती है। सन् 1907 से पहले तक यह विधि गोपनीय थी फिर सन् 1910 में एक बेब रोटरी लेटर प्रेस मशीन में ग्रेवियार सिलिंडर की सहायता से द साउथ एंड स्टेंडर्ड नामक अखबार में कुछ चित्रा छपे। इसमें एक सिलिंडर होता है जिस पर सामान्य सतह से नीचे की तरफ मुद्रण सतह होती है और जब यह स्याही जो काफी पतली होती है इस पात्र में घूमती है तो यह स्याही दबे हुए भागों में प्रवेश करती है। फिर इस स्याही को ब्लेड की सहायता से साफ कर दिया जाता है और यह फिर पात्र से बाहर निकाल दी जाती है। इसके बाद इसमें गर्म हवा को प्रवाहित किया जाता है ताकि स्याही सूख सके। यह मशीनें आजकल प्लास्टिक सतह पर मुद्रण के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं।

2. श्रव्य संचार माध्यम

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका श्रव्य संचार माध्यम की है। मुद्रित माध्यमों के बाद आधुनिक संचार माध्यमों में श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो का बहुत महत्व है। रेडियो पर बहुत सारे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। रेडियो का माध्यम ध्वनि तरंगों से जुड़ा है जिसमें समय और दूरी की कोई सीमा नहीं होती। यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुंच जाता है। रेडियो को बिना कागज का ऐसा समाचार पत्र कहा गया है जिसमें दूरी का आभास नहीं होता।

रेडियो माध्यम का समाचार और साहित्य के कार्यक्रमों के प्रसारण में अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है। इसमें वार्ता, साक्षात्कार, समाचार परिचर्चा, रूपक, नाटक, कवि सम्मेलन, रिपोर्ट, मुशायरा इन सभी का प्रसारण होता है।

आज के समय में रेडियो लोकरुचि के समाचारों का प्रसारण करके बहुजन–हिताय बहुजन–सुखाय के उद्देश्य से संपूर्ण देश के लोगों के मनोरंजन के अतिरिक्त उन्हें शिक्षित करने तथा सूचनाएं प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

रेडियो एक सुलभ माध्यम है जिससे श्रोताओं तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। रेडियो पर आम बोलचाल की सरल, सुबोध, सुगम एवं आकर्षक शैली में विभिन्न कार्यक्रमों

टिप्पणी

को प्रसारित किया जाता है। प्रसारण की तकनीक से अच्छी तरह परिचित व्यक्ति इस संचार माध्यम से लाभान्वित हो सकता है।

टिप्पणी

श्रव्य माध्यम (आकाशवाणी)

श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो प्रसारण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाषा होती है। यह भाषा मौखिक है, क्योंकि रेडियो कोई पर्दा नहीं है और यह भाषा केवल श्रव्य होती है। प्रयोजन मूलक हिंदी में भाषा का प्रयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। भाषा तो एक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके दो आधार होते हैं– भौतिक और मानसिक। रेडियो में भी भाषा की मौखिक मूल प्रकृति का ही प्रयोग होता है। इसमें ध्वनि के अनुरूप मनोभावों की व्यंजना की जाती है। मौखिक भाषा की प्रकृति को श्रव्य के माध्यम के अंतर्गत आकाशवाणी के विविध कार्यक्रमों के अनुसार इस प्रकार रखा जा सकता है–

1. **ग्रामीण कार्यक्रम–** रेडियो का प्रचलन दूर–दराज के गांवों में बहुत अधिक है। इसलिए ग्रामीण लोगों के विकास हेतु तथा देश–भर में हो रहे विभिन्न विकास कार्यों से उनकी पहचान कराने हेतु आकाशवाणी से ग्रामीण कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। इसमें कृषि–जगत के तकनीकी विकास, कृषक–प्रशिक्षण, साक्षरता–अभियान आदि वैविध्यपूर्ण विषयों पर सहज–सरल रूप में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

2. **विविध भारती एवं विज्ञापन सेवा–** विविध भारती पर कई मनोरंजक कार्यक्रमों का प्रसारण होता है, जिनमें गीत–संगीत, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, फिल्मी संगीत, लघुवार्ता आदि प्रमुख हैं। आकाशवाणी पर विज्ञापन सेवा भी आरंभ की गई है।

3. **विदेश सेवा–** स्वाधीनता के बाद आकाशवाणी की विदेश सेवा का मुख्य लक्ष्य भारत के नए स्वरूप के बारे में तथा भारतीय जीवन के विविध पक्षों तथा चिंतन–शैली को दूसरे राष्ट्रों तक पहुंचाना हो गया। हालांकि विदेशी सेवा कार्यक्रम 20वीं शताब्दी के चौथे दशक के अंत में शुरू हो गए थे तथापि इनमें समुचित विकास स्वतंत्रता के बाद आया। वर्तमान में आकाशवाणी ने विश्व की 25 से अधिक भाषाओं के नियमित प्रसारण द्वारा भारत की छवि को चतुर्दिक फैलाया है। आकाशवाणी के इस प्रसारण से विश्व समुदाय भारतीय जीवन–शैली और संस्कृति तथा आर्थिक–सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्र द्वारा की गई प्रगति से भी परिचित होता है और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर भारतीय रुख को विश्व जनमत के सामने रखा जाता है। इस प्रसारण में मुख्यतः समाचार, वार्ताएं, भारतीय प्रेस की संपादकीय टिप्पणियां, सामयिक घटनाओं आदि पर टिप्पणियां, संगीत आदि के कार्यक्रम होते हैं।

4. **शैक्षिक प्रसारण–** छात्रों के मानसिक स्तर के विस्तार तथा साधन–विहीन विद्यार्थियों के लिए आकाशवाणी नियमित शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण करती है। यह प्रसारण जहां छात्रों के मानसिक स्तर के लिए उपयोगी होते हैं वहीं

साधनविहीन विद्यालयों तथा विद्यार्थियों के लिए भी काफी लाभप्रद होते हैं। प्राथमिक कक्षाओं के लिए इस प्रसारण में मनोरंजन तत्व को प्राथमिकता दी जाती है।

टिप्पणी

5. **समाचार–सेवा कार्यक्रम–** इस कार्यक्रम का कार्य समाचारों का संकलन और उनका प्रसारण है। हर घंटे समाचार बुलेटिन के प्रसारण द्वारा आकाशवाणी जन–मानस को संतुष्ट करती है। समाचार सेवा के अंतर्गत 'समाचार–बुलेटिन', 'समाचार–दर्शन', 'संसद–समीक्षा', 'विधान–मंडल' आदि के प्रसारण मुख्य रूप से प्रसारित किए जाते हैं।

6. **सामयिक समीक्षाएं–** आकाशवाणी के माध्यम से सम सामयिक विषयों से संबद्ध वार्ताएं, परिचर्चाएं, साक्षात्कार आदि के कार्यक्रम विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों एवं बुद्धिजीवियों की सेवा लेकर प्रसारित किए जाते हैं।

7. **युवाओं के कार्यक्रम–** युवा वर्ग को ध्यान में रखते हुए आकाशवाणी ने 31 जुलाई, 1969 को 'युगवाणी' कार्यक्रम का प्रसारण आरंभ किया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य युवा श्रोताओं की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें आत्माभिव्यक्ति के अवसर देना है।

8. **विशिष्ट कार्यक्रम–** विशिष्ट वर्ग के श्रोताओं हेतु आकाशवाणी विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करती है। इससे 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए लघु कहानी, नाटक, कविता आदि मनोरंजक कार्यक्रम होते हैं, तो 15 से 30 वर्ष के युवकों के लिए भी 'युगवाणी' जैसे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। जहां ग्रामीण और शहरी कामकाजी महिलाओं हेतु मनोरंजक वार्ताएं एवं गीत–संगीत के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, वहीं श्वेत और हरित क्रान्ति हेतु खाद, बीज, भूमिशोधन, वृक्षारोपण, पशुपालन, सहकारिता आदि विषयों के संदर्भ में कृषि एवं गृह इकाइयां सामयिक सूचनाएं और परामर्श देती हैं।

वर्तमान समय में आकाशवाणी ग्रामीण कार्यक्रम, विविध भारती, व्यापारिक सेवा, युवा जगत, संगीत, वार्ता, नाटक, फीचर, खेल, लोकरुचि के समाचारों का प्रसारण करके 'बहुजन–हिताय बहुजन–सुखाय' के उद्देश्य से संपूर्ण देश के मनोरंजन के अतिरिक्त उन्हें शिक्षित करने तथा सूचनाएं प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

मौखिक भाषा एवं रेडियो

भाषा मूलरूप में मौखिक ही होती है, उसके उपरांत ही उसका लिखित रूप सामने आता है इसीलिए उसका उच्चरित रूप महत्वपूर्ण होता है। संचार माध्यमों में रेडियो ही एक ऐसा माध्यम है जहां भाषा का मौखिक रूप ध्वनि प्रतिकों के माध्यम से अंकित होता है। ये ध्वनि प्रतीक उसका भौतिक आधार है। ध्वनियों में अर्थ का समावेश होता है। भाषा मनोभावों की अभिव्यंजक होती है। रेडियो में इसके मानक स्वरूप का प्रयोग किया जाता है। इस मौखिक भाषा में वह शक्ति भी होती है जिससे वह सारे हावभावों को, सुरताल को आकाशवाणी में बिना दृश्य के ही व्यक्त करने में समर्थ होती है। रेडियो समय के साथ भाषा का तालमेल बिठाता है, यह उसकी मूल प्रकृति है। इसमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

टिप्पणी

1. प्रसारण के लिए प्रायः सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
2. अस्पष्ट और दुरुह शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. वाक्य छोटे–छोटे सार्थक, रोचक और सरल होने चाहिए।
4. श्रोताओं हेतु प्रसारणार्थ कार्यक्रमों में यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए लेखन होना चाहिए। पांडित्य प्रदर्शन करने में श्रोताओं का और अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिए।
5. अनावश्यक शब्दाडंबर से यथा संभव बचने का प्रयास करते हुए विविधता का खुलकर प्रयोग करना चाहिए।
6. इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक वाक्य अपने आप में संपूर्ण और शुद्ध हो। अस्पष्ट और अपूर्ण तथा अशुद्ध वाक्य प्रयोग श्रवणीयता में बाधक होता है।
7. समाचार रचना में सदैव उपर्युक्त छः प्रकारों का ध्यान रखना चाहिए और समाचार का सार प्रथम वाक्य में देकर बाद में उसको विस्तार देना चाहिए।
8. विचाराभिव्यक्ति श्रोताओं के स्तर तथा विषय की गहनता को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।

3. दृश्य श्रव्य संचार माध्यम

एन.सी. पंत लिखते हैं–"वर्तमान युग में संचार माध्यम सबसे बड़ा माध्यम है जिसके द्वारा आज मानवीय संवेदनाएं एकदम एक कोने से दूसरे कोने में प्रकट हो जाती हैं और भावनाओं के इस समुद्र को उजागर करने में आज का सबसे बड़ा और सशक्त माध्यम दूरदर्शन है।" पहले प्रेस, फिर रेडियो और फिर दूरदर्शन हर माध्यम की अपनी–अपनी सीमाएं होती हैं।

टेलीविजन के आविष्कार से ऐसा लगा मानो दूरदर्शन रेडियो का प्रतिद्वंद्वी हो किंतु वास्तव में यह सही नहीं है क्योंकि दूरदर्शन रेडियो का प्रतिद्वंद्वी न होकर उसका मित्र और पूरक बनकर आया था। समाचार सुनने के साथ उस घटना, वस्तु, परिस्थिति की तस्वीर भी दिखाई देने लगी थी इससे श्रोता और दर्शकों को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वे किसी घटना–विशेष की जानकारी और पृष्ठभूमि को समझने के लिए घटना को देख भी सकते हैं। दूरदर्शन के बारे में डा. अरुण जैन कहते हैं, "एक बेहद लोकप्रिय कहावत है– 'आंखों देखी का विश्वास होता है, कानों सुनी का नहीं' इसीलिए दूरदर्शन रेडियो प्रसारण से भी बाजी मार ले गया। अखबारी समाचारों की अपनी सीमाएं हैं और हिंदुस्तान जैसे देश में जहां केवल पचास प्रतिशत (अब पैंसठ प्रतिशत) लोग शिक्षित हैं अखबारों का मूल्य खत्म हो गया हो ऐसा नहीं है। दुनिया के तमाम प्रचार के साधनों में टेलीविजन एक ऐसा साधन है जो ज्यादा निष्पक्ष होने का दावा कर सकता है।"

4. इंटरनेट

इंटरनेट दुनिया भर में फैले करोड़ों कम्प्यूटरों का एक महाजाल है। इंटरनेट वास्तव में कोई संस्था अथवा यंत्र न होकर एक कार्य प्रणाली है। यह कम्प्यूटरों का विश्वव्यापी नेटवर्क है।

टिप्पणी

यह जनसंचार का सबसे सशक्त माध्यम है। इसे साइबर माध्यम भी कहा जा सकता है। अनेक वेबसाइट बन रही हैं और इस समाचार माध्यम से एक क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। इसमें मुद्रित, श्रव्य और दृश्य–श्रव्य सभी माध्यमों का एक ही साथ प्रयोग होने लगा है। इंटरनेट के बारे में श्री एन.सी. पंत लिखते हैं, "इंटरनेट कार्य प्रणाली का संक्षिप्त नाम है। यहां भिन्न–भिन्न प्रकार की अनेक नेटवर्क प्रणालियां; जो लगभग 40 हजार से अधिक हैं; उपलब्ध हैं, जिसका लाभ इंटरनेट के माध्यम से आसानी से उठाया जा सकता है। यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी है जिसमें करोड़ों कम्प्यूटर एक नेटवर्क से जुड़े होते हैं तथा यह डिजिटल स्रोत और रिसीवर को जोड़ने की प्रक्रिया है।" आज दुनिया भर के शैक्षणिक संस्थान भी इंटरनेट से जुड़ते जा रहे हैं। आज हम कहीं से भी विश्व के किसी भी शैक्षणिक संस्थान के पुस्तकालयों का सदुपयोग कर सकते हैं। महत्वपूर्ण अंशों का प्रिंट आउट ले सकते हैं। इंटरनेट पर हजारों पन्ने खुले हैं। इन पन्नों पर उद्योग, व्यापार से लेकर पर्यावरण तक हर संभव विषय पर सूचना का आदान–प्रदान लगातार हो रहा है साथ ही इन पन्नों और विषयों में लगातार इजाफा होता जा रहा है। आधुनिक युग में मनुष्य के जीवन में इंटरनेट का महत्व तेजी से प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

गतिविधि

अलग–अलग रेडियो चैनल सुनें। विज्ञापन, टीजर और प्रोमो के ऐसे पांच उदाहरण दीजिए जिन्होंने आपको आकर्षित किया है।

क्या आप जानते हैं?

सन् 1973 में 187 देशों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार केवल तीन देशों में कोई रेडियो स्टेशन नहीं था।

4.9 सारांश

समाचार लेखन एक कला है। कोई भी घटना जो लोगों पर प्रभाव डालती है, वह समाचार बन जाती है। समाचार लेखन सृजनात्मक लेखन से अलग होता है, क्योंकि साहित्य लेखन में सबसे पहले प्रस्तावना होती है, जबकि समाचार लेखन में वह बात बताई जाती है जो सबसे प्रमुख है। वर्तमान युग में समाचार की व्याख्या इतनी व्यापक हो गई है कि उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। फिर भी विश्व में, जो भी हुआ या हो रहा है अथवा होगा, वह सभी समाचार है। दैनिक पत्रों के लिए समाचार या संवाद लेखन में कब, कहां, क्या, कौन, कैसे और क्यों का संतोषजनक उत्तर होना ही चाहिए और जहां तक हो सके, इन समस्त प्रकारों का समाचार के प्रथम चरण में ही समावेश होना चाहिए।

कोई भी सूचना समाचार नहीं होती, सूचना छापने से पहले उसकी सत्यता की परख जरूर कर लेनी चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठकों को उसकी सत्यता पर संदेह न हो। 'वार्ता', 'रायटर', 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया' कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जो कि विश्वसनीय

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

11. कम्प्यूटर और इंटरनेट के संयोग से एक नई व्यापार प्रणाली आज प्रचलन में है, जिसे..... कहते हैं।

सही/गलत बताइए

12. इंटरनेट की स्थापना अमेरिका में एक विशेष परियोजना के तहत हुई थी।

टिप्पणी

मानी जाती हैं। समाचार लेखन में भाषा–शैली के संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है। लेकिन यह आवश्यक है कि वे लोगों के लिए सहज, सरल, सुबोध भाषा–शैली में ही लिखे गए हों क्योंकि समाचार पत्रों को सभी वर्ग के लोग पढ़ते हैं। मीडिया लेखन रचनात्मक और शैक्षणिक लेखन से अलग है क्योंकि मीडिया लेखन एक गतिविधि है जिसमें सूचना, अनुनय, प्रचार और मनोरंजन आदि विषय शामिल हैं। इसमें साधारण भाषा में लिखना शामिल है और संवाद की सार्थकता के लिए कई अन्य रूपों; जैसे ऑडियो, दृश्यों और एनीमेशन का उपयोग किया जाता है।

रेडियो के मामलों में, आप एक व्यक्ति को देखने की बजाए, सुनने में सक्षम होते हैं। व्यक्ति एक लिखित स्क्रिप्ट को पढ़कर बोलता है। आपको ऐसा महसूस होता है कि जैसे आप किसी व्यक्ति से बातचीत कर रहे हैं। उस व्यक्ति की ध्वनियां अनौपचारिक लगती हैं जिन्हें आसानी से समझा जा सकता है। रेडियो लेखन करते समय पहला याद रखने वाला सिद्धांत यह है कि लक्षित श्रोतागण श्रोता है न कि दर्शक। रेडियो स्क्रिप्ट का लेखक स्वयं एक अच्छा वक्ता नहीं हो सकता लेकिन उसे अपने दिमाग में यह बात रखनी चाहिए कि जो स्क्रिप्ट वह लिख रहा है वह पढ़ने और विवरण के लिए है। इसलिए वाक्यों के प्राकृतिक प्रवाह को वाक्यों की संरचना, उनका क्रमांक और शब्दों का चयन निर्धारित करता है जो स्पष्ट और साफ होने चाहिए। हेडलाइंस को खबरों का एक अभिन्न अंग माना जाता है। रेडियो के मामले में हम श्रोता हैं क्योंकि रेडियो एक ऑडियो माध्यम है। इस प्रकार श्रोताओं के ध्यान को खींचना और बनाए रखना बड़ा कठिन और चुनौतीपूर्ण काम है। खबरों के मामले में हेडलाइंस जहां तक संभव हो सटीक और टू–दा–प्वाइंट होनी चाहिए। ये श्रोताओं पर प्रभाव डालेंगी और इस तरह श्रोता शेष खबरों में भी दिलस्पी लेंगे।

विज्ञापन की सफलता की पृष्ठभूमि में कॉपी अर्थात लेखन की प्रमुख भूमिका होती है। टेलीविजन के लिए कॉपी में शब्द तथा चित्र दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। विज्ञापन तैयार करते हुए विज्ञापन संस्थान को इस बात का ध्यान रखना होता है कि इसमें समाज के किसी वर्ग, धर्म या संप्रदाय पर किसी प्रकार की कोई टिप्पणी न हो और न ही ऐसी भाषा का प्रयोग हो जिससे विद्वेष या घृणा फैले। प्रत्येक विज्ञापन में संयत भाषा, संयत चित्रावली और संयत विन्यास के मार्ग का चुनाव करना आवश्यक होता है। ऐसा विज्ञापन उपभोक्ता की रुचियों को जाग्रत कर, उत्पाद के प्रति उसमें आकर्षण पैदा करता है और उपभोक्ता में उसे खरीदने की इच्छा उत्पन्न करता है।

"फीचर आधुनिक लेखन विधा है, जो पत्रकारिता के क्षेत्र में विकसित, पल्लवित और समृद्ध हुई है। रोचकता तथा आकर्षण, फीचर का सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण होता है। फीचर को रोचक और आकर्षक बनाने के लिए प्रतिक्रियाओं और घटनाओं का उचित प्रयोग करें। कुछ प्रसिद्ध लोगों के वाक्यों और कथनों को उद्धृत किया जा सकता है। जो बातें प्रसिद्ध और बड़े लोग कह गए हैं पाठक उन्हें पढ़ना पसंद करते हैं। पाठकों को अखरने वाली शब्दावली का प्रयोग न करें।

कम्प्यूटर एक ऐसी स्वचालित इलेक्ट्रॉनिक मशीन है जो हमारे द्वारा बताए गए प्रोग्राम के नियंत्रण में आंकड़ों का संसाधन (Processing) तेजी एवं परिशुद्धता से करते हुए उपयोगी सूचनाएं प्रस्तुत करती है। कम्प्यूटर और इंटरनेट के संयोग से एक नई व्यापार प्रणाली आज

टिप्पणी

प्रचलन में है, जिसे ई–कॉमर्स कहते हैं। इसके माध्यम से कम्प्यूटर द्वारा घर पर बैठे ही सारे व्यापारिक कार्य संपन्न किए जा सकते हैं। बैंकिंग कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से ही हो रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं में भी कम्प्यूटर का उपयोग बढ़ा है। शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग अध्यापक के पूरक रूप में किया जा रहा है। मनोरंजन के क्षेत्र में संगीत, सिनेमा, टेलीविजन में भी कम्प्यूटर का उपयोग हो गया है। कम्प्यूटर आज मानवीय क्षमताओं में वृद्धि कर रहा है। वे लोग जो शारीरिक रूप से सक्षम नहीं हैं, उनके लिए भी कम्प्यूटर एक वरदान सिद्ध हुआ है। वे साधन, जिनके द्वारा जन संचार का कार्य संपन्न किया जाए, जन संचार के माध्यम कहलाते हैं। वर्तमान में संचार के माध्यम (मीडिया) एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

4.10 मुख्य शब्दावली

- **समसामयिक** : समकालीन
- **जनश्रुत** : जिसके विषय में सुना गया हो
- **वस्तुपरक** : वस्तु पर आधारित
- **सारगर्भित** : महत्वपूर्ण, प्रभावकारी
- **मर्मभेदी** : मर्म पर आघात करने वाला
- **समन्वित** : समन्वय किया हुआ, मिला हुआ
- **विन्यासकार** : जमाकर रखने वाला, सजा संवारकर रखने वाला
- **आलेखबद्ध** : लिपिबद्ध
- **अभिघात्मक** : वाच्य, अभिधामूलक
- **पल्लवित** : विकसित
- **धनार्जन** : धन कमाना

4.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. समाचार लेखन के गुण व विशेषताएं लिखिए।
2. समाचार लेखन की भाषा शैली क्या होनी चाहिए? लिखिए।
3. रेडियो समाचार लेखन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
4. विज्ञापन लेखन की विशेषताएं लिखिए।
5. विज्ञापन की भाषा संरचना का वर्णन कीजिए।
6. विज्ञापन का क्या महत्व है लिखिए।
7. फीचर के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. समाचार की परिभाषा एवं समाचार लेखन पर विस्तृत प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

2. समाचार के स्रोतों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. रेडियो लेखन, रेडियो पर बोली जाने वाली भाषा एवं कार्यक्रम लेखन पर विस्तार सहित प्रकाश डालिए।
4. विज्ञापन लेखन, विज्ञापन प्रति, विज्ञापन प्रक्रिया एवं विज्ञापन आलेखन का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. फीचर लेखन एवं फीचर लेखन के सहायक तत्व एवं प्रमुख चरणों का वर्णन कीजिए।

4.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. जनश्रुत
2. सही
3. निर्माण
4. गलत
5. निर्माता
6. सही
7. फीचर
8. सही
9. शाट्स
10. सही
11. ई–कॉमर्स
12. सही

4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डगलस, ई.सी., *कम्प्यूटर नेटवर्क एंड इंटरनेट,* पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली दिल्ली
2. फेरूज़ान, बेहरूज ए., *डेटा कम्युनिकेशंस एंड नेटवर्किंग,* टाटा मैक्ग्राहिल, नई
3. चढ्ढा, सविता, *आधुनिक संचार और हिंदी*
4. आर्य, पी.के., *इलैक्ट्रानिक मीडिया*
5. ईश्वरचंद्र राही, *लेखन कला का इतिहास*

इकाई 5 दुभाषिया विज्ञान

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 दुभाषिया : अर्थ एवं परिभाषा
5.3 दुभाषिया की भूमिका
5.4 दुभाषिया का कार्य क्षेत्र
5.5 दुभाषिया के गुण
5.6 आशु अनुवाद : अभिप्राय एवं परिभाषा
5.7 अनुवाद एवं आशु अनुवाद में अंतर
5.8 आशु अनुवाद का क्षेत्र
5.9 आशु अनुवाद की प्रक्रिया
5.10 आशु अनुवाद की पूर्व तैयारी
5.10.1 विषयगत ज्ञान
5.10.2 तकनीकी ज्ञान
5.11 आशु अनुवाद की पद्धतियां
5.11.1 व्यक्ति आशु अनुवाद
5.11.2 मशीनी आशु अनुवाद
5.12 सारांश
5.13 मुख्य शब्दावली
5.14 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

आज के इस ग्लोबलाइजेशन के दौर में दुभाषिया की मांग बढ़ गई है। विश्व में आज कोई भी एक संपर्क भाषा नहीं है। अगर होती तो सभी देशों का काम एक संपर्क भाषा से चल जाता। अनेक भाषा वाले संसार में जब दो शासनाध्यक्ष या राष्ट्राध्यक्ष आपस में मिलते हैं तो वे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विषयों पर चर्चा करते हैं। अगर वे दोनों भिन्न भाषा–भाषी हैं, तो उनके बीच एक दुभाषिया की आवश्कता पड़ती है और इसी तरह से सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा वाणिज्यिक काम के लिए भी दुभाषिया की आवश्यकता होती है क्योंकि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की भाषा को समझने में असमर्थ होता है। वह दुभाषिया (जो दोनों पक्षकारों की भाषा जानता हो) सदंर्भित बात को तुरंत अर्थात उसी समय अनुवाद करके एक–दूसरे के सामने प्रस्तुत कर देता है। ऐसा अनुवाद मौखिक ही होता है। इस इकाई में दुभाषिया विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

टिप्पणी

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- दुभाषिया विज्ञान के बारे में जान पाएंगे;
- दुभाषिया की भूमिका एवं कार्य क्षेत्र के बारे में जान पाएंगे;
- दुभाषिया के गुणों के बारे में जान पाएंगे;
- आशु अनुवाद का परिचय, अभिप्राय एवं परिभाषा के बारे में जान पाएंगे;
- अनुवाद एवं आशु अनुवाद के अंतर के बारे में जान पाएंगे;
- आशु अनुवाद के क्षेत्र एवं प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- आशु अनुवाद की पूर्व तैयारी में विषयगत ज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के बारे में जान पाएंगे;
- आशु अनुवाद की पद्धतियों में व्यक्ति आशु अनुवाद एवं मशीनी अनुवाद के बारे में जान पाएंगे।

5.2 दुभाषिया : अर्थ एवं परिभाषा

मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार अंग्रेजी के इंटरप्रिटेशन (Interpretation) शब्द का अर्थ है– व्याख्या अथवा अर्थ निर्णय। किसी शब्द विशेष को प्रति शब्दों के माध्यम से समझाना ही इसकी व्याख्या है। ऐसा एक भाषा से दूसरी भाषा में अर्थ–निर्णय के लिए भी किया जाता है लेकिन अब मूल अंग्रेजी (Interpretation) शब्द का भाषांतर के विशेष प्रयोग में होने लगा है। अलग–अलग भाषाएं जानने, समझने और बोलने वाले दो व्यक्ति अपनी–अपनी भाषा में कुछ न कुछ लगातार बोलकर एक–दूसरे तक अपने विचार पहुंचाने में असमर्थ होते हैं। वक्ता भाषण के द्वारा अपने को संप्रेषित करने में असफल रहा है, यदि उसके श्रोता उसकी भाषा से अनभिज्ञ हों। ऐसी स्थिति में विचारों की पारस्परिक प्रस्तुति के लिए एक ऐसे तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो वक्ता और श्रोता के बीच सेतु का काम कर सके। इस तीसरे व्यक्ति को दुभाषिया कहते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

1. मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार अंग्रेजी के इंटरप्रिटेशन शब्द का अर्थ है.....।

सही/गलत बताइए

2. अलग–अलग भाषाएं जानने, बोलने और समझने वाले दो व्यक्ति अपनी–अपनी भाषा में बोलकर एक–दूसरे तक अपने विचार पहुंचाने में समर्थ होते हैं।

5.3 दुभाषिया की भूमिका

1. श्रवण एवं बोधन

दुभाषिया स्रोत भाषा में वक्ता द्वारा कही जा रही मूल वार्ता को पूरे ध्यान से सुने। इस स्रोत वार्ता को सुनते समय दुभाषिया मन ही मन समूचे वक्तव्य का अर्थबोध करता है। उसके पास इस कार्य में सहायता के लिए न तो कोश पलटने का अवसर होता है और न किसी निकटवर्ती व्यक्ति से कुछ पूछने का अवकाश होता है। वह अपने कान खुले रखकर स्रोत वार्ता को सुनता है और अपने दिमाग के दरवाजे खोल कर पूरी स्रोत वार्ता का बोधन करता है।

टिप्पणी

2. विश्लेषण

स्रोत वार्ता को सुनने–गुनने के साथ–साथ दुभाषिया सुनी गई बात की संपूर्ण सामग्री का विश्लेषण करता जाता है। स्रोत वार्ता के विषय, संदर्भ, शब्द और उद्देश्य का मन ही मन विश्लेषण करता हुआ दुभाषिया अपने–आप को भाषांतरण के मुख्य कार्य के लिए तैयार करता है। विश्लेषण की यह मानसिक प्रक्रिया दुभाषिए के विस्तृत सामान्य ज्ञान और त्वरित अनुशीलन क्षमता की सूचना देती है।

3. अंतरण

स्रोत वार्ता को सुनकर अर्थ समझकर मन ही मन विश्लेषण करने के बाद दुभाषिया स्रोत भाषा की सामग्री को लक्ष्य भाषा में बदलता है। यह परिवर्तन भी वह मन ही मन तीव्रता से करता है। सुने हुए शब्दों और उनसे बने वाक्यों को लक्ष्य भाषा में बदलने के लिए वह उपयुक्त शब्दों से ऐसे वाक्य गठित करता है, जो स्रोत वार्ता के यथावत विकल्प न होकर व्यक्त बातों को समझा सकें। अंतरण की इस प्रक्रिया में दुभाषिया स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों में प्रवीणता.प्रदर्शित करता है।

4. पुनःसृजन

स्रोत भाषा की सामग्री का अंतरण लक्ष्य भाषा में करने के साथ ही साथ दुभाषिया पुनः सृजन करता रहता है। जो कुछ भी उसने स्रोत भाषा में सुना है, उसे लक्ष्य भाषा में सुनाने के लिए दुभाषिया मन ही मन पूरी स्रोत सामग्री का लक्ष्य भाषा में पुनः सृजन करता है। तीव्रता से अपना काम पूरा कराते हुए समय की कमी के कारण उसके वाक्य गठन अधूरे और विशृंखलित भी होते हैं। यहां तक कि दुभाषिया अपनी भाषा के व्याकरणिक विन्यास को भी कभी–कभी किनारे रख देता है क्योंकि भाषांतरण के दौरान किसी नए वाक्य का पुनः सृजन करते हुए उसे नहीं मालूम होता कि वाक्य की समाप्ति कहां और कैसे होगी। ऐसी अनिश्चितता और बिखराव के बीच दुभाषिया स्रोत वार्ता की सामग्री का पुनर्निर्माण लक्ष्यवार्ता के रूप में करता है। इस पूरे–अधूरे भाषांतरण के पुनरीक्षण और संशोधन का अवकाश भी दुभाषिए के पास नहीं होता।

5. अभिव्यक्ति

भाषांतरण की त्वरित प्रक्रिया के अंतिम चरण में दुभाषिया लक्ष्य भाषा में वह सब कुछ अभिव्यक्त करता है, जो उसने स्रोत वार्ता में सुना था। उसकी अभिव्यक्ति ही उसके कार्यकौशल का परिचय देती है। इसी चरण में यह जानकारी मिलती है कि दुभाषिया भाषा और विषयसंदर्भ का जितना जानकार है, उतना ही कुशल और शुद्ध उच्चारण करने वाला वक्ता भी है।

5.4 दुभाषिया का कार्य क्षेत्र

दुभाषिया किसी भी बहुभाषी समाज की अनिवार्यता है। भारत जैसे बहुभाषी देश में दो भाषा–भाषियों के बीच संवाद स्थापन में दुभाषिया के बिना काम नहीं चल सकता। सारे

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

3. स्रोत वार्ता सुनने–गुनने के साथ–साथ दुभाषिया सुनी गई बात की संपूर्ण सामग्री का .....करता जाता है।

सही/गलत बताइए

4. स्रोत भाषा की सामग्री का अंतरण लक्ष्य भाषा में करने के साथ ही साथ दुभाषिया पुनः सृजन करता रहता है।

टिप्पणी

संसार में प्रचलित तीन हजार से अधिक भाषाओं का उपयोग करने वाले दुभाषिया के बिना एक–दूसरे के विचारों और भावों से परिचित नहीं हो सकते। मलयालम बोलने वाले और असमिया बोलने वाले के बीच दुभाषिए के बिना संवाद नहीं हो सकता। तेलुगु भाषी और हिंदी भाषी आखिर कब तक इशारों से काम चला सकता है? उन्हें दुभाषिए की सहायता ही एक–दूसरे की भावनाओं के निकट ला सकती है। ठीक यही स्थिति संसार की विभिन्न भाषाओं के संदर्भ में भी कही जा सकती है। दुभाषिया बहुभाषी विश्व में मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का सबसे व्यावहारिक मार्ग है।

नए–नए वैज्ञानिक आविष्कारों और अधुनातन संचार साधनों ने विश्व के सारे देशों को एक–दूसरे के निकट ला खड़ा किया है। नवीनतम संचार माध्यमों ने संसार को जितना संकुचित किया है उसे और अधिक सहज और सुलभ बनाने में दुभाषिया ने अपना विशेष योगदान दिया है। यातायात और जनसंचार की तमाम संविधाओं के बावजूद संसार के लोग भाषा की दीवार के आर–पार खड़े रह जाते, यदि दुभाषिया की सुविधा न होती। दुभाषियों ने सारे संसार के लोगों के बीच सघन पारस्परिक संवाद के सेतु तैयार किए हैं। उसके बिना विश्व की जनसंख्या एक–दूसरे की बातों से अनजान ही रह जाती।

दुभाषिया की प्रखर उपादेयता तब नजर आती है जब किसी देश के राष्ट्रपति हमारे देश में आते हैं या हमारे राष्ट्रपति विदेश जाते हैं। स्वीडन के राष्ट्रपति हिंदी या अंग्रेजी में उत्तर देते हैं। अपनी मोरक्को यात्रा के दौरान भारत के राष्ट्रपति मोरक्को के शाह से अंग्रेजी या हिंदी में बातें करते हैं जबकि शाह अपनी सारी बातचीत अरबी में करते हैं। ऐसे तमाम अवसरों पर राष्ट्राध्यक्षों के बीच बातचीत दुभाषियों के माध्यम से होती है। दुभाषिया दोनों राष्ट्राध्यक्षों के बीच भाषिक अंतराल को समाप्त करता है। उसका प्रयास ही दोनों के बीच संबंधों का विस्तार करता है। दुभाषिया से हुई साधारण चूक से भी दो देशों के बीच तनाव हो सकता है। दुभाषिया का महत्व इससे स्पष्ट होता है।

सामूहिक दुभाषियों का वैशिष्ट्य उन सारी सभा–संगोष्ठियों में दिखाई देता है, जहां वक्ता और श्रोताओं की भाषा एक–दूसरे से भिन्न होती है। कामराज नडार सारे देश में तमिल में भाषण देते थे और उनकी सभाओं में दुभाषिए के माध्यम से हिंदी या अंग्रेजी में उनकी बात श्रोताओं तक पहुंचती थी। ऐसा भाषांतरण किसी भी वक्ता के विचारों को श्रोताओं तक संप्रेषित करने के लिए किया जाता है। चाहे मंच राजनीतिक हो या साहित्यिक, सामूहिक भाषांतरण की उपयोगिता वक्ता और उपस्थित जनसमुदाय के बीच संवाद स्थापित करने के लिए निर्विवाद है।

दुभाषिए का उपयोग संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में पिछले पचास वर्षों में होने लगा है। भारतीय लोकसभा और राज्यसभा में भी 4 सितंबर, 1964 से हिंदी और अंग्रेजी में समानांतर भाषांतरण की व्यवस्था प्रारंभ हुई। निश्चय ही भाषांतरण का समानांतर उपयोग राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपरिहार्य हो गया है।

स्पष्ट है कि दुभाषिया हमारे दौर के व्यस्त और सुविधा संपन्न परिवेश में अपना विशेष महत्व रखता है। वह बहुभाषी समाज में अपनी तीव्रता और कुशलता से भाषाओं की दूरी मिटाता है। अनेक व्यावहारिक समस्याओं को झेलता–संवारता हुआ वह दो भिन्न भाषा–भाषियों

टिप्पणी

के बीच संबंध स्थापित करता है। इस क्रम में वह पत्र की जगह तार की भाषा में अपनी बात कहता है। लेकिन उसका कार्य निश्चित तौर पर बहुआयामी प्रतिभा के कारण ही आकर्षक और सफल होता है।

5.5 दुभाषिया के गुण

दुभाषिया का अनुवाद मौखिक होता है। यह अनुवाद लिखित अनुवाद से पूरी तरह भिन्न होता है। भिन्न होते हुए यह अनुवाद भी वही भूमिका निभाता है जो लिखित अनुवाद निभाता है। दोनों का उद्देश्य एक सेतु के रूप में कार्य करना है।

दुभाषिया अनुवादक में कुशलताएं लिखित अनुवाद करने वाले अनुवादक से अधिक अपेक्षित होती हैं। वक्ता के मुख से निकले वक्तव्य को तत्काल अनूदित करना चुनौतीपूर्ण काम है। लिखित अनुवाद करते समय आवश्यकतानुसार शब्दकोशों का सहारा लिया जाता है किंतु दुभाषिया के पास शब्दकोश देखने का समय नहीं होता इसलिए उसे दोनों भाषाओं के शब्दों का पर्याप्त भंडार याद रखना पड़ता है। दुभाषिया अनुवाद में पूरे वाक्य अथवा पूरे पैराग्राफ का एक साथ सारानुवाद करना पड़ता है। इसकी शैली लिखित अनुवाद से भिन्न होती है। दुभाषिया भाव, सार, संक्षेपण पर केंद्रित रहकर अनुवाद करता है। दुभाषिया में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. शब्दों के शुद्ध उच्चारण की क्षमता।
2. स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं पर समान अधिकार।
3. कौशलपूर्ण प्रति उत्पन्नमति।
4. बहुत अच्छी स्मरण शक्ति।
5. स्थिति के अनुसार अपने को ढालने की भाषिक सामर्थ्य।
6. सार्वजनिक स्थानों पर बोलने की क्षमता।
7. विभिन्न भौगोलिक स्थितियों में स्वस्थ रहने की क्षमता।

5.6 आशु अनुवाद : अभिप्राय एवं परिभाषा

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही आशु अनुवाद का प्रादुर्भाव हुआ इसका वास्तविक उद्भव 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ। आशु–अनुवाद ने दो भाषा–भाषियों के बीच सेतु का काम किया। इस कला का विकास दूसरे विश्व युद्ध के दौरान हुआ। आशु अनुवाद की परंपरा मौखिक अनुवाद के रूप में आई जिसके माध्यम से अलग–अलग भाषा–भाषी एक–दूसरे के निकट आते हैं और एक–दूसरे की बात को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं।

आशु अनुवाद का शाब्दिक अर्थ है– शीघ्र अनुवाद अर्थात् एक भाषा के कथन को किसी दूसरी भाषा अथवा कई भाषाओं में मौखिक रूप से तत्काल प्रस्तुत करना आशु अनुवाद कहलाता है। अनुवाद का रूढ़ अर्थ किसी भी भाषा की लिखित, टंकित या मुद्रित सामग्री

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

5. दुभाषिया किसी भी .....समाज की अनिवार्यता है।

सही/गलत बताइए

6. नए–नए वैज्ञानिक आविष्कारों और अधुनातन संचार साधनों ने विश्व के बारे में देशों को एक–दूसरे से दूर कर दिया है।

टिप्पणी

को दूसरी भाषा में लिखित रूप में प्रस्तुत करना है, जबकि आशु अनुवाद की प्रक्रिया कागज कलम न होकर मौखिक होती है।

परिभाषा– "आशु अनुवाद को 'भाषांतरण' भी कहते हैं, जो अंग्रेजी 'इंटरप्रिटेशन' का रूपांतरण है। 'इंटरप्रिटेशन' का अर्थ है– तात्पर्यों का स्पष्टीकरण।"

वस्तुतः आशु–अनुवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्रोत भाषा में कही गई बात का अंतरण लक्ष्य भाषा में बोलकर किया जाता है। आशु अनुवाद की मुख्य रूप से दो प्रक्रियाएं हैं–

1. किसी सम्मेलन, सभा या समारोह में दिए जा रहे व्याख्यान का एक या अधिक भाषाओं में उसी समय अनुवाद प्रस्तुत करना तत्काल आशु–अनुवाद अथवा तत्काल निर्वाचन कहलाता है।
2. दो व्यक्तियों के परस्पर वार्तालाप को बारी–बारी से एक–दूसरे की भाषा में उनके कथन का अनूदित रूप तुरंत बाद या साथ–साथ प्रस्तुत करना निरंतर अथवा क्रमिक निर्वचन का आशुवार्तानुवाद कहलाता है।"

5.7 अनुवाद एवं आशु अनुवाद में अंतर

1. सामान्य अनुवाद में अनुवादक को किसी भी पाठ को पढ़कर समझने और उसके बाद अनुवाद करने की सुविधा प्राप्त है जबकि आशु अनुवाद में वक्ता के कथन को सुनकर उसका अनुवाद मौखिक रूप से तुरंत करना पड़ता है।
2. अनुवाद में किसी शब्द का अर्थ न समझ आने पर शब्दकोश की सहायता ली जा सकती है जबकि आशु अनुवाद की प्रक्रिया में शब्दकोश की सहायता लेने का अवसर ही नहीं मिलता।
3. सामान्य अनुवाद में पाठ का आशय स्पष्ट न होने पर मूल सामग्री को पुनः पढ़ा जा सकता है जबकि आशु अनुवाद में पुनः पाठ को पढ़ने की सुविधा दुभाषिया को उपलबध नहीं होती।
4. सामान्य अनुवाद में अर्थ न समझ पाने अथवा स्पष्ट न होने पर किसी अन्य व्यक्ति या विशेषज्ञ से विचार विमर्श करने की छूट होती है जबकि आशु अनुवाद में किसी से विचार–विमर्श करने की छूट की संभावना ही नहीं होती।
5. सामान्य अनुवाद में सोचने के लिए पर्याप्त समय मिल सकता है और उसे कुछ देर बाद या कल तक भी टाला जा सकता है जबकि आशु अनुवाद में सोचने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता और यह भी संभव नहीं कि उसे बाद में या कल के लिए टाला जा सके।
6. सामान्य अनुवाद का पुनरीक्षण कर अथवा उसे सुधार कर दोबारा–तिबारा लिखा जा सकता है जबकि आशु अनुवादक के मुंह से जो शब्द निकल गया, उसका पुनरीक्षण करना या उसमें सुधार करना प्रायः संभव नहीं होता।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

7. दुभाषिया का अनुवाद .....होता है।

सही/गलत बताइए

8. दुभाषिया अनुवादक में कुशलताएं लिखित अनुवाद करने वाले अनुवादक से अधिक अपेक्षित होती हैं।

टिप्पणी

7. सामान्य अनुवाद में लिखित सामग्री में अल्प विराम, पूर्ण विराम चिह्न आदि से अर्थ निर्धारण करने में सहायता मिलती है जबकि आशु अनुवाद के मौखिक होने के कारण विराम चिह्नों की सुविधा तो उपलब्ध नहीं होती, किंतु बलाघात, तान, अनुतान आदि से अर्थ निर्धारण करने में कुछ सहायता मिल जाती है।
8. सामान्य अनुवाद में अनुवादक की श्रवण शक्ति अच्छी न भी हो तो विशेष अंतर नहीं पड़ता जबकि आशु अनुवाद में अनुवादक की अच्छी श्रवण शक्ति का होना अत्यंत आवश्यक है।
9. सामान्य अनुवाद लिखित होने के कारण अनुवादक के उच्चारण का कोई काम नहीं होता और उसके बिना काम चल सकता है जबकि आशु अनुवाद के मौखिक होने के कारण आशु अनुवादक का उच्चारण अच्छा होना अनिवार्य है अन्यथा अशुद्ध उच्चारण से या तो अर्थ का अनर्थ होगा या वह हास्यास्पद होगा।
10. सामान्य अनुवादक का सामान्य ज्ञान अल्प होने या कमजोर होने पर वह थिसारिस विश्वकोश, ज्ञान कोश आदि की सहायता से काम चला सकता है जबकि आशु अनुवादक से सामान्य ज्ञान के अद्यतन तथा विस्तृत होने की नितांत अपेक्षा रहती है। चूंकि इसमें विश्वकोश देखने का अवसर ही नहीं मिलता, इसलिए उसका बहुत सूझबूझ वाला तथा प्रत्युत्पन्न मति का होना अपेक्षित है।
11. सामान्य अनुवाद के दौरान कभी अनुवादक अन्यमनस्क भी हो जाए तो कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता जबकि आशु अनुवाद में अन्यमनस्कता की गुंजाइश ही नहीं है। पूर्ण सक्रियता की अपेक्षा सदैव रहती है।
12. सामान्य अनुवाद एक स्थिर और स्थायी प्रक्रिया है जबकि आशु अनुवाद अस्थायी प्रक्रिया है और यह स्थिर नहीं रहता। स्थायी रखने का एक मात्र सहारा टेपरिकार्डर है।
13. सामान्य अनुवाद लिखित रूप होने के कारण समय–सापेक्ष और सही होता है जबकि आशु–अनुवाद के मौखिक रूप होने के कारण आशु–अनुवादक पर निर्भर रहना पड़ता है कि वह कितना सही है।
14. लिखित रूप होने के कारण सामान्य अनुवाद सुव्यवस्थित और सुगठित होता है और उसकी एक भाषाशैली होती है जबकि मौखिक रूप होने के कारण आशु अनुवाद में भावों का अर्थ सामान्य रूप से कराया जाता है और उसकी व्यवस्थित शैली का होना आवश्यक नहीं है।
15. सामान्य अनुवाद प्रमुखतः लिखित या मुद्रित रूप से लिखित रूप से किया जाता है। यह मौखिक रूप से लिखित रूप में भी हो सकता है जबकि आशु अनुवाद प्रमुखतः मौखिक से मौखिक रूप में ही किया जाता है। यह लिखित रूप से मौखिक रूप में भी हो सकता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

9. आशु अनुवाद का वास्तविक उद्भव .....शताब्दी के प्रारंभ में हुआ।
10. सामान्य अनुवाद में .....को किसी भी पाठ को पढ़कर समझने और उसके बाद अनुवाद करने की सुविधा प्राप्त है।

सही/गलत बताइए

11. आशु अनुवाद को 'भाषांतरण' भी कहते हैं जो अंग्रेजी शब्द 'इंटरप्रिटेशन' का रूपांतरण है।
12. पाठ का आशय स्पष्ट न होने पर मूल सामग्री को पुनः पढ़ा जा सकता है जबकि आशु अनुवाद में पुनः पाठ को पढ़ने की सुविधा दुभाषिया को उपलब्ध नहीं होती।

टिप्पणी

5.8 आशु अनुवाद का क्षेत्र

आशु अनुवाद के निम्नलिखित क्षेत्र हैं–

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के संदर्भ में

संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देश का प्रतिनिधि अपने देश की भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकता है। इसलिए आशु अनुवाद संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी कक्षों में प्रत्येक सदस्य के सामने मेज पर लगे चैनल पर कोई भी सदस्य संयुक्त राष्ट्र संघ की किसी भी आधिकारिक भाषा में किसी भी सदस्य का व्याख्यान कान में 'ईअरफोन' लगाकर सुन सकता है। आशु अनुवाद को विश्वव्यापी मान्यता संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच से ही मिली है। अनुवाद की गति तेज करने, संप्रेषण की समुचित व्यवस्था ऑटोमोशन आदि की सुविधा के लिए काफी प्रयास किए गए हैं। सभा कक्ष के ऊपर बने शीशे के छोटे कक्षों में दुभाषिए बैठे रहते हैं जो अनवरत अनुवाद की प्रक्रिया अपनाकर वक्ता के साथ–साथ ही संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में उसका आशु अनुवाद करते रहते हैं।

2. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में

आधुनिक विश्व के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में आशु अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। संसार के सभी राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव के धरातल पर पारस्परिक संबंध विकसित कर रहे हैं। विभिन्न देशों के द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय संबंधों, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, दो देशों के बीच संपन्न होने वाले फैसलों आदि के लिए बातचीत में आशु–अनुवाद की सहायता ली जाती है। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र संघ, गुट निरपेक्ष आंदोलन, यूनेस्को आदि की बैठकों में भी आशु अनुवाद की सहायता से विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बनाए रखने के लिए आशु अनुवाद न सिर्फ आवश्यक है, बल्कि अनिवार्य भी हो गया है।

3. राजनयिक वर्ग के संदर्भ में

दो भिन्न भाषा–भाषी देशों के बीच परस्पर सद्भावपूर्ण संबंध बनाए रखने में सामान्यतः आशु अनुवाद की व्यवस्था अनिवार्य है। राजनयिक कार्यों में आशु अनुवाद की प्रक्रिया अत्यंत जटिल और चुनौतीपूर्ण है। यही कारण है कि विश्व के प्रायः सभी देशों को विदेशी सेवा के सभी अधिकारियों से यह अपेक्षा रहती है कि उन्हें अपने देश की भाषा के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं की भी जानकारी हो। इसीलिए विश्व के सभी देशों की सरकारों के पास आशु अनुवाद की समुचित व्यवस्था है।

4. संसदीय क्षेत्र

भारतीय संविधान के भाग 5 के अनुच्छेद 120 में यह उल्लेख है कि संसद में लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा में सभापति किसी ऐसे सदस्य को जिसको हिंदी या अंग्रेजी में अपनी बात अभिव्यक्त करने का पर्याप्त ज्ञान नहीं है, उन्हें अपनी बात मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की छूट दे सकता है। भारतीय संसद में यह व्यवस्था है कि कोई सदस्य

टिप्पणी

अंग्रेजी या हिंदी में चल रहे भाषणों तथा प्रश्नों और उनके उत्तरों को अपनी भाषा के माध्यम से सुनना चाहता है, उसे आशु अनुवाद उपलब्ध कराया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि भारतीय संसद में कोई भी सदस्य चाहे तो हिंदी तथा अंग्रेजी के स्थान पर अपनी मातृभाषा में भी सदन में अपने विचार व्यक्त कर सकता है।

5. वाणिज्य और व्यापार के संदर्भ में

इस क्षेत्र में अनुवाद दो प्रकार से होते हैं। पहला– जब कोई व्यवसायी अपने व्यापार के सिलसिले में व्यक्तिगत रूप से किसी देश में यात्रा पर आता है तो उसके साथ 'गाइड' का काम करने वाला व्यक्ति आशु–अनुवादक का काम करता है तथा उस देश में व्यावसायिक हितों को ध्यान में रखते हुए उसे अपेक्षित सूचना भी देता है। दूसरा– जब किसी देश से कोई व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल आता है, उस प्रतिनिधिमंडल में आशु–अनुवादक या दुभाषिए की व्यवस्था होती है जिसमें उसकी बहुत ही औपचारिक रूप से विशिष्ट भूमिका होती है। समकालीन विश्व व्यापार व्यवस्था में आशु अनुवादक की उपयोगिता और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।

6. यात्रा और पर्यटन के क्षेत्र में

पर्यटन के क्षेत्र में आशु अनुवाद की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जो पर्यटक किसी देश विशेष की भाषा नहीं समझते वे आशु अनुवाद की सहायता से ही अपना सारा काम संपन्न करते हैं क्योंकि प्राचीन काल से ही एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र में आते जाते रहे हैं। अतः यात्रा पर निकले व्यक्ति को विभिन्न भाषा–भाषी लोगों की बात समझने के लिए दुभाषिए की आवश्यकता पड़ती है।

7. बहुभाषी समाज के संदर्भ में

विशेष रूप से भारत जैसे विविध संस्कृतियों, धर्मों, रीति–रिवाजों वाले बहुभाषी देशों में आशु–अनुवाद के अभाव में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। क्योंकि भारत एक बहुभाषी देश है इसलिए सामान्य जीवन में संपर्क स्थापित करने तथा निरंतर संवाद बनाए रखने के लिए आशु–अनुवाद की आवश्यकता रहती है। वास्तव में, बहुभाषी समाज में आशु अनुवाद सामान्य जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। सामान्य जीवन में जो आशु–अनुवादक की भूमिका निभाते हैं वे आमतौर पर वृत्तिक या पेशेवर अनुवादक नहीं होते हैं।

5.9 आशु अनुवाद की प्रक्रिया

आशु अनुवाद की प्रक्रिया में निम्नलिखित बिंदु सामने आते हैं–

1. आशु अनुवाद पूरी तरह मौखिक प्रक्रिया है।
2. आशु अनुवाद के लिए ध्वनि प्रस्तुति और ध्वनि विस्तारण के वाचिक माध्यम ही प्रयुक्त होते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

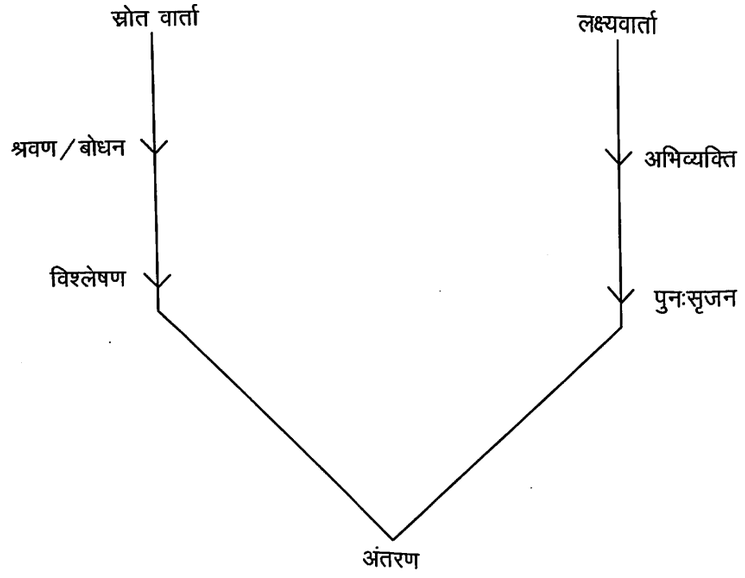
13. संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देश का..... अपने देश की भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकता है।

सही/गलत बताइए

14. दो भिन्न भाषा–भाषी देशों के बीच परस्पर सद्भावपूर्ण संबंध बनाए रखने में सामान्यतः आशु अनुवाद की व्यवस्था अनिवार्य नहीं है।

टिप्पणी

3. आशु अनुवाद में अनुवादक को इतनी शीघ्रता से अनुवाद करना होता है कि स्रोत वार्ता को एक बार सुन कर ही उसे लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना होता है।
4. आशु अनुवाद में कोश के पन्ने पलटना संभव नहीं है और न ही अनुवादक निकट बैठे किसी अन्य व्यक्ति से कुछ पूछ सकता है।
5. आशु अनुवाद में अनुवादक को स्रोतपाठ में प्रयुक्त विभिन्न विरामचिन्हों से अर्थ और संदर्भ के संकेत नहीं मिलते। अनुवादक स्रोत वार्ता के वक्ता के उच्चारण में उपलब्ध बलाघात, अनुतान आदि के आधार पर ही इस प्रकार के अनुमान लगाता है।
6. आशु अनुवाद की प्रक्रिया श्रुत–मानसिक–मौखिक होती है।
7. आशु अनुवाद में स्रोत वार्ता से लक्ष्यवार्ता तक पहुंचने के बाद कभी–कभी यह प्रक्रिया उलट जाती है जब अनुवादक के सामने लक्ष्यवार्ता स्रोत वार्ता में बदल जाती है।
8. आशु अनुवाद की प्रक्रिया को इस आरेख द्वारा समझा जा सकता है–



आशु अनुवाद

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

15. आशु अनुवाद पूरी तरह.....प्रक्रिया है।

सही / गलत बताइए

16. आशु अनुवाद में कोश के पन्ने पलटना संभव नहीं है।

5.10 आशु अनुवाद की पूर्व तैयारी

आशु अनुवाद के लिए दो बिंदुओं का होना अति आवश्यक है, जिसमें पहला है–

5.10.1 विषयगत ज्ञान

आशु अनुवादक को विषय का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। आशु अनुवादक से देश या समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों के ज्ञान की अपेक्षा रहती है तथा प्रत्येक भाषा का अपना अलग मुहावरा होता है। अतः यदि श्रोता वर्ग किसी भाषा विशेष के

टिप्पणी

मुहावरे को नहीं समझता तो उसे पूर्ण रूप से समझाना चाहिए तथा उसके लिए स्थानीय पर्याय प्रस्तुत करना चाहिए। कभी–कभी वक्ता संक्षिप्ताक्षरों का प्रयोग करता है। आशु अनुवाद में इसके पूर्ण अनुवाद की अपेक्षा रहती है। इस प्रकार आशु अनुवादक को विषय में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

5.10.2 तकनीकी ज्ञान

तकनीकी ज्ञान अपने–आप में व्यापक है। इसमें ज्ञान–विज्ञान, सूचना विश्लेषण, आंकड़े आदि शामिल किए जाते हैं। आशु अनुवादक को इन सबके बारे में जानकारी होना आवश्यक है। यदि उसको संबंधित विषय की जानकारी नहीं है तब वह अनुवाद को शाब्दिक रूप तो दे सकता है लेकिन विषय का अभिप्राय स्पष्ट करने में असमर्थ रहेगा। तकनीकी विषय–विशेषज्ञ इसी श्रेणी में आते हैं।

5.11 आशु अनुवाद की पद्धतियां

आशु अनुवाद की मुख्यतः दो पद्धतियां हैं–

5.11.1 व्यक्ति आशु अनुवाद

व्यक्ति आशु अनुवाद की प्रक्रिया में श्रवण और वाक् में सामंजस्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह अनुवाद की मौखिक प्रक्रिया है जिसमें पाठ को पढ़कर अनुवाद करने, शंका और संदेह की स्थिति में विशेषज्ञों से सलाह लेने अथवा निर्वचन में गड़बड़ी होने से फिर से पढ़ने तथा किए गए अनुवाद का पुनरीक्षण करने की सुविधा नहीं है। अतः आशु अनुवाद की प्रक्रिया में श्रवण और वाक के बीच समुचित धरातल पर संबंध बनाए रखना और इनमें पूर्णतया सामंजस्य स्थापित करना अनिवार्य है।

5.11.2 मशीनी आशु अनुवाद

दिल्ली में विज्ञान भवन में मंच के ऊपर या अगल–बगल में आशु अनुवाद करने वाले दुभाषियों को बैठाया जाता है तथा हॉल में बैठे लोगों को 'ईअरफोन' उपलब्ध कराया जाता है ताकि दूसरी भाषा में दिए गए वक्तव्य को वे समझ सकें। अब वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ सैटेलाइट संगोष्ठियां भी प्रारंभ हो गई हैं, जिसमें वक्ता के कथन का तत्काल अनुवाद श्रोताओं के लिए टेलीविजन पर प्रस्तुत किया जाता है। बीबीसी, स्टार न्यूज, आजतक जैसे चैनल विभिन्न देशों की राजधानियों में बैठे प्रधानमंत्रियों या अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के इंटरव्यू लेते हैं और जो प्रधानमंत्री या विशिष्ट व्यक्ति अंग्रेजी नहीं जानते तथा वे अपनी भाषा में बोलते हैं तो उनका तत्काल अनुवाद श्रोताओं के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार आज दूरस्थ शिक्षा में भी शैक्षणिक सैटेलाइट संगोष्ठी करने की व्यवस्था की जा रही है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए

17. आशु अनुवाद को विषय का पूर्ण..... होना आवश्यक है।
18. व्यक्ति आशु अनुवाद की प्रक्रिया में..... और वाक् में सामंजस्य अधिक महत्वपूर्ण है।

सही / गलत बताइए

19. तकनीकी ज्ञान अपने–आप में व्यापक नहीं है।
20. अब वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ सैटेलाइट संगोष्ठियां भी प्रारंभ हो गई हैं।

टिप्पणी

गतिविधि

आशु अनुवाद की प्रक्रिया के आरेख का एक चार्ट बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

संयुक्त राष्ट्र संघ में छह भाषाओं को विश्व के देशों की संपर्क भाषाएं चुना गया है।

5.12 सारांश

आधुनिक युग की यह आवश्यकता है कि प्रत्येक समाज अपनी प्रगति और विकास के लिए विश्व के अन्य भागों में हो रही प्रगति और विकास की जानकारी प्राप्त करे। लिखित अनुवाद के माध्यम से यह जानकारी बहुत देर से पहुंचती है जबकि आशु अनुवाद के द्वारा विभिन्न समारोहों, सम्मेलनों, अंतर्राष्ट्रीय मंचों से तत्काल उपलब्ध कराई जाती है। यदि आशु अनुवाद की व्यवस्था न हो तो एक ही देश के दो अलग–अलग क्षेत्रों के लोग आपस में अपरिचित जैसा व्यवहार करेंगे। इस प्रकार विभिन्न भाषा–भाषी लोगों के बीच परस्पर सांस्कृतिक आदान–प्रदान, वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार की जानकारी, पर्यटन एवं व्यवसाय, संसदीय और राजनयिक तथा राजनैतिक, तीर्थाटन आदि कार्यकलापों के लिए आशु अनुवादक आवश्यक सेतु बन गया है। और यह तभी संभव है जब आशु अनुवाद की आवश्यकता को गंभीरता से लिया जाए।

5.13 मुख्य शब्दावली

- **दुभाषिया** : दो भाषाओं का ज्ञान रखने वाला
- **आशु अनुवाद** : तेजी से अनुवाद करना
- **भाषांतर** : अनुवाद
- **संगोष्ठी** : विचार सभा

5.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. दुभाषिया का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
2. दुभाषिया के गुण लिखिए।
3. आशु अनुवाद का अभिप्राय एवं परिभाषा लिखिए।
4. आशु अनुवाद की पद्धतियां लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. दुभाषिया की भूमिका और कार्यक्षेत्र पर प्रकाश डालिए।
2. आशु अनुवाद के क्षेत्र का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. आशु अनुवाद की प्रक्रिया और पूर्व तैयारी का वर्णन कीजिए।
4. अनुवाद एवं आशु अनुवाद में अंतर पर प्रकाश डालिए।

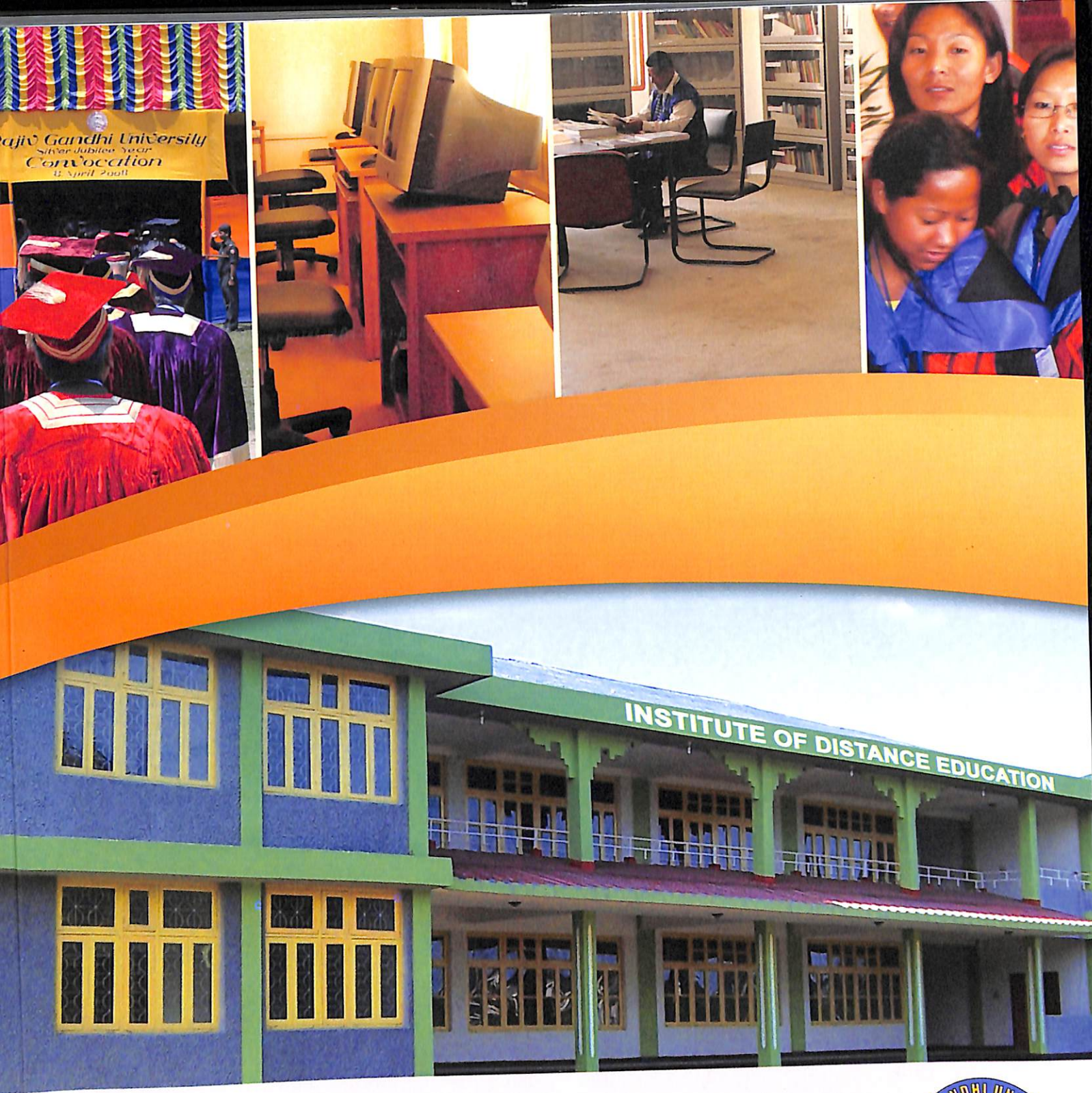
टिप्पणी

5.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. व्याख्या अथवा अर्थ निर्णय
2. गलत
3. विश्लेषण
4. सही
5. बहुभाषी
6. गलत
7. मौखिक
8. सही
9. 19वीं
10. अनुवादक
11. सही
12. सही
13. प्रतिनिधि
14. गलत
15. मौखिक
16. सही
17. ज्ञान
18. गलत
19. श्रवण
20. सही

5.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, *व्यावहारिक अनुवाद,* प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
2. कृष्ण कुमार गोस्वामी, *अनुवाद विज्ञान की भूमिका,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली



एम. ए. हिंदी
(उत्तरार्द्ध)

MAHIND-504

INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION
Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा समालोचना

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा समालोचना

एम.ए. (हिंदी)

(उत्तरार्द्ध)

MAHIND 504

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA - 791 112

BOARD OF STUDIES

Dr. Oken Lego, Head (i/c) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Devraj Dean, School of Translation and Interpretation Mahatma Gandhi Antarashtriya Hindi Vishwavidhyalaya Vardha Maharastra - 442 005	**External Member**
Dr. Harish Kr. Sharma Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. A. Tripathi Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Ashan Riddi Director, I.D.E Rajiv Gandhi University	**Member Secretary**

Authors

Dr. Laxmi Pandey, D.Lit., Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar, Madhya Pradesh
Units: (1, 2, 3, 4.2-4.3, 4.6-4.7, 5.2, 5.4, 5.6-5.7) © Reserved, 2014

Yogesh Sharma, PhD, Assistant Professor (Sanskrit), Department of Sanskrit, Philosophy and Vedic Studies, Banasthali University, P.O. Banasthali Vidyapith, Rajasthan
Units: (4.4, 4.4.1, 4.8-4.11, 5.3, 5.5, 5.9-5.9.3) © Reserved, 2014

Vikas Publishing House: Units (4.0-4.1, 4.4.2, 4.5, 4.12-4.16, 5.0-5.1, 5.5, 5.8, 5.9.4-5.14) © Reserved, 2014

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE—Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi 110 014
Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गांधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने, जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, 4 फरवरी, 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी। यहीं विश्वविद्यालय का वर्तमान कैंपस विद्यमान है।

आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित हैं। 28 मार्च, 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12-V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल, 2007 से, विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि. मी. और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए हैं कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर, एम. फिल व पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड. का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध हैं। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फंडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही, विभिन्न फंडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है। देश–विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं।

2000–2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढ़ीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामतः छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया। बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है। परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती हैं और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए हैं बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं, उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं।

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

आईडीई : एक परिचय

हमारे देश में उच्च शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों, सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विभिन्न विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते हैं कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण सीखना और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने का वैकल्पिक माध्यम है। यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है, जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार व कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नहीं निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर–पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में। सन् 2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर 'दूरस्थ शिक्षा संस्थान' (आईडीई) रखा गया।

दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013–14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों (शिक्षा, अंग्रेजी, हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान) को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन (पहली मंजिल) का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती हैं।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

1. **नियमित माध्यम के समकक्ष**–पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।
2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री (एसआईएसएम)**– छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी), नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रवेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।
3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)**– शैक्षिक कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7–15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी.ए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।
4. **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट**– व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।
5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम**–परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।
6. **विषय परामर्श संयोजक**– पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं। ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा समालोचना

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 भारतीय काव्यशास्त्र का संस्कृत एवं संस्कृतेतर इतिहास– नामकरण, स्वरूप; काव्य-लक्षण; काव्य-प्रयोजन; काव्य-हेतु; काव्य के प्रकार– शैली एवं स्वरूप की दृष्टि से काव्य भेद; रस सिद्धांत-- अवधारणा, स्वरूप; रस के अंग; रस निष्पत्ति; साधारणीकरण; सहृदय की अवधारणा	**इकाई 1** : भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास **(पृष्ठ : 3-60)**
इकाई 2 अलंकार संप्रदाय– अलंकार की अवधारणा, अलंकार सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं, अलंकारों का वर्गीकरण, प्रमुख अलंकार; रीति संप्रदाय– रीति का स्वरूप, रीति और शैली, काव्य-गुण, रीति सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं; ध्वनि संप्रदाय– ध्वनि का स्वरूप, ध्वनि सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं, ध्वनि काव्य के प्रमुख भेद; वक्रोक्ति संप्रदाय : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं; औचित्य सिद्धांत: स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं	**इकाई 2** : काव्यशास्त्रीय संप्रदाय **(पृष्ठ : 61-126)**
इकाई 3 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकास क्रम; प्लेटो; अरस्तू; लोंजाइनस का उदात्त तत्व; क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत; कॉलरिज का कल्पना सिद्धांत; वड्र्सवर्थ का भाषा-चिंतन; आई. ए. रिचड्र्स का मूल्य-सिद्धांत एवं काव्य भाषा; टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत	**इकाई 3** : पाश्चात्य काव्य सिद्धांत **(पृष्ठ : 127-179)**
इकाई 4 हिंदी आलोचना के सिद्धांत और प्रणालियां; हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन और आलोचना का विकास; प्रमुख आलोचना सिद्धांत–लोकमंगल का सिद्धांत, आकर्षण-शक्ति सिद्धांत; रचना के तीन क्षण; स्वच्छंदतावादी आलोचना– परिभाषाएं एवं आधार, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, स्वच्छंदतावादी काव्य चिंतन की विशेषताएं, हिंदी के स्वच्छंदतवादी समीक्षक; मार्क्सवादी आलोचना– द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, साहित्य एवं कला संबंधी विचार; समाजशास्त्रीय आलोचना; सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना– सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा एवं स्वरूप, सौंदर्य या सौंदर्यात्मक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्यों की कोटियां, सौंदर्य संबंधी तीन विश्वात्मक दृष्टिकोण; शैली वैज्ञानिक– शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्व, शैली वैज्ञानिक आलोचना का स्वरूप; नयी समीक्षा आलोचना प्रणालियां	**इकाई 4** : हिंदी आलोचना के सिद्धांत एवं प्रणालियां **(पृष्ठ : 181-240)**
इकाई 5 आचार्य रामचंद्र शुक्ल; शिवदान सिंह चौहान; आचार्य नंददुलारे वाजपेयी; डॉ. नगेंद्र; आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी; डॉ. रामविलास शर्मा; मुक्तिबोध; डॉ. नामवर सिंह	**इकाई 5** : हिंदी के प्रमुख आलोचक **(पृष्ठ : 241-311)**

CONTENTS

परिचय 1

इकाई 1 भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास 3-60

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 भारतीय काव्यशास्त्र का संस्कृत एवं संस्कृतेतर इतिहास
  1.2.1 काव्यशास्त्र का नामकरण
  1.2.2 काव्यशास्त्र का स्वरूप
1.3 काव्य-लक्षण
1.4 काव्य-प्रयोजन
1.5 काव्य-हेतु
1.6 काव्य के प्रकार
  1.6.1 शैली की दृष्टि से काव्य भेद
  1.6.2 स्वरूप की दृष्टि से भेद
1.7 रस सिद्धांत
  1.7.1 रस की अवधारणा
  1.7.2 रस का स्वरूप
1.8 रस के अंग
1.9 रस निष्पत्ति
1.10 साधारणीकरण
1.11 सहृदय की अवधारणा
1.12 सारांश
1.13 मुख्य शब्दावली
1.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 काव्यशास्त्रीय संप्रदाय 61-126

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 अलंकार संप्रदाय
  2.2.1 अलंकार की अवधारणा
  2.2.2 अलंकार सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं
  2.2.3 अलंकारों का वर्गीकरण
  2.2.4 प्रमुख अलंकार
2.3 रीति संप्रदाय
  2.3.1 रीति का स्वरूप
  2.3.2 रीति और शैली
  2.3.3 काव्य-गुण
  2.3.4 रीति सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं
2.4 ध्वनि संप्रदाय
  2.4.1 ध्वनि का स्वरूप

2.4.2 ध्वनि सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं
2.4.3 ध्वनि काव्य के प्रमुख भेद
2.5 वक्रोक्ति संप्रदाय : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं
2.5.1 वक्रोक्ति का स्वरूप
2.5.2 वक्रोक्ति के भेद
2.5.3 वक्रोक्ति और अभिव्यंजना
2.6 औचित्य सिद्धांत : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं
2.6.1 औचित्य का स्वरूप
2.6.2 औचित्य की प्रमुख स्थापनाएं
2.6.3 औचित्य के भेद
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 पाश्चात्य काव्य सिद्धांत 127-179

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकास क्रम
3.3 प्लेटो
3.3.1 काव्य सिद्धांत
3.3.2 सत्काव्य के गुण
3.4 अरस्तू
3.4.1 अनुकरण सिद्धांत
3.4.2 अरस्तू का विरेचन सिद्धांत
3.4.3 त्रासदी सिद्धांत
3.5 लोंजाइनस का उदात्त तत्व
3.5.1 उदात्त की अवधारणा
3.5.2 उदात्त का स्वरूप
3.5.3 अलंकार योजना एवं भाषा
3.6 क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत
3.6.1 अभिव्यंजनावाद का स्वरूप
3.6.2 आलोचना
3.7 कॉलरिज का कल्पना सिद्धांत
3.7.1 अच्छे कवि के गुण
3.7.2 अच्छी कविता के गुण
3.7.3 कल्पना सिद्धांत का स्वरूप
3.7.4 गद्य और काव्य
3.8 वड्र्सवर्थ का भाषा-चिंतन
3.8.1 काव्यभाषा का सिद्धांत
3.8.2 काव्य भाषा सिद्धांत पर आपत्तियां
3.8.3 काव्य गुण संबंधी विचार
3.9 आई. ए. रिचड्र्स का मूल्य-सिद्धांत एवं काव्य भाषा
3.9.1 संवेगों का संतुलन
3.9.2 साहित्य और विज्ञान में भेद
3.9.3 रिचड्र्स की काव्य-भाषा
3.10 टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत
3.10.1 इलियट का आलोचनात्मक दृष्टिकोण
3.10.2 परंपरा और वैयक्तिक प्रज्ञा
3.10.3 निर्वैयक्तितावाद का सिद्धांत
3.11 सारांश
3.12 मुख्य शब्दावली
3.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.14 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 हिंदी आलोचना के सिद्धांत एवं प्रणालियां 181-240

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 हिंदी आलोचना के सिद्धांत और प्रणालियां
4.3 हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन और आलोचना का विकास
4.4 प्रमुख आलोचना सिद्धांत
4.4.1 लोकमंगल का सिद्धांत
4.4.2 आकर्षण-शक्ति सिद्धांत
4.5 रचना के तीन क्षण
4.6 स्वच्छंदतावादी आलोचना
4.6.1 परिभाषाएं एवं आधार
4.6.2 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
4.6.3 स्वच्छंदतावादी काव्य चिंतन की विशेषताएं
4.6.4 हिंदी के स्वच्छंदतवादी समीक्षक
4.7 मार्क्सवादी आलोचना
4.7.1 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
4.7.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद
4.7.3 साहित्य एवं कला संबंधी विचार
4.8 समाजशास्त्रीय आलोचना
4.9 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना
4.9.1 सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा एवं स्वरूप
4.9.2 सौंदर्य या सौंदर्यात्मक मूल्य
4.9.3 सौंदर्यात्मक मूल्यों की कोटियां
4.9.4 सौंदर्य संबंधी तीन विश्वात्मक दृष्टिकोण
4.10 शैली वैज्ञानिक
4.10.1 शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्व
4.10.2 शैली वैज्ञानिक आलोचना का स्वरूप
4.11 नयी समीक्षा आलोचना प्रणालियां
4.12 सारांश
4.13 मुख्य शब्दावली
4.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 हिंदी के प्रमुख आलोचक 241-311

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5.2.1 लोकमंगल की भावना को महत्व
5.2.2 सगुणवादी धारा के प्रशंसक
5.2.3 रहस्यवाद संबंधी मत
5.2.4 छायावाद पर दृष्टिकोण
5.2.5 अनुभूतियोग
5.3 शिवदान सिंह चौहान
5.3.1 प्रगतिवादी आलोचना सिद्धांतों की सैद्धांतिक दृष्टि
5.3.2 भारतीय साहित्यशास्त्र का विवेचन
5.3.3 यथार्थवादी आलोचना सिद्धांतों का प्रभाव
5.4 आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
5.4.1 पांच संप्रदायों पर मत
5.4.2 रसनिष्पत्ति
5.4.3 साधारणीकरण की सीमा
5.4.4 आचार्य शुक्ल से मतवैभिन्य व छायावाद की प्रतिष्ठा
5.4.5 प्रगतिवादी साहित्य का चिंतन
5.4.6 प्रयोगवादी साहित्य का चिंतन
5.4.7 विभिन्न वादों पर चिंतन
5.4.8 काव्य परिभाषा
5.4.9 समालोचना संसार
5.5 डॉ. नगेंद्र
5.5.1 रसवादी समीक्षक
5.5.2 छायावादी आलोचक
5.5.3 समसामयिक साहित्यांदोलनों में संपृक्तता
5.5.4 व्यावहारिकता में सैद्धांतिकता का समन्वय
5.5.5 शुद्धतावाद का आग्रह
5.6 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5.6.1 रस संबंधी दृष्टिकोण
5.6.2 रस व अलंकार चिंतन
5.6.3 भाषा समस्या का स्वरूप
5.6.4 प्रगतिवादी साहित्यालोचन
5.6.5 आचार्य शुक्ल से साम्य व वैषम्य
5.6.6 सौंदर्य व संस्कृति बोध
5.7 डॉ. रामविलास शर्मा
5.7.1 सैद्धांतिक समीक्षा
5.7.2 रूप, भावना और विचारों के समन्वय से कला-सृष्टि
5.7.3 काव्य का माध्यम
5.7.4 सौंदर्य की सत्ता
5.7.5 रस संबंधी विवेचन
5.7.6 साहित्यकार की भूमिका
5.7.7 मार्क्सवाद की परख
5.7.8 मध्ययुगीन काव्यचिंतन
5.7.9 आधुनिक युग चिंतन
5.8 मुक्तिबोध
5.8.1 चिंता एवं चिंतन का स्वरूप
5.8.2 कला : जीवन की पुनर्रचना
5.8.3 मार्क्सवादी मूल्य
5.8.4 मुक्तिबोध का समाज
5.8.5 नारी विश्लेषण
5.8.6 ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि
5.8.7 वैज्ञानिक चेतना
5.9 डॉ. नामवर सिंह
5.9.1 नयी सोच, उदार दृष्टि
5.9.2 छायावाद का सामाजिक सत्य
5.9.3 सैद्धांतिक आलोचना
5.9.4 रस विवेचन
5.9.5 काव्य भाषा का स्वरूप
5.9.6 आवयविक सिद्धांत का वस्तुनिष्ठ रूप
5.10 सारांश
5.11 मुख्य शब्दावली
5.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. हिंदी (उत्तरार्ध) के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। काव्यशास्त्र के अंतर्गत साहित्यालोचन की एक सुदीर्घ परंपरा भारतीय विद्वानों एवं पाश्चात्य विद्वानों के बीच चली आ रही है। **'काव्यं यशसेऽर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये'** कह कर 'काव्यशास्त्रम्' के प्रणेता आचार्य मम्मट ने शिवेतर (अमंगल) की क्षति के साथ-साथ जहां धनार्जन (अर्थ कृते) को भी काव्य का उद्देश्य माना है, वहीं 'साहित्य शास्त्री' न होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास ने धनार्जन में भी परहित को महत्व देते हुए काव्य का उद्देश्य 'सर्वजनहिताय' ही माना है–

कीरति भनिति भूति भली सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥ *(रामचरितमानस 1/14)*

दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानों में 'लोंजाइनस' की उदात्त की अवधारणा के साथ-साथ प्लेटो, अरस्तू, वड्र्सवर्थ आदि की काव्य संबंधी अवधारणाओं के महत्व से सुपरिचित होना, काव्यशास्त्र के अध्येताओं के लिए न केवल आवश्यक है अपितु अपरिहार्य भी है। इसी अपरिहार्यता को ध्यान में रखकर इस समग्र अध्ययन सामग्री के पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

विद्यार्थी काव्यशास्त्र को बोझ समझकर या केवल डिग्री प्राप्त करने के लिए पढ़ेंगे तो उन्हें यह कठिन लगेगा, लेकिन वस्तुतः काव्यशास्त्र रस लेकर, डूबकर पढ़ने की चीज़ है। रसनिष्पत्ति आनंददायी है। साहित्य का मर्म जानने के लिए जिज्ञासु बनकर, इससे आत्मीयता स्थापित करने पर न केवल भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र अच्छा और अपना लगेगा बल्कि जीवन-जगत, अध्ययन और अध्यापन के प्रति आपका दृष्टिकोण भी परिष्कृत एवं सकारात्मक हो जाएगा। बार-बार पढ़ने से शब्द स्वयं अपना अर्थ बता देता है। शब्द और अर्थ का संबंध पार्वती-परमेश्वर की तरह संयुक्त है। जिस भांति पार्वती की आराधना से शिव अनुकूल हो जाते हैं उसी भांति शब्द की साधना उसे चैतन्य या सार्थक बना देती है।

प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच-बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। 'गतिविधि' एवं 'क्या आप जानते हैं' के माध्यम से काव्यशास्त्र में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

पहली इकाई में भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास का वर्णन करते हुए काव्यशास्त्र के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं की व्याख्या की गई है।

टिप्पणी

दूसरी इकाई में विभिन्न काव्यशास्त्रीय संप्रदायों का परिचय देते हुए उनके स्वरूप एवं स्थापनाओं का विश्लेषण किया गया है।

तीसरी इकाई में पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों के विकास एवं विशेषताओं का वर्णन करते हुए पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न काव्य सिद्धांतों की व्याख्या की गई है।

चौथी इकाई हिंदी आलोचना के सिद्धांत एवं प्रणालियों पर आधारित है, जिसमें हिंदी की विभिन्न आलोचना पद्धतियों के दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया गया है।

पांचवीं इकाई में हिंदी के प्रमुख आलोचकों के परिचय के साथ उनके चिंतन एवं सैद्धांतिक रूपों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांतों और समालोचना पद्धतियों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। विषय को सरल भाषा में सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र-छात्राओं को काव्य के रसानंद तक पहुंचाने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 भारतीय काव्यशास्त्र का संस्कृत एवं संस्कृतेतर इतिहास
  1.2.1 काव्यशास्त्र का नामकरण
  1.2.2 काव्यशास्त्र का स्वरूप
1.3 काव्य-लक्षण
1.4 काव्य-प्रयोजन
1.5 काव्य-हेतु
1.6 काव्य के प्रकार
  1.6.1 शैली की दृष्टि से काव्य भेद
  1.6.2 स्वरूप की दृष्टि से भेद
1.7 रस सिद्धांत
  1.7.1 रस की अवधारणा
  1.7.2 रस का स्वरूप
1.8 रस के अंग
1.9 रस निष्पत्ति
1.10 साधारणीकरण
1.11 सहृदय की अवधारणा
1.12 सारांश
1.13 मुख्य शब्दावली
1.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

काव्यशास्त्र का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम काव्य के स्वरूप अर्थात 'काव्य क्या है' यह जानना आवश्यक है। यह शीर्षक काव्य की परिभाषाओं, काव्य के लक्षणों, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन और अंत में काव्य के प्रकारों से अवगत कराता है। विभिन्न विद्वानों ने काव्य की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं, जो अंततः एक ही उद्घोष करती हैं कि रस युक्त, दोष हीन, गुणयुक्त लयात्मक पंक्ति जो हृदय में आनंद का रस का संचार करती है उसे काव्य कहते हैं। काव्य लिखने के पीछे कोई न कोई हेतु होता है जिसकी शक्ति और प्रेरणा से काव्य रचना होती है, कोई प्रयोजन या लक्ष्य या उद्देश्य होता है जिसके कारण कवि सृजन करता है। इन काव्य हेतुओं और प्रयोजनों के साथ काव्य के लक्षणों और काव्य के अनेक प्रकारों का अध्ययन हम यहां करेंगे।

काव्य आत्मा की कला है। भारतीय काव्यशास्त्रियों एवं संस्कृत के आचार्यों की यह जिज्ञासा थी, उत्कंठा थी कि काव्य में ऐसा कौन सा प्रभावी तत्व है, सार तत्व है जिसके कारण लोग काव्य की ओर आकर्षित होते हैं, जिसके कारण सहृदय झूम उठते हैं, जिसका

टिप्पणी

प्रभाव हृदय पर अंकित हो जाता है? इस जिज्ञासा, उत्कंठा को शांत करने के लिए काव्य की आत्मा खोजने और उसकी उत्कृष्टता का रहस्य जानने की प्रक्रिया में काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धांतों और संप्रदायों का जन्म और विकास हुआ। जिस प्रकार दर्शनशास्त्री आत्म-तत्व को जानने की प्रक्रिया में स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मता तक पहुंचते हैं उसी प्रकार काव्यशास्त्र के अध्येता, आचार्यगण काव्य के बाह्य शारीरिक धर्म यानी अलंकार और भीतरी आत्मिक धर्म यानी रस के बीच यात्रा, तर्क-वितर्क, विवेचन करते रहे और इस तरह पांच संप्रदाय विकसित और प्रतिष्ठित हुए। 'रस' से बात आरंभ हुई। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में कहा– 'विभावानुभावव्यभिचारी-सयोंगाद्रसनिष्पत्तिः।' रस ही काव्य की आत्मा है, ऐसा मानने वाले आचार्यों के साथ 'अलंकार' को काव्य की आत्मा मानने वाले आचार्यों की संख्या भी बहुत अधिक थी। दंडी ने 'काव्यादर्श' में कहा– 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।' रीति को काव्य की आत्मा मानने वाले, रीति-सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने वाले आचार्य वामन ने कहा–'रीतिरात्मा काव्यस्य'। आचार्य कुंतक ने कहा–'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' अर्थात वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन है। आचार्य आनंदवर्धन ने 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए कहा–**'काव्यस्यात्मा ध्वनिरितिबुधैः यः समाम्नात् पूर्वम्।'** इन पांच प्रतिष्ठित संप्रदायों के बाद दो सिद्धांत और विकसित हुए – 'औचित्य' और 'चमत्कार'। क्षेमेंद्र ने 'औचित्य विचार' चर्चा में कहा– "औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।" और विश्वेश्वर कविचंद्र ने 'चमत्कार चंद्रिका' में कहा–

"चमत्कारस्तु विदुषामानन्दपरिवाहकृत्।
गुणं रीतिं रसं वृत्तिं पाकशय्यामलङ्कृतिम्।।"

इस तरह सात सिद्धांतों का विकास हुआ। इनमें से छह सिद्धांतों (रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य) ने संप्रदाय का रूप धारण कर लिया किंतु सातवां 'चमत्कार' केवल सिद्धांत रूप में ही प्रचलित है। इस इकाई में भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास और काव्य सर्जन, काव्य-प्रयोजन और काव्य हेतु के कारणों को जानते हुए रस निष्पत्ति एवं साधारणीकरण की प्रक्रिया का विस्तार से विवेचन किया जा रहा है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास का विस्तृतव विवेचन कर पाएंगे;
- काव्यशास्त्र के नामकरण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- काव्यशास्त्र के स्वरूप को परिभाषित कर पाएंगे;
- काव्य के लक्षणों की समीक्षा कर पाएंगे;
- काव्य-प्रयोजन के उद्देश्यों से परिचित हो पाएंगे;
- काव्य-हेतु के कारणों की पहचान कर पाएंगे;
- काव्य के विभिन्न प्रकारों का उदाहरणों सहित विवेचन कर पाएंगे;
- रस के स्वरूप का वर्णन कर पाएंगे;

टिप्पणी

- रस के विभिन्न अंगों की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- रस निष्पत्ति की प्रक्रिया से अवगत हो पाएंगे;
- साधारणीकरण की प्रक्रिया का रसास्वादन कर पाएंगे;
- सहृदय की अवधारणा की व्याख्या कर पाएंगे।

1.2 भारतीय काव्यशास्त्र का संस्कृत एवं संस्कृतेतर इतिहास

संस्कृत काव्यशास्त्र की सैद्धांतिक धारणाएं गहन, गंभीर और व्यापक हैं। काव्यशास्त्र के किसी भी पहलू, किसी भी स्तर, किसी भी तत्व या कोण का अध्ययन करना हो, संस्कृत काव्य शास्त्र हर दृष्टि से महत्वपूर्ण, उपयोगी, सक्षम और समर्थ है। विभिन्न आचार्यों ने अपने मतों को स्थापित किया और उनके परवर्ती आचार्यों ने उनके मतों का बड़ी शालीनता से खंडन करते हुए अपने एक नवीन मत को स्थापित किया। संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि और उनके ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' को काव्यशास्त्र की परंपराओं में प्रथम ग्रंथ स्वीकार किया गया है जो रसवाद की प्रतिष्ठा करता है। भरत के नाट्यशास्त्र में पूर्ववर्ती कवियों और रचनाकारों का उल्लेख है अतः यह माना जाता है कि काव्यशास्त्र पर चर्चा, तर्क-वितर्क ईसवी सन् से कई शताब्दियों पूर्व आरंभ हो गए थे, लेकिन रसवादी आचार्य नंदिकेश्वर के ग्रंथ 'अभिनवदर्पण' के अलावा और कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' और राजशेखर के 'काव्य-मीमांसा' में 'अभिनवदर्पण' के रचयिता नंदिकेश्वर का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त भरत, राजशेखर, शारदातनय, अभिनवगुप्त द्वारा लगभग 27 रचनाकारों का उल्लेख है। परवर्ती काल में 'अग्नि पुराण', 'विष्णुधर्मोत्तर' उपपुराण में भी रस, नृत्य और नाटकों का उल्लेख मिलता है। पी.वी. काणे ने 'संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास' में इस पर विस्तार से लिखा है। रस परंपरा का आरंभ ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अभिचार मंत्रों, वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि से भी माने जाने का उल्लेख कुछ आचार्यों ने किया है किंतु काव्यशास्त्र की दृष्टि से प्रामाणिक ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' ही है। अतः रसवादी आचार्य भरतमुनि के साथ ही काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की परंपरा प्रतिष्ठित हुई। भरत के पश्चात अनेक आचार्यों ने अपने-अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे और अपने-अपने मतों को स्थापित किया; जैसे– भामह का 'काव्यालंकार', आनंदवर्धन का 'ध्वन्यालोक', दंडी का 'काव्यादर्श', वामन का 'अलंकार सूत्र', रुद्रट का 'काव्यालंकार', राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' कुंतक का 'वक्रोक्ति जीवितम्', धनंजय का 'दशरूपक', भोज का 'सरस्वतीकंठाभरण' और 'शृंगारप्रकाश', मम्मट का 'काव्यप्रकाश', पंडित विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण', पंडितराज जगन्नाथ का 'रसगंगाधर', जगदेव का 'चंद्रलोक' आदि। कुछ आचार्यों ने किसी एक सिद्धांत जैसे रस या अलंकार, रीति या वक्रोक्ति को लेकर रचना की तो अधिकांश ने अपने ग्रंथ में सभी सिद्धांतों की चर्चा करते हुए काव्यशास्त्र के किसी एक विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला।

काव्य का स्वरूप, महत्व, गुण-दोष, उत्कृष्टता, शब्द-शक्ति आदि पर विचार प्रकट करते हुए प्रथम पांच सिद्धांतों रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि को मानने वाले लगभग सभी रचनाकारों ने औचित्य का समर्थन किया है। औचित्य का छठे मत के रूप

टिप्पणी

में उल्लेख करते हुए आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी 'औचित्य विमर्श' में कहते हैं–"पांचों मतों के साथ मिलकर यह सिद्धांत काव्य-सिद्धांत की संख्या को छह तक पहुंचा देता है। कहीं-कहीं चमत्कारवाद का भी उल्लेख मिलता है। अतः यदि इसे भी जोड़ दिया जाए तो सब मिलकर सात हो जाते हैं।" पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने ढंग से महामहोपाध्याय कुप्पूस्वामी द्वारा प्रस्तुत वृत्त की मनोरम व्याख्या करते हुए काव्य मतों की संख्या आठ तक (वाङ्मय विमर्श में)-पहुंचा दी है–चारुत्व प्रवाह में चार-वक्रोक्ति, रीति, गुण एवं अलंकार तथा इन सबको उदरस्थ कर जाने वाले अनुभूति प्रवाह में चार-औचित्य, रस, ध्वनि एवं अनुमान। इन आठों के साथ चमत्कारवाद को मिलाया जाए तो संख्या नव तक पहुंच जाएगी। यही नहीं 'अनुभूति सिद्धांत' की तरह ध्वनिविरोधी बारह पक्षों की चर्चा जयरथ ने अपनी विमर्शिनी नामक 'अलंकार सर्वस्व' की टीका में की है। जिनमें से बहुत तो उपर्युक्त मतों एवं सिद्धांतों में ही अंतर्भुक्त हैं– तात्पर्यवाद की तरह कतिपय सिद्धांत और बढ़ जाएंगे। अतः प्रस्तुत पुस्तक में पाठ्यक्रम के अनुसार छह सिद्धांतों की ही चर्चा की जाएगी।

संस्कृत काव्यशास्त्र ही मूलतः भारतीय काव्यशास्त्र है क्योंकि संस्कृत काव्यशास्त्र के पश्चात रीतिकालीन काव्यशास्त्र हो या हिंदी काव्यशास्त्र, उनमें संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की परंपरा ही निरंतर प्रवाहित होती रही है। रीतिकालीन या हिंदी काव्यशास्त्रियों ने किसी नए सिद्धांत की स्थापना नहीं की। अतः भारतीय काव्यशास्त्र कहने का तात्पर्य संस्कृत काव्यशास्त्र ही है।

भारतीय काव्यशास्त्र काव्य का मेरुदंड है। काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद हैं। इनमें श्रव्य को भी दो भागों में बांटा गया है–गद्य और पद्य। चूंकि पद्य काव्य ही काव्य के लक्षणों को विशेष रूप से धारण किए रहता है अतः काव्यशास्त्रियों ने इसे ही विवेचन का विषय चुना और माना। श्रेष्ठ काव्य की रचना के लिए काव्यशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। काव्य रचना के लिए परिपक्व और स्वस्थ भाषा शैली, अभिव्यक्ति का कौशल और सौंदर्य, शब्दों का चयन और इन सबका सुंदर संतुलन, औचित्य विचार आदि का विवेक और सामर्थ्य, ये सब काव्यशास्त्र के अध्ययन से ही प्राप्त होते हैं।

1.2.1 काव्यशास्त्र का नामकरण

काव्य के सौंदर्य और प्रभाव को परखने के लिए काव्यशास्त्र का अध्ययन किया जाता है। काव्यशास्त्र को कई नाम दिए गए। विजयेंद्र स्नातक 'हिंदी काव्यशास्त्र की परंपरा' की भूमिका में कहते हैं–"यदि संपूर्ण वांङ्मय का इस संदर्भ में अनुशीलन किया जाए तो काव्यशास्त्र के लिए मुख्यतः पांच शब्दों का प्रयोग होता है। ये पांच शब्द हैं–काव्यशास्त्र, काव्यालंकार, अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र और क्रियाकलाप। इन पांचों में अलंकार शब्द का प्रयोग प्राचीनतम है।" इन पांचों नामों में से काव्यशास्त्र नाम को ही सटीक मानते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र 'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' में कहते हैं–"अलंकार शास्त्र से अलंकार के विशेष विवेचन का ही अभिप्राय निकलता है। काव्य के स्वरूप और उसकी समस्याओं पर विचार करने वाले विषय को काव्यशास्त्र ही कहना विशेष उपयुक्त है क्योंकि इसके अंतर्गत अलंकारों के अतिरिक्त अन्य विषय भी समाविष्ट रहते हैं। आजकल

टिप्पणी

साहित्य और काव्य के अर्थों में व्यापकता की दृष्टि से कुछ अंतर है। साहित्य शब्द को बहुधा हम शास्त्रीय, वैज्ञानिक एवं रमणीय सभी प्रकार की रचनाओं के लिए प्रयुक्त करते हैं। अतः साहित्य शास्त्र से काव्यशास्त्र शब्द हमारे उद्देश्य की पूर्ति अधिक स्पष्टता के साथ करता है।"

काव्यशास्त्र के पांच नामों में से साहित्य शास्त्र और अलंकार शास्त्र सर्वाधिक प्रचलित रहे। संस्कृत की काव्यशास्त्र परंपरा के आचार्यों जैसे– भामह, उद्भट, रुद्रट, वामन आदि ने अपने ग्रंथों के नामकरण में अलंकार शब्द को प्रमुखता दी। किसी ने 'काव्यालंकार', किसी ने 'सौंदर्यालंकार', किसी ने 'अलंकार सर्वस्व' नाम से अपने ग्रंथ का नामकरण किया। इसी तरह 'साहित्य-मीमांसा', 'साहित्य दर्पण', 'साहित्य-विद्या' आदि नामकरण भी चर्चित हुए। पंडित विश्वनाथ ने अपने सुप्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ का नाम 'साहित्य दर्पण' रखकर साहित्य शब्द को प्रतिष्ठा दिलाई किंतु परवर्ती काल में आचार्य मम्मट द्वारा स्थापित 'काव्यशास्त्र' शब्द ही प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हुआ।

1.2.2 काव्यशास्त्र का स्वरूप

काव्यशास्त्र काव्य के स्वरूप और उसकी समस्याओं पर विचार अथवा अध्ययन करता है। काव्य रचना के लिए जिस अनिवार्य अनुशासन की आवश्यकता होती है, भारतीय काव्यशास्त्र उसका निर्धारण करता है। राममूर्ति त्रिपाठी कहते हैं, "काव्य के शास्त्र से अभिप्राय उसके शासन से है–नियम विधान से है। शास्त्र इसलिए शास्त्र माना जाता है कि वह शासन करता है, कवियों को निरंकुश होने से रोकता है। काव्य का अनुशासन ही काव्य का शास्त्र है।" वाग्भट्ट 'काव्यानुशासन' की चर्चा करते हैं, दशरूपककार धनंजय भी अनुशासन का ही समर्थन करते हैं जबकि महाभाष्यकार पतंजलि वैयाकरण होने के नाते 'शब्दशासन' की बात करते हैं। अनुशासनहीनता काव्य में अनौचित्य को जन्म देती है तथा अनौचित्य से बड़ा 'रसभंग' का दूसरा कारण नहीं होता। औचित्य निबंधन ही रस के परम समीप ले जाता है। आनंदवर्धन कहते हैं–

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्।
औचित्योपनिबंधस्तु रसस्योपनिषत् परा॥

क्षेमेंद्र कहते हैं–'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।'

औचित्य रसयुक्त काव्य को स्थिर जीवन शक्ति प्रदान करता है। औचित्य के बिना काव्य में रस निष्पत्ति संभव नहीं है। औचित्य का आकलन करना काव्य को अनुशासित करने की प्रक्रिया है। विजयेंद्र स्नातक कहते हैं–'काव्य के साथ शास्त्र शब्द जुड़ने से सामान्यतः शास्त्र शब्द का 'शासनात् शास्त्रम्' अर्थ होता है अर्थात जो काव्य का शासन करे, वह काव्यशास्त्र है, किंतु काव्य शासन नहीं करता। विधि-निषेध की सीमाओं में काव्य को बांधा नहीं जा सकता। अतः शास्त्र शब्द का दूसरा अर्थ–'शंसनात् शास्त्रम्' अर्थात विषय प्रतिपादन करने वाला, यह अर्थ इस संदर्भ में समीचीन प्रतीत होता है।' काव्यशास्त्र के समुचित ज्ञान के बिना काव्य का गंभीर अनुशीलन असंभव है।

टिप्पणी

काव्यशास्त्र के अध्येतव्य विषय

आचार्य राजशेखर ने 'काव्य-मीमांसा' में लिखा है–**इह हि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च। शास्त्र पूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेष्वभिनिविशेषः नह्यप्रवर्तितप्रदीपास्ते तत्वार्थमसामर्थ्यध्यक्षयन्ति।** अर्थात शास्त्र और काव्य इन भेदों से वाङ्मय दो प्रकार का है। काव्य ज्ञान के लिए शास्त्र आवश्यक है। जैसे बिना दीपक के पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार शास्त्र ज्ञान के बिना काव्य ज्ञान असंभव है। अतः काव्य से पहले शास्त्र का अभ्यास करना आवश्यक है।' काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप और समस्याओं के साथ-साथ अलंकारों तथा काव्य से संबंधित अन्य विषयों का भी अध्ययन किया जाता है।

1.3 काव्य-लक्षण

काव्य मानव जीवनै में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कविराज विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में लिखा है–

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥

अर्थात काव्य ऐसी वस्तु है, जिससे अल्पबुद्धि मानव को बिना किसी कष्ट साधना के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्ट की प्राप्ति हुआ करती है। अतः जो काव्य मनुष्य के जीवन में इतना महत्व रखता है वह कैसा हो, जिसे पढ़कर, आत्मस्थ करके मनुष्य चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कर सके? इसका उत्तर भोजराज ने अपने ग्रंथ में इस तरह दिया है–

अदोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति॥

अर्थात काव्य वह है जो निर्दोष हो, गुणयुक्त हो, अलंकारों से अलंकृत हो और रस समन्वित हो और कवि वह है जो ऐसे काव्य की रचना करता है एवं यश और कीर्ति पाया करता है। अनेक आचार्यों ने कुछ इसी तरह के काव्य को प्रेरक और सुफलदायक बताया। काव्य का स्वरूप उसके लक्षणों या गुणों द्वारा निर्धारित किया जाता है। अनेक विद्वानों ने काव्य के स्वरूप को निर्धारित करने के लिए अपने-अपने मतानुसार अनेक परिभाषाएं दी हैं। ये परिभाषाएं ही काव्य के लक्षणों को समेटे हुए हैं। काव्य में रस हो, अलंकार हों, जो यथायोग्य एवं यथास्थिति निर्धारित हों, उचित रीति से लिखा गया काव्य हो, ध्वनि की प्रधानता हो, वक्रोक्ति हो तथा इन सबका उचित रीति-नीति से समावेश किया गया हो तभी काव्य वस्तुतः काव्य कहलाएगा। उत्तम काव्य की संज्ञा प्राप्त करेगा। औचित्य के बिना इन लक्षणों से युक्त काव्य में भी दोष उत्पन्न हो जाएंगे और तब न अलंकार अलंकारी होगा, न रस रसत्व उत्पन्न करेगा। अतः काव्य के निम्नलिखित पांच लक्षणों–रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि के साथ छठे लक्षण औचित्य का होना आवश्यक है। जैसे जीवन में औचित्य का महत्व है वैसे ही काव्य में भी। जीवन-मूल्य, सामाजिकता, नैतिक मूल्यों का निर्वाह औचित्य के आधार पर होता है। अनौचित्य के उपस्थित होते ही मनुष्य पतित हो

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य कौन थे?
2. काव्यशास्त्रियों ने किस ग्रंथ को काव्याशास्त्र की परंपरा का प्रथम ग्रंथ माना है?
3. किसके ज्ञान के बिना काव्य का ज्ञान असंभव है?
4. काव्यशास्त्र किसका अध्ययन करता है?

टिप्पणी

जाता है, जीवन नीरस और बेरंग हो जाता है उसी तरह काव्य के लक्षणों के साथ औचित्य का नाता है। तरकारी में नमक या मसालों की मात्रा अनुचित हो तो तरकारी बेस्वाद हो जाती है उसी तरह काव्य में यदि करुण रस के प्रसंग में रस की मात्रा कम या ज्यादा हो या अन्य रस समाविष्ट हो जाएं तो काव्य निम्न कोटि का हो जाता है। जिस तरह क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से मिलकर जीव के शरीर का निर्माण हुआ है उसी तरह ये काव्य लक्षण भी आपसी तालमेल से काव्य का निर्माण करते हैं। अतः सभी अपनी-अपनी स्थिति में महत्वपूर्ण हैं। इन लक्षणों को काव्य के गुण भी कह सकते हैं। किन गुणों से या किन लक्षणों से युक्त काव्य, काव्य की श्रेणी में आता है, इस पर विचार करते हुए अनेक कथन सामने आते हैं–

1. **आचार्य विश्वनाथ** के अनुसार, "वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्।" अर्थात रसयुक्त वाक्य ही काव्य है। रस काव्य की आत्मा है। "रसो वै सः"-वैदिक साहित्य में रस को परमानंद का पर्याय माना गया है। रस अतंःकरण की वह शक्ति है जिसका आनंद अलौकिक होता है। आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है। काव्यशास्त्र में किसी कविता की भावभूमि को रस और रसपूर्ण वाक्य को काव्य कहा जाता है।

–साहित्यदर्पण

2. **पंडितराज जगन्नाथ** के अनुसार, "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।" अर्थात सुंदर अर्थ को प्रकट करने वाली रचना ही काव्य है। रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा गया है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत 'शब्द की रमणीयता' (शब्दालंकार) भी समझकर विद्वत लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। 'अर्थ की रमणीयता' के बारे में पंडितराज जगन्नाथ का कथन है–

"रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता।" अर्थात अर्थ की रमणीयता वह है, जिससे लोकोत्तर आह्लाद की प्राप्ति हो।

–रसगंगाधर

3. **हेमचंद** के अनुसार, "अदोषौ सगुणौ आलंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।" अर्थात दोषमुक्त, गुणयुक्त, अलंकारिक (सुंदर) एवं अर्थपूर्ण शब्द रचना काव्य है।
4. **भामह** के अनुसार, (1) "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।" (2) "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।" अर्थात कविता शब्द और अर्थ का उचित मेल है।

–काव्यालंकार

शब्द और अर्थ के समुचित सहभाव का तात्पर्य शब्द और अर्थ की उस संश्लिष्टात्मक स्थिति से है जिसमें उपयुक्त शब्द से उपयुक्त और आह्लादकारी अर्थ की प्राप्ति हो। आचार्य श्रीपति, भामह के इस आशय की अभिपुष्टि करते हुए कहते हैं–

"शब्द अर्थ बिन दोष गुण, अलंकार रसवान।
ताको काव्य बखानिये श्रीपति परम सुजान॥"

5. **दंडी** के अनुसार, "काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।" अर्थात काव्य-धर्म सौंदर्य है। दंडी ने 'काव्यादर्श' में शब्दार्थ के चमत्कार, काव्य के बाह्य रूप अर्थात

टिप्पणी

अलंकार को काव्य माना है। जो बात भामह ने कही है, दंडी भी उसे ही दुहराते हैं। अंतर यह है कि दंडी अर्थालंकार को काव्य के इष्टार्थ का जनक मानते हैं और भामह शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों को समान महत्व देते हैं। दंडी के अनुसार- "शरीरम् इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।" अर्थात अर्थ से युक्त पदावली काव्य का शरीर है।

–काव्यादर्श

6. **वामन** के अनुसार– वामन की दृष्टि में गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ ही काव्य है। केवल शब्दार्थ को काव्य मानने की परिपाटी लाक्षणिक है। मूलत: वामन भी भामह की भांति शब्द व अर्थ के सहभाव को काव्य मानते हैं, परंतु इस सहभाव का औचित्य उनकी दृष्टि में तभी हो सकता है जब काव्य में गुण और अलंकारों का समावेश होता है। गुण और अलंकार के माध्यम से शब्दार्थ में चमत्कार, आह्लाद व कल्याण भाव की प्राप्ति हो सके, इसलिए वे कहते हैं-

"काव्यशोभाया; कर्त्तार; धर्मा गुणा:।
तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:।।"

अर्थात काव्य में चारुत्व जनकता गुणों से होती है और अलंकार इस चारुता के लिए अपेक्षित है।

(क) "काव्यशब्दोऽयं गुणालंकार संस्कृतयो: शब्दार्थयोर्वर्तते:।"

अर्थात गुणों तथा अलंकारों से भूषित शब्द और अर्थ के लिए काव्य शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(ख) "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्।" अर्थात काव्य अलंकार के कारण ग्राह्य होता है।

–काव्यालंकार सूत्रवृत्ति:

7. **मम्मट** के अनुसार, "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावानलंकृती पुन: क्वापि।" अर्थात दोष रहित तथा गुण युक्त शब्द और अर्थ का सामंजस्य ही काव्य है। मम्मट वही बात कह रहे हैं जो हेमचंद ने कही है। अंतर इतना ही है कि ये अलंकारों के सहयोग को अनिवार्य नहीं मानते।

–काव्यप्रकाश

कुछ विद्वानों द्वारा गुण को भी समाविष्ट कर काव्य लक्षणों–रस, ध्वनि, रीति, गुण, अलंकार, वक्रोक्ति और औचित्य, इन सातों को काव्य का अंग भी माना गया है। इनके बिना काव्य की स्थिति असंभव होती है। इन्हें स्वरूपाधायक उपादान तत्व कहते हैं। इनसे काव्य की शोभा तो बढ़ती ही है काव्य विशिष्ट भी बन जाता है। कुंतक वक्रोक्ति को ही काव्य का मूल बताते हैं।

8. **कुंतक** के अनुसार, "शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।"

अर्थात वक्रोक्ति युक्त पदरचना में सहभाव से व्यवस्थित शब्दार्थ ही काव्य है। वह वक्रोक्ति सामाजिकों को आह्लादित करती है।

–वक्रोक्तिजीवितम्

टिप्पणी

9. **जयदेव** के अनुसार, "अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती। असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।–

चंद्रालोक

अर्थात जो लोग अलंकार रहित शब्दार्थ को काव्य मानते हैं वे अग्नि को भी उष्णता रहित क्यों नहीं मान लेते।

10. **अग्निपुराण** के अनुसार, "अलंकार रहिता विधवेव सरस्वती।" अर्थात अलंकार रहित सरस्वती विधवा है। किंतु दूसरी ओर वे रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं–

"वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।"

"संक्षेपाद्वाक्याभिष्टार्थ-व्यवच्छित्ता पदावली।
कटव्यं स्पुटालंकार गुणवद्दोषवर्जितम्।।"

अग्निपुराणकार उक्ति चमत्कार को प्रधानता देते हैं तथा रस की सत्ता और महत्ता को स्वीकार करते हैं। आचार्य विश्वनाथ 'रसयुक्त वाक्य' को ही काव्य मानते हैं। पंडितराज जगन्नाथ कहते हैं–'जो शब्द रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करे वही वाक्य काव्य है।' अन्य चमत्कार मूलक तत्व रस के साथ पोषक तत्वों के रूप में उपस्थित रहते हैं यह विश्वनाथ और मम्मट दोनों आचार्यों ने स्पष्ट किया है। इसीलिए आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा सटीक है। जैसे शौर्य आदि गुण आत्मा का उत्कर्ष करते हैं उसी तरह 'गुण' रसों के उत्कर्ष हेतु हैं। इसी तरह अलंकार वैसे ही शब्दार्थ के शोभाकारक अस्थायी धर्म हैं जैसे–कवच, कुंडल आदि आभूषण शरीर के। कहा जा सकता है कि काव्य उपरोक्त लक्षणों से संपन्न ऐसा साहित्य है जो सहृदय को भावलोक में पहुंचा देता है। राग-द्वेषादि से दूर कर सांसारिक बंधनों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। व्यष्टि को समष्टि में लीन कर देता है जहां अपने-पराए का भाव शेष नहीं रह जाता।

11. "सगुण अलंकारन सहित दोषरहित जो होय।
शब्द अर्थ वारो कवित विवुध कहत सब कोय।।"

–चिंतामणि

12. "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है।"

–प्रसाद

काव्य के सभी लक्षणों का अपना-अपना संप्रदाय और सिद्धांत है। इनके प्रकार, उपप्रकार हैं। काव्य के सभी लक्षण चाहे रस हो या अलंकार, रीति हो या वक्रोक्ति, ध्वनि हो या औचित्य सभी एक दूसरे से संबंधित हैं। रस, रीति और औचित्य सर्व समावेशी लक्षण हैं। सभी काव्य में किसी न किसी रूप में पाए जाते हैं। अलंकार बाह्य यानी शारीरिक होने के साथ-साथ आत्मा का गुण भी है जिससे आत्मा अलंकृत और प्रभा संपन्न होती है। वक्रोक्ति भी अलंकार का एक रूप है तथा ध्वनि भी काव्य के सभी प्रकारों में न्यूनाधिक हो या प्रबल और सटीक, उपस्थित अवश्य होती है बल्कि ध्वनि युक्त काव्य को ही कुछ काव्यशास्त्रियों ने उत्तम काव्य की संज्ञा दी है। काव्य के इन लक्षणों के संस्थापक या प्रवर्तक काव्यशास्त्र के आचार्य हैं। जैसे– 'रस' के भरतमुनि, 'अलंकार' के भामह, 'रीति' के वामन, 'वक्रोक्ति' के कुंतक, 'ध्वनि' के आनंदवर्धन, 'औचित्य' के क्षेमेंद्र।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. 'वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्' किस विद्वान की परिभाषा है?
6. 'अलंकार रहित सरस्वती विधवा है'- किस पुराण में लिखा है?
7. मम्मट ने काव्य प्रयोजन के कितने प्रकार बताए हैं?
8. व्यक्तिगत आनंद तथा सामाजिक लोकमंगल को किस विद्वान ने काव्य प्रयोजन माना?

टिप्पणी

1.4 काव्य-प्रयोजन

'काव्यत्वं दुर्लभं लोके' कहा गया है तो इसका प्रणयन निरुद्देश्य कैसे हो सकता है? सामान्यत: दो प्रयोजन माने जाते हैं–आनंद की प्राप्ति और लोक कल्याण। भरतमुनि लिखते हैं–यह नाट्य (काव्य) धर्म, यश, आयु, हित और वृद्धि का अभिवर्धक और लोकोपदेश का उत्पादक होगा–

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति॥

अर्थात पहला प्रयोजन धर्म यानी कर्तव्य बोध है कि मैं समाज के प्रति उत्तरदायी हूं यानी कि कवि सामाजिक कल्याण करने वाली और आनंददात्री रचना का प्रणयन करे जिससे उसे यश प्राप्त होगी। प्रसन्नचित्त और यशस्वी होने से आयु बढ़ेगी और वह समाज का हित लंबे समय तक साध सकेगा।

भामह के अनुसार–

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु स।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्य निवेषणम्॥

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कलाओं में दक्षता, कीर्ति और प्रीति ये काव्य के प्रयोजन हैं। वामन ने प्रीति और कीर्ति केवल दो प्रयोजन माने हैं।

कुंतक के काव्य प्रयोजनों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–(1) चतुर्वर्ग फलप्राप्ति (2) व्यवहार औचित्य का ज्ञान (3) चतुर्वर्ग फलास्वाद से भी बढ़ कर अंतश्चमत्कार की प्राप्ति।

मम्मट के अनुसार काव्य प्रयोजन के छह प्रकार हैं–(1) यश की प्राप्ति (2) अर्थ की प्राप्ति (3) लोक व्यवहार का ज्ञान (4) अनिष्ट निवारण (5) तात्कालिक आनंद (6) कांता सम्मित उपदेश। लगभग सभी आचार्यों ने उपरोक्त प्रयोजनों की ही चर्चा घुमा-फिरा कर की है।

साहित्य की साध्यता सोपानबद्ध होती है। उसमें हम तारतम्य का अनुभव करते हैं और एक सोपान के प्राप्त हो जाने पर दूसरा सोपान साध्य हो जाता है और पहला साधन। यह सोपानबद्धता समस्त साहित्य का ही स्वभाव है। हम यह भी कह सकते हैं कि यह साहित्य का समग्र स्वरूप है। अत: जब साध्य और साधन साहित्य के दो पक्ष हैं तब साधन और साध्य का विश्लेषण एक कठिन कार्य अवश्य है। इसका एक और कारण है। साहित्य स्वयं एक रचना है – सृष्टि है। वह जीवन के समान है, समान ही नहीं वह कल्पनागत जीवन है। अतएव साधन एवं साध्य संबंधी कठिनाई उपस्थित होती है। कुछ लोग यह मानते हैं कि मनुष्य जीवन का साध्य मोक्ष है, सत्यान्वेषण है, लोक कल्याण है, ईश्वर का साक्षात्कार है, चरम आनंदानुभूति है। गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन है–

बड़े भाग मानुस तन पाया। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा।।
सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ।
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।

भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास

टिप्पणी

यह विचार भक्तों का ही नहीं, आधुनिक कविश्रेष्ठ, कामायनी महाकाव्यकार प्रसाद जी का भी है कि भोग-विलास ही जीवन का लक्ष्य नहीं। विलास को ही जीवन में प्रधानता देने वाली संस्कृति विनष्ट हो जाती है और इतिहास का अनुशीलन करने पर भी हम यही देखते हैं कि जिस देश अथवा जाति में भोगवाद और विलासिता का अबाधित प्रसार एवं प्रचार हुआ, उसका तुरंत पतन हुआ है। अत: जीवन का साध्य केवल भोग नहीं अर्थात केवल जीना नहीं वरन कुछ और है, विशेष रूप से मानव-जीवन का। डॉ. नगेंद्र काव्य के दो प्रयोजन मानते हैं–व्यक्तिगत आनंद तथा सामाजिक लोकमंगल।

साहित्य के साध्य युग-युग में बदलते रहते हैं और उसके विशिष्ट रूपों का युग-युग में बदलना आवश्यक भी है। जिस प्रकार विज्ञान के लिए सिद्धांतत: एक साध्य है– सत्यानुसंधान। उसके भीतर युगानुकूल विद्युत, रेडियो, अणुशक्ति आदि विशिष्ट रूप आते रहे, उसी प्रकार काव्य का भी सैद्धांतिक रूप से साध्य एक होता हुआ भी, युगानुकूल उसका साध्य बदलता रह सकता है। उसके बदलते रूप यह प्रमाणित करते हैं कि हमारी साहित्यिक चेतना प्रबुद्ध है और हम उस चेतना को लेकर जागरूक एवं क्रियाशील हैं।

यही स्पष्टीकरण अब तक प्रस्तुत साहित्य या काव्य के प्रयोजनों के संबंध में भी है। भारतीय परंपरा में हम काव्य प्रयोजन संबंधी जो विचार पाते हैं वे हैं–

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥ *(मम्मट)*

धर्मार्थ काममोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्यनिषेवणम्॥ *(भामह)*

उपर्युक्त प्रयोजनों के अंतर्गत जीवन की सफलता के विविध पक्ष प्रकट हुए हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये जीवन के पुरुषार्थ माने जाते हैं। इन पुरुषार्थों का तारतम्य है। एक के बाद हम दूसरा पुरुषार्थ प्राप्त करते हैं और इस प्रकार एक प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर, फिर वह साध्य के स्थान पर साधन बन जाता है। इन साधनों के तारतम्य में अंतिम साध्य मोक्ष है, जो साधन नहीं बनता। मोक्ष के अंतर्गत जो ध्वनि है, वह निषेधार्थपूर्ण है, विधेयतापूर्ण नहीं। मोक्ष अर्थात जीवन से निष्क्रमण। यदि जीवन से निष्क्रमण का तात्पर्य जीवन के आनंद से निष्क्रमण है, तो कोई नहीं चाहेगा। अत: इसका तात्पर्य हुआ जीवन के दुखों से निष्कृति या मुक्ति। जीवन सुख-दुखात्मक है, अत: जब उसके दुखों से कोई मुक्त होना चाहता है, तो उसके सुखों से भी हाथ धोना पड़ता है। अत: मुक्ति आनंदहीन हुई। वह स्थिति तो जड़ सी हुई। यह जीवन को दुखपूर्ण मानने की धारणा या परिणाम है। परंतु साहित्य या काव्य की कल्पना दूसरे प्रकार की है। वह जीवन के दुखों को भी सुखों में परिणत करने का जादू है। हमारे जीवन के दुखानुभव जब काव्य या साहित्य का रूप धारण करके आते हैं, तब वे हमें दुख नहीं वरन सुख ही देते हैं। काव्य में रस का भी यही रहस्य है। रस के अंतर्गत जीवन की सुख-दुखात्मक अनुभूतियां आनंद में परिणत हो जाती हैं। इसी से हम संयोग-शृंगार के

टिप्पणी

साथ-साथ वियोग-शृंगार, हास्य के साथ-साथ करुण और वीभत्स के साथ-साथ भयानक और रौद्र रसों को प्राप्त करते हैं।

अपने लौकिक जीवन में जिन करुण, वीभत्स और भयानक परिस्थितियों की कल्पना से भी हमारा मन सिहर उठता और शरीर थर्रा उठता है, उन्हीं परिस्थितियों को साहित्य में प्राप्त कर हम बार-बार उनका आस्वादन और परिशीलन करना चाहते हैं। यह साहित्य की रासायनिक क्रिया ही है, जो इन दुखात्मक और भयावह परिस्थितियों को रमणीय रूपों में बदल देती है। साहित्य की यह क्रिया, जो मुख्यतया जीवन की पुन: रचना क्रिया है, उसके साध्य का भी संकेत करती है। जीवन की विभीषिकाओं को प्रस्तुत कर वह यह बताती है कि वे भी जीवन के अंग हैं पर दूसरी ओर सभ्यताओं का भी चित्रण करके वह स्पष्ट करती है कि जीवन का वह स्वरूप कितना प्यारा और वांछनीय है। साहित्य के अंतर्गत प्राप्त इन्हीं चित्रणों ने धीरे-धीरे मानव समाज को यह प्रेरणा दी कि सभ्यता और संस्कृति का विकास वही है, जिसमें विभीषिकाओं का ह्रास और सभ्यताओं की प्रचुरता और स्थिरता हो। समाज के नव-निर्माण हेतु कार्य करने वाले राजनीतिज्ञों, समाज-सुधारकों और समाजशास्त्रियों को साहित्य की कल्पनाओं ने ही प्रेरणा दी है और धीरे-धीरे इन्हीं कल्पनाओं को जीवन में उतारता और साकार करता हुआ मानव जीवन-पथ पर आगे बढ़ रहा है।

साहित्य का साध्य आनंद है। मोक्ष की धारणा इसकी तुलना में जीवन से एक पलायन मात्र है। साहित्य सदैव सुख-दुखमयी जीवन परिस्थितियों का चित्रण कर हमें अनुभव, प्रेरणा और संवेदन प्रदान करता है, और इन तीनों के द्वारा उसका कार्य आनंद संपादन ही है। साहित्य में वर्णित ये घटनाएं जीवन की घटनाओं के समान कटु नहीं होती और वे वैयक्तिक संबंधों से मुक्त होती हैं।

इनके द्वारा एक सामाजिक संवेदना जागृत होती है और हम एक दूसरे के अधिक निकट हो जाते हैं। हम ऐसी स्थितियों से सचेत रहते हैं या समाज से उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इनसे हमारे व्यक्तित्व का विस्तार होता है और हमारी संकीर्णता नष्ट हो जाती है। इस प्रकार साहित्य की दुखात्मक परिस्थितियों से भी परोक्ष संकेत, आनंद संपादन का ही रहता है और सुखात्मक परिस्थितियों में आनंद की अजस्र धारा बहती ही रहती है।

अपने इसी साध्य द्वारा साहित्य मानव-जीवन में दानवत्व का नाश और देवत्व का विकास करता रहता है। देवत्व की कल्पना का आकर्षण हमारे जीवन में भरना साहित्य का ही काम है। इसी देवत्व की उपलब्धि अपने में करके मानव जीवन देवत्व से और सबसे महान बनता जा रहा है।

1.5 काव्य-हेतु

काव्यशास्त्रियों के काव्य 'हेतु' अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं। न्यायदर्शन का 'हेतु' भी इनसे अंशत: मिलता जुलता है। दर्शनशास्त्र में इसे कारण कहा जाता है। 'हेतु' अर्थात वे साधन जो काव्य-रचना में कवि के सहायक होते हैं। कुछ आचार्य प्रतिभा को काव्यत्व का बीज मानते हैं और उसे ही 'हेतु' स्वीकार करते हैं। हेतु या कारण दो प्रकार के होते हैं–

टिप्पणी

(1) उपादान (2) निमित्त। अग्निपुराण में लोक-व्यवहार तथा वेद के ज्ञान को काव्य-प्रतिभा की योनि कहा गया है तथा सिद्ध किए गए मंत्र के प्रभाव से जो काव्य निर्मित होता है उसे अयोनिज कहा गया है। इससे काव्य के तीन हेतुओं का पता चलता है– (1) काव्य-प्रतिभा (2) वेद-ज्ञान और (3) लोक-व्यवहार।

भामह भी प्रतिभा को मूल 'हेतु' मानते हुए लिखते हैं–

"गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम्।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावत:।।" *–काव्यालंकार*

अर्थात गुरु के उपदेश से शास्त्र का अध्ययन तो जड़बुद्धि भी कर सकता है। परंतु काव्य की रचना प्रतिभावान ही कर सकता है।

दंडी– तीन हेतुओं की चर्चा करते हैं–(1) नैसर्गिक प्रतिभा (2) लोकशास्त्र ज्ञान (3) अमंद अभियोग। दंडी प्रतिभा की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी श्रम और यत्न को पर्याप्त महत्व देते हैं।

वामन ने अनेक हेतुओं की चर्चा करते हुए उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया है– (1) लोक (2) विद्या (3) प्रकीर्ण। 'लोक' अर्थात लौकिक व्यवहार के ज्ञान को प्रथम स्थान दिया है। विद्या के अंतर्गत शब्द-शास्त्र, कोश, छंद शास्त्र, कला, दंडनीति आदि विद्याएं परिगणित की हैं। प्रकीर्ण के अंतर्गत लक्ष्य, ज्ञान, अभियोग, वृद्ध सेवा, अवेक्षण, प्रतिभान और अवधान क्रमश: को सम्मिलित किया है। प्रतिभा को तीसरे स्थान पर रखना अन्य आचार्यों को उचित नहीं जान पड़ा। कुंतक प्रतिभा को महत्व देते हैं लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि स्वभाव को मानते हैं। वे कहते हैं सुकुमार स्वभाव से ही सुकुमार शक्ति उत्पन्न होती है।

मम्मट के अनुसार–(1) शक्ति (2) निपुणता और (3) अभ्यास, ये तीन काव्य हेतु हैं। निपुणता और अभ्यास ये दो नवीन शब्द मम्मट ने प्रयोग किए हैं।

राजशेखर प्रतिभा को दो भागों में बांट देते हैं–(1) कारयित्री (2) भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा कवि में और भावयित्री प्रतिभा भावक के हृदय में निवास करती है। उन्होंने पुन: कारयित्री प्रतिभा को भी तीन भागों में बांट दिया–(1) सहजा कारयित्री प्रतिभा (2) आहार्या कारयित्री प्रतिभा (3) औपदेशिकी कारयित्री प्रतिभा। इनकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं–'सहज प्रतिभा' जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों का प्रतिफल है। 'आहार्या' वर्तमान जीवन का संस्कार है तथा 'औपदेशिकी' तंत्र, मंत्र, देवता, गुरुजन, स्वजन आदि के उपदेश एवं शिक्षा से उद्बुद्ध होती है।

रुद्रट के अनुसार प्रतिभा के दो प्रकार हैं–सहजा और उत्पाद्या।

अभिनवगुप्त प्रतिभा के दो रूप मानते हैं–सामान्य प्रतिभा एवं कवि प्रतिभा।

अभिनव गुप्त के गुरु भट्टतौत ने प्रज्ञा को मूलभूत शक्ति मान कर प्रतिभा को उसका एक रूप बताते हुए उसे नवोन्मेषशालिनी शक्ति कहा है। अर्थात प्रतिभा प्रज्ञा का वह रूप है जो नवीन-नवीन रूपों का सृजन तथा उद्घाटन करती है। प्रतिभा रसात्मक रूपों, नए रूपों का निर्माण करती है। इसमें अपूर्व वस्तु निर्माण की क्षमता है। यह शब्दार्थ के सौंदर्य को बढ़ाती है।

टिप्पणी

काव्य सृजन की प्रक्रिया के संबंध में अनेक मत हैं। कोई केवल शारीरिक दृष्टि से, कोई मानसिक और कोई आध्यात्मिक दृष्टि से इसका विश्लेषण करते हैं, परंतु काव्य-सृजन की प्रक्रिया एक साथ शारीरमानसात्मिक प्रक्रिया है। इसमें शरीर प्रमुखतया साधन और माध्यम है। प्रमुखतया क्रिया मनस्तत्व की है, जिसमें चेतना आत्मतत्व को स्पर्श और जागृत करती है। आत्म तत्व के संस्पर्शित होने पर आनंदमय उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि होती है और उसके उद्‌बुद्ध होने पर रहस्यात्मक काव्यधारा प्रवाहित होती है। सामान्यतया लौकिक काव्य मनस्तत्व अनुभूति और कल्पना को प्रेरित करता है। अनुभूति को प्रमुखतया संस्पर्श करने पर भावात्मक काव्य की तथा कल्पना के क्षेत्र को संस्पर्श करने से कलात्मक काव्य की प्रधानतया सृष्टि होती है। दोनों का सामंजस्य होने पर ही व्यापक प्रभाव वाले काव्य की रचना संभव है, जिसमें कवि का मन एक साथ कल्पना और अनुभूति दोनों ही क्षेत्रों के संस्पर्श का आनंद उठाता है। बुद्धि तत्व सामान्यतया 'भोजने लवणवत्' (भोजन में नमक के साथ) रहता है, परंतु अधिक होने पर फिर प्रचारवादी या नीति उपदेश प्रधान काव्य की रचना होती है। अनुभूति की धरती पर जब कल्पना विचरण करने लगती है, तब सुंदर भाव-कला संपन्न काव्य की सृष्टि होती है।

भारतीय साहित्य में प्रतिभा को बहुत आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है, परंतु कुछ लोगों का यह भी विचार है कि साधना द्वारा काव्य रचना की शक्ति एवं प्रतिभा संवर्धित की जा सकती है। अत: हमारे सामने प्रश्न उठता है कि क्या प्रतिभा न होने पर भी साधना और प्रयत्न द्वारा काव्य की रचना की जा सकती है? क्या काव्य रचना बिना प्रतिभा के संभव है, इस प्रश्न पर विचार करने से पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि प्रतिभा क्या है और क्या प्रतिभा उत्पन्न की जा सकती है? यह प्रश्न जितना प्रमाण-सापेक्ष है, उतना ही विज्ञान और मनोविज्ञान से भी संबंधित है। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान **भट्टतौत** ने कहा है कि–

बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागामिगोचरा।
प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता॥

अर्थात तत्काल कार्य करने का निश्चय देने वाली बुद्धि है, आगामी वस्तु और परिस्थिति की कल्पना और तदनुरूप निर्णय देने वाली शक्ति मति है और जो नई-नई प्रेरणा और कल्पना देने वाली प्रज्ञा-शक्ति है, वही प्रतिभा है। इस कथन से स्पष्ट है कि प्रतिभा नई सृष्टि की प्रेरक शक्ति है। जिस शक्ति द्वारा हमारे मन में नई कल्पनाएं, उद्‌भावनाएं तथा दृष्टियां प्रकट होती रहें, वही प्रतिभा है। प्रतिभा के संबंध में ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन का भी कुछ इसी प्रकार का मत है, उन्होंने लिखा है कि "अपूर्ववस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा" अर्थात पहले जैसी वस्तु नहीं है, वैसी वस्तु के निर्माण की क्षमता प्रज्ञा है। अतएव प्रतिभा, विशिष्ट और अधिक सक्रिय प्रज्ञा कही जा सकती है।

यह स्पष्ट है कि काव्य मूलत: नई सृष्टि है। यह नवीनता अनेक रूपों में देखी जा सकती है। वस्तु की नवीनता, भावगत नवीनता, कल्पना की नवीनता, अभिव्यक्ति की नवीनता आदि। काव्य के अंतर्गत यह नवीनता रहती ही है और वही उसकी अपूर्वता है। अत: काव्य की रचना के लिए नवीन सृष्टि संबंधी प्रतिभा आवश्यक है। इसमें दो मत नहीं हो सकते परंतु

टिप्पणी

हमारे सामने इस प्रसंग में दो प्रश्न मूलत: उठते हैं– पहला यह कि प्रतिभा जन्मजात न होने पर क्या अर्जित की जा सकती है? और दूसरा यह कि प्रतिभा के अभाव में अथवा उसकी कम मात्रा में होते हुए भी कोई अन्य साधन या तत्व है, जिनकी काव्य रचना के प्रसंग में आवश्यकता स्वीकार की जा सके?

पहले प्रश्न पर विचार करते हैं–प्रतिभा के संबंध में प्राय: मत यह है कि यह जन्मजात ही होती है। कुछ लोगों ने काव्य की शक्ति, प्रतिभा को दो रूपों में देखा है– (1) सहजा (2) उत्पाद्या।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान रुद्रट के विचार में सहजा प्रतिभा जन्मजात होती है और उत्पाद्या शास्त्र, लोकानुभव और संगत आदि से प्राप्त हो सकती है। इसमें संदेह नहीं कि सहजा और उत्पाद्या इन दोनों ही काव्य प्रतिभाओं में अंतर किया जा सकता है। सहजा प्रतिभा अधिक क्षमताशाली, स्वत: स्फूर्त और अजस्र सर्जनाशक्ति है, जबकि इसकी तुलना में उत्पाद्या प्रतिभा कम बलशाली, अविशिष्ट, प्रेरणास्फूर्त और कभी-कभी जागृत सर्जना शक्ति है। दोनों में अंतर होते हुए भी यह विचारणीय है कि क्या जन्मजात या सहजा प्रतिभा के न होने पर भी उसे सत्संग या प्रयत्न आदि से प्राप्त किया जा सकता है? इस संबंध में दो मत मिलते हैं, एक तो यह कि उत्पाद्या प्रतिभा के रूप में जो शक्ति काम करती है वह वास्तव में सुषुप्त, किंतु सहजा प्रतिभा शक्ति ही है और दूसरा मत यह है कि जन्म से अथवा संस्कार से प्रतिभा न होते हुए भी वह प्रयत्न द्वारा अर्जित की जा सकती है।

यह बात भी अस्वीकार नहीं की जा सकती कि जिनकी प्रतिभा जन्मजात रूप में प्रकट होती है और बाद में सत्संग, अभ्यास और प्रयत्न द्वारा प्रकट होती है, उसमें पूर्ववर्ती प्रतिभा के क्षीण बीज विद्यमान रह सकते हैं। यह संभव है कि प्रतिभा मूलत: ऐसे व्यक्तियों में रही हो, परंतु उपयुक्त अवसर के अभाव में उसका प्रस्फुटन तभी हुआ हो, जब अन्य साधन प्राप्त हुए हों। ऐसी दशा में आचार्य दंडी का यह कथन है कि–

न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबंधि प्रतिभानमद्‌भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन न वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥

साधना के परिणामस्वरूप वाणी जिन पर कृपा करती है, उनके भीतर प्रतिभा का कुछ न कुछ तत्व पहले भी विद्यमान रह सकता है और जिनमें यह जन्मजात प्रतिभा का बीज प्रबल है उनमें काव्य का स्वत: स्फुरण होने लगता है, परंतु जिनमें वह क्षीण है उनमें वह अध्ययन, अभ्यास और सत्संग से उपयुक्त अवसर आने पर प्रकट होता है। इस प्रकार जिनमें बाद में कवि प्रतिभा प्रस्फुटित हुई, उनमें प्रतिभा का बीज क्षीण था। इसी स्थिति में प्रतिभा के लिए साधना का महत्व स्वीकार किया जा सकता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि जहां जन्मजात प्रतिभा नहीं दिखलाई देती, वहां वह अभ्यास और प्रयत्न से प्रकट की जा सकती है और जो साधन इस प्रतिभा के प्रकट होने में सहायक होते हैं, वे व्युत्पत्ति और अभ्यास माने गए हैं। व्युत्पत्ति का तात्पर्य लोक और शास्त्र का ज्ञान और अभ्यास का तात्पर्य कवि कर्म में अनवरत संलग्न रहना है। इन दोनों साधनों से कम बलवती प्रतिभा भी काव्य-रचना के कार्य में संलग्न रहती है और उत्तम काव्य-सृष्टि

टिप्पणी

कर सकती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि थोड़ी बहुत प्रतिभा के विद्यमान होने पर भी कवि आलसी या लापरवाह है, तो उसकी प्रतिभा का कोई परिणाम नहीं होता और वह व्यर्थ जाती है। अतएव इन साधनों से प्रतिभा-तत्व का अंकुरण और पल्लवन समुचित रीति से हो जाता है, इनमें संदेह नहीं। इसीलिए संस्कृत के आचार्यों ने प्रतिभा को काव्य का निमित्त कारण और संत्संग, अभ्यास और व्युत्पत्ति आदि को उपादान कारण माना है। आचार्य वामन ने काव्य का मूल कारण प्रतिभा को ही स्वीकार किया है। आचार्य जयदेव ने भी इस संबंध में लिखा है कि प्रतिभा काव्य का बीज है और व्युत्पत्ति आदि मिट्टी के समान है और अभ्यास पानी के समान। जिस प्रकार बीज के अंकुरण और विकास के लिए पानी की आवश्यकता है, उसी प्रकार प्रतिभा के विकास के लिए व्युत्पत्ति और अभ्यास की आवश्यकता है। इसी प्रकार का मत हेमचंद्र का भी है कि प्रतिभा काव्य का मूल कारण है और व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्य के कारण नहीं वरन् संस्कार हैं। इनके द्वारा काव्य संबंधी प्रतिभा, परिष्कृत और विकसित होती है। हिंदी काव्यशास्त्री डॉ. नगेंद्र मानते हैं कि कवि अपनी प्रतिभा, निपुणता तथा अभ्यास के बल पर काव्य रचना करता है।

उपर्युक्त मतों से यही बात स्पष्ट होती है कि काव्य का मूल कारण प्रतिभा है और किसी-किसी रूप में उसके होने पर ही व्यक्ति काव्य की रचना कर सकता है, परंतु इस प्रसंग में एक और बात विचारणीय है। वह यह है कि क्या जन्मजात काव्य-प्रतिभा न होने पर भी प्रतिभा के संस्कार डाले जा सकते हैं। इस दृष्टिकोण के संबंध में प्रसिद्ध इटैलियन सौंदर्यशास्त्री क्रोचे का मत विचारणीय है, जो यह कहता है कि प्रत्येक मनुष्य जन्मजात कवि होता है। कोई बड़ा और कोई छोटा। प्रतिभा की बात उसकी दृष्टि से एक प्रकार का अंधविश्वास या रूढ़ि है, जो मनुष्य में काव्य-रचना की शक्ति के परिणाम में अंतर होने के कारण उत्पन्न हो गई है। क्रोचे का कथन निस्सार नहीं है। प्रत्येक मनुष्य में जिस प्रकार से बुद्धि, अनुभूति कल्पना-शक्ति होती है, परंतु प्रत्येक में उनका व्यवहार समान रीति से नहीं होता, उसी प्रकार यह सोचा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति में किसी-किसी रूप में काव्य-प्रतिभा होती है, यह काव्य-प्रतिभा समय पाकर प्रस्फुटित होती रहती है और उसका विकास भी होता रहता है।

परिस्थितियों और प्रयत्नों के कारण जिनकी प्रतिभा जितनी ही स्वच्छ होती है, वे उतना ही उत्तम काव्य कर सकते हैं, क्योंकि प्रतिभा का विकास परिस्थितियों एवं प्रयत्नों के कारण नियंत्रित रहता है। भगीरथ मिश्र कहते हैं–इस संबंध में जो स्थिति अन्य मानसिक शक्तियों की है, वही स्थिति प्रतिभा के संबंध में कही जा सकती है। जिस प्रकार हम प्रयत्न से अनुकूल परिस्थितियां पाकर अपनी अन्य मानसिक शक्तियां बढ़ा सकते हैं, उसी प्रकार प्रतिभा को भी विकसित कर सकते हैं। मानव-मस्तिष्क एक खेत के समान है जिस प्रकार खेत में बीज बोने पर वे अंकुरित होते हैं उसी प्रकार मानव अंत:करण में भी विभिन्न प्रकार के संस्कार डाले जा सकते हैं और काव्य-रचना के संस्कार भी उसके भीतर पड़ सकते हैं। जिसे हम काव्य-प्रतिभा कहते हैं, वह संवेदन-चेतना, कल्पना और भाषागत क्षमता का समन्वित रूप है। जहां ये तीनों ही एक साथ मिल जाती हैं, वहीं काव्य रचना कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है। ऐसी दशा में स्वस्थ शरीर और मन वाले किसी भी व्यक्ति के भीतर काव्य-रचना के बीज अंकुरित होते हैं और हो सकते हैं।

टिप्पणी

काव्य-रचना के प्रसंग में एक और पक्ष विचारणीय है, वह है प्रेरक परिस्थितियों का। इनके अंतर्गत मनुष्य की वैयक्तिक रुचि और आकांक्षा, उसकी सामाजिक और पारिवारिक स्थितियां तथा आत्माभिव्यक्ति महत्वपूर्ण है। इन प्रेरक परिस्थितियों के सम्यक रूप से सक्रिय हो जाने पर काव्य-रचना के लिए बहुत बड़ी भूमिका तैयार हो जाती है।

संस्कृत और हिंदी साहित्य इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार काव्य का उत्कृष्ट विकास उन प्रेरक परिस्थितियों के कारण हुआ। महर्षि वाल्मीकि को क्रौंच-वध ने व्याकुल कर उनके अंतर्गत शोक के भाव-समुद्र को इतना आंदोलित कर दिया कि वह राम की आदिम गाथा रामायण के रूप में प्रकट हुई। संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास के संबंध में भी यह बात पूर्णतया सत्य है कि उनकी पत्नी के तीन प्रेरक शब्दों (अस्ति, कश्चित्, वाग्विशेष:) ने ही उन्हें तीन महान ग्रंथों की सृष्टि की प्रेरणा दी।

हिंदी साहित्य में चंद, विद्यापति, भूषण और बिहारी जैसे कवियों को उनके आश्रयदाता और नायकों के व्यक्तित्व ने जो प्रेरणा दी, उसी के परिणामस्वरूप इनकी कृतियों का निर्माण हुआ। गोस्वामी तुलसीदास, नंददास और घनानंद को भी प्रेरित करने वाले कतिपय विशिष्ट व्यक्तित्व ही थे। आधुनिक काल में भी भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, निराला आदि को काव्य की प्रेरणा देने में समकालीन देश और समाज की परिस्थितियों का अत्यंत प्रभाव है।

अत: कहा जा सकता है कि प्रतिभा अर्थात काव्य रचना की क्षमता विकसित की जा सकती है और उसको विकसित करने में प्रेरक परिस्थितियां, लोकशास्त्र ज्ञान तथा अभ्यास महत्वपूर्ण होते हैं। यदि हम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमारे मनस्तत्व के अंतर्गत सभी प्रकार की प्रवृत्तियों और क्षमताओं के संस्कार विद्यमान रहते हैं। साधनों और परिस्थितियों के प्रभाव से इन संस्कारों में से कोई भी संस्कार प्रबल होकर क्रियाशील हो जाता है और परिणामस्वरूप किसी प्रकार के कार्य का सूत्रपात होता है। प्रतिभा के विश्लेषण के प्रसंग में हमने देखा है कि वह कल्पना-शक्ति, संवेद्यता और अभिव्यक्ति-क्षमता संबंधी अतिशय जागरूकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ये सभी शक्तियां और क्षमताएं किसी-किसी मात्रा में सभी के मस्तिष्क में विद्यमान रहती हैं। प्राय: इनका विकास प्रकृति अर्थात स्वभाव पर अवलंबित रहता है। जिस व्यक्ति की परिस्थितियां प्रेरक हुईं और समुचित साधन भी प्राप्त हुए, साथ-साथ जो आत्मज्ञान से भी अपनी क्षमताओं के विकास संबंधी चेतना से संपन्न हुआ, वह काव्य की रचना अवश्य कर सकता है। क्रोचे के मत को इस अंश में मानना अनुचित न होगा कि काव्य-रचना के तात्विक संस्कार प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान होते हैं, इसलिए जन्म से प्रत्येक व्यक्ति कवि है। उसकी काव्य-प्रतिभा को विकास की प्रेरणा देने वाली व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियों पर ही यह निर्भर करता है कि वह बड़ा कवि होगा कि साधारण। यदि परिस्थितियों के कारण उसके मानसिक संस्कारों की स्वच्छता और स्वस्थता बनी रहती है, तो वह किसी न किसी रूप में कवि कर्म करता रह सकता है।

काव्य-रचना के प्रसंग में प्रतिभा के साथ-साथ साधना का भी महत्वपूर्ण हाथ है। प्रतिभा का विकास साधना द्वारा होता है। जागृत प्रतिभा या काव्य के संस्कार अनवरत साधना से भली-भांति प्रस्फुटित होते हैं। इसके साथ ही साथ काव्य-प्रतिभा के सुप्त संस्कार भी

टिप्पणी

साधना द्वारा प्रबुद्ध होते हैं और काव्य-रचना संभव हो सकती है। साधना के लिए प्रेरक परिस्थितियों के साथ-साथ वैयक्तिक संकल्प और निष्ठा की बड़ी आवश्यकता होती है और यदि साधना के लिए दोनों ही बातें प्राप्त हो गईं, तो काव्य-प्रतिभा का समुचित विकास अवश्य होता है।

प्रतिभा एक प्रकार की मानसिक क्षमता है और उस क्षमता का, उपयोग के बाद क्षीण होना भी स्वाभाविक है। ऐसी प्रेरक परिस्थितियां कवि के जीवन में नहीं रह पातीं जिनसे वह जीवन भर उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि करता रहे। तीसरा कारण यह भी है कि बहुत से कवि काव्यगत प्रसिद्धि प्राप्त हो जाने के उपरांत स्वत: स्फूर्त रूप में नहीं, वरन किसी के कहने या अन्य बाहरी दबावों के वश कविता लिखते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कविता लिखने का निर्णय बौद्धिक आग्रह से होता है और उसी आग्रह या आवश्यकतावश कविता की रचना की जाती है। ऐसी दशा में सहज और उत्कृष्ट काव्य-रचना की आशा नहीं की जा सकती। आवश्यक यह है कि काव्य का रचयिता सच्चा और निष्ठावान हो और वह अपनी काव्य-क्षमता का उपयोग तभी करे, जब उसके अंत:करण में रचना की वास्तविक प्रेरणा जाग्रत हो। ऐसा न होने पर वह अपनी प्रतिभा के प्रति सच्चा नहीं कहा जा सकता। काव्य-प्रतिभा के संबंध में यह बात स्वीकार की जा सकती है कि वह सदैव ही किसी के चाहने पर जाग्रत नहीं होती, उसके इसी स्वभाव के कारण उसे अलौकिक कहा गया है। जिस समय वह जागरूक रहती है उस समय काव्य का सृजन अनायास होता चलता है। जिस समय वह सचेत नहीं है, उस समय उसको बहुत प्रयत्न करके भी, प्रस्फुरित नहीं किया जा सकता। इसलिए हमें स्पष्ट रीति से समझना चाहिए कि काव्य-प्रतिभा का संस्कार होना एक अलग वस्तु है और उस प्रतिभा को जब चाहे तब उपयोग में लाना यह उससे भिन्न वस्तु है। काव्य के संस्कार सभी में थोड़े बहुत विद्यमान रहते हैं, परंतु काव्य-प्रतिभा को हम अपनी या किसी दूसरे की इच्छा या उपयोगिता के वशीभूत होकर सक्रिय नहीं बना सकते।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. काव्य हेतु या कारण कितने प्रकार के होते हैं?
10. भारतीय साहित्य में काव्य हेतुओं में किस तत्व को बहुत आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है?
11. 'प्रत्येक मनुष्य जन्मजात कवि होता है, कोई छोटा तो कोई बड़ा।' किसका कथन है?
12. महर्षि वाल्मिकी को किस घटना ने व्याकुल एवं आंदोलित कर काव्य-रचना को मजबूर कर दिया?

1.6 काव्य के प्रकार

काव्य को शैली एवं स्वरूप दो प्रमुख दृष्टियों से वर्गीकृत किया जा सकता है। जिसका विवरण इस प्रकार है-

1.6.1 शैली की दृष्टि से काव्य भेद

शैली की दृष्टि से काव्य के तीन भेद होते हैं– (1) गद्य (2) पद्य (3) चंपू।

1. **गद्य–** शब्दाचार या व्याकरण के आधार पर की गई रचना को गद्य कहते हैं। इसके अंतर्गत अभिनय नाटक, उपन्यास, कहानी एवं आलोचनाएं इत्यादि आते हैं। पद्य की अपेक्षा गद्यकाव्य में सफलता प्राप्त करना अधिक कठिन होता है। इसीलिए कहा भी है – 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'–अर्थात गद्य काव्य कवियों की निकषं (कसौटी) है।
2. **पद्य–** पिंगलशास्त्र के नियमों से बद्ध रचना को पद्य कहते हैं। आधुनिक कविगण पिंगल के नियमों की उपेक्षा करके एक प्रकार के लयात्मक छंदों (स्वच्छंद छंदों)

टिप्पणी

की रचनाएं करने लगे हैं जिनमें लय का प्रधान्य होता है। हिंदी साहित्य में ऐसी रचनाएं भी पद्य के अंतर्गत समझी जाती हैं। पद्य के अंतर्गत सूक्तियां और कविताएं भी आती हैं, जिनके लक्षण और उदाहरण क्रमश: नीचे दिए गए हैं–

(क) **सूक्ति–** वह चमत्कार उत्पन्न करने वाली युक्ति, जिसमें वर्ण विन्यास की विशेषता से कथन को विशिष्ट ढंग से कहा जाता है, उसे 'सूक्ति' कहते हैं। यथा–

'रात्रिराज! सुकुमारशरीर! क: सहेत तव नाम मयूखान्।
स्पर्शमाप्य सहसैव यदीयम् चन्द्रकांतदृषदोपि गलंति।। *–मंखक*

(ख) **कविता–** जिस उक्ति में ध्वनि या गुणीभूति व्यंग्य की प्रधानाता होती है, उसे 'कविता' कहते हैं।

'आयास: परहिंसा वैतंसिक, सारमेय! तव सार:।
त्वामपसार्य विभाज्य: कुरंग एषोऽधुनैवान्यै:।। *–गोवर्धनाचार्य*

इसके दो भेद हैं–(1) समास और (2) व्यास।

1. **समास**–जहां किसी विस्तृत बात का वर्णन घटाकर अत्यंत थोड़े में किया जाता है, वहां समास कविता होती है।
2. **व्यास**–जहां किसी थोड़ी सी बात का वर्णन अत्यंत बढ़ा-चढ़ा कर किया जाता है वहां व्यास कविता होती है।

3. **चंपू/मिश्रकाव्य**–'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।'

अर्थात ऐसी रचनाएं जो पद्य और गद्य दोनों में लिखी जाती हैं, उन्हें चंपू या मिश्रकाव्य कहते हैं।

1.6.2 स्वरूप की दृष्टि से भेद

स्वरूप की दृष्टि से काव्य के दो भेद हैं–(क) दृश्य और (ख) श्रव्य।

(क) **दृश्य काव्य**–जिस काव्य की रसानुभूति केवल श्रवण या पठन मात्र से नहीं, परंतु अभिनयादि के देखने से होती है, उसे दृश्य काव्य कहते हैं। श्रव्य काव्य का रसास्वादन केवल पठित वर्ग ही कर सकता है, परंतु दृश्य-काव्य का रसास्वादन पठित और अपठित दोनों वर्ग कर सकते हैं। इसलिए इसे भरतमुनि ने पांचवां वेद कहा है–

"न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्य: शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पंचमं सर्ववर्णिकम्।। (नाट्यशास्त्र–प्रथमोध्याय)

दृश्यकाव्य के अंतर्गत रूपक और उपरूपक आते हैं, जिनमें से रूपक के 10 और उपरूपक के 18 भेद होते हैं।

रूपक के 10 भेद

1. **नाटक**–यह शब्द 'नट्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है 'अभिनय करना'। अधिकांश व्यक्ति 'नाटक' को 'रूपक' का पर्यायवाची शब्द समझते

टिप्पणी

हैं, परंतु वास्तव में यह रूपक के 10 भेदों में से एक भेद है। 'रूपक' के 2 अर्थ हैं–'रूप धारण करना' और 'अभिनय करने योग्य वस्तु'। यदि हम रूपक का अर्थ 'रूप धारण करना' लें तब भी वही भाव आता है। जब नायक और नायिका रंगभूमि पर विविध रूपों को धारण कर दर्शकों के मन को मोहते हैं, उसे रूपक कहते हैं।

2. **प्रकरण**–इसकी कथा लौकिक या कवि कल्पित होती है। इसका नायक द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) होता है। नायिका कोई श्रेष्ठकुल कन्या या वेश्या होती है। इसमें शृंगार रस प्रधान होता है। इसका एक भेद मद्यप (जुआरी और शराबी) विट चेटादि की चेष्टाओं से परिपूर्ण होता है। अन्य सब बातें नाटक के समान होती हैं।

3. **भाण**–इसकी कथा काल्पनिक होती है। इसमें एक ही अंक और एक ही पात्र होता है, वह भी कोई विट होता है। वह रंगमंच पर अपनी या औरों की अनुभूत बातों को कथोपकथन के रूप में स्वयं ही प्रश्न करता और उसका उत्तर देता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसमें केवल धूर्तों का ही चरित्र चित्रण किया जाता है।

4. **प्रहसन**–इसमें हास्य रस की प्रधानता होती है। इसका नायक कोई तपस्वी (झूठा) नपुंसक, कंचुकी या पुरोहित होता है। अन्य सब बातें 'भाण' के समान होती हैं।

5. **डिम**–इसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसमें गंधर्व, यक्ष, सुर, असुर, भूत, प्रेत आदि अत्यंत उद्धत 16 नायक होते हैं। इसमें इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध और भूत प्रेतादिकों की चेष्टाओं का वर्णन ज्यादा से ज्यादा 4 अंकों में किया जाता है। रौद्र रस प्रधान और अन्य रस उसके सहायक होते हैं।

6. **व्यायोग**–इसकी कथा लोक या पुराण प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोद्धत अथवा धीरोदात्त होता है। इसमें एक ही अंक होता है जिसमें वीर रस प्रधान होता है। इसमें स्त्री पात्रों का अभाव व पुरुष पात्रों की बहुलता होती है।

7. **समवकार**–इसकी कथा पुराण प्रसिद्ध होती है, जिसमें सुरासुरान्वित घटनाओं का वर्णन तीन अंकों में किया जाता है। इसमें बारह सुर, असुर आदि नायक होते हैं तथा वीर रस प्रधान रहता है। अन्य सब रस उसके सहायक होते हैं।

8. **वीथी**–इसमें शृंगार रस की प्रधानता रहती है। शेष सब बातें 'भाण' के ही समान होती हैं।

9. **ईहामृग**– इसकी कथावस्तु कुछ काल्पनिक और कुछ इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोद्धत, मनुष्य या दिव्य (देवता) होता है। इसमें एक ही अंक होता है।

टिप्पणी

10. **अंक**–इसकी कथा लोक प्रसिद्ध होती है और नायक कोई साधारण व्यक्ति होता है। इसमें भी एक ही अंक होती है जिसमें स्त्रियों के करुण रुदन की अधिकता होने से करुण रस प्रधान होता है।

उपरूपक के 18 भेद होते हैं

1. **नाटिका**–इसकी कथा लोक प्रसिद्ध होती है, नायक धीरललित कोई राजा, और नायिका राजवंश की कोई संगीतज्ञा कन्या होती है। इसमें चार अंक होते हैं, जिसमें कि अधिकांश पात्र स्त्रियां होती हैं।

2. **त्रोटक**–इसमें पांच से लेकर आठ या नौ तक अंक होते हैं और प्रत्येक अंक में विदूषक (नकलची) का कार्य होता है।शृंगार रस प्रधान होता है।

3. **गोष्ठी**–इसमें एक अंक होता है, जिसमें चार-पांच स्त्री पात्र और आठ-दस पुरुष पात्रों का कार्य वर्णित होता है। संभोग शृंगार रस की प्रधानता होती है।

4. **सट्टक**–इसके अंकों को 'जनबिका' कहते हैं, जिसमें अद्‌भुत रस की प्रधानता होती है। अन्य सब बातें 'नाटिका' के सदृश होती हैं। विशेष–यह केवल प्राकृत भाषा में ही लिखा जाता है।

5. **नाट्यरासक**–इसमें एक ही अंक होता है, जिसमें शृंगार मिश्रित हास्य रस की प्रधानता रहती है। इसका उपनायक नर्म सचिव या पीठमर्द होता है और नायिका वासकसज्जा (विविध शृंगारों से अलंकृत होकर पतिदेवता की प्रतीक्षा करने वाली) होती है।

6. **प्रस्थानक**–इसमें दो अंक होते हैं, नायक दास, उपनायक बलहीन व्यक्ति और नायिका दासी होती है।

7. **उल्लाप्य**–इसमें तीन अंक होते हैं, कथा अलौकिक, नायक धीरोदात्त तथा शृंगार, हास्य और करुण रस की प्रधानता रहती है।

8. **काव्य**–इसमें एक अंक होता है, जिसमें संगीत और हास्य रस की प्रचुरता रहती है।

9. **रासक**–इसमें एक अंक होता है, पांच पात्र होते हैं, पर सूत्रधार नहीं होता। नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। इसमें उदात्त भाव उत्तरोत्तर प्रदर्शित किया जाता है।

10. **प्रेक्षण**–इसमें एक अंक होता है, नायक बलहीन होता है और सूत्रधार नहीं होता। नान्दी तथा प्ररोचना नेपथ्य (पर्दे के पीछे से) से पढ़ी जाती है।

11. **संलापक**–इसमें चार अंक होते हैं और नायक धूर्त होता है। इसमें संग्रामादि का विशद वर्णन रहता है।

12. **श्रीगदित**–इसमें एक अंक होता है। नायक धीरोदात्त और नायिका लोक प्रसिद्ध होती है।

टिप्पणी

13. **शिल्पक**–इसमें चार अंक होते हैं और नायक ब्राह्मण होता है। इसमें श्मशान, प्रेतादि का वर्णन रहता है, जिसमें शांत और हास्य रस को छोड़कर शेष सब रस हो सकते हैं।
14. **विलासिका**–इसमें एक ही अंक होता है। नायक कोई विदूषक, विट या गुणहीन व्यक्ति होता है।शृंगार या हास्य रस का प्राधान्य रहता है।
15. **दुर्मल्लिका**–इसमें चार अंक होते हैं। पहले अंक में विट की क्रीड़ा, दूसरे में विदूषक का विलास, तीसरे में पीठमर्द या नर्मसचिव का विलास और चौथे में नागरिकों की क्रीड़ा रहती है। इन चारों अंकों का प्रदर्शन क्रमशः 6, 10, 12 और 20 घड़ी (1 घड़ी–24 मिनट) का रहता है।
16. **प्रकरणिका**–इसका नायक व्यापारी होता है और नायिका इसकी सजातीया होती है। इसकी कथा लोक प्रसिद्ध अथवा काल्पनिक होती है। इसमें शृंगार रस प्रधान होता है और नायक धर्म, अर्थ और काम में परायण धीर होता है। इसमें पांच अंक होते हैं।
17. **हल्लीश**–इसमें एक अंक होता है। पांच या छः स्त्री पात्र होते हैं और एक उदात्त नायक होता है। इसमें संगीत की अधिकता रहती है।
18. **भाणिका**–इसमें भी एक ही अंक होता है। नायक मूर्ख, नायिका उदात्त होती है।

(ख) **श्रव्य काव्य**–जिस काव्य का आनंद श्रवण करने या पठन करने से प्राप्त होता है, उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। इसके दो भेद हैं–(अ) प्रबंध काव्य और (आ) मुक्तक काव्य।

(अ) **प्रबंध काव्य**–जिस काव्य की रचना प्राचीन कथा वस्तु के आधार पर की जाती है उसे प्रबंध काव्य कहते हैं। इसका प्रत्येक छंद एक दूसरे से शृंखलित अथवा जुड़ा हुआ होता है। जैसे–मैथिलीशरण गुप्त लिखित–जयद्रथ- वध। इसके दो भेद हैं–(1) महाकाव्य और (2) खंड काव्य।

(1) **महाकाव्य**–प्रबंध काव्य के दो भेद हैं–महाकाव्य और खंडकाव्य। महाकाव्य बड़ा काव्य होता है। इसमें जीवन के अनेक रूपों की अभिव्यक्ति होती है। घटनाओं का बहुविध विस्तार होता है। यह बड़े महत्व की रचना होती है, जैसे नाटक के तीन प्रमुख तत्व होते हैं वैसे ही महाकाव्य के माने गए हैं और वे हैं–1. वस्तु, 2. नेता, 3. रस। आचार्यों ने महाकाव्य के अनेक लक्षण बताए हैं। इनमें सबसे विस्तारपूर्वक वर्णन आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण नामक ग्रंथ में किया है। उनके अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध रचना होती है। उसमें देवता, श्रेष्ठ वंश का क्षत्रिय नायक होता है। कहीं एक वंश के कुलीन अनेक राजा भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर, शांत में से एक रस मुख्य होता है। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

टिप्पणी

महाकाव्य के विश्वनाथ सम्मत लक्षण इस प्रकार हैं–

1. महाकाव्य एक बड़ा काव्य होता है। वह सर्गबद्ध रचना होती है। उसमें 8 से अधिक सर्ग होते हैं।
2. इसके प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्ग के अंत में छंद भिन्न होता है और उसमें अगले सर्ग की कथा का संकेत होता है।
3. इसका एक नायक होता है। वह देवता या श्रेष्ठ वंश का क्षत्रिय होता है जिसमें प्रायः धीरोदात्त आदि गुण होते हैं। कहीं-कहीं एक वंश के तत्कुलीन अनेक राजा भी नायक होते हैं, जैसे–कालिदास के रघुवंश में हैं।
4. महाकाव्य में शृंगार, वीर और शांत रस में से एक रस अंगी होता है, शेष रस गौण होते हैं।
5. महाकाव्य में नाटक की सभी संधियां भी होती हैं, जैसे–मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अविमर्श, निर्वहण।
6. इसकी कथा लोकप्रसिद्ध सज्जन संबंधी या ऐतिहासिक कथा होनी चाहिए।
7. महाकाव्य की फल प्राप्ति में धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन होना चाहिए।
8. महाकाव्य के आरंभ में मंगलाचरण होना चाहिए जो नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक और वस्तु निर्देशात्मक हो सकता है।
9. इसमें सज्जनों की प्रशंसा और खलों की निंदा का भी वर्णन होना चाहिए, जैसे– तुलसीदास के रामचरितमानस में।
10. महाकाव्य में विस्तार होता है। उसमें विभिन्न वर्णन होते हैं। जैसे–संध्या, सूर्योदय व अस्त, चंद्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, वन, समुद्र, संग्राम, यात्रा, विवाह, संयोग, वियोग, मृगया, ऋतुएं आदि।
11. महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम से या नायक के नाम से या चरित्र के नाम से किया जाता है।
12. सर्ग की वर्णनीय कथा के आधार पर सर्ग का नामकरण होता है।

महाकाव्यों की परंपरा संस्कृत साहित्य से देखने में आती है। वाल्मीकि रामायण और महाभारत भी संस्कृत के महाकाव्य माने जाते हैं। प्रायः कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव, भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध श्रेष्ठ महाकाव्य माने गए हैं। हिंदी में चंदवरदाई का पृथ्वीराज रासो, जायसी का पद्मावत, तुलसी का रामचरितमानस, केशव की रामचंद्रिका, मैथिलीशरण गुप्त का साकेत, जयशंकर प्रसाद की कामायनी, हरिऔध का प्रिय-प्रवास श्रेष्ठ महाकाव्य हैं।

टिप्पणी

महाप्रबंध को हम चार कोटियों में रख सकते हैं–(1) पुराण, (2) आख्यान, (3) चरित, (4) निबद्ध काव्य।

इनमें पुराण, प्रागैतिहासिक घटनाओं का विभिन्न युगों और कल्पों के क्रम में किसी विशेष उद्देश्य के प्रतिपादन अथवा शिक्षा के प्रचार के लिए अनेक चमत्कारी घटनाओं से युक्त चित्रण करने वाला विशालकाय महाप्रबंध होता है। पुराण का विशेष विकास संस्कृत साहित्य में हुआ और हिंदी में भी उनके आधार पर स्वतंत्र रूप में अथवा अनुवाद के रूप में पुराणों की रचना हुई। पुराण काव्य की मुख्य विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं–

1. इसमें ईश्वर के एक या अनेक अवतारों का तथा अवतारी पुरुषों, महात्माओं और संबद्ध ऋषि-मुनियों की कथाओं का इस प्रकार वर्णन होता है जिससे ईश्वरीय सत्ता के ऐश्वर्य का प्रतिपादन हो।
2. इसके अंतर्गत सत्य अथवा ईश्वर-भक्ति की महिमा सिद्ध करने के लिए सज्जनों और सद्वृत्तियों की विजय तथा दुर्जनों और दुर्वृत्तियों की पराजय के द्वारा समाज में सद्गुणों की प्रतिष्ठा की जाती है।
3. पुराण की कथा में सृष्टि के प्रारंभ, विकास और प्रलय का वर्णन होता है और कथा का सूत्र युग-युगांतर व्यापी रहता है।
4. पुराण अनेक स्कंधों में विभाजित होते हैं, जिसके एक-एक स्कंध में अनेक अध्याय होते हैं।
5. पुराण में प्रायः किसी शंका या प्रश्न को उठाकर शंका-निवारण या प्रश्न के उत्तर स्वरूप विभिन्न आख्यानों का विकास होता है, जिनके द्वारा किसी सिद्धांत का प्रतिपादन और दैवीय ऐश्वर्य की महत्ता सिद्ध की जाती है।
6. इसमें विभिन्न कल्पों, मन्वंतरों और युगों में उत्पन्न हुए राजाओं ओर उनके देशों का विस्तार से वर्णन रहता है।
7. पुराण में प्रायः प्रत्येक अध्याय के अंत में पुराण के माहात्म्य का अनुकथन रहता है।
8. पुराण के बीच में वर्णन के साथ-साथ वार्तालाप भी रहता है और इस प्रकार भावुकता और विस्तार के साथ विभिन्न शंकाओं का समाधान करते हुए अनेक अलौकिक और आश्चर्यजनक कृत्यों के वर्णन द्वारा जीवन की उपयोगी शिक्षाओं को प्रस्तुत करते हुए पुराण की रोचक रचना की जाती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पुराण इतिहास और काव्य का मिश्रित, किंतु अत्यंत विस्तृत स्वरूप है, जिसका मुख्य उद्देश्य किसी सिद्धांत का प्रतिपादन या महिमा का स्पष्टीकरण होता है।

टिप्पणी

आख्यान– आख्यान भी एक विस्तृत प्रबंध काव्य होता है। इसका कथानक प्रायः काल्पनिक या मिश्रित रहता है। उस कथानक के नायक से संबंधित जीवन वृत्त और घटनाओं का अत्यंत रोचक और चमत्कारी ढंग से इसमें वर्णन किया जाता है। यद्यपि यह पुराण सा विस्तृत नहीं रहता, लेकिन प्रधान कथानक के साथ कुछ गौण कथाओं का संघटन रहता है। इसे प्रामाणिक बनाने के लिए कभी-कभी ऐतिहासिक स्थानों और चरित्रों का भी समावेश किया जाता है। इन आख्यानों का उद्देश्य कोई शिक्षा देना रहता है। इनके अंतर्गत प्रेम, नीति, भक्ति आदि का प्रतिपादन रहता है और इन्हीं के आधार पर आख्यान के प्रमुख भेद, प्रेमाख्यान, नीत्याख्यान, साहसिक आख्यान आदि रहते हैं। हिंदी में लिखे गए इस कोटि में पद्मावत, मृगावती, मधुमालती, इंद्रावती, नलोपाख्यान, ढोला मारू– रा-दूहा, छिताईवार्ता ग्रंथ आते हैं।

चरित काव्य– चरित काव्य भी वर्णनात्मक प्रबंध काव्य है, जिसके अंतर्गत किसी महापुरुष या वीर व्यक्ति की वीरता और साहस से युक्त घटनाओं का वर्णन करते हुए चरित लिखा जाता है और चरित काव्य इतिहास-सम्मत और तथ्यात्मक होता है। हिंदी के चरित काव्य इस दृष्टि से संस्कृत से भिन्न हैं– इनमें कुछ चरित आत्मकथात्मक होते हैं, कुछ में कवित्वपूर्ण रोचक वर्णन होते हैं और कुछ में इतिवृत्तात्मक वर्णन। प्रबंध की इस कोटि में हिंदी के कई काव्य आते हैं, जैसे–

(अ) वीरसिंहदेव चरित, जहांगीर जसचंद्रिका, रतनबावनी, सुजान चरित, छत्र प्रकाश, हमीर रासो आदि।

(आ) संतो की परिचयियां, और

(इ) बनारसीदास जैन कृत अर्थकथानक आदि।

इनमें प्रथम कोटि के वर्णन प्रधान चरित काव्य हैं, जो राजाओं और वीरों का जीवन प्रस्तुत करते हैं। तृतीय कोटि में आत्मचरित हैं। चरित काव्य के ये रूप हिंदी के पूर्ववर्ती साहित्य में ही मिलते हैं। आधुनिक साहित्य में इनका गद्यात्मक रूप ही रह गया है, काव्यात्मक रूप नहीं।

निबद्ध काव्य– निबद्ध काव्य वे कृतियां हैं, जिनमें कथा की सूत्रता न होकर किसी भाव या विचार की सूत्रता रहती है। एक प्रकार से ये पद्यात्मक निंबध है। इन निबंध काव्यों में किसी एक भाव या विचार का सशक्त शैली में प्रतिपादन किया जाता है। इनमें वैयक्तिक अनुभव, विचार और भाव की विशेष रूप से अभिव्यक्ति की जाती है। इसके उदाहरण में प्रतापनारायण मिश्र का 'बुढ़ापा', श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुषमा', प्रसाद की 'प्रलय की छाया', 'आंसू', निराला के 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' और 'कुकुरमुत्ता', पंत का 'परिवर्तन' आदि हैं। हिंदी साहित्य में निबद्ध काव्य द्विवेदी और छायावाद युग में विशेष रूप से लिखा गया। इसी के आधार पर देश प्रेम, राष्ट्रीयता,

टिप्पणी

समाज सुधार तथा वैयक्तिक प्रेम और समाज की कुरीतियों संबंधी व्यंग्य लिखे गए। पद्य काव्य की यह विधा भी हिंदी की विशेष देन कही जा सकती है, क्योंकि संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में इसका इस रूप में विकास नहीं हुआ।

(2) **खंड काव्य–** प्रबंध काव्य के दो भेदों में से दूसरा खंड काव्य है। प्रबंध काव्य होने के कारण इसमें कथा चलती है। एक छंद का दूसरे छंद के साथ पूर्वापर संबंध होता है। इसमें भी कथा का सर्गों में विभाजन रहता है। इसके भी प्राय: वे ही प्रमुख तत्व होते हैं जो महाकाव्य के होते हैं। परंतु महाकाव्य से खंड काव्य अनेक मायनों में भिन्न होता है। साहित्य दर्पणकार ने उसका लक्षण बताते हुए कहा है कि काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खंड काव्य होता है। इसका तात्पर्य यह है कि खंड काव्य में किसी एक प्रधान घटना का वर्णन होता है। उसमें जीवन के किसी एक पक्ष को लेकर कथा चलती है। विद्वानों ने खंड काव्य के स्वरूप पर साहित्य दर्पणकार के संकेत से आगे बढ़कर विचार किया है। उनकी दृष्टि में खंड काव्य का स्वरूप एक लघु कथा के रूप में होता है और वह लघु कथा जीवन के विभिन्न पक्षों को न छूती हुई कथा नायक के चरित्र को विकसित करती है। संक्षेप में खंड काव्य में चार बातें मुख्य रूप से होनी चाहिए–

1. खंड काव्य एक लघु कथा काव्य होता है।
2. उसमें जीवन की विविधता नहीं रहती।
3. उसमें घटनाओं की बहुलता नहीं होती।
4. खंड काव्य चरित्र-प्रधान न होकर घटना-प्रधान काव्य होता है।

इस तरह महाकाव्य में जीवन के अनेक अंशों का समूचा चित्र होता है पर खंड काव्य में जीवन के एक ही अंश का चित्रण होता है। महाकाव्य में प्रधान पात्र या घटनाओं का विशिष्ट महत्व होता है परंतु गौण पात्र और सहायक घटनाएं भी अपना मूल्य रखती हैं। खंड काव्य में प्रधान पात्र या घटना का ही महत्व होता है। जैसे तुलसी के 'रामचरितमानस' में राम के जीवन की समग्रता है परंतु मैथिलीशरण गुप्त के 'पंचवटी' काव्य में शूर्पनखा के नाक काटने की एक घटना है। 'रामचरितमानस' महाकाव्य है और 'पंचवटी' खंड काव्य है। हिंदी में बहुत से खंड काव्य लिखे गए हैं। कुछ लोग तुलसीदास के 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल' काव्यों को और नंददास के 'भंवरगीत' को भी खंड काव्य मानते हैं। वस्तुत: नरोत्तम दास का 'सुदामा चरित', मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथवध', 'नहुष' और रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' हिंदी के अच्छे खंड काव्य हैं।

खंड प्रबंध– खंड प्रबंध में कथा का सूत्र रहता है, परंतु महाप्रबंध जैसा विस्तार और वैविध्य उसमें अपेक्षित नहीं है। खंड प्रबंध के लक्षणों और भेद प्रभेदों पर अधिक विचार प्राप्त नहीं होता, परंतु खंड प्रबंध के कुछ भेदों की

टिप्पणी

कल्पना हिंदी काव्यरचनाओं के आधार पर की जा सकती है। खंड प्रबंध का मुख्य भेद खंडकाव्य है। जिस प्रकार महाप्रबंध के अंतर्गत कई भेदों का विवेचन हुआ है और उनमें से कवित्व और शिल्प की दृष्टि से महाकाव्य सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होता है, उसी प्रकार खंड प्रबंधों में खंड काव्य कलात्मक दृष्टि से सुव्यवस्थित ओर सर्वोत्कृष्ट रचना सिद्ध होती है।

खंड काव्य की विशेषताओं का निरूपण हम निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं–

1. खंड काव्य की कथा समग्र जीवन से संबंधित और विस्तृत नहीं होती, वरन् उसका एक खंड मात्र ही होती है।
2. वह कथानक किसी विशिष्ट घटना या प्रसंग के चित्रण से संबंध रखता है और वह प्रसंग ऐसा होना चाहिए कि जो किसी भी रूप में पूर्व ज्ञात हो।
3. उसमें प्राय: एक छंद का प्रयोग होना चाहिए। यदि सर्ग एक से अधिक हैं, तो अनेक छंदों का प्रयोग हो सकता है। इसके बीच में या पूरे प्रबंध में गीत भी रखे जाते हैं।
4. इसमें वर्णन रोचक काव्यपूर्ण और मर्मस्पर्शी होने चाहिए।
5. यथावश्यक अलंकृति और चमत्कृति भी इस काव्य में आवश्यक है। कथावस्तु के आग्रह स्वरूप संवाद भी उसमें रखे जा सकते हैं।
6. इसके अंतर्गत वर्णन की विशिष्टता, चरित्र मिश्रण की मार्मिकता और किन्हीं एक दो रसों का वर्णन हो सकता है।
7. इसकी भाषा शैली प्रसंग के अनुकूल कवित्व पूर्ण होनी चाहिए।

इन खंड काव्यों में अनेक कथाएं नहीं रहतीं। इसलिए कथानक के आधार पर इनके भेद-प्रभेद नहीं किए जा सकते, परंतु सर्गों की संख्या, उद्देश्य और गेयत्व के आधार पर हम इनके भेद-प्रभेदों पर विचार कर सकते हैं। जिस प्रबंध काव्य में एक छंद, एक भाव और उद्देश्य को लेकर रचना की जाए, उसे संघात या एकार्थ खंड काव्य कह सकते हैं। परंतु जिसमें अनेक छंदों में अनेक सर्गों को लेकर एकाधिक भावों और अर्थों का निरूपण हो उसको अनेकार्थ खंड काव्य कहना उपयुक्त होगा। हिंदी साहित्य में पंचवटी, रंग में भंग, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल आदि कृतियां प्रथम कोटि में आती हैं। दूसरे प्रकार की कृतियों में जयद्रथवध, गंगावतरण, कुणाल, उद्धवशतक आदि हैं।

गेयत्व के आधार पर हम दो प्रकार के खंड-काव्य देख सकते हैं, एक वे जो गेय नहीं केवल छंदोबद्ध हैं और द्वितीय जो कि गेय भी हैं और जिन्हें हम गीति काव्य के रूप में देखते हैं। इस दूसरी कोटि में मेघदूत को लिया जा सकता है। हिंदी काव्य के अंतर्गत, जयद्रथवध, नहुष, पथिक, तुलसीदास की रचनाएं आदि दूसरी कोटि में रखे जा सकते हैं। इसी प्रकार कल्पित और ऐतिहासिक कथातत्व के आधार पर भी खंड काव्यों के भेद किए जा सकते हैं।

टिप्पणी

(आ) मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य ऐसे पद्यों का समूह होता है जो पूर्वापर संबंध से मुक्त होते हैं। उसके छंद तक एक-दूसरे से निरपेक्ष होते हैं। आचार्यों ने मुक्तक का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि छंद में लिखे गए काव्य को पद्य कहते हैं। यदि वह मुक्त यानी दूसरे पद्य से निरपेक्ष हो तो उसे मुक्तक कहते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में यों भी कहा गया है कि जो अन्य पद्यों के संबंध से मुक्त हो वह मुक्त कहलाता है–अन्यै: मुक्तम् इति मुक्तकम्। मुक्तक काव्यों के कुछ संग्रह ऐसे भी होते हैं जिनमें हल्का सा कथा सूत्र भी रहता है। सूरदास का 'सूरसागर' और तुलसीदास की 'गीतावली' ऐसी ही रचनाएं हैं, फिर भी उनमें छंद अपने आप में स्वत: पूर्ण और मुक्त हैं। एक छंद दूसरे छंद की अपेक्षा नहीं रखता।

यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पूर्वापर संबंध से निरपेक्ष रहते हुए भी विभिन्न छंदों का कोई संग्रह मुक्तक काव्य नहीं कहला सकता। उसमें काव्य का सार भूत तत्व यानी रस रहना चाहिए। इसलिए आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है कि पूर्वापर निरपेक्ष होते हुए भी जिसके द्वारा रस की अनुभूति कराई जाती हो वही मुक्तक कहलाएगा। पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्तक काव्य को 'स्वानुभूति निरूपक' कहा है। इसमें कवि की सुख, दुख, हर्ष, विषाद आदि की अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कवि दूसरों के जीवन और जगत की बात न कहकर अपने मन की बात कहता है। इसे ही 'विषयीप्रधान' भी कहते हैं इसमें अपने विषय यानी कवि के भावों को प्रधानता दी जाती है। संस्कृत में मुक्तक काव्यों की बड़ी समर्थ रचनाएं देखने में आती हैं। 'अमरूकशतक' मुक्तक काव्य की उच्च कोटि की रचना है।

मुक्तक काव्य परंपरा

मुक्तक काव्य की परंपरा हमें प्राचीन काल से प्राप्त होती है और संस्कृत में अनेक प्रकार का चमत्कार पाया जाता है। व्यापक रूप से मुक्तक अनिबद्ध काव्य है। इसमें किसी कथा या विचारसूत्र के स्थान पर उस छंद या पद्य को समझने की अपेक्षा नहीं रहती। क्योंकि वह अपने में ही परिपूर्ण होता है। संस्कृत साहित्य के आधार पर मुक्तक अनिबद्ध काव्य का एक भेद है। अग्निपुराण में मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। 'मुक्त श्लोक के एवैकश्चमत्कारक्षम: सताम्' अर्थात एक छंद में पूर्ण अर्थ एवं चमत्कार को प्रकट करने वाला अनिबद्ध काव्य मुक्तक कहलाता है। अनिबद्ध काव्य के भी संस्कृत में कुछ भेद मिलते हैं। उनके उल्लेख और नामावली हमें काव्यशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों एवं उनकी टीकाओं के आधार पर प्राप्त होते हैं। इनके नामों में परस्पर भिन्नता भी है। दंडीकृत काव्यादर्श की तर्कवागीश कृत टीका के अनुसार तीन छंदों वाले अनिबद्ध काव्य को गुणवती, चार वाले को प्रभद्रक, पांच के समूह को बाणावली और छ: छंदों वाले काव्य को करहाटक कहा गया है।

टिप्पणी

इससे कुछ भिन्न नाम आचार्य हेमचंद के काव्यानुशासन में मिलते हैं। आठवें परिच्छेद में उन्होंने 'अनिबद्ध मुक्तकम्' सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए यह लिखा है कि एक छंद वाला मुक्तक, दो छंदों वाला संदानितक, तीन छंदों वाला विशेषक, चार छंदों वाला कलापक कहलाता है, परंतु आचार्य विश्वनाथ का मत इससे थोड़ा भिन्न पड़ता है। उनके अनुसार दो छंदों वाला कुलक होता है। इसका उल्लेख उन्होंने अपने ग्रंथ साहित्य दर्पण में किया है। इस प्रकार एक से लेकर छ: छंदों वाले अनिबद्ध काव्य के जिन नामों का उल्लेख संस्कृत साहित्य में मिलता है वे हैं मुक्तक, युग्मक, संदानितक या गुणवती, कलापक या प्रभद्रक, कुलक या बाणावली और करहाटक।

हिंदी काव्य के अंतर्गत मुक्तक के अतिरिक्त अन्य नाम प्रचलित नहीं हुए। मुक्तक कविताओं के ही छोटे-बड़े अनेक प्रकार के संग्रह हिंदी में देखने को मिलते हैं। इन संग्रहों को छंद संख्या के आधार पर पंचक, सप्तक, अष्टक, दशक, बीसी, पचीसी, बत्तीसी, चालीसा, पचासा, बावनी, शतक, सतसई और हजारा नाम दिए गए और हिंदी साहित्य में इनका काफी प्रचलन हुआ। मुक्तक की धारणा हिंदी काव्य के अंतर्गत एक छंद या एक गीत के रूप में ही रही, जिसमें कि कोई चमत्कार या अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति निहित हो। इस प्रकार की मुक्तक रचना कभी-कभी प्रबंध काव्य के बीच भी आ जाती है। इसका व्यवहार हिंदी में ही नहीं हुआ, वरन संस्कृत में भी यह परंपरा मिलती है। इसका संकेत करते हुए अभिनव गुप्त पादाचार्य ने लिखा है, **'मुक्तमन्येनानालिंगितम् तस्य संज्ञापनम्। तेन स्वतंत्रतया परिसमाप्तनिराकांक्षार्थमपि, प्रबंध मध्यवर्ती मुक्तकमित्युच्यते।... पूर्वा परनिरपेक्षेणापि हि येन रस चर्वणा क्रियते तदैव मुक्तकम्।'** इससे स्पष्ट है कि जो स्वतंत्र रूप से आशय को प्रकट करने में सक्षम हो और पूर्ववर्ती या परवर्ती छंद या प्रसंग के बिना जिसमें रसास्वादन कराने की क्षमता हो, वह मुक्तक होता है। यह प्रबंध के मध्य में भी आ सकता है।

मुक्तक काव्य के अनेक भेद हो सकते हैं, जैसे–प्रथम प्रकार का भेद तो पाठ्य और गेय मुक्तकों में और द्वितीय प्रकार का भेद आत्मपरक और वस्तुपरक मुक्तकों के रूप में किया जा सकता है। आत्मपरक गेय मुक्तक ही प्रगीत अथवा गेय या गीतिकाव्य के रूप में हिंदी में प्रचलित है। पाठ्य मुक्तक भी अनेक प्रकार के संग्रहों में मिलते हैं, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिंदी साहित्य के पूर्ववर्ती युगों में मुक्तक रचनाओं के लिए विशेषरूप से प्रयुक्त छंद दोहा, सोरठा, सवैया, छप्पय, कुंडलियां और घनाक्षरी रहे हैं, परंतु आधुनिक युग में अन्य मात्रिक और वार्णिक छंदों का प्रयोग हुआ है। आजकल कुछ मुक्तक उर्दू छंद शैली में भी लिखा जाता है। इन पाठ्य मुक्तकों में भी कुछ वस्तुपरक होते हैं, कुछ भावपरक, जिनके अनेक उदाहरण हमें हिंदी साहित्य में मिलते हैं।

टिप्पणी

मुक्तक काव्यों के दो प्रमुख प्रकार देखने में आते हैं–पाठ्य मुक्तक ओर गेय अथवा प्रगीति।

पाठ्य मुक्तक– मुक्तक काव्यों में से कुछ ऐसे होते हैं जिनमें कवि अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर नीति और उपदेशपरक उक्तियां कहता है। श्रृंगार विषयक, वीरता संबंधी और तरह-तरह की सूक्तियों के छंद भी इसी प्रकार होते हैं। मुख्य बात यह है कि एक ही छंद में चमत्कृत कर देने वाली या रोचक बात होती है। आचार्यों ने माना है कि कुछ कवि ऐसे हुए हैं जिनके द्वारा रचे गए मुक्तकों में प्रबंध काव्य के समान ही रस की अभिव्यक्ति की गई है। इस तरह के मुक्तक काव्यों में भर्तृहरि के तीनों शतक– श्रृंगार शतक', 'नीति शतक', 'वैराग्य शतक' और अमरूक का 'अमरूकशतक' आता है। हिंदी में कबीर के दोहे, रहीम के दोहे, वृंद के दोहे, गिरिधर की कुंडलियां ऐसे ही मुक्तक हैं। इन्हें पाठ्य मुक्तक कहा जाता है। वैसे पाठ्य मुक्तक और गेय मुक्तक की कोई बहुत मजबूत विभाजक रेखा नहीं है। बहुत से पाठ्य मुक्तक भी गेय हो सकते हैं। मुख्य बात यह है कि पाठ्य में विषय प्रधानता अधिक रहती है यानी पाठ्य में कवि अपने मन की बात न कहकर विभिन्न विषयों पर चमत्कारपूर्ण विचित्र बात कहता है। गेय में विषयी- प्रधानता है यानी विषयी (कवि) अपनी अनुभूति की बात कहता है, निजी अनुभूति की बात कहता है।

गेय मुक्तक– गेय या गीति मुक्तक ऐसे मुक्तक होते हैं जिनमें गीति तत्व प्रमुख होता है। कवि की निजी अनुभूति की अभिव्यक्तियां होती हैं। सुख-दुख के आवेश के अंदर से स्वयं फूटते हुए उद्‌गार होते हैं। ये अभिव्यक्तियां मर्म को छूने वाली होती हैं ओर इनमें संगीतात्मकता की प्रधानता रहती है। चित्त को पिघला देने वाले भाव करुण और श्रृंगार के अधिक माने गए हैं, वात्सल्य के भाव भी ऐसे ही हैं। इन सब भावों से संबंधित उद्‌गार अच्छे गीति मुक्तक बन जाते हैं। संक्षिप्तता, भावात्मकता, संगीतात्मकता अनुभूति की तीव्रता, कोमलकांत पदावली – ये गीति मुक्तक की सामान्य विशषताएं हैं। संस्कृत में जयदेव का गीतिगोविंद, गीतिमुक्तक का अच्छा उदाहरण है। विद्यापति की पदावली, कबीर, सूर, मीरा के पद, महादेवी वर्मा के गीत इसी तरह के गेय मुक्तक हैं।

गेय मुक्तक के भेद– गेय मुक्तकों में भी अनेक भेद-प्रभेद हिंदी साहित्य के अंतर्गत विकसित हुए हैं। आम तौर पर हम गेय मुक्तक काव्य को दो भेदों में देख सकते हैं–(1) साहित्यिक या कलागीत और (2) लोकगीत।

1. **कलागीत–** ये गीत साहित्यिक अलंकृत शैली में लिखे गए हैं, जिनमें भावों और विचारों को परिमार्जित, शिष्ट, नागरिक भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। ये भी वस्तुपरक और भावपरक दो प्रकार के हो सकते हैं।
2. **लोकगीत–** ये सहज और स्वाभाविक उद्‌गार के रूप में प्रकट होते हैं। ये हमारे लोक-जीवन में विविध संस्कारों, क्रियाकलापों, उत्सवों, त्यौहारों,

टिप्पणी

ऋतुओं में गाए जाते हैं। प्राय: लोकगीत वे कहे जाते हैं, जिनका लेखक अज्ञात होता है और अनेक जिह्वाओं पर गाते-गाते जो सहज परिष्कार पा चुके होते हैं, परंतु आजकल कुछ प्रसिद्ध कवियों के द्वारा लोकगीत शैली में लिखे गए गीत भी मिलने लगे हैं, जो इस बात के द्योतक हैं कि लोकगीत में कवित्व का नैसर्गिक आकर्षण होता है, इसके अंतर्गत जीवन सहज आशाओं, आकांक्षाओं, हर्ष-विषाद, खीझ, उल्लास आदि के रूप में बहता रहता है। लोकगीत भी दो भेदों में हमें मिलते हैं, जैसे–एक तो भाव-प्रधान, दूसरे वस्तु या वर्णन-प्रधान। भाव-प्रधान या लोकगीतियों के अनेक रूप हमारे ग्रामीण समाज के बीच प्रचलित हैं, जिनके प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं, जैसे–(1) संस्कार गीत, (2)उत्सव त्योहार गीत, (3) ऋतु गीत, (4) धार्मिक गीत, (5) दिनचर्या गीत, (6) विविध। ये लोक गीत न केवल हिंदी काव्य की अमूल्य संपत्ति हैं, वरन् इनका प्रभाव हिंदी के गेय काव्य पर बहुत अधिक पड़ता है।

गीति काव्य या प्रगीत

प्राय: भाव प्रधान गीतों को गीतिकाव्य या प्रगीत की संज्ञा दी जाती है। इस गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. गीतिकाव्य गाने योग्य होना चाहिए।
2. इसके अंतर्गत स्वानुभूति का प्रकाशन होना चाहिए।
3. इसमें सुकुमार भावों की घनीभूत एवं तीव्र अभिव्यक्ति होनी चाहिए।
4. एक गीत में एक ही भाव का प्रकाशन होना चाहिए। हिंदी में गीतिकाव्य भी अनेक भेदों-प्रभेदों में मिलता है, जैसे–प्रणय गीत, वीर गीत, देश गीत, शोक गीत आदि।

गीति काव्य अनुभूति प्रधान काव्य है। इसमें किसी वस्तु या भाव को कवि अपनी अनुभूति में उतार कर प्रकट करता है। गीतियों में कवि की आत्मा, चेतना और संवेदना झांकती है। अनुभूति की तीव्रता में गीत कवि का सहज उद्‌गार है। अतएव स्वानुभूति इस काव्य का प्रमुख तत्व है। जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक हीगेल के मतानुसार काव्य का शुद्ध और प्रकृत रूप गीतिकाव्य ही है। कविता का यह सहज नैसर्गिक और मनोरम रूप है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि गीति भावना कविता की सार वस्तु है।

हिंदी काव्य में प्रगीत और उसके विविध रूप

प्रगीतात्मकता की मनोदशा में कवि अपने व्यक्तित्व के सबसे समीप होता है। इसके अंतर्गत मनोभावना के साथ-साथ ही शैली अर्थात कथन का ढंग भी विशेष महत्वपूर्ण होता है। इस प्रवृत्ति के अंतर्गत कवि संगीतमयी, मधुर रचना के सहारे अपनी निजी अनुभूतियों का प्रकाशन करता है। वह अपने ही व्यक्तित्व का विश्लेषण करता तथा अपने स्मरणीय पक्षों का सजीव चित्रण करता है। उसकी कल्पना या तो अपने ही अभ्यंतर में डूबकर विश्व के सामने, अपनी भावनाओं और अनुभूतियों का भंडार खोलती है अथवा वह आकाश में उड़ कर प्रकृति के बीच विचरण कर, प्रकृति के पदार्थों में आत्मीयता का अनुभव करती है और उन्हीं में छिपी

टिप्पणी

भावनाओं को प्रकट करती है। कवि के सचेतन व्यक्तित्व का अपनी कल्पना पर पूरा और सुदृढ़ अधिकार रहता है और वह प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक घटना को अपनी व्यक्तिगत भावना के रंग से रंगी हुई देखता है। जो कुछ भी वह देखता है, गाता है, वह उसकी हृदय से निकलती हुई, स्वानुभूति से स्पंदित स्वर लहरी होती है। इस प्रवृत्ति में कवि भावों में तन्मय होकर लिखता है, इसी कारण से प्रगीतात्मक काव्य सबसे अधिक प्रभावशाली होता है। कवि अपने दुख-सुख के अनुभवों को सीधे ढंग से अपना कहकर व्यक्त करता है, किंतु वे उसके होते हुए भी सारी मानवता के होते हैं, क्योंकि तीव्र सात्विक अनुभूति की अवस्था में एक सहृदय मानव दूसरे से अधिक भिन्न नहीं होता।

प्रगीतात्मक काव्य में भावानुभूति बहुत प्रबल होती है। इसके अतिरिक्त कवि अपने भाव बहुधा प्रथम पुरुष में अपने ही मुख से सीधे ढंग से व्यक्त करता है, वहां प्रगीतात्मक काव्य में 'प्रखर चेतना' काम करती है। प्रगीत काव्य में हम कवि के साथ सहानुभूति रखते हैं, उसके लिए रोते हैं, उसके प्रति दया करते हैं, परिस्थितियों या भाग्य को कोसते हैं, उससे प्यार करते हैं या उससे घृणा करते हैं। प्रबंध काव्य में कवि, समाज और पात्रों से ऊंचा उठ जाता है, वह उसका विधायक है, निर्माता है, पर प्रगीत काव्य में पाठक और श्रोता कवि से ऊंचे होते हैं।

हिंदी कविता के प्रगीतों के प्रमुख स्वरूपों का हम निम्नलिखित भेदों में अध्ययन कर सकते हैं–विनयगीत, प्रेम गीत और ग्राम गीत।

विनय प्रगीत

इन प्रगीतों के अंतर्गत, आत्म समर्पण, प्रार्थना, याचना, आत्मदीनता आदि की भावना प्रधान रहती है और व्यक्ति स्वयं अपनी बात परमात्मा से निवेदन करता है। परमात्मा की प्रशंसा इन भावनाओं के साथ रहती है और उसमें दयालुता, न्यायप्रियता, उदारता आदि गुणों का विशेष रूप से आरोप किया जाता है। विनय प्रगीतों में कवि सांसारिक संबंधियों को असमर्थ समझ कर परमात्मा से प्रार्थना किया करता है, अतिशुय दुख के कारण और कभी-कभी सफलता द्वारा उत्पन्न हर्ष के आवेश में वह इस भावना से ओत-प्रोत होता है। अतः विनय प्रगीत का मूल कारण मनुष्य की अभावानुभूति है। एक पूर्ण समर्थ शक्ति में कवि का यह विश्वास होता है कि विनय द्वारा वही शक्ति प्रसन्न होकर उसका कल्याण करेगी। इनमें हम प्रायः दो भावनाएं प्रधान देखते हैं–प्रथम आत्म निवेदन की है। इसके अंतर्गत अपने दोषों और पापों का वर्णन करते हुए, आत्मोत्सर्ग का भाव विशेष रूप से रहता है। दूसरी भावना परमात्मा में उनके कृत्य और दया आदि में विश्वास की है।

तुलसी की विनय पत्रिका तो विनयगीतों का भंडार ही है। यही भावनाएं वहां देखने को मिलती हैं–

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौ भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसों।।

प्रेम प्रगीत-आध्यात्मिक

प्रगीतों का दूसरा भेद प्रेम प्रगीतों का है। इनके अंतर्गत आध्यात्मिक प्रेम और भौतिक प्रेम के प्रगीत हैं। आध्यात्मिक प्रेम प्रगीत, विनय गीतों से इस कारण से भिन्न है कि आध्यात्मिक

टिप्पणी

प्रेम प्रगीतों में प्रधान भावना प्रेम की है, जबकि विनय प्रगीतों में प्रधान भावना श्रद्धा, विश्वास और दीनता की है। इनमें परमात्मा के प्रति तीव्र ओर गहरी उमगती प्रेम भावना भरी रहती है।

परमात्मा के साथ जाने का आनंद कबीर नीचे के पद में वर्णित करते हैं–

मैं अपने साहब संग चली।
हाथ में नारियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी।
लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढ़ि के चली।।
नदी किनारे सतगुर भेंटे, तुरत जनम सुधरी।
कहै कबीर सुनो भई साधो, दोउ कुल तारि चली।

प्रेम प्रगीत-2 लौकिक (भौतिक)

प्रेम प्रगीतों में प्रेम की तीखी और व्यापक हिलोर भरी रहती है। इनमें प्रायः कला की उत्कृष्ट कोटि देखने में आती है, क्योंकि प्रेम सबसे प्रबल भाव है और विश्व की उत्कृष्ट कविता का स्रोत है। प्रेमानुभूति और कल्पना कविता की दो शक्तियां हैं।

प्रेम का परिचय नीचे के छंद में देखिए–

अति खीन मृणाल के तारहु ते, देहि ऊपर पांव दे आवनौ है।
सुई बेह के द्वार सकै न जहां, परतीति को टांड़ो लदावनो है।।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु, चढ़ि तापै न चित्त डिगावनो है।
यह प्रेम को पंथ करार है री, तरवारि की धार पै धावनो है।

लोकगीत

प्रगीतों का अति स्वाभाविक रूप लोकगीतों में देखने को मिलता है। ये लोकगीत ग्राम्य मनुष्यों और विशेषकर महिलाओं के द्वारा किसी त्योहार, उत्सव, संस्कार के अवसर पर या नित्यप्रति काम करते समय गाए जाते हैं। इनके भीतर उस अवसर के अनुकूल व्यक्ति की बड़ी तीव्र भावना अंतर्निहित रहती है और स्वानुभूति का स्वर हृदय पर स्थायी चोट करने वाला होता है। इनकी विशेषता अवसर विशेष की व्यापक अनुभूति को वैयक्तिक तीव्रता के साथ वर्णन करने में है। अवध के पास ऋतु, त्योहार, उत्सव, संस्कार आदि के अवसर पर गाए जाने वाले ग्रामीणों का विस्तृत भंडार है, जिसकी विभिन्नता भी कम आकर्षक नहीं।

ग्राम्य-जनों का दैनिक जीवन गीतों से भरा हुआ है। प्रभात के समय जब स्त्रियां चक्की पीसती हैं, उस समय उषाकाल की शांत, शीतल और सुरभित वायु को मधुर स्वर लहरी से भर देती हैं, जो एकरस चलने वाली चक्की की घर्र-घर्र के साथ विषमता ही नहीं पैदा करती अपितु उसे भी माधुर्य और सरसता देती है, वैसे ही जैसे उजाड़ में उगे हुए कुछ हरे-भरे पौधे। सबसे सुंदर समय में गाए जाने और स्त्रियों के कोकिल कंठों की मधुराई से युक्त होने के साथ-साथ ही गीत स्वतः सुंदर कल्पना और गहरे भावों से भरे-पूरे होते हैं। प्रभात के बाद दिन के समय जब गांव के लोग वर्षा के दिनों खेतों में निरौनी करते हैं अथवा किसी पेड़ की डाल पर बैठे गायों को चराते हैं और कोई हल्का काम करते हैं, तब एकाध गीत की लड़ी पास के बगीचों में प्रतिध्वनि करती हुई सुनाई पड़ती है। वर्षा की

टिप्पणी

भिन्न-भिन्न ऋतुओं के लिए अवसर के अनुकूल गीत होते हैं, जैसे हिंडोला, चौमासा, बारहमासा, दीवाली, होली, फाग, घमार और इसी प्रकार से पूजा, बटगमनी, लोरी आदि के गीत हैं। पावस हमारे लिए ग्रीष्म के बाद आनंदमय परिवर्तन उपस्थित करता है। इसीलिए भारतवर्ष में इस समय अचानक गीतों का भी प्रस्फुटन होता है। यह आनंद पशु-पक्षी, कीट-पतंगों तक में देखा जाता है। चारों ओर चहक मचती है, तब मनुष्य का आनंद विभोर होकर गाना तो और भी स्वाभाविक है। इस समय के गीतों में बड़ा आनंद भरा रहता है। हृदय के उच्छवास के समान ही सहज निकले हुए ये गीत होते हैं, इनमें जीवन का उल्लास अथवा निराशा भरी रहती है, अतः इसका बड़ा प्रभाव है। विशेष अवसरों पर गाए जाने वाले ग्रामगीतों में साहिल (सोहर), जनेऊ, बधाई, विवाह आदि के गीत विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से किसी में उल्लास की भावना है और किसी में विषाद की अनुभूति। इन ग्रामगीतों में नीचे लिखी विशेषताएं मिलती हैं–

1. पहली यह कि पूरे गीत में एक ही भाव रहता है।
2. दूसरे, ये व्यक्तिगत अनुभूति के सीधे और सहज प्रकाशन है।
3. इनमें अनुभूति पर प्रभाव डालने वाले, अवसर विशेष के अनुकूल स्वाभाविक और सहज प्रकाशन अपनाया गया है।
4. इनमें केवल वर्णन नहीं, वरन् भावानुभूति की ही प्रधानता रहती है।
5. ये अकेले अथवा समूह के द्वारा, ढोलक, मंजीरा या और बाजों के साथ गाने के लिए रचे गए हैं।
6. अधिकांश शब्दों और पदों की पुनरावृत्ति उन्हें सहज स्मरणीय बनाती है।
7. अपनी विशेष संस्कृति की झलक दिखाते हुए इनमें विश्वव्यापी भावों का चित्रण है।

इन विशेषताओं के साथ ग्रामगीतों के अंतर्गत साहित्य की प्रमुख विशेषताओं, भाव और भाषा, दोनों का सौंदर्य है और इनकी विशेषताएं इन्हें प्रगीत का सौंदर्य प्रदान करती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. शैली की दृष्टि से काव्य के कितने भेद किए जा सकते हैं?
14. भरत मुनि ने पांचवां वेद किसे कहा है?
15. रूपक और उपरूपक किस काव्य के अंतर्गत आते हैं?
16. पद्मावत और ढोला-मारू-रा-दूहा किस प्रकार के काव्य हैं?
17. अमरूकशतक किस प्रकार की काव्य-रचना है?
18. गीतिकाव्य को काव्य का शुद्ध और प्रकृत रूप किस विद्वान ने कहा?

1.7 रस सिद्धांत

रस सिद्धांत काव्यशास्त्र का मूल एवं महत्वपूर्ण सिद्धांत है। काव्यशास्त्रीय अध्ययन की परंपरा का आरंभ इसी सिद्धांत से किया जाता है। यह काव्य की आत्मा है। 'रसो वै सः' रस ही वह है। वह अर्थात् आत्मा, परमात्मा और अलौकिक शक्ति। आत्मा के अस्तित्व पर ही देह का अस्तित्व संभव है। भिन्न रूपों में उपस्थित परमात्मा की तरह यह भी भिन्न-भिन्न काव्यीय रूपों में आस्वादन का अनुभव कराता है।

1.7.1 रस की अवधारणा

प्राचीन काल से 'रस' शब्द का प्रयोग जल, सार, द्रव, स्वाद, धातु, वीर्य, षड्रस, औषधि, पारद, सुरा, शोणित एवं परमात्मा आदि अर्थों में किया जाता रहा है। यहां परमात्मा के अतिरिक्त उपरोक्त सभी प्रयुक्त अर्थों में रस का लौकिक स्वरूप है। परमात्मा अलौकिक है,

टिप्पणी

अनुभवगम्य है अतः रस का यहां प्रयुक्त अर्थ अलौकिक हुआ। इस तरह रस के दो रूप प्राप्त हुए–लौकिक एवं अलौकिक। संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही 'रस' के लौकिक एवं अलौलिक रूपों की चर्चा होती रही है। काव्य में प्रयुक्त रस अलौकिक एवं अनुभवगम्य होता है। इसलिए इसकी तुलना परमात्मा से की गई है। रस पर आधारित काव्यशास्त्रीय चिंतन एक तरह से ब्रह्म से एकात्म होने का प्रयास है इसलिए तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है–**'रसो वै सः'** यानी रस ही वह ब्रह्म है। इसीलिए वह ब्रह्मानंद सहोदर है।

काव्य में प्रयुक्त रसों के प्रतिपादन की परंपरा पर दृष्टि डालें तो ऋग्वेद में इसके बीजों की उपस्थिति का भान होता है। कुछ आचार्य रस परंपरा का आरंभ अथर्ववेद के अभिचार मंत्रों से मानते हैं तो कुछ रामायण, महाभारत से। किंतु ऋग्वेद कहता है–

'यौ वः शिवतमो रसः' यहां जल रूपी रस को शिवतम या आनंदमय बतलाया गया है। वह काव्य रस की आनंदमयता का बीज है। इस तरह रस परंपरा का आरंभ ऋग्वेद से ही माना जा सकता है। शतपथ ब्राह्मण में भी छंद रस या काव्यरस की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। इसमें छंद रस को सभी रसों में सर्वश्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट मानते हुए कहा गया है कि छंदों के सरस होने पर ही इष्टसिद्धि होती है और यज्ञ का विस्तार होता है। काव्य और नाटक के सरस होने का आधार भी सरस छंद ही है। इसमें काव्य रस का स्पष्ट संकेत है–**'छंदसां रसो लोकानप्येष्यतीति तं परस्ताच्छन्दोभिः पर्यगृह्णात् ... पुनः छंदः सु रसाद धात्। सरसैर्हास्य छंदोभिरिष्टिं भवति सरसैश्छंदोभिर्यज्ञं तनुते।'** इसी 'शतपथ ब्राह्मण' में ही–**'यावानु वै रसस्तावानात्मा'** कहकर जितने रस उतनी आत्माओं का उल्लेख करके रस और आत्मा का संबंध बताया गया है। बाद में इसी आधार पर काव्य-रस को आत्मा कहा गया। रस को अपरिमित मानते हुए **'रसो वै सः'** जैसा संकेत प्राप्त हुआ। तैत्तिरीय उपनिषद में स्पष्ट है–'रसो वै सः'। रसं हयेवायं लब्ध्वानन्दी भवित।' परमात्मा रसरूप है एवं आनंद का मूल कारण है। यह रस परंपरा निरंतर अधिकाधिक विस्तार पाती गई। रामायण और महाभारत में अनेक रसों का विधान हुआ।

1.7.2 रस का स्वरूप

रस एक अलौकिक स्थिति है, आत्मानुभूति है, ब्रह्मानंद सहोदर है। काव्य के सृजन, पठन, श्रवण और देखने से सर्जक, दर्शक, पाठक और श्रोता उस भाव-भूमि पर पहुंच जाता है, जहां पर केवल निर्विकल्प, निर्लेप शुद्ध आनंदमयी चेतना का ही साम्राज्य होता है। उस भावभूमि को प्राप्त कर लेने की स्थिति का नाम ही रस है। काव्य सहृदय सामाजिक को या सर्जक को उस भावभूमि पर पहुंचाकर ही सार्थक होता है। यदि वह ऐसा करने में, इस भावदशा तक पहुंचाने में असमर्थ है तो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं। उस शुद्ध, आनंदमयी स्थिति तक पहुंचने के लिए सर्जक एवं सहृदय को भी निर्मल हृदय का अधिकारी होना चाहिए। वह दुर्बल सांसारिक बंधनों की उपेक्षा कर काव्य के पठन, सृजन, श्रवण में डूब जाए तभी उस भाव भूमि तक पहुंच सकता है। अन्यथा मोह-माया के, छल-कपट के व्यापार में रमा हृदय उसे उस आनंदानुभूति से विरक्त या दूर ही रखेगा। प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने इसलिए बार-बार काव्य के साथ 'सहृदय' शब्द का प्रयोग किया है। कुछ आचार्यों जैसे अभिनव गुप्त, मम्मट आदि ने 'स्व' के परित्याग की ओर ध्यान आकर्षित कराया है। यह और बात है कि रस की व्याख्या करते हुए वे इसका निर्वाह नहीं कर पाए। काव्य में निहित भाव एवं कवि अपने

टिप्पणी

विचारों का जिस हृदयग्राही रीति से मर्मस्पर्शी निरूपण करता है वही सहृदय सामाजिक को उस भाव दशा तक ले जाता है। कुछ काव्य की अपनी शक्ति और कुछ सहृदयता पाठक के हृदय की, भावों की स्थिति एवं प्रवृत्ति ही सहृदय को उस आनंद सरोवर तक ले जाती है। जब सहृदय सामाजिक आनंदानुभूति की उस चरम स्थिति में पहुंच जाता है तो उसे उस निर्विकल्प अवस्था में यह ज्ञान ही नहीं रहता कि वह किस रस का अनुभव कर रहा है। श्रृंगार, करुण या वात्सल्य रस का...। उसकी अवस्था ध्यानस्थ योगी जैसी होती है जो आत्म-प्रकाश से प्रकाशमान हो, जिसमें केवल आत्म-स्वरूप सत्ता ही शेष हो। वह केवल हृदय ही हृदय, आत्म ही आत्म होता है शेष बाह्यावरण लुप्त हो जाते हैं। रसमग्न, ध्यानस्थ, आनंदमग्न उस योगी के 'सत् और चित्' स्वरूप भी इस आनंद की छाया में लुप्त हो जाते हैं। धरती, आकाश, जड़-चेतन आदि प्रकृति की सभी चेष्टाएं तिरोहित हो जाती हैं। इसलिए आचार्य विश्वनाथ इस स्थिति के लिए 'सत्वोद्रेक' की बात कहते हैं। इस अवस्था को ही 'रस' का नाम दिया गया है। विभिन्न आचार्यों ने अपनी रुचि, प्रतिभा एवं दृष्टिकोण के आधार पर रस के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। अभिनव गुप्त इसे आनंदमयी चेतना कहते हैं तथा स्थायी भाव से विलक्षण स्वरूप वाला मानते हैं।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रस परंपरा का प्रामाणिक ग्रंथ नाट्यशास्त्र को माना जाता है जिसे पांचवां वेद भी स्वीकार किया गया है। इसके प्रणेता आचार्य भरतमुनि रस की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले प्रथम आचार्य माने गए हैं यद्यपि इनसे पूर्व रस की चर्चा करने के संबंध में आचार्य नंदिकेश्वर एवं उनके ग्रंथ अभिनवदर्पण का उल्लेख किया जाता है किंतु इसके अप्रामाणिक एवं अप्राप्य होने के कारण भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही रस संबंधी प्रथम ग्रंथ ठहरता है। रस के महत्व को रेखांकित करते हुए छठे अध्याय में रस और सातवें अध्याय में विभाव, अनुभाव आदि का विवेचन करते हुए भरतमुनि ने कहा है–

+ नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।
+ विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।
+ एवं भावा रसाश्चैव भावयन्ति परस्परम्।
+ एवमेतेह्यऽलंकारा गुणा दोषाश्च कीर्तिताः। प्रयोगमेषां च पुनर्वक्ष्यामि रससंश्रयम्।

यहां रस को संगीत, अभिनय एवं पाठ्य या वस्तु तत्व, इन तीनों अंगों का नियंता स्वीकार किया गया है। काव्य के सभी तत्व रसों पर आश्रित होते हैं। रस के बिना किसी की किसी में प्रवृत्ति नहीं होती। भरतमुनि कहते हैं कि आस्वादमय होने के कारण ही उसे रस की संज्ञा प्राप्त है, **'आस्वादनात्मानुभवः रसः काव्यार्थ इष्यते।'** रस आस्वादन स्वरूप अनुभव है और वही काव्यार्थ है। जिस प्रकार नाना व्यंजनों एवं औषधि आदि के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है उसी तरह नाना भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है– **"यथा नाना व्यञ्जनौषधि द्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति यथा गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निवर्तन्ते तथा नानाभावोपगता अपि।"** भरतमुनि ने चार प्रधान रस ही स्वीकार किए हैं–श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स रस। पुनःश्रृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुत एवं वीभत्स से भयानक, इस तरह उन्होंने कुल आठ रस स्वीकार किए हैं। नौवां शांत रस बाद में स्वीकृत हुआ किंतु इसमें अभिनय करना संभव नहीं है। **'शममपि केचित् प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।'** कहकर दशरूपककार ने भी इसे नाटक के लिए अस्वीकृत किया। रुद्रट ने काव्यालंकार में 'प्रेयाम्' नामक दसवें रस की चर्चा की गई है तथा साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने वात्सल्य रस को मान्यता प्रदान की है।

टिप्पणी

रौद्रः शान्तः प्रेयानीतिमन्तव्याः रसाः सर्वे।

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।।

रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने **'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** कहकर रस को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। रुद्रट रस को काव्यात्मा मानते हैं तथा राजशेखर ने भी रस को काव्यात्मा मानते हुए काव्यमीमांसा में लिखा है–"रस आत्मा रोमाणि छन्दांसि।" अग्निपुराण में भी ऐसा ही उल्लेख है–**'वाग्वैदग्ध्य रस एवात्र जीवितम्।'** काव्य में रस का महत्व और काव्यात्मा के रूप में रस का स्थान दृढ़ से सुदृढ़ होता गया।

आचार्य भरतमुनि के रस सूत्र–'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' की चार टीकाकारों ने अपने-अपने तरीके से व्याख्या की। भट्ट लोल्लट ने 'निष्पत्ति' शब्द को 'उत्पत्ति' के अर्थ में लेते हुए 'उत्पत्तिवाद' की प्रतिष्ठा की वहीं शंकुक ने रस को अनुमान का विषय बताते हुए 'निष्पत्ति' का अर्थ अनुमिति के रूप में लिया और 'अनुमितिवाद' की स्थापना की। भट्टनायक ने निष्पत्ति शब्द को भुक्ति के अर्थ में तथा संयोग शब्द को भोज्य-भोजक संबंध के रूप में मानते हुए भुक्तिवाद की स्थापना की। ये तीनों वाद स्वीकार्य नहीं हुए। अभिनवगुप्त ने अभिव्यंजना की चर्चा की जो सर्वमान्य हुई। उन्होंने संयोग शब्द को व्यंग्यव्यंजक भाव तथा निष्पत्ति को अभिव्यक्ति या व्यंजना के अर्थ में लिखा। उन्होंने कहा कि प्रत्येक के हृदय में प्रेम, शोक, भय, घृणा आदि वासनाएं स्थायी भाव के रूप में रहती हैं। सभी सहृदयों के हृदय में स्थित सुप्त स्थायी भाव विभावादिकों को ग्रहण करके रसानुभूति से सिक्त हो जाते हैं और आनंद का अनुभव करते हैं। अभिनव गुप्त ने कहा–**"नाट्य-रसाःस्मृताः। सर्वानुग्राहकं हि, शास्त्रमितिन्यायात्तेन नाट्य एव रसा न लोके इत्यर्थः। काव्यं च नाट्यमेवा।"**

रसानुभूति की आवश्यक शर्त है सहृदय होना। जो सहृदय है वह अपनी संवेदनाओं से प्रकृति के जड़-चेतन सभी के सुख-दुख को अनुभव कर सकता है। सरस प्रकृति के भीतर परमात्मा की उपस्थिति को अनुभव कर सकता है, वह रसानुभूति में डूबकर ब्रह्मानंद को प्राप्त कर सकता है। रसानुभूति से पाया हुआ ब्रह्मानंद हृदय को शांति और मुख पर कांति बिखेर देता है। वामन कहते हैं–**दीप्तरसत्वं कांतिः**। मम्मट भी रस के महत्व को स्वीकार करते हैं।

भोज ने श्रृंगारप्रकाश में केवल एक रस श्रृंगार को ही मान्यता दी है। वे कहते हैं-श्रृंगार का रूप अभिमान और अहंकार जैसा ही है। **रसोभिमानोऽहंकारः श्रृंगार इति गीयते।** भानुदत्त मिश्र ने रसतरंगिणीं ओर रसमंजरी में रसों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। माणिक्य चंद्र कहते हैं–**'काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत्।'** अर्थात एक विशेष प्रकार का सुख पैदा करने वाला रस आदि से भरा वाक्य काव्य कहा जाता है। रस काव्य की आत्मा है यह निर्विवाद होता चला गया। काव्य में औचित्य से रसानुभूति होती है जिससे चमत्कार उत्पन्न होता है। अनौचित्य से रसभंग होता है। सिद्धांत चाहे कोई भी हो–औचित्य, चमत्कार, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति सभी के मूल में महत्व रस का ही है। बलदेव उपाध्याय ने नारायण पंडित के

टिप्पणी

विचारों को उद्धृत किया है **"रसो सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते"** अर्थात रस चित्त विस्तार या आनंद का जनक होता है अतः रसानुभूति चमत्क़ार रूपिणी होती है। अभिनवगुप्त ध्वन्यालोक लोचन में रस को चमत्कार की आत्मा कहते हैं। लोचनकार सत्य कहते हैं, रस के बिना चमत्कार संभव नहीं है। विश्वेश्वर पांडेय ने रसचंद्रिका में रसों पर विस्तृत चर्चा की है। रुद्रभट्ट ध्वनिपूर्व रसवादी धारा के अंतिम आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने श्रृंगार रस को रेखांकित करते हुए लिखा है–"यामिनी वेन्दुना युक्ता नारीव रमणं विना। लक्ष्मीरिव कृते त्यागान्नो वाणी भाति नीरसाः।" अभिनगुप्त के गुरु भट्टतौत भी रसवादी धारा के संवर्धन में सहयोगी बने। आचार्य भरतमुनि से पंडितराज जगन्नाथ तक रसवादी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा दृष्टिगोचर होती है। पंडितराज जगन्नाथ लिखते हैं–'एवं पञ्चात्मके ध्वनौ परम रमणीयतया रसध्वनेस्तदात्मा रसस्तावदभिधीयते।' इस रस का एक रूप भक्ति रस के रूप में हमें रूपगोस्वामी की उज्ज्वल नीलमणि में मिलता है। इसमें भक्ति के पांच प्रकार–शांत, हास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य माने गए हैं। ये सभी भाव कृष्ण को समर्पित हैं। माधुर्य भाव को भक्ति रसराट् कहते हैं। रसवादी आचार्यों की भिन्न-भिन्न मान्यताओं के साथ रसवाद पुष्ट और विकसित होता गया।

आचार्य विश्वनाथ के विवेचन में रस का संपूर्ण स्वरूप समाहित हो गया है। आचार्य विश्वनाथ का कथन इस प्रकार है–

सत्वोद्रेक अखण्ड–स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥

उपर्युक्त श्लोकों से रस के स्वरूप निर्धारण में निम्न बिंदु स्पष्ट होते हैं–

1. सहृदय के हृदय में सत्व गुण के उद्रेक के पश्चात रस का स्वरूप स्पष्ट होता है।
2. रस अखंड होता है।
3. रस स्वप्रकाशानंद है।
4. रस चिन्मय होता है।
5. रस वेद्यांतर स्पर्श शून्य है।
6. रस ब्रह्मानंद के समान है।
7. रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है।
8. रस सामाजिक से अभिन्न रूप होता है।

समस्त बिंदुओं को इस प्रकार व्याख्यायित किया जा सकता है–

(1) **सत्वोद्रेक**–सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति त्रिगणात्मक होती है। ये तीन गुण हैं– (1) सत्व गुण, (2) रजोगुण और (3) तमोगुण। सत्व गुण अधिकतर रजोगुण और तमोगुण से आच्छादित रहता है। सत्व गुण ही व्यक्ति को शुद्ध-बुद्ध आत्मा (पुरुष) को पहचानने की क्षमता प्रदान करता है। आत्मा का निर्मल स्वरूप भी सत्व गुण के

टिप्पणी

प्राधान्य में अभिव्यक्त होता है। फलतः आचार्य ने सर्वप्रथम रस के स्वरूप के लिए सामाजिक में सत्वगुण के आविर्भाव को प्रमुखता प्रदान की है। सत्व गुण के उदित होने पर व्यक्ति राग-द्वेष से मुक्त होने लगता है और रसास्वाद के लिए राग-द्वेष से मुक्ति प्राप्त करना पहली अनिवार्य शर्त है।

(2) **रस अखंड है**–विश्वनाथ रस की कोटियां या उसके उच्च, मध्यम या निम्न जैसे स्तर स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार रस आनंदमयी चेतना है। फलतः उसके खंड नहीं किए जा सकते। डॉ. नगेंद्र के अनुसार इसकी व्यख्याएं भी की जा सकती है कि रस स्थिति में विभावादि की पृथक-पृथक अनुभूति नहीं होती, बल्कि उनकी समंजित अनुभूति होती है। वस्तुतः विभावादि तो रस स्थिति उत्पन्न करने के सहायक उपकरण मात्र हैं। अतः रस स्थिति में इनके अुनभव का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अतः स्पष्ट है कि अखंड से तात्पर्य आत्मानुभूति की पूर्णता से है।

(3) **रस स्वप्रकाशानंद है**–विश्वनाथ का स्वप्रकाशानंद से तात्पर्य है–आत्मा का प्राकृतिक मलों से विनिर्मुक्त होना, क्योंकि आत्मा प्रकाशमयी चेतन सत्ता है, किंतु जिस प्रकार मेघाच्छादित सूर्य की आभा मलिन प्रतीत होती है, उसी प्रकार आत्मा के प्रकाश का भी मलाच्छादित होने के कारण सामाजिक अवलोकन या अनुभव नहीं कर पाता। रस-दशा में वे मल तिरोहित हो जाते हैं और उस समय केवल आत्मा अपने मूल रूप में प्रकाशित होने लगती है। आत्मा के प्रकाशमान स्वरूप का ही नाम आनंद है।

(4) **रस चिन्मय होता है**–विश्वनाथ का चिन्मय से तात्पर्य आत्म-स्वरूप से है। रस स्थिति आत्म-स्वरूप स्थिति है। जहां केवल शुद्ध-बुद्ध आत्मा ही व्यक्त रहती है। शेष सभी मलों का तिरोभाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में रस और आत्मा में कोई अंतर नहीं रह जाता। इसीलिए उपनिषत्कारों ने 'रसौ वै सः' कह कर रस की चिन्मयता की घोषणा बहुत पहले ही कर दी है। उस समय जब रस चिन्मय स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब लौकिक ऐंद्रिय मूल या अनुभूतियों के लिए अवकाश नहीं रह जाता।

(5) **वेद्यांतर स्पर्शशून्य**–अन्य सभी प्रकार के ज्ञान का अभाव ही रस स्थिति का भाव है। कहने का तात्पर्य यह है कि रस की स्थिति में प्रमाता में स्व, पर, तटस्थ आदि की अनुभूति का तिरोभाव हो जाता है। अर्थात उस दशा में प्रमाता देशकाल की परिधि को लांघ जाता है और आत्मलीन हो जाता है। उस स्थिति में तन्मयता के अतिरिक्त अन्य समस्त ज्ञान कुछ समय के लिए समाप्त हो जाते हैं। समस्त जड़ चेतन समुदाय ब्रह्ममय दृष्टिगत होने लगता है।

(6) **ब्रह्मानंद सहोदर**–विश्वनाथ ने काव्यानंद या काव्य रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि काव्यास्वाद और ब्रह्मानंद में कोई तात्विक अंतर नहीं है। अंतर केवल अवधि का है। ब्रह्मानंद स्थायी होता है जिसका एक बार आस्वादन कर लिए जाने के पश्चात् वह आस्वाद कभी समाप्त नहीं होता, जबकि काव्यास्वाद अस्थायी होता है क्योंकि काव्यादि की सहायता से मलों का तिरोभाव ही होता है उनका समूल नाश नहीं होता। फलतः काव्योपकरणों के अभाव में मलों का पुनः आविर्भाव हो जाता

टिप्पणी

है और सहृदय पुनः इस लौकिक जगत में प्रवेश कर जाता है। काव्यास्वाद सरल एवं शीघ्राधिगम्य तो होता है, किंतु स्थायी नहीं हो पाता। इसलिए विश्वनाथ ने रस को 'ब्रह्मास्वाद' न कह कर 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा है।

(7) **लोकोत्तर चमत्कार प्राण**–रस में पाया जाने वाला चमत्कार लौकिक न होकर अलौकिक होता है। इसलिए रस को पूर्णतया परिभाषित नहीं किया जा सकता और ब्रह्मानंद सहोदर होने के कारण अनेक आचार्य इसे अनिर्वचनीय भी कह देते हैं। वस्तुतः यहां पर इसीलिए विश्वनाथ ने 'अलौकिक' शब्द का प्रयोग न कर 'लोकोत्तर' शब्द का प्रयोग किया है और संभवतः यहां 'लोक' शब्द से आचार्य का मन्तव्य 'इंद्रिय' से रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रसोद्गत चमत्कार इंद्रिय अनुभव से परे की वस्तु है, क्योंकि लौकिक चमत्कार का अनुभव इंद्रियों द्वारा किया जाता है, किंतु रस चमत्कार के लिए इंद्रियों के प्रवेश का अवसर नहीं रहता। अतः यह एक ऐसा चमत्कार है जो इंद्रियानुभूत नहीं होता। फलतः यह चमत्कार लोकोत्तर है और यही लोकोत्तर चमत्कार रस का प्राणभूत तत्व है।

(8) **स्वाकारवदभिन्नत्व**–रस की स्थिति अपने स्वरूप से अभिन्न रूप में होती है। इसका तात्पर्य यह है कि आस्वाद और रस कोई दो भिन्न-भिन्न तत्व नहीं है, जिस प्रकार आत्मा या परमात्मा के 'सत्, चित् और आनंद' कोई भिन्न तत्व नहीं है। ब्रह्म सच्चिदानंद है और सच्चिदानंद का नाम ही ब्रह्म है। इसी प्रकार रस का नाम ही आस्वाद और आस्वाद ही रस है। अर्थात रस अनुभूति का विषय नहीं है बल्कि अनुभूति ही स्वयं रस है। इस प्रसंग में अनुभूति भी अनुभव करने की कोई वृति नहीं है अपितु अनुभूति ही आत्मा है। अनुभूति का स्वयं प्रकाशमान स्वरूप ही आनंद का पर्याय है। 'आनंद' कोई अनुभव करने का विषय नहीं है, बल्कि आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'हृदय की मुक्तावस्था ही आनंद है और यही रस है।'

परवर्ती आचार्यों में पंडितराज जगन्नाथ ने आनंद की तीन कोटियां मानी हैं–(1) विषयानंद (लौकिक सुख), (2) ब्रह्मानंद और (3) काव्यानंद।

पंडितराज के अनुसार–

(1) विषयानंद चेतना से आभासित अंतःकरण की वृत्तियों के विषय के साथ सामंजस्य से व्युत्पन्न होता है तथा ऐंद्रिक होता है।

(2) ब्रह्मानंद में समस्त सांसारिक उपाधियों का नाश होकर केवल चैतन्य-स्वरूप का भाव ही आनंद स्वरूप होता है।

(3) काव्यानंद रति आदि भावों की उपाधि बने रहने पर भी चैतन्य स्वरूप का आभास है।

'आनंद' आत्मा का स्वरूप एवं एक मुक्त प्राकृतिक, नैसर्गिक स्थिति है। काव्यानंद एवं ब्रह्मानंद में अंतर है। काव्यानंद में चित्त के विकार छिप जाते हैं। लुप्त होते हैं लेकिन बाद में उनके प्रत्यक्ष होने की संभावना शेष रहती है जबकि ब्रह्मानंद में विकारों का नाश हो जाता है और उनके प्रत्यक्षीकरण की कोई संभावना शेष नहीं रहती। ब्रह्मानंद को इसलिए चरम स्थिति माना गया है। काव्य में सांसारिक दुख भी सुख बनकर उपस्थित होता है इसलिए करुण रस

टिप्पणी

के काव्य के दुखद वर्णनों को भी हम बार-बार पढ़ते हैं। पढ़ते हैं, रोते हैं और फिर पढ़ते हुए सुख का ही अनुभव करते हैं। इसलिए रस दशा 'आनंद' की ही द्योतक मानी गई है। 'रस' का स्वरूप 'ब्रह्म' के पर्याय के रूप में लिया गया है। 'रसो वै सः' रस ही वह ब्रह्म है।

रस एवं उनके स्थाई भाव

शृंगार रस	–	रति/प्रेम	भयानक रस	–	भय
हास्य रस	–	हास	वीभत्स रस	–	जुगुप्सा/घृणा
करुण रस	–	शोक	अद्भुत रस	–	विस्मय/आश्चर्य
वीर रस	–	उत्साह	शांत रस	–	शम/निर्वेद (वैराग्य/वीतराग)
रौद्र रस	–	क्रोध	वात्सल्य रस	–	वात्सल्य
भक्ति रस	–	भगवद् विषयक रति/अनुराग			

1.8 रस के अंग

भरतमुनि के अनुसार जब स्थायी भाव का विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के साथ संयोग होता है तब रस निष्पत्ति होती है। 'विभानुभाव व्यभिचारी संयोगात् रस निष्पत्तिः।' इस सूत्र के आधार पर रस के चार अवयव निश्चित हुए–स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव। स्थायी भाव की सर्वस्वीकृत परिभाषा यह है कि–"स्थायी भाव सहृदय सामाजिक के हृदय में वासना रूप में (जन्मजात) स्थित वे अनुभूतियां हैं जो स्थायी रूप से विद्यमान रहती हैं। ये सभी के हृदय में पाई जाती हैं। स्थायी भाव का आधार 'अहंकार' है। इसकी दो मुख्य वृत्तियां–राग एवं द्वेष हैं जो क्रमशः सुखात्मक एवं दुखात्मक हैं। स्थायी भाव मनोविकारों एवं भौतिक या शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। इनकी संख्या दस हैं–(1) शोक, (2) हास, (3) रति, (4) निर्वेद, (5) उत्साह, (6) विस्मय, (7) भय, (8) जुगुप्सा, (9) क्रोध, और (10) वात्सल्य।

- **विभाव**–इसके अंतर्गत समस्त सृष्टि या ब्रह्मांड आ जाता है। ये स्थायी भावों को जागृत करने का कार्य करते हैं। ये आलंबन एवं उद्दीपन दो भागों में बांटे जाते हैं।

  1. **आलंबन**- भावों का उद्गम जिस मुख्य भाव या वस्तु के कारण हो उसे काव्य का आलंबन कहते हैं। 'विषय' और 'आश्रय' आलंबन के अंतर्गत आते हैं। जिस पात्र के प्रति किसी पात्र के भाव जागृत होते हैं वह विषय है। जिस पात्र में भाव जागृत होते हैं, वह आश्रय कहलाता है। उदाहरणस्वरूप वीर रस के स्थाई भाव उत्साह के लिए सामने खड़ा हुआ शत्रु आलंबन विभाव है।
  2. **उद्दीपन**- स्थाई भाव को जागृत रखने में सहायक कारण उद्दीपन कहलाता है। इसके दो रूप होते हैं-विषयगत और वर्हिगत। विषयगत के अंतर्गत आलंबन की उक्तियां और चेष्टाएं आती हैं और वर्हिगत के अंतर्गत वातावरण से संबंधित वस्तुएं एवं दृश्य। शत्रु के साथ सेना, युद्ध के बाजे, शत्रु की दर्पोक्तियां, शस्त्र-संचालन आदि उद्दीपन विभाव के उदाहरण हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

19. काव्यशास्त्रीय अध्ययन की परंपरा का आरंभ किस सिद्धांत से किया जाता है?
20. 'रसो वै सः' यानी रस ही ब्रह्म है, किस उपनिषद में कहा गया है?
21. रस को काव्य की आत्मा मानने वाले विद्वान का नाम बताइए।
22. रस का स्वरूप किसके पर्याय के रूप में लिया गया है?

टिप्पणी

- **अनुभाव**–'अनु' यानी पीछे चलने वाले। ये स्थायी भाव के बाद प्रकट होने वाले मनोविकार और आश्रय की चेष्टाएं हैं। अतः ये स्थायी भाव और विभाव के आश्रयगत होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–सात्विक या अयत्नज और कायिक या यत्नज।

  स्थाई भाव के जागृत होने पर सहज रूप से प्रत्यक्ष होने वाले अंगविकार सात्विक अनुभाव के उदाहरण हैं। जैसे-रोमांच, मुश्कान, अश्रु, कम्प आदि। इनके लिए आश्रय को कोई बाह्य चेष्टा नहीं करनी पड़ती, इसीलिए इन्हें अयत्नज भी कहा जाता है। आश्रय की शरीर संबंधी चेष्टाएं कायिक अनुभाव की उदाहरण हैं। ये चेष्टाएं शरीर के अंगों द्वारा प्रयत्नपूर्वक की जाती हैं, इसलिए इन्हें यत्नज भी कहा जाता है। जैसे आरोपित या कृत्रिम वेष रचना, रतिभाव के जागृत होने पर भू-विक्षेप, कटाक्ष आदि यत्नपूर्वक किए गए व्यापार। अनुभाव भावों के विगलन की प्रक्रिया की सूचना देते हैं।

- **संचारी भाव**–भरतमुनि इन्हें व्याभिचारी भाव कहते हैं। ये ऐसे मनोवेग या शारीरिक प्रतिक्रियाएं हैं जो स्थायी भावों की पुष्टि के लिए संचरणशील होते हैं। एक ही संचारी भाव अनेक रसों की पुष्टि के लिए प्रकट हो जाता है इसलिए संचरणशील होने के कारण संचारी और एक ही भाव से इनका निश्चित संबंध न होने के कारण इन्हें व्यभिचारी नाम दिया गया। (1) ये स्थायी भाव के उपकारक धर्म हैं। जो स्थायी भावों को दीप्त कर उन्हें रसदशा तक पहुंचाने में सहायक होते हैं। (2) क्षणिकता इनका लक्षण है। अतः इन्हें मन की अस्थिर वृत्तियां कहा गया है। (3) स्थायी भावों के साथ इनका संबंध सागर एवं तरंगों के समान होता है जो सागर में उठती गिरती हैं। संचारी भावों की संख्या तैंतीस मानी गई है–

  (1) निर्वेद, (2) ग्लानि, (3) शंका, (4) असूया, (5) श्रम, (6) मद, (7) धृति, (8) आलस्य, (9) विषाद, (10) मति, (11) चिंत्ता, (12) मोह, (13) स्वप्न, (14) विबोध, (15) स्मृति, (16) अमर्ष, (17) गर्व, (18) औत्सुक्य, (19) अवहित्थ, (20) दैन्य, (21) हर्ष, (22) क्रीड़ा, (23) उग्रता, (24) निद्रा, (25) व्याधि, (26) मरण, (27) अपस्मार, (28) आवेग, (29) त्रास, (30) उन्माद, (31) जड़ता, (32) चलता और (33) वितर्क।

रसों की संख्या दस हैं–शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण, अद्‌भुत, शांत और वात्सल्य। 'भक्ति रस' को ग्यारहवें रस के रूप में देखा जाता है। रस ही काव्य की आत्मा है, ऐसा मानने वाले आचार्य गण मानते हैं कि कई बार उक्ति अनौचित्य या काव्य में रस का पूर्ण परिपाक न होने के कारण उक्ति में रसत्व तो विद्यमान रहता है किंतु उसमें तीव्र या दीप्त रसत्व का अभाव होता है। इसी कारण इसे 'रस' के समान नहीं माना जाता। इस प्रकार की उक्तियों को सात प्रकारों में बांट सकते हैं–(1) भाव, (2) रसाभास, (3) भावाभास, (4) भावोदय, (5) भावशांति, (6) भाव संधि, (7) भाव सबलता।

'अपनी प्रगति जांचिए'

23. रस के कितने प्रमुख अंग होते हैं?
24. संचारी भाव कितने होते हैं?
25. रसों की संख्या कितनी मानी गई है?
26. रस संसार में किस विद्वान का एकछत्र साम्राज्य स्थापित है?

1.9 रस निष्पत्ति

टिप्पणी

रस निष्पत्ति के प्रश्न को हल करने के लिए भरत के रस सूत्र की टीकाकारों ने अपनी-अपनी तरह से व्याख्या की है। 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्दों का क्या तात्पर्य है? रस की निष्पत्ति किस प्रकार की और किसमें होती है? सामाजिक को, कवि को, विभाव को या अनुभाव को? चार प्रमुख टीकाकार हुए हैं–भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त।

भरत के रससूत्र में आए 'निष्पत्ति' शब्द को 'उत्पत्ति' के अर्थ में लेते हुए उत्पत्तिवादी भट्टलोल्लट ने उत्पत्तिवाद की प्रतिष्ठा की। आचार्य लोल्लट नायक में रस (सौन्दर्य) की स्थिति मानते हुए दर्शक में उसकी उत्पत्ति मानते हैं। लोल्लट के मतानुसार 'संयोगात्' का अर्थ 'संबंध' से है और 'निष्पत्ति' का तात्पर्य है 'उत्पत्ति'। उनका मत 'उत्पत्तिवाद' कहलाता है। भट्टलोल्लट के मतानुसार विभावादि और रस में कारण-कार्य का संबंध है। आचार्य भरत मुनि के सूत्र की व्याख्या यदि हम लोल्लट के दृष्टिकोण से करना चाहें तो इस प्रकार कह सकते हैं "विभावानुभावव्यभिचारिसम्बन्धात् रस-उत्पत्तिः।" इनका मानना है कि नाटक में रस मुख्यतः नायक-नायिका में ही उत्पन्न होता है परंतु उनका अभिनय द्वारा अनुकरण करने वाले नटों में उस रस की प्रतीति होती है। इस रस की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनों के संयोग से होती है। विभाव के द्वारा रस उत्पन्न होता है। अनुभाव के द्वारा रस की प्रतीति होती है और संचारी भाव द्वारा रस की पुष्टि होती है। इस मत से यह पता नहीं चलता कि सामाजिक प्राणी जो दर्शक है, श्रोता है, उसे रस की अनुभूति क्यों होती है?

भरत के सूत्र के दूसरे व्याख्याकार आचार्य शंकुक भी नायक में रस की स्थिति मानकर फिर दर्शक में रस की अनुमिति मानते हैं। शंकुक के मतानुसार 'संयोगात्' का अर्थ 'अनुमान से' है और निष्पत्ति का तात्पर्य है 'अनुमिति'। उनका मत 'अनुमितिवाद' कहलाता है। शंकुक के मतानुसार विभावादि और रस में अनुमापक-अनुमाप्य का संबंध है। भरत मुनि के सूत्र की व्याख्या शंकुक के दृष्टिकोण से यह हो सकती है-"विभावानुभावव्यभिचारि अनुमात् रस-अनुमितिः।" शंकुक ने अनुमितिवाद के द्वारा रस को अनुमान का विषय बताया है। सूत्र के 'संयोगात' शब्द का अर्थ 'अनुमानात्' और 'निष्पत्ति' का अर्थ वे 'अनुमिति' के रूप में लेते हैं।

शंकुक के मतानुसार अभिनेताओं का अभिनय इतना स्वाभाविक और प्रभावी होता है कि वे जिन पात्रों का अभिनय कर रहे होते हैं, दर्शक उन पात्रों में उत्पन्न रस का आरोप अनुमान के आधार पर ही अभिनेताओं पर कर लेते हैं और स्वयं भी अनुमान के आधार पर उस रस को ग्रहण कर आनंदित और अभिभूत हो जाते हैं। किंतु चूंकि अनुमान के द्वारा वह आनंद, वह रसानुभूति कभी प्राप्त नहीं हो सकती है जो अपेक्षित है अतः इस मत को भी आधार प्राप्त नहीं हो सका।

उक्त दोनों व्याख्याकार आचार्यों के मतों को देखकर स्पष्ट होता है कि दोनों ही सौन्दर्य अर्थात रस को अस्तित्वगत विषय मानते हैं। उनके मत से सौन्दर्य वस्तुगत माना गया है।

भट्टनायक ने भुक्तिवाद की बात की। उन्होंने काव्य में व्यापार को मुख्य मानते हुए उसके तीन रूपों–अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व की चर्चा की। वे भरत सूत्र में आए 'संयोग' शब्द को 'भोज्य-भोजक संबंध' और 'निष्पत्ति' शब्द को 'भुक्ति' के अर्थ में स्वीकार करते हैं। अभिधा के द्वारा शब्द के अर्थ की प्रतीति होने पर सामाजिक के भीतर सात्विक भाव का उदय होता है। भावकत्व के द्वारा साधारणीकरण होने से सामाजिक का सात्विक हृदय उस (ऐतिहासिक या धार्मिक) पात्र को जिसका अभिनय अभिनेता करता है, साधारण मनुष्य के

टिप्पणी

रूप में लेते हैं और भोजकत्व व्यापार द्वारा उन्हें उस अभिनय को देखते हुए रस की अनुभूति होती है। भट्टनायक का मत 'मुक्तिवाद' कहलाता है। आचार्य भट्टनायक के मतानुसार विभावादि और रस में भोजक-भोज्य का संबंध है। भरत मुनि के सूत्र की व्याख्या भट्टनायक के दृष्टिकोण से इस प्रकार की जा सकती है- "विभावानुभावव्यभिचारिभोगात् रस-भुक्ति।" इसमें भट्टनायक ने सामाजिक को स्थान दिया है किंतु त्रिविध व्यापार की असंगत कल्पना के कारण इस मत को भी मान्यता नहीं मिली।

आचार्य अभिनवगुप्त भी रस का अस्तित्व विषयी में ही स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'संयोगात्' का अर्थ है 'ध्वनन् से' और 'निष्पत्ति' का तात्पर्य है 'अभिव्यक्ति' अर्थात 'आनन्दरूप अभिव्यक्ति'। उनका मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाता है। आचार्य अभिवगुप्त के मतानुसार दर्शक के हृदय का सुप्त स्थायी भाव जागरित होकर रस रूप में अभिव्यक्त होता है। अभिनवगुप्त के दृष्टिकोण से भरत के सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है- "विभावानुभावव्यभिचारि ध्वननात् रसाभिव्यक्ति।" अभिनवगुप्त व्यंजनावादी हैं। उन्होंने भरत के सूत्र के 'संयोग' शब्द को 'व्यंग्यव्यंजक भाव' तथा 'निष्पत्ति' को 'अभिव्यक्ति या व्यंजना' के अर्थ में लिया।

अभिनवगुप्त ने कहा कि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रेम, शोक, भय, घृणा आदि वासनाएं स्थायी भाव के रूप में रहती हैं। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा इन स्थायी भावों की अभिव्यंजना होती है। सभी सहृदयों के हृदय में स्थित सुप्त स्थायी भाव विभावादिकों को ग्रहण करके रसानुभूति से सिक्त हो जाते हैं और आनंद का अनुभव करते हैं। यह मत सभी विद्वानों को मान्य है।

भट्टनायक और अभिनवगुप्त में साम्य यह है कि आचार्य भट्टनायक और अभिनवगुप्त रस अर्थात सौन्दर्य की स्थिति विषयी में बताते हैं। भट्टनायक रसानुभूति में साधारणीकरण की अवस्था को मानते हैं। वे अभिधा, लक्षणा और व्यंजना नाम की शब्द-शक्तियों के स्थान पर अभिषा, भावकत्व और भोजकत्व नाम देते हैं और कहते हैं कि दर्शक अभिधा शक्ति से नायक-नायिका के सम्वादों का अर्थ ग्रहण करता है और फिर भावकत्व शक्ति से उसका भावन (मनन-चिंतन पूर्वक आत्मरमण) होता है- अर्थात जो भाव काव्यगत नायक-नायिका में व्यक्तिगत संबंध के कारण होते हैं, वे काव्यपठन से अथवा नाटक देखने से सहृदय पाठक या दर्शक में साधारणीकृत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि उनमें से ममत्व तथा परत्व की भावना निकल जाती है। वे भाव सभी पाठकों (दर्शकों) के लिए सामान्य रूप धारण कर लेते हैं। सर्वसाधारण के ग्रहण योग्य भाव तभी बनते हैं, जब उनमें भोजक वृत्ति काम करती है। भावकत्व और भोजकत्व के कारण दर्शक विशेषत्य से रहित होकर साधारणीकृत हो जाता है-अर्थात शकुन्तला नाटक देखने वाले दर्शक का भाव शकुन्तला के प्रति ठीक वैसा ही न होगा, जैसा कि दुष्यंत का शकुन्तला के प्रति था। दुष्यंत का शकुन्तला के प्रति जो रति-भाव है, वह सहृदय दर्शक के लिए शुद्ध सात्विक रति-भाव बन जायेगा जिसमें शकुन्तला केवल स्त्री होगी, पत्नी नहीं।

अभिनवगुप्त ने कहा कि-**'नाट्यरसाः स्मृताः।' सर्वानुग्राहकं हि शास्त्रमितिन्यायात्तेन नाट्य एव रसा न लोके इत्यर्थः। काव्यं च नाट्यमेव।'** अभिनवगुप्त का रस संसार में एकछत्र साम्राज्य स्थापित हो गया। आज भी किंचित संशोधनों के साथ अभिनवगुप्त की रस संबंधी मान्यताएं स्वीकृत हैं। अभिनवगुप्त की कुछ मौलिक उद्भावनाएं इस प्रकार हैं-

1. रस निष्पत्ति सहृदय सामाजिक की होती है। (भट्टनायक को स्वीकार कर लिया)
2. रस आनंदमय है (भट्ट नायक कह चुके थे)।
3. रस आस्वाद है (भट्ट नायक रस को भोज्य (आस्वाद्य) मानते हैं)।
4. निष्पत्ति का अर्थ है अभिव्यक्ति।
5. संयोग का अर्थ है-व्यंग्य व्यंजक भाव संबंध।
6. साधारणीकरण व्यष्टि के धरातल पर न होकर समष्टि के धरातल पर होता है।
7. साधारणीकरण भावकत्व व्यापार का परिणाम नहीं अपितु व्यंजना का ध्वनन व्यापार है।

टिप्पणी

वामन कहते हैं-**'दीप्तरसत्वं कान्तिः।'** भोज नेशृंगारप्रकाश में 'रस एक ही है' सिद्धांत की स्थापना की और इस एक रस को शृंगार कहा जिसका रूप अभिमान और अहंकार जैसा ही है। **'रसोभिमानोऽहंकारः शृंगार इति गीयते।'** भानुदत्त मिश्र ने 'रसतरंगिणी और रसमंजरी' में रसों की विस्तृत व्यख्या की। श्री विश्वेश्वर पांडेय की 'रसचंद्रिका' में रसों पर चर्चा है। रुद्रभट्ट ध्वनिपूर्ण रसवादी धारा के अंतिम आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने शृंगार रस पर विस्तार से लिखा-

'यामिनी वेन्दुना युक्ता नारीव रमणं विना। लक्ष्मीरिव कृते त्यागान्नो वाणी भति नीरसा।' अभिनवगुप्त के गुरु भट्टतौत ने भी रसवादी धारा के विकास में सहयोग दिया। भरतमुनि से पंडितराज जगन्नाथ तक रसवादी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा के दर्शन होते हैं। पंडितराज जगन्नाथ लिखते हैं-**"एवं पञ्चात्मके ध्वनौ परम रमणीयता रसध्वनेस्तदात्मा रसस्तावदभिधीयते।'** इसके अतिरिक्त आचार्य मम्मट ने भी रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। इस रस सिद्धांत का एक रूप 'भक्ति रस' के रूप में हमें रूपगोस्वामी की 'उज्ज्वल नीलमणि' में मिलता है, जिसमें भक्ति रस के पांच प्रकार-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य माने गए हैं। ये सभी भाव कृष्ण के प्रति ही होते हैं। इस माधुर्य भाव को 'भक्ति-रसराट्' कहते हैं। इस प्रकार रसवादी आचार्यों की भिन्न-भिन्न मान्यताओं के साथ 'रसवाद' पुष्ट और विकसित होता गया। इनके साथ परवर्ती आचार्यों के तर्क-वितर्कों तथा अलंकार आदि को काव्यात्मा मानने के तर्क-वितर्कों के बीच रस सिद्धांत ने रस-संप्रदाय का रूप धारण किया। हिंदी काव्यशास्त्रियों ने भी रस के महत्व को स्वीकार किया है।

1.10 साधारणीकरण

इस सिद्धांत की स्थापना भट्टनायक ने की। काव्य में रस को मूल तत्व और आत्मा स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात प्रश्न उठा था कि रस निष्पत्ति किसमें होती है? इस प्रश्न को हल करते-करते एक प्रश्न और उठा कि रस निष्पत्ति कैसे होती है? काव्य और सहृदय सामाजिक का परस्पर क्या संबंध है? इस प्रश्न का उत्तर सर्वप्रथम भट्टनायक ने 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया के रूप में दिया तथा अभिनव गुप्त ने इसे दार्शनिक आधार प्रदान कर इस साधारणीकरण की स्थिति को पुष्ट एवं स्थिर बना दिया। इसे 'साधारणीकरण' के सिद्धांत की संज्ञा प्राप्त हुई। 'साधारणीकरण' का अर्थ है असाधारण अर्थात विशेष का साधारण (सामान्य) रूप में परिवर्तित हो जाना।

टिप्पणी

भट्टनायक के अनुसार काव्य-रस का भोग सहृदय सामाजिक करता है। सामाजिकों के हृदयों में वासना रूप से स्थित स्थायी भाव काव्य में वर्णित विभावादि के कारण उद्‌बुद्ध होकर रस रूप में परिणत हो जाते हैं। इसके लिए भट्ट नायक ने तीन स्थितियों का विवेचन किया–(1) अभिधा, (2) भावकत्व और (3) भोजकत्व। काव्य में सदैव असाधारण या विशेष का ही प्रतिपादन किया जाता है। काव्य का वह विशेष जब साधारण या सामान्य रूप में प्रतिभाषित होने लगता है, तब वह स्थिति साधारणीकरण की स्थिति कहलाती है। जब काव्य में वर्णित 'राम', राम न रह कर एक सामान्य पुरुष और 'सीता', सीता न रहकर एक सामान्य युवती के रूप में भासित होने लगते हैं, तब साधारणीकरण की स्थिति होती है। यही काव्यात्मक साधारणीकरण कहलाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि साधारणीकरण किसका होता है। इस पर विद्वानों में मतभेद है। इस प्रसंग में साधारणीकरण से संबद्ध विचारों को पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. विभावादिकों और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है।
2. विभावादिकों के साथ-साथ सहृदय सामाजिक की चित्तवृत्ति का भी साधारणीकरण होता है।
3. केवल विभावादिकों का साधारणीकरण होता है और सहृदय सामाजिक का आश्रय से तादात्म्य हो जाता है।
4. कवि की भावनाओं का साधारणीकरण होता है और सहृदय सामाजिक का कवि के साथ तादात्म्य हो जाता है।
5. साधारणीकरण व्यर्थ एवं अनामंत्रित सिद्धांत है।

(1) **विभावादिकों और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है**–इस सिद्धांत के संस्थापक एवं पोषक आचार्य भट्टनायक हैं। उनके अनुसार–

1. विभावादि व्यापार ही साधारणीकरण है।
2. विभावादि अर्थात आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी एवं स्थायी भावों का साधारणीकरण हो जाता है।
3. स्थायी भाव के साधारणीकरण का तात्पर्य है विशिष्ट संबंधों से मुक्ति।
4. भावकत्व से भाव्यमान स्थायी भाव ही रस है। भाव्यमान से तात्पर्य साधारणीकृत रूप से ही है।

जहां तक साधारणीकरण के संदर्भ में भट्टनायक की व्याख्या का प्रश्न है, वह उनकी रस सामग्री की व्याख्या से किंचित पृथक है। उनकी काव्य प्रकाश की टीका में साधारणीकरण को इन शब्दों में समझाया गया है-

"भावकत्वं हि साधारणीकरणम्।
तेन हि व्यापारेण विभादय:
स्थायी च साधारणी क्रियन्ते।"

इस तरह स्पष्ट है कि वस्तुत: भट्टनायक के भावकाव्य का अर्थ ही साधारणीकरण है। भट्टनायक ने भावकत्व व्यापार की दो विशेषताएं प्रस्तुत की हैं–

टिप्पणी

1. निविडनिज मोह संकटतानिवारणकारिणा, और
2. विभावादि साधारणीकरणात्मना।

जब तक प्रमाता अपने आपको काव्य की विषय-सामग्री से पृथक या असंपृक्त रखेगा तब तक वह उस आनंदमयी चेतना का अवलोकन नहीं कर पाएगा जिसे प्रकारांतर में रस कहा जाता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संभवत: भट्टनायक ने यह कहा होगा कि भावकत्व व्यापार का पहला कार्य है प्रमाता के निजत्व मोह के संकट का निवारण करना अर्थात उसे अपने-पराए की संज्ञा से मुक्त करना। दूसरे, प्रमाता द्वारा ही विभावादिकों के विशिष्ट संबंधों को मुक्तावस्था में देखना अर्थात उन्हें राम-सीतादि के रूप में न देखकर केवल भाव रूप में ग्रहण करना। जिस प्रकार एक रुग्ण व्यक्ति दवा को केवल रोग-निवारक के रूप में ही ग्रहण करता है, न कि उस औषधि के नाम-रूप में या उसमें मिश्रित विभिन्न रसायनों के रूप में।

(2) विभावादिकों के साथ साथ सहृदय सामाजिक की चित्तवृत्ति का भी साधारणीकरण होता है–भट्टनायक के पश्चात रस सिद्धांत के सर्वाधिक पोषक अभिनवगुप्त थे। इन्होंने भट्टनायक के रस संबंधी विचारों को मूल रूप में तो स्वीकृति दी किंतु उनकी व्याख्या अपने अनुसार की है बल्कि यों कहना चाहिए कि उन्हें दार्शनिकता से आवृत्त कर दिया। दूसरी ओर उनके विचारों में संशोधन भी किया तथा उन्हें तर्कसम्मत स्पष्ट रूप भी प्रदान किया। अभिनवगुप्त के अनुसार–

1. विभावादिकों का ही साधारणीकरण नहीं होता, बल्कि स्थायी भाव का भी साधारणीकरण होता है। विभावादिकों के साधारणीकरण के कारण ही स्थायीभाव का साधारणीकरण होता है।
2. स्थायी भाव के साधारणीकरण से तात्पर्य है देश-काल के बंधनों से मुक्ति। साधारणीकरण की स्थिति में विशेषत्व का अभाव हो जाता है क्योंकि विशेषत्व ही सुख-दुख का कारण होता है। उस (विशेषत्व) के अभाव में ऐंद्रिक सुख-दुख की भावना नष्ट हो जाती है।
3. भाव का साधारणीकरण व्यक्तिनिष्ठ न होकर समष्टिनिष्ठ होता है क्योंकि सभी सामाजिकों में संस्कार-रूप से समान भाव की स्थिति वासना-रूप में विद्यमान रहती है। अत: यह साधारणत्व परिमित नहीं होता।
4. साधारणीकरण का अर्थ है सुख-दुखात्मक अनुभूतियों एवं देशकाल के संबंधों से मुक्ति।

साधारणीकरण का आधार है रस। रसवादी आचार्य भट्टनायक साधारणीकरण में दर्शन का भी सहारा लेते हैं। इसकी अभिपुष्टि उनकी रस संदर्भित अवधारणा से भी होती है। 'भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान' पुस्तक में प्रो. हरिमोहन कहते हैं, "भट्टनायक के मत का उल्लेख 'अभिनव भारती' में मिलता है। उनके अनुसार रस न प्रतीत होता, न उत्पन्न होता है और न अभिव्यक्त होता है। अत: रस न स्वगत है (क्योंकि करुण रस में सामाजिक को दु:ख का अनुभव न होकर, आनंद का ही अनुभव होता है), न परगत है (क्योंकि परगत मानने पर सामाजिक का उस भाव से संबंध ही क्या रहेगा? वह उदासीन हो

टिप्पणी

जायेगा), न प्रतीति है और न परोक्ष। वह अनुकृति-अभिव्यक्ति से भी भिन्न मात्र भाक्त व्यापार है।" यह अवधारणा भट्टनायक की दार्शनिकता की सूचक है।

अभिनवगुप्त की या भट्टनायक की मूल धारणा तो यही है कि 'भाव' पर सुख-दुखात्मकता का जो आवरण चढ़ा हुआ है, वह साधारणीकरण से नष्ट हो जाता है। अभिनव गुप्त और भट्टनायक दोनों ही सुख-दुख को भाव का अंग नहीं मानते, बल्कि देश-काल के विभाग या विशेषत्व को सुख-दुख का कारण मानते हैं। इसीलिए वे इस बात पर बल देते हैं कि साध ारणीकरण होने से देश-काल का बंधन निरस्त हो जाता है जो ऐंद्रिक सुख-दुख या विघ्न-बहुलता का कारण है।

(3) केवल विभावादिकों का साधारणीकरण होता है और प्रमाता का आश्रय के साथ तादात्म्य होता है–इस सिद्धांत के अनुयायी विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ को माना जाता है। आधुनिक हिंदी आलोचकों में आचार्य शुक्ल का नाम आता है। संस्कृत आचार्यों ने (विश्वनाथ एवं जगन्नाथ) तादात्म्य की बात को उतना प्रत्यक्ष नहीं कहा, जितना आचार्य शुक्ल ने कहा है। आचार्य विश्वनाथ यद्यपि अभिनव गुप्त का ही अनुसरण करते हैं किंतु उनके कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे आश्रय का साधारणीकरण नहीं मानते, यथा–**व्यापारोऽस्ति विभावादेर्नाम्ना साधारणी कृतिः। तत्प्रभावेण यस्यासन्पाथो विप्लवनादयः॥ प्रमाता तदभेदेन स्वात्मानं प्रतिपद्यते।** (साहित्य दर्पण 3/9-10)

उत्साहादिसमुद्बोधः साधारण्याभिमानतः।
नृणामपि समुद्रादिलंघनादौ न दुष्यति॥ (3.11)

उपर्युक्त पंक्तियों की व्याख्या विश्वनाथ के अनुसार ऐसे होगी कि मंच पर अभिनीत हनुमानजी के समुद्रलंघन दृश्य को देख कर प्रमाता अपने आपको हनुमानजी से अभिन्न मानने लगता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रमाता का आश्रय के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। संभवतः विश्वनाथ तादात्म्य भाव को भी साधारणीकरण का ही परिणाम मानते हैं। इसी कारण मानव भी, जिसके लिए समुद्रादि का संतरण लौकिक परिस्थितियों में संभव नहीं है, समुद्रसंतरण का अनुभव करता है अर्थात वह भी छलांग लगा कर सागर को पार कर सकता है, इस प्रकार के उत्साह का अनुभव करने लगता है। उस स्थिति में वह अपने आपको आश्रय यानी हनुमान मानने लग जाता है। इन्हीं के पश्चात हुए पंडितराज ने भी प्रकारांतर से प्रमाता का आश्रय के साथ तादात्म्य माना है।

(4) कवि की भावनाओं का साधारणीकरण होता है और सहृदय सामाजिक का कवि के साथ तादात्म्य हो जाता है–इस सिद्धांत के संस्थापक हैं आचार्य डॉ. नगेंद्र। आपके अनुसार कवि-भावना का साधारणीकरण होता है।

(5) साधारणीकरण व्यर्थ एवं अनामंत्रित सिद्धांत है–आधुनिक भारतीय आलोचक मनोविज्ञान का आश्रय लेकर रस-सिद्धांत की व्याख्या करने में लगे हैं। फलतः उन्हें साधारणीकरण जैसा सिद्धांत व्यर्थ प्रतीत होता है।

'साधारणीकरण' का सामान्य या विशेष अर्थ यही होगा कि असाधारण का साधारण होकर मन के अनुकूल हो जाना। कवि अपने कौशल से जो रचना करता है सहृदय की मनःस्थिति कवि की मनःस्थिति के अनुकूल होकर समभाव के स्तर पर पहुंच जाती है और कवि तथा सहृदय के भावों में तादात्म्य स्थापित हो जाता है। सहृदय उसी शिद्दत से काव्य के

टिप्पणी

भावों में डूबता-उतराता है जिस भाव सरिता में पैठ तक कवि ने रचना की। यही भाव साम्य 'साधारणीकरण' है।

1.11 सहृदय की अवधारणा

काव्य चिंतन के संदर्भ में 'सर्जक' यानी कवि को तो सहृदय माना ही जाता है किंतु विशेष बल 'ग्राहक' अर्थात 'पाठक' को सहृदय मानने पर है। यहां सहृदय की अवधारणा पाठक के संबंध में ही है। इस 'सहृदय' का प्रथम प्रयोग संभवतः अथर्ववेद में मिलता है। 'अथर्ववेद' में इस शब्द की प्राप्ति महत्वपूर्ण है। भरतमुनि ने 'रस' को 'अथर्ववेद' से ही लिया। आयुर्वेद उसका उपवेद है और उसमें भी अपने तरीके से 'रस' भाव का विवेचन है। भवभूति आयुर्वेद का आधार लेकर ही राम के करुण रस को **'पुटपाकप्रतीकाश'** कहते हैं तथा क्षेमेंद्र रसायनतंत्र को संदर्भित करते हुए **'औचित्य रस-सिद्धस्य'** कहते हैं। इसलिए अथर्ववेद में प्रयुक्त 'सहृदय' को महत्वपूर्ण माना जाता है। उसमें 'सहृदयं सामनस्यमद्विषं कृणोमिवः' पंक्ति मिलती है जिसमें 'सहृदय' का अर्थ 'समान हृदय' है। 'समान' तथा 'हृदय' दो पदों से निर्मित यह सामासिक शब्द है। समान के लिए 'स' का उपयोग किया गया है। अतः 'सहृदय' का तात्पर्य है 'समान हृदय वाला'। काव्य में रचनाकार एवं पाठक या श्रोता अनुभव साम्य की दृष्टि से समान हृदय वाले अर्थात 'सहृदय' कहे जाते हैं। भट्टतौत कहते हैं–"नायकस्य कवेः श्रोतुः समानोऽनुभवस्तत:।' नाट्यशास्त्र में 'सहृदय' के स्थान पर 'सुमनस प्रेक्षक' का प्रयोग मिलता है। विभिन्न आचार्यों ने 'सहृदय' के समानार्थक शब्दों का प्रयोग किया है लेकिन इसका सर्वाधिक और स्पष्ट प्रयोग आनंदवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' में मिलता है। आनंदवर्द्धन ने 'सहृदयता' को 'रसज्ञता' का पर्याय माना है। अभिनवगुप्त ने तंत्रवाद के आलोक में 'सहृदय' की मार्मिक व्याख्या की है। इसके लिए उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' एवं 'ध्वन्यालोक' को आधार बनाया है। यह व्याख्या 'अभिनवभारती', 'लोचन', 'तंत्रालोक', परात्रिंशिका' तथा 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृत्तिविमर्शिनी' में मिलती है।

अभिनवगुप्त ने 'सहृदय' पर चिति, चेत्य तथा चित्त तीनों कोणों से प्रकाश डालते हुए उसकी तीन स्वरूपगत विशेषताएं बताई हैं–

(1) स्वहृदय संवाद भाजकता–अर्थात ऐसा पाठक या श्रोता जिसका हृदय स्वयं से संवाद करने में कुशल हो, सचेत हो। वह कवि के संवाद को भी आत्मसात कर लेगा। इसका संबंध चिति से है।

(2) वर्णनीय तन्मयीभवन योग्यता–इसका संबंध चेत्य से है, इसमें वर्णन की जाने वाली कथावस्तु पर बल दिया जाता है, उसे सुनना और आत्मसात करना।

(3) 'तादात्म्यसमापत्तियोग्यता'–इसका संबंध चित्त से है। जब कवि एवं पाठक, श्रोता या सहृदय के चित्त के बीच तादात्म्य स्थापित हो जाता है, वे एक हो जाते हैं। उनकी अनुभूति एकरस हो जाती है।

निष्कर्ष यह है कि 'सहृदयता' हृदय की 'योग्यता', 'उत्कर्ष', 'संवेदनशीलता', 'आत्मसात् करने की क्षमता' का ही नाम है। जो जितना संवेदनशील होगा, योग्य हृदय का, उत्कर्षशील हृदय का स्वामी होगा, वह लोकोत्तर आनंदमय स्थिति को प्राप्त करने का

'अपनी प्रगति जांचिए'

27. असाधारण अर्थात विशेष का साधारण रूप में परिवर्तित हो जाना क्या कहलाता है?
28. विभावादिकों और स्थायी भावों का साधारणीकरण को मानने वाले विद्वान का क्या नाम है?
29. सहृदय का प्रथम प्रयोग संभवतः किस वेद में मिलता है?
30. काव्यशास्त्र में सहृदय की अवधारणा किसके संदर्भ में की गई है?

टिप्पणी

अधिकारी होगा। हृदय की यह योग्यता साहित्य के अध्ययन, चिंतन-मनन की निरंतरता और अभ्यास से आती है। सभी का हृदय इसका अधिकारी नहीं होता। 'सहृदय' होने की योग्यता के लिए लंबे धैर्य और निरंतरता के साथ काव्यानुशीलनात्मक अभ्यास की आवश्यकता है। तभी तुलसीदास के साथ दशरथ मरण के प्रसंग पर रो सकेंगे।

अभिनवगुप्त तो कहते हैं कि अभ्यास के साथ पूर्व जन्म के पुण्यों का होना भी आवश्यक है तभी चित्त काव्यानुशीलन में रमेगा यदि पुण्य के स्थान पर पाप होंगे तो वे मनुष्य को इस दिशा से विमुख करेंगे। अभिनवगुप्त 'हृदय की निर्मलता' को भी महत्त्व देते हैं। समुन्नत मस्तिष्क वाला, दैहिक आवश्यकताओं की परिधि से उठा हुआ, निर्व्यसन और साथ में सुकुमार यानी कोमल हृदय वाला मनुष्य ही काव्यानुशीलन सच्चा का पथगामी हो सकता है, 'सहृदय' हो सकता है। दूसरी तरह से कहा जाए तो श्रेष्ठ मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण मनुष्य शिक्षित और परिष्कृत संस्कारों की पूंजी धारण कर 'सहृदय' बन सकता है। 'सहृदय' के भीतर वह प्रतिभा और शक्ति होती है कि वह काव्यार्थ को उसी शिद्दत और गहनता, पूर्णता एवं तीव्रता के साथ अनुभव करता है, जानता है। 'तन्मयीभवन' की योग्यता ही सहृदयता है। पंडितराज जगन्नाथ कहते हैं कि जिस प्रकार समाधिस्थ योगी को स्वरूपानंदाकार चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है वह स्वयं आनंद स्वरूप और ब्रह्म रूप हो जाता है उसी प्रकार तन्मयीभवन योग्यता के कारण सहृदय कवि के चित्त के साथ तन्मय होकर काव्यानंद के मर्म तक पहुंच जाता है। 'सहृदय' बाह्य सौंदर्य पर नहीं टिकता वह अंतर्मन का भेदन करता हुआ समभाव पर पहुंचता है। रचना को नहीं रचना के कारण को भी लक्ष्य बनाता है। आत्मप्रकाश से भर उठने वाले हृदय की रचनात्मक सौंदर्य के प्रति दृष्टि गहन होती है। इसलिए आचार्यों ने हृदय को 'विमर्श' भी कहा है। विमर्श या हृदय जो सूखे झुर्रीदार मुख के पीछे छिपी तपस्या के सौंदर्य को अनुभूत कर जगमगा उठता हो उसे रचनात्मक सौंदर्य के नाम से जाना जा सकता है। ऐसा हृदय ही 'सहृदय' हो सकता है। ऐसे हृदय को धारण करने वाला पात्र 'सहृदय' हो सकता है। साहित्य जो काव्य का पर्याय माना जाता था उसमें सहृदय की अवधारणा साभिप्राय हुई थी। जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

काव्य में रसानुभूति के लिए सहृदय का होना आवश्यक है। सहृदय के हृदय में स्थित सुप्त स्थायी भाव विभावादिकों को ग्रहण करके रसानुभूति से सिक्त हो जाते हैं। सहृदय और कवि के बीच तादात्म्य स्थापित हो जाता है जब सहृदय काव्य का पठन या श्रवण करता है उस काव्य में निहित भाव उसे कवि के भावों से तादात्म्य स्थापित करने में सहायक बनते हैं। कवि के भावों से तादात्म्य स्थापित होते ही काव्य के भावों का असाधारणत्व साधारण होने लगता है। साधारणीकरण की इस प्रक्रिया से रस निष्पत्ति होती है और सहृदय काव्यानंद में डूबता हुआ ब्रह्मानंद की ओर बढ़ने लगता है। रस सिद्धांत सदैव प्रासंगिक रहा है। रस परंपरा ऋग्वेद से अद्यतन निरंतर है। जब तक जीवन है, साहित्य है तो रस है। रस है – तभी जीवन है। यही चक्र शाश्वत है।

गतिविधि

साहित्यकार की रचना विशेष को पढ़कर आपका तादात्म्य स्थापित हो जाता है। साधारणीकरण की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए उस रचना पर एक आलेख तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

आप अपनी मनपसंद कोई फिल्म या नाटक देखने गए हैं, अचानक आपको याद आता है कि घर के ताले पर चाभी लटकी रह गई, तब आप रस का आनंद नहीं ले पाएंगे।

1.12 सारांश

भारतीय काव्य शास्त्र संस्कृत काव्यशास्त्र, रीतिकालीन काव्यशास्त्र तथा हिंदी काव्यशास्त्र– इन तीन खंडों से मिलकर बना। काव्यशास्त्र के अध्ययन के लिए काव्य के स्वरूप एवं लक्षणों को जाना गया। वाक्यम् रसात्मक काव्यम्, शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्, रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् आदि परिभाषाएं जहां काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करती हैं वहीं यह भी बताती हैं कि रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि तथा औचित्य काव्य के लक्षण हैं। प्रतिभा, निपुणता, अभ्यास आदि काव्य रचना के आवश्यक प्रेरक तत्व हैं तथा यश प्राप्त करना, मनोरंजन करना, लोक कल्याण करना काव्य के प्रयोजन हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र ही मूलतः भारतीय काव्यशास्त्र है क्योंकि संस्कृत काव्यशास्त्र के पश्चात रीतिकालीन काव्यशास्त्र हो या हिंदी काव्यशास्त्र, उनमें संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की परंपरा ही निरंतर प्रवाहित होती रही है। रीतिकालीन या हिंदी काव्यशास्त्रियों ने किसी नये सिद्धांत की स्थापना नहीं की। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय काव्यशास्त्र संस्कृत काव्यशास्त्र का ही रूप है। भारतीय काव्यशास्त्र काव्य का मेरुदंड है।

काव्य के सभी लक्षणों के अपने-अपने संप्रदाय और सिद्धांत हैं। इनके प्रकार, उपप्रकार हैं। काव्य के सभी लक्षण चाहे रस हो या अलंकार, रीति हो या वक्रोक्ति, ध्वनि हो या औचित्य सभी एक दूसरे से संबंधित हैं। रस, रीति और औचित्य सर्व समावेशी लक्षण हैं। ये सभी काव्य में किसी न किसी रूप में पाए जाते हैं। अलंकार बाह्य यानी शारीरिक होने के साथ-साथ आत्मा का गुण भी है जिससे आत्मा अलंकृत और प्रभा संपन्न होती है। वक्रोक्ति भी अलंकार का एक रूप है तथा ध्वनि भी काव्य के सभी प्रकारों में न्यूनाधिक हो या प्रबल और सटीक, उपस्थित अवश्य होती है बल्कि ध्वनि युक्त काव्य को ही कुछ काव्यशास्त्रियों ने उत्तम काव्य की संज्ञा दी है। काव्य के इन लक्षणों के संस्थापक या प्रवर्तक काव्यशास्त्र के आचार्य हैं। जैसे– 'रस' के भरतमुनि, 'अलंकार' के भामह, 'रीति' के वामन, 'वक्रोक्ति' के कुंतक, 'ध्वनि' के आनंदवर्धन, 'औचित्य' के क्षेमेंद्र। दृश्य हो या श्रव्य, काव्य के अनेक भेदोपभेद हैं जिनकी अपनी महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं, जिनका अध्ययन किए बिना काव्य के पूर्ण स्वरूप, उपयोगिता महत्व और भूमिका को नहीं जाना जा सकता।

टिप्पणी

टिप्पणी

काव्यशास्त्रियों के काव्य 'हेतु' अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं। न्यायदर्शन का 'हेतु' भी इनसे अंशत: मिलता जुलता है। दर्शनशास्त्र में इसे कारण कहा जाता है। 'हेतु' अर्थात वे साधन जो काव्य-रचना में कवि के सहायक होते हैं। कुछ आचार्य प्रतिभा को काव्यत्व का बीज मानते हैं और उसे ही 'हेतु' स्वीकार करते हैं। हेतु या कारण दो प्रकार के होते हैं– उपादान और निमित्त। अग्निपुराण में लोक-व्यवहार तथा वेद के ज्ञान को काव्य-प्रतिभा की योनि कहा गया है तथा सिद्ध किए गए मंत्र के प्रभाव से जो काव्य निर्मित होता है उसे अयोनिज कहा गया है। इससे काव्य के तीन हेतुओं का पता चलता है– काव्य-प्रतिभा, वेद-ज्ञान और लोक-व्यवहार। भारतीय साहित्य में प्रतिभा को बहुत आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है, परंतु कुछ लोगों का यह भी विचार है कि साधना द्वारा काव्य रचना की शक्ति एवं प्रतिभा संवर्धित की जा सकती है। पहले प्रश्न पर विचार करते हैं–प्रतिभा के संबंध में प्राय: मत यह है कि यह जन्मजात ही होती है। कुछ लोगों ने काव्य की शक्ति, प्रतिभा को दो रूपों में देखा है– सहजा और उत्पाद्या। संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान रुद्रट के विचार में सहजा प्रतिभा जन्मजात होती है और उत्पाद्या शास्त्र, लोकानुभव और संगत आदि से प्राप्त हो सकती है। इसमें संदेह नहीं कि सहजा और उत्पाद्या इन दोनों ही काव्य प्रतिभाओं में अंतर किया जा सकता है। सहजा प्रतिभा अधिक क्षमताशाली, स्वत: स्फूर्त और अजस्र सर्जनाशक्ति है, जबकि इसकी तुलना में उत्पाद्या प्रतिभा कम बलशाली, अविशिष्ट, प्रेरणास्फूर्त और कभी-कभी जागृत सर्जना शक्ति है। दोनों में अंतर होते हुए भी यह विचारणीय है कि क्या जन्मजात या सहजा प्रतिभा के न होने पर भी उसे सत्संग या प्रयत्न आदि से प्राप्त किया जा सकता है? इस संबंध में दो मत मिलते हैं, एक तो यह कि उत्पाद्या प्रतिभा के रूप में जो शक्ति काम करती है वह वास्तव में सुषुप्त, किंतु सहजा प्रतिभा शक्ति ही है और दूसरा मत यह है कि जन्म से अथवा संस्कार से प्रतिभा न होते हुए भी वह प्रयत्न द्वारा अर्जित की जा सकती है। काव्य-रचना के प्रसंग में प्रतिभा के साथ-साथ साधना का भी महत्वपूर्ण हाथ है। प्रतिभा का विकास साधना द्वारा होता है। जाग्रत प्रतिभा या काव्य के संस्कार अनवरत साधना से भली-भांति प्रस्फुटित होते हैं।

काव्य के सामान्यत: दो प्रयोजन माने जाते हैं–आनंद की प्राप्ति और लोक कल्याण। भरतमुनि लिखते हैं–यह नाट्य (काव्य) धर्म, यश, आयु, हित और वृद्धि का अभिवर्धक और लोकोपदेश के लिए है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों जीवन के पुरुषार्थ माने जाते हैं। इन पुरुषार्थों के बीच आपसी तारतम्य है। एक के बाद हम दूसरा पुरुषार्थ प्राप्त करते हैं और इस प्रकार एक प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर, फिर वह साध्य के स्थान पर साधन बन जाता है। इन साधनों के तारतम्य में अंतिम साध्य मोक्ष है, जो साधन नहीं बनता। मोक्ष के अंतर्गत जो ध्वनि है, वह निषेधार्थपूर्ण है, विधेयतापूर्ण नहीं। मोक्ष अर्थात जीवन से निष्क्रमण। यदि जीवन से निष्क्रमण का तात्पर्य जीवन के आनंद से निष्क्रमण है, तो कोई नहीं चाहेगा। अत: इसका तात्पर्य हुआ जीवन के दुखों से निष्कृति या मुक्ति। जीवन सुख-दुखात्मक है, अत: जब उसके दुखों से कोई मुक्त होना चाहता है, तो उसके सुखों से भी हाथ धोना पड़ता है। अत: मुक्ति आनंदहीन हुई। वह स्थिति तो जड़ सी हुई। यह जीवन को दुखपूर्ण मानने की धारणा या परिणाम है। परंतु साहित्य या काव्य की कल्पना दूसरे प्रकार की है। वह जीवन के दुखों को भी सुखों में परिणत करने का जादू है। हमारे जीवन के दुखानुभव जब काव्य या साहित्य का रूप धारण करके आते हैं, तब वे हमें दुख नहीं वरन सुख ही देते हैं। काव्य में

टिप्पणी

रस का भी यही रहस्य है। रस के अंतर्गत जीवन की सुख-दुखात्मक अनुभूतियां आनंद में परिणत हो जाती हैं।

शैली और स्वरूप की दृष्टि से काव्य को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। शैली की दृष्टि से इसके तीन रूप दिखाई देते हैं- गद्य, पद्य और चंपू काव्य। स्वरूप की दृष्टि से काव्य को प्रमुखतया दो रूपों में देखा जा सकता है- दृश्य और श्रव्य। श्रव्य काव्य को पुन: दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है- प्रबंध और मुक्तक। प्रबंध के अंतर्गत महाकाव्य और खंड काव्य आते हैं। मुक्तक काव्य ऐसे पद्यों का समूह होता है जो पूर्वापर संबंध से मुक्त होते हैं। उसके छंद तक एक-दूसरे से निरपेक्ष होते हैं। आचार्यों ने मुक्तक का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि छंद में लिखे गए काव्य को पद्य कहते हैं। यदि वह मुक्त यानी दूसरे पद्य से निरपेक्ष हो तो उसे मुक्तक कहते हैं। मुक्तक काव्य की परंपरा हमें प्राचीन काल से प्राप्त होती है और संस्कृत में अनेक प्रकार का चमत्कार पाया जाता है। व्यापक रूप से मुक्तक अनिबद्ध काव्य है। इसमें किसी कथा या विचारसूत्र के स्थान पर उस छंद या पद्य को समझने की अपेक्षा नहीं रहती। क्योंकि वह अपने में ही परिपूर्ण होता है। संस्कृत साहित्य के आधार पर मुक्तक अनिबद्ध काव्य का एक भेद है।

गेय या गीति मुक्तक ऐसे मुक्तक होते हैं जिनमें गीति तत्व प्रमुख होता है। कवि की निजी अनुभूति की अभिव्यक्तियां होती हैं। सुख-दुख के आवेश के अंदर से स्वयं फूटते हुए उद्गार होते हैं। ये अभिव्यक्तियां मर्म को छूने वाली होती हैं और इनमें संगीतात्मकता की प्रधानता रहती है। चित्त को पिघला देने वाले भाव करुण और शृंगार के अधिक माने गए हैं, वात्सल्य के भाव भी ऐसे ही हैं। इन सब भावों से संबंधित उद्गार अच्छे गीति मुक्तक बन जाते हैं। प्रगीतात्मकता की मनोदशा में कवि अपने व्यक्तित्व के सबसे समीप होता है। इसके अंतर्गत मनोभावना के साथ-साथ ही शैली अर्थात कथन का ढंग भी विशेष महत्वपूर्ण होता है। इस प्रवृत्ति के अंतर्गत कवि संगीतमयी, मधुर रचना के सहारे अपनी निजी अनुभूतियों का प्रकाशन करता है। वह अपने ही व्यक्तित्व का विश्लेषण करता तथा अपने स्मरणीय पक्षों का सजीव चित्रण करता है।

प्रगीतों का अति स्वाभाविक रूप लोकगीतों में देखने को मिलता है। ये लोकगीत ग्राम्य मनुष्यों और विशेषकर नारियों के द्वारा किसी त्योहार, उत्सव, संस्कार के अवसर पर या नित्यप्रति काम करते समय गाए जाते हैं। इनके भीतर उस अवसर के अनुकूल व्यक्ति की बड़ी तीव्र भावना अंतर्निहित रहती है और स्वानुभूति का स्वर हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाला होता है।

रस सिद्धांत काव्यशास्त्र का मूल एवं महत्वपूर्ण सिद्धांत है। काव्यशास्त्रीय अध्ययन की परंपरा का आरंभ इसी सिद्धांत से किया जाता है। यह काव्य की आत्मा है। 'रसो वै स:' रस ही वह है। वह अर्थात् आत्मा, परमात्मा और अलौकिक शक्ति। आत्मा के अस्तित्व पर ही देह का अस्तित्व संभव है। भिन्न रूपों में उपस्थित परमात्मा की तरह यह भी भिन्न-भिन्न काव्यीय रूपों में आस्वादन का अनुभव कराता है। रस एक अलौकिक स्थिति है, आत्मानुभूति है, ब्रह्मानंद सहोदर है। काव्य के सृजन, पठन, श्रवण और देखने से सर्जक, दर्शक, पाठक और श्रोता उस भाव-भूमि पर पहुंच जाता है, जहां पर केवल निर्विकल्प, निर्लेप शुद्ध आनंदमयी चेतना का ही साम्राज्य होता है। उस भावभूमि को प्राप्त कर लेने की स्थिति का नाम ही रस

टिप्पणी

है। काव्य सहृदय सामाजिक को या सर्जक को उस भावभूमि पर पहुंचाकर ही सार्थक होता है। यदि वह ऐसा करने में, इस भावदशा तक पहुंचाने में असमर्थ है तो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं। उस शुद्ध, आनंदमयी स्थिति तक पहुंचने के लिए सर्जक एवं सहृदय को भी निर्मल हृदय का अधिकारी होना चाहिए। वह दुर्बल सांसारिक बंधनों की उपेक्षा कर काव्य के पठन, सृजन, श्रवण में डूब जाए तभी उस भाव भूमि तक पहुंच सकता है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रस परंपरा का प्रामाणिक ग्रंथ नाट्यशास्त्र को माना जाता है जिसे पांचवां वेद भी स्वीकार किया गया है। इसके प्रणेता आचार्य भरतमुनि रस की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले प्रथम आचार्य माने गए हैं यद्यपि इनसे पूर्व रस की चर्चा करने के संबंध में आचार्य नंदिकेश्वर एवं उनके ग्रंथ अभिनवदर्पण का उल्लेख किया जाता है किंतु इसके अप्रामाणिक एवं अप्राप्य होने के कारण भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही रस संबंधी प्रथम ग्रंथ ठहरता है।

रसानुभूति की आवश्यक शर्त है सहृदय होना। जो सहृदय है वह अपनी संवेदनाओं से प्रकृति के जड़-चेतन सभी के सुख-दुख को अनुभव कर सकता है। सरस प्रकृति के भीतर परमात्मा की उपस्थिति को अनुभव कर सकता है वह रसानुभूति में डूबकर ब्रह्मानंद को प्राप्त कर सकता है। रसानुभूति से पाया हुआ ब्रह्मानंद हृदय को शांति और मुख पर कांति बिखेर देता है। 'आनंद' आत्मा का स्वरूप एवं एक मुक्त प्राकृतिक, नैसर्गिक स्थिति है। काव्यानंद एवं ब्रह्मानंद में अंतर है। काव्यानंद में चित्त के विकार छिप जाते हैं, लुप्त होते हैं लेकिन बाद में उनके प्रत्यक्ष होने की संभावना शेष रहती है जबकि ब्रह्मानंद में विकारों का नाश हो जाता है और उनके प्रत्यक्षीकरण की कोई संभावना शेष नहीं रहती। ब्रह्मानंद को इसलिए चरम स्थिति माना गया है। काव्य में सांसारिक दुख भी सुख बनकर उपस्थित होता है इसलिए करुण रस के काव्य के दुखद वर्णनों को भी हम बार-बार पढ़ते हैं, रोते हैं और फिर पढ़ते हुए सुख का ही अनुभव करते हैं। इसलिए रस दशा 'आनंद' की ही द्योतक मानी गई है। 'रस' का स्वरूप 'ब्रह्म' के पर्याय के रूप में लिया गया है। 'रसो वै सः' रस ही वह ब्रह्म है। रस काव्यात्मा है यह सर्वमान्य और निर्विवाद है। ऋग्वेद, अग्निपुराण से लेकर अद्यतन चिंतन और व्याख्याओं के द्वारा रस की निरंतरता और प्रासंगिकता सिद्ध हो चुकी है। काव्य में रस की उपस्थिति वैसी ही अनिवार्य है जैसे जीवन के लिए आत्मा, श्वास। जब तक पृथ्वी पर जीवन है तब तक साहित्य रहेगा ही। साहित्य है तो रस रहेगा। रस है तो मनुष्य जीवंत रहेगा और साहित्य रचना में सन्नद्ध रहेगा। यह चक्र सृष्टि में आदि से है और अंत तक रहेगा।

भरतमुनि के अनुसार जब स्थायी भाव का विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के साथ संयोग होता है तब रस निष्पत्ति होती है। 'विभानुभाव व्यभिचारी संयोगात् रस निष्पत्तिः।' इस सूत्र के आधार पर रस के चार अवयव निश्चित हुए–स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव। रस निष्पत्ति के प्रश्न को हल करने के लिए भरत के रस सूत्र की टीकाकारों ने अपनी-अपनी तरह से व्याख्या की है। 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्दों का क्या तात्पर्य है? रस की निष्पत्ति किस प्रकार की और किसमें होती है? सामाजिक को, कवि को, विभाव को या अनुभाव को? चार प्रमुख टीकाकार हुए हैं–भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त। भरत के रससूत्र में आए 'निष्पत्ति' शब्द को 'उत्पत्ति' के अर्थ में लेते हुए

टिप्पणी

उत्पत्तिवादी भट्टलोल्लट ने उत्पत्तिवाद की प्रतिष्ठा की। इनका मानना है कि नाटक में रस मुख्यतः नायक-नायिका में ही उत्पन्न होता है परंतु उनका अभिनय द्वारा अनुकरण करने वाले नटों में उस रस की प्रतीति होती है। इस रस की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनों के संयोग से होती है।

काव्य में सदैव असाधारण या विशेष का ही प्रतिपादन किया जाता है। काव्य का वह विशेष जब साधारण या सामान्य रूप में प्रतिभाषित होने लगता है, तब वह स्थिति साधारणीकरण की स्थिति कहलाती है। जब काव्य में वर्णित 'राम', राम न रह कर एक सामान्य पुरुष और 'सीता', सीता न रहकर एक सामान्य युवती के रूप में भासित होने लगते हैं, तब साधारणीकरण की स्थिति होती है। यही काव्यात्मक साधारणीकरण कहलाता है। 'साधारणीकरण' का सामान्य या विशेष अर्थ यही होगा कि असाधारण का साधारण होकर मन के अनुकूल हो जाना। कवि अपने कौशल से जो रचना करता है सहृदय की मनःस्थिति कवि की मनःस्थिति के अनुकूल होकर समभाव के स्तर पर पहुंच जाती है और कवि तथा सहृदय के भावों में तादात्म्य स्थापित हो जाता है। सहृदय उसी शिद्दत से काव्य के भावों में डूबता-उतराता है जिस भाव सरिता में पैठ तक कवि ने रचना की। यही भाव साम्य 'साधारणीकरण' है।

'सहृदयता' हृदय की 'योग्यता', 'उत्कर्ष', 'संवेदनशीलता', 'आत्मसात् करने की क्षमता' का ही नाम है। जो जितना संवेदनशील होगा, योग्य हृदय का, उत्कर्षशील हृदय का स्वामी होगा, वह लोकोत्तर आनंदमय स्थिति को प्राप्त करने का अधिकारी होगा। हृदय की यह योग्यता साहित्य के अध्ययन, चिंतन-मनन की निरंतरता और अभ्यास से आती है। सभी का हृदय इसका अधिकारी नहीं होता। 'सहृदय' होने की योग्यता के लिए लंबे धैर्य और निरंतरता के साथ काव्यानुशीलनात्मक अभ्यास की आवश्यकता है। काव्य में रसानुभूति के लिए सहृदय का होना आवश्यक है।

इस प्रकार आपने जाना कि किस प्रकार सर्जक काव्य का सर्जन करता है और पाठक या श्रोता अर्थात सहृदय जब काव्य का रसानंद लेता है तो उसके हृदय में स्थित सुप्त स्थायी भाव विभावादिकों को ग्रहण करके रसानुभूति से सिक्त हो जाते हैं। सहृदय और कवि के बीच तादात्म्य स्थापित हो जाता है जब सहृदय काव्य का पठन या श्रवण करता है उस काव्य में निहित भाव उसे कवि के भावों से तादात्म्य स्थापित करने में सहायक बनते हैं। कवि के भावों से तादात्म्य स्थापित होते ही काव्य के भावों का असाधारणत्व साधारण होने लगता है। साधारणीकरण की इस प्रक्रिया से रस निष्पत्ति होती है और सहृदय काव्यानंद में डूबता हुआ ब्रह्मानंद की ओर बढ़ने लगता है।

1.13 मुख्य शब्दावली

- **उत्कंठा** : प्रबल इच्छा।
- **रसनिष्पत्ति** : रस का परिपाक।
- **व्यापक** : अपने में बहुत कुछ समेटे हुए।
- **रसान्वित** : रस युक्त।

टिप्पणी

- **ग्राह्य** : ग्रहण योग।
- **जडधी** : मूर्ख बुद्धि।
- **वाग्विशेष** : वाणी की विशेषता।
- **ब्रह्मानंदसहोदर** : परमात्मा से मिलन जैसा सुख देने वाला।
- **लोकोत्तर** : जो इस संसार से ऊपर/अलग हो।
- **स्वाकारवदभिन्नत्व** : अपने ही आकार के समान संयुक्त।
- **भुक्ति** : भोग।
- **निष्पत्ति** : परिपाक।
- **तादात्म्य** : तल्लीनता एकरूप हो जाना।
- **भुक्तिवाद** : भौतिकता।

1.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. भरतमुनि
2. नाट्यशास्त्र
3. शास्त्र ज्ञान
4. काव्य के स्वरूप और समस्या का
5. आचार्य विश्वनाथ
6. अग्निपुराण
7. छह
8. डॉ. नगेंद्र
9. दो
10. प्रतिभा
11. क्रोचे
12. क्रौंच-वध
13. तीन
14. दृश्य काव्य को
15. दृश्य काव्य
16. आख्यान
17. मुक्तक काव्य
18. हीगेल
19. रस सिद्धांत
20. तैत्तिरीय
21. आचार्य विश्वनाथ
22. ब्रह्म
23. चार
24. तैंतीस
25. दस
26. अभिनवगुप्त
27. साधारणीकरण
28. आचार्य भट्टनायक
29. अथर्ववेद
30. पाठक

1.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. काव्य के नामकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. काव्यशास्त्र के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. दृश्य काव्य से आप क्या समझते हैं? उसे पांचवें वेद की संज्ञा क्यों दी गई? स्पष्ट कीजिए।
4. आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के लक्षणों का विवेचन कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

   (क) कलागीत (ख) विनय प्रगीत (ग) लोकगीत।
6. रस के प्रमुख अंगों का परिचय देते हुए उनकी उपयोगिता बताइए।
7. काव्यशास्त्र में सहृदय के महत्व की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय काव्यशास्त्र के संस्कृत और संस्कृतेतर इतिहास की विशेषताओं का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. काव्य के लक्षणों की व्याख्या करते हुए इन लक्षणों के संस्थापकों का परिचय दीजिए।
3. काव्य के प्रयोजनों का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
4. काव्य हेतुओं से आप क्या समझते हैं? काव्य हेतु में प्रतिभा के महत्व को प्रतिपादित कीजिए।

टिप्पणी

5. मुक्तक काव्य की विशेषताओं की व्याख्या करते हुए मुक्तक के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
6. हिंदी काव्य में गीति काव्य के विविध रूपों का वर्णन करते हुए लोकगीतों की उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
7. रस को ब्रह्मानंद सहोदर क्यों माना गया है? विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
8. रस निष्पत्ति कैसे होती है? विस्तार से विवेचन कीजिए।
9. साधारणीकरण से आप क्या समझते हैं? साधारणीकरण की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए।

1.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. भगीरथ मिश्र, *काव्यशास्त्र*, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर-1957
2. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, *हिन्दी साहित्य में विविध वाद*, पद्मजा प्रकाशन कानपुर 2010-वि.सं.
3. डॉ. वेंकट शर्मा, भूमिका नगेंद्र, *आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास*, आत्माराम एंड संस दिल्ली-1967
4. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *काव्य दर्पण*, साहित्यागार, जयपुर-1988
5. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान*, साहित्यागार जयपुर -1988
6. सत्यदेव मिश्र, *पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांत और वाद*, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा,1975
7. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, *सहृदय और साधारणीकरण*, हिंदुस्तान एकेडमी इलाहाबाद, 1984
8. डॉ. लक्ष्मी पांडेय, *अधुनातन काव्यशास्त्री : आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी*, उर्मिल प्रकाशन, गाजियाबाद।

टिप्पणी

इकाई 2 काव्यशास्त्रीय संप्रदाय

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 अलंकार संप्रदाय
  2.2.1 अलंकार की अवधारणा
  2.2.2 अलंकार सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं
  2.2.3 अलंकारों का वर्गीकरण
  2.2.4 प्रमुख अलंकार
2.3 रीति संप्रदाय
  2.3.1 रीति का स्वरूप
  2.3.2 रीति और शैली
  2.3.3 काव्य-गुण
  2.3.4 रीति सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं
2.4 ध्वनि संप्रदाय
  2.4.1 ध्वनि का स्वरूप
  2.4.2 ध्वनि सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं
  2.4.3 ध्वनि काव्य के प्रमुख भेद
2.5 वक्रोक्ति संप्रदाय : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं
  2.5.1 वक्रोक्ति का स्वरूप
  2.5.2 वक्रोक्ति के भेद
  2.5.3 वक्रोक्ति और अभिव्यंजना
2.6 औचित्य सिद्धांत : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं
  2.6.1 औचित्य का स्वरूप
  2.6.2 औचित्य की प्रमुख स्थापनाएं
  2.6.3 औचित्य के भेद
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

काव्य शास्त्र का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत 'अलंकार सिद्धांत' है। रस आत्मा है तो अलंकार काव्य का शरीर है। अलंकार काव्य शरीर के बाह्य धर्म हैं तथा गुणालंकार के रूप में आंतरिक धर्म भी है इसलिए इसे काव्य की आत्मा मानने का विवाद भी चला। अलंकार शोभावर्धक आभूषण हैं जो काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' अर्थात शब्द और अर्थ से मिलकर काव्य बनता है। इसी को आधार बनाकर अलंकार के इन प्रकारों का अध्ययन किया गया है– शब्दालंकार, अर्थालंकार। अलंकारों का वर्गीकरण अर्थात अलंकारों के भेदों या प्रकारों के साथ 'अलंकार' की अवधारणा, विभिन्न विद्वानों द्वारा अलंकार सिद्धांत की स्थापनाओं की जानकारी इस शीर्षक के अंतर्गत प्राप्त होती है।

टिप्पणी

रीति संप्रदाय सदैव प्रासंगिक रहा है। मनुष्य जीवन हो या काव्य रचना (साहित्य रचना) जीने व रचने की कोई न कोई रीति होती है अतः काव्यशास्त्र के इस महत्वपूर्ण सिद्धांत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। रीति काव्यात्मा नहीं हो सकती। यह एक साधन है। साध्य तक पहुंचने का। आचार्य वामन ने इसे प्रतिष्ठित करके काव्यशास्त्र पर उपकार किया है। यह सिद्धांत अन्य लक्षणों का साथी हैं और सभी सिद्धांत एक दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं।

आगे चलकर आचार्य आनंदवर्धन ने ध्वनि को काव्यात्मा घोषित किया। ध्वनि काव्यात्मा तो नहीं है लेकिन रस जो काव्यात्मा है की सहायक, उपकारक हो सकती है। ध्वनि अर्थात व्यंजना जिसका संबंध वक्रोक्ति से भी है। अतः ध्वनि और अलंकार का घनिष्ठ संबंध है। आनंदवर्धन का ग्रंथ 'धवन्यालोक' प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो ध्वनि को व्याख्यायित करता है तथा अन्य काव्य लक्षणों से इसके संबंध को दर्शाता है।

काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति सिद्धांत का स्थान विशेष महत्व का है। वक्रोक्ति, व्यंजना के माध्यम से अलंकार और ध्वनि से संबंधित है, अतः यह विस्तृत अध्ययन को आधार प्रदान करता है। आचार्य कुंतक ने 'वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्' कहकर इसे काव्य की आत्मा घोषित किया है। यह काव्यात्मा तो नहीं है लेकिन काव्यात्मा तक पहुंचने का सर्वोत्तम साधन है। वक्रोक्ति करना, कहना, लिखना साहस और नैतिकता की मांग करता है। इसके मूल में सत्य छिपा रहता है अतः यह महत्वपूर्ण दार्शनिक व्याख्या उपस्थित करने वाला सिद्धांत है।

काव्यशास्त्र का अंतिम मान्य सिद्धांत औचित्य है जिसकी चर्चा लगभग सभी आचार्यों ने प्रथम सिद्धांत 'रस' के समय से ही की है। भरतमुनि से अद्यतन सभी आचार्य औचित्य के महत्व को स्वीकार करते हैं। यह काव्यात्मा रस की भी आत्मा माना गया है। औचित्य सिद्धांत के प्रणेता या व्यवस्थापक आचार्य क्षेमेंद्र ने 'औचित्य विचार चर्चा' में इसके संपूर्ण स्वरूप पर प्रकाश डालकर यह सिद्ध किया है कि जीवन और साहित्य के हर क्षेत्र में औचित्य आवश्यक है।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- काव्यशास्त्र के अलंकार संप्रदाय की अवधारणाओं से परिचित हो पाएंगे;
- अलंकारों के वर्गीकरण की सूची तैयार कर पाएंगे;
- रीति संप्रदाय की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- रीति के स्वरूप एवं शैली का विश्लेषण कर पाएंगे;
- रीति सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाओं का विवेचन कर पाएंगे;
- ध्वनि संप्रदाय की अवधारणाओं एवं स्वरूप का अध्ययन कर पाएंगे;
- ध्वनि सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाओं को जान पाएंगे;
- ध्वनि काव्य के प्रमुख भेदों की समीक्षा कर पाएंगे;
- वक्रोक्ति संप्रदाय के स्वरूप एवं मूल स्थापनाओं का वर्णन कर पाएंगे;
- वक्रोक्ति के भेद एवं अभिव्यंजना पक्ष का विश्लेषण कर पाएंगे;
- औचित्य सिद्धांत के स्वरूप को परिभाषित कर पाएंगे;
- औचित्य सिद्धांत की मूल स्थापनाओं का परीक्षण कर पाएंगे।

टिप्पणी

2.2 अलंकार संप्रदाय

'अलंकार' का सामान्य अर्थ है–गहना या आभूषण जो देह की शोभा बढ़ाते हैं। काव्य के संदर्भ में भी इसे शोभा बढ़ाने वाले धर्म और तत्व के रूप में लिया जाता है। बाह्य तत्वं के रूप में काव्य को अलंकृत करने वाले शब्दालंकार तथा धर्म के रूप में शब्द की आत्मा में धारित यानी अर्थ को अलंकृत करने वाले अर्थालंकार। काव्य की आत्मा 'रस' है या अन्य कोई लक्षण इस तर्क-वितर्क के आरंभिक दौर में सर्वप्रथम अलंकार सिद्धांत का जन्म हुआ। काव्य की आत्मा अलंकार है, ऐसा मत इस सिद्धांत के अंतर्गत स्थिर हुआ। आचार्य भामह इस संप्रदाय के प्रवर्तक हैं। आचार्य रुद्रट एवं जयदेव ने इस सिद्धांत को प्रतिष्ठा प्रदान की।

2.2.1 अलंकार की अवधारणा

'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से मानी जाती है–(1) **अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः** और (2) **अलंकरोति इति अलंकारः**। पहली व्याख्या के अनुसार अलंकार की प्रतिष्ठा एक उपादान या 'करण' के रूप में सिद्ध होती है और यह काव्य के मूल से उसका पार्थक्य बताती है। दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार काव्य का वह तत्व है जो उसे (काव्य को) सुंदर बनाता है। अर्थात यह काव्य का ही एक अंग है जो उसका सौंदर्याधायक तत्व है। अलंकारवादियों ने इन दोनों ही व्युत्पत्तियों को आधार मानकर यथास्थान और यथावश्यकता अलंकार की व्याख्या और उसकी महत्ता का दिग्दर्शन कराया है।

2.2.2 अलंकार सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं

अलंकारवादियों ने अलंकार को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए अलंकार रहित रचना को काव्य मानने से इनकार किया है। ऐसी घोषणा सर्वप्रथम भामह ने की। उनके अनुसार नारी का मुख सुंदर होते हुए भी आभूषणों के बिना शोभा नहीं देता–

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्।' अलंकारवादियों ने 'शोभा' शब्द का प्रयोग काव्य के मुख सौंदर्य के अर्थ में या फिर उसकी आत्मा के अर्थ में किया है। भामह की उक्त पंक्ति से स्वतः सिद्ध होता है कि 'भामह' की दृष्टि में वनिता के स्वाभाविक सौंदर्य का अलंकारों के बिना कोई मूल्य नहीं है। भामह कथन के दो रूप मान कर चलते हैं–

(1) कथन का प्रकृत रूप अर्थात अनलंकृत रूप और (2) रमणीय अर्थात अलंकृत रूप। इनमें प्रथम अकाव्य या वार्ता है तथा दूसरा अपने समग्र रूप में काव्य है और यही अलंकार है। वस्तुतः भामह ने अलंकार और अलंकार्य में भेद नहीं किया, क्योंकि उनकी

टिप्पणी

दृष्टि में समग्र काव्य ही अलंकार है। अत: उससे भिन्न किसी अन्य तत्व की कल्पना उनकी सीमा से बाहर की वस्तु थी। अलंकार और अलंकार्य की धारणा का श्रीगणेश ध्वनिवादियों ने किया था। कुंतक की दृष्टि भी इस तथ्य की ओर गई थी किंतु उन्होंने इसे केवल प्रतिपादन का माध्यम मात्र स्वीकार किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में 'शब्द' 'अर्थ' और 'अलंकार' की समष्टि का नाम काव्य है। इन्हें एक दूसरे से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। भामह ने अलंकार के मूल में अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति को माना है। उक्ति की अतिशयता या चमत्कार ही अलंकार है और वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति में कोई अंतर नहीं है। दोनों का अर्थ ही 'विशिष्ट उक्ति' है। अंत में भामह अपने मंतव्य को पूर्णत: स्पष्ट कर देते हैं, जब यह कह देते हैं कि 'कोऽलंकारोऽनया विना' अर्थात वक्रोक्ति के अभाव में किसी भी अलंकार की कल्पना नहीं कर सकते। वक्रोक्ति के द्वारा ही अर्थ का विभावन होता है अर्थात अर्थ में वैचित्र्य आ जाता है। भामह ने अतिशयोक्ति को 'लोकातिक्रांतगोचरा' अर्थात शब्दार्थ के इतिवृत्त कथन से भिन्न चमत्कारपूर्ण प्रयोग कहा है और उसे ही फिर वक्रोक्ति कह दिया है–'सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति:' इससे स्पष्ट है कि 'वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति' दोनों ही 'लोकातिक्रांत गोचरा' अर्थात लोककथन से भिन्न विशिष्ट अर्थ का द्योतन कराने वाला कथन वक्रोक्ति है।

भामह ने अन्य का संकेत देते हुए 'स्वभावोक्ति' को भी एक अलंकार के रूप में अपनी स्वीकृति दी है, क्योंकि इन्होंने उक्त अलंकार का लक्षण भी दिया है और उदाहरण भी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भामह इसे एक अलंकार के रूप में स्वीकार करते हैं।

सर्वप्रथम अलंकारों का क्रमबद्ध वैज्ञानिक विवेचन 'काव्यालंकार' में भामह ने किया। भामह ने अपने पूर्ववर्ती 'मेधाविन' का उल्लेख किया है जिससे यह पता चलता है कि अलंकार परंपरा पहले से चली आ रही है। लेकिन 'मेधाविन' या किसी भी रचनाकार का अलंकार संबंधी कोई ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण 'काव्यालंकार' को ही अलंकार संप्रदाय का प्रथम प्रामाणिक, उपयोगी और महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। भरत ने इससे पूर्व 'नाट्यशास्त्र' में अलंकारों का वर्णन करते हुए उपमा, रूपक, दीपक और यमक चार अलंकारों को मान्यता दी थी। 'उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा। काव्यस्यैते अलंकाराश्चत्वार: परिकीर्तिता:।' बाद में लगभग सभी आचार्यों ने अलंकारों की सत्ता को स्वीकार किया। किसी ने अलंकारों को काव्य का मुख्य तत्व माना तो कुछ ने काव्य में अलंकारों का महत्व है, ऐसा स्वीकार किया। भामह कहते हैं काव्य की आत्मा अलंकार है रस आदि का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि वे अलंकारों में ही उनका अंतर्भाव स्वीकार करते हैं।

'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृति:' अर्थात वे शब्द और अर्थ के वैचित्र्य को अलंकार की संज्ञा देते हैं। यह विचित्रता वक्रोक्ति में भी पाई जाती है अत: कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य की आत्मा है और अलंकारों में वक्रोक्ति का स्थान मुख्य है। वक्रोक्ति अलंकारों को जीवन देने वाला तत्व है। भामह की दृष्टि में वक्रोक्ति से रहित कोई अलंकार नहीं होता। भामह कहते हैं–**'सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते। यत्नोऽस्यांकविना कार्य: कोऽलंकारोऽनया विना।'**

टिप्पणी

रुद्रट वक्रोक्ति को शब्दालंकार और वामन अर्थालंकार मानते हैं क्योंकि इसमें शब्द और अर्थ दोनों की विचित्रता होती है। भामह के बाद दंडी का मत महत्वपूर्ण है। वे काव्य के सौंदर्य को बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार मानते हैं–**'काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।'**

अलंकार को काव्य का नित्यधर्म मानते हुए उन्होंने अतिशयोक्ति को अलंकारों का सर्वस्व बताया–

'अलंकारान्तराणामप्येकमाहु: परायणम्।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम्।।

दंडी ने काव्य के परिप्रेक्ष्य में अलंकारों को स्पष्ट किया है जबकि भामह ने सिद्ध किया कि–"काव्य एक स्वतंत्र एवं अपने में पूर्ण इकाई है।" फलत: दंडी ने काव्य-सौंदर्य के सभी तत्वों को अलंकार के अंतर्गत समाहित करने का प्रयास किया है। आपके अनुसार काव्य का विषयगत सौंदर्य सामान्य अलंकार का अंग है तो शैलीगत सौंदर्य विशेष अलंकार में समाहित हो जाता है। दंडी ने रसों को भी रसवत् अलंकारों के अंतर्गत सन्निविष्ट कर अलंकार्य और अलंकार की अभिन्नता की घोषणा कर दी। उधर दूसरी ओर दंडी वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति में अंतर मान कर चलते हैं किंतु भामह जहां स्वभावोक्ति को अलंकार मान कर उसे वक्रोक्ति के अंतर्गत परिगणित कर लेते हैं, वहां दंडी इसे इससे भिन्न रूप में स्वीकार करते हैं। उन्होंने समस्त वाङ्मय को दो वर्गों–स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में विभाजित कर स्वभावोक्ति का शास्त्रादि में साम्राज्य बताया है तथा वक्रोक्ति को इससे भिन्न चमत्कारपूर्ण उक्ति का पर्याय कहा है। आपका कथन इस प्रकार है–

आगे चल कर दंडी स्पष्ट कर देते हैं कि 'शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यम्'। काव्यादर्श की हृदयंगमा टीका में स्पष्ट करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि 'वक्रोक्ति शब्देन उपमादय: संकीर्णपर्यन्ता अलंकारा उच्यन्ते।' दंडी ने वक्रोक्ति के मूल में चमत्कार के लिए किसी-किसी रूप में 'श्लेष' का योग माना है–'श्लेषो सर्वासु पुष्णाति प्राय: वक्रोक्तिषु श्रियम्'। यहां पर वे चमत्कार का श्रेय अकेली वक्रोक्ति को न देकर 'श्लेष' को भी महत्व प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं। दूसरी ओर भामह की तुलना में दंडी स्वभावोक्ति को अलंकार मानते हैं किंतु उसे वक्रोक्ति से भिन्न आद्य अलंकार के रूप में स्वीकार कर उसे शास्त्रीय उक्तियों की प्रयोजक बता कर एक प्रकार से काव्य-जगत् से बहिष्कृत कर देते हैं और स्वभावोक्ति को अनिवार्य न मानकर वांछनीय ही मानते हैं।

वामन की भी गणना एक रूप से अलंकारवादियों में की जाती है। अंतर केवल इतना है कि जहां भामह और दंडी काव्य में अलंकार को कारक धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं, वहां वामन अलंकार की शोभा को अतिशयता प्रदान करने वाले एक सहायक तत्व के रूप में प्रतिपादित करते हैं–**काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा: तदतिशय- हेतवस्त्वलंकारा:।** अर्थात काव्य का शोभाकारक धर्म गुण है और अलंकार उन्हें अतिशयता प्रदान करते हैं। किंतु एक अन्य स्थल पर वे अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची बता देते हैं, यथा–सौंदर्यालेकार:। साथ ही यह भी कहते हैं कि 'काव्य अलंकार के कारण ही ग्राह्य होता है–'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्'। ये दोनों उक्तियां यदि देखा जाए तो पूर्वोक्त कथन 'तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:' और 'रीतिरात्मा काव्यस्य' के विपरीत सी जान पड़ती है। आधुनिक आलोचक तो सौंदर्य को

टिप्पणी

ही काव्य का प्राण मानते हैं और स्वयं वामन भी यह मानते हैं कि काव्य अलंकार के कारण ही ग्राह्य होता है, तब रीति और गुण के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है। वामन ने भी संभवत: अपने कथन के विरोधाभास को समझ लिया था। फलत: आगे के सूत्रों में उन्हें अपने कथन में सुधार करना पड़ा कि गुण काव्य का नित्य धर्म है और अलंकार अनित्य धर्म है। फलत: 'गुण' काव्य में सौंदर्य की सृष्टि कर सकता है किंतु अकेला अलंकार काव्य में सौंदर्य की सृष्टि नहीं कर सकता।

कुंतक के अनुसार काव्य न तो अलंकार है न अलंकार्य, बल्कि दोनों का समन्वित रूप ही काव्य है अर्थात सालंकार काव्य का ही काव्यत्व है। इससे स्पष्ट है कि कुंतक काव्य में अलंकार के पक्षधर हैं किंतु वे अलंकार को काव्य का शोभाकारक धर्म नहीं मानते। कुंतक ने वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति को पृथक-पृथक मान कर स्वभावोक्ति को अलंकार्य और वक्रोक्ति को अलंकार की संज्ञा से अभिहित किया है। कुंतक का कथन है कि स्वभावोक्ति का अर्थ है– स्वभाव ही उक्ति का विषय अथवा वर्ण्य विषय है। यदि वही अलंकार हो जाए तो उससे मिले शरीर स्थित कौन सी वस्तु रह जाएगी, जो अलंकार्य कहलाएगी अर्थात कुछ नहीं। स्वभाव कथन तो काव्य का शरीर है और यदि वही अलंकार हो जाए तो वह दूसरे किसको अलंकृत करेगा? कहीं कोई स्वयं अपने कंधे पर भी चढ़ सकता है? इन सबको अधिक स्पष्ट करते हुए कुंतक एक स्थान पर लिखते हैं कि 'अन्य पर्याय शब्दों के रहते हुए भी विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक शब्द ही वस्तुत: शब्द है।' इसी प्रकार सहृदयों के हृदय को आनंदित करने वाला अपने स्वभाव से सुंदर अर्थ ही वास्तव में अर्थ है। ये दोनों (शब्द और अर्थ) ही अलंकार्य होते हैं। वैदग्ध्य-पूर्ण उक्ति रूप वक्रोक्ति ही उन दोनों का अलंकार है।

आचार्य उद्‌भट का नाम भी अलंकारवादी आचार्यों में आता है। इन्होंने भामह के काव्यालंकार की टीका की तथा 'काव्यालंकार सार संग्रह' ग्रंथ की रचना की। इन्होंने गुण और अलंकार को अभिन्न माना। उद्‌भट अलंकार को काव्य का अभिन्न अंग मान कर चलते हैं और उनकी दृष्टि कुंतक की तरह की 'सालंकारं काव्यता' को ही मान कर चलती है। दूसरी ओर वे गुण और अलंकार को काव्य में चारूता का द्योतक मानते हैं। वक्रोक्ति को अलंकार के मूल में होने को अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं किंतु दूसरी ओर स्वभावोक्ति को भामह की तरह अकाव्य नहीं मान कर उसे एक अलंकार के रूप में मानते हैं किंतु दंडी की तुलना में वे इसके क्षेत्र को सीमित कर देते हैं। भोजराज ने 'अलंकारैरलंकृतम्' का भी प्रतिपादन किया–

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन्कीर्तिंप्रीतिं च विन्दति॥

रुद्रट के अनुसार 'वास्तव' अलंकार है और 'वास्तव' अलंकार का यह लक्षण है– 'वास्तव' में वस्तु के स्वरूप का कथन होता है किंतु इसका पुष्टार्थ (रमणीयार्थ) वैपरीत्य, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष आदि पर निर्भर नहीं रहता।' इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रुद्रट 'वास्तव' अलंकार में अप्रस्तुतविधान को स्वीकार नहीं करते तथा वस्तु के स्वरूप कथन में भी चमत्कार के अभिनिवेश को स्वीकार करते हैं। संभवत: वह वस्तु के प्राकृत सौंदर्य का वाचक है; जैसे–

टिप्पणी

वास्तवमिति तज्ज्ञेयं क्रियते वस्तु-स्वरूपकथनं यत्।
पुष्टार्थमविपरीतं निरुपममनतिशयम् अश्लेषम्॥

ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्रट वस्तु के आकृतिगत प्राकृत सौंदर्य को अधिक महत्व देते हैं। महिम भट्ट के अनुसार चारुत्व ही अलंकार है। यह चारुत्व वैचित्र्य का ही पर्याय है। अत: शब्दार्थ की विच्छिति ही अलंकार है। यहां पर विचारणीय विषय दो हैं–(1) चारूत्व के बिना (वस्तु के अपकर्ष और उत्कर्ष) काव्य आस्वाद्य नहीं होता, किंतु (2) कवि अलंकार की सिद्धि के लिए नहीं अपितु रस या सौंदर्य सिद्धि के लिए काव्य रचना करता है। अलंकार तो स्वत: ही सौंदर्य सिद्धि के लिए काव्य में प्रविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि अलंकार रस के साथ बिना किसी प्रयत्न के ही सिद्ध हो जाते हैं। उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि महिम भट्ट की दृष्टि से काव्य में अलंकारों की क्या स्थिति है। वे काव्य के अंग हैं या अंगी हैं। इसके साथ-साथ महिम भट्ट ने स्वभावोक्ति को अलंकारत्व प्रदान करने में अलंकार और अलंकार्य के एकत्व को पुष्ट कर दिया है। इससे रस की स्थिति पुन: डावांडोल हो जाती है अथवा यूं कहें कि अलंकार्यत्व के लिए अवसर नहीं रह जाता क्योंकि वे विशिष्ट स्वरूप कथन को स्वभावोक्ति अलंकार मान लेते हैं।

जयदेव की दृष्टि में अलंकार से रहित उक्ति को काव्य मानना वैसा ही है जैसे अग्नि को उष्णता रहित मानना। ये पंक्तियां ही अलंकारों के प्रति जयदेव के अनुराग को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। जयदेव की दृष्टि में अलंकारों के बिना काव्य का काव्यत्व ही दांव पर लग जाता है और उसके अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षण–'शब्दार्थावनलंकृती पुन: क्वापि'–का खंडन करते समय जयदेव ने कहा कि जो व्यक्ति अलंकार रहित काव्य को काव्य मानते हैं वे विद्वान अग्नि को भी उष्णता रहित क्यों नहीं मान लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि न तो अग्नि उष्णता रहित हो सकती है और न ही काव्य अलंकार रहित हो सकता है–

अंगीकरोतिः यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्माद् अनुष्णमनलंकृती॥

जयदेव की दूसरी मौलिकता इस तथ्य में निहित है कि वे अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति को काव्य का मूल स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार उपमादि अलंकारों में वक्रता की समानता रहते हुए भी प्रत्येक अलंकार में परस्पर अंतर रहता है, जिस प्रकार मुख के उपांगों में समानता रहते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति के मुख में विलक्षणता रहती है।

अलंकारवादियों के अतिरिक्त ध्वनिवादी, वक्रोक्तिवादी रीतिवादी आचार्यों ने भी 'अलंकार' पर अपने विचार व्यक्त किए। किसी ने काव्य में इनके महत्व को स्वीकार किया। किसी ने कहा कि काव्य में अलंकार हों तो ठीक है न हों तो भी ठीक है। काव्य के काव्यत्व में कोई अंतर नहीं आएगा क्योंकि काव्य की आत्मा रस है या काव्य की आत्मा ध्वनि है आदि। कुछ ने ध्वनि, रस, रीति, गुण आदि को भी काव्य के लिए अलंकार माना। किसी ने अलंकारों को रस का सहायक माना, किसी ने रस का आश्रित माना। किसी ने इन्हें रस के उन्मीलक तत्व के रूप में स्वीकार किया तो किसी ने कहा कि ये काव्य की आकर्षण शक्ति

टिप्पणी

बढ़ाते हैं। भावों के स्पष्टीकरण के लिए भी किसी ने इन्हें आवश्यक माना किंतु अंतत: भाव ही रस है ऐसा मानते हुए बात अपनी जगह लौट आई। अपनी-अपनी मान्यताओं, विचारों, दृष्टिकोण के अनुरूप अलंकार सिद्धांत की प्रतिष्ठा बनी रही। यह प्रासंगिकता नई कविता तक निरंतर जारी है।

2.2.3 अलंकारों का वर्गीकरण

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन हमें भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। भरत ने अपने ग्रंथ में 'उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक' इन चार अलंकारों का उल्लेख किया है। उपमा के पांच भेदों का उल्लेख भी भरत ने किया है तथा 'अन्य भेद भी हो सकते हैं' का संकेत भी दिया है। 'यमक' के भी अनेक भेदों का उल्लेख मिलता है।

भरत के पश्चात भामह और दंडी ने अनेक अलंकारों को चिह्नित किया तथा उनके लक्षणों एवं उदाहरणों का विस्तार से विवेचन किया। इन्होंने अलंकारों की संख्या को चालीस तक पहुंचा दिया। इतना ही नहीं दंडी ने यमक के तीन सौ पंद्रह भेदों का भी उल्लेख किया है तथा उपमा के बत्तीस भेद बताए हैं। भामह की तुलना में दंडी ने अर्थालंकारों का विस्तार से विवेचन किया था। दोनों ही आचार्य अलंकार के दो भेद–(1) शब्दालंकार और (2) अर्थालंकार – प्रस्तुत कर चुके हैं। इनके पश्चात उद्भट ने सर्वप्रथम अलंकारों का वर्ग विभाजन किया। इन्होंने 'इकतालीस' अलंकारों का विवेचन किया है। रीतिवादी वामन ने केवल बत्तीस अलंकारों का विवेचन किया है।

अलंकारवादियों में सर्वप्रथम 'रुद्रट' ने अलंकारों का साधार वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। रुद्रट ने लगभग छियासठ अर्थालंकारों एवं पांच शब्दालंकारों का विवेचन अपने ग्रंथ में किया है। रुद्रट के पश्चात मम्मट के अलंकार विवेचन को काव्यशास्त्र में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इन्होंने छह शब्दालंकारों और इकसठ अर्थालंकारों का विवेचन किया है।

रुय्यक के अनुसार अलंकारों का वर्गीकरण इस प्रकार है–(1) शब्दालंकार, (2) अर्थालंकार। अर्थालंकार को पुन: पांच वर्गों में विभाजित किया गया है–(1) सादृश्य मूलक, (2) विरोध मूलक, (3) शृंखला मूलक, (4) न्याय मूलक और (5) गूढ़ार्थप्रतीति मूलक।

(1) **शब्दालंकार**–शब्दालंकार वहां होते हैं, जहां कथन का चमत्कार उसमें प्रयुक्त शब्दों की आवृत्ति पर निर्भर करता है। यदि उक्ति में से संबद्ध शब्दों को हटा कर उनके पर्यायवाची शब्द उक्ति में रख दिए जाएं तो उक्ति का वह चमत्कार भी समाप्त हो जाता है। अत: शब्द पर ही आधारित होने के कारण इन्हें शब्दालंकार कहा जाता है। इनमें प्रमुख अलंकार हैं–अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास, श्लेष, वक्रोक्ति आदि।

(2) **अर्थालंकार**–अर्थालंकार वहां होते हैं, जहां अलंकार का सौंदर्य शब्द पर निर्भर न कर उसके अर्थ पर निर्भर करता है। किसी शब्द के स्थान पर उसके पर्यायवाची शब्द का प्रयोग कर दिए जाने पर भी उसका अलंकारत्व यथावत बना रहता है। अत:

टिप्पणी

ऐसे अलंकारों को अर्थालंकार की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इन अलंकारों को निम्नलिखित पांच वर्गों में विभाजत किया गया है–

- **सादृश्यमूलक अर्थालंकार**–इस वर्ग में वे अलंकार आते हैं जिनमें सादृश्य न होने पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत के सादृश्य का निरूपण किया जाता है।
- **विरोधमूलक अर्थालंकार**–जहां प्रस्तुत और अप्रस्तुत में विरोध का चमत्कार पूर्ण कथन होता है वहां विरोध मूलक अलंकार होते हैं। इसमें विरोध कवि कल्पित होता है वास्तविक विरोध नहीं होता। ऐसी उक्तियों में विरोध प्रतीत होते ही शांत हो जाता है और विरोध की शांति ही उक्ति का चमत्कार होता है। यह दृश्य ठीक इस प्रकार का होता है जैसे कि बादलों में क्षण भर को चमक कर बिजली छिप जाती है। जिस प्रकार बिजली की क्षणिक चमक दर्शकों को चमत्कृत कर देती है, उसी प्रकार अप्रस्तुत का क्षणिक विरोध काव्य रसिकों को चमत्कृत कर देता है।
- **शृंखलामूलक अर्थालंकार**–शृंखलामूलक अलंकारों की योजना वहां होती है, जहां प्रत्येक पद शृंखला की तरह परस्पर जुड़े रहते हैं। यह संबंध कभी कार्य-कारण भाव का होता है, कभी विशेषण-विशेष्य का तो कभी यह उत्कर्षापकर्ष भाव का होता है।
- **न्यायमूलक अर्थालंकार**–न्यायमूलक अलंकारों की अवस्थिति वहां पर होती है जहां पर उक्ति किसी लौकिक न्याय या वाक्य न्याय पर आधारित होती है। कहीं-कहीं तर्क के आधार पर न्याय का दिग्दर्शन कराया जाता है। काव्य लिंग, अलंकार इसी न्याय का प्रतिपादन करता है।

  कनक-कनक से सौ गुनी माद्कता अधिकाय
  इक खाए बौरात हैं इक पावत बौराय॥

  इस स्वर्ण में धतूरे से अधिक मादकता होती है। यहां प्रस्तुत अर्थ को तर्कन्याय से सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उसके खाने से नशा आता है किंतु इसके पाने मात्र से नशा आ जाता है। इसी प्रकार अन्य न्यायों को भी समझना चाहिए।
- **गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अर्थालंकार**–गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार वहां होते हैं, जहां अप्रस्तुत विधान के कारण संपूर्ण उक्ति से किसी अन्य अर्थ की रमणीय व्यंजना होती है। जहां प्रस्तुत अर्थ का अन्य अर्थ में न्यास होता है तथा व्यंग्यार्थ सदैव प्रतीयमान रहता है, वहां गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार ही माना जाना चाहिए।

पंडितराज जगन्नाथ ने अर्थालंकार को तीन वर्गों में विभाजित कर सादृश्य मूलक अलंकारों को पुन: दो वर्गों में विभाजित किया है–(1) जहां पर सादृश्य स्पष्ट एवं स्फुट होता है वहां पर स्फुट सादृश्य मूलक अलंकार होता है, जैसे–उपमा, रूपकादि। (2) जहां पर सादृश्य अस्फुट रहता है वहां पर अस्फुट सादृश्य मूलक अलंकार होते हैं, जैसे– दीपक, तुल्य योगिता आदि।

टिप्पणी

2.2.4 प्रमुख अलंकार

(1) **उपमा**–जहां उपमेय और उपमान में भेद रहते हुए भी उपमेय के साथ उपमान के सादृश्य का वर्णन हो वहां उपमा अलंकार होता है।

उपमा में चार तत्वों का होना आवश्यक है–(क) उपमेय, (ख) उपमान, (ग) समान धर्म, और (घ) वाचक शब्द।

(क) **उपमेय**–जिस वस्तु का उपमान के साथ सादृश्य का वर्णन होता है, उस वस्तु को उपमेय कहते हैं।

(ख) **उपमान**–जिस वस्तु के साथ उपमेय का सादृश्य बताया जाता है, वह वस्तु उपमान कहलाती है।

(ग) **समान धर्म**–दोनों वस्तुओं–उपमेय और उपमान–में समान रूप से पाए जाने वाले धर्म का कथन समान धंर्म कहलाता है।

(घ) **वाचक शब्द**–उपमेय और उपमान को समान धर्म के साथ जोड़ने वाले शब्द को वाचक कहा जाता है।

उपर्युक्त तत्वों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है जैसे–"मुख चंद्रमा के समान सुंदर है।" इस वाक्य में मुख का चंद्रमा के साथ सादृश्य बताया गया है इसलिए 'मुख' उपमेय है और चंद्रमा के साथ तुलना की जाने के कारण 'चंद्रमा' उपमान है। सुंदरता को दोनों का समान धर्म बताया गया है, जो चंद्रमा के समान मुख में भी विद्यमान है। अत: यहां पर 'सुंदर' शब्द समान धर्म है। इसी वाक्य में 'के समान' शब्द मुख और चंद्रमा को सुंदर (समान धर्म) के साथ जोड़ रहा है, इसलिए इसे वाचक शब्द कहा जाएगा। समानता बताने के कारण इसे सादृश्य वाचक भी कह सकते हैं। समान, सादृश्य सरिस सो, से, ज्यों, जैसे, जैसा, जिमि, लौ, तुल्य, सम आदि शब्द सादृश्य वाचक होते हैं।

उपमा को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, और मालोपमा।

- **पूर्णोपमा**–पूर्णोपमा अलंकार वहां होता है जहां उपमा के चारों अवयव–उपमेय, उपमान, समान धर्म और वाचक शब्द उपस्थित रहते हैं। इस अलंकार को पूर्णोपमा अलंकार इसलिए कहा जाता है कि इसमें उपमा अलंकार के लिए निश्चित चारों अवयव शब्द के द्वारा कथित रहते हैं। उदाहरण–**'पीपर पात सरिस मन डोला।'**

  उक्त पद्य में मन की तुलना पीपल के पत्ते के साथ की गई है इसलिए इसमें 'मन' उपमेय है और 'पीपर पात' उपमान। दोनों के चांचल्य को 'डोला' शब्द के द्वारा व्यक्त किया गया है जो इनमें पाए जाने वाले समान धर्म को भी व्यक्त करता है अत: वह समान धर्म है। 'सरिस' शब्द क्योंकि समानता को व्यक्त कर रहा है इसलिए यह वाचक शब्द है।

- **लुप्तोपमा**–जहां पर उपमा के उक्त चारों अंगों में से जब किसी एक अंग का वर्णन शब्द के द्वारा कथित नहीं होता, वहां लुप्तोपमा अलंकार होता है। इस

टिप्पणी

दृष्टि से लुप्तोपमा के चार भेद हो जाते हैं– (1) उपमेय लुप्तोपमा, (2) उपमान लुप्तोपमा, (3) समान धर्म लुप्तोपमा और (4) वाचक शब्द लुप्तोपमा।

कभी-कभी एक ही पद से दो-दो अंगों का लोप भी कर दिया जाता है, उदाहरण–'कोटि कुलस सम वचन तुम्हारा'। यह पद समान धर्म लुप्तोपमा का उदाहरण है। इसमें वचन उपमेय कुलिश उपमान और 'सम' वाचक शब्द का कथन तो है ही किंतु 'कठोर' का समान धर्म का कथन नहीं किया गया है। अत: समान धर्म का कथन न होने के कारण यह समान धर्म लुप्तोपमा है।

- **मालोपमा**–जहां एक उपमेय की अनेक उपमानों के साथ समानता का वर्णन किया जाता है वहां मालोपमा अलंकार होता है। उदाहरण–जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी, तैसे ही नाथ! पुरुष बिनु नारी।

(2) **उपमेयोपमा**–जहां पर उपमेय और उपमान परस्पर एक दूसरे के उपमेय और उपमान बन जाते हैं, वहां उपमेयोमपा अलंकार होता है। वस्तुत: यहां पूर्व कथित उपमेय उत्तर कथन में उपमान और पूर्व कथित उपमान उत्तर कथन में उपमेय बन जाता है अर्थात लेखक की दृष्टि में उन दोनों के अतिरिक्त उनकी समता के लिए कोई तीसरी वस्तु नहीं होती, जैसे–'वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।' उक्त पद के पूर्व कथन में वे उपमेय हैं और तुम उपमान किंतु उत्तर कथन में तुम उपमेय बन जाता है और 'उन' उपमान बन जाता है। इस कारण यह उपमेयोपमा अलंकार है। अन्य उदाहरण–राम के समान, शंभू, शंभू सम राम है।

(3) **अनन्वय**–अनन्वय अलंकार वहां होता है, जहां उपमेय को ही उपमान के रूप में प्रस्तुत किया जाए। इसका तात्पर्य यह है कि रचनाकार कार्य विषय की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए यह बताना चाहता है कि विश्व में दूसरी ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उस वस्तु की समता कर सके। इसलिए उपमेय को ही उपमान बना दिया जाता है। उदाहरण–

'उपमान विहीन रचा विधि ने, बस भारत के सम भारत है।'

उक्त पद्य में भारत की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए कवि ने भारत उपमेय के लिए भारत उपमान का ही वर्णन किया है अत: यहां अनन्वय अलंकार है। अन्य उदाहरण–

'सुंदर नंदकिशोर से, सुंदर नंदकिशोर।'

(4) **उदाहरण**–जहां पहले किसी सामान्य बात का कथन किया जाए और फिर उसे स्पष्ट करने के लिए उसी सामान्य के एक अंश विशेष का वाचक शब्दों के द्वारा निरूपण कर उनका अवयवावयवी भाव प्रकट किया जाए वहां उदाहरण अलंकार होता है। इसमें उपमेय वाक्य प्रधान होता है–

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे वर्णन युद्ध में, रस शृंगार न सुहात॥

टिप्पणी

(5) **प्रतीप**–'प्रतीप' का अर्थ होता है विपरीत। इसका अर्थ यह हुआ कि यह अलंकार उपमा से विपरीत अर्थात उलटा होता है। अत: इसको इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि जहां प्रसिद्ध उपमान का उपमेय की तुलना में अपकर्ष दिखाया जाता है वहां प्रतीप अलंकार होता है। उदाहरण–**उस तपस्वी से लंबे ये देवदारू दो चार खड़े।**–*कामयानी*

(6) **व्यतिरेक**–जहां गुणाधिक्य के कारण उपमान की तुलना में उपमेय का उत्कर्ष वर्णित होता है, वहां व्यतिरेक अलंकार होता है। वयतिरेक का अर्थ होता है उत्कर्ष या आधिक्य। अत: इस अलंकार के माध्यम से उपमेय का उत्कर्ष प्रदर्शित किया जाता है। जैसे–

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलिन वह, निसि-दिन यह विगसाय॥ *(बरवै रामायण)*

(7) **स्मरण**–जहां पहले से देखी हुई या अनुभव की हुई वस्तु का उसी के सदृश किसी अन्य वस्तु को देखकर या अनुभव कर, स्मरण हो आने का वर्णन हो, वहां स्मरण अलंकार होता है। जैसे– **भएउ कोलाहलु नगर मंझारी**
आवा कपि लंका जेहि जारी॥

(8) **असम**–जहां उपमेय के समान किसी उपमान के निषेध का वर्णन हो, वहां असम अलंकार होता है। 'असम' का अर्थ होता है जिसके समान कोई अन्य न हो। जैसे–

फलराज रसाल समान कहीं।
फल और मनोहर एक नहीं॥

(9) **रूपक**–जहां उपमेय का कथन कर उसका उपमान के साथ अभेद आरोपित किया गया हो, वहां पर रूपक अलंकार होता है। रूपक अलंकार में उपमेय पर उपमान का आरोप कर दिया जाता है अर्थात उपमेय को ही उपमान बता दिया जाता है या समझ लिया जाता है। जैसे–मुख चांद है। इस वाक्य में मुख को चांद बता दिया गया है। रूपक अलंकार के तीन भेद होते हैं–(1) निरंग रूपक, (2) सांग रूपक, (3) परंपरित रूपक।

- **निरंग रूपक**–जहां केवल उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है, वहां निरंग रूपक अलंकार होता है। प्रत्येक वस्तु मूल होती है और उसके अंग भी होते हैं। मूल वस्तु को 'अंगी' कहा जाता है। 'निरंग' शब्द का अर्थ ही होता है 'अंग रहित'। कुछ विद्वान इसे निरवयव रूपक भी कहते हैं। जैसे–

  विधु वदनी सब भांति संवारी। सोह न वसन बिना वर नारी।

- **सांग रूपक**–जहां पर उपमेय के सभी अंगों अथवा अवयवों पर उपमान के सभी अंगों या अवयवों का आरोप वर्णित हो, वहां पर सांग रूपक अलंकार होता है। इस अलंकार-रूप में अंगों सहित अंगी उपमेय पर अंगों सहित अंगी उपमान का आरोप किया जाता है। इसमें अनेक आरोप वर्णित होते हैं, जैसे–

  बीती विभावरी जाग री,
  अंबर पनघट में डुबो रही।
  तारा-घट ऊषा-नागरी।

टिप्पणी

इन पंक्तियों में अंबर में पनघट का, तारे में घट का और ऊषा में सुंदरी का आरोप किया गया है। यहां पर प्रात:काल के आकाश, तारा और उषा का कुएं के पनघट, घट और नागरी पर आरोप कर रात्रि के बीतने और प्रात:काल के आगमन का वर्णन किया गया है। अत: समस्त अंगों पर आरोप कथित होने से यहां पर सांग रूपक अलंकार है। सांग रूपक के पुन: दो भेद किए जाते हैं–(1) समस्त वस्तु विषय और (2) एकदेशविवर्ति।

(1) समस्त वस्तु विषय सांग रूपक अलंकार वहां होता है, जहां पर उपमेय और उपमान के समस्त अंगों का शब्दों के द्वारा कथन हो और (2) एकदेशविवर्ति सांग रूपक अलंकार वहां होता है, जहां पर कुछ अंगों का तो शब्द द्वारा कथन कर दिया जाता है और कुछ का आक्षेप से या प्रसंग से ग्रहण किया जाता है।

- **परंपरित रूपक**–जहां पर एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होता है, वहां पर परंपरित रूपक अलंकार होता है। परंपरित का अर्थ होता है परंपरा या क्रम। इस प्रसंग में कम से कम दो आरोप होते हैं जिनमें एक आरोप कारण होता है और दूसरा कार्य। कहने का तात्पर्य यह है कि एक आरोप कर देने के पश्चात दूसरे आरोप का निरूपण करना आवश्यक हो जाता है। जैसे–

  राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी। *(मानस)*

  उपर्युक्त चौपाई में रामकथा पर करताल (तालियों) का आरोप किया गया है और संशय पर पक्षी का आरोप किया गया है। यहां पर 'संशय-विहग' आरोप कार्य है और 'रामकथा-कर तारी आरोप', कारण है। अत: कार्य-कारण की परंपरा का चित्रण होने के कारण यहां पर परंपरित रूपक अलंकार है।

  परंपरित रूपक अलंकार दो प्रकार का होता है–(1) श्लिष्ट परंपरित रूपक और (2) अश्लिष्ट परंपरित रूपक अलंकार।

(10) **उल्लेख**–जहां एक वस्तु को अनेक प्रकार से वर्णित किया जाए, वहां उल्लेख अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं–1. प्रथम उल्लेख, 2. द्वितीय उल्लेख।

प्रथम उल्लेख–जहां एक ही वस्तु अनेक व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखी जाए अथवा वर्णिन की जाए वहां प्रथम उल्लेख होता है; जैसे

गज रक्षक वृद्धान ने, युवतिन ने श्रीकाँत।
असुर-तियन हरि लखे, रिसियाने नरकांत॥

जिस समय श्रीकृष्ण मथुरा में प्रविष्ट हुए तो वृद्ध नारियों ने उन्हें गज का उद्धार करने वाला, युवतियों ने लक्ष्मीकांत, असुरपत्नियों ने साक्षात विष्णु समझा जिन्होंने सक्रोध नरकासुर का वध किया। अत: यहां श्रीकृष्ण का विभिन्न दृष्टियों से वर्णन होने के कारण प्रथम उल्लेख है।

द्वितीय उल्लेख–जहां पर एक वस्तु एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न दृष्टि से देखी जाए अथवा वर्णित हो, वहां द्वितीय उल्लेख होता है; जैसे–

टिप्पणी

तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में।
तू प्रण है पवन में, विस्तार है गगन में।।

यहां कवि ने ईश्वर का विभिन्न दृष्टियों से अनेक रूपों में उल्लेख किया है, अतः यहां द्वितीय उल्लेख है।

(11) **अपह्नुति**–जहां उपमेय को नकार कर उपमान का आरोप किया जाए वहां अपह्नुति अलंकार होता है। इसके छह भेद हैं–

शुद्धापह्नुति–इसमें वास्तविक उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोपण किया जाता है; जैसे–**वे दो ओठ न थे, राधे, था एक फटा उर तेरा।**

यहां ओठों का निषेध करके उर का आरोप किया गया है।

हेत्वपह्नुति–जहां उपमेय के निषेध के कारण बताते हुए उपमान की स्थापना हो–

अभी उग्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवित करने आई, बन स्वतंत्रता नारी थी।

यहां लक्ष्मीबाई में मनुजत्व का निषेध करके उसके अवतारी होने की स्थापना की गई है। दूसरी पंक्ति में कारण देने से यह हेत्वपह्नुति है।

पर्यस्तापह्नुति–इसमें किसी वस्तु के धर्म का निषेध दूसरी वस्तु में उसके आरोप के लिए किया जाता है–

तेरे ही भुजनि पर भूतल को भार,
कहिबे को सेसनाग दिगनग हिमाचल है।

यहां सेसनाग, दिगनाग का निषेध कर उसका आरोप भुजबल पर किया गया है।

भ्रांतापह्नुति–इसमें सत्य बात प्रकट करके किसी के भ्रम को दूर किया जाता है–

आनन हैं, अरविंद न फूले, अलिंगन भूलैं कहा मंडरात हौ।
बोलती बाल, न बाजती बीन कहा सिगरे मृग घेरति जात हौ।।

यहां भ्रांति कवि-कल्पित है।

छेकापह्नुति–इसमें सत्य को छिपाकर असत्य के द्वारा भ्रांति दूर करने का प्रयास होता है–

आँखें अति सीतल भईं, दीन्हों ताप निहारि।
क्यों सखि पीतम को लखै, ना सखि, ससिहिं निहारि।।

यहां एक सखी अन्य सखी के भाव से अनजान है और प्रियतम दर्शन की बात पूछती है किंतु वह एकदम बात बदलकर चंद्रमा की बात करने को कहती है।

कैतवापह्नुति–जिसमें उपमेय का स्पष्ट निषेध न करके मिस, ब्याज, छल आदि शब्दों से निषेध किया जाए–

यों लछिराम छटा नख नौल तरंगनि गंग प्रभा फल पेनी।
मैथिली के चरनांबुज ब्याज लसै मिथिला जग मंजु त्रिवेनी।।

यहां 'चरणोदक' का निषेध 'ब्याज' से किया गया है।

टिप्पणी

(12) **संदेह**–जहां किसी वस्तु के संबंध में अनेक वस्तुओं का संदेह हो और सादृश्य के कारण अनिश्चय बना रहे, वहां संदेह अलंकार होता है। प्राचीन काव्य में यह संदेह किंवा, धौं, किधौं आदि तथा खड़ी बोली के काव्य में कि, क्या या तथा अथवा आदि शब्दों द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए–

मद भरे ये नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन है।

यहां 'नयन' के विषय में 'मीन' का संदेह होता है। 'या' संदेहवाचक शब्द का प्रयोग हुआ है।

(13) **भ्रम या भ्रांतिमान**–भ्रम का अर्थ होता है मिथ्या ज्ञान। जहां पर किसी सदृश वस्तु में अर्थात उपमेय में अन्य वस्तु अर्थात उपमान के सुंदर कल्पित मिथ्या ज्ञान का वर्णन होता है, वहां पर भ्रम, भ्रांति या भ्रांतिमान अलंकार होता है। उदाहरण–

पाय महावर देन को नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एडी मीड़त जाय।। *–बिहारी*

यहां नाइन ने भ्रमवश एड़ी की लाली के कारण एड़ी को ही महावर समझ लिया।

(14) **उत्प्रेक्षा**–जहां प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत वस्तु की संभावना अर्थात उत्कृष्ट कल्पना का वर्णन हो, वहां पर उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा का व्युत्पत्ति परक अर्थ होता है किसी वस्तु को उत्कट या प्रकृष्ट रूप से देखना। इसमें जनु, मानों, मनु, इव आदि वाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके पहले दो भेद किए जाते हैं– (1) वाच्या और (2) प्रतीयमान। वाच्या में वाचक शब्दों का प्रयोग आवश्यक होता है जबकि प्रतीयमान में व्यंग्य की प्रधानता रहने के कारण वाचक शब्दों का अभाव पाया जाता है। वाच्योत्प्रेक्षा के पुनः तीन भेद किए जाते हैं–(1) वस्तूत्प्रेक्षा, (2) हेतूत्प्रेक्षा और (3) फलोत्प्रेक्षा। उदाहरण–

पंथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भक्ति जनु धरे सरीरा। *(मानस)*

(15) **अतिशयोक्ति**–'अतिशयोक्ति' का अर्थ है उक्ति की अतिशयता अर्थात किसी कथन को सामान्य रूप में प्रस्तुत न कर उसे बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाए वहां पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। इसके प्रमुख छह भेद किए हैं– (1) रूपकातिशयोक्ति, (2) भेदकातिशयोक्ति, (3) संबंधातिशयोक्ति, (4) अक्रमातिशयोक्ति, (5) चपलातिशयोक्ति और (6) अत्यंतातिशयोक्ति।

- **रूपकातिशयोक्ति**–'देखो दो-दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी'–यहां दो मेघों के उपमान में दो आंखें उपमेय हुई हैं। उपमेय का उपमान में अध्यवसान हो जाने के कारण यहां रूपकातिशयोक्ति है।
- **भेदकातिशयोक्ति**–जहां भेद न रहते हुए भी उपमेय में चमत्कार लाने के लिए अन्य, और अनियार जैसे शब्दों का प्रयोग कर भेद स्थापित किया जाए वहां यह अलंकार होता है–

सुनहुं सखा कह कृपानिधाना।
जेहि जय होई सो स्यंदन आना।।

टिप्पणी

- **संबंधातिशयोक्ति**–जहां पर संबंधों में असंबंध और असंबंधों में संबंध का वर्णन हो वहां पर यह अलंकार होता है।

  'जो संपदा नीच गृह सोहा।
  सो विलोकि सुरनायक मोहा।' *–मानस*

- **अक्रमातिशयोक्ति**–जहां क्रम नहीं होता और क्रम का त्याग कर कवि कार्य-कारण का अत्यधिक वर्णन करता है वहां यह होता है–

  'संधानेउ प्रभु बिसिख कराला।
  उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥ *–मानस*

- **चलातिशयोक्ति**–जहां कारण को देखते ही कार्य की संपन्नता का वर्णन किया जाए वहां यह अलंकार होता है–

  'तब सिव तीसर नयन उघारा।
  चितवत काम भयउ जरि छारा। *–मानस*

- **अत्यंतातिशयोक्ति**–इसमें कारण के पहले ही कार्य संपन्न हो जाता है। जैसे– **हनुमान की पूंछ में लगन न पाई आग, लंका सिगरी जल गई गए निसाचर भाग।**

(16) **दीपक**–जहां उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म के साथ संबंध दिखा कर वर्णन किया जाता है वहां पर दीपक अलंकार होता है। जैसे–

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी।
कपटी मित्र सूल-सम चारी॥ *(मानस)*

(17) **प्रतिवस्तूपमा**–जहां एक वाक्यार्थ का दूसरे वाक्यार्थ के साथ बिना वाचक शब्द के सादृश्य का वर्णन हो तथा एक ही समान धर्म का पृथक-पृथक शब्दों के द्वारा कथन हो वहां प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। प्रतिवस्तूपमा का अर्थ होता है–'प्रतिवस्तु' अर्थात प्रत्येक वाक्य के अर्थ में उपमा का समावेश किया गया हो। इस अलंकार में दो वाक्य होते हैं–(1) उपमेय वाक्य और (2) उपमान वाक्य। दोनों वाक्यों का एक ही समान धर्म होता है। (3) समान धर्म का कथन पृथक-पृथक शब्दों द्वारा किया जाता है और (4) इसमें सादृश्य, साधर्म्य के द्वारा ही नहीं अपितु वैधर्म्य के द्वारा भी निरूपित होता है। उदाहरण–

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
परस-परस कुधात सुहाई॥ *(मानस)*

(18) **दृष्टांत**–जहां दो वाक्यार्थों में आए उपमेय और उपमान के समान धर्मों में बिंब-प्रतिबिंब भाव संबंध हो, वहां दृष्टांत अलंकार होता है। उपमेय वाक्य में एक सामान्य बात कही जाती है किंतु उपमान वाक्य में कोई उससे मिलता-जुलता दृष्टांत प्रस्तुत किया जाता है जो उपमेय वाक्य के कथन की पुष्टि करता है। दृष्टांत यानी–उदाहरण–

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निसान॥ *(वृंद)*

टिप्पणी

(19) **निदर्शना**–दो वाक्यों में परस्पर संभव और असंभव संबंध होने पर भी उपमा के द्वारा उनमें संबंध की कल्पना करना निदर्शना अलंकार होता है। निदर्शना का अर्थ भी दृष्टांत होता है किंतु इसमें निश्चित रूप से सादृश्य का अभिव्यंजन किया जाता है। उसमें संभव की अभिव्यक्ति की जाती है। उदाहरण–

सो धनु राज कुंअर कर देहीं।
बाल मराल कि मंदर लेहीं॥ *–मानस*

फल की समानता के कारण असंभव संबंध स्थापित किया गया है।

(20) **श्लेष**–श्लेष अलंकार दो प्रकार का होता है–शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष।

- **शब्द श्लेष**–शब्द श्लेष अलंकार वहां होता है, जहां अलंकार का सौंदर्य शब्द विशेष पर आधारित हाता है। यदि उस शब्द के स्थान पर कोई दूसरा उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाए तो श्लेष अलंकार वहां पर नहीं रहेगा। शब्द श्लेष के दो भेद होते हैं–(1) अभंग श्लेष और (2) सभंग श्लेष। अभंग श्लेष में तो प्रयुक्त शब्द ही एक से अधिक अर्थों का द्योतन कराने की क्षमता रखता है। जैसे–

  तुम्हारा पी मुख वास तरंग आज बौरे भौंरे सहकार।

  उपर्युक्त पंक्ति में बौरे शब्द में श्लेष है इसके दो अर्थ हैं–(1) फूल आना या बौर आना (2) मस्त होना। सहकार अर्थात आम वृक्ष के प्रसंग में पुष्पित होना और भौरे के प्रसंग में मस्त होना अर्थ लिए जाएंगे। यहां पर एक ही शब्द दोनों अर्थ दे रहा है। अत: यहां पर अभंग श्लेष अलंकार है। यदि हम 'बौरे' शब्द के स्थान पर 'मंजरी' या 'मद' जैसे पर्यायवाची शब्दों का 'बौरे' शब्द के स्थान पर प्रयोग कर दें तो श्लेष अलंकार नहीं रहेगा। अत: यह शब्द श्लेष है।

  जहां तक सभंग श्लेष का प्रश्न है, वहां पर शब्द का खंड करने पर दूसरा अर्थ निकलता है तथा शब्द के तोड़ने या भंग करने से दूसरा अर्थ निकलता है, इसलिए इसे सभंग श्लेष कहते हैं। जैसे–

  चिर जीवौ जोरी जुरै क्यों न स्नेह गंभीर।
  को घटि वह वृषभानुजा ए हलधर के वीर॥ *(बिहारी)*

  उपर्युक्त दोहे में 'वृषभानुजा' और 'हलधर' शब्दों में श्लेष अलंकार है। वृषभानुजा का अर्थ है 'राधा जी' और 'हलधर के वीर' का अर्थ है बलदेव जी के भाई अर्थात कृष्ण जी। दोनों का प्रेम गंभीर क्यों न हो, क्योंकि दोनों में कोई भी कम नहीं है। इन दोनों शब्दों में वृषभानु + जा (वृषभानु की पुत्री) का अर्थ है 'राधा' किंतु 'वृषभ + अनुजा' (संधि विच्छेद करने पर) का अर्थ है बैल की छोटी बहिन अर्थात गाय। 'हल + धर' का अर्थ हो जाएगा 'बैल' और इस प्रकार 'हलधर के वीर' का अर्थ हुआ 'बैल का भाई अर्थात सांड'। इन पंक्तियों में प्रथम पंक्ति में ही संधि-विच्छेद से दूसरा अर्थ आने से वह सभंग श्लेष का उदाहरण हुआ।

टिप्पणी

- **अर्थश्लेष**–अर्थश्लेष अलंकार वहां होता है जहां पर अर्थ में अलंकारत्व रहता है। यदि संबद्ध शब्द के स्थान पर उसका कोई भी पर्यायवाची शब्द रख दें तब भी श्लेष का सौंदर्य बना रहे वहां पर अर्थश्लेष अलंकार रहता है। जैसे–'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू।' इस चौपाई में 'नीरस, विशद और गुंणमय' तीन एकार्थक शब्दों का प्रयोग किया गया है जो साधु और कपास दोनों के प्रसंग में अपना अर्थ देते हैं जैसे कपास रुखी, उजले धागे वाली होती है और साधुओं का चरित्र (विषय रस से) सूखा, निर्मल गुण वाला होता है। इस चौपाई में 'नीरस और विसद' शब्दों में 'गुणमय' का प्रयोग किया गया है पर्यायवाची (रसहीन, विस्तृत) रख देने पर श्लेष की सत्ता बनी रहने से अर्थ प्राबल्य सिद्ध होता है। अतः यहां अर्थश्लेष अलंकार है।

(21) **समासोक्ति अलंकार**–जहां कवि के प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त श्लिष्ट पदों या शब्दों के संगठन से कोई अप्रस्तुत भाव भी अनायास ही प्रकट होता है, वहां समासोक्ति अलंकार होता है, जैसे–

जीवन के दानि हों, सुजान हौ, सरस अति।
जगत के जीवन मैं, आनन्द उमाहे हौ॥

यहां जीवन शब्द अनेकार्थ सूचक तथा सरस शब्द भी दो अर्थों का सूचक है। इससे इसमें अन्यार्थ प्रतीत होता है।

(22) **अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार**–जहां अप्रस्तुत (उपमान) के द्वारा उपमेय का बोध कराया जाए, वहां अन्योक्ति अलंकार होता है। जैसे–

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यो आगे कौन हवाल॥

यहां भौंरे और कली के माध्यम से प्रस्तुत राजा जयसिंह और उनकी नवोढ़ा पत्नी का बोध कराया गया है। अतः अन्योक्ति अलंकार है।

विरोधमूलक अलंकार

(23) **विरोधाभास**–जहां पर विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति होती हो वहां विरोधाभास अलंकार होता है। उदाहरण–

या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहीं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम रंग, त्यों-त्यों ऊजवल होय॥ *(बिहारी)*

(24) **विभावना अलंकार**–जहां कारण के अभाव में ही कार्य की संपन्नता का वर्णन किया गया हो, वहां विभावना अलंकार होता है। उदाहरण–

'बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै बिधि नाना॥ *(मानस)*

यह अलंकार दो प्रकार का होता है–(1) शाब्दी विभावना, (2) आर्थी विभावना।

टिप्पणी

- **शाब्दी विभावना**–इसमें कारण के अभाव का शब्द के द्वारा कथन किया जाता है। जैसे–

'निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥

यहां पानी और साबुन वस्त्रादि की मैल साफ करने के कारण हैं इनके अभाव में चित्त के निर्मल होने का वर्णन किया गया है कि निंदक को पास में रखने से वह दोषों को उजागर करेगा जिससे व्यक्ति अपने दोष दूर कर लेगा।

- **आर्थी विभावना**–यहां कारण का अभाव अर्थ द्वारा कथित होता है। जैसे–**'बिनु पद चलै सुनै बिनु काना'**–अर्थ के द्वारा ईश्वर की महिमा का पता चलता है कि उसकी कृपा से मनुष्य बिना पैर के चल सकता है तथा बिना कान के सुन सकता है।

(25) **विशेषोक्ति अलंकार**–जैसा कहा जा चुका है, 'असंगति' में कारण और कार्य दोनों होते हैं, परंतु एक ही जगह नहीं, दूर-दूर, इसके विपरीत जब कारण उपस्थित होने पर भी कार्य नहीं होता तब विशेषोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलै विरंचि सम।
फूलहि फरहि न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद॥

यहां विरंचि समान गुरु की प्राप्ति होने पर भी मूरख सचेत नहीं हो रहा। अर्थात प्रबल और पूर्ण कारण के रहने पर भी कार्य नहीं हो रहा।

(26) **असंगति अलंकार**–जहां कारण किसी अन्य स्थल पर हो और कार्य की निष्पत्ति किसी अन्य स्थल पर वर्णित हो, वहां पर असंगति अलंकार होता है। उदाहरण–

'कोयल काली मतवाली है, आम्र मंजरी झूम रहीं।

यहां मस्ती कोयल में है और आम्र मंजरी का झूमना दिखाया गया है। कार्य और कारण अलग-अलग जगहों पर स्थित है।

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर संग प्रीति।
परति गांठि दुरजन हृदै, दई नई यह रीति॥ *–बिहारी*

(27) **विषम अलंकार**–जहां विरोधाभास अलंकार में ऐसे पदार्थों का एक-दूसरे में संबंध कहा जाता है जिनमें वास्तव में परस्पर भेद होता है, परंतु जब ऐसे दो पदार्थों का परस्पर संसर्ग कराया जाता है जिनका संबंध अनुचित होता है तब विषम अलंकार होता है। जैसे–

कहँ धनु कुलिसहूँ चाहि कठोरा, कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा!
–तुलसी

'शिव' के कठोर 'धनुष' और 'राम' के कोमल 'तन' का संबंध होना अनुचित लगता था परंतु यहां ऐसा कराया जा रहा है, अतः यह विषम 'असमान' संयोग है।

(28) **कारणमाला**–जहां शृंखला रूप में वर्णित पदार्थों का कार्य-कारण भाव संबंध हो वहां कारणमाला अलंकार होता है। उदाहरण–

टिप्पणी

विद्या ते उपजै विनय विनय जगत-बस होय।
जगत भये बस धन मिलै, धन ते धरम उदोत॥ *(हीरा द्वारा उद्धृत)*

इस अलंकार की योजना दो प्रकार से होती है–(1) पूर्व-पूर्व में कारण तथा पर-पर में कार्य (2) पूर्व पूर्व में कार्य – पर पर में कारण।

प्रथम योजना का उदाहरण ऊपर दिया गया है। दूसरी योजना का उदाहरण है–

अन्न मूल धन, धनन को मूल जग्य अभिराम।

ताको धन, धन को धरम, धरम मूल हरिनाम॥

(29) **एकावली अलंकार**–करणमाला में कार्य कारण का क्रम होता है किंतु जब वस्तुओं के ग्रहण और त्याग की एक श्रेणी विशेषण भाव से बन जाए अथवा निषिद्ध भाव से बन जाएं, तब एकावली अलंकार होता है। जैसे–

मैं इस झरने के निर्झर में प्रियवर सुनता हूं वह गान।
कौन गान? जिसकी तानों से परिपूरित हैं मेरे प्राण।

कौन प्राण? जिनको निशि-वासर करता एक तुम्हारा ध्यान।
कौन ध्यान? जीवन सरसिज को जो सदैव रखता अम्लान।

इसमें गान, प्राण, ध्यान के ग्रहण-त्याग की एक श्रेणी है।

निषिद्ध भाव का उदाहरण–

सोभित सो न सभा जहं वृद्ध न, वृद्ध न ते जे पढ़े कछु नाहीं,
ते न पढ़े जिन साधु न साधत, दीन दया न दिखै जिन माहीं;
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सौ जहं दान वृथा हीं,
दान न सौं जहं सांच न 'केसव', सांच न सो जु बसै छल छाहीं।

(30) **सार अलंकार**–जब पहले कही हुई वस्तुओं का उत्तरोत्तर बढ़ने (उत्कर्ष) या कम होने (अपकर्ष) का वर्णन किया जाता है, ब 'सार' अलंकार होता है। उदाहरण के लिए–

मधुर से मधु सुधा है रुचिकर, कविता रुचिकर अधिक सुधा से।

यहां मधु सुधा और कविता में क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक मिठास बताकर उत्कर्ष की क्रमशः वृद्धि बताई गई है। अथवा–

तृण से लघु है तूल तूल से लघु है भिक्षा।

इसमें तृण तूल (रुई) और भिक्षा में क्रमशः घटती प्रतिष्ठा दिखाकर अपकर्ष की क्रमिक वृद्धि प्रदर्शित की गई है।

न्यायमूलक अलंकार

(31) **काव्यलिंग**–जहां पर किसी कथन का समर्थन करने के लिए वाक्यार्थ या पदार्थ में उसका कारण भी प्रस्तुत किया जाए वहां पर काव्यलिंग अलंकार होता है। काव्यलिंग शब्द का अर्थ भी यही होता है कि काव्य वर्ण्य विषय और लिंग हेतु अर्थात वर्ण्य विषय का लिंग या हेतु प्रस्तुत किया जाए। जैसे–

टिप्पणी

स्याम गौर किमि कहऊं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥ *(मानस)*

यहां राम और लक्ष्मण के सौंदर्य को वर्णित करने की असमर्थता का कारण वाणी का नेत्रहीन होना तथा नेत्रों का वाणीहीन होना है।

(32) **अर्थांतरन्यास**–जहां सामान्य कथन से विशेष या विशेष कथन से सामान्य का समर्थन किया गया हो वहां अर्थांतरन्यास अलंकार होता है।

उदाहरण–

निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी।
सच ही है–श्रीमान भोगते सुख वन में भी॥ *(मैथिलीशरण गुप्त)*

न्यायमूलक अलंकारों के अंतर्गत परिगणित अन्य अलंकार हैं–

अनुमान अलंकार, परिकर अलंकार, सहोक्ति अलंकार, विनोक्ति अलंकार, यथासंख्या या क्रम अलंकार, पर्याय अलंकार, अत्युक्ति अलंकार, गूढ़ोक्ति अलंकार, उन्मीलित अलंकार, परिवृत्ति अलंकार, परिसंख्या अलंकार, काव्यार्थापत्ति अलंकार, मीलित अलंकार, तद्गुण अलंकार।

गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक अलंकार

(33) **पर्यायोक्ति**–जहां विवक्षित अर्थ को सीधे-सीधे ढंग से न कह कर भिन्न प्रकार से चमत्कारपूर्ण ढंग से व्यक्त किया जाता है वहां पर्यायोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

मातु पितहु जनि सोचबस, करहि महीप किसोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर। *(मानस)*

(34) **व्याजोक्ति**–व्याजोक्ति का अर्थ होता है बहाने का कथन अर्थात जहां पर गुप्त रहस्य के प्रकट होने पर उसे किसी बहाने से अन्य कथन द्वारा छुपाया जाए, वहां पर ब्याजोक्ति अलंकार होता है। इसे अन्योक्ति भी कह सकते हैं। इस अलंकार में वक्ता को लगता है कि उसका गुप्त रहस्य प्रकट हो गया, इसका ज्ञान व्यंजना द्वारा उसके उस रहस्य को छिपाने के कथन से होता है। जैसे–

बहुरि गौरी कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू॥

राम के प्रति सीता का तल्लीनता के रहस्य को गौरी का 'ध्यान' कहकर छिपाया गया है।

(35) **व्याजस्तुति**–जहां पर स्तुति कथन से निंदा की और निंदा के कथन से स्तुति की व्यंजना की जाती है, वहां पर व्याजस्तुति अलंकार होता है। व्याजस्तुति का अर्थ है किसी बहाने स्तुति या निंदा करना। जैसे–

कहत कौन रण में तुम्हें, धीर वीर सरदार।
लखि रिपु बिनु हथियार जो, डारि देत हथियार॥ *(वीर-सतसई)*

'हे सरदार (नायक) तुम्हें युद्ध में पराक्रमी वीर कौन कह सकता है क्योंकि तुम जैसे ही शत्रु को शस्त्र विहीन देखते हो उसके सामने हथियार डाल देते हो।' यहां

टिप्पणी

सेनानायक की निंदा के बहाने उसकी स्तुति या प्रशंसा की गई है कि वह शस्त्रहीन शत्रु पर वार नहीं करता।

अन्य गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार हैं–अवज्ञान अलंकार, अनुज्ञा अलंकार, तिरस्कार अलंकार।

शब्दालंकार

जहां पर अलंकार का चमत्कार अर्थ पर निर्भर न होकर शब्द पर निर्भर करता है वहां पर शब्दालंकार होता है।

(36) **अनुप्रास**–अनुप्रास का अर्थ होता है बारंबार निकट रखना अर्थात वर्णों का बार-बार प्रयोग। अलंकार रूप में अनुप्रास की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि वर्णों की रसानुकूल बार-बार आवृत्ति करना ही अनुप्रास अलंकार होता है। विश्वनाथ ने इसके पांच प्रमुख भेदों का उल्लेख किया है– (1) छेकानुप्रास, (2) वृत्यनुप्रास, (3) श्रुत्यनुप्रास, (4) अंत्यानुप्रास और (5) लाटानुप्रास।

- **छेकानुप्रास**–जहां पर अनेक व्यंजनों की एक बार स्पष्टत: एवं क्रमश: आवृत्ति की गई हो, वहां छेकानुप्रास अलंकार होता है। इसे छेकानुप्रास इसलिए कहते हैं कि संभवत: अनुप्रास की यह योजना छेक अर्थात विदग्ध जनों को अधिक प्रिय थी। अत: कवियों ने इस अलंकार के पर्याप्त प्रयोग किए हैं। जैसे–

  बंदौ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा। *(मानस)*

  यहां प, सु, स, आदि अनेक व्यंजनों की एक-एक बार आवृत्ति की गई है।

- **वृत्यनुप्रास**–जहां पर वर्णों की अथवा वर्ण की अनेक बार आवृत्ति की गई हो वहां पर वृत्यानुप्रास अलंकार होता है। जैसे–

  'कंकन किंकनी नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।

  (मानस)

  न, नी, नि की आवृत्ति है।

- **श्रुत्यनुप्रास**–जहां पर एक ही उच्चारण स्थान से उच्चरित होने वाले व्यंजनों में समानता पाई जाती है, वहां पर श्रुत्यनुप्रास अलंकार होता है। जैसे–

  जाहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुण करि कीन्ह न कोहू।।

  (मानस)

  यहां 'ह' की चार बार और 'क' की तीन बार आवृत्ति की गई है। दोनों वर्णों का एक कंठ ही उच्चारण स्थान है अत: श्रुत्यनुप्रास होगा।

- **अंत्यानुप्रास**–जहां पर पद या पद के अंत में सभी पदों में समान स्वर और व्यंजन की आवृत्ति की जाती है, वहां अंत्यानुप्रास अलंकार होता है। हिंदी भाषा में ऐसे पद्यों को तुकांत कविता या तुकांत पद कहते हैं। यह आवृत्ति क्योंकि पद के अंत में होती है, इसलिए इसे अंत्यानुप्रास कहते हैं। जैसे–

  धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपत्ति काल परखिए चारी। *(मानस)*

  दोनों अर्धाली में 'री' की आवृत्ति है।

टिप्पणी

- **लाटानुप्रास**–जहां शब्द और अर्थ की समान रूप से आवृत्ति की जाती है किंतु अन्वय करने पर उनके अभिप्राय में भिन्नता आ जाती हो वहां लाटानुप्रास अलंकार होता है। जैसे–

  पूत कपूत तो का धन संचै। पूत सपूत तो का धन संचै।।

  'धन संचय' का रूप एवं अर्थ दोनों बार समान है किंतु तात्पर्य बदल गया है।

(37) **यमक अलंकार**–जहां सार्थक किंतु भिन्नार्थक या निरर्थक वर्ण-समुदाय की एक से अधिक बार आवृत्ति की जाती है वहां पर यमक अलंकार होता है। जैसे–

कनक-कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।
या खाये बौरात जग, वा पाये बौराय।। *(बिहारी)*

अर्थात एक ही शब्द की बार-बार आवृत्ति होती है किंतु हर बार अर्थ अलग होता है। जैसे–कनक का अर्थ – सोना और धतूरा दोनों हैं।

(38) **पुनरुक्तवदाभास**–जहां पर भिन्न आकार वाले किंतु समान अर्थ वाले शब्दों का इस प्रकार प्रयोग किया जाता है कि पुनरुक्ति न होने पर भी पुनरुक्ति का आभास होने लगता है, वहां पर पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है। जैसे–

पयोधर बने उरोज उदार। (मानस)

यहां 'पयोधर' और 'उरोज' एकार्थक शब्द हैं जिनसे पुनरुक्ति का आभास होता है परंतु पयोधर में मातृत्वकाल के स्तनों का व उससे पूर्व दुग्धहीन स्तनों का वर्णन होने से यह 'पुनरुक्तंवत् आभास' है।

(39) **वक्रोक्ति**–यहां पर वक्रोक्ति को मात्र एक अलंकार के रूप में ही विश्लेषित किया जा रहा है। जहां पर श्लेष या काकु के द्वारा वक्ता द्वारा अभिप्रेत अर्थ ग्रहण न कर श्रोता उसे किसी अन्य अर्थ में ग्रहण करता है और वह चमत्कारपूर्ण होता है तो वहां पर वक्रोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहां अपर है।
उसने कहा अपर कैसा? उड़ है गया सपर है।। *(भक्त)*

यहां 'अपर' शब्द का तात्पर्य 'दूसरा कबूतर' था किंतु श्रोता ने उसका तात्पर्य बिना पर वाला समझा और कहा कि वह 'सपर' यानी पंख वाला था, उड़ गया।

उभयालंकार या मिश्रित अलंकार

इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे कथनों को लिया जाता है, जिनमें एकाधिक अलंकारों का मिश्रण या सम्मिलन रहता है। कुछ आचार्य इन्हें उभयालंकार कहते हैं। उभयालंकार से तात्पर्य होता है जिस कथन में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया गया हो।

(40) **संसृष्टि अलंकार**–जब दो या दो से अधिक शब्दालङ्कार या अर्थलङ्कार किसी काव्य में मिश्रित होते हैं तब इसे संसृष्टि कहा जाता है। संसृष्टि तीन प्रकार की होती है–

1. शब्दालङ्कार–इसमें शब्दालङ्कारों का मेल होता है।

टिप्पणी

2. अर्थालङ्कार–इसमें कई अर्थलङ्कारों का मेल होता है।
3. शब्दार्थालङ्कार–इसमें शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अलंकार मिले होते हैं।

शब्दालङ्कार संसृष्टि का उदाहरण–

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख सांईहिं न भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई, सु कबूल॥

इसमें दीरघ-दुख, सुख सांईहिं आदि में छेकानुप्रास और दई में यमक (दई – दैव, दई – दिया) होने के कारण दो शब्दालङ्कार एकत्र हैं। ये दोनों अलग-अलग स्पष्ट विदित होते हैं। अतः यहां संसृष्टि शब्दालङ्कार है।

अर्थालंङ्कार संसृष्टि का उदाहरण–

कीर कै कागर ज्यों नृप चोर विभूषण उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबंधु पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।

इसमें उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों अर्थालङ्कार की संसृष्टि है।

शब्दार्थालङ्कार की संसृष्टि है–

सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर।

इसमें अनुप्रास शब्दालङ्कार है और व्यतिरेक अर्थालङ्कार भी है। इसलिए यहां शब्दार्थालङ्कार संसृष्टि है। वे दोनों ही यहां अलग-अलग स्पष्ट रूप से देखे जा रहे हैं।

(41) **संकर**–जब एक ही छंद में अनेक अलंकारों का सम्मेलन नीर-क्षीर न्याय से अर्थात परस्पर सापेक्ष रूप से हो, वहां संकर अलंकार होता है। "जिस प्रकार एक ही पात्र में रखे हुए तिलों और चावलों में परस्पर अभेद संबंध हो जाता है, उसी प्रकार संकर अलंकार में प्रयुक्त अनेक अलंकार परस्पर सापेक्ष लगते हैं। जैसे–

बीती विभावरी जाग री।
अंबर पनघटन में डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।
खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस-गागरी।
अधरों में राग अमन्द पिये–
अलकों में मलयज बंद किये,
तू अब तक सोई है आली
आंखों में भरे विहाग री।

टिप्पणी

कविवर प्रसाद की इन पंक्तियों में ऊषा का वर्णन है तथा सुप्त नायिका का उद्‌बोधन अप्रस्तुत है। अतएव समासोक्ति है। साथ ही कवि ने अंबर को पनघट तारों का घट, ऊषा की नागरी, मुकुल को गागर कहकर उपमेय और उपमान में अभेद अरोपित किया है, अतः सांग रूपक है। बीती विभावरी, मधु-मुकुल में अनुप्रास है। खगकुल कुल-कुल में यमक है। अधरों में अमंद राग पीना, अब तक सोते रहने में हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। क्योंकि इसमें हेतु प्रदर्शित किया जाता है, किंतु अंगी रूपक अलंकार है। अन्य अलंकार अंग-रूप में है। अतः इन पंक्तियों में अनुप्रास, यमक समासोक्ति, काव्यलिंग मुख्य रूपक अलंकार का उपकार करते हैं, जिनसे इनका संकर है।

(42) **मानवीकरण**–जहां पर अमूर्त भावों का मूर्तीकरण कर के और जड़ पदार्थों का चेतनवत वर्णन किया जाता है वहां मानवीकरण अलंकार होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहां अमूर्त अथवा जड़ पदार्थों का मानवीय चेष्टाओं की तरह चेष्टाएं करते हुए वर्णन किया जाता है वहां पर मानवीकरण अलंकार होता है, जैसे–

उधो! मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस॥ *(सूरदास)*

यहां अमूर्त मन को स्याम के साथ चला गया कहना उसका मानवीकरण करना है। क्योंकि गमन करना मानवीय कार्य है।

(43) **ध्वन्यार्थ व्यंजना अलंकार**–काव्य रचना में कई बार इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है जिनकी ध्वनि ही उन शब्दों के अर्थ को भी ध्वनित या व्यंजित करती है। इस अलंकार के अंतर्गत भाषा की ध्वन्यात्मकता का विशेष महत्व रहता है। उदाहरण के लिए–

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

इस पंक्ति में 'कंकन', 'किंकिनि' आदि शब्द ध्वन्यात्मक हैं और अर्थ का द्योतन भी करते हैं, अर्थात इन शब्दों में 'किंकिनि' (रघनी) और 'कंकन' (कंगन) के बजने की-सी ध्वनि निकलती है।

(44) **विशेषण विपर्यय अलंकार**–जब किसी विशेषण को उसके विशेष्य से न जोड़कर किसी दूसरे शब्द का विशेषण बना दिया जाए, तो इसे विशेषण-विपर्यय अलंकार कहा जाता है।

जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्ति विशेषण-विपर्यय का उदाहरण है–

कुसुमति कुंजों में थे पुलकित, प्रेमालिंगन हुए विलीन।

यहां 'प्रेमालिंगन' का विशेषण 'पुलकित' है। वास्तव में 'पुलकित' विशेषण व्यक्ति का ही हो सकता है, 'प्रेमालिंगन' का नहीं।

निष्कर्ष–अलंकार सिद्धांत का काव्यशास्त्र में काव्य लक्षण के रूप में विशेष महत्व है। यह सत्य है कि यह काव्यात्मा नहीं हो सकता, साध्य नहीं हो सकता। यह साधन मात्र है किंतु रस का सहयोगी हो सकता है! काव्य के लिए किसी आचार्य ने काव्य पुरुष कहा,

टिप्पणी

किसी ने कविता कामिनी...। काव्य पुरुष हो या कविता कामिनी दोनों ही दृष्टियों से उनके लिए आत्मा रस है और अलंकार उनके शोभाधायक धर्म हैं। काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए अलंकार का उपयोग किया जाता है यह उपयोगिता तो सिद्ध है ही। इसके अतिरिक्त अलंकार काव्य का ऐसा लक्षण है जो इसे वक्रोक्ति और ध्वनि से भी जोड़ता है। रस तो काव्य की आत्मा है ही, औचित्य आत्मा की भी आत्मा है। लेकिन जहां तक वक्रोक्ति का प्रश्न है, वह भी अलंकार है। यह शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों में सम्मिलित है। वक्रोक्ति यानी व्यंग्यार्थ व्यंजना जोकि उत्तम ध्वनि है। इससे निर्मित काव्य उत्तम काव्य की श्रेणी में आता है। अत: अलंकार सिद्धांत की उपयोगिता वक्रोक्ति एवं ध्वनि सिद्धांत को जानने के साथ-साथ पूरे काव्यशास्त्र की महिमा को जानने के लिए भी है। अलंकार के भेद असंख्य हैं क्योंकि यह अंतर्बाह्य की शोभा को बढ़ाने वाला लक्षण है। शब्द की, अर्थ की, भाव की शोभा बढ़ाते हुए यह भेदोपभेद होते जाना स्वाभाविक है। काव्यशास्त्रीय जगत में अलंकार सिद्धांत वस्तुत: स्वयं भी अलंकार ही है।

2.3 रीति संप्रदाय

रीङ् धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगने पर रीति शब्द निष्पन्न हुआ। 'रीति' अर्थात शैली, ढंग, तरीका, विधि, प्रवृत्ति, वृत्ति, मार्ग, पद्धति, स्टाइल आदि। रीति सदैव प्रासंगिक है। प्रत्येक मनुष्य का, जड़-चेतन का जीवन जीने का आचार-विचार का अपना तरीका है, रीति है। इसी तरह हर रचनाकार का अभिव्यक्ति का अपना तरीका है, रीति है। मौन हो या वक्तृता, गति हो या जड़ता, लेखन हो या पठन-पाठन सबकी अपनी रीति है। यह रीति सरल भी हो सकती है कठिन भी। कोमल या कठोर, स्निग्ध या रुखी, सीधी या वक्र, ग्राम्य या परिष्कृत, प्राचीन या नवीन, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, सुगम या गूढ़। चिंतकों ने इस पर गहन विचार-विमर्श किए। कहां पर रीति केवल बाह्याचार है, कहां पर इसमें रस एवं भाव भी सम्मिलित हैं? इस चिंतन परंपरा से ही रीति-सिद्धांत का स्वरूप निर्मित हुआ।

विभिन्न आचार्यों की दृष्टि में रीति के भेद एवं उनके स्वरूप

रीति-सिद्धांत के प्रतिपादक आचार्य वामन (आठवीं शती ई.) हैं। वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर 'रीति' को विशेष महत्व दिया। उनसे पहले दण्डी ने भी 'रीति' की चर्चा की थी और उसके दो भेद 'गौड़ी' और 'वैदर्भी' माने थे, किंतु 'रीति' का लक्षण नहीं बताया था। वामन ने तीसरी रीति 'पांचाली' की प्रतिष्ठा की और उसका लक्षण निर्धारित करते हुए कहा-'विशिष्ट-पदरचना' ही रीति है। विशिष्टता के आधार गुण हैं। 'विशेषो गुणात्मा'। इसलिए रीतियों का भेद गुणों के भेद पर निर्भर है। वैदर्भी रीति सभी गुणों से युक्त होती है। 'समग्रगुणा वैदर्भी'। 'ओज' और 'कांति' गुणों से युक्त गौड़ी रीति होती है-'ओज: कान्तिश्च विद्यते यस्यां सा ओज: कान्तिमती, गौड़ीया नाम रीति:', पांचाली रीति 'माधुर्य' और 'सौकुमार्य' गुणों से युक्त होती है। 'माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पांचाली'। इन तीनों रीतियों में सभी गुणों (दस गुणों) से युक्त होने के कारण वैदर्भी रीति विशेष ग्राह्य है। समास पद न हों तो वैदर्भी, शुद्ध वैदर्भी कही जाती है। 'सापि समासाभावे शुद्ध वैदर्भी'।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
2. अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन कहां उपलब्ध होता है?
3. प्रतीप का अर्थ क्या होता है?
4. जहां कारण के बिना ही कार्य संपन्न हो जाता है, कौन-सा अलंकार होता है?

टिप्पणी

वामन के बाद आचार्य रुद्रट ने 'लाटी' नामक चौथी रीति की प्रतिष्ठा की। उन्होंने 'समास' को दृष्टि में रखकर रीतियों का भेद-निरूपण किया। उनके अनुसार पांचाली लघुसमासयुक्त रीति है। 'गौड़ी' दीर्घसमासबहुला होती है। मध्यम समास वाली 'लाटीया' होती है और 'वैदर्भी' समासरहित होती है।

कुन्तक ने रीति की व्याख्या मार्ग के रूप में की है। उनके अनुसार रचना के तीन मार्ग हैं- 1. सुकुमार, 2. विचित्र और 3. मध्यम। उनके द्वारा निरूपित 'सुकुमार' मार्ग के अन्तर्गत 'वैदर्भी', 'विचित्र' के अन्तर्गत 'गौड़ी', और मध्यम के अन्तर्गत 'पांचाली' रीति का समावेश हो सकता है।

आनन्दवर्धन ने रीति के लिए 'संघटना' पद का प्रयोग किया और उसे 'रस' का साध न माना। इस प्रकार 'रीति-सिद्धांत' संबंधी चिंतन की परंपरा चलती रही। 'रीति-सिद्धांत' की सबसे बड़ी देन 'गुणों' की प्रतिष्ठा है। शैली और अभिव्यक्ति-सौन्दर्य की महत्ता का प्रतिपादन इसकी अन्य उपलब्धियां हैं।

2.3.1 रीति का स्वरूप

वामन ने 'काव्यालंकार सूत्र' नामक ग्रंथ लिखकर और उस पर स्वयं वृत्ति भी लिखी। इसलिए यह ग्रंथ 'काव्यालंकार सूत्र वृत्ति' के नाम से भी जाना जाता है। वामन ने काव्यात्मा के प्रश्न पर चिंतन करते हुए लिखा-'रीतिरात्मा काव्यस्य।' अर्थात रीति काव्य की आत्मा है। उन्होंने 'रीति' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा-'विशिष्टा पद-रचना रीति:', अर्थात विशेष प्रकार की पद रचना का नाम रीति है। इसके पश्चात 'विशिष्ट' शब्द को उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा-'गुण युक्त'। अर्थात 'विशेषो-गुणात्मा' गुण युक्त होना ही विशेष है, विशिष्ट है। समस्त स्पष्टीकरण पर दृष्टि डालें तो वामन का मत सामने आता है कि-'गुणों से युक्त पद-रचना काव्य की आत्मा है।' वामन काव्य के दो रूपों को मान्यता देते हैं-(1) रीति, (2) अर्थगुण संपदा। अर्थ गुण संपदा यानी विषय वस्तु रीति के आधार पर रीति के कारण प्रकाशित हो उठती है। आस्वाद्य बनती है। तात्पर्य यह कि 'आस्वाद्य' और आस्वादन कराने वाली दो भिन्न वस्तुएं हैं-रीति एवं वस्तु। इनमें वामन 'रीति' को महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि अर्थगुण संपदा को आस्वाद्य बनाने का महत्वपूर्ण कार्य यही करती है। रीतियों में भी वे वैदर्भी रीति को ही अधिक ग्राह्य मानते हैं। वामन रीति को काव्य की आत्मा मानते हैं जबकि यह बाह्य सौंदर्य से संबंधित है। रीति साध्य नहीं, साधन है। इसलिए आचार्यगण वामन को देहवादी आचार्य मानते हैं, आत्मवादी नहीं।

2.3.2 रीति और शैली

आधुनिक काल में काव्यशास्त्र के अंतर्गत 'शैली' शब्द का प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। यह प्रयोग अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द के पर्याय के रूप में हो रहा है। इधर 'रीति' शब्द के अनेक अर्थ निकाले गए हैं-'रीति एक शब्द योजना है।' 'रीति' वर्णन योजना है। 'रीति' अभिव्यंजना का नाम है। रीति काव्य की आत्मा है। आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के एक काल को 'रीतिकाल' कहा जो तत्कालीन पूरे कालखंड की साहित्य धारा और उसकी चिंतन दृष्टि को प्रकट करता हुआ काव्यशास्त्र का द्योतक है। 'रीति' व्यापक सिद्धांत है। वर्तमान में परंपरावादी काव्यशास्त्री शैली के स्थान पर रीति शब्द के प्रयोग पर बल दे रहे हैं क्योंकि उन्हें 'शैली' शब्द में अंग्रेजियत की गंध आती है। पाश्चात्य 'रीति' कवि स्वभाव या कवि व्यक्तित्व के उद्घाटन की विशेषता धारण करती है। इसकी इसी विशेषता के कारण यह

टिप्पणी

'रीति' कम और 'शैली' अधिक लगती है। 'शैली' स्वभाव के परिचायक 'शील' शब्द से निष्पन्न हुआ शब्द है। वस्तुत: 'स्टाइल' का पर्यायवाची शब्द शैली है, रीति नहीं। इसे व्यक्तित्व या स्वभाव के उद्‌घाटन की विशेषता के दृष्टिकोण से देखें तो भारतीय साहित्य में 'शैली' शब्द 'रीति' से अधिक पुराना है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र 'शैली' शब्द के स्थान पर रीति शब्द का प्रयोग करने पर बल देते हैं। अपने रीति विज्ञान नामक ग्रंथ में वे इसके लिए दो तर्क प्रस्तुत करते हैं–(1) संस्कृत भाषा में शैली शब्द का प्रयोग साहित्येतर विधाओं–जैसे चित्रकला, स्थापत्य कला आदि के लिए किया जाता है। (2) पाश्चात्य विद्वान भी 'स्टाइल' शब्द की व्याख्या जिस रूप में करते हैं उस रूप का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता 'शैली' में नहीं है। जबकि डॉ. नगेंद्र रीति एवं शैली को अभिन्न मानते हुए कहते हैं कि शैली में 'व्यक्ति तत्व' की प्रधानाता उसका प्रमुख लक्षण है। इधर भारतीय काव्यशास्त्री दंडी, कुंतक, शारदातनय आदि भी 'रीति' में व्यक्ति तत्व की प्रधानता स्वीकार करते हैं। दूसरा पक्ष देखें तो पाश्चात्य काव्यशास्त्री 'स्टाइल' के दूसरे तत्व के रूप में 'वस्तु तत्व' को महत्व देते हैं। यहां भारतीय काव्यशास्त्री तो रीति को मानते ही 'वस्तु तत्व' हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि वह पदार्थ जो वस्तु तत्व एवं व्यक्ति तत्व को अपने में संजोए हुए है वह 'स्टाइल' है और हिंदी में 'स्टाइल' के लिए शैली शब्द का प्रयोग किया जाता है। अर्थात 'शैली' वस्तु तत्व और व्यक्ति तत्वों का समन्वित रूप है। इस लक्षण वाले पदार्थ को संस्कृत भाषा में 'रीति' कहा जाता है। अर्थात रीति और शैली अभिन्न हैं। स्वभाव की विस्तृत व्याख्या करने का गुण ही प्राचीन शैली को आधुनिक शैली का स्वरूप प्रदान करता है। स्वभाव प्रवृत्ति स्वरूप होता है और प्रवृत्तियां वैयक्तिक भी होती हैं। तात्पर्य यह है कि शैली वैयक्तिक भी होती है और सामूहिक भी। इनका आपस में कोई विरोध नहीं है। एक ही व्यक्ति में वैयक्तिक और सामूहिक दोनों शैलियां उपस्थिति हो सकती हैं। जैसे छायावादी या रोमैंटिक युग के कवियों की एक सामूहिक शैली है, छायावादी शैली। लेकिन इसी युग के भीतर यही उनकी अपनी एक वैयक्तिक शैली भी है। कभी-कभी किसी कवि की वैयक्तिक शैली इतनी आकर्षक और मर्मस्पर्शी होती है कि वह अन्य कवियों के लिए अनुकरणीय बनकर सामूहिक बन जाती है।

डॉ. सुशील कुमार डे 'शैली' और 'रीति' में अंतर मानते हैं तो यह इसलिए स्वीकार किया जा सकता है कि क्योंकि पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में 'स्टाइल' शब्द में व्यक्ति तत्व को जितना अधिक महत्व दिया गया है उतना महत्व भारतीय काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द के व्यक्ति तत्व को नहीं दिया जाता।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में शैली और रीति दोनों भिन्न पदार्थ हैं। क्योंकि भारतीय काव्यशास्त्र का 'रीति' शब्द जो अपने प्रयोग में बहुत पीछे छूट गया है वह आधुनिक 'शैली' का वाचक नहीं है। प्रवृत्ति के कारण 'रीति' शब्द का अर्थ संकुचित हो गया और वह वस्तु तत्व की प्रमुखता में रूढ़ हो गया है। आज के भारतीय काव्यशास्त्र में यह अंशत: ही व्यवहार्य है। जबकि 'शैली' शब्द 'अर्थ-विस्तार पाकर व्यक्ति तत्व की प्रमुखता में रूढ़ होकर भी विश्व साहित्य के 'स्टाइल' का वाचक बन गया है। व्युत्पत्ति से प्राप्त अर्थ की दृष्टि से, अर्थ की व्यापकता की दृष्टि से तथा प्रयोग की दृष्टि से भी देखें तो 'शैली' और 'स्टाइल' की समान प्रसिद्धि एवं मान्यता है, रीति इनकी तुलना में स्थान नहीं बना पाती। हिंदी काव्यशास्त्र में रीति और शैली के प्रयोग पर ध्यान दें तो शैली अधिक सशक्त और व्यापक शब्द है। इसके स्थान पर 'रीति' को नहीं बिठाया जा सकता। यह स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी काव्य और काव्यशास्त्र प्राचीन हिंदी काव्य और काव्यशास्त्र की तुलना में अंग्रेजी काव्य और काव्यशास्त्र से अधिक प्रभावित है।

टिप्पणी

2.3.3 काव्य-गुण

भारतीय काव्यशास्त्र में भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक प्राय: सभी आचार्यों ने गुणों की विवेचना की। गुणों के रूप, संख्या और स्थिति पर तर्क-वितर्क प्रस्तुत किए। भरतमुनि के अनुसार–दोषों का वैपरीत्य ही गुण है। वे यह भी कहते हैं–

'गुणविपर्ययाद् एषाम् माधुर्यौदार्यलक्षणा:।' अर्थात दोषों का विपर्यय ही गुण का लक्षण है। भरतमुनि ने दस दोष एवं दस गुण गिनाए हैं। दस गुण इस प्रकार हैं–(1) श्लेष, (2) प्रसाद, (3) समता, (4) समाधि, (5) माधुर्य, (6) ओज, (7) पद सौकुमार्य, (8) अर्थ-व्यक्ति, (9) उदारता और (10) कांति। अभिनवगुप्त ने 'विपर्यय' का अर्थ विघात या अभाव माना है। अर्थात काव्य में दोषों का अभाव ही गुण है। यह परिभाषा मान्य नहीं हो सकती क्योंकि इसमें दोषों एवं गुणों की संख्या समान होनी चाहिए जिससे यह पता चले कि कौन से दोष के अभाव में कौन सा गुण उत्पन्न हुआ है या प्रकाशित हुआ है। दूसरे इस परिभाषा से गुणों के स्वतंत्र अस्तित्व पर आघात पहुंचता है। भामह के अनुसार–माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन ही गुण हैं। दंडी भरत की ही तरह गुणों की संख्या दस मानते हैं। डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि दंडी काव्य के समस्त अवयवों को अलंकार मानते हैं तो इस तरह 'गुण' भी अलंकार के अंतर्गत आ जाते हैं। दंडी के अनुसार अलंकार काव्य के शोभाकारी धर्म हैं तो सीधे-सीधे गुण भी काव्य के शोभाकारी धर्म हो गए। यहीं अप्रत्यक्ष रूप से दंडी ने गुणों की परिभाषा एवं स्थिति स्पष्ट कर दी है। गुणों के नाम एवं संख्या दंडी ने भरत की तरह ही दी है।

वामन पहले आचार्य थे जिन्होंने गुणों को परिभाषित करते हुए कहा–'काव्य की शोभा के आधारक तत्वों को गुण कहते हैं जो रीति के माध्यम से काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। गुण काव्य के नित्य धर्म होते हैं। अत: काव्य में इनकी स्थिति अनिवार्य है। भरत और दंडी की तरह वामन भी गुणों की संख्या दस ही निर्धारित करते हैं। वामन के अनुसार गुण दो प्रकार के होते हैं–(1) शब्द गुण, (2) अर्थ गुण। वामन मानते हैं कि रस गुणों पर आश्रित होता है। दंडी भी रसों को गुणों पर आश्रित बताते हैं। अंतर यह है कि दंडी कहते हैं, रस माधुर्य गुण के आश्रित होता है तथा वामन कहते हैं कि रस 'कांति' गुण के आश्रित होता है।

दंडी–मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रस-स्थिति:।

वामन–'दीप्त रसत्वं कांति:।'

'काव्य शोभाया: कर्तारो धर्मा: गुणा:। विशेषो गुणात्मा।'

वामन गुणों को शब्द गुण भी मानते हैं तथा अर्थ गुण भी। इनकी व्याख्या इस तरह करते हैं–

(1) **ओज–** शब्द गुण–रचना की गाढ़ता ही ओज गुण है।

अर्थ गुण–अर्थ की प्रौढ़ता ही ओज गुण है।

टिप्पणी

(2) **प्रसाद**– शब्द गुण–रचना की शिथिलता ही प्रसाद गुण है।

अर्थ गुण–अर्थ की स्पष्ट व्यंजना ही प्रसाद गुण है।

(3) **श्लेष**– शब्द गुण–रचना की मंजुलता ही श्लेष गुण है।

अर्थ गुण–क्रम, कुटिलता, प्रसिद्ध वर्णन शैली ओर उपपत्ति के योग वाली घटना ही श्लेष है।

(4) **समता**– शब्द गुण– रचना का अभेद समता गुण है।

अर्थ गुण– अर्थ की समता ही समता गुण है।

(5) **समाधि**– शब्द गुण–रचना के आरोहावरोह क्रम को समाधि गुण कहते हैं।

अर्थ गुण–अर्थ दृष्टि ही समाधि गुण है।

(6) **माधुर्य**– शब्द गुण–समास रहित रचना ही माधुर्य गुण है।

अर्थ गुण–विचित्र उक्ति का कथन माधुर्य गुण है।

(7) **सौकुमार्य**–शब्द गुण–रचना की कोमलता ही सुकुमार गुण है।

अर्थ गुण–कोमल भाव या अर्थ की व्यंजना को सौकुमार्य गुण कहते हैं।

(8) **उदारता**– शब्द गुण–रचना की विकटता ही उदारता का गुण है।

अर्थ गुण–अर्थ में ग्राम्यत्व का अभाव ही उदारता गुण कहलाता है।

(9) **अर्थव्यक्ति**–शब्द गुण–अर्थ की स्पष्ट प्रतीति का हेतु ही अर्थ व्यक्ति गुण होता है।

अर्थ गुण–वस्तु के स्वभाव का स्पष्ट वर्णन ही अर्थ व्यक्ति गुण होता है।

(10) **कांति**– शब्द गुण–रचना की उज्ज्वलता का नाम ही कांति गुण है।

अर्थ गुण–शृंगारादि रसों की प्रकाशमानता ही कांति गुण है।

आनंदवर्धन ने गुणों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए उन्हें रसाश्रित मान कर रस के उपकारक धर्म बताया। ध्वनिकार ने गुणों को आत्मा के शौर्यादि गुणों के समान बताया जो आत्मा के उत्कर्षक धर्म होते हैं। विश्वनाथ एवं पंडितराज भी इस मत से सहमत हुए। अंततः गुणों की स्थिति इस तरह स्पष्ट हुई कि–"गुण उस तत्व का नाम है जो रस के उत्कर्ष हेतु एवं उपकारक धर्म हैं और काव्य में उनकी स्थिति अचल एवं अनिवार्य है, ठीक इस प्रकार जिस प्रकार मानव में आत्मा के उत्कर्ष हेतु शौर्यादि गुणों की अचल एवं अनिवार्य स्थिति है।" गुणों की संख्या विभिन्न आचार्यों के मतानुसार बढ़ती-घटती रही। अंततः सभी आचार्यों ने जिन गुणों को एक स्वर से स्वीकारा, उनकी संख्या तीन हैं– (1) प्रसाद गुण, (2) ओज गुण, (3) माधुर्य गुण।

(1) **प्रसाद गुण**– जिस प्रकार अग्नि सूखे ईंधन में तत्काल व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार चित्त में तुरंत व्याप्त हो जाने वाला गुण प्रसाद गुण कहलाता है। प्रसाद गुण सभी प्रकार की रचनाओं और रसों में व्यवहृत किया जा सकता है। प्रसाद गुण युक्त रचना में ऐसे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग किया जाता है कि जिन्हें सुनते ही श्रोता को अर्थ की प्रतीति हो जाती है। साहित्य दर्पणकार ने प्रसाद गुण की यही परिभाषा की है–

टिप्पणी

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केंधनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।
शब्दास्तद्व्यंजकाः अर्थ-बोधका श्रुतिमात्रतः॥

उदाहरण–**छीनता हो स्वत्व कोई और त्याग, तप से तू काम ले, यह पाप है।**
पुण्य है विछिन्न कर देना उसे, तेरी तरफ बढ़ रहा जो हाथ है।

(दिनकर कुरुक्षेत्र)

उपर्युक्त पद को पढ़ते ही तुरंत अर्थ-बोध हो जाता है कि अधिकारों के हनन को सहन करना ही पाप है और अधिकारों की रक्षा करना ही पुण्य है।

(2) **ओज गुण**– जिस काव्य-रचना के सुनने अथवा पढ़ने से चित्त का विस्तार हो और मन में तेज उत्पन्न हो वहां उस रचना में 'ओज' गुण माना जाता है। ओज गुण से युक्त रचना के आस्वादन से चित्त-दीप्ति एवं आवेग उत्पन्न हो जाते हैं। इस गुण का प्रयोग वीर, वीभत्स, रौद्र रसों में किया जाता है। इसमें संयुक्त वर्णों, रेफ, परुषवर्णों और लंबे-लंबे समासों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है। 'काव्य प्रकाश' में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है–

दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीर-रस स्थितिः।
वीभत्स-रौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च॥

उदाहरण–**बरसे आग जलद जल जाए भस्मसात् भूधर हो जाएं।**
पाप-पुण्य सदसद्भावों की धूल उड़े उठ दांए-बांए॥
नभ का वक्षस्थल फट जाए तारे टूक-टूक हो जाएं।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए॥

यह उदाहरण प्रसाद गुण युक्त ओज गुण है। इसमें यद्यपि उपरोक्त सभी लक्षण तो उपलब्ध नहीं होते किंतु शब्द एवं अर्थ का गुंफन इस प्रकार किया गया है कि पढ़कर या सुनकर चित्त का विस्तार अवश्य होता है, मन में आवेग एवं तेज उत्पन्न होता है।

(3) **माधुर्य गुण**– जिस काव्य रचना के पढ़ने या सुनने से पाठक या श्रोता का चित्त द्रवित हो उठता हो वहां माधुर्य गुण माना जाना चाहिए। शृंगार या करुण रस के प्रसंगों में सहृदय सामाजिक का मन द्रवीभूत हो उठता है। चित्त के द्रवण का कारण उस समय माधुर्यगुण ही होता है और रस की निष्पत्ति में परम सहायक सिद्ध होता है। मम्मट ने काव्य-प्रकाश में माधुर्य गुण की परिभाषा इस प्रकार दी है–

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुति-कारणम्।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्॥

अर्थात आह्लादकत्व ही माधुर्य गुण है। इससे चित्त अतिशय द्रवित हो जाता है। इसका शृंगार, करुण और शांत रस में प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण– **पगली हां! सम्हाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल।**

टिप्पणी

देख, बिखरती है, मणिराजी अरी, उठा बेसुध चंचल।।
फटा हुआ था नील वसन क्या, ओ यौवन की मतवाली।
देख, अकिंचन जगत लूटता, छवि तेरी भोली-भाली।।

यह रात्रि के सौंदर्य का चित्रण है। इसमें मधुर एवं कोमल वर्णों के आधिक्य के कारण माधुर्य गुण की अभिव्यंजना हुई है।

2.3.4 रीति सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं

'रीति' शब्द का प्रयोग आचार्य वामन ने किया। वे रीति सिद्धांत के प्रवर्तक माने जाते हैं। किंतु उनसे बहुत पहले भामह और दंडी ने 'मार्ग' के नाम से इस सिद्धांत का सूत्रपात कर दिया था और गहन दृष्टि डालें तो पाते हैं कि अन्य सिद्धांतों की तरह इस सिद्धांत के बीज भी भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में पाए जाते हैं। भरत ने चार नाट्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है–(1) आवंती (पश्चिमी भारत), (2) दक्षिणात्या (दक्षिण भारत), (3) पांचाली (मध्य भारत), (4) औड्रमागधी (उड़ीसा तथा मगध प्रदेश)। ये प्रवृत्तियां भारत की चारों दिशाओं की सूचक हैं। भरत की प्रवृत्तियों का क्षेत्र रीति से अधिक व्यापक है क्योंकि इनका आधार भारतीयों की वेशभूषा, आचार-विचार और भाषा है। 'रीति' का संबंध केवल पद-रचना से होता है।

आगे चलकर बाणभट्ट ने 'हर्ष चरित' में कहा–

श्लेष प्रायमुदीच्येषु, प्रतीच्येष्वर्थ मात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु, गौडेष्वक्षरडम्बरः।।

अर्थात उत्तर के लेखक प्रायः श्लेष का प्रयोग करते हैं, पश्चिम के काव्यकर्मी वाणी के आडंबर से दूर रह कर केवल अर्थ-गौरव पर अधिक ध्यान देते हैं, दक्षिण के सर्जक कलाकार उत्प्रेक्षा के प्रेमी हैं तो गौड़ प्रदेश (पूर्व) के कवि अक्षराडंबर में अधिक विश्वास रखते हैं। बाणभट्ट ने श्लेष, उत्प्रेक्षा और अर्थमात्रा आदि का उल्लेख कर काव्य शैली के साथ गुण और अलंकार को भी जोड़ने का प्रयास किया है। इनके साथ रस का भी समावेश करके वे कहते हैं कि इन सबका काव्य में एक साथ प्रयोग किसी रीति से नहीं कवि प्रतिभा से ही हो सकता है। इस तरह वे चारों शैलियों को प्रतिभा के सामने निरस्त करते हैं।

बाणभट्ट के बाद 'रीति' पर व्यवस्थित और प्रणाली बद्ध चिंतन भामह ने किया। वे 'मार्ग' शब्द का प्रयोग करते हैं। भामह के अनुसार वैदर्भी रीति ही गौडीय रीति है। इन्हें अलग-अलग मानने की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं–पुष्ट अर्थ और वक्रोक्ति से हीन वैदर्भी भी गीत की भांति श्रुति मधुर होती है। अलंकार युक्त, अग्राम्य, अर्थयुक्त, न्याय सम्मत अनाकुल गौडीय काव्य भी श्रेष्ठ है। अन्यथा वैदर्भ काव्य भी श्रेष्ठ नहीं है। दंडी ने भी 'रीति' के लिए 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया। 'वाणी' के अनेक मार्ग हैं कहकर वे 'मार्ग' शब्द को कवि के व्यक्तित्व के साथ जोड़ने का सफल प्रयास करते हैं। दंडी ने दो 'मार्ग' ही चुने हैं–(1) वैदर्भ, (2) गौडीय। कहते हैं–"श्लेष, समता, प्रसाद, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कांति ओर समाधि ये दस गुण वैदर्भ के प्राण हैं।"

टिप्पणी

गौडीय में इनका विपर्यय लक्षित होता है। दंडी वैदर्भ मार्ग प्रधान काव्य को ही सत्काव्य की कोटि में रखते हैं।

आनंदवर्धन ने रीति के लिए 'संघटना' शब्द का प्रयोग किया है। वे रीति या संघटना को रसाभिव्यक्ति का माध्यम मानते हुए उसे समास योजना पर आधारित मानते हैं। उन्होंने संघटना के तीन प्रकार बताए–(1) असमासा संघटना (2) मध्य समासा (3) दीर्घ समासा। आनंदवर्धन कहते हैं–संघटना गुणाश्रित होती है। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा मानते हुए–**'रीतिरात्मा काव्यस्य'** कहा। **'विशिष्टा पदरचना रीति'** और 'विशेषो गुणात्मा' कहा। अर्थात विशिष्ट पद रचना रीति है किंतु पदों में विशिष्टता गुणों के कारण आती है। अतः रीति गुणों पर आधारित है। रीति संप्रदाय को गुण संप्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। वामन कहते हैं–'समग्रगुणा वैदर्भी'। यानी वैदर्भी में सभी दस गुण विद्यमान रहते हैं। गौड़ीय में ओज तथा कांति गुण रहते हैं। पांचाली में माधुर्य और सौकुमार्य गुण विद्यमान रहते हैं। राजशेखर ने वामन की परिभाषा की पुष्टि की। राजशेखर के अनुसार–'वचनविन्यास क्रमो रीतिः।' अर्थात वचन विन्यास का क्रम ही रीति है। कुंतक ने 'रीति' को कवि स्वभाव के साथ जोड़ दिया। वे इसे 'कवि-प्रस्थान हेतु' की संज्ञा देते हैं। भोजराज ने रीति को 'कवि-गमन मार्ग' कहा। जबकि मम्मट ने रीति के स्थान पर 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग किया और अंत में रीति और वृत्ति को पर्यायवाची कहा। उनके वक्तव्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि–(1) वृत्ति और रीति समान हैं। (2) वृत्तियों का आधार वर्ण संगुंफना है। अर्थात समास नहीं है। (3) वर्णगुंफ का गुण के साथ निश्चित संबंध है। (4) रीति का विषय रस है और यह एक निश्चित व्यापार है।

आचार्य विश्वनाथ भी मम्मट के मत की पुष्टि करते हैं। अंतर यह है कि वे वर्ण के साथ शब्द गुंफ या समास को भी रीति का आधार मानते हैं। विश्वनाथ के अनुसार– रीति अंग संस्थान की तरह पद-संघटना है और रस का उपकारक तत्व है।

निष्कर्ष-'रीति' काव्य का प्रमुख तत्व है। कुछ आचार्यों ने इसे अलंकार माना तो कुछ ने रस का उपकारक माना। 'रीति' काव्य की आत्मा नहीं है किंतु काव्यात्मा रस की निष्पत्ति में निश्चित रूप से इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह साध्य नहीं है किंतु महत्वपूर्ण साधन है। यह अभिव्यक्ति का माध्यम है लेकिन ऐसा माध्यम जो भावों को प्रभावित करता है। भाव यानी 'रस'। कहा जा सकता है कि 'रीति' सिद्धांत का काव्य में उच्च स्थान है।

2.4 ध्वनि संप्रदाय

'ध्वनि' को काव्य में रस के समकक्ष या रस के निकट या रस के निकटस्थ आत्मीय का स्थान दिया जाता रहा है। यह वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि और रसभावादि ध्वनि के रूप में काव्य में उपस्थित रहती है। व्यंग्य या व्यंजना के लिए 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग किया जाता है। व्यंग्य के रूप में ही ध्वनि को काव्य की आत्मा माना गया है। शब्द बोध की प्रक्रिया में सबसे पहले 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग वैयाकरणों ने किया। हर शब्द का कोई न कोई अर्थ होता है इसलिए शब्द और अर्थ का संबंध निश्चित माना जाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. रीति संप्रदाय के प्रवर्तक का नाम बताइए।
6. 'शैली' के स्थान पर 'रीति' शब्द का प्रयोग करने पर बल किस विद्वान ने दिया?
7. रस को गुणों पर आश्रित मानने वाले दो विद्वानों के नाम बताइए।
8. आचार्य वामन से पहले किन आचार्यों ने 'मार्ग' के नाम से रीति सिद्धांत का सूत्रपात कर दिया था?
9. रीति के लिए 'संघटना' शब्द का प्रयोग किस विद्वान ने किया?

टिप्पणी

किंतु किस शब्द का क्या अर्थ है, इसके पीछे समाज की कोई न कोई स्वेच्छा और स्वीकृति होती है। इसलिए शब्दार्थ का संबंध स्वेच्छया स्वीकृत होता है। शब्द की पहली शक्ति या व्यापार अभिधा है जिसके माध्यम से वह संकेतित अर्थ का ज्ञान कराती है। संकेतित अर्थ का तात्पर्य है–जो समाज ने व्यवहार, कोष आदि के आधार पर निर्धारित किया है। व्यक्ति को यह ज्ञान होना चाहिए कि कौन सा शब्द (ध्वन्यात्मक) किस अर्थ में ग्रहण किया जाएगा। इस ज्ञान के अभाव में वह संकेतित अर्थ को नहीं समझ सकेगा। उसमें सुख-दुख के भावों के संस्कार के साथ पद और शब्द के ज्ञान का संस्कार भी होना चाहिए, तभी अर्थ का उद्‌घाटन होगा।

2.4.1 ध्वनि का स्वरूप

ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्धन हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि को परिभाषित किया है–

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत-स्वार्थौ।
व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥

अर्थात जहां पर अर्थ अपने आपको अथवा शब्द अपने अभिप्राय को गौण कर किसी अन्य चमत्कारपूर्ण प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करता है, उस काव्य-विशेष को विद्वानों ने 'ध्वनि' की संज्ञा से अभिहित किया है। आनंदवर्धन ने 'ध्वनि' के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव, वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्-तत् प्रसिद्धावयवाति रिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु॥

अर्थात वह प्रतीयमान अर्थ अथवा ध्वनि जो महाकवियों की वाणी में विभासित होती है। वह कुछ और ही विलक्षण वस्तु होती है। वैसा ही विलक्षण जैसे रमणियों के शारीरिक अवयवों के अतिरिक्त उनका लावण्य एक विलक्षण वस्तु होता है। उपर्युक्त कारिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ध्वनि शब्दार्थ के स्वरूप से भिन्न कोई विलक्षण, चमत्कारपूर्ण और आकर्षक प्रतीयमान पदार्थ होता है। आचार्य मम्मट लिखते हैं–

'इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।'

अर्थात जहां व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक उत्तम और चमत्कारपूर्ण होता है उसे ही ध्वनि कहा जाता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ भी यही कहते हैं–**"वाच्यातिशायिनी व्यंग्ये ध्वनिस्तत् काव्यमुत्तमम्।"** आचार्य आनंदवर्धन ने स्फोट को ध्वनि का पर्याय मानते हुए काव्य के सभी अंगों को इसमें समेटने का प्रयास किया। लोचनकार अभिनव गुप्त ने 'ध्वनि' शब्द की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या की तथा उसे पांच प्रकारों में बांट दिया–(1) वाचक ध्वनि, (2) वाच्य ध्वनि, (3) व्यंग्य ध्वनि, (4) व्यंजना व्यापार ध्वनि, (5) समुदाय रूप काव्य।

1. 'ध्वनति इति ध्वनिः' अर्थात जो ध्वनित करता है या कराता है। इससे वाचक और वाच्य का बोध होता है।
2. 'ध्वन्यत् इति ध्वनिः' अर्थात जो अर्थ ध्वनित होता है वह ध्वनि है अर्थात व्यंग्यार्थ।

टिप्पणी

3. 'ध्वननं इति ध्वनिः' अर्थात जो शब्दार्थ का 'ध्वनन' करता है अर्थात शब्दशक्ति व्यापार।
4. ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः' अर्थात जिसमें ध्वनित होता है– रस, अलंकार और वस्तु।

ध्वनिवादियों के अनुसार समस्त काव्य-व्यापार ही ध्वनि है। आनंदवर्धन ने ध्वनि सिद्धांत को प्रौढ़ता प्रदान की। उनके अनुसार ध्वनि ही काव्य की आत्मा है।

'काव्यस्यात्मा ध्वनिरितिबुधैः यः समाम्नात् पूर्वम्।' पूर्ववर्ती आचार्यों ने इसे स्वीकार किया था किंतु इसे व्यवस्थित कर प्रकाश में लाने का श्रेय आनंदवर्धन को है। उन्होंने कहा यह सर्वांगपूर्ण स्वतंत्र सिद्धांत है। किसी पूर्ववर्ती सिद्धांत के भीतर इसका अंतर्भाव नहीं हो सकता। ध्वनिकार ने शब्दशक्ति 'व्यंजना' पर आश्रित ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है। और यह भी कि "जिस ध्वनि सिद्धांत का मैंने प्रतिपादन किया, वह वैयाकरणों के सिद्धांत (स्फोट सिद्धांत) पर आधारित है। जब किसी शब्द का उच्चारण किया जाता है तो उसकी पृथक-पृथक ध्वनियां कुछ अंशों में स्फोट के विशिष्ट ध्वनिक्रम में परिलक्षित होती हैं। अंतिम ध्वनि का लोप हो जाने पर इन ध्वनियों से परिलक्षित स्फोट की प्रतीति हो जाती है और इस प्रकार अर्थबोध हो जाता है। अतः पृथक-पृथक वर्णों की ध्वनि में भिन्न शब्द ध्वनि का समुदाय ही स्फोट है।" ध्वनिकार 'रसध्वनि' को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। अविवक्षित वाच्य ओर विवक्षितान्य परवाच्य नामक ध्वनि के दो भेद किए हैं। वे कहते हैं–काव्य के अर्थ दो प्रकार के होते हैं एक वाच्य और दूसरा प्रतीयमान। काव्य में वाच्यार्थ का सौंदर्य नहीं होता बल्कि व्यंग्यार्थ का ही सौंदर्य रहता है। वाच्यार्थ में अलंकार आदि होते हैं जबकि प्रतीयमान अर्थ में ध्वनि का समावेश होता है–

'प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥'

ध्वनि सिद्धांत के अनुसार काव्य के तीन भेद हैं–(1) ध्वनि काव्य (उत्तम), (2) गुणीभूत व्यंग्य (मध्यम), (3) चित्र काव्य (अधम)। ध्वनिकार के कथनों का निष्कर्ष यही निकलता है कि 'ध्वनि' (व्यंग्यार्थ) शब्दार्थ से भिन्न तत्व है और यह लज्जा, लावण्य आदि के समान आंतरिक तत्व है। शब्दार्थ साधन है ओर ध्वनि साध्य। जिस प्रकार लावण्य के लिए अंगना के अंगों की और प्रकाश के लिए दीपशिखा की आवश्यकता होती है उसी तरह ध्वनि के लिए शब्दार्थ अपेक्षित है। 'ध्वनि' का विरोध करने और इस सिद्धांत को मान्यता देने की प्रक्रिया में अनेक वादों का जन्म हुआ–

- **अभाववाद**–अभाववादी ध्वनि की सत्ता को अस्वीकार करते हैं। भामह, दंडी, उद्‌भट आदि का मानना है कि अलंकार, रीति आदि तत्वों की स्वीकृति के बाद 'ध्वनि' तत्व की आवश्यकता ही नहीं है।
- **अलक्षणीयता वाद**–इसके समर्थक ध्वनि को अलक्षणीय अर्थात अनिर्वचनीय मानते हैं–**'केचिद् वाचां स्थितमविषये तंत्वमूचुस्तदीयम्।'** अर्थात यह कि ध्वनि वचनों से न व्यक्त किया जा सकने वाला एक आंतरिक तत्व है, अतः यह वर्णन का विषय नहीं बन सकता।' इस धारणा से ध्वनि की प्रतिष्ठा में वृद्धि ही हुई।

टिप्पणी

- **अभिधावाद**–भट्टलोल्लट जैसे अभिधावादियों का यह मानना है कि 'यत्पर: शब्द: स शब्दार्थ:' अर्थात वक्ता को एक शब्द का जितना भी अर्थ अभीष्ट होता है, वह शब्द उतने ही अर्थ का वाचक होता है। दूसरे शब्दों में वह संपूर्ण अर्थ अभिधागम्य होने के कारण वाच्यार्थ कहलाता है, व्यंग्यार्थ नहीं।

- **व्यंजनावाद**–व्यंग्यार्थ का कारण 'शब्द' को नहीं मानते। क्योंकि शब्द न तो कारण निमित्त है न ज्ञापक। शब्द व्यंग्यार्थ का प्रकाशक है। अन्विताभिधानवादी कहते हैं–अभिधा शक्ति पदार्थ का सामान्य ज्ञान कराने के साथ वाक्य के अन्वितार्थ का विशेष ज्ञान कराती है। अत: विशेष ज्ञान के अंतर्गत व्यंग्यार्थ के भी सम्मिलित हो जाने के कारण व्यंजना शक्ति की स्वीकृति नहीं की जानी चाहिए। अभिहितान्वयवादी कहते हैं। अभिधा शक्ति जब परस्पर संबद्ध वाक्यार्थ का ज्ञान बिना तात्पर्य वृत्ति माने नहीं करा सकती, तो यह व्यंग्य जैसे दूरवर्ती अर्थ का बोध कैसे करा सकती है?

धनंजय और धनिक जैसे तात्पर्यवादी आचार्यों का कथन अलग है। धनंजय कहते हैं–"जिस प्रकार 'द्वार-द्वार' कहने से वक्ता की अश्रूयमाण क्रिया 'खोलो' अथवा 'बंद करो' का ज्ञान प्रकरणादि-वश वाक्यार्थ अर्थात तात्पर्या वृत्ति द्वारा हो जाता है, उसी प्रकार विभावादि युक्त काव्य में स्थापित भाव का ज्ञान भी काव्य के वाक्यार्थ (तात्पर्य) से ही हो जाता है।" धनिक कहते हैं–"जैसे काव्य कवि के तात्पर्य पर आश्रित रहता है वैसे ही लौकिक वाक्य वक्ता के तात्पर्य पर आश्रित होता है और तात्पर्य की कोई सीमा नहीं होती।" लक्षणावादी–भट्ट, उद्भट जैसे आचार्य मानते हैं कि व्यंग्यार्थ का अंतर्भाव लक्ष्यार्थ में किया जाना चाहिए। अत: लक्षणाशक्ति से परे व्यंजना शक्ति को मानने की आवश्यकता नहीं है। ये ध्वनि को लक्षणा-गम्य मानते हैं। अनुमितिवादी महिमभट्ट ने ध्वनि को अनुमान में अंतर्भूत करने के लिए 'व्यक्ति विवेक' नामक ग्रंथ की रचना की। इस तरह भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपने-अपने तर्क देकर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि ध्वनि रस की अपेक्षा अधिक व्यापक है और ध्वनि तत्व में हर प्रकार का काव्य-चमत्कार अंतर्भूत हो जाता है इसलिए यह महत्वपूर्ण और व्यापक काव्य तत्व है। अत: ध्वनि ही काव्य की आत्मा है।

2.4.2 ध्वनि सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाएं

आनंदवर्धन ने नवीं शताब्दी में ध्वन्यालोक ग्रंथ लिखा एवं घोषणा की कि–'ध्वनि काव्य की आत्मा है।' इसके पश्चात् दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर 'लोचन' नामक टीका लिखी। यह मूल ग्रंथ से अधिक सशक्त और लोकप्रिय ध्वन्यालोक की पोषिका सिद्ध हुई। रसवादी आचार्य अभिनवगुप्त ने रस और ध्वनि के अभिन्न संबंधों की स्थापना करते हुए कहा–'रस वाच्य न होकर व्यंग्य होता है। काव्य का सर्वस्व रसध्वनि है और वस्तु ध्वनि तथा अलंकार ध्वनि भी अंतत: रस ध्वनि का ही पोषण करती है। इस मान्य सिद्धांत ने अभिनवगुप्त को प्रतिष्ठा प्रदान की तथा ध्वनि सिद्धांत को और स्थायित्व प्राप्त हुआ।

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में मम्मट का आगमन हुआ। तब तक मुकुलभट्ट, भट्टनायक, धनंजय, धनिक, महिम भट्ट आदि विद्वान ध्वनि का खंडन कर चुके थे। मम्मट

टिप्पणी

ने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ की रचना की तथा ध्वनि सिद्धांत को स्थापित किया। काव्य के तीन भेद ध्वनि के आधार पर किए। पंडितराज जगन्नाथ ध्वनि सिद्धांत के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने ध्वनि के आधार पर काव्य के चार भेद स्वीकार किए तथा दूसरे प्राचीन ध्वनिवादी रस को केवल असंलक्ष्य क्रम-व्यंग्य ध्वनि ही मानते थे। पंडितराज ने रस को संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य ध्वनि के अंतर्गत भी सिद्ध किया।

मुकुलभट्ट केवल अभिधा की शक्ति को स्वीकार करते थें, व्यंजना की नहीं। वे अभिधावादी आचार्य थे। प्रतिहारेन्दुराज अलंकारवादी आचार्य थे। इन्होंने ध्वनि का विरोध किया। इन्होंने रसध्वनि को रसवद्अलंकार, वस्तुध्वनि को पर्यायोक्त अलंकार तथा अलंकार ध्वनि को श्लेष में अंतर्भुक्त कर इनकी विवेचना की तथा व्यंजना का विरोध किया। भट्टनायक रसवादी एवं ध्वनि विरोधी आचार्य थे। इन्होंने व्यंजना वृत्ति को अस्वीकार करते हुए केवल 'भावकत्व' व्यापार का समर्थन किया, जिसके आधार पर साधारणीकरण जैसे प्रसिद्ध सिद्धांत की स्थापना की। धनंजय और धनिक ने व्यंजना वृत्ति के स्थान पर तात्पर्य वृत्ति को समर्थन दिया। धनंजय ने 'दशरूपक' ग्रंथ लिखा जिसकी 'अवलोक' नामक टीका धनिक ने लिखी। ये आचार्य ध्वनि सिद्धांत का अंतर्भाव 'तात्पर्य वृत्ति' में करते हैं। इनके अनुसार प्रतीयमान अर्थ तात्पर्य वृत्ति का अभिन्न अंग है अत: अलग से व्यंजना वृत्ति को मान्यता देने की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं–किसी भी वाक्य का वही अर्थ होगा जिसे वक्ता कहना चाहता है या जिस तात्पर्य को लेकर कोई वक्ता किसी वाक्य का कथन करता है। ये यह भी कहते हैं कि काव्य में जिस व्यंग्य-व्यंजक भाव की कल्पना ध्वनिवादी करते हैं, वह ठीक नहीं है। काव्य का रस के साथ भाव्य-भावक संबंध होता है और इसी से साधारणीकरण की अवस्था आती है।

कुंतक ने ध्वनि का विरोध न करते हुए भी उसके समस्त भेदोपभेदों को वक्रोक्ति के अंतर्गत दर्शाने का प्रयास किया। इन्होंने ध्वनि के स्थान पर वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग किया है। शेष प्रक्रिया समान है। जैसे 'अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि' के उदाहरण को कुंतक पदपूर्वार्ध वक्रता के एक भेद रूढ़िवैचित्र्य वक्रता के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। कुंतक ध्वनिवादियों की तरह काव्य में कल्पना तत्व के पक्षधर हैं। अंतर यह है कि ध्वनिवादी कल्पना को आत्मगत मानते हैं और कुंतक उसे वस्तुगत मानते हैं।

महिमभट्ट नैयायिक थे। इन्होंने ध्वनि सिद्धांत का विरोध करने के लिए व्यक्ति विवेक नामक ग्रंथ लिखा। ये व्यंजना की सिद्धि अनुमान द्वारा करते हैं। इनके दोषपूर्ण सिद्धांत को अमान्य ठहराया गया। शब्द शक्तियां अभिधा, लक्षणा ओर व्यंजना में व्यंजना का ध्वनि सिद्धांत से गहरा संबंध है। अभिधा संकेतित अर्थ का बोध कराती है। लक्षणा मुख्यार्थ से किसी न किसी रूप में संबद्ध अर्थ का बोध कराती है किंतु व्यंजना उस प्रतीयमान अर्थ का बोध कराती है जो शब्दों से उसी तरह झलकता है जैसे सुंदरी के अंगों से लावण्य। व्यंजना शब्द और अर्थ दोनों में विद्यमान रहती है। ध्वनि सिद्धांत का मूल आधार व्यंजना शक्ति है। व्यंग्य काव्य का प्राण है, ऐसा माना जाता है। इसी व्यंजना शक्ति के भेद, उपभेद के आधार पर ध्वनि के भेद किए गए हैं। ध्वनि सिद्धांत पहला ऐसा भारतीय काव्यशास्त्री सिद्धांत है जिसमें कल्पना तत्व को स्वीकार किया गया है। ध्वनिकार का यह प्रयत्न था कि ध्वनि सिद्धांत की स्थापना भी हो जाए तथा काव्य के अन्य अवयवों– रस, रीति, अलंकार, गुण, वक्रोक्ति, औचित्य आदि का

टिप्पणी

उसमें ठीक तरह से समावेश हो जाए। उन्होंने इन सभी अवयवों को व्यंग्य माना और व्यंग्य के कारण वे ध्वनि में अंतर्भुक्त हो गए।

2.4.3 ध्वनि काव्य के प्रमुख भेद

ध्वनि के सर्वप्रथम 2 भेद किए जाते हैं- अभिधामूलक और लक्षणामूलक। अभिधामूलक में सीधे अभिदेय अर्थ से ही व्यंग्यार्थ ध्वनित हो जाता है, जबकि लक्षणामूलक में लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है।

अभिधामूलक के दो उपभेद - 1. असंलक्ष्यक्रम ध्वनि और 2. संलक्ष्यक्रम ध्वनि हैं। जहां वाच्यार्थ के साथ-साथ ही व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, दोनों के बीच में कोई अंतर नहीं होता- वहां असंलक्ष्यक्रम ध्वनि होती है। जैसे "अरे! यह तो यहां रुपये का दो छटांक मिलता है।" इनका व्यंग्यार्थ है कि यहां महंगाई बहुत है। संलक्ष्यक्रम ध्वनि में वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के बोध होने का क्रम प्रतीत हो जाता है। जैसे-

माली आवत देख के कलियां करें पुकार।

फूले फूले चुनि लिए कालि हमारी बार॥

यहां माली के स्थान पर काल या मृत्यु संबंधी जिस अर्थ का बोध होता है, वही व्यंग्यार्थ है।

अभिधामूलक के दोनों भेदों में प्रथम के अंतर्गत रस को रखा गया है और दूसरी के अंतर्गत वस्तु एवं अलंकार का परिगणन किया गया है। इन्हें विद्वान रस ध्वनि, वस्तु एवं अलंकार ध्वनि भी कहते हैं।

लक्षणामूलक ध्वनि के भी दो भेद किए गए हैं-1. अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि और 2. अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि। लक्षणा में मूल वाच्यार्थ की उपेक्षा होती है। इस उपेक्षा की दो कोटियां हैं- एक जहां थोड़ी उपेक्षा हो जाती है, दूसरी जहां बिल्कुल हो जाती है। लक्षणामूलक ध्वनि के दोनों भेद क्रमशः इन्हीं दो कोटियों पर आधारित हैं।

अर्थांतर संक्रमित वाच्य में वाच्यार्थ थोड़ा-सा अन्य अर्थ में संक्रमित हो जाता है। जैसे- **"राखी सजी पर कलाई नहीं है।"** यहां कलाई का व्यंग्यार्थ है भाई की कलाई या वह भाई जिसको राखी बांधी जा सके। स्पष्ट है कि यहां 'कलाई' का अर्थ संक्रमित हो गया है।

अत्यंत तिरस्कृत वाच्य में वाच्यार्थ का बिल्कुल तिरस्कार हो जाता है। जैसे-"पेट में तो चूहे कूद रहे हैं।" यहां व्यंग्यार्थ में 'चूहे' शब्द का अर्थ सर्वथा तिरस्कृत हो जाता है।

चमत्कार की दृष्टि से ध्वनि के तीन भेद बताए जाते हैं–(1) शुद्ध ध्वनि चमत्कार, (2) गुणीभूत व्यंग्य, (3) ध्वनि का अभाव–इसे चित्रकाव्य या अधम काव्य भी कहते हैं।

- **शुद्ध ध्वनि चमत्कार**–जहां वाच्यार्थ की तुलना में व्यंग्यार्थ की ही प्रधानता हो।
- **गुणीभूत व्यंग्य ध्वनि**–जहां पर वाच्यार्थ की प्रधानता हो किंतु उसमें गौण रूप में व्यंग्य भी हो वहां पर गुणीभूत व्यंग्य ध्वनि होती है। ऐसे स्थलों पर व्यंग्य वाच्य की तुलना में अधिक रमणीय नहीं होता वह या तो वाच्य के समान ही रमणीय होता है या फिर उससे कम किंतु वहां पर व्यंग्य रहता अवश्य है। इसके आठ भेद होते

टिप्पणी

हैं–(क) अगूढ़ व्यंग्य, (ख) अपरांग व्यंग्य, (ग) वाच्यसिद्धयंग व्यंग्य, (घ) अस्फुट व्यंग्य, (ङ) असंदिग्ध व्यंग्य, (च); तुल्यप्राधान्य व्यंग्य, (छ) काक्वाक्षिप्त व्यंग्य और (ज) असुंदर व्यंग्य।

(क) **अगूढ़ व्यंग्य**–वाच्यार्थ के सामन ही स्पष्ट प्रतीत होने वाले व्यंग्य को अगूढ़ व्यंग्य कहा जाता है अर्थात जहां पर व्यंग्य गूढ़ या अस्पष्ट न हो–

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई॥

उपर्युक्त अर्धाली में 'जिसके रामभक्त पुत्र हो वही पुत्रवती होती है' कहा गया है किंतु व्यवहार में वह स्त्री भी पुत्रवती कहलाती है जिसका पुत्र रामभक्त नहीं होता। अतः यहां पर मुख्यार्थ अगूढ़ हुआ। अर्थांतर में संक्रमण होने से वहां पर स्पष्टतः अविवक्षित वाच्य (जहां पर वाच्यार्थ/अभिधार्थ अभिप्रेत नहीं है) ध्वनि है।

(ख) **अपरांग व्यंग्य**–जहां पर एक व्यंग्य किसी दूसरे व्यंग्य का अंग बन कर उपस्थित हुआ हो वहां पर अपरांग व्यंग्य होता है, जैसे–

डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब व्रज बेहाल।
कम्प किसोरी दरस तैं खरे लजाने लाल॥

उपर्युक्त पद्य में कृष्ण का लज्जा भाव उसका कम्प सात्विक भाव का अंग बन कर उपस्थित हुआ है। अतः यहां पर अपरांग व्यंग्य है।

(ग) **वाच्य सिद्धयंग व्यंग्य**–जहां पर व्यंग्य वाच्य की सिद्धि के लिए उपस्थित किया गया हो वहां पर वाच्य सिद्धयंग व्यंग्य होता है। जैसे–

सोती थी सुहाग भरी, स्नेह स्वप्न मग्न।
अमल कोमल, तनु तरुणी, जूही की कली।
दृग बंद किए, शिथिल पत्रांक में॥

उपर्युक्त पद्य में नववधू व्यंग्य प्रकृति चित्रण वाच्य की सिद्धि के रूप में प्रस्तुत हुआ है। अतः वहां पर वाच्य सिद्धयंग व्यंग्य है।

(घ) **अस्फुट व्यंग्य**–जहां पर व्यंग्य तो हो किंतु स्पष्ट न हो। जिसे अच्छे से अच्छे काव्य-मर्मज्ञ सहृदय जन कठिनता से भी चिह्नित कर पाएं वहां पर अस्फुट व्यंग्य होता है, जैसे–

खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगंध के प्रथम वसंत में गुच्छ-गुच्छ।

यहां पर नवयौवना व्यंग्य है किंतु स्पष्ट नहीं है।

(ङ) **संदिग्ध प्रधान व्यंग्य**–जहां परवाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्रधानता में संदेह उत्पन्न हो जाए कि वाच्यार्थ प्रधान है अथवा व्यंग्यार्थ प्रधान है वहां पर संदिग्ध प्रधान व्यंग्य होता है, जैसे–

अधिक सनेह देह भई भोरी।
सरद ससिहिं जनु चितब चकोरी।

टिप्पणी

उपर्युक्त अर्धाली में 'जिस प्रकार शरदकालीन चंद्रमा को देखकर चकोर स्नेह विभोर हो जाती है उसी प्रकार सीताजी श्री राम को देखकर आत्मविभोर हो गईं वाच्यार्थ है किंतु 'देह भई भोरी' वाच्य में 'जड़ता' संचारी भाव भी व्यंजित हो रहा है। इन दोनों अर्थों में कौन-सा अर्थ प्रधान है? इसका संदेह बना हुआ है। अत: यहां पर संदिग्ध प्रधान व्यंग्य है।

(च) **तुल्य प्रधान व्यंग्य**–जहां पर वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ के समान रूप से चमत्कारपूर्ण होने के कारण पद में दोनों ही अर्थों की समान रूप से प्रधानता हो वहां पर तुल्य प्रधान व्यंग्य होता है, जैसे–

आज बचपन का कोमल गात। कल जरा का पीला पात।

चार दिन सुखद चांदनी रात। और फिर अंधकार अज्ञात।

उपर्युक्त पद्य में 'कोमल बचपन के पश्चात जर्जरित बुढ़ापा आता है और चार दिन की चांदनी के पश्चात अंधकार आ जाता है' वाच्यार्थ है और 'जीवन में सुख-दुख का क्रम चलता रहता है तथा परिवर्तन अवश्यंभावी है' व्यंग्यार्थ है। दोनों ही समान रूप से चमत्कारपूर्ण होने के कारण यहां पर तुल्य प्रधान व्यंग्य है।

(छ) **काक्वाक्षिप्त व्यंग्य**–काकू के द्वारा प्रकाशित व्यंग्य को काक्वाक्षिप्त व्यंग्य कहते हैं किंतु ऐसे स्थल पर वाच्यार्थ ही अधिक चारु होता है, जैसे–

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुम्हहि उचित तप मो कहं भोगू॥

उपर्युक्त अर्धाली में सीताजी के कथन में जहां काकु वक्रोक्ति का चमत्कार वाच्य है वहां पर 'हे राम आप भी वन जाने योग्य नहीं हैं।' व्यंग्य भी है जो काक्वाक्षिप्त है।

(ज) **असुंदर व्यंग्य**–जहां पर वाच्यार्थ की तुलना में व्यंग्यार्थ मनोहर न होकर असुंदर या अश्लील हो वहां पर असुंदर व्यंग्य होता है, जैसे–

"दो काष्ठों की संधि बीच, उस निभृत गुफा में अपने।
अग्नि-शिखा बुझ गयी, जैसे जगने पर सुख सपने॥

उक्त पंक्तियों में यौनांगों और संसर्ग का व्यंग्य असुंदर है।

ध्वनिहीन व्यंग्य (चित्र काव्य)–जहां पर व्यंग्य हो ही नहीं केवल शब्द या अर्थ का ही भाव चमत्कार हो वहां पर ध्वनिहीन व्यंग्य होता है, जैसे–

चाची जी चौके में चलकर चमचे से चावल चला।

इस वाक्य मे केवल 'च' वर्ण की आवृत्ति का चमत्कार मात्र है। 'अलंकार शब्दगत और अर्थगत दोनों होते हैं। जहां चमत्कार शब्दालंकार मात्र पर हैं वहां शब्दचित्रकाव्य होगा तथा जहां चमत्कार केवल अर्थालंकार मात्र है वहां अर्थ चित्र काव्य होगा।'

'अपनी प्रगति जांचिए'

10. ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य कौन हैं?
11. चमत्कार की दृष्टि से ध्वनि के कितने भेद बताए जाते हैं?
12. 'रस वाच्य न होकर व्यंग्य होता है'– किसका कथन है?
13. ध्वनि सिद्धांत का मूल आधार क्या है?

टिप्पणी

2.5 वक्रोक्ति संप्रदाय : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं

वक्रोक्ति अर्थात टेढ़ा कथन। सामान्य कथन या सीधी बात हृदय को उतनी प्रभावित नहीं करती जितनी टेढ़ी बात। जब यह वक्रोक्ति काव्य में प्रयुक्त होती है तो काव्य में चमत्कार उत्पन्न कर देती है। सहृदय सामाजिक का हृदय आंदोलित हो उठता है। कथ्य अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता है यानी तीर निशाने पर लगता है इसलिए अलंकार सिद्धांत के कुछ अनुयायी वक्रोक्ति को अलंकार के अतंर्गत परिगणित करते हैं तो ध्वनि सिद्धांत के अनुयायी इसे व्यंग्य-कथन या व्यंजना मानते हुए ध्वनि के अंतर्गत मानते हैं। वक्रोक्ति रस निष्पत्ति में सहायक हो सकती है लेकिन स्वयं (आत्मा) रस तुल्य नहीं हो सकती। यह साधन है साध्य नहीं है।

2.5.1 वक्रोक्ति का स्वरूप

वक्रोक्ति सिद्धांत की स्थापना आचार्य कुंतक ने की। 'वक्रोक्तिजीवितम्' नामक अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ के द्वारा उन्होंने वक्रोक्ति सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने कहा–'वक्रोक्ति: काव्यजीवितम्' अर्थात वक्रोक्ति काव्य का जीवन है। काव्य की आत्मा है। जहां अधिकांश आचार्य वक्रोक्ति के अलंकारत्व या उक्ति वैचित्र्य तक ही सीमित है। कुंतक कहते हैं–"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गी भणितिरुच्यते।" (श्लोक 10) अर्थात कवि कर्म की कुशलता के कारण सबसे भिन्न विचित्र वर्णन शैली वक्रोक्ति है। लेकिन कुंतक से बहुत पहले वक्रोक्ति की कल्पना की जा चुकी थी। 'कादंबरी' में बाणभट्ट ने इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। वे 'हर्षचरित में भी वक्रोक्ति' का उल्लेख करते हैं–

'वक्रोक्तिनिपुणेन आख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण' अर्थात वक्रोक्ति चतुर जनों का आभूषण है। यह कहकर वे वक्रोक्ति के महत्व को बढ़ाते हैं। बाणभट्ट वक्रोक्ति के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए उसके स्वरूप को भी स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं–**'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या, श्लेषोऽक्लिष्ट: स्फुटो रस:। विकटाक्षरबंधश्च कृत्सनमेकत्र दुर्लभम्।'** (हर्षचरितम्) यहां 'विकटाक्षर' का प्रयोग वक्रोक्ति के संदर्भ में आया है। इस कथन से शब्द सौंदर्य का पता चलता है। भामह ने वक्रोक्ति का व्यवस्थित परिचय दिया है। वे वक्रोक्ति के बिना काव्य में अलंकारों की कल्पना भी नहीं कर सकते। अलंकार के लिए वे वक्रोक्ति को आवश्यक मानते हैं–

सैषा सर्वेव वक्रोक्तिरन्यार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारोऽनया विना॥

भामह के अनुसार शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता का वक्रोक्ति में अंतर्भाव हो जाता है। जैसे–**'वक्राभिधेया शब्दोक्तिरिष्टवाचामलंकृति:।'** एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं–**'वाचाम् वक्रार्थशब्दोक्तिरलंकाराय कल्पते।'** अर्थात वक्रोक्ति का अभिप्राय है–शब्द और अर्थ की वक्रता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भामह शब्द और अर्थ की वक्रता के समन्वित रूप को ही वक्रोक्ति मानते हैं। भामह पहले अतिशयोक्ति अलंकार का स्वरूप बताते हैं तत्पश्चात यह भी रेखांकित करते हैं कि वक्रोक्ति एवं अतिशयोक्ति के लक्षणों में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं। भामह के अनुसार अतिशयोक्ति अलंकार में गुणों का आधिक्य होता

टिप्पणी

है। आधिक्य या अतिशयता का अर्थ है–'लोकातिक्रांत गोचरता' अर्थात लोक सामान्य से विचित्र।

निमित्ततो वचो यद्धि लोकातिक्रांतगोचरम् मन्येऽतिश्योक्ति तामलंकारतया यथा इत्येवमादिरुदिता गुणातिशययोगत: सर्वेष्वतिशयोक्तिस्तु तर्कयेत् तां यथागमम्। सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति:।

(काव्यालंकार)

काव्यप्रकाश बालबोधिनी टीका में यह स्पष्ट किया गया है कि भामह के अनुसार वक्रोक्ति एवं अतिशयोक्ति पर्यायवाची हैं। जैसे–

'एवं चातिशयोक्तिरिति वक्रोक्तिरिति पर्याय इति बोध्यम्।'

भामह यह भी कहते हैं कि अतिशयोक्ति के वैचित्र्य से अर्थ प्रकाशित हो जाता है–'अनयार्थो विभाव्यते।'

भामह के पश्चात दंडी ने उनके मत को पुष्ट करते हुए समस्त साहित्य को दो वर्गों में विभाजित कर दिया–(1) स्वभावोक्ति (2) वक्रोक्ति। जहां पदार्थों का सहज अथवा साक्षात वर्णन हो वहां स्वभावोक्ति होती है किंतु जहां पदार्थों का साक्षात एवं सहज वर्णन न होकर वक्र अर्थात चमत्कारपूर्ण वर्णन होता है, वहां वक्रोक्ति होती है। दंडी कहते हैं– साहित्य में उपमा से लेकर संकीर्ण अलंकार तक सभी अलंकार वक्रोक्ति के ही भेद हैं। जैसे–**'वक्रोक्ति शब्देन उपमादय: संकीर्णपर्यन्तालंकारा उच्यन्ते।'** वे यह भी कहते हैं कि इन सभी अलंकारों से निष्पन्न चमत्कार में किसी-किसी रूप में श्लेष का योग रहता है ओर श्लेष वक्रोक्ति के आश्रित रहता है। यानी वक्रोक्ति श्लेषपोषित है। लिखते हैं–

श्लेष: सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्॥

दंडी अतिशयोक्ति को भी चमत्कारपूर्ण उक्ति मानते हैं। यानी वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति में कोई तात्विक भेद नहीं मानते। लेकिन स्वभावोक्ति को अलंकार नहीं कहते तथा वक्रोक्ति को एक अलंकार मानकर उसे अलंकारों का मूल मानते हैं।

वामन वक्रोक्ति को लक्षणा शक्ति का ही एक रूप मानते हैं तथा केवल अर्थ में उसकी उपस्थिति मानते हैं। वे कहते हैं सादृश्य लक्षणा ही वक्रोक्ति है। रुद्रट ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार माना और उसके दो भेद कर दिए–काकु वक्रोक्ति तथा भंगश्लेष वक्रोक्ति। आनंदवर्धन ने वक्रोक्ति को विशेष अलंकार की संज्ञा देते हुए भामह तथा दंडी की तरह वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति को अभिन्न माना। इनके अनुसार वक्रोक्ति या अतिशयोक्ति सर्वालंकार मूला हैं और इनमें प्राप्त चमत्कार कवि की प्रतिभा द्वारा उत्पन्न होता है।

इस तरह वक्रोक्ति का स्वरूप निर्धारित हुआ और कुंतक ने इसे संप्रदाय के रूप में स्थापित कर दिया। कुंतक के परवर्ती आचार्य भोजराज ने दंडी से भी आगे बढ़कर वक्रोक्ति को काव्य रूप में मान्यता दी तथा समस्त वाङ्मय को तीन भागों में बांट दिया– वक्रोक्ति, रसोक्ति, स्वभावोक्ति। भोजराज का मत है कि लोक और शास्त्र में जो अवक्र कथन है उन्हें वचन कहेंगे और जो वक्र कथन हैं वे काव्य हैं। कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा

टिप्पणी

माना। वे कहते हैं–'प्रसिद्ध कथन से भिन्न चमत्कारपूर्ण वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। यह शैली वैदग्ध्यपूर्ण है तथा वैदग्ध्य कवि-कर्म कौशल है। यही कौशल कवि की शोभा है। कवि के भीतर स्थित प्रतिभा से ही यह कौशल आता है जो सहृदय सामाजिकों को आह्लादित कर देता है। कुंतक के अनुसार–

शब्दार्थौ सहितौ वक्र-कवि-व्यापार-शालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम् तद्विदाह्लादकारिणी॥

अर्थात सहृदय सामाजिकों को आनंद देने वाली वक्र उक्ति कवि-व्यापार से युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ से मिलकर काव्य कहलाती है। वक्रोक्ति काव्य के सर्वांग में पाई जाती है। इसकी उपस्थिति ही काव्य को काव्य बनाती है।

2.5.2 वक्रोक्ति के भेद

कुंतक ने वक्रोक्ति के 6 प्रमुख भेद माने हैं–(1) वर्ण विन्यास वक्रता, (2) पद पूर्वार्द्ध–वक्रता, (3) पदपरार्ध वक्रता, (4) वाक्य वक्रता या वस्तु वक्रता, (5) प्रकरण वक्रता, (6) प्रबंध वक्रता।

(1) **वर्ण विन्यास वक्रता–** कुंतक के अनुसार वर्ण विन्यास वक्रता के तीन भेद हैं–

(क) एक वर्ण की अनेक बार आवृत्ति।

(ख) दो वर्णों की अनेक बार आवृत्ति।

(ग) अनेक वर्णों की अनेक बार आवृत्ति।

(2) **पद पूर्वार्द्ध वक्रता–**पद की संरचना प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से होती है। पद के पूर्वार्द्ध के अंग यानी प्रकृति के अंग दो होते हैं–(1) प्रतिपादिक (2) धातु। इस पदपूर्वार्द्ध वक्रता के आठ प्रकार बताए हैं–(1) रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता, (2) पर्याय वक्रता, (3) उपचार वक्रता, (4) विशेषण वक्रता, (5) संवृत्ति वक्रता, (6) वृत्ति वक्रता, (7) लिंग वैचित्र्य वक्रता, (8) क्रिया वैचित्र्य वक्रता।

- **रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता–**जहां लोकोत्तर तिरस्कार अथवा प्रशंसा करने के उद्देश्य से वाच्यार्थ की रूढ़ि से असंभव अर्थ का अध्यारोप अथवा उत्तम धर्म के अतिशय का आरोप अप्रत्यक्ष रूप में कहा जाता है वहां रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता होती है। रूढ़ि यानी परंपरा प्रसिद्ध वाच्यार्थ। वस्तुत: इसमें किसी परंपरा प्रसिद्ध अर्थ को अन्य चमत्कारपूर्ण अर्थ में संक्रमित कर दिया जाता है। ध्वनिवादी इसे अर्थांतर संक्रमित वाच्यध्वनि कहते हैं। उदहारण–

  सीता हरण तात जनि कहेहु पितासन जाइ।
  जो मैं 'राम' त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥

  यहां 'राम' का विचित्रतापूर्ण अर्थ में प्रयोग है। यहां लोक प्रचलित और परंपरागत शब्द 'राम' को पराक्रमी शक्तिशाली और दिव्य अर्थों में दिखाया गया है।

टिप्पणी

- **पर्याय वक्रता**–इसमें किसी शब्द के विभिन्न पर्यायों में से किसी ऐसे एक पर्याय शब्द का प्रयोग किया जाता है कि काव्योक्ति में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। जैसे–'घन घमंड नभ गरजत घोरा' में 'घन' शब्द से गंभीरता और भयानकता का बोध होने से उक्ति चमत्कार उत्पन्न हो गया है। इसे ध्वनिवादी पर्यायध्वनि और अलंकारवादी परिकार अलंकार कहते हैं।
- **उपचार वक्रता**–इसके अंतर्गत रूपक अलंकार आते हैं। गुणों और लक्षणों में थोड़ी भी समानता होने पर एक वस्तु पर दूसरी का आरोप कर दिया जाता है। इनके मूल में सारोपा लक्षणा रहती है। छायावादी कवियों का 'मानवीकरण अलंकार' उपचार वक्रता के अंतर्गत आता है। उदाहरण–**"बीती विभावरी जाग री, अम्बर पनघट में डुबो रही ताराघट उषा नागरी॥"** यहां अंबर पर पनघट का नागरी पर उषा का, तारे पर घट का अध्यारोप है।
- **विशेषण वक्रता**–जहां विशेषण, कारक या क्रिया के प्रभाव से वाक्य का सौंदर्य बढ़ जाता है या उत्पन्न हो जाता है वहां विशेषण वक्रता होती है। कहीं ये विशेषण विशेष्य का सौंदर्य बढ़ाते हैं तो कहीं अलंकारों की सौंदर्य वृद्धि में सहायक होते हैं। जब विशेषणों का रस, अलंकार अथवा वस्तु स्वभाव के अनुकूल प्रयोग किया जाता है तभी उनकी सार्थकता होती है। जैसे–

  'तारक चिह्न दुकूलिनी पी-पीकर मधु पात्र। उलट गई श्यामा यहां रिक्त सुधाधर पात्र।' यहां विशेषण वक्रता के साथ, पी पी कर सुधाधर पात्र को उलटने की प्रक्रिया में क्रिया विशेषण वक्रता भी है।
- **संवृत्ति वक्रता**–कुछ कारण होते हैं जब हम किसी वस्तु के सौंदर्य, सत्य या महत्ता को शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाते या नहीं कर सकते तब हम सर्वनामादि शब्दों की सहायता से उसे संवृत्त कर देते हैं। इस गोपनीयता में विशिष्टता होती है। यहां संवृत्ति वक्रता होती है। जैसे–

  'स्याम गौर किमि कहहुं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥'

  यहां 'किमि' सर्वनाम द्वारा राम लक्ष्मण के अभूतपूर्व सौंदर्य का गोपन वर्णन किया गया है जिससे उक्ति का सौंदर्य बढ़ गया है।
- **वृत्ति वक्रता**–जब सौंदर्य वृत्तियों के प्रयोग पर आधारित रहता है वहां वृत्ति वक्रता होती है। इसका तात्पर्य समास वक्रता से है। यानी इसे समास वक्रता भी कहेंगे। जहां अव्ययीभाव आदि समासों के प्रयोग से सौंदर्य बढ़ जाता है वहां इसकी उपस्थिति मानी जाती है।
- **लिंग वैचित्र्य वक्रता**–जहां सौंदर्य लिंग प्रयोग पर आधारित होता है वहां लिंग वैचित्र्य वक्रता है। विभिन्न लिंगों का समान अधिकार के साथ प्रयोग सौंदर्य उत्पन्न करता है। जैसे–

  वासना की मधुर छाया! स्वास्थ्य बल विश्राम।
  हृदय की सौंदर्य प्रतिमा! कौन तुम छवि धाम॥ *(कामायनी)*

टिप्पणी

यहां 'छाया' और 'प्रतिमा' स्त्रीलिंग तथा 'विश्राम' और 'धाम' पुल्लिग का प्रयोग एक ही अधिकरण में करने से सौंदर्य वृद्धि हुई है।

- **क्रिया वैचित्र्य वक्रता**–पद पूर्वार्ध के धातु रूप पर आश्रित वैचित्र्य ही क्रिया वक्रता के अंतर्गत आता है। कुंतक ने इसकी पांच स्थितियों का चित्रण किया है–

  (क) जब कवि क्रिया पद का उक्ति में इस तरह प्रयोग करता है कि वह कर्ता की अंतरंग हो जाती है। जैसे–

  कैसे लगती हूं घूंघट में पूछा जब प्राण प्रिया ने।
  दोनों बांह पसार बांध लिया आलिंगन में पिया ने॥

  इस काव्य में कर्ता प्रश्न पूछती नायिका है जो 'आलिंगन में बांधने' की क्रिया के अंतरंग हो जाती है।

  (ख) जब काव्य में किसी क्रिया पद का इस प्रकार प्रयोग किया जाए कि उससे कर्ता की विचित्रता प्रतिपादित हो तब वहां क्रिया वैचित्र्य वक्रता होती है। जैसे–**'विषम यह गोदावरी अमृतन को फल देत।'** यहां 'जल' के स्थान पर 'विष' शब्द का प्रयोग केशव ने किया है। 'विष' मृत्यु प्रदाता है किंतु तीर्थस्थान में यह मोक्ष दे सकता है।

  (ग) क्रिया विशेषण के प्रयोग से भी क्रिया वैचित्र्य वक्रता होती है–**'घुमा रहे घनाकार जगती का अंबर।'**–यहां 'घनाकार' शब्द जगत का विशेषण तो है ही वह 'घुमाना' क्रिया की भी विशेषता प्रकट कर रहा है।

  (घ) उपचार मनोज्ञाता या रोचकता–सादृश्य संबंध के कारण किसी अन्य पदार्थ के धर्म का कर्ता पर आरोप कर देना। धर्म आरोपण क्रिया रूप होता है–'उन्नत वक्षों में आलिंगन सुख-लहरों सा तिरता।' यहां सुख-लहरों के सादृश्य संबंध के आधार पर आलिंगन में भी तैरना धर्म का आरोप पद को सुंदर बना रहा है।

  (ङ) कर्मादि संवृत्ति–इसमें क्रिया के कर्मादि को संवृत्त या अस्पष्ट कर सौंदर्य की सृष्टि की जाती है।–**'यह नैना ओरे कछु जिहिं बस होत सुजान।'** यहां बस में होने के कर्म को स्पष्ट किया जा सकता था किंतु बिहारी ने 'ओरे कछु' सर्वनाम का प्रयोग कर नेत्रों में अद्‌भुत सौंदर्य की सृष्टि की है।

(3) **पदपरार्ध वक्रता**–प्रत्यय पद का परार्ध होता है। वक्रोक्ति का सौंदर्य यहां छह प्रकार से बढ़ता है। कुंतक के अनुसार–

- **काल-वैचित्र्य वक्रता**–काव्य में औचित्य का ध्यान रखते हुए क्रिया में काल का सार्थक एवं परिस्थिति के अनुकूल ऐसा प्रयोग किया जाए कि भाव-सौंदर्य लहलहा उठे वहां काल वैचित्र्य वक्रता होगी–**'बौरनि चुमि कोएलिया घूमि करेजन की किरचैं करि दै हैं।'** यहां बौरों का चूमना और घूमना अतीत में

टिप्पणी

हुआ है जो वर्तमान में याद आकर कलेजे के टुकड़े कर रहा है। यहां काल के प्रयोग से सौंदर्य वृद्धि हुई है।

- **कारक वैचित्र्य वक्रता**–प्रतिभावान कवि कारकों के विचित्र प्रयोग से काव्य-सौंदर्य में वृद्धि करता है। सामान्य कारक का मुख्य कारक के रूप में या कर्ता का करण कारक के रूप में। देखिए–**'हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त।'** यहां 'हस्त' शब्द करण कारक में होना चाहिए था किंतु कवि ने काव्य में रमणीयता की वृद्धि के लिए इसे कर्ताकारक बना दिया।
- **वचन-वैचित्र्य वक्रता**–वचन विपर्यय के द्वारा काव्य में रमणीयता उत्पन्न की जाती है–**'ये ऊजड़ ग्राम देश का हृदय चिरंतन।'** यहां 'ये' बहुवचन के साथ 'हृदय' एक वचन प्रयोग सौंदर्य है।
- **पुरुष-वैचित्र्य वक्रता**–जहां काव्य में सौंदर्य वृद्धि के लिए उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाए वहां पुरुष वैचित्र्य वक्रता होती है। अन्य पुरुष के प्रयोग से उदासीनता, तटस्थता अथवा श्रोता के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित होता है।–

  कर के ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाए।
  फूल उठे हैं कमल अधर से ये बंधूक सुहाए॥

  यहां 'मेरा' उत्तम पुरुष के स्थान पर 'इस जन' (अन्य पुरुषवाचक) शब्द का प्रयोग सौंदर्यवर्धक है।
- **उपग्रह वक्रता**–जहां आत्मनेपद और परस्मैपद में से किसी एक का औचित्यानुसार प्रयोग करने पर काव्य सौंदर्य बढ़ जाता है वहां उपग्रह वक्रता होती है–

  मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूं।
  भुजलता फंसा कर नर-तरु से झूले सी झोंके खाती हूं॥
  –कामायनी
- **प्रत्यय वक्रता**–जहां दोहरे, तिहरे प्रत्यय का प्रयोग कर काव्य सौंदर्य में वृद्धि की जाती है वहां प्रत्यय वक्रता होती है–'प्रिय से कहेउ संदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!' यहां संदेसड़ा में 'ड़ा' प्रत्यय प्रिय संदेश का द्योतक स्वार्थी प्रत्यय होने से मनमोहक है।

  पद वक्रता के दो अन्य भेद भी कुंतक ने स्वीकार किए हैं–(1) उपसर्ग वक्रता (2) निपात वक्रता– 'सुरसिका क्रीड़ा-कला पुतली' में 'सु' उपसर्ग से अतिशयता व्यंजित होने से काव्य सौंदर्य बढ़ा है अतः उपसर्ग वक्रता होगी।– 'सिरवादो ना, हे मधुपकुमार!' यहां 'ना' अनुनय मिश्रित प्रेम को अभिव्यंजित कर काव्य को रमणीयता प्रदान कर रहा है अतः निपात वक्रता होगी।

(4) **वाक्य वक्रता या वस्तु वक्रता**–कुंतक अलंकार और अलंकार्य को पृथक-पृथक मानते हुए इसके दो भेद करते हैं–(1) सहज और (2) आहार्य।

(क) **सहजवस्तु या वाक्य वक्रता**–'सहज' अर्थात स्वाभाविक या प्राकृत। उर्दू में इसे सादगी कहते हैं। सादगी और सहजता से भरा स्वाभाविक कथन, जिसका

टिप्पणी

कथ्य रमणीय हो, वहां वाक्य वक्रता होती है। यानी वाक्य भी सुंदर और इसका अर्थ भी सुंदर हो–

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस।
दो नैना मत खाइयो, मोहे पिया मिलन की आस॥

(ख) आहार्य–आहार्य अर्थात अप्रस्तुत विधान। आहार्य वक्रता कल्पित होती है। इसमें कल्पना के लिए कवि कौशल महत्वपूर्ण होता है। काव्यालंकारों से सजी कोई भी कविता आहार्य वक्रता का उदाहरण बन सकती है। जैसे–**'चुनौती नित निज अंग लवंग, तन्वि! तुम सी बनने को सुकुमार।'**

(5) **प्रकरण वक्रता**–प्रकरण अर्थात प्रसंग। समस्त कथा संगठन प्रबंध कहलाता है। कवि अपने कौशल से प्रबंध के प्रत्येक प्रकरण या प्रसंग में भावपूर्ण, रोचक विषय वस्तु भरता और सौंदर्य में वृद्धि करता है यही प्रकरणों में उत्पन्न चमत्कारिक सौंदर्य ही प्रकरण वक्रता है। यह आठ प्रकार की होती है ऐसा कुंतक ने माना है–(1) भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना से (2) उत्पाद्य लावण्य से (3) मुख्य कार्य से संबद्ध प्रकरणों का उपकार्य–उपकारक भाव (4) विशिष्ट प्रकरण की अतिरंजना (5) मनोरम दृश्यों का विस्तार से चित्रण (6) उद्देश्य की सिद्धि के लिए सुंदर प्रसंगों की उद्भावना (7) गर्भांक (8) प्रकरणों की पूर्वापर अन्विति।

(6) **प्रबंध वक्रता**–प्रबंध वक्रता छह प्रकार की होती है। कुंतक ने पूरे प्रबंध के सौंदर्य की वृद्धि के लिए वक्रता के छह भेद किए हैं–(1) मूल रस का परिवर्तन करने से; (2) नायक के चरित्र का उत्कर्ष दिखाने वाली चरम घटना पर कथा का समापन करके; (3) कथा के बीच में किसी अन्य कार्य द्वारा प्रधान कार्य की सिद्धि; (4) नायक द्वारा अनेक फलों की प्राप्ति; (5) एक ही मूल कथा पर आश्रित प्रबंधों का वैचित्र्य एवं वैविध्य; (6) प्रधान कथा को प्रकट करने वाला नाम। कुंतक ने काव्य के छोटे और बड़े सभी अवयवों में वक्रोक्ति की व्याप्ति और उससे होने वाली सौंदर्य वृद्धि की चर्चा की है।

2.5.3 वक्रोक्ति और अभिव्यंजना

अभिव्यंजना पाश्चात्य विद्वान चिंतक इटली निवासी वैनेदतो क्रोचे की देन है जो मूलतः एक दार्शनिक थे। वक्रोक्तिवाद के संस्थापक भारतीय मनीषी कुंतक हैं जो मूलतः एक काव्यशास्त्री हैं। इन दोनों वादों पर विचार करते हुए ध्यान रखना चाहिए कि एक ओर दार्शनिक के विचार तो दूसरी ओर काव्यशास्त्री के विचार हैं। दर्शन में सिद्धांत पक्ष प्रबल होता है जबकि काव्यशास्त्र में सिद्धांत के साथ व्यावहारिक पक्ष भी महत्वपूर्ण होता है। इसलिए ये दोनों विवाद समानता रखते हुए भी वैचारिक दृष्टिकोण से भिन्न प्रतीत होते हैं।

क्रोचे की मूल धारणाएं

1. ज्ञान के दो रूप होते हैं–(1) विचारात्मक एवं (2) व्यवहारात्मक। विचारात्मक ज्ञान दो प्रकार होता है–(क) स्वयं प्रकाश्य ज्ञान (ख) तर्क ज्ञान। क्रोचे का कहना है कि स्वयंप्रकाश्य ज्ञान का संबंध व्यक्तिनिष्ठ या विशिष्ट होता है और यह कल्पना द्वारा

टिप्पणी

कला का उत्पादक होता है। दूसरा तर्क ज्ञान है जिसका संबंध समष्टि या जातिवाचक धारणाओं से होता है जो दर्शन, विज्ञान आदि का विधायक होता है।

2. स्वयं प्रकाश्य ज्ञान का संबंध कला से है। क्रोचे ने इसी ज्ञान को सहजानुभूति कहा है। सहजानुभूति की व्याख्या करते हुए क्रोचे ने स्पष्ट किया है कि सहजानुभूति स्वयं प्रकाश्य ज्ञान है जो पदार्थ बोध, संवेदन से भिन्न आंतरिक अभिव्यंजना रूप होती है। आत्मा सहजानुभूति को निर्माण, सर्जन और अभिव्यंजना के माध्यम से ही ग्रहण करती है। 'The sprit does not obtain Intuion, otherwise than by making forming expressing.'

3. सहजानुभूति अभिव्यंजना से भिन्न कुछ नहीं है, क्योंकि सहजानुभूति ज्ञान अभिव्यंजनात्मक होता है। यह ज्ञान बौद्धिक ज्ञान से स्वतंत्र होता है तथा देशकाल के बंधनों से मुक्त तथा संवेदनों अथवा चेतना के विषय में भी अपने रूप के कारण भिन्न होता है। अत: सहजानुभति का अर्थ है अभिव्यक्ति, केवल अभिव्यक्ति, न कम और न अधिक।

4. क्रोचे के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वभावत: कलाकार होता है क्योंकि प्राय: सभी में सहजानुभूति की क्षमता रहती है। जिसमें सहजानुभूति की क्षमता होती है, उसमें अभिव्यंजना की शक्ति भी होती है। सामान्य व्यक्ति और कलाकार में अभिव्यक्ति की व्यापकता का अंतर होता है, प्रकार या तीव्रता का नहीं।

5. क्रोचे कला और कलाकृतियों में अंतर मानता है। क्रोचे के अनुसार कला आंतरिक होती है और कलाकृतियां उसकी बाह्य रूप होती हैं। वस्तुत: कला स्वयं प्रकाश्य ज्ञान की आध्यात्मिक क्रिया है और अभिव्यक्ति उसके साथ जुड़ी रहती है जो आंतरिक होती है और कवि उसे व्यक्त करने के लिए बाध्य होता है। यही कला है। कवि जब अपनी इस कला को भौतिक रूप देता है अर्थात उसे शब्दों में या वाणी में निबद्ध करता है तब वह स्वतंत्र होता है और उसमें समाज की अपेक्षा निहित रहती है। अत: यह कलाकार की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह उसे बाह्य रूप देना चाहता है अथवा नहीं और समाज के परिप्रेक्ष्य में उसे उसको (कला को) बाह्य रूप देना चाहिए अथवा नहीं।

6. क्रोचे सौंदर्य को अखंड मानता है, उसके अनुसार कला के सुंदर, सुंदरतर या सुंदरतम जैसा श्रेणी विभाजन संभव नहीं है। कला तो अपने आप में पूर्ण होती है। अत: कलाओं का वर्गीकरण व्यर्थ है। उसमें न तो सरलता या मिश्रत्व का भेद होता है, न आत्मपरक या वस्तुपरक होने का और न सहज या अलंकार का। अत: कला का अनुवाद भी नहीं होता, क्योंकि अनुवादक को विश्वसनीयता और सौंदर्य में से एक को चुनना पड़ता है।

7. क्रोचे अभिव्यंजना को प्रधान पद प्रदान करता है, किंतु वस्तु को भी नकारता नहीं है, बल्कि वह आधारभूत रूप में वस्तु की सत्ता को स्वीकार करता है, किंतु वह उसे कला का गौण क्षेत्र मानता है।

8. क्रोचे के अनुसार वस्तु के बिना अभिव्यंजना केवल वाग्जाल रह जाती है। वस्तुत: उस स्थिति में कलाकार शब्दाडंबर के द्वारा अपने आंतरिक खोखलेपन को ढांकने का

टिप्पणी

प्रयास करता है और उसकी (शब्दाडंबर की) गहराई में या तल में प्रेषण के लिए कुछ नहीं होता।

9. अभिव्यंजना का उद्देश्य अभिव्यंजना ही है। सहाजानुभूति को अभिव्यक्त करने के अतिरिक्त उसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं होता। फलत: अपने मूल उद्देश्य में नैतिकता या उपयोगिता जैसे उद्देश्यों से मुक्त होती है। यहां पर ध्यातव्य है कि यह कला का उद्देश्य है न कि कलाकृति का। कला को जब वाणी में बांधने का उपक्रम किया जाता है तब वह सामाजिक नियमों के घेरे में बंध जाती है।

10. कला का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता अर्थात उसे उपमादि अलंकारों या स्वभावोक्ति, रसोक्ति, वक्रोक्ति जैसी उक्तियों या दृश्य, प्रकरण परिच्छेद जैसे अध्यायों में विभक्त करना उचित नहीं। इससे कला की हानि होती है। एक स्थल पर क्रोचे कहते हैं कि मान लीजिए आप अलंकार की बात कहते हैं। वह अलंकार कहां से आया? यदि 'बाहर से' तो वह उक्ति का अंग नहीं हो सकता। यदि आप कहें 'अंदर से' तो उक्ति पृथक उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। अत: कला के क्षेत्र में अलंकारादि की बात करना व्यर्थ है।

11. क्रोचे उक्ति वैचित्र्य को महत्व नहीं देता। उसका स्पष्ट कथन है कि अभिव्यक्ति एक आत्मिक आवश्यकता है यह कोई कौतुहल या कल्पना-प्रवणता नहीं। वस्तुत: अभिव्यक्ति आत्मिक स्फूर्ति का नाम है जो एक सही मार्ग है।

12. क्रोचे सौंदर्य को विषयगत न मानकर उसे विषयीगत मानते हैं। काव्यशास्त्र की भाषा में यह कहा जा सकता है कि क्रोचे सौंदर्य को वस्तुनिष्ठ न मानकर व्यक्तिनिष्ठ मानते हैं। दूसरे वे वस्तुगत सौंदर्य को कल्पनाजन्य कहते हैं।

13. क्रोचे का यह भी कथन है कि कवि या लेखक जिस प्रभाव को ग्रहण करता है, उसी की अभिव्यक्ति करता है। अत: किसी कलाकार की कृति का मूल्यांकन उसकी अभिव्यंजना के आधार पर किया जाना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उसने (कलाकार) अपने प्राप्त प्रभाव या छाप के अनुकूल अभिव्यक्ति की अथवा नहीं। विषय-वस्तु की अच्छाई और बुराई के लिए कलाकार दोषी नहीं अपितु समाज है जिससे उसने प्रभाव ग्रहण किया है।

उपरोक्त बिंदु क्रोचे के प्रमुख सिद्धांत हैं जिनके आधार पर ही कुंतक के वक्रोक्तिवाद की तुलना क्रोचे के अभिव्यंजनावाद के साथ की जा सकती है। इस तुलना को लेकर हिंदी आलोचक मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित हैं। एक वर्ग जिसके प्रवर्तक आचार्य शुक्ल हैं, का कथन है कि वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद में कोई अंतर नहीं है। वस्तुत: अभिव्यंजनावाद वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान है। दूसरा वर्ग वह है जिसके संस्थापक डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु कहे जा सकते हैं जो वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद को सात्विक दृष्टि से भिन्न मानते हैं।

आचार्य शुक्ल का मंतव्य है कि अभिव्यंजनावाद वक्रोक्तिवाद का ही एक पाश्चात्य संस्करण है, यथा–क्रोचे का अभिव्यंजनावाद भारतीय वक्रोक्तिवाद का ही विलायती उत्थान है। (शुक्ल जी का इंदौर वाला भाषण) इस आधार पर आचार्य शुक्ल ने दोनों ही सिद्धांतों

टिप्पणी

की आलोचना की है। वे कहते हैं कि अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद विषयवस्तु की अपेक्षा पदरचना को महत्व देते हैं अत: दोनों को ही काव्योपयोगी नहीं कहा जा सकता।

कला या काव्य में अभिव्यंजनावाद ही सब कुछ है, जिसकी अभिव्यंजना की जाती है वह कुछ नहीं है। इस मत के प्रवर्तक इटली के क्रोचे महोदय हैं। अभिव्यंजनावादियों के अनुसार जिस रूप में अभिव्यंजना होती है उससे भिन्न अर्थ आदि का विचार काव्य में अनावश्यक है।

सौंदर्य से उसका (क्रोचे) तात्पर्य केवल अभिव्यंजना के सौंदर्य से है, किसी प्रस्तुत वस्तु के सौंदर्य से नहीं। किसी प्रस्तुत या वास्तविक वस्तु में सौंदर्य कहां? क्रोचे तो कल्पना की सहायता के बिना प्रकृति में कहीं कोई सौंदर्य नहीं मानते।

उपर्युक्त दोनों ही आशयों का प्रो. गुलाबराय ने खंडन किया है और स्पष्ट किया है कि क्रोचे ने अभिव्यंजना में सौंदर्य माना है किंतु वस्तु की उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'कवि के पास कुछ कहने के लिए निश्चित वस्तु सामग्री होनी चाहिए। उसके बिना केवल वाग्जाल कवि के आंतरिक खोखलेपन का परिचायक होता है।'

उधर कुंतक भी वस्तु की उपेक्षा नहीं करते अपितु यह कहना चाहिए कि कुंतक पहले अलंकरावादी आचार्य हैं जिसने अलंकार और अलंकार्य के भेद को माना है। यह दूसरी बात है कि वे इस भेद को तात्विक दृष्टि से स्वीकार नहीं करते। कुंतक क्रोचे के समान ही उक्ति को अखंड मानते हैं किंतु व्यावहारिक दृष्टि से वे वस्तु और रचना में भेद स्थापित करते हैं। इस दृष्टि से कुंतक और क्रोचे में साम्य है और आचार्य शुक्ल अपने मंतव्य में सही है कि अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद समान है किंतु इस बात में आचार्य शुक्ल सही नहीं है कि दोनों ही वादों में वस्तु तत्व की उपेक्षा की है। हां! क्रोचे ने इसे गौण माना है। कुंतक ने भी 'सालंकारस्य काव्यता' कह कर वस्तु तत्व को महत्व नहीं दिया किंतु विवेचन में मुख्यत: वस्तु वक्रता और प्रबंध वक्रता जैसे वक्रोक्ति के भेदों के विवेचन में वस्तु तत्व को पूर्णत: प्रतिष्ठित किया है। उधर रसवदादि अलंकारों की अस्वीकृति में भी वस्तु तत्व की स्वीकृति ही व्यंजित होती है।

दूसरी ओर आचार्य शुक्ल दोनों ही वादों की इस रूप में भी समानता देखते हैं कि दोनों ही वाद 'वैचित्र्य' को प्रमुखता देते हैं। आचार्य शुक्ल केवल वैचित्र्य को काव्य का उद्देश्य नहीं मानते। उनके अनुसार तो वैचित्र्य काव्य को मनोरंजन का सस्ता साधन बना देता है। इस आधार पर आचार्य शुक्ल दोनों ही वादों को आड़े हाथों लेते हैं– इससे जो लोग मनोरंजन को ही काव्य का लक्ष्य मानते हैं, वे यदि कविता में चमत्कार ही ढूंढा करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परंतु काव्य का लक्ष्य निश्चय ही कहीं गंभीर तथा उदात्त है और जो लोग इससे ऊंचा और गंभीर लक्ष्य समझते हैं वे चमत्कार मात्र को काव्य नहीं मान सकते।

उपर्युक्त पंक्तियों से निस्संदेह वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद की समानता प्रकट होती है। आचार्य शुक्ल के विपरीत डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने दोनों वादों की समानता को अस्वीकार किया है। उनका कहना है कि दोनों वादों को समान मानना उचित नहीं है। उनके

टिप्पणी

मत में दोनों की प्रकृति में ही भेद हैं। वक्रोक्ति का अलंकार से घनिष्ठ संबंध है जबकि अभिव्यंजनावादी अलंकार के स्वतंत्र अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते। वक्रोक्ति में अलंकार सहगामी है, अभिव्यंजना में अनुगामी। अभिव्यंजना में स्वभावोक्ति का भी मान है, परंतु वक्रोक्ति में उसके लिए कोई स्थान नहीं है।

वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद में साम्य

(1) दोनों ही वाद अभिव्यंजना को महत्व देते हैं। इसे यों भी कहा जा सकता है कि क्रोचे सफल अभिव्यक्ति या केवल अभिव्यक्ति को काव्य की आत्मा मानता है तो कुंतक भी 'वैदग्ध्यभंगी भणिति' को अर्थात वक्रोक्ति को 'काव्य-जीवित' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। कुंतक की 'भणिति' या वक्रोक्ति में और क्रोचे की अभिव्यक्ति में काव्य के समस्त रूपों या कवि-व्यापार को समेटने का सफल प्रयास किया गया है।

(2) दोनों ही वाद काव्य में कल्पना तत्व को अत्यधिक प्रमुखता प्रदान करते हैं। क्रोचे ने तो कल्पना शब्द का स्पष्ट प्रयोग किया है क्योंकि क्रोचे के अनुसार कल्पना के आधार के बिना सहजानुभूति या अभिव्यक्ति सौंदर्य का रूप धारण नहीं कर सकती।

(3) दोनों ही वाद तात्विक दृष्टि से उक्ति या अभिव्यंजना को अखंड मानते हैं। क्रोचे तो यहां तक कह जाता है कि कला के विभाजन से संबंध रखने वाली सारी पुस्तकें यदि जला दी जाएं तो कोई हानि नहीं होगी। उधर कुंतक का कहना है कि तात्विक दृष्टि से उक्ति अखंड होती है किंतु व्यावहारिक दृष्टि से उसे अलंकार एवं अलंकार्य में विभाजित किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। 'अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिष्ववस्थिति:' अर्थात अन्यून, अनतिरिक्त का भाव दोनों में समान रूप से स्थित है।

(4) दोनों ही विचारधाराएं सौंदर्य की श्रेणियां नहीं मानती। इनके अनुसार सौंदर्य के सुंदरतर या सुंदरतम रूप नहीं होते। कुंतक भी मार्गों के विवेचन में इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं, जैसे–न च रीतिनाम् उत्तमाधम–मध्यम-भेदेन त्रैविध्यम् व्यवस्थापयितुम् न्याय्यम्।

वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद का वैषम्य

1. दार्शनिक होने के नाते क्रोचे काव्य के वर्गीकरण को अस्वीकार करते हैं और कला को अविभाज्य मानते हुए अलंकारों के अस्तित्व को ही अस्वीकार करते हैं उधर कुंतक के सिद्धांत का उदय ही अलंकार शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। 'सालंकारस्य काव्यता' ही उसके सिद्धांत का मूलभूत तत्व है। उसने तो अपने ग्रंथ या सिद्धांत का प्रणयन ही लोकोत्तर चमत्कारी वैचित्र्य की सिद्धि के लिए ही किया है, जैसे–लोकोत्तर चमत्कारकारिवैचित्र्यसिद्धये। अत: दोनों ही वादों में यह मूलभूत अंतर है।
2. क्रोचे अभिव्यक्ति को अर्थात आंतरिक अभिव्यक्ति को, जिसे वह सहजानुभूति कहता है, काव्य की आत्मा सिद्ध करता है जबकि कुंतक वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानता है। इस आधार पर दोनों में ही समानता प्रतीत होती है किंतु इनके मूल में

टिप्पणी

वैषम्य निहित है, वह यह कि कुंतक की वक्रोक्ति का अंत:प्रेरक तत्व कवि-व्यापार है जो क्रोचे की तुलना में अधिक व्यापक है। दूसरे, क्रोचे केवल आंतरिक अभिव्यक्ति को ही कला मानता है। बाह्य अभिव्यक्ति को कवि की इच्छा पर छोड़ देता है कि वह चाहे तो उसे साकार रूप प्रदान करे और चाहे तो न करे, जबकि कुंतक बाह्य अभिव्यक्ति को ही कला का पूर्ण रूप मानता है। कुंतक के अनुसार जब तक उसको शब्दार्थ में नहीं बांधा जाता तब तक तो उसका रूप ही प्रस्तुत नहीं होता। मूर्त आकार धारण कर के ही वह काव्य रूप में ग्राह्य होता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुंतक 'वैदग्ध्यभंगी भणिति' को काव्य मानता है जबकि क्रोचे आंतरिक अभिव्यक्ति या स्वयं प्रकाश्य ज्ञान अथवा सहजानुभूति को काव्य की आत्मा मानता है।

3. क्रोचे उक्ति को सर्वस्व मानते हुए उसके भेदोपभेदों की स्वीकृति प्रदान नहीं करता। उसके यहां उक्ति के वक्र, ऋजु या वार्ता जैसा कोई भेद नहीं है। उनकी दृष्टि में उक्ति उक्ति ही होती है और प्रत्येक उक्ति अपने आप में स्वतंत्र होती है। इसके विपरीत कुंतक स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति जैसी दो प्रकार की उक्तियों को तो स्वीकार करता ही है साथ ही 'वार्ता' को भी मानता है किंतु इस 'वार्ता' को स्वीकृति तो क्रोचे में भी मिलती है। उसे चाहे वह कुरूप अभिव्यक्ति या असफल अभिव्यक्ति ही क्यों न कहे किंतु क्रोचे काव्य में स्वभावोक्ति या अलंकार्य जैसे किसी भेद को स्वीकार नहीं करता है। अलंकार के परिप्रेक्ष्य में उसने स्पष्ट कहा है कि यदि अलंकार बाहर से आता है तो वह उक्ति अंग नहीं हो सकता और यदि अंदर से आता है तो वह उक्ति को या तो हानि पहुंचाएगा या फिर उसका (उक्ति का) ही एक अंग होगा। अत: स्पष्ट है कि 'उक्ति' के विवेचन में दोनों में मौलिक भेद है। कुंतक अलंकार्य को स्वीकार करता है किंतु क्रोचे के यहां अलंकार और अलंकार्य जैसा कोई भेद नहीं है।

4. क्रोचे अभिव्यंजना को ही अभिव्यंजना या काव्य का उद्देश्य मानता है। उसके अनुसार यदि कोई कवि सही अभिव्यंजना कर देता है तो उसका उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत कुंतक आह्लादकत्व को काव्य का सर्वोपरि प्रयोजन मानता है। कुंतक के अनुसार काव्य की रमणीयता उसके सहृदय आह्लादकारित्व में ही निहित है, जैसे–'अर्थ: सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दर:' अथवा–

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते॥

इस तरह एक प्रकार से कुंतक की वक्रता रस में समन्वित हो जाती है। काव्य के स्वरूप विवेचन में भी कुंतक ने 'तद्विदाह्लादकरिणि' कह कर काव्य का सर्वोपरि उद्देश्य आल्हादकत्व को ही माना है।

5. वस्तुतत्व की दृष्टि से भी दोनों वादों में पर्याप्त मात्रा में वैषम्य प्रतीत होता है। क्रोचे और कुंतक दोनों ही यद्यपि वस्तु तत्व को गौण स्थान देते हैं किंतु कुंतक क्रोचे की तुलना में वस्तुतत्व को कहीं अधिक महत्व देते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

14. वक्रोक्ति सिद्धांत की स्थापना किसने की?
15. वक्रोक्ति एवं अतिशयोक्ति को किस आचार्य ने पर्यायवाची माना?
16. आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति के कितने प्रमुख भेद माने हैं?
17. अभिव्यंजना की अवधारणा का प्रतिपादन किस पाश्चात्य चिंतक ने किया?
18. अभिव्यंजनावाद को वक्रोक्तिवाद का एक पाश्चात्य संस्करण मानने वाले भारतीय विद्वान का नाम बताइए।

2.6 औचित्य सिद्धांत : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं

टिप्प

'औचित्य' काव्यशास्त्रीय सिद्धांत होने से पहले एक सामाजिक मूल्य है। यह जीवन और काव्य पर समान रूप से लागू होता है। दोनों की सार्थकता, सफलता और सुंदरता के लिए यह समान रूप से महत्वपूर्ण है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी कहते हैं–"औचित्य या मूल्य वह तत्व है जो जीवन और काव्य के भेद को समाप्त करता है वह काव्येतर होकर भी काव्य का है।" काव्य में औचित्य को रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवन माना गया है। काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए या उत्तम काव्य की सृष्टि के लिए काव्य में औचित्य का होना आवश्यक है। अनौचित्य से काव्य अकाव्य तो नहीं होता लेकिन अधम काव्य की कोटि में पहुंच जाता है तथा अपने मूल प्रयोजनों जैसे आनंद प्रदान करना, लोकमंगल आदि से दूर हट जाता है। ठीक वैसे ही जैसे जीवन में अनौचित्य उसे असुंदर, अनैतिक, असामाजिक, कटुता और दानवी प्रवृत्तियों की ओर ले जाकर बेढंगा, बेडौल और बेरंग बना देता है। अत: औचित्य को ही सरस काव्य और सार्थक जीवन का, उत्तम काव्य और सुंदर जीवन का स्थिर जीवन तत्व माना जा सकता है।

2.6.1 औचित्य का स्वरूप

जो जिसके अनुरूप हो उसे हम उचित कहेंगे। उचित का यह भाव ही औचित्य है। यह परिभाषा क्षेमेंद्र की है–

उचितं प्राहुराचार्या: सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते। *–'औचित्य विचार चर्चा'*

आचार्य क्षेमेंद्र औचित्य के प्रवर्तक माने जाते हैं किंतु उन्हें इस तत्व का व्यवस्थापक मानना ज्यादा उचित होगा। भरतमुनि से लेकर अनेक परवर्ती आचार्यों ने औचित्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया है। भरतमुनि नाट्यशास्त्र में अनेक बार रसोपयोगी नाट्य सामग्री के संचयन के लिए लोक-प्रमाण की बात कहते हैं–

लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।
तस्मान्नाट्यप्रयोगेषु प्रमाणं लोक इष्यते॥

अर्थात–'लोकानुकरण' एवं 'लोकस्वभावज' ही नाटक है। लोक स्वभाव का अतिक्रमण करना अनुचित है। अनुचित सामग्री से रस निष्पत्ति नहीं हो सकती। अत: इस अनौचित्य से बचने के लिए लोक स्वभाव का अनुकरण ही उचित है। पंडितराज जगन्नाथ ने शब्द शक्ति मूल ध्वनि के प्रसंग में अभिधा नियात्मक तत्वों की चर्चा करते हुए 'औचित्य' के लिए 'योग्यता' शब्द का उल्लेख किया है–**'योग्यता च युक्तमिदमित्ति लौकिक व्यवहारगोचरता।' अर्थात औचित्य का अर्थ है–योग्यता।** अर्थात औचित्य का अर्थ है–योग्यता। और योग्यता का निर्धारण लोक व्यवहार से होता है। लोक जिसे युक्त कहे वह योग्य अथवा उचित है। पंडितराज ने विषमालंकार में 'अनुरूप' शब्द का प्रयोग किया है। योग्यता, अनुरूपता, औचित्य परस्पर एक दूसरे के पर्याय होते हैं। भरतमुनि ने भी 'अनुरूप' का प्रयोग किया है–

वैषम्य निहित है, वह यह कि कुंतक की वक्रोक्ति का अंत:प्रेरक तत्व कवि-व्यापार है जो क्रोचे की तुलना में अधिक व्यापक है। दूसरे, क्रोचे केवल आंतरिक अभिव्यक्ति को ही कला मानता है। बाह्य अभिव्यक्ति को कवि की इच्छा पर छोड़ देता है कि वह चाहे तो उसे साकार रूप प्रदान करे और चाहे तो न करे, जबकि कुंतक बाह्य अभिव्यक्ति को ही कला का पूर्ण रूप मानता है। कुंतक के अनुसार जब तक उसको शब्दार्थ में नहीं बांधा जाता तब तक तो उसका रूप ही प्रस्तुत नहीं होता। मूर्त आकार धारण कर के ही वह काव्य रूप में ग्राह्य होता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुंतक 'वैदग्ध्यभंगी भणिति' को काव्य मानता है जबकि क्रोचे आंतरिक अभिव्यक्ति या स्वयं प्रकाश्य ज्ञान अथवा सहजानुभूति को काव्य की आत्मा मानता है।

3. क्रोचे उक्ति को सर्वस्व मानते हुए उसके भेदोपभेदों की स्वीकृति प्रदान नहीं करता। उसके यहां उक्ति के वक्र, ऋजु या वार्ता जैसा कोई भेद नहीं है। उनकी दृष्टि में उक्ति उक्ति ही होती है और प्रत्येक उक्ति अपने आप में स्वतंत्र होती है। इसके विपरीत कुंतक स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति जैसी दो प्रकार की उक्तियों को तो स्वीकार करता ही है साथ ही 'वार्ता' को भी मानता है किंतु इस 'वार्ता' को स्वीकृति तो क्रोचे में भी मिलती है। उसे चाहे वह कुरूप अभिव्यक्ति या असफल अभिव्यक्ति ही क्यों न कहे किंतु क्रोचे काव्य में स्वभावोक्ति या अलंकार्य जैसे किसी भेद को स्वीकार नहीं करता है। अलंकार के परिप्रेक्ष्य में उसने स्पष्ट कहा है कि यदि अलंकार बाहर से आता है तो वह उक्ति अंग नहीं हो सकता और यदि अंदर से आता है तो वह उक्ति को या तो हानि पहुंचाएगा या फिर उसका (उक्ति का) ही एक अंग होगा। अत: स्पष्ट है कि 'उक्ति' के विवेचन में दोनों में मौलिक भेद है। कुंतक अलंकार्य को स्वीकार करता है किंतु क्रोचे के यहां अलंकार और अलंकार्य जैसा कोई भेद नहीं है।

4. क्रोचे अभिव्यंजना को ही अभिव्यंजना या काव्य का उद्देश्य मानता है। उसके अनुसार यदि कोई कवि सही अभिव्यंजना कर देता है तो उसका उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत कुंतक आह्लादकत्व को काव्य का सर्वोपरि प्रयोजन मानता है। कुंतक के अनुसार काव्य की रमणीयता उसके सहृदय आह्लादकारित्व में ही निहित है, जैसे-'अर्थ: सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दर:' अथवा-

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते॥

इस तरह एक प्रकार से कुंतक की वक्रता रस में समन्वित हो जाती है। काव्य के स्वरूप विवेचन में भी कुंतक ने 'तद्विदाह्लादकरिणि' कह कर काव्य का सर्वोपरि उद्देश्य आल्हादकत्व को ही माना है।

5. वस्तुतत्व की दृष्टि से भी दोनों वादों में पर्याप्त मात्रा में वैषम्य प्रतीत होता है। क्रोचे और कुंतक दोनों ही यद्यपि वस्तु तत्व को गौण स्थान देते हैं किंतु कुंतक क्रोचे की तुलना में वस्तुतत्व को कहीं अधिक महत्व देते हैं।

टिप्पणी

2.6 औचित्य सिद्धांत : स्वरूप एवं मूल स्थापनाएं

'औचित्य' काव्यशास्त्रीय सिद्धांत होने से पहले एक सामाजिक मूल्य है। यह जीवन और काव्य पर समान रूप से लागू होता है। दोनों की सार्थकता, सफलता और सुंदरता के लिए यह समान रूप से महत्वपूर्ण है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी कहते हैं-"औचित्य या मूल्य वह तत्व है जो जीवन और काव्य के भेद को समाप्त करता है वह काव्येतर होकर भी काव्य का है।" काव्य में औचित्य को रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवन माना गया है। काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए या उत्तम काव्य की सृष्टि के लिए काव्य में औचित्य का होना आवश्यक है। अनौचित्य से काव्य अकाव्य तो नहीं होता लेकिन अधम काव्य की कोटि में पहुंच जाता है तथा अपने मूल प्रयोजनों जैसे आनंद प्रदान करना, लोकमंगल आदि से दूर हट जाता है। ठीक वैसे ही जैसे जीवन में अनौचित्य उसे असुंदर, अनैतिक, असामाजिक, कटुता और दानवी प्रवृत्तियों की ओर ले जाकर बेढंगा, बेडौल और बेरंग बना देता है। अत: औचित्य को ही सरस काव्य और सार्थक जीवन का, उत्तम काव्य और सुंदर जीवन का स्थिर जीवन तत्व माना जा सकता है।

2.6.1 औचित्य का स्वरूप

जो जिसके अनुरूप हो उसे हम उचित कहेंगे। उचित का यह भाव ही औचित्य है। यह परिभाषा क्षेमेंद्र की है-

उचितं प्राहुराचार्या: सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते। *-'औचित्य विचार चर्चा'*

आचार्य क्षेमेंद्र औचित्य के प्रवर्तक माने जाते हैं किंतु उन्हें इस तत्व का व्यवस्थापक मानना ज्यादा उचित होगा। भरतमुनि से लेकर अनेक परवर्ती आचार्यों ने औचित्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया है। भरतमुनि नाट्यशास्त्र में अनेक बार रसोपयोगी नाट्य सामग्री के संचयन के लिए लोक-प्रमाण की बात कहते हैं-

लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।
तस्मान्नाट्यप्रयोगेषु प्रमाणं लोक इष्यते॥

अर्थात-'लोकानुकरण' एवं 'लोकस्वभावज' ही नाटक है। लोक स्वभाव का अतिक्रमण करना अनुचित है। अनुचित सामग्री से रस निष्पत्ति नहीं हो सकती। अत: इस अनौचित्य से बचने के लिए लोक स्वभाव का अनुकरण ही उचित है। पंडितराज जगन्नाथ ने शब्द शक्ति मूल ध्वनि के प्रसंग में अभिधा नियात्मक तत्वों की चर्चा करते हुए 'औचित्य' के लिए 'योग्यता' शब्द का उल्लेख किया है-**'योग्यता च युक्तमिदमित्ति लौकिक व्यवहारगोचरता।' अर्थात औचित्य का अर्थ है-योग्यता।** अर्थात औचित्य का अर्थ है-योग्यता। और योग्यता का निर्धारण लोक व्यवहार से होता है। लोक जिसे युक्त कहे वह योग्य अथवा उचित है। पंडितराज ने विषमालंकार में 'अनुरूप' शब्द का प्रयोग किया है। योग्यता, अनुरूपता, औचित्य परस्पर एक दूसरे के पर्याय होते हैं। भरतमुनि ने भी 'अनुरूप' का प्रयोग किया है-

टिप्पणी

वयोऽनूरूपः प्रथमस्तु वेषः, वेषानुरूपश्च गतिप्रचारः।
गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं, पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च॥

अर्थात, नाट्य में औचित्य का निर्वाह करने के लिए यह आवश्यक है कि वय के अनुरूप वेश हो और वेश के अनुरूप चाल-ढाल हो। चाल-ढाल के अनुरूप बोलचाल हो और बोलचाल के अनुरूप अभिनय। यहां बड़े ही सुस्पष्ट रूप से औचित्य सिद्धांत का बीज मिल जाता है। यहां औचित्य का निर्धारक लोक को माना गया है। औचित्य से ही जीवन और काव्य में रस सिद्ध होता है। इसलिए औचित्य को रस का परा-उपनिषद कहा जाता है। क्षेमेंद्र ने औचित्य का स्वरूप बताते हुए कहा–**'सदृशं किल यस्य यत्'** अर्थात जो जिसके सदृश हो। भरतमुनि ने यही बात अपने नाट्य के संदर्भ में कही। जैसे–

विन्यासं भूमिकानां तु संप्रवक्ष्यामि नाटके।
यादृश्यो यस्य कर्तव्या विन्यासे भूमिकास्ततः॥

अर्थात जैसी भूमिका जिसके लिए होनी चाहिए तथा जैसी चेष्टा जिसके लिए होनी चाहिए वैसी ही हो। इससे औचित्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। देखा जाए तो भरतमुनि ही इस सिद्धांत के आद्य उद्भावक कहे जा सकते हैं। उन्होंने औचित्य का स्वरूप निर्धारण करने के साथ ही उसके निर्धारण के लिए लोक तथा अध्यात्म प्रमाण की बात भी कही। औचित्य का विचार क्षेत्र व्यापक है। रीति एवं अलंकार संप्रदाय वाले औचित्य का चिंतन 'चारुता' या 'सौंदर्य' के संपादन की दृष्टि से देखते हैं–**'न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्। वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः।** काव्यालंकार–**भामह। काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौंदर्यमलंकारः**–काव्यालंकार सूत्र।'

यह अवश्य था कि यह 'सौंदर्य' और 'चारुता' बाहरी अधिक थी भीतरी कम। कहीं न्याय, कहीं युक्तता आदि अनेक रूपों में औचित्य का विस्तार अनंत था और है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रत्येक समाज के नियम होते हैं, साथ ही मानव मूल्य भी। मानव मूल्य ही हमें मनुष्यता की कसौटी पर कसते हैं। यदि मानव देह धारण कर हमारे आचरण पशुवत होंगे, हमारे भीतर करुणा, परोपकार, प्रेम, सत्य, त्याग, अहिंसा के विरुद्ध हिंसा, स्वार्थ, लालच, छल-कपट होगा तो यह मानव मूल्यों की कसौटी के लिए गलत, अनुचित, व अयोग्य होगा। इसी कारण काव्य में रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, लय, कल्पना, कोमलता, आनंद और लोकमंगल के भाव और लक्षण न हों तो वह काव्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा, जो अनुचित होगा। इस तरह देखा जाए तो सारी सृष्टि, मानव और साहित्य औचित्य की सीमा में हैं। इस तरह औचित्य सिद्धांत का स्वरूप न केवल व्यापक है बल्कि इसका चिंतन और इसके प्रति सतर्कता सदैव प्रासंगिक बनी रहेगी। क्योंकि इसके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं रहेगा, काव्य, काव्य नहीं रहेगा। न अलंकार, अलंकार कहा जाएगा, न गुण गुणों की तरह लगेंगे। कहा भी गया है–

कंठे मेखलया, नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुरबंधनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येणाप्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यताम्।
औचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणाः॥

अर्थात कंठ में मेखला, कटि में चंचलहार, हाथों में नूपुर और पैरों में केयूर पहनने से तथा शौर्य में उद्दंड शत्रु पर करुणा करने से कौन व्यक्ति उपहास्यापद नहीं होता। औचित्य के

टिप्पणी

बिना न अलंकार ही रुचिता पा सकते हैं न गुण ही। वस्तुतः क्षेमेंद्र कश्मीरी थे और साहित्य के क्षेत्र में इनके गुरु अभिनव गुप्त थे। अभिनव गुप्त का कहना है कि रसध्वनि निरपेक्ष औचित्य विचार का कोई अर्थ नहीं है। औचित्य एक सापेक्ष वस्तु तत्व है। अतः देश, काल, व्यक्ति, वस्तु तथा लक्ष्य की दृष्टि से ही परिवर्तनशील औचित्य का विचार किया जा सकता है। विभिन्न आचार्यों ने 'उचित' का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहा कि 'जहां जो जंच जाए', वही वहां उचित है। 'औचित्य' का महत्व है किंतु यह साध्य नहीं, साधन है। 'रस' ही साध्य है व काव्य की आत्मा है और औचित्य इस आत्मा की भी आत्मा है।

2.6.2 औचित्य की प्रमुख स्थापनाएं

औचित्य सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेंद्र कहते हैं कि औचित्य ही काव्य की आत्मा है। क्योंकि काव्य की आत्मा रस है तो रस में रसत्व औचित्य के द्वारा ही उत्पन्न होता है। औचित्य काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है–

औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥ *औ.वि.च.–श्लोक-3*

वे रस के महत्व को अस्वीकार नहीं करते–

अलंकारास्त्वलंकारा गुणा एव गुणाः सदा।
औचित्यं रस-सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥ *औ.वि.च.–श्लोक-5*

अलंकार, अलंकार ही है और गुण, गुण ही। लेकिन रससिद्ध शरीर में जिस प्रकार जीवन स्थिर होता है उसी प्रकार रससिद्ध काव्य में स्थिर जीवित औचित्य ही है। अर्थात औचित्य के बिना रस प्राणहीन है। सभी आचार्य औचित्य की महत्ता को स्वीकार करते हैं तथा अलग-अलग शब्दों में औचित्य की पक्षधरता करते हैं। भामह ने औचित्य के लिए 'न्याय' और 'युक्तता' जैसे पर्यायों का प्रयोग किया–

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।
अलंकार वदग्राम्यमर्थ्यं न्याय्यभनाकुलम्॥

यहां 'न्याय्य' शब्द तर्कसंगत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो तर्कसंगत है वह उचित भी होगा। इस दृष्टि से यहां यह औचित्य का पर्याय माना जा सकता है। भामह दोषों की चर्चा भी करते हैं फिर उन दोषों को अदोष बनाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे कहते हैं–उचित सन्निवेश से दोष भी अदोष बन जाते हैं, जैसे–काजल एकदम काला है लेकिन आंखों का साहचर्य पाकर आकर्षक हो जाता है। जैसे सुंदर पुष्पों की माला के बीच-बीच गुंथा हुआ नील पलाश भी रुचिर जान पड़ता है–

सन्निवेशविशेषान्तु दुरुक्तमपि शोभते।
नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव॥

भामह के पश्चात दंडी ने दोषों के माध्यम से अनौचित्य और औचित्य पर प्रकाश डाला है। दोषों का निवारण होते ही सौंदर्य का निष्पादन होता है। अतः यह माना जाए कि दंडी ने निषेधमुखी पक्ष से औचित्य पर विचार किया है–

'आसीत् काचिदवस्था या साऽभिषंगस्य चेतसः।
यस्यां भवेदभिमता विरुद्धार्थाऽपि भारती।

टिप्पणी

अर्थात चित्त की एक ऐसी भी स्थिति होती है कि जिससे विरुद्धार्थ वाणी भी मन के अनुकूल सुंदर और सुखद लगने लगती है। यहां अनौचित्य (दोष) के निवारण में ग्राहक की मन:स्थिति को भी कारण बताया गया है। दंडी कहते हैं– कवि काव्य में इन दोषों का औचित्य देखते हुए जान बूझ कर इनका प्रयोग करता है तो वहां ये दोष गुण बन जाते हैं।–

विरोधः सकलोऽप्येष कदाचित्कविकौशलात्।
उत्क्रम्य दोषगणानां गुणवीथीं विगाहते॥

दंडी काव्यादर्श में ही औचित्य को दर्शाने वाली श्रेष्ठ बात कहते हैं–

व्युत्पन्नबुद्धिरमना विधिदर्शितेन, मार्गेण दोषगुणयोर्वशवर्तनीभिः।
वाग्भिः कृताभिसरणो मदिरेक्षणाभिः, धन्यो युवेव रमते लभते च कीर्तिम्॥

अर्थात व्युत्पन्न लोग यदि उपर्युक्त विधिदर्शित मार्ग से दोष गुण के कूलों में प्रवाहित होने वाली वाग्सरिता की धारा से चलें, तो वे लोग मदिरेक्षणा के साथ रमण करने वाले धन्य युवा की तरह भाव में रमण भी करें और यश भी प्राप्त करें। यहां विधिदर्शित मार्ग को समुचित मार्ग कहा जा सकता है उसी भाव से जिस भाव से भरत ने 'अनुरूपता' और भामह ने 'न्याय्य' कहा।

आनंदवर्धन ने भी अपने तरीके से 'औचित्य' की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। वे कहते हैं–

श्रुतिदुष्टादयो दोषा अनित्या ये न सूचिताः।
ध्वन्यात्मन्येव शृंगारे ते हेया इत्युदीरिताः॥ *ध्वन्यालो॥* 12/5

अर्थात श्रुतिदुष्ट आदि दोष शृंगार रस में हेय होने के कारण दोष हैं परंतु वीर तथा रौद्र रस में अनुकूल होने के कारण वर्जनीय न होकर वांछनीय हो जाते हैं। काव्य में औचित्य का महत्व बताते हुए यशोवर्मा लिखते हैं–

औचित्यं वचसां प्रकृत्यनुगतं, सर्वत्रपात्रोचिता,
पुष्टिः स्वावसरे रसस्य च, कथामार्गे न चातिक्रमः॥
शुद्धिः प्रस्तुतसंविधानकविधौ, प्रौढिश्च शब्दार्थयोः,
विद्वद्भिः परिभाव्यतामविहितैः वहितैः एतावदेवास्तु नः।

अर्थात वाणी का औचित्य 'प्रकृति' के स्वभाव को ध्यान में रखने पर आता है। प्रकृति उत्तम, मध्यम, अधम तीन प्रकार की होती है। स्वभाव के अनुरूप ही वचनविन्यास प्रशंसा के योग्य होता है। रस की विभावादि सामग्री द्वारा पुष्टि, पात्र को ध्यान में रखकर होनी चाहिए। भीरू में उत्साह का, वीर में भय का प्रदर्शन सर्वथा अनुचित है। पात्र के अतिरिक्त अवसर का ध्यान न रखने पर भी औचित्य का अतिक्रमण हो जाता है। वेणीसंहार में दुर्योधन तब अपनी स्त्री के साथ तब हास-विलास कर रहा है, जब संग्राम अपनी चरम-सीमा पर है, यह अवसर की दृष्टि से अनुचित है।

भट्टलोल्लट रसवादी आचार्य हैं। वे रसौचित्य के संबंध में लिखते हैं–

मज्जनपुष्पावचयसंध्याचंद्रोदयादि वाक्यमिह।
सरसमपि नातिबहुलं प्रकृतरसान्वितं रचयेत्॥

अर्थात काव्य में या महाकाव्य में वर्णन महत्वपूर्ण होता है, किंतु वर्णन करने वाले को रस की सीमा का ध्यान रखते हुए रस निष्पादन के लिए वर्णन करना चाहिए। वर्णन में रस का अतिरेकी वर्णन न हो जाए। तथा वस्तु और प्रकृति के अनुकूल रस का वर्णन होना चाहिए

टिप्पणी

जैसे–मज्जन, पुष्प संचयन, संध्या, प्रातः आदि का वर्णन प्रकृति रस को ध्यान में रखकर करना चाहिए वरना अनौचित्य उत्पन्न हो जाता है जो रसभंग का सबसे बड़ा कारण है। इस संबंध में वेद वाक्य है–

अनौचित्याद् ऋते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

अनेक आचार्यों ने औचित्य को स्पष्ट न कह कर उसके पर्याय शब्दों का या दोषों के माध्यम से उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया। रुद्रट सीधे 'अनौचित्य' की बात करते हैं–

अनौचित्य प्रवृत्तानां कामक्रोधादिकारणात्।
भावानां च रसानां च बंध ऊर्जस्वि कथ्यते॥ *काव्यालंकार सार संग्रह*

अर्थात काम एवं क्रोध आदि के कारण अनुचित ढंग से प्रवृत्त भाव एवं रस के बंध को ऊर्जस्वि कहते हैं। उद्भट के कथन का तात्पर्य है कि जब रस एवं भाव का उपनिबंध उचित रीति से होता है तो रस एवं भाव की स्थिति होती है जिसको टीकाकार प्रतीहारेन्दुराज ने शास्त्र सम्मत मानते हुए **प्रेयोलंकार** तथा **रसवदलंकार** की स्थिति मानी है। लेकिन जहां भाव एवं रस का उपनिबंध अनुचित ढंग से यानी शास्त्र विरोधी होता है वहां **ऊर्जस्वित्** काव्य होता है। यहां उचित और अनुचित के माध्यम से औचित्य के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अंत में कुंतक द्वारा 'साहित्य' शब्द की औचित्य-गर्भ-व्याख्या पर दृष्टि डालें–

वृत्यौचित्यमनोहारि रसानां परिपोषणम्। स्पर्द्धया विद्यते यत्र यथस्वमुभयोरपि।
स काव्यवस्थितिस्तद्विदानन्दस्पंदसुन्दरा। पदादिवाक्परिस्पंदसारःसाहित्यमुच्यते॥

अर्थात वृत्तियों के औचित्यवश जहां रसों का मनोहारी परिपोषण हो, इस कार्य के लिए जहां शब्द और अर्थ बराबरी से बढ़-चढ़ कर योगदान करें वहां साहित्य, साहित्य होता है। शब्दार्थ की विलक्षण स्थिति जो सहृदयों के आनंद देने वाली प्रक्रिया से सुंदर और सरस हो साहित्य कही जाती है। परिस्पंद यानी व्यापार विशेष के ही कारण पद, वाक्य तथा प्रमाण से साहित्य मनोहर, रसमय तथा सार्थक हो जाता है। अन्य सिद्धांतों के अनुयायियों ने भी औचित्य की स्थापना अपने-अपने तरीके से की। अग्निपुराण में भी इसके बीज मिलते हैं। औचित्य कहां-कहां, किस-किस कारण से अनौचित्य में बदल सकता है, इस बात को दृष्टिगत रखते हुए इस सर्वमान्य एवं महत्वपूर्ण 'औचित्य' के भेद किए।

2.6.3 औचित्य के भेद

क्षेमेंद्र ने औचित्य के 27 भेदों की चर्चा की है–(1) पद (2) वाक्य (3) प्रबंधार्थ (4) गुण (5) अलंकार (6) रस (7) क्रिया (8) कारक (9) लिंग (10) वचन (11) विशेषण (12) उपसर्ग (13) निपात (14) काल (15) देश (16) कुल (17) व्रत (18) तत्व (19) सत्व (20) अभिप्राय (21) स्वभाव (22) सारसंग्रह (23) प्रतिभा (24) अवस्था (25) विचार (26) नाम (27) आशीर्वाद।

टिप्पणी

इन 27 स्थानों पर औचित्य की स्थिति है जहां असावधानी से अनौचित्य उत्पन्न हो सकता है जिससे काव्य में रसभंग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और काव्य अपनी उत्तमता खो सकता है। कुछ प्रकारों को उदाहरण सहित देखिए–

(1) **पदौचित्य**–जब सारी कोमलता एवं स्निग्धता सिमट कर एक ही पद में आ जाती है तब पदौचित्य होता है क्योंकि तब यह पद कविता कामिनी की शोभा का मुख्य बिंदु बन जाता है और वैसे ही शोभा देता है जैसे चंद्रमुखी के माथे पर लगी चंदन कस्तूरी की बिंदी।

मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराकुले,
नाथाऽस्मिन्निति वन्दिवाचि बहुशो देव श्रुतायां पुरा।
मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः,
कान्तारे चकिता विमुञ्यति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ॥

'हे देव! चारणों से मैं कब की सुनती आ रही हूं कि तुम्हारे इस खड्ग की धारा में न जाने शत्रु के कितने कुल डूब मरे।' यह कहती हुई मुग्धा गुर्जरराज की पत्नी प्यास मिटाने की आशा से जंगल में चकित होकर उसी कृपाण-धारा की ओर देखती रही–देखती रही। इस पूरे श्लोक का सौंदर्य 'मुग्धा' (भोली) पद में समाया हुआ है।

(2) **वाक्यौचित्य**–एक पद के स्थान पर यदि सारे के सारे पद ही वाक्य की संगति में एक-दूसरे से बढ़कर सौंदर्य उत्पादन की होड़ में लग जाएं, तब एकाधिक पदों की यह विशेषता होने के कारण वाक्यौचित्य होता है। क्षेमेंद्र का एक पद देखें–

देवो दयावान् विजयो जितात्मा यमौ मनः संयममाननीयौ।
इति ब्रुवाणः स्वभुजं प्रमाष्टि यः कीचकाऽकालिककालदण्डम्॥
धीरः स किर्मीरजटासुरारिः कुबेरशौर्यप्रशमोपदेष्टा।
दृष्टो हिडिम्बादयितः कुरूणां पर्यन्तरेखागणनाकृतान्तः॥

अर्थात युधिष्ठिर दयामय है, अर्जुन वशी है, नकुल और सहदेव के संयम का तो कहना ही क्या? ऐसा कहते हुए जिस भीम ने कीचक के लिए अकाल काल दंड की सी अपनी भुजाओं पर हाथ फेरा है वहीं जटासुर विनाशक, कुबेर के शौर्य को शांति का उपदेश देने वाला, हिडिंबापति तथा कौरवों की अंतिम रेखा का काल भीम अब दिखाई पड़ा। यहां प्रत्येक पद मार्मिकता के साथ पात्र के धीर और उदात्त स्वभाव तथा रौद्र रस की अभिव्यक्ति में एक दूसरे के साथ संबद्ध हैं।

(3) **प्रबंधौचित्य**–जहां समस्त प्रबंध में कुछ ऐसा अर्थ समाहित हो कि पूरा प्रबंध लहलहा उठे। सरस और सार्थक लगे वहां प्रबंधौचित्य होता है। कालिदास के मेघदूत का एक उदाहरण देखें–

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबंधुर्गतोऽहम्,
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाऽधमे लब्धकामा॥

यक्ष की उक्ति है–"मेघ! तुम पुष्करों तथा आवर्तकों के विश्व विश्रुत कुल में उत्पन्न हुए हो, तुम इंद्र के अपने खास व्यक्ति हो, चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हो। तुम्हारी इन्हीं विशेषताओं के कारण दैववश भाई बंधुओं से दूर हुआ मैं तुम्हारा याचक बना हुआ हूं। बात यह भी है कि अभिजात के समक्ष याचना करें और वह विफल भी हो जाए तो बात उतनी नहीं खटकती जितनी नीचों का याचक बनना, भले ही उनसे अपना मनोरथ पूरा हो जाए।" यहां यक्ष के द्वारा अपनी भावभीनी प्रशंसा सुनकर मेघ का आभिजात्य जाग उठता है, वह अपनी प्रशंसा से प्रसन्न होकर यक्ष की कथा सुनने के लिए रुक जाता है। यह इस प्रबंध में समाहित मार्मिक कथा का ही चमत्कार है। कवि की कल्पना ने प्रबंध को जीवंत बना दिया।

(4) **रसौचित्य**–क्षेमेंद्र कारिका 16 में लिखते हैं औचित्य के कारण सुंदर और आकर्षक रस विधान सबके हृदय में उसी तरह छा जाता है जैसे वसंत अशोक को खिला देता है। कालिदास का एक उदाहरण देखें–

बालेंदुवस्त्राण्यविकासभावाद् बभुः पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलानि॥

अर्थात ढाक के लाल-लाल फूल अभी अविकसित हैं इसलिए दूज के चांद की तरह टेढ़े हैं। लगता है जैसे प्रिय वसंत के साथ समागम होने के कारण वनस्थली नायिकाओं के ये नखक्षत हैं। इस प्रसंग में आगे पार्वती और परमेश्वर के अभिलाष-शृंगार का वर्णन करने के लिए कालिदास ने इस प्रकृति का आधार लेकर पृष्ठभूमि तैयार की है जो रसौचित्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

(5) **अवस्थौचित्य**–अवस्थागत औचित्य का निर्वाह करने से काव्य-संसार में पूज्य हो जाता है, जैसे विचारों के निकष पर चढ़ने वाले विद्वानों के कर्तव्य। क्षेमेंद्र लिखते हैं–

मुक्तः कंदुकविभ्रमस्तरलता त्यक्तवैवालोचिता,
मौग्ध्यं निर्धुतमाश्रिता गजगतिर्भ्रूलास्यमभ्यस्यते।
यन्मर्मोर्मिषु निर्मितं मृगदृशा वैदग्ध्यदिव्यं वचः,
तद् विद्यः सुभगाभिमानलटमाभावे निबद्धो भरः।

अर्थात गेंद का खिलवाड़ अब खत्म हो गया, शैशवोचित बात व्यवहार भी न रहा, भोलापन पास नहीं फटकता, चाल हाथी जैसी हो गई है, भौंहों को नचाया जा रहा है और शृंगार क्रीड़ा में वह मृगनयनी जो बात बोलती है उनका ताप भीतर के गौरव को बढ़ा रहा है जिसमें वह सहयोगी है।

औचित्य संबंधी स्थापनाएं निरंतर विकास पाती रही हैं। पाश्चात्य विचारकों ने भी औचित्य पर चिंतन किया है। भारतीय विचारकों में डॉ. राघवन्, पं. महादेव शास्त्री, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल सभी ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। निष्कर्ष यही निकलता है कि औचित्य का निर्धारण लोक से होता है। काव्य में शास्त्र सम्मत और लोक सम्मत भी। जहां विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी 'सामाजिकता' को औचित्य और 'असामाजिकता' को अनौचित्य कहते हैं वहीं आचार्य शुक्ल भी नीतिशास्त्र के आधार पर इसका निर्धारण करते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं–साहित्य की चरितार्थता 'महाएकता' की अनुभूति करा देने में है, यदि ऐसा हो तो 'औचित्य' सिद्ध है। 'महाएकता' यानी 'विश्वबंधुत्व'। कुल मिलाकर शब्द जो भी हों, अर्थ यही है कि जो लोक सम्मत हो, लोक हितकारी हो, मानव मूल्य और साहित्यिक मूल्यों की कसौटी पर खरा उतरे, सकारात्मक ऊर्जा का अनुसंधान करे, वह औचित्य है।

टिप्पणी

निष्कर्ष-काव्य आत्मा का भोजन है। निर्दोष काव्य से आत्मा संतुष्ट होती है। तृप्त मनुष्य चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है। आत्मा से नीचे उतरकर हम उदर की बात करें तो उस पर भी यही बात लागू होती है। सुस्वादिष्ट भोजन के लिए दाल, शाक आदि में नमक एवं मसालों का सही अनुपात होना आवश्यक है। यहां भी औचित्य की ही महत्वपूर्ण भूमिका है। वरना सारे मसालों की उपस्थिति निरर्थक हो जाती है। इसी तरह छोटे चेहरे पर पकौड़े जैसी बड़ी नाक अनुचित लगती है। जैसे–यह कहना कि **'वह गरीब दुखियारी स्त्री अपने रेशमी आंचल से आंसू पोंछ रही थी'**, यहां गरीब के साथ रेशमी आंचल का प्रयोग अनुचित एवं अविश्वसनीय है।

अत: जो जहां ठीक लगे, उचित हो, योग्य हो, विश्वसनीय हो वहां औचित्य है। औचित्य काव्य का बहिरंग न होकर अत्यंत और नितांत गूढ़, अंतरंग एवं सूक्ष्म तत्व है। इसीलिए विश्व के साहित्येतिहास में भारतीय साहित्य की यह महिमाशालिनी देन 'औचित्य सिद्धांत' के रूप में स्थापित है। कवि जो रचना करता है और सहृदय जो आस्वादन करता है उसमें औचित्य का पक्ष अंतर्व्याप्त रहता है। यह साध्य नहीं है किंतु महत्वपूर्ण साधन है। रस न हो तो औचित्य किस पर आधारित होगा? ध्वनि और अलंकार, गुण और रीति, लोक व्यापार, व्यवहार, आचार सभी इसका आधार है। लेकिन रस इसका मूलाधार है क्योंकि रस काव्य की आत्मा है और औचित्य अपनी विभिन्न धाराओं के साथ काव्य की आत्मा की आत्मा बनता है। संस्कृत काव्यशास्त्र की यह देन भारतीय काव्यशास्त्र की मूल्यवान धरोहर है।

गतिविधि

मनुष्य के जीवन में औचित्य के महत्व पर अपने मित्रों के साथ मिलकर एक परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

भामह का 'काव्यालंकार' अलंकार-शास्त्र की प्रथम उपलब्ध रचना है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

19. औचित्य सिद्धांत के प्रवर्तक का नाम बताइए।
20. काव्यशास्त्रीय सिद्धांत होने से पूर्व 'औचित्य' क्या है?
21. औचित्य के कितने भेद माने गए हैं?
22. औचित्य के बीज किस पुराण में मिलते हैं?

2.7 सारांश

अलंकार' का सामान्य अर्थ है–गहना या आभूषण जो देह की शोभा बढ़ाते हैं। काव्य के संदर्भ में भी इसे शोभा बढ़ाने वाले धर्म और तत्व के रूप में लिया जाता है। बाह्य तत्व के रूप में काव्य को अलंकृत करने वाले शब्दालंकार तथा धर्म के रूप में शब्द की आत्मा में धारित यानी अर्थ को अलंकृत करने वाले अर्थालंकार। काव्य की आत्मा 'रस' है या अन्य कोई लक्षण इस तर्क-वितर्क के आरंभिक दौर में सर्वप्रथम अलंकार सिद्धांत का जन्म हुआ। काव्य की आत्मा अलंकार है, ऐसा मत इस सिद्धांत के अंतर्गत स्थिर हुआ। आचार्य भामह इस संप्रदाय के प्रवर्तक हैं। अलंकारवादियों ने अलंकार को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए अलंकार रहित रचना को काव्य मानने से इनकार किया है। सर्वप्रथम अलंकारों का क्रमबद्ध वैज्ञानिक विवेचन 'काव्यालंकार' में भामह ने किया। भामह ने अपने पूर्ववर्ती 'मेधाविन' का

टिप्पणी

उल्लेख किया है जिससे यह पता चलता है कि अलंकार परंपरा पहले से चली आ रही है। लेकिन 'मेधाविन' या किसी भी रचनाकार का अलंकार संबंधी कोई ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण 'काव्यालंकार' को ही अलंकार संप्रदाय का प्रथम प्रामाणिक, उपयोगी और महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। दंडी ने काव्य-सौंदर्य के सभी तत्वों को अलंकार के अंतर्गत समाहित करने का प्रयास किया है। दंडी के अनुसार काव्य का विषयगत सौंदर्य सामान्य अलंकार का अंग है तो शैलीगत सौंदर्य विशेष अलंकार में समाहित हो जाता है। कुंतक के अनुसार काव्य न तो अलंकार है न अलंकार्य, बल्कि दोनों का समन्वित रूप ही काव्य है अर्थात सालंकार काव्य का ही काव्यत्व है।

आचार्य उद्भट का नाम भी अलंकारवादी आचार्यों में आता है। इन्होंने भामह के काव्यालंकार की टीका की तथा 'काव्यालंकार सार संग्रह' ग्रंथ की रचना की। इन्होंने गुण और अलंकार को अभिन्न माना। उद्भट अलंकार को काव्य का अभिन्न अंग मान कर चलते हैं और उनकी दृष्टि कुंतक की तरह की 'सालंकारं काव्यता' को ही मान कर चलती है। दूसरी ओर वे गुण और अलंकार को काव्य में चारूता का द्योतक मानते हैं। जयदेव की दृष्टि में अलंकार से रहित उक्ति को काव्य मानना वैसा ही है जैसे अग्नि को उष्णता रहित मानना। ये पंक्तियां ही अलंकारों के प्रति जयदेव के अनुराग को स्पष्ट करने में पर्याप्त हैं।

जयदेव की दृष्टि में अलंकारों के बिना काव्य का काव्यत्व ही दांव पर लग जाता है और उसके अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षण–'शब्दार्थावनलंकृती पुन: क्वापि'–का खंडन करते समय जयदेव ने कहा कि जो व्यक्ति अलंकार रहित काव्य को काव्य मानते हैं वे विद्वान अग्नि को भी उष्णता रहित क्यों नहीं मान लेते।

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन हमें भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। भरत ने अपने ग्रंथ में 'उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक' इन चार अलंकारों का उल्लेख किया है। उपमा के पांच भेदों का उल्लेख भी भरत ने किया है तथा 'अन्य भेद भी हो सकते हैं' का संकेत भी दिया है। भरत के पश्चात भामह और दंडी ने अनेक अलंकारों को चिह्नित किया तथा उनके लक्षणों एवं उदाहरणों का विस्तार से विवेचन किया। इन्होंने अलंकारों की संख्या को चालीस तक पहुंचा दिया। इतना ही नहीं दंडी ने यमक के तीन सौ पंद्रह भेदों का भी उल्लेख किया है तथा उपमा के बत्तीस भेद बताए हैं। भामह की तुलना में दंडी ने अर्थालंकारों का विस्तार से विवेचन किया। अलंकार के भेद असंख्य हैं क्योंकि यह अंतर्बाह्य की शोभा को बढ़ाने वाला लक्षण है।

अलंकार सिद्धांत का काव्यशास्त्र में काव्य लक्षण के रूप में विशेष महत्व है। रस तो काव्य की आत्मा है ही, औचित्य आत्मा की भी आत्मा है। लेकिन जहां तक वक्रोक्ति का प्रश्न है वह भी अलंकार है। यह शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों में सम्मिलित है। वक्रोक्ति यानी व्यंग्यार्थ व्यंजना, जो कि उत्तम ध्वनि है। इससे निर्मित काव्य उत्तम काव्य की श्रेणी में आता है। यह सत्य है कि अलंकार काव्य की आत्मा नहीं हो सकते, साध्य नहीं हो सकते। ये साधन मात्र है किंतु रस का सहयोगी हो सकता है। काव्य के लिए किसी आचार्य ने काव्य पुरुष कहा, किसी ने कविता कामिनी...। काव्य पुरुष हो या कविता कामिनी दोनों ही दृष्टियों से उनके लिए आत्मा रस है और अलंकार उनके शोभादायक धर्म हैं। काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए अलंकार का उपयोग किया जाता है यह उपयोगिता तो सिद्ध है ही इसके अतिरिक्त अलंकार काव्य का ऐसा लक्षण है जो इसे वक्रोक्ति और ध्वनि से भी

टिप्पणी

जोड़ता है। अलंकार सिद्धांत की उपयोगिता वक्रोक्ति एवं ध्वनि सिद्धांत को जानने के साथ-साथ पूरे काव्यशास्त्र की महिमा को जानने के लिए भी है। काव्यशास्त्र का यह महत्वपूर्ण सिद्धांत रस सिद्धांत की तरह ही शाश्वत है। रस आत्मा है। आत्मा को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए देह चाहिए। काव्य देह है तो उसके अंतर्बाह्य में अलंकारों की उपस्थिति भी अनिवार्यत: रहेगी। गुण के रूप में मन को सजाने के लिए तथा बाह्य शोभा कारक धर्म के रूप में अलंकार महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहेंगे। अपने विविध प्रकार एवं गुणों व विशेषताओं के साथ अलंकारों ने भी दीर्घ यात्रा की है। ये रस के सदैव सहयात्री रहे हैं और रहेंगे।

रीति सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य वामन ने 'काव्यालंकार सूत्र' नामक ग्रंथ लिखकर काव्यात्मा के प्रश्न पर चिंतन करते हुए लिखा–'रीतिरात्मा काव्यस्य' अर्थात रीति काव्य की आत्मा है। उन्होंने 'रीति' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा–'विशिष्टा पद-रचना रीति:', अर्थात विशेष प्रकार की पद रचना का नाम रीति है। आधुनिक काल में काव्यशास्त्र के अंतर्गत 'शैली' शब्द का प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। यह प्रयोग अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द के पर्याय के रूप में हो रहा है। इधर 'रीति' शब्द के अनेक अर्थ निकाले गए हैं–'रीति एक शब्द योजना है।' 'रीति' वर्णन योजना है। 'रीति' अभिव्यंजना का नाम है। रीति काव्य की आत्मा है। आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के एक काल को 'रीतिकाल' कहा जो तत्कालीन पूरे कालखंड की साहित्य धारा और उसकी चिंतन दृष्टि को प्रकट करता हुआ एक काव्यशास्त्र का द्योतक है। 'रीति' व्यापक सिद्धांत है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वह पदार्थ जो वस्तु तत्व एवं व्यक्ति तत्व को अपने में संजोए हुए है वह 'स्टाइल' है और हिंदी में 'स्टाइल' के लिए शैली शब्द का प्रयोग किया जाता है। अर्थात 'शैली' वस्तु तत्व और व्यक्ति तत्वों का समन्वित रूप है। इस लक्षण वाले पदार्थ को संस्कृत भाषा में 'रीति' कहा जाता है। स्वभाव की विस्तृत व्याख्या करने का गुण ही प्राचीन शैली को आधुनिक शैली का स्वरूप प्रदान करता है। भारतीय साहित्य में शैली और रीति दोनों भिन्न पदार्थ हैं। क्योंकि भारतीय काव्यशास्त्र का 'रीति' शब्द जो अपने प्रयोग में बहुत पीछे छूट गया है, वह आधुनिक 'शैली' का वाचक नहीं है। प्रवृत्ति के कारण 'रीति' शब्द का अर्थ संकुचित हो गया और वह वस्तु तत्व की प्रमुखता में रूढ़ हो गया है। आज के भारतीय काव्यशास्त्र में यह अंशत: ही व्यवहार्य है। जबकि 'शैली' शब्द 'अर्थ-विस्तार पाकर' व्यक्ति तत्व की प्रमुखता में रूढ़ होकर भी विश्व साहित्य के 'स्टाइल' का वाचक बन गया है। व्युत्पत्ति से प्राप्त अर्थ की दृष्टि से, अर्थ की व्यापकता की दृष्टि से तथा प्रयोग की दृष्टि से भी देखें तो 'शैली' और 'स्टाइल' की समान प्रसिद्धि एवं मान्यता है, रीति इनकी तुलना में स्थान नहीं बना पाती। हिंदी काव्यशास्त्र में रीति और शैली के प्रयोग पर ध्यान दें तो शैली अधिक सशक्त और व्यापक शब्द है। इसके स्थान पर 'रीति' को नहीं बिठाया जा सकता।

भारतीय काव्यशास्त्र में भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक प्राय: सभी आचार्यों ने गुणों की विवेचना की। गुणों के रूप, संख्या और स्थिति पर तर्क-वितर्क प्रस्तुत किए। भरतमुनि के अनुसार–दोषों का वैपरीत्य ही गुण है।वामन पहले आचार्य थे जिन्होंने गुणों को परिभाषित करते हुए कहा–'काव्य की शोभा के आधायक तत्वों को गुण कहते हैं जो रीति के माध्यम से काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। गुण काव्य के नित्य धर्म होते हैं। अत: काव्य में इनकी स्थिति अनिवार्य है। भरत और दंडी की तरह वामन भी गुणों की संख्या दस ही निर्धारित करते हैं। वामन के अनुसार गुण दो प्रकार के होते हैं– शब्द गुण और अर्थ

टिप्पणी

गुण। वामन मानते हैं कि रस गुणों पर आश्रित होता है। दंडी भी रसों को गुणों पर आश्रित बताते हैं अंतर यह है कि दंडी कहते हैं, रस माधुर्य गुण के आश्रित होता है तथा वामन कहते हैं कि रस 'कांति' गुण के आश्रित होता है। आनंदवर्धन ने गुणों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए उन्हें रसाश्रित मान कर रस के उपकारक धर्म बताया।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि 'रीति' काव्य का प्रमुख तत्व है। कुछ आचार्यों ने इसे अलंकार माना तो कुछ ने रस का उपकारक माना। 'रीति' काव्य की आत्मा नहीं है किंतु काव्यात्मा रस की निष्पत्ति में निश्चित रूप से इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह साध्य नहीं है किंतु महत्वपूर्ण साधन है। यह अभिव्यक्ति का माध्यम है लेकिन ऐसा माध्यम जो भावों को प्रभावित करता है। भाव यानी 'रस'। कहा जा सकता है कि 'रीति' सिद्धांत का काव्य में उच्च स्थान है' ध्वनि' को काव्य में रस के समकक्ष या रस के निकट या रस के निकटस्थ आत्मीय का स्थान दिया जाता रहा है। यह वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि और रसभावादि ध्वनि के रूप में काव्य में उपस्थित रहती है। व्यंग्य या व्यंजना के लिए 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग किया जाता है। व्यंग्य के रूप में ही ध्वनि को काव्य की आत्मा माना गया है। शब्द बोध की प्रक्रिया में सबसे पहले 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग वैय्याकरणों ने किया। आनंदवर्धन ने नवीं शताब्दी में ध्वन्यालोक ग्रंथ लिखा एवं घोषणा की कि–'ध्वनि काव्य की आत्मा है।' इसके पश्चात दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर 'लोचन' नामक टीका लिखी। यह मूल ग्रंथ से अधिक सशक्त और लोकप्रिय ध्वन्यालोक की पोषिका सिद्ध हुई। रसवादी आचार्य अभिनवगुप्त ने रस और ध्वनि के अभिन्न संबंधों की स्थापना करते हुए कहा–'रस वाच्य न होकर व्यंग्य होता है। काव्य का सर्वस्व रसध्वनि है और वस्तु ध्वनि तथा अलंकार ध्वनि भी अंतत: रस ध्वनि का ही पोषण करती है। ध्वनि सिद्धांत का मूल आधार व्यंजना शक्ति है। व्यंग्य काव्य का प्राण है, ऐसा माना जाता है। इसी व्यंजना शक्ति के भेद, उपभेद के आधार पर ध्वनि के भेद किए गए हैं। ध्वनि सिद्धांत पहला ऐसा भारतीय काव्यशास्त्री सिद्धांत है जिसमें कल्पना तत्व को स्वीकार किया गया है। ध्वनिकार का यह प्रयत्न था कि ध्वनि सिद्धांत की स्थापना भी हो जाए तथा काव्य के अन्य अवयवों– रस, रीति, अलंकार, गुण, वक्रोक्ति, औचित्य आदि का उसमें ठीक तरह से समावेश हो जाए। उन्होंने इन सभी अवयवों को व्यंग्य माना और व्यंग्य के कारण वे ध्वनि में अंतर्भुक्त हो गए।

वक्रोक्ति अर्थात टेढ़ा कथन। सामान्य कथन या सीधी बात हृदय को उतनी प्रभावित नहीं करती जितनी टेढ़ी बात। जब यह वक्रोक्ति काव्य में प्रयुक्त होती है तो काव्य में चमत्कार उत्पन्न कर देती है। सहृदय सामाजिक का हृदय आंदोलित हो उठता है। कथ्य अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता है यानी तीर निशाने पर लगता है इसलिए अलंकार सिद्धांत के कुछ अनुयायी वक्रोक्ति को अलंकार के अतंर्गत परिगणित करते हैं तो ध्वनि सिद्धांत के अनुयायी इसे व्यंग्य-कथन या व्यंजना मानते हुए ध्वनि के अंतर्गत मानते हैं। वक्रोक्ति रस निष्पत्ति में सहायक हो सकती है लेकिन स्वयं (आत्मा) रस तुल्य नहीं हो सकती। यह साधन है साध्य नहीं है। वामन वक्रोक्ति को लक्षणा शक्ति का ही एक रूप मानते हैं तथा केवल अर्थ में उसकी उपस्थिति मानते हैं। वे कहते हैं सादृश्य लक्षणा ही वक्रोक्ति है। रुद्रट ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार माना और उसके दो भेद कर दिए–काकु वक्रोक्ति तथा भंगश्लेष वक्रोक्ति। आनंदवर्धन ने वक्रोक्ति को विशेष अलंकार की संज्ञा देते हुए भामह तथा दंडी की तरह वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति को अभिन्न मानने वाली अभिव्यंजना पाश्चात्य विद्वान चिंतक इटली निवासी वैनेदतो क्रोचे की देन है जो मूलत: एक दार्शनिक

टिप्पणी

थे। वक्रोक्तिवाद के संस्थापक भारतीय मनीषी कुंतक हैं जो मूलत: एक काव्यशास्त्री हैं। इन दोनों वादों पर विचार करते हुए ध्यान रखना चाहिए कि एक ओर दार्शनिक के विचार तो दूसरी ओर काव्यशास्त्री के विचार हैं। दर्शन में सिद्धांत पक्ष प्रबल होता है जबकि काव्यशास्त्र में सिद्धांत के साथ व्यावहारिक पक्ष भी महत्वपूर्ण होता है। इसलिए ये दोनों विवाद समानता रखते हुए भी वैचारिक दृष्टिकोण से भिन्न प्रतीत होते हैं। कुंतक के वक्रोक्तिवाद की तुलना क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को लेकर हिंदी आलोचक मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित हैं। एक वर्ग जिसके प्रवर्तक आचार्य शुक्ल हैं, का कथन है कि वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद में कोई अंतर नहीं है। वस्तुत: अभिव्यंजनावाद वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान है। दूसरा वर्ग वह है जिसके संस्थापक डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु कहे जा सकते हैं जो वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद को सात्विक दृष्टि से भिन्न मानते हैं।

'औचित्य' काव्यशास्त्रीय सिद्धांत होने से पहले एक सामाजिक मूल्य है। यह जीवन और काव्य पर समान रूप से लागू होता है। दोनों की सार्थकता, सफलता और सुंदरता के लिए यह समान रूप से महत्वपूर्ण है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी कहते हैं–"औचित्य या मूल्य वह तत्व है जो जीवन और काव्य के भेद को समाप्त करता है वह काव्येतर होकर भी काव्य का है।" काव्य में औचित्य को रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवन माना गया है। काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए या उत्तम काव्य की सृष्टि के लिए काव्य में औचित्य का होना आवश्यक है। अनौचित्य से काव्य अकाव्य तो नहीं होता लेकिन अधम काव्य की कोटि में पहुंच जाता है तथा अपने मूल प्रयोजनों जैसे आनंद प्रदान करना, लोकमंगल आदि से दूर हट जाता है।

औचित्य संबंधी स्थापनाएं निरंतर विकास पाती रही हैं। पाश्चात्य विचारकों ने भी औचित्य पर चिंतन किया है। भारतीय विचारकों में डॉ. राघवन्, पं. महादेव शास्त्री, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल सभी ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। निष्कर्ष यही निकलता है कि औचित्य का निर्धारण लोक से होता है। काव्य में शास्त्र सम्मत और लोक सम्मत भी। जहां विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी 'सामाजिकता' को औचित्य और 'असामाजिकता' को अनौचित्य कहते हैं वहीं आचार्य शुक्ल भी नीतिशास्त्र के आधार पर इसका निर्धारण करते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं–साहित्य की चरितार्थता 'महाएकता' की अनुभूति करा देने में है, यदि ऐसा हो तो 'औचित्य' सिद्ध है। औचित्य काव्य का बहिरंग न होकर अत्यंत और नितांत गूढ़, अंतरंग एवं सूक्ष्म तत्व है। इसीलिए विश्व के साहित्येतिहास में भारतीय साहित्य की यह महिमाशालिनी देन 'औचित्य सिद्धांत' के रूप में स्थापित है।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **रीति** : शैली, तरीका।
- **अनुष्ण** : गर्माहट से रहित।
- **बौराय** : पागल होता है।
- **रिसियाने** : क्रोध युक्त।
- **अरविंद** : कमल।
- **प्रतीयमान** : प्रतीत होता हुआ, व्यंजना द्वारा प्रकट।

- **औचित्य** : उपयुक्तता।
- **विश्वबंधुत्व** : सबके प्रति सहोदर भाव।

टिप्पणी

2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. आचार्य भामह
2. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र
3. विपरीत
4. विभावना
5. आचार्य वामन
6. डॉ. विद्यानिवास मिश्र
7. वामन, दंडी
8. भामह और दंडी
9. आनंदवर्धन
10. आनंदवर्धन
11. तीन
12. अभिनवगुप्त
13. व्यंजना शक्ति
14. आचार्य कुंतक
15. आचार्य भामह
16. छह
17. वैनदतो क्रोचे
18. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
19. आचार्य क्षेमेंद्र
20. एक सामाजिक मूल्य
21. 27
22. अग्निपुराण

2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. अलंकार किसे कहते हैं? काव्य में उनका क्या महत्व है? समझाइए।
2. अलंकार कितने प्रकार के होते हैं? अधिकतर प्रयोग होने वाले अलंकारों पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

3. काव्य-गुणों के महत्व पर टिप्पणी लिखिए।
4. ध्वनि से आप क्या समझते हैं? काव्य में ध्वनि के महत्व पर समीक्षात्मक टिप्पणी कीजिए।
5. वक्रोक्ति से आप क्या समझते हैं? अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए।
6. काव्य में औचित्य के स्वरूप की अपने शब्दों में व्याख्या कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. काव्यशास्त्र में अलंकार संप्रदाय की स्थापना एवं उसके सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. रीति से आप क्या समझते हैं? रीति और शैली के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. रीति सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाओं का विस्तार से विवेचन कीजिए।
4. ध्वनि के स्वरूप को रूपायित करते हुए, ध्वनि सिद्धांत की प्रमुख स्थापनाओं का विवेचन कीजिए।
5. ध्वनि काव्य के प्रमुख भेदों का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
6. वक्रोक्ति काव्य के कितने भेद हैं? विस्तार से विवेचन कीजिए।
7. वक्रोक्ति और अभिव्यंजना के बीच साम्य एवं वैषम्य का सैद्धांतिक विश्लेषण कीजिए।
8. औचित्य सिद्धांत की मूल स्थापनाओं का विवरण देते हुए औचित्य के प्रमुख भेदों की समीक्षा कीजिए।

2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. भगीरथ मिश्र, *काव्यशास्त्र*, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर-1957
2. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, *हिन्दी साहित्य में विविध वाद*, पद्मजा प्रकाशन कानपुर 2010-वि.सं.
3. डॉ. वेंकट शर्मा, भूमिका नगेंद्र, *आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास*, आत्माराम एंड संस दिल्ली-1967
4. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *काव्य दर्पण*, साहित्यागार, जयपुर-1988
5. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान*, साहित्यागार जयपुर -1988
6. सत्यदेव मिश्र, *पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांत और वाद*, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा,1975
7. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, *सहृदय और साधारणीकरण*, हिंदुस्तान एकेडमी इलाहाबाद, 1984
8. डॉ. लक्ष्मी पांडेय, *अधुनातन काव्यशास्त्री : आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी*, उर्मिल प्रकाशन, गाजियाबाद।

इकाई 3 पाश्चात्य काव्य सिद्धांत

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकास क्रम
3.3 प्लेटो
  3.3.1 काव्य सिद्धांत
  3.3.2 सत्काव्य के गुण
3.4 अरस्तू
  3.4.1 अनुकरण सिद्धांत
  3.4.2 अरस्तू का विरेचन सिद्धांत
  3.4.3 त्रासदी सिद्धांत
3.5 लोंजाइनस का उदात्त तत्व
  3.5.1 उदात्त की अवधारणा
  3.5.2 उदात्त का स्वरूप
  3.5.3 अलंकार योजना एवं भाषा
3.6 क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत
  3.6.1 अभिव्यंजनावाद का स्वरूप
  3.6.2 आलोचना
3.7 कॉलरिज का कल्पना सिद्धांत
  3.7.1 अच्छे कवि के गुण
  3.7.2 अच्छी कविता के गुण
  3.7.3 कल्पना सिद्धांत का स्वरूप
  3.7.4 गद्य और काव्य
3.8 वड्र्सवर्थ का भाषा-चिंतन
  3.8.1 काव्यभाषा का सिद्धांत
  3.8.2 काव्य भाषा सिद्धांत पर आपत्तियां
  3.8.3 काव्य गुण संबंधी विचार
3.9 आई. ए. रिचड्र्स का मूल्य-सिद्धांत एवं काव्य भाषा
  3.9.1 संवेगों का संतुलन
  3.9.2 साहित्य और विज्ञान में भेद
  3.9.3 रिचड्र्स की काव्य-भाषा
3.10 टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत
  3.10.1 इलियट का आलोचनात्मक दृष्टिकोण
  3.10.2 परंपरा और वैयक्तिक प्रज्ञा
  3.10.3 निर्वैयक्तितावाद का सिद्धांत
3.11 सारांश
3.12 मुख्य शब्दावली
3.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.14 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

टिप्पणी

3.0 परिचय

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के क्रमिक विकास में प्लेटो, अरस्तू, लोंजाइनस, क्रोचे, कॉलरिज, वड्र्सवर्थ, आई. ए. रिचड्र्स, टी.एस. इलियट आदि महत्वपूर्ण आलोचकों व साहित्यकारों का योगदान है। प्लेटो कला में अनुकरण और आनंद की बात करते हैं। साहित्य में काव्यगत न्याय की प्रतिष्ठा का श्रेय प्लेटो को जाता है। कला-शिल्प से परिचित होना, कला-साधना के लिए गहन चिंतन करना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सोचना प्लेटो का पक्ष था। दार्शनिकों की तरह प्लेटो की दार्शनिक वकालत का महत्वपूर्ण स्थान है।

अरस्तू ने प्लेटो के 'अनुकरण' शब्द की नई दृष्टि से समीक्षा की। अरस्तू के अनुसार अनुकरण भावना मय होता है। वे कविता को इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिक तथा उच्चतर वस्तु मानते हैं। वे महाकाव्य, करुण साहित्य, गीतिकाव्य, मुरली एवं वीणा बजाने को अनुकरण की रीतियां मानते हैं। अरस्तू मानते हैं कि त्रासदी करुणा तथा त्रास के कृत्रिम उद्रेक द्वारा मानव के वास्तविक जीवन की करुणा और त्रास जैसी भावनाओं का निष्कासन करती है। यह प्लेटो के उस आक्षेप का उत्तर है जिसमें वे कहते हैं कि त्रासदी का नायक अपनी आपदाओं और कष्टों पर रुदन-विलाप कर दर्शकों के भावों को उद्दीप्त करता है। वास्तविक जीवन में हम अपने कष्टों पर रोने वाले को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। अरस्तू के ये दोनों सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र की अमूल्य उपलब्धि हैं। अरस्तू ने अगली पीढ़ी का पथ प्रशस्त किया और उन्हें चिंतन की नयी दिशा दी।

उदात्त का भाव दैवीय गुण है। मृत्यु लोक में कर्म करके मनुष्य को उदात्त होने और देवत्व प्राप्त करने का अवसर ईश्वर और प्रकृति से प्राप्त होता है। लोंजाइनस का मत है कि हम श्रेष्ठ कर्म करें और औदात्य को प्राप्त करें। काव्य इसमें सहयोगी और प्रेरक बनता है। वे कहते हैं मनुष्य के जीवन का ध्येय ही औदात्य की प्राप्ति होना चाहिए। क्रोचे का आविर्भाव ऐसे स्वच्छंदवादी कला के युग में हुआ जब कहा जाता था कि बच्चों को चित्रकार बनाने के लिए चित्रकला की शिक्षा नहीं देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से बच्चे के कोमल मन पर दूसरों के विचार अड्डा जमा लेंगे और वह स्वतंत्र मौलिक अभिव्यंजना नहीं कर पाएगा, उसकी प्रतिभा कुंठित हो जाएगी। क्रोचे विशुद्ध कलावादी ही माने जाते हैं।

कॉलरिज संपूर्ण जगत को चेतना की अभिव्यक्ति मानते हैं तथा जड़ और चेतन में सामंजस्य स्वीकार करते हैं। वे ब्रह्मवादियों की तरह आत्मा और जगत को एक ही सत्ता के दो रूप मानते हैं। कोरे अंधानुकरण को कॉलरिज जीवन की यांत्रिक नकल तथा प्रकृति की चोरी मानते हैं। कविता गद्य से श्रेष्ठ होती है, तथा छंद ध्यान और साधारण भावों की प्रफुल्लता को बढ़ा देता है, यह मत व्यक्त करते हुए वे छंद को खमीर की प्रकृति का घोषित करते हैं।

वड्र्सवर्थ ने भाषा की सरलता पर बल दिया ताकि जनसाधारण उसे समझ सके। वे तीव्र भावावेग के क्षणों में लिखी गई कविता को महान मानते हैं। वे कविता को छंदमयी मानते हैं तथा छंद को महत्वपूर्ण शक्तिशाली तथा प्रभावशाली मानते हैं। वे भावनाओं के सहज उच्छलन तथा विराट संवेदन को काव्य का आवश्यक गुण मानते हैं।

टिप्पणी

वे कहते हैं, कल्पना के बल पर उच्च कोटि की प्रतिभाएं प्रकृति की प्रतिकृति को अंकित कर सकती हैं। कॉलरिज की तरह वे मानते हैं कि फैंसी का संबंध स्थिर तथा निश्चित वस्तुओं से है, जबकि कल्पना का संबंध परिवर्तनशील अनिश्चित तथा सुघट्य वस्तुओं से है। वे कहते हैं कि काव्य का प्रयोजन ज्ञानवर्धन, सुख तथा मानसिक नैतिक स्वास्थ्य वर्धन है। वड्र्सवर्थ ने लिरिकल बैलेड्स की रचना कर पाश्चात्य कवियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया।

मनोवैज्ञानिक एवं काव्यशास्त्री रिचड्र्स 'कला कला के लिए' सिद्धांत के विरोधी हैं। वे काव्य में साधारणीकरण को महत्व देते हैं। वे कॉलरिज के बड़े समर्थक हैं तथा काव्य में कल्पना को महत्व देते हैं। रूढ़ नैतिकता के स्थान पर प्रकृतिवाद-विषयक नैतिकता के पक्षधर हैं। रिचड्र्स कहते हैं, अच्छा वही है जो मूल्यवान हो और मूल्यवान वह है जो मन में संगतिपूर्ण संतुलन स्थापित करे।

स्वयं को अभिजात्यवादी मानने वाले इलियट काव्य के मूल्यांकन के लिए परंपरागत नियमों का तिरस्कार करते हैं। परंपरा से उनका तात्पर्य इतिहास बोध से है। इतिहास बोध के कारण ही हम होमर से आज तक की सभी रचनाओं और रचनाकारों से परिचित हैं। इलियट कहते हैं- विवेचना के नाम पर मात्र तथ्यों का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण ही स्वस्थ आलोचना है।

इस इकाई में पाश्चात्य जगत के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की विभिन्न काव्यशास्त्रीय विचारधाराओं का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास क्रम का विश्लेषण कर पाएंगे;
- प्लेटो के काव्य सिद्धांतों का विवेचन कर पाएंगे;
- अरस्तू के अनुकरण एवं विरेचन की प्रकृति की पहचान कर पाएंगे;
- अरस्तू द्वारा वर्णित त्रासदी विवेचन के स्वरूप की व्याख्या कर पाएंगे;
- लोंजाइनस द्वारा प्रणीत उदात्त तत्व की समीक्षा कर पाएंगे;
- क्रोचे के अभिव्यंजना सिद्धांत की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- कॉलरिज के कल्पना सिद्धांत के स्वरूप का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- वड्र्सवर्थ के काव्य भाषा सिद्धांत के गुण-दोषों का तुलनात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- आई.ए. रिचड्र्स के मूल्य सिद्धांत एवं काव्य भाषा की समीक्षा कर पाएंगे;
- टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे।

टिप्पणी

3.2 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकास क्रम

पाश्चात्य काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परंपरा का मूल यूनान में माना जाता है। सुकरात के शिष्य प्लेटो को प्रथम पाश्चात्य समीक्षक होने का गौरव प्राप्त है। माना जाता है कि प्लेटो के समय का समाज पतित एवं विकृत दशा में था। वे अपने समाज का उत्थान करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने साहित्य और ज्ञान की हर विधा को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से परखा। तत्कालीन रचे जा रहे साहित्य को, काव्य को उन्होंने हीन दृष्टि से देखते हुए उस पर आरोप लगाए। हालांकि प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने इन आक्षेपों का समुचित उत्तर दिया। अरस्तू की विचारधारा साहित्य के प्रति स्वस्थ और सकारात्मक थी। उन्होंने काव्य-रचना विषयक सिद्धांतों की समीक्षा की, व्याख्या की और काव्य प्रकृति के वास्तविक रूप को समझने पर बल दिया। प्लेटो ने कहा था कि साहित्य को समाजोपयोगी होना चाहिए, अरस्तू ने उसके आनंद तत्व को प्रधानता दी। कृति की कलात्मकता और गठन पर बल दिया। अरस्तू के पश्चात यूनान में कुछ काल तक अलंकारशास्त्र और वक्तृत्व कला पर ही रचनाएं होती रहीं। साहित्य-समीक्षा में अवरोध उत्पन्न हुआ। अरस्तू के बाद लोंजाइनस प्रसिद्ध समीक्षक हुए जिनका मत था कि पाठक या श्रोता को तन्मय कर देना ही काव्य का लक्ष्य है। स्कॉट जेम्स ने इन्हें प्रथम स्वच्छंदतावादी या सौंदर्यवादी समीक्षक कहा क्योंकि इन्होंने सर्वप्रथम कवि, काव्य और भावक तीनों के गुणों की विवेचना की। उपरोक्त तीनों यूनानी समीक्षकों का स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

सन् 1400 ई-1660 ई. तक का काल अंग्रेजी साहित्य में पुनर्जागरण का काल माना गया है। इस काल में कुछ मानववादी, कुछ बुद्धिवादी समीक्षक हुए। कुछ समीक्षकों जैसे विवेस और इरास्मस ने प्राचीन के अंधानुकरण का विरोध किया, वे यांत्रिक अनुकरण के विरोधी थे। कुछ नवीन किए जाने के पक्षपाती थे। अत: इन दोनों ने 'वस्तु' और 'शैली को महत्व देते हुए समीक्षा प्रस्तुत की।

1570 ई. के बाद साहित्य की प्रकृति तथा कला की गंभीर व्याख्या की गई। सुधारवादियों ने साहित्य पर अनैतिकता का आरोप लगाया तो रिचर्ड विलियम्स जैसे समीक्षकों ने इसका तर्क सम्मत उत्तर देते हुए काव्य को अंत:शक्ति से उत्पन्न, गुण संपन्न एवं आनंदप्रद बताया। इस युग के एक अन्य समीक्षक पटेन्हम ने "दैवीय प्रेरणा, लोक जीवन के अनुभव और प्राकृतिक शक्ति तीनों को काव्य का हेतु माना और कल्पना को काव्य निर्माण के लिए आवश्यक कहा।" पटेन्हम की मान्यता थी कि कवि को औचित्य का ध्यान रखना चाहिए तथा अलंकरण-विधान छिपे रूप में करना चाहिए। बेन जॉनसन ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'डिस्कवरीज' में स्वस्थ विचार और उपयुक्त शैली को काव्य के लिए आवश्यक माना। प्रतिभा, अभ्यास, व्यापक अध्ययन एवं महान कवियों के अनुकरण को वे काव्य का हेतु मानते थे। वे प्रथम समीक्षक थे जिन्होंने व्यावहारिक समीक्षा में व्यक्तिगत दृष्टिकोण उपस्थित किया।

16 वीं शताब्दी के अंत में उपरोक्त समीक्षकों के विचारों को दृष्टिगत रखते हुए साहित्यिक नियम बनने लगे। बोयलो ने अपनी कृति 'आर्ट पोएटिक' में काव्य के उद्देश्य, शैली, प्रकृति एवं रूपों के विषय में नियम निर्धारित किए। माना जाता है कि इन नियमों के

टिप्पणी

पालन में बंधी हुई लीक के बीच साहित्य की आत्मा घुटने लगी और प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदता के लिए विद्रोह भी दृष्टिगोचर होने लगा। सैंट एव्रमो ने नियम और बुद्धि के सीमित प्रयोग की बात कही तथा साहित्य के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक अध्ययन की प्रवृत्ति पर बल दिया। इसके अतिरिक्त त्रासदी में अतिप्राकृत तत्वों का विरोध करते हुए उन्होंने साहित्य को युग की पृष्ठभूमि में देखने की प्रेरणा दी।

17 वीं शताब्दी में नवक्लासिकवादी और स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों में संघर्ष बना रहा। 18 वीं शताब्दी के आरंभ में साहित्य की सुगमता, सरलता एवं स्पष्टता पर बल देने के साथ प्राचीन साहित्य पर चिंतन एवं स्वच्छंद प्रकृति के विकास पर गतिविधियां चलती रहीं। बुद्धि को कल्पना से अधिक महत्व देने के साथ कल्पना के सौंदर्य और गौरव पर व्याख्याएं प्रस्तुत हुईं। शैली पर तर्क-वितर्क चलते रहे। पोप एवं डॉ. जानसन जैसे समीक्षकों ने प्राचीन साहित्य को नई दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए कहा कि साहित्य का परीक्षण सार्वभौम प्रकृति के आधार पर होना चाहिए। यह बुद्धि-विवेक का युग था।

1798 ई. में वर्डसवर्थ के 'लिरिकल बैलेड्स' के प्रकाशन के साथ ही अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावाद ने पांव जमा लिए। फ्रांस की राज्यक्रांति, रूसो, वोल्तेयर और गेटे की दृष्टि और रचनाओं ने इस प्रवृत्ति को प्रबल बनाया। कॉलरिज, शैली और कीट्स ने इसमें सहयोग दिया। काव्य में आनंद मूल्य को महत्वपूर्ण माना जाने लगा। कल्पना, सौंदर्य, रहस्य की छायाएं काव्य में दिखाई देने लगीं।

19 वीं शताब्दी में राजनैतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, मनोवैज्ञानिक आदि क्रांतियों ने साहित्य को प्रभावित किया और साहित्य जीवन के निकट आ गया। जीवन की तरह ऊबड़-खाबड़ गद्य की प्रधानता हो गई। इस युग में कथ्य पर ध्यान देने वाले कार्लाइल, रस्किन, टॉलस्टाय जैसे नीतिवादी समीक्षकों का मत था कि कला एक दिव्य शक्ति है और कुरूपता को कला द्वारा ही दूर किया जा सकता है। इस सदी के अंत में 'कला कला के लिए' का आंदोलन चल पड़ा। वाल्टर पेटर ने इस मत को प्रतिष्ठित करते हुए नीतिवादिता से दूर रहकर सूक्ष्म सौंदर्य की आराधाना की बात कही। जबकि स्विनबर्न ने 1866 ई. में 'Poems and Ballads' लिखकर विक्टोरियन युग की नैतिकता को प्रबल चुनौती देते हुए 'कला कला के लिए' का विरोध किया।

20 वीं शताब्दी का आरंभ अंग्रेजी समाज एवं साहित्य के लिए बेहद अव्यवस्था का समय था। कुंठा, निराशा, अनास्था, अमानवीयता आदि प्रवृत्तियों के बीच आलोचना का आरंभ हुआ। इरविंग बेबिट एवं ह्यूम ने नीति एवं आचार पर बल देते हुए स्वच्छंदतावादी काव्य में बिंबवाद का विरोध किया। आत्मवादी इटालियन दार्शनिक क्रोचे ने भौतिकवाद का विरोध किया और कहा कि कलात्मक सृजन सहजानुभूति की क्रिया है। आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक आलोचना का दौर आरंभ हुआ। आई.ए. रिचर्ड्स, टी.एस. इलियट, फ्रायड और मार्क्स जैसे समीक्षक एवं विचारक इस युग में हुए। मार्क्स की समाजवादी आलोचना और फ्रायड के काम-संबंधी विवेचन (जिसमें वे जीवन में काम को मूल-वृत्ति तथा साहित्य को काम-कुंठाओं की अभिव्यक्ति मानते हैं), ने आलोचना पर पर्याप्त प्रभाव डाला। अधुनातन समीक्षाओं का दौर नई-दृष्टियों से संपन्न होता हुआ निरंतर जारी है।

टिप्पणी

3.3 प्लेटो

प्लेटो दार्शनिक होते हुए भी सहृदय कवि थे आलोचक नहीं, इसलिए उनकी आलोचनाएं किसी एक कृति में संगृहीत नहीं मिलतीं। प्लेटो से पूर्व काव्य-समीक्षा संबंधी विचार स्फुट रूप में प्राप्त होते हैं। जैसे होमर का मत है कि 'काव्य का लक्ष्य आनंद देना है और कवि यह आनंद कलात्मक भ्रम द्वारा उत्पन्न करता है।' हेसिओड मानते हैं कि 'काव्य का उद्देश्य शिक्षा देना या दैवी-संदेश देना है।' ग्रीस की आदिम पौराणिक कथाएं काव्य का प्रयोजन प्राणियों को सभ्य बनाना मानती हैं। गार्जियस ने भाषा शक्ति या शब्द की शक्ति के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि निर्बल और भावों को वहन करने में असमर्थ भाषा कवि के अभीष्ट को व्यंजित नहीं कर पाती और न ही पाठकों को प्रभावित कर सकती है। उनके अनुसार 'शब्द सशक्त शासक है।' प्लेटो ने अपनी पूर्व परंपरा के काव्य का अध्ययन किया और यत्र-तत्र उनका उल्लेख भी किया। होमर के प्रति उनके मन में आदर था। ऐसा होते हुए भी उन्होंने तत्कालीन काव्य और कवियों की निंदा की क्योंकि तत्कालीन समाज विकृत और पतनशील था। साहित्य, जो समाज को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक सशक्त माध्यम है, वह उस योग्यता से वंचित था जो समाज का उत्थान कर सकती थी। इसलिए प्लेटो ने काव्य या कवि की नहीं बल्कि देखा जाए तो जिस प्रवृत्ति के अधीन होकर कवि जिस तरह का काव्य लिख रहे थे, उस प्रवृत्ति की निंदा की।

प्लेटो दार्शनिक होने के साथ सत्य का उपासक और तर्क का पक्षपाती था। उसने दर्शन की वेदी पर कवि-हृदय की बलि चढ़ाकर सत्य की रक्षा की। प्लेटो ने लिखा था कि 'कविता और दर्शन का झगड़ा पुराना है।' वह कविता को स्वतः प्रसूत भावोद्गार मानता है। कोई कवि गंभीर मननोपरांत काव्य रचना नहीं करता बल्कि अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर लिखता है। इसलिए इस तरह के स्वतः प्रसूत भावोद्गारों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए वह कवि और उसके सहज कवि कर्म को सत्य से भ्रमित करने वाला मानते हैं। कविता मूलतः मनोवेगों पर आधारित होती है जबकि दर्शन गंभीर तर्क और पर्यालोचन पर आधारित होता है। इसलिए कविता दर्शन का स्थान नहीं ले सकती, न ही राष्ट्र के उत्थान में सहायक हो सकती है। प्लेटो की इस मान्यता का कारण उसका आदर्शवादी सुधारक होना था। वह चाहता था उसके देश का हर नागरिक आदर्श नागरिक बने। उसके मतानुसार, 'मनुष्य के दो धर्म हैं बतौर विशिष्ट व्यक्ति उसे सत्य की प्राप्ति में संलग्न होना चाहिए और बतौर समाज के सदस्य उसे सदाचारी होना चाहिए। प्लेटो ने अपने कलागत सिद्धांत दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए। उसके विचारशील मस्तिष्क को यह बात चुनौती लगती थी कि कवि चिरंतन सत्य के शोधक और प्रतिष्ठाता होते हैं। वह अंधी अनुयायिता को नापसंद करता था। प्लेटो कविता को उसी सीमा तक ग्राह्य मानता था जिस सीमा तक वह मानव, समाज एवं देश के उत्थान के लिए हितकारी हो। इसलिए प्लेटो नहीं चाहता था कि कविता में देवताओं को कुटिल, पापी, षड्यंत्रकारी, लालची, व्यभिचारी आदि दिखाया जाए जैसा कि तुलसीदास ने लिखा **'ऊंच निवास नीच करतूती'।** इससे पाठक पर बुरा प्रभाव पड़ने का भय था। वे दर्शन को नवीन युग के लिए हितकारी मानते थे।

प्लेटो को केवल बौद्धिक आनंद स्वीकार था, ऐंद्रिय आनंद नहीं। अतः इंद्रियों से संबंधित काव्यजन्य आनंद उसके दर्शन से मेल न खाने के [illegible] था।

टिप्पणी

प्लेटो से पूर्व कवि को उपदेशक, संत और मार्गदर्शक समझा जाता था। होमर के संबंध में लोगों का मत था कि "वह महान कवि होने के कारण अच्छा शिक्षक है। वह सर्व कला विशेषज्ञ है। मानव की अच्छाइयों-बुराइयों को जानता है। वह दैवीय तत्वों से अभिज्ञ है। अतः उसके अनुरूप अपना जीवन ढालने के लिए उसकी उपयोगी शिक्षा को बार-बार पढ़ना चाहिए। प्लेटो इससे असहमत था और जनता के दृष्टिकोण को स्वस्थ नहीं मानता था।"

प्लेटो का मत था कि 'उसके समय की कविता मनोरंजन के लिए लिखी जाती थी और ग्रीक लोगों के अस्वस्थ मनोवेगों को उभारती थी।' प्लेटो के अनुसार "सत्य वह है जिसमें समाज और व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन को बल मिले। इसके विपरीत जो कुछ भी हो उसे वह असत्य मानते हुए काव्य को भी इसी कसौटी पर कसकर देखता था।" इस 'सत्य' के सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए उसने उदाहरण दिया कि "जब कभी कई प्राणियों या वस्तुओं की एक सामान्य संज्ञा होती है, तो हम कल्पना कर लेते हैं कि उनका एक सामान्य आदर्श (Idea) या रूप (Form) होगा।" प्लेटो कहता है कि ईश्वर ऐसे ही सामान्य आदर्श का कर्ता है, न कि विशेष आदर्श का। यही सामान्य आदर्श सत्य है। संपूर्ण विश्व में व्याप्त सौंदर्य, शिवत्व, सत्य एवं आनंद का आदर्श एक है। वे सामान्य सत्य को ही सच्चा सत्य मानते हैं। उसकी दृष्टि में विशिष्ट सत्य विश्वजनीन (Universal) सत्य की छाया मात्र है। इसके लिए उन्होंने 'पलंग' का उदाहरण दिया 'ईश्वर केवल एक पलंग की रचना करता है, वह पलंग आदर्श होता है। शेष जितने पलंग होते हैं वे सब आदर्श पलंग जिसमें मात्र सत्य निवास करता है, की नकल होते हैं इसलिए असत्य हैं।'

3.3.1 काव्य सिद्धांत

प्लेटो का काव्य-संबंधी मत यह भी था कि "जीवन में जो कुछ उदात्त और वांछनीय है, काव्य में उसके विपरीत है अर्थात काव्य अनुदात्त और अवांछनीय है।" उदाहरण के तौर पर होमर के काव्य में नायक को रोते और छाती पीटते दिखाया गया है। जीवन में हम इसे अवांछनीय मानते हैं और हमारा विवेक ऐसा करने की सम्मति नहीं देता लेकिन काव्य में यह सब पढ़कर हमें आनंद आता है। इसलिए उसने कहा 'काव्य का सत्य वास्तविक सत्य नहीं होता।' प्लेटो की दृष्टि में कविता का सत्य वास्तविक सत्य इसलिए नहीं है क्योंकि वह कविता को अज्ञान से उत्पन्न मानता था। उसका मत था कि कवि जिस वस्तु का अनुकरण करता है उसकी मूल प्रकृति से परिचित नहीं होता जैसे पलंग का चित्र बनाने वाला चित्रकार उस मूल पलंग की प्रकृति से न तो पूर्ण परिचित होता है, न उसका स्वरूप ही सच्चाई से अंकित कर पाता है। इसलिए उसका अनुकरण अज्ञान-जन्य होता है और उसका सत्य भ्रामक।

प्लेटो का मत था कि कवि यश और कीर्ति पाने के लिए पाठकों या श्रोताओं की वासनाओं को उत्तेजित कर लोकप्रियता प्राप्त करता है। वह आवेगपूर्ण और उन्मादग्रस्त प्रकृति का ही चित्रण करता है क्योंकि यह अनुकरण सरल और पाठकों को प्रिय होता है। अर्थात कवि का प्रयोजन आत्मा के विवेकपूर्ण अंश को प्रसन्न करना नहीं बल्कि पाठक को प्रसन्न करना है। ट्रेजिडी के संबंध में प्लेटो का कथन है कि "ट्रेजडी का कवि हमारे विवेक को नष्ट कर हमारी वासनाओं को जाग्रत करता है, उनका पोषण करता है और उन्हें

टिप्पणी

पुष्ट करता है।" काव्य के इसी हानिकारक प्रभाव के कारण वे काव्य सत्य को वास्तविक सत्य नहीं मानते। प्लेटो को जनता की रुचि पर विश्वास नहीं था। उन्होंने लिखा ''मनोरंजन का अर्थ हर किसी का मनोरंजन नहीं है, सर्वोत्कृष्ट संगीत वह है जो सर्वोच्च शिक्षित व्यक्तियों को प्रसन्नता प्रदान करे और विशेषत: उस एक व्यक्ति को जो शिक्षा तथा गुणों में सर्वप्रमुख हो। यही बात साहित्य और काव्य पर भी लागू होती थी। प्लेटो के लिए 'साहित्य में आनंद प्रमुख तत्व नहीं था। उसके लिए ऐंद्रियता से, कालुष्य से रहित बुद्धि का आनंद ही एकमात्र ग्राह्य आनंद था।'

3.3.2 सत्काव्य के गुण

प्लेटो के लिए न्याय का सिद्धांत प्रमुख था। इस एक सिद्धांत का पालन करने वाले काव्य की सरलता पर वह बल देता था। काव्य में उद्देश्य की एकता, अन्विति तथा लयात्मकता को महत्व देता था। उसकी निश्चित धारणा थी कि काव्य धार्मिक तथा नैतिक होना चाहिए। जिसमें देवताओं तथा वीरों के सद्गुणों जैसे सच्चाई, शील, दृढ़ता आदि को ही चित्रित किया जाए ताकि इससे समाज का उत्थान हो। इस दृष्टि से उसने साहित्य के दो भेद किए सत्साहित्य और असत्साहित्य।

दार्शनिक होने के कारण प्लेटो ने सदैव तर्क और बौद्धिकता को बल दिया तथा कल्पना तत्व का तिरस्कार किया। उसका मानना था कि कल्पना के द्वारा कवि झूठे बिंब और चित्र प्रस्तुत करता है जिससे बाह्य तृप्ति तो मिल सकती है पर आत्मा परिष्कृत एवं उदात्त नहीं हो सकती।

प्लेटो ने कला को कला की दृष्टि से न देखकर समाज कल्याण की दृष्टि से परखा। अत: कला में 'सुन्दर' से अधिक 'शिव' पर बल दिया जो सौंदर्यशास्त्री की दृष्टि नहीं बल्कि दार्शनिक की दृष्टि है।

प्लेटो की देन

प्लेटो की हर बात से सहमत न होते हुए भी कई बातें चिंतन-मनन के लिए प्रेरित करती हैं। कला में अनुकरण और आनंद की बात सर्वप्रथम प्लेटो ने की। प्लेटो ने प्रथमत: यह बताया कि कलाएं परस्पर संबद्ध होते हुए भी भिन्न होती हैं। इसीलिए उन्हें दो भागों में बांटा गया है–1. ललितकलाएं, 2. उपयोगी कलाएं। कलाओं में आदर्श की, न्याय, सौंदर्य और सत्य की प्रतिष्ठा भी प्लेटो ने की। उसके काव्य प्रेरणा से संबंधित विचारों में मौलिकता थी। उसने विक्षिप्तता के दो भेद बताए–एक तो शारीरिक दुर्बलता से उत्पन्न और दूसरा वह, जिसमें आत्मा रीति-रिवाज तथा परंपराओं के बंधन से मुक्त हो जाती है। यानी Poetic inspiration तर्क की शक्ति से परे की बातें। वह चिंतन को कला साधना का आवश्यक अंग मानता है तथा कला-शिल्प से परिचित होना वांछनीय बताता है। काव्य हेतुओं के अंतर्गत-प्राकृतिक शक्ति, कला के नियमों का ज्ञान, मनोविज्ञान का परिचय, अध्ययन और शिक्षण को महत्व देता है। कृति में आंगिक एकता (organic unity) के सिद्धांत का प्रथम प्रतिष्ठाता प्लेटो है। विरेचन सिद्धांत के संकेत तथा भाषण कला संबंधित सुझाव भी उसने दिए।

साहित्य में काव्यगत न्याय के सिद्धांत की प्रतिष्ठा प्लेटो ने की। प्लेटो की दृष्टि में कला या काव्य का प्रथम एवं प्रधान कार्य प्रभावित करना है, उपदेश देना नहीं। वह 'कला

टिप्पणी

जीवन के लिए' सिद्धांत से उतना ही दूर है जितना 'कला कला के लिए' सिद्धांत से। उसका मत है कि 'मानव चरित्र में जो कुछ उदात्त एवं महान है वही काव्य का विषय बने, काव्य का सत्य सार्वभौम एवं सार्वकालिक होना चाहिए।'

प्रथम आचार्य होने के कारण प्लेटो का ऐतिहासिक महत्व है। उसने परवर्ती आचार्यों के लिए पथ प्रशस्त किया। उन्हें चिंतन की सामग्री दी। कहीं वे कवि की तरह तर्क करते हैं, कहीं दार्शनिक की तरह वकालत करते हैं। अत: मतों में एकाध स्थान पर विरोधभास पाया जाता है जो स्वाभाविक लगता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में उनका योगदान अमूल्य है।

3.4 अरस्तू

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने विरेचन सिद्धांत, अनुकरण सिद्धांत तथा त्रासदी का सिद्धांत दिया। प्लेटो का शिष्य होने के नाते उन्होंने अपने गुरु द्वारा सुझाए अनुकरण शब्द की व्याख्या और विकास कर पाश्चात्य काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अरस्तू ने ही विरेचन का सिद्धांत प्रस्तुत किया। त्रासदी को नये संदर्भों में प्रस्तुत करने का श्रेय अरस्तू को है।

3.4.1 अनुकरण सिद्धांत

'अनुकरण' शब्द का प्रयोग प्लेटो ने किया था। उसके शिष्य अरस्तू ने इसे ग्रहण किया और कला को अनुकरणात्मक माना। परंतु काव्य को परखने की अरस्तू की दृष्टि सौंदर्यवादी है, वह काव्य को राजनीतिशास्त्र या नीतिशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में नहीं देखते। ग्रीक शब्द 'मिमीसिस' (Mimesis) का अंग्रेजी अनुवाद 'इमिटेशन'(Imitation) और हिंदी अनुवाद 'अनुकृति' अथवा 'अनुकरण' है। अरस्तू ने 'मिमीसिस' को प्लेटो से ग्रहण तो किया लेकिन उसको भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया। प्लेटो गणितज्ञ था। अत: विचार से वस्तु की ओर अग्रसर होता था। उसके लिए रेखा का आदर्श पहले होता है और रेखा बाद में जन्म लेती है और उत्तम रीति से खींचे जाने पर भी आदर्श रेखा नहीं बनती केवल उसका संकेत मात्र करती है। प्लेटो का विश्वास है कि ईश्वरजनित मूलादर्श (Idea) ही वास्तविक सत्ता है और मूलादर्शों का एक सूक्ष्म जगत है। यह स्थूल संसार उसी सूक्ष्म जगत का एक अपूर्ण अनुकरण है। प्लेटो ने वस्तु के तीन रूप बताए–आदर्श, वास्तविक और अनुकरणात्मक। पलंग के उदाहरण को लें तो ईश्वर द्वारा निर्मित पलंग आदर्श, बढ़ई द्वारा निर्मित पलंग वास्तविक तथा चित्रकार द्वारा चित्रित पलंग अनुकरणात्मक हुआ। इसमें प्रथम ही श्रेष्ठ है। अनुकर्ता छायाभासों या बिम्बों का निर्माण करता है। प्लेटों की अनुकरण संबंधी अन्य धारणाएं हैं कि–

1. कला और अनुकरण का घनिष्ठ संबंध है, अनुकरण कला का आधार है,
2. कलाकार मूलादर्श का अनुकरण नहीं कर सकता, अत: उसकी कृति सत्य से परे होती है,
3. कला तभी उत्कृष्ट हो सकती है जब वह सत्य एवं शुभ से युक्त वस्तु का अनुकरण करे, साथ ही अनुकरण सत्य के निकट हो,

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. किस रचना के प्रकाशन के साथ अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का प्रभुत्व बढ़ गया?
2. किस शताब्दी में विभिन्न प्रकार की क्रांतियों ने साहित्य को प्रभावित किया?
3. 'कविता और दर्शन का झगड़ा पुराना है'– किसका कथन है?
4. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य किसे कहा जाता है?

टिप्पणी

4. अनुकरण गंभीर कार्य न होकर मनोरंजन से संबद्ध है,

5. अनुकरण में कई खतरे है, जैसे- अज्ञान, भ्रांति एवं असावधानी।

अरस्तू ने काव्य को सौंदर्यशास्त्री की दृष्टि से देखकर उसे दर्शन, नीति, राजनीति की बेड़ियों से मुक्त किया। उसने प्रत्येक कलाकृति को सौंदर्य की वस्तु माना। अरस्तू कला को प्रकृति की अनुकृति मानते हैं। यहां प्रकृति से उनका अभिप्राय केवल प्रकृति या सृष्टि के बाह्य, स्थूल, गोचर रूप से ही नहीं बल्कि इनके साथ आंतरिक रूप काम, क्रोध, कल्पना आदि से भी है। अरस्तू अनुकरण का अर्थ हूबहू नकल करना नहीं मानते। उनका मत है कि 'अनुकृति की प्रक्रिया में प्रकृति के अनेक दोष और प्रभाव कला द्वारा पूरे कर दिए जाते हैं। अरस्तू का तर्क है कि यदि कविता प्रकृति का केवल दर्पण होती तो वह हमें उतना ही देती जितना प्रकृति देती है। उससे अधिक नहीं। जबकि कविता का रसास्वादन करते हुए हम आनंद के सरोवर में इसलिए गोते लगाते हैं कि वह हमें वह तत्व देती है जो प्रकृति नहीं दे सकी। मैथिलीशरण गुप्त (हिंदी कवि) कहते हैं 'जो अपूर्ण है कला उसी की पूर्ति है।' यही बात अरस्तू स्वीकार करते हैं और प्रकृति को केवल प्रेरक मानते हैं।

अरस्तू मानते हैं कि कलाकार अपनी संवेदना, अनुभूति, कल्पना और आदर्श आदि के प्रयोग से अपूर्ण को पूर्ण बना सकता है। उसका अनुकरण भावनामय होता है। अनुकार्य के संबंध में अरस्तू का मत है कि वह इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से कोई एक हो सकती है–1. जैसी वे थीं या हैं, 2. जैसी वे कही या समझी जाती है, 3. जैसी वे होनी चाहिए। स्पष्ट है कि अरस्तू काव्य का विषय प्रकृति के प्रतीयमान, संभाव्य तथा आदर्श रूप को मानते हैं। वे मानते हैं कि सभी प्रकार के अनुकरण में निश्चित रूप से कलाकार की भावना और कल्पना का योगदान रहता है। प्रतीयमान रूप का अनुकरण करते हुए वह उसका वैसा ही चित्र अंकित करेगा जैसा कि उसने अनुभव किया और जैसा उसके मन पर प्रतिबिंबित हुआ। इस प्रक्रिया में भाव-तत्व का समावेश हो जाता है और जब वह इन भावों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करेगा तब कल्पनातत्व का समावेश हो जाना स्वाभाविक है। संभाव्य रूप में तो वह कल्पनाशक्ति से मन में स्थिर संभाव्य रूप को ही चित्रित करेगा। आदर्श रूप में वह अपनी रुचि, इच्छा एवं आदर्शों के अनुरूप चित्र अंकित करेगा। यहां भी इच्छा और विचार से पोषित कल्पना का समावेश होगा। अत: कहा जा सकता है कि अरस्तू का अनुकरण शुद्ध प्रतिकृति को आधार मानकर नहीं चलता बल्कि भावना एवं कल्पना को समावेशित करके चलता है।

अरस्तू अनुकरण के संबंध में तीसरी बात यह कहते हैं कि 'कविता इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिक तथा उच्चतर वस्तु होती है। कवि और इतिहासकार में वास्तविक भेद यह है कि एक घटित हो चुके का वर्णन करता है और दूसरा वह वर्णित करता है जो घटित हो सकता है। काव्य सामान्य की अभिव्यक्ति है और इतिहास विशेष की। इस कथन में अरस्तू ने इतिहास के सत्य को मूर्त और सीमित बताया है जबकि काव्य का विषय संभावित है। अतः सत्य व्यापक है और विषय अमूर्त है। मूर्त वस्तुपरक होता है। अमूर्त का चित्रण कल्पना, अनुभूति तथा विचार पर आश्रित होता है। अत: निष्कर्ष यही निकलता है कि अनुकरण से अभिप्राय भावपरक अनुकरण से है।

टिप्पणी

अरस्तू स्पष्ट कहते हैं कि– "कवि वस्तुओं को यथास्थित रूप में नहीं बल्कि उपयुक्त रूप में प्रस्तुत करता है। कलाकार का कर्तव्य है कि वह मूल वस्तु में स्थित प्राकृतिक उपयुक्तता तथा सत्य को ही प्रेषित न करे बल्कि अपने कला-माध्यम के अनुरूप आवश्यक और संभावित का भी प्रेषण करे। जैसे जब कोई मनुष्य अपने शत्रु को मारता है तो कवि उसके कृत्य का वर्णन करने के साथ-साथ, मारने के कारण, परिस्थिति, आवश्यकता और मारने वाले के चरित्र का विकास भी दिखाता है।"

अरस्तू के अनुसार, महाकाव्य, करुण साहित्य, गीतिकाव्य, मुरली बजाना, वीणा बजाना आदि सभी अनुकरण की रीतियां हैं। जो वस्तु, साधन और रीति तीन प्रकारों से पृथक अनुकरण है। काव्य में अनुकरण की वस्तु हैं। 'प्राणी के कार्य' अर्थात कार्य के साथ भाव, विचार, चरित्र जिनके आधार पर कार्य का जन्म होता है। स्वभाव एवं संवेदना के आधार पर मनुष्य अच्छा या बुरा हो सकता है। तीसरी कोटि की बात अरस्तू नहीं कहते। अरस्तू काव्य में प्रकृति के अंधानुकरण के विरुद्ध थे। अंधानुकरण में जो जैसा है वैसा ही चित्रित होगा, अच्छा या बुरा नहीं। अच्छा या बुरा दर्शाने के लिए कल्पनातत्व आवश्यक है। अनुकरण से अरस्तू का अभिप्राय 'कल्पनात्मक पुन:सृजन' से है, जिसमें आवश्यक बढ़ाया जा सकता है और अनावश्यक छोड़ा जा सकता है। अनुकरण में कवि अपनी भावना और आदर्श को अभिव्यक्ति देता है। जिसमें अन्विति के नियमानुसार कथावस्तु चुनकर उसे कलात्मक सौंदर्य प्रदान करता है।

अरस्तू मानते हैं कि महाकाव्य, त्रासदी, रौद्रस्रोत, प्रशस्तिगान में अनुकरण की वस्तु उत्तम जीवन होती है। उत्तम से उनका अभिप्राय 'गंभीर' से है। ऐसा पात्र चुना जाए जो हमारा ध्यान आकृष्ट कर हमें चिंतन के लिए बाध्य करे। अरस्तू का कथन है कि अनुकृत वस्तु से प्राप्त आनंद भी सार्वभौम होता है। अनुकरण में आत्म-तत्व का प्रकाशन अनिवार्य है। आत्माभिव्यंजन आवश्यक है। आनंद की स्थिति में ही आनंद का संप्रेषण होता है। अरस्तू के इस 'भावनापूर्ण अनुकरण' में सुंदरता, आदर्श, कल्पना, समष्टिगत सत्य सभी कुछ होगा। अनेक आचार्यों ने इससे सहमति दर्शाई है और कुछ दोष भी गिनाए हैं–

1. वे वस्तु को आधार रूप मानते हैं। व्यक्तिपरक भावतत्व से अधिक महत्व वस्तुपरक भाव तत्व को देना अनुचित है।
2. इसमें संकुचित परिधि है क्योंकि कवि की अंतश्चेतना को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना दिया जाना चाहिए।
3. विश्व का गीतिकाव्य सर्वाधिक मात्रा में होने के कारण इसकी परिधि में नहीं समा सकता। अरस्तू ने गीतिकाव्य का गंभीर मनन, विवेचन नहीं किया।
4. क्रोचे के अनुसार कला-सृजन कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं जबकि अरस्तू अनुकरण को ही कला कहते हैं।
5. अरस्तू ने जो 'मिमीसिस' या 'इमिटेशन' शब्द चुना वह अनुपयुक्त है। इसकी अर्थ परिधि में 'कल्पनात्मक पुन:सृजन', 'सर्जना के आनंद की अवस्थिति' या 'पुन:सृजन' आदि अर्थों का अंतर्भाव नहीं हो सकता।

अरस्तू का 'अनुकरण सिद्धांत' महत्वपूर्ण है। व्यापक है। अन्य कवि एवं आचार्यों ने भी इसका प्रयोग किया है। होरेस कविता को जीवन का अनुकरण मानता था। विडा नामक

टिप्पणी

आलोचक कवियों को प्रकृति का अनुकरण करने की सलाह देता था। बैन जानसन ने दृढ़तापूर्वक शास्त्रीय अनुकरण को कलात्मक रचना का मूलस्रोत माना। वर्तमान में अनुकरण सिद्धांत प्रकृतिवाद, यथार्थवाद और अतियथार्थवाद के रूप में देखा जाता है।

3.4.2 अरस्तू का विरेचन सिद्धांत

अरस्तू यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे। वे मैकेडोनियन धारा के परम विद्वान, विवेकवान, सूक्ष्मद्रष्टा, अध्यापक तथा काव्यशास्त्री थे। उनकी विद्वता एवं प्रतिभा ने युगों तक यूरोप के चिंतकों, मनीषियों, कवियों को प्रभावित और प्रेरित किया। अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो के जीवनकाल में ही उनके आक्षेपों का दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। 'विरेचन सिद्धांत' का जन्म भी ऐसे ही एक उत्तर के रूप में हुआ। प्लेटो का कला संबंधी चिंतन नीतिशास्त्र पर आधारित था। उन्होंने कहा कि 'कविता अनुकरण का अनुकरण है, सत्य से दुगुनी दूरी पर है, अतः त्याज्य है।' इसी तरह उन्होंने कहा कि 'त्रासदी का नायक अपनी आपदाओं और कष्टों पर रुदन-विलाप कर दर्शकों के भावों को उद्दीप्त करता है। वास्तविक जीवन में हम अपने कष्टों पर रोने वाले व्यक्ति को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।' अरस्तू का कला संबंधी मत सौंदर्य-शास्त्र पर आधारित था। अतः उन्होंने प्लेटो के सिद्धांत का विरोध करते हुए 'भावों के विरेचन' की बात कही।

विरेचन का अर्थ

अरस्तू द्वारा प्रयुक्त मूल शब्द Katharsis है। हिंदी में इसका अनुवाद 'रेचन', 'विरेचन' तथा 'परिष्करण' शब्दों द्वारा किया गया है। जिस प्रकार Katharsis शब्द यूनानी चिकित्सापद्धति से संबंधित है उसी प्रकार 'विरेचन' शब्द भारतीय आयुर्वेदिक शास्त्र से संबंधित है। वैद्य के पुत्र होने के कारण अरस्तू ने वैद्यक शास्त्र से यह शब्द ग्रहण किया और 'काव्य-शास्त्र' में उसका लाक्षणिक प्रयोग किया। चिकित्साशास्त्र में इसका अर्थ है "रेचक औषधियों द्वारा शरीर के मल या अनावश्यक एवं अस्वास्थ्यकर पदार्थ का निकालना।" यूनान में रेचक औषधियों का प्रयोग सर्वप्रथम हिपोक्रिटीज ने किया था। होम्योपैथी में किसी संवेग की चिकित्सा 'समान' संवेग के द्वारा की जाती है। अम्ल के लिए अम्लता का और लवण-द्रव्य को दूर करने के लिए लवण का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार अरस्तू का मत है कि "त्रासदी करुणा तथा त्रास के कृत्रिम उद्रेक द्वारा मानव के वास्तविक जीवन की करुणा और त्रास भावनाओं का निष्कासन करती है।" अरस्तू के लिए यह विचार नया नहीं था साथ ही प्लेटो स्वयं जानता था कि विकृत उत्साह की चिकित्सा उद्दाम संगीत द्वारा संभव है। उसने Laws में स्पष्ट लिखा है कि Movement was applied to cure movement और इसका उदाहरण देते हुए इसे स्पष्ट किया है कि– "स्त्रियां शिशुओं को गाकर और उनको गोदी या पालने में हिला-डुलाकर सुलाती हैं न कि चुपचाप रहकर।"

विरेचन सिद्धांत का उल्लेख

अरस्तू ने अपने किसी भी ग्रंथ में 'विरेचन सिद्धांत' या उसकी व्याख्या नहीं दी। केवल दो स्थानों पर उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया है। 'पोएटिक्स' में त्रासदी की परिभाषा तथा उसका स्वरूप निश्चित करते हुए वे लिखते हैं "त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त

टिप्पणी

सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है। जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।" यहां अरस्तू प्लेटो के आक्षेप का उत्तर देने के साथ यह भी स्पष्ट करते हैं कि त्रासदी के मूलभाव त्रास और करुणा होते हैं और इन भावों को उद्बुद्ध कर के या जाग्रत कर के विरेचन पद्धति से मानव-मन का परिष्कार किया जाता है। यही त्रासदी का मुख्य उद्देश्य है। राजनीतिशास्त्र में 'विरेचन' शब्द का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं 'हमारा यह मत है कि संगीत का अध्ययन एक नहीं वरन अनेक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए होना चाहिए।' 1. शिक्षा के लिए, 2. विरेचन (शुद्धि) के लिए, 3. बौद्धिक आनंद की उपलब्धि के लिए। धार्मिक रागों के प्रभाव से जो रहस्यात्मक, आध्यात्मिक परिवेश निर्मित होता है, उसमें हाल की दशा वाले, संवेदनशील, भावुक व्यक्तियों के भीतर जो आवेश जाग्रत होता है, उससे उनकी आत्मा व्यापक और शांत हो जाती है। विरेचक राग मानव समाज को निर्दोष आनंद प्रदान करते हैं। यहां 'विरेचन' से तात्पर्य 'शुद्धि' से है।

विरेचन की व्याख्या

अरस्तू के परवर्ती व्याख्याकारों ने लक्षणा के आधार पर 'विरेचन' के तीन अर्थ किए– 1. धर्मपरक, 2. नीतिपरक, 3. कला परक।

1. **धर्मपरक अर्थ–** भारत की तरह यूनान में भी धार्मिक उत्सव मनाए जाते थे और देवी-देवताओं के सामने नृत्य-संगीत, प्रार्थना के द्वारा यह विनती की जाती थी कि आपदाएं, पाप, अत्याचार आदि दूर हों तथा जनता और समाज शुद्ध-बुद्ध हो। इसी के आधार पर माना जाता है कि अरस्तू ने धार्मिक आधार पर 'विरेचन' का लाक्षणिक प्रयोग किया। **प्रो. मरे** ने इसकी व्याख्या की। जिसका अर्थ था 'बाह्य उत्तेजना और अंत में उसके शमन द्वारा आत्मिक शुद्धि और शांति।'
2. **नीतिपरक अर्थ–** 'विरेचन सिद्धांत' की व्याख्या करते हुए जर्मन विद्वान **बारनेज** ने कहा कि "मानव मन में अनेक मनोविकार वासना के रूप में स्थित रहते हैं। इनमें करुणा एवं त्रास नामक दुखद भाव मूलक मनोविकार है। त्रासदी रंगमंच पर जब इन मनोविकारों को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत करती है तो मानव मन में स्थित करुणा एवं त्रास का उद्वेलन होने लगता है। वह उद्वेलित होते हुए भारी त्रास से गुजरता हुआ अंततः सुख और शांति का अनुभव करने लगता है। स्वस्थ अनुभव करता है। अतः यहां विरेचन का नीतिपरक अर्थ हुआ– 'मनोविकारों के उत्तेजन के बाद उद्वेग का शमन और तज्जन्य मानसिक विशदता'।"
3. **कला-परक अर्थ–** प्रो. बूचर का मत है कि "यह (विरेचन) केवल मनोविज्ञान अथवा निदान-शास्त्र के एक तथ्य विशेष का वाचक न होकर, एक कला सिद्धांत का अभिव्यंजक है। त्रासदी का कर्तव्य कर्म केवल करुणा या त्रास के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु इन्हें एक सुनिश्चित कलात्मक परितोष प्रदान करना भी है, इनको कला के माध्यम में ढालकर परिष्कृत तथा स्पष्ट करना है।" अर्थात 'विरेचन' का अर्थ है 'पहले मानसिक संतुलन और बाद में कलात्मक परिष्कार।'

टिप्पणी

इन व्याख्याओं की समीक्षा हम करें तो पाते हैं कि धार्मिक संगीत और मानसिक शुद्धि की चर्चा तो अरस्तू ने स्वयं की थी। लेकिन इन तीनों प्रकारों में भी सत्य की उपस्थिति है। नीतिपरक अर्थ की पुष्टि आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र भी करता है। फ्रायड, ऐडलर आदि यह स्वीकार करते हैं कि वासनाएं जब तृप्त नहीं हो पाती तो हमारे मनोवेग कुंठित हो जाते हैं और वासनाएं अवचेतन मन में पड़ी रहती हैं और मानसिक रोगों का कारण बनती हैं। इन अतृप्त वासनाओं की उचित रीति से तृप्ति होने पर ही रोगी स्वस्थ और कुंठामुक्त होता है। अरस्तू की मेधा इस प्रवृत्ति से परिचित थी। वे मानव मन के गहरे जानकार थे। मनोविश्लेषकों की तरह ही उन्होंने कहा कि 'विरेचन प्रक्रिया द्वारा प्रेक्षक के मन की ग्रंथियां खुल जाती हैं, घुटन दूर हो जाती है। 'विरेचन' से अरस्तू का तात्पर्य भावों का निष्कासन मात्र नहीं बल्कि उनका संतुलन भी था। भावातिरेक मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे मनुष्य का मानसिक संतुलन खो जाता है। अरस्तू का अभिप्राय यही था कि त्रासदी करुणा तथा त्रास के अवांछित अंश को उभार कर निकाल देती है, परिणामस्वरूप मनोवेगों में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायी है। काव्य का मंगलकारी रूप यही है कि वह एक ओर दमित भावनाओं को उत्तेजित करता है और दूसरी ओर अमर्यादित भावों को मर्यादित करता है। प्रो. बूचर द्वारा प्रस्तुत व्याख्या पर आपत्ति दर्ज करते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं "अरस्तू का अभीष्ट केवल मन का सामंजस्य और तज्जन्य विशदता ही था। कला-जन्य आस्वाद अरस्तू के विरेचन की परिधि से बाहर की बात है। विरेचन कला स्वाद का साधक तो अवश्य है परंतु विरेचन में कलास्वाद का सहज अंतर्भाव नहीं है। अतएव विरेचन सिद्धांत को भावात्मक रूप देना कदाचित न्याय नहीं है।"

विरेचन पर दो आक्षेप

आलोचकों ने 'विरेचन सिद्धांत' पर पहला आक्षेप लगाया कि 'वास्तविक अनुभव में ऐसा विरेचन होता ही नहीं। त्रासदी को देखकर करुणा, भय आदि मनोवेग जाग्रत तो अवश्य हो जाते हैं परंतु उनके रेचन से मन:शांति सदा नहीं होती बल्कि बहुत से नाटक तो केवल प्रेक्षक के भावों को क्षुब्ध करके रह जाते हैं।' डॉ. नगेंद्र ने इसे अस्वीकारते हुए कहा कि 'सफल त्रासदी का चमत्कार मूलत: रागात्मक है, वह विरेचन प्रक्रिया द्वारा भावों को उद्‌बुद्ध करती है, उनका समंजन करती है और इस प्रकार आनंद की भूमिका प्रस्तुत करती है। यही विरेचन सिद्धांत की देन है। यदि ऐसा न होता तो प्रेक्षक धन और समय खर्च करके त्रासदी देखने क्यों जाते? दूसरा आक्षेप यह था कि 'त्रासदी में प्रदर्शित भाव अवास्तविक होते हैं। अत: वे भावों को उत्तेजित नहीं कर पाते। विरेचन की तो बात ही दूर है। नाटक में हम केवल कला का आस्वादन करते हैं। यह आक्षेप अत्यंत कमजोर था, क्योंकि शेक्सपियर का 'हैमलेट' और भारतेंदु का 'सत्य हरिश्चंद्र' देखकर दर्शकों को रोना आता है। त्रासदी में दु:खी नायक को देखकर हम सहानुभूतिवश दुखी हो जाते हैं, वास्तव में हमारा दुख नहीं होता लेकिन साधारणीकरण के कारण हम 'स्व' की क्षुद्रता से मुक्ति पाकर व्यापक हृदय के स्वामी हो जाते हैं। प्लेटो के काल के संत सामाजिक उत्थान के लिए भाव शमन को बल देते थे अत: गुरु की लीक को पुष्ट करने के लिए अरस्तू ने 'विरेचन' में भाव-शमन की बात कही। यहां आनंद नहीं आनंद की भूमिका है ऐसा डॉ. नगेंद्र मानते हैं। प्लेटो काव्य और नाटक को हेय मानता था इसलिए अरस्तू ने गुरु की दृष्टि को परिवर्तित करने के लिए विरेचन सिद्धांत की

टिप्पणी

स्थापना की। यह सिद्धांत कामनाओं को उद्दीप्त ही नहीं करता बल्कि उसके बाद भाव शमन करके सुख, शांति और स्वास्थ्य भी प्रदान करता है।

विरेचन सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अरस्तू की अमूल्य देन है। 'विरेचन' शब्द का प्रयोग कर अरस्तू ने प्लेटो के आक्षेप का उत्तर दिया। काव्य की महत्ता स्थापित की। त्रासदी के प्रभाव को बढ़ाया, फ्रायड आदि के लिए मनोविश्लेषण का आधार प्रदान किया। आई. ए. रिचर्ड्स और आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मार्ग प्रशस्त हुआ। शुक्ल जी के द्वारा प्रस्तुत 'हृदय की मुक्तावस्था' का यहां साम्य है। विरेचन सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए एक उपलब्धि है।

3.4.3 अरस्तू का त्रासदी सिद्धांत

अरस्तू ने अपने ग्रंथ में नाटकों पर विशेषकर त्रासदी पर बहुत विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने त्रासदीं और कौमदी नामक दो भेद नाटक के माने। नाटक की उन्होंने कोई परिभाषा नहीं दी लेकिन उनके अनुसार नाटक काव्य का वह रूप है जिसमें पात्र जीवित, जाग्रत और चलते-फिरते प्रस्तुत किये जाते हैं। त्रासदी का लक्ष्य है यथार्थ जीवन से भव्यतम जीवन का चित्रण। यहां भव्यता का आधार नैतिक है। इसी आधार पर त्रासदी में औसत से उच्चतर मानव जीवन का चित्रण किया जाता है और त्रासदी को श्रेष्ठ काव्य का रूप माना गया है। कौमदी का लक्ष्य है यथार्थ जीवन से हीनतर जीवन का चित्रण।

अरस्तू ने त्रासदी की परिभाषा इस प्रकार की–"त्रासदी किसी गंभीर, स्वतंत्र तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूपों से प्रयुक्त सभी प्रकार के अलंकरणों से युक्त भाषा होती है। जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा और भय के उद्रेक के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विवेचन किया जाता है।"

इस परिभाषा में त्रासदी की इन विशेषताओं का उल्लेख है–

1. त्रासदी किसी कार्य की अनुकृति है।
2. कार्य गंभीर स्वत: पूर्ण और निश्चित आयाम वाला होता है। निश्चित आयाम का अर्थ है ऐसा कार्य जिसे दर्शक या पाठक समग्र रूप में ग्रहण कर सके।
3. कार्य का वर्णन नहीं होता वरन प्रदर्शन होता है।
4. मूलत: भाषा, छंद, लय और गीत आदि से अलंकृत होती है।
5. करुणा और भय के भाव इसमें प्रदर्शित होते हैं। इन भावों के उद्रेक द्वारा इनका उचित विवेचन किया जाता है और वे विश्रांत हो जाते हैं।

अरस्तू ने त्रासदी के छ: मुख्य अंग माने हैं– (क) कथावस्तु, (ख) चरित्र-चित्रण, (ग) भाषा, (घ) विचार तत्व, (ङ) दृश्य विधान (च) संगीत। इनके अतिरिक्त चार गौण अंग भी बताए हैं–(क) प्रस्तावना, (ख) उपाख्यान, (ग) उपसंहार, (घ) वृंदगान (Chorus)।

(क) कथावस्तु

अरस्तू ने एक प्रकार से कथावस्तु को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए त्रासदी की आत्मा माना है। कथावस्तु अर्थात नाटक और नाटकीय प्रयोजन की दृष्टि से कार्य व्यापार का क्रम है।

टिप्पणी

इसीलिए अरस्तू ने कथावस्तु को घटनाओं का विन्यास कहा। त्रासदी में कार्य व्यापार ही अनुकरण किया जाता है और यह अनुकरण दृष्टि विधान के माध्यम से ही होता है। जिस कार्य व्यापार का अनुकरण किया जाता है उसके कर्ता का चरित्र और विचार तत्व भी इस अनुकरण के माध्यम से उद्घाटित होता चलता है। इसलिए कथावस्तु में चरित्र और विचार नामक दो और अंग भी समाविष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त नाटकीय प्रयोजन भी कार्य-व्यापार के रूप में ही उपस्थित होता है कर्ता के किसी चारित्रिक गुण के रूप में नहीं। यही कारण है कि यूनानी नाटकों में कथावस्तु को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। नाटकीय कार्य व्यापार का उद्देश्य चरित्रों का प्रतिरूपण करना ही नहीं है क्योंकि चरित्रों का स्थान गौण है प्रमुखता सुनियोजित घटनाओं को दी जाती है। इसका कारण यह है कि चरित्र भी कार्य व्यापार के माध्यम से ही व्यक्त होता है। इस प्रकार जीवन का विस्तार और व्यक्ति के सुख-दुख उसके कार्यों पर ही निर्भर करते हैं और कथावस्तु के रूप में ही सामने आते हैं। चरित्र से उनका सीधा संबंध नहीं होता। इसीलिए अरस्तू ने कार्य व्यापार को त्रासदी की आत्मा या उसका साध्य कहा है और चरित्र-चित्रण का गौण महत्व दिया है। यद्यपि कार्य व्यापार बिना त्रासदी की रचना नहीं हो सकती। जबकि चरित्र-चित्रण के अभाव में ही यह संभव है। इसके अतिरिक्त जिस सघन कारूणिक प्रभाव की सिद्धि त्रासदी का प्रयोजन है वह चरित्र के माध्यम से उत्पन्न नहीं होती। प्रभाव भी वास्तव में कार्य व्यापार और उसके कलात्मक संयोजन के माध्यम से उत्पन्न किया जा सकता है।

लेकिन बाद में त्रासदी की मध्यकालीन यूरोपीय अवधारणा यूनानी त्रासदी की अवधारणा से भिन्न हो गयी और मध्यकाल में कथावस्तु अथवा कार्य व्यापार की अपेक्षा चरित्र को अधिक महत्व दिया जाने लगा। 16वीं शताब्दी के अंग्रेजी नाटककार शेक्सपियर तथा अन्य नाटककारों जैसे-गेटे, गिब्सन ने त्रासदी में चरित्र को ही सर्वोपरि स्थान दिया। चरित्र की अभिव्यक्ति यहां भी कार्य व्यापार के माध्यम से ही होती है लेकिन बल यहां कार्य पर नहीं बल्कि चरित्र पर दिया जाने लगा और यही दृष्टियों के अंतर का आधार बना।

अरस्तू ने कथावस्तु की रचना के लिए और उसके लिए सामग्री के ग्रहण के संबंध में तीन प्रधान स्रोत माने हैं- (1) दंत कथाएं, (2) इतिहास कल्पना। नाटककार कल्पित घटना को भी अपनी कथावस्तु की रचना का आधार बना सकता है लेकिन यहां भी उसे संभाव्यता तथा विश्वसनीयता का ध्यान रखना होगा। (3) कथानक का आयाम– अरस्तू के अनुसार कथानक के आयाम का विशेष महत्व है क्योंकि यह कथानक को संगठित करता है। आयाम का अर्थ है ऐसा विस्तार जो सरलता से याद किया जा सके। अर्थात वह न तो इतना सूक्ष्म हो कि दर्शक के मन में उसका कोई स्वरूप ही स्पष्ट न हो सके और न इतना विस्तृत हो कि दर्शक उसे समय रूप में ग्रहण ही न कर सके। अरस्तू ने कथावस्तु के छः गुणों का उल्लेख किया है जिनमें अन्विति के अतिरिक्त पूर्णता का भी विशेष महत्व है। त्रासदी का कथानक अपने आप में पूर्ण होना चाहिए क्योंकि त्रासदी ऐसे कार्य की अनुकृति हैं, जो संपूर्ण पूर्णता का अर्थ है– ऐसा कथानक जो नाटकीय विधान में पूर्णतः घटित हो सकें, उसे किसी अन्य तत्व की आवश्यकता न पड़े तथा जिसमें समुचित विस्तार भी हो। समुचित विस्तार का अर्थ है कि उसमें आदि, मध्य और अवसान तीनों स्थितियां विद्यमान हों। आदि का अर्थ है कथावस्तु का वह भाग जो किसी का परिणाम या हेतु नहीं होता लेकिन जिसके बाद कुछ

टिप्पणी

घटित अवश्य होता रहता है। मध्यम वह भाग है जो स्वयं किसी घटना का अनुगमन करता है तथा घटनाएं उसका अनुगमन करती हैं और यह वह बिंदु है जो पूर्ववर्ती घटनाओं को चरम बिंदु तक पहुंचाता है। अवसान का अर्थ है वह भाग जो अन्य पूर्ववर्ती घटनाओं का अनुवर्ती होता है और जिसके बाद नाटक में दर्शक के लिए कोई संभावना शेष नहीं रहती। उसकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हो जाता है।

संभाव्यता– इसका अर्थ है मानवीय जीवन और आचरण की अनंत संभावनाओं के अनुसार कथानक में कार्य व्यापार का संयोजना।

सहज विकास– कथानक के विविध अंगों को इस प्रकार संयोजित करना कि नाटकीय वस्तु का विकास सहज और स्वाभाविक रूप में हो सके किंतु कथानक के विविध अंग जैसे- संवृत्ति, विवृत्ति आदि का कथावस्तु के साथ समुचित संबंध स्थापित हो सकेगा।

कुतूहल– कथानक ऐसा होना चाहिए कि वह दर्शक के मन में बराबर कुतूहल बनाए रखे। इसके लिए घटनाओं का अचानक अप्रत्याशित रूप से उपस्थित होना अनिवार्य है। इसका आधार ही आकस्मिकता है। यदि घटनाक्रम का विकास सहज हो, घटनाओं में कार्य कारण की पूर्वापरता बनी रहे फिर भी घटना अचाकन उपस्थित हो जाए तो इस प्रकार की योजना सबसे अधिक गहरा कुतूहल उत्पन्न करती है।

साधारणीकरण– कथानक से व्यंजित अनुभव का दर्शकों तक पहुंचना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए नाटककार घटना विन्या को सार्वभौम रूप में प्रस्तुत करता है।

कथानक के रूप

अरस्तू के अनुसार कथानक के दो रूप हैं–सरल कथानक और जटिल कथानक। जिस नाटक में कार्य व्यापार एक ओर अविच्छिन्न हो, वह चरम घटना की ओर स्वतः ही विकसित होता है उसे सरल कथानक कहते हैं और जिसमें कार्य व्यापार चरम घटना की ओर स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं होता अर्थात नायक के भाग्य परिवर्तन के लिए स्थिति विपर्यय, अभिज्ञान या दोनों का सहारा लेना पड़ता है वहां जटिल कथानक होता है। स्थिति विपर्यय का अर्थ है घटनाओं में उलटफेर या कार्य व्यापार में व्यतिक्रम परंतु यह उलटफेर भी आवश्यकता और संभाव्यता के नियम के अनुसार ही होना चाहिए। अरस्तू ने स्थिति विपर्यय के लिए पेरिपेतिआ (Peripeteia) शब्द का प्रयोग किया है। अरस्तू के व्याख्याकार बुचर के अनुसार पेरिपेतिआ का अर्थ है भाग्य विपर्यय और एटकिल्स के अनुसार इसका अर्थ है परिस्थिति की विषमता। सामान्यतया स्थिति विपर्यय के अंतर्गत घटनाओं की विषमता के माध्यम से दैवी शक्ति का मनुष्य पर विषम प्रभाव दिखाया जाता है और यह प्रभाव अप्रत्याशित होता है। अभिज्ञान का अर्थ है किसी अज्ञान की स्थिति का ज्ञान में परिणत होना। अरस्तू ने इसके लिए एनाग्नोरिसिस (Anagnorisis) शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोग से सत्य अथवा वस्तु का नाटकीय ढंग से रहस्योद्घाटन होता है और घटनाक्रम में एकाएक नाटकीय स्थिति पर प्रकाश पड़ जाता है। इसी को अज्ञान का ज्ञान में परिणत होना कहा गया है। इसके प्रयोग से कार्य की गति सहसा बदल जाती है। ये दोनों तत्व कथानक को जटिल बनाने के अतिरिक्त उसको रोचक और आकर्षक भी बनाते हैं।

टिप्पणी

कथानक के भाग

अरस्तू ने कथानक के दो भाग किये–संवृत्ति और विवृत्ति। संवृत्ति का अर्थ है उलझन। इसके अंतर्गत कथावस्तु का वह भाग आता है जिसका विस्तार कार्य व्यापार के प्रारंभ से नाटक से उत्कर्ष तक जाता है। नाटक के उत्कर्ष का अर्थ है उस नाटकीय परिस्थिति का उत्कर्ष जिसकी ओर नाटक को समस्त कार्य व्यापार अग्रसर करता है। विवृत्ति का अर्थ है पूर्ववर्ती उलझन को सुलझाना। इसका विस्तार नायक के उत्कर्ष बिंदु से अंत तक चलता है।

त्रासदी के विवेचन के क्रम में अरस्तू ने त्रासदी के लिए उसके मूल प्रयोजन की दृष्टि से कुछ अनुकूल और कुछ प्रतिकूल परिस्थितियों की कल्पना की है। अनुकूल परिस्थितियों में दो स्थितियां प्रमुख हैं जबकि प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जिनमें त्रासदी के लक्ष्य की सिद्धि हो ही नहीं सकती। उदाहरण के लिए यदि किसी सर्वथा निर्दोष और सद्गुणी व्यक्ति को विपत्ति में पड़ा हुआ देखा जाएगा तो ऐसी स्थिति का चित्रण त्रासदी के लक्ष्य की सिद्धि नहीं कर सकेगा। इसके विपरीत यदि किसी दुष्ट पात्र को पतन से उत्कर्ष की ओर बढ़ते हुए दिखाया जाएगा तो यह स्थिति भी त्रासदी के प्रतिकूल होगी। क्योंकि यह नैतिक भावना के विरुद्ध है। इसके विपरीत किसी अत्यंत दुष्ट पात्र का पतन दिखाना भी त्रासदी के अनुकूल नहीं होगा क्योंकि उस दुष्ट पात्र के लिए दर्शक के मन में करुणा का भाव उत्पन्न करने वाला होता है। ऐसा चित्रण महिमाशाली व्यक्ति के अपने किसी दुर्गुण या पाप के कारण नहीं होता बल्कि किसी सूक्ष्म मानवीय कमजोरी या चूक या दोष के कारण वह दुर्भाग्य की स्थिति में पड़ जाता है। लेकिन कारुणिक परिस्थिति वहां विशेष प्रभावशाली होती है जहां घनिष्ठ आत्मीय संबंध के बीच कोई त्रासद घटना घटित हो जाए जैसे यदि कोई बेटा मां की या मां बेटे की संयोगवश हत्या कर दे तो वह त्रासद स्थिति अत्यधिक प्रभावोत्पादक हो जाती है।

(ख) चरित्र-चित्रण

त्रासदी के भागों में कार्य व्यापार के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग चरित्र-चित्रण है परंतु कथावस्तु के बाद ही इसका महत्व आता है। अरस्तू के अनुसार चारित्र्य वह है जिसके आधार पर अभिकर्ता में कुछ गुणों का आरोप किया जाता है। अरस्तू कहते हैं कि चरित्र सामान्यतया भद्र होना चाहिए और कर्ता के कार्य व्यापार से उसकी रुचि-विरुचि एवं उसके किसी नैतिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति होती है। उद्देश्य श्रेष्ठ होने की स्थिति में चरित्र भी श्रेष्ठ होगा। भद्रता चरित्र का मूलाधार है। त्रासदी के मुख्य पात्र का भद्र होना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा उसकी विपत्ति दर्शक के मन में सहानुभूति का उदय नहीं कर सकेगी। पात्रों का चरित्र-चित्रण उनके वास्तविक जीवन और परंपरागत धारणाओं के अनुकूल होना चाहिए। चरित्र में एकरूपता होनी चाहिए और यदि चरित्र में अनेकरूपता हो तो यह अनेकरूपता आदि से अंत तक एक जैसी रहनी चाहिए। चरित्र चित्रण में भी आवश्यकता और संभाव्यता के नियम का पालन होना चाहिए तथा आदर्श और यथार्थ का कलात्मक समन्वय भी होना चाहिए। इस संदर्भ में अरस्तू ने नायक के व्यक्तित्व और स्वरूप पर विशेष ध्यान दिया। त्रासदी का नायक खलपात्र नहीं होना चाहिए। वह सर्वथा निर्दोष अथवा सर्वथा सज्जन भी नहीं होना चाहिए। लेकिन वह अत्यंत वैभवशाली, यशस्वी और कुलीन हो सकता है। उसे सहज मानवीय भावनाओं से युक्त होना चाहिए लेकिन उसके चरित्र में कुछ

टिप्पणी

ऐसा होना चाहिए जिसके कारण वह सर्वथा निर्दोष न हो। उसके स्वभाव में कोई मानवीय कमजोरी या भूल करने की प्रवृत्ति अवश्य होनी चाहिए।

(ग) त्रासदी की भाषा

अरस्तू के अनुसार त्रासदी की भाषा समृद्ध और उदात्त हो परंतु बाह्याडंबर से मुक्त होना चाहिए। उसकी भाषा में अलंकृति, गरिमा और औचित्य का सहज समन्वय होना चाहिए तथा उसमें औचित्य भी बराबर विद्यमान रहना चाहिए। विषय-वस्तु और उद्देश्य के अनुरूप भाषा भी भव्य होनी चाहिए।

(घ) विचार-तत्व

इसका अर्थ है स्थिति विशेष में जो संभव और संगत हो उसके प्रतिपादन की क्षमता। यह वहां विद्यमान होता है जहां किसी वस्तु का भाव या अभाव सिद्ध किया जाता है या किसी सामान्य तत्व की व्यंजक सूक्ति का आख्यान किया जाता है।

(ङ) दृश्य-विधान

इसका अर्थ है रंगमंच के साधनों का कुशल प्रयोग। अरस्तू इसको त्रासदी का सबसे कम महत्व का और सबसे कम कलात्मक अंग मानते हैं। कारण ये है कि इसका विधान एक तो कवि की अपेक्षा मंचाशिष्पी की कला पर अधिक निर्भर करता है और इसके स्वतंत्र भी त्रासदी के प्रबल प्रभाव की अनुभूति की जा सकती है ऐसा अरस्तू मानते हैं।

(च) संगीत

पुरानी त्रासदी में विशेषकर यूनानी त्रासदी में गीत को एक प्रकार के अलंकरण के रूप में ग्रहण किया गया है, जिसका प्रयोग वृंदगान के अंतर्गत होता है परंतु अरस्तू ने इसको त्रासदी का अभिन्न अंग माना है। उसका अलंकरण मात्र नहीं।

3.5 लोंजाइनस का उदात्त तत्व

लोंजाइनस रोमांटिक आलोचना के आधार स्तंभ माने जाते हैं। लोंजाइनस की रचना 'पेरिइप्सुस' का यूनानी काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 'पेरिइप्सुस' का अर्थ है–औदात्य, ऊंचाई। कई वर्षों तक विस्मृति के गर्भ में पड़े रहने के बाद 1554 ई. में इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ। इस पर लेखक का नाम था–'दिओन्युसिअस लोंगिनुस' जिसे अंग्रेजी में डाइनोसियस लोंजाइनस उच्चरित किया गया। 19वीं सदी के आरंभ तक लोंजाइनस ओर उसका ग्रंथ विवाद के घेरे में रहे। यह विवादग्रस्त था कि पेरिइप्सुस का रचयिता कौन सा लोंजाइनस है। लोंजाइनस दो थे–एक जेनोबिया के मंत्री लोंजाइनस, जो अपनी वीरता और विदग्धता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध थे। उनका रचनाकाल तीसरी शताब्दी माना जाता है। उसने बड़ी निष्ठा से महारानी जेनोबिया की सेवा की, रेगिस्तान में 'पालम्यूरा' नगर बसाया और गिबन के अनुसार जिसने चुपचाप अपनी महारानी के लिए प्राणों का उत्सर्ग किया। दूसरा कोई अज्ञात यूनानी या रोमी लोंजाइनस था, जिसका रचनाकाल पहली शताब्दी था। बाद में यह मत स्थिर हो गया कि तीसरी शताब्दी वाला लोंजाइनस ही 'पेरिइप्सुस' का लेखक है। वह प्लेटो के भावुक दृष्टिकोण तथा प्रभविष्णु शैली से प्रभावित था।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. अरस्तू ने काव्य को किस दृष्टि से देखा?
6. 'कविता अनुकरण का अनुकरण है'– किसका कथन है?
7. 'विरेचन' शब्द का प्रयोग कर अरस्तू ने किस पर आक्षेप किया है?
8. अरस्तू ने त्रासदी के कितने प्रमुख अंग माने हैं?

टिप्पणी

लोंजाइनस ने प्लेटो के विपरीत काव्य के मोहक गुणों, उसकी वेद्यांतर विगलित करने की शक्ति, भावोत्कर्ष, दिव्य आनंदानुभूति को महत्वपूर्ण माना। लोंजाइनस अलंकार शास्त्री था। अत: व्याकरण शास्त्र, विश्लेषणात्मक आलोचना-शास्त्र तथा निबंध- रचना शास्त्र पर उसकी गहरी एवं सूक्ष्म दृष्टि एवं पकड़ थी। वह शास्त्रानुकूल रचना पर बल देता था। लोंजाइनस काव्य के लिए भावोत्कर्ष को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व मानता था। उसने सिद्धांत रूप में प्रस्तुत किया कि–"काव्य या साहित्य का उद्देश्य चरमोत्कर्ष प्रदान करना है तर्क द्वारा बाध्य करना नहीं।" पाठक या श्रोता को वेद्यांतर शून्य बनाना ही काव्य का उद्देश्य है। साहित्य कल्पना द्वारा पाठक को अभिभूत करता है। इसीलिए उसने 'इलियड' को 'ओडसी' से 'डिमोस्थनीज' को 'सिसरो' से श्रेष्ठ माना। क्योंकि इलियड में जीवंत आवेग, गहन अनुभूति, प्रचुरता, वेग, शक्ति और गति तथा यथार्थ बिंबविधान का ओडिसी की तुलना में आधिक्य था।

3.5.1 उदात्त की अवधारणा

लोंजाइनस 'अभ्यास' पर बल देता था। लोंजाइनस में स्वच्छंदता एवं अभिजात्यवाद दोनों के तत्व विद्यमान हैं। वह संतुलित दृष्टिकोण धारक समन्वयवादी विचारक एवं आलोचक था। उसने काव्य के अंतरंग एवं बहिरंग दोनों पक्षों में औदात्य का समर्थन किया है। लोंजाइनस कहते हैं–"विचार और पद-विन्यास अधिकतर एक दूसरे के आश्रय में विकसित होते हैं। सुंदर शब्द ही वास्तव में विचारों को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।" अर्थात उत्तम काव्य या दिव्य कविता वही है जो आनंदातिरेक में हमें इतना सराबोर, निमग्न और तन्मय कर दे कि हम अपना सर्वस्व भूल कर, अपने आपसे विस्मृत होकर ऐसी उच्च भाव भूमि पर पहुंच जाएं जहां निरी बौद्धिकता पंगु हो जाती है और वर्ण्य विषय या कथ्य विद्युत्प्रकाश की तरह जगमगाने लगता है। ऐसे ही विचार 'काव्य प्रकाशकार' मम्मट के हैं। वे भी 'वेद्यांतर विगलित' की बात करते हैं।

3.5.2 उदात्त का स्वरूप

लोंजाइनस ने 'उदात्त' की कहीं भी सूत्र-बद्ध व्याख्या नहीं की। उन्होंने उदात्त के स्रोतों, औदात्य के बीच आने वाली बाधाओं, तथा उदात्त के प्रभाव को ही स्पष्ट किया है। लोंजाइनस की विवेचन पद्धति अरस्तू की तरह सूत्रबद्ध व्याख्या वाली नहीं है। वे विषय का विशद विवेचन करते हैं। उनकी दृष्टि व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की है। उन्होंने उदात्त के विवेचन में पांच तत्वों की चर्चा की। प्रथम महान धारणाओं की क्षमता या विषय की गरिमा और द्वितीय भावावेश की तीव्रता। ये दोनों तत्व जन्मजात होने के कारण अंतरंग पक्ष में आते हैं तथा शेष तीन-समुचित अलंकार योजना, उत्कृष्ट भाषा तथा गरिमामय रचना-विधान बहिरंग पक्ष में आते हैं। इन दोनों पक्षों के अतिरिक्त उदात्त विवेचन में तीसरा विरोधी तत्व वाला पक्ष भी होता है।

1. **अंतरंग तत्व–** उदात्त विचार या विषय की गरिमा–लोंजाइनस का मत है कि– "विषय में ज्वालामुखी के समान असाधारण शक्ति और वेग होना चाहिए तथा ईश्वर का सा ऐश्वर्य और वैभव भी। विषय ऐसा होना चाहिए जिसका पाठक तथा श्रोता पर उत्कट तथा स्थाई प्रभाव पड़े जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग

टिप्पणी

असंभव हो जाए और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाए न मिटे।" वे यह भी कहते हैं कि–"यह संभव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों और विचारों से ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं अमर रचना कर सके। महान शब्द उन्हीं के मुख से नि:सृत होते हैं जिनके विचार गंभीर और गहन हों।" अरस्तु ने विषय को स्वत: साध्य माना है लेकिन लोंजाइनस उसे साधन मानते हैं। वे कहते हैं–विषय के महत्व तथा अनुक्रम की श्रेष्ठता से काव्य ब्रह्मानंद की अनुभूति कराता है। इसके लिए कवि में प्रतिभा के साथ, महान कवियों के साहित्य के अनुशीलन की योग्यता भी होनी चाहिए। वे प्राचीन कवियों के अंधानुकरण के पक्षपाती नहीं थे बल्कि उनसे संस्कार एवं शक्ति प्राप्त करने के पक्षधर थे।

आवेग-भावावेश की तीव्रता से तात्पर्य यह कि लोंजाइनस उद्दाम एवं प्रेरणा-जन्य भव्य आवेग को उदात्त का दूसरा तत्व मानते हैं। भावों का ऐसा आवेग जहां हमारी आत्मा गौरव एवं गर्व से उठकर उच्च आकाश में विचरण करने लगती है। हर्ष एवं उल्लास से भर जाती है। वे कहते हैं–"मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूं कि जो आवेग उन्माद उत्साह के उद्दाम वेग से फूट पड़ता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दों को विक्षेप से परिपूर्ण कर देता है, उसके यथास्थान व्यक्त होने से स्वर में जैसा औदात्य आता है, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं।" वे आवेग के दो भेद मानते हैं–भव्य एवं निम्न। दया, शोक, भय आदि निम्न आवेग के अंतर्गत आते हैं। भव्य आवेग से आत्मा का उत्कर्ष होता है वह दिग्दिगंत व्यापी अनुभव से ओत-प्रोत होकर औदात्य को प्राप्त करती है। औदात्य यानी ऐसी अनुभूति जो अपनी ऊर्जा, उल्लास और संभ्रम से पाठक की संपूर्ण चेतना को अभिभूत कर दे, मुग्ध कर दे।

2. **बहिरंग तत्व–** लोंजाइनस नियमों को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं कि प्रकृति का अनुशीलन करें तो मालूम होता है कि उसके कार्य भी नियमानुसार संपादित होते हैं। उसकी अभिव्यक्ति में एक व्यवस्था है। वे प्रतिभा को सदैव नियमानुसार होने वाला तत्व नहीं मानते। प्रतिभा प्राकृतिक वस्तु है वह प्रकृति के नियमों के अनुसार अभिव्यक्त होती है। भाषा, शैली, रचना-विधान आदि को वे 'कला की उपज' मानते हैं। कलागत उदात्त तत्वों में प्रथम है 'समुचित अलंकार योजना'।

3.5.3 अलंकार योजना एवं भाषा

लोंजाइनस अलंकारों को भी एक तरह से काव्य की आत्मा ही मानते थे, लेकिन उसे साधन ही मानते थे साध्य नहीं। उनका मानना है कि प्राकृतिक अभिव्यंजना में अलंकारों का स्थान है। अत: उन्हें कृत्रिम मानना उचित नहीं, पर उनका प्रयोग स्थान, विषय, परिस्थिति और उद्देश्य के अनुरूप प्रासंगिक होना चाहिए। अनावश्यक ओर अप्रासंगिक नहीं। यहां वे 'औचित्य' से परिचित होने के संकेत देते हैं तथा अपने युग में अलंकार को साध्य न मानने की बात कहना निश्चय ही उनके क्रांतिकारी विचार थे। उन्होंने अपने युग में निर्बाध रूप से प्रयोग किए जाने वाले अलंकारों का संबंध मनोविज्ञान से जोड़ा तथा मनौवैज्ञानिक प्रभावों को व्यक्त करने के लिए अलंकारों को उपयोगी ठहराया। वे अलंकारों को तभी उपयोगी मानते थे जब वह जहां प्रयुक्त हुआ है वहां अर्थ को उत्कर्ष प्रदान करे, लेखक के भावावेग से उत्पन्न हुआ हो, पाठक

टिप्पणी

को आनंद प्रदान करे, केवल चमत्कृत न करे। उन्होंने शैली को उत्कर्ष प्रदान करने वाले अलंकारों का ही विवेचन किया। उदात्त के पोषक ये अलंकार हैं–विस्तारण, शपथोक्ति, प्रश्नालंकार, विपर्यय, व्यतिक्रम, पुनरवृत्ति, छिन्नवाक्य, प्रत्यक्षीकरण, संचयन, सार, रूप-परिवर्तन, पर्यायोक्ति आदि।

लोंजाइनस रूपक और अतिशयोक्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं किंतु इनके प्रयोग में सतर्कता, संयम और विवेक से काम लेने की बात कहते हैं।

उत्कृष्ट भाषा

लोंजाइनस ने इसके अंतर्गत शब्द चयन, रूपक आदि का प्रयोग, भाषा की सज्जा को लिया है। विचार और पद विन्यास को वे अन्योन्याश्रित मानते हैं। वे कहते हैं–"उदात्त विचार क्षुद्र या साधारण शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त न होकर गरिमामयी भाषा में ही व्यक्त हो सकते हैं। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द सौंदर्य अर्थात उपयुक्त और प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग। सुंदर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।" शब्द विन्यास के दो पक्ष होते हैं–ध्वनि पक्ष और अर्थ पक्ष। लोंजाइनस मानते हैं कि– "अनुकूल ध्वनि के शब्दों का चयन काव्य में मोहकता की सृष्टि करता है।" वे भारतीय रीति संप्रदाय की तरह भाषा में ओज, माधुर्य, प्रसाद आदि गुणों को तथा काव्य दोषों को मानते हैं। अरस्तू ने कहा–वाक्य में दो से अधिक रूपक नहीं आने चाहिए। लोंजाइनस इसे नहीं मानते। वे कहते हैं कि अनुभूति की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग करना ही एकमात्र नियम है। वे हर जगह गरिमामयी भाषा के प्रयोग को उचित नहीं मानते। छोटी-छोटी बातों को बड़ी और भारी-भरकम संज्ञा देना किसी छोटे से बालक के मुंह पर पूरे आकार वाला त्रासद अभिनय का मुखौटा लगा देने के समान है। लोंजाइनस का मत है कि–"शब्द योजना संगीतात्मक प्रभाव के अनुरूप होनी चाहिए। ऐसे शब्दों के प्रयोग से न केवल पाठक को आनंदोपलब्धि होगी, अपितु उसमें उदात्त भाव भी जागेंगे। उसमें वैसे ही भाव जाग्रत होंगे जैसे लेखक की आत्मा में लिखते समय उमड़े थे।"

रचना विधान–लोंजाइनस ने उदात्त रचना विधान के लिए शब्दों, विचारों, कार्यों, सौंदर्य तथा राग के अनेक रूपों के गरिमामय समन्वय, संगुम्फन की बात की है। वे कहते हैं–सामंजस्य रचना का प्राण तत्व है जो उदात्त शैली के लिए आवश्यक है। जिस तरह शरीर के विभिन्न अवयव अलग-अलग महत्वपूर्ण होते हुए भी आपस में मिलकर सुंदर शरीर की रचना करते हैं। उसी तरह उदात्त कृति के लिए उसके तत्वों का एकान्वित होना आवश्यक है।

कल्पना तत्व–लोंजाइनस के अनुसार बिंब से अभिप्राय कल्पनाचित्र से है जिसकी प्रेरणा शक्ति कल्पना है। कल्पना वह शक्ति है जो पहले कवि को मानसिक रूप से वर्ण्य विषय का साक्षात्कार करा देती है और फिर जिसकी सहातया से कवि भाषा में चित्रात्मकता द्वारा वर्ण्य को ऐसे प्रस्तुत करता है कि वह श्रोता-पाठक के सम्मुख जीवंत और प्रत्यक्ष हो उठता है।"

निष्कर्ष-अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की तुलना में लोंजाइनस के विचार अत्यंत प्रगतिशील और क्रांतिकारी हैं। ब्रैडले, कॉन्ट आदि से तुलना करने पर तो लोंजाइनस अधिक महत्वपूर्ण

टिप्पणी

सिद्ध होते हैं। भावोत्कटता अलौकिक कल्पना-ऐश्वर्य और उत्कट प्रभाव क्षमता आदि गुणों का लोंजाइनस ने उल्लेख किया है उसे ब्रैडले ने पूरी तरह से स्वीकारा है। डी किवन्सी ने भाषा को आत्मा का incornation कहा जिसे लोंजाइनस तीसरी शताब्दी में कह चुके थे। प्रकृति के संबंध में लोंजाइनस तथा कॉलरिज के विचार समान हैं। यह मानना पड़ता है कि उदात्त का समग्र विवेचन और विश्लेषण भारतीय काव्यशास्त्र में उतना नहीं जितना लोंजाइनस के 'परिइप्सुस' में मिलता है। उदात्त कृति अपनी ऐश्वर्यता और महानता के कारण दोषपूर्ण होने पर भी पाठक को उतना प्रभावित करती है जितना निर्दोष पर साधारण कृति नहीं।

3.6 क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत

अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे हैं। क्रोचे इटली के प्रसिद्ध सौंदर्यशास्त्री तथा दार्शनिक होने के साथ-साथ कलावादी भी थे। इनका काल 1866-1952 ई. ठहरता है। क्रोचे ने साहित्य जगत में बहुचर्चित 'अभिव्यंजनावाद' की स्थापना अपने ग्रंथ 'फिलॉसफी ऑफ द स्पिरिट' के प्रथम खंड सौंदर्यशास्त्र में की है। इस अभिव्यंजनावाद ने साहित्य के साथ-साथ कला एवं संगीत को भी प्रभावित किया। क्रोचे का आविर्भाव ऐसे स्वच्छंदवादी कला के युग में हुआ जब कहा जाता था कि बच्चों को चित्रकार बनाने के लिए चित्रकला की शिक्षा नहीं देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से बच्चे के कोमल मन पर दूसरों के विचार अड्डा जमा लेंगे और वह स्वतंत्र मौलिक अभिव्यंजना नहीं कर पाएगा, उसकी प्रतिभा कुंठित हो जाएगी। क्रोचे विशुद्ध कलावादी ही माने जाते हैं।

3.6.1 अभिव्यंजनावाद का स्वरूप

अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे मूलत: दार्शनिक थे, आत्मवादी थे। इनका उद्देश्य आत्मा की अंत: सत्ता स्थापित करना था। इन्होंने सौंदर्य का प्रासंगिक विवेचन किया तथा अभिव्यंजना का विश्लेषण दर्शन की छाया में किया। क्रोचे आत्मा की मुख्यत: दो क्रियाएं मानते हैं– (1) विचारात्मक (2) व्यावहारिक। विचारात्मक क्रिया अर्थात ज्ञान के भी दो प्रकार मानते हैं–स्वयं प्रकाश ज्ञान और तर्क ज्ञान। स्वयं प्रकाश ज्ञान यानी सहजानुभूति और तर्क ज्ञान यानी विचारात्मक ज्ञान। वे व्यावहारिक प्रवृत्ति के भी दो भेद स्वीकार करते हैं– (1) आर्थिक अथवा निजी योग क्षेत्र से संबद्ध, (2) नैतिक। तर्क से प्राप्त ज्ञान का संबंध निश्चयात्मक बुद्धि से होता है। यह समष्टि का ज्ञान है जो दर्शन और विज्ञान को जन्म देता है। स्वयं प्रकाश ज्ञान बौद्धिक ज्ञान से स्वतंत्र होता है। यह एक अलौकिक शक्ति है जो क्षण भर में किसी दृश्य या भावना को अपनाकर उसे साकार मूर्त और सुंदर रूप दे देती है। सहजानुभूति ही स्वयं प्रकाश ज्ञान है। कला एवं साहित्य का इसी से संबंध है। यही अभिव्यंजना है जो पूर्णत: निरपेक्ष एवं विलक्षण आत्मिक क्रिया है। क्रोचे इस सहजानुभूति यानी स्वयं प्रकाश ज्ञान का सामान्य अनुभूति से बहुत अंतर मानते हैं। क्रोचे कहते हैं कि सामान्य अनुभूति के दो मुख्य रूपों सुख तथा दुख का संबंध व्यावहारिक प्रवृत्ति अर्थात आर्थिक एवं नैतिक प्रवृत्तियों से होता है जबकि कलात्मक अनुभूति का संबंध केवल सहजानुभूति से। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि कलात्मक अनुभूति या सहजानुभूति या स्वयं प्रकाश ज्ञान एक अलौकिक अद्भुत आत्मिक

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. लोंजाइनस ने काव्य के अंतरंग एवं बहिरंग दोनों पक्षों में किस तत्व का समर्थन किया है?
10. लोंजाइनस काव्य के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व किसे मानता है?
11. लोंजाइनस ने उदात्त विवेचन में कितने तत्वों की चर्चा की है?
12. अलंकारों को काव्य का साध्य नहीं साधन मानने वाले विद्वान का नाम बताइए।

टिप्पणी

क्रिया है, जो अन्य किसी क्रिया से या प्रवृत्ति से संबंधित नहीं होती। क्रोचे ने इसी सहजानुभूति के आधार पर अभिव्यंजनावाद की स्थापना की।

अभिव्यंजनावाद वह कला सिद्धांत है जिसमें आत्मा का अपनी सौंदर्य बोध संबंधी प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। यह बाह्य प्रकृति से प्रभावित न होने वाला सौंदर्य प्रधान, आत्मानंदमूलक व्यापार है। सहजानुभूति वह क्रिया है जो आत्मा में ही पूर्णता प्राप्त करती है। उदाहरण के लिए–जब चित्रकार किसी वस्तु को देखता है तब उस वस्तु का चित्र उसके मन में अंकित हो जाता है या अभिव्यक्त हो जाता है। यह सहजानुभूति की आंतरिक अभिव्यंजना है। आंतरिक रूप रचना है, जो सौंदर्य तत्व को जन्म देती है। क्रोचे इसे आत्मा का अभिव्यंजनात्मक कर्म मानता है। इसी कर्म के द्वारा यानी सौंदर्य तत्व की उत्पत्ति के बाद इसी अभिव्यंजनात्मक कर्म द्वारा कलाकार भावनाओं तथा संवेगों के वेग को नियंत्रित रखकर प्रभावों को बिंबों में अभिव्यक्त कर उनसे मुक्त होता है। सारांश यह है कि क्रोचे सहजानुभूति को अभिव्यंजना मानता है जो आंतरिक होती है। मन के भीतर होती है बाहर नहीं। सौंदर्य की व्याख्या करते हुए क्रोचे ने अभिव्यंजना के चार स्तर बताए हैं–

(1) अंत: संस्कार या आत्म निवेदन,

(2) अभिव्यंजना,

(3) आनुषंगिक आनंद,

(4) अभिव्यक्ति।

क्रोचे की दृष्टि में कला एक आध्यात्मिक क्रिया है। कलाकार अपनी सहजानुभूति को पूर्ण अभिव्यक्ति देने में प्रयत्नशील रहता है। इसी प्रक्रिया में उसके मन पर पड़े प्रभाव कल्पना का रंग ग्रहण कर विस्तृत और मूर्त हो उठते हैं। साकार हो जाते हैं। क्रोचे स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण को ही स्पष्ट अभिव्यक्ति मानते हैं। प्रत्यक्षीकरण जितना विशद होगा, उतनी ही विशद और सफल अभिव्यक्ति होगी और चूंकि अभिव्यक्ति ही कला है अत: उतनी ही सफल उसकी कला भी होगी। उल्लेखनीय है कि क्रोचे का अभिव्यंजना संबंधी सारा निरूपण कला के लिए है, कलाकृति के लिए यानी साहित्यिक कृति के लिए नहीं। वे कला एवं कलाकृति को दो अलग-अलग वस्तुओं के रूप में देखते हैं। क्रोचे काव्य (कला) का सौंदर्य के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं मानते। वे मंगल-अमंगल को धर्म और नीति से तथा सौंदर्य को कला क्षेत्र से जोड़ते हैं।

क्रोचे अनुभूति और अभिव्यक्ति में कोई भेद नहीं मानते। इसलिए विषय-वस्तु और शैली को अभिन्न घोषित करते हैं। कहते हैं अनुभूत किया हुआ विषय ही अभिव्यक्त होता है। इसी अभिन्नतावादी दृष्टिकोण के कारण वे कलाकृति को अखंड भी मानते हैं। क्रोचे समग्रवादी सिद्धांत को मानते हैं अर्थात् काव्य या कलाकृति के विभिन्न उपादान–विषयवस्तु, शैली, पद-योजना, भाव-विचार, अलंकार आदि को खंड-खंड करके की जाने वाली मीमांसा को वे कलाकृति की हत्या मानते हैं। वे मानते हैं कि कलाकृति का मूल्यांकन उसकी संपूर्णता में ही किया जाना चाहिए। जिस प्रकार सौंदर्य अखंड है उसका श्रेणी विभाजन नहीं हो सकता, उसी प्रकार कला भी अखंड है। आलोचकों ने क्रोचे के इस अभिन्नतावाद की निंदा की क्योंकि शैलीगत विभिन्नता के कारण ही साहित्य की कई विधाएं हैं तथा एक ही विषय पर कई रचनाएं लिखी जा सकती हैं। क्रोचे कहते हैं–उत्कृष्ट कला के लिए उत्कृष्ट विषय-वस्तु का होना आवश्यक है। जिस जीवन का कला में निरूपण किया जाए वह उत्तम होना चाहिए क्योंकि उत्कृष्टता जीवन के प्रति दृष्टि में होती है। उत्कृष्टता का आधार कल्पनाशक्ति की सहायता से अभिव्यक्ति करने में निहित है। वे कला तत्व तथा रूप में, वस्तु तथा अभिव्यंजना में भेद नहीं मानते।

टिप्पणी

क्रोचे कहते हैं कि बाह्य अभिव्यक्ति–चित्र, मूर्ति, कविता आदि कला नहीं है ये स्मृति की सहायक चीज़ें हैं। इनकी सहायता से कलाकार अपनी सहजानुभूति को पुन: प्रस्तुत कर लेता है। वह इन्हें देखकर पुन: उस मानसिक स्थिति को प्राप्त हो जाता है जिससे उसके मन में सुंदर सहजानुभूतियों का जन्म हुआ था। क्रोचे कहते हैं–"कला का आनंद सफल अभिव्यक्ति से प्राप्त आत्म-मुक्ति का आनंद है। सफल अभिव्यक्ति के क्षण में कलाकार को ऐसा लगता है जैसे वह मुक्त हो गया, उसका भार हट गया और अंतरात्मा हल्का-फुल्का अनुभव करती है और उसे अपूर्व आनंद अनुभव होता है। इस आनंदानुभूति को कला का आनंद कहा जाता है।" क्रोचे कहते हैं–"सफल अभिव्यक्ति में ही सौंदर्य निवास करता है और यदि अभिव्यक्ति सफल नहीं है तो वह अभिव्यक्ति ही नहीं है।" "Beauty is successful expression or better expression and nothing more, because expression when it is not successful is not expression."

3.6.2 आलोचना

क्रोचे के मत पर प्रथम आपत्ति यह है कि वह बाह्य अभिव्यंजना को अनावश्यक मानता है और कलाकार को ऐसी स्वच्छंदता दे देता है जो अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करेगी। यदि बाह्य कलाकृति नहीं होगी तो उसके अच्छे-बुरे का निर्णय कैसे होगा? कलाकार मन में ही सहजानुभूति उत्पन्न होने की झूठी शान धारण कर दंभी हो जाएंगे। दूसरी बात पर आपत्ति उठाई जाती है कि क्रोचे कहते हैं सहजानुभूति वैयक्तिक होती है उसका पुनर्भाव नहीं हो सकता। फिर सहृदय सामाजिक उसका अनुभव, रसास्वादन कैसे करेगा? आलोचक कलाकार की वैयक्तिक और अभूतपूर्व सहजानुभूति वाली अवस्था तक कैसे पहुंचेगा? क्रोचे कहते हैं–"कला का अस्तित्व केवल उस क्षण तक रहता है जब तक कलाकार कलम, कूंची या छैनी नहीं पकड़ता, केवल मानस-प्रक्रिया में रत रहता है। ज्यों ही वह मानस क्षेत्र से निकलकर इन उपकरणों की सहायता से अभिव्यंजित होगा, कला पीछे छूट जाएगी।" जन सामान्य मानता है कि कला भौतिक कलाकृति में निवास करती है वह क्रोचे के इस मत के कारण उलझन में पड़ जाता है।

अभिव्यंजना पर अधिक बल देने के कारण तथा विषय-वस्तु के चुनाव को आवश्यक न मानने के कारण लोगों ने यह समझ लिया कि वे किसी भी आम या खास, हीन, पतित विषय को कला का विषय बना सकते हैं। अत: ऐसा करके वे किसी भी हीन विषय की कला में सफल स्पष्ट अभिव्यंजना के द्वारा स्वयं को कलाकार मानने लगे। क्रोचे का मत है कि–जैसे ही कलाकार मानसिक जगत से हटकर, सहजानुभूति की आंतरिक अभिव्यक्ति के क्षेत्र से हटकर उसे भौतिक रूपाकार देता है वह कलाकार के अधिकारों और स्वतंत्रता से वंचित हो जाता है और उसे जीवन तथा जगत के नीति-बंधनों का पालन करना पड़ता है। अर्थात जब कलाकृति जनता के बीच पहुंचती है तो कलाकार उस पर से अपना अधिकार खो बैठता है।

टिप्पणी

वह जन सामान्य की हो जाती है। आलोचक उसकी निंदा या प्रशंसा के लिए स्वतंत्र होता है। कलाकार को इस वास्तविक जगत के अर्थ, नीति आदि प्रभावित करते हैं तथा उसे हमारे जगत के नीति तथा सदाचार के नियमों का पालन करना पड़ता है। क्रोचे कलाकार को कल्पना लोक में बंद रखने का प्रयास करते हैं। जबकि कलाकार को जीवन के प्रति आस्था और प्रेम का भाव रखना चाहिए।

क्रोचे अभिव्यंजना को एक तात्विक धर्म मानता है। कहता है निवेदन या अभिव्यंजना किसी अनुभव को सुरक्षित रखने या उसे फैलाने की इच्छा से संपन्न होने वाली क्रिया है। वह इस बात पर ध्यान नहीं देता कि कलाकार का काम दूसरों को आनंद देना, शिक्षा देना, लोक कल्याण करना और अपने भावों से अवगत कराना है।

कला के लिए भाषा का माध्यम अनिवार्य है चाहे वह भाषा-शब्दों की हो, रंगों की हो, पत्थर की या संगीत स्वरों की। यह भाषा कलाकार को सामाजिक सहृदय से मिलाती है। उनके बीच तादात्म्य स्थापित होता है और सहृदय सुखानुभूति प्राप्त करता है। जिस कला की भाषा जितनी रमणीय, प्रभावशाली और कलापूर्ण हो वह उतनी ही उत्तम कहलाती है। क्रोचे जीवन के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हैं ओर मस्तिष्क में विचरण करने वाले अप्रत्यक्ष, अस्पष्ट प्रभावों की आंतरिक अभिव्यक्ति को कला कहते हैं। पर ये अस्पष्ट, अप्रत्यक्ष प्रभाव आंतरिक अभिव्यक्ति से पूर्व जीवन से संबद्ध थे या नहीं इसका उत्तर नहीं है। कलाकार का क्षेत्र जीवन है, सृष्टि है। वह इनकी और भावनाओं, संवेगों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका सहज ज्ञान जीवन और उसकी प्रक्रिया से परिचित और प्रभावित होता है। कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी अभिव्यंजना को सुबोध बनाए, उन्हें जन-सामान्य से लेकर सौंदर्य से परिपूर्ण कर जनसामान्य तक पहुंचाए। कला सर्वप्रथम जीवन की अभिव्यंजना है। जीवन के जिस रूप को कलाकार ने स्वयं देखा और अनुभव किया है, जीवन के उसी रूप की अभिव्यंजना कला है।

भारतीय आचार्य कुंतक और क्रोचे दोनों कलावादी हैं। दोनों ने अभिव्यंजना को कला का प्राण माना है। दोनों अभिव्यंजना को अखंड मानते हैं। दोनों काव्य में कल्पना तत्व को प्रमुखता देते हैं। फिर भी वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद में अंतर है क्योंकि एक का प्रवर्तक अलंकारवादी है और दूसरे का दार्शनिक। क्रोचे के अनुसार काव्य की आत्मा सहजानुभूति है। वे आनंद को अभिव्यंजना का सहचर मानते हैं। वक्रोक्तिवाद भारतीय दर्शन ओर संस्कृति के अनुसार रीति को त्याग नहीं सकता जबकि क्रोचे के अभिव्यंजनावाद में नीति-अनीति का प्रश्न ही नहीं उठता।

दर्शन के क्षेत्र में क्रोचे का सिद्धांत 'अभिव्यंजनावाद' भले ही ठीक हो लेकिन काव्य-शास्त्र की दृष्टि से यह कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक आचार्य का नाम बताइए।
14. अभिव्यंजना संबंधी समस्त निरूपण किसके लिए है?
15. अनुभूति और अभिव्यक्ति में कोई भेद न मानने वाले विद्वान का नाम बताइए।
16. क्रोचे ने कलाकार को कहां बंद रखने का प्रयास किया है?

3.7 कॉलरिज का कल्पना सिद्धांत

सुप्रसिद्ध आलोचक तथा महान कवि कॉलरिज (रोमांटिक युग का) सूक्ष्मदर्शी तत्ववेत्ता था तथा अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और आलोचनात्मक प्रतिभा के कारण प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचा। निर्बंधता, फक्कड़पन और निरंतर कल्पना के सागर में गोते लगाने वाले इस कवि की मानसिक उर्वरता अद्‌भुत थी। कॉलरिज दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते थे। अत: उन्होंने अपने काव्य सिद्धांतों की स्थापना तत्व चिंतन के आधार पर की। कॉलरिज की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को नियमों का बंधन स्वीकार नहीं था। उन्होंने वड्‌र्सवर्थ का सहयोगी बनकर 18 वीं शताब्दी के कृत्रिम एवं रूढ़ काव्य-मूल्यों के उन्मूलन एवं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योग दिया। वे पूर्व निर्धारित नियम पालन को अनावश्यक मानते थे तथा मौलिकता और प्रतिभा के पक्षधर थे। उन्होंने लेखकों एवं आलोचना के संबंध में महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए–"प्रत्येक लेखक जो मौलिक और महान है उस पर उसकी मौलिकता एवं महानता के अनुसार यह भार आ जाता है कि वह काव्य में उस रुचि का परिचय दे जिससे उसके काव्य-रस का आस्वादन किया जाए।" इसी प्रकार आलोचना के संबंध में वे कहते हैं "आलोचना का चरम ध्येय लेखक के सिद्धांतों का प्रतिपादन करना अधिक है, दूसरों की कृतियों पर निर्णय देने के लिए नियम बनाना कम।" कॉलरिज ने बहुत कम लिखा है। उनके संबंध में दो विरोधी मत प्रचलित हैं–'एक के अनुसार कॉलरिज की मौलिकता संदिग्ध है क्योंकि वह जर्मन विद्वानों का अत्यंत ऋणी है। और दूसरे के अनुसार उसका महत्व अक्षुण्ण है।' वस्तुत: सौंदर्यशास्त्र के इतिहास में भले ही उसका स्थान महत्वपूर्ण न हो परंतु उसके द्वारा प्रतिपादित काव्यगत सिद्धांतों की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कॉलरिज सभी कलाओं तथा संपूर्ण मानव कृतियों के लिए काव्य शब्द का प्रयोग करता है। किंतु Poesy और Poetry का अंतर बताते हुए कहते हैं कि पोएज़ी समस्त ललित कलाओं के लिए प्रजातीय (Generic) नाम है जबकि पोएट्री शब्द का प्रयोग उन्हीं कृतियों के लिए होना चाहिए जिनका माध्यम शब्द है। वे संगीत को कर्णेंद्रिय का काव्य और चित्रकला को नेत्रेंद्रिय का काव्य कहते हैं। कॉलरिज दर्शन, इतिहास, उपदेश तथा विज्ञान सभी को विशिष्ट कल्पना का प्रतिफल मानते हैं। इन सभी का माध्यम भाषा होने के कारण इनमें समानता है किंतु उद्देश्य भिन्न भिन्न होने के कारण इनमें भेद है। कॉलरिज कहते हैं लक्ष्य दो प्रकार के होते हैं, 1. तात्कालिक, 2. अंतिम। विज्ञान, इतिहास और दर्शन का तात्कालिक लक्ष्य सत्य को व्यक्त करता है जबकि काव्य का तात्कालिक लक्ष्य आनंद देना और अंतिम लक्ष्य सत्य का बोध करना है।

3.7.1 अच्छे कवि के गुण

कॉलरिज प्राय: कवि और कविता के समान गुणों की बात कहकर उन्हें परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार अच्छा कवि प्रतिभासंपन्न होना चाहिए। प्रतिभा और काव्यत्व कवि के अभिन्न गुण हैं। इसके अतिरिक्त कवि थे पद्य-माधुरी, मूर्ति विधान, गहन विचार शक्ति, भावुकता, भावावेग, विवेक, निर्णयशक्ति, कल्पना, मानवता, दार्शनिकता, धार्मिकता, तत्ववेत्ता, इतिहास और प्रकृति का जानकार, विज्ञान की विविध विधाओं का जानकार होना चाहिए। कॉलरिज कहता है–'श्रद्धाहीन कवि पागल होता है। उनका मत है कि कवि को व्यक्तिगत रुचियों को अलग करके वस्तुपरक रहकर तथा निर्वैयक्तिक होकर सृष्टि को समझना व उसका चित्रण करना चाहिए। कवि को तटस्थ रहकर सृष्टि के सौंदर्य में डूबकर उसका वर्णन करना चाहिए। ऐसा करने पर वह अपनी दार्शनिकता, निर्वैयक्तिकता, विवेक एवं चेतना के माध्यम से काव्य में नए तत्व की, नए सौंदर्य की सृष्टि कर सकेगा।

टिप्पणी

टिप्पणी

3.7.2 अच्छी कविता के गुण

कॉलरिज श्रेष्ठ काव्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं 'It is the excitement of emotion for the purpose of immediate pleasure, through the medium of beauty.' अर्थात कविता सौंदर्य के माध्यम से तत्काल आनंद के उद्रेक के लिए भावों को उद्वेलित करती है। कॉलरिज काव्य को विशिष्ट रचना मानते हैं जो आनंद प्रदान करने के उद्देश्य को धारण करती है। कविता में विश्वजनीनता अनिवार्यत: होनी चाहिए तथा बुद्धि एवं हृदय का समन्वय होना चाहिए। कविता में भावों की गहनता तथा विचारों की गंभीरता अनिवार्य है। यही तत्व काव्य को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। सौंदर्य वंह है जो क्षण-क्षण नया होता है अर्थात **'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।'** ऐसा कहा गया है। इसी की ध्वनि कॉलरिज के कथन में सुनाई देती है। वे कहते हैं काव्य में निरंतर भावों की अंतर्धारा का प्रवाह होना चाहिए। ऐसी भावपूर्ण कविता पाठक को मुग्ध कर देती है और वह उसे बार-बार पढ़ना चाहता है। कॉलरिज का मत है कि कवि को काव्य के पूर्ववर्ती नियमों के बंधन से मुक्त होना चाहिए ताकि वह अपनी कल्पनाशक्ति से प्रतिभा और विवेक से नए व सुंदर काव्य की सृष्टि कर सके। कविता में भाव तथा भावों का आवेग आवश्यक है। कविता का उद्देश्य है कि वह कवि के भावों और विचारों को पाठक तक पहुंचाए। काव्य की दो प्रमुख शिल्प विधियों की चर्चा करते हुए कॉलरिज कहते हैं कि आलंकारिक भाषा और छंद को भावावेग ही दीप्ति प्रदान करता है। इसीलिए कवि जब तीव्र भावावेग के क्षणों में काव्य रचना करता है तो उसमें कला का उत्कर्ष आ जाता है। तीव्र भावावेग में भाषा साधारण बोलचाल की भाषा से अधिक गरिमायुक्त एवं संतुलित होती है। भावावेग में कवि वेद्यांतर शून्य-स्थिति को प्राप्त हो जाता है।

कॉलरिज के अनुसार काव्य का आनंद सौंदर्य के द्वारा उत्पन्न होता है। चूंकि आनंद सौंदर्य के बिना किसी प्रयत्न से स्वयं उद्भूत होता है इसलिए वे ही पाठक ऐसे काव्य का रसास्वादन पूर्णत: कर सकते हैं जिनकी वृत्तियां कोमल हैं, जो भावुक हैं, सौंदर्य के पारखी हैं। वह कहते हैं कि कलाकृति या काव्य में एकता तथा सजीव आंगिकता होनी चाहिए। उदाहरण स्वरूप खिड़की के शीशे पर तुषारपात होने पर जिस तरह तुषार का एक-एक कण मिलकर अद्भुत सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। उसी प्रकार काव्य के सभी सुंदर अंगों को परस्पर मिलाकर काव्य को और अधिक अद्भुत सौंदर्य से पूर्ण कर देना चाहिए। ऐसा काव्य ही सच्चा काव्य होगा जिसके सभी भाग परस्पर अनुपात और औचित्य के साथ छंद-विधान कर उद्देश्य की पूर्ति में लगे हों। कविता की प्रत्येक पंक्ति सामंजस्यकारी हो, रमणीय हो ताकि पाठक रुक-रुक कर उसका आनंद ले रसास्वादन करे। जिस तरह सर्प रुक-रुक कर पुन: आगे चलने की शक्ति संचय करता है। काव्य को भी ऐसा ही होना चाहिए। जो काव्य पाठक को सरपट घोड़े की तरह दौड़ाए वह उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता। कविता में यथार्थ और अयथार्थ दोनों तरह की वस्तुएं आ सकती हैं किंतु जब अयथार्थ आए तो उस पर कल्पना का इतना गहरा रंग चढ़ा दिया जाए कि वह यथार्थ प्रतीत हो। यह शक्ति कवि के पास होनी चाहिए।

3.7.3 कल्पना सिद्धांत का स्वरूप

वर्ड्सवर्थ के मुख से उसकी ही एक कविता सुनकर कॉलरिज अत्यंत रोमांचित एवं भावविभोर हो गया। उसकी भावनाएं एवं बुद्धि दोनों चैतन्य हो गईं तथा उसे सौंदर्य और सत्य का साक्षात्कार हुआ। तब कॉलरिज ने विचार किया कि यह सब कवि की प्रतिभा का चमत्कार है कि वह काव्य को इस चरम सीमा तक मर्मस्पर्शी और सुबोध बना सकता है कि वह सीधे पाठक या श्रोता के हृदय को उद्वेलित कर सके। यह शक्ति कवि की कल्पना शक्ति है कि वह काव्य को विशिष्ट बना दे। वर्ड्सवर्थ को यह कल्पनाशक्ति अपने चरम एवं गहन रूप में प्राप्त थी। यह कल्पना ऐसे अर्थों में सार्थक होती है जब वह बुद्धि और हृदय, बाह्य जगत (संसार) एवं अंतर्जगत (आत्मा) में, चेतना में, परिचय और अपरिचय, अन्तर्वेग और व्यवस्था, अवधारणा और भाव का सामंजस्य कराती है। कॉलरिज के अनुसार कल्पना ही प्रतिबोधन (Perception) तथा अवबोधन (understanding) के बीच की उस खाई को पाट सकती है जिसे बुद्धि नहीं पाट सकती। इस कल्पना शक्ति में प्रकृति के सुंदर एवं शाश्वत रूपों को सरलता एवं सरसता के साथ प्रकट करने की सामर्थ्य होती है। जैसे हिंदी कवियत्री महादेवी-मेघ, नदी, दीपक के रूपों में अपनी कल्पना से विचारों को शब्द देती हैं। इसलिए कॉलरिज ने कल्पना को– a unifying creative faculty तथा beauty making power कहकर उसकी अभ्यर्थना की है।

कल्पना के रंग में या कल्पना के आलोक में वस्तु का प्रस्तुतीकरण ही पुन:प्रस्तुतीकरण कहलाता है।

कॉलरिज तत्ववेत्ता होने के कारण दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते थे। उनके काव्य सिद्धांत इसी तत्व चिंतन पर आधारित हैं। वे मन को स्रष्टा का प्रतिबिंब मानते हुए कहते थे कि संसार के पदार्थ ब्रह्म के विषय अथवा विचार हैं और जगत विषयीकृत ब्रह्म है। ब्रह्म और प्रकृति का संयोग कल्पना द्वारा होता है। विश्व ब्रह्म की कला है। मानव चेतना भी विश्व चेतना है। मानव कल्पना प्रकृति के उस क्षेत्र को जिसमें मानव मन का व्यापार है, मानव-मन के समक्ष लाती है। यदि विश्व ब्रह्म का आत्मज्ञान है तो मनुष्य का संसार मनुष्य का आत्मज्ञान है। इस आत्मज्ञान का कारण कल्पना है। इस कल्पना को कॉलरिज ने प्रथम पदस्थ कल्पना कहा है और यह प्रथम पदस्थ कल्पना प्रत्यक्षीकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। विश्व भगवान का प्रत्यक्षीकरण है। मनुष्य कल्पना, ब्रह्म कल्पना का ही प्रतिवाद है। दिव्य प्रेरणा है तथा ईश्वर की सृजन शक्ति की सहोदरा है। ब्रह्म कल्पना और मानव कल्पना दोनों कार्य करती हैं। अंतर यह है कि ब्रह्म कल्पना बड़े पैमाने पर कार्य करती है और मानव कल्पना छोटे पैमाने पर।

निष्कर्ष यह है कि कॉलरिज संपूर्ण सृष्टि को चेतना की अभिव्यक्ति मानते हैं तथा जड़ और चेतन में सामंजस्य स्वीकार करते हैं। जड़ पदार्थ को देखकर कवि के हृदय में भाव उत्पन्न होते हैं और वह काव्य सृजन में रत हो जाता है। कॉलरिज कल्पना के दो प्रकार मानते हैं 1. आद्य या मुख्य या प्राथमिक कल्पना, 2. प्रतिनिधि या विशिष्ट कल्पना। कॉलरिज ब्रह्मवादियों की तरह आत्मा व जगत दोनों को एक ही सत्ता के दो रूप मानता है। पर ब्रह्मवादी आत्मा और जगत के बीच भिन्नता का कारण माया को मानते हैं। वहीं कॉलरिज इसका कारण मुख्य कल्पना को मानते हैं। इसी मुख्य कल्पना के कारण चेतना खंड-खंड रूप में दिखाई देती है। ब्रह्म ने इसी के आश्रय पर सृष्टि का निर्माण किया। यह मुख्य कल्पना व्यक्तियों में भी पाई जाती है। यह मानव-मन में मानसिक विश्व को प्रस्तुत करती है। यह समस्त मानव-ज्ञान की सजीव शक्ति है और संपूर्ण मानव प्रत्यक्षीकरण का

टिप्पणी

टिप्पणी

प्रमुख माध्यम हैं उसी के द्वारा हम विषय एवं विषयी को दो भागों में बांट देते हैं। यही कल्पना चेतना को खंड-खंड करके विषय और विषयी को अलग-अलग मानकर चलती है। हम इंद्रियों के द्वारा वस्तुओं का जो अनुभव करते हैं उसे कल्पना व्यवस्थित करती है। यह सभी बिंबों को क्रमानुसार करके हमारे अव्यवस्थित बोध को ज्ञान में बदल देती है। उदाहरण स्वरूप हम गुलाब को आंखों से देखकर, हाथों से छूकर, जीभ से चखकर और नाक से सूंघकर देखते हैं तो इन अनुभवों को व्यवस्थित करके कल्पना ही हमें बताती है कि यह गुलाब है।

विशिष्ट कल्पना कलाकारों में पाई जाती है। जनसाधारण में नहीं। वह प्राथमिक या आद्य कल्पना शक्ति की प्रतिध्वनि है जिसका मनुष्य सजगता से प्रयोग करता है। इसके द्वारा कलाकार बाह्य संसार का पूर्णत: पुनर्सृजन तथा प्रस्तुतीकरण कर पाता है। यह वही विशिष्ट कल्पना शक्ति है जो विषय और विषयी का समन्वय तथा अनेक रूपों एवं व्यापारों को संबद्ध कर, एकसूत्रता स्थापित कर अखण्ड रूप में प्रस्तुत करती है। प्राथमिक कल्पना सहज रूप से अपना कार्य करती है जबकि विशिष्ट कल्पना का प्रयोग सजग इच्छाशक्ति से किया जाता है।

कलाकार प्रकृति की कोरी नकल नहीं करता, वह आनंद देने वाला भावात्मक पुनर्सृजन करता है जिससे एक अपूर्व सौंदर्य से ओतप्रोत नवीन सृष्टि हमारे सामने आती है जिसमें पूर्व की त्रुटियां एवं कमियों का अभाव रहता है। इस संपूर्णता की सृष्टि करने के लिए वह उदाहरण में से कुछ छोड़ता है और उसमें कुछ नया कल्पना शक्ति से जोड़ता है। जिससे पूर्णत: संतुष्टि प्रदान करने वाली रचना सामने आती है। कॉलरिज के मतानुसार– ''कल्पना वह मानसिक शक्ति है जो विभिन्न तत्वों का एकीकरण कर, समन्वय करती है। विभिन्न पक्षों को एक संश्लिष्ट अन्विति के रूप में ढालती है। जिससे वे पक्ष घुल-मिलकर एकाकार हो जाते हैं। कल्पना का कार्य परस्पर विसंवादी या विरोधी गुणों में सामंजस्य और संतुलन उत्पन्न करना है। वह समान-असमान, सीम-असीम, प्राचीन-नवीन, व्यक्ति-प्रतिनिधि, विचार-बिंब, सामान्य-विशिष्ट, विवेक-आत्मनिग्रह तथा उत्साह और प्रखर भावनाओं में सामंजस्य उत्पन्न करती है।''

कोरे अंधानुकरण को कॉलरिज जीवन की यांत्रिक नकल तथा प्रकृति की चोरी मानते हैं तथा इसे त्याज्य समझते हैं। कलाकार का महत्व भावपूर्ण सृजन करना है यह कार्य कल्पना ही कर सकती है। कल्पना के द्वारा शरीर मस्तिष्क बन जाता है। वह मृत वस्तुओं में प्राणों का संचार करती है। जिस प्रकार स्पंदन, गति और प्राणों के अभाव में सुंदर मोम की पुतलियां हमें आकर्षित नहीं कर पातीं उसी तरह प्रकृति की अनुकृति यांत्रिक जड़ता के कारण कल्पना द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा के अभाव में सहृदय के मन को स्पर्श नहीं कर पाती। कल्पना महत्वपूर्ण, क्षमतावान, शक्तिशाली है तथा कवि का अनिवार्य गुण है।

कल्पना एवं ललित कल्पना

कॉलरिज इनमें अंतर को स्वीकार करते हैं। ललित कल्पना का क्षेत्र अचल और निर्दिष्ट पदार्थ होते हैं। ललित कल्पना पदार्थों का एकत्रीकरण करती है जिनमें न सरसता होती है न मार्मिकता। अन्विति भी नहीं होती। ललित कल्पना का संबंध मस्तिष्क से है वह निर्जीव शक्ति है, जो यांत्रिक होती है। यह स्मरण की एक रीति है। जबकि कल्पना का संबंध आत्मा से है। वह एकीकरण और समंजन करती है। ललित कल्पना से श्रेष्ठ, सजीव एवं सरस मार्मिक रचना अभिव्यक्ति होती है।

पाश्चात्य काव्य सिद्धांत

टिप्पणी

3.7.4 गद्य और काव्य

कॉलरिज का मत है कविता गद्य से श्रेष्ठ होती है और चुने हुए शब्द केवल कविता में ही प्रयुक्त होते हैं। जिन रचनाओं में सत्य की अभिव्यक्ति प्रधान हो वे गद्य के अंतर्गत आएंगी तथा जिनका उद्देश्य आनंद का उद्रेक करना हो वे काव्य कहलाएंगी। कॉलरिज कविता का जन्म तीव्र भावोद्रेक में मानते हैं क्योंकि तीव्र भावोद्रेक ही आलंकारिक भाषा तथा छंद रचना में सहायक होता है।

कॉलरिज कहते हैं, ध्यान और साधारण भावों की प्रफुल्लता को छंद बढ़ा देता है। छंद और कविता अभिन्न हैं। जो बातें छंद में हैं वे कविता में भी होंगी। छंद में उत्कृष्ट वाक्सरणि होती है। अत: कविता की भाषा भी उत्कृष्ट होगी। वे कहते हैं छंद ही कविता का उचित परिच्छेद है। इसके बिना कविता अपूर्ण और सदोष होगी। छंद का प्रयोग करते हुए दो बातें ध्यान देने योग्य होती हैं–

1. छंद आवेग की सहज भाषा से संवलित होना चाहिए,
2. छंदोबद्ध भाषा में उसके तत्व आह्लाद के भावों से संश्लिष्ट होने चाहिए। उसमें भावना और संकल्प, स्वत: स्फूर्त आवेग और स्वैच्छिक उद्देश्य का पूर्ण संयोग होना चाहिए।

छंद सामान्य भावनाओं और मनोयोग को प्रबल और ग्रहणशील बनाते हैं। वह चित्रमयी तथा मूर्तिविधायिनी भाषा के अधिक उपयोग की प्रेरणा देते हैं और ऐसी भाषा के उद्भव के लिए प्रयासरत रहते हैं। वे पाठक का ध्यान आकर्षित कर उसे साधारण जगत से उदात्त भावों के जगत में पहुंचाते हैं। छंद केवल अलंकरण नहीं है। कॉलरिज कहते हैं 'छंद एक प्रकार का खमीर है जो स्वयं में व्यर्थ और अरुचिकर होता है। किंतु यदि उसे उपयुक्त अनुपात में (मादक) द्रव्य के साथ मिला दिया जाए तो वह उसके स्वाद और प्रभाव को बढ़ा देता है। काव्य के सौंदर्य के लिए छंद उसके सहायक होते हैं।'

3.8 वड्र्सवर्थ का भाषा-चिंतन

महाकवि वड्र्सवर्थ मूलत: आलोचक नहीं थे। नवशास्त्रवादी समीक्षकों के प्रहारों के विरुद्ध आत्मरक्षा के लिए उन्होंने आलोचना का हथियार उठाया। आलोचना करना उनका उद्देश्य नहीं था क्योंकि स्वभावत: वे कवि थे। 1798 में वड्र्सवर्थ और कॉलरिज द्वारा प्रकाशित 'लिरिकल बैलेड्स' पर नव्यशास्त्रवादी समीक्षकों ने कठोरतम प्रहार किए। तत्पश्चात वड्र्सवर्थ की आलोचना संबंधी मान्यताएं सामने आईं जिनका पाश्चात्य आलोचना शास्त्र एवं काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 'लिरिकल बैलेड्स' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में उनके काव्यालोचन संबंधी विचार संगृहीत है। इसमें उन्होंने कवि, कविता तथा काव्य-भाषा के संबंध में अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। इस भूमिका में उन्होंने 18 वीं शताब्दी में प्रचलित

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. रोमांटिक युग का सूक्ष्मदर्शी तत्ववेत्ता कौन था?
18. कॉलरिज के अनुसार काव्य का आनंद किससे उत्पन्न होता है?
19. कॉलरिज ने मनुष्य कल्पना को किसका प्रतिवाद बताया?
20. कविता को गद्य से श्रेष्ठ मानने वाले विद्वान का नाम बताइए।

टिप्पणी

काव्य-शैली को अस्वीकार किया है, गद्य-भाषा और छंदोबद्ध रचना की भाषा में कोई अंतर नहीं माना है। कविता की भाषा तथा जनसाधारण की भाषा को एक माना है तथा कविता को भावनाओं का सहज उच्छलन कहा है। ये विचार उनके अंतिम विचार नहीं थे क्योंकि इस भूमिका के बाद के लेखों में उन्होंने अपनी मान्यताओं में पर्याप्त परिवर्तन किए।

वड्र्सवर्थ से पहले दांते ने काव्य को भावनाओं का सहज उच्छलन न मानकर उसे श्रमसाध्य तथा अभ्यास द्वारा संभव माना था। उसने कविता में जो देशभाषा के प्रयोग का परामर्श दिया उस देशभाषा या Vernacular का तात्पर्य जनसाधारण की प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा नहीं था बल्कि उन्होंने स्पष्ट कहा कि ग्राम्य भाषा से बचना चाहिए। दांते के मत में भाषा केवल विचाराभिव्यक्ति का माध्यम है। विचार महत्वपूर्ण है भाषा नहीं। किंतु 18 वीं शताब्दी के अंत तक काव्य में कृत्रिम, आडंबरपूर्ण तथा रूढ़िग्रस्त भाषा शैली का प्रचलन हो गया। वड्र्सवर्थ को यह शैली स्वीकार नहीं थी। उन्होंने 18 वीं शताब्दी की कृत्रिम कलात्मकता तथा सीमित काव्य विधाओं को त्याज्य मानते हुए कवियों के लिए स्वच्छंदता का मार्ग प्रशस्त किया।

3.8.1 काव्यभाषा का सिद्धांत

18 वीं शताब्दी के अंत में ड्राइडन आदि कवियों द्वारा मान्य तथा प्रचलित काव्य-शैली रूढ़ तथा अनुपयोगी मानी जाने लगी। वड्र्सवर्थ ने भी इनकी अनुपयोगिता के संबंध में तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की। जैसे-जैसे उनके काव्य का व्यक्तिवाद और भावात्मकता की ओर विकास होता गया, उन्हें नई शैली का आकर्षण खींचने लगा तथा परंपरागत शैली विकृत, कुरूप, कृत्रिम तथा भावहीन लगने लगी। अपनी शैली के प्रति महानता का भाव भी कवियों के संसार में परंपरागत है। डौन ने अपनी शैली को स्पेंसर की शैली से, ड्राइडन ने अपनी शैली को मेटाफिजिकल कवियों की कृत्रिम शैली से महान माना, उसी तरह वड्र्सवर्थ ने कहा कि उसकी नई शैली अधिक प्राकृतिक तथा स्वाभाविक है।

वड्र्सवर्थ से पूर्व काव्य शैली के निर्धारित नियमों के अनुसार काव्य भाषा की शब्दावली निश्चित थी तथा उसमें से निम्नकोटि के साधारण शब्दों को बहिष्कृत किया गया था। वड्र्सवर्थ विशिष्ट-काव्यगत युक्तियों जैसे मानवीकरण, वक्रोक्ति तथा व्याकरणगत स्वच्छंदताओं के विरुद्ध थे। उन्हें काव्य रचना में विपर्यय तथा वैषम्य नहीं भाता था। वे वस्तुपरिगणन-प्रणाली, अनावश्यक रूप से ठूंसी गई पौराणिक कथाएं, भावाभास, विलक्षणता, अस्पष्टता, शाब्दिक चमत्कार, दूरारूढ़ कल्पना, अतिशयोक्ति, कृत्रिमता के विरोधी थे इसलिए उन्होंने पोप के चांदनी दृश्य और ड्राइडन के रात्रि वर्णन की आलोचना की। वड्र्सवर्थ उपरोक्त त्रुटियों या दोषों को तभी स्वीकार्य मानते थे जब इनकी उपस्थिति के बावजूद कवि ने काव्य में सच्चे भावों की अंतर्धारा प्रवाहित की हो और इनका प्रयोग केवल युग की आवश्यकता के लिए किया हो। रचना में तीव्र अभिव्यक्ति एवं गांभीर्य की उपस्थिति अनिवार्य है। किंतु वड्र्सवर्थ ने काव्य-शैली के संबंध में जो आपत्तियां दर्ज कीं वे भाषा की शिथिलता के कारण आलोचना का विषय बनीं। वड्र्सवर्थ स्वयं अपने काव्य को इन त्रुटियों से नहीं बचा सके उनके काव्य में कहीं-न-कहीं न्यूनाधिक मात्रा में भावाभास, वक्रोक्ति, उलझी हुई भाषा, पुस्तकीय बह्वक्षर आदि का प्रयोग मिलता है। वे वास्तविक, जीवंत तथा कृत्रिम रूपकों में भेद स्पष्ट नहीं कर सके।

टिप्पणी

तत्कालीन अलंकृत भाषा के यांत्रिक अनुकरण को दूर करने के लिए उन्होंने भाषा की सरलता पर बल दिया। वड्र्सवर्थ का मत है कि "सरल और ग्रामीण जीवन से यदि विषय चुने जाएंगे तो भाषा स्वयं सरल हो जाएगी।" वड्र्सवर्थ ने काव्य-भाषा के संबंध में लिखा कि-"वह जनसाधारण की भाषा हो और दूसरी बात यह कि छंदबद्ध रचना तथा गद्य की भाषा में न तो कोई तात्विक अंतर होता है न हो सकता है।" इस स्थापना के लिए उन्होंने तर्क प्रस्तुत किए कि गद्य की भाषा और कविता की भाषा दोनों की अभिव्यंजना करने वाली इंद्रियां तथा दोनों को ग्रहण करने वाली इंद्रियां एक ही हैं। इनके परिच्छेद एक ही तत्व से बने होते हैं तथा इनकी राग-रुचि भी परस्पर समान होती है। यहां जनसाधारण की भाषा के प्रयोग का तात्पर्य ग्राम्ये भाषा से नहीं था। उन्होंने अपने मतों को परिष्कृत और परिवर्तित कर अपनी बात स्पष्ट की कि ग्राम्य भाषा यानी जनसाधारण की भाषा को परिष्कृत और परिवर्धित करके काव्य में प्रयोग करना चाहिए। वे कहते हैं भाषा selection of the real language of men होनी चाहिए अर्थात मनुष्यों की वास्तविक भाषा में से चुनाव करना चाहिए तो selection शब्द स्पष्ट कर देता है कि ग्राम्य भाषा को ज्यों का त्यों व्यवहार में न लाया जाए। वे कहते हैं-अभिव्यक्ति सरल, सीधी और आडंबरहीन होनी चाहिए जो पाठक के हृदय में अरुचि और वितृष्णा पैदा न करे। इसीलिए वे भाषा के चुनाव की बात कहते हैं ताकि इस विधि से कवि तुच्छता, सामान्यता तथा ग्राम्यत्व दोष से बच सकें भाषा सुगम तथा आडंबरहीन हो, प्राकृतिक तथा सार्वभौम हो। हृदय के तीव्र भावावेग को व्यंक्त करने की सामर्थ्य रखती हो।

वड्र्सवर्थ का भाषा सिद्धांत काव्य सिद्धांतों से घनिष्ठता रखता है। वे काव्य को भावावेग का उच्छलन मानते हैं और भावों के उच्छलन के समय भाषा हृदय से निकलती है जबकि चिंतन-मनन के बाद की भाषा गढ़ी हुई होती है। लेकिन जिस तरह चिंतन के पश्चात कवि का मनोमस्तिष्क परिष्कृत, उसका सहज भावावेग उच्च कोटि का, प्राणवान तथा ऊर्जस्वित हो जाता है। उसी तरह सच्चाई से किया गया विवेकपूर्ण चुनाव भाषा को गरिमायुक्त, सजीव, जीवंत बना देता है। वड्र्सवर्थ भावोच्छलन के पक्ष में है किंतु उन्हें किसी विवेकहीन व्यक्ति का भावोच्छलन अभीष्ट नहीं है। वे सतर्क एवं विचारवान व्यक्ति के भावोच्छलन को पसंद करते हैं। वे कहते हैं, 'Poems to which any value can be attached were never produced on any variety of subject but by a man who, being possessed of more than usual organic sensibility, had also thought long and deeply.' यहां वड्र्सवर्थ का कॉलरिज के विचारों से साम्य है क्योंकि वह भी कवि को विवेकी प्राणी मानते हुए चिंतन पर बल देता है। वड्र्सवर्थ का मानना है कि "भावों की तीव्रता या तीव्र भावोच्छलन के समय जो अलंकारमयता काव्य-भाषा में आ जाती है वह स्वाभाविक होती है कृत्रिम नहीं। अत: उसका स्वागत होना चाहिए। उसे ग्रहण करना चाहिए। वे तीव्र भावावेग के साथ रूपक का संबंध जोड़ते उसे हुए स्वीकरणीय बताते हैं।"

वड्र्सवर्थ की दृष्टि में सच्ची भाषा वह है जो मनुष्य भावावेग के क्षणों में बोलता है, कवि जितना ऐसी भाषा के निकट पहुंचेगा उसकी भाषा-शैली उतनी ही सच्ची मानी जाएगी। "The language of the poets falls shorts of that which is uttered by men in real life, under the actual pressure of those passions."

निष्कर्ष यह है कि वड्र्सवर्थ तीव्र भावावेग के क्षणों में लिखी गई कविता को ही महान मानते हैं जिसमें तीव्र भावावेग के कारण ही उदात्त रूपक-शैली का प्रयोग किया गया हो। वे

टिप्पणी

भाषा की सरलता और साधारणता पर बल देते हैं। वड्र्सवर्थ के भाषा-सिद्धांत पर दृष्टिपात करें तो लगता है कि वे प्रकृतिवादी हैं। वे ग्राम्य गीतों तथा ग्राम्य भाषा का अनुकरण करने की बात कहते हैं तथा कलावाद और कृत्रिमता का विरोध करते हैं पर जब उनके सिद्धांतों पर सूक्ष्म गहन दृष्टि से चिंतन-मनन किया जाए तो मालूम होता है कि वे स्पैंसर, मिल्टन, चौसर तथा शैक्सपियर की कला को भी अपने प्रकृतिवाद में समन्वित कर लेते हैं। जिसे आरंभ में उन्होंने सामान्य भाषा कहा था। अंत में उनमें महान कवियों मिल्टन, शेक्सपीयर की उदात्त भाषा भी आ गई।

छंद

वड्र्सवर्थ कविता को छंदमयी मानते हैं। उनका मत है कि छंद के कारण ही कवि को एक विशेष प्रकार की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। कहते हैं–छंद मनमाना न होकर उपयुक्त, नियमित और एकविध होना चाहिए, उसके नियम, नियत तथा निश्चित होने चाहिए। वे छंद को कविता के लिए अनिवार्य नहीं मानते पर उसकी महत्ता, शक्ति एवं प्रभाव से परिचित हैं। वे कहते हैं करुण दशा तथा भावांदोलन का जितना सफल चित्रण छंदमयी रचना में हो सकता है उतना गद्य में नहीं क्योंकि छंद विषय में संतुलित समन्वय बनाकर आनंद प्रदान करता है। छंद के संबंध में वड्र्सवर्थ कहते हैं– "सामंजस्यपूर्ण छंदोबद्ध भाषा का संगीत, कठिनाई पर विजय पा लेने की भावना, इसी या इसी के सदृश रचना वाले छंद अथवा लय की कृतियों से पहले कभी प्राप्त आनंद से अलक्ष्य संबंध-संसर्ग, वास्तविक जीवन की भाषा के अत्यंत सदृश किंतु छंद के कारण उससे अत्यंत भिन्न होने का बार-बार होने वाला भाषा विषयक अस्पष्ट बोध–ये सब मिलकर अनजाने ही एक संश्लिष्ट हर्ष-भावना को जन्म देते हैं।" वड्र्सवर्थ छंद को अनिवार्य न मानते हुए भी उसे कविता का एक गुण स्वीकार करते हैं।

3.8.2 काव्य भाषा सिद्धांत पर आपत्तियां

वड्र्सवर्थ की भाषा विषयक एवं छंद विषयक मान्यताओं पर अनेक विद्वानों ने आपत्ति दर्ज की। 'लिरिकल बैलेड्स' के उनके साथी लेखक कॉलरिज ने भी उनकी मान्यताओं का खंडन किया। वड्र्सवर्थ की यह मान्यता कि काव्य की भाषा और गद्य की भाषा में कोई तात्विक अंतर नहीं होता को वे अमान्य ठहराते हैं तथा कहते हैं कि–

1. वड्र्सवर्थ का भाषा संबंधी नियम काव्य के कुछ विशिष्ट वर्गों पर ही लागू हो सकता है।
2. यह नियम हानिकारक न भी हो तो भी निरर्थक है। अत: इसके पालन की आवश्यकता नहीं है। वे गद्य-पद्य की भाषा में अंतर मानते हैं और यह अंतर छंद के कारण मानते हैं।
3. वे (कॉलरिज) मानते हैं कि मानवीय भाषा वही श्रेष्ठ हो सकती है जो मस्तिष्क में होने वाली क्रियाओं के बिंब द्वारा ग्रहण की जाती है। अर्थात वे बोलचाल की सामान्य भाषा को काव्य में प्रयोग करने के पक्षधर नहीं है। कॉलरिज को वड्र्सवर्थ के तमस शब्द पर आपत्ति है (A selection of the real language), क्योंकि यह शब्द भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न अर्थ देगा।
4. कॉलरिज काव्य में छंद को अनिवार्य मानते हैं वड्र्सवर्थ नहीं। सारांशत: यह कहा जा सकता है कि वड्र्सवर्थ ने नया काव्य भाषा सिद्धांत प्रस्तुत किया। काव्य को प्रकृति का अनुकरण मानते हुए भी उसे नया अर्थ प्रदान किया।

टिप्पणी

वे 18 वीं सदी के आचार्यों की तरह भावावेग में कविता की उत्पत्ति मानते हुए भी उसमें यह नया चिंतन जोड़ देते हैं कि वह भावावेग शांतिपूर्ण चिंतन के क्षणों का फल हो। वे कल्पना शक्ति को महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं कि उसी के द्वारा कवि ब्रह्मांड की एकता का अनुभव करता है। उन्होंने काव्य में बहिरंग की अपेक्षा अंतरंग की महत्ता को प्रतिपादित किया तथा शैली की परिशुद्धता और अलंकृति के स्थान पर अन्त:स्फूर्ति और सहज भावोच्छलन को महत्व देकर रोमानी आलोचना का सूत्रपात किया। वे काव्य में भावों को महत्व देते हैं तथा 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की प्रतिष्ठा पर बल देते हैं।

3.8.3 काव्य गुण संबंधी विचार

वड्र्सवर्थ ने भावनाओं के सहज उच्छलन तथा विराट् संवेदन को काव्य के आवश्यक गुण के रूप में स्वीकार किया है। वे कहते हैं–"काव्य के द्वारा पाठक का मस्तिष्क आवश्यक रूप से कुछ अंशों में प्रबुद्ध होना चाहिए और उसके भाव सशक्त और शुद्ध बनाए जाने चाहिए। भावना ही कार्य तथा स्थिति को महत्वपूर्ण बनाती है न कि कार्य। स्थिति से भावना को महत्व मिलता है। यही कारण है कि वे परियों, देवों की कथाओं की जगह किसानों, ग्राम्य बालाओं के चित्रण को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। क्योंकि इससे हृदय के मूल भावों को परिपक्व होने के लिए उर्वर भूमि प्राप्त होती है। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी —"All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotion recollected in tranquility." अर्थात "कविता मानव मन की बलवती भावनाओं का सहज उच्छलन है तथा उसका उद्भव शान्त अवस्था में भाव के स्मरण से होता है।" वड्र्सवर्थ मानते हैं कि सत्काव्य की रचना में सहज भावावेग के पूर्व कवि की वृत्तियां सत् हो चुकी होती हैं। प्रकृति का रम्य वातावरण कवि की भावनाओं को व्यापक, वृत्तियों को तीव्र तथा मानस को द्रवित करने में सहायक होता है। कवि आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होकर सत्काव्य की रचना करता है। उच्च काव्य में निश्छलता को आवश्यक मानते हैं।

कल्पना संबंधी विचार

वड्र्सवर्थ कल्पना के अंतर्गत पारदर्शी अंतर्दृष्टि, मस्तिष्क की विशदता और सर्वोत्तम कोटि की बौद्धिकता और तर्कशीलता को लेते हैं। उनका विचार है कि उच्चकोटि की प्रतिभाएं कल्पना के बल पर प्रकृति की प्रतिकृति अंकित कर सकती हैं। वड्र्सवर्थ तथा कॉलरिज फैंटसी तथा कल्पना के संबंध में एकमत होते हुए कहते हैं फैंटसी का संबंध स्थिर तथा निश्चित वस्तुओं से है, जबकि कल्पना का संबंध परिवर्तनशील अनिश्चित तथा सुघट्य वस्तुओं से है। उदाहरण के लिए यदि कोई कवि सायंकालीन ओस-बिंदुओं को आकाश के आंसू कहे तो उसे फैंटसी समझना चाहिए और यदि मिल्टन के समान कोई कवि आदम के पूर्ण पतन पर आकाश को शोकपूर्ण अश्रु बहाते चित्रित करे तो उसे कल्पना का कार्य समझना चाहिए। कल्पना का महत्वपूर्ण तत्व है अंतर्दृष्टि। वड्र्सवर्थ ने इसका उल्लेख कम किया है इसलिए हम उनके कल्पना संबंधी चिंतन को गहन नहीं कह सकते।

टिप्पणी

काव्य प्रयोजन

वड्र्सवर्थ के अनुसार काव्य का प्रयोजन है कि वह पाठकों के हृदय पर सत्प्रभाव डाले, ज्ञानवर्धन करे, मानसिक-नैतिक स्वास्थ्य व सुख के लिए उपयोगी हो। पाठकों की भावनाओं को परिष्कृत करे। भावनाओं को संतुलित, शुद्ध, विवेकपूर्ण, स्थायी तथा प्रकृति की तरह सरल, निश्छल और उदार बनाए ताकि वे जड़चेतन के प्रति करुणार्द्र हो सकें। वे जड़ता और उदासीनता का त्याग कर चैतन्य हो सकें। प्रकृति के रहस्य को समझ सकें।

वड्र्सवर्थ ने पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के लिए चिंतन का नया मार्ग प्रशस्त किया। अतः उनकी देन की अवहेलना नहीं की जा सकती।

3.9 आई. ए. रिचड्र्स का मूल्य-सिद्धांत एवं काव्य भाषा

यूरोपीय काव्यशास्त्री रिचड्र्स मूलतः मनोवैज्ञानिक हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य में आने के कारण उनके काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर मनोविज्ञान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे आलोचक के लिए मनोविज्ञान के अध्ययन को आवश्यक मानते हुए कहते हैं कि मानव की मानसिक प्रक्रियाओं एवं साहित्य के बीच गहन संबंध है। इस संबंध को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आलोचना को नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान की। काव्य का प्रयोजन बताते हुए वे 'संवेगों के संतुलन' का सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं।

3.9.1 संवेगों का संतुलन

रिचर्ड्स के अनुसार ''कविता का मूल्य उसकी मन को प्रभावित करने की क्षमता पर निर्भर है'' अर्थात जो कविता मन को जितना अधिक प्रभावित कर सकती है वह उतनी ही मूल्यवान होगी। Arts are the supreme form of the communicative activity. जिस कविता में communication power जितनी अधिक होगी अर्थात अभिव्यंजना की शक्ति, अभिव्यक्त करने की क्षमता, अपना अर्थ संप्रेषित करने की क्षमता जितनी अधिक होगी वह उतनी ही प्रभावशाली होगी तथा उत्कृष्ट कहलाएगी। रिचर्ड्स कहते हैं कि यदि हम नाड़ी या शिरा (nerve) विषयक व्यवस्था को समझ लें तो मन को भलीभांति समझ पाएंगे। क्योंकि मन शिरा या नाड़ी विषयक व्यवस्था या उसकी आंशिक क्रियाशीलता ही मन है। इसलिए जो कविता के अनुकूल या शिरा विषयक व्यवस्था के उपयुक्त होगी वह कल्याणकारी, मंगलमयी होगी। कविता का मूल्य वैज्ञानिक धरातल पर सूक्ष्म अध्ययन करके जानना होगा, इसलिए शिरा विषयक अध्ययन आवश्यक है।

रिचर्ड्स कहते हैं ''मन के विभिन्न आवेगों के कारण उसका संतुलन भंग हो जाता है। मन में संतुलन स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि वे सारे आवेग व्यवस्थित और एकस्वर हो जाएं। मनुष्य के जीवन में ऐसी संतुलन-असंतुलन की स्थितियां उत्पन्न होती रहती हैं। कविता का प्रयोजन यही है कि वह मन के आवेगों में संगति और संतुलन स्थापित कर एक-स्वर अवस्था उत्पन्न करे। आवेगों को ऐसा क्रम दे कि वे मन को अथवा शिरा विषयक व्यवस्था (नाड़ी संस्थान) को आराम पहुंचाए तथा संतुलन की स्थिति उत्पन्न करे। उत्कृष्ट कविता का प्रभाव आत्म संपादन होता है। अर्थात स्वयं को शांत, व्यवस्थित

'अपनी प्रगति जांचिए'

21. काव्य को भावावेग का उच्छलन किस विद्वान ने माना?
22. वड्र्सवर्थ के भाषा-सिद्धांत पर दृष्टिपात करने पर वे किस विचारधारा के पोषक दिखाई देते हैं?
23. गद्य और पद्य की भाषा में तात्विक अंतर न मानने वाले विद्वान का नाम बताइए।
24. वड्र्सवर्थ के अनुसार कवि किसके बल पर ब्रह्मांड की एकता का अनुभव करता है?

टिप्पणी

करना। यही आवेगों के संतुलन का सिद्धांत है। आगे इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं ''भाव को उत्पन्न कर देना ही साहित्य का मूल्य नहीं है। किसी भी अनुभव के द्वारा जो प्रवृत्तियां उत्पन्न की जाती हैं, वे महत्वपूर्ण हैं।'' वे कहते हैं ''कला का प्रयोजन सुखानुभूति नहीं है। कला सुख के लिए नहीं अभिव्यक्ति के लिए है। कलाकार को अपनी सफल अभिव्यक्ति का अनुभव ही सुख प्रदान करता है कि उसने अपनी बात पूरी तरह और ठीक-ठीक कह दी। साहित्य का महत्व इस बात में है कि वह मानवीय संवेदनाओं को जाग्रत करे, मानवीय अनुभूतियों के क्षेत्र को व्यापक बनाए तथा मनुष्यों को परस्पर सहयोग के लिए प्रेरित करे। वह आत्मकेंद्रित होने के भावों को दूर कर सकें। रिचर्ड्स कहते हैं ''कलात्मक संतुलन की अवस्था मन की शून्यावस्था से भिन्न होती है तथा उत्तेजना पूर्ण अवस्था से अलग होती है। साहित्य का प्रयोजन यह होना चाहिए कि मन में संतुलन के साथ बाह्य गतिविधियों के लिए तत्परता भी हो।''

3.9.2 साहित्य और विज्ञान में भेद

रिचर्ड्स कहते हैं कि जब हम कहते हैं कि आग के ताप से वायु हल्की होकर ऊपर की ओर उठती है तो यहां हम दो सच्ची वस्तुओं के सच्चे संबंध की बात कहते हैं। यह वैज्ञानिक कथन है। लेकिन ऐसा कथन, जो मानव के भावों और अंतर्वेगों को जाग्रत करे तो वह साहित्यिक कथन होगा। रिचर्ड्स के अनुसार मनुष्य के मानसिक अनुभवों के दो स्रोत हैं–पहला, बाह्य जगत्। इसका संबंध विज्ञान से है जिसके निर्देशों का आधार वास्तविक होता है तथा जिसे समझने के लिए न्यायात्मक बुद्धि की आवश्यकता होती है। दूसरा स्रोत-शारीरिक अवस्थाएं–जिनका संबंध साहित्य से है तथा जिसके निर्देशों का मूल्य उसके भावों और अंतर्वेगों को जाग्रत करने की क्षमता से आंका जाता है। कलाकार के निर्देश और तर्क अंतर्वेगीय होते हैं। अंतर्वेग मन की भावनात्मक वृत्ति है। साहित्यिक कृति को समझने के लिए कल्पना की आवश्यकता होती है। रिचर्ड्स सत्य का संबंध विचार से, शिव का संबंध इच्छा से मानते हैं किंतु सुंदर का संबंध भाव से नहीं मानते। वे कहते हैं सौंदर्यगत भाव यानी ऐस्थैटिक अनुभव के विशिष्ट गुण माने जाने वाले तत्व उदासीनता, वियोग, फासला, अवैयक्तिकता और आंतरिक व्यापकता, गुण न होकर अभिव्यक्ति (निवेदन) की दशा या उसके प्रभाव की विशेषताएं हैं। निवेदन या अभिव्यक्ति, कला का तात्विक धर्म है। वही ऐस्थैटिक अनुभव ठीक है जो दूसरों के प्रति निवेदन में सफल है। अर्थात वही सौंदर्यानुभूति सफल है जो सफलतापूर्वक अभिव्यक्त हो सके।

कल्पना

रिचर्ड्स कॉलरिज के बड़े समर्थक हैं। उन्होंने कल्पना के छह भेद किए हैं–

1. हम उसके द्वारा उन वस्तुओं की प्रतिमा का निर्माण करते हैं जो हमें नेत्रों से स्पष्ट दिखाई देती है,
2. कल्पना अलंकारिक भाषा से संबद्ध है यानी कवि भावाभिव्यक्ति में रूपक, श्लेष आदि का प्रयोग करता है जिसमें कल्पना सहायक बनती है,
3. कल्पनाशील साहित्यकार दूसरे के मनोवेगों या चित्त की अवस्था का सटीक और सहानुभूतिपूर्ण वर्णन करता है,

टिप्पणी

4. कल्पना युक्ति कौशल की द्योतक है,
5. वैज्ञानिक कल्पना,
6. वह ऐसी मायिक और संयोगिक शक्ति है जो विपरीत और विस्वर गुणों को संतुलित कर देती है। रिचर्ड्स इसी छठे भेद को सर्वोच्च मानता है।

व्याख्याता का कार्य

व्याख्याता को कृतिकार की प्रतिभा में पूर्णतः लीन होकर उसके भावों को अनुभव कर पूर्ण संवेदनशीलता के साथ उसकी कृति का पुनरुत्थान करना चाहिए फिर तार्किक बुद्धि से उसे अभिव्यक्त करना चाहिए। वह कृति के भावों में डूबकर आशय को समझे उसकी ध्वनि को आत्मसात करे और उद्देश्य को समझकर उसे अभिव्यक्ति दे। व्याख्याकार की प्रवृति की संवदेनशीलता ही उसकी ग्रहणशीलता में सहायक बनती है। इस मार्ग में कई घातक तत्व हैं जो ग्रहणशीलता में बाधक बनते हैं। असंगत स्मृतियां, सन्नद्ध प्रतिक्रियाएं, अतिभावुकता तथा निरोध। इसके अतिरिक्त किसी सिद्धांत के प्रति या धर्म के प्रति हमारी आसक्ति, अंधआस्था, रचनाकौशल सम्बंधी पूर्वकल्पना तथा हमारी आलोचनात्मक पूर्व धारणाएं भी अर्थग्रहण में बाधक बनती हैं। व्याख्याता को इन बाधाओं से बचना चाहिए तथा स्वयंपूर्ण व्यक्तित्व वाला, निर्लिप्त, ईमानदार, विद्वान, कर्मठ तथा आत्मसंपूर्ण होना चाहिए।

रिचर्ड्स रूढ़ नैतिकता के स्थान पर प्रकृतिवाद-विषयक नैतिकता के पक्ष में हैं। वे कहते हैं कि कला मूल्यवान अनुभव प्रदान करती है। कलाकार की अनुभूतियों में ऐसे आवेगों का संतुलन दिखाई देता है जो सामान्य मनुष्यों में अधिकतर अस्त-व्यस्त तथा द्वंद्व से घिरे होते हैं। अतः कला की उपयोगिता और सफलता, सार्थकता, सिद्धि इसी बात में है कि वह आवेगों का संगठन करे। उसमें संतुलन स्थापित करे। ऐसी परिस्थितियां निर्मित करे जो नकारात्मकता, द्वंद्व, बुभुक्षा, विरोध का परिहार कर सकारात्मक, संतुलित और शांत जीवन की ओर प्रेरित करें। रिचर्ड्स मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कलाकार के लिए नैतिकता को स्वाभाविक मानते हैं।

रिचर्ड्स 'कला कला के लिए' सिद्धांत का विरोधी है। वे काव्य में साधारणीकरण को आवश्यक मानते हैं। वह कहता है 'जो काव्यानुभूति को संसार से अलग देखता है उसमें असंतुलन, संकीर्णता और एकांगिता आ जाती है। अतः काव्यानुभूति संसार से पृथक की चीज नहीं है यह माना जाए तभी मन में आवेगों का संतुलन होगा, दृष्टि व्यापक होगी तथा विश्वजनीनता के भाव उत्पन्न होंगे। वे नैतिकता को मनोवैज्ञानिक मानववादी दृष्टि से निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार अच्छा (Good) वही है जो मूल्यवान हो और मूल्यवान वह है जो मन में संगतिपूर्ण संतुलन स्थापित करे। उन्होंने समीक्षा के परंपरागत मतों (धार्मिक, नैतिक, सौंदर्यशास्त्रीय) का विरोध करते हुए शुद्ध मनोवैज्ञानिक मत प्रस्तुत किए। उनका मनोवैज्ञानिक, आदर्शवादी, मानववादी दृष्टिकोण पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण देन है जो प्रेरक भी है और पूरक भी।'

3.9.3 रिचर्ड्स की काव्य-भाषा

रिचर्ड्स ने काव्य-भाषा के दो रूप माने हैं-(क) वैनिक (ख) रागात्मक।

वैज्ञानिक भाषा में निरूपण या निर्देशन अभिमत होता है, जबकि रागात्मक भाषा में भाव का उद्बोधन। एक में भाषा सीधी, सरल और सपाट होती है तथा दूसरी में रमणीयता-संपन्न।

टिप्पणी

भारतीय आचार्य भामह ने भी भाषा के दो भेद किये हैं, जो रिचर्ड्स से मिलते-जुलते हैं। उनके अनुसार वैज्ञानिक भाषा 'वार्ता' है और रागात्मक भाषा 'वक्रता'।

इन्हीं को क्रमशः स्वभावोक्ति प्रधान तथा वक्रोक्ति प्रधान कहा जा सकता है। प्रश्न उठता है कि भाषा के भावोद्बोधक प्रयोग की क्या विशेषताएं हैं? किन तत्वों के प्रयोग द्वारा काव्य भाषा भाव जगाने में समर्थ होती है। इस संदर्भ में रिचर्ड्स ने भाषा के विविध तत्वों का विवेचन करते हुए काव्य-भाषा में अर्थ के प्रमुख तीन प्रकार होते हैं–

1. **मुख्यार्थ या वस्तु बोध–** वस्तु-स्थिति की परिचायिका शब्द-शक्ति।
2. **वचन-भंगी या ध्वनि–** सहृदयता या श्रोता के प्रति लेखक की चेष्टा या मनोभाव।
3. **उद्देश्य–** कलाकार का अभिप्राय जो उसके अनुभव आदि की समग्रता को विशिष्ट बनाता है।

रिचर्ड्स के अनुसार श्रेष्ठ काव्य-भाषा में इन सब तत्वों की सहज योजना रहती है, किंतु प्रकरण के अनुसार तीनों की मात्रा में अंतर हुआ करता है। जैसे विज्ञान में मुख्यार्थ प्रधान होता है, किंतु काव्य में भावना की प्रधानता होती है। जहां भावना की प्रमुखता होगी, वहां भाषा स्वभावतः रागात्मक हो जाएगी।

मूल्यांकन– रिचर्ड्स के विचार मौलिक और चमत्कारपूर्ण हैं। उन्होंने पहली बार अंग्रेजी साहित्य में व्यापक और व्यवस्थित सौंदर्यशास्त्र के निर्माण का श्लाघनीय प्रयास किया है। उन्होंने आलोचना का एक पूर्ण और स्वतंत्र शास्त्र प्रस्तुत किया। इसके लिए उन्होंने मनोविज्ञान को अपनी आलोचना पद्धति का आधार बनाया है, साथ ही मानव-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान जैसे नव विकसित विज्ञानों का भी उपयोग किया है।

रिचर्ड्स के मूल्य सिद्धांत के केंद्र में व्यक्ति है, समाज नहीं। क्योंकि मनोविज्ञान की जिन शाखाओं पर उनकी आलोचना पद्धति आश्रित है, वे व्यक्ति मूलक हैं। इसलिए अपनी समग्र मीमांसा के मूल में चाहे वह मूल्य की मीमांसा हो या नैतिकता की, व्यक्ति को ही रखा है। उन्होंने आर्नल्ड की तरह समाज और संस्कृति की बात कभी-कभी उठाई है, परंतु उसका पल्लवन नहीं किया। मूल्य और संप्रेषण रिचर्ड्स की आलोचना के आधार स्तंभ हैं। मूल्य का संबंध आवेगों की संतुष्टि है और संप्रेषण का संबंध भाषा से है। इसी कारण उनकी आलोचना-पद्धति मनोवैज्ञानिक या अर्थवैज्ञानिक कही जाती है।

रिचर्ड्स काव्य के प्रयोजन में आनंद को स्थान नहीं देते, अपितु उसके स्थान पर काव्य का एकमात्र प्रयोजन आवेगों की संतुष्टि के द्वारा 'संतुलित विश्रांति' की उपलब्धि मानते हैं।

रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धांतों पर मूलतः अरस्तू, अर्नाल्ड, जार्ज सांतायना और फ्रायड आदि का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। रिचर्ड्स में विषयांतर, विरोधाभास, स्वल्पता, अनावश्यक शुष्कता आदि त्रुटियां लक्षित होती हैं। फिर भी अंग्रेजी भाषा जगत में उनका बहुत मान और प्रभाव रहा है। तो भी, इलियट की अपेक्षा रिचर्ड्स का चिंतन अधिक वैज्ञानिक, क्रमबद्ध और पूर्ण है। हिंदी में शुक्ल जी ने भी रिचर्ड्स की चर्चा की है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. काव्य को 'संवेगों का संतुलन' बताने वाले विद्वान का नाम बताइए।
26. रिचर्ड्स के अनुसार काव्य का क्या प्रयोजन होता है?
27. रिचर्ड्स सत्य का संबंध किससे मानते हैं?
28. रिचर्ड्स ने समीक्षा पारंपरिक धार्मिक, नैतिक और सौंदर्य शास्त्रीय मतों का विरोध करते हुए समीक्षा की कौन-सी पद्धति प्रस्तुत की?

टिप्पणी

3.10 टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत

थॉमस स्टीयर्न्स इलियट का जन्म अमेरिका में हुआ। आधुनिक पाश्चात्य साहित्यकारों में इनका विशिष्ट स्थान है। इलियट बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। वे एक साथ उच्चकोटि के नाटककार, युग-कवि, मूर्धन्य समीक्षक, पत्रकार, साहित्य सिद्धांतकार तथा संपादक रहे। इलियट के पांच कविता संग्रह व छह नाटक हैं तथा उनके भाषणों एवं निबंधों के संग्रह उनकी समालोचना कृतियों के रूप में विख्यात है जो उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। इलियट स्वाध्याय के धनी थे। उन्होंने पूर्ववर्तियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का गहन अध्ययन किया और उन पर लेख लिखे जो उनके साहित्य के प्रति अनुराग को दर्शाते हैं। उन्होंने दान्ते, शेक्सपीयर, मिल्टन, कॉलरिज, वड्र्सवर्थ आदि पर लेख लिखे।

पाश्चात्य साहित्य पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि वहां महान कवि ही महान आलोचक हुए हैं। इलियट तो इसी बात पर विश्वास करते थे कि कवि आलोचक ही महत्वपूर्ण आलोचना कर सकता है। शायद यही कारण है कि उनकी कविताओं में उनकी आलोचना ही प्रतिबिंबित होती है।

बीसवीं सदी के आरंभ से ही रोमानी एवं मानवतावादी अवधारणाओं का विरोध आरंभ हो गया था। इलियट भी इससे सहमत थे तथा स्वच्छंदतावाद के विरोध में खड़े थे। इंग्लैंड में ह्यूम ने स्वच्छंदतावाद और मानववाद के विरोध में, कला तथा साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में क्लासिसिज्म (शास्त्रवाद) की पुन: स्थापना का प्रयास बीसवीं सदी के आरंभ में किया। इलियट ने इस प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्योंकि वे अपनी शास्त्रवादप्रियता के लिए भी जाने जाते थे तथा उनकी आलोचना भी इसी कारण नवशास्त्रवादियों जैसे ड्राइडन, जॉनसन आदि की परंपरा में जोड़ी जाती थी। इलियट ने ऐसे आलोचना-सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया जिन्होंने साहित्यिक आलोचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया तथा जो नवशास्त्रवादी नहीं कर सके थे। इन्हीं आलोचना-सिद्धांतों ने इलियट को प्रतिष्ठा के शिखर पर बिठाया।

3.10.1 इलियट का आलोचनात्मक दृष्टिकोण

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में जब इलियट ने आलोचना के क्षेत्र में कदम रखा तब वहां दो तरह की समीक्षा दृष्टियां रखने वाले दो संस्थान सक्रिय थे। एक तो प्रभाववादी समीक्षक थे जो भाव प्रवणता पर बल देते थे। उनका कहना था, आलोचक में उच्च कोटि की सौंदर्यपरक संवेदना या बोध होना पर्याप्त है ताकि वह आलोच्य कृति के भावों को गहनता से ग्रहण कर उसे अभिव्यक्त कर सके। ये लोग हर तरह की विद्वत्ता, आलोचना-सिद्धांत और साहित्यिक परंपराओं को अनावश्यक मानते थे। दूसरा समूह प्रत्ययवादी या बुद्धिवादियों का था जो कृति के बौद्धिक विश्लेषण को महत्व देते थे। ये आलोच्य कृति को दार्शनिक, समाजशास्त्री, ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचित कर इनका संबंध अनावश्यक रूप से कृति से जोड़ देते थे। इलियट ने दोनों का विरोध किया। ये दोनों अपूर्ण आलोचक थे। प्रभाववादियों की आलोचना में आलोचक आलोच्यकृति से जो प्रभाव ग्रहण करता है उसमें अपनी ओर से बहुत कुछ जोड़ता, घटाता और परिवर्तित करता है तथा प्रत्ययवादियों की आलोचना साहित्यिक न होकर सामाजिक अधिक हो जाती है अत: ये दोनों अशुद्ध और अपूर्ण आलोचनाएं हैं। ऐसा

टिप्पणी

इलियट ने माना और इनकी आलोचना करते हुए दो निबंध लिखे 'The Perfect Critic' और 'The Imperfect Critic'। उन्होंने ऐसी आलोचनाओं के प्रतिनिधि आलोचक कवि आर्नल्ड की 'प्रचारवादी आलोचक' कहकर कटु आलोचना की।

इलियट ने 'The Function of Criticism' निबंध में आलोचना के सही रूप पर प्रकाश डाला। इलियट आलोचना का प्रमुख साधन तथ्य बोध को मानते हैं। यह तथ्य ज्ञान आलोचक को गुमराह होने से बचाता है। तथ्य बोध से तात्पर्य आलोचक की वस्तुनिष्ठता से है। आलोचक का वस्तुनिष्ठ होना आलोचना का अनिवार्य साधन है।

इलियट कहते हैं– सच्ची आलोचना या स्वस्थ आलोचना वह है जिसमें आलोचक आलोच्यकृति की अच्छाई-बुराई, पक्ष-विपक्ष पर अपना मत व्यक्त न करे बल्कि उस कृति के अंदर स्थित तथ्यों का विश्लेषण करके मत दे। अर्थात विवेचना के नाम पर मात्र तथ्यों का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण ही स्वस्थ आलोचना है।

आलोचना का दूसरा साधन तुलना को मानते हुए इलियट कहते हैं कि आलोचक को आलोच्य कृति की तुलना प्राचीन कवि और उनके ग्रंथों से करनी चाहिए। इलियट कहते हैं कि आलोचक को तथ्यों का स्वामी होना चाहिए नौकर या दास नहीं। यह भी कहते हैं कि काव्य रचना करते समय कवि या रचनाकार विश्लेषण, संघटन, निर्माण, संशोधन, जोड़ना-घटाना, खोजना, परिवर्तित करना जैसे श्रम करता है। तब कहीं रचना तैयार होती है। इसलिए उच्चकोटि का काव्य-सृजन बिना आलोचनात्मक श्रम के संभव नहीं है यह मानना होगा तथा यह भी कि कवि-आलोचक की आलोचना सर्वाधिक विश्वसनीय एवं श्रेष्ठ होती है।

इलियट कहते हैं आलोचना के दो प्रकार होते हैं प्रथम सैद्धांतिक, जिसमें जाना जाता है कि कविता क्या है? द्वितीय व्यावहारिक, जिसमें यह जाना जाता है कि कविता अच्छी है तो क्यों? आलोचना के ये दोनों भेद जुड़े हुए एवं अविभाज्य हैं। इलियट आलोचना की सीमा निर्धारित करते हुए कहते हैं कि आलोचक को साहित्य संबंधी ज्ञान की विविध शाखाओं–समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, मानवशास्त्र आदि का उपयोग कम से कम उतना ही करना चाहिए जितना अनिवार्य हो, उसे (आलोचना के समय) इन विषयों का व्याख्याता नहीं बनना चाहिए।

बीसवीं सदी के आरंभ तक स्वच्छंदतावादी काव्य-परंपरा का 'वैयक्तिक काव्य-सिद्धांत' प्रभावी था। इलियट ने इसका विरोध करते हुए निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया।

3.10.2 परंपरा और वैयक्तिक प्रज्ञा

इलियट कहते हैं कि किसी भी कलाकार या रचनाकार का मूल्यांकन करना हो तो वह पूर्ण और सार्थक तभी होगा जब हम उसकी तुलना प्राचीन रचनाओं और रचनाकारों से करेंगे। इलियट के शब्दों में "कोई भी कवि, किसी भी कला का कोई भी कलाकार अकेले अपनी पूरी अर्थवत्ता सिद्ध नहीं कर पाता। उसकी महत्ता, उसका विवेचन मृत कवियों एवं कलाकारों के साथ उसके संबंध का विवेचन है। उसका अकेले का मूल्यांकन आप नहीं कर सकते। तुलना के लिए आपको उसे भी मृतों के साथ रखना होगा।" परंपरा से इलियट का तात्पर्य 'इतिहासबोध' से है। इसी इतिहासबोध के कारण हम होमर से आज तक की सभी रचनाओं और रचनाकारों की प्रवृत्तियों से परिचित हैं। इलियट की परंपरा मात्र रूढ़ि नहीं है, वरन्

टिप्पणी

चिर-गतिशील सर्जनात्मक संभावनाओं की समष्टि है। काव्य में जीवंतता और परिपक्वता लाने के लिए इलियट रचनाकार का परंपरोन्मुखी होना आवश्यक मानते हैं तथा यह भी कि इसके लिए रचनाकार रचना में सार्वभौम, विश्वजनीन, सामूहिक संवेगों की अभिव्यक्ति करे। चूंकि व्यक्ति मानस से परंपरा मानस कहीं अधिक मूल्यवान, महत्वपूर्ण एवं सार्वजनीन होता है इसलिए उन्होंने परंपरा से अविच्छिन्न रूप से जुड़े निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

इलियट घोषणा करते हैं कि धर्म में एंग्लो-कैथोलिक, राजनीति में-राजभक्त तथा साहित्य में अभिजात्यवादी होते हैं। अभिजात्य यानी 'क्लासिक'। वे कला एवं साहित्य में व्यवस्था एवं अनुशासन के पक्षपाती हैं। इसलिए आलोचना का अभिगम 'क्लासिकल' मानते हैं। वे अभिजातकृति अर्थात 'क्लासिक' को प्रौढ़ सभ्यता की प्रौढ़ भाषा साहित्य की प्रौढ़ कृति मानते हैं जिसकी रचना प्रौढ़ मस्तिष्क के द्वारा संभव होती है। प्रौढ़ साहित्य में तत्कालीन समाज की प्रौढ़ता का प्रतिबिंब होता है इसलिए कह सकते हैं कि इसके पीछे एक सुदीर्घ परंपरा अथवा भाषा साहित्य की प्रगति का इतिहास होता है। अर्थात प्रौढ़ साहित्य का रचनाकार अपने अतीत या पूर्ववर्ती प्राचीन साहित्य के प्रति आस्था रखता है। उसका सतर्कता से अध्ययन कर पूर्वजों के संस्कार, आचार-विचार का अपने प्रौढ़ मस्तिष्क से रचना में उपयोग करता है। अभिजातकृति व्यापक और प्रभावशाली होती है। वह मर्मस्पर्शी और जातीय चरित्रों का उत्कृष्टता से निदर्शन करने वाली होगी। निष्कर्ष यह है कि इलियट यहां भी परंपरा पर बल देते हैं।

3.10.3 निर्वैयक्तितावाद का सिद्धांत

'Tradition and Individual Talent' नामक निबंध में इलियट लिखते हैं कि अतीत मरता नहीं बल्कि वर्तमान में जिंदा रहता है। यदि हम किसी कवि की रचना का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि उस रचना के सर्वोत्तम अंश या सर्वाधिक वैयक्तिक अंशों में अतीत के साहित्यकारों का प्रभाव प्रतिबिंबित होता दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि श्रेष्ठ या महान सृजन के लिए परंपरा का अंश अनिवार्य है। साहित्यकार अतीत से कुछ लेता है फिर उसमें जोड़-घटाकर परिवर्तित करके उसे कुछ देता है। यह लेन-देन साहित्य की परंपरा है। रचनाकार जब अतीत की परंपरा को परिवर्तित कर, कुछ जोड़ता-घटाता है तो अतीत का यह परिवर्तित स्वरूप सौंपते हुए आत्मप्रकाशन करता है। रचनाकार की प्रवृत्तियों का, संस्कारों का, दृष्टिकोण का पता चलता है। लेकिन अतीत से परंपरा को लेते हुए वह आत्म का अवसान करता है। अहम को भूलकर, अपने निजी को भूलकर, खुले हृदय से प्राप्त करता है। क्योंकि अतीत से लेना महत्वपूर्ण है। इसीलिए वह आत्मोत्सर्ग करता है, आत्म-समर्पण करता है। उसके इस आत्म-समर्पण आत्मोत्सर्ग से ही उसका विकास पथ निर्धारित होता है। वस्तुतः कलाकार या रचनाकार की प्रगति एक सतत या निरंतर आत्मोत्सर्ग, आत्मसमर्पण या व्यक्ति तत्व के तिरोभाव की प्रक्रिया है। इलियट लिखता है– 'The Progress of an Artist is a continual self-sacrifice, a continual extinction of personality.' यह आत्मोत्सर्ग की कलात्मक क्रिया ही निरंतर निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया कहलाती है। जिसमें कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि अवसान भी होता है। रचनाकार आत्म-प्रकाशन नहीं बल्कि उसका तिरोभाव या अवसान करता रहता है।

टिप्पणी

इलियट कवि को माध्यम मानता है। कवि काव्य, सृजन प्रक्रिया का ऐसा माध्यम है जो अपने मन पर पड़े प्रभावों और अनुभवों को विलक्षण रीति से संयुक्त करके, समन्वित करके इस तरह अभिव्यक्त करता है कि वह अभिव्यक्ति यानी काव्य रचना उसके व्यक्तिगत, निजी जीवन के अनुभव प्रभावों से स्वतंत्र, निरपेक्ष और सार्वजनीन होती है। इलियट 'परंपरा एवं वैयक्तिक प्रज्ञा' में लिखते हैं "कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई 'व्यक्तित्व' नहीं होता। एक विशिष्ट माध्यम होता है, जो केवल एक माध्यम होता है व्यक्तित्व नहीं। जिसमें मन पर पड़े हुए प्रभाव अजीब और अप्रत्याशित ढंग से संयुक्त होते हैं। हो सकता है कि व्यक्ति के लिए जो प्रभाव और अनुभव महत्वपूर्ण हों वे काव्य में कोई स्थान ग्रहण न करें और जो काव्य में महत्वपूर्ण हो जाएं उनका योग कवि व्यक्ति में, व्यक्तित्व में, नगण्य हों।" उदाहरणस्वरूप देखें कि ऑक्सीजन और सल्फर डाई ऑक्साइड से भरे जार में यदि प्लेटिनम का एक टुकड़ा डाल दिया जाए, तो दोनों मिलकर सल्फर ऐसिड में बदल जाएंगे। किंतु प्लैटिनम का टुकड़ा विकारहीन रहेगा। ठीक इसी तरह सृजन प्रक्रिया के दौरान कवि मानस प्लैटिनम के टुकड़े की भांति निर्विकार रहता है। माध्यम बना रहता है।

इलियट कवि व्यक्तित्व और कविता के बीच संबंध स्वीकार नहीं करते। किसी कवि के व्यक्तित्व की महानता या उपदेशात्मकता के कारण कविता महान नहीं बनती बल्कि वह महान कृति इसलिए बनती है कि उसमें रचनाकार का निस्पृह मस्तिष्क कार्यरत होता है। जो विशिष्ट एवं विभिन्न भावनाओं का स्वच्छंदतापूर्वक निर्विकार भाव से बिना किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह के मिश्रण करके नवीन सृजन करता है। रचना की इसी निर्वैयक्तिकता, निस्पृहता अथवा तटस्थता को महत्व प्रदान करते हुए इलियट लिखते हैं– 'But the more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creats' अर्थात कलाकार जितना अधिक पूर्ण होगा उसके सृजन में लगे हुए आक्रांत मन में पृथकत्व उतना ही अधिक होगा।

तात्पर्य यह है कि निर्वैयक्तिक होने से उदात्तता तो बढ़ती ही है, पूर्णता भी बढ़ती है। कवि की दृष्टि आत्म को भूलकर दाता रचनाकार की कोटि में आ जाती है। इलियट काव्य में अत्यधिक निजीपन के स्थान पर सार्वजनीन मनोभावों की अभिव्यक्ति को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। व्यक्ति रचनाकार परंपरा से प्रभावित होता है और परंपरा को प्रभावित करता है। निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत को पुष्ट करती हुई उनकी काव्य की परिभाषा है–"कविता भाव का स्वच्छंद प्रवाह नहीं, भाव से पलायन है, व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, उससे मुक्ति का नाम है।"

इलियट के काव्य की अवधारणा से संबंधित दो महत्वपूर्ण कथन हैं 'वस्तुनिष्ठ समीकरण' तथा 'भावबोध वियोजन'। इलियट कहते हैं कि 'कवि के मनोभावों का सहृदय तक सीधा-सीधा संप्रेषण नहीं हो पाता अर्थात या तो कवि जटिलता के कारण अपने भावों को समझा नहीं पाता या सहृदय समझ नहीं पाता। इसीलिए कवि को चाहिए कि वह अपने काव्य में चुनी हुई श्रेष्ठ वस्तुओं, स्थितियों, चित्रों, घटनाओं का ही उपयोग करें ताकि इनके माध्यम से वह अपने मनोभावों (संवेगों) को सहृदय तक ठीक से संप्रेषित कर सके और सहृदय उन भावों से अपना तारतम्य स्थापित कर सके, समझ सकें।'

टिप्पणी

इलियट का दूसरा कथन है, 'भाव-बोध वियोजन' यानी 'हृदय-बुद्धि का पृथक्करण या अलगाव।' इलियट के अनुसार यह दोष स्वच्छंदतावादी एवं विक्टोरियन कवियों में पाया जाता है। ये बुद्धि और हृदय अर्थात भावना के समन्वित महत्व को नहीं समझते। बुद्धि और भावना के एकीकरण के कारण ही 17वीं शती के आरंभ तक महान काव्य रचा जाता रहा। बाद के कवियों ने भाव-बोध वियोजन को स्वीकारा जिसे दुर्घटना कहा जा सकता है। भाव-बोध एकीकरण या समन्वय से ही उत्तम काव्य की सृष्टि संभव है।

इलियट का महत्व

इलियट ने साहित्यानुशीलन के लिए तथ्य बोध संबंधी वैज्ञानिक पद्धति पर बल दिया जिससे रचना का उसके वास्तविक रूप में जांच-परख और प्रतिस्थापन हुआ। उनका निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत आलोचक एवं कवि को नई दिशा एवं दृष्टि देने वाला है। इलियट स्वयं को अभिजात्यवादी कहते हैं लेकिन उनके अभिजात्यवाद तथा नवशास्त्रवादियों के आभिजात्यवाद में अधिक समानता नहीं है। उन्होंने 'परंपरा एवं वैयक्तिक प्रज्ञा' में काव्य मूल्यांकन के लिए अतीत के आलोचकों द्वारा निर्धारित नियमों का तिरस्कार किया। इलियट की आलोचना व्यक्ति साहित्यकार के अनुभवों पर आधारित आलोचना है इसलिए वह अधिक महत्वपूर्ण है। इलियट पाश्चात्य काव्यशास्त्र के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। जिनके सिद्धांतों ने परवर्ती पाश्चात्य आलोचकों को चिंतन-मनन की नई दिशा दी।

गतिविधि

अपने मित्रों के साथ मिलकर अरस्तू के त्रासदी सिद्धांत पर एक लघु नाटिका का मंचन करें।

क्या आप जानते हैं?

पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों में टी.एस. इलियट ऐसे काव्य-सृष्टा और आलोचक हैं जिनके काव्य और चिंतन में एकरूपता मिलती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

29. इलियट आलोचना का प्रमुख साधन किसे मानते हैं?
30. इलियट ने किस काव्य-सिद्धांत का विरोध करते हुए निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया?
31. 'परंपरा' से इलियट का तात्पर्य क्या है?
32. इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत किसे नयी दिशा एवं दृष्टि प्रदान करता है?

3.11 सारांश

पाश्चात्य काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परंपरा का मूल यूनान में माना जाता है। सुकरात के शिष्य प्लेटो को प्रथम पाश्चात्य समीक्षक होने का गौरव प्राप्त है। माना जाता है कि प्लेटो के समय का समाज पतित एवं विकृत दशा में था। वे अपने समाज का उत्थान करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने साहित्य और ज्ञान की हर विधा को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से परखा। तत्कालीन रचे जा रहे साहित्य को, काव्य को उन्होंने हीन दृष्टि से देखते हुए उस पर आरोप लगाए। हालांकि प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने इन आक्षेपों का समुचित उत्तर दिया। अरस्तू की विचारधारा साहित्य के प्रति स्वस्थ और सकारात्मक थी। सोलहवीं शताब्दी के अंत में समीक्षकों के विचारों को दृष्टिगत रखते हुए साहित्यिक नियम बनने लगे। बोयलो ने अपनी कृति 'आर्ट पोएटिक' में काव्य के उद्देश्य, शैली, प्रकृति एवं रूपों के विषय में नियम निर्धारित किए। माना जाता है कि इन नियमों के पालन में बंधी हुई लीक के बीच साहित्य की आत्मा

टिप्पणी

घुटने लगी और प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदता के लिए विद्रोह भी दृष्टिगोचर होने लगा। सत्रहवीं शताब्दी में नवक्लासिकवादी और स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों में संघर्ष बना रहा। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में साहित्य की सुगमता, सरलता एवं स्पष्टता पर बल देने के साथ प्राचीन साहित्य पर चिंतन एवं स्वच्छंद प्रकृति के विकास पर गतिविधियां चलती रहीं। बुद्धि को कल्पना से अधिक महत्व देने के साथ कल्पना के सौंदर्य और गौरव पर व्याख्याएं प्रस्तुत हुईं। उन्नीसवीं शताब्दी में राजनैतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, मनोवैज्ञानिक आदि क्रांतियों ने साहित्य को प्रभावित किया और साहित्य जीवन के निकट आ गया। जीवन की तरह ऊबड़-खाबड़ गद्य की प्रधानता हो गई। बीसवीं शताब्दी का आरंभ अंग्रेजी समाज एवं साहित्य के लिए बेहद अव्यवस्था का समय था। कुंठा, निराशा, अनास्था, अमानवीयता आदि प्रवृत्तियों के बीच आलोचना का आरंभ हुआ। इरविंग बेबिट एवं ह्यूम ने नीति एवं आचार पर बल देते हुए स्वच्छंदतावादी काव्य में बिंबवाद का विरोध किया। आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक आलोचना का दौर आरंभ हुआ जो अधुनातन समीक्षाओं के रूप में नई-दृष्टियों से संपन्न होता हुआ निरंतर जारी है।

प्लेटो दार्शनिक होते हुए भी सहृदय कवि थे आलोचक नहीं, इसलिए उनकी आलोचनाएं किसी एक कृति में संगृहीत नहीं मिलतीं। प्लेटो से पूर्व काव्य-समीक्षा संबंधी विचार स्फुट रूप में प्राप्त होते हैं। प्लेटो ने अपनी पूर्व परंपरा के काव्य का अध्ययन किया और यत्र-तत्र उनका उल्लेख भी किया। होमर के प्रति उनके मन में आदर था। ऐसा होते हुए भी उन्होंने तत्कालीन काव्य और कवियों की निंदा की। प्लेटो ने काव्य या कवि की नहीं बल्कि देखा जाए तो जिस प्रवृत्ति के अधीन होकर कवि जिस तरह का काव्य लिख रहे थे, उस प्रवृत्ति की निंदा की। प्लेटो दार्शनिक होने के साथ सत्य का उपासक और तर्क का पक्षपाती था। प्लेटो के अनुसार सत्य वह है जिसमें समाज और व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन को बल मिले। इसके विपरीत जो कुछ भी हो उसे वह असत्य मानते हुए काव्य को भी इसी कसौटी पर कसकर देखता था। उसने दर्शन की वेदी पर कवि-हृदय की बलि चढ़ाकर सत्य की रक्षा की। प्लेटो ने अपने कलागत सिद्धांत दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए। उसके विचारशील मस्तिष्क को यह बात चुनौती लगती थी कि कवि चिरंतन सत्य के शोधक और प्रतिष्ठाता होते हैं। वह अंधी अनुयायिता को नापसंद करता था। प्लेटो कविता को उसी सीमा तक ग्राह्य मानता था जिस सीमा तक वह मानव, समाज एवं देश के उत्थान के लिए हितकारी हो। प्रथम आचार्य होने के कारण प्लेटो का ऐतिहासिक महत्व है। उसने परवर्ती आचार्यों के लिए पथ प्रशस्त किया। उन्हें चिंतन की सामग्री दी। कहीं वे कवि की तरह तर्क करते हैं, कहीं दार्शनिक की तरह वकालत करते हैं। अत: मतों में एकाध स्थान पर विरोधाभास पाया जाता है जो स्वाभाविक लगता है। प्लेटो के काव्य सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए अमूल्य हैं।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने विरेचन सिद्धांत, अनुकरण सिद्धांत तथा त्रासदी का सिद्धांत दिया। प्लेटो के शिष्य होने के नाते अपने गुरु द्वारा सुझाए अनुकरण शब्द की व्याख्या और विकास कर पाश्चात्य काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग प्लेटो ने किया था। उसके शिष्य अरस्तू ने इसे ग्रहण किया और कला को अनुकरणात्मक माना। परंतु काव्य को परखने की अरस्तू की दृष्टि सौंदर्यवादी है। अरस्तू ने काव्य को सौंदर्यशास्त्री की दृष्टि से देखकर उसे दर्शन, नीति, राजनीति की

टिप्पणी

बेड़ियों से मुक्त किया। उसने प्रत्येक कलाकृति को सौंदर्य की वस्तु माना। अरस्तू कला को प्रकृति की अनुकृति मानते हैं। यहां प्रकृति से उनका अभिप्राय केवल प्रकृति या सृष्टि के बाह्य, स्थूल, गोचर रूप से ही नहीं बल्कि इनके साथ आंतरिक रूप काम, क्रोध, कल्पना आदि से भी है। अरस्तू अनुकरण का अर्थ हूबहू नकल करना नहीं मानते। उनका मत है कि 'अनुकृति की प्रक्रिया में प्रकृति के अनेक दोष और प्रभाव कला द्वारा पूरे कर दिए जाते हैं। अरस्तू का तर्क है कि यदि कविता प्रकृति का केवल दर्पण होती तो वह हमें उतना ही देती जितना प्रकृति देती है, उससे अधिक नहीं। जबकि कविता का रसास्वादन करते हुए हम आनंद के सरोवर में इसलिए गोते लगाते हैं कि वह हमें वह तत्व देती है जो प्रकृति नहीं दे सकी। अरस्तू मानते हैं कि कलाकार अपनी संवेदना, अनुभूति, कल्पना और आदर्श आदि के प्रयोग से अपूर्ण को पूर्ण बना सकता है। उसका अनुकरण भावनामय होता है। अरस्तू का 'अनुकरण सिद्धांत' महत्वपूर्ण और व्यापक है। अन्य कवि एवं आचार्यों ने भी इसका प्रयोग किया है। होरेस कविता को जीवन का अनुकरण मानता था। विडा नामक आलोचक कवियों को प्रकृति का अनुकरण करने की सलाह देता था। बैन जानसन ने दृढ़तापूर्वक शास्त्रीय अनुकरण को कलात्मक रचना का मूलस्रोत माना। वर्तमान में अनुकरण सिद्धांत प्रकृतिवाद, यथार्थवाद और अतियथार्थवाद के रूप में देखा जाता है।

अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो के जीवनकाल में ही उनके आक्षेपों का दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। 'विरेचन सिद्धांत' का जन्म भी ऐसे ही एक उत्तर के रूप में हुआ। 'विरेचन' शब्द का प्रयोग कर अरस्तू ने प्लेटो के आक्षेप का उत्तर दिया और काव्य की महत्ता स्थापित की। प्लेटो काव्य और नाटक को हेय मानता था इसलिए अरस्तू ने गुरु की दृष्टि को परिवर्तित करने के लिए विरेचन सिद्धांत की स्थापना की। यह सिद्धांत कामनाओं को उद्दीप्त ही नहीं करता बल्कि उसके बाद भाव शमन करके सुख, शांति और स्वास्थ्य भी प्रदान करता है। मनोविश्लेषकों की तरह ही उन्होंने कहा कि विरेचन प्रक्रिया द्वारा प्रेक्षक के मन की ग्रंथियां खुल जाती हैं, घुटन दूर हो जाती है। 'विरेचन' से अरस्तू का तात्पर्य भावों का निष्कासन मात्र नहीं बल्कि उनका संतुलन भी था। भावातिरेक मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे मनुष्य का मानसिक संतुलन खो जाता है। अरस्तू का अभिप्राय यही था कि त्रासदी करुणा तथा त्रास के अवांछित अंश को उभार कर निकाल देती है, परिणामस्वरूप मनोवेगों में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायी है। विरेचन सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अरस्तू की अमूल्य देन है। उन्होंने त्रासदी के प्रभाव को बढ़ाया, फ्रायड आदि के लिए मनोविश्लेषण का आधार प्रदान किया। आई.ए.रिचर्ड्स आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मार्ग प्रशस्त हुआ। शुक्ल जी के द्वारा प्रस्तुत 'हृदय की मुक्तावस्था' का यहां साम्य है। विरेचन सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए एक उपलब्धि है।

अरस्तू ने अपने ग्रंथ में नाटकों पर विशेषकर त्रासदी पर बहुत विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने त्रासदी और कौमदी नामक दो भेद नाटक के माने। त्रासदी का लक्ष्य है यथार्थ जीवन से भव्यतम जीवन का चित्रण। यहां भव्यता का आधार नैतिक है। इसी आधार पर त्रासदी में औसत से उच्चतर मानव जीवन का चित्रण किया जाता है और त्रासदी को श्रेष्ठ काव्य का रूप माना गया है। कौमदी का लक्ष्य है यथार्थ जीवन से हीनतर जीवन का चित्रण। त्रासदी किसी कार्य की अनुकृति है। कार्य गंभीर स्वत: पूर्ण और निश्चित आयाम वाला होता है। निश्चित आयाम का अर्थ है ऐसा कार्य जिसे दर्शक या पाठक समग्र रूप में ग्रहण कर सके। कार्य का वर्णन नहीं होता वरन प्रदर्शन होता है। मूलत: भाषा, छंद, लय और गीत आदि से अलंकृत होती है। करुणा और भय के भाव इसमें प्रदर्शित होते हैं। इन भावों के उद्रेक द्वारा इनका उचित विवेचन किया जाता है और वे विश्रांत हो जाते हैं। अरस्तू ने एक प्रकार से कथावस्तु को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए त्रासदी की आत्मा माना है। कथावस्तु अर्थात नाटक और नाटकीय प्रयोजन की दृष्टि से कार्य व्यापार का क्रम है। इसीलिए अरस्तू ने कथावस्तु को घटनाओं का विन्यास कहा। त्रासदी में कार्य व्यापार ही अनुकरण किया जाता है और यह अनुकरण दृष्टि विधान के माध्यम से ही होता है। जिस कार्य व्यापार का अनुकरण किया जाता है उसके कर्ता का चरित्र और विचार तत्व भी इस अनुकरण के माध्यम से उद्घाटित होता चलता है। नाटकीय कार्य-व्यापार का उद्देश्य चरित्रों का प्रतिरूपण करना ही नहीं है क्योंकि चरित्रों का स्थान गौण है प्रमुखता सुनियोजित घटनाओं को दी जाती है। इसका कारण यह है कि चरित्र भी कार्य व्यापार के माध्यम से ही व्यक्त होता है। इस प्रकार जीवन का विस्तार और व्यक्ति के सुख-दुख उसके कार्यों पर ही निर्भर करते हैं और कथावस्तु के रूप में ही सामने आते हैं। चरित्र से उनका सीधा संबंध नहीं होता। इसीलिए अरस्तू ने कार्य व्यापार को त्रासदी की आत्मा या उसका साध्य कहा है और चरित्र-चित्रण का गौण महत्व दिया है।

लोंजाइनस रोमांटिक आलोचना के आधार स्तंभ माने जाते हैं। लोंजाइनस की रचना 'पेरिइप्सुस' का यूनानी काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 'पेरिइप्सुस' का अर्थ है–औदात्य, ऊंचाई। लोंजाइनस ने 'उदात्त' की कहीं भी सूत्र-बद्ध व्याख्या नहीं की। उन्होंने उदात्त के स्रोतों, औदात्य के बीच आने वाली बाधाओं, तथा उदात्त के प्रभाव को ही स्पष्ट किया है। लोंजाइनस की विवेचन पद्धति अरस्तू की तरह सूत्रबद्ध व्याख्या वाली नहीं है। वे विषय का विशद विवेचन करते हैं। उनकी दृष्टि व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की है। उन्होंने उदात्त के विवेचन में पांच तत्वों की चर्चा की। प्रथम महान धारणाओं की क्षमता या विषय की गरिमा और द्वितीय भावावेश की तीव्रता। ये दोनों तत्व जन्मजात होने के कारण अंतरंग पक्ष में आते हैं तथा शेष तीन-समुचित अलंकार योजना, उत्कृष्ट भाषा तथा गरिमामय रचना-विधान बहिरंग पक्ष में आते हैं। इन दोनों पक्षों के अतिरिक्त उदात्त विवेचन में तीसरा विरोधी तत्व वाला पक्ष भी होता है। लोंजाइनस अलंकार शास्त्री था। अत: व्याकरण शास्त्र, विश्लेषणात्मक आलोचना-शास्त्र तथा निबंध- रचना शास्त्र पर उसकी गहरी एवं सूक्ष्म दृष्टि एवं पकड़ थी। वह शास्त्रानुकूल रचना पर बल देता था। लोंजाइनस काव्य के लिए भावोत्कर्ष को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व मानता था। उसने सिद्धांत रूप में प्रस्तुत किया कि–"काव्य या साहित्य का उद्देश्य चरमोत्कर्ष प्रदान करना है तर्क द्वारा बाध्य करना नहीं।" पाठक या श्रोता को वेद्यांतर शून्य बनाना ही काव्य का उद्देश्य है। साहित्य कल्पना द्वारा पाठक को अभिभूत करता है।अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की तुलना में लोंजाइनस के विचार अत्यंत प्रगतिशील और क्रांतिकारी हैं। ब्रैडले, कॉन्ट आदि से तुलना करने पर तो लोंजाइनस अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

क्रोचे अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक हैं। वे इटली के प्रसिद्ध सौंदर्यशास्त्री तथा दार्शनिक होने के साथ-साथ कलावादी भी थे। उनके अभिव्यंजनावाद ने साहित्य के साथ-साथ कला

टिप्पणी

टिप्पणी

एवं संगीत को भी प्रभावित किया। अभिव्यंजनावाद वह कला सिद्धांत है जिसमें आत्मा का अपनी सौंदर्य बोध संबंधी प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। यह बाह्य प्रकृति से प्रभावित न होने वाला सौंदर्य प्रधान, आत्मानंदमूलक व्यापार है। सहजानुभूति वह क्रिया है जो आत्मा में ही पूर्णता प्राप्त करती है। उदाहरण के लिए–जब चित्रकार किसी वस्तु को देखता है तब उस वस्तु का चित्र उसके मन में अंकित हो जाता है या अभिव्यक्त हो जाता है। यह सहजानुभूति की आंतरिक अभिव्यंजना है। आंतरिक रूप रचना है, जो सौंदर्य तत्व को जन्म देती है। क्रोचे इसे आत्मा का अभिव्यंजनात्मक कर्म मानता है। इसी कर्म के द्वारा यानी सौंदर्य तत्व की उत्पत्ति के बाद इसी अभिव्यंजनात्मक कर्म द्वारा कलाकार भावनाओं तथा संवेगों के वेग को नियंत्रित रखकर प्रभावों को बिंबों में अभिव्यक्त कर उनसे मुक्त होता है। सारांश यह है कि क्रोचे सहजानुभूति को अभिव्यंजना मानता है जो आंतरिक होती है। मन के भीतर होती है बाहर नहीं। उल्लेखनीय है कि क्रोचे का अभिव्यंजना संबंधी सारा निरूपण कला के लिए है, कलाकृति के लिए यानी साहित्यिक कृति के लिए नहीं। वे कला एवं कलाकृति को दो अलग-अलग वस्तुओं के रूप में देखते हैं। क्रोचे काव्य (कला) का सौंदर्य के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं मानते। वे मंगल-अमंगल को धर्म और नीति से तथा सौंदर्य को कला क्षेत्र से जोड़ते हैं। क्रोचे अनुभूति और अभिव्यक्ति में कोई भेद नहीं मानते, इसलिए विषय-वस्तु और शैली को अभिन्न घोषित करते हैं। भारतीय आचार्य कुंतक और क्रोचे दोनों कलावादी हैं। दोनों ने अभिव्यंजना को कला का प्राण माना है। दोनों अभिव्यंजना को अखंड मानते हैं। दोनों काव्य में कल्पना तत्व को प्रमुखता देते हैं। फिर भी वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद में अंतर है क्योंकि एक का प्रवर्तक अलंकारवादी है और दूसरे का दार्शनिक। क्रोचे के अनुसार काव्य की आत्मा सहजानुभूति है। वे आनंद को अभिव्यंजना का सहचर मानते हैं।

कॉलरिज रोमांटिक युग के सूक्ष्मदर्शी तत्ववेत्ता थे तथा अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और आलोचनात्मक प्रतिभा के कारण प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचे। निर्बंधता, फक्कड़पन और निरंतर कल्पना के सागर में गोते लगाने वाले इस कवि की मानसिक उर्वरता अद्‌भुत थी। कॉलरिज दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते थे। अत: उन्होंने अपने काव्य सिद्धांतों की स्थापना तत्व चिंतन के आधार पर की। कॉलरिज की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को नियमों का बंधन स्वीकार नहीं था। उन्होंने वड्‌र्सवर्थ का सहयोगी बनकर 18 वीं शताब्दी के कृत्रिम एवं रूढ़ काव्य-मूल्यों के उन्मूलन एवं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योग दिया। वे पूर्व निर्धारित नियम पालन को अनावश्यक मानते थे तथा मौलिकता और प्रतिभा के पक्षधर थे। कॉलरिज के अनुसार काव्य का आनंद सौंदर्य के द्वारा उत्पन्न होता है। चूंकि आनंद सौंदर्य के बिना किसी प्रयत्न से स्वयं उद्‌भूत होता है इसलिए वे ही पाठक ऐसे काव्य का रसास्वादन पूर्णत: कर सकते हैं जिनकी वृत्तियां कोमल हैं, जो भावुक हैं, सौंदर्य के पारखी हैं। कॉलरिज तत्ववेत्ता होने के कारण दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते थे। उनके काव्य सिद्धांत इसी तत्व चिंतन पर आधारित हैं। वे मन को स्रष्टा का प्रतिबिंब मानते हुए कहते थे कि संसार के पदार्थ ब्रह्म के विषय अथवा विचार हैं और जगत विषयीकृत ब्रह्म है। ब्रह्म और प्रकृति का संयोग कल्पना द्वारा होता है। विश्व ब्रह्म की कला है। मानव चेतना भी विश्व चेतना है। कॉलरिज संपूर्ण सृष्टि को चेतना की अभिव्यक्ति मानते हैं तथा जड़ और चेतन में सामंजस्य स्वीकार करते हैं। जड़ पदार्थ को देखकर कवि के हृदय में भाव उत्पन्न होते हैं और वह काव्य सृजन में रत हो जाता है। कॉलरिज कल्पना के दो प्रकार मानते हैं-आद्य या मुख्य या प्राथमिक कल्पना और प्रतिनिधि या विशिष्ट कल्पना। वे ब्रह्मवादियों की तरह आत्मा व जगत दोनों को एक ही सत्ता के दो रूप मानते हैं, पर ब्रह्मवादी आत्मा और जगत के बीच भिन्नता का कारण माया को मानते हैं। वहीं कॉलरिज इसका कारण मुख्य कल्पना को मानते हैं। इसी मुख्य कल्पना के कारण चेतना खंड-खंड रूप में दिखाई देती है। ब्रह्म ने इसी के आश्रय पर सृष्टि का निर्माण किया। यह मुख्य कल्पना व्यक्तियों में भी पाई जाती है। यह मानव-मन में मानसिक विश्व को प्रस्तुत करती है। यह समस्त मानव-ज्ञान की सजीव शक्ति है और संपूर्ण मानव प्रत्यक्षीकरण का प्रमुख माध्यम है।

टिप्पणी

महाकवि वड्‌र्सवर्थ मूलत: आलोचक नहीं थे। नवशास्त्रवादी समीक्षकों के प्रहारों के विरुद्ध आत्मरक्षा के लिए उन्होंने आलोचना का हथियार उठाया। आलोचना करना उनका उद्देश्य नहीं था क्योंकि स्वभावत: वे कवि थे। वड्‌र्सवर्थ से पूर्व काव्य शैली के निर्धारित नियमों के अनुसार काव्य भाषा की शब्दावली निश्चित थी तथा उसमें से निम्नकोटि के साधारण शब्दों को बहिष्कृत किया गया था। वड्‌र्सवर्थ विशिष्ट-काव्यगत युक्तियों जैसे मानवीकरण, वक्रोक्ति तथा व्याकरणगत स्वच्छंदताओं के विरुद्ध थे। उन्हें काव्य रचना में विपर्यय तथा वैषम्य नहीं भाता था। वे वस्तुपरिगणन-प्रणाली, अनावश्यक रूप से ठूंसी गई पौराणिक कथाएं, भावाभास, विलक्षणता, अस्पष्टता, शाब्दिक चमत्कार, दूरारूढ़ कल्पना, अतिशयोक्ति और कृत्रिमता के विरोधी थे। वड्‌र्सवर्थ का भाषा सिद्धांत काव्य सिद्धांतों से घनिष्ठता रखता है। वे काव्य को भावावेग का उच्छलन मानते हैं और भावों के उच्छलन के समय भाषा हृदय से निकलती है जबकि चिंतन-मनन के बाद की भाषा गढ़ी हुई होती है। लेकिन जिस तरह चिंतन के पश्चात कवि का मनोमस्तिष्क परिष्कृत, उसका सहज भावावेग उच्च कोटि का, प्राणवान तथा ऊर्जस्वित हो जाता है। उसी तरह सच्चाई से किया गया विवेकपूर्ण चुनाव भाषा को गरिमायुक्त, सजीव, जीवंत बना देता है। वड्‌र्सवर्थ भावोच्छलन के पक्ष में हैं किंतु उन्हें किसी विवेकहीन व्यक्ति का भावोच्छलन अभीष्ट नहीं है। वे सतर्क एवं विचारवान व्यक्ति के भावोच्छलन को पसंद करते हैं। वड्‌र्सवर्थ तीव्र भावावेग के क्षणों में लिखी गई कविता को ही महान मानते हैं जिसमें तीव्र भावावेग के कारण ही उदात्त रूपक-शैली का प्रयोग किया गया हो। वे भाषा की सरलता और साधारणता पर बल देते हैं। वड्‌र्सवर्थ के भाषा-सिद्धांत पर दृष्टिपात करें तो लगता है कि वे प्रकृतिवादी हैं। वे ग्राम्य गीतों तथा ग्राम्य भाषा का अनुकरण करने की बात कहते हैं तथा कलावाद और कृत्रिमता का विरोध करते हैं पर जब उनके सिद्धांतों पर सूक्ष्म गहन दृष्टि से चिंतन-मनन किया जाए तो मालूम होता है कि वे स्पैंसर, मिल्टन, चौसर तथा शैक्सपियर की कला को भी अपने प्रकृतिवाद में समन्वित कर लेते हैं। वड्‌र्सवर्थ ने पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के लिए चिंतन का नया मार्ग प्रशस्त किया। अत: उनकी देन की अवहेलना नहीं की जा सकती।

आई. ए. रिचड्‌र्स मूलत: मनोवैज्ञानिक हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य में आने के कारण उनके काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर मनोविज्ञान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे आलोचक के लिए मनोविज्ञान के अध्ययन को आवश्यक मानते हुए कहते हैं कि मानव

टिप्पणी

की मानसिक प्रक्रियाओं एवं साहित्य के बीच गहन संबंध है। इस संबंध को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आलोचना को नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान की। रिचर्ड्स कहते हैं "कलात्मक संतुलन की अवस्था मन की शून्यावस्था से भिन्न होती है तथा उत्तेजना पूर्ण अवस्था से अलग होती है। साहित्य का प्रयोजन यह होना चाहिए कि मन में संतुलन के साथ बाह्य गतिविधियों के लिए तत्परता भी हो।" वे कहते हैं कि कला मूल्यवान अनुभव प्रदान करती है। कलाकार की अनुभूतियों में ऐसे आवेगों का संतुलन दिखाई देता है जो सामान्य मनुष्यों में अधिकतर अस्त-व्यस्त तथा द्वंद्व से घिरे होते हैं। अत: कला की उपयोगिता और सफलता, सार्थकता, सिद्धि इसी बात में है कि वह आवेगों का संगठन करे। उसमें संतुलन स्थापित करे। ऐसी परिस्थितियां निर्मित करे जो नकारात्मकता, द्वंद्व, बुभुक्षा, विरोध का परिहार कर सकारात्मक, संतुलित और शांत जीवन की ओर प्रेरित करें। रिचर्ड्स के मूल्य सिद्धांत के केंद्र में व्यक्ति है, समाज नहीं। क्योंकि मनोविज्ञान की जिन शाखाओं पर उनकी आलोचना पद्धति आश्रित है, वे व्यक्ति मूलक हैं। इसलिए अपनी समग्र मीमांसा के मूल में चाहे वह मूल्य की मीमांसा हो या नैतिकता की, व्यक्ति को ही रखा है। इलियट का आधुनिक पाश्चात्य साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान है।

इलियट रोमानी एवं मानवतावादी अवधारणाओं तथा स्वच्छंदतावाद के विरोध में खड़े हुए। इंग्लैंड में ह्यूम ने स्वच्छंदतावाद और मानववाद के विरोध में, कला तथा साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में क्लासिसिज्म (शास्त्रवाद) की पुन: स्थापना का प्रयास बीसवीं सदी के आरंभ में किया। इलियट ने इस प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पाश्चात्य साहित्य पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि वहां महान कवि ही महान आलोचक हुए हैं। इलियट इस बात पर विश्वास करते थे कि कवि आलोचक ही महत्वपूर्ण आलोचना कर सकता है। शायद यही कारण है कि उनकी कविताओं में उनकी आलोचना ही प्रतिबिंबित होती है। इलियट कहते हैं कि किसी भी कलाकार या रचनाकार का मूल्यांकन करना हो तो वह पूर्ण और सार्थक तभी होगा जब हम उसकी तुलना प्राचीन रचनाओं और रचनाकारों से करेंगे। सच्ची आलोचना या स्वस्थ आलोचना वह है जिसमें आलोचक आलोच्यकृति की अच्छाई-बुराई, पक्ष-विपक्ष पर अपना मत व्यक्त न करे बल्कि उस कृति के अंदर स्थित तथ्यों का विश्लेषण करके मत दे। इलियट ने 'वैयक्तिक काव्य-सिद्धांत' का विरोध करते हुए निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इलियट कवि व्यक्तित्व और कविता के बीच संबंध स्वीकार नहीं करते। किसी कवि के व्यक्तित्व की महानता या उपदेशात्मकता के कारण कविता महान नहीं बनती बल्कि वह महान कृति इसलिए बनती है कि उसमें रचनाकार का निस्पृह मस्तिष्क कार्यरत होता है। जो विशिष्ट एवं विभिन्न भावनाओं का स्वच्छंदतापूर्वक निर्विकार भाव से बिना किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह के मिश्रण करके नवीन सृजन करता है। इलियट ने साहित्यानुशीलन के लिए तथ्य बोध संबंधी वैज्ञानिक पद्धति पर बल दिया जिससे रचना का उसके वास्तविक रूप में जांच-परख और प्रतिस्थापन हुआ। उनका निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत आलोचक एवं कवि को नई दिशा एवं दृष्टि देने वाला है। इलियट स्वयं को अभिजात्यवादी कहते हैं लेकिन उनके अभिजात्यवाद तथा नवशास्त्रवादियों के अभिजात्यवाद में अधिक समानता नहीं है। उन्होंने 'परंपरा एवं वैयक्तिक प्रज्ञा' में काव्य मूल्यांकन के लिए अतीत के आलोचकों द्वारा निर्धारित नियमों का तिरस्कार किया। इलियट की आलोचना व्यक्ति साहित्यकार

टिप्पणी

के अनुभवों पर आधारित आलोचना है इसलिए वह अधिक महत्वपूर्ण है। इलियट पाश्चात्य काव्यशास्त्र के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

इस प्रकार आपने जाना कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में किस प्रकार साहित्यिक विचार आंदोलन चला। विभिन्न विद्वान अपनी-अपनी विचारधारा लेकर अवतरित हुए और उन्होंने साहित्य जगत को प्रभावित किया। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं।

3.12 मुख्य शब्दावली

- **समीक्षक** : आलोचक।
- **प्रवृत्ति** : रुझान।
- **ग्राह्य** : स्वीकार करने योग।
- **अनुकृति** : नकल/अनुकरण।
- **प्रतीयमान** : अनुभव होता हुआ।
- **आत्माभिव्यंजन** : स्व की अभिव्यक्ति।
- **यांत्रिक अनुकरण** : बिना सोचे समझे नकल।
- **शाश्वत** : सनातन, अमर।

3.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 'लिरिकल बैलेड्स'
2. 19वीं शताब्दी
3. प्लेटो
4. प्लेटो
5. सौंदर्यशास्त्री की
6. अरस्तू
7. प्लेटो पर
8. छह
9. औदात्य
10. भावोत्कर्ष
11. पांच
12. लोंजाइनस
13. क्रोचे
14. कला के लिए

टिप्पणी

15. क्रोचे
16. कल्पना लोक
17. कॉलरिज
18. सौंदर्य
19. ब्रह्म कल्पना का
20. कॉलरिज
21. वड्र्सवर्थ
22. प्रकृतिवादी
23. वड्र्सवर्थ
24. कल्पना शक्ति
25. आई. ए. रिचड्र्स
26. अभिव्यक्ति
27. विचार से
28. मनोवैज्ञानिक
29. तथ्य बोध
30. वैयक्तिक काव्य-सिद्धांत
31. इतिहास बोध
32. आलोचक एवं कवि को

3.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास क्रम पर एक निबंध लिखिए।
2. प्लेटो द्वारा निर्देशित सत्काव्य के गुणों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. अरस्तू के विरेचन सिद्धांत की प्रासंगिकता सिद्ध कीजिए।
4. अभिव्यंजना से क्या तात्पर्य है? समझाइए।
5. अच्छी कविता के अपरिहार्य गुणों का विवेचन कीजिए।
6. 'छंद एक प्रकार का खमीर है' के संदर्भ में कॉलरिज के काव्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. वड्र्सवर्थ की भाषा पर विभिन्न विद्वानों द्वारा दर्ज की गई आपत्तियों की समीक्षा कीजिए।
8. आई. ए. रिचड्र्स की काव्य-भाषा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. प्लेटो के काव्य सिद्धांतों की समीक्षा करते हुए काव्यशास्त्र में उसके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
2. अरस्तू द्वारा प्रस्तुत 'अनुकरण की प्रवृत्ति का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
3. 'अरस्तू ने कार्य व्यापार को त्रासदी की आत्मा या उसका साध्य माना है'– सिद्ध कीजिए।
4. लोंजाइनस की उदात्त की अवधारणा का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
5. क्रोचे सौंदर्यशास्त्री तथा दार्शनिक होने के साथ-साथ कलावादी भी थे– उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।
6. काव्य सर्जन में कल्पना की उपयोगिता सिद्ध करते हुए कॉलरिज के काव्य-सिद्धांतों की समीक्षा कीजिए।
7. 'सच्ची भाषा वह है जो मनुष्य भावावेग के क्षणों में बोलता है'– के संदर्भ में वड्र्सवर्थ के भाषा-चिंतन का विस्तृत विवेचन कीजिए।
8. आई. ए. रिचड्र्स के मूल्य-सिद्धांत का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
9. एक प्रसिद्ध काव्य-सृष्टा एवं आलोचक के रूप में इलियट के योगदान को रेखांकित कीजिए।
10. निर्वैयक्तितावाद के सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

3.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. भगीरथ मिश्र, *काव्यशास्त्र*, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर-1957
2. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, *हिन्दी साहित्य में विविध वाद*, पद्मजा प्रकाशन कानपुर 2010-वि.सं.
3. डॉ. वेंकट शर्मा, भूमिका नगेंद्र, *आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास*, आत्माराम एंड संस दिल्ली-1967
4. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *काव्य दर्पण*, साहित्यागार, जयपुर-1988
5. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान*, साहित्यागार जयपुर -1988
6. सत्यदेव मिश्र, *पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांत और वाद*, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा,1975
7. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, *सहृदय और साधारणीकरण*, हिंदुस्तान एकेडमी इलाहाबाद, 1984
8. डॉ. लक्ष्मी पांडेय, *अधुनातन काव्यशास्त्री : आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी*, उर्मिल प्रकाशन, गाजियाबाद।

टिप्पणी

इकाई 4 हिंदी आलोचना के सिद्धांत एवं प्रणालियां

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 हिंदी आलोचना के सिद्धांत और प्रणालियां
4.3 हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन और आलोचना का विकास
4.4 प्रमुख आलोचना सिद्धांत
  4.4.1 लोकमंगल का सिद्धांत
  4.4.2 आकर्षण-शक्ति सिद्धांत
4.5 रचना के तीन क्षण
4.6 स्वच्छंदतावादी आलोचना
  4.6.1 परिभाषाएं एवं आधार
  4.6.2 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
  4.6.3 स्वच्छंदतावादी काव्य चिंतन की विशेषताएं
  4.6.4 हिंदी के स्वच्छंदतवादी समीक्षक
4.7 मार्क्सवादी आलोचना
  4.7.1 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
  4.7.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद
  4.7.3 साहित्य एवं कला संबंधी विचार
4.8 समाजशास्त्रीय आलोचना
4.9 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना
  4.9.1 सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा एवं स्वरूप
  4.9.2 सौंदर्य या सौंदर्यात्मक मूल्य
  4.9.3 सौंदर्यात्मक मूल्यों की कोटियां
  4.9.4 सौंदर्य संबंधी तीन विश्वात्मक दृष्टिकोण
4.10 शैली वैज्ञानिक
  4.10.1 शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्व
  4.10.2 शैली वैज्ञानिक आलोचना का स्वरूप
4.11 नयी समीक्षा आलोचना प्रणालियां
4.12 सारांश
4.13 मुख्य शब्दावली
4.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

किसी कृति के गुण-दोषों को प्रकाश में लाना ही आलोचना नहीं है, बल्कि सामाजिक एवं कला के परिप्रेक्ष्य में कवि-कर्म की व्याख्या करना और उसे चर्वण योग्य बनाना ही आलोचक का कर्म है और यही वस्तुत: आलोचना, समालोचना या सत्समालोचना है। आलोचना जब काव्य का विश्लेषण, विवेचन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करती है तो वह कलात्मकता के साथ-साथ वैज्ञानिकता का भी आंचल थामती है। काव्य जहां निष्कर्ष के प्रति उदासीन रहता है, वहां

टिप्पणी

आलोचना निष्कर्ष प्रदान करती है। क्योंकि निष्कर्ष या निर्णय के लिए किसी काव्य कृति का विश्लेषण एवं विवेचन अपरिहार्य है, जबकि विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति का एक अंग है।

भरतमुनि से लेकर आचार्य भामह, दंडी, राजशेखर, मम्मट, विश्वनाथ, पं. जगन्नाथ तक संस्कृत में समालोचना बहुत विकसित रही है। हिंदी साहित्य में काव्यशास्त्रीय चिंतन की लंबी परंपरा रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा इन श्रेष्ठ आलोचकों ने इस साहित्य को समृद्ध किया। भारतीय काव्यशास्त्र को प्रासंगिक सिद्ध किया तथा रस, अलंकारों, रीति वक्रता, ध्वनि और औचित्य की गरिमामयी उपस्थिति को आवश्यक व प्रासंगिक बताया। आज 'समालोचना', 'समीक्षा' या 'आलोचना' के नाम से जो विधा जानी जाती है वह संस्कृत की इस सैद्धांतिक आलोचना से सर्वथा भिन्न है। डॉ. गुलाबराय का कथन है- "आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करना है।" आलोचना का प्रारंभ रीतिकाल से पहले ही शुरू होता है। रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य रीतिवादी आलोचना से प्रभावित है और लक्षणों के उदाहरण रूप में रचा गया है। उस समय विवेचना गद्य में नहीं, पद्य में की जाती थी। साहित्य को देखने-समझने की दृष्टि बदली तो उसके मूल्यांकन की कसौटी भी बदलती गई।

हिंदी आलोचना के सिद्धांत एवं प्रणालियों का व्यवस्थित एवं विधिवत विकास आधुनिक काल में हुआ। गद्य साहित्य के विकास के साथ-साथ आलोचना भी समृद्ध होती गई। आलोचना के विकास को इसके साहित्य के माध्यम से देखा जाता है। आलोचना साहित्य को चार वर्गों-भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग तथा शुक्लोत्तर युग में बांटकर इसका अध्ययन किया जाता है। इन युगों का नामकरण इनके प्रवर्तक आचार्यों के नाम पर पड़ा। भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल वे महत्वपूर्ण आलोचक हैं जिन्हें आधारशिला माना जाता है। इसके साथ ही आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. राम विलास शर्मा आदि महत्वपूर्ण आलोचक हैं जिन्होंने अपने चिंतन से आलोचना पद्धतियों को समृद्ध किया और परवर्ती आचार्यों के लिए प्रेरक बने।

हिंदी आलोचना जगत में अनेक सिद्धांत प्रसिद्ध हुए, जिनमें लोकमंगल का सिद्धांत और आकर्षण-शक्ति सिद्धांत का वर्णन यहां किया जा रहा है। इसके साथ ही स्वच्छंदतावादी, मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय और सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा पद्धतियां भी विकसित हुईं। 1950 के बाद हिंदी आलोचना का विकास नये संदर्भों में नयी आवश्यकता की पूर्ति हेतु सही दिशा में अग्रसर हुआ। नयी आलोचना में कृति को ही आधार बनाया गया। नयी आलोचना में रचना की संगति पर विशेष धयान दिया गया। रचना की मूल्यगत प्रासंगिकता को भी ध्यान में रखा गया। इससे आलोचना कृति की तह तक पहुंच सकी। व्यक्ति स्वातंत्र्य के सिद्धांतों को लेकर साहित्य की जो धारा इस काल में विकसित हुई और उसके जिन मूल्यांकन सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ, उन्हें इस वर्ग में रखा गया। उसे 'नयी कविता' या 'नवलेखन' की तर्ज़ पर 'नयी आलोचना' नाम दिया गया। इस वर्ग के आलोचकों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य स्वीकार कर साहित्य की नयी मर्यादाओं की स्थापना की। मानवीय मूल्य, बौद्धिकता, आधुनिकता क्षण के महत्व, सृजनात्मकता, विषय की उपेक्षा, काव्य का महत्व

टिप्पणी

एवं कलाकार के अंतर्मन की परख आदि साहित्य-मूल्यों के साथ ही नये समीक्षकों ने काव्य में लय के प्रश्न को भी उठाया। नये शैली वैज्ञानिकों के उदय के साथ ही समीक्षा की नयी पद्धतियों का विकास हुआ। इन सभी समीक्षा पद्धतियों का विस्तृत अध्ययन यहां किया जा रहा है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- हिंदी आलोचना के सिद्धांत एवं प्रणालियों को परिभाषित कर पाएंगे;
- हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन और आलोचना के स्वरूप की पहचान कर पाएंगे;
- प्रमुख आलोचना सिद्धांतों-लोकमंगल एवं आकर्षण-शक्ति सिद्धांतों की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- रचना के तीन क्षणों की व्याख्या कर पाएंगे;
- स्वच्छंदतावादी आलोचना पद्धति की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- मार्क्सवादी आलोचना के स्वरूप का विश्लेषण कर पाएंगे;
- समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति के सिद्धांतों का विवेचन कर पाएंगे;
- सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना मूल्यों की व्याख्या कर पाएंगे;
- शैली वैज्ञानिक एवं भाषिक सौंदर्य के आपसी संबंधों की पहचान कर पाएंगे;
- नयी समीक्षा की आलोचना प्रणालियों का विश्लेषण कर पाएंगे।

4.2 हिंदी आलोचना के सिद्धांत और प्रणालियां

आलोचना–व्युत्पत्तिपरक अर्थ–'आ' उपसर्ग पूर्व लोच् 'दर्शने' धातु के साथ 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से 'आलोचन' एवं 'टाप्' (स्त्रीलिंग) प्रत्यय के लगने से 'आलोचना' शब्द व्युत्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है–किसी वस्तु को चारों ओर से देखना या विचार करना। व्यावहारिक रूप में हम यह कह सकते हैं कि किसी वस्तु या विधा पर किसी या किन्हीं आधारों पर विचार करना या परीक्षण करना आलोचना है। कोई भी वस्तु, विधा या व्यक्ति जब हमारे समक्ष उपस्थित होता है तो हमारे मस्तिष्क में उसके प्रति एक भौतिक प्रतिक्रिया होती है और कुछ क्षण में उस वस्तु, विधा या व्यक्ति के संबंध में कुछ धारणाएं जन्म ले लेती हैं। ये धारणाएं ही हमें उन वस्तुओं के संबंध में एक निश्चित दृष्टि प्रदान करती है। वस्तुतः इस दृष्टि का नाम ही आलोचना है।

जब हम 'आलोचना' शब्द को उसके पारिभाषिक अर्थ के संदर्भ में देखते हैं तो प्रतीत होता है कि 'आलोचना' साहित्य की वह विधा है, जो कलाकार की सृष्टि में निहित रहस्य को सर्वजन हिताय, साकार रूप प्रदान करती है। आलोचक किसी कृति को हृदयंगम करता है, उसके रस-प्रवाह में अपने को निमग्न कर देता है और फिर उसकी विशेषताओं पर विचार करता हुआ उसकी उपलब्धियों एवं कमियों का खाका खींचता है। इतना ही नहीं कृतियों को

टिप्पणी

श्रेणीबद्ध करना, लक्ष्य-ग्रंथों के आधार पर लक्षणों की स्थापना करना या फिर उन लक्षणों के आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन करना एवं उस पर अपना निर्णय देना या अन्य कृतियों को उसके समकक्ष रख कर तुलनात्मक अध्ययन करना आदि समस्त स्थितियां भी आलोचना के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत ही आती है। आजकल आलोचना का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया है। आज का पाठक केवल इतने से ही संतुष्ट नहीं होता कि किसी कृति के अध्ययन के पश्चात वह कौन-सी रस-धारा में निमग्न हुआ, बल्कि उसकी दृष्टि कृति के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर भी टिकती है। वास्तविकता यह है कि सहृदय सामाजिक काव्य कृति में जीवन के उन समस्त उत्थान-पतनों की सटीक झांकी पा लेना चाहता है, जिसे उसने स्वयं भोगा है या अन्य लोग जिसे भोग रहे हैं। इतना ही नहीं वह उसे भी जान लेना चाहता है, जिसे वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में परिणाम स्वरूप वह भोग सकता है। कवि या कलाकार ने बहुत संभव है सहृदय-सामाजिक की इन समस्त क्षुधाओं को परितृप्त करने का प्रयास अपनी कृति में किया हो, किंतु सभी लोग उसका अनुसंधान कर सकें, यह आवश्यक नहीं है। फलतः कवि कर्म की उन समस्त उपलब्धियों को प्रकाश में लाना ही आलोचना का कार्यक्षेत्र है। वस्तुतः किसी कृति के गुण-दोषों को प्रकाश में लाना ही आलोचना नहीं है, बल्कि सामाजिक एवं कला के परिप्रेक्ष्य में कवि-कर्म की व्याख्या करना और उसे चर्वण योग्य बनाना ही आलोचक का कर्म है और यही वस्तुतः आलोचना, समालोचना या सत्समालोचना है।

आलोचना जब काव्य का विश्लेषण, विवेचन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करती है तो वह कलात्मकता के साथ-साथ वैज्ञानिकता का भी आंचल थामती है। काव्य जहां निष्कर्ष के प्रति उदासीन रहता है, वहां आलोचना निष्कर्ष की अनदेखी नहीं कर सकती ओर सही निष्कर्ष वैज्ञानिक पद्धति के बिना संभव नहीं है। क्योंकि निष्कर्ष या निर्णय के लिए किसी काव्य कृति का विश्लेषण एवं विवेचन अपरिहार्य है, जबकि विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति का एक अंग है।

विद्वानों ने अत्यंत सावधानी के साथ आलोचक के लिए कतिपय अपरिहार्य गुणों का निर्धारण किया है जो इस प्रकार हैं–

(क) विषय का निष्णात पंडित,

(ख) निष्पक्षता,

(ग) अभिव्यक्ति की क्षमता और

(घ) सहृदयता।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में गद्य साहित्य के अभाव के कारण अथवा अन्य कारणों से आलोचना के स्वतंत्र विकास के कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं होते। उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य की तरह किसी विद्वान या भावुक कलाकार की किसी कवि या कृति पर की गई कोई आलोचनात्मक टिप्पणी भी उलपब्ध नहीं होती। फलतः कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के आदि काल में काव्यशास्त्र या आलोचना जैसी किसी विधा का अस्तित्व नहीं था।

कतिपय विद्वान कवियों द्वारा अपने काव्य-ग्रंथों में व्यक्त उन काव्यशास्त्रीय उक्तियों में आलोचना के विकास का दर्शन करते हैं, जो उन्होंने प्रसंगवश अपने संबंध में, अपनी कृति के संबंध में अथवा काव्यशास्त्र के किसी पक्ष या अंग के संबंध में कहीं है। उदाहरण के लिए विद्यापति, प्रसिद्ध हिंदी कवि मलिक मुहम्मद जायसी, महाकवि तुलसीदास। इन कवियों ने या तो अपने संबंध में कुछ कह दिया है या फिर किसी काव्य-संबंधी सामान्य उक्ति पर कथन कर दिया है, जो परंपरागत संस्कृत साहित्य से चलो आ रही है।

टिप्पणी

आलोचना साहित्य का बीज-वपन निश्चय ही भक्तिकाल में हो गया था, किंतु यह बीज वपन कवियों की व्यक्तिगत उक्तियों से नहीं अपितु विद्वान सहृदय पाठकों की उन सूक्तियों से है जो किसी कृति के रस-सागर में निमग्न होने के पश्चात उद्गमित हुई है। भक्तिकाल में हमारा आलोचना के दो रूपों से परिचय होता है। एक तो शास्त्रीय या सैद्धांतिक आलोचना से, जिसका शुद्ध परंपरागत शास्त्रीय रूप नंददास के 'रस मंजरी' ग्रंथ में उपलब्ध होता है। दूसरे, व्यावहारिक आलोचना के तुलनात्मक एवं प्रभावात्मक रूपों का दर्शन होता है, जब कोई विद्वान किसी कृति के चिंतन और मनन के पश्चात अपने प्रभाव की अभिव्यक्ति कर बैठा है, यथा–

किधौं सूर को सर लगौ किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लगौ तनमन धुनत शरीर॥

अनेक विद्वानों का अभिमत है कि स्वयं सूरदास जी ने 'साहित्य-लहरी' ग्रंथ का प्रणयन किया था जिसमें साहित्य-शास्त्र संबंधी अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।

जहां तक प्रभावात्मक आलोचना का प्रश्न है उसका बीज-वपन भी भक्ति काल में हो चुका था। तुलसी और सूर की श्रेणी में गंग कवि और कवि केशवदास के नामों का उल्लेख तत्कालीन आलोचक प्रायः करते रहे हैं। महाकवि तुलसीदास के संबंध में रहीम खानखाना की निम्नलिखित उक्ति प्रभावात्मक आलोचना का अच्छा उदाहरण है–

सुरतिय नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

इसी प्रकार संस्कृत शैली में सूरदास पर लिखी गई निम्नलिखित उक्ति को तुलनात्मक आलोचना का आधार माना जा सकता है, यथा–

उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बलवीर।
केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुन धीर॥

रीतिकालीन आचार्यों ने हिंदी साहित्य में एक प्रणालीबद्ध आलोचना की स्थापना की। यह इतर तथ्य है कि आधुनिककाल में आलोचना का जो स्वरूप उभर कर सामने आया, उसके साथ रीतिकालीन आलोचना का योगदान नगण्य है। आधुनिककाल में भी हमारे आलोचना-शास्त्र पर संस्कृत काव्यशास्त्र का अप्रतिम प्रभाव है। रसवादी आचार्य, रामचंद्र शुक्ल, डॉ. नगेंद्र प्रभृति विद्वान अपनी प्राचीन परंपरा से पूर्णतः जुड़े रहे किंतु इन्होंने प्राचीन काव्यशास्त्र का जो मौलिक विवेचन, सिद्धांतों की नवीन एवं सटीक व्याख्याएं तथा अपने परिवेश के साथ उन सिद्धांतों की संसिद्धि का जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह रीतिकालीन आचार्यों में उपलब्ध नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि रीतिकालीन आचार्यों का प्रमुख लक्ष्य लक्षणों की स्थापना न होकर स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करना था। फलतः लक्षण गौण हो गए और उदाहरण मनोरम और हृदयग्राही हो उठे।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. कवि-कर्म की व्याख्या करना और काव्य को चर्वण योग्य बनाने का कार्य किसका है?
2. किस काल में काव्यशास्त्र या आलोचना जैसी किसी विधा का अस्तित्व नहीं था?
3. आलोचना साहित्य का प्रारंभ किस काल में हुआ?
4. हिंदी साहित्य में प्रणालीबद्ध आलोचना की स्थापना का श्रेय किसे जाता है?

टिप्पणी

4.3 हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन और आलोचना का विकास

संस्कृत साहित्य के पश्चात काव्यशास्त्र की एक परंपरा, जो धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी उसकी पुनः स्थापना का श्रेय रीतिकालीन आचार्यों को ही जाता है। कम से कम इतना स्वीकार करने के लिए तो हमें तैयार रहना ही चाहिए कि द्विवेदी युगीन अनुवाद परंपरा ने जिस प्रकार कथा, नाटक, उपन्यास आदि के लिए जैसे एक आधारभूमि तैयार की, उसी प्रकार रीतिकालीन आचार्यों ने भी काव्यशास्त्र के लिए एक आधारभूमि तैयार की। परीक्षा गुरु और संयोगिता स्वयंवर जैसी कृतियों ने जिस प्रकार गोदान, कंकाल, लज्जा जैसे उपन्यासों को प्रेरणा दी उसी प्रकार रीतिकालीन आचार्यों के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों ने आचार्य शुक्ल और डॉ. नगेंद्र के व्यक्तित्व निर्माण में अपना योगदान किया है। दोनों ही आचार्य इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते। अतः रीतिकाल पर मौलिकता के अभाव की मुद्रा अंकित कर आगे निकल जाना न तो उचित ही है और न काम्य ही, अपितु ऐसा करके हम उन विद्वानों के परिश्रम के प्रति अन्याय ही करते हैं। स्वयं आचार्य शुक्ल ने महाराजा जसवंतसिंह के 'भाषाभूषण', मतिराम के 'रसराज' और 'ललित ललाम', सुखदेव मिश्र के 'वृत्त विचार' आदि ग्रंथों की प्रशंसा की है। रीतिकाल का इस दृष्टि से एक ऐतिहासिक महत्व तो है ही।

वस्तुतः काव्य साधना के अनुरूप आलोचना का तात्कालिक सही विकास आधुनिककाल में ही हुआ है। इसके अनेक कारण हैं।

1. शास्त्रीय विवेचन एवं काव्य-विश्लेषण के लिए गद्य का होना परमावश्यक होता है। आधुनिककाल में गद्य लेखन का आविर्भाव हो चुका था, जो आधुनिककाल के आचार्यों के लिए अत्यंत सुविधाजनक रहा।
2. आंग्ल भाषा के पठन-पाठन ने विद्वानों को विवेचन एवं विश्लेषण की मौलिक दृष्टि प्रदान की, इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता।
3. अनेक सांस्कृतिक विद्वानों ने भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का श्रीगणेश किया, जिससे संस्कृत भाषा के अध्ययन की ओर विद्वानों की रुचि बढ़ी और हमने संस्कृत काव्यशास्त्र को नये परिप्रेक्ष्य में देखने और तदनुरूप उसकी व्याख्या करने का प्रयास किया।
4. पाश्चात्य जगत की औद्योगिक क्रांति ने भी भारतीय मनीषियों को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की तथा जीवन के समस्त पहलुओं को उसके उसी रूप में देखने की ओर उन्मुख किया। फलतः हम काव्य में प्राचीन आदर्शों, काव्य के विभिन्न अंगों एवं उपांगों के साथ-साथ जीवन के उन पहलुओं के विवेचन की ओर भी उन्मुख हुए जिसे हम भोग रहे थे।
5. काव्य को राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में भी देखने का प्रयास किया गया और जीवन के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं को भी काव्य का अभिन्न अंग मान कर काव्य में उसे खोजने का प्रयास किया। फलतः आलोचना का बहुमुखी विकास हुआ और काव्य के प्राचीन मानदंड आज की आलोचना के केवल एक अंग (सैद्धांतिक या शास्त्रीय आलोचना) के रूप में ही समाहित होकर रह गए।

टिप्पणी

संस्कृत काव्यशास्त्र में जिन विभिन्न संप्रदायों का उद्‌गम हुआ था, वे काव्य के भाव पक्ष या कला पक्ष तक सीमित हो गए। आज का आलोचक रस-निष्पत्ति की शास्त्रीय व्याख्या से संतुष्ट नहीं होना चाहता, बल्कि वह काव्य के प्रतिपाद्य या कथ्य का विवेचन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक दृष्टियों से करना चाहता है और इन सब दृष्टियों से यह कहां तक सफल और असफल रहा है, उसका मूल्यांकन कर उस पर अपना निर्णय भी देना चाहता है। इन सब कारणों से आलोचना का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत होता चला गया। इस दृष्टि से आधुनिक काल के आलोचना साहित्य को चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) भारतेंदु युग (2) द्विवेदी युग (3) शुक्ल युग, और (4) शुक्लोत्तर युग। कतिपय विद्वान आचार्य शुक्ल को प्रमुख बिंदु मान कर इसे केवल तीन युगों में ही विभाजित करना अधिक उपयुक्त समझते हैं; यथा–(1) शुक्ल पूर्व युग, (2) शुक्ल युग, और (3) शुक्लोत्तर युग।

प्रस्तुत प्रसंग में हम प्रथम वर्गीकरण को ही आधार मानकर विवेचन कर रहे हैं–

1. **भारतेंदु युग**–भारतेंदु युग में किसी कृति के गुण-दोषों का विवेचन ही आलोचना का लक्ष्य रहा। दूसरे इस युग में आलोचना पुस्तकाकार में उभर कर नहीं आई, बल्कि लेखों के माध्यम से पुस्तकों की विस्तृत समालोचना लिखी जाने लगी। इसका सूत्रपात सर्वप्रथम पं. बदरीनारायण चौधरी ने अपनी 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका में किया। आपने श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की कड़ी एवं विशद आलोचना अपनी पत्रिका में प्रकाशित की। उधर स्वयं भारतेंदु जी ने अपनी पत्रिका 'कवि वचन सुधा' में 'हिंदी कविता' शीर्षक एक लेख लिखा, जिसमें कविता के गुण-दोषों का सम्यक विवेचन निहित है। इस युग में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण आलोचना को एक आधार भूमि प्राप्त हुई, यथा–'हरिश्चंद्र चंद्रिका', आनंद कादंबिनी, सार सुधा निधि, हिंदी प्रदीप आदि पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार के आलोचनात्मक लेखों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। उदाहरणार्थ हिंदी प्रदीप में प्रकाशित 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना, आनंद कादंबिनी में 'बंग विजेता' उपन्यास की आलोचना आदि कुछ इस प्रकार के आलोचनात्मक लेख हैं, जिनमें गुण-दोषों के विवेचन के साथ-साथ विद्वान लेखक कृतियों के आंतरिक मूल्यांकन एवं सिद्धांतों की चर्चा की ओर भी उन्मुख हुए हैं। स्वयं भारतेंदु जी ने 'नाटक' नामक एक लेख (जो पुस्तिका के रूप में भी उपलब्ध है) में नाटकीय सिद्धांतों की चर्चा के साथ-साथ नाटक में युगानुरूप परिवर्तन एवं परिवर्धन का सुझाव भी प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त आकलन के पश्चात संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आलोचना का जो स्वरूप आज उपलब्ध होता है, उसकी मजबूत आधार-शिला की स्थापना भारतेंदुयुगीन विद्वानों ने की, जो आगे चल कर फलती-फूलती चली गई। भारतेंदु युग की आलोचना को हम व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत ही परिणमित कर सकते हैं।

2. **द्विवेदी युग**–भारतेंदु जी के पश्चात हिंदी साहित्य के प्रांगण में लौह-पुरुष पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पदार्पण किया। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी संस्कृत के प्रकांड पंडित एवं काव्य में नैतिकता के प्रबल समर्थक थे। वे काव्य में भाषागत

टिप्पणी

त्रुटियों के भी विरुद्ध थे। इन सबका तत्कालीन आलोचना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। द्विवेदीयुगीन आलोचना साहित्य की सर्वोपरि विशेषता यह है कि लेखों, टिप्पणियों आदि के साथ कृति एवं कृतिकारों पर स्वतंत्र पुस्तकों के प्रणयन की प्रणाली का प्रारंभ हुआ। दूसरे, इस युग में सामान्य कोटि की तुलनात्मक आलोचना का भी सूत्रपात हुआ, जिसका आगे चल कर परिष्कृत एवं प्रांजल रूप में विकास हुआ। तीसरे, पाश्चात्य आलोचना एवं प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र का स्वरूप हिंदी आलोचना साहित्य में अधिक निखार के साथ प्रविष्ट हुआ। इतना सब होने पर भी हम द्विवेदी युगीन आलोचना के स्तर को उच्चकोटि का नहीं कह सकते। हां! फिर भी आगामी विद्वानों के लिए आधारभूमि तैयार करने में तथा नयी प्रकाशित पुस्तकों की भाषाई त्रुटियों के दिग्दर्शन में द्विवेदी युगीन आलोचकों का योगदान प्रशंसनीय है।

इस युग में सर्वप्रथम पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'हिंदी कालिदास की आलोचना' पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें कालिदास की अनूदित पुस्तकों की भाषाई त्रुटियों की ओर संकेत किया गया है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी की ही 'विक्रमाङ्क-देव चरित चर्चा, नैषध चरित चर्चा और कालिदास की निरंकुशता' पुस्तकें प्रकाशित हुई। ये सब संस्कृत की परंपरागत रूढ़ शैली में लिखी गई हैं एवं इनका केवल ऐतिहासिक महत्व ही है।

इसी युग में मिश्र बंधुओं का नाम उल्लेखनीय है। इनके 'हिंदी नवरत्न' और 'मिश्रबंधु विनोद' ग्रंथ ही अधिक चर्चित हैं। उक्त दोनों ही ग्रंथ किसी भी प्रकार की उत्तम आलोचना का स्वरूप प्रस्तुत नहीं करते। फलतः आगे चलकर हिंदी जगत ने इन्हें पूर्णतः नकार दिया। 'हिंदी नवरत्न' ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में देव और बिहारी को लेकर एक अच्छा खासा विवाद अवश्य उपस्थित कर दिया। इससे एक लाभ अवश्य हुआ कि कुछ विद्वानों ने बिहारी और देव की सूक्ष्म काव्यगत विशेषताओं का भी अवलोकन किया। इस विवाद में प्रविष्ट पं. कृष्णबिहारी मिश्र, पं. पद्मसिंह शर्मा और लाला भगवानदीन को भी नहीं भुलाया जा सकता। जहां पं. कृष्णबिहारी मिश्र ने अत्यंत संयत एवं प्रौढ़ शैली में बिहारी और देव की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर 'देव' को बिहारी की तुलना में 'प्रमुख स्थान' दिया तो वहीं पद्मसिंह शर्मा ओर लाला भगवानदीन ने बिहारी को श्रेष्ठ सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। यद्यपि आलोचना के क्षेत्र में खंडन-मंडनात्मक प्रवृत्ति तथा किसी को छोटा-बड़ा बताने की आदत उचित नहीं है तो भी इस कारण से सूक्ष्म अन्वेषण, भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष का सम्यक विवेचन तो उभर कर आता ही है। एक के दोष स्पष्ट होते हैं तो दूसरे के गुण और सुधी पाठकों को अपने विवेक के अनुसार उनके चयन का अवसर प्राप्त होता है। इसी प्रसंग में पदुमलाल पन्नालाल बख्शी के 'विश्व साहित्य' ग्रंथ का उल्लेख भी अत्यंत आवश्यक है, जिसके कारण हिंदी आलोचकों को पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अध्ययन की प्रेरणा मिली और जिसका सफल परिपाक आगे चल कर डॉ. नगेंद्र की कृतियों में हुआ।

3. **शुक्ल युग**–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात एक सशक्त, मेधावी एवं सूक्ष्म अन्वेषणकर्ता व्यक्तित्व ने आलोचना के क्षितिज पर नवोन्मेष किया। इन्हें पं. रामचंद्र शुक्ल के नाम से जाना जाता है। आलोचना के क्षेत्र में इन्हें युग पुरुष की

टिप्पणी

संज्ञा दी जाती है। इन्होंने अपनी पारदर्शी दृष्टि एवं सूक्ष्म चिंतन के द्वारा एक कुशाग्र और तत्व पारखी के रूप में हिंदी आलोचना को नया आयाम, ऊंचा अर्थ एवं आशय प्रदान किया। वस्तुतः आचार्य शुक्ल ने प्राचीन काव्यशास्त्र के सार तत्व को ग्रहण कर उसमें पाश्चात्य समीक्षा का पुट देकर युगानुरूप काव्य कृतियों का अवलोकन कर आलोचना साहित्य को एक नया रूप प्रदान किया। आचार्य शुक्ल के लिए तुलसीदास एक आदर्श थे। फलतः उनकी समीक्षा पद्धति लोक मंगल की आधारशिला पर नैतिकता की वेश-भूषा में रसदात्री गंगा के रूप में साकार हो उठी। आपने आलोचना की जिस किसी भी धारा या शाखा का स्पर्श किया, उसे ही तलस्पर्शिनी एवं गगन चुंबिनी प्रकाश-शिखा का रूप प्रदान कर दिया। आपके 'साधारणीकरण' और 'व्यक्तिवैचित्र्यवाद', कविता क्या है? 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था' आदि अनेक लेखों में तथा 'रस-मीमांसा' जैसे ग्रंथों में सैद्धांतिक आलोचना का प्रसाद आलोकित है तो गोस्वामी तुलसीदास, भ्रमरगीत सार की भूमिका और जायसी ग्रंथावली की भूमिका में व्याख्यात्मक एवं निर्णयात्मक आलोचना के दर्शन होते हैं। आपके प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में कवि, युग एवं काव्य विधाओं के विकास के संबंध में प्रदत्त टिप्पणियां भी आलोचना के विभिन्न आयामों का उद्घाटन करती है। संक्षेप में कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल की मेधा का संस्पर्श पाकर हिंदी आलोचना ने एक स्थायी समृद्ध साहित्यानुरूप स्वरूप ग्रहण कर लिया तथा वह भावी आलोचकों के लिए प्रकाश स्तंभ का कार्य करने लगी।

इस युग के अन्य आलोचकों में डॉ. श्यामसुंदरदास का 'साहित्यालोचन', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का 'हमारे साहित्य निर्माता', डॉ. सत्येंद्र का 'गुप्तजी की कला', डॉ. नगेंद्र का 'सुमित्रानंदन पंत' आदि अनेक ग्रंथ उच्च कोटि की आलोचना के प्रतीक ग्रंथ कहे जा सकते हैं। इसी प्रसंग में पं. रामकृष्ण शुक्ल की 'सुकवि समीक्षा' भी उल्लेखनीय है।

4. **शुक्लोत्तर युग**–आचार्य शुक्ल द्वारा प्रशस्त मार्ग को और भी अधिक स्वच्छ एवं प्रांजल बनाने में शुक्लोत्तर आलोचकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सच तो यह है कि अब हिंदी-साहित्य में आलोचना की बाढ़-सी आ गई। इसमें दो प्रकार के आलोचक आते हैं–एक तो वे जो फैशन के लिए अथवा मार्केट में आने के लिए ही कुछ लिखना चाहते हैं जिनका वास्तविक आलोचना से दूर का भी कोई संबंध नहीं है। दूसरे, वे विद्वान मनीषी हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों, लेखों आदि से हिंदी आलोचना के गौरव को ही नहीं बढ़ाया, बल्कि आलोचना-साहित्य को अनेक नये आयाम भी प्रदान किए हैं। कुछ विद्वानों ने प्राच्य एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों का अत्यंत मार्मिक एवं सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत कर उनके साम्य-वैषम्य का स्पष्ट निदर्शन किया है। इन विद्वानों में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, और पं. हजारी प्रसाद हैं। दूसरे, वे विद्वान मनीषी हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों, लेखों आदि से हिंदी आलोचना के गौरव को ही नहीं बढ़ाया, बल्कि आलोचना-साहित्य को अनेक नये आयाम भी प्रदान किए हैं। कुछ विद्वानों ने प्राच्य एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों का अत्यंत मार्मिक एवं सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत कर उनके साम्य-वैषम्य का स्पष्ट निदर्शन किया है। इन विद्वानों में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,

टिप्पणी

डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, पं. रामदहिन मिश्र, प्रो. गुलाबराय, डॉ. सत्येंद्र, शिवदानसिंह चौहान, डॉ. रामविलास शर्मा एवं मूर्धन्य आलोचक डॉ. नगेंद्र के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी स्तर के अन्य भी सैकड़ों आलोचक आज अपना स्थान हिंदी साहित्य में बनाए हुए हैं। 21वीं सदी का आरंभ नयी कविता, अकविता तथा अनेक तरह की गद्य विधाओं का युग है अत: आलोचना का विस्तार भी उसी अनुपात में हुआ है।

आज आलोचना के नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य बदले हैं। भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से आक्रांत हुई है। शिक्षा का, रोजगार का, सरकारी नौकरियों का, गृहस्थ जीवन का भी सकारात्मक उन्मेष हुआ। या यों कहें कि अभी पूरा नहीं हुआ। भारत अब भी गरीब और अशिक्षितों का देश है, अत: पूर्णता की दुहाई देना बेमानी है, क्योंकि एक सौ सत्ताइस करोड़ की जनसंख्या वाले इस प्रगतिवादी देश में एक साथ सब कुछ पूर्ण नहीं होगा। संक्रांति काल जैसी स्थिति में जीने वाला सामाजिक रचनाकार इन प्रभावों की छाया में लिखता है और आलोचक इन्हीं मूल्यों की आधार भूमि पर आलोचना करता है। कविता, निबंध, संस्मरण, उपन्यास, कहानी आदि हर विधा की आलोचना को व्यापक स्तर पर स्थान मिला है। आलोचक बढ़े हैं, रचनाकार बढ़े हैं और पाठक भी। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में पाठकों की रुचि वैविध्य के आधार पर रचनाओं का लेखन, पाठन, आलोचन तो चल ही रहा है साथ ही ऐसे तपस्वी, साधक, रचनाकार और आलोचक भी हैं जो कलम और दृष्टि को, चिंतन को अपनी आत्मा के अधीन रखकर आलोचना एवं लेखन करते हैं पूरी ईमानदारी और लोक मंगलकारी भावना के साथ। वे अपनी रचनात्मकता को व्यवसाय या निजी उद्देश्य की पूर्ति का अंग नहीं बनाते। बहरहाल स्थिति संतोषजनक है कि आलोचना की वेगवती धारा अपने सहस्रों रूपों में निर्बाध प्रवाहित है। अब युग नये आलोचकों का है, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, भगीरथ मिश्र, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. निर्मला जैन, मैनेजर पांडेय, विजय बहादुर सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि नामों के बाद–साथ और आगे-पीछे अनेक महत्वपूर्ण नाम हैं जो गद्य-पद्य साहित्य की आलोचना का पथ प्रशस्त कर रहे हैं। नये संघ, नये वाद और नयी विचारधारा ने दृष्टि को उतना न्यायसंगत तो नहीं रहने दिया जितना पूर्ववर्ती शुक्ल युग और शुक्ल पूर्व के युग में थी। अब रचना और आलोचना का कर्म वैसा नि:स्वार्थ, लोक कल्याणमयी, राष्ट्र प्रेम, आस्था और निष्ठा से ओतप्रोत नहीं रहा, लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि सबकी अपनी-अपनी अवस्थाएं एवं निष्ठाएं हैं, अपनी-अपनी परिस्थितियां और दृष्टिकोण हैं जिनका प्रभाव आलोचना में दिखाई देता है।

21वीं सदी के आरंभ में शिक्षा के साथ प्रत्येक मनुष्य में चाहे वह रचनाकार न भी हो, आलोचक न हो, साहित्य का ज्ञाता न हो, आलोचना करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। चेतना ने उसे स्वयं आलोचक बना दिया, ऐसी स्थिति में साहित्य के आलोचकों को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है कि वे अपनी सम्मति को ही ईमानदारी से प्रकट करें या बहुसंख्य सामाजिकों की बात रखें। कभी दोनों का मत एक हो सकता है कभी नहीं। ऐसे में वाद-विवाद बढ़ते हैं और इनके बीच आलोचना को और फलने-फूलने का अवसर मिलता है। अधिकतर आलोचना वाद

टिप्पणी

और समूह से ग्रस्त है। 'तू मेरी टांग खींचेगा तो मैं भी तेरी टांग खींचूंगा' की प्रवृत्ति में निजी स्वार्थों से घिर कर व्यक्तिगत राग-द्वेषों के नीचे रचना के साथ न्याय नहीं हो पाता। श्रेष्ठ रचनाएं कचरे के डिब्बे में या किसी कोने में पड़ी रह जाती हैं और निकृष्ट रचनाओं को बड़े-बड़े सम्मान और पुरस्कारों से नवाजा जा रहा है। आलोचना के लिए यह इस वर्तमान काल का कटु अनुभव है और कठोर एवं घृणित सत्य है। अपवादों के सहारे जैसे सृष्टि चलती रही है वैसे ही रचना और आलोचना का कार्य भी चलता रहेगा।

4.4 प्रमुख आलोचना सिद्धांत

विभिन्न काव्यशास्त्री काव्य के अध्ययन विश्लेषण के लिए अलग-अलग सिद्धांतों को लेकर आलोचना-जगत में अवतरति हुए और सभी ने अपनी विचारधारा को स्थापित करने का प्रयास किया। यहां आलोचकों द्वारा प्रतिस्थापित कुछ प्रमुख सिद्धांतों का विवेचन किया जा रहा है।

4.4.1 लोकमंगल का सिद्धांत

प्रख्यात आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी आलोचना के प्रमुख केंद्र माने जाते हैं। लोक चिंता, लोकधर्म, लोक जीवन, लोक हृदय, लोकादर्श आदि शुक्ल जी के जीवन दर्शन के आधार शब्द हैं। इन्हीं के भीतर अपनी समस्त समीक्षा-दृष्टि अंगी रूप में विद्यमान हैं। इसी केंद्रीय चिंतन की शब्दावली से शुक्ल जी ने काव्य का समस्त विवेचन 'लोक धर्म' और 'लोक मंगल' की दृष्टि से किया है। अपनी इस दृष्टि को समझने-समझाने में उन्होंने अनेक स्थानों पर लिखा है। जैसा कि चिंतामणि ने कई स्थानों पर लिखा है-

"कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहां जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।"

"सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके इसी लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।

उपर्युक्त इसी प्रकार की विचारभूमि में शुक्ल जी ने 'लोक हृदय' तथा लोक-मंगलवादी सिद्धांत की स्थापना की है। शुक्ल जी ने इस सिद्धांत के जरिये भाववादी आदर्शवादी-कलावादी दृष्टि का सीधा विरोध किया है। आचार्य शुक्ल की इसी दृष्टि को समझते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है- "मानव जीवन में भावों का प्रकृत रूप साहित्य में आकर बदल नहीं जाता-शुक्ल जी के तर्क की यह आधारशिला है। साहित्य के संबंध में जितनी भाववादी मान्यताएं हैं, वे साहित्य को जीवन से अलग करके देखती हैं। शुक्ल जी की मौलिक मान्यता यह है कि वे साहित्य के भावों और जीवन के भावों में बुनियादी अंतर नहीं है।

लोक के प्रति करुणा से भरकर रावण पर चढ़ाई करने वाले, राम का आदर्श ही शुक्ल को प्रिय है। इसीलिए 'रामचरितमानस' से उन्होंने अपने लोकादर्श को पुष्ट किया है। तुलसी ही उनके प्रिय कवि हैं। समाज की आवश्यकताओं से अनभिज्ञ सूरदास को तुलसी से बड़ा

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. काव्य साधना के अनुरूप आलोचना का सही विकास किस काल में हुआ?
6. भारतेंदु युग में पुस्तकों की विस्तृत समालोचना किस प्रकार लिखी जाने लगी?
7. कृति एवं कृतिकारों पर स्वतंत्र पुस्तकों के प्रणयन की प्रणाली का प्रारंभ कब हुआ?
8. आलोचना के क्षेत्र में युग पुरुष किसे माना जाता है?
9. किस युग में आलोचना का स्वस्थ एवं प्रांजल रूप देखने को मिला?

टिप्पणी

भक्ति पद देने पर भी वे सूर के लोक-धर्म की निंदा करते हैं और लोक धर्म का पालन करने के कारण ही राम में उनका मन रमता है। पश्चिम के कवि शैली में उन्हें दृष्टि के अनुकूल तत्व मिले हैं, वे लिखते हैं 'स्वतंत्रता के उन्मत उपासक, घोर परिवर्तनवादी शैली के महाकाव्य 'दि रिवोल्ट ऑफ इसलाम' के मादक-नायिका अत्याचारियों के पास जाकर उपदेश देने वाले, गिड़गिड़ाने वाले, अपनी साधुता, सहनशीलता और शांतवृत्ति का चमत्कार प्रदर्शन करने वाले नहीं हैं। वे उत्साह की उमंग में प्रचंड वेग से युद्ध-क्षेत्र में बढ़ने वाले, पाखंड, लोक-पीड़ा और अत्याचार देख पुनीत क्रोध के 'सात्विक तेज' से तमतमाने वाले या स्वार्थवश आततायियों की सेवा स्वीकार करने वालों की प्रति उपदेश प्रकट करने वाले हैं।

इस प्रकार 'लोक-पीड़ा' ने उनका विशेष ध्यान आकृष्ट किया है। मानवतावादी द्विवेदीयुगीन समीक्षादर्शों का उनमें परिष्कृत सुधार भी इसी रूप में हुआ है कि उन्होंने रहस्यवाद अतश्चेतना, कलावाद, सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद आदि सभी समाज विरोधी शक्तियों साहित्य एवं आलोचना में से निकालकर 'लोकमंगल की साधनावस्था' को स्थापित किया है।

समस्त संस्कृत साहित्य में लोक-दृष्टि की प्रधानता है। काव्य-प्रयोजन की चर्चा करते हुए भारतीय आचार्यों ने जीवन के कल्याणकारी मूल्यों की सदैव महत्व प्रतिष्ठा की है। अंग्रेजी के वे लेखक जिनके संपर्क में आचार्य थे, मूलतः कला को जीवन के लिए मानते थे। उनके प्रिय विचारकों में अरस्तू, लोंजाइनस, लोक, रूसो, कांट, रोलिंग, हीगल, शोपेनहावर, ह्यूम, मिल, अरविन स्पेन्सर, शैली, टेनीकल, वर्ड्सवर्थ, न्यूमैन रस्किन, अर्नोल्ड, टालस्टाय, डंटन, सेंटसबरी, एम्बर क्राम्बी, बर्स, फोल्ड, मिल्टन तथा रिचर्ड्स आदि प्रमुख हैं।

इनमें से कुछ कलावादियों को छोड़कर ज्यादातर लोकवादी हैं। इसी पृष्ठभूमि के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल में 'काव्य में लोक मंगल' के सिद्धांत हेतु 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' नामक लिखे गए निबंध में संपूर्ण काव्य का वर्गीकरण इसी आधार को लेकर किया है- ज्ञानियों की परवाह न करते हुए लोक जीवन पर ध्यान देते हुए शुक्ल ने काव्य को दो भागों में वर्गीकृत किया है-

1. आनंद की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले
2. आनंद की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को चलने वाले

आनंद की साधना या प्रयत्न-पक्ष के काव्यों में रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीयम्, हिंदी में रामचरितमानस, पद्मावत (उत्तरार्द्ध), हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो, छत्रप्रकाश इत्यादि प्रबंध काव्य, भूषण आदि कवियों के वीर रसात्मक मुक्तक तथा आल्हा आदि प्रचलित वीर गाथात्मक गीत। उर्दू के वीर रसात्मक मरसिये। यूरोपीय भाषाओं में इलियट, ओडेसी, पैराडाइज़ लास्ट, रिवोल्ट ऑफ इसलाम इत्यादि प्रबंध काव्य तथा पुराने बैलड।

आनंद की सिद्धावस्था का उपभोग-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों में प्रमुख हैं आर्या सप्तशती, गाथा सप्तशती, अमरशतक तथा गीत गोविंद। हिंदी में सूरसागर, कृष्ण भक्त कवियों की पदावली, बिहारी सतसई, रीतकाल के रासपंचाध्यायी, ऐसे वर्णनात्मक काव्य तथा आजकल की अधिकांश छायावादी कविताएं।

4.4.2 आकर्षण-शक्ति सिद्धांत

टिप्पणी

साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए दंडी, वामन, राजशेखर, कुंतक, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि विभिन्न काव्यशास्त्रियों ने जो भी परिभाषाएं दीं और काव्य की जो भी विशेषताएं बताईं उनसे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य में सौंदर्य का आकर्षण होता है। रीति, गुण और अलंकार आदि का लक्ष्य साहित्य में सौंदर्य या आकर्षण उत्पन्न करना है। आकर्षण-शक्ति के फलस्वरूप ही साहित्य पाठक को अपनी ओर आकर्षित करता चलता है। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने अपनी पुस्तक 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धांत' में लिखा है कि साहित्य की तीनों विशेषताओं रसात्मकता, रमणीयता और आनंद का समन्वय करते हुए 'साहित्य विज्ञान' में साहित्य की सामान्य परिभाषा इस प्रकार दी गई है– "साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौंदर्य या आकर्षण से युक्त रचना है जिसके अर्थ-बोध से सामान्य पाठक को आनंद की अनुभूति होती है।"

आकर्षण-शक्ति सिद्धांत के अनुसार कथ्य या द्रव्य का रूपांतरण कवि के द्वारा इस प्रकार होना चाहिए कि उसकी शक्ति जाग्रत एवं उद्दीपन होकर पाठक को आकर्षित कर सके। इस सिद्धांत के अनुसार विचार-प्रधान साहित्य का भी उतना ही महत्व है जितना भाव-प्रधान साहित्य का। दोनों में ही एक के बाद एक बौद्धिक एवं भावात्मक आकर्षण की उदीप्ति होती है। आकर्षण जितना ही प्रबल, सशक्त एवं गहरा होगा हमें अंतरतम तक प्रभावित कर काव्यात्मक आनंद अर्थात रस की अनुभूति कराएगा।

हम कह सकते हैं कि साहित्य की आत्मा या मूल शक्ति सौंदर्य या आकर्षण-शक्ति है। वस्तुतः साहित्य के प्रसंग का प्रयोग अभिधात्मक अर्थ में न होकर लाक्षणिक अर्थ में ही होता है। भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यकारों एवं आलोचकों ने समय-समय पर 'आकर्षण' एवं 'आकर्षण-शक्ति' का उल्लेख किया है। भारतीय आचार्यों में भामह, दंडी, रुय्यक, रामचंद्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुंदरदास, डॉ. गुलाबराय, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेंद्र, सुमित्रानंदन पंत, प्रभूति ने तथा पाश्चात्य लेखकों में लोंजाइनस, होरेस, दमित्रियस, क्विण्टिलियन, पोप, कोलरिज, मैथ्यू आर्नल्ड, वाल्टरपेटर आदि ने साहित्य विवेचन के प्रसंग में आकर्षण-शक्ति का उल्लेख करते हुए इसके अस्तित्व को मान्यता प्रदान की है। आकर्षण को लेकर कुछ विद्वानों के मत इस प्रकार हैं–

डॉ. नगेंद्र के शब्दों में, "...काव्य में घटना हमको निश्चय ही 'आकृष्ट' करती है। ...किंतु इस 'आकर्षण' का रहस्य घटना की क्रिया प्रतिक्रिया में न होकर उसमें निहित मानव तत्व एवं भाव में होता है।"

सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में, "...कविता की भाषा का प्रमाण राग है। 'राग' का अर्थ है 'आकर्षण', यह वह शक्ति है जिसके विद्युतस्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुंचते हैं।"

लोंजाइनस के अनुसार, "पाठक कुछ तो घटनाओं के चयन से 'आकर्षित' होता है और कुछ उनके पारस्परिक संघटन कौशल से।"

होरेस के शब्दों में– "कविताओं का सुंदर होना ही पर्याप्त नहीं, वे 'आकर्षक' भी होनी चाहिए उनमें ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि श्रोता के मन को जिधर चाहे खींच लें।"

टिप्पणी

दमित्रियस के अनुसार, "प्राय: विषय-वस्तु 'आकर्षणहीन' और विकर्षक होती है, किंतु लेखक उसे अपनी चारुता का स्पर्श प्रदान करता है।

क्विण्टिलियन के शब्दों में, "अलंकारों की सबसे बड़ी शक्ति अभिभाषण को 'आकर्षण' युक्त बना देना है।"

आकर्षण का उल्लेख यत्र-तत्र करने के बाद भी अभी तक किसी ने भी इस काव्यगत आकर्षण-शक्ति के रहस्य को उद्घाटित कर 'आकर्षण-शक्ति' जैसा सिद्धांत स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। बिना किसी पूर्व प्रचलित सिद्धांत के आकर्षण-शक्ति की चर्चा होना इस बात का प्रमाण है कि यह एक सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक तत्व है जिसे बिना प्रतिपादित सिद्धांत के मान्यता प्राप्त है। पर साहित्य की मूल शक्ति को और अधिक स्पष्टता एवं गंभीरता से समझने के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के आधार पर इसके स्वरूप को समझना आवश्यक है।

आकर्षण-शक्ति का वैज्ञानिक आधार

आकर्षण-शक्ति सिद्धांत आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित है। भौतिक विज्ञान के अनुसार ब्रह्मांड के सभी पदार्थों में दो आधारभूत तत्वों का अस्तित्व है–द्रव्य (Matter) और शक्ति (Energy)। ये दोनों तत्व भी मूलत: एक हैं क्योंकि समस्त द्रव्य का रूपांतर शक्ति में तथा शक्ति का रूपांतर द्रव्य में होता रहता है। सबके मूल में एक तत्व शक्ति ही है। यह शक्ति ब्रह्मांड के कण-कण में व्याप्त है तथा समय-समय पर विभिन्न तत्वों एवं पदार्थों के रूप में परिवर्तित होती रहती है। ब्रह्मांड में व्याप्त शक्ति को न तो कम किया जा सकता है और न ही इसमें वृद्धि की जा सकती है और न ही इसे नष्ट किया जा सकता है। यह शक्ति अनंत, अक्षय और अमर है। इस शक्ति की दो अवस्थाएं होती हैं–1. सक्रिय और 2. निष्क्रिय। इसी को हम 'जाग्रत' एवं 'सुषुप्त' अवस्था कह सकते हैं। जब भी शक्ति जाग्रत एवं सक्रिय होती है तो वह एक साथ दो रूपों में कार्य करती है–आकर्षण एवं विकर्षण। एक दिशा का विकर्षण ही दूसरी दिशा में आकर्षण है, अत: संक्षेप में शक्ति के सभी सक्रिय रूपों का आकर्षण-शक्ति की संज्ञा देना उचित रहेगा।

ब्रह्मांड में व्याप्त यह आकर्षण-शक्ति अलग-अलग क्षेत्रों, स्तरों व माध्यमों में अलग-अलग रूपों में कार्य करती है जिससे इस एक शक्ति को अनेक नाम दिए जाते हैं– यथा– गुरुत्वाकर्षण शक्ति, चुंबक शक्ति, विद्युत शक्ति, आणविक शक्ति, यौनाकर्षण शक्ति, मानसिक शक्ति आदि। ये सभी शक्तियां आकर्षण-विकर्षण के रूप में कार्य करती हैं तथा इनकी प्रवृत्तियां समान हैं।

भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान एवं मनोविज्ञान के आधार पर शक्ति के विभिन्न रूपों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद आकर्षण-शक्ति की आठ प्रवृत्तियां ऐसी हैं जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध होती हैं।

गणपति चंद्र गुप्त ने अपनी पुस्तक 'साहित्यिक निबंध' में आकर्षण-शक्ति के आठ स्वरूप निर्धारित किये हैं, ये हैं–

1. शक्ति सदा आकर्षण-विकर्षण के रूप में कार्य करती है।
2. शक्ति का संगठन त्रिगुणात्मक तत्वों के रूप में होता है जिन्हें धनात्मक (Positive), ऋणात्मक (Negative) एवं उभयात्मक (Natural) तत्वों की संज्ञा दी जा सकती है।

टिप्पणी

3. शक्ति के धनात्मक एवं ऋणात्मक तत्वों में परस्पर आकर्षण रहता है– जबकि स्वजाति के प्रति विकर्षण रहता है।
4. शक्ति की दो अवस्थाएं होती हैं– जाग्रत एवं सुषुप्त। जाग्रत अवस्था में शक्ति कार्य करती है और सुषुप्तावस्था में निष्क्रिय हो जाती है। शक्ति के जब धनात्मक एवं ऋणात्मक तत्वों में परस्पर संतुलन या साम्य रहता है तो शक्ति निष्क्रिय रहती है जबकि इस संतुलन के भंग हो जाने पर शक्ति जाग्रत एवं सक्रिय हो जाती है।
5. सक्रिय हो जाने के बाद शक्ति चार प्रक्रियाओं के रूप में कार्य करती है– संपर्क स्थापना या संयोजन, संप्रेषण, द्रवण और अभिव्यक्ति।
6. आकर्षण-शक्ति विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में कार्य करती है, एक स्तर पर कार्य करने वाला रूप दूसरे स्तर के लिए प्राय: अनुपयोगी हो जाता है।
7. आकर्षण-शक्ति सदा वक्र एवं चक्राकार गति से आवर्तन-परिवर्तन के रूप में आगे बढ़ती है।
8. शक्ति का लक्ष्य सदा अपूर्णता से पूर्णता की ओर वैषम्य से साम्य की ओर तथा असंतुलन से संतुलन की ओर अग्रसर होने का रहता है।

आकर्षण-शक्ति की उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियां साहित्य की शक्ति में भी उपलब्ध होती हैं।

साहित्य की आकर्षण-शक्ति

साहित्य की आकर्षण-शक्ति विश्व में व्याप्त शक्ति का ही एक रूप है। जिस प्रकार वैज्ञानिक विभिन्न भौतिक पदार्थों से उनमें निहित शक्ति को जगाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है, उसी प्रकार साहित्यकार भी विभिन्न मानसिक तत्वों की शक्ति को जगाकर उसे एक ऐसा रूप देता है जिसे हम साहित्य कहते हैं। साहित्यकार का द्रव्य मानसिक क्षेत्र का होता है तथा उसका माध्यम भाषा का होता है अत: उसकी कार्य-प्रणाली अत्यंत सूक्ष्म एवं अदृश्य होती है।

साहित्यकार द्वारा प्रयुक्त द्रव्य को भी प्रमुख रूप से तीन तत्वों में विभिक्त किया जाता है–(1) भाव, (2) विचार, (3) कल्पना। ये तत्व क्रमश: धनात्मक, ऋणात्मक एवं उभयात्मक कोटि के कहे जा सकते हैं। साहित्य की आकर्षण-शक्ति को उद्दीप्त करने के लिए धनात्मक एवं ऋणात्मक तत्वों का संयोग ही पर्याप्त नहीं है, अपितु कल्पनाशक्ति का जागरण भी अपेक्षित है। भावों और विचारों का संपर्क तो सामान्य जीवन में भी रहता है, किंतु कला और साहित्य में कल्पना की शक्ति सर्वाधिक सक्रिय रहती है जिससे कटु भाव और शुष्क विचार भी आकर्षक बन जाते हैं। इसके साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि साहित्य में कोरे भाव, कोरे विचार या कोरी कल्पना शक्ति से आकर्षण-शक्ति की उद्दीप्ति संभव नहीं, अपितु इनमें से एक का दूसरे के साथ संपर्क एवं सहयोग अपेक्षित है क्योंकि आकर्षण-शक्ति की यह प्रवृत्ति है कि वह विरोधी तत्वों के संपर्क से ही उद्दीप्त होती है। उदाहरण के लिए काले रंग और पीले रंग में या सफेद और नीले में परस्पर विरोध है, अत: चित्रकार इन विरोधी रंगों के संपर्क से ही आकर्षण की उद्दीप्ति करता है। यही बात साहित्य की शक्ति पर लागू होती है।

अलग-अलग रचनाओं में भाव, विचार और कल्पना की मात्रा अलग-अलग होती है। किसी में भाव की प्रमुखता होती है तो किसी में विचार की और किसी में कल्पना की तथा

टिप्पणी

शेष तत्व गौण रूप में होते हैं। बिंब-विधान, लक्षणा शक्ति एवं व्यंजना शक्ति के आधार पर आकर्षण उद्दीप्त होता है। साहित्य की आकर्षण-शक्ति के भी तीन भेद हो जाते हैं– भावनात्मक आकर्षण, बौद्धिक आकर्षण और कल्पनात्मक आकर्षण या कलात्मक आकर्षण।

1. **भावात्मक आकर्षण–** आचार्य भरत मुनि ने साहित्य का लक्ष्य भावानुभूति माना और भावों को दो वर्गों में विभाजित किया–संचारी और स्थायी। भारतीय आचार्यों ने भावों के तीन अंगों का विवेचन किया है जो काव्य के भावात्मक भाव को बढ़ाते हैं। उदाहरण–

   विरहिन ऊभी पंथ सिरि पंथी बूझै धाइ।
   एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलेंगे आइ।। –कबीर

   इन पंक्तियों में कवि ने अपनी विरह-वेदना को सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रकट किया है कि किस प्रकार विरहणी नायिका रास्ते से गुजरते हुए पथिक के पास दौड़कर जाकर अपने प्रियतम के आने का समाचार पूछती है। वह सोचती है जो भी पथिक आ रहा है उसके प्रिय का संदेश लेकर ही आ रहा है। कबीर के इन उद्‌गारों में भावात्मक आकर्षण की उद्दीप्ति अपने चरम रूप में हुई है।

2. **बौद्धिक आकर्षण–** बुद्धि का संबंध विचारों और सिद्धांतों से होता है। साहित्य में तथ्यों, विचारों और सिद्धांतों का भी समावेश किया जाता है। इनके अभाव में कोरी भावनाओं का स्पंदन दुखी का विलाप बन जाएगा तथा बुद्धिशून्य कोरी कल्पना में और पागल के प्रलाप में कोई अंतर शेष नहीं रह जाएगा। साहित्य में वस्तुओं और घटनाओं का चित्रण उनके उचित रूप में ही किया जाता है। कथा-वस्तु की सूक्ष्म रेखाओं के निर्माण के लिए प्रत्येक प्रबंधकार, कहानीकार और उपन्यासकार को बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है।

साहित्य में विचारों को कहां तक स्थान देना चाहिए? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। विचारों का चित्रण उसी सीमा तक होना चाहिए, जहां तक वे रचना के भाव सौंदर्य में बाधक न हों। उदाहरण–

(क) *करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।*
रसरी आवत जात ते सिल पै परत निसान।।

(ख) *सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।*
पवन जगावत आग को दीपहिं देत बुझाय।।

इन दोनों उदाहरणों में बहुत ही सहजता से गंभीर बातें कह दी गई हैं। पहले में अभ्यास करने से मूर्ख व्यक्ति भी ज्ञानी बन सकता है, जिस प्रकार रस्सी को बार-बार पत्थर पर घिसने से वह अपनी छाप पत्थर पर अवश्य छोड़ती है। अंग्रेजी में भी 'Practice make a man perfect' कहा जाता है। दूसरे उदाहरण में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि उगते सूर्य को सभी सलाम करते हैं अर्थात जो बलशाली होता है उसकी सहायता के लिए लोग आगे आते हैं लेकिन निर्बल को और कुचल दिया जाता है, जैसे हवा आग को तो और भी तेज कर देती है जबकि छोटे से दीपक को बुझा देती है।

टिप्पणी

3. **कल्पनात्मक या कलात्मक आकर्षण–** साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पनाशक्ति के प्रयोग के द्वारा ही संपन्न होता है। एक साधारण से साधारण घटना को भी कवि कल्पना के रंग में रंगकर ऐसे प्रस्तुत करता है कि वह हमारे हृदय को आकर्षित कर लेती है। उदाहरण के लिए हम एक समाचारपत्र में पढ़ते हैं कि जापान में एक कारखाने में आग लग गई जिसमें पांच हजार लोग काम करते थे। इस समाचार को पढ़कर हमारे मस्तिष्क में थोड़ी हलचल भले ही हो जाए, किंतु उसका इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ेगा कि हम शोक से अभिभूत होकर आंसू बहाने लग जाएं। किंतु जब लेखक इसी घटना को कल्पना के द्वारा चित्रित करके हमारे सामने प्रस्तुत करेगा तो चार हजार क्या पांच व्यक्तियों के मरने की घटना हमारे हृदय में करुणा की शत-शत धाराएं उद्वेलित कर सकती हैं। वह हमें बताएगा कि काम करने वाले लोग कौन-कौन थे? अपनी रोजी-रोटी के लिए कितने बजे सुबह से शाम तक काम करते थे। उनके हृदय में अपने प्रिय जनों के मिलन की उत्कंठा किस प्रकार उद्वेलित हो रही थी, वे कैसे-कैसे सपने संजोए हुए थे, उनके घर पर उनकी असहाय वृद्धा मां या चिरवियोगिनी पत्नी या दर्शनों की लालसा से विभोर छोटे-छोटे भोले बालक किस प्रकार प्रतीक्षा कर रहे थे, जब कारखाने में आग लगी तो उनकी चीख-पुकार बढ़ती जा रही थी। जीवन के वे किस प्रकार हाहाकार कर रहे थे। उनके आश्रितों की क्या दशा हो गई थी। कवि अपनी कल्पना के बल पर दूसरों के दुख-सुख और दूसरों की अनुभूतियों का चित्रण इस प्रकार कर देता है कि वह हमारा दुख-सुख बन जाए।

काव्य में सौंदर्य और चमत्कार की सृष्टि भी कल्पना के द्वारा ही की जाती है। न जाने हमारे कितने कवियों ने नारी की सूक्ष्म छवि के अंकन में अपनी अद्‌भुत कल्पना का परिचय दिया है। संस्कृत एवं हिंदी साहित्य में महाकवि कालिदास, भर्तृहरि, विद्यापति, जायसी, कबीर, केशव, बिहारी, पद्‌मकार, भारतेंदु, प्रसाद, पंत और महादेवी ने कल्पना के चमत्कार दिखाए हैं।

उदाहरण– (क) *माली आवत देखि के कलियां करैं पुकार।*
फूले-फूले चुनि लिये काल हमारी बार।। –कबीर

(ख) मृग-मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता "मैं मधु हूँ मुझसे
क्या पतझड़ का नाता?" – महादेवी

इस प्रकार साहित्य की आकर्षण-शक्ति साहित्यकार और पाठक के मन में क्रमशः चार प्रक्रियाओं के रूप में कार्य करती है–(1) संयोजन, (2) संप्रेषण, (3) द्रवण और (4) अभिव्यक्ति। आकर्षण-शक्ति के कारण ही कवि और पाठक की सर्वप्रथम विषय-वस्तु में रुचि उत्पन्न होती है जिससे उनका विषय के साथ संपर्क स्थापना या संयोजन होता है, तदनन्तर विषय के साथ तादात्म्य स्थापित होता है जिसे संप्रेषण की प्रक्रिया कहा जा सकता है। संप्रेषण के अनन्तर क्रमशः द्रवण एवं अभिव्यक्ति की प्रक्रियाएं संपन्न होती हैं जिनके द्वारा साहित्यकार एवं पाठक की अंतश्चेतना द्रवित होकर व्यक्त होने लगती है। साहित्यकार में यह

टिप्पणी

अभिव्यक्ति जहां रचना के रूप में होती है, वहीं पाठक में हर्ष, उल्लास एवं आनंद की अभिव्यक्ति के रूप में होती है। इस प्रकार ये चारों प्रक्रियाएं, क्रमशः पहले साहित्यकार के मन में तथा फिर पाठक के मन में संपादित होती है। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यशास्त्र का साधारणीकरण, तादात्म्य विवेचन, संप्रेषण, अभिव्यंजना आदि की क्रियाएं इन्हीं चारों प्रक्रियाओं के विभिन्न पक्षों को सूचित करती हैं।

इस प्रकार आकर्षण-शक्ति सिद्धांत के अनुसार साहित्य की साहित्यिकता का मूल आधार साहित्य द्वारा उद्दीप्त आकर्षण-शक्ति ही है। अन्य सिद्धांतों के साथ भी इस सिद्धांत का मेल हो जाता है। रस वस्तुतः आकर्षण की ही व्यापक एवं गंभीर अनुभूति है तो अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि आकर्षण की उद्दीप्ति के ही विभिन्न साधन हैं। वस्तुतः यही आकर्षण-शक्ति काव्य की आत्मा या साहित्य की शक्ति है। पाश्चात्य आचार्य होरेस ने ठीक कहा था–"काव्य का सुंदर होना ही पर्याप्त नहीं है, वह आकर्षक भी होना चाहिए– उसमें ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि श्रोता के मन को जिधर चाहे खींच सके।"

'अपनी प्रगति जांचिए'

10. लोकमंगल के सिद्धांत के प्रणेता कौन हैं?
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संपूर्ण काव्य का वर्गीकरण अपने किस निबंध में किया है?
12. किस सिद्धांत के अनुसार काव्य में विचार-प्रधान और भाव-प्रधान साहित्य दोनों का बराबर महत्व है?
13. 'साहित्यिक निबंध' पुस्तक में आकर्षण-शक्ति के कितने स्वरूप निर्धारित किये हैं?
14. साहित्य की आकर्षण-शक्ति के कितने भेद किये गय हैं?
15. साहित्य की आकर्षण-शक्ति साहित्यकार और पाठक के मन में क्रमशः कितनी प्रक्रियाओं के रूप में कार्य करती है?

4.5 रचना के तीन क्षण

रचना के तीन क्षणों से अभिप्राय है कि किसी भी रचना का सर्जन करने के समय रचनाकार को किन-किन स्थितियों से गुजरना पड़ता है। रचना चाहे वह कविता हो या कथा अथवा चित्र, मूर्ति आदि वह कृतिकार की कृति होती है। रचना की जमीन, सामग्री, साहचर्य, प्रेरणा, कल्पना जैसी शारीरिक मानसिक वृत्तियों के आनुपातिक उपयोग से यह वस्तु तैयार होती है। रचना उसकी समग्रता का नाम है– उसके भीतर कितने ही चरित्र, स्थितियां, घटनाएं, अनुमान, गतियां शामिल होती हैं। रचनाकार मूर्तिकार की तरह सृष्टि की सीधी सामग्री का उपयोग नहीं करता। वह दृश्य को नहीं उसकी संवेदित अवधारणाओं की सामग्री का उपयोग करता है। जैसे- मिट्टी, पानी, अग्नि, आकाश और हवा से उसकी वस्तु तैयार नहीं होती। उसकी वस्तु के प्राथमिक स्रोत हैं–रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। ये स्रोत पंचभूतों की ऐंद्रिय अवधारणाएं ही हैं। ये ज्ञानेंद्रियां हैं। इन्हीं के जरिए वह भूतों को अपने भीतर जगह देता है। रचना में भूख या पानी शब्द आकृतियों और पदार्थों के प्रतिबिंब हैं। रचना की कर्मशाला रचयिता के मानस में है, इसलिए वह प्रतिबिंबों, प्रतिच्छायाओं का ही उपयोग कर सकता है। वह प्रतीकों, बिंबों, संकेतों के सहारे रचना को गढ़ता है। कल्पना आकृति देने में सहायक होती है। यह सब क्रिया रचनाकार के व्यक्तित्व के भीतर, व्यक्तित्व के जरिए और उसी में घटित होती है इस कारण यह प्रक्रिया उतनी प्रत्यक्ष और सरल नहीं है।

किसी भी रचना की व्युत्पत्ति का नाभि में विचार होता है और प्रकारांतर में रचना विचार को नये केंचुल में प्रस्तुत व परिपुष्ट करती रहती है। यह सार्वजनीन प्रक्रिया वैयक्तिक स्तर पर संभव और विभिन्न स्वरूपों में रूपायित होती रहती है।

रचना के तीन क्षण का मुक्तिबोध का सिद्धांत आज हिंदी साहित्य में बहुत प्रचलित है। रचना के ये तीन क्षण वस्तुतः रचना-प्रक्रिया के तीन सोपान हैं। मुक्तिबोध ने अपनी डायरी के 'तीसरा-क्षण' अंश तथा 'काव्य की रचना-प्रक्रिया' और 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' निबंधों में इस पर विस्तार से विचार किया है। मुक्तिबोध पूर्णतया आत्मचेतस् कलाकार थे। सृजन के प्रसंग में वे प्रदत्त या मूड्स जैसी धारणाओं में विश्वास नहीं करते थे। कलाकार के आत्मसंघर्ष की ही तरह उन्होंने अभिव्यक्ति के संघर्ष को भी बहुत महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार, "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है उस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटेसी अपनी आंखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है उस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में एक फैंटेसी अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैंटेसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है। जिस फैंटेसी को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है वह फैंटेसी अपने मूल रूप से इतनी अधिक दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि फैंटेसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रतिकृति है। फैंटेसी को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सृजन होता है– जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है– वही कला का तीसरा और अंतिम क्षण है।"

मुक्तिबोध कला के पहले क्षण के बारे में आगे चलकर पुनः कहते हैं- "प्रथम क्षण निस्संदेह अनुभव का क्षण है। उसके बिना आवेग और आगे की गति असंभव है। मानसिक प्रक्रिया को आत्माभिव्यक्ति की ओर ले जाने के लिए आवश्यक पहला जबरदस्त धक्का यह प्रथम क्षण ही देता है। वह उस गति की दिशा निर्धारित करता है। साथ ही, वह उसके तत्व रूपायित करता है अर्थात वह उनको एक आकार प्रदान करता है। साथ ही, मजा यह है कि यह अनुभव विचित्र रूप से अन्य मनस्तत्वों से जुड़ता हुआ, मनस्पटल पर स्वयं को प्रक्षेपित कर स्वयं ही बदल जाता है।" 'नयी कविता का आत्म-संघर्ष निबंध' में वे इसे 'उद्घाटन-क्षण' कहते हुए लिखते हैं- "कल्पना का कार्य यहीं से शुरू हो जाता है। बोध पक्ष अर्थात ज्ञान-वृत्ति भी यहां सक्रिय हो उठती है।" मुक्तिबोध स्पष्ट करते हैं कि यह रोजमर्रा के अनुभव से भिन्न अनुभव है। अनुभव की जैविक आत्मपरकता से भिन्न इस कला अनुभव की चेतना के नक्शे पर ठीक-ठीक स्थिति और गति बताना मुश्किल है। "पहले क्षण में ही भोक्ता और दर्शक के गुणों का आविर्भाव होना चाहिए। दूसरे क्षण में जो फैंटेसी उत्पन्न होती है...उस फैंटेसी के दर्शक की जो महत्व-प्रतीति होती है, उसके बीज पहले क्षण में ही होना आवश्यक है।" स्पष्ट है कि यह चमत्कारिक रूप से अद्वितीय नहीं, बल्कि कला के क्षण में साधारण अनुभव के महत्वपूर्ण अनुभव में बदल जाने की स्थिति है।

कला निर्माण के दूसरे क्षण की चर्चा में उन्होंने लिखा है- "इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटेसी अपनी आंखों के सामने ही खड़ी हो।" कला के दूसरे क्षण में दो स्थितियां हैं। ये दो स्थितियां काल-विभाजित नहीं हैं। पहली स्थिति में अनुभव का निर्वैयक्तिक होना है और फिर निर्वैयक्तिक अनुभव का फैंटेसी में रूपांतरित हो जाना है। यह फैंटेसी न केवल वास्तविक अनुभवों को बदल देती है वरन कलाकार के व्यक्तित्व के साथ प्रवाहित होती हुई उसके व्यक्ति का संस्कार भी करती है। इस फैंटेसी प्रवाह में भी द्वंद्वात्मकता है। स्थितिग्रस्त संवेदनाएं और स्थिति मुक्त दृष्टि परस्पर प्रतिक्रियाएं करती हैं। इस विरोधी घात-प्रतिघात से यह क्षण परिष्कृत होता हुआ आगे प्रवाहमान रहता है। मुक्तिबोध लिखते हैं- "तब आत्मपरकता में भी एक निर्वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता में भी एक आत्मपरकता उत्पन्न

टिप्पणी

टिप्पणी

हो जाती है...दूसरे शब्दों में वे अपने-अपने गुणों को एक-दूसरे को प्रदान कर देते हैं। और तीसरा अंतिम क्षण उस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उसकी परिपूर्णावस्था तक गतिमानता है।

कला का तीसरा और अंतिम पक्ष मुक्तिबोध के अनुसार रचना प्रक्रिया में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहां पर एक तनावपूर्ण स्थिति पैदा होती है। जैसे ही लेखक फैंटेसी को शब्दबद्ध करने लगता है, उसका रंग घुलने लगता है। फैंटेसी प्रवाहित होने लगती है। अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होने लगती है। यही नहीं शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया के बीच फैंटेसी में ऐसे अनेक तत्व शामिल हो जाते हैं जो उसे निरंतर संशोधित करते हैं। फैंटेसी के भीतर की दिशा और परिणति इस मर्म तत्व पर आधारित है। इस मर्म के उद्घाटन के वक्त अनेक चित्र, स्वर और भाव रचनाकार के सामने तैर आते हैं। इनमें से संवेदनात्मक उद्देश्य के निर्वाह के अनुकूल भाव संपादन तथा सार्थक संप्रेषण के अनुकूल शब्द चयन रचनाकार के लिए कठिन चुनौती बन जाते हैं जिस कारण तनाव की स्थिति बन जाती है।

कला के तीसरे क्षण में सृजन प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। यहीं से अनुभव प्रसूत फैंटेसी साहित्यिक कृति का रूप धारण करने लगती है। मुक्तिबोध के अनुसार, "कला के तीसरे क्षण में सृजन प्रक्रिया जोरों से गतिमान होती है। कला को शब्द साधना द्वारा नये-नये अर्थ स्पंदन मिलने लगते हैं। पुरानी फैंटेसी अब अधिक संपन्न, समृद्ध और सार्वजनीन हो जाती है। यह सार्वजनीनता अभिव्यक्ति प्रयत्न के दौरान शब्दों के अर्थ स्पंदनों के द्वारा पैदा होती है। अर्थ स्पंदनों के पीछे सार्वजनिक सामाजिक अनुभवों की परंपरा होती है। इसलिए अर्थ परंपराएं न केवल मूल फैंटेसी को काट देती हैं, तराशती हैं, रंग उड़ा देती हैं, वरन उसके साथ ही वे नया रंग चढ़ा देती हैं, नये भावों और प्रवाहों से उसे संपन्न करती हैं, उसके अर्थ क्षेत्र का विस्तार कर देती हैं।"

इस प्रकार भाव और भाषा के बीच का यह द्वंद्व तीसरे क्षण की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इन दोनों की पारस्परिक क्रिया-प्रक्रिया इतनी उलझी हुई है कि वे इन दोनों को बदलते रहते हैं। इनका संशोधन करते रहते हैं। वस्तुत: भाषा और भाव के बीच का यह द्वंद्व गुणात्मक होता है। भाषा एक परंपरा के रूप में फैंटेसी के मूल रंग को विस्तृत कर देती है, किंतु साथ ही उसे संशोधित भी कर देती है। फैंटेसी अपने मूल रंगों के निर्वाह के लिए भाषा पर दबाव डालती है। उसके शब्द चयन एवं प्रयोगों को नये अर्थों एवं सौंदर्य के साथ शामिल करती है।

मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के कवि हैं। उन्होंने रचना प्रक्रिया के दौरान होने वाले प्रभाव संगठन और अभिव्यक्ति की गति मानस तथा उसकी समग्रता को स्पष्ट करने के लिए आभ्यंतरीकरण और बाह्यीकरण को एक रूप माना है। मुक्तिबोध के अनुसार, "प्रभाव ग्रहण या संगठन आभ्यंतरीकरण तथा कृति रूप में उसे मूर्त करने की प्रक्रिया बाह्यीकरण है। रचनाकार के मन में आभ्यंतरीकरण के द्वारा मनुष्य जीवन संपन्न, समृद्ध और विकसित होता है। हमारी भाव-संपदा, ज्ञान-संपदा और अनुभव समृद्धि उस अंतरंग व्यवस्था का ही अभिन्न अंग है जो हमने बाह्य जीवन जगत के आभ्यंतरीकरण से प्राप्त की है। कला साहित्य आदि में जीवन की पुनर्रचना होती है।" इसलिए कहा जाता है, कृति वैयक्तिक होते हुए भी निर्वैयक्तिक होती है।

मुक्तिबोध की राय में कृति का मूल आधार जीवन-यथार्थ है। ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान से उसे अधिकाधिक हृदयंगम करने और निकट लाने का अवसर प्रदान करता है। उनके अनुसार जीवन-ज्ञान-संवेदन की समन्वित उपस्थिति में महत्वपूर्ण रचना जन्म लेती है। हृदय और बुद्धि अपना अलग-अलग अस्तित्व मिटाकर एक रूप हो जाते हैं और ये दोनों अंतरात्मा के पर्याय रूप में वर्तमान रहते हैं।

इस प्रकार मुक्तिबोध द्वारा रचना प्रक्रिया के विशेष संदर्भ में उल्लिखित तीन क्षणों को साहित्य जगत में महत्वपूर्ण माना जाता है।

मुक्तिबोध के अलावा रचना प्रक्रिया के क्षणों को अनेक विद्वानों ने अपने ढंग से परिभाषित किया है। यहां कुछ का उल्लेख किया जा रहा है–

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कविता के सर्जनात्मक क्षणों में रचनाकार को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता, वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किये रहता है, उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति बन जाती है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि "रूप, भावना तथा विचार की एकता से कला सृष्टि संभव है।"

विद्यानिवास मिश्र 'जीवन अपनी देहरी पर' में लिखते हैं कि प्रत्येक रचना के प्रणयन के समय साहित्यकार मृत्यु को प्राप्त होता है। उनके शब्दों में, "...क्योंकि हर रचना मृत्यु होती है, पर पूरी मृत्यु नहीं होती, रचनाकार कुछ न कुछ अवशिष्ट रह जाता है, बल्कि यों कहें जो अवशिष्ट रह जाता है वह रचनाकार नहीं है, बुरी तरह टूटा हुआ व्यक्ति है। जितनी बड़ी रचना करके आदमी बचता है उतना ही अधिक टूटकर बाहर निकलता है रचनाकार के रूप में वह ध्वस्त हो जाता है।"

प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार एवं समालोचक रोलांड बार्थेस ने अपने लेख 'लेखक की मृत्यु' शीर्षक में भी विद्यानिवास मिश्र की विचारधारा की पुष्टि की है। रोलांड लिखता है कि लेखन के भविष्य के लिए पाठक के जन्म की अनिवार्य शर्त लेखक की मृत्यु है। रचना चाहे पूर्णतावादी दृष्टि से निर्मित हो या विकासवादी दृष्टि से, दोनों में रूप के स्वरूप का निर्धारण अंतर्वस्तु से होता है।

कार्ल मार्क्स ने कला की रचना प्रक्रिया को मानवीय श्रम की विशिष्ट प्रक्रिया माना है। मार्क्स ने कला की रचना प्रक्रिया और मानवीय श्रम की प्रक्रिया के संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "श्रमिक (कलाकार) किसी वस्तु (कृति) के निर्माण के पहले उसकी धारणा निर्मित करता है। श्रम की प्रक्रिया (रचना प्रक्रिया) के अंत में जो फल (कृति) प्राप्त होती है उसकी मूल धारणा श्रमिक के मन में पहले विद्यमान होती है। निर्माण प्रक्रिया के दौरान वह न केवल उत्पादन के उपादान (भाषा) के रूप को परिवर्तित करता है बल्कि परिवर्तित रूप में वह अपने प्रयोजन को ही साकार करता है। अपने प्रयोजन के प्रति वह निर्माण काल में निरंतर सचेत रहता है और प्रयोजन के अनुरूप ही उसकी क्रिया की प्रक्रिया और पद्धति का विकास होता है। कृति की रचना के 'पहले' रचनाकार उसकी धारणा निर्मित करता है। मनुष्य भाषा में ही सोचता है इसलिए कृति की धारणा के निर्माण में भी भाषा की भूमिका होती है। यह भाषा रचनाकार के जीवन की भाषा होती है। अपने जीवन व्यवहार की भाषा में कृति की धारणा का निर्माण रचनाकार अपने रचनात्मक प्रयोजन के अनुसार करता है और रचनात्मक प्रयोजन में उसकी विचारधारा व्यक्त होती है। इस प्रकार रचना प्रक्रिया के आरंभ से ही भाषा, कृति की धारणा और विचारधारा का सहअस्तित्व होता है। रचना प्रक्रिया

टिप्पणी

टिप्पणी

के विकास की 'दूसरी' अवस्था यानी कृति के निर्माण की अवस्था में, भाषा का अभिव्यंजक रूप विकसित होता है। इसमें रचनात्मक प्रयोजन को साकार करने के लिए रचनाकार भाषा की प्रातिनिधिकता और अपनी सृजनशीलता के योग से रचना की भाषा का निर्माण करता है। इस स्थिति में अंतर्वस्तु और भाषा का विकास साथ-साथ होता है। भाषा के निर्माण की प्रक्रिया में रचनाकार जीवन व्यवहार की भाषा और साहित्य परंपरा से प्राप्त भाषा से संग्रह और त्याग की प्रक्रिया अपनाते हुए रचना की भाषा तथा उसकी संप्रेषणीयता निर्मित करता है। इसी अवस्था में निर्मित कृति में रचनाकार का रचनात्मक प्रयोजन साकार होता है और उस प्रयोजन के अनुरूप रचना के रूप, शैली और भाषा का विकास होता है।" (कैपिटल, वा. 1. न्यूयार्क, 1977, पृ. 283-84)

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृजन प्रक्रिया के दौरान प्रत्येक रचनाकार महत्वपूर्ण अनुभवों से गुजरता है। इसे हम काव्य सृजन की प्रसव पीड़ा के क्षण कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

4.6 स्वच्छंदतावादी आलोचना

स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति 'वाद' न होकर एक 'दृष्टि' है। यह दृष्टि प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए अपना स्वतंत्र मार्ग अन्वेषित करती है। इस समीक्षा में जीवन के प्रति एक ऐसा भावमय दृष्टिकोण है जो 'अनुभूति' को केंद्र में रखकर पनपता है। हिंदी में जिन्हें स्वच्छंदतावादी आलोचक कहा जाता है उनसे तात्पर्य यही है कि वे प्राचीन सिद्धांतों की रूढ़ियों से विद्रोह करते हैं और देश और काल की नवीन चिंतन धाराओं से तालमेल बिठाते हुए स्वतंत्र चिंतन करने वाले आलोचक हैं। ऐसे समीक्षकों ने भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांतों को नवीन चिंतन के परिप्रेक्ष्य में समझने-समझाने का प्रयास किया है। इसका कारण यह था कि हिंदी का अपना स्वतंत्र समीक्षा-शास्त्र विकसित हो सके।

पाश्चात्य जगत में स्वच्छंदतावादी चिंतन लंबी यात्राओं का इतिहास तो है ही, उसमें मानव को खोलने या मुक्त करने का भी प्रयास निहित है। मध्य युग में रोमांस शब्द का प्रयोग बोलियों के लिए आता था। लैटिन भाषा में इन सभी को 'रोमांसेज' कहा जाता था। इन 'रोमांस' बोलियों की कथाएं ही समय के साथ 'रोमांस' कथाएं कही जाने लगीं। इन 'रोमांस' कथाओं में साहस, शौर्य की वीर कथाएं रहती थीं। ये कथाएं भावुकता, रहस्यपरकता तथा मधुर प्रेम पर टिकी होती थीं और इनमें वास्तविकता का अभाव रहता था। इसीलिए कल्पना प्रधान भावुक साहित्य को शुरूआत में 'रोमांटिक' शब्द से व्यक्त किया गया है। आधुनिक साहित्य एवं समीक्षा में आकर इस शब्द का अर्थ-विस्तार हो जाता है। ध्यान देने वाली बात यह है कि आधुनिक रोमांटिक साहित्य में एक सी प्रवृत्तियां मौजूद नहीं है। प्राय: विरोधी प्रवृत्तियों से इसका विकास होता है। 18वीं 19वीं शताब्दी का स्वच्छंदतावादी आंदोलन (रोमांटिक मूवमेंट) एक विशेष परिस्थिति की टकराहट से जन्म लेता है। दबा हुआ मानव मन स्वयं को स्वच्छंद करने की कामना करता है। यही कामना समस्त रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह कर देती है। इन विद्रोहियों को ही स्वच्छंदतावादी कहा जाता है। इसके पुरोधाओं में रूसो, श्लेगर, कांट, हीगल, क्रोचे प्रमुख हैं। इसमें लेसिंग का 'लाओकून' और ग्रीक के ला-जाइनस के 'उदात्त तत्व' सिद्धांत की भी महती भूमिका है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

16. रचना की कर्मशाला कहां विद्यमान रहती है?
17. रचना को आकृति देने में कौन सहायता करता है?
18. उत्कट तीव्र अनुभव युक्त क्षण कौन-सा होता है?
19. रचना के दूसरे क्षण में अनुभव किस रूप में परिवर्तित हो जाता है?
20. रचनाकार के लिए कठिन चुनौती और तनाव की स्थिति किस क्षण में उत्पन्न होती है?
21. 'हर रचना मृत्यु होती है' किसका कथन है?
22. रचना प्रक्रिया को मानवीय श्रम की विशिष्ट प्रक्रिया किसने माना?

टिप्पणी

4.6.1 परिभाषाएं एवं आधार

श्लेगल ने स्वच्छंदतावाद को परिभाषित करने का प्रयास किया पर वे असफल रहे। वे रोमांटिसिज्म शब्द का अर्थ तक स्पष्ट नहीं कर पाए। सन् 1948 में एफ. एल. ल्यूकस ने अपनी पुस्तक 'दि डिकलाइन एंड फाल आफ दि रोमांटिक आइडियल' में रोमेंटिसिज्म की 11396 परिभाषाएं उपलब्ध होने की सूचनाएं दी। विचारणीय बात यह है कि इस शब्द का भिन्न से भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। पर इतना सत्य है कि ये कवि आलोचक 'संवेगों' को विशेष आदर देते हैं। इनकी मान्यता है कि सृजन-बुद्धि-चालित क्रिया न होकर हृदय से निकलने वाली सहजात क्रिया है।

शास्त्रीयवाद के नियम जब जकड़नें पैदा करते हैं तो स्वच्छंदतावाद उन्हें तोड़ देता है और स्वच्छंदतावाद जब नियमों से दूर हो अनियंत्रित होने लगता है तो शास्त्रीयवाद उसे नियंत्रित करता है। अत: कहीं न कहीं दोनों प्रवृतियां एक-दूसरे की विरोधी हैं। कलाकार के आंतरिक जगत की चिंता में दोनों ही रहते हैं। स्थायी गुणों से युक्त रचना प्राय: कालजयी होती है इसीलिए वह सभी कालों में पठन-पाठन के योग्य बन जाती है। 'क्लासिक' का सीधा अर्थ है- साहित्यिक परंपरा की महान रचना। यह साहित्यिक रचना कहीं न कहीं स्वच्छंदतावादी कृति के लिए एक उपजीव्य का कार्य करती है।

स्वच्छंदतावाद तथा यथार्थवाद में सामान्यत: सीधा विरोध है। एक आदर्शवादी मानववादी है। दूसरा भौतिकवादी और वास्तविकता को सब कुछ मानने वाला है। अपनी वृत्तियों से स्वच्छंदतावाद, मनोविश्लेषण शास्त्र की ओर झुकता है तथा मनोविश्लेषण शास्त्र की फ्रायडवादी धारणाओं के परिप्रेक्ष्य में ही वैयक्तितापरक तथा सामूहिक मन को समझता एवं समझाता है। इसीलिए संसार भर के स्वच्छंतावादी आलोचकों ने अपनी स्वच्छंदतावादी आलोचना में मनोविश्लेषण शास्त्र की प्रविधियां, आधारों तथा प्रवृतियों का आश्रय ग्रहण किया है। स्वयं पाश्चात्य आलोचक एफ. एल. ल्यूकस मानते थे कि रोमांटिसिज्म क्लासिसिज्म तथा रियलिज्म की मनोविश्लेषणवादी व्याख्या बहुत महत्वपूर्ण है। इस काव्य से प्राय: काम्य निष्कर्ष हाथ में आ जाते हैं।

विंकलमैन ने समीक्षा में सौंदर्यशास्त्र के समस्त तत्वों को प्रतिष्ठित किया है। इससे पूर्व फ्रांसिस बैकन, हाब्स, देकार्त आदि कला का मनोवैज्ञानिक मार्ग संकेतित कर चुके थे। किंतु स्वच्छंदतावादी युग के कलाकार ललित कलाओं के अंतर्संबंधों पर नये ढंग से विचार करने को भी बाध्य हुए। इस स्वच्छंदतावादी युग ने प्राचीन कला का पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि से अध्ययन किया। स्वयं 'लाओकून' के लेखक ललित कलाओं में यूनानी अनुकरण के समर्थक थे। पर प्राचीन नियमों तथा सिद्धांतों की दुहाई देने के कारण उनके सिद्धांतों को शुद्ध रोमांटिक आलोचना नहीं माना जाता है।

जर्मन आलोचक शिलर ने शास्त्रीयतावादी तथा स्वच्छंदतावादी प्रवृतियों की चर्चा करते हुए प्रथम को सौंदर्य तथा दूसरे को शक्ति माना है। गेटे ने भी व्यक्तित्व के नये पक्षों से इस धारा को आगे बढ़ाया है। इस प्रकार कहा जा सकता है स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि पश्चिम पर टिकी हुई है।

टिप्पणी

4.6.2 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

ल्यूकस ने यथार्थवाद, रोमांटिसिज्म तथा अभिजात्यवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि हमारे प्राचीन संस्कार हमें रोमांटिसिज्म की ओर प्रेरित करते हैं। यथार्थ के प्रति हमारी रुचि हमें यथार्थवाद की ओर ले जाती है तथा सामाजिक सुस्थिरता के लिए हमारी चिंता हमें शास्त्रवाद की ओर ले जाती है। इसी के कारण हमें नियमों और परंपराओं का सम्मान करना पड़ता है। स्वच्छंदतावादी कवि नियमों और परंपराओं का उल्लंघन करता है। यथार्थ और समाज के प्रति विद्रोह करता है। तथ्यों, कर्त्तव्यों को स्वप्नों और भावोन्माद की वेदी पर बलिदान कर देता है। इन प्रवृत्तियों से पता चलता है कि स्वच्छंदतावादियों का मन शिशु की तरह सरल, अपरिष्कृत, असंस्कृत, मुक्त, जंगली के समान होता है; जो कल्पना लोक में विचरण करता है। अपनी ही दृष्टि से चीजों का आकलन करता है। अनियंत्रित भावनाओं में बहकता हुआ वह दूसरों की चिंता नहीं करता। जो आक्रमणकारी भाव बच्चों में होते हैं, वही प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादियों में होती है। जिसके कारण वह परंपरा, नियम, तर्क, नियंत्रण सबके प्रति विद्रोह करता है। यह आक्रमणशीलता उसे प्रथमत: परपीड़न-रति (Sadism) की ओर ले जाती है जिसके कारण वह अपने प्रिय को दुख देता है या देने की कामना करता है फिर स्वपीड़न रति (Masochism) की ओर पहुंचता है और स्वयं को कष्ट देता है। प्रिय को दुख पहुंचाकर स्वयं दुखी होने की प्रवृत्ति सामान्यत: जन सामान्य में भी होती है पर स्वच्छंदतावादी इससे अधिक ग्रस्त रहता है। इन्हीं कारणों से ऐसा माना जाता है कि स्वच्छंदतावादी काव्य में विषाद यानी दु:ख के स्वर प्रबल होते हैं तथा व्यक्ति-प्रधान दृष्टिकोण को इसमें प्रधानता दी जाती है।

4.6.3 स्वच्छंदतावादी काव्य चिंतन की विशेषताएं

हिंदी के कई आधुनिक समीक्षक जिन्हें स्वच्छंदतावादी समीक्षक भी कहा जाता है, पहले कवि या लेखक रह चुके हैं। लेखन कार्य में प्रवृत्त होने के बाद ही उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में कदम रखे। उनके काव्य चिंतन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन यहां किया जा रहा है–

1. **विद्रोह की प्रवृत्ति**–अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद का संबंध फ्रांसीसी राज्य क्रांति से था। अत: उसमें स्वतंत्रता एवं विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक था। उसमें हमें भौतिक शक्तियों के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध तथा नीति, धर्म, साहित्यिक परंपराओं और शास्त्रीय नियमों के प्रति भी विद्रोह दिखाई देता है। इस काव्य ने भाषा-शैली, विषय-वस्तु, छंदों के स्वरूप आदि के क्षेत्र में नये प्रयोग किए, नयी चिंतनधारा तथा नये भावोन्मेष से अनुप्राणित इस काव्य ने अभिजात्य के स्थान पर सामान्य को वर्ण्य बनाया। खंडहर, सूखी पत्ती, छाया, हवा, पानी, रेत जैसी साधारण वस्तुओं को वर्ण्य बनाया। इन्होंने बुद्धिवाद का विरोध किया। उदात्त को आवश्यक नहीं माना।
2. **कृत्रिमता से मुक्ति**–प्रकृति की ओर लौटने तथा साधारण, सरल के प्रति आग्रह ने स्वच्छंदतावादी कवियों को कृत्रिमता तथा समाज के आडंबरों से मुक्ति दी। इन्हीं भावों से प्रेरित होकर 'लिरिकल बैलेड्स' काव्य संग्रह लिखा गया। इन्होंने कृत्रिम, अयथार्थ लेखन शैली, मिथ्या दंभ के कारण अपने विचारों को और भावों को व्यक्त न करना जैसे आडंबरों का विरोध किया तथा सरल शैली में उन्मुक्त होकर अभिव्यक्ति की।

टिप्पणी

3. **मध्ययुग का प्रत्यावर्तन**–हौरेस-वाल्पोल, पर्सी आदि रचनाकारों की मध्ययुग के साहित्य और शिल्प कला के प्रति अत्यधिक रुचि थी। इस आकर्षण को रोमांटिक काव्यधारा के कवियों–कॉलरिज, शैली, कीट्स ने अधिक पुष्ट किया। 18 वीं सदी के साहित्यकार युगीन बौद्धिकता, विवेक की अधिकता और तर्क-वितर्कों से ऊबकर इससे मुक्ति पाने के लिए मध्ययुगीन प्रवृत्ति की ओर आकृष्ट हुए। उन्हें न केवल मुक्ति मिली बल्कि चित्रमयता की प्रवृत्ति भी प्राप्त हुई।
4. **कल्पना का प्राधान्य**–स्वच्छंदतावादी इस संसार से दूर रहना चाहता है तथा नवीन और अद्‌भुत के प्रति आकर्षित होता है। वह यथार्थ से दूर कल्पना लोक में विचरण करना चाहता है। सभी अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों में कल्पना का प्राधान्य पाया जाता है। वे जब भी बाह्य स्थूल जगत के वैचारिक द्वंद्व में उलझते हैं, कल्पना उन्हें इस जगत के कठोर अनुभवों से दूर दूसरे लोक में अद्‌भुत ऐंद्रिय-लोक में ले जाती है। उसका मस्तिष्क सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को तत्परता से पकड़ता है और वह उन्हीं भावों की सुंदर-गहन वीथियों में भटकता हुआ सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वह इंद्रधनुष को सतरंगी मनोहर पुंज ही नहीं बल्कि नयी स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाला प्रेरक तत्व मानता है। उसे साधारण पदार्थों और दार्शनिक विचारों में पहले से अधिक गूढ़ अर्थ भरा प्रतीत होता है। उसकी कल्पना, हृदय की उदारता और रागात्मकता ने उसके दृष्टिकोण को परिवर्तित किया और प्रकृति उसे उपदेशक और शिक्षिका के रूप में दिखाई देने लगी। इसी कल्पना ने उसे रहस्यवादी बना दिया। उसे प्रकृति के कण-कण में ईश्वर की सत्ता का अनुभव होने लगा। वह प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिकता से जोड़कर देखने लगा। उसे पुष्पों में रहस्य दिखाई देता है। चिड़िया में छिपा कवि दिखाई देता है। कल्पना ने उसकी अभिव्यक्ति को अद्‌भुत, मर्मस्पर्शी बना दिया। हिंदी कवि पंत ने स्थूल के लिए सूक्ष्म का प्रयोग किया। इसी तरह पाश्चात्य कवि शैली लिखता है– like a poet hidden. In the light of thought. वह स्काई लार्क चिड़िया की तुलना विचारों में छिपे कवि से करता है, जैसे कवि की अभिव्यक्ति पंख फड़फड़ा रही हो।
5. **अद्‌भुत तत्व**–वाट्स डंटन ने इस प्रवृत्ति को अद्‌भुत का पुनर्जागरण कहा है। इस तत्व ने साहित्यिक शक्ति बनकर काव्य में ऐसी सांकेतिकता उत्पन्न की जिससे काव्य अधिक प्रभावशाली बन गया। अद्‌भुत तत्व से उत्पन्न सांकेतिकता सहृदय की कल्पना को स्पर्श करती है। कल्पना लोक में विचरण करने वाले स्वच्छंदतावादी कवियों का इस तत्व के प्रति बेहद आकर्षण एवं लगाव है। इस तत्व के कारण अतिमानवीय तत्व अपना भौंडापन एवं यांत्रिकता को छोड़कर स्वाभाविक एवं आकर्षक रूप में अभिव्यक्त हुए।
6. **व्यक्तिवाद**–यह स्वच्छंदतावाद की मूल प्रवृत्ति है। इसमें कवि अपनी दृष्टि, अपनी भावना, अपनी इच्छा और अपनी रुचि को महत्व देता है। अत: धारा में लिखे गए प्रबंध काव्यों में नायक आत्मकेंद्रित व्यक्ति होता है तथा गीतिकाव्य में कवि अपनी उदासी, निराशा, वेदना और व्यथा का चित्रण करता है। इस काव्य में (स्वच्छंदतावादी) विवेक के स्थान पर भावुकता, आकांक्षा, आदर्शमयता होती है। यह अप्रत्यक्ष, अरूप की भावना में स्थित होता है तथा स्थूल से अधिक महत्व सूक्ष्म को देता है। उनकी

टिप्पणी

अनुभूति गहन होती है और इसी सहानुभूति की प्रेरणा से वह काव्य रचना करता है। व्यक्तिवाद की प्रधानता के कारण कवि अपने भावोन्माद में डूबा रहता है। इस भाव की अतिशयता से क्षुब्ध होकर गेटे कहते हैं– Romanticism was diseased. स्वच्छंदतावादी अपनी ही भावनाओं की बीमारी से ग्रस्त रहता है।

7. **सौंदर्यमयी दृष्टि और ऐन्द्रियता**–स्वच्छंदतावादी सौंदर्य के प्रति जिज्ञासु होते हैं तथा सौंदर्य प्रेम से ग्रस्त होते हैं। इन कवियों की रचनाओं में सर्वत्र सौंदर्य भावना पाई जाती है। शैली-संपूर्ण प्रकृति को सौंदर्यमयी मानता है तथा कीट्स के काव्य का एकमात्र संदेश यह है कि सौंदर्य शाश्वत और चिरंतन है और वही सर्वोच्च सत्य है–

   Beauty is truth, truth beauty, that is all.
   We know on earth and all we need to know

   इन कवियों की रचनाओं में ऐंद्रियता का तत्व प्रमुखतः होता है। उनके लिए जीवन भावनाओं की शृंखला है। संवेदनाओं से पूर्ण, स्पर्श, गंध और दृष्टिजन्य आनंद से पूर्ण पंक्तियां इनके काव्य की विशेषता है यह काव्य मन में सरसता की अद्‌भुत सृष्टि करता है।

8. **प्रकृति प्रेम**–स्वच्छंदतावादी कवि प्रकृति के मुक्त आंगन में स्वच्छंद विहार करता है। प्रकृति के प्रति उनके मन में अटूट प्रेम है। प्रकृति सदैव उनके मन में छाई रहती है तथा कल्पना के साथ मिलकर भिन्न-भिन्न रूपों में उसकी सहचरी बनी है–कभी प्रिया, कभी पत्नी, कभी बेटी, कभी नागरिका, कभी ग्रामीण बाला। वे प्रकृति को सचेतन सत्ता के रूप में देखते हैं। ये कवि प्रकृति के रमणीय रूप का उद्‌घाटन करने में सिद्धहस्त हैं। परंतु स्वच्छंदतावादी कवियों का प्रकृति-वर्णन वैयक्तिक है। वे प्रकृति के उन्हीं अवयवों को चुनते हैं जो आत्मानुभूति को स्पष्ट करने में सहायक हों।

9. **रहस्योन्मुखी दृष्टि तथा विराट के प्रति आकर्षण**–कल्पना के अतिरेक के कारण स्वच्छंदतावादी दृष्टि रहस्योन्मुखी है। ये आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ओत-प्रोत रहते हैं तथा इनमें विराट सत्ता के प्रति अदम्य आकर्षण होता है।

10. **राष्ट्रप्रेम तथा मानवतावादी दृष्टिकोण**–स्वच्छंदतावादी राष्ट्र के प्रति सच्चा प्रेम रखते हैं। इनका प्रेम स्थूल नहीं, सूक्ष्म है भावनाओं के स्तर का। इन कवियों का राष्ट्रप्रेम मानवतावाद पर आधारित है। निराला-पंत, प्रसाद सभी ने राष्ट्र प्रेम की कविताएं लिखीं। पाश्चात्य कवियों में भी अनेक कवि ऐसे हैं जिन्होंने देश के पशु-पक्षी, धरती, प्रकृति, निवासियों के माध्यम से देशप्रेम व मानवतावाद की प्रतिष्ठा की।

11. **स्वच्छंदतावादी कवियों में भावातिरेक**–स्वच्छंदतावादी कवियों में भावातिरेक पाया जाता है। वे भावुकता, भावों के सहज उच्छलन, भावोच्छ्वास, भावाभिव्यंजना पर बल देते हैं।

12. **अतीत का रहस्य एवं भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न**–अतीत की रहस्यमयी छाया तथा भविष्य के सुनहरे स्वरूप पर इनकी दृष्टि टिकी होती है। कल्पना इनकी रहस्यमयता

टिप्पणी

को बढ़ाती है तभी भावी के स्वप्नों को अद्‌भुत चमकीले पंखों की उड़ान देती है। स्वच्छंदतावाद वाद-विवादों में घिरकर अपनी महत्वपूर्ण जगह बना पाया। इसकी कविताओं की सरसता, जीवंतता, काल्पनिकता, रहस्यमयता, लयात्मकता ने सहृदय के हृदय में स्थायी जगह बना ली।

कदाचित काव्य सृजन में इन गुणों के समावेश के कारण ही उनकी आलोचना शैली में भी स्वच्छंद प्रवृत्ति का समावेश हो गया है।

4.6.4 हिंदी के स्वच्छंदतवादी समीक्षक

भारतीय तथा पाश्चात्य जगत की स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति की सैद्धांतिकता से हिंदी की स्वच्छंदतावादी समीक्षा दृष्टि बहुत गहराई तक प्रभावित है। छायावादी युग के आलोचकों तथा कवि आलोचकों ने रांमांटिक काव्य सिद्धांतों को उदारता से अपनाते हुए नवीन दृष्टि का विकास किया है। यह संयोग ही है कि अंग्रेजी में रोमांटिक आलोचना शास्त्र और रोमांटिक साहित्य का साथ-साथ ही परिष्करण हुआ। हिंदी का आधुनिक साहित्य अपने नवजागरण कालीन दृश्य में रोमांटिक दृष्टि का कृतज्ञ रहा है। प्रायः विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि भारतेंदु युग में अयोध्या प्रसाद खत्री का 'खड़ी बोली आंदोलन' जिसमें वर्ड्सवर्थ के सिद्धांत से अनुप्रेरित होकर यह घोषणा की गई थी कि गद्य पद्य की भाषा में कोई पार्थक्य नहीं होना चाहिए और न ही हो सकता है। युग की इसी अंतर्मानसिकता को समझते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा- गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक नहीं होनी चाहिए। यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिंदी भाषा, ब्रजभाषा की कविता के स्थान को छीन लेगी। ब्रजभाषा के सामंती बोध के प्रति विद्रोही दृष्टि के कारण राष्ट्रीय-सांस्कृतिक नवजागरण के बोध की भाषा खड़ी बोली शीघ्र ही काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के विचारों पर रोमांटिक साहित्य शास्त्र का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। स्वयं आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल रोमांटिक सिद्धांतों से अंशतः प्रभावित हुए हैं। उनके समक्ष छायावाद के कवि आलोचक रोमांटिक साहित्य शास्त्र की सीधी अभिव्यक्ति का प्रमाण देते हैं अपनी भूमिकाओं में इन कवियों ने रोमांटिक काव्य सिद्धांतों का खुलकर समर्थन किया है। छायावाद के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं. शांतिप्रिय द्विवेदी तथा रामकुमार आदि सभी पर पाश्चात्य रोमांटिक काव्य सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। परंतु यह प्रभाव हिंदी सैद्धांतिक समीक्षा की जड़ता को तोड़ने वाला एवं नयी दृष्टि की तलाश का रूप है न कि अंधानुकरण।

हिंदी की स्वच्छंदतावादी आलोचना ने प्राचीन संस्कृत सैद्धांतिकता की रूढ़ियां तथा रीतिकालीन पिष्ट पेषण से भरी शास्त्रीयता का बहिष्कार करते हुए उन मानों एवं मूल्यों से मुक्त होने का संकल्प साकार किया है। प्राचीन साहित्य सिद्धांतों से नवीन सृजनात्मकता को न्याय देना भी कठिन हो गया था। प्रायः साहित्य में प्रत्येक नया युग अपने साथ नयी सृजनात्मक प्रवृत्तियों को ही नहीं लाता, नवीन मूल्वत्ता एवं अर्थवत्ता से युक्त नये प्रतिमान भी लाता है। छायावादी आलोचकों ने अपने वैयक्तिक अनुभवों से छायावादी कवियों की भांति ही समझ लिया था कि प्राचीन परंपरागत अनुशासन उनके काम के नहीं हैं। प्राचीन सिद्धांतों की नयी दृष्टि से व्याख्या, पुनर्विचार करते हुए उन्हें नये ढंग से बदलने तथा व्यवहृत करने की जरूरत है। प्राचीन नियमों के प्रति अनादर भाव के मूल में यह भावना भी सक्रिय थी कि वे

साहित्य सिद्धांत अब धीरे-धीरे शास्त्र बन गए हैं। इसी को ध्यान में रखकर पंत एवं प्रसाद ने स्वच्छंदताधर्मी कला में कविता को नये भाव, नये विचार, नया शिल्प आदि सब कुछ नया देना चाहा था।

टिप्पणी

एक ओर छायावादी सृजन का पुरानी रूढ़ियों से भरे आचार्यगण विरोध कर रहे थे, दूसरी ओर नयी पीढ़ी का प्रबुद्ध पाठक और विचारक इसका स्वागत सहृदता एवं मर्मज्ञता के कारण ही प्रसाद तथा पंत पर वाजपेयी जी तथा डॉ. नगेंद्र जैसे आलोचक अच्छी आलोचना लिख सके हैं। अत: पुरानी रसालंकार शैली में चिपके संस्कारों से इन स्वच्छंदतावादियों को एक भयंकर युद्ध लड़ना पड़ा है। ऐसी स्थिति में उनके सामने पाश्चात्य जगत से उपयोगी विचार लेने में कोई हीन भाव न था। और नव निर्माण के लिए नयी सामग्री जुटाने का एकमात्र सही मार्ग पश्चिम में ही दिखाई देता था। स्वयं आचार्य शुक्ल की बुद्धिवादिता पर पाश्चात्य रंग काफी उभरा भी और खिला भी। स्वच्छंदतावादी चिंतकों ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों की तुलनात्मक परीक्षा का भी कार्य किया। पश्चिम विदेश मात्र नहीं है उसकी ज्ञानात्मक रोशनी आलोचना की विश्व दृष्टि पाने के लिए आमंत्रण भी दे रही थी। इसी मनोभूमि ने हिंदी में स्वच्छंदतावादी साहित्यशास्त्र का निर्माण किया है। हमारा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्वतंत्रता का समर जैसे-जैसे शक्ति पाकर बढ़ता जाता है। देश के मन में युक्त आकांक्षा का भाव गहरा होता जाता है। यही 'मुक्ति भाव' इस युग के सृजन एवं आलोचना दोनों में दृष्टिगत होता है। समानता, स्वायत्तता एवं समानता के जिन मूल्यों के लिए राजनीतिक, समाज सुधारक, तिलक, गांधी आदि जूझ रहे थे। साहित्य में उन्हीं मूल्यों के लिए प्रसाद, पंत, निराला में तड़प मिलती है। इसी प्रकार के भाव इस युग के आलोचकों में भी हैं। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी का कथन सत्य ही है कि "इस व्यापक राष्ट्रीय जागृति की हलचल में ही हमारा यह साहित्य पनपा और फूला-फला है इस अभूतपूर्व जागृति-केंद्र से पृथक रखकर अपने इस साहित्य को परख नहीं सकेंगे।"

देश की सांस्कृतिक चेतना को सही संदर्भों में रखकर न समझने के कारण कुछ समीक्षक उनकी सामाजिकता तथा स्वच्छंदावादी चेतना को ठीक-ठीक नहीं समझ सके हैं। हिंदी साहित्य में भारतेंदु के समय से ही देश और काल के बदलते संदर्भों में मनुष्य को परिभाषित करने की तैयारी प्रारंभ हो जाती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, अचार्य रामचंद्र शुक्ल यह सब मानो स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य और साहित्य के बदलते देश और काल में समझना-समझाना रचनाकार और आलोचक दोनों की सम्मिलित जिम्मेदारी है। इसी परिप्रेक्ष्य से हिंदी के स्वच्छंदतावादी साहित्य एवं समीक्षा के आधारों को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में तार्किकता के साथ ग्रहण करने की अपेक्षा है जिसे सही दृष्टि के अभाव से ज्यादातर गलत ढंग से समझाया है। क्योंकि इस भाव केंद्रित कवि सृष्टि के मूल में नयी अनुभूति, अनुभूतियों के भाषिक रूपांतरण, अलंकरण, प्रस्तुतिकरण, अंतर्मुखी प्रमाण, प्रकृति का निसर्गजात आकर्षण कौतूहल के मूल में बाहरी यात्रा से हटकर भीतरी यात्रा का आरंभ निहित है। इन्हीं सभी के कारण स्वच्छंदतावादी समीक्षा में कवि-वैयक्तिकता की स्वीकृति का ठोस आधार खोजा गया है।

जहां स्वच्छंदतावादी काव्य में स्वानुभूतिमयी विवृत्ति, वैयक्तिकता, कल्पना, सौंदर्य के नये मान आदि भाव स्फोट के रूप में आवेगों के साथ व्यक्त हुए हैं। वहीं नगेंद्र एवं महादेवी वर्मा ने स्कूल के प्रति सूक्ष्म के इस विद्रोह को इसी दृष्टि से पहचाना भी है। डॉ. नगेंद्र ने

उपयोगितावाद के विरुद्ध भावुकतावाद का विद्रोह कहकर एक आंशिक भाव सत्य की अभिव्यक्ति की है पर पूर्ण सत्य उनसे पीछे रह गया है।

टिप्पणी

'कवि' और 'कविता' के अंतर्संबंधों को विश्लेषित करने की प्रेरणा से काव्य सृजन-प्रक्रिया पर दोनों ही देशों के समीक्षकों ने बहुत गहराई से चिंतन किया है। पर इससे पूर्व की समीक्षा में अनुभूति की सत्यता, संवेदना के नये स्तर, प्रक्रिया के नये आयामों पर चर्चा का कमोवेश अभाव ही रहा है। स्वच्छंदतावादी समीक्षा में रचना प्रक्रिया में कवि की मानसिक एवं आत्मिक क्रियाओं, मन: स्थितिओं, प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं, कुंठाओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। 'अंतवृत्तियों की छानबीन' का एक वैज्ञानिक ढंग ही स्वच्छंदतावादी समीक्षा में विकसित एवं परिष्कृत होता गया है। काव्य की सृजन-प्रेरणा, सृजन-प्रक्रिया, सृजन-शक्ति, सृजन उपकरण, सृजन माध्यम, सृजन सिद्धांत आदि पर स्वच्छंदतावादी आलोचकों ने अपने-अपने तरीके से विचार किया है। प्रसाद जी भारतीय दर्शन और ज्ञान के प्रतीकों के प्रति सचेत हैं। फिर उनके आदर्शों-विचारों में ये प्रतीक समाहित होकर आए हैं।

स्वच्छंदतावादी प्रमुख आलोचकों में सर्वप्रथम नाम आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी जी का आता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल से समीक्षा दृष्टि की शक्ति को ग्रहण करते हुए एवं उनकी सीमाओं के प्रति गहरी सावधानी का परिचय देते हुए नंददुलारे वाजपेयी ने अपनी समीक्षा दृष्टि का परिचय दिया है। अपनी सैद्धांतिक समीक्षा-दृष्टि के निर्माण से पूर्व उनकी दृष्टि आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांतों को भी सहजता से स्वीकार करने में नहीं है। वाजपेयी जी गहरे चिंतन मनन के पश्चात ही किसी विषय पर राय बनाते हैं। ऐसा करने के कारण उनकी समीक्षा प्राय: अतिक्रांत या प्रभाविभूत होने की स्थिति में न आकर संतुलित दृष्टि अपनाती है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के सैद्धांतिक चिंतन के आधारमूलक दृष्टिकोण को उनकी समीक्षा कृतियों में यहां वहां बिखरे उनके कथनों को मिलाकर समझा जा सकता है। मूलत: वे व्यावहारिक समीक्षा के समीक्षक हैं किंतु प्राचीन शास्त्रीय काव्य विवेचन के समय उन्होंने अपनी स्वतंत्र दृष्टि का भी प्रमाण दिया है। उनकी समीक्षा का मूल दृष्टिकोण ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आधारों पर केंद्रित है। अत: उनकी स्वच्छंदतावादी समीक्षा दृष्टि को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उनके इन मंतव्यों पर ध्यान दिया जा सकता है।

1. कला की प्राचीन परिपाटियों में परिवर्तन आने के कारण नायक का धीरोदात्त वाला सांचा बेकार सा हो गया। प्राचीन काव्यों में कला की जो मर्यादाएं थीं, वे सभी नये परिवेश के दबाव से अमान्य ठहरा दी गई।
2. बदलती हुई नवीन पाठकीय संवेदना, रुचि एवं संस्कारों ने प्राचीन काव्य रूढ़ियों के प्रति घोर अनादर का भाव व्यक्त किया।
3. आज का नया पाठक न तो रावण के व्यवहार को ही स्वीकृति दे पाता है और न सीता की अग्नि परीक्षा की निर्ममता को ही सहन कर पाता है। इसी कारण कला के प्राचीन बंधन टूटने लगे और नयी वास्तविकता प्रतिष्ठित होने लगी।
4. नयी कला भी इसी दृष्टि से अधिक कल्पना-प्रवण, अधिक मानवीय एवं अधिक संवेदनशील हो चली। वह जीवन व्यवहारों में वैयक्तिक स्वातंत्र्य और तज्जनित अनुभूति का आदर करने लगी।

टिप्पणी

5. पुराने आख्यानों तथा प्रसंगों को अपनाना तो ठीक है पर काव्य की पुरानी रूढ़ियों को अपनाना कवि कल्पना, काव्य विचार के लिए बाधक ही कहा जाएगा।
6. अक्सर कहा जाता है कि हिंदी-समीक्षा का नया भवन विदेशों की नकल पर बना है। इसमें पाश्चात्य मधयवर्गीय उत्थान काल के आदर्श और 'डिजाइन' की अनुकृति है। इस संबंध में यह कहना उचित रहेगा कि ईट, चूना, गारा और मिट्टी जब स्वदेशी हैं तब केवल डिजाइन विदेशी होने से क्या। और वह भी इसी अर्थ में विदेशी कही जा सकती है कि विदेशों में इससे मिलती-जुलती इमारतें बन चुकी हैं।
7. काव्य और कला की कोई माप स्थिर न होने के कारण नये समाजशास्त्री (मार्क्सवाद) और मनोविश्लेषक इस क्षेत्र पर मनमाने हमले कर रहे हैं और नयी विधा इस पर आजमाने लगे हुए हैं। ये सभी यदि तटस्थ वैज्ञानिक अनुशीलन में प्रवृत्त होते तो साहित्य का उपकार कर सकते थे किंतु उनका तो लक्ष्य है साहित्य क्षेत्र में अपनी सत्ता जमाना और साहित्य की अपनी सत्ता को मिटा देना। छायावाद तथा रहस्यवाद पर भी इसका आक्रमण नादिरशाह ढंग का है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी ने अपने पाठकों की सुविधा हेतु अपनी समीक्षा दृष्टि के सूत्रों का संकेत संक्षेप में कर दिया है जो इस प्रकार है–

1. रचना में कवि की अंतवृत्तियों का अध्ययन
2. रचना में कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता विशालता का अध्ययन
3. रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्यांगों का अध्ययन
4. समय और समाज तथा उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन
5. कवि की व्यक्तिगत जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन
6. कवि के दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों आदि का अध्ययन
7. काव्य के जीवन संबंधी सामंजस्य और संदेश का अध्ययन

इन्हीं मूल्यों और मानों को आचार्य वाजपेयी ने महाकवि सूरदास, जयशंकर प्रसाद, पंत, महादेवी, अज्ञेय एवं अंचल पर लिखे लेखों में व्यावहारिकता प्रदान की।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने अपनी समीक्षा दृष्टि जिन विषयों पर विचार किया वे इस प्रकार हैं-

1. रस चिंतन
2. काव्य का अधिकारी
3. आत्मानुभूति की प्रेरणा
4. साहित्य और जीवन की सम्मिलित अभिव्यक्ति
5. साहित्य की सामाजिकता
6. आदर्श और यथार्थ
7. स्वच्छंदता और परंपरा
8. काव्य तत्व
9. कल्पना
10. शैली तत्व (काव्य भाषा, छंद, अलंकार)
11. साहित्य रूपों का विवेचन
12. वाद विवेचन (छायावाद, रहस्यवाद, आदर्शवाद, नवीन यथार्थवाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषण शास्त्र, अभिव्यंजनवाद
13. प्रयोगवाद एवं नयी कविता

इस प्रकार समग्र रूप में आचार्य वाजपेयी को शुक्ल की परंपरा का अनेक अंतर्विरोधों से भरा आलोचक कहना चाहिए।

दूसरे स्वच्छंदतावादी आलोचक में डॉ. नगेंद्र का नाम आता है। डॉ. नगेंद्र रसवादी परंपरा और पाश्चात्य समीक्षा की सौंदर्यमूलक स्वच्छंदतावादी दृष्टि का विकास एक साथ करने वाले आलोचक हैं। प्राच्य एवं प्रतीच्य समीक्षा सिद्धांतों का नये ज्ञान विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में नव्य व्याख्या – विश्लेषण तथा उपलब्ध मंतव्यों का तार्किक मूल्यांकन डॉ. नगेंद्र की समीक्षा में शुरू से अंत तक निहित है। उनके निबंधों में भारतीय एवं पाश्चात्य सैद्धांतिक दृष्टिकोण तुलनात्मक दृष्टि के साथ आता है। पर उनका समाधान वे मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण शास्त्र की मान्यताओं के आधारभूत तत्वों से करते हैं। 'रस सिद्धांत' की साधना के साधक के रूप में उन्हें पर्याप्त ख्याति मिली है। उनका कहना है कि "अनेक कारणों से इसे अपनी साहित्य साधना की परिणति मानता हूं। पिछले तीस वर्षों में काव्य के मनन और चिंतन से मेरे मन में जो अंत:संस्कार बनते रहे हैं उनकी संहति 'रस सिद्धांत' में ही हो सकती है।" प्राच्य एवं पाश्चात्य सिद्धांत दृष्टि की अनेकता में एकता खोजने का प्रयास ही डॉ. नगेंद्र की समीक्षा का मूल स्वर है। चाहे 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' हो काव्य में उदात्त तत्व, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं हो तथा 'काव्यबिंब' सभी जगह यही दृष्टि है। भारतीय सौंदर्य-चिंतन के मूलाधारों को उन्होंने "भारतीय सौंदर्य शास्त्र की भूमिका" पुस्तक लिखकर स्पष्टता से प्रस्तुत करना चाहा है। 'साहित्य का समाजशास्त्र' 'काव्य बिंब' 'नयी समीक्षा नये संदर्भ' 'शैली विज्ञान' पुस्तकें भी डॉ. नगेंद्र के द्वारा लिखी गई हैं। डॉ. नगेंद्र ने जिन विषयों पर अपनी आलोचना दृष्टि से विचार किया है वे इस प्रकार हैं–

1. साहित्य प्रेरणा
2. आत्माभिव्यक्ति
3. कल्पना का उपयोग
4. कविता का क्या है
5. रस काव्यानुभूति का स्वरूप
6. काव्य स्वाद की प्रक्रिया-साधारणीकरण
7. भाव विवेचन
8. रस सिद्धांत की शक्ति एवं सीमा
9. काव्य की आत्मा

टिप्पणी

टिप्पणी

10. काव्य प्रयोजन
11. काव्य हेतु
12. काव्य का अधिकारी
13. साहित्यिक मान्यताएं
14. अनुभूति की व्यापकता या व्यापकता के उपादान
15. आधुनिकता का प्रश्न
16. काव्य बिंब
17. काव्यगत अभिव्यक्तिवाद
18. फ्रायड का काम सिद्धांत
19. वाद समीक्षा दृष्टि (छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद)
20. छायावादोत्तर कविता-मूल्यांकन की समस्या
21. आज का लेखन और सांस्कृतिक विघटन
22. नयी समीक्षा
23. काव्य रूप
24. भाषा की अभिव्यक्ति
25. शैली (अलंकार और छंद)
26. विवेचन एवं मूल्यांकन

संक्षेप में डॉ. नगेंद्र की बड़ी शक्ति यह है कि वे भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों की तुलना से समान भूमि की खोज करते हैं। अरस्तू का काव्यशास्त्र, काव्य में उदात्त तत्व, काव्य बिंब, 'नयी समीक्षा: नये संदर्भ' के विषय में यही सत्य है। ठीक यही बात संस्कृत के ध्वन्यालोक, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 'वक्रोक्तिजीवित' आदि काव्यशास्त्र के ग्रंथों की भूमिकाओं में मिलेगी। डॉ. नगेंद्र की दृष्टि को उनके ही साफ शब्दों में कहा जा सकता है कि–

"भारत तथा पश्चिम के दर्शनों की तरह यहां के काव्यशास्त्र भी एक दूसरे के पूरक हैं और पुनराख्यान आदि के द्वारा उनके आधार पर हमारे अपने साहित्य की परंपरा के अनुकूल एक संश्लिष्ट आधुनिक काव्यशास्त्र का निर्माण सहज संभव हैं।"

स्वच्छंदतावादी आलोचकों में अगला नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का आता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सिद्धांतों पर भारतीय लोक और शास्त्र की चिंतन धारा का गहरा रंग है। पाश्चात्य आलोचना दृष्टि का उन पर कम प्रभाव पड़ा है। भारतीय दृष्टि से आचार्य हजारी द्विवेदी जी ने हिंदी की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आलोचना को विकसित किया है। परंपरा, इतिहास एवं परिवेश इन तीनों पर उनकी दृष्टि रहती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसा भारतीय संस्कृति के मूल रूप और अर्थवत्ता को खोजने वाला साधक कोई दूसरा परिलक्षित नहीं होता उनकी सैद्धांतिक मान्यताओं पर मानवतावाद, उपयोगितावाद, सौंदर्यशास्त्र, मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के साथ ऐतिहासिकतावाद का गहरा असर है। भारतीय शास्त्रों को पढ़ने-समझने वाले द्विवेदी जी की विशेषता यह है कि वे पश्चिम के दबाव में नहीं हैं। परंपरा बोध, इतिहास-बोध, सांस्कृतिक बोध-तीनों के समन्वित रूप से उनकी सैद्धांतिक मान्यताओं का आधार बना है, इसलिए उनके चिंतन की मौलिकता क्षण-क्षण नया सौंदर्य धारण करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व में सबसे बड़ा अंतर यही है कि शुक्ल का 'सांस्कृतिक बोध' अपर्याप्त सा परिलक्षित होता है। जबकि द्विवेदी जी इस दृष्टि से समग्र व्यक्तित्व के रूप में उभर कर आते हैं।

टिप्पणी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि एवं विषयों को अधोलिखित बिंदुओं के द्वारा देखा जा सकता है।

1. साहित्येतिहास संबंधी धारणाओं में मतभेद
2. रचनात्मक अनुभूति
3. काव्यास्वाद का विवेचन
4. सामंजस्यपूर्ण सौंदर्यानुभूति
5. काव्य की आत्मा
6. काव्य हेतु
7. काव्य प्रयोजन-लोक कल्याण
8. सहृदय या काव्य का अधिकारी
9. साहित्य में ऐतिहासिकता-सामाजिकता
10. अभिव्यंजना के प्रतिमान

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी के काव्य सिद्धांत मानववादी दृष्टि पर आधारित हैं। पश्चिमी दृष्टि उन्हें प्रभावित नहीं करती है। सामाजिकता को आधार बनाकर वे ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टियों के अनुसंधाता आचार्य अधिक हैं, सिद्धांतकार कम। भारतीयता से स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि- भारतवर्ष का अलंकार शास्त्र बहुत सूक्ष्म और गहन है। संसार के किसी देश ने ऐसा सुंदर काव्य विवेचन नहीं लिखा। वे अपने पाठकों को यह स्मरण दिला देना चाहते हैं कि यह एक सावधानी के साथ, अनेक तर्क उक्तियों से परिमार्जित विचार शास्त्र है।

स्वच्छंदतावादी समीक्षकों में पं. शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम भी उल्लेखनीय है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल उनके लिए लिखते हैं कि पं. शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'हमारे साहित्य निर्माता' नाम की पुस्तक लिखकर हिंदी के कई वर्तमान कवियों और लेखकों की प्रवृत्तियों और विशेषताओं का अपने ढंग से अच्छा विवेचन किया है। शांतिप्रिय द्विवेदी 'सहृदय प्रधान' समीक्षा के भावुक आलोचक हैं। पं. शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना बिंदु इस प्रकार हैं–

1. आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति
2. कविता की आत्मा
3. काव्य प्रयोजन
4. युग और साहित्य

टिप्पणी

5. छायावाद

6. जीवन और साहित्य

छायावाद को सही समझने और व्याख्यायित-विश्लेषित करने के मूल में उनकी यही ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि व्याप्त है। कुछ भी कहिए छायावाद का ऐसा 'सहृदय चक्रवर्ती' आलोचक कोई दूसरा हिंदी संसार में नहीं है जिसने इतनी सूक्ष्म-गहन अंतर्दृष्टि से इस काव्य की शक्ति सीमाओं का मूल्यांकन किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वच्छंदतावादी सैद्धांतिक समीक्षा की धुरी भारतीय काव्यशास्त्र ही है। इसे नये ढंग से परखने तथा नये ढंग से व्याख्यायित-विश्लेषित करने के लिए पाश्चात्य शास्त्रीय सिद्धांतों में तुलना साम्य एवं प्रभाव ग्रहण किया गया है। स्वच्छंदतावादी सभी आचार्यों ने काव्यानुभूति के स्वरूप को तार्किकता तथा वैज्ञानिकता से स्पष्ट किया है।

4.7 मार्क्सवादी आलोचना

मार्क्सवाद चिंतन पद्धति की एक व्यापक परंपरा है। इस सिद्धांत के निर्माता कार्ल मार्क्स (1818-1883) थे तथा ऐंजेल्स (1820-1895) ने मार्क्स के सिद्धांतों की सर्वाधिक विश्वसनीय व्याख्या की तथा इन सिद्धांतों का प्रचार भी किया। ये दोनों (मार्क्स एवं ऐंजेल्स) आपस में मित्र थे तथा मूलत: आर्थिक एवं राजनीतिक विचारक थे। मार्क्स के अतिरिक्त इस परंपरा में लेनिन, गोर्की, प्लेखानान, कॉडवेल आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। मार्क्स एवं ऐंजेल्स की साहित्य में भी रुचि थी। मार्क्स ने पर्याप्त समाजवादी साहित्य की रचना की। उसकी रचनाओं में 'द पॉवर्टी ऑफ फिलॉसफी-1847', 'द कम्यूनिष्ट मेनिफेस्टो-1848', 'दास कैपिटल' आदि प्रमुख हैं। मार्क्स साहित्य मुख्यत: सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से संबंधित है। इन्हीं ग्रंथों में उन्होंने यत्र-तत्र कला-साहित्य संबंधी विचार भी प्रकट किए।

कार्ल मार्क्स के विचार युगांतरकारी हैं। उसकी दार्शनिक स्थापनाएं व्यापक हैं जिनका जीवन के हर क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में भी अधिकांश रचनाकार एवं उनकी रचनाएं मार्क्स दर्शन से प्रभावित हैं। मार्क्स के सिद्धांत 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' पर आधारित जो साहित्य रचा गया उसमें प्रगतिवादी आंदोलनों ने भौतिक उपयोगितावादी मूल्यों की स्थापना की तथा साहित्य के आनंदवादी मूल्यों को हिला कर रख दिया। मार्क्स के 'वैज्ञानिक समाजवाद' की व्याख्या करते हुए ऐंजेल्स लिखते हैं-"वैज्ञानिक समाजवाद वह समाजवाद है जो समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने से पहले उन तमाम वैज्ञानिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिनके आधार पर सामाजिक परिवर्तन होते हैं। सामाजिक गत्यात्मकता नियम विहीन नहीं होती। यदि हम इन नियमों को जान लें तो उसी के अनुरूप समाजवादी परिवर्तन कर सकेंगे। वैज्ञानिक समाजवाद जिस स्थान पर खड़ा है, वह स्वप्नों एवं भावनाओं की कोमल भूमि नहीं है वरन् सत्य और परिस्थिति का कठोर धरातल है।"

मार्क्सवाद सृष्टि और समाज दोनों के विकास पर दृष्टि रख कर चिंतन करने वाला दर्शन है। इसके दो स्वरूप हैं-पहले भाग में सृष्टि और समाज के विकास का विश्लेषण और दूसरे में इस विश्लेषण के आधार पर परिवर्तन के लिए प्रयास किए जाते हैं। मार्क्सवादी दर्शन,

'अपनी प्रगति जांचिए'

23. कौन-सी आलोचना पद्धति प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए अपना स्वतंत्र मार्ग अन्वेषित करती है?
24. स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि किस पर टिकी है?
25. स्वच्छंदतावादी काव्य में कौन-से स्वर प्रबल होते हैं।
26. स्वच्छंदतावादी कवियों की अभिव्यक्ति को किसने मर्मस्पर्शी बना दिया?
27. कवि शैली संपूर्ण प्रकृति को किस दृष्टि से देखता है?
28. स्वच्छंदतावादी प्रमुख आलोचकों में पहला नाम किसका आता है?
29. 'हमारे साहित्य निर्माता' नामक पुस्तक किस समीक्षक ने लिखी?

टिप्पणी

व्यापक, विराट, सुसंबद्ध तथा विस्तृत है। मार्क्स की विचारधारा को सुगमता की दृष्टि से चार भागों में बांट कर अध्ययन किया जाता है-

1. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या अथवा ऐतिहासिक भौतिकवाद
3. वर्ग संघर्ष का सिद्धांत
4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

ये चारों मार्क्स दर्शन में परस्पर सुसंबद्ध हैं तथा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की अविभाज्य इकाई हैं। इन चारों में से विश्व साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया-द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद ने। वस्तुत: मार्क्स सौंदर्य शास्त्र का मूल द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ही है। ऐतिहासिक भौतिकवाद तो द्वंद्वात्मक पद्धति के आधार पर इतिहास का अध्ययन है।

4.7.1 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

यह मार्क्स का दार्शनिक दृष्टिकोण है तथा संपूर्ण मार्क्सवाद को समझने की कुंजी है। यह सिद्धांत संसार की सभी समस्याओं को हल कर सकता है तथा इससे भूत, वर्तमान ओर भविष्यकालीन सामाजिक परिवर्तनों की दशा ज्ञात हो सकती है। हिंदी-साहित्य कोश के अनुसार-"द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दर्शन की दो विभिन्न धाराओं से संबंधित है। जहां तक इसकी प्रणाली का संबंध है, यह हीगल के द्वंद्वात्मक आदर्शवाद से प्रभावित हुआ है और जहां तक दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रश्न है, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद अन्य पूर्ववर्ती भौतिकवादियों के अतिरिक्त जर्मन दार्शनिक फायरबाख के यांत्रिक भौतिकवाद अर्थात मैकेनिकल मैटीरियलिज्म से प्रभावित हुआ है। इस द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को समझने के लिए भौतिकवाद एवं द्वंद्व प्रक्रिया को अलग-अलग समझना होगा-

भौतिकवाद-मार्क्स अद्वैतवादी थे। वे हीगल या अन्य वेदांतियों की तरह सृष्टि का मूल किसी चेतना सत्ता या ब्रह्म को नहीं मानते थे बल्कि उनका मत है कि सृष्टि का मूल तत्व एक मात्र भूत अथवा पदार्थ अथवा जड़ प्रकृति है। भूत अथवा पदार्थ का तात्पर्य प्रत्यक्ष जड़ जगत है जो दिखाई देता है। यह प्रकृति को या भूत को मूल तत्व मानने वाला वाद ही भौतिकवाद है।

मार्क्स अनीश्वरवादी थे। आत्मा तथा ईश्वर में उनकी आस्था नहीं थी। अपनी कठोर भौतिकवादी धारणा के कारण उनका मानना था कि ईश्वर एवं आत्मा का हम अनुभव नहीं कर सकते, अत: उसके अस्तित्व को स्वीकारना भ्रामक है, मृगमरीचिका है। मनुष्य को अपना वैचारिक आधार स्पष्ट भौतिक वस्तुओं को बनाना चाहिए। ईश्वर मनुष्य की कल्पना है जबकि पेड़, मकान, कुर्सी आदि प्रतीत होने वाली सदैव सत्य वस्तुएं हैं। इस तरह इंद्रियगोचर प्रत्यक्ष जगत को ही सृष्टि का मूल मानते हुए मार्क्स कहते हैं कि "संसार के विकास, परिवर्तन और नियंत्रण के लिए किसी ब्रह्म जैसी काल्पनिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है, ये क्रियाएं तो प्रकृति की अंतर्निहित शक्ति से और उसके स्वादानुसार होती रहती हैं।"

यहां मार्क्स के इस मत पर प्रश्न उठा कि प्रकृति जड़ है, चेतनाहीन है तो उसमें परिवर्तन और गति के लिए शक्ति और संभावना कहां है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मार्क्स ने जड़ प्रकृति की विशेषताएं बताई हैं-"निरंतर गतिशीलता प्रकृति का स्वभाव है। इस बात

टिप्पणी

को वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध किया जा सकता है। प्रत्येक जड़ पदार्थ ईंट, पत्थर आदि की संरचना अणुओं से मिलकर हुई है। प्रत्येक अणु का निर्माण न्यूट्रॉन, इलैक्ट्रॉन से होता है जो निरंतर सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार जड़ भूत की गत्यात्मकता अनवरत एवं निरपवाद है। इस तरह स्वयं गतिमान जड़ प्रकृति के संचालन के लिए किसी बाह्य शक्ति ईश्वर आदि की आवश्यकता नहीं है, वह स्वचालित है, स्वयं परिवर्तनगामी है, विकासोन्मुख हैं।" मार्क्स कहता है कि प्रकृति नश्वर है। इसमें स्थायी कुछ नहीं है। पुरातन का ह्रास होता है और नवीन निर्माण होता है, सृष्टि होती है। प्रकृति एक सुसंबद्ध समष्टि है। इसका कोई भी तत्व एक दूसरे से निरपेक्ष नहीं होता वरन संबंधित होता है। प्रकृति का प्रत्येक तत्व और प्रत्येक घटना एक-दूसरे को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं।

मार्क्स की धारणा है कि प्रत्येक जड़ पदार्थ में विरोधी तत्वों की अनिवार्य उपस्थिति होती है। जैसे–लोहा कठोर होते हुए भी अपनी कोमलता के कारण काटा जा सकता है। विद्युत में धन और ऋण दो परस्पर विरोधी तत्व सदा रहते हैं। इन अंतर्विरोधी तत्वों के कारण ही जड़-प्रकृति में विकास क्रम आगे बढ़ता है। इसी तरह अंतर्विरोधी स्वभाव के कारण सामाजिक विकास संभव होता है।

द्वंद्वात्मक पद्धति–हीगल से गृहीत इस पद्धति में मार्क्स कहते हैं कि प्रकृतिगत परिवर्तन एवं विकास द्वंद्वात्मक पद्धति में होते हैं। उनका मत है कि विकासक्रम वाद, प्रतिवाद और संवाद के त्रैत से सदा ऊर्ध्वगामी होता है। उदाहरणस्वरूप वे गेहूं के पौधे को रेखांकित करते हैं–"गेहूं का बीज वाद है। भूमि में बोया हुआ गेहूं अपने अंतर्विरोधों के कारण गलकर नष्ट होकर गेहूं के पौधे के रूप में अपना विकास करता है। पौधे के विकास की यह अवस्था प्रतिवाद है। तीसरी अवस्था में पौधे पर बाली आएगी और पककर गेहूं के दानों में बदल जाएगी, पौधा अपने अंतर्विरोधों के कारण सूखकर नष्ट हो जाएगा। बाली का पककर गेहूं के दानों में बदलना संवाद है।" दूसरा उदाहरण चट्टान का देते हैं–"चट्टान अपने रूप में वाद है। अपने अंतर्विरोधों के कारण टूटकर वह चूर्ण बनती है। यह प्रतिवाद है तथा चूर्ण पानी के साथ बहकर समुद्र में पहुंचता है तथा अपने अंतर्विरोधों के कारण यह चूर्ण पुनः समुद्री चट्टान का रूप ले लेता है, यह संवाद है।"

हीगल एवं फायरबाख से प्रभावित होने पर भी मार्क्स का यह सिद्धांत मौलिक है कि भौतिक जगत की सभी वस्तुएं तथा घटनाएं अपने अंतर्विरोधों के कारण और द्वंद्वात्मक संघर्ष के कारण निरंतर परिवर्तित होती हैं तथा विकास पाती हैं। हीगल और मार्क्स दोनों अद्वैतवादी थे पर दोनों के दृष्टिकोण में भेद था। मार्क्स ने लिखा है कि–हीगल का दर्शन उल्टा सिर के बल पर खड़ा था, उन्होंने उसे सीधा करके पैरों पर खड़ा किया। अर्थात विचारों की काल्पनिक दुनिया से निकालकर यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित किया।

4.7.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्स ने द्वंद्ववादी पद्धति को इतिहास पर आरोपित करते हुए मानव-इतिहास के विभिन्न परिवर्तनों एवं घटनाओं के लिए भौतिक अथवा आर्थिक कारणों को उत्तरदायी माना है। इस तरह की गई इतिहास की भौतिकवादी अथवा आर्थिक व्याख्या ही उनका ऐतिहासिक भौतिकवाद है। मार्क्स ने इस सिद्धांत की सुव्यवस्थित व्याख्या नहीं की केवल छिट-पुट टिप्पणियां ही की हैं लेकिन उनके परवर्ती मार्क्सवादियों तथा ऐंजेल्स ने इस सिद्धांत की पूर्ण एवं व्यवस्थित व्याख्या की है।

टिप्पणी

इस सिद्धांत के अनुसार, भोजन मनुष्य की प्राथमिक एवं अनिवार्य आवश्यकता है अतः प्रकृति के साधनों से भोजन सामग्री जुटाना मनुष्य के सभी कार्यों में से महत्वपूर्ण कार्य है। चूंकि प्राकृतिक साधनों से मनुष्य अकेले अधिक उत्पादन नहीं कर सकता इसलिए वह सामूहिक रूप से मिल-जुल कर यह कार्य करते हैं। इस तरह जीवन के आवश्यक पदार्थों के उत्पादन की दृष्टि से मिल-जुल कर रहने से समाज की रचना होती है। समाज के कुछ लोग अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए उत्पादन के साधनों तथा उत्पादित सामग्री पर अनावश्यक अधिकार कर लेते हैं जिससे असंतोष उत्पन्न होता है। किंतु ये गरीब, शोषित और असंतुष्ट लोग यह अनुभव नहीं करते कि उनके शोषण और दुख का कारण उत्पादन के साधनों का दोषपूर्ण वितरण और कुछ लोगों का निजी स्वार्थ है। वे स्वर्ग लोक की कल्पना करते हैं कि वे वहां जाकर ही इन दुखों, अभावों और चिंताओं से मुक्त होकर अनंत सुख का भोग करेंगे। यह काल्पनिक मायाजाल ही धर्म है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में गरीबों को भीषण कष्टों से मुक्त करने वाली मृग-मरीचिका है। समाज में अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए सत्ताधारी समृद्ध वर्ग धर्म नामक संस्था का निर्माण करता है। समाज में अनादि काल से दो वर्ग हैं–शोषक वर्ग एवं शोषित वर्ग। शोषक वर्ग राज्य की संपूर्ण व्यस्था, नियम-कानून, सामाजिक मूल्य-मान्यताएं आदि की बागडोर अपने हाथों में इसलिए रखता है ताकि वह उत्पादन के साधनों पर अपना एकाधिकार बनाए रखे। इस प्रकार धर्म-कर्म, आचार-विचार, राजनीतिक संस्थाएं, नैतिक-अनैतिक व्यवहार, कला एवं सभ्यता के निर्माण में समाज की आर्थिक स्थितियां ही निर्णायक भूमिका अदा करती हैं।

सूत्र रूप में मार्क्स कहता है कि–सामान्यतः मानव की सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक जीवन प्रक्रिया को निश्चितता प्रदान करने का कार्य भौतिक जीवन के उत्पादन साधनों द्वारा होता है। अर्थात मानव की सत्ता उसकी चेतना द्वारा निश्चित नहीं होती, वरन् उसकी सामाजिक भौतिक परिस्थितियां उसकी राजनैतिक, धार्मिक व कला संबंधी चेतनाओं को निर्धारित करती है।

इतिहास पर आर्थिक कारणों से पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए मार्क्सवादियों ने मानव इतिहास को पांच युगों में बांटा है–(1) आदिम साम्यवादी युग, (2) दास-पद्धति युग, (3) सामंतवादी युग, (4) पूंजीपति युग, (5) साम्यवादी युग। इनमें से प्रथम तीन युग व्यतीत हो चुके हैं। चतुर्थ चल रहा है, पांचवा भावी है।

4.7.3 साहित्य एवं कला संबंधी विचार

मार्क्सवादी कला एवं साहित्य का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए इसे जीवन के लिए मानते हैं। इसे आर्थिक समानता स्थापित करने में सहयोगी होना चाहिए, वे ऐसा मानते हैं। मार्क्सवाद के अनुसार, "उत्पादन के साधन, समाज की यथार्थ परिस्थितियां ही मनुष्य के सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक जीवन क्रम को संचालित करने वाले तत्व हैं।" लेकिन ये सब एक-दूसरे पर भी और आर्थिक आधार पर भी क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं ऐसा ऐंजेल्स का मानना है।

इतिहास के विकास क्रम में शोषित यानी सर्वहारा वर्ग तथा शोषक के बीच निरंतर, दिन-रात संघर्ष चल रहा है। मार्क्सवाद के अनुसार–'ज्ञान' की सभी शाखाओं का यह महत् उद्देश्य है कि वे इस वर्ग संघर्ष को तीव्रतर करें ताकि साम्यवादी युग की स्थापना हो सके।

टिप्पणी

जोकि इतिहास के विकास क्रम का अंतिम आदर्श युग होगा। लेनिन कहते हैं–'साहित्य इस संघर्ष को तीव्र करने का महानतम अस्त्र है।' इस दृष्टिकोण से साहित्यकार का मूल उद्देश्य शोषित वर्ग को पूंजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन के लिए प्रोत्साहित करना हुआ। तात्पर्य यह है कि मार्क्सवाद साहित्य-कला का प्रयोजन सर्वहारा (शोषित) वर्ग के हितों की रक्षा करना तथा वर्ग-संघर्ष में उन्हें विजयी बनाकर साम्यवाद की स्थापना करना है।

मार्क्सवादी साहित्य को वर्गवाद की उपज मानते हैं। लेनिन का स्पष्ट मत है कि वर्गहीन समाज में ही वर्गहीन साहित्य की रचना संभव है। अत: साहित्यकार के निरपेक्ष स्वातंत्र्य का सिद्धांत मात्र भ्रम है, विडंबना है। उदाहरणस्वरूप–सामंतशाही का रचनाकार उन जीवन मूल्यों की कल्पना भी नहीं कर सकता जो कि समाजवादी युग के साहित्यकार द्वारा निर्मित होंगे या हैं। इसलिए वे साहित्य को वर्गगत मानते हैं।

मार्क्सवादी व्यक्तिनिष्ठ काव्य को हेय, अकल्याणकारी तथा समाज-विरोधी मानते हैं। वे काव्य में सामाजिक या सामूहिक भाव पर बल देते हैं। जनमानस की विशिष्ट मान्यताओं, संस्कारों, प्रभावों तथा प्रतिक्रियाओं का समष्टिगत रूप 'सामूहिक भाव' है जो साहित्यकार द्वारा प्रयोग किए जाने पर अपनी सुगंधि से जन-मानस को मदमस्त कर देगा। मूक जनता को शब्दों का भंडार देगा तथा उन्हें सक्रिय और सचेत बनाएगा।

मार्क्सवादी संसार को परिवर्तनशील मानते हुए साहित्य की विधाओं को भी युग विशेष के साथ जोड़ते हैं। जैसे–महाकाव्य को सामंती युग के योद्धा वर्ग तथा नाटक को कृषि युग की उपज मानते हैं। जीवन के यथार्थ किंतु नग्न चित्रों को मार्क्सवादी कलापूर्ण नहीं मानते। यथार्थवादियों को कार्य-कारण संबंध का तिरस्कार नहीं करना चाहिए जैसे युद्ध के वर्णन में उसके कारण, परिणाम तथा व्यापक परिवर्तनों की चर्चा करना आवश्यक है इनमें से एक भी तत्व को छोड़ देने पर वह एकांगी यथार्थवादी होगा। अर्थात यथार्थवाद से उनका तात्पर्य है–ऐसा है और ऐसा किस कारण है तथा ऐसा होने से क्या लाभ-हानि है। मार्क्सवादी, साहित्यकार की व्यक्तिगत मान्यताओं को महत्व नहीं देते। वे साहित्य-मूल्यांकन का एकमात्र मानदंड सामाजिक उपयोगिता को मानते हैं। वे साहित्य को पार्टी-सिद्धांतों के प्रचार का साधन मानते हैं। हालांकि यह उनका संकीर्ण और सांप्रदायिक दृष्टिकोण माना गया तथा समाजवादी यथार्थ को वर्तमान के साथ-साथ प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन का प्रतिमान घोषित करना भी उनका रूढ़िवादी तथा संकुचित दृष्टिकोण है। मार्क्सवादी कला-साहित्य के विशुद्ध सौंदर्यवादी अथवा रूपवादी चमत्कारों एवं बौद्धिक वाग्जालों के सृजन में संलग्न सभी वादों के विरोधी हैं, क्योंकि ये शोषित वर्ग के हितों की रक्षा नहीं करते। मार्क्स के इन सिद्धांतों एवं मान्यताओं का विश्व साहित्य पर गहन एवं व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

30. मार्क्स ने किस प्रकार के साहित्य की रचना की?
31. 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' पर रचे साहित्य ने किन मूल्यों को हिलाकर रख दिया?
32. मार्क्स सौंदर्य शास्त्र का मूल कुंजी क्या है?
33. मार्क्स के अनुसार प्रत्येक जड़ पदार्थ में किन तत्वों की अनिवार्य उपस्थिति होती है?
34. किसके दर्शन को मार्क्स ने 'उल्टे सिर के बल पर खड़ा' कहा था?
35. इतिहास पर आर्थिक कारणों से पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए मार्क्सवादियों ने मानव इतिहास को कितने युगों में बांटा?
36. मार्क्सवादी साहित्य को किसकी उपज मानते हैं?

4.8 समाजशास्त्रीय आलोचना

'समाज शास्त्रीय आलोचना' का अर्थ न केवल सांस्कृतिक दृष्टि तक ही सीमित है, अपितु इसमें इतिहास वह नैतिकता दोनों का समावेश है। समाज अपने किसी विशिष्ट युग में ही पूर्ण नहीं होता। उसके पीछे एक परंपरा होती है और आगे एक सम्भावना। इस परंपरा और सम्भावना को समझे बिना एक युग के समाज को समझना मुश्किल है। अत: ऐतिहासिकता व नैतिकता इसके दो पक्ष हैं जिनके अभाव में समाजशास्त्र के अर्थ को पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता।

टिप्पणी

'समाजशास्त्र' के वास्तविक स्वरूप को उसके क्षेत्र के माध्यम से समझा जा सकता है। समाजशास्त्र के क्षेत्र निर्धारण के विषय में विद्वानों द्वारा प्रतिपादित मतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. विशिष्टात्मक विचारधारा
2. समन्वयात्मक विचारधारा

विशिष्टात्मक विचारधारा में हम वस्तु का अध्ययन दो विधियों द्वारा करते हैं– (i) स्वरूप (ii) अन्तर्वस्तु। स्वरूप से तात्पर्य बाह्य वस्तु से है, अन्तर्वस्तु से तात्पर्य आंतरिक विशेषताओं से है। विशिष्टात्मक विचारधारा के अनुसार सामाजिक संबंधों में भी स्वरूप और अन्तर्वस्तु का भेद परिव्याप्त है।

समन्वयात्मक विचारधारा के अंतर्गत समाजशास्त्र को एक सामान्य विज्ञान माना गया है। जिसमें समाज का समग्र रूप से अध्ययन होता है तथा समाज के विभिन्न अंगों के बीच उत्पन्न होने वाली अंतक्रियाओं को ध्यान में रखा जाता है। मानव शरीर के अंग जिस प्रकार अन्योन्याश्रित हैं, उसी प्रकार सामाजिक जीवन के विभिन्न अंग एक-दूसरे से अलग नहीं है। एक का प्रभाव दूसरे पर अवश्य पड़ता है।

समाजशास्त्र संस्थाओं का अध्ययन करता है। संस्थाएं मानवीय हितों को अपने विशिष्ट साधनों कार्यनिधियों व पद्धतियों से संपन्न करती है। साहित्य मानवीय भावनाओं को परिष्कृत नहीं करता अपितु उदात्त मानवीय चेतना में सुसभ्य संस्कार भी लाता है। अत: साहित्य और संस्थाएं दोनों ही विशद् कार्यों से जुड़ी हैं। संस्थाए जिन-जिन रीतियों रूढ़ियों के समूह से घिरी रहती हैं वे साहित्य में प्रतिबिंबित होती हैं। संस्थाओं में जिन सामाजिक संबंधों, मूल्यों, कार्य प्रणालियों की सुस्थिति है वह सुस्थिति साहित्य के भीतर निश्चित रूप से विद्यमान है। इस प्रकार समाजशास्त्र की आधारभूत सामाजिक संस्थाओं में परिवार एवं रिश्तेदारी, आर्थिक, राजनैतिक, वैधानिक, धार्मिक, शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक संस्थाएं शामिल हैं। साहित्य कला के रूप में सामाजिक संस्था के क्षेत्र में शामिल हो जाता है। अभिव्यक्तिमूलक संश्लिष्ट संस्थाओं में कला, नाटक, मनोरंजन शामिल हैं। डॉ. विश्वम्भरदयाल गुप्ता की मान्यता है कि हित साधना के कारण कला एवं साहित्य में अनेक परंपराएं व रूढ़ियां सम्बद्ध रही हैं जिन्होंने संस्थात्मक आधार ग्रहण करने में शुरुआत की है। अत: साहित्य एक प्राचीन संस्था है। इसी प्रकार साहित्य एक सामाजिक संस्था है। इसका माध्यम है भाषा, जो एक सामाजिक सर्जना है। साहित्य का अपना एक स्वतंत्र समाज होता है। जिसके निर्माण में लेखक, पाठक, आलोचक तथा प्रकाश के अन्त:संबंधों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रणालियों से पूर्व अनेक विधियां प्रचलित रहीं। इनमें दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, काव्यशास्त्रीय, सौंदर्यशास्त्रीय, शैली विज्ञान, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक जैसी दृष्टियों के आधार पर साहित्य का विश्लेषण अध्ययन किया जा रहा है। मूल्यांकन विश्लेषण अब विभिन्न ज्ञानानुशासनों के आधार पर करने के पक्ष में है। इसलिए अब रचनाकार एक साथ अनेक लक्ष्यों की पूर्ति करता है। सामाजिक धरातल पर संबंधों की अन्तक्रियाओं को साहित्यिक धरातल पर समझने का प्रयास करना चाहता है, इन सभी

टिप्पणी

पद्धतियों से अधिक सटीक मापक पद्धति 'साहित्य का समाजशास्त्र' है। साहित्य के समाजशास्त्रीय के अध्ययन की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं पर इसका आधार वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक अवश्य रहा है। इतना नही नहीं साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन नवीन अवधारणाओं की स्थापना करता है। साहित्य और समाज के पारस्परिक संबंधों के साथ अन्त:क्रियाओं की जटिलता एवं संघर्षों को रूपायित करता है। अब साहित्यकार समाज तथा साहित्य के पारस्परिक संबंधों को दर्पण, प्रतिबिम्बन, यथार्थ चित्रण से बढ़कर संश्लिष्ट स्थितियों को एक साथ समझने की प्रविधि को उद्घाटित करता है। साहित्य और समाजशास्त्र के बीच का रूप समाप्त हो चुका है। अब साहित्य का मूल्यांकन प्रत्यक्ष आधार पर किया जाने लगा है। समाजशास्त्रीय की दृष्टि में साहित्यिक घटना लौकिक वस्तु है। साहित्य की समाजशास्त्रीय अध्ययन की पद्धति इस तथ्य को प्रस्थापित करती है कि रचयिता की चेतना और मानसिकता जो रचना में कथ्य, पात्र, संवाद परिवेश आदि के रूप में अभिव्यक्ति पाती है, उसके मूल में समाज रहता है। इसलिए साहित्य समाजशास्त्री का मुख्य कार्य अथवा प्रतिपाद्य साहित्य के संरचनात्मक स्वरूप का अध्ययन करना तथा लेखक, प्रकाशक, पाठक आदि इकाइयों के संबंधों के जटिल जाल को समझने में अग्रसर होना है।

'साहित्य का समाजशास्त्र' अपने आप में एक जटिल एवं व्यापक विषय है। इसकी अनेक प्रविधियां, पद्धतियां मार्क्सवादी तथा मार्क्स-विरोधी दो स्कूलों में माना है। उनकी दृष्टि में समाजशास्त्र एक आलोचनात्मक अनुशासन एवं क्रिया है। साहित्य को जब समाजशास्त्रीय पद्धति के आधार पर विश्लेषित किया जाता है तब इस पर धर्म, रीति-रिवाज और विधि के प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है साहित्य को विचारधारा की दृष्टि से आंका जाता है, सामाजिक विधान को भी आधार बनाया जाता है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और द्वंद्वात्मक आदर्शवाद, मार्क्स और हीगेल की धारणाओं से साहित्य का अध्ययन भिन्न-भिन्न नवीन दिशाओं की ओर विकसित हो चुका है। सटीक सार्थक एवं सम्यक् दृष्टियां "साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन" प्रस्तुत कर चुकी है।

'साहित्य का समाजशास्त्र' की प्रमुख सैद्धांतिक मान्यताओं का विश्लेषण अनेक दृष्टियों से किया गया है। इसकी मान्यताओं को एक परिधि में आबद्ध नहीं किया जा सकता कारण, इसका गतिशील एवं विकासशील होना है। रूचेक के अनुसार साहित्य–समाजशास्त्र की तीन प्रमुख सैद्धांतिक मान्यताएं प्रतिपादित की गई हैं।

1. प्रतिच्छाया सिद्धांत
2. नियामक सिद्धांत
3. प्रभावक सिद्धांत

ऐलनस्विंगवुड भी साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की तीन मान्यताएं हैं–

1. दर्पण सिद्धांत
2. लेखक की सामाजिक स्थिति का सिद्धांत
3. कृति के अस्तित्व एवं स्वागत का सिद्धांत

साहित्य का समाजशास्त्री, साहित्य को समाज की प्रतिच्छाया, समाज के नियामक व प्रभाव रूप में तथा कृति की सामाजिक स्वीकृति के संदर्भ में तथ्यों का संकलन एवं

टिप्पणी

प्रकल्पनाओं का निर्माण तथा परीक्षण करता रहा है। इन मान्याताओं-आधारों को विश्व के साहित्यकारों एवं समाजशास्त्रियों ने स्वीकार किया है। फिर भी समय-समय पर इनमें परिवर्तन व विकास स्वाभाविक तरीके से होता रहा है। प्रतिच्छाया सिद्धांत के अंतर्गत समाज को दर्पण अर्थात प्रतिच्छाया माना गया है। साहित्य द्वारा युग प्रतिबिम्बित होता है। मार्क्सवादी विचारकों ने इस सिद्धांत का समर्थन किया है।

प्रेमचंद के अनुसार "इतिहास की अपेक्षा साहित्य जीवन पर अधिक प्रभाव डाल सकता है क्योंकि साहित्य अपने देश का प्रतिबिम्ब होता है।" साहित्य के समाजशास्त्र का प्रतिच्छाया सिद्धांत रचना विशेष के परिवेश और इस परिवेश के बीच उसकी संरचना को समझने में विशेष रूप से सहायक हो सकता है। नियामक सिद्धांत के अंतर्गत साहित्य को प्रेरक एवं उद्देश्यपूर्ण माना जाता है, आदर्शात्मक सामाजिक मूल्यों के प्रति साहित्यकार समाज का सही मार्ग निर्देशक होता है।

प्रभावक सिद्धांत प्रथम सिद्धांत तथा द्वितीय सिद्धांत का प्रभावशाली प्रेरक पक्ष है। यहां साहित्यकार का कार्य युग को प्रतिबिंब करना ही नहीं वरन उसे विसंगतियों से मुक्त कर नवीन दिशा की ओर ले जाना भी है। एक प्रकार से विषमताओं विपदाओं के बीच सही मूल्यों का आह्वान, आत्मबल प्रदान कराना साहित्यकार का लक्ष्य होता है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रमुख प्रवृत्ति समग्रतावादी मानी जाती है। इस पद्धति के मूल में लेखक (कृतिकार) कृति और पाठक त्रिवर्ग अवश्य रहता है जबकि अन्य पद्धतियों में किसी एक पक्ष को केंद्र में रखा जाता है। यह विश्लेषण पद्धति प्रतिमानों को आत्मसात् किए हैं–त्रिवर्ग एक-दूसरे का पूरक है और अब प्रकाशक को भी घटक रूप में सम्मिलित किया गया है।

पाश्चात्य विचारकों से प्रभावित भारतीय विद्वानों ने साहित्य का समाजशास्त्र विषयक काफी कार्य किया है। हिंदी में मार्क्स, एंजेल्स, प्लेखानोव, लुकाच, ल्युसिएं, गोल्डमान सरीखे विचारकों का विशेष प्रभाव रहा है। हिंदी आलोचना को सामाजिक आधार पर समझने का प्रयास करने वाले समीक्षकों में डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्ता, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, डॉ. मैथिली प्रसाद भारद्वाज, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, डॉ. शिव कुमार मिश्र, मुक्तिबोध, डॉ. रामविलास शर्मा तथा डॉ. नाववर सिंह जैसे लेखक प्रमुख हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का दर्पण, प्रतिबिंब तथा प्रतिच्छाया तक सीमित नहीं है। वह उसका प्रभाव व नियामक तथा दशा और दिशा प्रदान करने वाला है। इस विश्लेषण पद्धति की निश्चित वैज्ञानिक विधि है–इसकी प्रतिमानक प्रणाली है। हिंदी आलोचना के विकास में भले ही 'साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का प्रचलन देर से हुआ हो पर कुछ संगोष्ठियों-सेमीनारों में इस पद्धति के महत्व की चर्चा हो चुकी है। हिंदी आलोचना में समाजशास्त्रीय प्रणाली की ठीक प्रकार से शुरुआत मुक्तिबोध की आलोचना पद्धति से मानी जा सकती है। मुक्तिबोध ने इस पद्धति को आत्मसात कर माना है कि "साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से मानव-सत्ता का अध्ययन है। अतएव जो लोग ऊपरी तौर पर साहित्य का ऐतिहासिक विहंगावलोकन अथवा समाजशास्त्रीय निरीक्षण कर चुकने में ही अपनी इतिकर्तव्यता समझते हैं वे एक पक्षीय अतिरेक करते हैं। ऐसे व्यक्ति साहित्य के ऐतिहासिक अथवा समाजशास्त्रीय परिवेश की बात करके चुप हो जाते हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि

टिप्पणी

आलोचना में ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक-सौंदर्यात्मक विवेचन की संपूर्ण एकात्मकता रहे।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि साहित्य की समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति समकालीन हिंदी समीक्षा को एक 'नयी आधारभूमि, प्रदान करती है। यह समीक्षा को वस्तुनिष्ठ बनाती है इसे सामाजिक सरोकारों के प्रति सचेत करती है। आज समीक्षा में रचना के साथ रचनाकार, परिवेश के साथ-पाठक और प्रकाशक को भी घटक रूप में अंगीकार किया गया है।

4.9 सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना

साहित्य-विश्लेषण की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। समय-समय इन पद्धतियों एवं विश्लेषण, प्रणालियों में परिवर्तन एवं विकास होता रहा है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में साहित्य की इन विभिन्न प्रचलित पद्धतियों-प्रणालियों की प्रतिमानक पहचान का प्रयास होता आ रहा है। इस सिद्धांत मूल्यांकन विश्लेषण की कसौटी रहा है- इसके साथ ही ध्वनि, रीति, अलंकार तथा औचित्यादि को भी कुछ आचार्यों ने मूल्यांकन विश्लेषण की पद्धतियां माना है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में सौंदर्यशास्त्रीय समाजशास्त्रीय, मार्क्सवादी, संरचनावादी पाठ भाषा वैज्ञानिक, चिह्न संकेत वैज्ञानिक आदि पद्धतियां विश्लेषण में विशेष रही हैं। इनमें सौंदर्यशास्त्रीय पद्धति प्रमुख हैं। हिंदी में सौंदर्यशास्त्र के अनेक पर्यायवाची हैं, जिनमें नंदनशास्त्र, कलाशास्त्र, संवेदनशास्त्र, कलादर्शन, सौंदर्यदर्शन, सौंदर्यविज्ञान, कलामीमांसा, दीक्षा शास्त्र, रस शास्त्र, आस्वादन शास्त्र कला विज्ञान तथा लालित्य-शास्त्र आदि प्रमुख हैं। हिंदी में 'ऐस्थेटिक्स' का हिंदी रूपांतर 'सौंदर्यशास्त्र' ही प्रचलित है। सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य संबंधी मान्यताओं आत्मगत, वस्तुगत तथा समन्वित दृष्टि आदि की चर्चा इसमें की जाती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

37. किसके स्वरूप को उसके क्षेत्र के माध्यम से समझा जा सकता है?
38. समाजशास्त्र किसका अध्ययन करता है?
39. अब साहित्य का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाने लगा है?
40. समाजशास्त्रीय दृष्टि में साहित्यिक घटना क्या है?
41. साहित्य सामाजशास्त्री का मुख्य कार्य साहित्य के किस स्वरूप का अध्ययन करना रहता है?
42. 'रूचेक' और 'ऐलनस्विंगवुड' ने समाजशास्त्रीय अध्ययन की कितनी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं?
43. साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रमुख प्रवृत्ति कौन-सी मानी जाती है?

4.9.1 सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा एवं स्वरूप

सौंदर्यशास्त्र मुख्य रूप से पश्चिम की विधा है किंतु भारतीय आलोचना दृष्टि भी इससे अछूती नहीं रही। डॉ. कुमार विमल ने सौंदर्य चिंतन को पाश्चात्य दृष्टि से प्रस्तुत करते हुए संक्षेप में 'यूनान' रोम, जर्मनी, इंग्लैंड तथा रूस आदि देशों में विभाजित किया है। यूनान में सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू की धारणाएं हैं। सुकरात के अनुसार 'सुंदर' और 'शिव' एक है अतः सुंदर जीवन सापेक्ष है, प्लेटो की मान्यता है कि 'सुंदर', 'शिव' और 'सत्य' एक है। 'सुंदर' के लिए नैतिक होना आवश्यक है। अरस्तू के मत में सौंदर्य आकांक्षा, वासना और उपयोगिता से ऊपर की वस्तु है।

रोम के प्लुटार्क ने सौंदर्य को एक प्रकार की कलात्मक कुशलता माना है। बाडमगार्टेन का मत है कि प्रकृति ही सुंदर का चरम प्रतिमान हैं वे सौंदर्य शास्त्र को संवेदनशील ऐंद्रियबोध के शास्त्र के रूप में लेते हैं। कांट के अनुसार सौंदर्य चिंतनशील धारणा का आनंद है। इंग्लैंड के एल्सन ने सौंदर्य को विचारों का प्रवाह माना है। रूस के चर्नाशेब्स्की की धारणा है कि "सौंदर्य जीवन है।" हीगेल 'आइडियल की अभिव्यक्ति का प्रयास सौंदर्य' मानते हैं। और इनका माध्यम या अनुकरण ही उनकी दृष्टि में सुंदर है। वह इसका प्रयोग ललित कलाओं के दर्शन के रूप में करते हैं। हीगेल के पश्चात सौंदर्य शास्त्र में जिसका विशेष महत्व है वह है- क्रोचे। क्रोचे की मान्यता है कि सौंदर्यशास्त्र अभिव्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान है।

टिप्पणी

भारतीय आचार्यों में वामन कहते हैं 'सौंदर्यमलंकार' 'शिशुपाल वध' में माघ के द्वारा कहा गया है कि- "क्षणे-क्षणे यन्नयतामुपैति तदैव रमणीयताया:"। "प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता" कालिदास ने कुमारसंभव में कहा है। पंडित राज जगन्नाथ ने 'रस गंगाधर' में कहा है कि "रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्"। रवींद्रनाथ टैगोर के शब्दों में "मनुष्य के मुख में केवल आकृति की ही सुंदरता नहीं होती, उसमें चेतना की दीप्ति, बुद्धि की स्फूर्ति और हृदय का लावण्य भी होता है।" निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अंत: बाह्य की युगयत् क्रिया द्वारा ही सौंदर्य की सृष्टि होती है।

4.9.2 सौंदर्य या सौंदर्यात्मक मूल्य

रमेश कुंतलमेघ के मेध के शब्दों में "व्यक्ति के अहम् के भी दो पक्ष हैं- एक प्राकृतिक अथवा आदिम और दूसरा सामाजिक अथवा संस्कृत अहम्। आदिम अहम् मूलवृत्ति मूलक है और किसी प्रतिबंध को स्वीकार नहीं करता। सामाजिक अहम् मूलवृत्ति मूलक है और किसी प्रतिबंध को स्वीकार नहीं करता। सामाजिक अहम् प्रतिबंधों से समझौता करता है और सौंदर्य मूल्य इसमें स्थित रहते हैं। आदिम अहम् से जीवन में गति आती है और सामाजिक अहम् से सौंदर्यमूल्य प्रौढ़ होते हैं। इस प्रकार एक ओर आदिम और सामाजिक अहम् का आपसी द्वंद्व और दूसरी ओर वस्तु और वातावरण का द्वंद्व इस प्रक्रिया को संचालित करता है। अहम् के आपसी द्वंद्वों के फलस्वरूप संवेग, आवेश, सुख, रेचन आदि की स्थितियां उभरती-डूबती रहती हैं तथा वातावरण के द्वंद्वों के फलस्वरूप पदार्थ माध्यम से संयुक्त कलाकृति और उसको धारण करने वाला सामाजिक परिवेश बनता बदलता है। हमारा सापेक्ष अहम् अपने सौंदर्यानुभव तो करता है किंतु सौंदर्य की प्रतिष्ठा अपने से बाहर अर्थात वस्तु में करता है।" सौंदर्य वस्तुगत है, वस्तु कायम रहती है, किंतु सौंदर्यानुभव काल और जन के अनुरूप कभी तीव्र और कभी लुप्त एवं कभी परिवर्तित हो जाते हैं।

4.9.3 सौंदर्यात्मक मूल्यों की कोटियां

मूल्य-मीमांसा में मूल्यों की अनेक कोटियां वर्णित हैं। स्थूलता तथा सूक्ष्मता के आधार पर मूल्यों को विभाजित किया जाता है। विद्वानों के अनुसार "सौंदर्यमूलक आत्मगत, बहिर्गत होने से व्यापकता का समावेश होता है। इस प्रकार सौंदर्य-मूल्यों में विविधता तथा तीव्रता स्वयमेव आ जाती है। इन्हीं को 'कलावस्तु अंतर्भूत' एवं 'कलावस्तु बहिर्गत' तथा समन्वित मूल्य भी कहा जाता है।

कलावस्तु अंतर्भूत मूल्य में पदार्थात्मक मूल्य, संवेदनात्मक मूल्य, रूपात्मक मूल्य एवं विषय वस्तुगत मूल्य आते हैं। कलावस्तु बहिर्भूत मूल्य में पुन: प्रस्तुतीकरण तथा आत्मीकरण से संबंधित विषय वस्तुगत मूल्य, सामाजिक अथवा सार्वभौम आदर्श के मूल्य एवं वैयक्तिक आदर्श के मूल्य आदि आते हैं।

4.9.4 सौंदर्य संबंधी तीन विश्वात्मक दृष्टिकोण

सौंदर्य की विभिन्न परिभाषाओं एवं वर्गों को देखते हुए सौंदर्य की तीन प्रमुख विश्वात्मक दृष्टियां उभर कर आती हैं-

1. वस्तुनिष्ठ (बहिर्मुखी)

टिप्पणी

2. आत्मनिष्ठ (अंतर्मुखी)

3. सापेक्ष (समन्वयवादी)

सौंदर्य के प्रति वस्तुगत अथवा विषयीगत दृष्टि रखने वाले चिंतकों ने सौंदर्य को बाह्य पदार्थ में देखा है। आत्मसत्ता में विश्वास न रखने वाले ये सौंदर्य चिंतक सौंदर्य को इंद्रियों को सुख देने वाले गुणों अथवा रूप से समाहित मानते हैं। वस्तु की सुडौलता, आकार, रूप, व्यवस्थित क्रम, एकान्विति, स्पष्टता, सुकुमारता, कोमलता, सामंजस्य, संतुलन, अनुपात, माधुर्य उदात्तता आदि गुणों के आधार पर वस्तुवादी विचारक सुंदरता का निर्णय करते हैं।

आत्मनिष्ठ दृष्टि में विश्वास रखने वाले विद्वानों का मानना है कि सौंदर्य व्यक्ति की निजी अनुभूति है वस्तु या कथित गुण-प्रतीतियां मात्र हैं। जड़ पदार्थ का अपना कोई रूप गुण नहीं है। ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्रमाता की चेतना के सन्निकर्ष से ही इसमें रूप, गुण का आविर्भाव होता है। रागात्मक प्रवृत्ति ही वस्तु में सौंदर्य का प्रसार करती है।

वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दृष्टियों के अतिरिक्त चिंतकों का एक बड़ा वर्ग सौंदर्य के समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया करता है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार "सौंदर्य न तो पूर्णत: प्रमाता की चेतना में होता है और न पदार्थ में। उसकी सत्ता वस्तुत: दोनों के समन्वय में है।" डॉ. रमेश कुंतल मेघ के अनुसार "सौंदर्य एक गुण है, जिसका सामाजिक चरित्र होता है। सौंदर्य वस्तुगत तथ्य के रूप में समाज में अस्तित्वमान सौंदर्य मनुष्य के सामाजिक जीवन एवं ऐतिहासिक दशा की उपज है और मानवीय समाज के बिना सौंदर्य की कल्पना नहीं की जा सकती।"

भारतीय सौंदर्यशास्त्रीय परंपरा में जिन आलोचकों का नाम प्रधान रूप से आता है उनमें आनंद कुमार स्वामी, अमृत शेरगिल, अवनींद्र नाथ ठाकुर, रामकृष्ण दास, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. फतेह सिंह, डॉ. गोविंद चंद्र पांडे, डॉ. कुमार विमल एवं डॉ. रमेश कुंतल मेघ आदि प्रमुख हैं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पश्चिम में उपजी सौंदर्यशास्त्री अवधारणा भारत में भी हिंदी आलोचना के क्षेत्र में पर्याप्त फली-फूली है। भारतीय सौंदर्यशास्त्र को समझने के लिए नाट्यशास्त्र तथा काव्यशास्त्र को समझना अनिवार्य है। हिंदी समीक्षा में सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन पाश्चात्य और भारतीय दोनों दृष्टियों को आत्मसात किए हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

44. सौंदर्यशास्त्र मुख्य रूप से कहां की विधा है?
45. सौंदर्यशास्त्र को अभिव्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान किसने माना?
46. सौंदर्य संबंधी कितनी विश्वात्मक दृष्टियां उभर कर आती हैं?
47. सौंदर्य के प्रति वस्तुगत दृष्टि रखने वाले चिंतकों ने सौंदर्य को किस रूप में देखा?
48. किन विचारकों ने सौंदर्य को व्यक्ति की निजी अनुभूति माना है?

4.10 शैली वैज्ञानिक

हिंदी में जिस 'शैली' शब्द का प्रयोग किया जाता है उसका सामान्यत: दो शब्दों अंग्रेजी के स्टाइल और संस्कृत के रीति से संबंध है। शैली के स्वरूप को भारतीय व पाश्चात्य ने अपनी-अपनी दृष्टि से विवेचित किया है।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार शैली शब्द की उत्पति 'शील' शब्द से हुई है। डॉ. भोलनाथ तिवारी ने शैली शब्द के मूल में 'शील' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही माना है। शील एक देवता विशेष है, जिनका मेध्य मांजनी विधा है, इस विधा में 'लीपना' तथा पॉलिश करना आदि का आना, 'शील' शब्द के अर्थ स्तर पर 'शैली' के काफी निकट ला देता है।

टिप्पणी

कतिपय विद्वानों ने 'शील' का अर्थ एकाग्र होना, अभ्यास होना भी स्वीकार किया है। कोश के अनुसार शील का अर्थ स्वभाव, आचरण चरित आदि से है। इस आधार पर शील शब्द की व्याप्ति व्यक्ति व्यवहार, चरित्र, मनोवृत्ति, रुचि आदि तत्वों तक में है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने मनोभावों को व्यक्त करने के सौंदर्यात्मक प्रयोग की 'शैली' कहा है। उन्होंने शैली के स्वरूप को मनोभाव से जोड़ा है।

हिंदी में प्रयुक्त 'शैली' शब्द अंग्रेजी के 'स्टाइल' के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है किंतु अंग्रेजी का स्टाइल शब्द अत्यंत व्यापक हैं हिंदी में शैली शब्द जहां व्यक्तित्व, साहित्य और साहित्य में प्रयुक्त रचनागत विशिष्टताओं एवं सौंदर्य तक सीमित हैं वहीं अंग्रेजी में 'स्टाइल' का संबंध साहित्येतर विशिष्टताओं से जोड़ा गया हैं। पाश्चात्य जगत में शैली के लिए रामचंद्र प्रसाद लिखते हैं-

"वे समस्त नुकीले उपकरण जैसे कि लोहे की कलम जिनसे तांबे के पत्रों पर खोदा जाता है या चित्रों की प्रतिच्छाया उतारी जाती है स्टाइल कहे जाते हैं। 'स्टाइल' शब्द से छेद करने वाले बरमी के उस उपकरण का बोध होता है जिससे प्राचीन और मध्ययुग में उन पहियों पर लिखा जाता था, जिन पर मोम जमाया गया होता था। इस उपकरण का दूसरा सिरा धारहीन होता था, जिससे अक्षरों को मिटाया जा सकता।" रेवरैंड, सेमुअल, वेजली, प्लेटो, चेस्टरफील्ड आदि ने 'शैली' को 'वैचारिक दृष्टि' माना है। चेस्टरफील्ड के अनुसार 'शैली विचारों की पोशाक है।'

निष्कर्षत: एक रचनाकार के लिए 'शैली' ही वह उपादान है जिसके द्वारा लेखक अपनी 'ज्ञानात्मक संवेदना' को पाठक तक पहुंचाता है। 'शैली वैज्ञानिक' समीक्षक रचना के रूप में सौंदर्य का अध्ययन भाषिक उपादानों के माध्यम से कर कृति के मूल कथ्य उद्घाटित करता है।

शैली को दो आधारों पर परिभाषित किया जाता रहा है। (i) भाषापरक (ii) रचनाकार के व्यक्तित्व के आधार पर। शैली के समाजशास्त्रीय स्वरूप पर नगेंद्र का कहना है कि "भाषा समाज के जीवन-व्यापार का अनिवार्य साधन है और साहित्य उसका दर्पण" अत: शैली विज्ञान जो साहित्य का भाषिक अध्ययन है दोनों छोरों पर भाषा और साहित्य दोनों के माध्यम से समाजशास्त्र में आबद्ध है। आरंभ में मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान आदि का विकास स्वतंत्र अनुशासनों के रूप में हुआ था, परंतु समाजवादी दर्शन के प्रभाव से समाजशास्त्र का महत्व बढ़ा है और अन्य अनुशासनों में उसका प्रवेश होता गया। मनोविज्ञान के क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान का, भाषा के क्षेत्र में सामाजिक भाषाविज्ञान का विकास हुआ है। शैली में जिस हद तक शैलीकार के सामाजिक व्यक्तित्व अर्थात देशकाल से निर्मित व्यक्तित्व का प्रतिफलन रहता है, उसी हद तक शैली विज्ञान पर भी समाजशास्त्र का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। वैयक्तिक शैली से आगे बढ़कर शैली वैज्ञानिकों से वर्गीय शैली, युगीन शैली तथा राष्ट्रीय शैली आदि के अध्ययन प्रस्तुत किए हैं उनसे उनका आधार स्पष्टत: समाजशास्त्र ही है।"

4.10.1 शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्व

शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्वों का प्रमुख उद्देश्य साहित्य के भाषिक सौंदर्य को प्रस्तुत करना होता है। यह आलोचना काव्य-भाषा को विशिष्ट भाषा के रूप में स्वीकार करती है।

टिप्पणी

उसमें ध्वनि, रूप रचना, शब्द प्रयोग, वाक्य रचना तथा अर्थाभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों पर अपनी व्यवस्था है। सामान्य भाषा इस व्यवस्था और व्याकरण में आबद्ध होती है, किंतु साहित्य में इन नियमों का पालन नहीं हो पाता। काव्य विशिष्ट अनुभव पर आधारित होता है, अतः काव्यभाषा को विशेष अनुभव की अभिव्यक्ति करने के लिए विशेष बनना पड़ता है। इसी अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में भाषा के नियम टूट जाते हैं, उनके स्थान पर विशिष्ट एवं नवीन प्रयोग होते हैं। शैली वैज्ञानिक आलोचना के दो तत्व प्रमुख रूप से हैं– 1. अग्रप्रस्तुति प्रतिमान, 2. चयन संयोजन।

1. अग्र प्रस्तुति प्रतिमान को पेशबंदी, अग्रगामिता, अग्रप्रस्तुति आदि नामों से जाना जाता है। संप्रेषणीयता की दृष्टि से हिंदी में 'अग्रप्रस्तुति' ही स्वीकार्य है। यह प्रतिमान आलोचक की ओर सक्रिय होता है। यह सीधे अभिलक्षणों पर और उसके द्वारा उन्मीलित होने वाली रचना की साभिप्रायता पर विचार करता है। यह भाषा के सभी स्तरों पर क्रियाशील होता है। ध्वनि स्तर से भाषा के अद्यतन स्वीकृत सर्वोच्च स्तर पर प्रोक्ति तक यह क्रियाशील होता है। भाषा की एक समर्थ इकाई प्रोक्ति मानी गई है। उससे यह पता चलता है कि लेखक ने भावों को संप्रेषणीय बनाने के लिए किस प्रकार से वाक्य का संयोजन किया है। 'अंग प्रस्तुति' प्रतिमान से चतुःआयामी अर्थ संप्रेषित होता है- (अ) विचलन, (ब) समांतरता, (स) विपथन, (द) विरलता।

   इनमें विचलन और समांतरता के अग्रप्रस्तुति के पूर्व स्वीकृत अवयव हैं। कोई कृति अपनी सृजनात्मकता में चतुःआयामी अग्रप्रस्तुति के प्रसंगत और पद्धतिबद्ध वैशिष्ट्य द्वारा विशेषीकृत होती है। इसका संबंध पाठक के मनोविज्ञान और पाठकीय सहृदयता से है। कृति की बुनावट को अधिक ऐंद्रिक रूप प्रदान करने हेतु 'अग्रगामिता' के चतुःआयामी अवयवों की महती भूमिका होती है।

(अ) **विचलन**– सामान्य भाषा के सामान्य भाषिक नियमों के अतिक्रमण को विचलन कहा जाता है। विचलन को 'सहेतुक' भी कहा जाता है क्योंकि उसके पीछे रहने वाले तत्व कलात्मक संवेग की अपनी ही विशिष्टता रखते हैं। जोफ्री लीच के अनुसार "यह विचलन शब्द, व्याकरण, ध्वनि, लिखावट, अर्थ, बोली, रजिस्टर एवं ऐतिहासिक काल' आदि कई स्तरों पर होता है।" स्पष्टतः विचलन वह उपकरण है जिसके द्वारा रचनाकार अपने सृजनात्मक उद्देश्य को पूरा करता है। 'विचलन' के कई स्तर हैं-

- **ध्वनि स्तरीय विचलन**– ध्वनिपरक विचलन का प्रयोग सृजनात्मक भाषा में देखने को मिलता है। अज्ञेय के यात्रा संस्मरण 'एक बूंद सहसा उछली' का एक उदाहरण विचलन को स्पष्ट करता है। अज्ञेय शेक्सपीयर का स्मारक देखने के लिए बस की प्रतीक्षा में बैठे हुए सोचते हैं कि "इथथे अगली बथ मेरी हो थकती है। थेक्थपीयर को थलाम।"

  इन वाक्यों में 'स' ध्वनि के स्थान पर 'थ' का प्रयोग हुआ है। तुतलाहट में भी 'स' का उच्चारण प्रायः 'थ' ही होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा अज्ञेय व्यक्त करना चाह रहे हैं कि शेक्सपीयर की साहित्यिक समझ के समक्ष वे बच्चे हैं।

टिप्पणी

- **शब्द स्तरीय विचलन**– इसमें उन समस्त शब्दों का अध्ययन किया जाता है, जो कोश की सीमा का अतिक्रमण करते हैं। कवि अथवा रचनाकार को अर्थ की अभिव्यक्ति अथवा कथ्य को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए कुछ नवीन शब्दों की रचना करनी पड़ती है क्योंकि कोशगत शब्द रचनाकार के 'कथ्य' का प्रतिनिधित्व करने में कभी-कभी पूर्ण समर्थ नहीं होते हैं।

  डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "भाषा में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि अलग-अलग प्रकार के शब्द होते हैं। और प्रत्येक भाषा के नियमानुसार उस भाषा में इनका प्रयोग होता है। काव्य भाषा में कभी-कभी इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि एक भाषा भाग का प्रयोग दूसरे रूप में करने की छूट ले ली जाय।"

  जब साहित्यकार के मस्तिष्क में उठी नयी संकल्पना के अनुरूप शब्द उसे संबद्ध भाषा में नहीं मिलता, तब वह दूसरे स्थान से शब्द लेकर नवीन शब्द की रचना करता है और अपने मनोभावों को साकार करता है, जैसे-

  "पहले लोग सठिया जाते थे
  अब कुर्सिया जाते हैं।"

  उपर्युक्त वाक्य में कवि ने 'कुर्सिया' जाते हैं शब्द संज्ञा (कुर्सी) से क्रिया (कुर्सियाना) में परिवर्तित किया है।

- **व्याकरणिक विचलन**– इसमें वाक्य स्तरीय, पद स्तरीय व्याकरण में किए गए विपथन को सम्मिलित किया जाता है। काव्य तथा अन्य साहित्यिक रचनाओं में व्याकरणिक विपथन का खूब प्रयोग हुआ है। जैसे कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'चारू चन्द्रलेख' में एक वाक्य आता है– "निछावर कर दे अपना सर्वस्व उसके चरणों में।"

- **संज्ञा-विचलन**– संज्ञा शब्दों में विचलन अनेक प्रकार से होता है। यह विचलन काव्य भाषा और सामान्य-भाषा दोनों में होता है किंतु सामान्य भाषा में प्रयुक्त शब्द बहुप्रयुक्त होने से अपना अर्थ सौंदर्य खो देते हैं और सामान्य भाषा के शब्द बन जाते हैं। जैसे-

  "हर डगर के प्रश्न हैं मेरे लिए पठनीय
  कौन सा पथ कठिन है।"

- **सर्वनाम विचलन**– इस विचलन में परंपरा सम्मत एवं व्याकरण सिद्ध सर्वनाम का प्रयोग न करके, उसके स्थान पर इसके सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है-

  "अधजले शब्दों के ढेर में तुम
  क्या तलाश रहे हो?
  तुम्हारी आत्मीयता"

- **कारकीय विचलन**– जहां कर्त्ता के स्थान पर कर्म का प्रयोग किया जाए उसे कारकीय विचलन कहते हैं। यहां प्रयोजन कर्म को प्रधान रखता है

टिप्पणी

व्यंग्य के अतिरिक्त प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भी कारकीय विचलन का प्रयोग किया जाता है।

"मोटा आरामकुर्सी के पास खिसक आया" इसमें कर्म (मोटा) को कर्ता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

- **विशेषण विचलन**- उसमें संज्ञा के साथ विशेषण का विपेक्षित प्रयोग किया जाता है- जैसे

  और बहुत चौड़ी हवाएं
  चौड़ी शब्द हवाओं का विशेषण है।

- **क्रिया-विशेषण विचलन**- इसमें क्रिया के साथ विशेषण का विपथित प्रयोग होता है। जैसे *"काली निगाह में पली"*

- **मानवीकरण विचलन**- इसमें निर्जीव संज्ञाओं के साथ कर्तव्य भाव का आरोपण हो वहां क्रिया स्तरीय अथवा मानवीकरण होता है। जैसे-

  "किसलय वसना नवलय लतिका
  मिली मधुरप्रिय उरू तरू पतिका" (निराला)

  "जैसे अंधकार में
  एक दीपक की लौ
  उसके वृत्त में करवट बदलता सा
  पीला अंधेरा।"

- **लिंग विचलन**- लिंग व्यवस्था का प्रयोग इसके अंतर्गत आता है। जैसे-

  "अचानक यह स्याही की बूंद
  लेखनी से गिरकर सुकुमार।"

  यहां बूंद में पुल्लिग का प्रयोग हुआ है।

- **अर्थ स्तरीय विचलन**– मानवीकरण विशेषण विपर्यय आदि शब्द स्तरीय विचलन के साथ-साथ अर्थ स्तरीय विचलन के भी प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त जहां शब्द अपना प्रचलित अर्थ छोड़कर, अन्य अर्थ प्रदान करें, वहां अर्थ-स्तरीय विचलन कहा जाएगा। जैसे-

  उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर

(ब) **समानांतरता**– यदि विचलन का सिद्धांत अनियमितता की संकल्पना को अपना आधार बनाता है तो समांतरता, अतिरिक्त नियमितता की संकल्पना को बना लेती है। समांतरता का अर्थ किसी भाषिक लक्षण की पुनरावृत्ति की नियमितता।

(स) **विपथन**– विपथन की मूल अवधारणा भी अतिक्रमण को ही लेकर चली है, लेकिन यह अतिक्रमण लेखक के निजी भाषा के मानक से होता है जब रचनाकार अपने द्वारा स्वीकृत और सुस्थिर एक मानक की प्रत्याशा से अतिक्रमण कर जाता है और इसके समानंतर या विरोध में दूसरे 'मानक' को उपस्थित करता है तब 'विपथन' होता है।

टिप्पणी

(द) **विरलता**– विरलता की अवधारणा उन्मीलकों पर आधारित होती है। उन्मीलक शब्दों का प्रयोग प्रायः विरल ही होता है। विचलन के सहारे इसे रेखांकित भी नहीं किया जा सकता। उन्मीलक कथावस्तु को नीरसता से बचाने के लिए यहां-वहां विरत रूप में प्रयुक्त होते हैं जिससे रोचकता की निरंतरता नहीं टूटती। विरलता से तात्पर्य भी सामान्य अर्थों में अंग अथवा अंश के पास-पास नहीं होनी चाहिए अर्थात कथा-वर्णन के भाषा-प्रयोग में बीच-बीच में विरलता के होने से शब्दों के प्रयोग में अवकाश की व्यवस्था होती है।

भाषा के सभी स्तरों– धवनि, रूप, शब्द, वाक्य, प्रोक्ति तथा अर्थ में विरलता के अभिलक्षण विद्यमान रहते हैं।

विरलता की अवधारणा समान्तरता की विलोम है। विरलता एक ही संख्या तक सीमित रहती है, एक से आगे बढ़ने पर आवृत्ति होने लगती है। विचलन की अवधारणा से भी एकदम विपरीत है। विलचन में व्याकरण के नियमपरक मानक से अतिक्रमण होता है लेकिन विरलता का जन्म ऐसे मानक के बीच से ही होती है।

विरलता की अवधारणा विपथन के विरोध में भी जन्म लेती है। विरलता विचलन की तरह न तो नियमगत मानक से अतिक्रमण करती है और न ही विपथन की तरह सिद्धांतगत मानकों का अतिक्रमण करती है। जहां-जहां विपथन की स्थिति होगी वहां विरलता मौजूद नहीं रहती।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साभिप्राय भाषिक विशिष्टता या अग्र प्रस्तुति कभी विचलन के सहारे उपस्थित होती है, कभी विपथन के सहारे तो कभी समान्तरता के साथ उत्पन्न होती है।

2. **चयन संयोजन**- डॉ. नगेंद्र के अनुसार "शैली विचारित या अविचारित चयन प्रक्रियाओं की फलश्रुति होती है। एक ही भाषा की दो उक्तियां, जिनका वाच्यार्थ प्रायः समान होते हुए भी भाषिक संरचना भिन्न होती है, शैली की दृष्टि से भिन्न मानी जा सकती है।"

कोरीना के अनुसार "हाथ से निकालकर बीज बोना चाहिए न कि पूरे बोरे सहित" यहां भाषा के प्रयोग को महत्व दिया गया। भाषा के इस प्रकार के चयन में भाषा के लिए वैयक्तिक संस्पर्श प्राप्त करने की संभावनाएं रहती हैं।

चयन के अनेक स्तर होते हैं। वाक्य स्तर पर कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य आदि संरचनाओं में चयन के अवसर होते हैं। डॉ. नगेंद्र के अनुसार शैली के निर्माण में चयन की प्रक्रिया अनिवार्य है। कहीं तो लेखक सावधान होकर कलात्मक विवेक से शब्दों का, शब्द घटकों का, वाक्यांशों और वाक्यों का चयन करता है। चयन के कई स्तर हैं- इनमें

1. ध्वनि चयन
2. शब्द चयन
3. युगीन प्रवृत्ति
4. छंद की मांग एवं लयात्मकता के लिए

टिप्पणी

5. नाद-सौंदर्य के लिए
6. अर्थ का सूक्ष्म अंतर व्यक्त करने के लिए
7. प्रकरण उपयुक्तता एवं प्रस्तुत से समानता के लिए
8. आंचलिकता का रंग देने के लिए
9. वाक्य-चयन
10. शब्द की अर्थ-व्यंजक शक्तियों में चयन

निष्कर्षत: 'शैली' चयन की प्रक्रिया से निर्मित होती है। रचनाकार जिस भाषा को अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनाता है, वह सामाजिक संस्कार भी है और व्याकरिणक व्यवस्था भी। अत: रचनाकार भाषा को निर्मित नहीं करता, उसकी स्वतंत्रता तो समाज में उपलब्ध भाषा में से इस प्रकार चयन करने में होती है, जो सौंदर्य की सृष्टि कर सके।

4.10.2 शैली वैज्ञानिक आलोचना का स्वरूप

'शैली वैज्ञानिक आलोचना' कृति का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। अंतर यह है कि अन्य समीक्षा पद्धतियां जहां मात्र दृष्टियां हैं वहां 'शैली विज्ञान' एक प्रणाली भी है, जिसकी दृष्टि भाषापरक है। इन आलोचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. वाक्य स्तर पर सिद्ध भाषिक प्रतीकों का अध्ययन
2. साहित्यिक शैली विज्ञान और
3. काव्यकृति के स्तर पर सिद्ध भाषिक प्रतीकों का अध्ययन अथवा संरचनात्मक शैली विज्ञान।

शैली विज्ञान आभ्यंतर आलोचना की वह प्रणाली है, जिसकी चिंतन परंपरा वस्तुवादी और दृष्टि भाषावादी है। चूंकि शैली विज्ञान की दृष्टि से साहित्य एक शाब्दिक कला है और कला का क्षेत्र विशद और विस्तृत है इसलिए काव्यकृति को शाब्दिक प्रतीक स्वीकार करना अनुचित नहीं है। उचित होने का कारण यह है कि काव्य कृति द्वारा जिस काव्य वस्तु का सृजन होता है, वह पूरी की पूरी भाषाबद्ध होती है तथा भाषा के प्राण तत्व के रूप में शैली स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। इसलिए शैली विज्ञान की मान्यता है कि शाब्दिक अभिव्यक्ति पक्ष के विवेचन-विश्लेषण द्वारा उसके तथ्य तक पहुंचना संभव हो सकता है और काव्य-वस्तु भाषाबद्ध है, इसलिए भाषा निरपेक्ष रहकर उसका विश्लेषण अधूरा ही माना जाएगा।

शैली विज्ञान के प्रमुख आलोचकों में डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. नगेंद्र, डॉ. कृष्ण कुमार, डॉ. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु प्रमुख हैं।

सारांश में कहा जा सकता है कि शैली वैज्ञानिक आलोचना रचना को उसकी समग्रता में देखती है। कृति के आंतरिक के सौंदर्य का उद्घाटन इसका प्रमुख उद्देश्य है। शैली वैज्ञानिक समीक्षा ने भाषा और साहित्य विषयक अध्ययन के बीच की खाई को दूर किया है। इसने समीक्षा को विविध वादों- अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद आदि से निकालकर रचना से जोड़ा है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

49. डॉ. नगेंद्र ने शैली शब्द की उत्पत्ति किस शब्द से मानी है?
50. मनोभावों को व्यक्त करने के सौंदर्यात्मक प्रयोग को किस विद्वान ने शैली की संज्ञा दी है?
51. शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्व का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
52. भाषा की समर्थक इकाई का नाम क्या है?
53. सामान्य भाषा के सामान्य भाषिक नियमों के अतिक्रमण को क्या कहा जाता है?

4.11 नयी समीक्षा आलोचना प्रणालियां

हिंदी आलोचना के सिद्धांत
एवं प्रणालियां

टिप्पणी

नयी समीक्षा बीसवीं शताब्दी की अत्यधिक चर्चित आलोचनात्मक वृत्ति है। जिसका नाम 'रूपात्मक समीक्षा' भी है। सर्वप्रथम इस आलोचना-प्रवृत्ति ने परंपरागत साहित्यिक मानदंडों कला-मूल्यों और दृष्टियों में गहरे स्तर पर बदलाव को रेखांकित किया है। 'नयी आलोचना' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जोएल स्पिनगार्न ने 1910 में किया। इसी शब्द का उपयोग कर 1941 में रैन्सम ने एक पुस्तक का प्रकाशन किया। नयी समीक्षा का मूल सिद्धांत है कि कविता का अस्तित्व उसके रूप में ही सन्निविष्ट है। काव्य की समीक्षा से तात्पर्य है कविता के रूप का विश्लेषण। सन् 1956 में टी. एस. इलियट को नयी समीक्षा शब्द के मुक्त प्रयोग पर अपने निबंध 'आलोचना के सीमांत' में यह चेतावनी के रूप में कहना पड़ा- "लोग नयी आलोचना" शब्द का प्रयोग अक्सर यह समझे बिना करते हैं कि इस शब्द में कितनी विविधता का समावेश है।" इस शब्द की अनिश्चितता के कारण ही नयी समीक्षा को सौंदर्यपरक रूपवाद जैसे नाम से भी संकलित किया गया। चूंकि यह समीक्षा मात्र रूपवाद न होकर विश्लेषणात्मक आलोचना का एक नया ढंग है, नयी प्रवृत्ति है, नया आंदोलन है, नया विकास है, इस दृष्टि से 'नयी समीक्षा' शब्द ही प्रचलन में आता रहा है।

नयी समीक्षा गहरे स्तर पर 'आनटोलॉजिकल थ्योरी' के विकास का एक ऐसा नया ढंग है जो कृति की स्वायत्तता, विशिष्टता तथा अद्वितीयता के रूपवादी सिद्धांत को मानती है। कविता के वस्तुनिष्ठ निरपेक्ष समझ के लिए नयी समीक्षा ने इस बात पर पूरा ध्यान केंद्रित कर दिया कि कविता के भीतर पाठक या आलोचक को उसमें प्रयुक्त शब्दावली, विशिष्ट शब्दों, अक्षरों, बिंबों, प्रतीकों आदि के मध्य प्राप्त विविध संबंधों का विश्लेषण-व्याख्यान ही जागरूकता से अपेक्षित है। क्योंकि कविता काव्यभाषा में हो इसे भीतर से समझने के लिए नयी समीक्षा ने कृति के ध्वनि और वस्तु के कसे हुए संसार के सूक्ष्म गहन विश्लेषण के साथ पाठ-विश्लेषण की पद्धति को कायम किया।

हिंदी की नवीन सैद्धांतिक समीक्षा का स्वर नयी समीक्षा में पूरी तरह से उभरकर आया है। यह नयी समीक्षा प्रगतिवादी समीक्षा के अतिवाद से भिन्न प्रयोगवाद तथा नयी कविता के युग में नवीन रूपवाद का अनवरत समर्थन करती रही है। शिल्पगत चमत्कारों को लेकर उठी बहस ने नयी कविता ने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया है। इस बहस में विचारों से समाजवादी और संस्कारों से व्यक्तिवादी नेमिचन्द्र जैन, डॉ. रघुवंश, श्री विजयदेव नारायण साही से लेकर मलयज तक सभी शामिल हैं। ये सभी न केवल सृजन-प्रक्रिया, सृजन के उपादान और सृजन माध्यम को ही व्यक्ति विशिष्ट मानते हैं, बल्कि नये काव्य-सौंदर्य के भावन और आस्वाद के लिए प्रमाता या सामाजिक के विशिष्ट साहित्यिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक संस्कारों से युक्त व्यक्तित्व की कल्पना करते हैं।

रस-सिद्धांत का विरोध करने पर भी सभी नयी-समीक्षा के चिंतक साधारणीकरण-सिद्धांत का समर्थन करते हैं। नये संदर्भों में वे सभी साधारणीकरण के साथ काव्य और रचना-प्रक्रिया की बौद्धिक व्याख्या करते हैं। सभी संप्रेषण-सिद्धांत को कला में प्रधान सिद्धांत के रूप में स्वीकृति देते हैं तथा बिंब-प्रतीक और काव्य-भाषा को काव्य प्रतिमान के रूप मे प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। सभी संप्रेषण-सिद्धांत को कला में प्रधान सिद्धांत के रूप

टिप्पणी

में स्वीकृति देते हैं तथा बिंब-प्रतीक और काव्य-भाषा को काव्य प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

हिंदी-समीक्षा की नवीन चेतना और दृष्टि पर द्वितीय विश्व-युद्ध का गहरा प्रभाव है। नये कलाकारों ने सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन का तीव्रतम चित्रण अपने सृजन और आलोचना-कार्य में किया है। परंपरागत मूल्यों पर तीखे व्यंग्य किए हैं। इस परंपरा में अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. जगदीश गुप्त, साही, नेमिचन्द्र जैन आलोचक हैं। नयी समीक्षा चिंतन में निराशावादी जीवन-दर्शन की प्रधानता है।

हिंदी की नयी समीक्षा का संपूर्ण वैज्ञानिक चिंतन पश्चिम से ही प्रारंभ हुआ है। पूर्व के आलोचकों ने पश्चिम के मूल्यों से स्वतंत्रता के पश्चात एक युद्ध लड़ा एवं नयी परिस्थितियों ने कवियों, समीक्षकों में नवीन बोधों तथा दृष्टियों को विकसित किया। डॉ. रघुवंश के शब्दों में "भौतिक विज्ञानों के साथ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा मानव शास्त्र आदि क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकसित होने से इस युग में प्राचीन स्थापनाओं, मर्यादाओं और मूल्यों में क्रांति उपस्थित हुई। यह आधुनिक युग अपनी वैचारिक दृष्टि तथा मशीनी सभ्यता के साथ पिछले समस्त युगों के सामने प्रश्नचिह्न बन गया।

नयी समीक्षा के प्रमुख विषयों में जीवन की भौतिकतावादी दृष्टि पर विचार है। इसमें माना गया कि जीवन भौतिकता से शासित है ओर मानव का समस्त भावनात्मक जीवन काम-वासना अथवा अहंमूलक प्रवृत्तियों पर आधारित है। अज्ञेय ने इसी अर्थ में 'जीवन को यौन वर्जनाओं का पुंज' कहा है। इसी विचार दृष्टि की भूमि में श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'लघुमानव सिद्धांत' का प्रतिपादन किया। "नयी कविता आज की मानव विशिष्टता से उद्‌भूत उस लघुमानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है जो एक ओर आज की समस्त रिक्तताओं के बीच वह अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है।" श्री वर्मा के इस दृष्टिकोण को प्रगतिवादी समीक्षकों ने अमरीकी प्रतिक्रियावादी सिद्धांत दृष्टि का नाम दिया है जिसकी विस्तार से चर्चा मार्क्सवादी समीक्षा के अध्ययन में की गई है। स्वयं नयी कविता के पक्षधर मुक्तिबोध ने नयी कविता में उस 'लघु मानव-सिद्धांत' को अमरीकी प्रचार का हिस्सा कहा है। वे उसे शीतयुद्ध की साम्राज्यवादी विचारधारा का व्यक्तिवादी आत्म-सीमित अमरीकी दर्शन मानते हैं। क्योंकि यह मुख्यत: मानव मुक्तिवादी विचारधाराओं के विरुद्ध हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य-प्रतिमानों में अनुभूति की प्रमाणिकता, प्रमाणिकता की अनुभूति, परंपरा और आधुनिकता, प्रयोग और प्रगति, युगीन यथार्थ की चेतना, समाज और साहित्य की समस्या, प्रासंगिकता और समसामयिकता, आधुनिक भाव बोध, कवि और जीवन, सामाजिकता और प्रतिबद्धता, दायित्व बोध और सांस्कृतिक-मूल्य, सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन-अनास्था, कुंठा, अमानवीकरण, त्रास, जटिलता, तनाव, विसंगति, विडंबना, अकेलापन, आत्म निर्वासन, अस्तित्व का संकट, अस्मिता का संकट, विवशता, ऊब आदि नयी समीक्षा के प्रमुख विषय रहे हैं। इस समीक्षा में काव्य संरचना, काव्य-भाषा और सृजनशीलता, अनुभूति की जटिलता, काव्यबिंब और सपाटबयानी, नया प्रतीक विधान, नयी उपमान योजना, कलाकार की ईमानदारी, परिवेश और मूल्य, रचना-प्रक्रिया की समस्या, रचनाकार की दृष्टि, अलंकार-छंद आदि के सभी प्रश्नों पर भी विचार किया गया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

54. बीसवीं शताब्दी की अत्यधिक चर्चित आलोचनात्मक प्रणाली कौन-सी है?
55. नयी आलोचना शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया?
56. नयी समीक्षा में हिंदी की कौन-सी समीक्षा के स्वर पूर्ण रूप से उभर कर आए हैं?
57. शिल्पगत चमत्कारों को लेकर उठी बहस में नयी कविता ने किसका रूप धारण कर लिया?
58. नयी समीक्षा के प्रमुख विषयों में जीवन की किस दृष्टि पर विचार किया गया है?

टिप्पणी

गतिविधि

आधुनिक आलोचकों की समीक्षा-शैली की विशेषताओं को एक चार्ट के माध्यम से दर्शाते हुए उकनी तुलना कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. नामवर सिंह अपनी वक्तृत्व (वाचन) कला के लिए बेहद लोकप्रिय हैं कदाचित ऐसा इसलिए है कि वे स्वयं चाहते हैं कि बोला हुआ लिखा सा लगे और लिखा हुआ बोलता सा।

4.12 सारांश

'आलोचना' साहित्य की वह विधा है, जो कलाकार की सृष्टि में निहित रहस्य को सर्वजन हिताय, साकार रूप प्रदान करती है। आलोचक किसी कृति को हृदयंगम करता है, उसके रस-प्रवाह में अपने को निमग्न कर देता है और फिर उसकी विशेषताओं पर विचार करता हुआ उसकी उपलब्धियों एवं कमियों का खाका खींचता है। इतना ही नहीं कृतियों को श्रेणीबद्ध करना, लक्ष्य-ग्रंथों के आधार पर लक्षणों की स्थापना करना या फिर उन लक्षणों के आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन करना एवं उस पर अपना निर्णय देना या अन्य कृतियों को उसके समकक्ष रख कर तुलनात्मक अध्ययन करना आदि समस्त स्थितियां भी आलोचना के अंतर्गत आती हैं। आलोचना साहित्य का बीज-वपन निश्चय ही भक्तिकाल में हो गया था। भक्तिकाल में हमारा परिचय आलोचना के दो रूपों से होता है। एक तो शास्त्रीय या सैद्धांतिक आलोचना से, दूसरा व्यावहारिक आलोचना के तुलनात्मक एवं प्रभावात्मक रूप से। प्रभावात्मक आलोचना का बीज-वपन भक्ति काल में हो चुका था। तुलसी और सूर की श्रेणी में गंग कवि और कवि केशवदास के नामों का उल्लेख तत्कालीन आलोचक प्राय: करते रहे हैं। रीतिकालीन आचार्यों ने हिंदी साहित्य में एक प्रणालीबद्ध आलोचना की स्थापना की। आधुनिककाल में भी हमारे आलोचना-शास्त्र पर संस्कृत काव्यशास्त्र का अप्रतिम प्रभाव है।

भारतेंदु युग में किसी कृति के गुण-दोषों का विवेचन ही आलोचना का लक्ष्य रहा। दूसरे इस युग में आलोचना पुस्तकाकार में उभर कर नहीं आई, बल्कि लेखों के माध्यम से पुस्तकों की विस्तृत समालोचना लिखी जाने लगी। द्विवेदीयुगीन आलोचना साहित्य की सर्वोपरि विशेषता यह है कि लेखों, टिप्पणियों आदि के साथ कृति एवं कृतिकारों पर स्वतंत्र पुस्तकों के प्रणयन की प्रणाली का प्रारंभ हुआ। दूसरे, इस युग में सामान्य कोटि की तुलनात्मक आलोचना का भी सूत्रपात हुआ, आगे चल कर परिष्कृत एवं प्रांजल रूप में विकास हुआ। तीसरे, पाश्चात्य आलोचना एवं प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र का स्वरूप हिंदी आलोचना साहित्य में अधिक निखार के साथ प्रविष्ट हुआ।

आलोचना के क्षेत्र में युग पुरुष माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी पारदर्शी दृष्टि एवं सूक्ष्म चिंतन के द्वारा एक कुशाग्र और तत्व पारखी के रूप में हिंदी आलोचना को नया आयाम, ऊंचा अर्थ एवं आशय प्रदान किया। आचार्य शुक्ल ने प्राचीन

टिप्पणी

काव्यशास्त्र के सार तत्व को ग्रहण कर उसमें पाश्चात्य समीक्षा का पुट देकर युगानुरूप काव्य कृतियों का अवलोकन कर आलोचना साहित्य को एक नया रूप प्रदान किया। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रशस्त मार्ग को और भी अधिक स्वच्छ एवं प्रांजल बनाने में शुक्लोत्तर आलोचकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'काव्य में लोक मंगल' के सिद्धांत की स्थापना की। लोक चिंता, लोकधर्म, लोक जीवन, लोक हृदय, लोकादर्श आदि शुक्ल जी के जीवन दर्शन के आधार शब्द हैं। इन्हीं के भीतर अपनी समस्त समीक्षा-दृष्टि अंगी रूप में विद्यमान हैं। इसी केंद्रीय चिंतन की शब्दावली से शुक्ल जी ने काव्य का समस्त विवेचन 'लोक धर्म' और 'लोक मंगल' की दृष्टि से किया है। 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' नामक लिखे गए निबंध में संपूर्ण काव्य का वर्गीकरण इसी आधार को लेकर किया है। इस प्रकार 'लोक-पीड़ा' ने उनका विशेष ध्यान आकृष्ट किया है। मानवतावादी द्विवेदीयुगीन समीक्षादर्शों का उनमें परिष्कृत सुधार भी इसी रूप में हुआ है कि उन्होंने रहस्यवाद अतश्चेतना, कलावाद, सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद आदि सभी समाज विरोधी शक्तियों साहित्य एवं आलोचना में से निकालकर 'लोकमंगल की साधनावस्था' को स्थापित किया है।

साहित्य की आत्मा सौंदर्य या आकर्षण-शक्ति है। वस्तुत: साहित्य के प्रसंग का प्रयोग अभिधात्मक अर्थ में न होकर लाक्षणिक अर्थ में ही होता है। भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यकारों एवं आलोचकों ने समय-समय पर 'आकर्षण' एवं 'आकर्षण-शक्ति' का उल्लेख किया है। साहित्य की आकर्षण-शक्ति विश्व में व्याप्त शक्ति का ही एक रूप है। जिस प्रकार वैज्ञानिक विभिन्न भौतिक पदार्थों से उनमें निहित शक्ति को जगाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है, उसी प्रकार साहित्यकार भी विभिन्न मानसिक तत्वों की शक्ति को जगाकर उसे एक ऐसा रूप देता है जिसे हम साहित्य कहते हैं। साहित्यकार का द्रव्य मानसिक क्षेत्र का होता है तथा उसका माध्यम भाषा का होता है अत: उसकी कार्य-प्रणाली अत्यंत सूक्ष्म एवं अदृश्य होती है। साहित्यकार द्वारा प्रयुक्त द्रव्य को भी प्रमुख रूप से तीन तत्वों में विभिक्त किया जाता है– भाव, विचार, कल्पना।

रचना के तीन क्षणों से अभिप्राय है कि किसी भी रचना का सर्जन करने के समय रचनाकार को किन-किन स्थितियों से गुजरना पड़ता है। रचना के तीन क्षण का मुक्तिबोध का सिद्धांत आज हिंदी साहित्य में बहुत प्रचलित है। रचना के ये तीन क्षण वस्तुत: रचना-प्रक्रिया के तीन सोपान हैं। कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है उस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटेसी अपनी आंखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है उस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता है।

स्वच्छंदतावाद समीक्षा पद्धति एक विश्वव्यापी आंदोलन के रूप में उभरी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास में पं. श्रीधर पाठक को स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तक माना है। स्वच्छंदतावाद पश्चिम के रोमैंटिसिज्म का हिंदी अनुवाद है। इसकी मुख्य प्रवृत्ति विद्रोह की है। स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति 'वाद' न होकर एक 'दृष्टि' है। यह दृष्टि प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए अपना स्वतंत्र मार्ग अन्वेषित करती है। इस समीक्षा में

टिप्पणी

जीवन के प्रति एक ऐसा भावमय दृष्टिकोण है जो 'अनुभूति' को केंद्र में रखकर पनपता है। हिंदी में स्वच्छंदतावादी आलोचकों से अभिप्राय यही है कि वे प्राचीन सिद्धांतों की रूढ़ियों से विद्रोह करते हैं और देश और काल की नवीन चिंतन धाराओं से तालमेल बिठाते हुए स्वतंत्र चिंतन करने वाले आलोचक हैं। ऐसे समीक्षकों ने भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांतों को नवीन चिंतन के परिप्रेक्ष्य में समझने-समझाने का प्रयास किया है ताकि हिंदी का अपना स्वतंत्र समीक्षा-शास्त्र विकसित हो सके।

मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति के प्रणेता कार्ल मार्क्स अद्वैतवादी और अनीश्वरवादी थे। उनके दर्शन 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' ने विश्व साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला। मार्क्स के मित्र ऐंजिल्स ने उनके सिद्धांतों की व्याख्या की। मार्क्स का साहित्य सामाजिक आर्थिक समस्याओं से ओत-प्रोत है। मार्क्सवाद सृष्टि और समाज की विकासोन्मुखी स्थिति पर चिंतन करने वाला दर्शन है। मार्क्स मानते हैं कि प्रकृति गत परिवर्तन एवं विकास द्वंद्वात्मक पद्धति से होते हैं। विकास क्रम-वाद, प्रतिवाद और संवाद के त्रैत से सदा ऊर्ध्वगामी होता है। वे साहित्य को वर्गवाद की उपज मानते हैं। वे व्यक्तिनिष्ठ काव्य को हेय, अकल्याणकारी तथा समाज विरोधी मानते हैं। इस वाद ने विश्व साहित्य पर गहन प्रभाव डाला। मार्क्सवादी साहित्य को वर्गवाद की उपज मानते हैं। लेनिन कहते हैं कि वर्गहीन समाज में ही वर्गहीन साहित्य की रचना संभव है। अत: साहित्यकार के निरपेक्ष स्वातंत्र्य का सिद्धांत मात्र भ्रम है, विडंबना है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय के अध्ययन की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं पर इसका आधार वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक अवश्य रहा है। इतना नही नहीं साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन नवीन अवधारणाओं की स्थापना करता है। साहित्य और समाज के पारस्परिक संबंधों के साथ अन्त:क्रियाओं की जटिलता एवं संघर्षों को रूपायित करता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रमुख प्रवृत्ति समग्रतावादी मानी जाती है। इस पद्धति के मूल में लेखक (कृतिकार) कृति और पाठक त्रिवर्ग अवश्य रहता है जबकि अन्य पद्धतियों में किसी एक पक्ष को केंद्र में रखा जाता है। यह विश्लेषण पद्धति प्रतिमानों को आत्मसात् किए हैं–त्रिवर्ग एक-दूसरे का पूरक है और अब प्रकाशक को भी घटक रूप में सम्मिलित किया गया है। पाश्चात्य विचारकों से प्रभावित भारतीय विद्वानों ने साहित्य का समाजशास्त्र विषयक काफी कार्य किया है। साहित्य की समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति समकालीन हिंदी समीक्षा को एक नयी आधारभूमि, प्रदान करती है। यह समीक्षा को वस्तुनिष्ठ बनाती है इसे सामाजिक सरोकारों के प्रति सचेत करती है।

सौंदर्यशास्त्र मुख्य रूप से पश्चिम की विधा है किंतु भारतीय आलोचना दृष्टि भी इससे अछूती नहीं रही। सौंदर्य की विभिन्न परिभाषाओं एवं वर्गों को देखते हुए सौंदर्य की तीन प्रमुख विश्वात्मक दृष्टियां उभर कर आती हैं- बहिर्मुखी, अंतर्मुखी और समन्वयवादी। चिंतकों का एक बड़ा वर्ग सौंदर्य के समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया करता है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार "सौंदर्य न तो पूर्णत: प्रमाता की चेतना में होता है और न पदार्थ में। उसकी सत्ता वस्तुत: दोनों के समन्वय में है।" डॉ. रमेश कुंतल मेघ के अनुसार सौंदर्य एक गुण है, जिसका सामाजिक चरित्र होता है। सौंदर्य वस्तुगत तथ्य के रूप में समाज में अस्तित्वमान सौंदर्य मनुष्य के सामाजिक जीवन एवं ऐतिहासिक दशा की उपज है और मानवीय समाज के बिना सौंदर्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

टिप्पणी

हिंदी में प्रयुक्त 'शैली' शब्द अंग्रेजी के 'स्टाइल' के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है किंतु अंग्रेजी का स्टाइल शब्द अत्यंत व्यापक हैं हिंदी में शैली व्यक्तित्व, साहित्य और साहित्य में प्रयुक्त रचनागत विशिष्टताओं एवं सौंदर्य तक सीमित है। एक रचनाकार के लिए 'शैली' ही वह उपादान है जिसके द्वारा लेखक अपनी 'ज्ञानात्मक संवेदना' को पाठक तक पहुंचाता है। 'शैली वैज्ञानिक' समीक्षक रचना के रूप में सौंदर्य का अध्ययन भाषिक उपादानों के माध्यम से कर कृति के मूल कथ्य उद्घाटित करता है। शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्वों का प्रमुख उद्देश्य साहित्य के भाषिक सौंदर्य को प्रस्तुत करना होता है। यह आलोचना काव्य-भाषा को विशिष्ट भाषा के रूप में स्वीकार करती है। उसमें ध्वनि, रूप रचना, शब्द प्रयोग, वाक्य रचना तथा अर्थाभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों पर अपनी व्यवस्था है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार "शैली विचारित या अविचारित चयन प्रक्रियाओं की फलश्रुति होती है। एक ही भाषा की दो उक्तियां, जिनका वाच्यार्थ प्राय: समान होते हुए भी भाषिक संरचना भिन्न होती है, शैली की दृष्टि से भिन्न मानी जा सकती है।" शैली वैज्ञानिक आलोचना रचना को उसकी समग्रता में देखती है। कृति के आंतरिक के सौंदर्य का उद्घाटन इसका प्रमुख उद्देश्य है।

नयी समीक्षा गहरे स्तर पर 'आनटोलॉजिकल थ्योरी' के विकास का एक ऐसा नया ढंग है जो कृति की स्वायत्तता, विशिष्टता तथा अद्वितीयता के रूपवादी सिद्धांत को मानती है। हिंदी की नवीन सैद्धांतिक समीक्षा का स्वर नयी समीक्षा में पूरी तरह से उभरकर आया है। यह नयी समीक्षा प्रगतिवादी समीक्षा के अतिवाद से भिन्न प्रयोगवाद तथा नयी कविता के युग में नवीन रूपवाद का अनवरत समर्थन करती रही है। शिल्पगत चमत्कारों को लेकर उठी बहस ने नयी कविता ने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया है। हिंदी की नयी समीक्षा का संपूर्ण वैज्ञानिक चिंतन पश्चिम से ही प्रारंभ हुआ है। पूर्व के आलोचकों ने पश्चिम के मूल्यों से स्वतंत्रता के पश्चात एक युद्ध लड़ा एवं नयी परिस्थितियों ने कवियों, समीक्षकों में नवीन बोध ों तथा दृष्टियों को विकसित किया। इस प्रकार आपन हिंदी आलोचना के विभिन्न पड़ावों को जाना और अनेक समीक्षा पद्धतियों के स्वरूप को पहचाना।

4.13 मुख्य शब्दावली

- **समीक्षक** : आलोचक।
- **भावोन्मेष** : भाव का जागना।
- **नवोन्मेष** : नयी-नयी चीजों का उद्भव।
- **आडंबर** : बाहरी दिखावा।
- **मर्मस्पर्शी** : हृदय को छूने वाला।
- **अभिव्यंजित** : प्रकट।
- **अनीश्वरवादी** : नास्तिक।
- **त्रैत** : तीन का समूह।
- **दमन** : मन को दबाना।
- **उद्दीपन** : जगाना, उत्तेजित करना।

- **प्रतीच्य** : पश्चिम संबंधी।
- **विपथन** : मार्ग से इधर-उधर होना।

टिप्पणी

4.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. आलोचक का
2. आदिकाल में
3. भक्तिकाल में
4. रीतिकालीन आचार्यों को
5. आधुनिक काल में
6. लेखों के माध्यम से
7. द्विवेदी युग में
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल को
9. शुक्लोत्तर युग में
10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
11. काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था
12. आकर्षण-शक्ति सिद्धांत
13. आठ
14. तीन
15. चार
16. रचयिता के मानस में
17. कल्पना
18. पहला क्षण
19. फैंटेसी
20. तीसरे क्षण में
21. विद्यानिवास मिश्र
22. कार्ल मार्क्स
23. स्वच्छंतावादी
24. पश्चिम पर
25. दु:ख के
26. कल्पना ने
27. सौंदर्यमयी

टिप्पणी

28. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
29. पं. शांतिप्रिय द्विवेदी
30. सामाजिक साहित्य
31. आनंदवादी मूल्यों को
32. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
33. विरोधी तत्वों की
34. हीगल के
35. पांच
36. वर्गवाद की
37. समाजशास्त्र के
38. संस्थाओं का
39. प्रत्यक्ष आधार पर
40. लौकिक वस्तु
41. संरचनात्मक स्वरूप
42. तीन-तीन
43. समग्रतावादी
44. पश्चिम की
45. क्रोचे ने
46. तीन
47. बाह्य पदार्थ में
48. आत्मनिष्ठतावादी
49. शील
50. डॉ. रामकुमार वर्मा
51. साहित्य के भाषिक तत्व को प्रस्तुत करना
52. प्रोक्ति
53. विचलन
54. नयी समीक्षा
55. जोएल स्पिनगार्न ने
56. नवीन सैद्धांतिक समीक्षा के
57. आंदोलन का
58. भौतिकवादी दृष्टि

4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

टिप्पणी

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी आलोचना के प्रमुख सिद्धांत एवं प्रणालियों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
2. काव्यशास्त्रीय चिंतन से आप क्या समझते हैं? समझाइए।
3. आकर्षण-शक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएं दीजिए।
4. आकर्षण-शक्ति के वैज्ञानिक आधार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. स्वच्छंदतावादी आलोचना के स्वरूप को परिभाषित कीजिए।
6. स्वच्छंदतावादी काव्य चिंतन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. मार्क्सवादियों की दृष्टि में साहित्य एवं कला के स्वरूप को परिभाषित कीजिए।
8. शैली वैज्ञानिक किसे कहते हैं? समझाइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य में काव्यशास्त्रीय चिंतन एवं हिंदी आलोचना की विकास यात्रा का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. लोकमंगल के सिद्धांत के स्वरूप का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
3. साहित्य की आकर्षण-शक्ति से आप क्या समझते हैं? सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. 'हर रचना मृत्यु होती है...' के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न साहित्यकारों द्वारा उल्लिखित रचना के तीन क्षणों की व्याख्या कीजिए।
5. हिंदी के स्वच्छंदतावादी समीक्षकों की विशेषताओं का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
6. मार्क्सवादी आलोचना की प्रवृत्ति एवं विशेषताओं का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
7. समाजशास्त्रीय आलोचना के स्वरूप को परिभाषित करते हुए उसकी उपयोगिता सिद्ध कीजिए।
8. सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना पद्धति एवं मूल्यों को विस्तार से परिभाषित कीजिए।
9. शैली वैज्ञानिक आलोचना तत्वों का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।
10. नयी समीक्षा की आलोचना प्रणाली की विशेषताओं का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।

4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. गणपति चंद्र गुप्त, *हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद।
2. मैनेजर पांडेय, *साहित्य और इतिहास दृष्टि*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. कमला प्रसाद, *रचना और आलोचना की द्वंद्वात्मकता*, के.के. पब्लिकेशंस डॉट कॉम।

टिप्पणी

4. संपादक प्रेम सिंह, सुषमा आर्य, *रंग प्रक्रिया के विविध आयाम*, राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद।

5. गणपति चंद्र गुप्त, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6. गणपति चंद्र गुप्त, *साहित्यिक निबंध*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

7. वी.के. अब्दुल जलील (संपादक), *आधुनिक हिंदी साहित्य–विविध आयाम*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

8. डॉ. वेंकट शर्मा, भूमिका नगेंद्र, *आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास*, आत्माराम एंड संस दिल्ली-1967

9. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, *हिंदी आलोचना के नये वैचारिक सरकोर*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

10. देवीशंकर अवस्थी, *आलोचना का द्वंद्व*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई 5 हिंदी के प्रमुख आलोचक

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- 5.2.1 लोकमंगल की भावना को महत्व
- 5.2.2 सगुणवादी धारा के प्रशंसक
- 5.2.3 रहस्यवाद संबंधी मत
- 5.2.4 छायावाद पर दृष्टिकोण
- 5.2.5 अनुभूतियोग

5.3 शिवदान सिंह चौहान
- 5.3.1 प्रगतिवादी आलोचना सिद्धांतों की सैद्धांतिक दृष्टि
- 5.3.2 भारतीय साहित्यशास्त्र का विवेचन
- 5.3.3 यथार्थवादी आलोचना सिद्धांतों का प्रभाव

5.4 आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
- 5.4.1 पांच संप्रदायों पर मत
- 5.4.2 रसनिष्पत्ति
- 5.4.3 साधारणीकरण की सीमा
- 5.4.4 आचार्य शुक्ल से मतवैभिन्य व छायावाद की प्रतिष्ठा
- 5.4.5 प्रगतिवादी साहित्य का चिंतन
- 5.4.6 प्रयोगवादी साहित्य का चिंतन
- 5.4.7 विभिन्न वादों पर चिंतन
- 5.4.8 काव्य परिभाषा
- 5.4.9 समालोचना संसार

5.5 डॉ. नगेंद्र
- 5.5.1 रसवादी समीक्षक
- 5.5.2 छायावादी आलोचक
- 5.5.3 समसामयिक साहित्यांदोलनों में संपृक्तता
- 5.5.4 व्यावहारिकता में सैद्धांतिकता का समन्वय
- 5.5.5 शुद्धतावाद का आग्रह

5.6 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
- 5.6.1 रस संबंधी दृष्टिकोण
- 5.6.2 रस व अलंकार चिंतन
- 5.6.3 भाषा समस्या का स्वरूप
- 5.6.4 प्रगतिवादी साहित्यालोचन
- 5.6.5 आचार्य शुक्ल से साम्य व वैषम्य
- 5.6.6 सौंदर्य व संस्कृति बोध

5.7 डॉ. रामविलास शर्मा
- 5.7.1 सैद्धांतिक समीक्षा
- 5.7.2 रूप, भावना और विचारों के समन्वय से कला-सृष्टि
- 5.7.3 काव्य का माध्यम
- 5.7.4 सौंदर्य की सत्ता
- 5.7.5 रस संबंधी विवेचन
- 5.7.6 साहित्यकार की भूमिका

टिप्पणी

5.7.7 मार्क्सवाद की परख
5.7.8 मध्ययुगीन काव्यचिंतन
5.7.9 आधुनिक युग चिंतन
5.8 मुक्तिबोध
5.8.1 चिंता एवं चिंतन का स्वरूप
5.8.2 कला : जीवन की पुनर्रचना
5.8.3 मार्क्सवादी मूल्य
5.8.4 मुक्तिबोध का समाज
5.8.5 नारी विश्लेषण
5.8.6 ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि
5.8.7 वैज्ञानिक चेतना
5.9 डॉ. नामवर सिंह
5.9.1 नयी सोच, उदार दृष्टि
5.9.2 छायावाद का सामाजिक सत्य
5.9.3 सैद्धांतिक आलोचना
5.9.4 रस विवेचन
5.9.5 काव्य भाषा का स्वरूप
5.9.6 आवयविक सिद्धांत का वस्तुनिष्ठ रूप
5.10 सारांश
5.11 मुख्य शब्दावली
5.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

आलोचकों के लिए निष्पक्षता, अभिव्यक्ति की क्षमता, सहृदयता तथा विषय-विशेष में निपुण होना आवश्यक माना गया है। कवि-कर्म की व्याख्या करना और उसे चर्वण योग्य बनाना ही आलोचक का कर्म है। आलोचना एक उपयोगी एवं समृद्ध विधा है जो स्वस्थ, शास्त्रीय साहित्य को प्रोत्साहित करती है। साहित्य के दोषों, अभावों, कमियों का निवारण करने का उत्तरदायित्व इस विधा पर है। आलोचना जितनी मानवीय जीवन को स्वस्थ सुंदर बनाने के लिए आवश्यक है, उतनी ही साहित्य को स्वस्थ्य, सुंदर बनाने के लिए भी। आलोचकों के लिए उत्तरदायित्वों का निर्वाह अत्यंत कठिन कार्य है। निष्पक्षता, अभिव्यक्ति की सामर्थ्य, गहन सूक्ष्म दृष्टि आदि आलोचना कर्म के लिए आवश्यक है। इस इकाई में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, शिवदान सिंह चौहान, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध और नामवर सिंह की समीक्षा पद्धतियों का अध्ययन किया जा रहा है।

रामचंद्र शुक्ल रसवादी आचार्य हैं। वे 'रसो वै सः' के पक्षपाती हैं। शुक्ल जी की व्याख्याएं दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक हैं। उनकी धारणाएं एवं मान्यताएं चिंतन के लिए सुदृढ़ भूमि प्रदान करती हैं। आचार्य शुक्ल ने विभाव, भाव, रस आदि पर विस्तृत विवेचना उपस्थित की है। शुक्ल जी द्वारा उपस्थित 'चिंतनपरक विवेचन' के काव्यात्मवाद का आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने रसवादी परंपरा को समृद्ध किया एवं परवर्ती चिंतकों को चिंतन की नई धारा और दिशा प्रदान की।

टिप्पणी

शिवदान सिंह चौहान ने 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक से लेख लिखा, जिसमें प्रगतिशील साहित्य के सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया। उनकी प्रमुख रचनाएं हैं- 'आलोचना के सिद्धांत' और 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष'। चौहान जी 'हंस' और 'आलोचना' पत्रिकाओं के संपादक रहे। उनके आरंभिक निबंध 'प्रगतिवाद' में संकलित हैं। प्रकाशचंद गुप्त ने मार्क्सवादी सिद्धांतों के विवेचन के साथ हिंदी साहित्य की पुरानी परंपरा और समसामयिक साहित्य का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन किया। उनके तीन प्रमुख निबंध संकलन हैं- 'आधुनिक हिंदी साहित्य : एक दृष्टि', 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा', और 'साहित्यधारा'।

नंददुलारे वाजपेयी जी ने द्विवेदी काल के उत्तरार्द्ध में आलोचना क्षेत्र में प्रवेश किया था। प्रारंभ में 'सरस्वती' में उनकी आलोचनाएं प्रकाशित हुईं। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने वाजपेयी जी की आलोचना की दो प्रधान विशेषताएं बताई हैं- कलाकार की अंतर्वृत्तियों का अध्ययन तथा कलाकृति के सौष्ठव का अनुभूतिपूर्ण विश्लेषण। वाजपेयी जी ने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता तथा नैतिकतावाद से समीक्षा को मुक्त किया। उन पर पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों का व्यापक प्रभाव था। वाजपेयी जी को छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी रचनाओं की गंभीर और विस्तृत समीक्षा का श्रेय जाता है। वाजपेयी जी के प्रधान समीक्षा ग्रंथ हैं- 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', 'जयशंकर प्रसाद', 'सूर संदर्भ की भूमिका', 'आधुनिक साहित्य', 'महाकवि सूरदास' और 'नया साहित्य नये प्रश्न' आदि।

डॉ. नगेंद्र स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के आलोचक हैं। छायावादी काव्य की अंतर्मुखी साधना, सौंदर्य चेतना और कलात्मकता के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। 'सुमित्रानंदन पंत' पुस्तक में पंत जी की कविताओं में मनोदशाओं का सुंदर चित्रण किया है। 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' में सैद्धांतिक आलोचना है। वे मूलतः रसवादी आलोचक हैं। 'रस सिद्धांत' में उन्होंने रस का पूरा विवेचन कर उसकी पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। वे आधुनिक साहित्य और समसामयिक आंदोलनों से भी जुड़े रहे। नई समीक्षा: नये संदर्भ में मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक संकट, आधुनिकता का प्रश्न आदि पर भी उन्होंने विचार व्यक्त किये हैं। पाश्चात्य सिद्धांतों की जानकारी देने के लिए उन्होंने 'काव्य बिंब' की रचना की। उन्होंने हिंदी आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से विकसित किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों, इतिहासकारों में गिने जाते हैं। आधुनिक समीक्षकों में उनका नाम अग्रगण्य है। उनके उपन्यास संख्या में कम किंतु अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि वे मूलतः काव्यशास्त्री नहीं हैं किंतु काव्यशास्त्र और काव्यात्मवाद पर लिखे गए उनके कुछ निबंध हमें काव्यशास्त्र से संबंधित उनके मतों का परिचय देते हैं। वे रसवादी प्रतीत होते हैं। आचार्य द्विवेदी काव्यात्मवाद संबंधी चर्चा में 'रस' को महत्व देते हैं तथा भक्ति रस और उसके स्वरूप मधुर रस को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, आत्मा द्वारा अनुभूत यह अलौकिक रस ही उन्हें भाता है। उनके निबंधों में यह सरसता देखी जा सकती है, अनुभव की जा सकती है। उनके साहित्य की सरसता भी यही दर्शाती है इसलिए उनके निबंध ललित निबंधों की श्रेणी में रखे जाते हैं। उनकी दृष्टि मानवतावादी है, वे कहते हैं-मनुष्य को देवता बनाना ही काव्य का सबसे बड़ा उद्देश्य है। मनुष्य को उसकी स्वार्थबुद्धि से ऊपर उठाना, उसको इहलोक की संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर सत्वगुण में

टिप्पणी

प्रतिष्ठित करना, परदुखकातर और संवेदनशील बनाना काव्य का काम है। काव्य की अनेकानेक समस्याओं पर भी द्विवेदी जी ने प्रकाश डाला है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने छायावादी काव्य और उसमें विशेषकर निराला के साहित्य की व्याख्या से आलोचना-कार्य आरंभ किया। रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद पर भी किया गया आलोचना कार्य महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, 'प्रेमचंद' और 'निराला की साहित्य साधना' हिंदी आलोचना की उपलब्धियां हैं। रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धांतों का कोरा सैद्धांतिक प्रतिपादन ही नहीं किया वरन् मार्क्सवादी दृष्टि से समूचे हिंदी साहित्य की परंपरा की नई व्याख्या प्रस्तुत की। 'आदिकाव्य', 'साहित्य के स्थायी मूल्यों की समस्या : कालिदास', तथा 'भवभूति की करुणा' उनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। रामविलास शर्मा प्रगतिवादी लेकिन परंपरा का पालन करने वाले आचार्य हैं।

नई समीक्षा में डॉ. नामवर सिंह का शीर्ष स्थान है। नामवर सिंह की आलोचना समाजवादी जीवन दृष्टि और नई कविता के भाव बोध को लेकर चली है। उनकी पुस्तक 'छायावाद' में छायावादी कविता के छायाचित्रों में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन किया गया है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- समीक्षा के क्षेत्र में नयी जगह बनाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना पद्धतियों से परिचित हो पाएंगे;
- मार्क्सवादी आलोचक शिवादान सिंह चौहान की समीक्षा पद्धतियों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- प्रमुख काव्यशास्त्रीय समालोचक आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के समीक्षा सिद्धांतों का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रों का समन्वय करने वाले डॉ. नगेंद्र की समीक्षा पद्धतियों का विवेचन कर पाएंगे;
- जानेमाने इतिहासकार एवं मानवतावादी समीक्षक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की समीक्षा दृष्टि का आकलन कर पाएंगे;
- प्रगतिवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा की समीक्षा प्रणालियों की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- साहित्य चिंतन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले मुक्तिबोध की समीक्षा दृष्टि को परिभाषित कर पाएंगे;
- हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में अलग मार्ग बनाने वाले डॉ. नामवर सिंह की समीक्षा दृष्टि का विश्लेषण कर पाएंगे।

टिप्पणी

5.2 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिला में हुआ था। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के लेखक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी काव्य समालोचना जगत में मूर्धन्य स्थान है। हिंदी साहित्य के काल विभाजन का श्रेय इन्हीं को जाता है, 'कविता क्या है, चिंतामणि (3 भाग)' भी इनकी विशिष्ट समालोचनात्मक कृतियां हैं।

शुक्ल जी रसवादी आचार्य हैं। वे कहते हैं– "अलंकार वर्णन करने की प्रणाली है। चाहे जिस वस्तु या तथ्य के कथन को हम किसी अलंकार प्रणाली के अंतर्गत ला सकते हैं। किसी वस्तु-विशेष से किसी अलंकार प्रणाली का संबंध नहीं हो सकता। किसी तथ्य तक वह परिमित नहीं रह सकती। वस्तु-निर्देश अलंकार का काम नहीं, रस-व्यवस्था का विषय है। किन-किन वस्तुओं, चेष्टाओं या व्यापारों का वर्णन किन-किन रस के विभावों और अनुभावों के अंतर्गत आएगा, इसकी सूचना रस निरूपण के अंतर्गत ही हो सकती है।" अलंकारों की तरह चमत्कारवाद को भी वे रस की तुलना में हीन सिद्ध करते हुए कहते हैं कि–"चमत्कार मनोरंजन की सामग्री है, इसमें संदेह नहीं। इसमें जो लोग मनोरंजन को ही काव्य का लक्ष्य समझते हैं, वे यदि कविता में चमत्कार ही ढूंढ़ा करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर जो लोग इससे ऊंचा और गंभीर लक्ष्य समझते हैं वे चमत्कार मात्र को काव्य नहीं मान सकते।" चमत्कार से हमारा अभिप्राय यहां प्रस्तुत वस्तु के अद्भुत या वैलक्षण्य से नहीं, जो अद्भुत रस के आलंबन में होता है। 'चमत्कार' से हमारा तात्पर्य उक्ति के चमत्कार से है जिसके अंतर्गत वर्णविन्यास की विशेषता, शब्दों की क्रीड़ा, वाक्य की वक्रता आदि बातें आती हैं। चमत्कार का प्रयोग भावुक कवि, भाव की अनुभूति को तीव्र करने के लिए करते हैं। शुक्ल जी कोरे चमत्कार युक्त वाक्य को काव्य की संज्ञा नहीं देते। वे कहते हैं–"किसी उक्ति की तह में उसके प्रवर्तक के रूप में यदि कोई भाव या मार्मिक अंतर्वृत्ति छिपी है तो चाहे वैचित्र्य हो या न हो, काव्य की सरसता बराबर पाई जाएगी पर यदि कोरा वैचित्र्य या चमत्कार ही चमत्कार है तो थोड़ी देर के लिए कुछ कुतूहल या मन बहलाव चाहे हो जाए पर काव्य में लीन करने वाली सरसता नहीं पाई जाएगी।" शुक्ल जी 'रसो वै स:' के पक्षपाती हैं।

शुक्ल जी ने काव्य के दो विभागों 'आनंद की साधनावस्था' एवं 'आनंद की सिद्धावस्था' की बात की है तथा माधुर्य को सर्वाधिक आकर्षक बताया है। वे कहते हैं–"भाव योग की चरम साधना से हृदय की जो मुक्तावस्था प्राप्त होती है वह इसी माधुर्य की अनुभूति के सहारे। भेद में अभेद की रसात्मक प्रतीति इसी माधुर्य का स्वाद है जिसे हमारे यहां के भक्तों ने भगवान का प्रसाद बताया है–ऐसा प्रसाद जिससे आत्मा का पोषण होता है।"

शुक्ल जी की व्याख्याएं दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक हैं। उनकी धारणाएं एवं मान्यताएं चिंतन के लिए सुदृढ़ भूमि प्रदान करती है। आचार्य शुक्ल ने विभाव, भाव, रस आदि पर विस्तृत विवेचना उपस्थित की है। वे कहते हैं–"कवि कर्म-विधान के दो पक्ष हैं–विभाव पक्ष और भाव पक्ष। कवि एक ओर तो ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है जो मन में कोई भाव उठाने या उठे हुए भाव को और जमाने में समर्थ होती हैं और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूप शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। एक विभाव पक्ष है, दूसरा भाव पक्ष। काव्य में ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं, अत: दोनों रहते हैं। पर काव्य में विभाव ही मुख्य है।" भावों के

टिप्पणी

संबंध में उनका कथन है, कि "भाव ही कर्म के मूल प्रवर्तक और 'शील' के संस्थापक हैं। 'भाव' मन की वेगयुक्त अवस्था विशेष हैं, वह क्षुत्पिपासा, कामवेग आदि शरीर वेगों से भिन्न हैं। विश्लेषण करने पर उनके तीन अंग पाए जाते हैं–(1) वह अंग जो प्रवृत्ति या संस्कार के रूप में अंतस्संज्ञा में रहता है (वासना) (2) वह अंग जो विषय बिंब के रूप में रहता है और 'भाव' का प्रकृत स्वरूप है (भाव, आलंबन आदि की भावना) (3) वह अंग जो आकृति या आचरण में अभिव्यक्त होता है और बाहर देखा जा सकता है (अनुभाव और नाना प्रयत्न)। प्रत्यय बोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम 'भाव' है।

रसानुभूति संबंधी विचार

शुक्ल जी रसानुभूति के लिए तीन तरह के रूप विधानों की बात करते हैं–

(1) प्रत्यक्ष रूपविधान

(2) स्मृति रूपविधान और

(3) संभावित या कल्पित रूपविधान। यह तीसरा प्रकार सर्वत्र रसानुभूति का कारण माना जाता है।

प्रथम प्रकार को सिद्ध करते हुए वे कहते हैं–"रसानुभूति प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति से सर्वथा पृथक कोई अंतर्वृत्ति नहीं है बल्कि उसी का एक उदात्त और अवदात्त स्वरूप है।" इसी तरह द्वितीय प्रकार के लिए कहते हैं–"मन नहीं मानता, अतीत के मधुस्रोत में कभी-कभी अवगाहन किया ही करता है। ऐसा स्मरण वास्तविक होने पर भी रसात्मक होता है। हम सचमुच स्मरण करते हैं और रसमग्न होते हैं।" रसानुभूति के संबंध में शुक्ल जी कहते हैं–"किसी वस्तु या तथ्य के मार्मिक पक्ष की प्रतीति या बोध लिए हुए ही सच्ची रसानुभूति होती है। वस्तु या तथ्य का मार्मिक पक्ष उस वस्तु या तथ्य से अलग कोई वस्तु नहीं होता, उसी के अंतर्भूत होता है।" रसानुभूति साधारणीकरण द्वारा होती है। यह साधारणीकरण क्या है, इस पर शुक्ल जी का अभिमत है कि "जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके द्वारा उसी भाव का आलंबन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहां 'साधारणीकरण' कहलाता है। यह सिद्धांत घोषित करता है कि सच्चा कवि वही है जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम 'रस-दशा' है।" शुक्ल जी के कथन का तात्पर्य है कि साधारणीकरण आलंबनत्व धर्म का होता है।

शुक्ल जी द्वारा उपस्थित 'चिंतनपरक विवेचन' के काव्यात्मवाद का आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने रसवादी परंपरा को समृद्ध किया एवं परवर्ती चिंतकों को चिंतन की नई धारा और दिशा प्रदान की। शुक्ल जी की मान्यताओं एवं स्थापनाओं को काव्यात्मवाद संबंधी विमर्श के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रदेश माना जा सकता है।

आचार्य शुक्ल युग-निर्माता आलोचक थे। आपने आलोचना साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की। परंपरा से चली आ रही आलोचना पद्धतियों की त्रुटियों का निराकरण कर उन्हें निर्दोष स्वरूप प्रदान कर साहित्य की महती सेवा की तथा आलोचना-साहित्य में एक युग का सूत्रपात किया।

टिप्पणी

आचार्य शुक्ल के आलोचना के क्षेत्र में आने के समय हिंदी साहित्य धड़ल्ले के साथ संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव ग्रहण कर रहा था। अंग्रेज़ी समालोचकों के ग्रंथों का भारतीय महाविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन अबाध गति से होने लगा था। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के फलस्वरूप गुरुकुलों एवं पाठशालाओं में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन पर बल दिया जाने लगा था। इस प्रकार इस युग में उत्पन्न हुए समालोचक अंग्रेजी और संस्कृत के समान प्रभाव से ग्रस्त थे। इस युग के समालोचकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने कृति की गहराई में प्रवष्टि होकर कृतिकार के सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। निष्पक्षता एवं तटस्थता के साथ कृति को समझने और समझाने का इनका उद्देश्य प्रशंसनीय रहा है।

5.2.1 लोकमंगल की भावना को महत्व

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोकमंगल की भावना को काव्य का महत्वपूर्ण तत्व माना है। उनके द्वारा प्रतिपादित लोकमंगल का सिद्धांत आज भी साहित्य के क्षेत्र में बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध है जिसका हम विस्तृत वर्णन इकाई चार में कर चुके हैं। आचार्य शुक्ल का स्पष्ट अभिमत था कि काव्य नैतिकता का दामन छोड़ने पर विडंबना मात्र रह जाता है। फलतः शुक्ल जी ने लोक मंगल की भाव-भूमि पर साहित्य का मूल्यांकन किया। महाकवि तुलसीदास की रचनाएं, विशेषकर रामचरितमानस आपकी समीक्षाओं का आधारभूत ग्रंथ रहा है। इसीलिए आचार्य शुक्ल रीतिकालीन एवं छायावादी कवियों के साथ न्याय नहीं कर पाए। आचार्य शुक्ल की दूसरी विशेषता यह है कि इन्होंने अपनी विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से व्याख्यात्मक आलोचना की स्थापना की। जायसी ग्रंथावली और भ्रमरगीत सार की भूमिकाओं में उनकी इस समीक्षा को चिह्नित किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने सैद्धांतिक आलोचना पर भी अपनी लेखनी का जौहर दिखाया है। अपनी तत्वान्वेषिणी प्रतिभा एवं गवेषणामक प्रवृत्ति के कारण इन्होंने प्राचीन भारतीय काव्य-शास्त्र के सिद्धांतों की तात्विक समीक्षा कर उन्हें युगानुकूल रूप प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रसंग में रस मीमांसा, कविता क्या है? साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद, रहस्यवाद, वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजनावाद जैसे ग्रंथों एवं निबंधों में उनकी मौलिकता और प्रौढ़ चिंतन-शक्ति का सन्निवेश हुआ है। इनके अतिरिक्त 'चिंतामणि' में संकलित निबंधों में उनके दार्शनिक चिंतन की छाप देखी जा सकती है तो हिंदी साहित्य के इतिहास में उनकी निर्णयात्मक एवं गवेषणात्मक रुचि का अवलोकन किया जा सकता है। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में कहा जा सकता है कि कदाचित यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि 'उनके समान मेधावी आलोचक किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में नहीं है।'

शुक्ल जी के साहित्य क्षेत्र में प्रविष्ट होने के समय हिंदी साहित्य के उत्कर्ष और भावी विकास के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण हो गया था जिसमें उनका पदार्पण साहित्य-समीक्षा की अभिवृद्धि में अत्यंत मंगलमय सिद्ध हुआ। उन्होंने साहित्य सेवा और उसकी समृद्धि का व्रत धारण किया जो जीवन पर्यन्त चलता रहा। निस्संदेह उनके कार्यों की गुरुता साहित्य संसार में ऐसी व्यापक सत्ता प्राप्त कर सकी, जिसने उन्हें साहित्यालोचन के क्षेत्र का एक महारथी बनाया। उनकी बहुमुखी प्रतिभा के विकास के अनेक क्षेत्र थे, किंतु साहित्य-समालोचन और निबंध साहित्य में उनके समान कोई मेधावी लेखक नहीं हुआ। यही कारण है कि उनका

टिप्पणी

साहित्य सेवाकाल समालोचना साहित्य के विकास में 'शुक्ल युग' के नाम से प्रख्यात है। उन्होंने सूर, तुलसी और जायसी पर जो गंभीर विस्तृत समालोचनाएं लिखी हैं, उनसे परवर्ती युग के समालोचकों और शोधार्थियों को प्रेरणापद मार्गदर्शन मिला है। 'चिंतामणि' के दोनों भागों में संकलित उनके मनोवैज्ञानिक और समीक्षात्मक निंबध भी अपना स्थायी गौरव प्राप्त किये हुए है। रस-मीमांसा जैसे गंभीर विषय को उन्होंने नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन का विषय बनाया है। इसी प्रकार आधुनिक युग की अनेकानेक प्रवृत्तियों का विश्लेषण उन्होंने अपने पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व की चेतना से जिस प्रणाली में किया है, वह हिंदी समालोचना का आधारभूत प्रतिमान बन गई।

शुक्ल जी निश्चय ही हिंदी के गंभीर समालोचक थे। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-सिद्धांतों का व्यापक और गहन अध्ययन किया तथा अपनी प्रतिभा के बल पर मौलिक उद्भावनाएं प्रस्तुत कीं। किसी भी वाद-प्रवृत्ति अथवा मान्यता को वे तभी स्वीकार करते थे, जब वह उनके मस्तिष्क में अच्छी प्रकार से समा जाती अथवा उनके मूल में उन्हें अपने मनोनुकूल न्याय-भावना का तत्व सन्निहित मिलता। उनकी बौद्धिक चेतना और रसानुभूति इतनी उर्वर और प्रबल थी कि वे उनके द्वारा सम्यक साहित्य मंथन कर एक ऐसा अमृत प्राप्त कर सके, जिसने उन्हें वस्तुत: आचार्य पद का अधिकारी बनाया। यह उनके गहन चिंतन का ही प्रतिफल था कि वे हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी मानसिक शक्ति का उन्मेष कर सके और साहित्यालोचन का क्षेत्र तो उनकी रसग्राहिणी प्रतिभा के द्वारा भी अधिक समृद्ध हुआ। यह उन्हीं के समान तत्वान्वेषी और सुधी समालोचक की ही देन है जिससे हिंदी में समालोचना का एक स्वतंत्र मापदंड स्थापित हो सका। उनकी सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचनाएं उनके गंभीर व्यक्तित्व के तानों-बानों से निर्मित और स्वतंत्र चेतना से अनुप्राणित है।

आचार्य शुक्ल का महत्व इस दृष्टि से भी है कि उन्होंने समालोचना–साहित्य में एक अद्भुत क्रांति और युग-प्रवर्तन किया। उनका आविर्भाव-काल भारतेंदु युग का अवसान और द्विवेदी युग का प्रारंभ था, किंतु वे अपनी सम्मुख प्रवाहित युग-धारा के ही अनुवर्ती नहीं रहे, अपितु वे उसे बहुत दूर तक आगे ले गए। उन्होंने एक सफल समालोचक के रूप में अपने युग की प्रवृत्तियों का सम्यक् आलोचन किया। उन्होंने रसवाद की मीमांसा भारतीय और पश्चिमी विचारधारा का सम्यक् सामंजस्य करते हुए की और वे अलंकारवाद की रूढ़िग्रस्तता को दूर कर उसे जीवन-सौंदर्य का पर्याय बना कर ग्रहण सके। यह उनकी उच्च काव्य-भावना का ही परिणाम था कि वे समालोचना के क्षेत्र में एक नवीन रूप और प्रकार उद्भावित कर सके और उनकी विचारधारा का एक निश्चित मानदंड बन सका।

5.2.2 सगुणवादी धारा के प्रशंसक

उन्होंने कथात्मक साहित्य या प्रबंध-रचना को मुक्तक-काव्य की समता में श्रेष्ठतर माना और निर्गुण-सगुण के विवेचन में रसगुणवादी धारा की ओर ही अधिक झुके। इसी प्रकार उनके मानस में तुलसी के प्रति इतना अधिक श्रद्धाभाव समाहित था कि वे मुख्यत: उन्हीं की काव्य-रचनाओं को अपनी समालोचना की सैद्धांतिकता का आधार बनाकर चले और केशव को हृदयहीन तथा कबीर को मूर्खपंथी तक कहने में उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ। रहस्यवाद और छायावाद के प्रति उनके मन में आक्रोश-भावना थी जिसके कारण वे उसके काव्यगत प्रयोग को

टिप्पणी

विदेशी तथा अग्राह्य ही समझते रहे और उसका विवादग्रस्त स्वरूप उन्हें महत्वहीन सा लगा। क्रोचे का अभिव्यंजनावाद तो उन्हें 'भारतीय वक्रोक्तिवाद के विलायती उत्थान' से अधिक वैशिष्ट्यपूर्ण नहीं प्रतीत हुआ। इसी प्रकार कलावाद, कल्पनावाद और स्वच्छंदतावाद भी उनके मस्तिष्क में उनकी निजी धारणा के अनुसार ही आकार ग्रहण कर सके।

उन्होंने अपनी आलोचनाओं द्वारा साहित्य को यह संदेश दिया कि वह अपने सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख होकर चले। उन्होंने उन आलोचकों पर कठोर व्यंग्य किया जो समीक्षा के एक ही अंग अथवा उसकी संकीर्ण परिधि में सिमट कर रह जाते हैं तथा जिनमें अधिकतर लोगों में अपने पक्ष के समर्थन का दुराग्रह प्रबल होता है। उन्होंने ऐसी आलोचनाओं को किसी भी दृष्टि से साहित्य की वृद्धि के लिए उपादेय नहीं बतलाया और यही कहा कि उनसे व्यर्थ ही भ्रांतिपूर्ण वातावरण की सृष्टि होती है। जो आलोचक ऐसी प्रवृत्ति से चलते हैं, उन्हें उन्होंने 'साहित्य में कनकौओं को उड़ाने की प्रवृत्ति वाले' कहा है, क्योंकि उनके द्वारा साहित्य की अंतरात्मा की दिव्य झलक कदापि नहीं प्राप्त हो सकती। आचार्य शुक्ल ने अपने मौलिक दृष्टिकोण से साहित्य का परीक्षण करने की सफल चेष्टा की है।

काव्य लक्षण

उन्होंने काव्य में रहस्यवाद का स्थान निर्धारण करने के पूर्व काव्य का लक्षण निरूपित किया। उनकी परिभाषा से काव्य का उद्देश्य और प्रयोजन अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है। निश्चय ही उनका काव्य प्रयोजन भारतीय आदर्शवाद की परंपरा के बहुत निकट है, जिसके द्वारा वे काव्य की संप्रेषण शक्ति का आभास यह कह कर देते हैं कि "कविता मनुष्य के हृदय को व्यक्तिगत संबंध के संकुचित मंडल से ऊपर उठकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है जहां जगत के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उसके प्रकृत संबंध का सौंदर्य दिखाई पड़ता है।" ऐसा कहते हुए वे काव्य का प्रयोजन मनुष्य के सब भावों और सब मनोविकारों के लिए प्रकृति के आधार-क्षेत्र से आलंबन या विषय चुन-चुन कर रखना निर्दिष्ट कर, काव्य का संबंध जगत और जीवन की अनेकरूपता के साथ स्वत: जोड़ देते हैं। इस प्रकार उनकी काव्य-विषयगत प्रत्यक्ष दृष्टि सगुणोपासना की भांति व्यक्त और गोचर जगत को काव्य के विषय बनाने में अधिक संगति पाती है, और यही कारण है कि वे रहस्यवाद में वर्णित अव्यक्त की लालसा को अपनी काव्य-सरणि में कोई महत्व नहीं देते।

5.2.3 रहस्यवाद संबंधी मत

शुक्ल जी का काव्य-प्रतिमान भावों के उदात्त और व्यापक विधान पर आधारित था। वे जीवन के सौंदर्य को वैचित्र्यपूर्ण मानते हुए उसमें सभी प्रकार के भावों का समावेश आवश्यक समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने निष्क्रिय सौंदर्य चित्रण को केवल स्वप्न द्रष्टाओं का उपजीव्य बतला कर उसमें उस व्यापक भावभूमि का अभाव सिद्ध किया है, जिसकी पवित्रता में 'व्यक्ति-जीवन लोक जीवन में लय' होकर उसमें विश्व-हृदय का स्पंदन पाता है। उन्होंने रहस्यवादी प्रवृत्तियों का सर्वत्र विरोध किया और जो लोग अव्यक्त के प्रति अपनी लालसा व्यक्त करने लगे, उन्हें भारतीय काव्य-दृष्टि से सर्वथा प्रतिकूल सिद्ध किया, क्योंकि 'भारतीय दृष्टि के अनुसार अज्ञात और अव्यक्त के प्रति केवल जिज्ञासा हो सकती है, अभिलाषा या लालसा नहीं। जिज्ञासा केवल जानने की इच्छा है, उसका संबंध शुद्ध ज्ञान के साथ होता है।

टिप्पणी

इसके विपरीत लालसा या अभिलाषा रतिभाव का एक अंग है। अत: अव्यक्त या अज्ञात की अभिलाषा बिलकुल विदेशी कल्पना है और मजहबी रुकावटों के कारण पैगंबरी मत मानने वाले देशों में की गई है।'

उपर्युक्त उद्धरण शुक्ल जी की रहस्यवाद विषयक उपपत्ति का मौलिक आधार है। इसी के प्रतिमान से उन्होंने रहस्यवादी काव्यधारा को विदेशी प्रवृत्ति सिद्ध किया है। उनकी इस मान्यता में भारतीय रस-निष्पत्ति के उस सिद्धांत की भी छाया है जो काव्य में विभाव की मूर्तता के अपरिहार्य अंग को निर्दिष्ट करता है। उनका तो स्पष्ट मत है कि काव्य में अव्यक्त की लालसा सर्वथा अवैज्ञानिक है, अत: जो कवि अपनी कविता में बार-बार अध्यात्म और ब्रह्मवाद की चर्चा करते हैं, उन पर वे आचार्य और आलोचक के पद की गरिमा के अनुकूल खीझते हुए लिखते हैं–

"जो यह भी नहीं जानता कि ब्रह्मवाद और कविता किन चिड़ियों के नाम हैं, जो अंग्रेजी की अंधी नकल पर बनी बंगला की कविताओं तथा वैष्णव कवियों की अंग-समीक्षाओं तक ही सारी दुनिया खत्म समझता है, वह यदि मुंह बनाकर कहने लगे कि 'जब मैं ब्रह्मवाद की कोई कविता देखता हूं तब हर्ष से नाच उठता हूं' तो एक सुशिक्षित सुनने वाले पर क्या असर होगा?"

शुक्ल जी के इस कथन का मूल मंतव्य यही है कि ब्रह्मवाद जैसे दार्शनिक सिद्धांतों को काव्य-क्षेत्र में घसीटना भारतीय काव्य-परंपरा के विरुद्ध है और कबीर तथा जायसी आदि कवियों ने अपनी कृतियों के बीच अद्वैतवाद, मायावाद, एकेश्वरवाद, प्रतिबिंबवाद आदि की अभिव्यंजना विभिन्न रूपकों, अन्योक्तियों तथा साध्यवसान रूपकों द्वारा की है, वह उनकी मान्यता में सांप्रदायिक है। इसी प्रकार संत-कवियों की बानियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि विभिन्न नाड़ी-चक्रों की जो चर्चा की गई है, उसका भी वे काव्य की प्रकृत-भावभूमि की दृष्टि से खंडन करते हैं।

5.2.4 छायावाद पर दृष्टिकोण

शुक्ल जी छायावाद या रहस्यवाद के नाम से रची जाने वाली कविताओं में अभिव्यंजनवाद के द्वारा बेल-बूटे बनाने वाली प्रक्रिया का विरोध करते हैं क्योंकि उनमें अभिव्यंजना के बाह्य कौशल के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इसी विवेचन के प्रसंग में उन्होंने यूरोपीय काव्य-क्षेत्र में प्रचलित कलावाद, प्रतीकवाद, प्रभाववाद, प्रकृतवाद और संवेदनावाद आदि और भी अनेक वादों का विवेचन किया है और अंत में उनके अस्थायित्व की घोषणा कर उन्हें किसी भी रूप में आदर्श नहीं समझा है। उनका यह विश्लेषण इन वादों का पश्चिमी देशों में होने वाले क्रमिक विकास को भी स्पष्ट करने में सहायक हुआ है। शुक्ल जी छायावाद को विलायती चीजों का मुरब्बा कहते हैं। उनके मतानुसार छायावाद या रहस्यवाद काव्य-वस्तु (मैटर) से संबंध रखता है और अभिव्यंजनावाद का संबंध विधान विधि से होता है। उन्होंने बतलाया है कि छायावाद के अंतर्गत बहुत सी रचनाएं ऐसी भी हुई हैं जिनमें अभिव्यंजनावाद के अज्ञात अनुकरण के कारण बहुत सुंदर लाक्षणिक चमत्कार स्थान-स्थान पर मिलता है। वे हिंदी छायावादी और रहस्यवादी कवियों को अपना सत्परामर्श देते हुए कहते हैं कि "यदि वे वाद का सांप्रदायिक पथ छोड़ अपनी समस्त विशेषताओं के सहित प्रकृत काव्य-भूमि पर उतर आएं और अंग्रेजी तथा बंगला आदि भाषाओं की अंधी अनुकरण-वृत्ति को त्याग कर, लाक्षणिक

टिप्पणी

प्रयोगों में सावधानी से चलने लगें तो निश्चय ही उनकी काव्य-धारा अधिक स्वाभाविक और सुष्ठु बन सकती है।"

आचार्य शुक्ल जी के चिंतन की आधार-भूमि गोस्वामी तुलसीदास जी की भांति अत्यंत मर्यादित और सधी हुई है। वे जीवन और जगत से परे किसी अलौकिक क्षेत्र में काव्य की साधना के लिए कोई गुंजाइश नहीं समझते थे। उनका तो स्पष्ट मंतव्य था कि मुक्त हृदय की अवस्था में ही सच्चे काव्य की अनुभूति होती है और "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा।" उनके मतानुसार "कविता हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए किया गया मनुष्य की वाणी का शब्द-विधान मात्र है और उसकी साधना ऐसे भाव-योग की साधना है, जिसे कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष रखा जा सकता है।"

5.2.5 अनुभूतियोग

वे कविता को बहुत ऊंचे धरातल पर स्वीकार करते थे, क्योंकि उनके मतानुसार कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-बंधनों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहां जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।

शुक्ल जी ने जगत की अनेक रूपात्मकता की भांति हमारे हृदय की भावात्मक विविधता मानी है। इन भावों के परिष्करण के लिए वे जगत के विभिन्न रूपों के साथ हमारे हृदय की सामंजस्यपूर्ण अनुभूति आवश्यक समझते हैं। उनके मतानुसार मार्मिक स्वरूप में किया गया कवि का दृश्य-विधान ही सर्वथा काव्योपयोगी बनता है। जगत के साथ भावों के इस तादात्म्य में उन्होंने हमारे वासनाजन्य संस्कारों को बड़ा महत्व दिया है। वे काव्य का 'सृष्टि प्रसार के साथ अविच्छेद संबंध' स्वीकार करते हैं जो कहीं तो 'नरक्षेत्र' के भीतर ही अपना दृष्टि विधान करता है और कहीं मनुष्येतर बाह्य सृष्टि अथवा समस्त चराचर के अंतर्गत आविर्भूत होता है। आचार्य शुक्ल ने 'काव्य और सुभाषित अथवा सूक्ति' में अंतर माना है। 'सूक्ति में जहां केवल अभिव्यक्ति का अनूठापन, रचना-वैचित्र्य का चमत्कार तथा ऊपरी साज-बाज होता है, वहां काव्य में हमारे भावात्मक हृदय का प्रकृति विषय के साथ समन्वय रहता है।'

काव्य के दो भेद

आचार्य शुक्ल ने सत्, चित् और आनंद, ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में काव्य और भक्ति-मार्ग के लिए केवल उसके आनंद स्वरूप को स्वीकार्य समझा है। लोक में इस आनंद की अभिव्यक्ति की उन्होंने दो अवस्थाएं मानी हैं, जिनको दृष्टिगत रखकर वे काव्य के दो विभाग करते हैं–(1) आनंद की साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य (2) आनंद की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य। शुक्ल जी की व्यावहारिक समालोचनाओं में रससिद्ध समालोचक की भावुकता का भी समावेश है, किंतु वे कहीं पर भी

टिप्पणी

उसके प्रवाह में ऐसे नहीं बह गए हैं कि उनकी शैली में अतिरिक्त और अनावश्यक चमत्कार और अलंकारिता आ गई हो और उनका समालोचक व्यक्तित्व कुंठित हो गया हो। शुक्ल जी ने एक ओर जहां काव्य के सैद्धांतिक पक्ष का विवेचन कर अपनी तथ्यग्राहिणी प्रज्ञा का परिचय दिया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी व्यवहारिक समीक्षाओं द्वारा भी समालोचना का बहुत उच्च और व्यापक प्रतिमान स्थापित किया।

5.3 शिवदान सिंह चौहान

शिवदान सिंह चौहान की हिंदी आलोचना में मार्क्सवादी आलोचक की छवि है। मार्क्सवादी सिद्धांतों का हिंदी में सर्वप्रथम उल्लेख 1937 में शिवदान सिंह चौहान ने 'भारत और प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' नामक लेख में किया। इसमें श्री चौहान ने वर्तमान साहित्य को पूंजीवादी प्रवृत्ति का परिणाम बताया है। इसका प्रधान लक्ष्य मार्क्सवादी दृष्टि से साहित्य का दिशा निर्देश करना है।

श्री शिवदान सिंह चौहान की आलोचनात्मक पुस्तकों में 'साहित्य की परख', 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष', 'साहित्यानुशीलन' आदि प्रमुख हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. रामचंद्र शुक्ल किस प्रकार के आचार्य हैं?
2. शुक्ल जी ने काव्य के कौन से दो विभाग बताए हैं?
3. शुक्ल जी के 'चिंतामणि' में संकलित निबंधों में किसकी छाप दिखाई देती है?
4. शुक्ल जी द्वारा रसानुभूति के लिए कितने प्रकार के विधान बताए गए हैं?
5. सच्चे कवि के लिए क्या आवश्यक है?
6. लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा अर्थात हृदय की मुक्तावस्था का क्या नाम है?
7. हिंदी में समालोचना का स्वतंत्र मापदंड स्थापित करने का श्रेय किसे जाता है?
8. शुक्ल जी ने छायावाद को क्या कहा?

5.3.1 प्रगतिवादी आलोचना सिद्धांतों की सैद्धांतिक दृष्टि

सैद्धांतिक आलोचना में साहित्य के विविध रूपों का चौहान ने विवेचन किया है, जिसका स्पष्टीकरण उनके एकांकी, नाटक, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, साहित्य की परख, शीर्षक निबंधों से होता है। उन्होंने 'कार्ल मार्क्स : जनवादी साहित्य की प्रेरक शक्ति' शीर्षक निबंध में मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का समर्थन किया है। इनकी अधिकांश समीक्षाएं पंत, प्रेमचंद, अज्ञेय, अंचल, अश्क, जैनेंद्र आदि के साहित्य पर हैं।

शिवदान सिंह चौहान के अनुसार कविता का कार्य एक नूतन एवं श्रेष्ठतम कल्पनात्मक संसार की रचना करना है जो भ्रम होते हुए भी सत्य है। उनकी दृष्टि में कविता मनुष्य की स्वतंत्रता का अस्त्र है, लेकिन वह स्थूल अस्त्र के रूप में प्रयुक्त नहीं होती। नवीन अंतः प्रेरणाओं द्वारा भावजगत की सीमा विस्तृत करती जाती है। वह जीवन को श्रम एवं संघर्ष के भावों के रस से सींच कर मधुर बनाती है। कविता का यही उद्देश्य रहा है। वह सामाजिक जीवन एवं सामाजिक श्रम के साथ मनुष्य का 'मानवी' लगाव उत्पन्न करती है। वे साधारणीकरण का साधन भावों को नहीं सामाजिक आवश्यकताओं को मानते हैं।

श्री चौहान ने काडवेल की भांति ही साहित्य को 'समाज की गतिशीलता की अभिव्यक्ति' माना है। इस अर्थ में कविता अत्याचार और अन्याय के विरूद्ध मानवता की वाणी है। उनका मंतव्य है कि एक समय में रोमांटिक आलोचना ने कुछ अच्छी बातें कहीं थीं लेकिन बाद में उसे टी. एस. इलियट, हर्बर्ड रीड तथा आई. ए. रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धांतों ने विकृत कर दिया। रोमांटिक आलोचना से उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के लिए यथार्थवादी आलोचना ठीक वैसा ही प्रयास किया जैसा कि मार्क्सवादी चिंतन ने हीगल के गतिशीलता के सिद्धांत को ठीक करने के लिए किया। प्रगतिवाद एवं मार्क्सवाद रूप से कहीं ज्यादा वस्तु को महत्व देता है। ऐसी स्थिति में वह पुराने या नये रीतिवाद, चमत्कारवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद की जनवादी, आदर्शवादी, व्यक्तिवादी, कला दृष्टि का खंडन करता है।

टिप्पणी

इस प्रकार प्रगतिवादी आलोचना सिद्धांतों की सैद्धांतिक दृष्टि को डॉ. चौहान ने व्यापक स्तर पर स्पष्ट किया है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि वे मार्क्सवादी आलोचक हैं अतः मार्क्सवाद में उनकी गहरी आस्था है। वे कहते भी हैं कि "मार्क्सवाद को स्वीकार करना एक प्रगतिवादी के लिए आवश्यक है। उन्होंने मनोविश्लेषणवादी इलाचंद्र जोशी की इन स्थापनाओं का प्रबलता से खंडन किया है कि मार्क्सवादी आलोचना दृष्टि मात्र प्रापेगेंडा है। वे काडवेल के कला-सिद्धांतों में भी गहरी आस्था रखते हैं और उनकी मूल आलोचना-दृष्टि को निर्मित करने में मार्क्स तथा काडवेल ने ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वे कहते हैं "हमें स्वर्गीय काडवेल की स्थापना करनी चाहिए कि साहित्य या कला मनुष्य की स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक साधन है।"

'कविता की आधुनिक व्याख्या' संबंधी निबंध में डॉ. चौहान ने काडवेल की काव्य सिद्धांत दृष्टि को समग्रता में ग्रहण किया है। इसी दृष्टि से उन्होंने यूरोप के भाववादी व्याख्याकार तथा नये स्कूल के पुरोधा ई. टी. हुल्मे के चित्रकल्पनावादी (इमेजिस्म), क्रोचे के अभिव्यंजनावाद, बादलेयर, बर्लेन, रेंब्रां, रोजिटी, मौरिस, आस्कर वाइल्ड और हौपमिंस का 'कला कला के लिए सिद्धांत, प्रतीकवाद, भविष्यवाद और हर्बर्ड रीड के अति वस्तुवाद (सर-रियलिज्म) और फ्रांस के अरागां और जीड तथा इंग्लैंड के लीविस, आडेन, रेंसस केनव रीतिवाद (न्यू क्रिटिसिज्म) तथा स्पेंडर के रोमांटिक यथार्थवाद का प्रबल खंडन किया है। क्योंकि इन सिद्धांतों में विकृति तथा पतन का प्रचार है।

5.3.2 भारतीय साहित्यशास्त्र का विवेचन

डॉ. शिवदान सिंह चौहान ने भारतीय साहित्यालोचन का भी विवेचन किया है। मार्क्सवादी समीक्षक होने के साथ-साथ भी उनका ध्यान भारतीय साहित्यशास्त्र पर भी रहा। अपनी कृति 'आलोचना के सिद्धांत' में उन्होंने रस-संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय, औचित्य संप्रदाय, रीति संप्रदाय, अलंकार संप्रदाय एवं वक्रोक्ति-संप्रदाय आदि का पूर्णता से विवेचन किया है। उनके द्वारा भारतीय साहित्यालोचन की परंपरा को दो भागों में विभाजित कर दिया गया।

1. उपयोगितावादी वर्ग-रस, ध्वनि तथा औचित्य
2. रूपवादी या नवरीतिवादी वर्ग या शरीरवादी वर्ग रीति, अलंकार एवं वक्रोक्ति।

रस सिद्धांत का विवेचन करते समय उसे डॉ. चौहान 'कला निर्मिति शास्त्र का भारतीय प्रमेय कहते हैं। डॉ. चौहान ने स्थान-स्थान पर भरत एवं अरस्तू के सिद्धांतों की भी तुलना की है। उनके अनुसार अनेक पाश्चात्य सिद्धांतों के प्रकाश में रस सिद्धांत को रखकर देखने से स्पष्ट हो जाता है कि "मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, रोमांटिक, यथार्थवादी, प्रतीकवादी, यथा तथ्यवादी किसी भी प्रवृत्ति का लेखक या कलाकार हो, वह रस से न तो कलाकृति का और न पाठक या दर्शक का विच्छेद कराने में समर्थ हो सका है। क्योंकि रस का विचारसूत्र हमारी एक सामान्य और जीवंत विरासत है। उनका मानना है कि रस कलानिर्मिति या उसके आस्वादन की संशलिष्ट अवधारणा है।

काव्य हेतु संबंधी मान्यताओं के विचार से डॉ. चौहान अभिनवगुप्त के बड़े समर्थक हैं। मूल्यांकन में औचित्य सिद्धांत- उन्हें भरा-पूरा लगता है और वक्रोक्तिकार के प्रतिभावान रूप की धाक मानते हैं। भारतीय काव्य-चिंतन में उपयोगितावादी सिद्धांत- रस, ध्वनि तथा

टिप्पणी

औचित्य– "काव्य कला संबंधी कुछ ऐसे व्यापक और सार्वजनीन सौंदर्य सिद्धांतों का विकास कर सके, जिनकी उद्‌भावना स्वतंत्र रूप से पाश्चात्य चिंतकों ने भी की है या कर रहे हैं।" कला के रूपवादी सिद्धांत अलंकार रीति तथा वक्रोक्ति भी उन्हें एक सीमा तक प्रभावित करते हैं– क्योंकि उनके मत से वक्रोक्तिवाद ने 'एक व्यापक सौंदर्यशास्त्र' की उद्‌भावना की है, वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रति परवर्ती आचार्यों ने जो विरोध प्रकट किया, वह क्षोभ का विषय है। वास्तव में रस सिद्धांत में ही रूप निर्माण की प्रक्रिया के रूप में वक्रोक्ति का समाहार होते हुए वे नये प्रकार के रसवादी हैं। यहां उनका चिंतन भी आचार्य शुक्ल के काफी नजदीक है।

आलोचना--सिद्धांतों की गहन दृष्टि की थाह पाने के लिए वे प्लेटो से लेकर बीसवीं शताब्दी के काव्य सिद्धांतों तक की चर्चा विस्तार से करते हैं। किसी भी सिद्धांत का खंडन करने से पहले उसका विवेचन करते हैं– तब अपनी बात करते हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र तथा सार्त्र के अस्तित्ववाद की नकल भारतीय समीक्षा में होते हुए देखकर वे अत्यंत दुखी होते हैं– कारण कि लेखकों तथा आलोचकों ने उनकी नकल करके आस्था, कुंठा, मानवद्रोह और समाज-निरपेक्ष को साहत्यिक कृतित्व का लक्ष्य बना लिया है। 'कला कला के लिए' रूपवादी सिद्धांत का वे घोर प्रतिक्रियावादी दृष्टि अपनाने के कारण खंडन करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रतीकवाद, प्रभाववाद, अभिव्यंजनावाद चेतना, प्रवाहवाद आदि मानव को भटकाने वाले जीवन विरोधी सिद्धांत हैं। 'पश्चिमी प्रयोगवाद' भी पूंजीवाद की दलाली का दर्शन है। इसलिए डॉ. चौहान आई.ए. रिचर्ड्स, टी.एस. इलियट, जान क्रोरेन्सस, माडेन आदि को उसका प्रचारक कहते हैं।

5.3.3 यथार्थवादी आलोचना सिद्धांतों का प्रभाव

स्वच्छंदतावादी आलोचना की बुराइयों से दूर यथार्थवादी आलोचना सिद्धांत जिन्हें रूसी विचारक वेलिन्स्की और टॉलस्टाय ने रचा है– उन्हें प्रभावित करते हैं। इन्हें सेंट-ल्यूब तथा टेन के सिद्धांतों की समाज-दृष्टि तथा कला दृष्टि भी आती है। वेलिन्स्की के तीन काव्य प्रतिमान–'वास्तविकता', 'कलात्मक पूर्वता', और 'प्रतिभा' को उन्होंने पूरी तरह ग्रहण किया है। इन सभी की पूर्णता डॉ. चौहन 'प्रगतिवाद समाजवादी यथार्थवाद' में पाते हैं। यह सिद्धांत असामाजिक-अनैतिक, कुंठावादी व मानवद्रोही व्यक्तिवाद के स्थान पर मानववाद का समर्थन करता है।

वे मानते हैं कि तात्विक दृष्टि से आलोचना में यथार्थवाद प्रगतिवाद, समाजवाद, साम्यवाद की प्रवृत्तियां सजातीय हैं। 'साहित्य के मूल्यांकन' की समस्या नामक निबंध इनकी सैद्धांतिक दृष्टि का सार प्रस्तुत करता है। कला एक सामाजिक वस्तु है जिसमें आस्थावाद आशावादी-मानवतावादी मूल्यों को ही वे सच्चे प्रगतिशील मूल्य मानते हैं। रूपात्मक आलोचना पाठक तथा मूल्यों को ठुकराकर चलती है– वह केवल अफेक्टिव फैलेसी के चक्कर में पड़कर कला दृष्टि को भ्रष्ट करती है। उसकी दृष्टि में रूप का साक्षात्कार ही कलाकृति का चरम लक्ष्य है। रूप को चरम मानने वाली दृष्टि को वे पतनशील पूंजीवादी-प्रतिक्रियावाद दृष्टि का घृणास्पद रूप मानते हैं।

उनके मत से "कलाकृति समग्र जीवन का वैविध्यपूर्ण और मूर्त प्रतिबिंब होती है। इसलिए उसमें मानव-संबंधों, कार्यों, भावों, विचारों, नैतिक मान्यताओं, सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों और समस्याओं की मूर्त और सजीव झांकी होती है।" कलावस्तु की सामाजिकता के साथ पाठक की प्रभाव-ग्रहण क्षमता को भी वे अत्यधिक महत्व देते हैं क्योंकि मार्क्सवादी कला में इसका बड़ा सम्मान है। यह दृष्टि ही पाठक को एण्टीलॉजिकल फैलेसी के अंधे कूप में कूदने से बचा सकती है।

टिप्पणी

वे नयी आलोचना को एण्टीलॉजिकल एनालिसिस के कारण 'आधुनिक युग का रीतिवाद' मानते हैं। प्रयोगवादी कवियों की निंदा करते हुए वे कहते हैं कि वे रीतिवाद की भांति समाज को भटकाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में रचना की 'साहित्यिकता', 'सामाजिकता', 'वास्तविकता' को परखने के लिए मार्क्सवादी-सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि चौहान के मत से "साहित्यालोचन की मुख्य समस्या 'आंतिरक संगति का विश्लेषण' नहीं बल्कि मूल्यांकन है।"

अत: इस प्रकार कहा जा सकता है कविता को नये काव्यशास्त्र में प्रवृत्त करने वाली डॉ. चौहान की दृष्टि में भारतीय तथा पाश्चात्य प्रगतिशील विचारों एवं मूल्यों का समन्वय मिलता है।

5.4 आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

पश्चिम उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में जन्मे आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का हिंदी मूर्धन्य प्रबुद्ध समालोचकों में अप्रतिम स्थान है। 'हिंदी साहित्य, बीसवीं शताब्दी', 'नया साहित्य नए प्रश्न', 'आधुनिक साहित्य', 'कवि निराला', 'कवि प्रसाद', 'महाकवि तुलसीदास' इनकी प्रमुख समालोचनात्मक कृतियां हैं। आचार्य वाजपेयी आधुनिक काल के स्वच्छंदवादी (छायावादी) युग के समीक्षकों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने आधुनिक साहित्य के साथ-साथ संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर भी समीक्षात्मक दृष्टि डाली है।

5.4.1 पांच संप्रदायों पर मत

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी अलंकार, रीति, गुण, वक्रोक्ति एवं ध्वनि मतों पर टिप्पणी करते हुए काव्यात्मा के रूप में 'रस' को ही स्वीकार करते हैं। वे मानव हृदय में उत्पन्न होने वाले सौंदर्य संवेदन को 'रस' कहते हैं। आचार्य वाजपेयी कहते हैं कि 'रस' का हमारे यहां दुरुपयोग भी कम नहीं किया गया। 'रस' की परिभाषा हो, संख्या हो, नाम हो या इसके विविध तत्वों से संबंध हों, विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से इसका प्रस्तुतीकरण किया। अलंकार मत के संबंध में उनकी धारणा है कि–"यदि अलंकार मत का विकास और परिपोषण भामह द्वारा स्थिर प्रणाली पर होता रहता, तो यह असंभव न था कि अलंकार-सिद्धांत की गणना एक स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में होती, किंतु संस्कृत साहित्य के सैद्धांतिक विकास का क्रम इसके विपरीत मार्ग पर चला। अलंकार-संप्रदाय का उत्कर्ष स्थिर न रह सका और उसके समस्त उपकरण इसके अंतर्गत बने न रह सके, जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि स्वत: अलंकार संप्रदाय अपनी स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता को छोड़कर कभी रीति, कभी रस और वक्रोक्ति संप्रदाय का अंग-मात्र बन गया।" आचार्य वाजपेयी की तत्वान्वेषिणी दृष्टि गुण एवं दोषों की ओर भी गई है। वे कहते हैं, "गुण व दोष मत का रीति तथा अलंकार संप्रदायों से कब कैसा संपर्क स्थापित हुआ और पारस्परिक

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. शिवदान सिंह चौहान ने वर्तमान साहित्य को किसका परिणाम बताया है?
10. शिवदान सिंह ने साहित्य को किस रूप में परिभाषित किया है?
11. शिवदान सिंह किस पाश्चात्य विचारक के कला-सिद्धांतों में गहरी आस्था रखते हैं?
12. भारतीय साहित्यालोचन की परंपरा को शिवदान सिंह ने कितने भागों में विभाजित किया?
13. किसकी काव्य हेतु संबंधी मान्यताओं का शिवदान सिंह ने पुरजोर समर्थन किया?
14. काव्यशास्त्र का कौन सा सिद्धांत शिवदान सिंह को भरा-पूरा लगता है?
15. शिवदान सिंह ने पूंजीवाद की दलाली का दर्शन किसे कहा है?
16. शिवदान सिंह ने नयी आलोचना को किसकी संज्ञा दी है?

टिप्पणी

आदान-प्रदान के सिद्धांत के अनुसार ये विभिन्न संप्रदाय किस क्रम से समन्वित होते गए, यह भारतीय साहित्य-शास्त्र के इतिहास का एक शोधनीय विषय है।" कुछ मत ऐसे भी हैं जो रस, अलंकार आदि प्रमुख सिद्धांतों का विरोध न करते हुए भी उनमें समन्वय लाने की चेष्टा करते हैं। ऐसे मतों को स्वतंत्र मत की पदवी नहीं दी जा सकती। उदाहरण के लिए, क्षेमेंद्र का औचित्य नामक मत, जिसमें विभिन्न काव्य-तत्वों के समन्वय की योजना है।" तात्पर्य यह है कि आचार्य वाजपेयी औचित्य को एक स्वतंत्र मत या संप्रदाय की तरह नहीं स्वीकार करते बल्कि उसे मुख्य पांच मतों में ही निहित मानते हैं।

5.4.2 रसनिष्पत्ति

भरतमुनि के रस सूत्र–'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगातद्रनिष्पति:' में 'संयोग' और 'निष्पत्ति' का अर्थ समझाने के लिए चार आचार्यों, भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनव ने अपनी-अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। आचार्य वाजपेयी ने इन चारों व्याख्याओं की विस्तार से समीक्षा की है। भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद शंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद एवं अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद इन चारों वादों को आधुनिक मनोवैज्ञानिक या सौंदर्यशास्त्र संबंधी दृष्टि से देखने की भी आवश्यकता है तथा जिस तार्किक क्रम में ये मत उपस्थित किये गए हैं, जिस तरह इन्हें सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है उससे यह पता चलता है कि शास्त्रकारों को इनके मूल में मौलिकता और तात्विकता का अनुभव हुआ होगा, ऐसा आचार्य वाजपेयी का मानना है। वे यह भी कहते हैं कि–जिस प्रकार वेदांत मत के रहते हुए भी अपने-अपने स्थान पर मीमांसा, न्याय और सांख्य मतों की भी पूर्ण प्रतिष्ठा है, उसी प्रकार अभिनवगुप्त के ध्वनिमत का निरूपण हो जाने पर भी पूर्ववर्ती तीनों आचार्यों की उपपत्तियां निरी निरर्थक नहीं हो जाती हैं। चारों मतों की समीक्षा के उपरांत आचार्य वाजपेयी इनका महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित करते हुए कहते हैं–"चारों मत क्रमश: काव्य की प्रेषणीयता और काव्य-रस के आस्वादन की समस्या को समझाने का प्रयत्न करते हैं और उनमें से प्रत्येक मत समस्या के एक-एक पहलू को लेकर आगे बढ़ता है। कवि-कल्पित नायक से लेकर अभिनेता के नाट्य-प्रदर्शन, सहृदय की भावना और काव्य की ध्वन्यात्मकता के पक्षों की व्याख्या करने वाले ये मत, हमारी दृष्टि में काव्य की एक अत्यंत आवश्यक समस्या के उद्घाटन की एक क्रमबद्ध योजना के रूप में उपस्थित किये गए हैं।" आचार्य वाजपेयी भट्टनायक के भुक्ति-सिद्धांत को शंकुक के अनुमति-सिद्धांत से एक कदम आगे मानते हैं।

5.4.3 साधारणीकरण की सीमा

'साधारणीकरण' के संबंध में आचार्य वाजपेयी भट्टनायक से असहमति व्यक्त करते हुए अपना मत प्रस्तुत करते हैं कि–"यह कहा जाना कि देवताओं और पूज्य व्यक्तियों के रति-भाव का साधारणीकरण प्रेक्षक को नहीं हो सकता, असाहित्यिक दलील है क्योंकि देवता या पूज्य चरित्र कवि और श्रोता दोनों के लिए समान पूज्य है। ऐसी अवस्था में कवि द्वारा वर्णित देवताओं का रतिभाव दर्शकों, श्रोताओं को उसी प्रकार प्रभावित करेगा, उसी भाव की सृष्टि करेगा, जिस भाव की अनुभूति कवि या नाटककार ने स्वत: की है। उससे भिन्न भाव की सृष्टि नहीं हो सकती।

टिप्पणी

वाजपेयी जी ने विवेचन की तथ्यपरकता की दृष्टि से साधारणीकरण का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया–"साधारणीकरण का अर्थ रचयिता और उपभोक्ता (कवि और दर्शक) के बीच भावना का तादात्म्य ही है। साधारणीकरण वास्तव में कवि-कल्पित समस्त व्यापार का होता है, केवल किसी पात्र विशेष का नहीं। इस तथ्य को न समझने के कारण ही साधारणीकरण के प्रश्न पर अनेक निरर्थक विवाद होते रहे हैं।"

5.4.4 आचार्य शुक्ल से मतवैभिन्य व छायावाद की प्रतिष्ठा

वाजपेयी जी को आधुनिक हिंदी-समालोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कराने में उनकी समीक्षा-कृति 'हिंदी साहित्य, बीसवीं शताब्दी' को सर्वप्रथम स्थान दिया जा सकता है। वाजपेयी जी ने पूर्वाग्रह अथवा दुराग्रह की भावना से दूर रह कर एक निर्णायक समीक्षक के रूप में समालोच्य साहित्यकारों के संबंध में अपनी विवेकपूर्ण सम्मति निस्संकोच भाव से प्रकट की है। वे शुक्ल-युग की नैतिकता और मर्यादा में ही काव्य-समीक्षा का व्यापक रूप न देख कर उसे सौंदर्यमूलक स्वच्छंदतावादी दृष्टि से विवेचित करना अच्छा समझते हैं। वाजपेयी जी का हिंदी समीक्षकों की श्रेणी में विशेष स्थान है।

"काव्य का महत्व तो काव्य के अंतर्गत ही है, किसी भी बाहरी वस्तु में नहीं। सभी बाहरी वस्तुएं काव्य-निर्माण के अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों का निर्माण कर सकती हैं, वे रचयिता के व्यक्तित्व पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव डाल सकती हैं और डालती भी हैं, पर इन स्वीकृतियों के साथ हम यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि काव्य और साहित्य की स्वतंत्र सत्ता है, उसकी स्वतंत्र प्रक्रिया है और उसकी परीक्षा के स्वतंत्र साधन हैं। काव्य तो मानव की उद्भावनात्मक या सर्जनात्मक शक्ति का परिणाम है। उसके उत्कर्ष-अपकर्ष का नियंत्रण बाह्य-स्थूल व्यापार या बाह्य बौद्धिक संस्कार और आदर्श थोड़ी ही मात्रा में कर सकते हैं।" यह वाजपेयी जी की प्रतिभा का ही चमत्कार था जिसने द्विवेदी-युग में कदर्थित किये गए छायावादी कवियों को साहित्य-जगत में उच्च स्थान प्रदान किया और उनके काव्य-परीक्षण के लिए जिस प्रकार का प्रतिमान होना चाहिए, उसकी समालोचना-क्षेत्र में प्रतिष्ठा की। इस दृष्टि से वे 'शुक्लोत्तर-युग' की प्रमुख प्रवृत्ति 'सौंदर्यमूलक स्वच्छंदतावाद' के प्रवर्तकों में से हैं और कालांतर में इस समीक्षा-धारा ने जो विकास किया है, उसके अधिकांश तत्वों के निर्माण का श्रेय आचार्य वाजपेयी जी को है।

वाजपेयी जी की समालोचनाओं का एक प्रमुख अंश साहित्य के क्षेत्र में समय-समय पर उद्भूत होकर विकास करने वाले विभिन्न वाद-प्रवादों की समीक्षा है। उन्होंने छायावाद, रहस्यवाद, परंपरावाद और प्रयोगवाद जैसे प्रमुख साहित्यिक वादों के साथ-साथ यथार्थवाद, आदर्शवाद, परंपरावाद, स्वच्छंदतावाद, अनुकृतिवाद और अभिव्यंजनावाद आदि काव्य-मतों का विवेचन अत्यंत प्रांजल शैली में किया है। ये विवेचन उनकी अध्ययनशील प्रज्ञा और चिंतनशील विचारणा के मुख्य प्रतिबिंब है। वाजपेयी जी का छायावाद विषयक विवेचन तो अत्यंत प्रौढ़ और व्यापक धरातल पर अधिष्ठित है। उनके पूर्व जिन आचार्यों ने छायावाद की विवेचना की थी, उसमें उसके प्रति आक्रोश का स्वर ही उदात्त था, जिसका परिणाम यह हुआ कि छायावाद का सौंदर्य-पक्ष उनसे उद्घाटित नहीं हो सका। उस युग में छायावादी कवियों ने स्वयं उक्त वाद के विषय में अपनी धारणाएं व्यक्त कीं, किंतु उनके समर्थन की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही थी। वाजपेयी जी का छायावाद-विषयक विश्लेषण ऐसे समय में

टिप्पणी

अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम तो उस भ्रांति के निवारण की चेष्टा की जिसके कारण छायावाद को भक्तिकालीन काव्य की भांति एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाता था और जिसके रचयिताओं का मानसिक संस्थान भक्त-कवियों की कोटि में प्रक्षिप्त करने की एक विचार-परंपरा बन रही थी। वाजपेयी जी ने पर्याप्त प्रमाण देकर इस विषय का स्पष्टीकरण किया कि "छायावाद में भक्ति-काव्य की साकार वर्णनाओं के विपरीत निराकर पद्धति तो है ही, किंतु वे निराकार व्यंजनाएं भी कबीर जैसे ज्ञानमार्गी और जायसी जैसे सूफी कवियों से भिन्न कोटि की है।" सच तो यह है कि उनके मत से केवल 'अध्यात्मवाद' की तुलना से ही कवियों के मानसिक धरातल का विवेचन करने की अपेक्षा उन प्रेरक शक्तियों को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए, जिनसे इस विषय का बोध हो सके कि काव्यकारों ने किस प्रकार का मौलिक विधान अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। उनका तो स्पष्ट निर्णय है कि "नई छायावादी काव्य-धारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है परंतु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय ओर सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।" वाजपेयी जी ने इसी विवेचन के प्रसंग में मध्यकालीन हिंदी काव्य और आधुनिक छायावादी काव्य के उन मौलिक विभेदों का पर्यवेक्षण भी किया है जिनके कारण 'मध्यकालीन काव्य की सीमा में मानव-चरित्र और दृश्य-जगत अपने प्रकृत रूप में उपेक्षित ही रहे, जबकि नवीन काव्य में समस्त मानव-अनुभूतियों की व्यापकता पूरा स्थान पा सकी।'

5.4.5 प्रगतिवादी साहित्य का चिंतन

वाजपेयी जी की समालोचनाओं में किसी भी विषय को केवल सांप्रदायिक अथवा सीमित दृष्टिकोण से विवेचित करने की प्रवृत्ति का विरोध मिलता है। यद्यपि उनका मुख्य विवेच्य विषय आधुनिक साहित्य है, किंतु उन्होंने पुरातन साहित्य को भी नवीन प्रतिमानों में परीक्षित करने की आवश्यकता पर अधिक बल दिया है। वाजपेयी जी प्रगति को जीवन साहित्य की एक अनिवार्य प्रक्रिया मानते हुए उसकी संस्थिति प्रत्येक युग में अनिवार्य समझते हैं, क्योंकि उसके बिना हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उन्होंने मनुष्य की सामाजिकता को महत्व देकर साहित्य को केवल व्यक्तिगत भावों के प्रदर्शन की ही भूमि नहीं माना है, अपितु उसका संबंध हमारी सामाजिक चेष्टाओं से भी जोड़ा है, जिनके कारण हमारे व्यक्तित्व को उन्नयन प्राप्त होता है। उनके मतानुसार व्यक्ति या समाज के बीच चलने वाले स्वाभाविक आदान-प्रदान को सचेत होकर ग्रहण करना काव्य-साहित्य को प्रगतिशील ही नहीं बनाता, अपितु उसे उत्थान भी प्रदान करता है। इस प्रकार उन्होंने प्रगतिशील साहित्य के लिए किन्हीं विशेष प्रकार की जीवन आस्थाओं अथवा बंधी-बंधाई परंपराओं में चलना अहितकर माना है, क्योंकि ऐसा करने से हम साहित्य के उस उदात्त लक्ष्य की अवहेलना कर देते हैं जिसके कारण उसे शाश्वत गौरव प्राप्त होता है।

वाजपेयी जी के प्रगतिशील साहित्य-विषयक विवेचन से स्पष्ट है कि वे प्रगति को जीवन के साथ ऐसे स्वरूप में संगठित करना उचित समझते हैं जिससे "जीवन संबंधिनी आधारभूत चेतना साहित्य से लुप्त न हो जाए, हम मृत्यु के अथवा अगति के उपासक न बन

टिप्पणी

"साहित्य में करुण रस अथवा ऊंचे आदर्श की कल्पनाओं का कोई स्थान नहीं है अपितु यह आशय अवश्य है कि 'साहित्य में आशा, निराशा, करुण और वीर' आदि के लिए समान स्थान है किंतु उनकी नियोजना प्रगतिमूलक और उद्देश्यमूलक होनी चाहिए।" उन्होंने साहित्य का युग जीवन के साथ संबंध स्वीकार किया है किंतु वे यह उचित नहीं समझते कि युग-जीवन की निराशा के पीछे हम आत्मविस्तृत हो जाएं। सच तो यह है कि उन्हें मृत्यु से अधिक वरेण्य जीवन लगता है अत: प्रगतिशील साहित्य में उसका अभिव्यंजन ऊर्जस्वित रूप में किया जाना ही सर्वथा समीचीन है।

वाजपेयी जी ने बुद्धिवादी सूत्र के आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिक निदर्शन प्रस्तुत करते हुए अति शृंगारोन्मुख, अति उदासीन, केवल कौतूहलपूर्ण तथा केवल मनोरंजक प्रवृत्तियों को प्रगतिमूलक नहीं माना है। उनका तो स्पष्ट कहना है कि 'बाह्य संघर्ष की अपेक्षा बौद्धिक और मानसिक संघर्ष का प्रगतिशील साहित्य में अधिक महत्व है।' उन्होंने प्रगतिशील साहित्य को समय-सापेक्ष निर्दिष्ट कर ऐसे तीन सूत्रों की आयोजना की है जिसके द्वारा प्रगतिशील साहित्य का स्वरूप अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है। उन सूत्रों में–पहला सूत्र आत्मचेतना या जीवन-चेतना का है जिसके अभाव में साहित्य अथवा कला का वास्तविक निर्माण हो ही नहीं सकता। उन्होंने प्रगतिशील साहित्य का दूसरा सूत्र यह माना है कि वह परिवर्तन के क्रम को समझते हुए नवीन समस्याओं के संपर्क में आए और नवीन ज्ञान का उपयोग करना जाने। तीसरे सूत्र के अंतर्गत उन्होंने कला-निर्माण के पक्ष को महत्व दिया है। इन तीनों सूत्रों में उन्हें प्रगतिशील साहित्य की बाह्य तथा आभ्यंतरिक विशेषताओं का संपूर्ण संयोजन मिला है, जिसे स्वीकार करते हुए चलने से किसी भी प्रकार की रूढ़ि का साहित्य में संचार नहीं हो सकता और वह अधिकाधिक उत्थानमूलक बन सकता है। वाजपेयी जी ने इन तीनों सूत्रों के संबंध में होने वाली भ्रांतियों का भी निराकरण किया है और बतलाया है कि आधुनिक युग में समाजवादी विचारों का क्षेत्र श्रेष्ठ साहित्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है, किंतु वह किसी विशेष प्रकार की संकीर्ण मतवादी धारा के अंतर्गत संकुचित होकर नहीं प्रकट होना चाहिए। सच तो यह है कि वाजपेयी जी के मतानुसार कला का लक्ष्य प्रचार न होकर सृष्टि होता है और कला की प्रगतियां नई प्राण-प्रतिष्ठा, नए तौर-तरीके (टैक्नीक), नूतन छंद, नवीन भाषा और नई भावाभिव्यक्ति आदि हैं जो विशुद्ध साहित्यिक स्वरूप में प्रकट होती हैं। वे काव्यात्मक सृजन और प्रयोग में मौलिक अंतर मानते हैं और उनके मतानुसार कवि का सर्वप्रथम उत्तरदायित्व अपनी रसात्मक अनुभूतियों के प्रति होता है जबकि प्रयोग को ही सब कुछ मानने वाला साहित्यकार उसकी मूल चेतना से बहुत अधिक दूर और हटा हुआ रहता है।

5.4.6 प्रयोगवादी साहित्य का चिंतन

वाजपेयी जी का प्रयोगवाद-विषयक विवेचन अत्यंत व्यापक और युक्ति संगत है। प्रयोगवाद के संबंध में उनके विचारों का निष्कर्ष इस प्रकार है–

'प्रयोगवाद हिंदी में बैठे-ठाले का धंधा बन कर आया था। प्रयोक्ताओं के पास न तो काव्य-संबंधी कोई कौशल था और न किसी प्रकार की कथनीय वस्तु थी। धीरे-धीरे इस मजाक में भी सच्चाई जान पड़ने लगी और कुछ लोग इस अर्थहीन वस्तु में भी एक नए 'वाद' की संभावना देखने लगे। क्रमश: यह भाषा-संबंधी बीहड़ प्रयोगों का अड्डा बन गया जिससे पाठकों को भी थोड़ी बहुत दिलचस्पी होने लगी। आगे चलकर इसमें टी.एस. इलियट की शैली

टिप्पणी

में आधुनिक जीवन के खोखलेपन का परिचय कराया जाने लगा। यह वाद हिंदी में आरंभ से ही मध्यवर्ग के हार खाए और फिर भी शौकीन तबियत वाले व्यक्तियों के हाथ में रहा है। पिछले कुछ दिनों से इसमें इन निष्क्रिय व्यक्तियों की निराशा और गिरा हुआ मन प्रतिबिंबित होने लगा है। आश्चर्य नहीं, यदि निकट भविष्य में यह वही रंगत धारण करे जो पश्चिम में अति यथार्थवादियों की रचनाओं ने धारण किया है।'

5.4.7 विभिन्न वादों पर चिंतन

उन्होंने धार्मिक और नैतिक मूल्यों को प्रधानता देकर चलने वाले आदर्शवाद के लिए यथार्थ दृष्टि की आवश्यकता अनिवार्य बतलाई है तो आधुनिक यथार्थवाद में मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तथा फ्रायड और एडलर के सिद्धांतों के अनुयायी अंतश्चेतनावाद के दुर्बल पक्ष का भी उद्घाटन किया है, जिनके अध्ययन से वाजपेयी जी के इन वादों की साहित्यगत महत्ता विषयक विचारों का सहज ही बोध हो जाता है।

वाजपेयी जी ने पश्चिमी काव्यमत के मूल प्रेरक अनुकृतिवाद का विश्लेषण प्लेटो और अरस्तू की विचारधारा के अनुरूप किया है जो सामान्यत: परिचय-मूलक कहा जा सकता है। उन्होंने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का विश्लेषण करने के पूर्व यूरोपीय काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में किये गए लैसिंग, विंकैलमेन तथा कांट के उन सौंदर्यमूलक और कालाभिव्यंजक विचारों का उद्घाटन किया है जिनसे क्रोचे को काव्यगत अभिव्यंजनावाद की प्रतिष्ठा करने में प्रेरणा मिली है। उनके क्रोचे के अभिव्यंजनावाद विषयक विवेचन में उक्त वाद की प्रमुख विशेषताओं के साथ-साथ इस विषय का भी सामान्य निरूपण हो गया है जो क्रोचे के अभिव्यंजनावाद के संबंध में आक्षेप करते हुए विवेचित किये जाते हैं। इसी प्रकार पश्चिमी साहित्य में परंपरा (क्लेसीसिज्म) और स्वच्छंदता (रोमेंटिसिज्म) संबंधी जिन दो प्रमुख काव्य-शैलियों का युग-परिस्थिति के अनुकूल जिस रूप में विकास हुआ है उनका मूल विभेद स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया है कि 'प्रथम प्रकार की शैली में वस्तु और शैली दो पृथक सत्ताएं हैं जबकि द्वितीय प्रकार की शैली में काव्य की मूल वस्तु भावना है जिसके अंतर्गत उसके अन्य उपादान सन्निविष्ट किये जा सकते हैं।' पश्चिम के इन विभिन्न काव्य-मतों के अतिरिक्त वाजपेयी जी ने भारतीय काव्य-मतों का भी विश्लेषण किया है, जिनमें 'अलंकारमत, रीतिमत, गुणमत, वक्रोक्तिमत, ध्वनिमत और रसमत' प्रमुख हैं।

5.4.8 काव्य परिभाषा

अन्यान्य आलोचकों की भांति वाजपेयी जी भी साहित्य का मूल प्रयोजन या हेतु आत्मानुभूति मानते हैं जिसका अभिप्राय है कि "साहित्य की सृष्टि आत्मानुभूति की प्रेरणा से होती है।" उनका तो दृढ़ विश्वास है कि "काव्यानुभूति स्वत: एक अखंड आत्मिक व्यापार है, जिसे किसी भी दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक या साहित्यिक खंड-व्यापार या वाद से जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।"

वाजपेयी जी के मतानुसार कवि की सामाजिकता और युग-विशेष की परिवर्तनशीलता का महत्व होने पर भी इस सत्य की उपेक्षा नहीं क़ी जानी चाहिए कि साहित्य सामाजिक इतिहास का अंग-मात्र ही नहीं, अपितु वह एक स्वतंत्र कथा-वस्तु है जिसे वाणी और मानव-भावना का ऐसा साकार वैभव कहा जा सकता है जिसमें सामाजिकता-मात्र का निर्वाह

टिप्पणी

ही सब कुछ नहीं होता। तात्पर्य यह कि वाजपेयी जी साहित्य से समाज, सामाजिक जीवन तथा सामाजिक विचारधाराओं और वादों का संबंध अवश्य मानते हैं किंतु यह संबंध अनुवर्ती रूप में ही माना जाना चाहिए, क्योंकि साहित्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता है और उसके अंतर्गत ही सामाजिक प्रगति एक अंग बनकर आ सकती है। साथ ही साथ वाजपेयी जी का यह भी कहना है कि गद्य, पद्य, श्रव्य, दृश्य, प्रबंध, मुक्तक आदि विभेदों की दृष्टि से साहित्य के देशकालगत अनेक प्रकार और प्रकृतियां भी हो सकती हैं किंतु उनकी बाह्य बहुरूपता में एक ऐसी अंतर्व्यापिनी एकता भी रहती है जिसकी खोज करना साहित्य का कार्य होता है। वाजपेयी जी ने अपनी इस मान्यता के अनुसार ही काव्य की परिभाषा करते हुए उसे "प्रकृत मानव-अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौंदर्यमय चित्रण माना है जो मनुष्य मात्र में स्वभावत: अनुरूप भावोच्छ्वास और सौंदर्य-संवेदन उत्पन्न करता है।" यही सौंदर्य संवेदन भारतीय पारिभाषिक शब्दावली में रस-संज्ञा से अभिहित होता है।

5.4.9 समालोचना संसार

वाजपेयी जी मुख्यत: आधुनिक साहित्य के समालोचक हैं, अत: उन्होंने आधुनिक साहित्यकारों के साथ उन कृतियों का भी विशेष रूप से मूल्यांकन और समीक्षण किया है जो आधुनिक युग में महत्वपूर्ण समझी जाती है। 'साकेत', 'कामायनी', 'कुरुक्षेत्र', 'कुणाल', 'कृष्णायन' जैसे काव्यों और 'गोदान', 'त्यागपत्र' और 'शेखर : एक जीवनी' जैसे उपन्यासों को ऐसे विवेच्य विषयों में प्रधानता दी गई है। इस प्रकार की समीक्षाओं से जहां एक ओर विवेच्य रचनाओं के अंतरंग और बहिरंग पक्षों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण हुआ है, वहीं दूसरी ओर उनके रचयिताओं के मानसिक विकास का विश्लेषण भी युग, परिस्थिति तथा आंतरिक प्रेरणाओं को लक्ष्यभूत बनाकर किया गया है। इन विवेचनाओं में विवेच्य विषय के साथ-साथ तुलनात्मक पद्धति का भी प्रयोग है, जिसके द्वारा समालोचना का स्तर अधिक प्रमाणसम्मत और व्यापक बन गया है। वाजपेयी जी को रचना तथा मीमांसा का सौंदर्य विधायक और जीवन निरूपक पक्ष का केवल वही स्वरूप विशेष प्रिय है जिसमें प्रचारवादी दृष्टिकोण को महत्व न देकर सच्ची आत्माभिव्यक्ति से साहित्य निर्माण किया गया है। इस प्रकार की समालोचनाओं में वे सर्वत्र स्पष्ट और संतुलित बनकर चले हैं, जिनकी प्रेषणीयता का प्रभाव अत्यंत व्यापक है।

वाजपेयी जी की समालोचना में सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का मेल है। आचार्य शुक्ल की भांति वे भी काव्य-कला और जीवन दर्शन के विषय में अपनी निश्चित धारणा रखते हैं और अपने एक निर्धारित प्रतिमान से ही काव्यकारों और उनकी कृतियों का परीक्षण करते हैं। उन्होंने कला को रूप और अरूप दोनों के चित्रण में समर्थ बतलाकर उसे श्री शोभा-संपन्न नारी-रूप में देखा है जिसके मोहिनी वेश में भावों की प्रतिभा सौंदर्य-राशि से अलंकृत होकर प्रकट होती है। वे कला की सर्वश्रेष्ठ सार्थकता इस बात में मानते हैं कि उसके द्वारा पारदर्शी रसिक-जनों को तो उसकी तात्विक उपलब्धि हो ही, साथ-साथ उसका आनंद सामान्य जन सुलभ भी हो जाए। इस प्रकार अपने इस प्रतिमान में उन्होंने सूर-काव्य को भावनाओं के परिमार्जन और शुद्धीकरण में पूर्णतया समर्थ माना है और वे उसके आध्यात्मिक पक्ष का भी गहन चिंतन कर आत्मस्थ कर सके हैं।

साहित्य समीक्षा संबंधी प्रयासों को वाजपेयी जी ने सात सूत्रों के रूप में बताया है। उनकी समीक्षा के आधार सूत्र हैं–

टिप्पणी

1. रचना में कवि की अंतर्वृत्तियों (मानसिक उत्कर्ष-अपकर्ष) का अध्ययन।
2. रचना में कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता-विशालता (कलात्मक-सौष्ठव) का अध्ययन।
3. रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्यांगों का अध्ययन।
4. समय और समाज तथा उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन।
5. कवि की व्यक्तिगत जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन। (मानस विश्लेषण)
6. कवि के दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों आदि का अध्ययन।
7. काव्य के जीवन संबंधी सामंजस्य ओर संदेश का अध्ययन।

शुक्लोत्तर युग की प्रसारकालीन समालोचना के सैद्धांतिक और व्यावहारिक विकास को सौंदर्यमूलक स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण से परिपुष्ट बनाने वाले समालोचकों की श्रेणी में वाजपेयी जी अग्रगण्य एवं सर्वोच्च प्रतिष्ठित रहेंगे।

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. स्वच्छंदतावादी युग के समीक्षकों में सशक्त हस्ताक्षर के रूप में किसका नाम आता है?
18. वाजपेयी जी ने काव्यात्मा के रूप में किसे स्वीकार किया है?
19. द्विवेदी युग में तिरस्कृत किये गए किन कवियों को वाजपेयी जी ने साहित्य-जगत में उच्च स्थान प्रदान किया?
20. 'सौंदर्यमूलक स्वच्छंदतावाद' के अधिकांश तत्वों के निर्माण का श्रेय किसे जाता है?
21. वाजपेयी जी से पूर्व हुई छायावादी समीक्षा में कौन-सा स्वर मुखर था?
22. वाजपेयी जी ने कौन से विचारों के क्षेत्र को श्रेष्ठ साहित्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना है।
23. वाजपेयी जी ने अनुकृतिवाद का विश्लेषण किन पाश्चात्य विचारकों के अनुरूप किया है।
24. नंददुलारे वाजपेयी ने साहित्य संमीक्षा संबंधी प्रयासों को कितने सूत्रों के रूप में अपनाया है?

5.5 डॉ. नगेंद्र

हिंदी आलोचना में स्वच्छंतावादी आलोचकों में डॉ. नगेंद्र का नाम आता है। उनकी आलोचना पद्धति की प्रमुख विशेषता है- भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रों का समन्वय। उनकी व्यावहारिक समालोचना का क्षेत्र मुख्यत: आधुनिक हिंदी पर ही है। डॉ. नगेंद्र के 'सुमित्रानंदन पंत', 'साकेत एक अध्ययन', 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विवेचन' तथा 'विचार और विश्लेषण' प्रमुख समीक्षात्मक निबंध संग्रह हैं जिनमें सैद्धांतिक और व्यावहारिक, दोनों समालोचनाओं के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त 'सियारामशरण गुप्त' तथा 'आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियां' प्रमुख संपादित ग्रंथ हैं।

नगेंद्र ने मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास एवं उनकी साहित्यिक विचाराभिव्यक्ति को भी विवेचित किया है। उन्होंने प्रेमचंद जी का सबसे प्रधान गुण उनकी व्यापक सहानुभूति को बताया है। पर नगेंद्र जी प्रेमचंद के यथार्थ और आदर्शात्मक साहित्य में प्रतिभा के अनिवार्य अंग, तेजस्विता, गहनता, दृढ़ता और सूक्ष्मता के उतने अंग नहीं मिलते जितने व्यापकता के। यही कारण है कि नगेंद्र के अनुसार प्रेमचंद जी प्रथम श्रेणी के कलाकार नहीं क्योंकि उनमें वे उन गुणों का कुछ अभाव पाते हैं जो जीवन और साहित्य में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। नगेंद्र जी ने प्रेमचंद जी को केवल सामाजिक समस्याओं तक ही सीमित बताकर उनके उपन्यासों में जीवन के चिरंतन प्रश्नों के कलात्मक चित्रण का अभाव पाया है। जो किसी भी प्रथम श्रेणी के प्रतिभाशाली लेखक की विशेषता होनी चाहिए।

प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' पर विचार करते हुए कामायनी के अध्ययन की समस्याओं में डॉ. नगेंद्र ने लौंजाइनस द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत "महान प्रतिभा निर्दोषता से बहुत दूर होती है" के सिद्धांत पर विचार किया है क्योंकि सर्वांगीण शुद्धता में अनिवार्य क्षुद्रता की आशंका रहती है। और औदात्य में कुछ न कुछ छिद्र अवश्य रह जाते हैं। कामायनी के शिल्प विधान पर विचार करते हुए उन्होंने उसे महाकाव्य के तत्व उदात्त कथानक, उदात्त कार्य,

टिप्पणी

उदात्त भाव, उदात्त चरित्र एवं उदात्त शैली के आधार पर सिद्ध किया है कि कामायनी का महाकाव्यत्व असंदिग्ध है। परंपरा का नितांत निर्वाह प्रसाद के स्वभाव के विपरीत था। अत: कामायनी में भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र दोनों में से एक के भी लक्षणों का निर्वाह खोजना व्यर्थ होगा।

नगेंद्र जी की समालोचना का विषय श्री सुमित्रानंदन पंत के काव्यदर्शन का अध्ययन भी रहा है। नगेंद्र पंत जी के संबंध में आरंभ से ही यह धारणा बनाते चले आए हैं कि पंत के व्यक्तित्व का निर्माण ही ऐसा हुआ जिसमें मार्क्सवाद की भौतिकता और द्वंद्व को आत्मसात करने के लिए कम अवकाश है। नगेंद्र जी ने पंत के नवीन दर्शन की व्याख्या उनकी नवीन कृतियों 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्ण किरण' के आधार पर की है, जिनकी मूलचेतना आध्यात्मिक है।

डॉ. नगेंद्र ने 'महादेवी की आलोचना दृष्टि' नामक निबंध में महादेवी के साहित्य दर्शन, सामयिक समस्या, छायावाद संबंधी विचार पर विचार करते हुए महादेवी की आलोचना शैली पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि-

"महादेवी की आलोचना शैली चिंतन की शैली है, जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वह जैसे बौद्धिक तथ्यों को पचा-पचा कर हमारे समक्ष रखती हैं। निदान बौद्धिक तीक्ष्णता को उनके विवेचन में इतनी जगह नहीं मिलती परंतु बौद्धिक संश्लेषण सर्वत्र मिलता है।

छायावाद के विषय में डॉ. नगेंद्र का कहना है कि- छायावाद की कविता का विषय द्विवेदी युग जैसे बहिर्मुख न होकर अंतरंग व्यक्तिगत जीवन हुआ। उसका यही व्यक्तिभाव प्रसाद में, आनंदभाव, निराला में अद्वैतवाद, पंत में आत्मरति और महादेवी में परोक्षरति के रूप में प्रकट हुआ।

प्रगतिवादी विचारधारा पर बात करते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि आज का प्रगतिवादी आलोचक जिन मंत्रणाओं से ग्रस्त है उनमें मूल प्रवृत्ति द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की है। डॉ. नगेंद्र ने पंत को हिंदी में प्रगतिवाद का सर्वप्रथम लेखक कह कर तदंतर यशपाल, नवीन, दिनकर और अंचल आदि को समाहित किया है।

प्रयोगवादी काव्य को नगेंद्र ने अत्यंत दुरुह बताया है। उनका मानना है कि प्रयोगवादी भावतत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक के स्थान पर बुद्धिगत संबंध हैं।

डॉ. नगेंद्र ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर भी विस्तार से विचार किया है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यानुभूति का सूक्ष्म विवेचन है और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में कवि की मन:स्थिति तथा काव्य निर्माण में प्रेरणा देने वाले सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण है। इसलिए 'विचार एवं विश्लेषण' में उनका कहना है कि "इस प्रकार से दोनों एक-दूसरे के विरोधी न होकर सहायक या पूरक हैं। इनके तुलनात्मक अध्ययन की सबसे बड़ी उपयोगिता यह हो सकती है कि इनका समन्वय करके पूर्णतर काव्यशास्त्र का निर्माण किया जाए। जिसमें सृष्टा और भोक्ता के पक्षों का व्यापक विवेचन हो।" रस को डॉ. नगेंद्र ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचित किया है। रस विवेचन पर उनकी 'रस सिद्धांत' पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

5.5.1 रसवादी समीक्षक

डॉ. नगेंद्र ने हिंदी-आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से संवर्द्धित किया है। वे रसवादी आलोचक हैं, 'रस-सिद्धांत' में रस की सांगोपांग विवेचना करते हुए उन्होंने

टिप्पणी

इसे पुनः प्रतिष्ठित करने का पांडित्यपूर्ण प्रयास किया है। रसवाद पर जितना ऐकांतिक आग्रह नगेंद्र जी का दिखायी पड़ता है, उतना अन्य किसी आलोचक का नहीं। यदि वाजपेयी जी, द्विवेदी जी और डॉ. नगेंद्र की आलोचनाओं के वृत्त बनाये जाएं तो वाजपेयी जी की स्थिति मध्यवर्ती ठहरती है। उनकी वृत्त-परिधि एक ओर द्विवेदी जी की वृत्त-परिधि का स्पर्श करती है, तो दूसरी ओर नगेंद्र की। द्विवेदी जी और नगेंद्र की परिधियां एक-दूसरे से अछूती रह जाती हैं। द्विवेदी जी की मानवतावादी समीक्षा में साहित्येतर तत्वों की बहुलता है, वाजपेयी जी साहित्यिक मूल्यों पर बल देते हुए भी यथास्थान साहित्येतर मूल्यों का प्रयोग करते हैं, किंतु नगेंद्र जी एकांततः साहित्यिक समीक्षा सिद्धांतों के पक्षपाती हैं, साहित्येतर मूल्यों से उनका संबंध प्रायः नहीं है।

डॉ. नगेंद्र ने नयी कविता की दुरूहता का विश्लेषण करते हुए इसके पांच कारण बताये हैं–

1. भाव तत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक के स्थान पर बुद्धिगत संबंध होना।
2. साधारणीकरण का त्याग।
3. उपचेतन मन के अनुभव-खंडों का यथावत् चित्रण।
4. भाषा का एकांत एवं अनर्गल प्रयोग।
5. नूतनता का सर्वग्राही मोह।

नये कवि आलोचकों की आलोचनाओं से लाभ उठाने के स्थान पर वे किस प्रकार प्रत्यारोप करते हैं, इस प्रवृत्ति पर व्यंग्यात्मक शैली में विचार करते हुए डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है– 'किसी शास्त्रीय आलोचक की क्या मजाल कि प्रयोगवादी कविताओं की निष्पक्ष समीक्षा करके पूर्वाग्राही कहलाने से बच सके। जहां किसी आलोचक ने नयी कविता के सिलसिले में 'रस' की चर्चा की कि नये कवि दल-बल सहित अपने-अपने वक्तव्यों और परिभाषाओं के अस्त्र लेकर उसके सामने खड़े हो जाएंगे। तब आलोचक के सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं; या तो वह शास्त्र और कविता दोनों को लेकर वहां भाग खड़ा हो जहां रस-मर्मज्ञ पाठक एवं श्रोता हों या नये कवियों के अर्थहीन वक्तव्यों पर मुगध होकर कहने लगे– 'मनुष्य को बिंबों के सहारे जीना चाहिए, प्रयोगवाद एक नया सौंदर्य-शास्त्र लेकर आया है। (समालोचक; अगस्त 1959)।

5.5.2 छायावादी आलोचक

अपनी आलोचना-प्रक्रिया में नगेंद्र आरंभ से छायावादी काव्य के प्रति शंकालु और शास्त्र को लेकर आश्वस्त रहे हैं। 'छायावाद की परिभाषा' शीर्षक अपने आरंभिक और प्रसिद्ध निबंध में वे लिखते हैं, "यह तो स्पष्ट ही है कि छायावाद का काव्य प्रथम श्रेणी का विश्व-काव्य नहीं हैं- कुंठा की प्रेरणा प्रथम श्रेणी के काव्य को जन्म नहीं दे सकती।" अपने दूसरे प्रिय क्षेत्र रीति काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन आरंभ करते हुए इस काल की कविता को वे 'क्षयग्रस्त' बताते हैं ('रीति-काव्य की भूमिका')। हो सकता है, अपनी आलोचकीय निष्पक्षता को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने ऐसे कठोर वक्तव्य दिए हों, पर इससे दोनों युगों की कविता के प्रति अन्याय हुआ है। यों, रीति-काव्य के वैशिष्ट्य को रेखांकित करने में उनके अध्ययन का ऐतिहासिक महत्व है। रीतिकालीन श्रृंगारिकता की व्याख्या करते हुए वे

टिप्पणी

लिखते हैं, "इस श्रृंगारिकता के विषय में दूसरी बात यह ज्ञातव्य है कि इसका स्वरूप प्रायः सर्वत्र ही गार्हस्थिक है।" (वही, पृ. 169) यों आलोचक ने हिंदी परंपरा के अंतर्गत परिवार ओर गार्हस्थिक जीवन की महिमा से रीति-काव्य को ठीक ही संबद्ध किया है।

आलोचना के क्षेत्र में नगेंद्र के व्यक्तित्व का एक पक्ष आयोजन को लेकर है। प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के संकलन और संपादन में उनका कार्य श्यामसुंदरदास की आरंभिक व्यवस्था का स्मरण दिलाता है।

सर्वप्रथम छायावादी आलोचक के रूप में ही नगेंद्र को ख्याति मिली। प्रीति और विस्मय से समन्वित छायावादी काव्य की अंतर्मुखी साधना, सौंदर्य-चेतना और कलात्मक छवियों के प्रति वे विशेष आकृष्ट थे। 'सुमित्रानंदन पंत' (1938) इसी मनोदशा का परिणाम है।

डॉ. नगेंद्र ने कहा कि "छायावाद की रहस्योक्तियां एक प्रकार की जिज्ञासाएं हैं, जो छायावाद के उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिक दर्शन के द्वारा और भी पुष्ट हो गयी हैं। परंतु वे धार्मिक साधना पर आश्रित नहीं है। उनका आधार कहीं भावना, कहीं दर्शन-चिंतन और आरंभ में कहीं-कहीं मन की छलना भी है।"

अज्ञेय ने छायावाद की इस प्रवृत्ति को "भावों को आध्यात्मिकता के आवरण में व्यक्त करने की प्रेरणा" कहा और स्वयं सुमित्रानंदन पंत ने रहस्यवाद के प्रश्न मात्र को छायावाद के संदर्भ में अनुचित माना- "मेरे विचार में उस युग की पुष्कल बहुमुखी काव्य-सृष्टि को सामने रखते हुए छायावाद पर रहस्यवादी दृष्टि से विचार करना अतिरंजना है और युग की मुख्य काव्य-प्रवृत्ति पर एक गलत मानदंड का प्रयोग करना है। मध्ययुगीन संतों की तरह छायावादी कवि आत्म-ब्रह्म और आत्म-परिष्कार की खोज में न जाकर विश्वात्मा तथा विश्व-जीवन की खोज की ओर अग्रसर हुए।"

पंतजी का यह कहना एकदम सही है कि छायावाद बहुमुखी काव्य-सृष्टि है और उसका केंद्रीय भाव रहस्यवाद नहीं है। परंतु रहस्योन्मुखी वृत्ति छायावाद की विशेषताओं में से एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति अवश्य है।

छायावाद की दूसरी महत्वपूर्ण और सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा में उसे स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह कहा गया है। इस परिभाषा को सूत्रबद्ध कर सर्वसुलभ बनाने का श्रेय डॉ. नगेंद्र को है। अपनी पहली आलोचनात्मक पुस्तक 'सुमित्रानंदन पंत' में उन्होंने कहा था- स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द बड़ा व्यापक है, इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूप-रंग, रूढ़ि आदि सन्निहित हैं और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य में बंधनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना का विद्रोह। इसके विपरीत 'साकेत : एक अध्ययन' (1939) में उनकी शास्त्रीय अभिरुचि व्यक्त हुई। 'रीतिकाव्य की भूमिका' (1949) तथा 'देव और उनकी कविता' (1949) के लिए अध्ययन-लेखन-क्रम में उनकी रसवादी दृष्टि पूर्णतः पुष्ट हो गयी। किंतु संस्कृत-काव्यशास्त्र में विवेचित रस को उन्होंने ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं किया; अपितु उसके विवेचन में मनोविज्ञान की पूरी सहायता ली। 'आधुनिक हिंदी नाटक' (1940), 'विचार और अनुभूति' (1944), 'आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां' (1951) आदि ग्रंथों में उनकी तीखी मनोवैज्ञानिक दृष्टि को सहज ही पाया जा सकता है। इसीलिए कुछ लोगों ने उन्हें भ्रमवश फ्रायडवादी आलोचक कहा

टिप्पणी

है। इसमें संदेह नहीं कि फ्रायडीय मनोविज्ञान का उन पर गहरा प्रभाव है, लेकिन यह स्वयं साधन न होकर रसवाद का साधन है।

5.5.3 समसामयिक साहित्यांदोलनों में संपृक्तता

रसवाद पर अपनी दृष्टि केंद्रित करके भी नगेंद्र जी आधुनिक साहित्य और समसामयिक आंदोलनों से बराबर संपृक्त रहे हैं। जहां उन्होंने 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएं' (1962) ग्रंथ की रचना की, वहीं वे नयी कविता, उपन्यासों और कहानियों को भी समय-समय पर मूल्यांकित करते रहे हैं। 'नयी समीक्षा : नये संदर्भ' (1970) में मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक संकट, आधुनिकता का प्रश्न आदि ज्वलंत विषयों पर भी उन्होंने विचार व्यक्त किये हैं। नये-से-नये विषयों से उलझते रहने के कारण उनकी रसवादी दृष्टि में एक नया संतुलन आया है; इसी कारण वे रस-सिद्धांत के आयामों के विस्तार का आग्रह करते हैं। रस या आनंद के प्रति उनके आग्रह से यह शंका हो सकती है कि क्या वे जीवन और जगत को साहित्य से अनिवार्यत: संपृक्त नहीं मानते? इस संबंध में उनका विचार है कि समाज का तिरस्कार करने से लेखक की आत्मा की क्षति होगी; किंतु जब तक वह निश्छल आत्माभिव्यक्ति करता रहेगा, उसकी कृति मूल्यहीन नहीं हो सकती। वस्तुत: उनका आग्रह परिष्कृत आनंद और निश्छल आत्माभिव्यक्ति के प्रति है। इसके साथ ही उन्होंने कवि के व्यक्तित्व पर भी जोर दिया है, जिसका अर्थ है–छायावादी मान्यताओं की स्वीकृति। जिस काव्यान्दोलन ने उनके आलोचक-व्यक्तित्व के निर्माण में उल्लेखनीय योगदान दिया हो, उससे प्रभावित न होना अस्वाभाविक होता। नगेंद्र जी परिष्कृत आनंदानुभूति में ही नैतिक मूल्यों का समावेश कर लेते हैं। उनका यह सिद्धांत रिचर्ड्स के मूल्य-सिद्धांत के समानांतर दिखायी पड़ता है; रिचर्ड्स के अनुसार भी काव्य का मूल्य नैतिकता से संबद्ध न होकर अंतवृतियों के सामंजस्य पर निर्भर करता है। 'भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका' शीर्षक अपने नवीनतम ग्रंथ में उन्होंने हिंदी-समीक्षक के एक अन्य अभाव की पूर्ति की है।

5.5.4 व्यावहारिकता में सैद्धांतिकता का समन्वय

नगेंद्र जी की व्यावहारिक आलोचना तथा सैद्धांतिक आलोचना में प्रीतिकर एकसूत्रता दिखायी पड़ती है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के महत्वपूर्ण काव्यशास्त्रों का हिंदी-अनुवाद करने-कराने में सबसे अधिक योग दिया है। उनकी प्रेरणा से आचार्य विश्वेश्वर ने 'अभिनवभारती' 'वक्रोक्तिजीवित', ध्वन्यालोक', 'नाट्यदर्पण', 'काव्यप्रकाश' आदि को हिंदी में अनूदित किया। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के कुछ क्लासिक ग्रंथों के अनुवाद भी उनकी देख-रेख में हुए हैं- 'अरस्तू का काव्यशास्त्र', 'काव्य में उदात्त तत्व' (लौंगिनुस के 'द सब्लाइम' का अनुवाद) और 'काव्य-कला' (होरेस की 'आर्स पोयतिका' का अनुवाद) का प्रकाशन हो चुका है। सेन्ट्सबरी के 'लोसाई क्रिटिकाई' की पद्धति पर उन्होंने 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा' शीर्षक ग्रंथ का संपादन किया है जिसमें यूरोप के प्रतिनिधि आलोचकों के मुख्य सिद्धांतों का संकलन हुआ है। इन अनुवादों से दो लाभ हुए–एक तो यह कि अब हिंदी का समीक्षक अनूदित मूल ग्रंथों के सम्यक् अध्ययन-विश्लेषण द्वारा अपनी स्वतंत्र मान्यताएं बना सकता है और दूसरा यह कि इससे स्वयं नगेंद्र जी को अपने समीक्षा सिद्धांतों को संतुलित और समन्वित बनाने के लिए वृहत् आयाम मिल गया।

टिप्पणी

5.5.5 शुद्धतावाद का आग्रह

नगेंद्र शुद्धतवादी हैं। वे साहित्य को साहित्येतर विषयों से मुक्त रखना चाहते हैं। "साहित्यिक स्तर की रक्षा के लिए पहली आवश्यकता यह है कि साहित्य में राजनीतिक मूल्यों का प्रवेश निषिद्ध रहना चाहिए। राजनीति से अभिप्राय है भेदनीति। जो सांसारिक या भौतिक लाभालाभ पर आश्रित रहती है" (आस्था के चरण)। वे साहित्य के बाहर से कोई तत्व लाने के पक्षपाती इसलिए नहीं है कि साहित्य की 'मूलभूत चेतना अपने सहज रूप में शिव और सुंदर है।' यह बात स्पष्ट नहीं है कि बिना यथार्थ चित्रण (बाह्य तत्व) के साहित्य कल्याणकारी कैसे हो सकता है। साहित्य में राजनीति के प्रवेश को हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भी मान्य समझते हैं। राजनीति का अर्थ भेदनीति नहीं है और न दल विशेष की विचारधारा से प्रभावित होकर लेखन कार्य में प्रवृत्त होने से है। राजनीति से अभिप्राय केवल इतना ही है कि राष्ट्र के अंदर व्याप्त समस्याओं के यथार्थवादी चित्रण के आधार पर उनके समाधानार्थ सुदृढ़ संकेत देना ताकि साहित्य सतत रूप से जीवन से जुड़ा रहे। शुक्ल जी रस सिद्धांत का विश्लेषण करते समय उसे जीवन की यथार्थताओं से जोड़ते हैं। नगेंद्र इस संबंध में परंपरावादी हैं। आनंद और कल्याण में से वे आनंद को श्रेष्ठ मानते हैं "वास्तव में हित जहां खंड चेतना का साध्य है वहां आनंद अखंड चेतना का साध्य है" (आस्था के चरण)। नगेंद्र का 'आनंद' समाज के हित-अहित से परे है।

नगेंद्र एक ही वस्तु की अनेक प्रकार से व्याख्या करते हैं। स्वस्थ रचना को वे लेखक की निश्छल आत्माभिव्यक्ति मानते हैं। क्योंकि उसके द्वारा परिष्कृत आनंद की प्राप्ति होती है। वे सुदृढ़तापूर्वक तर्क देते हैं- "नैतिक एवं सामाजिक मूल्य से स्वतंत्र भी उसका (आत्माभिव्यक्ति) एक स्वतंत्र महत्व है, जिनको तुच्छ समझना स्थूल बुद्धि का परिचय देना है।" सामाजिक मूल्यों से लाग-लपेट के बिना यह आनंद चाहे कितना परिष्कृत क्यों न हो, होगा व्यक्तिनिष्ठ ही। वे मानते हैं "आलोचना को अपनी आलोचना दृष्टि आलोच्य में से ही प्राप्त करनी होगी।" (आस्था के चरण)।

कुल मिलाकर आधुनिक हिंदी आलोचना को समृद्ध करने में डॉ. नगेंद्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे काव्यशास्त्र के प्रकांड पंडित और आलोचनात्मक निबंधकार के रूप में हमेशा याद किये जाते रहेंगे।

5.6 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में जन्मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी के लब्धप्रतिष्ठित लेखक व समालोचक रहे हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उनकी प्रसिद्ध उपन्यास कृति है। 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', एवं 'कबीर' इनके समालोचनात्मक ग्रंथों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आचार्य द्विवेदी आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों, इतिहासकारों में गिने जाते हैं। आधुनिक समीक्षकों में उनका नाम अग्रगण्य है। उनके उपन्यास कम किंतु अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि वे मूलत: काव्यशास्त्री नहीं हैं किंतु काव्यशास्त्र और काव्यात्मवाद पर लिखे गए उनके कुछ निबंध हमें काव्यशास्त्र से संबंधित उनके मतों का परिचय देते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. डॉ. नगेंद्र का नाम कौन से आलोचकों में आता है?
26. 'कामायनी' में डॉ. नगेंद्र ने कौन-सी काव्य विधा सिद्ध की?
27. डॉ. नगेंद्र ने हिंदी में प्रगतिवाद का सर्वप्रथम लेखक किसे माना?
28. डॉ. नगेंद्र ने रस विवेचन पर कौन-सी पुस्तक लिखी?
29. छायावाद को डॉ. नगेंद्र ने क्या कहा?
30. पूर्व एवं पश्चिम के महत्वपूर्ण काव्यशास्त्रों का हिंदी अनुवाद करने-कराने का श्रेय किसे जाता है?
31. डॉ. नगेंद्र ने साहित्य में राजनीतिक मूल्यों के प्रवेश को क्या माना?
32. आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों एवं इतिहासकारों में किसका नाम अग्रगण्य है?

टिप्पणी

आचार्य द्विवेदी रसवादी प्रतीत होते हैं। उनके गद्य साहित्य की सरसता भी यही दर्शाती है इसलिए उनके निबंध ललित निबंधों की श्रेणी में रखे जाते हैं। आचार्य द्विवेदी 'काव्य रस की परंपरा' नामक निबंध में नंदिकेश्वर से आरंभ कर रीतिकाल तक रस की परंपरा पर चर्चा करते हैं। संस्कृत आचार्यों के मतों और सूत्रों पर विवेचन प्रस्तुत करते हैं। इसमें उन्होंने काव्यशास्त्रीय और कामशास्त्रीय विनोदों के मिलते-जुलते स्वरूप को देखकर कहा–"काव्य को केवल काव्यशास्त्र ने ही नहीं प्रभावित किया है, कामसूत्र ने भी किया है, अतः इन वैनोदिक सामग्रियों का कामशास्त्र से मिलना न तो आश्चर्य का कारण है और न कामशास्त्रीय वैनोदिक प्रकरण और काव्यशास्त्रीय वैनोदिक प्रकरण की एकता की ही निशानी है।" आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि भरत के पूर्ववर्ती काल में 'रस' शब्द का अर्थ शृंगार ही समझा जाता था। जो परवर्ती काल में पूरी तरह अमान्य नहीं हुआ।

5.6.1 रस संबंधी दृष्टिकोण

आचार्य द्विवेदी रवीन्द्रनाथ की काव्य परिभाषाओं का उल्लेख करते हुए 'रस' को परिभाषित करते हैं–"हम जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, जानते हैं, उसके साथ जब अनिर्वचनीय का योग होता है तो हम उसे 'रस' कहते हैं, अर्थात वह वस्तु जिसे हम अनुभव करते हैं पर व्याख्या द्वारा समझा नहीं सकते हैं।" रसानुभूति के विषय में उनका मत उल्लेखनीय है, "आधुनिक पाठक रस की अनुभूति के लिए काल्पनिक नर-नारियों की सृष्टि नहीं करता, अपने संचित अनुभवों का ही प्रयोग करता है। भारतीय अलंकार शास्त्रों की चरितार्थता इसी में है कि उन्होंने काव्यार्थ को समझने के लिए वैज्ञानिक मान निश्चय करने का मार्ग दिखाया है। मेरा निश्चित मत है कि हमारे अलंकारशास्त्र रसबोध में सहायक हैं, बाधक नहीं। यदि कोई सचमुच भारतीय साहित्य का रस अनुभव करना चाहे तो उसे भारतवर्ष के चिरसंचित संस्कारों का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए। जब हम देश और काल के विश्वासों को ठीक-ठाक समझ लेंगे, तभी उनके आधार पर रचित साहित्य के अनाविल रस रूप का परिचय पा सकेंगे।"

साधारणीकरण विचार

सहृदय एवं साधारणीकरण के संबंध में आचार्य द्विवेदी कहते हैं–"काव्य के शब्दों में पाठक को रजोगुण और तमोगुण के पचड़े से हटाकर सत्वस्थ करने की शक्ति होती है। उसे आनंद के साथ उसके सहवर्ती स्थूल उपादानों की लपेट में नहीं आना पड़ता। उसका आनंद विशुद्ध मानसिक आनंद होता है। जिस सहृदय के हृदय में स्थायी भावों की अनुभूति जितनी ही अधिक होगी, वह उतने ही गाढ़े भाव से रस का अनुभव कर सकेगा। जो साहित्य शास्त्र का मर्मज्ञ है, उसी के चित्त में कवि की सरस वाणी प्रसार पाती है। कवि का रस-लोक अपने आप में परिपूर्ण नहीं होता। उसे मनुष्य का ग्राहक हृदय चाहिए। सहृदय चित्त ही उसका आनंद ले सकता है।" आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि "रस विश्वजनीन होता है। उसमें कोई वैयक्तिक राग-द्वेष नहीं होता। रस-बोध के समय सहृदय विभावों के साथ अपना अभेद अनुभव करता है। अभेद की अनुभूति में कोई बाधा पड़े तो रसानुभव असंभव हो जाता है।"

द्विवेदी जी की रचना 'पुनर्नवा' में आचार्य देवराज कहते हैं–शब्द का अर्थ केवल वक्ता की इच्छा का विषय नहीं है (वक्तुरिच्छा हि तात्पर्यम्) श्रोता और संदर्भ भी उसमें कुछ न

टिप्पणी

कुछ जोड़ते घटाते रहते हैं। मैं जब कभी अपनी व्याकुलता छंदों की भाषा में अभिव्यक्त करना चाहता हूं तो सुनने वाले उसका ठीक अर्थ नहीं समझते। कुछ न कुछ वह बदलकर ही उन तक पहुंचती है। मेरे हृदय के साथ जिसका हृदय एकतान हो गया वही मेरी बात पूरी तरह समझ पाएगा। ऐसे समान हृदय वाले कम ही होते हैं, बहुत कम। मैं ऐसे ही लोगों को 'सहृदय' कहता हूं। हृदय के अतल गांभीर्य की वेदना ऐसे सहृदय ही समझ सकते हैं। इस प्रसंग से द्विवेदी जी ने इस सहृदय शब्द की व्याख्या तो की ही साथ ही इस भ्रम का निवारण भी किया है कि व्यवहार में वक्ता का अभिप्रेत अर्थ ही शब्दार्थ होता है।

5.6.2 रस व अलंकार चिंतन

रसानुभूति का आनंद उस आनंद के समान है जो योगियों को अनुभव होता है। यद्यपि अपने ही चित्त का पुनः पुनः अनुभूत स्थायी-भाव अपने आकार के समान ही अभिन्न है, तथापि काव्य-नैपुण्य से वह गोचर किया जा सकता है, आस्वादन ही इसका प्राण है, विभावादि के रहने पर ही यह रहता है। रस व्यंग्य है वाच्य नहीं। रस निर्वैयक्तिक और अलौकिक होता है। रस आस्वादयिता के बाहर नहीं होता।" रस ब्रह्मानंद सहोदर है। यही काव्य की आत्मा है।

द्विवेदी जी कहते हैं–"समूचा भारतीय काव्य-साहित्य 'रस' को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न है। यद्यपि ध्वनि-संप्रदाय अन्यान्य अलंकार संप्रदायों की अपेक्षा नवीन था तथापि 'रस' के प्राचीन सिद्धांत को आत्मसात करने की शक्ति उसी में थी। रस प्रकृत्या ही व्यंजनीय है उसे ध्वनि के अंतर्गत ही आना चाहिए था। यह तो हमें नहीं मालूम कि ध्वनिकार का दावा कि 'काव्य की आत्मा ध्वनि है', यह सिद्धांत पूर्वाचार्यों का है, कहां तक ठीक है, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि भरतमुनि के ग्रंथ में रस-ध्वनि का बीज हमें मिल सकता है।" रस की महत्ता के साथ औचित्य को भी महत्व प्रदान करते हुए आचार्य द्विवेदी मानते हैं कि साहित्य ही मानव जाति की अंतर्निहित एकता को स्थापित करने में सहयोगी सिद्ध होता है, मानवीय संस्कृति की नींव को मज़बूत करता है। इसके लिए शब्द और अर्थ के औचित्य को समझना होगा। काव्य स्थूल जगत से विच्छिन्न होकर नहीं रह सकता। शब्द और अर्थ ही उसके शरीर हैं। अर्थ शब्दों द्वारा सूचित बाह्य सत्ता को प्रकट करते हैं। एक व्यक्ति के चित्त में स्थित अर्थ को दूसरे के चित्त में प्रवेश कराके ही शब्द सार्थक होता है। यहां अर्थ को दूसरे के चित्त में प्रवेश कराने की प्रक्रिया में औचित्य आवश्यक है। वरना अर्थ, अनर्थ में या निरर्थक भी सिद्ध हो सकता है।

अलंकारों पर आचार्य द्विवेदी की संक्षिप्त और सतर्क टिप्पणी है कि "अर्थ-भारहीन शब्दालंकार न तो काव्य में प्रगाढ़ अनुभूति ही पैदा करते हैं, और न संगीत का प्रवाह ही। वे दोनों के केवल घटिया प्रभाव भर उत्पन्न करते हैं। परंतु जहां शब्दालंकार में अर्थ-भार बना रहता है, वहां वे काव्यगत प्रभाव में संगीत की सहज गति भर देते हैं। परंतु अर्थालंकार शब्द के प्राणप्रद और विशेषाधान-हेतुक, दोनों ही धर्मों में गाढ़ अनुभूति कर रस ले आते हैं। अर्थालंकार जब आवेग-सहचर होकर आते हैं, तो वाक्य में अधिक ऊर्जस्वल तेज भर देते हैं पर जब आवेगहीन होकर आते हैं, तो चमत्कारी उक्ति भर रह जाते हैं।" आचार्य द्विवेदी काव्यात्मवाद संबंधी चर्चा में 'रस' को महत्व देते हैं तथा भक्ति रस और उसके स्वरूप मधुर रस को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। आत्मा द्वारा अनुभूत यह अलौकिक रस ही उन्हें भाता है। उनके

टिप्पणी

निबंधों में यह सरसता देखी जा सकती है, अनुभव की जा सकती है। आचार्य द्विवेदी की काव्यात्मवाद संबंधी मान्यताएं, विशेष रूप से रस संबंधी चिंतन महत्वपूर्ण है।

आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विशेष अवसरों पर जो अपने साहित्यिक और समीक्षात्मक निबंध लिखे थे, उनके संकलन उनकी विविध समीक्षा कृतियों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। हमारी 'साहित्यिक समस्याएं' नामक पुस्तक उनकी एक ऐसी ही रचना है जिसमें द्विवेदी जी ने सैद्धांतिक निरूपण के साथ-साथ अपनी निजी मान्यताओं का भी विश्लेषण किया है।

द्विवेदी जी ने सर्वप्रथम भारतवर्ष की भाषा-समस्या को अपनी समालोचना का विषय बनाया है। उनका कहना है कि आज जिस रूप में इस समस्या को स्वरूप प्रदान किया जा रहा है, वह अत्यंत हेय और घृणित है। उनका मूल मंतव्य यही है कि संस्कृत भाषा और साहित्य को अंतस्थ किये बिना हिंदी भाषा भी हमारी वर्तमान समस्या को नहीं सुलझा सकती, क्योंकि संस्कृत भाषा-साहित्य की ज्ञान-राशि हमारी संस्कृति के अंग प्रत्यंग में रमी हुई है। वे हिंदी भाषा की शक्ति पर भी मुग्ध हैं और उन्हें भारतीय साहित्य में एक ऐसी चेतना और जीवंतता मिलती है जिसके कारण वह भारत को ही नहीं अपितु विश्व-जीवन को भी भव्यतम मार्गदर्शन करा सकता है।

5.6.3 भाषा समस्या का स्वरूप

द्विवेदी जी का साहित्य का मूल्यांकन संबंधी दृष्टिकोण अत्यंत उदार और प्रगतिशील है। यद्यपि उनका प्राचीन शास्त्रीयता का अध्ययन अत्यंत गंभीर और व्यापक है, किंतु आज के प्रगतिशील युग में वे उसकी सीमाओं से भी अपरिचित नहीं है। उनकी मान्यता है कि बिना नूतन साहित्यिक दृष्टिकोण को स्वीकार किये हम अपने आधुनिक साहित्य की समालोचना कर ही नहीं सकते और जो समालोचक अपनी रूढ़िग्रस्तता और संकीर्णता में ही उलझे हुए हैं उनमें साहित्य के सच्चे मूल्यांकन के स्थान पर समस्याओं को ही प्रश्रय देने की प्रवृत्ति है। द्विवेदी जी के अनुसार साहित्य-निर्माण का लक्ष्य भी अत्यंत पावन और आदर्शपूर्ण होना चाहिए जिससे मनुष्य दैवी गुणों की उपलब्धि की ओर उन्मुख हो। उनकी विचारधारा में वह साहित्य हीन श्रेणी का है जो केवल वाग्विलास के संकीर्ण क्षेत्र को लेकर चलता है। वे साहित्यकार की शक्ति को अद्‌भुत मानते हैं जिसके द्वारा महान् सांस्कृतिक क्रांतियां की जा सकती हैं और हमारा सामाजिक स्तर बहुत ऊंचा उठाया जा सकता है।

5.6.4 प्रगतिवादी साहित्यालोचन

द्विवेदी जी प्रगतिशील साहित्य के विरोधी नहीं, किंतु उसके समर्थकों की उस नीति के अवश्य विरोधी हैं जिसके द्वारा वे साहित्य की सार्वजनीनता को वर्ग, क्लास या श्रेणी का नाम लेकर धूमिल बना देते हैं। साथ ही साथ उनका यह भी कहना है कि प्रगतिवाद की धुन में अपने सहस्रों वर्षों की ज्ञान-राशियों को केवल पूंजीवादी व्यवस्था की उपज कह कर ठुकरा देना शोभनीय नहीं है। वे प्रगतिवाद की केवल उन रचनाओं के विरोधी हैं जिनमें ग्राम्य, अश्लील, जुगुप्सित या रसाभासमूलक प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। उन्होंने भविष्य के लिए समाजवादी व्यवस्था की अनिवार्यता का संकेत करके प्रगतिवादियों को व्यापक दृष्टि से सोचने की सम्मति दी है, क्योंकि कोरे मार्क्सवाद से ही किसी स्थिर और शाश्वत तत्व-ज्ञान का बोध नहीं हो सकता

टिप्पणी

ये वस्तुतः अपने देश की चिंतन-परंपरा की व्यापकता और गंभीरता में ही किसी नूतन मतवाद को ग्रहण करना समीचीन समझते हैं, क्योंकि ऐसा करने पर ही साहित्य निर्माण का श्रेयस्कर नूतन मार्ग प्राप्त किया जा सकता है।

द्विवेदी जी कहते हैं–"प्रगतिशील लेखकों में दो श्रेणी के लेखक हैं। एक तो वे, जो कम्युनिस्ट पार्टी से संबंधित हैं और पार्टी की निर्धारित नीति और अंगुलि-निर्देश पर साहित्य लिखते हैं। दूसरे वे, जो पार्टी से संबंधित नहीं हैं पर इन (मार्क्सवादी) विचारों को मानते और तदनुसार यत्न करते हैं–कम्युनिस्ट पार्टी से जिन साहित्यकारों का संबंध है उनको पार्टी के निर्देश पर चलना पड़ता है। पार्टी का इस प्रकार स्वतंत्र चिंतन के मार्ग में आना हितकर नहीं हो सकता। भविष्य में या तो पार्टी को अपना अंकुश उठा लेना पड़ेगा या प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों से वंचित रहना पड़ेगा" (हिंदी साहित्य)। आज द्विवेदी जी की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो रही है।

कबीर विवेचन

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिंदी साहित्य के एक प्रमुख विचारक हैं और उन्होंने साहित्य जगत को मानववादी दृष्टिकोण प्रदान किया है। हजारीप्रसाद जी की प्रतिभा में शोधपरकता और प्राचीन संस्कृति की मनन-शक्ति का प्राबल्य है, अतः वे विशुद्ध साहित्य शैली में बहुत कम समालोचना लिखने का अवकाश पाते हैं। उनका 'कबीर' नामक ग्रंथ भी इस कथन का प्रमाण है। इसमें उन्होंने अपनी शोध-प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि कुछ समालोचकों ने कबीर को केवल जुलाहा जाति का कह कर उसके जाति निर्णय पक्ष से ही छुट्टी पा ली, किंतु शोधप्रिय द्विवेदी जी को इतने से ही संतुष्टि नहीं हुई। उन्होंने प्रस्तावना के अंतर्गत जुलाहा जाति संबंधी पौराणिक मतों का उल्लेख कर उनकी कड़ी आधुनिक खोजों के साथ जोड़ दी है और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वन्यजीवी जातियों की जो शाखा सरवाक अथवा जुगी जाति से संबंधित है, वह किसी प्रकार न हिंदू, न मुसलमान भाव से सम्मिलित होकर आधुनिक युग तक चली आ रही है, जिसमें जन्म लेने के कारण कबीर के मानसिक धरातल का भी वैसा ही निर्माण हुआ था। इस प्रकार द्विवेदी जी का यह विवेचन कबीर की मानसिक भूमिका को हृदयंगम कराने के लिए निश्चय ही एक प्रकार से कुंजी का काम देता है, जिसके आधार पर कबीर-विषयक हमारी अनेक उलझनों का समाधान सहज-भाव से हो जाता है।

द्विवेदी जी ने कबीरदास पर योगमत का प्रभाव निर्दिष्ट करते हुए 'अवधूत' शब्द का तात्विक और व्यावहारिक विश्लेषण भी किया है। वे 'साधारण योगी' और 'अवधूत' में अंतर मानते हैं। उनके मत से कबीर का 'अवधूत' निश्चय ही विशिष्ट श्रेणी का है। उन्होंने नाथपंथियों के सिद्धांत और उनका कबीर के मत पर पड़नेवाला प्रभाव जिस अनुशीलन और तत्व ग्राहिणी बुद्धि से व्यक्त किया है, वह हिंदी-साहित्य में अपूर्व है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसी प्रकार हठयोगी की साधना, निरंजन कौन है, योगपरक रूपक तथा उलटबांसियां, ब्रह्म और मांया, निर्गुण राम, बाह्याचार आदि पर भी अनेक विचार मनन करने योग्य है। भारतीय धर्म-साधना में कबीर का स्थान निर्धारित करते हुए उन्होंने उनके व्यक्तित्व का जो विश्लेषण किया है, वह हमारी अनेक प्रकार की कबीर-विषयक शंकाओं का समाधान करने के लिए पर्याप्त है।

टिप्पणी

5.6.5 आचार्य शुक्ल से साम्य व वैषम्य

आचार्य हजारी प्रसाद जी में शोधप्रियता के साथ-साथ कारयित्री प्रतिभा भी है किंतु 'शांति निकेतन' के अधिवास और मानसिक संस्थान के गांभीर्य ने उन्हें जो सूझ-बूझ और ग्राहिका-शक्ति प्रदान की है, वैसी आधुनिक हिंदी साहित्य समालोचना में किसी अन्य के पास है भी या नहीं, यह एक विचारणीय विषय है। वस्तुत: द्विवेदी जी की आधुनिक समालोचनाएं केवल पिष्ट-पेषण न होकर एक मौलिक-जीवन दृष्टि से अवश्य अनुप्राणित है, जिनमें उनके गंभीर चिंतन और गवेषणापूर्ण अध्ययन के सूत्र सर्वत्र विकीर्ण मिलते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने संपूर्ण लेखन में 'चिन्मुख मानवतावादी' हैं। उनकी दृष्टि में मूलसत्ता शक्ति समवेत चेतन है। आचार्य शुक्ल की भांति आचार्य द्विवेदी किसी भावी निर्णय की प्रतीक्षा में रुके हुए नहीं हैं। शुक्ल जी 'विश्व प्रपंच' की भूमिका में कहते हैं कि 'शक्ति' का रूपांतर जगत है– पदार्थ– पर वह 'शक्ति' तत्वत: जड़ है या चेतन यह भविष्य के निर्णय पर निर्भर करता है। शुक्ल जी 'इतिहास' में आत्म-निर्णय का हस्तक्षेप भी करते जाते हैं जो वस्तुनिष्ठता में बाधक है।

आचार्य द्विवेदी की विश्व-दृष्टि निर्भ्रांत रूप से 'शक्ति समवेत चैतन्यवादी' है। उसमें निहित संपूर्ण संभावनाएं अनुरूप कार्यकारण भाव प्राप्त करने पर विकास प्राप्त करती है। उनकी दृष्टि में 'इतिहास' आपातत: 'शव' की ही साधना है–पर शव-साधना बड़ी सावधानी से हो, आंतरिक चिंताधारा और बाह्य परिस्थितियां–दोनों के सहयोगी प्रभाव में हों–अन्यथा वह साधक को ही सिद्ध कर देगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का पक्ष है कि हिंदी का सच्चा साहित्य 'भक्तिकाल' से आरंभ होता है। आदिकाल में जो प्राणधारा है वह अध्यात्म की ही है। इसलिए उनका पक्ष है कि भारत में यदि मुसलमान न भी आए होते तो हिंदी साहित्य का इतिहास बारह आने वही होता जो है–चार आना प्रभाव परिस्थितियों का भी है। वस्तुत: इसी भिन्न दृष्टि वाले प्रस्थान में इतिहास लेखन एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है–वह सहकारी लेखन से ही संभव है।

5.6.6 सौंदर्य व संस्कृति बोध

द्विवेदी जी सौंदर्य को सामंजस्य के रूप में रेखांकित करना चाहते हैं। वे अपनी बात को समझाने के लिए मानते हैं कि शक्तित्रिक् (इच्छा, ज्ञान और क्रिया) के सहज योग से विशुद्ध चैतन्य की गोचर जगत के रूप में अभिव्यक्ति हो रही है, संसार का समस्त आकर्षण, उल्लास, लालित्य और सौंदर्य इसी चित् की स्वातंत्र्यात्मा इच्छाशक्ति के अनुकूल स्पंदन का नाम है। जहां विपरीत है, वहां इस मूल इच्छात्मक छंदोधारा का प्रातिकूल्य है। द्विवेदी जी मानते हैं कि पश्चिम के पंडितों ने व्यक्तिचित्त की इच्छा को सौंदर्य कहा है, जो सौंदर्य को व्यक्ति सापेक्ष तत्व की खिड़कियों में खड़ा कर अव्यवस्था और तर्क-वितर्क का कारण बनता है। अत: देश-काल-सापेक्ष और परंपरा-स्वीकृत जनवर्ग विशेष के समष्टिचित्त की इच्छा को, सौंदर्य मानने के लिए विवश होना पड़ता है। द्विवेदी जी की दृष्टि में, 'कालिदास ने भी व्यक्तिचित्त की इच्छा को ही सौंदर्य माना, परंतु उनकी व्यक्ति-इच्छा समष्टिव्यापिनी इच्छा का ही प्रतिरूप है, विशिष्ट रूप है।' समष्टि-इच्छा विश्वव्यापिनी मंगलेच्छा के अनुकूल होने पर ही व्यक्तिगत इच्छा सार्थक होती है। व्यक्तिगत इच्छा उसके प्रतिकूल जाकर कुत्सित हो जाती है। समष्टि-इच्छा चेतन धर्म है–जो बात चेतन धर्म के अनुकूल है, वही सुंदर है। समष्टि-चेतना

टिप्पणी

सर्जनात्मक है, सिसृक्षा है, व्यक्तिगत इच्छा उसके अनुकूल रहकर ही चरितार्थ होती है। जिस इच्छा में अज्ञान है, मोह है, दूसरों को दुखी, उदास करने की वृत्ति है, वह पाप इच्छा है। जड़त्व से अभिभूत होती है। सौंदर्य उसमें नहीं रहता। कालिदास की लालित्य योजना के संदर्भ में 'सौंदर्य' की अपनी अवधारणा द्विवेदी जी ने स्पष्ट की है। व्यक्ति जितने अंश में विरोधी हैं, वह जड़ता का प्रकाश है और जितने में सामंजस्य है–वह चेतना की अभिव्यक्ति है। फलत: सामंजस्य का यही सामंजस्य सौंदर्य है–असामंजस्य असौंदर्य। समष्टि या समाज का मेरुदंड यही सामंजस्य है, इसके अभाव में वह टूटने लगता है, जड़ता हावी हो जाती है, चेतन की अभिव्यक्ति पर। व्यष्टि-व्यष्टि–खंड-खंड के भीतर व्याप्त अखंड मनुष्यता ही आस्वाद गोचर होकर रस रूप में प्रतीत होती है। द्विवेदी जी इस दृष्टि से साहित्य की सर्जना और मंथना में प्रवृत्त होते हैं। ये चेतना की जययात्रा के रूप में सब कुछ देखते हैं और मनुष्यता को ही सर्वोच्च सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में मानते हैं।

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी कहते हैं कि–द्विवेदी जी स्वयं कहते हैं कि अतीत के शव को यदि ठीक ढंग से साधा जाए तो यह हमारी प्रगति में साधक बन जाता है और साधना में कहीं कचाई रह जाए तो विक्षुब्ध शव हमें ही हड़प जाए। महाशक्ति शव के वक्षस पर कलात्मक नर्तन-सर्जन की सारी संभावनाएं बिखेरती रहती है। बात यह है कि द्विवेदी जी प्राचीन भारतीय साहित्य के अगाध पंडित हैं, अतीत का साक्षात्कार उसी के माध्यम से करते हैं। सवाल यह है कि इस साक्षात्कृत 'अतीत' के 'शव' का वह करें क्या? उन्हें विश्वास है कि उस 'अतीत' के 'शव' की साधना ढंग से की जाए, तो वह वर्तमान और भविष्य को अभीष्ट दिशा में परिवर्तित कर सकती है। वर्तमान की विकृति को अनुध्यात सुरूपता में बदलने की तड़पन प्रत्येक सर्जक को होती है और इस परिवर्तन के लिए साधना करनी पड़ती है। द्विवेदी जी अतीत की साधना करते हैं। इतिहास देवता की आराधना करते हैं। वे इस आराधना में महाकवि रवीन्द्र की आधुनिक दृष्टि का उपयोग करते हैं–वैसे 'दृष्टि' स्रष्टा की अपनी होती है। द्विवेदी जी भी उनकी ज्ञान-दृष्टि से अपनी ज्ञान-दृष्टि, सर्जक-दृष्टि को बल देते हैं। रवीन्द्र की सर्जक चेतना मध्यकालीन वैष्णव चेतना का ही आधुनिकीकरण है–द्विवेदी जी में भी कबीर और तुलसी के माध्यम से वह जागरूक हैं–इसीलिए सेवाभाव में मानवता की चरितार्थता मानने वाले प्रेमचंद उन्हें सबसे अधिक नजदीक लगते हैं। द्विवेदी जी की हिंदी साहित्य के 'ये ढाई अक्षर' (कबीर और तुलसी पूरे दो और प्रेमचंद आधा) हृदयग्राही लगते हैं–मानवता के पक्षधर हैं ये। इस मध्यकालीन मानवी वैष्णवी चेतना का आधुनिकीकरण ही शव साधना है।

'अनामदास का पोथा' में द्विवेदी जी कहते हैं–"तुम्हारा स्वभाव प्रेम है। उसके माध्यम से तुम सत्य का साक्षात्कार कर सकते हो–यहां साध्य ही जब साधक का आत्मदान पाकर स्वयं साधन बन जाता है–तभी 'सत्य' पकड़ में आता है।" इस प्रकार द्विवेदी जी अपने चिंतन को आधुनिक बनाते हैं और चिन्मुखी मानवतावाद की पताका फहराते हैं। साहित्य को भी वे इसी मनुष्यता की उपलब्धि में सहायक मानते हैं। वे कहते हैं–मनुष्य को देवता बनाना ही काव्य का सबसे बड़ा उद्देश्य है। मनुष्य को उसकी स्वार्थबुद्धि से ऊपर उठाना, उसको इहलोक की संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर सत्वगुण में प्रतिष्ठित करना, परदुखकातर और संवेदनशील बनाना काव्य का काम है। साहित्य के माध्यम से उनका सर्जक इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है, चिंतन के इसी महारस के पान से उनका साधक अवधूत सर्जक, झुलसती लू में भी शिरीष

टिप्पणी

की तरह फूलता रहा, देवदार की तरह उन्नत आकाश का स्पर्श करता रहा। वह कहता रहा–सर्वत्र आत्मानुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण है दूसरों के सुख के लिए अपने आपको गलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर दे देना। इससे बड़ा तप मुझे मालूम नहीं–द्विवेदी जी साहित्य के सर्जन के माध्यम से यही तप करते हैं।

द्विवेदी जी शोधी और पंडित रहे हैं। भारतीय प्राचीन साहित्य और दर्शन के अध्येता रहे हैं। आगमों के विभिन्न रूपों का परिशीलन किया है और जिसे 'फ्री थिंकिंग'–मुक्त चिंतन कहा जाता है–उनके निबंधकार रूप में वह है ही। इतिहास की सामग्री तो लेते हैं पर उसकी प्रामाणिकता सब समय असंदिग्ध नहीं रह पाती। उससे उदासीन होकर भी बंधे रहने का रहस्य यह है कि परंपरा में–अतीत में–इतिहास की शव-साधना में उनकी गंभीर आस्था है। इस मायने में वे राष्ट्रीय होकर भी अंतर्राष्ट्रीय है। कारण, उनका ध्यान उन मूल्यों पर ज्यादा केंद्रित है जो विश्व समाज के लिए उपादेय है। समाज और राष्ट्र की समस्याओं से इनकी सर्जक चेतना सर्वत्र आक्रांत लक्षित होती है पर वे उससे आगे भी बढ़ते हैं।

द्विवेदी जी के उपन्यास ऐतिहासिक कम सांस्कृतिक ज्यादा है। भारतीय संस्कृति की देन में उन्होंने कहा है कि संस्कृति का संबंध किसी व्यक्ति विशेष, देशविदेश या कालविशेष से नहीं है–इसके विपरीत वह सार्वभौम, सार्वकालिक और सार्वजनीन है। उनका अभिप्राय यह है कि वह ऐसा तत्व है जिससे मानव उस भूमि का अनुभव करता है जो अविभाज्य, एक और अखंड है। जो विभक्त होने का, बंटा हुआ होने का अनुभव कराए, वह विकृति और जिससे एक और अखंड होने का अनुभव हो वह संस्कृति। इसीलिए गीतकार कहता है–

"अविभक्तं विभक्तेषु यः पश्यति स पश्यति"

उसी का देखना सही देखना है जो विभक्त में अविभक्त को देखता है। ऐसा वही देखता है जिसकी चेतना निर्मल हो। कारण, जिसकी चेतना की आंख में मल का पीलिया होगा–वह सत्य को नहीं देख पाएगा। उनका कहना है कि 'संस्कृति' तत्वतः न भारतीय होती है और न अन्यदेशीय। इसी प्रकार न तो 'प्राचीन' होती है और न ही 'आधुनिक' या 'मध्यकालीन'–'इनकी-उनकी' होने का तो सवाल ही नहीं उठता। उसका कारण यह है कि 'संस्कृति' में यदि कोई विशेषण जुड़ गया तो उसका स्वरूप परिच्छिन्न अर्थात 'विभक्त' हो जाएगा। विशेष्य (संस्कृति) की अपरिच्छिन्नता समाप्त हो जाएगी–वह सखंड हो जाएगी। अपनी अखंडता में यदि हम उसे मानव मात्र में विद्यमान 'मानवता' ही मान लें तो मान सकते हैं। पर सवाल शेष यह रह जाता है–व्यवहार प्रचलित विशिष्ट प्रयोग का या सविशेषण प्रयोग का। प्रयोग तो 'भारतीय संस्कृति' का अर्थ होता है–फिर इसका अर्थ क्या किया जाए? द्विवेदी जी का पक्ष यह है कि 'भारतीय संस्कृति' का अर्थ है : भारतीय पद्धति से प्राप्त की गई संस्कृति। मतलब यह विशिष्ट प्रयोग मध्यमपदलोपी समास है। इसमें 'पद्धति' शब्द गुप्त है। 'मानवता' को पाने का मतलब है उसका चरितार्थ होना। वह भूमा है–उससे बड़ी कोई चीज नहीं है। पर हर देश, हर काल में हर व्यक्ति या जाति उसे पाने की पद्धति अपनी प्रकृति के अनुरूप तय करते हैं। इस संदर्भ में भारतीयों की भी एक पद्धति है–वह मानवता को चरितार्थ करने के लिए उन्मुखी इच्छा स्वातंत्र्य का वरण करते हैं–अनुरूप मार्ग पकड़ते हैं–तप और साधना करती है–तीनों ऋणों–पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देवऋण अदा कर 'अल्प' से 'भूमा' की ओर जाते हैं। मतलब समाज से जुड़कर 'संस्कृति' का साक्षात्कार करते हैं। समाज से आत्मा का सातत्य कैसे बना

टिप्पणी

रहे, इसके लिए वे लोग ब्रह्मचर्य की दृढ़ शिला पर प्रतिष्ठित रहकर गृहस्थ बनते हैं और 'आत्मा वै जायते पुत्रः' से पुत्र रूप में जुड़कर पितृ ऋण से मुक्ति पाते हैं। पुनः जिस अर्जित ज्ञान से उन्होंने स्वयं व्यवहार यात्रा की है, पुत्र को ज्ञानदान देकर उसे ऋषि ऋण से भी मुक्ति दिलानी है। इतना ही नहीं, उनकी शरीर यात्रा प्रकृति से कुछ पाकर हुई है–अतः दान कर दानशीलता पैदाकर उस देवऋण से भी मुक्त होना है। संतति पैदाकर, ज्ञान संपन्न कर और फिर दानवृत्ति से मंडितकर सेवावृत्ति से विभूषित कर, उसे समाज की धारा में विसर्जित करना है। इस पद्धति से चलकर वह 'अल्प' से 'भूमा' की ओर बढ़ता है, खंड से अखंड होता है। उन्होंने अन्यत्र भी कहा है–संस्कृति उच्चतम चिंतन का मूर्त रूप है। चिंतन मूर्त होता है आचार में और उच्चतम होता है भूमा की ओर ले जाने वाली पद्धति से जुड़कर। 'अनामदास का पोथा' में भी उन्होंने कहा है–"जिजीविषा है तो जीवन रहेगा, जीवन रहेगा तो अनंत संभावनाएं भी रहेंगी। सब चलता रहेगा। यही प्रकृति है। इसे सुनियंत्रित रूप से चलाने का प्रयास शुभ है। वही संस्कृति है। प्रकृति को सुनियंत्रित रूप से चलाने का ही नाम संस्कृति है।"

सर्वत्र सौंदर्य देखना सौंदर्य साधना की चरम परिणति है। 'भारतीय संस्कृति और साधना' में कविराज गोपीनाथ का कथन है–"एक सौंदर्य ही जब नाना सौंदर्य है एवं वह मौलिक नाना सौंदर्य ही जब जगत में भिन्न-भिन्न सौंदर्यों के रूप में प्रकाशमान है तब जगत सौंदर्य सार है–यह जाना जा सकता है। सभी वस्तुएं सुंदर हैं, सभी रसमय हैं किंतु चित्त में मल और चांचल्य रहने से देखने के समय वह अनुभूत नहीं होता है। रस तब सुख और दुख के रूप में तथा सौंदर्य और कुत्सित के रूप में विभक्त ही दिखाई पड़ता है।" हम नियम के संसार में उतर आते हैं। प्रतिभा या प्रातिभ चेतना के जगत में रहते हुए भी व्यक्ति 'नियतिकृत नियमरहित' लोक का प्राणी हो जाता है।

काव्य की अनेकानेक समस्याओं पर भी द्विवेदी जी ने प्रकाश डाला है। उन्होंने भट्टिनी से कहलवाया है–"तुम्हीं (कवि) ऐसे हो जो नररत्न से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणा चित्त को हृदयंगम करा सकते हो। मनुष्य लोभवश, मोहवश, द्वेषवश पशुता की ओर बढ़ता जा रहा है। तुम (कवि) इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।" बाणभट्ट के माध्यम से द्विवेदी जी काव्य के प्रयोजन पर भी विचार कर रहे हैं–अतीत के माध्यम से आज के संदर्भ में। आज के मानव की दवा काव्य के ही पास है। बाणभट्ट के शब्दों में कवि वही है, जिसकी प्रतिभा का आकुंठ विलास नरलोक से किन्नर-लोक तक फैले हुए एक ही रागात्मक हृदय का परिचय पा सके–तभी तो वह मनुष्य की निम्नतर वृत्तियों को सात्विक बना सकेगा।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की समीक्षा दृष्टि मानवतावाद से ओत-प्रोत हैं तथा परवर्ती आलोचकों को श्रेष्ठ समीक्षा के उत्तम गुणों से अवगत कराती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

33. आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों एवं इतिहासकारों में किसका नाम अग्रगण्य है?
34. भरत के पूर्ववर्ती काल में 'रस' शब्द का अर्थ क्या समझा जाता था?
35. आचार्य द्विवेदी के अनुसार एक व्यक्ति के चित्त में स्थित अर्थ को दूसरे के चित्त में प्रवेश कराके शब्द क्या बनता है?
36. द्विवेदी जी के अनुसार साहित्य निर्माण का लक्ष्य कैसा होना चाहिए?
37. शक्तिमिक् क्या है?
38. द्विवेदी जी की दृष्टि में काव्य का सबसे बड़ा उद्देश्य क्या है?
39. द्विवेदी जी के 'ये ढाई अक्षर' से क्या अभिप्राय है?
40. हजारी प्रसाद द्विवेदी की समीक्षा दृष्टि कैसी है?

5.7 डॉ. रामविलास शर्मा

डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी की प्रगतिवादी समीक्षा में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। एक रचनाकार के रूप में हिंदी संसार से उनका संबंध प्रथमतः एक कवि के रूप में स्थापित हुआ था। 1934 में उन्होंने एक उपन्यास भी लिखा था 'चार दिन'। उपन्यासकार के रूप में तो वे प्रसिद्ध न हुए, लेकिन उनके कवि-व्यक्तित्व ने हिंदी जगत में यथेष्ट सम्मान प्राप्त किया।

टिप्पणी

1943 में अज्ञेय जी द्वारा संपादित 'तार-सप्तक' नामक काव्य संकलन के एक कवि के रूप में भी उन्हें प्रसिद्धि मिली और 'रूप-तरंग' के नाम से अपनी कविताओं का एक संकलन भी उन्होंने साहित्य जगत को भेंट किया। लेकिन प्रगतिशील आंदोलन के विकास तथा उसमें उनके सक्रिय सहयोग के साथ-साथ उनका कवि व्यक्तित्व पीछे छूटता गया और अंततः एक समीक्षक के रूप में ही वे विशेष समादृत हुए। अपने व्यक्तित्व के इस उभय पक्षी स्वरूप का विश्लेषण करते हुए संस्कृति एवं साहित्य की भूमिका में वे कहते हैं–"मैंने अपना साहित्यिक जीवन कविता लिखने से आरंभ किया था। कहा जाता है कि असफल कवि सफल समालोचक बन जाता है। यह संशयात्मक है कि कवि रूप में बिल्कुल असफल रहा हूं! इसलिए आलोचना की सफलता भी मेरे निकट संशयात्मक ही है।" लेकिन इस 'संशयात्मकता' का भी कोई आधार नहीं है। आज हिंदी संसार उन्हें प्रगतिवादी समीक्षा-धारा के प्रतिनिधि समीक्षक के रूप में स्वीकार कर चुका है, भले ही यह स्वीकृति एक वाद-विशेष की सीमा में उन्हें आबद्ध करके ही क्यों न दी गई हो?

हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में उनका प्रवेश, स्वच्छंदतावादी समीक्षक के रूप में हुआ। 1934-35 के बीच 'शैली और रवींद्रनाथ' तथा 'निराला की कविता' शीर्षक निबंधों में उनकी मार्क्सवादी तथा जनवादी दृष्टि कहीं भी स्पष्ट नहीं है। उनमें काव्य तथा कला के 'नवीन सौंदर्य' तथा 'नये स्वर परिधान' का ही प्रमुख रूप से विवेचन किया गया है। उस समय निराला के काव्य सौंदर्य का विवेचन करते हुए उन्होंने यह भी कहा था–"कविता हृदय की भाषा है, उसको समझने के लिए अधिक आवश्यकता भावुकता की है, न कि फिलॉसफी की।" लेकिन 1936 के बाद, प्रगतिशील आंदोलन के विकास के साथ डॉ. शर्मा की समीक्षा नये आदर्शों से प्रभावित तथा विकसित हुई। उस समय से लेकर अब तक समीक्षा-विषयक उनकी अनेक कृतियां प्रकाश में आ चुकी हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं–

(क) संस्कृति और साहित्य–1949 (1935 से 1947 तक के निबंधों का संग्रह)

(ख) प्रगति और परंपरा

(ग) प्रेमचंद

(घ) प्रेमचंद और उनका युग–1952

(ङ) भारतेंदु-युग

(च) भारतेंदु हरिश्चंद्र–1953

(छ) प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं–1954

(ज) निराला–1955

(झ) आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना–1955

(ञ) स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य–1956

(ट) लोक जीवन और साहित्य

(ठ) आस्था और सौंदर्य–1962

इन सभी कृतियों में डॉ. शर्मा की मार्क्सवादी तथा जनवादी दृष्टि की प्रधानता है, बल्कि कह सकते हैं कि वह इनमें उत्तरोत्तर विकसित हुई है। प्रारंभिक कृतियों में जहां हिंदी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों, कवियों, लेखकों तथा समीक्षकों की व्यावहारिक समीक्षा करने का प्रयास

टिप्पणी

किया गया है, वहां अंतिम कृतियों में, विशेषतया–'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' तथा 'आस्था और सौंदर्य' में सैद्धांतिक समीक्षा का पर्याप्त प्रौढ़ तथा विकसित रूप सामने आया है।

5.7.1 सैद्धांतिक समीक्षा

वस्तु और रूप किसी भी रचना के दो प्रमुख अंग होते हैं–1. वस्तु पक्ष और 2. रूप पक्ष। काव्य कृति में वस्तु पक्ष के अंतर्गत अनुभूति, भाव और विचार आदि की परिगणना होती है। वस्तु जगत की यथार्थता जो काव्य के रूप में परिणत होती है, इसी के अंतर्गत समाहित है। इसे काव्य का अंतरंग पक्ष भी कहा जाता है। रूप पक्ष जो काव्य का बहिरंग है, के अंतर्गत भाषा और शिल्प आदि परिगणित हैं। काव्य की लय, छंद आदि उपकरण इसी से संबद्ध हैं। रूपवादी विचारक सामान्यतः रचना में इन्हीं तत्वों की प्रधानता स्वीकार करते हैं। ऐसे विचारकों को कलावादी अथवा सौंदर्यवादी भी कहा गया है। वस्तुवादी विचारक इसके विपरीत वस्तु तत्व को ही प्रमुख मानते हैं। काव्य में नियोजित वस्तु जगत की यथार्थता पर इनकी दृष्टि प्रमुख रूप से केंद्रित रहती है। ये दोनों दृष्टियां स्वयं में एकांगी है। ये वस्तु और रूप को संयुक्त रूप से आवश्यक न मानकर पृथक रूप में आवश्यक मानते हैं।

डॉ. शर्मा का दृष्टिकोण वस्तुवादी होते हुए भी एकांगी नहीं है। यद्यपि उन्होंने प्रगतिशील साहित्य की समस्याओं में यह स्वीकार किया है कि 'कला और विषयवस्तु दोनों ही समान रूप से साहित्य रचना के लिए निर्णायक महत्व की नहीं है। निर्णायक भूमिका हमेशा विषयवस्तु की होती है। जिसके पास उच्च कोटि के विचार नहीं है, भावावेश नहीं है, यथार्थ का गहरा ज्ञान नहीं है, वह सिर्फ कला को निखारने की कोशिश करके उत्कृष्ट साहित्य नहीं रच सकता।' फिर भी वे रूप पक्ष की ओर से सर्वथा उदासीन नहीं है बल्कि वस्तु और रूप की समन्वित स्थिति को ही वे कलाकृति की श्रेष्ठता का मानदंड स्वीकार करते हैं। उनके शब्दों में "कला के क्षेत्र में 'गिरा अरथ जल बीचि सम' की तरह रूप और विषयवस्तु" कहियत भिन्न न भिन्न है। ऐसी कृतियां जिनमें स्थूल रूप से वस्तुजगत की यथार्थता का ही नियोजन हो, उनकी आलोचना की पात्र बनी हैं। इस संबंध में उनका यह स्पष्ट मत है कि "प्रगतिशील साहित्य रूप-सौष्ठव का तिरस्कार करके दो कदम आगे नहीं चल सकता। यह सौष्ठव कला को प्रभावशाली बनाने में बहुत बड़ा कारण है। काव्य कौशल की ओर ध्यान न देकर रचनाकार अपनी कृति को असमर्थ ही बनाएगा।" लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि रचना में इस पक्ष की ही विशिष्टता उन्हें तभी मान्य है जबकि वह वस्तु रूप से संबद्ध हो। रचना के रूपात्मक सौंदर्य का सबसे बड़ा आधार वस्तु जगत की यथार्थता ही होती है। उनका इस संबंध में यह कथन उल्लेखनीय है– "कला का यह रूप हवा में नहीं निखरता। फूल के रूप रंग के लिए जिस तरह धरती की आवश्यकता होती है, उसी तरह किसी भी कृति के कलात्मक सौंदर्य का निखार उसकी विषय-वस्तु की सामाजिकता से जुड़ा हुआ है। जब कोई रचनाकार इस विषयवस्तु के सामाजिक महत्व के प्रति उदासीन होकर कला के सौंदर्य की ओर ही दौड़ता है, तो बहुधा उसे निराश होना पड़ता है।"

5.7.2 रूप, भावना और विचारों के समन्वय से कला-सृष्टि

डॉ. शर्मा लोक जीवन और साहित्य में कहते हैं "साहित्य में मनुष्य की बाह्य इंद्रियां, हृदय और मस्तिष्क तीनों का संबंध होता है। रूप, भावना तथा विचार की एकता से कला सृष्टि

टिप्पणी

संभव है।" जहां तक उनके द्वारा प्रस्तुत इंद्रिय बोध की प्राथमिकता का प्रश्न है तो उनका यह दृष्टिकोण मार्क्स की उस विचारधारा का अनुसरण है, जिनमें प्रत्येक शास्त्र के अध्ययन के लिए इंद्रिय-बोध को प्रस्थान बिंदु माना गया है। कला-सृष्टि का आधार उनके मत से मनुष्य का इंद्रिय-बोध है। स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य में वे स्वयं लिखते हैं कि "मनुष्य की चेतना में सबसे व्यापक स्तर इंद्रिय बोध का है। उसके विचार बदल जाते हैं, भाव बदल जाते हैं लेकिन उसका इंद्रिय बोध अपेक्षाकृत स्थायी होता है। साहित्य का प्रभाव दर्शन और विज्ञान से अधिक व्यापक इसीलिए होता है कि उसका संबंध इंद्रिय बोध से है। साहित्य का माध्यम ही रूपमय है। कल्पना के द्वारा साहित्य श्रोता या पाठक के मन में भिन्न-भिन्न रूपों की सृष्टि करता है। इंद्रिय बोध के अभाव में शुद्ध कल्पना असंभव होती है।" उनके मत से इंद्रिय बोध सामाजिक परिस्थितियों का सीधा प्रतिबिंब नहीं है। उनके शब्दों में "मनुष्य की आत्मगत ऐंद्रियता उसके वस्तुगत सामाजिक जीवन से ही विकसित और समृद्ध होती है लेकिन यह ऐंद्रियता उसके वस्तुगत जीवन का सीधा प्रतिबिंब नहीं है।"

इंद्रिय-बोध के साथ ही मनुष्य की भावसत्ता का भी विकास होता है। बाह्य जगत का इंद्रिय-बोध और मनुष्य के मन का भाव-जगत एक ही यथार्थ के दो पक्ष हैं जो एक-दूसरे से निरपेक्ष न होकर परंपरा संग्रथित हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार, "मनुष्य का भाव-जगत उतना व्यापक और सार्वजनीन नहीं है जितना उसका इंद्रिय बोध, पर उसके विचार-जगत से ही वह अधिक व्यापक है। साहित्य का कार्य भावों की पुष्टि करना है।" उन्होंने कला तथा साहित्य की सरसता का मूल आधार भाव को ही माना है। उनके शब्दों में 'कला और साहित्य की सरसता' का सबसे बड़ा कारण उनका यह भावना-मूलक स्वभाव है।

काव्य तथा कला-सृष्टि का तीसरा उपादान विचार-जगत है। मनुष्य के भाव-जगत की अपेक्षा उसके धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक विचारों में अधिक परिवर्तन होता है। डॉ. शर्मा के शब्दों में 'साहित्य के सभी तत्व समान रूप से परिवर्तनशील नहीं है, इंद्रिय-बोध की अपेक्षा भाव, और भावों की अपेक्षा विचार अधिक परिवर्तनशील हैं। जो लोग साहित्य में विचारों के महत्व की परख नहीं कर पाते वे साहित्य का प्रभाव कम कर देते हैं।'

वे कहते हैं कि 'श्रेष्ठ विचारों के न होने पर केवल हृदय सिन्धु से काव्य के मुक्तामणि निकालना असंभव है।'

5.7.3 काव्य का माध्यम

काव्य का माध्यम शब्द है। हीगल के अनुसार, शब्द एक मानसिक सृष्टि है और उसमें भौतिकता का पर्यवसान हो जाता है। अत: वह अतींद्रिय होता है। डॉ. शर्मा ने हीगल के इस मत का खंडन करते हुए यह स्थापना दी है कि समस्त कलाओं, यहां तक कि काव्य कला का माध्यम भी भौतिक वर्ण से मुक्त नहीं रहता। उनके शब्दों में 'कला के माध्यम की ऐंद्रियता देशकाल की सीमाओं से बंधा हुआ वह आकाश है जिसमें मनुष्य के भाव विहंग उड़ान भरते हैं। यह ऐंद्रियता उस भौतिक जगत का प्रतीक है जिसके बाहर विचार तत्व अथवा विचारधारा किसी का भी अस्तित्व नहीं है।' अपनी पुस्तक 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' में उन्होंने पंत तथा तुलसीदास जी की कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि शब्दों की ध्वनि के द्वारा उतनी ही भाव व्यंजना संभव है जितनी कि उनके अर्थ से प्रकट होती है। अपने विवेचन क्रम में फ्रांसीसी कवि बोदलेयर को उद्धृत करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है "शब्दों का चयन कर भिन्न रंगों वाले चित्र खींचे जा सकते हैं, मूर्त अर्थ द्वारा कहकर नहीं वरन ध्वनि से इंगित होकर शब्दों की ध्वनि में रेखाएं भी होती हैं।"

हिंदी के प्रमुख आलोचक

टिप्पणी

5.7.4 सौंदर्य की सत्ता

भाववादियों के अनुसार सौंदर्य की स्थिति रचयिता के मन में अथवा उसकी आत्मा में है। जबकि वस्तुवादी विचारक सौंदर्य की स्थिति वस्तुजगत की यथार्थता में मानते हैं। उनके अनुसार रचयिता वस्तु जगत के सौंदर्य को ही कलाकृति में नियोजित करता है।

डॉ. शर्मा ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है 'प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण का नाम सौंदर्य है।' इस स्थापना पर यह आपत्ति की जा सकती है कि 'कला में कुरूप और असुंदर को भी स्थान मिलता है। साहित्य में वीभत्स का भी चित्रण होता है और उसे सुंदर कैसे कहा जा सकता है।' इस आपत्ति का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा है 'कला में कुरूप और असुंदर विवादी स्वरों के समान हैं जो राग के रूप को निखार देते हैं। वीभत्स का चित्रण देख कर हम उससे प्रेम नहीं करने लगते, हम उस कला से प्रेम करते हैं जो हमें वीभत्स से घृणा करना सिखाती है।... जिसे हम कुरूप, असुंदर और वीभत्स कहते हैं, कला में उसकी परिणति सौंदर्य में होती है।'

भाववादी विचारकों के अनुसार सौंदर्य आत्मगत है जबकि वस्तुवादी विचारकों ने उसे वस्तुगत यथार्थता से संबद्ध माना है। चूंकि इंद्रियों के माध्यम से इस जगत की यथार्थता का बोध होता है। अत: इंद्रियों के माध्यम से जिस सौंदर्य की प्रतीति होती है उसकी सत्ता वस्तुगत है। डॉ. शर्मा ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है "इंद्रियों से जिस सौंदर्य की अनुभूति होती है, बाह्य जगत में उसकी वस्तुगत सत्ता है।"

साहित्य-सृजन के हेतु के रूप में जिन तत्वों इंद्रिय-बोध, भाव तथा विचार के समन्वय पर उन्होंने बल दिया है, वे भी उनके अनुसार समाज-सापेक्ष हैं। इंद्रियों द्वारा जिस आनन्द का बोध होता है, उसकी वस्तुगत सत्ता बाह्य जगत में ही निहित रहती है। भाव-जगत का आधार भी इसी प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की वे अनुभूतियां ही हैं जिनका विकास सामाजिक जीवन के धरातल पर ही संभव है। सामाजिक जीवन की परिस्थितियां मनुष्य के विचार जगत में परिवर्तन ला देती हैं। अत: रूप, भावना और विचार की अन्विति जिस कला को जन्म देती है उसका समाज निरपेक्ष होना किसी प्रकार संभव नहीं है। इस संबंध में अपना मत स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है "कलाकार जिस सौंदर्य की सृष्टि करता है वह समाज निरपेक्ष किसी व्यक्ति की कल्पना की उपज नहीं है, वरन सामाजिक जीवन और सामाजिक विकास से उसका घनिष्ठ संबंध होता है।"

काव्य और कला का सौंदर्य-स्रोत, सामाजिक जीवन ही है। समाज के भीतर जो जीर्ण और मरणशील तत्व हैं, जो जीवन और उदीयमान तत्व हैं, इनसे बाहर सौंदर्य की सत्ता नहीं। जो जीर्ण और मरणशील है उनके लिए सुंदरता मृत्यु में है, अन्याय और अत्याचार के फरेब को ढंकने में है, भविष्य से त्रस्त होने और क्षण में ही जीवन की साधें पूरी करने की हैं। जो जीवित और उदीयमान हैं, उनके लिए सुंदरता सत्य में है, मृत्यु को जीतने में है, अज्ञान, अत्याचार और अन्याय की दुनिया को दफनाने में है, सुख और शांति के उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ने में है। साहित्य उस मंजिल तक पहुंचने का शक्तिशाली साधन है।

टिप्पणी

5.7.5 रस संबंधी विवेचन

डॉ. शर्मा का रस-संबंधी विवेचन भी सौंदर्य-सापेक्ष है। सौंदर्य-दर्शन की परिणति उनके अनुसार रसानुभूति में होती है। इसका विवेचन करते हुए उन्होंने कहा "सौंदर्य-यानी सुंदर वस्तु-से हुई प्रेरणा (स्टिमुलस)। नारी नामक प्रेरणाकेंद्र पुरुष को चिरकाल से बाधित करता रहा है। नारी हुई 'कंडीशंड स्टीमुलस', पुरुष की रसानुभूति हुई 'कंडीशंड रिफ्लैक्स'। रस और सौंदर्य का यही मौलिक संबंध है।" उनके मत से सौंदर्य वस्तुत: कलाकृति का उत्कर्ष है और रस उस उत्कर्ष की सहृदयजन्य प्रतीति। भारतीय काव्य शास्त्र में रस-प्रतीति के संबंध में जो विभिन्न मत प्रस्तुत किये गए हैं उन्हें वे एक-दूसरे का विरोधी न मानकर पूरक के रूप में स्वीकार करते हैं। डॉ. शर्मा ने भी इस संबंध में कहा– "रस निष्पत्ति के सिलसिले में उत्पत्तिवाद, अनुमानवाद, भुक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद नाम से जो चार मत प्रचलित हैं, वे एक-दूसरे के विरोधी न होकर पूरक साबित हो सकते हैं।"

भारतीय काव्य शास्त्रियों ने आनंदानुभूति को काव्य अथवा कला का साध्य माना है। इसके विपरीत डॉ. शर्मा आनंदानुभूति को काव्य तथा कला का परम साध्य न मानकर साहित्यशास्त्र का प्रस्थान बिंदु स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि 'साहित्य से आनंद मिलता है, यह अनुभव सिद्ध बात है, लेकिन साहित्यशास्त्र यहां समाप्त नहीं होता बल्कि यहीं से उसका श्रीगणेश होता है। साहित्य से जिस आनंद की उपलब्धि होती है, उसकी सत्ता मानव कर्म में है और उसको प्रभावित करने में ही उसकी उपयोगिता सिद्ध होती है। सौंदर्य और उपयोगिता थोड़ी देर के लिए परस्पर विरोधी भले ही प्रतीत होते हों परंतु उनकी द्वंद्वात्मक एकता के अभाव में साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकती।' अत: 'साहित्य शास्त्र की उपयोगिता यह होगी कि वह साहित्य और जीवन के संबंध की वास्तविकता प्रकट कर दे, जनता के लिए अहितकर साहित्य और अहितकर साहित्यशास्त्र से भ्रम का पर्दा उठा दे', क्योंकि 'साहित्य जनता के लिए–यह हमारा जातीय सिद्धांत बन चुका है।'

5.7.6 साहित्यकार की भूमिका

डॉ. शर्मा के अनुसार 'यदि साहित्य समाज का दर्पण होता तो संसार को बदलने की बात न उठती। कवि का काम यथार्थ जीवन को प्रतिबिंबित करना ही होता तो वह प्रजापति का दर्जा न पाता। वास्तव में प्रजापति ने जो समाज बनाया है, उससे असंतुष्ट होकर नया समाज बनाना कवि का जन्मसिद्ध अधिकार है।' प्रगतिशीलता के धरातल पर कवि की यह प्रतिष्ठा ही उसे अनुकर्ता मात्र नहीं रहने देती। उसकी कृति सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब न होकर सामाजिक जीवन पर आधारित एक स्वतंत्र सौंदर्यमयी सृष्टि बनकर प्रस्तुत होती है। मात्र प्रतिबिंब ग्रहण करने में कवि का स्वतंत्र व्यक्तित्व कैसे उभर सकता है? डॉ. शर्मा के मतानुसार कवि का व्यक्तित्व पूरे वेग से तभी निखरता है जब वह समर्थ रूप से परिवर्तन चाहने वाली जनता के आगे कवि-पुरोहित की तरह बढ़ता है।

साहित्य सामाजिक जीवन में स्फूर्ति और प्रेरणा का संचार करता है। डॉ. शर्मा के शब्दों में "साहित्य का पांचजन्य समर भूमि में उदासीनता का राग नहीं सुनाता। वह मनुष्य को भाग्य के आसरे बैठने और पिंजड़े में पंख फड़फड़ाने की प्रेरणा नहीं देता। इसी तरह की प्रेरणा देने वालों के वह पंख कतर देता है।"

टिप्पणी

प्रत्येक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह सामाजिक यथार्थता को ग्रहण करते हुए जनशक्ति को चेतना की नई भूमिकाओं की ओर अग्रसर करे, सुख और जनकल्याण का प्रशस्त आधार प्रस्तुत करे। यही साहित्य का सामाजिक उपयोग होगा। वैयक्तिक तथा कल्पनात्मक साहित्य की भावधारा समाज को सुख और शांति का स्वप्न नहीं दे सकती क्योंकि "साहित्य की अमर सरिता भी आर्थिक और राजनीतिक उत्पीड़न के महापर्वत को काटकर प्रवाहित की जाती है। अपनी कुदाल फेंककर इस पर्वत की चट्टान के नीचे बैठा हुआ साहित्यकार कल्पना की आकाश गंगा से धरती के हृदय को सरस नहीं बना सकता।"

डॉ. शर्मा ने शिवदानसिंह चौहान की इस स्थापना का, कि कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है, इसी दृष्टि से खंडन किया है। कहा है कि 'अगर कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है तो साहित्य में प्रगतिशील या प्रतिक्रियावादी का भेद करना निरर्थक है।'

डॉ. शर्मा का कथन है "जो लोग कहते हैं साहित्य स्वभाव से प्रगतिशील रहता है, वे अप्रत्यक्ष रूप से यह मानकर चलते हैं कि साहित्य प्रतिक्रियावादी भी होता है। प्रगतिशील शब्द सापेक्ष अर्थ का बोधक है। कोई भी घटना-प्रवाह किसी की तुलना में ही प्रगतिशील होगा। इसीलिए निरपेक्ष अर्थ में प्रगतिशील शब्द का व्यवहार कर सकना मुमकिन नहीं है।"

डॉ. शर्मा के मत से 'न तो साहित्यकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है न आलोचक। वे प्रगतिशील तभी होते हैं जब वे जन साधारण का पक्ष लेते हैं।'

प्रगतिशील साहित्यकार के लिए दो चीजें आवश्यक हैं– समाज के परस्पर विरोधी संबंधों का चित्रण तथा विकासमान संभावना की कल्पनापरक अभिव्यक्ति। आज के युग का सत्य यह है कि एक तरफ जनता साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही है दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतें और उसके हिमायती उसे दबाने और बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस द्वंद्व में कलाकार किसी अद्वैत युग सत्य का सहारा न लेकर जनता या उसके विरोधियों का पक्ष लेता है इसलिए स्वभावत: प्रगतिशील होकर उस युग विशेष और समाज विशेष और जनता का पक्ष लेने पर ही उसे प्रगतिशील कहा जा सकता है।

5.7.7 मार्क्सवाद की परख

डॉ. शर्मा के शब्दों में "मार्क्सवाद सिखाता है कि संस्कृति किसी समाज की आर्थिक व्यवस्था का मानसिक प्रतिबिंब है। आर्थिक व्यवस्था अगर नींव है तो संस्कृति उसके ऊपर की इमारत है।"

फिर भी यह समझना कि समाज व्यवस्था के परिवर्तन के साथ ही सांस्कृतिक धरातल पर भी तत्कालिक परिवर्तन का आभास होने लगता है, एक भ्रम मात्र है।

डॉ. शर्मा के अनुसार, "मार्क्स ने जब यह कहा था कि आर्थिक व्यवस्था के आधार पर संस्कृति का महल बनता है तो इसका मतलब यह नहीं था कि पिछली संस्कृति में ग्रहण करने लायक कोई बात नहीं होती।" वस्तुत: नई संस्कृति तथा नवीन सामाजिक चेतना को समृद्ध करने में पूर्ववर्ती युगों की सांस्कृतिक चेतना का भी महत्वपूर्ण योग होता है। वे कहते हैं–

"नई संस्कृति और नई सामाजिक चेतना के भीतर नये साहित्यकार और लेखक का कर्त्तव्य होता है कि वे पुरानी संस्कृति के तत्व और रूपों को अपने भीतर समेट कर उन्हें अधिक पुष्ट और विकसित करें।" उनके अनुसार इस विषय में स्वयं मार्क्सवादियों ने भ्रम की

टिप्पणी

गुंजाइश नहीं रहने दी है। फिर भी अगर कोई यह दावा करे कि मार्क्सवाद प्राचीन संस्कृति का विरोधी है तो इसका कारण मार्क्सवाद का अज्ञान हो सकता है।

डॉ. रामविलास शर्मा की व्यावहारिक समीक्षा भी मूलतः मार्क्सवादी आदर्शों पर आधारित है। वे कवि, लेखक तथा समीक्षक ही उनके लिए प्रमुख रूप से विवेच्य हैं, जिनकी कृतियों में जनवादी तत्वों की प्रधानता रही है अथवा जिनके अंतर्गत स्वस्थ सामाजिक मूल्यों की स्थापना हो सकी है। इस दृष्टि से आधुनिक हिंदी साहित्य के अंतर्गत उन्हें निराला, प्रेमचंद और आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीत हुए।

5.7.8 मध्ययुगीन काव्यचिंतन

मध्ययुगीन साहित्य के प्रथम प्रमुख कवि थे कबीर। मनुष्यत्व की सामान्य भावना के आधार पर साधारण जनता में आत्म गौरव की प्रतिष्ठा, शर्मा के अनुसार उनकी महत्वपूर्ण देन थी। इस कार्य में उन्होंने निम्न वर्ग की सामाजिक चेतना को निखारा, उसे बल प्रदान किया। लेकिन कबीर की प्रतिमा वास्तव में ध्वंसात्मक थी, तुलसी की भांति स्थापनामूलक नहीं। डॉ. शर्मा के मत में, "उनके रहस्यवाद में रचनात्मक तत्व कम हैं।" इसके विपरीत तुलसी की संपूर्ण प्रतिमा, उनका समस्त साहित्य सामाजिक जीवन में लोकहित की दृष्टि में नये आदर्शों की स्थापना के लिए संलग्न है। उनके सामाजिक वर्णन में, उपमाओं में, शब्द-चयन आदि में एक ऐसे व्यक्ति की छाप है, जिसमें अपनी भौतिक पृष्ठभूमि के प्रति असाधारण जागरुकता है। लेकिन इस पृष्ठभूमि को, जो युगीन समस्याओं से आच्छादित थी उन्होंने समाधान रहित नहीं छोड़ा है। "किसान दुःखी है, प्रजा पीड़ित है, राजा उत्तरदायित्व-शून्य है, परंतु इस व्यूह से निकलने का मार्ग क्या है?" उनके रामराज्य की कल्पना, शर्मा जी के अनुसार, इस मार्ग की ओर ही संकेत है।

लेकिन तुलसी साहित्य के सामंत-विरोधी मूल्यों को भुलाकर मध्ययुग के अवसान के समय जिस ह्रासशील प्रवृत्ति का रीतिकाव्य के रूप में आविर्भाव हुआ, डॉ. शर्मा ने बड़ी ही तीव्रता के साथ उसकी भर्त्सना की है। उनके अनुसार, उस युग की कविता में नायिकाओं की भरमार, प्रकृति वर्णन के नाम पर घिसे-पिटे अलंकार, दरबारों की उर्दू शायरी में हुस्न और इश्क की आतिशबाजी, ये सब सामंती शासक वर्ग की विकृत रुचि के परिचायक हैं।

भूषण तथा उनकी परंपरा के कतिपय अन्य कवियों द्वारा वीर गाथा काल का एक लघु-संस्करण अवश्य इस युग में मूर्त हुआ, फिर भी, वे कवि शर्मा जी के अनुसार, 'युगीन प्रवृत्तियों से सर्वथा मुक्त नहीं थे और इन्हें अधिक लोकप्रियता मिलने का कारण भी वही था कि वे अपने आश्रयदाताओं के भक्त पहले थे तथा देश के भक्त बाद में।'

5.7.9 आधुनिक युग चिंतन

भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य का मूल स्वर देशभक्ति है इसे स्वीकार करते हुए शर्मा जी ने उन्हें जातीय नवजागरण के वैतालिक की संज्ञा दी है। उनकी दृष्टि में, भारतेंदु साहित्य की सबसे बड़ी विशिष्टता उसकी यथार्थवादी भावभूमि है, जिसके आधार पर युगीन साम्राज्य प्रेमी और रूढ़िवादी विचारधारा का खंडन किया गया है। संस्कृति और साहित्य में वे कहते हैं 'भारतेंदु की दृष्टि जनवादी विचारों से प्रभावित है, जहां धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिष्टाचार पर पुरोहितों, मौलवियों का इजारा तोड़ने के उपाय हैं, विधवा विवाह का समर्थन तथा बाल-विवाह

टिप्पणी

का विरोध है और कुलीनता, जाति-प्रथा, छुआछूत आदि का जोरदार खंडन है।' इसी प्रकार, काव्य में भी यथार्थवादी पद्धति का समावेश करते हुए उन्होंने, यह प्रमाणित किया कि कविता का भविष्य देश की जनता के भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है। इस युग के अन्य कवियों तथा लेखकों राधाचरण गोस्वामी, बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट आदि की सामाजिक तथा रचनात्मक चेतना का उल्लेख करते हुए डॉ. शर्मा ने कहा है इस युग की मूल धारा राष्ट्रीय और जनवादी है। राष्ट्रीय इसलिए है कि उस युग के लेखकों में स्वाधीनता का भाव था और अंग्रेजी साम्राज्यवाद की भर्त्सना का अपूर्व साहस। भारतेंदु-युग का साहित्य 'जनवादी' इसी अर्थ में है कि वह भारतीय समाज के प्राचीन ढांचे से संतुष्ट न होकर सुधार की आकांक्षा रखता है। वह राजनीतिक स्वाधीनता का ही साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है।

भारतेंदु युग के पश्चात साहित्य के क्रमिक-विकास में द्विवेदी-युग का भी अपना महत्वपूर्ण योग है। शर्मा जी के अनुसार, "साहित्य प्रगति की दृष्टि से पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा उनके साथियों ने जो महत्वपूर्ण काम किया, उसने पद्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली का परिष्कार किया और उसकी व्याकरण तथा अन्य अशुद्धियों को दूरकर उसे एक निश्चित रूप दिया। काव्य के क्षेत्र में द्विवेदी-युग की महत्वपूर्ण देन, शर्मा जी के मत से, मैथिलीशरण गुप्त हैं। उनकी कविता में व्यक्तिवाद की परंपरा का मूलोच्छेदन है, उनका काव्य वैयक्तिक कुंठा का काव्य नहीं है।"

छायावादी काव्यधारा के अंतर्गत यद्यपि महाकवि निराला ही डॉ. शर्मा के द्वारा प्रमुख रूप से विवेच्य रहे हैं, फिर भी उन्होंने प्रसाद, पंत तथा महादेवी वर्मा के संबंध में भी अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। उनके मत से, प्रसाद का अधिकांश साहित्य विशेषतया उनका कथा साहित्य यथार्थवादी भूमिका पर आधारित है। पंत के काव्य की समीक्षा करते हुए जहां एक ओर उनकी 'ग्राम्या' को उन्होंने, 'प्रगतिशील कविता का ऐतिहासिक मार्ग चिह्न कहा है, वहीं उनकी नव्यतम कृतियों 'स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा' आदि की पर्याप्त आलोचना भी की है। महादेवी के काव्य की अतिशय वैयक्तिकता एवं वेदना की आलोचना करने के बावजूद उन्होंने यह स्वीकार किया है "निराला को छोड़कर किसी अन्य कवि में जीवन के प्रति इतनी चाह नहीं है जितनी महादेवी में।"

छायावादी काव्य के पश्चात डॉ. शर्मा ने प्रगतिशील काव्य-धारा की विवेचना की है। प्रगतिशील कविता ने, उनके अनुसार, "छायावादी काव्य की अस्पष्टता, भाषा की दुरूहता, निराशावादी भावनाओं और पलायनवादी प्रवृत्ति को दूर किया, जीवन में आस्था, दलित और शोषित जनता के लिए मुक्ति की उत्कंठा, सामाजिक दायित्व की भावना व्यक्त की।" सुमन, नागार्जुन, दिनकर तथा केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों की सामाजिक चेतना शर्मा जी के अनुसार पूंजीवादी असंगतियों का विरोध करती है तथा श्रमजीवी वर्ग को प्रश्रय देती है। लेकिन इस काव्यधारा के अंतर्गत कतिपय कमियां भी थीं, जिनका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा 'प्रगतिशील कविता की कमजोरी थी विचार पक्ष की अस्पष्टता और कलात्मक शिथिलता।'

छायावादी कवियों के अंतर्गत डॉ. शर्मा ने निराला को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। उनकी दृष्टि में निराला जनवादी परंपरा के कलाकार हैं जिनके साहित्य की जड़ें देश की धरती और देश की साधारण जनता में गहराती चली गई हैं।

टिप्पणी

हिंदी कथा साहित्य के अंतर्गत प्रेमचंद का कृतित्व उनके समाजवादी आदर्शों के सर्वाधिक निकट है। डॉ. शर्मा के अनुसार प्रेमचंद का साहित्य अपने युग का इतिहास है, ऐसा इतिहास, जो कतिपय घटनाओं एवं व्यक्तियों पर आश्रित न रहकर उस अन्तर्धारा का सजीव चित्रण करता है, जो समाज की रीढ़ है। अपनी यथार्थवादी लेखनी से उन्होंने जीवन की सच्चाइयों का उद्घाटन किया है तथा समाज के दुर्बलपक्षों पर हास्य एवं व्यंग्य की प्रगल्भता से प्रहार किया है।

शर्मा जी के अनुसार जिस विशिष्टता और मौलिकता के अधिकारी हिंदी साहित्य में प्रेमचंद और निराला हैं उन्हीं गुणों से समन्वित आचार्य शुक्ल का भी व्यक्तित्व है।

शर्मा जी की दृष्टि में आचार्य शुक्ल का दृष्टिकोण मूलत: वस्तुवादी है।

भारतीय आदर्शवाद ही उनके साहित्य चिंतन को प्रमुख रूप से निर्देशित करता है। पश्चिम का भौतिकवादी दर्शन नहीं, भले ही उनमें आदर्शवाद के साथ-साथ बुद्धिवाद का भी समावेश था। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक निष्कर्षों का भी उन पर यथेष्ट प्रभाव था इसके अतिरिक्त उनमें आंख मूंदकर शास्त्रीय आदर्शों तथा परंपरागत मान्यताओं को न स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी थी। अत: उनके चिंतन में एक साथ हमें कई ऐसे तत्व दिखाई पड़ते हैं जो प्रगतिवादी समीक्षा के अंतर्गत भी समान रूप से विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए उनकी लोकमंगल विषयक दृष्टि को मार्क्सवादी चिंतन की सामाजिक सोद्देश्यता मूलक दृष्टि से अभिन्न कह सकते हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत कलावाद के विरोध में भी मार्क्सवादी विचारकों सी तीव्रता है। इन यत्र तत्र लक्षित होने वाले समान तत्वों के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ. शर्मा को शुक्ल जी की परंपरा में रख सकते हैं। लेकिन दृष्टि भेद तथा आदर्शों की भिन्नता के कारण इस प्रकार का स्थान निर्धारण अधिक वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

आचार्य शुक्ल के बाद डॉ. शर्मा ने छायावादी समीक्षकों के अंतर्गत अपने आदर्शों के समर्थन में यदि किसी अन्य विचारक को उद्धृत किया है तो वे हैं नंददुलारे वाजपेयी। प्रगतिवादी समीक्षा के प्रदेय के संबंध में तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर उठाए गए नये प्रश्नों, जो मूलत: स्वार्थ प्रेरित पश्चिम के अस्तित्ववादी सिद्धांतों से परिचालित हैं, के संबंध में अपनी मान्यताएं प्रस्तुत करते हुए आचार्य वाजपेयी के दृष्टिकोण को विशेष रूप से उन्होंने उद्धृत किया है।

प्रगतिवादी समीक्षा के क्षेत्र में भी डॉ. शर्मा का अपने सहयोगियों से पर्याप्त मतभेद हैं। उनके दृष्टिकोण और उसके अंतर्गत व्यक्त उनके असंतोष तथा विरोध को प्राय: सर्वत्र देखा जा सकता है। कुछ लोगों ने इसे आलोचना-प्रत्यालोचना कहकर एक विशेष संदर्भ में देखने का प्रयास भी किया है।

समीक्षा-शैली की दृष्टि के विचार करने पर डॉ. शर्मा के विवेचन में नकारात्मक वृत्ति का ही प्राधान्य है। उनकी शैली को आचार्य वाजपेयी के शब्द में 'वाद-विवादात्मक' अथवा Polymical की संज्ञा दे सकते हैं। वैयक्तिक आरोप-प्रत्यारोप के साथ उनमें व्यंग्य का प्राचुर्य है, विरोधियों को मर्माहत कर देने की क्षमता है, लेकिन साथ ही साहित्यिक मर्यादा तथा संतुलन का अभाव भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है। इस अर्थ में उनकी समीक्षा-शैली को हम विशुद्ध रूप से साहित्यिक शैली की संज्ञा नहीं दे सकते।

टिप्पणी

फिर भी डॉ. शर्मा की शैली में एक प्रकार की विशेषता है, और वह है उनकी सरलता। उनकी समीक्षा बिल्कुल स्पष्ट तथा सहज-ग्राह्य है। जिस सहजता के साथ डॉ. शर्मा ने मार्क्सवादी आदर्शों की साहित्यिक परिणति दिखाई है वह इस धारा के अन्य समीक्षक नहीं कर सके हैं। सरलता तथा स्वच्छंदता से युक्त डॉ. शर्मा जी की समीक्षा-शैली को कुछ आलोचकों ने पत्रकारिता की शैली कहा। तथापि वैयक्तिक आरोप-प्रत्यारोप तथा खंडन-मंडन की प्रक्रिया से यह जहां कहीं भी मुक्त है वहां वह पर्याप्त विचारोत्तेजक है। उनकी अंतिम कृतियों में, विशेषतया, 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' तथा 'आस्था और सौंदर्य' में, इस शैली को देखा जा सकता है।

5.8 मुक्तिबोध

हिंदी आलोचना की एक लंबी परंपरा है जिसमें प्रगतिवादी प्रखर एवं गंभीर कवि आलोचक मुक्तिबोध का नाम प्रमुख है। मुक्तिबोध ने भाववादी-कलावादी सौंदर्यशास्त्र के प्रतिमानों का खंडन करते हुए मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के वस्तुपरक प्रतिमानों को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। मुक्तिबोध ने क्षणवाद, धनवाद, अस्तित्ववाद, हीगलीय सौंदर्यवाद, अमरीकी आधुनिकतावाद, स्वच्छंतावाद आदि का खंडन किया तथा आस्था के स्थान पर आस्थावादी को आश्रय दिया। मुक्तिबोध ने अपने आलोचना दर्शन में पूंजीवाद व्यवस्था का प्रतिफलक 'लघु मानव का सिद्धांत' को भी समय-समय पर खंडित किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा एवं समाजशास्त्रीय विचारधारा से प्रभावित रहे हैं। कला के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों- मानों की प्रतिष्ठा के लिए मुक्तिबोध ने विश्व भर की प्रतिगामी शक्तियों की आलोचना भी की है। उन्होंने रचना प्रक्रिया, कलानुभव, सौंदर्य-दृष्टि के साथ ही अनुभूति की ईमानदारी को भी काव्य प्रतिमान बनाया। मुक्तिबोध रचना को एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के स्थान पर एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हैं। उनके द्वारा नई कविताओं में प्रयुक्त प्रयोगवादी कवियों इलियटीय सिद्धांतों को प्रतिक्रियावादी कहते हुए खंडन किया गया तथा पुराने प्रगतिवाद के समीक्षकों पर टिप्पणी करते हुए नई समीक्षा दृष्टि के निर्माण का प्रयास किया गया। मुक्तिबोध की आलोचना पद्धति की प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि उनके द्वारा किसी मार्क्सवादी-समाजवादी आधार को अपनाने के साथ-साथ आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समीक्षा सिद्धांतों की दृष्टि का भी समर्थन किया गया। उनके द्वारा रस की शब्दावली का नये तरीके से प्रयोग किया गया। आचार्य शुक्ल के समान ही उनके द्वारा काव्यानुभूति एवं जीवनानुभूति को एक साथ देखा गया।

गजानन माधव मुक्तिबोध के चिंतन ने हिंदी मार्क्सवादी साहित्य-शास्त्र तथा सौंदर्य-शास्त्र का मार्ग प्रशस्त किया है। पाश्चात्य साहित्य, साहित्यालोचन, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषणशास्त्र, सौंदर्यवाद, मार्क्सवाद आदि का मुक्तिबोध ने गंभीर अध्ययन किया था। अत: उन सभी का प्रभाव उनके समीक्षा-दर्शन पर है।

डॉ. नामवर सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान' नामक पुस्तक की भूमिका में मुक्तिबोध के अवदान को स्वीकार करते हुए कहा, "यह तथ्य अनदेखा नहीं किया जा सकता कि कविता के नये प्रतिमान के केंद्र में मुक्तिबोध हैं। मूल्यों के अन्वेषण की प्रक्रिया में

'अपनी प्रगति जांचिए'

41. हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. रामविलास शर्मा का प्रवेश किस परंपरा के समीक्षक के रूप में हुआ?
42. किसी भी रचना के दो प्रमुख अंग कौन-से होते हैं?
43. रामविलास शर्मा के अनुसार कला सृष्टि किसकी एकता से संभव है?
44. साहित्य रचना के लिए निर्णायक भूमिका किसकी होती है?
45. रचना के रूपात्मक सौंदर्य का सबसे बड़ा आधार क्या है?
46. रामविलास शर्मा के अनुसार कला-सृष्टि का आधार क्या है?
47. प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण का क्या नाम है?
48. रामविलास शर्मा ने कवि को किसका स्थान दिया है?

टिप्पणी

कभी-न-कभी प्राय: सब के सामने आदि काव्य का यह प्रश्न उपस्थित होता है– कोन्वस्मिन साम्प्रतं लोके-? इसके उत्तर में मुक्तिबोध ही दिखाई देते हैं। नई कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य-मूल्यों को प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन संभव हो सका।"

मुक्तिबोध की रचना एवं समीक्षा प्रक्रिया को आत्मसात करने के लिए आवश्यक है कि उनकी प्रतिपादित शब्दावलियों को जाना जाए जो बार-बार उनकी समीक्षाओं में प्रयुक्त हुई हैं। बाह्य का आभ्यंतरीकरण ऐसी ही एक शब्दावली है। यह शब्दावली मुक्तिबोध की यथार्थवादी दृष्टि को स्पष्ट करती है। उनका यथार्थ केवल बाह्य की भावनात्मक प्रतिकृति नहीं है। उसमें बाह्य यथार्थ को आंतरिक तत्वों की गतिशीलता के साथ एकाकार किया जाता है। बाह्य एवं अंतर दोनों अपनी गतिशीलता में क्रिया प्रतिक्रिया करते हुए एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं। बाह्य अंतर का अंग बनकर ही संपूर्ण यथार्थ बन सकता है क्योंकि तभी वह लक्ष्योन्मुखता प्राप्त करता है। इसके बिना मुक्तिबोध साहित्य को निरर्थक मानते हैं। दूसरा शब्द समुच्चय हो उनकी समीक्षा का प्राण है, वह है संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन। मुक्तिबोध ने ज्ञान और संवेदन को सापेक्षिक महत्व दिया है।

रचना एवं समीक्षा दोनों में ही संवेदनात्मक ज्ञान एवं ज्ञानात्मक संवेदनों की आवश्यकता होती है। इसी से कृति महत्वपूर्ण एवं उपयोगी बनती है। मुक्तिबोध के अनुसार समीक्षक या रचनाकार में भोक्ता एवं दर्शक दो व्यक्तित्व अंतर्भूत रहते हैं। इस प्रकार का ही पारस्परिक आदान-प्रदान रचना-कथाकार को सार्थक बनाता है। मुक्तिबोध के ही शब्दों में- "दर्शक का ज्ञान और भोक्ता की संवेदना परस्पर विलीन होकर अपने से परे उठने की भंगिमा को प्रोत्साहित करती रहती है। इस प्रकार की सृजन-प्रक्रिया के विशिष्ट में सर्व-सामान्य महत्व प्रतिबिंबित होता-सा प्रतीत होता है। दूसरे शब्दों में संवेदना के स्थितिबद्ध गहरे रंगदृष्टि के स्थिति मुक्त रूप से परिष्कृत होकर प्रतिनिधिक हो उठते हैं।"

मुक्तिबोध की सबसे बड़ी आलोचना उपलब्धि उनका रचना-प्रक्रिया का विवेचन है। मुक्तिबोध की आलोचनात्मक दृष्टि सदा रचना प्रक्रिया के गूढ़ तत्वों को समझने और उन्हें विश्लेषित करने पर रही है। इसी कारण वे कला की सार्थक परिभाषा करने में भी सफल रहे हैं- रचना प्रक्रिया को सुस्पष्ट ढंग से व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध ने उसका विश्लेषण किया है। और उसके तीन क्षण निर्धारित किए हैं। जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। "कला के प्रथम क्षण में ही उत्कट तीव्र अनुभव की प्रतीति होती है। अर्थात दर्शकत्व और भोक्तृत्व का योग होता है।" अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूल से पृथक हो जाना और एक फैंटेसी का रूप धारण करना। "कला के दूसरे क्षण में उपस्थित फैंटेसी की इकाई में संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना कुछ इस प्रकार समायी रहती है कि लेखक उन्हें शब्दबद्ध करने के लिए तत्पर हो उठता है।" फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमयता।

मुक्तिबोध ने रचना प्रक्रिया में 'फैंटेसी' पर विशेष बल दिया है। यह उनकी रचना प्रक्रिया की अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों हैं। उनके अनुसार- "भाषा फैंटेसी को काटती-छांटती

टिप्पणी

है, और इस प्रक्रिया के विपरीत फैंटेसी भाषा को संपन्न और समृद्ध भी करती है। इससे कवि-भाषा का निर्माण होता है।"

मुक्तिबोध द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में अत्यधिक विश्वास रखते हैं और रचना-प्रक्रिया की गतिशीलता में उन्हें उसका बोध निरंतर होता रहा है। उनके अनुसार, "प्रवृत्तियों द्वारा प्राप्त जीवनानुभव में संवेदना अपनी अग्नि, किंतु तत्व बाह्यगत होते हैं। उनकी दृष्टि से बाह्य और अंतर का यह द्वंद्व ही विभिन्न समस्याएं उत्पन्न करता है। और रचना शक्ति का विकास करता है। अतएव जीवन सापेक्ष रचना-प्रक्रिया भी द्वंद्व की उपज है और समस्याएं यहां भी समाधान पाती हैं, किंतु कलात्मक स्तर पर ही। मनुष्य की चेतना वह समस्त अंत:करण है जिसका अपने बाह्य से निरंतर सापेक्षिक संबंध है। यदि अंतर का संबंध अपने बाह्य से कर चुका है तो वहां मुक्तिबोध को जड़ता और निर्जीवता दिखाई पड़ती है। ऐसी रचनाओं को वे निरर्थक मानते हैं क्योंकि वे युग सापेक्ष नहीं होती।

मुक्तिबोध के लिए संक्षेप में कहा जा सकता है कि वे उग्र सिद्धांतवादी अहंकार से पीड़ित न होकर, लक्ष्योन्मुख उदार मानवतावाद से प्रेरित हैं। उनके आलोचना-सिद्धांतों से स्पष्ट है कि जितनी आवश्यकता लेखक को 'ईमानदारी' की है, उतनी ही समीक्षक को 'चरित्र' की रहती है।

5.8.1 चिंता एवं चिंतन का स्वरूप

मुक्तिबोध ने वास्तविक दुनिया निम्न मध्यवर्ग और उत्पीड़ित जनों के क्षेत्र से 'जीवन विवेक' प्राप्त किया और इसी पर उनके साहित्य-विवेक का आधार टिका हुआ है। मुक्तिबोध के अनुसार "हम केवल साहित्यिक दुनिया में ही नहीं वास्तविक दुनिया में रहते हैं। इस जगत में रहते हैं।" मुक्तिबोध का यह कथन उनके समग्र समाजपरक एवं सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन की प्राथमिक कुंजी है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में श्रम और विज्ञान एक ही साथ समानांतर धुरी पर रहते हैं। साहित्य और कला की स्थिति भी इन्हीं के साथ हैं। इस प्रक्रिया में मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार प्रकृति का रूपांतरण करता है। यह कर्म से ही संभव होता है। सृजन भी इसी प्रक्रिया का एक हिस्सा है। अपने सच्चे समय में इतिहास-विज्ञान और मनुष्य की समाजशास्त्रीय-आर्थिक अवस्था को विस्मृत कर सृजन असंभव है। मुक्तिबोध का समग्र चिंतन इसी दृष्टि और कोशिश का परिणाम है। वैसे मुक्तिबोध स्वयं को मूलत: कवि ही मानते थे किंतु उनका विचारक व्यक्तित्व भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

मुक्तिबोध चिंतनशील प्रकृति के थे। निरंतर अशांत और व्यग्र रहने वाला उनका मन जीवन-समाज और साहित्य से जुड़े हर सवालों से जूझने लगता था। उनका आत्म-मंथन, उनकी डायरी, निबंधों, समीक्षाओं ओर पत्रों में अनवरत अबाध रूप से व्यक्त होता रहा है।

मुक्तिबोध का चिंतन द्वंद्वात्मक है और जीवन-संघर्ष तथा सौदर्यशास्त्र के दुहरे स्तर पर सक्रिय रहा है। मुक्तिबोध बर्गसां से लेकर मार्क्स तक के उपलब्ध चिंतन को आत्मसात करते हुए भी सारे प्रश्नों से निजी स्तर पर मुठभेड़ करते हैं। वे हिंदी समीक्षा की दरिद्रता और इकहरी काठी से बहुधा क्षुब्ध रहते थे। पूर्व ज्ञात सत्य और पूर्व निश्चित निषेध की प्रवृत्ति के विरुद्ध वे अन्वेषण की प्रणाली में विश्वास रखते थे। इसलिए उनका गद्य अपनी कतिपय दुर्बलताओं और अंतर्विरोधों के बावजूद एक सच्चे रचनाकार के आत्मसंघर्ष, जीवन-संघर्ष और सृजनात्मक-संघर्ष का प्रामाणिक दस्तावेज बन गया है।

टिप्पणी

मुक्तिबोध के चिंतन का चरित्र संशलिष्ट है। वे एक कवि मन की विकलता और मार्क्सवादी वैचारिकता के साथ गतिशील दुनिया की वास्तविकता को परखते हैं। उनके यहां भीतरी और बाहरी दुनिया का सरल द्वैत भाव नहीं है। एक कवि की तरह उन्होंने हमेशा अनुभव किया है। डायलन टॉमस के शब्दों में "भीतरी और बाहरी दुनिया एकदम अलग-अलग नहीं है। तकलीफ भीतरी जगहों में रंग भरती है और संभवत: उन्हें सुंदर भी करती है... शायद महान कला वह है जो संपूर्ण भाव से भीतरी और बाहरी का संयोजन करती है।" मुक्तिबोध के चिंतन में भी हमें यही विशेषता दिखाई देती है।

मार्क्सवादी-दृष्टि, गहरी प्रतिबद्धता और प्रखर मूल्य चेतना के अतिरिक्त मुक्तिबोध एक ऐसी नैतिकता के तहत साहित्यिक बहसों में शामिल होते हैं जो अमूर्त मानवतावादी नैतिकता मात्र नहीं है। इसीलिए मुक्तिबोध चीजों, तथ्यों और शब्दों तक के वर्गीय चरित्र को पहचानने में चूक नहीं करते हैं। निंदा-स्तुति या स्थापना आदि की सामान्य बहसों से परे उन्होंने अपने चिंतन को हमारे समाज की शोषित जनता के पक्ष में एक शस्त्र की तरह प्रस्तुत करने की कोशिश की है। इसी कारण अपनी साहित्यिक विरासत और परंपरा का पुनर्मूल्यांकन उन्हें जरूरी लगा। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में परंपरा को प्रगतिशील दृष्टि से देखने का जोखिम है। रचनात्मक सौंदर्य को प्रमुख मानते हुए भी रचना के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को वे कम महत्वपूर्ण नहीं मानते। उनकी दृढ़ मान्यता रही है कि किसी भी कवि की वैचारिक चेतना के निर्माण में उसके वर्ग का एक निर्णायक योगदान होता है।

मुक्तिबोध का चिंतन उनके कथा-साहित्य और उनकी कविताओं में भी प्रकट है। उनके सारे शब्द एक आवेशित वैचारिकता से संपन्न हैं। मुक्तिबोध ऐसे अकेले कवि हैं जिन्होंने विवेचना और विश्लेषण को कविता में व्यक्त किया है। इसके बीज उनके स्वभाव में ही हैं। मुक्तिबोध जताने के लिए नहीं जानने के लिए बहस करते हैं। उनका चिंतन आत्मालाप से परे वस्तु जगत के भीतर होने वाले आत्म-मंथन का परिणाम है। कथा-साहित्य में उन्होंने मनुष्य की नियति को लेकर जो विचार व्यक्त किए हैं वे इसी के प्रतीक हैं। इसीलिए मनुष्य और समाज के अंत:संबंधों को प्रकट करनेवाली मुक्तिबोध की दुनिया जटिल है।

'कामायनी : एक पुनर्विचार' को छोड़कर मुक्तिबोध का समस्त साहित्य उनकी मृत्यु के पश्चात ही प्रकाशित हुआ। अपने जीवन काल में मुक्तिबोध को उल्लेखनीय चिंतक या समीक्षक के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया गया। बाद में मुक्तिबोध के निबंध, आलोचना, डायरी, कहानी आदि प्रकाशित होते गए। अब यह समग्र साहित्य मुक्तिबोध रचनावली की 6 जिल्दों में उपलब्ध है। रचनावली खंड 3 से 6 में चार जिल्दों में उनका गद्य साहित्य है। खंड 6 में उनके पत्रकारिता के दिनों के नाम और छद्म नाम से लिखी गई अनेक टिप्पणियों में से संकलित हैं। मित्रों को लिखे गए पत्रों का महत्वपूर्ण हिस्सा भी है। मुक्तिबोध के कलाकार, चिंतक और मानवीय व्यक्तित्व को समझने की दृष्टि से उनकी डायरी और पत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अपने निबंधों में भी कला और साहित्य के महत्वपूर्ण सवालों का सामना करते हुए मुक्तिबोध ने समकालीन साहित्य-चिंतन को समृद्ध किया है।

मुक्तिबोध के चिंतन के कई स्तर हैं। डायरी में वे सदैव द्वंद्वात्मक प्रणाली का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त सिद्धांत, पुनर्मूल्यांकन, सृजनात्मक-चिंतन, खंडन-मंडन आदि उनके चिंतन के रूपगत वर्ग हो सकते हैं। इसके साथ ही सौंदर्यशास्त्र के मूल प्रश्नों के विश्लेषण

टिप्पणी

में भी उनकी गहरी दिलचस्पी रही है। पुस्तक-समीक्षा आदि के रूप में उनकी व्यावहारिक समीक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। संक्षेप में मुक्तिबोध के चिंतन का विन्यास और आयाम बहुमुखी तथा गुंफित है।

मुक्तिबोध की चिंता और अनंत समय के बीच की वैसी चिंता नहीं है जिसमें ईश्वर का मनुष्य के अस्तित्व में हस्तक्षेप होता है। उनकी व्यग्रता का उत्स उनके जन्म और अतीत के बीच सीमित भी नहीं है। मनुष्य की मूलभूत मानवीय चिंता अपने समय के भीतर की चिंता या व्यग्रता होती है। मुक्तिबोध की चिंता अपने समय में मनुष्य के नैतिक और भौतिक प्रश्नों के आसपास बिखरी है। यह आसपास के सामाजिक संबंधों और संदर्भों से जुड़ती हुई मनुष्य के भविष्य के क्षेत्र में भी संक्रमण करती है।

5.8.2 कला : जीवन की पुनर्रचना

मुक्तिबोध कलाकार के स्वानुभूत जीवन और संपन्न जीवनानुभव के आधार पर जीवन के सार रूप में 'सौंदर्य' को परिभाषित करते हैं। अर्थात सौंदर्य के मूल तत्व यथार्थ जीवन के अनुभूत तत्वों से ही आकार ग्रहण करते हैं। मुक्तिबोध ने कला के तीन क्षणों का विशेष रूप से विश्लेषण किया है। अपने अनुभवों को आत्मसात करते हुए सर्जन प्रक्रिया के उन क्षणों से गुजरता है और काव्य का प्रणयन करता है। मुक्तिबोध द्वारा बताये रचना के इन तीन क्षणों का विवेचन हम इकाई चार में कर आये हैं।

व्यक्ति के अनुभव जगत में चलनेवाली प्रक्रिया निरपेक्ष रूप से उस व्यक्ति को समाज विच्छिन्न व्यक्ति नहीं बनाती। दूसरे शब्दों में रचनात्मक अनुभव, जिसे सौंदर्यानुभूति कहेंगे महज वैयक्तिक भूमिका नहीं हो सकती। मुक्तिबोध की स्पष्ट धारणा है कि सौंदर्यानुभूति जीवनानुभवों का संवेदनात्मक कलात्मक रूप है और यह भी है कि "सौंदर्यानुभूति केवल कलाकार की विशेषता नहीं है वरन् वह उन सबकी विशेषता है जिन्हें हम मनुष्य कहते हैं। यह मनुष्यत्व का एक लक्षण है।"

कविता और कला की रचना का संबंध मनुष्य की इसी सौंदर्यानुभूति से है। यही जीवन-जगत का साधारण अनुभव कलाकार या लेखक द्वारा पुनर्रचित होने पर कला रूप में परिणत हो जाता है। मुक्तिबोध ने मानवीय चेतना पर पड़ने वाले प्रभावों ओर अनुभवों तथा उन्हीं अनुभवों की पुनर्रचना की व्याख्या अनेक बार की है, और तरह-तरह से यही बताने की कोशिश की है कि कला का संबंध जगत के वास्तविक अनुभवों से है। कला को जीवन की पुनर्रचना कहते हुए वे यह भी मानते हैं कि पुनर्रचना कवि-कलाकार का ही नहीं मानव मात्र का गुण हैं। वयस्क कवि की पुनर्रचना के बारे में वे कहते हैं कि "बाह्य जीवन-जगत के रूप-स्वरूप और गति-प्रगति के जो अपने नियम हैं, वे इस पुनर्रचित जीवन के नहीं। पुनर्रचित जीवन किसी संवेदना की पूर्ति के लिए ही होता है। वह वास्तविक जीवनानुभवों के ठोस आधार पर खड़ा हुआ है और उनके बिना वह असंभव है। इस आधार पर ही संवेदना से परिपूर्ण उद्देश्य एवं कल्पना के विविध रूप गढ़े जाते हैं।"

इस प्रकार कला ही नहीं सृजन प्रक्रिया को भी मुक्तिबोध जीवनानुभवों के ठोस आधार पर स्थित मानते हैं, साथ ही कला की स्वायत्तता को भी स्वीकार करते हैं-सापेक्षता की शर्त के साथ।

टिप्पणी

मुक्तिबोध ने सौंदर्यशास्त्र रचने की आकांक्षा से नहीं, बल्कि अपने रचनात्मक अनुभवों को व्यापक जीवन से जोड़कर पुनर्रचना करने वाले कलाकार के मन के रहस्यलोक को परखने के उद्देश्य से विचार किया है। मुक्तिबोध कहते हैं- "सारा मनोमय जीवन कलात्मक नहीं होता। जिन क्षणों में मन निजबद्ध स्थिति में रहता है वह कल्पना द्वारा पुनर्रचित जीवन में तन्मय और तदाकार होकर अपनी निजबद्धता नहीं खो सकता। अर्थात जब वह मुक्ति और बद्धता, तटस्थता और तन्मयता, सामीप्य और दूरी, विशिष्टता और सामान्यता, के मूल द्वंद्वों की, उच्चतर स्तर पर एकीभूत स्थिति में नहीं पहुंच सकता, तब वैसी हलत में उसका मनोमय जीवन कलात्मक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के अकलात्मक मनोमय जीवन में मन को उसके व्यक्तिगत सुख-दुख और राग-द्वेष ही घेरे रहते हैं। फलत: मन को अपने से मुक्ति नहीं, छुटकारा नहीं...दूसरे शब्दों में-मनोमय जीवन के कलात्मक क्षणों में अपने आपसे छुटकारा होकर जीवन का प्रगाढ़ और व्यापक अनुभव होता है।" इसी क्रम में उनका यह कथन भी द्रष्टव्य है- "अभिव्यक्ति प्राप्त होने पर भावपक्ष का सामान्यीकरण हो जाता है।" दरअसल यहां मुक्तिबोध सौंदर्यानुभव और उसके कलात्मक रूप के साधारणीकरण की व्याख्या ही करते प्रतीत होते हैं। किंतु यहां भी उल्लेखनीय यह है कि मुक्तिबोध यथार्थ के अमूर्तिकरण के विपरीत कविता को परिवेश के साथ द्वंद्व-स्थिति में निरूपित करते हैं और विवेकपूर्ण यथार्थ की पड़ताल पर जोर देते हैं। उनकी दृष्टि में समाज-विच्छिन्न सृजन-प्रक्रिया में मूल्यों का अस्तित्व ही नहीं है।

5.8.3 मार्क्सवादी मूल्य

मार्क्सवादी वैचारिक-आधार और मानवीय दृष्टि से पुष्ट होकर मुक्तिबोध का काव्य विकसित होने लगा। सन् 1950 के पहले मुक्तिबोध ने जो कहानियां, डायरी लेख आदि लिखे हैं उनमें भी बाद की उनकी परिपक्व दृष्टि और सोच के ताने-बाने दिखाई पड़ते हैं, कभी अस्पष्ट तो कभी स्पष्ट और कहीं-कहीं धुंधले भी। पर एक चीज जो चमकते कणों-सी दिखाई पड़ती है, वह है उनकी जिंदगी के साथ गहरी संलग्नता और समाज के स्वास्थ्य के प्रति उनका प्रगतिशील जुड़ाव। यहां आकर मुक्तिबोध का चिंतन, भौगोलिक स्थितियों, वर्ग-चेतना, वर्ग-विभाजित-समाज की धारणा और रंगों से यहां भी प्रगाढ़ होता है। उनकी प्रारंभिक कहानियों में ही जटिलता के बावजूद सूने मैदान, संवलायी हवा, उत्पीड़ित मध्यवर्ग, स्त्रियों की व्यक्तित्वहीनता आदि प्रश्नों की गहरी गूंजें हैं।

अपनी प्रारंभिक डायरी में मुक्तिबोध निजी उलझनों से आक्रांत दिखाई देते हैं। उनके शुरू के निबंध या लेख परिचयात्मक हैं, पर उनमें भी ज्ञान और भाव के सामंजस्य के तत्व विद्यमान हैं। मुक्तिबोध व्यक्ति की सामाजिकता और उसकी निजता दोनों ही के हिमायती थे। अपने वयस्क मार्क्सवादी चिंतन के दौर में भी व्यक्ति की सत्ता के प्रति उनकी दृष्टि कभी यांत्रिक नहीं हो पाई। 'वाद' के घेरे में बंधी आलोचना दृष्टि के विरोध में वे कहते हैं- "साहित्य के वाद वैज्ञानिक या दार्शनिक प्रणालियां नहीं हैं, वे केवल साहित्य के दृष्टिकोण हैं।" इसी तरह उनका पचास के पहले का निबंध है– 'आधुनिक हिंदी कविता में यथार्थ' जिसमें मुक्तिबोध छायावाद को प्रतिक्रियाजन्य निरूपित करते हुए उसकी कल्पना शक्ति आदि के पुरानी पड़ जाने की घोषणा करते हैं। इस निबंध में मुक्तिबोध ने बच्चन, दिनकर, नवीन, अज्ञेय आदि की काव्यधारा को 'अत्याधुनिक काव्यधारा' की संज्ञा देकर कहा है कि यह

टिप्पणी

यथार्थ को 'अत्यंत सहानुभूति से देखती है।' उन्हें बच्चन का यथार्थवाद अत्यंत मानवीय, दिनकर में करुणा, युद्ध-भावावेश, 'नवीन' में ओज स्फूर्ति तथा अज्ञेय में कर्म की अथक ताकत दृष्टिगोचर होती है। मुक्तिबोध निरंतर मार्क्सवाद को आत्मसात करते रहे। मूल्यों के प्रति मुक्तिबोध की अधीरता ही उन्हें हर प्रश्न के संदर्भ में जीवनोन्मुखी बनाती रही। इसीलिए उन्होंने कहा है- "मनुष्य जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं जो साहित्याभिव्यक्ति के अनुपयुक्त हो।" अपने इसी विश्वास के सहारे मुक्तिबोध का आत्म-संघर्ष अनेक रूपों में व्यक्त होता रहा। वे मानव चेतना की प्रक्रिया को प्राणिशास्त्रीय आधार पर विकसित मानकर भी मूलत: मनोवैज्ञानिक मानते हैं। इसलिए मुक्तिबोध जीवन के किसी भी पक्ष की उपेक्षा के विरुद्ध हैं।

यहां यह भी विचारणीय है कि मुक्तिबोध मार्क्सवादी सुदृढ़ आस्था के बावजूद मनोविज्ञान से परहेज नहीं करते। वे उन लोगों से भिन्न हैं जिनकी स्थूल दृष्टि में व्यक्ति केंद्रित होने के कारण मनोविज्ञान और मार्क्सवाद विचार में साथ नहीं चल सकते, हालांकि जीवन में ऐसा करना किसी के बूते की चीज नहीं है। मुक्तिबोध की जीवन संबंधी धारणा कई अर्थों में वैज्ञानिक होते हुए भी किन्हीं प्रणालियों से सीमित नहीं है। इसीलिए वे कहते हैं- "विश्व के प्रत्येक स्पंदन से कलाकार का संबंध है। यह संबंध ही उनके चिंतन के निरंतर विस्तार की बुनियाद है। इसलिए सौंदर्य और कला संबंधी प्रतिमानों की गहरी छानबीन और प्रतिमान निर्मित करने के बाद भी मुक्तिबोध के लिए साहित्य की अंतिम कसौटी जीवन ही है क्योंकि 'साहित्य जीवन से प्रस्तुत होकर जीवन को प्रभावित करता है।'

'समाज और साहित्य' नामक अपने चौंतीस पृष्ठ के लंबे लेख में मुक्तिबोध ने साहित्य के अनेक प्रश्नों को ही नहीं किंतु सामाजिक ढांचे और विकास को भी विस्तार से विवेचित किया है। मूलाधार और बाह्य ढांचे या अधिरचना के आधार पर भी उन्होंने उत्पादन और जीवन-यापन की प्रणालियों को मानव संबंधों का निर्धारिक निरूपित किया है। इसीलिए मुक्तिबोध कहते हैं कि मानव-चेतना, वस्तुत: मानव संबंधों से निर्मित तथा उससे उद्गत चेतना है। इसी तथ्य को मुक्तिबोध ने अन्यत्र इस प्रकार व्यक्त किया है- "हमारा सामाजिक व्यक्तित्व हमारी आत्मा है। आत्मा का सारा सारतत्व प्राकृत रूप से सामाजिक है।" दरअसल मुक्तिबोध मार्क्स की इस प्रसिद्ध उक्ति को अपने ढंग से स्पष्ट करते हैं कि "सामाजिक अस्तित्व ही चेतना का निर्धारण करता है।" मुक्तिबोध ने अपने सारे चिंतन के दौरान जीवन की सर्वोपरिता को अनेक ढंग से दोहराया है। कदाचित् यही उनकी आधारभूत पकड़ रही है इस मान्यता के आलोक में मुक्तिबोध व्यक्ति और समाज के बीच विरोध नहीं मानते। विरोध यदि है तो गलत विचारधाराओं का है। व्यक्ति और समाज के विरोध को वे मात्र बौद्धिक विक्षेप मानते हैं, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। श्रीकांत वर्मा को '56 में लिखे पत्र में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि "हम लोगों की बुद्धि को अपील करने के बदले उनकी भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं...हमें लोगों की बुद्धि को सोचने के लिए प्रेरित करना चाहिए वह भी स्वतंत्र रूप से।" मुक्तिबोध व्यक्ति और समाज के संबंधों के बीच व्यक्ति की सामाजिक चेतना और उसके दायित्वों की सजगता को महत्वपूर्ण समझते थे। फिर भी वे जड़वाद के विरोधी थे। समाजवाद उनकी दृष्टि में जन साधारण की मुक्ति का राजपथ है जिसकी मूल आत्मा जनतांत्रिक है। इस तरह वे मार्क्स की समग्र मुक्ति की धारणा के बेहद निकट थे। इसीलिए उनका मत रहा कि "किसी को भी व्यक्ति-स्वातंत्र्य खरीदने का अधिकार नहीं हो, न बेचने का। व्यक्ति-स्वातंत्र्य को रहन न रखा जाए, न कोई किसी को रहन रखने दे।" इसका अर्थ

टिप्पणी

यह नही है कि वे पूंजीवादी व्यक्ति-स्वातंत्र्य के चरित्र के प्रति अनभिज्ञ थे। वे न केवल व्यक्ति-स्वातंत्र्य के पूंजीवादी पाखंड से परिचित थे वरन उसकी साजिश भी ठीक तरह से पहचानते थे। मुक्तिबोध कहते हैं- "अब तक साम्यवाद पर यह आरोप लगाया जाता है कि वहां व्यक्ति-स्वतंत्रता का, कलाकार की स्वतंत्र चेतना का हनन होता है। जब हमारे सामने पोलैंड जैसा प्रकाशमान देश भी है, जिसे सामने रखकर यह कहा जा सकता है- लोगों को समझाकर कहा जा सकता है-उन्हें बताया जा सकता है-साम्यवाद के ऐसे महान देश भी हैं जिनमें स्वतंत्रता के उच्च आदर्श विद्यमान हैं।"

5.8.4 मुक्तिबोध का समाज

समाज के प्रति मुक्तिबोध का दृष्टिकोण केवल आलोचनात्मक नहीं था। समाज उनके लिए केवल शब्द नहीं चतुर्दिक बिखरी ऐसी धड़कती सच्चाई थी जिसके बिना व्यक्ति का कोई अर्थ नहीं बच रहता। मुक्तिबोध के ये शब्द गौरतलब हैं- समाज रेत का ढेर नहीं... समाज एक वृक्ष की भांति है।

भारतीय सामाजिक संरचना के आर्थिक मूल्यों और वर्ग व्यवस्था के प्रश्नों को भी मुक्तिबोध ने उठाया है। सामंतवाद और पूंजीवाद के चरित्र और उनकी शोषण-विधियों के बीच भ्रमित मध्य वर्ग की स्थिति उनके लिए सदैव चिंता का विषय रही। मध्य वर्ग का उन्होंने खाते-पीते वर्ग और उसी वर्ग को गरीब श्रेणी में विभाजित कर अनेक स्थलों पर खाते-पीते मध्य वर्ग की इस तर्क से आलोचना की है कि वह व्यक्तिगत स्वार्थों का शिकार हो जाता है। मध्य वर्ग के गरीब परिवार और उनके युवकों की मानसिकता के उतार-चढ़ाव और द्वंद्व के बीच मुक्तिबोध उस आवश्यक संघर्ष की दिशा भी स्पष्ट करते हैं जिसके अभाव में वे व्यक्तित्वहीन हो उच्च वर्ग की साजिश में समाप्त हो जाते हैं। ये ही वे स्थितियां हैं जिनमें सही वैचारिक समझ जरूरी है। व्यक्तिगत संघर्ष को सामाजिक संघर्ष में रूपांतरित किया जा सकता है। मुक्तिबोध कहते हैं, "ये गरीब श्रेणी अब इस नतीजे पर पहुंच रही है कि उसका पूरा उद्धार सभी गरीब वर्गों की मुक्ति के साथ है।" कविता में भी उन्होंने कहा है-

याद रखो,
कभी अकेले में मुक्ति न मिलती,
यदि वह है तो सबके साथ है।"

मुक्तिबोध साधारण मनुष्य की नैतिकता और उसकी शक्ति में गहरा विश्वास रखते हैं।

5.8.5 नारी विश्लेषण

भारतीय परिवारों, विशेषकर मध्य और निम्न वर्ग के परिवारों में व्याप्त वैचारिक दासता और अहंवाद का ताना-बाना भी मुक्तिबोध की दृष्टि से ओझल नहीं रह पाया है। दरअसल वे सौंदर्यशास्त्र या चिंतन के झरोखे से जीवन को नहीं देखते। परिवार में भी श्रेणियां और वर्ग बने हैं। गरीब घर से आई लड़की की स्थिति सबसे खराब है। मुक्तिबोध के काव्य और चिंतन में भारत की शोषित नारी के प्रति चिंता भी कम नहीं है। मध्ययुगीन स्थिति से लेकर आधुनिक नारी की त्रासदी को मुक्तिबोध ने पहचाना है। 'सामंती वर्ग की वासना-प्रणाली ही को नहीं वे 'सीता' की यातना को भी स्त्री-शोषण के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं- "वर्ग-समाजों में पहले स्त्री की स्वतंत्रता की हत्या की गई। उसे देवी बनाया गया या दासी

टिप्पणी

अथवा वेश्या। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।" नारी के तथाकथित आदर्शीकरण का अर्थ स्त्री को यातना देने के लाइसेंस से अधिक नहीं है।

मुक्तिबोध की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन के दैनिक संघर्षों और संताप के मार्मिक चित्र हैं। बीमार समाज और संस्कृति के अभिशाप से ग्रस्त कमजोर लोग हैं, मुक्ति के लिए छटपटाती स्त्रियां और भावनाओं के लिए तरसती अवश महिलाएं हैं, विपात्र कहानी संस्कृति ही नहीं, आत्मा के संकट का व्यंग्यात्मक आख्यान है।

5.8.6 ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि

मुक्तिबोध परंपरा की ताकत को पहचानते थे। इतिहास को उन्होंने न केवल सांस्कृतिक वरन् समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी परखा है। फिर भी उन्हें असुविधा होती थी कि विद्वानों ने "भारत के सांस्कृतिक इतिहास के क्षेत्र में बहुत अन्वेषण किए हैं। किंतु सामाजिक, आर्थिक विकास के इतिहास के क्षेत्र में अभी तक कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ है। मुक्तिबोध ने मध्ययुगीन भक्ति-आंदोलन की वर्गीय दृष्टि से गहरी छानबीन की और जातिवाद तथा सामंतवाद के दबावों के तहत निम्नवर्गीय भक्ति मार्ग के जनवादी संदेश के दांत उखाड़ लिए जाने का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। भक्ति-आंदोलन की जड़ों में वे साधारण जन की सांस्कृतिक आकांक्षाओं के बीच मनुष्य सत्य की प्रतिष्ठा की गुहार सुनते हैं। धार्मिक दासता ने जाति विरोधी चेतना को कुचल दिया। मुक्तिबोध जहां भक्ति आंदोलन के प्रसंग में शुक्लजी के मुस्लिम विरोधी अभिप्राय से असहमत हैं, वहीं वे हजारी प्रसाद जी की इस मान्यता से सहमत हैं कि भक्ति-आंदोलन की जड़ें गहरी थीं और उनका संबंध जनता के कष्ट से था। प्रगतिवादी क्षेत्रों में भी तुलसीदास की स्वीकृति से मुक्तिबोध असहमत थे। उनकी राय में शुक्लजी की 'वर्णाश्रयधर्मी जातिवाद ग्रस्त सामाजिकता' थी जिसे जनवाद में ऐसे घोल दिया गया मानो शुक्लजी सच्ची जनवादी सामाजिकता के पक्षपाती हों। मुक्तिबोध के लिए साहित्य की पहचान के प्रसंग में जहां सांस्कृतिक धरातल महत्वपूर्ण था वहीं वे गतिशील सामाजिक शक्तियों को भी अनदेखा नहीं रहने देते थे। मुक्तिबोध के पास इतिहास का सांस्कृतिक एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवादी आधार था। इसी आधार के बूते उन्होंने साहित्य और समाज की परंपरा का विश्लेषण किया है।

5.8.7 वैज्ञानिक चेतना

विज्ञान के प्रति उनकी जिज्ञासा और मनुष्य की नियति के साथ विज्ञान की संबद्धता मुक्तिबोध के लिए दिलचस्प विषय था। मार्क्सवाद के संदर्भ में तो वे वैज्ञानिक दृष्टि को महत्व देते थे पर न्यूटन, आइंस्टाइन आदि वैज्ञानिकों का उल्लेख भी करते हैं। उन्होंने आधुनिकता बोध को विज्ञान-टेक्नालाजी के व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर परखा है। औद्योगीकरण को मुक्तिबोध जन कष्ट-निवारण की प्रक्रिया के रूप में देखते थे। विज्ञान के नये आविष्कार और निर्माण कार्य को आशा और उत्साहवर्धक घटना मानते थे। विज्ञान पर विचार करते हुए उनकी दृष्टि में इस विशालकाय देश के करोड़ों लोगों की वर्तमान स्थिति और भविष्य की चिंता रहती थी। विज्ञान और टेक्नालॉजी के कारण पैदा हुई असंतुलित संवेगात्मक स्थिति से वे परिचित थे और इसलिए नई जीवन दृष्टि के हिमायती थे। इस नई जीवन दृष्टि के लिए वे व्यक्ति और जीवन के रचनात्मक मूल्यों पर बेहद जोर देते थे। वे अपनी वैज्ञानिक मानववाद की धारणा की रोशनी

टिप्पणी

में अमूर्त मानवतावाद के भावात्मक प्रतिमानों के अंधेरे को जानते थे। मुक्तिबोध मनुष्य के वास्तविक सुख (भौतिक संघर्ष), वास्तविक आशावाद (वैज्ञानिक मानववाद) और वास्तविक प्रगति (यथार्थ जीवन) के संदर्भों में सोचते थे। इसीलिए उनकी दृष्टि मानव जीवन की कल्पित आवश्यकताओं के बदले रोजमर्रा की वास्तविक आवश्यकताओं पर केंद्रित रही और इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने संस्कृति, इतिहास, विज्ञान और मानववाद को परखा।

'काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया' निबंध में आधुनिक भावबोध का पक्ष लेते हुए कहते हैं- "लेकिन, वस्तुत: आधुनिक भावबोध क्या है? मैं अपनी खुद की जिंदगी और दोस्तों की जिंदगी के तजुर्बे से बता सकता हूं कि अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करना आधुनिक भावबोध के अंतर्गत है। आधुनिक भावबोध के अंतर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम भी अधिक दत्तचित्त हों तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय योजना करें।

कुल मिलाकर मुक्तिबोध के चिंतन में समकालीन भारतीय जीवन-व्यवस्था की जड़ें हमेशा गहरे स्तर पर मौजूद रहीं। उन्होंने अपने साहित्य में मनोवैज्ञानिक आधार पर अनुभव को कलात्मक अनुभव में परिणित किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

49. मुक्तिबोध रचना प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के स्थान पर क्या मानते हैं?
50. शिवदान सिंह ने साहित्य को किस रूप में परिभाषित किया है?
51. मुक्तिबोध के अनुसार हम केवल साहित्यिक दुनिया में ही नहीं बल्कि कहां रहते हैं?
52. मुक्तिबोध का चिंतन कैसा है?
53. जीवनानुभवों का संवेदनात्मक कलात्मक रूप क्या है?
54. मुक्तिबोध ने जनसाधारण की मुक्ति का राजपथ किसे माना है?
55. जन कष्ट-निवारण की प्रक्रिया के रूप में मुक्तिबोध किसे देखते हैं?
56. विज्ञान के नये आविष्कारों और निर्माण कार्य को मुक्तिबोध किस रूप में देखते थे?

5.9 डॉ. नामवर सिंह

हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में नामवर सिंह एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभर कर आए हैं। 'कविता के नए प्रतिमान' नामक पुस्तक के कारण नामवर सिंह की हिंदी समीक्षा में विशेष पहचान बनी है।

5.9.1 नयी सोच, उदार दृष्टि

मुक्तिबोध प्रगतिवादी आलोचकों से जिस मांग को जोर-शोर से करते रहे हैं कि उन्हें नई कविता तथा नये साहित्य का व्यापक तथा उदार दृष्टि से विवेचित-विश्लेषित करना चाहिए- वह कार्य नामवर सिंह के द्वारा पूर्ण किया गया। नामवर सिंह ने प्राचीन काव्य में 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग', द्विवेदी जी के साथ 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' का संपादन एवं तेर-सोतेही के प्रख्यात भाषा शास्त्रीय ग्रंथ 'प्राचीन राजस्थानी' का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया है। डॉ. नामवर सिंह का 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक शोध प्रबंध काफी प्रसिद्ध है। डॉ. नामवर सिंह जी ने आलोचना के क्षेत्र में 'इतिहास और आलोचना', 'छायावाद', 'कहानी - नयी कहानी' और 'कविता के नए प्रतिमान' नामक पुस्तकों पर काम किया। डॉ. सिंह हिंदी साहित्य के इतिहास की ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण से पुनर्लेखन की मांग को आरंभ से ही रेखांकित करते रहे हैं। मार्क्सवादी पद्धति से 'छायावाद' नामक पुस्तक में उनके द्वारा गहन विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

5.9.2 छायावाद का सामाजिक सत्य

डॉ. नामवर सिंह ने 'छायावाद' नामक पुस्तक की भूमिका में कहा है कि 'यह निबंध छायावाद की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए छायावाद में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन करने के लिए लिखा गया है।' सामाजिक सत्य के उद्घाटन के लिए ही वे 'छायावादी स्वानुभूति' तथा भक्तों के आत्म निवेदन की भिन्नता-समता को खोजते हैं तथा स्वानुभूति, कल्पना, प्रकृति का मानवीकरण, अप्रस्तुत विधान आदि को कार्य-करण-संबंध' से व्याख्यात विश्लेषित करते हैं। वे इसमें 'सामाजिक पृष्ठभूमि' नामक आरोपित अध्याय न लिखने के कारण भी देते हैं, "सामाजिक सत्य कविता से खोज निकालने की चीज है, ऊपर से आरोपित करने की नहीं।" छायावादी चिंतन को 'सामाजिक सत्य' के साथ जोड़कर डॉ. सिंह कहते हैं कि "छायावादी काव्य के द्वारा सौंदर्य व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न हुआ है और यह स्वाधीनता भी व्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण समाज की स्वाधीनता की अभिव्यक्ति हैं।" छायावाद में राष्ट्रीय जागरण का दर्शन कराते हुए वे कहते हैं कि "छायावाद की कविताएं अपने पीछे एक विशाल परिदृश्य का पता देती हैं। छायावाद में जो सार्वभौम और शाश्वत तत्व दिखाई पड़ते हैं, वे सौंदर्यशास्त्र के किसी अलौकिक नियम से नहीं आए हैं अपितु उनके ऐतिहासिक कार्यों के ही पुरस्कार हैं।"

5.9.3 सैद्धांतिक आलोचना

डॉ. नामवर सिंह की 'इतिहास एवं आलोचना' नामक पुस्तक में अनेक निबंध सैद्धांतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मार्क्सवादी दृष्टि से 'व्यापकता और गहराई', 'कलात्मक सौंदर्य का आधार', 'सामाजिक संकट और साहित्य', 'प्रगतिवादी वस्तु और प्रयोगवादी रूप 'भ्रम और वास्तविकता', 'आधुनिक छंदों का विकास' छंद के कुछ नये प्रयोग', 'नई कविता की भाषा', 'नई कविता में लोक भाषा का प्रभाव', 'हिंदी साहित्य के इतिहास में लोक साहित्य का स्थान', आदि नवीन आलोचनाएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

'व्यापक तथा प्रथम गहराई' नामक निबंध में प्रथम वाक्य के साथ डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि "अक्सर देखते हैं कि पानी के सोते की तरह लेखक साफ होता है तो उथला कहा जाता है और गहला होता है तो गहरा।"

जो आलोचक व्यक्तिवादी मनोविश्लेषण शास्त्र के अवचेतन-सिद्धांत से साहित्य का मूल्यांकन करते हैं उन पर डॉ. नामवर सिंह ने 'व्यापकता तथा गहराई' में प्रबल आक्रमण किया है। क्योंकि इन व्यक्तिवादियों को पता नहीं है कि "साहित्य व्यक्ति से शुरू होकर अनेक अंतर्वैयक्तिक सामाजिक संबंधों में चला जाता है।"

'कविता के नये प्रतिमान' में डॉ. सिंह ने प्राचीन तथा नवीन सर्जनात्मकता का मूल्यांकन करने के लिए और न्याय दिलाने के लिए लक्ष्मीकांत वर्मा की पुस्तक 'नई कविता के प्रतिमान' नामक पुस्तक से दिशा-दृष्टि में अलग हटते हुए देश-विदेश के सिद्धांतों से नया काव्य-शास्त्र निर्मित किया है। जब नयी कविता का शास्त्र बना तो पहली पुस्तक श्री लक्ष्मी कांत वर्मा की 'नई कविता के प्रतिमान' लिखी गई। दृष्टि प्रतिगमिता के कारण इस पुस्तक को डॉ. सिंह ने कहा "पहला दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास लक्ष्मीकांत वर्मा का ग्रंथ है। नई कविता के प्रतिमान के बारे में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि डॉ. नामवर सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान' पुस्तक को इस उद्देश्य से लिखा "समूची नई कविता को ठीक-ठीक देखने के लिए न केवल नई कविता के प्रतिमान की जरूरत है, बल्कि कविता के नये प्रतिमान को ठीक-ठीक देखने के लिए नई कविता के प्रतिमान जरूरत है।" अत: सभी कालों की कविता

टिप्पणी

टिप्पणी

के काव्यबोध को परखने के लिए डॉ. सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान' की रचना की है। इस प्रकार 'कविता के नये प्रतिमान' में कविता के लगभग सभी पक्षों पर नामवर सिंह ने विचार किया है। आलोचक की भूमिका के विषय में वे लिखते हैं कि–

"आलोचक की वस्तुनिष्ठता इस बात में है कि वह किसी कृति के मूल्यांकन की प्रक्रिया में उसके रूप की जो पुनः सृष्टि अपने लिए करता है वह यथासंभव अधिक से अधिक मूल कृति के निकट हो। इस प्रयास में एकमात्र अवलंब उस कविता की भाषा है। उस कविता से संबंधित चाहे जितनी बाहरी सूचनाएं उसे उपलब्ध हों किंतु 'खेल के नियम' के मुताबिक आलोचक उन सूचनाओं से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।"

डॉ. नामवर सिंह की 'दूसरी परंपरा की खोज' साहित्य विधा की दृष्टि से एक सर्वथा नवीन एवं मौलिक रचना मानी जाती है। इसमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर विचार के बहाने भारतीय संस्कृति और साहित्य की लोकोन्मुखी क्रांतिकारी परंपरा को खोजने का सर्जनात्मक प्रयास किया गया है जो कबीर के विद्रोह और सूर के माधुर्य के बीच अर्थपूर्ण अविरोध देखने में सक्षम हैं। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव द्वारा इस संबंध में कहा गया है कि- "नामवर सिंह की आलोचना की सार्थकता इसलिए है कि वह तीखे वैचारिक संघर्ष और साहस के एक तरह की रचनाशीलता और प्रखर जीवंत संवादोत्मकता का साक्ष्य भी है। विचारधारावादी आलोचक और भी हैं पर वे अक्सर उस ढंग की सर्जनात्मक विकलता से वंचित हैं जो नामवर सिंह की आलोचना का सहज गुण है। केवल स्थापनाएं करने वाली या परिभाषाएं देने वाली आलोचना ही आलोचना को दर्शन बना सकती है। सर्जनात्मक साहित्य नहीं। नामवर सिंह की आलोचना सर्जनात्मक साहित्य है।"

5.9.4 रस विवेचन

डॉ. नामवर सिंह ने 'रस को प्रतिमान की प्रसंगतानुकूलता' पर बहस को केंद्रित किया है। उनके अनुसार "प्रायः सभी नये लेखक इस बात से एकमत दिखाई पड़ते हैं कि नये प्रतिमानों का संबंध रस से नहीं हो सकता।" डॉ. नामवर सिंह यहां अनुभूति की प्रामाणिकता पर आ जाते हैं। यहीं उनकी सीधी टक्कर नयी कविता पर भी एक सिद्धांत का शास्त्र पनपाने वाले डॉ. नगेंद्र से होती है। डॉ. नगेंद्र सार्वभौम काव्य-सिद्धांत बनाने में प्रवृत्त रहे हैं, उनका डॉ. नामवर सिंह ने जोरदार विरोध किया है। वे मानते हैं 'रस सिद्धांत' में डॉ. नगेंद्र ने 'अर्थ मीमांसा' तथा 'ध्वनि' से निपट विरक्ति रखते हुए एक निराधार स्थापना की है।

5.9.5 काव्य भाषा का स्वरूप

'काव्य भाषा तथा सृजनशीलता' की रूपात्मक समीक्षा या नई समीक्षा के प्रभाव से नई कविता में यह बहुचर्चित रहा है। मार्क्सवादी खेमे से बाहर के रचनाकारों तथा आलोचकों ने इस काव्य-प्रतिमान का जोरदार समर्थन किया है। इस परंपरा को अज्ञेय ने ही शुरू किया। सर्वप्रथम उन्होंने 'काव्य-भाषा' को एक प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसे डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'भाषा तथा संवेदना' नामक पुस्तक में सैद्धांतिक स्वीकृति दी है। इसी प्रतिमान को डॉ. देवराज ने 'प्रतिक्रियाएं' नामक अपनी पुस्तक में 'काव्य भाषा' का 'संदर्भवाद' कहा है। इन्होंने डॉ. चतुर्वेदी के मत का खंडन करते हुए उसे 'संदर्भपरक घपला' कहा है। पश्चिम के नये आलोचक रेन्सम आदि काव्य-भाषा या कविता के रूप

टिप्पणी

पक्ष को प्रधानता देकर कथ्य-पक्ष या वस्तु पक्ष को नकारने पर तुले रहे हैं। इसी दृष्टि को स्वीकृति देकर नये प्रयोगवादियों ने कहा, "कवि की दृष्टि में भाषा कवि के प्रयोग का साधन है और इस प्रकार 'कविता भाषा का प्रयोग' है।" डॉ. नामवर सिंह यहां रूपवादी खतरा महसूस करके भी 'काव्य-भाषा' के रूपवादी समर्थकों के साथ हो जाते हैं। उन पर पश्चिमी रूपवादी आलोचना का प्रभाव है।

'काव्य-बिंब और सपाटबयानी' नामक निबंध में बिंब को काव्य-प्रतिमान मानने वाले पश्चिमी आलोचकों की चर्चा है। यहां वे हिंदी समीक्षा में आचार्य शुक्ल जी के 'बिंब ग्रहण' से शुरू करते हैं, पल्लव की भूमिका में घोषित 'चित्र भाषा की आवश्यकता' के साथ निराला जी के 'विराट चित्रों' की दृष्टि का संकेत देते हैं। वे डॉ. नगेंद्र की 'काव्य बिंब' दृष्टि का खंडन करते हुए डॉ. केदारनाथ सिंह के साथ हो जाते हैं। यहीं पर डॉ. नामवर सिंह पर एफ.आर. लीविस की दृष्टि का प्रभाव है। बिंबों में लीविस का काव्य-मूल्य के रूप में 'गतिमयता का सिद्धांत' इन्हें पसंद है। धीरे-धीरे डॉ. सिंह टी.एस. इलियट के बिंब प्रतीकवादी सिद्धांत के प्रति उन्मुख लगते हैं।

5.9.6 आवयविक सिद्धांत का वस्तुनिष्ठ रूप

'काव्य संरचना : प्रगोतात्मक और नाटकीय' में डॉ. सिंह ने निराला जी के 'संरचना' से संबंधित वक्तव्य को उद्धृत करने के बाद प्राणिशास्त्रीय दृष्टि के आवयविक सिद्धांत को स्वीकृति दी है। ध्यातव्य है कि यह सिद्धांत स्वच्छंदतावादियों तथा मार्क्सवादियों को पश्चिम में समान रूप से मान्य रहा है। स्वच्छंदतावादी इसे आत्मनिष्ठ दृष्टि से और मार्क्सवादी वस्तुवादी दृष्टि से ग्रहण करने का आग्रह रखते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने आवयविक सिद्धांत को वस्तुनिष्ठ रूप में ग्रहण करने का मार्ग निर्दिष्ट भी किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि "भावबोध की यह तीव्रता संदर्भ के जिस प्रभावशाली चित्र से संबद्ध है वह स्वयं मुक्तिबोध के शब्दों में 'भाव का वस्तुमूलक आकलन' है। इसे ही आचार्य शुक्ल ने 'विभावन व्यापार' की संज्ञा दी है और टी.एस. इलियट ने 'आब्जेक्टिव को रिलेटिव की'।"

निष्कर्षतः डॉ. नामवर सिंह में आचार्य शुक्ल के साथ मुक्तिबोध, आई.ए. रिचर्ड्स, टी.एस. इलियट तथा डॉ. एफ.आर. लीविस एक साथ बोलते दृष्टिगत होते हैं।

गतिविधि

आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं डॉ. नगेंद्र की समीक्षा पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

किसी कृति की निंदा या प्रशंसा करना आलोचना नहीं कहलाती बल्कि कृति या विचारधारा का विश्लेषण करने के लिए आलोचना में पद्धति एवं प्रणाली महत्वपूर्ण होती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

57. डॉ. नामवर सिंह ने हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की मांग किस दृष्टिकोण से की है?
58. 'छायावाद' नामक पुस्तक में किस पद्धति से विवेचन किया गया है?
59. नामवर सिंह किस साहित्य में राष्ट्रीय जागरण के दर्शन करते हैं?
60. डॉ. नामवर सिंह ने किस पुस्तक में कविता के लगभग सभी पक्षों पर विचार किया है?
61. डॉ. नामवर सिंह की कौन सी रचना साहित्य विधा की दृष्टि से सर्वथा नवीन एवं मौलिक रचना मानी जाती है?
62. डॉ. नामवर सिंह नये प्रतिमानों का संबंध किससे नहीं मानते?
63. डॉ. नामवर सिंह ने 'काव्यास्वाद की प्रक्रिया' किसे माना?
64. किस पाश्चात्य विचारक के बिंब प्रतीकवादी सिद्धांत के प्रति डॉ. नामवर सिंह उन्मुख हैं?

टिप्पणी

5.10 सारांश

आचार्य शुक्ल के आलोचना के क्षेत्र में आने के समय हिंदी साहित्य धड़ल्ले के साथ संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव ग्रहण कर रहा था। अंग्रेजी समालोचकों के ग्रंथों का भारतीय महाविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन अबाध गति से होने लगा था। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के फलस्वरूप गुरुकुलों एवं पाठशालाओं में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन पर बल दिया जाने लगा था। इस प्रकार इस युग में उत्पन्न हुए समालोचक अंग्रेजी और संस्कृत के समान प्रभाव से ग्रस्त थे। इस युग के समालोचकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने कृति की गहराई में प्रविष्ट होकर कृतिकार के सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया। आचार्य शुक्ल ने काव्य में लोकमंगल की भावना को महत्व देने के साथ ही अपनी विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से व्याख्यात्मक आलोचना की स्थापना भी की।

आचार्य शुक्ल युग-निर्माता आलोचक थे। इन्होंने आलोचना साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की। परंपरा से चली आ रही आलोचना पद्धतियों की त्रुटियों का निराकरण कर उन्हें निर्दोष स्वरूप प्रदान कर साहित्य की महती सेवा की तथा आलोचना-साहित्य में एक युग का सूत्रपात किया। साहित्य-समालोचन और निबंध साहित्य में उनके समान कोई मेधावी लेखक नहीं हुआ। यही कारण है कि उनका साहित्य सेवाकाल समालोचना साहित्य के विकास में 'शुक्ल युग' के नाम से प्रख्यात है। शुक्ल जी द्वारा उपस्थित 'चिंतनपरक विवेचन' के काव्यात्मवाद का आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। शुक्ल जी ने एक ओर जहां काव्य के सैद्धांतिक पक्ष का विवेचन कर अपनी तथ्यग्राहिणी प्रज्ञा का परिचय दिया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी व्यावहारिक समीक्षाओं द्वारा भी समालोचना का बहुत उच्च और व्यापक प्रतिमान स्थापित किया।

उन्होंने रसवादी परंपरा को समृद्ध किया एवं परवर्ती चिंतकों को चिंतन की नई धारा और दिशा प्रदान की। रस-मीमांसा जैसे गंभीर विषय को उन्होंने नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन का विषय बनाया है। इसी प्रकार आधुनिक युग की अनेकानेक प्रवृत्तियों का विश्लेषण उन्होंने अपने पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व की चेतना से जिस प्रणाली में किया है, वह हिंदी समालोचना का आधारभूत प्रतिमान बन गई। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-सिद्धांतों का व्यापक और गहन अध्ययन किया तथा अपनी प्रतिभा के बल पर मौलिक उद्भावनाएं प्रस्तुत कीं। उन्होंने समालोचना–साहित्य में एक अद्भुत क्रांति और युग-प्रवर्तन किया। उनका आविर्भाव-काल भारतेंदु युग का अवसान और द्विवेदी युग का प्रारंभ था, किंतु वे अपने सम्मुख प्रवाहित युग-धारा के ही अनुवर्ती नहीं रहे, अपितु वे उसे बहुत दूर तक आगे ले गए। उन्होंने एक सफल समालोचक के रूप में अपने युग की प्रवृत्तियों का सम्यक् आलोचन किया। उन्होंने रसवाद की मीमांसा भारतीय और पश्चिमी विचारधारा का सम्यक् सामंजस्य करते हुए की और वे अलंकारवाद की रूढ़िग्रस्तता को दूर कर उसे जीवन-सौंदर्य का पर्याय बना कर ग्रहण सके।

उन्होंने अपनी आलोचनाओं द्वारा साहित्य को यह संदेश दिया कि वह अपने सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख होकर चले। उन्होंने उन आलोचकों पर कठोर व्यंग्य किया जो समीक्षा के एक ही अंग अथवा उसकी संकीर्ण परिधि में सिमट कर रह जाते हैं तथा जिनमें अधिकतर लोगों में अपने पक्ष के समर्थन का दुराग्रह प्रबल होता है। उन्होंने ऐसी आलोचनाओं को किसी भी दृष्टि से साहित्य की वृद्धि के लिए उपादेय नहीं बताया। शुक्ल जी की उच्च काव्य-भावना का ही परिणाम था कि समालोचना के क्षेत्र में उनकी विचारधारा एक निश्चित मानदंड बना सकी और वे आलोचना के नवीन रूप और प्रकारों को प्रतिष्ठित कर सके।

प्रगतिवादी आलोचना सिद्धांतों की सैद्धांतिक दृष्टि को व्यापक स्तर पर स्पष्ट करने में शिवदान सिंह चौहान का महत्वपूर्ण स्थान है। मार्क्सवाद में उनकी गहरी आस्था होने के कारण वे कहते हैं कि "मार्क्सवाद को स्वीकार करना एक प्रगतिवादी के लिए आवश्यक है।" उनकी मूल आलोचना-दृष्टि को निर्मित करने में मार्क्स तथा काडवेल का बहुत प्रभाव रहा है। शिवदान सिंह चौहान फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र तथा सार्त्र के अस्तित्ववाद की नकल भारतीय समीक्षा में होते हुए देखकर वे अत्यंत दुखी होते हैं– इसका कारण ये कि लेखकों तथा आलोचकों ने उनकी नकल करके आस्था, कुंठा, मानवद्रोह और समाज-निरपेक्ष को साहत्यिक कृतित्व का लक्ष्य बना लिया है। 'कला कला के लिए' रूपवादी सिद्धांत का वे घोर प्रतिक्रियावादी दृष्टि अपनाने के कारण खंडन करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रतीकवाद, प्रभाववाद, अभिव्यंजनावाद चेतना, प्रवाहवाद आदि मानव को भटकाने वाले जीवन विरोधी सिद्धांत हैं। अपने तीखे स्वर में शिवदान सिंह ने 'पश्चिमी प्रयोगवाद' की आलोचना करते हुए उसे पूंजीवाद की दलाली का दर्शन और आई.ए. रिचर्ड्स, टी.एस. इलियट, जान क्रोरेन्सस, माडेन आदि को उसका प्रचारक बताया। रूसी विचारक वेलिन्स्की और टॉलस्टाय द्वारा रचित यथार्थवादी आलोचना सिद्धांतों ने उन्हें बेहद प्रभावित किया। वे कलाकृति को समग्र जीवन का वैविध्यपूर्ण और मूर्त प्रतिबिंब मानते हैं इसलिए उनके अनुसार काव्य में मानव-संबंधों, कार्यों, भावों, विचारों, नैतिक मान्यताओं, सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों और समस्याओं की मूर्त और सजीव झांकी होती है। प्रयोगवादी कवियों की निंदा करते हुए उन्होंने उनकी विचारधारा को आधुनिक रीतिवाद की तरह भटकाव की संज्ञा देते हुए सलाह दी कि ऐसी स्थिति में रचना की 'साहित्यिकता', 'सामाजिकता', 'वास्तविकता' को परखने के लिए मार्क्सवादी-सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि को ग्रहण करना चाहिए। शिवदान सिंह चौहान की समीक्षा में भारतीय तथा पाश्चात्य प्रगतिशील काव्यों का समन्वय दिखाई देता है।

नंददुलारे वाजपेयी आधुनिक काल के स्वच्छंदवादी (छायावादी) युग के समीक्षकों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने आधुनिक साहित्य के साथ-साथ संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर भी समीक्षात्मक दृष्टि डाली है। आचार्य नंददुलारे काव्यात्मा के रूप में 'रस' को स्वीकार करते हैं। वे मानव हृदय में उत्पन्न होने वाले सौंदर्य संवेदन को 'रस' कहते हैं। भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद, शंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद एवं अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद इन चारों वादों को आधुनिक मनोवैज्ञानिक या सौंदर्यशास्त्र संबंधी दृष्टि से देखने की भी आवश्यकता है। 'संयोग' और 'निष्पत्ति' का अर्थ समझाने के लिए चार आचार्यों भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनव ने अपनी-अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। आचार्य वाजपेयी ने इन चारों व्याख्याओं की विस्तार से समीक्षा की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये चारों मत क्रमशः काव्य की प्रेषणीयता और काव्य-रस के आस्वादन की समस्या को समझाने का प्रयत्न करते हैं और उनमें से प्रत्येक मत समस्या के एक-एक पहलू को लेकर आगे बढ़ता है।

टिप्पणी

टिप्पणी

वाजपेयी जी का छायावाद विषयक विवेचन तो अत्यंत प्रौढ़ और व्यापक धरातल पर अधिष्ठित है। उनके पूर्व जिन आचार्यों ने छायावाद की विवेचना की थी, उसमें उसके प्रति आक्रोश का स्वर ही उदात्त था, जिसका परिणाम यह हुआ कि छायावाद का सौंदर्य-पक्ष उनसे उद्घाटित नहीं हो सका। उस युग में छायावादी कवियों ने स्वयं उक्त वाद के विषय में अपनी धारणाएं व्यक्त कीं, किंतु उनके समर्थन की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही थी। वाजपेयी जी का छायावाद-विषयक विश्लेषण ऐसे समय में अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुआ। उनके मतानुसार व्यक्ति या समाज के बीच चलने वाले स्वाभाविक आदान-प्रदान को सचेत होकर ग्रहण करना काव्य-साहित्य को प्रगतिशील ही नहीं बनाता, अपितु उसे उत्थान भी प्रदान करता है। इस प्रकार उन्होंने प्रगतिशील साहित्य के लिए किन्हीं विशेष प्रकार की जीवन आस्थाओं अथवा बंधी-बंधाई परंपराओं में चलना अहितकर माना है, क्योंकि ऐसा करने से हम साहित्य के उस उदात्त लक्ष्य की अवहेलना कर देते हैं जिसके कारण उसे शाश्वत गौरव प्राप्त होता है। उनका स्पष्ट कहना है कि 'बाह्य संघर्ष की अपेक्षा बौद्धिक और मानसिक संघर्ष का प्रगतिशील साहित्य में अधिक महत्व है।' उन्होंने प्रगतिशील साहित्य को समय-सापेक्ष निर्दिष्ट कर ऐसे तीन सूत्रों की आयोजना की है जिसके द्वारा प्रगतिशील साहित्य का स्वरूप अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है। वाजपेयी जी का प्रयोगवाद-विषयक विवेचन अत्यंत व्यापक और युक्ति संगत है। प्रयोगवाद को उन्होंने 'बैठे-ठाले का धंधा' बताते हुए कहा कि प्रयोक्ताओं के पास न तो काव्य-संबंधी कोई कौशल था और न किसी प्रकार की कथनीय वस्तु थी। वाजपेयी जी मुख्यतः आधुनिक साहित्य के समालोचक हैं, अतः उन्होंने आधुनिक साहित्यकारों के साथ उन कृतियों का भी विशेष रूप से मूल्यांकन और समीक्षण किया है जो आधुनिक युग में महत्वपूर्ण समझी जाती है।

वाजपेयी जी की समालोचना में सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का मेल है। आचार्य शुक्ल की भांति वे भी काव्य-कला और जीवन दर्शन के विषय में अपनी निश्चित धारणा रखते हैं और अपने एक निर्धारित प्रतिमान से ही काव्यकारों और उनकी कृतियों का परीक्षण करते हैं। उन्होंने कला को रूप और अरूप दोनों के चित्रण में समर्थ बतलाकर उसे श्री शोभा-संपन्न नारी-रूप में देखा है जिसके मोहिनी वेश में भावों की प्रतिभा सौंदर्य-राशि से अलंकृत होकर प्रकट होती है। वाजपेयी जी ने पूर्वाग्रह अथवा दुराग्रह की भावना से दूर रह कर एक निर्णायक समीक्षक के रूप में समालोच्य साहित्यकारों के संबंध में अपनी विवेकपूर्ण सम्मति निस्संकोच भाव से प्रकट की है। वे शुक्ल-युग की नैतिकता और मर्यादा में ही काव्य-समीक्षा का व्यापक रूप न देख कर उसे सौंदर्यमूलक स्वच्छंदतावादी दृष्टि से विवेचित करना अच्छा समझते हैं। वाजपेयी जी का हिंदी समीक्षकों की श्रेणी में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है।

हिंदी आलोचना में स्वच्छंतावादी आलोचकों में डॉ. नगेंद्र का नाम आता है। उनकी आलोचना पद्धति प्रमुख विशेषता है– भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रों का समन्वय। उनकी व्यावहारिक समालोचना का क्षेत्र मुख्यतः आधुनिक हिंदी पर ही है। डॉ. नगेंद्र ने हिंदी-आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से संवर्द्धित किया है। वे रसवादी आलोचक हैं, 'रस-सिद्धांत' में रस की सांगोपांग विवेचना की है। डॉ. नगेंद्र के सुमित्रानंदन पंत, साकेत एक अध्ययन, विचार और अनुभूति, विचार और विवेचन तथा विचार और विश्लेषण प्रमुख समीक्षात्मक निबंध संग्रह हैं जिनमें सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों समालोचनाओं के उदाहरण हैं।

टिप्पणी

वे छायावादी काव्य के प्रति शंकालु और शास्त्र को लेकर आश्वस्त रहे हैं। 'छायावाद की परिभाषा' शीर्षक अपने आरंभिक और प्रसिद्ध निबंध में वे लिखते हैं, "यह तो स्पष्ट ही है कि छायावाद का काव्य प्रथम श्रेणी का विश्व-काव्य नहीं हैं- कुंठा की प्रेरणा प्रथम श्रेणी के काव्य को जन्म नहीं दे सकती।" अपने दूसरे प्रिय क्षेत्र रीति काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन आरंभ करते हुए इस काल की कविता को वे 'क्षयग्रस्त' बताते हैं छायावाद की दूसरी महत्वपूर्ण और सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा में उसे स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह कहा गया है। इस परिभाषा को सूत्रबद्ध कर सर्वसुलभ बनाने का श्रेय डॉ. नगेंद्र को है। अपनी पहली आलोचनात्मक पुस्तक 'सुमित्रानंदन पंत' में उन्होंने कहा था- स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है।

प्रगतिवादी विचारधारा पर बात करते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि आज का प्रगतिवादी आलोचक जिन मंत्रणाओं से ग्रस्त है उनमें मूल प्रवृत्ति द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की है। डॉ. नगेंद्र ने पंत को हिंदी में प्रगतिवाद का सर्वप्रथम लेखक कह कर तदंतर यशपाल, नवीन, दिनकर और अंचल आदि को समाहित किया है। प्रयोगवादी काव्य को नगेंद्र ने अत्यंत दुरुह बताया है। उनका मानना है कि प्रयोगवादी भावतत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक स्थान पर बुद्धिगत संबंध हैं।

डॉ. नगेंद्र ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर भी विस्तार से विचार किया है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यानुभूति का सूक्ष्म विवेचन है और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में कवि की मनःस्थिति तथा काव्य निर्माण में प्रेरणा देने वाले सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण है। इसलिए 'विचार एवं विश्लेषण' में उनका कहना है कि "इस प्रकार में दोनों एक-दूसरे के विरोधी न होकर सहायक या पूरक हैं। इनके तुलनात्मक अध्ययन की सबसे बड़ी उपयोगिता यह हो सकती है कि इनका समन्वय करके पूर्णतर काव्यशास्त्र का निर्माण किया जाए। जिसमें सृष्टा और भोक्ता के पक्षों का व्यापक विवेचन हो।" रस को डॉ. नगेंद्र ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचित किया है। रस विवेचन पर उनकी 'रस सिद्धांत' पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। रीति-काव्य के वैशिष्ट्य को रेखांकित करने में उनके अध्ययन का ऐतिहासिक महत्व है। नगेंद्र शुद्धतवादी हैं। वे साहित्य को साहित्येतर विषयों से मुक्त रखना चाहते हैं। साहित्यिक स्तर की रक्षा के लिए पहली आवश्यकता यह है कि साहित्य में राजनीतिक मूल्यों का प्रवेश निषिद्ध रहना चाहिए। राजनीति से अभिप्राय है भेदनीति। जो सांसारिक या भौतिक लाभालाभ पर आश्रित रहती है।

डॉ. नगेंद्र ने हिंदी-आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से संवर्द्धित किया है। वे रसवादी आलोचक हैं उन्होंने 'रस-सिद्धांत' में रस की सांगोपांग विवेचना की। उनकी व्यावहारिक आलोचना तथा सैद्धांतिक आलोचना में प्रीतिकर एकसूत्रता दिखायी पड़ती है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के महत्वपूर्ण काव्यशास्त्रों का हिंदी-अनुवाद करने-कराने में सबसे अधिक योग दिया है। इस प्रकार आपने जाना कि आधुनिक हिंदी आलोचना को समृद्ध करने में डॉ. नगेंद्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी के लब्धप्रतिष्ठित लेखक व समालोचक रहे हैं। उनकी समीक्षा दृष्टि मानवतावाद से ओत-प्रोत हैं तथा परवर्ती आलोचकों को श्रेष्ठ समीक्षा के उत्तम गुणों से अवगत कराती है।

टिप्पणी

काव्यात्मवाद संबंधी चर्चा में 'रस' को महत्व देते हैं तथा भक्ति रस और उसके स्वरूप मधुर रस को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रसानुभूति के आनंद को उस आनंद के समान माना जो योगियों को अनुभव होता है। आत्मा द्वारा अनुभूत यह अलौकिक रस ही उन्हें भाता है। उनके अनुसार रस विश्वजनीन होता है। उसमें कोई वैयक्तिक राग-द्वेष नहीं होता। रस-बोध के समय सहृदय विभावों के साथ अपना अभेद अनुभव करता है। अभेद की अनुभूति में कोई बाधा पड़े तो रसानुभव असंभव हो जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी समूचा भारतीय काव्य-साहित्य 'रस' को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न है। यद्यपि ध्वनि-संप्रदाय अन्यान्य अलंकार संप्रदायों की अपेक्षा नवीन था तथापि 'रस' के प्राचीन सिद्धांत को आत्मसात करने की शक्ति उसी में थी। रस प्रकृत्या ही व्यंजनीय है उसे ध्वनि के अंतर्गत ही आना चाहिए। रस की महत्ता के साथ आचार्य द्विवेदी औचित्य को भी महत्व प्रदान करते हैं और कहते हैं कि साहित्य ही मानव जाति की अंतर्निहित एकता को स्थापित करने में सहयोगी सिद्ध होता है। मानवीय संस्कृति की नींव को मज़बूत करता है। इसके लिए शब्द और अर्थ के औचित्य को समझना होगा। काव्य स्थूल जगत से विच्छिन्न होकर नहीं रह सकता। शब्द और अर्थ ही उसके शरीर हैं। अर्थ शब्दों द्वारा सूचित बाह्य सत्ता को प्रकट करते हैं। एक व्यक्ति के चित्त में स्थित अर्थ को दूसरे के चित्त में प्रवेश कराके ही शब्द सार्थक होता है। यहां अर्थ को दूसरे के चित्त में प्रवेश कराने की प्रक्रिया में औचित्य आवश्यक है। वरना अर्थ, अनर्थ में या निरर्थक भी सिद्ध हो सकता है।

द्विवेदी जी ने सर्वप्रथम भारतवर्ष की भाषा-समस्या को अपनी समालोचना का विषय बनाया है। द्विवेदी जी का साहित्य का मूल्यांकन संबंधी दृष्टिकोण अत्यंत उदार और प्रगतिशील है। यद्यपि उनका प्राचीन शास्त्रीयता का अध्ययन अत्यंत गंभीर और व्यापक है, किंतु आज के प्रगतिशील युग में वे उसकी सीमाओं से भी अपरिचित नहीं है। उनकी मान्यता है कि बिना नूतन साहित्यिक दृष्टिकोण को स्वीकार किये हम अपने आधुनिक साहित्य की समालोचना कर ही नहीं सकते। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिंदी साहित्य के एक प्रमुख विचारक हैं और उन्होंने साहित्य जगत को मानववादी दृष्टिकोण प्रदान किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का पक्ष है कि हिंदी का सच्चा साहित्य 'भक्तिकाल' से आरंभ होता है। आदिकाल में जो धारा प्राणधारा है वह अध्यात्म की ही है। इसलिए उनका पक्ष है कि भारत में यदि मुसलमान न भी आए होते तो हिंदी साहित्य का इतिहास बारह आने वही होता जो है–चार आना प्रभाव परिस्थितियों का भी है। वस्तुतः इसी भिन्न दृष्टि वाले प्रस्थान में इतिहास लेखन एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है–वह सहकारी लेखन से ही संभव है। द्विवेदी जी शोधी और पंडित रहे हैं। भारतीय प्राचीन साहित्य और दर्शन के अध्येता रहे हैं। आगमों के विभिन्न रूपों का परिशीलन किया है और जिसे 'फ्री थिंकिंग'–मुक्त चिंतन कहा जाता है–उनके निबंधकार रूप में वह है ही। इतिहास की शव-साधना में उनकी गंभीर आस्था है। इस माने में वे राष्ट्रीय होकर भी अंतर्राष्ट्रीय है।

डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी की प्रगतिवादी समीक्षा में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में उनका प्रवेश, स्वच्छंदतावादी समीक्षक के रूप में हुआ। साहित्य में मनुष्य की बाह्य इंद्रियां, हृदय और मस्तिष्क तीनों का संबंध होता है। रूप, भावना तथा

टिप्पणी

विचार की एकता से कला सृष्टि संभव है।" जहां तक उनके द्वारा प्रस्तुत इंद्रिय बोध की प्राथमिकता का प्रश्न है तो उनका यह दृष्टिकोण मार्क्स की उस विचारधारा का अनुसरण है, जिनमें प्रत्येक शास्त्र के अध्ययन के लिए इंद्रिय-बोध को प्रस्थान बिंदु माना गया है। कला-सृष्टि का आधार उनके मत से मनुष्य का इंद्रिय-बोध है। मनुष्य की चेतना में सबसे व्यापक स्तर इंद्रिय बोध का है। उसके विचार बदल जाते हैं, भाव बदल जाते हैं लेकिन उसका इंद्रिय बोध अपेक्षाकृत स्थायी होता है। साहित्य का प्रभाव दर्शन और विज्ञान से अधिक व्यापक इसीलिए होता है कि उसका संबंध इंद्रिय बोध से है। साहित्य का माध्यम ही रूपमय है। कल्पना के द्वारा साहित्य श्रोता या पाठक के मन में भिन्न-भिन्न रूपों की सृष्टि करता है। इंद्रिय बोध के अभाव में शुद्ध कल्पना असंभव होती है। उनके अनुसार साहित्य-सृजन के हेतु के रूप में जिन तत्वों इंद्रिय-बोध, भाव तथा विचार के समन्वय पर उन्होंने बल दिया है, वे भी उनके अनुसार समाज-सापेक्ष हैं। इंद्रियों द्वारा जिस आनन्द का बोध होता है, उसकी वस्तुगत सत्ता बाह्य जगत में ही निहित रहती है। भाव-जगत का आधार भी इसी प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की वे अनुभूतियां ही हैं जिनका विकास सामाजिक जीवन के धरातल पर ही संभव है। सामाजिक जीवन की परिस्थितियां मनुष्य के विचार जगत में परिवर्तन ला देती हैं।

भारतीय काव्य शास्त्र में रस-प्रतीति के संबंध में जो विभिन्न मत प्रस्तुत किये गए हैं उन्हें वे एक-दूसरे का विरोधी न मानकर पूरक के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके मत से सौंदर्य वस्तुतः कलाकृति का उत्कर्ष है और रस उस उत्कर्ष की सहृदयजन्य प्रतीति। डॉ. शर्मा ने रस निष्पत्ति के सिलसिले में उत्पत्तिवाद, अनुमानवाद, भुक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद नाम से जो चार मत प्रचलित हैं, उनको एक-दूसरे के विरोधी न मानकर पूरक माना। प्रत्येक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह सामाजिक यथार्थता को ग्रहण करते हुए जनशक्ति को चेतना की नई भूमिकाओं की ओर अग्रसर करे, सुख और जनकल्याण का प्रशस्त आधार प्रस्तुत करे। यही साहित्य का सामाजिक उपयोग होगा।

छायावादी काव्यधारा के अंतर्गत यद्यपि महाकवि निराला ही डॉ. शर्मा के द्वारा प्रमुख रूप से विवेच्य रहे हैं, फिर भी उन्होंने प्रसाद, पंत तथा महादेवी वर्मा के संबंध में भी अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। उनके मत से, प्रसाद का अधिकांश साहित्य विशेषतया उनका कथा साहित्य यथार्थवादी भूमिका पर आधारित है। पंत के काव्य की समीक्षा करते हुए जहां एक ओर उनकी 'ग्राम्या' को उन्होंने, 'प्रगतिशील कविता का ऐतिहासिक मार्ग चिह्न कहा है, वहीं उनकी नव्यतम कृतियों 'स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा' आदि की पर्याप्त आलोचना भी की है। महादेवी के काव्य की अतिशय वैयक्तिकता एवं वेदना की आलोचना करने के बावजूद उन्होंने यह स्वीकार किया है कि निराला को छोड़कर किसी अन्य कवि में जीवन के प्रति इतनी चाह नहीं है जितनी महादेवी में।

प्रगतिवादी समीक्षा के क्षेत्र में भी डॉ. रामविलास शर्मा का अपने सहयोगियों से पर्याप्त मतभेद हैं। उन्होंने शिवदानसिंह चौहान की इस स्थापना का कि कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है, का खंडन किया है। कहा है कि 'अगर कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है तो साहित्य में प्रगतिशील या प्रतिक्रियावादी का भेद करना निरर्थक है।' डॉ. शर्मा ने माना कि 'न तो साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है न आलोचक। वे प्रगतिशील तभी

टिप्पणी

हो सकते हैं जब वे जन साधारण का पक्ष लेते हैं।' प्रगतिशील साहित्यकार के लिए दो चीजें आवश्यक हैं– समाज के परस्पर विरोधी संबंधों का चित्रण तथा विकासमान संभावना की कल्पनापरक अभिव्यक्ति। आज के युग का सत्य यह है कि एक तरफ जनता साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही है दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतें और उसके हिमायती उसे दबाने और बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस द्वंद्व में कलाकार किसी अद्वैत युग सत्य का सहारा न लेकर जनता या उसके विरोधियों का पक्ष लेता है इसलिए स्वभावत: प्रगतिशील होकर उस युग विशेष और समाज विशेष और जनता का पक्ष लेने पर ही उसे प्रगतिशील कहा जा सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा की व्यावहारिक समीक्षा भी मूलत: मार्क्सवादी आदर्शों पर आधारित है। वे कवि लेखक तथा समीक्षक ही उनके लिए प्रमुख रूप से विवेच्य हैं, जिसकी कृतियों में जनवादी तत्वों की प्रधानता रही है अथवा जिनके अंतर्गत स्वस्थ सामाजिक मूल्यों की स्थापना हो सकी है। इस दृष्टि से आधुनिक हिंदी साहित्य के अंतर्गत उन्हें निराला, प्रेमचंद और आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीत हुए। इस प्रकार प्रगतिशील आंदोलन के विकास के साथ डॉ. शर्मा की समीक्षा नये आदर्शों से प्रभावित तथा विकसित हुई, हिंदी आलोचना साहित्य में उन्होंने अपना अमिट प्रभाव छोड़ा।

हिंदी आलोचना की एक लंबी परंपरा है जिसमें प्रगतिवादी प्रखर एवं गंभीर कवि आलोचक मुक्तिबोध का नाम प्रमुख है। मुक्तिबोध ने भाववादी-कलावादी सौंदर्यशास्त्र के प्रतिमानों का खंडन करते हुए मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के वस्तुपरक प्रतिमानों को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। मुक्तिबोध की सबसे बड़ी आलोचना उपलब्धि उनकी रचना-प्रक्रिया का विवेचन है। मुक्तिबोध की आलोचनात्मक दृष्टि सदा रचना प्रक्रिया के गूढ़ तत्वों को समझने और उन्हें विश्लेषित करने पर रही है। इसी के कारण वे कला की सार्थक परिभाषा करने में भी सफल रहे हैं- रचना प्रक्रिया को सुस्पष्ट ढंग से व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध ने उसका विश्लेषण किया है। और उसके तीन क्षण निर्धारित किए हैं। मुक्तिबोध चिंतनशील प्रकृति के थे। निरंतर अशांत और व्यग्र रहने वाला उनका मन जीवन-समाज और साहित्य से जुड़े हर सवालों से जूझने लगता था। मुक्तिबोध का चिंतन द्वंद्वात्मक है और जीवन-संघर्ष तथा सौदर्यशास्त्र के दुहरे स्तर पर सक्रिय रहा है। मुक्तिबोध बर्गसां से लेकर मार्क्स तक के उपलब्ध चिंतन को आत्मसात करते हुए भी सारे प्रश्नों से निजी स्तर पर मुठभेड़ करते हैं। वे हिंदी समीक्षा की दरिद्रता और इकहरी काठी से बहुधा क्षुब्ध रहते थे। पूर्व ज्ञात सत्य और पूर्व निश्चित निषेध की प्रवृत्ति के विरुद्ध वे अन्वेषण की प्रणाली में विश्वास रखते थे। मुक्तिबोध ऐसे अकेले कवि हैं जिन्होंने विवेचना और विश्लेषण को कविता में व्यक्त किया है। इसके बीज उनके स्वभाव में ही हैं। मुक्तिबोध जताने के लिए नहीं जानने के लिए बहस करते हैं। उनका चिंतन आत्मालाप से परे वस्तु जगत के भीतर होने वाले आत्म-मंथन का परिणाम है। मुक्तिबोध कलाकार के स्वानुभूत जीवन और संपन्न जीवनानुभव के आधार पर जीवन के सार रूप में 'सौंदर्य' को परिभाषित करते हैं। अर्थात सौंदर्य के मूल तत्व यथार्थ जीवन के अनूभूत तत्वों से ही आकार ग्रहण करते हैं। कविता और कला की रचना का संबंध मनुष्य की इसी सौंदर्यानुभूति से है। यही जीवन-जगत का साधारण अनुभव कलाकार या लेखक द्वारा पुनर्रचित होने पर कला रूप में परिणत हो जाता है। मुक्तिबोध ने

टिप्पणी

मानवीय चेतना पर पड़नेवाले प्रभावों ओर अनुभवों तथा उन्हीं अनुभवों की पुनर्रचना की व्याख्या अनेक बार की है, और तरह-तरह से यही बताने की कोशिश की है कि कला का संबंध जगत के वास्तविक अनुभवों से है। मुक्तिबोध ने रचना प्रक्रिया में 'फैंटेसी' पर विशेष बल दिया है। यह उनकी रचना प्रक्रिया की अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों हैं। उनके अनुसार- "भाषा फैंटेसी को काटती-छांटती है, और इस प्रक्रिया के विपरीत फैंटेसी भाषा को संपन्न और समृद्ध भी करती है। इससे कवि-भाषा का निर्माण होता है। मुक्तिबोध द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में अत्यधिक विश्वास रखते हैं और रचना-प्रक्रिया की गतिशीलता में उन्हें उसका बोध निरंतर होता रहा है।

मुक्तिबोध के लिए केवल शब्द नहीं चतुर्दिक बिखरी ऐसी धड़कती सच्चाई थी जिसके बिना व्यक्ति का कोई अर्थ नहीं बच रहता। उनके ये शब्द गौरतलब हैं- समाज रेत का ढेर नहीं...समाज एक वृक्ष की भांति है। 'समाज और साहित्य' नामक अपने चौंतीस पृष्ठ के लंबे लेख में मुक्तिबोध ने साहित्य के अनेक प्रश्नों को ही नहीं किंतु सामाजिक ढांचे और विकास को भी विस्तार से विवेचित किया है। मुक्तिबोध मार्क्स की इस प्रसिद्ध उक्ति को अपने ढंग से स्पष्ट करते हैं कि *"सामाजिक अस्तित्व ही चेतना का निर्धारण करता है।"* मुक्तिबोध ने अपने सारे चिंतन के दौरान जीवन की सर्वोपरिता को अनेक ढंग से दोहराया है। कदाचित् यही उनकी आधारभूत पकड़ रही है इस मान्यता के आलोक में मुक्तिबोध व्यक्ति और समाज के बीच विरोध नहीं मानते। विरोध यदि है तो गलत विचारधाराओं का है। व्यक्ति और समाज के विरोध को वे मात्र बौद्धिक विक्षेप मानते हैं, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। भारतीय सामाजिक संरचना के आर्थिक मूल्यों और वर्ग व्यवस्था के प्रश्नों को भी मुक्तिबोध ने उठाया है। सामंतवाद और पूंजीवाद के चरित्र और उनकी शोषण-विधियों के बीच भ्रमित मध्य वर्ग की स्थिति उनके लिए सदैव चिंता का विषय रही। मध्य वर्ग का उन्होंने खाते-पीते वर्ग और उसी वर्ग को गरीब श्रेणी में विभाजित कर अनेक स्थलों पर खाते-पीते मध्य वर्ग की इस तर्क से आलोचना की। परिवार में भी श्रेणियां और वर्ग बने हैं। गरीब घर से आई लड़की की स्थिति सबसे खराब है। मुक्तिबोध के काव्य और चिंतन में भारत की शोषित नारी के प्रति चिंता भी कम नहीं है। मध्ययुगीन स्थिति से लेकर आधुनिक नारी की त्रासदी को मुक्तिबोध ने पहचाना है। 'सामंती वर्ग की वासना-प्रणाली ही को नहीं वे 'सीता' की यातना को भी स्त्री-शोषण के रूप में देखते हैं।

मुक्तिबोध वैज्ञानिक दृष्टि को महत्व देते थे पर न्यूटन, आइंस्टाइन आदि वैज्ञानिकों का उल्लेख भी करते हैं कि उन्होंने आधुनिकता बोध को विज्ञान-टेक्नालॉजी के व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर परखा है। विज्ञान और टेक्नालॉजी के कारण हुए असंतुलित संवेगात्मक स्थिति से वे परिचित थे और इसलिए नई जीवन दृष्टि के हिमायती थे। इस नई जीवन दृष्टि के लिए वे व्यक्ति और जीवन के रचनात्मक मूल्यों पर बेहद जोर देते थे। वे अपनी वैज्ञानिक मानववाद की धारणा की रोशनी में अमूर्त मानवतावाद के भावात्मक प्रतिमानों के अंधेरे को जानते थे। विज्ञान के नये आविष्कार और निर्माण कार्य को आशा और उत्साहवर्धक घटना मानते थे। विज्ञान पर विचार करते हुए उनकी दृष्टि में इस विशालकाय देश के करोड़ों लोगों की वर्तमान स्थिति और भविष्य की चिंता रहती थी। औद्योगीकरण को मुक्तिबोध जन कष्ट-निवारण की प्रक्रिया के रूप में देखते थे।

टिप्पणी

वे उग्र सिद्धांतवादी अहंकार से पीड़ित न होकर, लक्ष्योन्मुख उदार मानवतावाद से प्रेरित हैं। उनकी दृष्टि मानव जीवन की कल्पित आवश्यकताओं के बदले रोजमर्रा की वास्तविक आवश्यकताओं पर केंद्रित रही और इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने संस्कृति, इतिहास, विज्ञान और मानवाद को परखा। उनके आलोचना-सिद्धांतों से स्पष्ट है कि जितनी आवश्यकता लेखक को 'ईमानदारी' की है, उतनी ही समीक्षक को 'चरित्र' की रहती है।

मुक्तिबोध प्रगतिवादी आलोचकों से नई कविता तथा नये साहित्य का व्यापक तथा उदार दृष्टि से विवेचित-विश्लेषित करने की मांग को जोर-शोर से करते रहे। वह कार्य नामवर सिंह के द्वारा पूर्ण किया गया। हिंदी साहित्य के इतिहास की ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण से पुनर्लेखन की मांग को आरंभ से ही रेखांकित करते रहे हैं। मार्क्सवादी पद्धति से 'छायावाद' नामक पुस्तक में उनके द्वारा गहन विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। 'कविता के नये प्रतिमान' में डॉ. सिंह ने प्राचीन तथा नवीन सर्जनात्मकता का मूल्यांकन करने के लिए और न्याय दिलाने के लिए लक्ष्मीकांत वर्मा की पुस्तक 'नई कविता के प्रतिमान' नामक पुस्तक से दिशा-दृष्टि में अलग हटते हुए देश-विदेश के सिद्धांतों से नया काव्य-शास्त्र निर्मित किया है। कविता के काव्यबोध को परखने के लिए 'कविता के नये प्रतिमान' में कविता के लगभग सभी पक्षों पर नामवर सिंह ने विचार किया है। आलोचक की भूमिका को वे महत्वपूर्ण मानते हैं। उनकी दृष्टि में आलोचक की वस्तुनिष्ठता इस बात में है कि वह किसी कृति के मूल्यांकन की प्रक्रिया में उसके रूप की जो पुनः सृष्टि अपने लिए करता है वह यथासंभव अधिक से अधिक मूल कृति के निकट हो। इस प्रयास में एकमात्र अवलंब उस कविता की भाषा है। उस कविता से संबंधित चाहे जितनी बाहरी सूचनाएं उसे उपलब्ध हों किंतु 'खेल के नियम' के मुताबिक आलोचक उन सूचनाओं से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

'काव्य-बिंब और सपाटबयानी' नामक निबंध में बिंब को काव्य-प्रतिमान मानने वाले पश्चिमी आलोचकों की चर्चा है। यहां वे हिंदी समीक्षा में आचार्य शुक्ल जी के 'बिंब ग्रहण' से शुरू करते हैं, पल्लव की भूमिका में घोषित 'चित्र भाषा की आवश्यकता' के साथ निराला जी के 'विराट चित्रों' की दृष्टि का संकेत देते हैं। वे डॉ. नगेंद्र की 'काव्य बिंब' दृष्टि का खंडन करते हुए डॉ. केदारनाथ सिंह के साथ हो जाते हैं। यहीं पर डॉ. नामवर सिंह पर एफ.आर. लीविस की दृष्टि का प्रभाव है। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में हम डॉ. नामवर सिंह का मूल्यांकन कर सकते हैं कि "नामवर सिंह की आलोचना की सार्थकता इसलिए है कि वह तीखे वैचारिक संघर्ष और साहस के एक तरह की रचनाशीलता और प्रखर जीवंत संवादोत्मकता का साक्ष्य भी है। विचारधारावादी आलोचक और भी हैं पर वे अक्सर उस ढंग की सर्जनात्मक विकलता से वंचित हैं जो नामवर सिंह की आलोचना का सहज गुण है। केवल स्थापनाएं करने वाली या परिभाषाएं देने वाली आलोचना, आलोचना को दर्शन बना सकती है। सर्जनात्मक साहित्य नहीं। नामवर सिंह की आलोचना सर्जनात्मक साहित्य है।" डॉ. सिंह की समीक्षा पद्धति की यह विशेषता है कि उनमें आचार्य शुक्ल के साथ मुक्तिबोध, आई.ए. रिचर्ड्स, टी.एस. इलियट तथा डॉ. एफ.आर. लीविस की विचारधाराओं का समन्वय दिखाई देता है।

इस प्रकार इस इकाई में आपने साहित्य समीक्षा को ऊंचाइयों तक ले जाने और उसे नयी दिशा प्रदान करने वाले विद्वान समालोचकों व उनकी मान्यताओं को जाना।

5.11 मुख्य शब्दावली

टिप्पणी

- **विधा** : शैली।
- **टांग खींचना** : निरर्थक आलोचना करना।
- **उन्मेष** : किसी भाव का प्रकट होना।
- **समाहित** : समाया हुआ।
- **प्रयोगवाद** : परंपराओं को तोड़ना।
- **उत्कर्ष-अपकर्ष** : उत्थान-पतन।
- **वैनोदिक** : मनोरंजनात्मक।
- **उपादान** : मुख्य कारण (जैसे घड़े के लिए मिट्टी)।
- **कदर्थित** : तिरस्कृत।
- **चिरंतन** : बहुत दिनों से चला आता रहने वाला, पुरातन।
- **द्राक्षा** : अंगूर।
- **भूमा** : ऐश्वर्य।
- **सातत्य** : निरंतरता, स्थायित्व।
- **अभ्यंतर** : अंतःकरण।

5.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. रसवादी
2. आनंद की साधनावस्था और सिद्धावस्था
3. दार्शनिक चिंतन की
4. तीन
5. लोक-हृदय की पहचान
6. रस-दशा
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल को
8. विलायती चीजों का मुरब्बा
9. पूंजीवादी प्रवृत्ति का
10. 'समाज की गतिशीलता की अभिव्यक्ति
11. काडवेल
12. दो
13. अभिनवगुप्त

टिप्पणी

14. औचित्य सिद्धांत
15. 'पश्चिमी प्रयोगवाद' को
16. आधुनिक युग का रीतिवाद
17. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
18. रस को
19. छायावादी कवियों को
20. नंददुलारे वाजपेयी को
21. आक्रोश का
22. समाजवादी विचारों के
23. प्लेटो और अरस्तू
24. सात
25. स्वच्छंदतावादी
26. महाकाव्य
27. सुमित्रानंदन पंत
28. 'रस सिद्धांत'
29. स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह
30. डॉ. नगेंद्र को
31. निषिद्ध
32. शिव और सुंदर
33. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
34. शृंगार
35. सार्थक
36. पावन एवं आदर्शपूर्ण
37. इच्छा, ज्ञान और क्रिया
38. मनुष्य को देवता मानना
39. कबीर, तुलसी और प्रेमचंद
40. मानवतावादी
41. स्वच्छंदतावादी
42. वस्तु का रूप पक्ष
43. रूप, भावना तथा विचार की
44. विषयवस्तु की

टिप्पणी

45. वस्तु जगत की यथार्थता
46. मनुष्य का इंद्रिय बोध
47. सौंदर्य
48. प्रजापति का
49. सांस्कृतिक प्रक्रिया
50. फैंटेसी
51. वास्तविक दुनिया में
52. द्वंद्वात्मक
53. सौंदर्यानुभूति
54. समाजवाद से
55. औद्योगीकरण को
56. आशा और उत्साहवर्धक घटना
57. ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण
58. मार्क्सवादी
59. छायावादी काव्य में
60. कविता के नये प्रतिमान
61. दूसरी परंपरा की खोज
62. रस से
63. रस को
64. टी.एस. इलियट

5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. लोकमंगल की भावना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. छायावाद पर प्रकट आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विचारों की समीक्षा कीजिए।
3. मार्क्सवादी समीक्षा एवं शिवदान सिंह चौहान की तुलना कीजिए।
4. प्रगतिवादी साहित्य चिंतन से आप क्या समझते हैं? समझाइए।
5. साधारणीकरण की सीमा से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।
6. छायावाद पर डॉ. नगेंद्र के विचारों की समीक्षा कीजिए।
7. काव्य में शुद्धता के आग्रह से आप क्या समझते हैं? वर्तमान साहित्य से उदाहरण देकर समझाइए।

टिप्पणी

8. हजारी प्रसाद द्विवेदी के सौंदर्य एवं संस्कृति बोध पर एक निबंध लिखिए।
9. डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार एक साहित्यकार की भूमिका को परिभाषित कीजिए।
10. मुक्तिबोध के काव्य में चित्रित समाज का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
11. छायावाद का 'सामाजिक सत्य' क्या है? परिभाषित कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के समालोचना जगत में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के योगदान का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. शिवदान सिंह की आलोचना शैली की समीक्षा कीजिए।
3. आधुनिक काल के स्वच्छंदतावादी समीक्षकों में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का महत्व प्रतिपादित कीजिए।
4. 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों का समन्वय करने के साथ डॉ. नगेंद्र ने आधुनिक हिंदी आलोचना साहित्य को एक प्रखरता प्रदान की'– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में डॉ. नगेंद्र की आलोचना पद्धति की समीक्षा कीजिए।
5. आलोचना में भी मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले समीक्षक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के काव्य सिद्धांतों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतवैभिन्य का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।
7. प्रगतिवादी समीक्षा के विकास में डॉ. रामविलास शर्मा के योगदान का विवेचन कीजिए।
8. मुक्तिबोध के चिंतन के स्वरूप का विस्तार से विवेचन कीजिए।
9. मुक्तिबोध के काव्य में मार्क्सवादी मूल्यों का विश्लेषण कीजिए।
10. 'डॉ. नामवर सिंह की आलोचना सर्जनात्मक साहित्य है'– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में हिंदी समीक्षा जगत में डॉ. नामवर सिंह के योगदान का विवेचन कीजिए।

5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. भगीरथ मिश्र, *काव्यशास्त्र*, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर–1957
2. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, *हिन्दी साहित्य में विविध वाद*, पद्मजा प्रकाशन कानपुर 2010–वि.सं.
3. डॉ. वेंकट शर्मा, भूमिका नगेंद्र, *आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास*, आत्माराम एंड संस दिल्ली–1967
4. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *काव्य दर्पण*, साहित्यागार, जयपुर–1988
5. डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक, *भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान*, साहित्यागार जयपुर –1988
6. चंद्रकांत देवताले, *मुक्तिबोध कविता और जीवन–विवेक*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
7. सत्यदेव मिश्र, *पाश्चात्य समीक्षा–सिद्धांत और वाद*, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा,1975
8. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, *सहृदय और साधारणीकरण*, हिंदुस्तान एकेडमी इलाहाबाद, 1984
8. डॉ. लक्ष्मी पांडेय, *अधुनातन काव्यशास्त्री : आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी*, उर्मिल प्रकाशन, गाजियाबाद।
10. डॉ. रामचंद्र तिवारी, *हिंदी आलोचना: शिखरों का साक्षात्कार*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
11. डॉ. हुकुमचंद राजपाल, *आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

120 डॉ. रामकृपाल पांडेय, *आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साहित्य सिद्धांत*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

13. डॉ. निर्मला जैन, *नयी समीक्षा के प्रतिमान*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
14. डॉ. बच्चन सिंह, *आलोचक और आलोचना*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
15. विश्वनाथ त्रिपाठी, *हिंदी आलोचना*, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
16. नंद किशोर नवल, *हिंदी आलोचना का विकास*, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली

टिप्पणी